

# श्रीरामचरितमानस

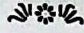
## विजया टीका

मानसराजहंस पं० विजयानन्द त्रिपाठी

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१४७



# श्रीरामचरितमानस

## विजया हिन्दी टीका

(द्वितीय भाग)

द्वितीयसोपान : अयोध्याकाण्ड

तृतीयसोपान : अरण्यकाण्ड

टीकाकार

मानसराजहंस पं. श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी

सम्पादक

डॉ. श्रीनाथ मिश्र 'रामायणी'

डॉ. सहजानन्द त्रिपाठी



चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

प्रकाशक

**चौखम्बा विद्याभवन**

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2420404



पुनर्मुद्रित संस्करण 2004 ई.

मूल्य : ,1500.00 (1-3 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान

**चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान**

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष : 23856391



**चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन**

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2335263, 2333431

# विषयानुक्रमणिका



---

१. राज तजा सो दूषन कहा।

रूप। अवतार का कारण। सिय रघुवीर चरणरति के लिए उपदेश। जटाधारण सुमन्त विदाई। रामजी के नाव माँगने पर केवट का न लाना। पैर धोने के लिए अनुरोध। पाद-प्रक्षालन : दो. १०१ तक। पृ० २०५ से।

सुरसरि उतरि प्रयागनिवास प्रसङ्ग : गङ्गा पार जाना। केवट की विदाई। गङ्गा स्नान। पार्थिव पूजन। सीता द्वारा गङ्गा की मनौती। विटप तर वास। प्रयागराज का वर्णन। स्नान। भरद्वाज के आश्रम में निवास। मार्ग-प्रदर्शन के लिए भरद्वाज का चार शिष्य देना : दो. १०८.५ तक। पृ० २३२ से।

पन्थ कथा प्रसंग : यमुना पहुँचने पर मुनि-शिष्यों की विदाई। यमुना स्नान। तीर-वासियों का प्रेम। एक कवि तापस का आगमन। निषादराज की विदाई। पथिकों का प्रेम। मार्ग का भाग्य। मेघद्वारा छाया। पुष्पवृष्टि। ग्रामवासियों का प्रेम। वट तर विश्राम। सीता और ग्रामवधुओं का संवाद। ग्रामवासियों द्वारा विधि की निन्दा। स्नेह से विकलता। राम सीता लक्ष्मण पथिक का वर्णन। वट तर निवास। स्नान करके पुनः प्रस्थान : दो. १२३.४ तक। पृ० २४७ से।

वाल्मीकि मिलन प्रसंग : आश्रम वर्णन। वाल्मीकि मिलन। अपनी कथा कहकर रहने के लिए स्थान पूछना। वाल्मीकि कृत स्तुति तथा चौदह प्रकार के भक्तों के हृदय में निवास करने की प्रार्थना। समय सुखदायक स्थान चित्रकूट बतलाना : दो. १३२ तक। पृ० २७५ से।

चित्रकूट निवास प्रसंग : गिरिजा के छठे प्रश्न के पूर्वार्ध का उत्तर : चित्रकूट[1] में निवासयोग्य स्थान का निर्णय। विश्वकर्मा के साथ देवताओं का किरात वेष में पर्णशाला-निर्माण। दिक्पालों का अपनी विपत्ति सुनाना। मुनियों का आकर मिलना। किरातों का आकर मिलना। वन-वर्णन। चित्रकूट की महिमा। आपस का प्रेम। चित्रकूट विहार। दो. १४१.३ तक। पृ० २९४ से।

सचिवागमन प्रसंग : निषादराज के लौटने पर सुमन्त से भेंट। चार सेवक साथ करके उन्हें लौटाना। सुमन्त का शोक। तमसातीर चारों सेवकों की विदाई। सुमन्त का अँधियारे अवध प्रवेश। नगर में नारि-नर की व्याकुलता। महाराज से भेंट। सन्देश सुनकर महाराज की विकलता : दो. १५२.४ तक। पृ० ३११ से।

नृप मरण प्रसंग : रानियों का विलाप। कौसल्या का धैर्य बँधाने का प्रयत्न। महाराज का प्रेमोन्माद। अन्ध तापस की कथा। महाराज का सुरधाम गमन। विलाप। कैकेयी को गाली। वसिष्ठ द्वारा शोकावनोदन। नृप तन का तेल नाव में रखना। भरत के यहाँ दूत : दो. १५७ तक। पृ० ३३३ से।

भरतागमन प्रसंग : भरत का ननिहाल से प्रस्थान। अवध प्रवेश में असगुन। नगर में उदासी। कैकेयी से बातचीत। भरत का शोक। मन्थरा कूबर भङ्ग : दो. १६२.८ तक। पृ० ३४० से।

प्रेम वर्णन प्रसंग : कौसल्या से भेंट। भरत

---

१. वनवासि कीन्हे चरित उदार।

निश्चय। रामजी का सङ्कोच से चुप रह जाना। जनकदूत आगमन। मुनि दूत संवाद। दूत की विदाई : दो. २७१.८ तक। पृ० ५६५ से।

जनकागमन प्रसङ्ग : रामजी को सङ्कोच। इन्द्र को सोच। कैकेयी की ग्लानि। प्रजा को मोद। दूसरे दिन पञ्चदेवोपासन। प्रार्थना। जनकागमन सुनकर रामजी का समाजसहित लेने जाना। शैल दर्शन होते ही जनक द्वारा रथ त्याग। सबका मिलन। रामजी का लिवा चलना। दोनों राज समाज की विकलता। मुनियों का समझाना। रामघाट स्नान। सबका निर्जल रह जाना। दूसरे दिन वसिष्ठ शतानन्द और विश्वामित्र का समझाना। जनकजी का दूसरी जगह ठहरना। सत्कार। जनकराज रनिवास का कोसलराज रनिवास से भेंट। चलते समय सीता को साथ लाना। जनक से भेंट। सीता की विदाई। जनक सुनैना संवाद : दो. २८९.२ तक। पृ० ६०८ से।

दूसरी सभा : रघुपति प्रबोध प्रसङ्ग : गुरुजी से रामजी की प्रार्थना। गुरुजी का जनक के पास जाना। जनक का समाज के सहित भरत के पास जाना। जनक भरत संवाद। सबका रामजी के पास आना। देवताओं की भरत के मत को फेरने के लिए सरस्वती से विनय। सरस्वती का अस्वीकार। देवताओं की माया से भय भ्रम आर्त्ति और उपचार का प्रादुर्भाव। जनक का राम से आज्ञा माँगना। रामचन्द्रका जनकजी की आज्ञा मानने का शपथ लेना। जनकजी का समासहित सङ्कोच। भरतजी द्वारा सरस्वती का स्मरण। भरत का खड़ा होकर आज्ञा माँगना। रामजी का हाथ पकड़कर निकट बैठाना। भरत की प्रशंसा। प्रजा की द्विविध मनोगति। रामचन्द्र का कथन। भरत को सन्तोष। मुनिथल तीरथ वन दर्शन की आज्ञा। भरत कूप। वन अटन : दो. ३१२ तक। पृ० ६४७ से।

तीसरी सभा : भरत की विदाई के लिए प्रार्थना। रामचन्द्र का उपदेश। भरत का प्रबोध। पादुका प्रदान। भाइयों का मिलन। विदाई। प्रस्थान। राम सीता लक्ष्मण को प्रिय परिजन का वियोग। देवताओं का दुःख निवेदन। राम का भरोसा देना। राम लक्ष्मण सीता का पर्णकुटी में निवास : दो. ३२१ तक। पृ० ६९६ से।

पादुका सहित अवध प्रत्यागमन प्रसंग : सब समाज राम विरह से दुःखी। यमुना पार होना। उस दिन उपवास। गङ्गा पार करके निवास। निषादराज का सत्कार। सई उतरि गोमतीस्नान। चौथे दिन अवध प्रवेश। जनकजी का चार दिन अवध में रहकर सब व्यवस्था करना। लोगों का राम-दर्शन के लिए नेम उपवास : दो. ३२२ तक। पृ० ७१५ से।

भरत रहनि प्रसंग : सचिव सेवक का अपने अपने कार्य में लग जाना। ब्राह्मणों से आज्ञा देते रहने के लिए भरतजी की प्रार्थना। पुरजन, परिजन प्रजा का समाधान करके स्ववश बसाना। गुरुजी से सनियम रहने के लिए आज्ञा चाहना। राजसिंहासन पर पादुका स्थापन। आज्ञा माँगकर कार्य करना। नन्दिग्राम निवास। भरत की तपस्या। भरतचरित की फलश्रुति। दो. ३२६ तक। पृ० ७२७ से।

उसके अधीन सत्सङ्ग से अनुपम सुखमूल भक्ति की प्राप्ति : भक्तिचिन्तामणि बीज : पृ० ७९१ से ।

**भक्तियोग : साधना :** विप्र चरण प्रीति तथा स्वधर्माचरण । उससे विषय विराग । तब भगवद्धर्म में अनुराग । श्रवणादिक भक्ति की दृढ़ता । भगवत् लीला में रति । सन्त चरण में प्रेम । मन क्रम वचन से भजन । लक्ष्मण को सुख प्राप्ति । प्रणाम । विराग, ज्ञान, गुण और नीति विषयक उपदेशों में समय बिताना : दो. १०.२ तक । पृ० ८१५ से ।

**सूर्पणखा विरूपकरण प्रसंग :** सूर्पणखा का पञ्चवटी में आगमन । दोनों भाइयों पर मोहित होना । प्रेम प्रस्ताव । प्रभु का उसे लक्ष्मण के पास भेजना । लक्ष्मण का उसे समझाकर फिर प्रभु के पास लौटाना । रामजी का फिर उसे लक्ष्मण के पास भेजना । लक्ष्मण द्वारा तिरस्कार । सूर्पनखा का प्रभु के पास आकर भयङ्कर रूप प्रकट करना । रामजी के इङ्गित पर लक्ष्मण द्वारा श्रवण नासिका छेदन : ११.१ । पृ० ८२९ से ।

**खरदूषणवध प्रसंग :** सूर्पणखा द्वारा खरदूषण को धिक्कार । खरदूषण का ससैन्य प्रस्थान । लक्ष्मण का सीता को राम की आज्ञा से गिरि कन्दरा में ले जाना । राम की युद्ध के लिए तैयारी । बगमेल आगमन । खरदूषण का दूत भेजना । रामजी का उत्तर । धावा । धनुषटङ्कार । युद्ध में तीन धावा । प्रभु की पण्डिताई । सबका वध । देवों द्वारा पुष्पवर्षा । स्तुति । लक्ष्मण का सीता को लाना । प्रभु का सुर मुनि सुखदायक चरित : दो. १४.४ । पृ० ८३५ से ।

**दसानन समाचार प्रसंग :** खरदूषण का शव देखकर सूर्पणखा का रावण के यहाँ जाना । विलाप करते हुए सभा में गिर पड़ना । दशानन के पूछने पर निज दोष गोपन पूर्वक सब वृत्तान्त कहना । रावण का सान्त्वना देना । रावण का रात्रि में विचार । दृढ़ मन्त्र । एकाकी रथ पर चढ़कर मारीच के पास जाना दो. १६.७ । पृ० ८५० से ।

**रामजी की युक्ति :** लक्ष्मण का कन्द मूल फल लेने वन जाना । रामजी का सीताजी से अपना विचार प्रकट करना । अपना प्रतिबिम्ब वहाँ रखकर सीताजी का अग्नि प्रवेश : दो. १७.५ । पृ० ८५७ से ।

**दशकन्धर मारीच बतकही प्रसंग :** दशकन्धर का मारीच के यहाँ जाना । प्रणाम करना । पूजा करके मारीच का वृत्तान्त पूछना । रावण का कहना तथा कपटमृग बनकर सीताहरण में सहायक होने के लिए अनुरोध । मारीच का समझाना । रावण का क्रोध । मारीच निश्चय । रावण के साथ चलना । मारीच का मनोरथ । राम वन के निकट मारीच का हेममृग रूप धारण : दो. २०.१ । पृ० ८५९ से ।

**मायासीता हरण प्रसंग :** सीता का मृग देखना । रामचन्द्र से मृगछाला के सीता की प्रार्थना । लक्ष्मण का पहरा । रामचन्द्र का मृग वध के लिए प्रस्थान । पीछा करना । मृग का कपट । मृग वध । रामचन्द्र के स्वर से मृग का लक्ष्मण को पुकारना । मारीच की गति । प्रभु का लौटना । आर्त्तगिरा सुनकर लक्ष्मण को जाने के लिए सीता का आदेश । लक्ष्मण का समझाना । सीता का क्रोध । लक्ष्मणजी का प्रस्थान । दशानन का यति के वेष में आगमन ।

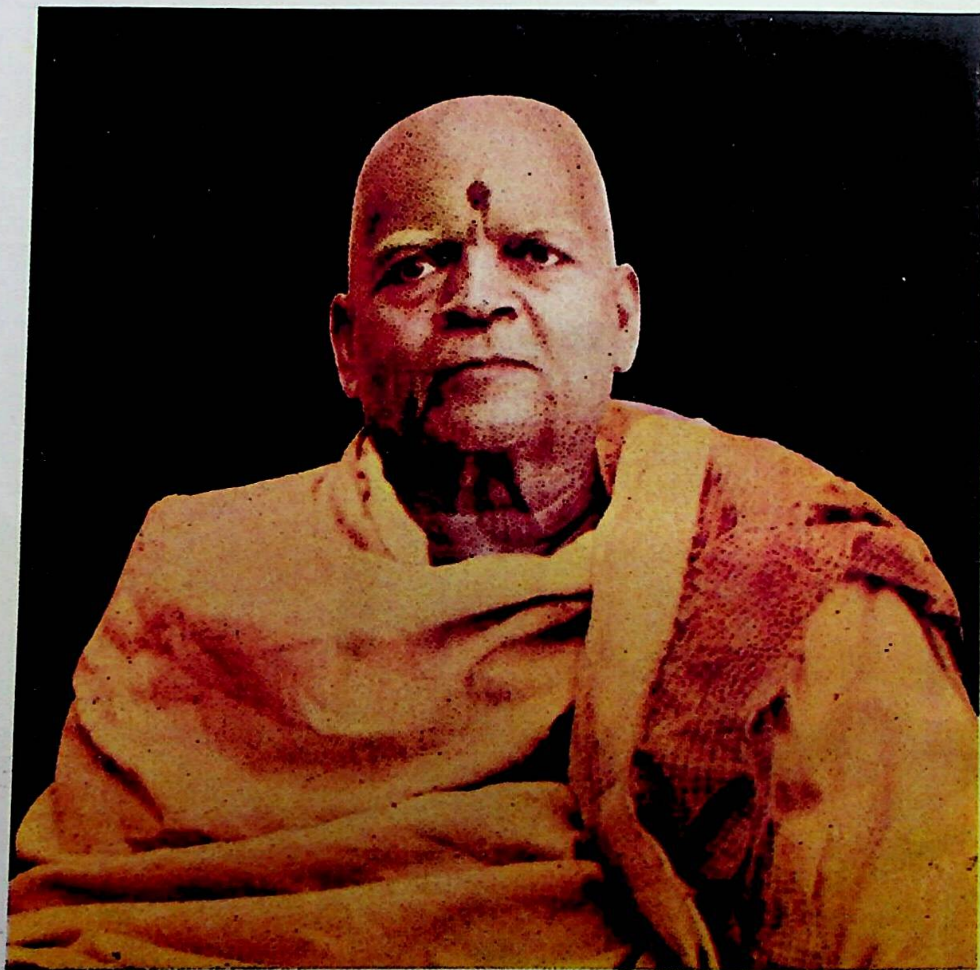
●

तुम्हरोहि भरोस महेश हमें तुमही मम जीवन के रखवारे।
तजि देह सकौं न सकौं तज तोहिं तुही विजयानंद प्रान पियारे ॥
मन में न धरौ कछु हानि गलानि करैं हम सोइ जोइ निरधारे।
यह प्रेम को नेम न टारे टरे हम भक्तन के अरु भक्त हमारे ॥

—विजयानन्द त्रिपाठी



दुर्गापुरस्थित श्रीराम जानकी मन्दिर



मानसराजहंस पं. श्रीविजयानन्द जी त्रिपाठी

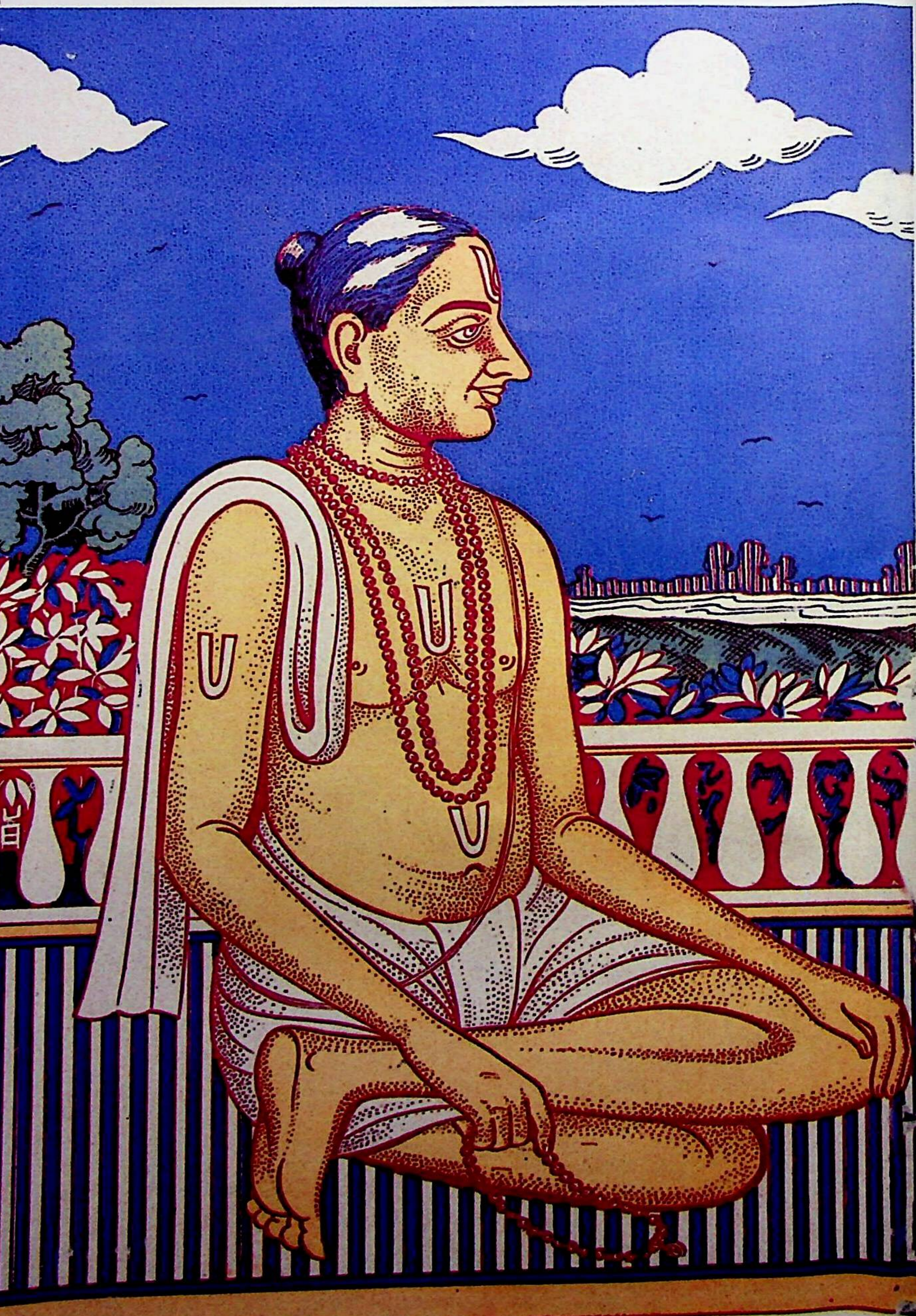


मानसराजहंस श्री विजयानन्द त्रिपाठी के प्रमुख शिष्य

**डॉ. श्रीनाथ मिश्र रामायणी**

# श्रीराम चरित मानस

## विजया टीका



श्री गोस्वामी तुलसीदासजी

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

# श्रीरामचरितमानस

## अयोध्याकाण्ड : द्वितीय सोपान

## सटीक

### मङ्गलाचरण

श्लो. यस्यांके[1] च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।
सोयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु मां ॥१॥

अर्थ : जिनकी गोद में पार्वतीजी, मस्तक पर गङ्गाजी, ललाट पर बालचन्द्र, गले में विष और जिनके वक्षस्थल पर सर्पराज विराजमान हैं। वे यही भूतिविभूषण, देवताओं में श्रेष्ठ, सदा सबके स्वामी, संहारकर्ता, सबमें व्याप्त, चन्द्रमा के समान प्रकाशित श्रीशङ्कर शिवजी मेरी रक्षा करें।

व्याख्या : पार्वतीजी स्वयं प्रकाशमान हैं। पर शङ्करजी के अङ्क में विशेष रूप से प्रकाशमान हुईं। अतः विभाति कहा। यही क्रिया अन्य कर्ताओं के साथ लगेगी। गङ्गाजी भी प्रकाशमान हैं। पर शङ्कर भगवान् के सिर पर विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं। उमा गङ्गा दोनों शिवजी की शक्तियाँ हैं। महेस मुखचंद चकोरी होकर उत्कर्ष को प्राप्त हैं। यही बात बालविधु की भी है : यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते। विष भी सुन्दर प्रकाशवाला हो जाता है। अमृत का फल देने लगता है : कालकूट फल दीन्ह अमीके। व्यालराट् भी अधिक उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं। गरुड़ से भी निर्भय हो जाते हैं। आभूषण की भाँति सुशोभित होते हैं। यथा :

---

१. यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इसमें १९ अक्षरों का एक पाद होता है। बारह अक्षरों पर यति होती है। इसमें एक मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, दो तगण और अन्त में एक गुरु होता है।

भाग २–१

भुजगभूति भूषन त्रिपुरारी। सोयम् से प्रसिद्धि कही। विभूति का भी महान् उत्कर्ष हो जाता है। वह श्मशान की अमङ्गल अपावन विभूति महामङ्गलमय और पवित्र हो जाती है। यथा : भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी। शिवजी देवाधिदेव महादेव हैं। इसलिए सुरवर कहा। ईश्वर हैं। इसलिए सदा सर्वाधिप कहा। अखण्ड ऐश्वर्य द्योतित किया। संहारकर्ता भी ये ही हैं। इसलिए शर्वं कहा। ब्रह्मरूप होने से सर्वगत कहा। प्रलयकाल में भूतमात्र इन्हीं में शयन करते हैं। इसीलिए शिव कहा। परम आह्लादकारिणी मूर्ति है। इसलिए शशिनिभ कहा : अथवा ज्योतिर्मय होने से शशिनिभ कहा। ऐसे श्रीयुक्त शङ्कर से कवि अपनी रक्षा चाहते हैं। यहाँ श्री का अर्थ उमा है। क्योंकि वही शङ्कर की लक्ष्मी हैं। ओर्मा उमा। उ शङ्कर को कहते हैं। उनकी लक्ष्मी का नाम उमा है।

इसी वर्णन द्वारा शिवजी के अखिल रसामृतमूर्ति होने का वर्णन किया। विभाति भूधरसुता से श्रृङ्गार कहा। देवापगा मस्तके से हास्य कहा। कैसी ही प्रिय स्त्री हो पर उसे कोई सिर पर चढ़ाये नहीं फिरता। भाले बालविधुः से अद्भुत रस कहा। चन्द्रमा आकाश में रहते हैं किसी के सिरपर नहीं रहते। गले च गरलं से करुण रस कहा। यथा : जरत सकल सुरवृंद विषम गरल जेहि पान किय। उरसि व्यालराट् से भयानक रस कहा। भूतिविभूषणः से बीभत्स रस कहा : श्मशान की विभूति बीभत्स है। सर्वाधिपः से वीर रस कहा क्योंकि वीरभोग्या वसुन्धरा है। शर्व से रौद्र रस और सर्वगत से शान्त रस कहा।

इसी वर्णन से शिवजी में विरुद्धधर्माश्रयत्व भी दिखलाया। स्थावर विष गले में जंगम विष : सर्पराट् छाती पर और अमृतांशु : चन्द्रमा मस्तक पर। इस भाँति विष और अमृत दोनों का आश्रय कहा। एक स्त्री गोद में एक सिर पर है और आप भूतिविभूषण हैं। यह भी सर्वथा विरुद्ध है। जो शर्व : संहारक है। वही सर्वाधिप : सबका पालक है। ये दोनों धर्म भी अत्यन्त विरुद्ध हैं। इनके आश्रय शङ्कर भगवान् हैं।

श्लो. प्रसन्नता[1] या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले[2] वनवासदुःखतः।
मुखांबुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमङ्गलप्रदा ॥२॥

अर्थ : जो राज्याभिषेक से प्रसन्नता को न प्राप्त हुई और वनवास के दुःख से मलिन न हुई वह श्रीरघुनन्दन के मुखकमल की श्री : शोभा सदा मेरे लिए सुन्दर मङ्गल की देनेवाली हो।

---

१ यह वंशस्थ छन्द है। इसमें १२ अक्षरों का एक पाद होता है। इसमें क्रम से जगण, तगण, जगण और रगण होते हैं।

२. सुप् लुक् सुपां तिङां वा विपर्ययश्चात्र बहुलं स्युः। प्राकृत में तिङ् का विपर्यय हो जाता है। अतः मम्लौ न लिखकर मम्ले लिखा यह ग्रन्थ ही प्राकृत में लिखा गया है। यथा : प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन हरि चरित बखाने।

व्याख्या : मानुष-आनन्द की पराकाष्ठा राज्यप्राप्ति मानी जाती है। लोक में प्रसिद्ध है : हरखे सकल पाइ जनु राजू और दुःख की पराकाष्ठा वन में भेजा जाना है। वन के स्मरण से धीरों की धैर्यच्युति होती है। यथा : डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। सो जिसे राज्याभिषेक के समाचार से कोई हर्ष नहीं हुआ। यथा : जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। करन वेध उपबीत बिवाहू। संग संग सब भयउ उछाहू। बिमल बंस यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू। प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई। इसी भाँति वनवास के समाचार से विषाद नहीं हुआ। यथा : मुखु प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ। हृद्गत भावों की प्रकाशक मुखश्री है। यह सुख समाचार से खिल उठती है। और दुःख के समाचार से म्लान हो जाती है। पर रघुनन्दन के मुखकमल की श्री इतने बड़े सुख दुःख के समाचार पर न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न मलिन हुई। उसका दोनों अवस्थाओं में एकरस रहना आभ्यन्तर आनन्द का सूचक है। यथा : मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। राम सहज आनन्द निधानू। उस श्री का ध्यान विघ्न-विध्वंसक है। इसलिए कवि कहते हैं कि वह श्री मुझे सदा सुन्दर मङ्गल की देनेवाली हों। क्योंकि सरकार की मुखाम्बुजश्री से ही सब सश्रीक हैं।

श्लो. [1]नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥३॥

अर्थ : नील कमल की भाँति जिसके अङ्ग श्यामल और कोमल हैं। सीताजी जिसके वाम भाग में सुशोभित हैं। दोनों हाथों में जिसके बड़े : प्रभावशाली बाण और सुन्दर धनुष है। उन रघुवंशनाथ रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : शृङ्गाररस का वर्ण ही श्याम है। श्याम और कोमल होने से ही श्रीअङ्गों की उपमा नील कमल से दी गई। सीतासमारोपितवामभागं से श्रीसीताजी को अङ्कारूढ़ कहा। इससे शृङ्गार वर्णन किया। यथा : राज भवन सुख बिलसत सिय सँग राम। बिपिन चल्यौ तजि राज सुविधि बड़ वाम। महासायकचारुचापं से वीररस कहा। यहाँ महासायक से अभिप्राय चण्डशर से है। यथा : लव निमेष परमान जुग वर्ष कल्प सर चंड। भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदंड। सीतासमारोपितवामभागं से आधेय की आधार से अल्पता कही। माया ब्रह्म के एक देश में रहती है। श्याम वर्ण से प्रभु का इन्द्रियातीत होना द्योतित किया। यथा : स्याम वर्ण सुचि प्रकट लखावत दृग ते पार रहैया। सीता समारोपितवामभागं से माया का अधिष्ठान होना भी द्योतित किया। महासायकचारुचापं से महाकाल-

---

१. यह इन्द्रवज्रा छन्द है। इसमें ग्यारह अक्षरों का एक पाद होता है। इसमें क्रम से दो तगण, एक जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं।

काल होना भी कहा। रंघ धातु से रघु शब्द बना है। रघु का अर्थ है जीव। अतः रघुवंशनाथं कहकर साक्षात् ब्रह्म रूप कहा।

## अयोध्याकाण्ड

सप्त मोक्षपुरी रूपी सातों काण्डों में अयोध्याकाण्ड मथुरापुरी है। श्रीकृष्ण-चन्द्र आनन्दकन्द जिस भाँति मथुरा गये और समस्त गोपीग्वाल को विरहावस्था का अनुभव करना पड़ा। इसी भाँति सरकार भी इस काण्ड में श्रीअयोध्याजी से चित्रकूट पधारे और समस्त अयोध्यावासियों को विरहज्वाल से सन्तप्त होना पड़ा। यथा : सहि न सके रघुवर विरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी। इसलिए इस काण्ड को मथुरापुरी कहा गया। यथा :

बालकाण्ड है[1] अवध, अवध मथुरा मन भावन।
हरद्वार आरण्य काशिका किष्किन्धा मन॥
कांची सुन्दर लसत लंक उज्जैन सुहावन।
उत्तर द्वारावती पुरी सातों अति पावन॥
लसत जहाँ सोपान प्रति ऐसो राम चरित्र सर।
विजयानद सेवत सुलभ सब सुखकर सब पापहर॥

अन्त के श्लोकानुसार यह काण्ड पापहर है। सातों काण्डों की संक्षेप में फलश्रुति ग्रन्थ के अन्त में दी गई है। यथा : १. पुण्यं २. पापहरं ३. सदा शिवकरं ४. वैराग्यभक्तिप्रदं। ५. मायामोहमलापहं ६. सुविमलं ७. प्रेमाम्बुपूरं शुभम्। अयोध्या के अन्त में भी कहा है : पापपुंज कुंजर मृगराजू। समन सोक संताप समाजू।

दो. श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि॥

अर्थ : श्रीगुरुजी के चरणकमलों की धूलि से अपने मनरूपी दर्पणको सुधारकर श्रीरघुवर के विमल यश का वर्णन करता हूँ जो चारों फलों को देनेवाला है। रघुवर शब्द से यहाँ रामजी और भरतजी का ग्रहण है। दोनों के चरित्र पृथक् पृथक् १५६ दोहों में वर्णित हैं।

व्याख्या : गुरु पद मंजुल रज अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन। तेहि करि विमल विवेक बिलोचन। वरनौं रामचरित भव मोचन। लिखने से मालूम होता है कि बालकाण्ड लिखने के आरम्भ में विवेकरूपी नेत्र को सुधारा। अब मनमुकुर को सुधारते हैं। बालकाण्ड में रामचरित कहना था। इसमें भरत-चरित कहना है और भरत महामहिमा सुनु रानी। जानहि राम न सकहिं वखानीं। उस महामहिमा के वर्णन में जहाँ रुख देखकर काम किया जाता है समझने के

---

१. बालकाण्ड को अवध कहने का यथेष्ट कारण स्पष्ट है। क्योंकि श्री रामावतार तथा बाललीला अवध में ही हुई।

लिए मनमुकुर के अत्यन्त शुद्ध करने की आवश्यकता है। बिना शुद्ध हुए उसमें ठीक-ठीक सूक्ष्मभाव प्रतिफलित न होगा। अतः यहाँ मनमुकुर सुधारा जा रहा है। जिस भाँति दर्पण धूलि से सुधारा जाता है, उसी भाँति मनरूपी दर्पण गुरुपदधूलि से सुधारा जाता है। पूर्वकाल में लोहे के दर्पण बनते थे और उसमें मुख का प्रतिविम्ब उसी भाँति पड़ता था जिस भाँति तलवार में पड़ता है। इसलिए उसे धूलि से बराबर रगड़ना पड़ता था। दर्पण का उपयोग प्रतिविम्ब दर्शन में ही होता है। जितना ही मनमुकुर शुद्ध होगा, उतना ही दूसरों के मनोगत भाव ठीक-ठीक उसमें प्रतिफलित होंगे। इस कमल की पुरइन है : जन मन मंजु मुकुरमल हरनी। मुकुर के वर्णन से ही यह काण्ड प्रारम्भ होता है। यथा : राँय सुभाँय मुकुरु कर लीन्हा। अतः कवि ने भी मनमुकुर को सुधारना आवश्यक समझा।

धर्म, ज्ञान, योग और जप चारों फलों की सिद्धि के लिए किये जाते हैं। सो इनका साधन कलिकाल में अत्यन्त कठिन है। अतः रघुवर यश ही इस काल में चारों फल ( धर्मार्थकाम और मोक्ष ) दे सकता है। यथा : कठिन कालमल कोस धर्म न ज्ञान न जोग जप। परिहरि सकल भरोस रामहिं भजहिं ते चतुर नर।

## ९. रामाभिषेक प्रसङ्ग

जब तें राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥१॥

अर्थ : जब से रामजी विवाह करके घर आये, तब से नित्य नये मङ्गल और मोद के बधावे होने लगे। चौदह भुवनरूपी भारी पर्वतों पर पुण्य मेघ सुख के जल को बरसाने लगे।

व्याख्या : यह अर्धाली बालकाण्ड के दाब की है। आए ब्याहि रामु घर जब तें। वसे अनंद अवध सब तब तें से लेकर जब तें राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए तक पहिली सोढ़ी : सोपान का दाब[1] है। सुरपुर को आनन्द मङ्गल ने छोड़ दिया है। वहाँ की व्यवस्था यह है : सुरपुर नितहिं परावन होई। मङ्गल उपस्थित होने से मोद होता है और मोद होने से बधावा बजता है। प्रभु बिआह जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू। सो वह उछाह वहीं समाप्त नहीं हो गया। नित्य अवध में हो रहा है।

जा दिन ते हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए। भगवान् के गर्भ में आने से ही सुख सम्पत्ति बरसानेवाले मेघ सब लोकों में छा गये थे। पर वर्षा अब हो रही है। मेघ जल बरसाते हैं। पर सुकृतमेघ सुखरूपी जल को बरसाते हैं।

---

१. इस दाब के अन्तर्गत बारह पंक्तियाँ हैं। इससे दिखलाया कि ब्याह करके घर आने पर बारह वर्ष बड़े आनन्द से बीते। यथा : राज भवन सुख बेलसत, सिय संग राम।
—बरवै रा.

सुकृत मेघ से अवधवासियों का धर्म-मेघ समाधि कहा। सञ्चित समुद्र से जल लेकर बरसाने आये हैं। अतः मेघ से उपमा दी। पर्वत पर सदा पानी बरसा करता है इसलिए चौदहों भुवन की पर्वतों से उपमा दी। जल बहुत गिरा। इससे नदी में बाढ़ आगयी। गङ्गाजी ने समुद्र को भरा। पर उनकी साथी दो और बड़ी नदियाँ हैं यमुना और सरस्वती। यहाँ भी तीन नदी कहेंगे : ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति।

रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई॥
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँती॥

अर्थ : ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति रूपी नदियाँ उमगकर अवधरूपी समुद्र की ओर दौड़ीं। नगर के स्त्री-पुरुष ही मणिगण हैं। जो सुजाति, पवित्र, अमूल्य और सब भाँति से सुन्दर हैं।

व्याख्या : ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्तिरूपी नदी पहिले से ही अवध समुद्र में गिरती थीं। पर अब चौदह भुवनरूपो पर्वतों पर पुण्यमेघ की अधिक वर्षा होने पर उनमें बाढ़ आगयी और वे बड़े वेग से अवधसमुद्र की ओर दौड़ीं। अवध में घाटा कोई नहीं था। समुद्र में स्वयं अगाध जल भरा है। उसे जल की कमी नहीं है। पर नदी को दूसरी गति नहीं है। यथा : जिमि सरिता सागर महँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं।

समुद्र में तो मणिगण रहते हैं। उसका नाम ही रत्नाकर है। सो अवधसमुद्र में पुरनरनारि ही मणिगण हैं। मणि में जाति होती है। पवित्रता होती है। बहुमूल्यता तथा सुन्दरता होती है। सो अवध नर-नारी भी सुजाति, शुचि, अमोल और सब भाँति से सुन्दर हैं। वे देवताओं से भी भले हैं। क्योंकि देवता लोग सदा स्वार्थी होते हैं। यथा : आए देव सदा स्वारथी। मणि यद्यपि जल में है। पर जल का उसमें प्रवेश नहीं। इस भाँति पुरजन सुख-सम्पत्ति में डूबे हुए हैं। फिर भी निर्लेप हैं।

कहि न जाइ कछु नगर विभूती। जनु यतनिअँ त्रिरंचि करतूती॥
सब बिधिं सब पुरलोग[१] सुखारी। रामचंद मुख चंदु निहारी॥३॥

अर्थ : नगर का वैभव कुछ कहते नहीं बनता। मानो ब्रह्मदेव की करतूति ही इतनी है। श्रीरामजी के मुखचन्द्र को देखकर सब विधि से सब पुर लोग सुखी हैं।

व्याख्या : नगर का वैभव कवि से कहते नहीं बनता और देवताओं से देखते नहीं बनता। यथा : देखि न सकहिं पराइ त्रिभूती। दो ही स्थान ऐसे हैं जहाँ की विभूति नहीं कही जा सकती। एक अयोध्या की और दूसरी लङ्का की। यथा : गिरि पर चढ़ि लंका तेहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग विसेखी। अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनककोट कर परम प्रकासा। लङ्का विधि निर्मित दुर्गम अति भारी है और अयोध्या जनु एतनिअ विरंचि करतूती है।

---

१. यह संसर्गजा रति है। यथा : सम्बन्धः कुलरूपादि सामग्रीगौरवं भवेद्।

अयोध्या में अर्थ काम इतना है पर उससे लोग सब विधि सुखारी नहीं। रामचन्द्र के मुखचन्द्र को देखकर सब विधि से सुखारी हैं। दूर से दर्शन करते हैं। इस भाँति चन्द्र दर्शन भी दूर से ही होता है। सीताजी अन्तःपुर में हैं। अतः उनके लिए नहीं कहते। लङ्का के लोग भी सुखी हैं। यथा : सुखी सकल रजनीचर कीन्हे। पर सब विधि सुखी नहीं। क्योंकि वहाँ देखने के लिए रामचन्द्र मुखचन्द्र नहीं है।

मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली ॥
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ ॥४॥

अर्थ : माताएँ और सब सखी सहेली अपनी मनोरथ की वेलि को फलती देखकर प्रसन्न हैं। रामजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देखकर और सुनकर [illegible]जा आनन्दित होते हैं।

व्याख्या : पहिले पुरजन का हाल कहकर अब अन्तःपुर की चर्चा करते हैं। वहाँ माताएँ और सखी सहेलियाँ अपना मनोरथ की वेलि को फलती देखकर प्रसन्न हैं। यहाँ मनोरथ वेलि से सीताजी अभिप्रेत हैं। यथा : पुरजन सचिव राउ रानी सब सेवक सखा सहेली। लैहैं लोचन लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ वेली। माता सखी सहेली आदि सीताजी को निकट से देखती हैं। अतः मनोरथ वेली से उपमित किया। अब अन्त में महाराज का हाल कहते हैं।

राजा चारचक्षु होते हैं। उन्हें अपनी आँखों का भरोसा नहीं होता। क्योंकि उनके सामने तो सब भले हो रहते हैं। अतः उन्हें चारों से सच्ची बातों का पता चलता है। यथा : चारैः पश्यन्ति राजानः। अतः रामजी का रूप, गुण, शील और स्वभाव स्वयं देखकर और चारों से सुनकर परम प्रसन्न होते हैं। स्वयं देखकर यथा : आयसु मांगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरखै मन राजा। और सुनकर गुरुजी से कहते हैं कि : सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी। सबहि राम प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही। रामजी का रूप, गुण, शील, और स्वभाव सभी लोकोत्तर हैं।

१. रूप : रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेखा। सो जानहिं सपनेहु जिन देखा ॥
२. शील : को रघुवीर सरिस संसारा। सील सनेह निबाहन हारा ॥
३. गुण : जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति गुन नहिं वरनि सिराहीं ॥
४. स्वभाव : अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ ॥

दो. सबके उर अभिलाषु अस, कहहि मनाइ महेसु।
आपु अछत जुबराज पदु, रामहि देउ नरेसु ॥१॥

अर्थ : सबके हृदय में ऐसा अभिलाष है। महेश को मनाकर कहते हैं कि अपने रहते ही युवराजपद रामजी को राजा दें।

व्याख्या : सबके हृदय में कहने का भाव यह कि पुरजन परिजन के हृदय में मन्त्रियों के हृदय मे तथा महारानियों के हृदय में अभिलाषा है। पुरजन के हृदय

में अभिलाष यथा : कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता। मन्त्रियों के हृदय में यथा : मन्त्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी। महारानियों के हृदय में यथा : राम तिलकु जौं साँचेहु काली। देउं भागु मन भावत आली। रामजी को युवराज पद मिले यही अभिलाषा है। पर वृद्ध महाराज के गुणों पर भी जनता ऐसी मुग्ध है कि उनका वियोग सह्य नहीं है। नियमानुसार राजगद्दी देकर स्वयं वन न जाँय। स्वयं राजा बने रहें। रामजी को युवराज पद देकर राज्यभार उन्हें दे दें। और आप द्रष्टा रहें।

एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराजु बिराजा॥
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप करहिं प्रीति रुख राखें॥१॥

अर्थ : एक समय समाज के सहित राजसभा में रघुराज : दशरथजी विराजमान हुए। राजा लोग उनकी कृपा की अभिलाषा करते हैं और लोकपाल रुख रखते हुए प्रीति करते हैं।

व्याख्या : सात्त्विक को अपना भरा पूरा समाज़ देखकर मृत्यु का स्मरण होता हैं और तामसिक को परपीड़ा का उत्साह होता है। दो ही सभा का वर्णन इस ग्रन्थ में आता है। अयोध्या की सभा तथा लङ्का की सभा का। लङ्का की सभा यथा :

दसमुख बैठ सभा एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥
सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला वचन क्रोध मद सानी॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे वैरी विबुध वरूथा॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥
तिन्हकर मरन एक विधि हंोई। कहहुँ बुझाई सुनहु अब सोई॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। सवकर जाइ करहु तुम बाधा॥
छुधाछीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहौं कि छाड़िहौं भलीभाँति अपनाइ॥ इत्यादि।

यह तो आसुरी सम्पत्तिवाले की सभा है। यहाँ करजोरे सुर दिसिप विनीता। भृकुटि विलोकत सकल सभीता।

अयोध्या की सभा दैवीसम्पत्तिवाले महाराज दशरथ की सभा है। सभा तो नित्य होती है। पर एकबार सभा में सब समाज सहित महाराज दशरथ विराजमान हुए। रामजी के विवाह के बारह वर्ष बाद की बात है। उनके वर्षगाँठ की सभा है। इस सभा में सब राज़ा कृपा की अभिलाषा करते हुए उपस्थित हैं। लोकपाल लोग महाराज पर प्रीति करते हैं। फिर भी रुख उन्हीं का रखते हैं। क्योंकि राजा दशरथ इन्द्र के मित्र हैं। यथा : ससुर सुरेस सखा रघुराऊ। आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंहासन आसन देई। यहाँ निम्नकोटि में सब राज़ाओं की उपस्थिति

कही । और उच्चकोटि में देवों की प्रीति कही । फिर भी चक्रवर्तीजी का हो देवता लोग रुख रखते हैं । यह कहकर महाराज दशरथ की साहिबी : प्रताप दिखलाया ।

तिभुवन तीनि काल जग मांही । भूरि भाग दसरथ सम नांहीं ॥
मंगल मूल रामु सुत जासू । जो कछु कहिअ थोर सबु तासू ॥२॥

अर्थ : तीनों भुवन में और तीनों काल में दशरथजी के समान भाग्यवान् कोई नहीं । मङ्गल के मूल रामजी जिसके पुत्र हैं । उसके लिए जो कुछ कहा जाय सब थोड़ा है ।

व्याख्या : तिभुवन तीनि काल से सम्पूर्ण देश और काल कहा । त्रिभुवन में मर्त्यलोक पाताललोक और स्वर्गलोक तीनों आजाते हैं और तीन काल में भूत भविष्यत् और वर्तमान आजाते हैं । इसीलिए जगमांहीं कहते हैं : गच्छतीति जगत् । जा परिवर्तनशोल है उसे जगत् कहते हैं । अर्थात् जहाँतक परिवर्तन का साम्राज्य है । दशरथजी सा भाग्यशाली कोई नहीं । क्योंकि भाग अभाग तो रामजी के सम्मुख विमुख होने पर निर्भर है ।

पिता के पुण्य की परख तो पुत्र से होती है । पुं नाम नरक का है । उससे जो पिता को तारे वही पुत्र है । इसीलिए वसिष्ठजी ने कहा 'भयउ न है नहिं अव होनिहारा । भूप भरत जस पिता तुम्हारा । कहहु तात केहि भाँति कोउ करै बड़ाई तासु । राम लखन तुम सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु । जनकपुर के दूत ने कहा : तुम्ह तें अधिक पुन्य बड़ काकें । राजन राम सरिस सुत जाकें । रामजी मंगलभवन अमंगल हारी हैं । अतः महाराज दशरथ की प्रशंसा करने में सभी असमर्थ हैं ।

राँय सुभायँ मुकुर कर लीन्हा । बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा ॥
स्रवन समीप भये सित केसा । मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥३॥

अर्थ : राजा ने स्वभाव से ही दर्पण हाथ में लिया और मुख देखकर मुकुट को ठीक किया । कान के पास के केश श्वेत हो चले । मानो बुढ़ाई यह उपदेश दे रही है ।

व्याख्या : सबकें उर अभिलाष अस कहहिं मनाइ महेसु का साफल्य दिखलाते हैं । मुकुरावलोकन मङ्गल है । महेश की प्रेरणा इस प्रकार होती है । दरबार ठाटबाट से लगा हुआ है । महाराज को इच्छा हुई कि दर्पण में देखकर मुकुट को ठीक कर लें । बिना मुख देखे मुकुट ठीक नहीं किया जा सकता और मुकुट का सँभाल राजा के जिम्मे है । इसलिए हाथ में दर्पण लिया और मुकुट को ठीक किया । पगड़ी देनेवाले भी इस बात को समझते हैं कि कुछ देर के बाद पगड़ी ठीक करने की आवश्यकता पड़ ही जाती है । खुले सिर रहनेवालों को इसका अनुभव नहीं है । इसलिए शङ्का उठाते हैं । संसार में सब कुछ क्षण परिणामी है और व्यवहार स्थिरप्राय है । शरीर में परिवर्तन हो रहा है । राजा को पता नहीं । कान के समीप के श्वेत केश के देखने से जाना कि ज़रा आयी । इसी बात को कवि दिखलाते हैं ।

दर्पण हाथ में लिया मुकुट ठीक करने के लिए और ठीक कर भी लिया। पर निगाह पड़ गयी कि कान के समीप के बाल श्वेत हो चले। ध्यान आया कि बुढ़ाई आगयो। और बुढ़ाई मृत्यु की दूतिका है। बालों का श्वेत होना अथवा मृत्यु द्वारा केश का पकड़ा जाना एक बात है। अतः उचित जान पड़ा कि अपने बाद की व्यवस्था पहिले ही करनी चाहिए। इसी बात को आलङ्कारिक भाषा में कवि कहते हैं कि मानो कान में लगकर बुढ़ाई ने उपदेश दिया कि :

नृप जुवराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥४॥

दो. यह बिचारु उर आनि नृप, सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरहि सुनायेउ जाइ ॥२॥

अर्थ : राजा ! युवराज पद रामजी को देकर जीवन और जन्म का लाभ क्यों नहीं ले लेते ? ऐसा विचार मनमें लाकर और सुदिन तथा सुअवसर पाकर प्रेम से पुलकित तन और प्रसन्नमन होकर गुरुजी को जाकर सुनाया।

व्याख्या : मानो वृद्धावस्था उपदेश दे रही है कि प्रजा का भार धुरन्धर पुत्र को सौंपो। अब तुम सिंहासन पर बैठकर दर्पण क्या देख रहे हो। मृत्यु सन्निकट है। श्रीरामजी की अवस्था अब सिंहासनारूढ़ होकर मुकुट धारण करने की है। राजा के जीवन और जन्म का लाभ प्रजा की रक्षा में है। सो धुरन्धर पुत्र को सौंपकर ही प्राप्त हो सकता है। अथवा जन्म का लाभ सिंहासनारूढ़ पुत्रमुखदर्शन से है। यथा : राम बाम दिसि सोहति रमा रूप गुन खानि। देखि मातु सब हरखीं जनम सफल निज जानि। और जीवन का लाभ रामप्रीत्यर्थं त्याग से है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मन लावा।

सुदिन अर्थात् शुभ मुहूर्त। गुरुजी से कहने के लिए सुदिन चाहिए सो वह दिन भी शुभ था और सुअवसर वही है जब गुरुजी एकाग्र आसीन हों। पुलकि से तन मुदित से मन और गुरहि सुनायो जाय से वचन द्वारा प्रेम प्रकाश कहा। महाराज सब काम गुरुजी से पूछकर करते हैं। रघुवंश में गुरु ही शरण हैं। महाराज को जब पुत्र की इच्छा हुई गुरुजी के ही पास गये। यथा : एकबार भूपति मन माँहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं। गुरु गृह गये तुरत महिपाला। पुत्र का व्याह करना है तो : तब उठि भूप वसिष्ठ कहुँ दीन्हि पत्रिका जाइ। अब पुत्र को राज्य देना है तो : प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायेउ जाइ।

कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भये रामु सब विधि सब लायक ॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे[1] हमरे अरि मित्र उदासी ॥१॥

अर्थ : राजा ने कहा हे मुनिराज ! सुनिये। रामजी सब विधि से सब लायक : योग्य हो गये। सेवक, मन्त्री, सब प्रजा और जो हमारे शत्रु, मित्र और उदासीन हैं।

---

१. यहाँ तुल्ययोगिताः प्रथम अलङ्कार है।

व्याख्या : भूपाल शब्द के पकार का लोप होकर उसका तद्भव रूप भुआल बना। भाव यह कि महाराज पृथ्वी के पालन करनेवाले हैं। उन्हें पृथ्वीपालन की चिन्ता है। अतः मुनिनायक के सामने अपना विचारा हुआ प्रस्ताव रखते हैं कि बेटे तो चारों लायक हैं। पर रामजी सब विधि से सब लायक हैं। धुरन्धर हैं। सब राज कार्य सँभाल लेंगे। सब लायक शब्द से सर्वशक्तिमत्ता द्योतित होती है। यथा : पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदौं सब लायक।

रामजी की सर्वप्रियता कहते हैं। क्योंकि यही राजा के सब लायक होने का अव्यभिचरित लक्षण है। सेवक सचिव सकल पुरवासी से अपने राज्य भर के लोगों का ग्रहण करते हैं और अरि मित्र उदासी कहकर जीवमात्र का ग्रहण करते हैं। यथा : जीव जन्तु अस को जग मांहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नांहीं।

सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही ॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं ॥२॥

अर्थ : सबको रामजी वैसे ही प्यारे हैं जैसे मुझे प्यारे हैं। मानो प्रभु का आशीर्वाद शरीरधारी होकर शोभायमान है। सपरिवार ब्राह्मण लोग हे गोस्वामिन् उनपर वैसा ही छोह करते हैं जैसा कि आप करते हैं।

व्याख्या : राजा को रामजी वैसे ही प्रिय हैं जैसे मछली को जल प्रिय होता है। यथा : मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन मिति तुमहि अधीना। इसी भाँति सबको प्रिय हैं। यथा : अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धरम धुरीना। अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहि भेंटहु आई। वसिष्ठजी ने आशीर्वाद दिया था : धरहु धीर होइ हहि सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी। सो महाराज कहते हैं कि मानो आपका वही आशीर्वाद शरीर धारण करके रामरूप से प्रकट हुआ है।

अब रामजी की ब्रह्मण्यता कहते हैं। उनकी भक्ति से ब्राह्मण ऐसे प्रसन्न हैं कि आपकी भाँति छोह करते हैं। सहित परिवार कहने का भाव यह कि दस वर्ष का ब्राह्मण बालक भी ६० वर्ष के बूढ़े क्षत्रिय से पितृवत् पूज्य है। सो रामजी ब्राह्मणपरिवार पर भक्ति रखते हैं। अतः वे सपरिवार छोह करते हैं। यथा : जौ हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ। तौ अस को जग सुभट जेहि भय बस नावहिं माथ।

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं ॥
मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजें। सबु पायेउँ रज पावनि पूजें ॥३॥

अर्थ : जो लोग गुरु चरणों की धूलि को सिर पर धारण करते हैं वे मानो सम्पूर्ण ऐश्वर्य को वश कर लेते हैं। इस बात का अनुभव मेरे समान किसी दूसरे ने नहीं किया। मुझे तो सब कुछ पवित्र धूलि के पूजन से ही प्राप्त हुआ।

व्याख्या : गुणों के होने से ही पात्रता आती है और पात्रता आने से

ऐश्वर्य को प्राप्ति होती है। यथा : पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मस्ततः सुखम्। गुरुचरणरेणु को सिर पर धारण करने से सम्पूर्ण गुणगण वशीभूत हो जाते हैं। यथा : कियें तिलक गुनगन बस करनी। और सम्पूर्ण गुणगण के वशीभूत होने से सम्पूर्ण ऐश्वर्य की पात्रता हो जाती है और पात्रता होने से ही धनप्राप्ति होती है। यहाँ : जन मन मंजु मुकुर मल हरनी इस पद का साफल्य : श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि से दिखलाकर : कियें तिलकगुनगन बस करनी : इस पद का साफल्य महाराज दशरथ के उदाहरण से कवि दिखला रहे हैं।

महाराज कहते हैं कि इस बात का अनुभव जैसा मुझे हुआ वैसा किसी दूसरे को हुआ ही नहीं। क्योंकि मैंने सिवा गुरु चरण रेणु के सिर पर धारण करने के और किया ही क्या? बहुत दिनों तक जो तीर्थ में जाकर तपस्या करता है उसे आज्ञाकारी धर्मात्मा और बुद्धिमान् पुत्र होता है। मैंने तो केवल श्रीचरणों में अपने अपुत्री होने के कष्ट का निवेदन मात्र कर दिया। तुरन्त आशीर्वाद मिला कि धैर्य धरो। त्रिभुवन विदित भगत भयहारी पुत्र होवेंगे। सो अक्षरशः सत्य हुआ। मुझे तो सब कुछ गुरुचरणों से ही मिला।

अब अभिलाषु एकु मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें ॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू ॥४॥

अर्थ : अब एक अभिलाषा मेरे मनमें है। वह भी हे नाथ! आपके अनुग्रह से ही पूरी होगी। स्वाभाविक प्रेम देखकर मुनिजी प्रसन्न हो गये। बोले राजन्! आज्ञा दीजिये।

व्याख्या : जितनी अभिलाषाएँ थीं सभी श्रीचरणों के अनुग्रह से पूरी हुईं। सब कुछ था। केवल पुत्र का घाटा था। सो श्रीचरणों के अनुग्रह से सब लायक पुत्र हुआ। अब एक अभिलाषा शेष है। जिन चरणों से सबकी पूर्ति हुई उन्हीं के अनुग्रह से इसकी भी पूर्ति होगी। उसी को निवेदन करने के लिए आया हूँ।

स्वाभाविकी गुरुभक्ति देखकर मुनिजी प्रसन्न हो गये। भक्ति से स्थितप्रज्ञ महात्मा प्रसन्न हो जाते हैं। अतः अत्यन्त आदर से बोले। क्या चाहते हो न कहकर कहते हैं कि राजाज्ञा क्या है? अथवा मुनिजी त्रिकालज्ञ हैं जानते हैं कि इस अभिलाषा की पूर्ति इस समय होनी नहीं है। अतः अनुग्रहवाली बात छोड़कर कहते हैं कि राजन्! आज्ञा दीजिये।

दो. राजन राउर नामु जसु, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिपमनि, मन अभिलाषु तुम्हार ॥३॥

अर्थ : राजन्! तुम्हारा नाम और यश सब मनोरथों को देनेवाला है। हे राजाओं में मणि! तुम्हारे मनकी अभिलाषा तो फल की अनुगामिनी है।

व्याख्या : यहाँ अभिलाषु पाठ है। प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में हो उकार आता है। अतः यहाँ षष्ठी मानकर अभिलाष का सम्बन्ध फल के साथ नहीं

हो सकता। अर्थात् यह अर्थ नहीं हो सकता कि मनोभिलाष का फल तुम्हारा अनुगामी है। यह अर्थ होगा कि तुम्हारे मनकी अभिलाषा फल की अनुगामिनी है। फल पहिले होता है। अभिलाषा तो उसके पीछे होती है। भाव यह कि सबके प्रिय होने से सबके हृदय पर तो रामजी का राज्य हो ही गया। तदनन्तर आपको अभिलाषा हुई। जिसकी पूर्ति न होनी हो वह अभिलाषा आपको हो ही नहीं सकती।

राजन्! तुम्हारे नाम और यश के कीर्तन से लोगों के मनोरथ की पूर्ति होती है। तुम्हारा मनोरथ तो पूरा हो ही गया है। यथा : दशरथ नाम सुकामतरु फलइ सकल कल्यान। धरनि धाम धन धरम सुत सदगुन रूप निधान। जिसका मन ईश्वर में लगा है। उसके मनोरथ होने के पहिले हो फल हुआ रहता है। यथा : ईश्वरार्पितवुद्धीनां स्फुरन्त्यग्रे मनोरथाः। काशी खण्ड।

सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ रहसि मृदुबानी॥
नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू॥१॥

अर्थ : अपने मनमें सब भाँति गुरुजी को प्रसन्न जानकर राजा आनन्दित होकर मृदुवाणी बोले कि हे नाथ! रामजी को युवराज कीजिये। कृपा करके कहिये कि तैयारी की जाय।

व्याख्या : गुरुजी की अमोघ कृपा देखकर राजा प्रसन्न हो उठे। इतनी कृपा है कि आज मेरे नाम और यश को सब अभिमत दातार बना दिया। वसिष्ठजी की वाणी कभी व्यर्थ हो नहीं सकती। अतः यही अवसर निवेदन करने का है। गुरुजो ने कहा है : रजायसु देहू। अतः विधि रूप से ही निवेदन करते हैं कि आप रामजी को युवराज बनाइये। यदि कहा जाय कि युवराज पद देना तो राजा के अधिकार में है। यदि इच्छा है तो दे दो। इस पर कहते हैं कि आप कृपा करके तैयारी करने की आज्ञा दे दीजिये। राजा के मुख से सरस्वती बोल गयी। रामजी को राजतिलक वसिष्ठजो ही करेंगे। इस समय केवल तैयारी ही होगी।

मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। एह लालसा एक मन मांहीं॥२॥

अर्थ : मेरे रहते ही यह उछाह हो और सब लोग नेत्रों का फल पावें। प्रभु की कृपा से शिवजी ने सब निबाह दिया। अब मन में केवल एक लालसा रह गयी है।

व्याख्या : राम राज्याभिषेक तो एक दिन होना ही है। पर मेरे रहते यह उछाह हो। यह उछाह भी मैं देख लूँ। लोगों को भी इसकी उत्कट इच्छा है। सबकें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु। आपु अछत जुबराजपदु रामहि देउ नरेसु। सो ये लोग भी नेत्रवान् होने के सुख का अनुभव करें। जनकपुरवासी तो राम जानकी का विवाह देखकर लोचन लाभ पा चुके। अब अवधवासी राम जानकी

का अभिषेक देखकर लोचन लाभ लें। यथा : कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता।

प्रसाद आपका और निर्वाहक शङ्कर हैं। आपका प्रसाद अमोघ है। शिवजी तदनुसार कार्य कर रहे हैं। इस भाँति मेरी सब कुछ निवह गयी। अब यही एक लालसा मन में रह गयी। अर्थात् इसकी पूर्ति हो जाने पर मैं आप्तकाम हो जाऊँगा। कामना शेष रहने से ही मनुष्य मरना नहीं चाहता और यदि मर भी जाता है तो वही कामना उसे फिर संसार में खींच लाती है। उसके पुनर्जन्म का कारण होती है।

**पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछें पछिताऊ।।**
**सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए।।३।।**

अर्थ : फिर परवाह नहीं, चाहे शरीर रहे चाहे जाय। जिसमें पीछे से पछतावा न हो। दशथरजी के मङ्गल मोद मूल और सुहाये वचन सुनकर मुनिजी को अच्छे लगे।

व्याख्या : फिर मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। फिर चाहे शरीर रहे चाहे जाय। इसकी चिन्ता न रह जायगी। नहीं तो शरीरावसान के समय पछितावा रहेगा कि अपने सामने मैंने प्रजारक्षा का भार रामजी को नहीं सौंपा। शरीर अनित्य है। इसका कुछ ठिकाना नहीं। तिसपर मृत्यु की दूतिका जरा ने केश पकड़ रखा है। अतः यह कर्त्तव्य भी पूरा होना ही चाहिए।

दशरथजी के वचन सोहाये रहे। इसलिए मुनिजी के मन भाये। मङ्गल यथा : नाथ रामु करिअहि जुबराजू। मोद। यथा : मोहिं अछत यह होहु उछाहू। दोनों का मूल है श्रीरामजी का अभिषेक। वसिष्ठजी स्वयं मानते हैं : सब कहँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू। अतः मनोनुकूल होने से वसिष्ठजी को अच्छे लगे।

**सुनु नृप जासु विमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं।।**
**भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी।।४।।**

अर्थ : मुनिजी बोले : सुनो राजा! पछताते तो वे हैं जो उनके विमुख होते हैं। जिसके भजन बिना जी की जलन नहीं जाती, वही स्वामी पुनीत राम तुम्हारे पुत्र हुए हैं। क्योंकि वे पुनीत प्रेम के अनुगामी हैं।

व्याख्या : जेहि न होइ पाछें पछिताऊ का उत्तर देते हुए वसिष्ठजी कहते हैं कि तुम्हें पछितावा कैसे होगा। पछतावा तो उनको होता है जो रामविमुख हैं। यथा : सो परत्र दुख पावै सिर धुनि धुनि पछिताइ। कालहिं कर्महिं ईस्वरहिं मिथ्या दोष लगाइ। पछितावा होने से जलन होती है। वह जलन तो बिना रामभजन के जाती नहीं। यथा : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाइ। अथवा : सब दुख मिटहिं राम पग पेखी। सो राम, पुनीत राम, प्रेमानुगामी राम

तुम्हारे प्रेम से तुम्हारे पुत्ररूप से अवतीर्ण हुए हैं। तुम्हारे लिए पछितावा की कौन सी बात है ? वह राम स्वामी हैं। उनपर किसी का अधिकार नहीं है। तुम अपना कर्त्तव्य करो। चराचर नायक के लिए यौवराज्यपद क्या है ? सोच : पछितावा को अपने मन से निकालो।

दो. बेगि[1] बिलंबु न करिअ नृप, साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिनु सुमंगलु तबहिं जब, रामु होहिं जुबराजु ॥४॥

अर्थ : राजा ! जल्दी करो, देर न लगाओ, सब समाज सजाओ। जब रामजी युवराज हो जाँय तभी सुदिन और सुमङ्गल है।

व्याख्या : समाज का अर्थ समान है। यथा : अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ। राजा ने कहा था : कहिय कृपा करि करिय समाजू। सो मुनिजी कह रहे हैं : साजिअ सबुइ समाजु। परन्तु जल्दी करो। देर न होने पावे। कर्त्तव्य कर्म में बड़ी जल्दी होनी चाहिए। नहीं तो काल उसका रस पी जाता है। यथा : आदानस्य प्रदानस्य कर्त्तव्यस्य च कर्मणः। क्षिप्रमेव्न प्रकर्तव्यं कालः पिबति तद्रसः। इसमें सुदिन मत देखो : तदेव लग्नं सुदिनं तदेव, ताराबलं चन्द्रबलं तदेव। विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपतेरंघ्रियुगं स्मरामि। राम जिस दिन राज्य पर बैठेंगे वही सुदिन हो जायगा। वही सुमङ्गल होगा। वसिष्ठजी मुहूर्त नहीं देते। जानते हैं कि अभी अभिषेकवाला सुदिन दूर है। रामजी के वन से लौटने पर कहेंगे : आज सुघरी सुदिन समुदाई। सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहि सिंघासन।

मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए॥
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए॥१॥

अर्थ : राजा प्रसन्न होकर घर आये। सेवक : कामदार सचिव और सुमन्त्र को बुलवाया। उन लोगों ने जयजीव कहकर अभिवादन किया। राजा ने उन्हें सुमङ्गल वचन सुनाया।

व्याख्या : गुरुजी के पास जिस कार्य के लिए गये थे उसकी सिद्धि हो गयी। गुरुजी ने कह दिया कि जल्दी करो। देर न होने पावे। इसलिए महाराज तुरन्त उठ पड़े और आनन्दित होकर घर आये। गुरुजी को भी साथ लेते आये। सेवकों को और मन्त्रियों को बुलवाया। विभाग विशेष के मन्त्री को सुमन्त्र कहते हैं। रेफ के गिर जाने से उसका तद्भवरूप सुमन्त हुआ। महाराज के यहाँ जो सुमन्त्र पद पर थे वे उनके सखा भी थे और सारथि भी थे। इन पर महाराज की बड़ी आस्था थी। इनको अन्तःपुर में भी रोक नहीं थी। इसलिए इनके नाम का पृथक् निर्देश है। ये भी बुलाये गये। मन्त्रणा के लिए सभा बैठी। सेवक : कारबारी और

———

१. यहाँ विवृतोक्ति अलङ्कार है।

मन्त्रियों ने जयजीव कहकर राजा का अभिवादन किया। जयजीव का अर्थ है कि आप की जय हो और आप चिरजीवी हों। महाराज ने ऐसा वचन सुनाया कि जिससे संसार का कल्याण हो। इसलिए उस वचन को सुमङ्गल कहा।

जौं पाँचहि मत लागइ नीका। करहु हरखि हिय रामहि टीका॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी॥२॥

अर्थ : यदि पञ्चों को यह राय पसन्द हो तो प्रसन्न मन होकर रामजी को राजतिलक करो। प्रिय वाणी सुनकर मन्त्री ऐसे प्रसन्न हुए जैसे मनोरथ के पौधे में पानी पड़ा हो।

व्याख्या : महाराज के भीतर रामजी के अभिषेक की उत्कट इच्छा है। फिर भी राजनीति के अनुसार सब निर्णय पञ्चों पर छोड़ते हैं और कहते हैं कि मेरा किया हुआ प्रस्ताव समझकर सङ्कोच से स्वीकार न करना। यदि तुम लोग को यह राय पसन्द हो और हर्षित हृदय से करना चाहते हो तो रामजी को राजतिलक करो। यह महाराज दशरथ की नीतिपटुता है कि पहिले चारों द्वारा यह निश्चय करके कि रामजी प्रजामात्र को प्रिय हैं और सब इनका यौवराज्यपद पर अभिषेक चाहते हैं तब जाकर गुरुजो से सम्मति ली। फिर मन्त्रियों से सम्मति ले रहे हैं।

मन्त्री लोग स्वयं यही चाहते थे। परन्तु महाराज दशरथ का शासन निर्दोष था। अतः स्वयं प्रस्ताव करना उचित नहीं समझा था। अतः उन्हें महाराज की यह वाणी अति प्रिय मालूम हुई और उनका मनोरथरूपी पौधा लहलहा उठा। जैसे उसमें पानी पड़ा हो। पानी पड़ने से बड़े-बड़े पेड़ भी प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं। पर पौधों की प्रसन्नता अधिक व्यक्त होती है। इसीलिए महाराज की वाणी की उपमा पानी पड़ने से और मन्त्रियों के अभिमत की उपमा पौधों : बिरवा से दी।

बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जिअहु जगतपति बरिस करोरी॥
जग मंगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा॥३॥

अर्थ : मन्त्री हाथ जोड़कर विनय करते हैं कि हे जगत्पति ! आपकी आयु करोड़ों वर्ष की हो। आपने जगत् का मङ्गल करनेवाला अच्छा कार्य विचारा। सो हे नाथ ! शीघ्रता कीजिये। इसमें देर न हो।

व्याख्या : राजा के युवराज विषयक प्रस्ताव करने से यह प्रकट होता है कि उन्हें अब अपने जीवन से निराशा है। अथवा नीति के अनुसार चौथेपन में भगवत् भजन के लिए वन जाना चाहते हैं। अतः मन्त्री हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि आप जगत्पति रहकर करोड़ों वर्ष जीवें। आपका जीवन और शासन दोनों हम लोगों को प्रिय है। आप राजा बने रहें और राज्य भार रामजी को युवराज बनाकर सौंप दें। यह कार्य जगत् के मङ्गल के लिए है। आपने बहुत अच्छा विचार किया है। पर शीघ्र ही इसे कार्य में परिणत कीजिये। क्योंकि श्रेयांसि बहु विघ्नानि। ऐसे श्रेष्ठ कार्य में बहुत-से विघ्न खड़े हो जाते हैं।

नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाखा । बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा ॥४॥

दो. कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ ।
राम राज अभिषेक हित, बेगि करहु सोइ सोइ ॥५॥

अर्थ : मन्त्री के सुन्दर वचन सुनकर राजा को आनन्द हुआ । जैसे बढ़ती हुई लता को सुन्दर शाखा मिल जाय । राजा ने कहा कि मुनिराज की जो-जो आज्ञा हो रामजी के राज्याभिषेक के लिए जल्दी-जल्दी वैसा ही करो ।

व्याख्या : लता जब बढ़ती है तब निराधार ऊपर की ओर चलती है । जब उसे आधार नहीं मिलता तो लौट आती है । यदि उसे सुन्दर शाखा मिल जाय तो वह आनन्द से उसमें लिपट जाती है और उसके अधिक ऊपर जाने का मार्ग निरर्गल हो जाता है । उसी भाँति मन्त्रियों की सुभाषा रूपी शाखा पाकर राजा की आनन्द रूपी लता स्वच्छन्द होकर और बढ़ी ।

महाराज ने मन्त्रियों से कहा कि मुझे शीघ्रता के लिए कहते हो तो मेरी आज्ञा हो गयी । अब तुम लोग शीघ्रता करो । यह कर्मकाण्ड का विषय है । इसमें कौन-कौन सी सामग्री अपेक्षित हैं ? कौन-कौन सी क्रिया अपेक्षित हैं ? यह सब मुनिराज से जानकर तदनुकूल कार्य सम्पादन करो ।

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी । आनहु सकल सुतीरथ पानी ॥
औषध मूल फूल फल पाना । कहे नाम गनि मंगल नाना ॥१॥

अर्थ : हर्षित होकर मुनिजी ने मृदु वाणी से कहा कि सभी सुन्दर तीर्थों का जल मँगाओ । फिर उन्होंने, औषध, मूल, फूल, फल, पान, और अनेक मङ्गल वस्तुओं के नाम गिनाये ।

व्याख्या : मुनिजी को रामजी के अभिषेक के लिए आज्ञा देने में हर्ष है । अथवा राजा की गुरुभक्ति पर हर्ष है । महाराज की आज्ञा पाते ही मन्त्री लोग मुनिराज वसिष्ठजी के पास गये । गुरुजी ने मृदु वाणी से आज्ञा देना आरम्भ किया । तीर्थ अनेक प्रकार के होते हैं । कोई तीर्थ देव सम्बन्धी हैं यथा : प्रयागादि । कोई ऋषि सम्बन्धी हैं यथा : नैमिषादि । कोई आसुर तीर्थ हैं यथा : गया आदि । अतः मुनिजी सुतीर्थ का जल लाने को कहते हैं । आसुर तीर्थ के जल का निषेध करते हैं । तीर्थ का जल बहुत दूर से मँगाना है । इसलिए पहिली आज्ञा उसी के लिए हुई ।

मङ्गल कार्य में द्रव्य की तालिका लिखने के समय हल्दी के पहिले लिखने की चाल है । अतः मुनिजी ने औषधि को ही पहिले गिनाया । राज्याभिषेक के लिए १०८ औषधियों और मूलों की आवश्यकता पड़ती है । अतः उनके नाम मुनिराज ने गिनाये । जिसमें कोई छूट न जाय और जिन-जिन फूल, फल और पत्तों की आवश्यकता पड़ती है उन्हें भी गिनाया । जिसमें अभिषेक सर्वाङ्ग सम्पन्न हो ।

चामर चरम बसन बहु भाँती । रोम पाट पट अगनित जाती ॥
मनिगन मंगल बस्तु अनेका । जो जग जोगु भूप अभिषेका ॥२॥

अर्थ : चँवर, चर्म, बहुत प्रकार के रोम, रेशम और सूत के असंख्य जाति के कपड़े, मणि : जवाहिरात और अनेक मङ्गल वस्तु जो संसार में राज्याभिषेक के योग्य हैं बतलाये ।

व्याख्या : मङ्गल वस्तु कहते हैं । चँवर जो राजाओं के ऊपर चलता है । चर्म से यहाँ व्याघ्रचर्म मृगचर्म ढाल आदि अभिप्रेत हैं । कपड़ों की असंख्य जातियाँ हैं । फिर भी उनके तीन विभाग हैं । १. रूई के कपड़े को ही साधारणत: कपड़ा कहते कहते हैं । २. दुशाला कम्बल आदि रोमपट हैं और ३. रेशम के कपड़े को पाट पट कहते हैं । इनके भेद को मुनिजी नहीं गिनाते । इन्हें मन्त्री लोग भलीभाँति जानते हैं । अत: केवल अगनित जाती कह दिया । मणिगणों से तो भण्डार भरा है । उन्हें कहीं बाहर से नहीं लाना है । अत: उन्हें पीछे गिना रहे हैं । परिशिष्ट में कहते हैं । और भी जो-जो वस्तुएँ संसार में राज्याभिषेक के योग्य समझी जाती हैं उन्हें ले आओ ।

बेद बिहित कहि सकल बिधाना । कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना ॥
सफल रसाल पूगफल केरा । रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा ॥३॥

अर्थ : वेद में कहे हुए सब विधानों को बताकर कहा कि नगर में बहुत से मण्डप बनाओ । फलों समेत आम सुपारी और केले के पेड़ नगर की गलियों में चारों ओर लगाओ ।

व्याख्या : सातों द्वीप सातों समुद्र पहाड़ों के चित्र से वह स्थान चित्रित किया जाता है । जहाँ पर सिंहासन रक्खा जाता है । उसपर व्याघ्रचर्म बिछाया जाता है । स्वर्णकलश तीर्थ के जलों से भरे जाते हैं । ये सब विधान जैसे ब्राह्मणोक्त इन्द्राभिषेक में हैं किये जाँय । दीये जलाये जायँ । बाजे बजें । दर्पणादि मङ्गल वस्तु साजे जाँय । वेदपाठ के लिए ब्राह्मण बुलाये जाँय । इत्यादि वेदविधान है । इस भाँति मुनिजी की पहिली आज्ञा वेदविधान के विषय में हुई । दूसरी आज्ञा पुर के साजने के लिए हुई कि पुर में अनेक मण्डप साजे जायँ । तीसरी आज्ञा गलियों में रास्तों में वैसे ही सफल आम सुपारी और केले के पेड़ों के रोपने की हुई । जो देखने में स्वाभाविक हों । पर मणिगण के बने हुए हों । यथा : हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल । नहीं तो सफल आम तथा सुपारी के पेड़ रोपे नहीं जा सकते ।

रचहु मंजु मनि चौकइ चारू । कहहु बनावन बेगि बजारू ॥
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा । सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा ॥४॥

अर्थ : मनोहर मणियों के सुन्दर चौके पुरवाओ और बाजार को जल्दी सजाने के लिए कहो । गणेशजी गुरु और कुलदेव की पूजा करो और सब विधि से ब्राह्मणों की सेवा करो ।

व्याख्या : चौथी आज्ञा हुई कि गजमुक्ताओं के चौके पुरवाओ। पाँचवीं आज्ञा हुई कि शीघ्रता से बाजार साजो। समय बहुत कम है और कार्य सब विधानपूर्वक होना चाहिए। अतः मुनिराज की पृथक् आज्ञा हो रही है। छठी आज्ञा हुई कि गणेश जी, गुरु और कुलदेव की पूजा करो। गणेशजी सभी मङ्गल कार्य में प्रथम पूजे जाते हैं। स्वयं आप ही गुरु हैं। पर विधान में होने से गुरु की पूजा कहने में सङ्कोच नहीं करते। इष्टसिद्धि के लिए कुलदेव की पूजा के लिए आज्ञा देते हैं। भूमिसुर प्रत्यक्ष देवता हैं। अतः उनकी सेवा सब विधि से करने को कहते हैं। इनकी पूजा के लिए सातवीं आज्ञा हुई।

दो. ध्वज पताक तोरन कलस, सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर बचन सबु, निज निज काजहि लाग ॥६॥

अर्थ : ध्वजा, पताका, वन्दनवार, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सजाओ। मुनिराज की आज्ञा को सिर पर रखकर सब कोई अपने-अपने काम में लग गये।

व्याख्या : ध्वजा पताका और तोरण से सदा पुरी सुशोभित रहती है। पर अब ऐसा साजो कि धूप रुक जाय। घोड़े हाथी रथ सवारी निकलने के लिए साजे जाँय। यह मुनिजी की आठवीं आज्ञा है। महाराज के आठ मन्त्री हैं। धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः। अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्। आठों के लिए आठ आज्ञा हुई।

१. धृष्टि को वेदविधान तथा सामग्री इकट्ठा करने के लिए पहिलो आज्ञा हुई।
२. जयन्त को वितान रचने की दूसरी आज्ञा हुई।
३. विजय को सफल रसाल पूगफल केरा को चारों ओर पुर से रोपने की तीसरी आज्ञा हुई।
४. सुराष्ट्र को गजमणि के चौकों की व्यवस्था के लिए चौथी आज्ञा हुई।
५. राष्ट्रवर्धन को बाजार सजाने की पाँचवीं आज्ञा हुई।
६. अकोप को देवगुरु पूजन की छठी आज्ञा हुई।
७. धर्मपाल को सब विधि से भूमिसुर की सेवा करने की सातवीं आज्ञा हुई। और :
८. सुमन्त्र को घोड़े हाथी के साजने की आठवीं आज्ञा हुई।

सब मन्त्रियों ने मुनिराज की आज्ञा सिर पर धारण की और अपने अपने कार्य में लग गये।

जो मुनीस जेहि आयेसु दीन्हा। सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा ॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मंगल काजा ॥१॥

अर्थ : मुनिराज ने जिसको जिस काम के लिए आज्ञा दी थी वह काम मानो वह पहिले ही कर चुका था। राजा ब्राह्मण साधु और देवता का पूजन करते हैं और रामजी के लिए मङ्गलकार्य करते हैं।

व्याख्या : कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ। रामराज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ। सो मन्त्रियों की शीघ्रता दिखलाते हैं। उन्होंने ऐसे लाघव से कार्य किया कि मानों वे कार्य पहिले से ही बने बनाये थे। अर्थात् बड़ी ही शीघ्रता से कार्य का सम्पादन किया।

पूजा का कार्य महाराज ने स्वयं किया और मङ्गलकार्य सम्पादन में भी हाथ बँटाया। पूजन में पहिले नाम विप्र का दिया गया। अर्थात् ब्राह्मण के पूजन पर अधिक ध्यान दिया गया। क्योंकि गुरुजी का आदेश था : सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा। इस पूजन में एक लक्ष ब्राह्मणों को अशन दान देना था। अतः सब व्यवस्था मन्त्रियों ने की। साधुपूजा और देवपूजा भी हुई। राजा स्वभाव से ही गुरु विप्रधेनु सुरसेवी थे। इस समय तो महामङ्गल उपस्थित था। अतः बड़ी पूजा हुई।

सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा ॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए ॥२॥

अर्थ : रामजी के अभिषेक की सुहावनी खबर सुनते ही अवध में बधावे के बाजों की धूम मच गयी। रामजी के और सीताजी के शरीर में शकुन प्रकट हुए। उनके सुन्दर अङ्ग फड़कने लगे।

व्याख्या : जब सब लोग अपने-अपने कार्य सम्पादन में लगे और दौड़ धूप आरम्भ हुई तब नगरवासियों को पता चला कि रामजी का अभिषेक होने जा रहा है। सुनते ही अयोध्या में तमाम बधाइयाँ बजने लगीं : गहागह शब्द का प्रयोग जायसी ने भी आनन्द के अर्थ में किया है। पुरवासियों को बड़ा हर्ष हुआ। इस दिन के लिए महेश को मानते थे। यह बधाई महाराज के प्रसन्न करने के लिए नहीं बजी। बल्कि अपने अभिलाष की पूर्ति की खुशी में बजाई जाने लगीं।

शुभाशुभ सूचक शकुन भविष्यत् सूचक यन्त्रों की भाँति अकस्मात् अनागत घटना की सूचना देते हैं। जिस भाँति भूकम्प आने के पहिले ही चुम्बकाकर्षण शिथिल हो जाता है। चुम्बक सूई का आकर्षण नहीं करता। इस भाँति शुभाशुभ घटना के होने के पहिले ही कुछ शास्त्रकथित लक्षण हैं जो अवश्य प्रकट होते हैं। उन्हीं को शकुन कहते हैं। सो सीताजी और रामजी के शरीर में शकुन प्रकट हुए। अर्थात् मङ्गल अङ्ग फड़कने लगे। दक्षिण वाम नहीं लिखते। क्योंकि रामजी के दक्षिण अङ्ग का फड़कना शुभ था और जानकीजी के वाम अङ्ग का फड़कना मङ्गलसूचक था। सुहाए अङ्ग कहने का भाव यह कि नेत्र और बाहु फड़के।

पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं ॥
भए बहुत दिन अतिअवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी ॥३॥

अर्थ : एक दूसरे से पुलकायमान होकर कहते हैं कि ये शकुन : भरत के

आगमन की सूचना दे रहे हैं। बहुत दिन हुए अत्यन्त चिन्ता हैं। शकुन से प्रिय के मिलन का विश्वास होता है।

व्याख्या : रामजानकी का स्वभाव एक है। रुचि एक है। दोनों को भरत प्रिय हैं। उनके स्मरण आने से पुलक होता है। अतः दम्पति ने यही निश्चय किया कि ये शकुन भरतजी के आने की सूचना दे रहे हैं।

कारण देते हैं कि भरतजी को ननिहाल गये बहुत दिन हुए। इसलिए अधिक चिन्ता है। इस शकुन से, यह विश्वास होता है कि प्रिय की प्राप्ति : भेंट होगी। शुभ शकुन प्रिय के भेंट का सूचक है। यथा : सगुन बिचारि धरीं उर धीरा। अब मिलिहहिं कृपालु रघुबीरा। तथा : सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता। भरत के मिलन की उत्कण्ठा हृदय में हुई और उसी समय शकुन हुए। शकुन का प्रयोजन ही प्रियमिलन है। पुलकि से तन, सप्रेम से मन और परसपर कहही से वचन से भरतजी पर प्रेम कहा। अबसेए शब्द का प्रयोग चिन्ता करने याद आने के अर्थ में मारवाड़ी आज भी करते हैं।

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं॥
रामहि बंधु सोचु दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥४॥

अर्थ : जगत् में भरत के समान कौन प्यारा है। अतः यही शकुन का फल है। दूसरा नहीं। रामजी को दिन रात भाई की चिन्ता है। जैसे दिन रात कछुए को अपने अण्डे की चिन्ता होती है।

व्याख्या : दम्पति की विचारधारा एक है। उन्हें भरत जी के समान संसार मे दूसरा कोई प्यारा नहीं है। यथा : जग जप राम रामु जप जेही। अतः यह निश्चय किया कि इस शकुन का फल भरत से भेंट होना है। दूसरा नहीं कहने से दूसरे फल की व्यावृत्ति करते हैं। यद्यपि इस समय इस शकुन का होना अभिषेक सम्वाद सूचक कहा जा सकता है। परन्तु जिन्हें शकुन हो रहा है उन्हें तो भरत प्रिय हैं। अभिषेक प्रिय नहीं। अभिषेक का प्रस्ताव तो भरतजी के शीघ्र मिलन का कारण हुआ। अतः जो फल निश्चय किया गया वही ठीक है।

कछुए अण्डे बालू में देते हैं पर रहते हैं जल में। रात में सूनसान होते ही उन्हें सेने के लिए रेती में चले जाते हैं। अतः कछुए जल में विचरते रहते हैं। पर उनकी चित्तवृत्ति अण्डे में ही लगी रहती है। यह गति रामजी की है। ये अवध में हैं और इस समय भरतजी कैकय देश में हैं। पर मनोवृत्ति दिन रात भरतजी में लगी है।

दो. एहि अवसर मंगलु परम, सुनि रहसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु, बारिधि बीचि बिलासु॥७॥

अर्थ : इस अवसर पर परम मङ्गल सुनकर रनिवास आनन्दित हो उठा। जिस भाँति चन्द्रमा की बढ़ोतरी से समुद्र में उत्तालतरङ्गों की शोभा होती है।

व्याख्या : रनिवास की उपमा समुद्र से दी गयी। क्योंकि महाराज का रनिवास बहुत बड़ा था। सात सौ रानियाँ थीं। यथा : पालागन दुलहिनिन्ह सिखावत मुदित सासु सत साता। यहाँ चन्द्र की बढ़ोतरी रामजी का अभिषेक है। समुद्र से ही चन्द्र की उत्पत्ति है। अतः रामजी की उपमा चन्द्र से दी गयो। इनके अभिषेक से रनिवास में आनन्द का उद्रेक हुआ। उसकी उपमा बीचि विलास से दो गयी। यथा : राकाससि रघुपतिपुरी सिंधु देखि हरखान। बढ़त कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान। यहाँ हरषेउ शब्द में रकार और सकार उलट गये हैं। अतः हरषेउ का रहसेउ हो गया।

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए ॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागी। मंगल कलस सजन सब लागीं ॥१॥

अर्थ : जिन्होंने पहिले जाकर यह शुभ सम्वाद सुनाया उन्होंने बहुत से गहने कपड़े पाये। प्रेम से शरीर में पुलक हो गया। मन में प्रेम छा गया। सब मङ्गल कलश साजने लगीं।

व्याख्या : नगर में समाचार फैलने के बाद रनिवास को समाचार मिला। शुभ समाचार देनेवाले को पुरस्कार मिलने की परिपाटी है। क्योंकि शुभ समाचार देनेवाला प्रिय होता है। यथा : जो कहिहैं आये राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। सो तुलसी प्रिय मोहि लागिहैं ज्यों सुभाय सुत चारी। समाचार देनेवाले को रानियों ने भूषण उतार कर दे दिये। कपड़े पीछे से मँगाये गये। इसलिए भूषण पहिले कहा। उसके बाद वसन कहा। पीछे से समाचार देनेवाले को भी पुरस्कार मिला। पर थोड़ा अधिक तो पहिले समाचार देनेवाले ने हीं पाया।

शुभ समाचार सुनने से ऐसा आनन्द हुआ कि शरीर पुलक से और मन प्रेम से भर उठा। अतः अन्त पुर के द्वारपर मङ्गलसूचक कलश स्थापन के लिए सब रानियाँ मङ्गलघट साजने लगीं। यथा : छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुचि जनु नीड़ बनाये।

चौकइँ चारु सुमित्रा पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अतिरूरी ॥
आनँद मगन राम महतारी। दिये दान बहु बिप्र हँकारी ॥२॥

अर्थ : सुमित्राजी ने सुन्दर चौक पूर डाले। जो मणिमय अनेक प्रकार के और सुन्दर थे। रामजी की माता तो आनन्द में मग्न हो गयी। बहुत से ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत दान दे डाला।

व्याख्या : सात सौ रानियों का हाल कहकर अब सुमित्राजी का वर्णन करते हैं। इन्हें अधिक आनन्द था और चौका पूरने में भी बड़ी पटु थीं। सबने मङ्गल घट साजे। इन्होंने चौका भी पूरा। महारानी हैं : मणिगणों का चौक पूर रही हैं। अनेक प्रकार का चौका पूरना जानती हैं। वे चौके एक से एक सुन्दर हैं।

रामजी की माता कौसल्या देवी के आनन्द का कुछ ठिकाना नहीं। वे तो मग्न हैं। न कलश साजा। न चौका पूरा। सब भूल गयीं। बहुत से ब्राह्मणों को बुलाया और उन्होंने बहुत सा दान दिया। ये ब्राह्मणों के सन्तोष को ही परम मङ्गल मानती हैं। यथा : तुम्ह गुरु बिप्र साधु सुर सेवो। तस पुनीत कौसल्या देवी।

पूजी ग्रामदेवि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलि भागा ॥
जेहि बिधि होइ रामु कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू ॥३॥
गावहिं मंगल कोकिल बयनी। बिधुबदनी मृगसावकनयनी ॥४॥

अर्थ : फिर ग्राम के देवी देवता और नागों : डिहवारों की पूजा की और बलि भाग देने के लिए मनौती मानी। जिस विधि से रामजी का कल्याण हो कृपा करके वह वरदान दो। चन्द्रवदनो मृग के बच्चों सी आँखवाली कोकिलवयनी मङ्गल गाने लगीं।

व्याख्या : यहाँ गुरुदेव को आज्ञा नहीं भेजनी पड़ी। स्वयं अन्तःकरण की प्रेरणा से पूजन में प्रवृत्त हुईं। पहिले पूजन करके ब्राह्मणों को दान दिया। तत्पश्चात् देवी देवताओं का पूजन प्रारम्भ हुआ। ग्रामदेवी और ग्रामदेव का पूजन किया। फिर से पूजन बलिदान के लिए मनौती मानी। यहाँ पर नाग से उन हाथियों का ग्रहण है। जो मिट्टी के बने होते हैं। ग्राम के बाहर रक्खे जाते हैं और मनोरथ सिद्धि होने पर मङ्गल उपस्थित होने पर उनकी पूजा होती है। वे डिहवार कहलाते हैं। राजा कुलदेव की पूजा कर रहे हैं। महारानी ग्रामदेव और देवियों के पूजन में लगी हैं।

पूजनोपरान्त रामजी के कल्याण के लिए वरदान माँगती हैं। अभिषेक पर आग्रह नहीं है। जिस भाँति रामजी का कल्याण हो सो करो। चाहे अभिषेक से हो अथवा अन्य विधान से हो। जीव अल्पज्ञ नहीं जान सकता कि वास्तविक कल्याण किस बात में है। यह महारानी कौसल्या का अलौकिक विवेक है। यथा : मातु बिबेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे। प्रार्थना करती हैं कि दया करके वरदान दो। पूजा के बदले में नहीं।

इधर महारानी पूजन में लगीं हैं।- उधर अन्तःपुर में मङ्गलगान होने लगा। गान करनेवाली सुस्वर हों तभी श्रवणेन्द्रिय की तृप्ति होती है। अतः कोकिलबयनी कहते हैं और यदि वे सुन्दरी हों तो चक्षुरिन्द्रिय के तर्पण से आनन्द और भी बढ़ जाता है इसलिए विधुबदनी मृगसावकनयनी कहा।

दो. राम राज अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि ॥८॥

अर्थ : रामजी का राज्याभिषेक सुनकर सब नर नारी हर्षित हुए और विधि को अनुकूल समझकर सब सुमङ्गल सजने लगे। सबके हृदय में रामजी के

अभिषेक की अभिलाषा थी। अतः अभिलाषा पूर्ति के समय हृदय में हर्ष होना स्वाभाविक है।

व्याख्या : हर्ष होने पर सुमङ्गल साज सजना भी स्वाभाविक है। आनन्द के उद्रेक में कुछ क्रियाएँ भी तद्रूप होनी ही चाहिए। अतः घरों में तोरण पताका लगाना बाजार के साजने में हाथ बँटाना ये काम नर करने लगे। मङ्गलघट सजाना चौक पूरना और मङ्गलगान करना इन कामों में नारियाँ लग गयीं। सबने यही समझा कि विधि अनुकूल है। पर बात ऐसी नहीं थी : विधि की वामगति थी।

तब नरनाहँ बसिष्ठु बोलाए। राम धाम सिख देन पठाए ॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा ॥१॥

अर्थ : तब राजा ने वसिष्ठजी को बुलाया। रामजी के महल में शिक्षा देने के लिए भेजा। गुरुजी का आगमन सुनते ही रामजी ने द्वार पर आकर चरणों में सिर नवाया।

व्याख्या : रामजी का राज्याभिषेक सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया। तदनुसार तैयारी भी आरम्भ हो गयी। पर यह समाचार रामजी को भी देना है। अतः यही निश्चय हुआ कि स्वयं गुरुजी जाकर यह समाचार दें और ऐसे अवसर पर जो जो बातें रामजी के लिए करणीय हों उन बातों की शिक्षा दें। गुरुजी पुरोहित भी हैं। अतः पौरोहित्य का काम आ पड़ने पर बुलाये जाते हैं। यथा : गुरु वसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी। सो गुरुजी को बुलाकर राजा ने शिक्षा के लिए रामजी के महल में भेजा।

गुरुजी के आने का समाचार पाते ही रघुनाथजी बाहर निकल आये। तव से वसिष्ठजी द्वार तक आगये। रामजी ने चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया। गुरुजी का पधारना एक असाधारण घटना थी। अतः उन्हें आते देखकर सेवकों ने दौड़कर रामजी को समाचार दिया। जिसमें उन्हें अगवानी का सुअवसर मिल सके।

सादर अरघ देइ घर आनें। सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी ॥२॥

अर्थ : आदर के साथ अर्घ्य देकर घर लाये। षोडशोपचार से पूजन करके सम्मान किया। तत्पश्चात् सीताजी के सहित पाँव छूये और करकमल जोड़कर बोले।

व्याख्या : पहिली पूजा अर्घ्यदान है। सो द्वार पर ही अर्घ्य दिया। तत्पश्चात् महल में ले आये। श्रद्धातिशय से षोडशोपचार से पूजन किया। नहीं तो ऐसे अवसर पर पञ्चोपचार से ही पूजन किया जाता है। तुलसी कहत पुकार के सुनो सकल दै कान। हेमदान गजदान ते वड़ो दान सनमान।

घर में पूजन हो रहा है। इसलिए पूजन की समाप्ति के समय सीताजी के सहित वन्दना की। क्योंकि स्त्री के सहित पूजन का विधान है। तत्पश्चात् रामजी दोनों हाथ जोड़कर बोले। भाव यह कि गुरुजी के आगमन पर पहिला कार्य यह है कि उनकी पूजा की जाय। तब दूसरी बात हो।

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू ॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती ॥३॥

अर्थ : सेवक के घर स्वामी का आगमन तो सब मङ्गलों का मूल है और अमङ्गल का नाश करनेवाला है। तथापि उचित नीति यह है कि काम के लिए सेवक को बुला भेजना चाहिए।

व्याख्या : रामजी ने कहा कि मैं सेवक हूँ। आप स्वामी हैं। सेवक का तो धर्म ही है कि स्वामी के घर उपस्थित रहे। यदि स्वामी सेवक के घर जाय तो उसका बड़ा भाग्य समझना चाहिए। स्वामी के चरण पड़ने से ही सेवक का मङ्गल होता है। और उसके अमङ्गल का नाश होता है। अतः आपका पधारना मेरे लिए तो बड़े सौभाग्य की बात है। परन्तु निष्कारण तो कोई कार्य होता ही नहीं। अतः जिस कार्य के लिए आप ने आने का कष्ट उठाया उसके लिए मुझे ही बुला भेजना उचित था। नीति भी यही है कि काम पड़ने पर स्वामी सेवक को बुला भेजे। यदि सेवक को सम्मान देना ही हो तो प्रीति के साथ बुलवा ले। भावार्थ यह कि आपने आने का कष्ट क्यों उठाया। मुझे ही बुलवा भेजते। आपका आना मेरे लिए तो सौभाग्य का विषय है। पर आपको कष्ट हुआ।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू ॥
आयसु होइ सो करउँ गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई ॥४॥

अर्थ : प्रभु ने प्रभुता छोड़कर मुझ पर स्नेह किया। आज यह घर पवित्र हुआ। जो आज्ञा हो सो मैं करूँ। सेवक को स्वामी की सेवा का लाभ हो।

व्याख्या : इस सामान्य नियम के अतिक्रमण में अनीति की गन्ध नहीं है। केवल अपनी प्रभुता पर ध्यान न देकर सेवक पर स्नेह करना है। ब्याह हुए बारह वर्ष हुआ। इस बीच में गुरुजी का घर पर आगमन नहीं हुआ। इसलिए कहते हैं कि आज यह घर पवित्र हुआ।

आज्ञा होने से पहिले ही पूछना सेवकाई के लिए उत्सुकता है। आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सेवक के लिए स्वामी की सेवा का अवसर मिलना बड़े भाग्य का विषय है। तपस्वी लोग जल्दी किसी से सेवा नहीं लेते। उनके यहाँ : स्वयं दासास्तपस्विनः प्रचलित है : तपस्वी स्वयं दास हैं। अपना काम स्वयं कर लेते हैं। दूसरे से काम नहीं लेते। यदि काम लें तो उसका सौभाग्य है। अतः सेवकाई के लाभ के लिए रामजी की प्रार्थना गुरुचरणों में है।

दो. सुनि सनेह साने बचन, मुनि रघुबरहिं प्रसंस ।
राम कस न तुम्ह कहहु अस, हंस वंस अवतंस ॥९॥

अर्थ : स्नेह से सने हुए वचनों को सुनकर मुनिजी ने रामजी की प्रशंसा की कि राम तुम ऐसा क्यों न कहो । तुम सूर्यवंश के शिरोभूषण हो ।

व्याख्या : श्रीरामजो के स्नेह सने हुए वचन सुनकर मुनिजी प्रसन्न हो गये और उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि तुम सूर्यकुल के शिरोभूषण हो । अतः जो वचन तुमने कहे । वह तुम्हारे स्वरूप के अनुकूल हैं । सूर्यवंश में स्वभाव से ही गुरुभक्ति देखी जाती है । महाराज दशरथ कहते हैं : मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें । सबु पायउँ रज पावनि पूजें । भरतजी कहेंगे : दलि दुख सजइ सकल कल्याना । अस असीस राउरि जग जाना ।

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ । बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू । चाहत देन तुम्हहि जुबराजू ॥१॥

अर्थ : रामजी के गुण शील और स्वभाव का वर्णन करके प्रेम से पुलकित होकर मुनिराज ने कहा कि महाराज ने अभिषेक की तैयारी कर ली है और तुम्हें युवराज पद देना चाहते हैं ।

व्याख्या : रामजी के गुणों का वर्णन किया कि तुम सब विधि से सब लायक हो । शील स्वभाव का वर्णन किया कि तुम सबको प्राणप्रिय हो । सब विप्रमण्डली तुम्हारे ऊपर छोह करती हैं । इस कुल में ऐसे ही युवराज की आवश्यकता है । इस भाँति प्रशंसा करके मुख्य समाचार कहने के समय मुनिराज प्रेम से पुलकित हो उठे । कहने लगे : राजा अब राज्यभार को वहन करना नहीं चाहते । अतः राज्याभिषेक की सब तैयारी कर ली है और तुम्हें युवराज बनाना चाहते हैं । तुम्हीं चारों भाइयों में ज्येष्ठ हो । ज्येष्ठ गुणों से युक्त हो । अतः राजा का तुम्हारे विषय में ऐसा ही निर्णय उपयुक्त है ।

राम करहु सब संजम आजू । जौं बिधि कुसल निबाहइ काजू ॥
गुरु सिख देइ राय पहिं गयेऊ । राम हृदयँ अस बिसमउ भयेऊ ॥२॥

अर्थ : रामजी आज तुम सब संयम करो । यदि विधाता कुशल पूर्वक सब काम निबाह दें । गुरुजी तो रामजी को शिक्षा देकर चले गये । पर रामजी के हृदय में इस प्रकार से आश्चर्य हुआ ।

व्याख्या : राज्याभिषेक के एक दिन पूर्व जिसका अभिषेक होता है । उसे संयम से रहने का विधान है । वह ब्रह्मचर्य से रहे शय्या का त्याग करे इत्यादि । गुरुजी ने उन सब संयमों के अनुष्ठान का रामजी को उपदेश दिया । आज संयम से रहो कहने का तात्पर्य ही यह है कि कल तुम्हारा अभिषेक होनेवाला है । परन्तु विधि की ओर से सकुशल कार्य के सम्पन्न होने में सन्देह है । यह बात भी गुरुजी ने

स्पष्ट कह दी। देवताओं का रहस्य है। अतः महाराज को केवल इङ्गित से जनाया। यथा : सुदिनु सुमंगलु तबहिं जब राम होहिं युबराज। पर रामजी से क्या परदा है। अतः स्पष्ट कहते हैं। और भी जो बातें रक्षा सन्बन्धी ऐसे अवसर पर उपयुक्त होती हैं। उनकी भी शिक्षा देकर गुरुजी चले गये। पर रामजी को यह समाचार सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने कभी इस बात की ओर ध्यान भी नहीं दिया था कि जेठे होने के कारण राज्य के वे ही अधिकारी हैं। लोकसीमा के उल्लंघन करनेवाली वस्तु से जो चित्त में विकार उत्पन्न होता है उसे विस्मय कहते हैं। यथा : विविधेषु पदार्थेषु लोकसोमातिवर्तिषु। विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः।

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनवेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भये उछाहा ॥३॥

अर्थ : सब भाई एक साथ ही पैदा हुए। एक साथ ही लड़कपन से खाते सोते खेलते आये। कर्णवेध जनेव और व्याह का उत्सव सब एक ही साथ हुआ।

व्याख्या : विस्मय का कारण कहते हैं कि सब भाइयों का जन्म भी साथ ही साथ हुआ। एक के जन्म से दूसरे के जन्म में कुछ घण्टों का हो भेद पड़ा। भोजन भी सबका साथ होता रहा। यथा : अनुज सखा सँग भोजन करहीं। सोते भी साथ ही साथ रहे। यथा : आज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्हीं। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्हीं। लड़कपन में खेल भी साथ ही साथ होता रहा। यथा : जिन्ह बीथिन्ह बिहरैं सत्र भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई। तत्पश्चात् जितने संस्कार और उत्सव हुए। यथा : कर्णवेध उपवीत और विवाह सो सब साथ ही साथ हुए। सब कामों में तो भाइयों का साथ रहा। अब क्या अभिषेक में उनका साथ न होगा? अभिषेक केवल मेरा ही होगा? यही विस्मय है।

बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई ॥४॥

अर्थ : इस निर्मल वंश में यही एक अनुचित बात है कि भाइयों को छोड़कर बड़े का ही अभिषेक होता है। प्रभु का प्रेम के सहित सुन्दर पछतावा भक्त के मन की कुटिलता का हरण करे।

व्याख्या : पिताजी की इच्छा है। गुरुजी आकर कह गये और रघुकुल की रीति भी यही है। अतः स्वीकार करने के सिवा उपायान्तर नहीं है। अतः प्रभु प्रेम के साथ पछता रहे हैं। इस ध्यान की श्रीआचार्यपाद फलश्रुति कहते हैं कि इस पछताने से भक्तों के मन की कुटिलता नष्ट हो। स्वार्थान्धता ही सब कुटिलताओं का कारण है। अपने इष्टदेव के स्वार्थ निरपेक्ष विचार में स्थित होने के ध्यान से भक्त के हृदय में भी स्वार्थ निरपेक्ष विचार करने का सामर्थ्य उत्पन्न हो। इसलिए कवि प्रार्थना करते हैं कि : हरउ भगत मन कै कुटिलाई। इस पछतावे से रामोपासकों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। प्रभु की सरलता का अनुगमन सेवक का धर्म है। प्रभु

के सभी उपासकों में भाई भाई का नाता है। अपना उत्कर्ष होने पर औरों के लिए दुःखी न होना भी भक्तों के लिए कुटिलता है। अतः कवि प्रार्थना करते हैं कि प्रभु के इस प्रकार का पछतावा भक्त के मन की कुटिलता हरण करे।

दो. तेहि अवसर आए लखन, मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिय बचन कहि, रघुकुल कैरव चंद ॥१०॥

अर्थ : उसी अवसर पर लक्ष्मणजी प्रेमानन्द में मग्न हुए आये और रघुकुल-रूपी कुमुद के चन्द्रमा रामजी ने उनका सम्मान प्रिय वचन कहकर किया।

व्याख्या : उसी पछताने के अवसर पर प्रेमानन्द में मग्न लक्ष्मणजी आये। आचार्यपाद दो के लिए मग्न शब्द का प्रयोग करते हैं एक लक्ष्मणजी के लिए और दूसरा कौसल्याजी के लिए। यथा : आनंद मगन राम महतारी। भाइयों के साथ अभिषेक न होने का रामजी को पछितावा है और उनका अभिषेक सुनकर भाई लक्ष्मण को आनन्द है। लक्ष्मणजी की ऐसी दशा देखकर रघुकुलकैरवचन्द ने उनका सम्मान प्रिय वचन द्वारा किया। यथा : कर्त्ता भोक्ता त्वमेव हि। कि कर्त्ता भोक्ता तो लक्ष्मण ! तुम ही होगे। अभिषेक भले ही मेरा हो ले। जिस राज्य के कर्तृत्व भोक्तृत्व की मेरी प्राप्ति पर तुम्हें इतनी प्रसन्नता है। वह कर्तृत्व भोक्तृत्व तुम्हारा ही हो।

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। पुर प्रमोदु नहि जाइ बखाना॥
भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं॥१॥

अर्थ : अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं। पुर का आनन्द बखाना नहीं जाता। सब भरतजी का आना मना रहे हैं कि जल्द आवें और नेत्रों का फल पावें।

व्याख्या : राम राज अभिषेकु सुनि, हिम हरषे नर नारि। लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि। यहाँ से प्रसंग छूटा है। उसी को फिर से उठाते हैं कि अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। पहिले यमघण्टवाद्य राज्याभिषेकवाद्य आदि अनेक प्रकार के बाजे थे। जिनका नाम शास्त्रों में सुना जाता है। अब उनका चलन नहीं है। इष्टभोगजन्य हर्ष को प्रमोद कहते हैं। सो इस समय पुर में ऐसा प्रमोद है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। भरतजी पर सभी प्रजा का प्रेम है। सबकी इच्छा है कि भरतजी इस उत्सव में अवश्य सम्मिलित हों। परन्तु वे कैकय देश में हैं। इतनी जल्दी बुलाये नहीं जा सकते। अतः उनके आने के लिए देवताओं से प्रार्थना करते हैं कि यदि वे आजाँय तो उन्हें भी नेत्रों के सफल करने का अवसर मिल जाय।

हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परसपर लोग लोगाई॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥२॥

अर्थ : बाजार में, घरों में, गलियों में और बैठकों में नर और नारियाँ आपस

में चरचा कर रहे हैं कि कल लग्न किस समय है जब कि विधि हमारा अभिलाष पूरा करेंगे।

व्याख्या : जहाँ देखिये तहाँ नगर में यही चरचा है। लोग बाजारों में काम काज करते हुए, रास्ता चलते हुए, घरों में बैठे हुए, बैठकों में बात करते हुए, गलियों में आते जाते हुए, एक दूसरे से यही पूछते हैं कि कल अभिषेक के लिए लग्न कौन सी स्थिर हुई है जब कि हम लोगों की अभिलाषा पूर्ण होगी। सबको रामजी के राजतिलक देखने की उत्कट चाह है और समय के जानने की बड़ी उत्सुकता है। पर लग्न का पता किसी को नहीं है। कारण यह कि लग्न गुरुजी ने बतलाया ही नहीं था। यही कह दिया था : सुदिन सुमंगलु तबहिं जब राम होहिं युबराज।

कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता ॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन बनावहिं देव कुचाली ॥३॥

अर्थ : सोने के सिंहासन पर सीताजी के सहित रामजी बैठें तो सबका मनोवाञ्छित सिद्ध हो। सब कह रहे हैं कि कल कब होगा और कुचाली देवता लोग विघ्न की व्यवस्था कर रहे थे।

व्याख्या : लोगों में उत्सुकता बढ़ी हुई है। अभिषेक के अवसर पर राजा रानी के साथ सोने के सिंहासन पर बैठते हैं और उसी पर राजतिलक होता है। उसी दृश्य को आँखों से देखने के लिए लोग आतुर हैं। जितना प्रेम लोगों को रामजी पर है उतनाही सीता पर है। पर उनका दर्शन दुर्लभ है। उत्सव के समय परदा का विधान नहीं है। अतः उस समय युगलमूर्ति के दर्शन का सौभाग्य सभी को होगा। उसी दर्शन के लिए लोग लालायित हैं। तीव्र उत्कण्ठा होने से समय बीतना कठिन हो रहा है। यह खबर सबको है कि कल राजतिलक है। अतः कल के आने के लिए जो समय अपेक्षित है उसका कटना कठिन हो रहा है।

लोगों में तो रामजी के राजतिलक के लिए इतनी उत्सुकता है। पर कुचाली देवता लोग विघ्न की व्यवस्था कर रहे हैं। इस फेर में पड़े हुए हैं कि कैसे राजतिलक रुके। इसीलिए कवि ने रुष्ट होकर उन्हें कुचाली कहा। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए सबके आनन्द के मार्ग में रोड़ा अटकाने को चिन्ता में हैं।

तिन्हहि सुहाइ न अवध बधावा। चोरहि चंदिनि राति न भावा ॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहि बार पाय लै परहीं ॥४॥

अर्थ : उन्हें अवध का बधावा नहीं अच्छा लगता। जैसे चोर को चाँदनी रात भली नहीं लगती। सरस्वती को बुलाकर देवता विनय कर रहे हैं। बार-बार पैरों पर गिर रहे हैं।

व्याख्या : अयोध्या में सबको आनन्द है। वहाँ के लोग बधावा बजा रहे हैं। उन्हें बधावा सोहाता है। पर देवता लोग रामजी का राजतिलक इस समय नहीं चाहते। अतः उन्हें बधावा अच्छा नहीं लगता। सब बिधि सब पुरलोग

सुखारी। रामचंद मुखचंदु निहारी। अतः पुर के लोग उस चन्द्र की बढ़ोत्तरी चाहते हैं। राजतिलक उस बढ़ोत्तरी की सीमा है। अतः बधावा उसी बढ़ोत्तरी की द्योतक चाँदनी है। वह सबको सुखद हो रही है। पर कुचाली देवताओं को नहीं सोहाती जिस भाँति चाँदनी सबको सोहाती है। पर चोर को नहीं सोहाती। यहाँ देवताओं की उपमा चोर से दी गयी है। चोर स्वयं निर्धन हैं। लोगों के धन को हरण करके स्वयं धनी होना चाहते हैं। इसी भाँति देवता राजतिलक में विघ्न उपस्थित करके सबके आनन्द का अपहरण कर स्वयं आनन्दित होना चाहते हैं। उनके यहाँ आनन्द का अभाव है। उन्हें रावण के भय से न भूख लगती न नींद आती है। यथा : जाके डर सुर असुर डराहीं। निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं। दुखियों को स्वभाव से ही दूसरों का बधावा नहीं सोहाता। सो अवध के बधावा से देवताओं के नाकों दम है। वहाँ नित्य नवमंगल मोद बधावा होता रहता है और इस समय तो : बाज गहागह अवध बधावा। भारी बधावा बज रहा है। यदि चन्द्र हटें तो चाँदनी जाय। यदि रामजी अयोध्या में न रहे तो बधावा बन्द हो।

अतः विघ्न की रचना की चिन्ता में हैं। पर बुद्धि काम नहीं देती। अवध में कोई ऐसा नहीं जिसे रामजी का तिलक न सोहाता हो। फिर विघ्न हो तो कैसे हो ? अतः विघ्न के लिए सरस्वती का आवाहन करके अपने कार्य के लिए उनके चरणों पर गिर रहे हैं। पर वे राजी नहीं होतीं। अतः बार-बार चरणों पर गिरते हैं।

दो. बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुर काजु ॥११॥

अर्थ : हमारी बड़ी भारी विपत्ति को देखकर माता! आप वही करिये। जिसमें रामजी राज्य छोड़कर वन में जाँय और सब देवताओं का कार्य सिद्ध हो।

व्याख्या : देवता लोग सरस्वतीजी से कहते हैं कि आप हमारी माता हैं। आप अपने बच्चों की भारी विपत्ति को देखिये। १. हम लोग उजड़ गये। यथा : वेद विरुद्ध महीसुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजार्‍यो। २. हम लोगों को भोजन का ठिकाना नहीं। यथा : द्विज भोजन मख होम सराधा। सबकै जाइ करहु तुम बाधा। छुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहिं मिलिहहिं आइ। ३. दिन रात हम लोग सभीत रहते हैं। यथा : सुरपुर नितहि परावन होई। ४. इज्जत लूटी जाती है। यथा : देव जच्छ गंधर्व नर किन्नर नाग कुमारि। जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुन्दर बर नारि। ५. तिस पर हम लोगों को नित्य हाजिरी बजानी पड़ती है। यथा : कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता। ६. हम लोग बन्दर भालू बनकर वनों में रामजी के आने की वाट जोह रहे हैं। यथा : गिरि तरु नख आयुध धर धीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। अब इससे बड़ी विपत्ति और क्या होगी। आप माता हैं। अपने बच्चों के लिए माता क्या नहीं करती ? सो आज ऐसा उपाय कीजिये कि रामजी राज्य छोड़कर वन

चले जाँय। आज़ कहने का भाव यह कि कल तो काम ही बिगड़ जायगा। जहाँ राज्य पर बैठे तहाँ राजकाज में लग जावेंगे तो हमारा काम पिछड़ जायगा। आपके सब बच्चों का कल्याण रामजी के वन जाने में है।

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोज बिपिन हिम राती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहि थोरिउ खोरीं ॥१॥

अर्थ : देवताओं का विनय सुनकर खड़ी होकर पछताती हैं कि मैं कमल के वन के लिए पाले की रात्रि बन रही हूँ। देखकर देवता लोग फिर निहोरा करके कहते हैं कि माता ! तुझे थोड़ा सा भी दोष नहीं है।

व्याख्या : देवताओं का विनय सुना। बात गले उतर गयी। पर पछतावा है कि कमल वन की भाँति फूले हुए इस अवध नगर के संहार के लिए मैं पाले की रात कैसे बनूँ। भाव यह कि रामजी के विरुद्ध सुनते ही चली नहीं गयीं। खड़े होकर पछताने लगीं कि मुझे बड़ा अपयश होगा। दोष लगेगा कि हरा भरा बाग सरस्वती ने उजाड़ दिया।

सरस्वती ब्रह्मलोक से देवताओं के आवाहन से देवलोक में आयीं हैं। अभी बैठी भी नहीं। खड़े ही खड़े देवताओं का विनय सुनकर पछता रही हैं। इस प्रसङ्ग में दो का पछतावा कहा : रामजी का और सरस्वतीजी का। रामजी के पछतावे से ही सरस्वतीजी तथा वृहस्पतिजी ने उनका रुख लख लिया। यथा : तब कछु कीन्ह राम रुख जानी। फिर भी विघ्नाचरण में पछतावा है। आज और कल के बीच में रात्रि है। सरस्वती पछताती हैं कि मुझे हिमरात्रि बनना पड़ेगा। जिसमें कमलकुल का संहार हो जाय। अतः कहती हैं : भइउँ सरोज बिपिन हिम राती।

सरस्वतीजी को असामञ्जस्य में देखकर वृहस्पतिजी ने निहोरा करके कहा कि आप इस कार्य में दोष देख रही हैं। सो इसमें आपका थोड़ा भी दोष नहीं है। कारण देते हैं :

बिसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब रामु प्रभाऊ ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी ॥२॥

अर्थ : रामजी तो विस्मय हर्ष से रहित हैं। आप तो उनके प्रभाव को जानती हैं। जीव कर्म के वश सुख दुःख भोगा करते हैं। अतः देवताओं के भले के लिए आप अवध जाँय।

व्याख्या : और लोग रामजी के प्रभाव को नहीं जानते। पर आप तो जानती हैं कि रामजी क्या हैं। परवस जीव स्ववस भगवंता। रामजी स्वतन्त्र हैं। उन्हें कर्म शुभाशुभ की बाधा नहीं। सुख दुःख रूपी द्वन्द्व की उन तक पहुँच नहीं। दुःख सुख तो अभिमानी को होता है। अतः रामजी के लिए चिन्ता का कोई कारण नहीं है। आप जो कुछ करेंगी वह देवताओं के हित के लिए करेंगी। यदि देवहित करने में कुछ जीवों को दुःख हो तो वह नगण्य है। क्योंकि उनके

प्रारब्ध में जो सुख दुःख है उसकी मात्रा के घटाने बढ़ाने में कोई समर्थ नहीं है। उतना उन्हें मिलकर ही रहेगा। अतः आपके दोष का तो यहाँ प्रसङ्ग ही नहीं है। आप देवताओं के कल्याण के लिए अवध पधारें : यहाँ हर्ष के विरोध में आने से विस्मय का अर्थ शोक करना पड़ेगा।

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबिध [1]मति पोची ॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती ॥३॥

अर्थ : देवताओं ने बार बार चरण पकड़कर सङ्कोच में डाला। तब वह देवताओं की बुद्धि भली नहीं ऐसा विचार करके चली। इनका निवास तो ऊँचा है। पर करतूति इनकी नीच है। ये दूसरे का ऐश्वर्य नहीं देख सकते।

व्याख्या : जो जो बातें देवताओं ने कहीं उनकी असमीचीनता को जानते हुए भी सरस्वती पुत्रों के सङ्कोच में आगयी। और भी स्वार्थ के विचार उसके मन में आये। जिनका वर्णन आगे किया जायगा। अतः देवताओं के कार्य के लिए चल पड़ी।

देवताओं का निवास ऊँचा है। स्वर्ग में रहते हैं। यह लोक तो भूलोक है। इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है। उसके भी ऊपर स्वर्गलोक है। देवता लोग वहाँ रहते हैं। इसलिए ऊँच निवास कहती हैं। पर इनकी करणी नीच है। स्वार्थ से भरी होती है। यथा : आये देव सदा स्वारथी। जब रामावतार हो गया तो ईश्वर सत्य सङ्कल्प है। आज नहीं तो कल रावणवध करेंगे ही। कितने चतुर्युगियों से उसके अत्याचार को सह रहे हैं। थोड़ा और सह लेते। थोड़ा धैर्य रखते। जो अवतीर्ण जिस कार्य के लिए हुआ है उसको भी तो उस कार्य की चिन्ता है। वह देवताओं को उचित से अधिक कष्ट पाते कभी न देख सकेगा। अवधवासियों के रंग में भंग डालने का कोई कारण नहीं है। कवि कहते हैं कि बात यह है कि अवधराज सुरराज सिहाहीं। दसरथ धन सुनि धनद लजाहीं। सो देवता लोग इस विभूति को न देख सके। उनके हृदय में अवध का आनन्द देखकर डाह पैदा हुआ कि हम तो स्वर्ग में रहकर इतना दुःख पावें और ये मर्त्यलोक में रहकर इतना आनन्द लें।

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी ॥
हरषि हृदय दसरथ पुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई ॥४॥

अर्थ : फिर भविष्य के कार्य को विचारा कि कुशल कवि मेरी चाह करेंगे। हर्षित हृदय से दशरथपुर में दुसह दुखदायी ग्रहदशा की भाँति आयी।

———

१. राजापुर को प्रति में विविध पाठ है। ऐसा मानने से : पोची विविध मत विचार चलीं। इस प्रकार अन्वय करना होगा। अर्थात् अपने स्वार्थ का भो विचार किया : करिहहिं चाह कुसल कवि मोरी : अतः पोची कहते हैं।

व्याख्या : इस सरस्वती ने अपने भविष्य के स्वार्थ को विचारा कि रामचरित वर्णन करनेवाले कुशल कवि मेरी चाह करेंगे। रामचरित वर्णन के लिए मेरा स्मरण वन्दन करेंगे। यथा : कपिसेन संग संहारि निसिचर राम सीतहिं आनि हैं। त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानि हैं। अतः हर्षित हृदय से अवध में आयी। उसका पछतावा नाम मात्र के लिए था। सरस्वती का आना मङ्गलकारक है। सो अवधवासियों के लिए तो इस समय दुखदायी ग्रहदशा साढ़े साती से भी बढ़ी हुई बनकर आयी।

सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंदु निहारी। अतः प्रभु की ग्रहदशा ही सबकी ग्रहदशा है। सो बुध की महादशा में केतु के साथ शुक्र की अन्तर्दशा रूप से आयी। श्रीरामजी का जन्म वृहस्पति की महादशा में हुआ। चारवर्ष तक वही दशा रही। तत्पश्चात् शनैश्चर की महादशा उन्नीस वर्ष के लिए आयी। चौबीसवें वर्ष में बुध की महादशा लगी। सत्ताईसवें में शुक्र की अन्तर्दशा आगयी। शुक्र केतु के साथ थे। इसलिए यह दुःखदायिनी दशा थी। इसने पदच्युत करके ही माना।

दो. नामु मंथरा मंदमति, चेरी कैकै केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ॥१२॥

अर्थ : राजा कैकय की एक मन्दमति दासी मन्थरा नामी थी। उसी को अयश की पेटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को उलटकर चली गईं।

व्याख्या : यह अवध की नहीं थी। कैकय देश से आयी थी। अयोध्यावासियों पर सरस्वती की कला नहीं चली। यह स्वभाव से मन्दमति थी। अतः इसपर कला चल गयी। इसकी बुद्धि पलटा खा गयी। सरस्वती को कोई दोष न दे। इसलिए उसे अयश की पेटारी बनाया। वह बेचारी भी यह नहीं चाहती थी। अतः उसकी बुद्धि का पलटना कह रहे हैं। वह मन्दमति से तीव्र बुद्धि हो गयी। पर साधु बुद्धि के स्थान पर दुष्ट बुद्धि हो गयी। उसकी बुद्धि पलटकर सरस्वती चली गयीं। समझ लिया कि अब यह राजतिलक न होने देगी। सरस्वती बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं। बुद्धि को फिरा देना इनका काम है। यथा : सारद प्रेरि तासु मति फेरी। माँगेउ नीद मास षट केरी।

दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू ॥१॥

अर्थ : मन्थरा ने देखा कि नगर सजा हुआ है और सुन्दर मङ्गल के बधावे बज रहे हैं। लोगों से पूछा कि क्या उत्सव है। रामजी का तिलक सुनकर जी जल उठा।

व्याख्या : सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥

एहिं अवसर मंगलु परम सुनि रहसउ रनिवास।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलासु ॥
प्रथम जाइ जिन बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए ॥

उसी अवसर का यह प्रसङ्ग है। परन्तु वहाँ उल्लेख करने से दूसरी कथा प्रारम्भ हो जाती। वसिष्ठजी का रामजी को शिक्षा देने तथा देवताओं का सरस्वतीजी से विनय करने और सरस्वती के मन्थरा की बुद्धि पलटने का प्रसङ्ग छूट जाता। अतः वहाँ उल्लेख नहीं किया। कैकेयीजी के महल में पहिले पहल खबर सुनानेवाली का हाल लिखते हैं। बात यह हुई कि अति शीघ्रता के कारण महाराज को जाकर रनिवास में इस शुभ समाचार के प्रकाश करने का अवसर ही नहीं मिला। रनिवास में समाचार पहुँचने के पहिले ही नगर में समाचार फैल गया। सभी महल की दासियों ने इस भाँति लोगों से पूछकर रामजी के तिलक का समाचार पाया था। पर उनको सुनकर हर्ष हुआ। दौड़ी हुई महारानिग्रों के यहाँ शुभ समाचार देने गयीं। इसी भाँति मन्थरा ने भी लोगों से नगर का साज समाज और बधावा बजते देखकर पूछा। पर रामजी का अभिषेक सुनकर इसे हर्ष न हुआ। इसका जी जल उठा। क्योंकि इसकी बुद्धि को सरस्वतीजी ने फेर दिया था। इसे वह घटना याद आयी जब कि रामजी ने लड़कपन में इसकी टाँग पकड़कर खैंची थी। इस बात का उल्लेख अग्निपुराण में मिलता है। उसी वैर से इसने कैकेयी को उलटा समझाया।

करै बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवन बिधि राती ॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकै लेउँ केहि भाँती ॥२॥

अर्थ: वह कुबुद्धि और नीच जाति विचार करने लगी कि किस उपाय से आज रात को ही यह काम बिगड़ जाय। जैसे मधुकोष: शहद का छत्ता देखकर कुटिल किराती यह मौका देखने लगता है कि इसी रात को यह शहद कैसे ले लें।

व्याख्या: सरस्वती ने बुद्धि फेर दी है। इसलिए कुबुद्धि कहा। राजा कैकय की चेरी है: कैकेयी के डोला के साथ आयी है। इसलिए कुजाति कहा। इस नीच बुद्धि और नीच जाति को अयोध्या का यह आनन्द देखकर जलन पैदा हुई। यह तरकीब सोचने लगी कि इस आंनन्द का अपहरण मैं आज ही रात को कैसे कर लूँ। क्योंकि कल तो यह आनन्द रामजी के हाथ लग ही जायगा। रात बीत जाने पर फिर मेरा किया कुछ नहीं हो सकता।

जिस भाँति मधु का छत्ता देखकर कुटिल किराती के मन में यह बात उठती है कि आज रात को ही इस मधु के छत्ते को किस उपाय से अपहरण कर लूँ। क्योंकि रात के समय मधुमक्षिकाओं को दिखाई नहीं पड़ता। वे विश्राम करतो हैं। यही समय मधु लेने का है। सवेरा होते ही मक्षिकाओं को सूझने लगेगा। वे

जाग उठेंगी : मधुकोष का अपहरण करनेवाले के शरीर में मक्षिकाएँ चिपट जाती हैं और उसका प्राण बचना कठिन व्यापार हो उठता है। अतः वह रात को ही मधुकोष का अपहरण करती है। इस रूपक में अवधवासियों की उपमा मधु मक्षिकाओं से है। उनके आनन्द की उपमा मधुकोष से और मन्थरा की उपमा कुटिल किराती से दी गयी है। कठिनता यह आपड़ी है कि उजेली रात है। यथा : सोहत जन बिधु बढ़त लखि वारिधि बीचि विलासु। मक्षिकाएँ एकदम निद्रित नहीं हैं। यथा : सकल कहहिं कब होइहि काली। अतः मौका तजबीज रही है। मन में विधि बैठा रही है कि मैं तो चेरी छोड़कर रानी होने की नहीं हूँ। मेरा सम्पर्क कैयेयी से है। यह यदि मेरे कहने से भरत को राज्य और राम को वनवास माँगे तो राज्य मिलने पर भरत और कैकेयी दोनों कृतज्ञ होंगे। मैं उनकी आँख की पुतली बनकर रहूँगी। इस भाँति राज्य पर मेरी ही आज्ञा चलेगी। अब कैकेयी मेरा कहना कैसे माने ? इत्यादिक विचार में लगना ही यहाँ गँव ताकना है।

सबेरा होते ही अभिषेकोत्सव प्रारम्भ हो जायगा। फिर कौन किसकी सुनता है। अतः विधि कोई ऐसी होनी चाहिए जिससे रात में ही काम बिगड़ जाय।

भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी ॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू ॥३॥

अर्थ : रोना चेहरा बनाकर भरतजी की माता के पास गयो। रानी ने हँसकर पूछा कि तू अनमनी क्यों हो रही है। उत्तर नहीं देती। लम्बी लम्बी साँस लेती है और स्त्रीचरित्र करके आँसू गिराती है।

व्याख्या : विचार करके मनमें तरकीब बैठा ली। रोना चेहरा बना लिया। जिसमें रानी कारण पूछें और उसे कहने का अवसर मिले। बिना पूछे कहने से बात न बैठेगी। तब भरत की माता के पास गयी। कहने का भाव यह है कि भरतजी की माता हैं। कम से कम उनकी अनुपस्थिति में पुत्र के हितकी रक्षा के लिए अवश्य तैयार हो जायगी। रानी उसका रोना चेहरा देखकर हँस पड़ी। मन्द बुद्धि से सभी हँसी करते हैं। अतः उपाय ओखा पड़ा। अब बातको गहरी बनाने के लिए रानी के पूछने पर उत्तर नहीं देती। हृदय में शोक न रहने पर भी पूरा शोक का रूपक खड़ा कर देना नारिचरित्र है। सो उसने स्त्रीचरित्र का आश्रयण किया। लम्बी लम्बी श्वास लेने लगी। आँसू गिराने लगी। जिसमें रानी समझें कि कोई गम्भीर समस्या है।

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्हि लखन सिख अस मन मोरें ॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छांड़इ स्वास कारि जनु सापिनि ॥४॥

अर्थ : रानी ने हँसकर कहा कि तू बड़ी मुहजोर है। मेरे मन में तो यह बात

आती है कि लक्ष्मण ने तुझे डाँटा है। फिर भी नहीं बोलती। बड़ी पापिनी चेरी है। काली सर्पिणी की भाँति श्वास लेने लगी।

व्याख्या : फिर भी बात न जमी। रानी ने यही समझा कि कोई अदनी सी बात है। यह मन्दमति तो है ही। मुँहजोर भी है। लक्ष्मण ने डाँटा फटकारा होगा। रामजी डाँटेगे ही नहीं। दूसरे की किसकी ताकत है कि मेरी दासी को डाँट सके। पर मन्थरा साधारण पापिनी नहीं है। कपट को हृदय में बिठाना जानती है। अतः महारानी की उत्सुकता बढ़ाने के लिए फिर न बोली। उच्छ्वास और आँसू बहाने से काम चलते न देखकर काली सर्पिणी की फूत्कार की भाँति श्वास लेने लगी। इस मुद्रा ने काम कर दिया। रानी की बुद्धि में क्षोभ हुआ। वह डर गयी कि कोई भारी विपत्ति आयी है इससे यह ऐसा श्वास ले रही है और वह विपत्ति मेरे पर आयी है। इसलिए यह कहने का साहस नहीं कर रही है।

दो. सभय रानि कह कहसि किन, कुसल रामु महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदवनु सुनि, भा कुबरी उर सालु ॥१३॥

अर्थ : भयभीत होकर रानी ने कहा कि कहती क्यों नहीं? रामजी, महाराज, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न कुशल तो हैं। यह सुनकर कुबरी के कलेजे में साल पड़ गयी।

व्याख्या : पति पुत्र से बढ़कर स्त्री के लिए कोई नहीं है। अतः उन पर आँच आना ही स्त्री के लिए सच्ची विपत्ति है। दो बार पूछने पर नहीं बोली। अतः रानी कहती है कि तू बतलाती क्यों नहीं? कुशल पूछने में जो सबसे प्रिय होता है। उसी का कुशल स्वभाव से ही मनुष्य पहिले पूछता है। सो रानी ने सबसे पहिले रामजी की कुशल पूछी। महाराज की कुशल उसके बाद पूछती हैं। लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न की कुशल तो उसके भी बाद पूछती हैं। यह सुनकर कुबरी के कलेजे में मानो साल पड़ गया। जिसके कलेजे में साल पड़ जाता है उससे साँस लेते नहीं बनता है और वह टेढ़ा हो जाता है। उससे सीधे खड़े होते नहीं बनता। कुबरी तो भरत की माँ जानकर आयी थी। पर रानी तो रामजी की माँ की भाँति बोली। उसने पहिले रामजी की कुशल पूछी। भरत की कुशल तो लक्ष्मण के भी बाद पूछती हैं। यह लक्षण तो काम बनने का नहीं है। मन्थरा कुबरी तो थी ही। यह कलेजे में साल पड़नेवाली वाणी सुनकर और भी टेढ़ी हो गयी।

कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई ॥
रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। जिन्हहि जनेसु देइ जुबराजू ॥१॥

अर्थ : माई! मुझे कोई क्या सीख देगा? मैं किसके बल पर मुहँजोरी कर सकती हूँ? राम को छोड़कर आज किसकी कुशल है। जिसे राजा युवराज पद दे रहे हैं।

व्याख्या : मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है और मैं किस गिनती में हूँ कि

मुझे कोई सीख देगा। सीख का भय तो उसे रहता है। जो किसी गिनती में हो। भाव यह कि सीख का भय तुम्हें है। मुझे नहीं है। यह : दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें का उत्तर है। अव गाल वड़ तोरे का उत्तर देती है कि जिस बल से मैं मुहजोरी करती रही वही बल आज जाता रहा। मुझे तो तुम्हारा बल था। सो तुम्हारा ही वल नहीं रह गया।

रामजी की कुशल पहिले पूछी थी। उसपर कहती हैं कि उन्हें छोड़कर आज कुशल किसकी है। भाव यह कि भरत की कुशल नहीं है। क्योंकि राजा तो युवराजपद रामजी को दे रहे हैं : स्पष्ट कहने में भय है। इसलिए लक्षणा व्यञ्जना से काम लेती है। जो युवराज हो उसी की कुशल है। महाराज जनेश हैं। जिसे चाहें उसे युवराज वनावें। उन्हें रोकनेवाला कौन है। सो रामको चाहते हैं भरत को नहीं।

भयेउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥२॥

अर्थ : विधाता कौसल्या के अत्यन्त अनुकूल हो गये हैं। जिनको देखकर हृदय से अभिमान दूर हो जाता है। आप जाकर सब शोभा देखिये। जिसे देखकर मेरा मन चञ्चल हो उठा है।

व्याख्या : विधाता तो पहिले से ही कौसल्या के दाहिने हैं। सब सौत : सपत्नियाँ उनकी सेवा करती हैं। अव तो अत्यन्त दाहिने हुए हैं। तुम्हें भी सेवा करनी पड़ेगी। राजमाता कौसल्या होगी। तुम्हारे भाग्य से राजमाता होने का सुख उठा चाहता है। आज कौसल्या के देखने से सपत्नियों को हृदय में सोहाग का गर्व न रह जायगा।

मेरे मन में क्षोभ नहीं होता। इससे उछल्ले लोग समझते हैं कि यह मतिमन्द है। सो आज की शोभा देखकर मेरे मन में क्षोभ हो गया। तुम्हारी चेरी होने से मुझे क्षोभ हुआ कि स्वामिनी का अभिमान टूटा तो मेरा भी टूट गया। यह का अनमनी हँसि का उत्तर है।

पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। जानति हहु बस नाहु हमारें॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥३॥

अर्थ : बेटा विदेश में है। तुम्हें उसकी चिन्ता नहीं है। समझती हो कि पति मेरे वश में हैं। तुम्हें तो नींद और तोशक तकिया बड़ा प्रिय है। राजा की कपटचतुरता तो तुम्हें सूझती नहीं।

व्याख्या : आज तुम्हारा बेटा घर होता तो अपने लिए कुछ करता। जिसका बेटा घर में है उसे तो अपने बेटे की चिन्ता है। तुम जानती हो कि महाराज तुम्हारे वश में हैं। पर वे तुम्हारे वश में नहीं हैं। तुम्हें अपने बेटे की चिन्ता होनी चाहिए थी जो परदेश में है। पर हमें चिन्ता है। तुम्हें नहीं है। तुम तो निश्चिन्त

होकर सोना जानती हो। तुम्हें नींद प्रिय है और तोशक तकिया प्रिय हैं। तुम राजा की प्यारी हो। तुम्हारे बेटे के लिए यह सामान होना चाहता था। पर राजा को प्यारी तो कौसल्या हैं। तुम पर प्यार तो केवल दिखाने के लिए है। तुम उस कपटचतुराई को लख नहीं सकती।

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी[1] रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावौं तोरी॥४॥

अर्थ : प्रिय वचन सुनकर और उसे मलिन मन जानकर रानी बिगड़ उठी कि बस अब चुप रह। रे घरफोरी! अब यदि फिर तूने ऐसी बात कही तो पकड़कर तेरी जिह्वा खिंचवा लूँगी।

व्याख्या : सारग्राहिणी बुद्धि भगवती कैकेयी की थी। तुरन्त समझ गयी कि यह रामजी के राजतिलक का प्रिय समाचार दे रही है। पर इसका मन मलिन है। अतः ऐसी प्रिय घटना को इस दृष्टि से देख रही है। ईर्ष्या द्वेषयुक्त नीचबुद्धि तथा मनोमालिन्य पर क्रोध किया। ऐसे दुष्ट वचन को सुनना भी नहीं चाहती। अतः आज्ञा देती हैं कि चुप रह। भविष्य के लिए सचेत किये देती हैं कि मेरे वचन कौसल्या के प्रति ईर्ष्या द्वेष उत्पन्न करनेवाले हैं। पति के प्रति दुर्भाव उत्पन्न करनेवाले हैं। इसलिए तू घरफोरी है। घर फोड़नेवाली बातें बोलती है। इस बार मैं क्षमा करती हूँ। फिर यदि तूने ऐसे वचन मुख से निकाले तो घर फोड़नेवाले के लिए यही दण्ड है कि उसकी जीभ खिंचवा ली जाय : ऐसे अधम मनुज खल कृत जुग त्रेता माँहि।

दो. काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि॥१४॥

अर्थ : यह जानकर कि काने लँगड़े और कुबड़े कुटिल और कुचाली होते हैं। तिस पर स्त्री और फिर दासी ऐसा कहकर भरत को माँ ने मुसकरा दिया।

व्याख्या : घर फोड़नेवाला वचन कहने का कारण यही है कि कुलक्षण तुझमें मौजूद है। काने लँगड़े और कुबड़े कुटिल और कुचाली होते हैं। यहाँ प्रसङ्ग कुबड़े का है। स्त्री यदि कुबड़ी हुई तो अधिक अवगुण उसमें चमक उठते हैं। तिस पर चेरी में दुष्कुलप्रसूता होने से उनका अत्यन्त उत्कर्ष हो जाता है। चेरी दुष्कुल प्रसूता के अर्थ में आया है। यथा : कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती। तुझमें ये कुलक्षण मौजूद हैं। अतः तू ऐसी बात बोली। रामजी का अभिषेक सुनकर प्रसन्न थीं। केवल मन्थरा की अनुचित उक्ति पर क्रोध दिखलाया। बात समाप्त होते ही प्रसन्नता झलक उठी।

---

१. झुकी अर्थात् क्रोध किया। यथा : लखन सुजान झुकि झारै कीरवान।

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहु तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥१॥

अर्थ : हे प्रिय : बात कहनेवाली मैंने तुझे सीख दी है। तुझ पर मुझे स्वप्न में भी क्रोध नहीं है। सुमङ्गलदायक सुदिन वही है जिस दिन तेरा कहना सच होगा।

व्याख्या : तूने प्रिय वचन : रामजी के तिलक का समाचार सुनाया। तुझे पुरस्कार देना था। सो मैंने तुझे डाँट बतलायी। तुझे शिक्षा देने के लिए इतना ही बहुत है। मैं तुझपर अप्रसन्न नहीं हूँ : वह नैहर से साथ आयी है। इसलिए उसपर बड़ा प्रेम है उसे समझा रही हैं : तूने जो कहा कि : रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू सो ठीक नहीं। राम के अभिषेक से ही सबका कुशल है। अतः उनके अभिषेक का दिन सबके लिए सुमङ्गलदायक सुदिन है। तूने जो समाचार सुनाया वह जिस दिन सच्चा होगा उसे मैं मङ्गलमय मानूँगी। रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू का उत्तर।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। येह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलकु जौं साचेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली ॥२॥

अर्थ : जेठा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है। यह सूर्यकुल की सुन्दर रीति है। यदि सचमुच कल ही रामजी को राजतिलक होना है तो हे आली ! तू मनचाही बात माँग ले। मैं देती हूँ।

व्याख्या : जो तूने महाराज पर आक्षेप किया है : जेहि जनेस देइ जुबराजू। सो उनका दोष कुछ भी नहीं है। इस कुल की यही रीति है। राम जेठे हैं। इसलिए उनका राजतिलक हो रहा है। यदि भरत जेठे होते तो उन्हीं का होता। राज्य में विभाग नहीं होता। वह जेठे भाई को मिलता है। छोटे सेवक हैं। गुजारा के हकदार हैं। यही सुन्दर रीति है। यदि राज्य में भाई भाग पावें तो राज्य छिन्न भिन्न हो जाय। श्रीरामजी के तिलक के लिए मैं कई बार महाराज से कह चुकी हूँ। यथा : भामिनि भयउ तोर मन भावा। घर घर नगर अनंद बधावा। पर कल ही तिलक है। यह मैं नहीं जानती। मुझे तो विश्वास कम पड़ता है। क्योंकि मुझे इसका कुछ भी पता नहीं है। यदि सचमुच कल ही अभिषेक है तो तूने पहिले पहल शुभ समाचार सुनाया है। तू मनचाही हुई बात माँग ले मैं दूँगी। अन्य रानियों ने पहिले पहल इस शुभ समाचार सुनानेवाले को भूषण वसन दिये। पर कैकेयी का स्वभाव महाराज के स्वभाव से मेल खाता है। यह उसी भाँति मनचाहा हुआ पदार्थ देने को प्रस्तुत हैं जिस भाँति चक्रवर्तीजी देते हैं। यथा : दिये बूझि रुचि रघुकुलनंदन।

कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभाय पिआरी ॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मै कर प्रीति परीछा देखी ॥३॥

अर्थ : रामजी को सब माताएँ कौसल्या के समान सहज स्वभाव से ही पियारी हैं। मुझ पर तो विशेष प्रीति करते हैं। मैंने प्रीति की परीक्षा करके देख ली।

व्याख्या : भगवती कैकेयी कहती हैं कि जो तूने कहा : भयउ कौसिलहिं बिधि अति दाहिन सो तेरी भूल है। रामजी में विशेषता है। उन्हें सब माताएँ कौसल्या की भाँति प्यारी हैं। अतः सब माताओं को विधि समान रूप से दाहिने हैं। कौसल्या को अति दाहिन नहीं मुझे अति दाहिन हैं। क्योंकि रामजी की मुझ पर अधिक प्रीति है। मैंने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख ली है : माता बेटों की प्रीति की परीक्षा बड़ी छोटी छोटी बातों में कर लेती हैं। इस परीक्षा के लिए किसी बड़ी भारी घटना की आवश्यकता नहीं होती।

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्हके तिलक छोभु कस तोरें ॥४॥

अर्थ : यदि ब्रह्मदेव छोह करके जन्म दें तो राम जानकी बेटा पतोहू हों! रामजी मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हैं। उनके तिलक में तुझे क्षोभ क्यों हैं?

व्याख्या : कुबरी ने जो यह कहा था : पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। इसपर कहती हैं कि क्या राम पर मुझे भरत से कम प्रीति है? राम का वर्ताव ऐसा है कि मैं विधि से मनाती हूँ कि यदि आप छोह करके जन्म दें तो राम जानकी बेटे पतोहू हों। अर्थात् मैं भरत माण्डवी से अधिक राम जानकी से सन्तुष्ट हूँ। मुझे रामजी प्राण से अधिक प्रिय हैं। जिस भाँति दशरथजी ने कहा था : सब सुत प्रीय प्रान की नाईं। राम देत नहि बनै गोसाईं। उसी भाँति भगवती कैकेयी भी कहती हैं कि रामजी मुझे प्राण से भी अधिक प्यारे हैं। उनके राजतिलक का समय तो उत्साह का है। तुझे क्षोभ क्यों है? जो अवलोकि मोर मन छोभा का उत्तर है।

दो. भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि, कारन मोहि सुनाउ ॥१५॥

अर्थ : तुझे भरत की शपथ कपट के छिपाव को छोड़कर सच कह! हर्ष के समय तू विषाद करती है। इसका कारण मुझे बतला।

व्याख्या : भरत पर अत्यन्त प्रेम देखकर मन्थरा को भरत का ही शपथ देती हैं कि तू सच सच बतला दे। तेरी बातों से मुझे मालूम हो रहा है कि तू कपट से कुछ बातें छिपा रही है। इस हर्ष के समय में तुझे विषाद कहाँ से हो आया? इसका कारण होना चाहिए। जो कारण तूने दिया उसमें कोई तत्त्व नहीं है। इसलिए सच्ची बात मुझे बतला दे।

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
फोरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा ॥१॥

अर्थ : एक ही बार में सब आशा पूरी हो गयी। अब क्या दूसरी जीभ लेकर कुछ कहूँगी। मेरा अभागा कपाल फोड़ने लायक है। जो भला कहते हुए आपको बुरा लग गया।

व्याख्या : मन्थरा कहती है कि बात तो मुझे वही कहनी है। जो पहले कह चुकी हूँ और फिर वैसी बात कहने से आप जीभ खिंचवा लेंगी। अब तो मैं उसी दशा में वैसी बात कह सकती हूँ जब कि मुझे दूसरी जीभ कहीं से मिल जाय। जिसमें आप के खिंचवा लेने पर भी एक जीभ बची रहे। मैं तो यह आशा करके चली थी कि भरत नहीं हैं तो उनकी माँ तो हैं। उन्हें चलकर सब बातें समझाऊँ। सो आप उलटे मुझपर अप्रसन्न हो गयीं। अतः सारी आशा पर पानी फिर गया। आप जीभ खिंचवाने लगीं।

मेरा कपाल फोड़ने लायक है। जीभ खिंचवाने लायक नहीं है। क्योंकि जीभ तो ठीक बात कहती है। उसका अपराध नहीं है। फोड़ने लायक मेरा कपाल है, जिसमें लिखा है कि मैं भले की बात कहूँ तो सुननेवाले को बुरा लगे। मैं भला कहती हूँ और आपको बुरा लग रहा है। तो मेरी किसमत का ही दोष है : इस भाँति अपनी नेकनीयती दिखलाती है।

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती। नाहि त मौन रहब दिनु राती ॥२॥

अर्थ : माता ! जो झूठी बातों को सच्ची बनाकर कहें वे ही तुम्हारे प्यारे हैं और मैं कड़वी हूँ। अब मैं भी ठकुरसोहाती कहा करूँगी। नहीं तो दिन रात मौन रहूँगी।

व्याख्या : मैं सच्ची कहती हूँ तो घरफोरी समझी जाती हूँ। जो झूठी झूठी बातों को सच्ची बना बनाकर कहती हैं तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाती हैं : राम बहुत अच्छे हैं। सीता बड़ी अच्छी हैं। महाराज तुम्हें ही मानते हैं। इत्यादि बातें कहें वे ही तुम्हें प्रिय हैं। मैं सच्ची बातें कहती हूँ इसलिए मैं अप्रिय हूँ।

अभी तक तो मैं ठकुरसोहाती नहीं कहती थी। पर अब कहनी पड़ी। यदि खरा कहने का स्वभाव छोड़ते न बनेगा तो दिन रात मौन रहूँगी। अब समझ लिया कि इस दरबार में सच्चे का गुजर नहीं है और ठिकाना मुझे दूसरा है नहीं। अतः सिवा इस भाँति आचरण किये अन्य उपाय नहीं है : कैकेयी के प्रिय : विप्र वधू कुल मान्य जठेरी : पर ठकुरसोहाती कहने का दोष लगाती है। जिससे उन लोगों की कही सुनी बातों से रानी का चित्त हटकर उसी की बातों पर विश्वास करें।

करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥३॥

अर्थ : कुरूप बनाकर ब्रह्मा ने मुझे परतन्त्र कर दिया। जो बोया है वही

काटना है। जो दिया है वही मिलना है। कोई भी राजा हो मेरी क्या हानि है। मैं तो चेरी छोड़कर अब क्या रानी होऊँगी।

व्याख्या : काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि का उत्तर देती है कि ब्रह्मा ने कुरूप बना दिया। तभी न गुलामी करती हूँ। भाव यह कि यदि ब्रह्मा रूपवती बनाये होते तो मैं भी रानी हुई होती। दासी क्यों होती ? करै जो कर्म पाव फल सोई। मैंने खोटे कर्म किये हैं। उन्हीं का परिणाम भोग रही हूँ। जो जैसा बोता है उसे वैसा ही फल मिलता है। जो देता है वही पाता है। न जाने कौन पाप किया जो दासी हुई। अब ठकुरसोहती झूठी बातें कहकर अपना परलोक नहीं बिगाड़ूँगी। तिस पर मेरा कोई हानि लाभ नहीं है। चाहे कोई राजा हो। इस समय भी चेरी हूँ। दूसरा राजा होगा तब भी चेरी ही रहूँगी। मेरा कोई स्वार्थ नहीं है। अब कहने का भाव यह कि इस अवस्था में मुझे तो रानी होना नहीं है : भाव यह कि हानि तो उसे है जो रानी से चेरी हुआ चाहती है। यह प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे का उत्तर है।

जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
ता तें कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि बड़ चूक हमारी॥४॥

अर्थ : मेरा स्वभाव जलाने लायक है। मुझसे तुम्हारा बुरा देखा नहीं जाता। इसी से थोड़ी सी बात चलायी थी। सो मेरी बड़ी भारी चूक को देवी ! क्षमा करो।

व्याख्या : जिसका भला चाहा उसे अपना भला पसन्द नहीं है। लोग वुद्धि से काम लेते हैं। मेरा स्वभाव पड़ गया है कि मैं ऐसे अवसर पर वुद्धि से काम नहीं ले सकती। अतः मेरा स्वभाव जलाने लायक है। मुझसे तुम्हारा अनभल देखते नहीं बनता। इसीलिए रोती हूँ, बिलखती हूँ। नहीं तो मेरा क्या विगड़ता है। जन्म से तुम्हारा भला देखती आयीं हूँ। सो स्वभाव पड़ गया : भाव यह कि तुम्हारी सखियाँ तुम्हारा अनभल देख सकती हैं। इसलिए तुम्हारी सी बातें बोलती हैं।

जो थोड़ा कहा सो कहा। अब विशेष कहने में भय है। मैं कहने कहाँ पायी। थोड़ी सी बात कहने में तो जीभ निकाली जाने लगी। जो कहा वही चूक हुई। अब क्षमा कर दो। ऐसी चूक फिर न होगी।

दो. गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि, तीय अधरबुधि रानि।
सुर माया बस बैरिनिहि, सुहृद जानि पतिआनि॥१६॥

अर्थ : गूढ़ कपट भरे हुए मीठे वचन सुनकर स्त्रियों की बुद्धि तो होठों पर ही होती है। रानी देवमाया के वश हो रही थी। अतः वैरिन को मित्र मानकर विश्वास कर गयीं।

व्याख्या : गूढ़ वाणी यथा : कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि

अब होब कि रानी। कपट युक्त वाणी यथा : कछुक बात अनुसारी। छमिअ देवि बड़ चूक हमारी। प्रिय वाणी यथा : अनभल देखि न जाइ तुम्हारा। ऐसी वाणी सुनकर रानी अपने निश्चय से हट गयी। स्त्रियों की बातें तो बुद्धिमानो की होती हैं। परन्तु धोखा जल्दी खा जाती हैं। महाराज भी कपट चतुर हैं। मीठी बातें करके तुम्हें ठगा करते हैं। इत्यादि बातें विश्वास के योग्य नहीं थीं। पर कैकेयी ने धोखा खाया। तिसपर रानी देवमाया से मोहित हो रही थी। राम विमुख करनेवाली वैरिन मन्थरा को हितेच्छु समझकर विश्वास कर गयी। मन्थरा की बुद्धि शारदा ने फेरी और कैकेयी की बुद्धि को ब्रह्मा ने फेरा। यथा : बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी। इसलिए रानी को सुरमाया बस बतला रहे हैं।

सादर पुनि पुनि पूँछति ओही। सबरीं गान मृगी जनु मोही ॥
तसि मति फिरी अहई जसि भाबी। रहसी चेरि घात जनु फाबी ॥१॥

अर्थ : आदर के साथ बार बार उससे पूछती है। मानों शबरी के गाने पर मृगी मोहित हो गयी हो। जैसा होनहार है वैसी ही बुद्धि फिरी हुई है। चेरी : मन्थरा हर्षित हुई। मानो दाँव ठीक बैठ गया।

व्याख्या : पहिले भी पूछा था परन्तु अनादर से। यथा : का अनमनि हसि कह हँसि रानी। अब आदर के साथ पूछती हैं। बार बार पूछने का भाव यह कि मन्थरा उत्तर नहीं देती है : छमिअ देबि बड़ चूक हमारी कहकर चुप हो गयी। रानी ने पूछा : कारन मोहि सुनाउ। पर इस बात का उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। अब रानी आदर के सहित बार बार पूछती हैं। वह फिर भी चुप है। कारण यह कि उसे तो घरफोड़नेवाली बात कहनी है। अति आग्रह से बिना पूछे ही कह देने से फिर बात उखड़ जायगी। इसलिए चुप है। रानी की समझ में यह नहीं आरहा है कि रामजी के अभिषेक में मेरा अनभल क्या है ? इसलिए बार बार पूछती है। मन्थरा ने कह दिया : रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। फिर भी यह बात मन में ठीक बैठती नहीं। अथवा वचन तो मृदु हैं। पर उसमें कपट छिपा हुआ है।

शबर एक जङ्गली जाति है। उस जाति की स्त्री ऐसा गाना जानती हैं कि सुनकर मृगी मोहित हो जाती है और उसके निकट चली आती है। यहाँ शबरी मन्थरा है। वह : जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भाँती। इस भावना को : कोउ नृप होउ हमहिं का हानी कहकर छिपाती है। और अनभल देखि न जाइ तुम्हारा कहकर हितैषिता प्रकट करती है। यही उसका गाना है। इस पर रानी मृगी की भाँति मोहित है। उसके कपट को नहीं समझ रही है। मृगी की भाँति उसके सन्निकट चली आरही है। उसकी माया में फँसा चाहती है।

देवता बुद्धि बिगाड़ देते हैं। सो ब्रह्मदेव बुद्धि के अधिष्ठात्री देवता हैं। भवितव्यता के अनुसार उन्होंने रानी की बुद्धि को पलट दिया है। वैरिन को सुहृद समझकर विश्वास कर रही है और उसके चुप रहने पर बार बार पूछती है।

समझती है कि मेरे भय से नहीं बोल रही है। रानी की यह दशा देखकर मन्थरा प्रसन्न हो गयी कि मेरा घात तो बैठ गया। ऐसी ही परिस्थिति को वह उत्पन्न कर देना चाहती थी।

तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाउँ॥
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली॥२॥

अर्थ : तुम तो पूछती हो। पर मुझे कहते डर लगता है। मेरा नाम तुमने घरफोरी रख छोड़ा है। विश्वास जमाकर और बहुत कुछ गढ़कर और छोलकर तब अयोध्या की साढ़ेसाती : दशा मानो बोली।

व्याख्या : भाव यह कि मैं बात वही कहूँगी। उसी का स्पष्टीकरण करूँगी। जो पहिले कहा था। और तुम उस बात को घर का फोड़ना मानती हो। इसी से मैं कहने में डरती हूँ। चरचा छेड़ते ही तो मेरा नाम घरफोरी रख दिया। मैं किस हिम्मत से मनोगत भाव को स्पष्ट करूँ।

पहिले उसने कैकेयी के मन में अपना विश्वास जमाया और तब बहुत प्रकार से गढ़ा और छोला। अपनी चित्तवृत्ति के अनुकूल रानी की मनोवृत्ति को बनाना गढ़ना है और उदार भावनाओं को उनके मन से दूर करना ही छोलना है। इन कार्यों को भली भाँति समाप्त करके तब वह मुख्य विषय पर आयी। कवि उसकी उपमा अयोध्या की साढ़ेसाती शनैश्चरी दशा से देते हैं। यह दशा दुःसह दुःखदायिनी होती है। यथा : समय साढसाती सरिस, नृपहिं प्रजहिं प्रतिकूल। रा. प्र.। पहिले सरस्वती को : हरखि हृदय कोसल पुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई कहा था। अब मन्दमति मन्थरा के बोलने की उपमा अवध की साढ़ेसाती दशा के बोलने से दे रहे हैं। मन्थरा को त्रिभङ्गी मूर्ति है और साढ़ेसाती भी तीन अढ़ैया की होती है।

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते॥३॥

अर्थ : रानी! तुमने पहिले कहा था कि सीता और राम तुम्हें प्रिय हैं और तुम राम को प्रिय हो। यह बात सच्ची है। परन्तु पहिले यह बात थी। अब वे दिन बदल गये। समय के पलटा खाने से अपने प्यारे भी शत्रु हो जाते हैं।

व्याख्या : रानी की बड़ी आस्था है कि सीता और राम मुझे प्यारे हैं ओर मैं उन्हें प्रिय हूँ। मैंने परीक्षा करके देख लिया है। दूसरे के कहने से मैं इसके विपरीत नहीं मान सकती। इसलिए मन्थरा उस बात को अङ्गीकार करती है कि यह बात ठीक है। परन्तु यह तो भूतकाल की बात है। तब तुम्हारा समय : जमाना था। अब तो तुम्हारे वे दिन नहीं रह गये। तुम्हारी तो जड़ उखड़ा चाहती है। शासनाधिकार महाराज के हाथ से निकलकर राम के हाथ में जाना चाहती है। जिस राम को प्राणों से प्रिय मान रही हो वे ही तुम्हारे शत्रु हो जायँगे। अब तुम्हारा समय

था तव तुम्हारे प्रेमपात्र बनने में ही कुशल था। अतः वे प्रिय बने हुए थे। पर अव तो उनकी आज्ञा चलेगी। महाराज की न चलेगी। तब वे तुम्हारी परवाह क्यों करने लगे। तुम्हें अपनी आज्ञा में हस्तक्षेप करते देखकर तुम्हारे शत्रु हो जावेंगे। राम पर ही यह वात नहीं है। समय के पलटने पर अपने प्रिय ही शत्रु हो जाते हैं। यही संसार का नियम है। जबतक महाराज के हाथ में शासन है तबतक तुम्हारा समय है। महाराज के हाथ से शासनाधिकार के निकलते हो तुम्हारा समय पलटा खा जायगा।

भानु कमल कुल पोषनि हारा। बिनु जर जारि करइ सोइ छारा ॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रुँधहु करि उपाय बर बारी ॥४॥

अर्थ : सूर्य कमलकुल को पोषण करनेवाला है। पर बिना जड़ का हो जाने से उसी को जलाकर छार कर देता है। तुम्हारी जड़ को तुम्हारी सौत उखाड़ना चाहती है। उसे उपाय के श्रेष्ठ बाड़ लगाकर रूँधो।

व्याख्या : जड़ बनी रहने से ही सूर्य कमलकुल के पोषक हैं। जड़ उखड़ने पर वही शोषक हो जाते हैं। इसी भाँति जबतक तुम्हारी जड़ बनी हुई है महाराज का शासन चल रहा है तबतक बराबर रामजी तुम्हारा प्रिय आचरण करते रहेंगे। जिस दिन महाराज का शासनकाल समाप्त हुआ तुम्हारी जड़ उखड़ जायगी। उसी दिन से वही रामजी शोषक हो जावेंगे। रामजी भी सूर्यकुल के हैं। क्या अपने कुल की परम्परा छोड़ देगें ?

रामजी का युवराज होना और तुम्हारा जड़ उखड़ना एक बात है। अपने बेटे के हाथ शासनाधिकार दिलाकर तुम्हारी सौत : कौसल्या तुम्हारी जड़ उखाड़ा चाहती है। अतः अपनी जड़ की रक्षा करो। उसे उपाय की बाड़ लगाकर रूँधो। ऐसा उपाय करो कि तुम्हारी जड़ तक सौत की पहुँच न हो। अब विचारणीय यह है कि कैसा उपाय किया जाय कि तुम्हारा अधिकार अक्षुण्ण बना रहे और तुम्हारी सौत का प्रयत्न निष्फल हो।

दो. तुम्हहि न सोचु सोहाग बल, निज वस जानहु राउ।
मन मलीन मुहु मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ ॥१७॥

अर्थ : तुम्हें सोहाग के बल से सोच नही है। तुम जानती हो कि राजा मेरे वश में हैं। पर राजा मुँह के मीठे और मन के मलिन हैं और आपका स्वभाव सरल है।

व्याख्या : तुम धोखे में हो। तुम्हारे मन में सोहाग का बल है। इसीसे तुम्हें चिन्ता नहीं है : सोहाग पति के प्रिय होने को कहते हैं। तुम जानतो हो कि महाराज मेरे वश में हैं। पर राजा किसी के मित्र नहीं होते : राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा। वे तुम्हारे वश में नहीं हैं। पर जिसे सोहागबल नहीं है उसे चिन्ता है। यदि कहो

कि महाराज का व्यवहार इतना मधुर है। उसपर कहती हैं कि महाराज मिठबोल्ले हैं। मीठीमीठी बातें करते हैं। पर मन उनका मलिन है। आप नहीं लख सकतीं। क्योंकि आपका स्वभाव सरल है। आपमें गम्भीरता नहीं है: पहिला काम मन्थरा ने यह किया कि राजा पर से कैकेयी की आस्था के हटाने का प्रयत्न किया। क्योंकि यदि ऐसा न हुआ तो उसके सारे प्रयत्न ही विफल हो जावेंगे। सरल स्वभाव कह कर रानी की प्रशंसा करती है जिसमें विश्वास कर जाय। नहीं तो राजा को मलिन मन नहीं मानेगी।

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥
पठये भरतु भूप ननिऔरें। राम मातु मत जानब रौरें ॥१॥

अर्थ: रामजी की माता चतुर और गम्भीर हैं। मौका पाकर अपनी बात सँवार ली। राजा ने जो भरत को ननिहाल भेज दिया है उसे आप जान रखिये कि रासजी की माता की सलाह से भेजा है।

व्याख्या: रामजी की माता चतुर और गम्भीर हैं। उनकी बातों का मर्म मिलना कठिन है। वे राम की महतारी हैं। जब उन्होंने देखा कि महाराज की इच्छा है कि राज्यभार किसी पुत्र को सौप दें तो उन्होंने अपना काम सँवार लिया। रामजो के राजतिलक की तैयारी होने लगी। तुम तो सरल हो। न तुम्हारे में चतुराई है न गम्भीरता है। तुम्हें अपने बेटे की चिन्ता नहीं है। आज भरत होते तो यह कुछ भी क्या होने पाता। इस बात को महाराज समझते हैं। इसलिए भरत को ननिहाल भेज दिया। यह रामजो की माता का मन्त्र है कि भरत को ननिहाल भेज दो। तब रामजी के तिलक में कोई कण्टक न रह जायेगा।

सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरत मातुबल पी कें ॥
सालु तुम्हार कौंसिलहि माई। कपट चतुर नहि होइ जनाई ॥२॥

अर्थ: सब सौत तो मेरी भलीभाँति सेवा करती हैं। पर भरत की माता पति के बल से अभिमान करती है। इस बात का तुम्हारी ओर से कौसल्या को बड़ा दुःख है। पर कपट में चतुर हैं। इसलिए प्रकट नहीं होने देतीं।

व्याख्या: पट्टाभिषिक्ता महिषी होने के कारण सब सौतें कौसल्याजी की सेवा टहल करती हैं। एक तुम हाजिरी नहीं बजाती। तुम्हें पति की प्यारी होने का बल है। इसलिए तुम उन्हें नहीं गिनती। इस बात का कौसल्या को साल है: जिसे साल पड़ जाती है उसे ऐसा कष्ट होता है कि श्वास नहीं लिया जाता। यदि कहो कि उनका व्यवहार तो बड़े प्रेम का है। इसपर कहती हैं कि कौसल्या कपट में चतुर हैं। तुम्हारे समान सीधी बेवकूफ नहीं हैं। अपने साल को प्रकट नहीं होने देतीं। अतः उनको तुमसे बुरा मानने के लिए यथेष्ट कारण है। उनका बेटा राजा हो तब यह साल मिटे।

राजहिं तुम्ह पर प्रेमु विसेखी । सवति सुभाउ सकइ नहि देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई । राम तिलक हित लगन धराई ॥३॥

अर्थ : राजा का तुम पर अधिक प्रेम है। सौत का स्वभाव है। इसे वे देख नहीं सकतीं। अतः प्रपञ्च रचकर राजा को अपने हाथ में कर लिया और रामजी के तिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया।

व्याख्या : राजा का प्रेम तो सब पर है। केवल तुम्हारे पर ही नहीं है। हाँ तुम्हारे ऊपर अधिक प्रेम है। वह प्रेमाधिक्य सौत से देखा नहीं जाता। यह स्त्रीजाति का स्वभाव है। कौसल्या को मैं दोष नहीं देती। कौसल्या स्त्री चरित्र में पण्डित हैं। राजा उनके हाथ में नहीं थे। पर माया रचकर राजा को हाथ में कर लिया। अतः रामजी के राजतिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया। तुम्हें पता भी नहीं।

यहु कुल उचित राम कहुँ टीका । सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिल बात समुझि डरु मोही । देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥४॥

अर्थ : इस कुल में रामजी को टीका होना उचित है। सबको अच्छा लग रहा है और मेरे लिए तो बहुत अच्छा है। अगली बात समझकर मुझे डर हो रहा है। पर दैव वह फल लौटकर उन्हीं को दे।

व्याख्या : यदि कहो कि यह सब बात सही। पर जो हो रहा है वह तो उचित ही हो रहा है। जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सोहाई। और सबको प्रिय हैं। इसपर कहती है कि मुझे तो बहुत ही अच्छा है : जिसमें यह न समझें कि रामतिलक से इसे दुःख है। तुम्हारा जिसपर प्रेम है। उसी को राजतिलक मिल रहा है। इसलिए मेरे सर्वथा अनुकूल है। पर भविष्य देखकर मुझे डर हो रहा है। टीका होने के बाद तुम्हारी क्या दशा होगी। उसे मैं सोचती हूँ। भगवान् करे कि यह दशा उसी की हो जिसने यह माया रची है : ऐसा कहकर कैकेयी को उसके ऊपर बड़ी भारी विपत्ति आने का डर दिखा रही है।

दो. रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।
कहिसि कथा सतु सवति कै, जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु ॥१८॥

अर्थ : करोड़ों कुटिलताओं को रचकर और पच्चीकारी करके कपट का ज्ञान कराया और सौ सौतों की कथा कहीं। जिस भाँति विरोध बढ़े।

व्याख्या : बहुत सी नयी झूठी झूठी कुटिलता की बातें गढ़ी। कुछ सच्ची बातों में झूठ की पच्चीकारी की। उस कपट से अपरिचित रानी को कपट कराया। यथा :

कहा उचित लै कीजिये जौ अपनो संहार।
बढ़त नहाए गंगहू ज्वर को वेग अपार ॥१॥

परमारथ मुखते कहत हिय स्वारथ भरिपूर।
ऐसे के मुह दीजिये भरिभरि मूठी धूर ।।२।।
चहत राज निजपूत हित कहत ताहि कुल धर्म।
किमि समुझै तुमसे सुहृद कुटिल सौत को मर्म ।।३।।
पति करते निज सौत को जो होवै अपकार।
तौ याते बढ़ि आन नहिं आनँद एहि संसार ।।४।।
कौशल्या सोई चहत करन आज खिलवार।
नृपके करते ही तुम्हें बोरन को मझधार ।।५।।
कपट चाल कोटिन चलत लखिन सकहु तुम एक।
निज आँखिन्ह तिनको लखो अजहूँ सकहु तुम छेक ।।६।।
मुख मीठी केतिक कहैं, करैं वह्नि सी प्रीति।
कठिन वैर हिय में धरैं, सदा सौत की रीति ।।७।।
स्वार्थमुसृज्य यो दम्भी सत्यं ब्रूते सुमन्दधीः।
स स्वार्थाद् भ्रश्यते नूनं युधिष्ठिर इवापरः ।।

जो दम्भी मतिमन्द स्वार्थ छोड़कर सच बोलता है वह निश्चय स्वार्थ से हाथ धोता है। पं. त.। तब सौ[1] सौतों की कथा ऐसी विधि से कही जिसमें विरोध बढ़े। कोटि शब्द का अर्थ प्रकार भी होता है। अतः यह अर्थ भी किया जा सकता है कि अनेक प्रकार के कुटिलपन की बातें गढ़ी। ऐसा अर्थ करने से कोटिक शब्द में अर्थवाद न मानना पड़ेगा।

भावी बस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ॥
का पूँछहु तुम्ह अबहु न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना ।।१।।

अर्थ : होनहार के वश होने से मन में विश्वास हो गया। रानी शपथ दिलाकर फिर पूछने लगी। मन्थरा ने कहा : क्या पूछती हो। तुमने अब भी नहीं समझा। अपना हित अनहित तो पशु भी पहचानते हैं।

व्याख्या : बात मन में बैठने लायक नहीं थी। महाराज दशरथ को मलिन मन और रानी कौसल्या को कपट चतुर कौन मानेगा ? पर होनहार बुरा था। रानी के मन में विश्वास हो गया। वह फिर शपथ देकर पूछने लगी कि वह आगिल काज कौन है। जिसे समझकर तुझे डर लग रहा है। मन्थरा बोली कि ऐसी बात पूछी जाती है जो समझ में न आती हो। यह बात तो अत्यन्त स्पष्ट है। अपना हित कौन है और अनहित कौन है। इतनी बात तो पशु भी प्रमाण द्वारा जान लेता

---

१. राजा चित्रकेतु को एक रानी से एक लड़का हुआ। सौ रानियों में से और किसी को नहीं हुआ। सो शेष रानियों ने सौतिया डाह के कारण उस लड़के को विष देकर मार डाला। क्योंकि समय पाकर वही राजा होता और उसी की माँ राजमाता होती। मन्थरा सौतिया डाह को पुराण से सिद्ध कर रही है।

है। हाथ में हरी घास लिये हुए पुचकारते हुए सज्जन की ओर पशु दौड़े आते हैं और दण्ड हाथ में लिये डाँटते हुए क्रोधी को देखकर भाग खड़े होते हैं। प्रमाण से ही बात जानी जाती है। यहाँ स्पष्ट बात है कि यदि उन लोगों को हृदय में कपट नहीं है और रामजी के तिलक से आपके अनिष्ट की भावना नहीं है। तो आप से अभिषेक की बात छिपायी क्यों गयी। छोटी छीटी बात महाराज आप से कह दिया करते हैं और इतनी बड़ी बात जिसमें राज्य शासन में उलट फेर हो उसे आपसे नहीं कहा।

भयेउ पाख दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें। सत्य कहें नहि दोषु हमारें ॥२॥

अर्थ : पन्द्रह दिन समाज सजते हो गया और तुमने आज समाचार मुझसे पाया। तुम्हारे राज्य में खाती हूँ और पहनती हूँ। सत्य कहने से मुझे दोष नहीं है।

व्याख्या : समाज सजने में इतनी तत्परता से काम लिया गया है कि देखने से यही मालूम होता है कि इतनी तैयारी के करने में पन्द्रह दिन लगे होंगे। अतः मन्थरा को कहने का मौका मिल गया कि पन्द्रह दिन से तैयारी हो रही है और तुम्हें पता नहीं है। महाराज ने तुमसे चरचा तक नहीं की। उचित तो यह था कि मैं तुमसे सुनती कि रामजी को तिलक होनेवाला है। सो तुम चौदह दिन की तैयारी के बाद मुझसे रामजी के तिलक का समाचार आज सुन रही हो : मन्थरा वस्तु स्थिति पर पर्दा डाल रही है। आज ही प्रस्ताव हुआ है। आज ही तैयारी हुई है। इस बात का परिज्ञान होने से महाराज दशरथ और रानी कौसल्या निर्दोष सिद्ध हो जावेंगी। इसलिए उसने पन्द्रह दिन से तैयारी होने की वात गढ़ ली।

अब कहती है कि तुमसे जो किसी ने चरचा नहीं की इसका कारण है। राज्य की गुप्त बात के प्रकाश करने में दोष है। किसी को क्या पड़ी है कि इस बात की तुम से चरचा करके महाराज तथा रानी कौसल्या का कोपभाजन बने। पर मैं तो तुम्हारे राज में खाती पहनती हूँ। मैं दूसरे को क्या जानूँ। अतः मुझे सच्ची बात कह देने में दोष नहीं है।

जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहि सजाई ॥
रामहि तिलकु कालि जौ भयेऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ ॥३॥

अर्थ : जो मैं कुछ झूठ बनाकर कहूँगी तो मुझे विधाता दण्ड देंगे। यदि कल रामजी को तिलक हुआ तो तुम्हारे लिए ब्रह्मा ने विपत्ति का बीज बो दिया।

व्याख्या : पन्द्रह दिन से समाज सजने की बात बिल्कुल झूठ है और उसी पर इसके : मन्थरा का सब मायाजाल की रचना खड़ी है। अतः उसे शपथ लेकर दृढ़ कर रही है। कहती है कि मुझे परलोक का भय है। यदि मैं आपसे कुछ झूठ बनाकर कहूँगी तो मुझे परमात्मा के यहाँ से दण्ड मिलेगा। अतः मैं सत्य कहती हूँ और लोग राजा का खाते पीते हैं वे कभी सच : सत्य न कहेंगे।

मन्थरा ने पहले से ही मन में वह विधि ठीक कर रक्खी है। जिससे रात में ही बात बिगड़ जाय। अतः कहती है कि कल जो किसी भाँति रामजी को राजतिलक हो गया तो यह समझो कि ब्रह्मा ने तुम्हारे लिए विपत्ति का बीज बो दिया। ब्रह्मा का बोया बीज कभी निष्फल नहीं जा सकता। बीज जिस समय बोया जाता है उस समय तो वह मिट्टी से ढक जाता है पर काल पाकर वह फल देता है। इसी भाँति राजतिलक के समय तुम्हें विपत्ति का पता न लगेगा। फल तो उसके बाद होगा।

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी ॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई ॥४॥

अर्थ : मैं रेखा खींचकर बलपूर्वक कहती हूँ कि सुन्दरि ! तुम दूध की मक्खी हो गयी। यदि बेटे के साथ सेवकाई करोगी तो घर में रहने पाओगी। नहीं तो दूसरा उपाय घर रहने का न रह जायगा।

व्याख्या : अपने कथन की सचाई के प्रभाव के लिए रेखा खींची जाती है। यथा : पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यहु साँची। और फल के निश्चय के लिए बल का कथन किया जाता है। यथा : चला प्रभंजन सुत बल भाखी। सो मन्थरा रेखा खींचकर और बल कथन पूर्वक कहती है कि तुम दूध की मक्खी हुआ चाहती हो। राजकाज में हस्तक्षेप करने का तुम्हारा स्वभाव है। महाराज के शासनकाल में तो तुम्हारा हस्तक्षेप चल जाता है। पर राम के राज सुखरूपी दूध में जहाँ तुमने छेड़छाड़ की तहाँ मक्खी की भाँति निकालकर बाहर फेंक दी जाओगी। तुम्हारी बात नहीं मानी जायगी। रानी होकर दासी की भाँति बेटे के सहित सेवा करनी होगी। न करोगी तो घर में रहने न पाओगी।

दो. कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहि कौसिलाँ देब।
भरतु बंदि गृह सेइहहिं, लखनु रामु के नेव[१] ॥१९॥

अर्थ : कद्रू ने विनता को दुःख दिया। तुम्हें कौसल्या देंगी। भरत वन्दीगृह में रक्खे जावेंगे और लक्ष्मण तो रामजी के हिस्से हैं।

व्याख्या : कद्रू : नाग की माता और विनता : गरुड़ की माता ये दोनों सौत थीं। विनता ने कहा कि सूर्य के घोड़े की पूँछ श्वेत होती है। कद्रू ने कहा कि बाजी लगाओ। निश्चय पूँछ काली होती है। बाजी लगी कि जो हारे वह दासी होकर रहे। कद्रू ने अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि जाकर सूर्य के घोड़े की पूँछ में लिपट जायँ। वही हुआ। पूँछ काली दिखाई पड़ी। विनता को कद्रू की दासी बनकर बहुत दिन रहना पड़ा। जब गरुड़ को देखकर सर्प भागे तब वे दासत्व से विनिर्मुक्त हुईं।

---

१. नेम का तद्भव रूप नेव है। प्राकृत के नियमानुसार 'म' का 'व' हो जाता है। नेम का अर्थ भाग : हिस्सा है। मोनुनासिको वोवा।

इतना बड़ा दु:ख विनता को कद्रू ने केवल सौत होने के कारण से दिया। तुम्हें भी कौसल्या दासी बनाकर रक्खेगी। भरत बन्दीगृह में बन्द होंगे। राजविद्रोह का सन्देह उनपर किया जायगा। लक्ष्मण तो राम के अंग : हिस्से में ही ठहरे। यही होना है। इसी बात को मैं डरती हूँ। मोनुनासिको वोवा।

कैकय सुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी ॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरीं दसन जीभ तब चाँपी ॥१॥

अर्थ : राजा केकय की बेटी कड़ुई वाणी सुनकर कुछ कह न सकी। डरकर सूख गयीं। शरीर में पसीना आगया। केले की भाँति काँपने लगी। तब कूबरी ने दाँतों तले जीभ दबायी।

व्याख्या : रानी कैकेयी राजा की बेटी है। भरतजी का कारागार में बन्द होना सुनकर सहम गयीं। हार्दिक आतङ्क का सद्यः फल होता है। भय से सूख सी गयीं। कहि न सकइ कछु से वचन की दशा कही। सहमि सुखानी से मन की दशा कही। तन पसेउ कदली जिमि काँपी से तन की दशा कही। कैकेयी को काँपते देखकर समझी कि मूर्च्छित हुआ चाहती है। तब उसने दाँत तले जीभ दबायी। इस मुद्रा से निषेध करती है कि क्या कर रही हो? इससे तो सब बात बिगड़ जायगी। मन्थरा डरी कि यदि कहीं यह मूर्च्छित हुई तो सब भेद खुल जायगा और फिर तो मैं नहीं बच सकती।

कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरेहु प्रबोधिसि रानी ॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली ॥२॥

अर्थ : भाँति भाँति की कपट कहानियाँ कहकर उसने रानी को समझाया कि धीरज धरो। भाग्य ने पलटा खाया। कुचाल अच्छा लगा। बगली को हंसिनी मानकर सराहने लगी।

व्याख्या : मन्थरा जानती है कि रानी कैकेयी कपट करने पर शीघ्र राजी न होगी। काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि कहकर पहिले ही इसने मुझ पर कुटिल कुचाली होने की आशङ्का की थी। कुटिल कुचाल को यह बुरा समझती है। पर इसे इसी रास्ते पर उतारना है। अतः समझाती है कि उपाय[1] से सब सधेगा : अभी उपाय नहीं कहा। एक एक भूमिका ठीक करके एक एक बात कहती है। कपट करने पर राजी हो तो उपाय कहें। नहीं तो मैं फाँसी पड़ जाऊँगी। जब यही जोभ खिंचवाती थी तो दूसरे कौन सी दुर्दशा करेंगे क्या ठिकाना? अतः धीरज

---

१. यथा : विपति माँझ धीरज धरै, दृढ़ ह्वै करै उपाय।
पुरुषारथ ताको निरखि, दैवहु जाय डराय ॥१॥
उलटि परै परपञ्च सब, बिगरी हू बनि जाय।
धीरज धरि उर सजग ह्वै, जौ कोउ करै उपाय ॥२॥

देती है। यहाँ पुराण का उदाहरण नहीं मिला तो कहानियाँ कहने लगी जिनमें कपट से काम सधा हो। ये कहानियाँ यदि इसके गले उतर जायँ तो पता चल जायगा कि अब यह कपट करने पर राजी हो गयी। अतः कपट की अनेकानेक कहानियाँ सुनायी।

कैकेयी भी कहानी सुनकर बकी को मराली मान गयी। ऐसी निष्कपट को कपट अच्छा लगा। भाग्य फिर गया। कपट से चिढ़नेवाली कपट पर रीझने लगी। बड़े ध्यान से कहानी सुनने लगी। जब कपट अच्छा लगने लगे तो समझना चाहिए कि भाग्य फिरा है। कूबरी अति खल थी। सो उसे क्षीर नीर की विवेक करनेवाली हंसी मान लिया। लगी कुबरी की प्रशंसा करने।

सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिन आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखहुँ राति कुसपनें। कहउँ न तोहि मोह बस अपनें॥३॥

अर्थ : मन्थरा सुन! तेरी बात सच है। मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़क रही है। प्रतिदिन रात को मैं बुरे बुरे सपने देखती हूँ और अपनी बेवकूफी से तुझे नहीं बतलाती।

व्याख्या : स्त्री का दाहिना अङ्ग फड़कना अपशकुन है। सो उसके फल को कुबरी की मन्त्रणा के अनुकूल समझने लगी। राम जानकी ने अपने सगुन का ठीक अर्थ लगाया। यह अपने अपशकुन को ठीक नहीं पढ़ सकी। कहने लगी कि मन्थरा! तेरी बात ठीक है मेरी नहीं। सचमुच राम के तिलक से मुझ पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ेगा।

होनहार खराब होने ही से मैं बुरे सपने देखती थी। तुझसे कहे होती तो तू तभी से कोई न कोई उपाय सोचती। मेरी मूर्खता कि मैंने तुझसे नहीं कहा। तू मेरी ऐसा हित चाहनेवाली बुद्धिमती है मुझे तुझसे कहना चाहिए था। सो दूसरों से कहा तुझसे नहीं। बुरे सपने का फल अनिष्ट समाचार श्रवण है। यथा : लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।

काह कहौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥४॥

दो. अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि, दैअँ दुसह दुखु दीन्ह॥२०॥

---

जरौ शील शुभ गति सुजस, जौ बिगरै निज काज।
राज सँमारेहि पै बनै, कीरति सुकृत समाज॥३॥
कियो घोर संग्राम मधु, कैटभ जीति न जाय।
रिपुवध मान्यौ धर्म हरि, शील संकोच विहाय॥४॥
अगणित लोगन की बनी, बिगरी किये उपाय।
यातें करहु उपाय तुम, सब विधि हृदय दृढाय॥५॥

अर्थ : क्या कहूँ सखी ! मेरा स्वभाव सीधा है। हित अनहित कुछ समझ में नहीं आता। अपने चलते तो आजतक मैंने किसी का बुरा नहीं किया। नहीं जानती कि किस पाप से दैव ने एक बारगी मुझे दुःसह दुःख दिया।

व्याख्या : जो जो बातें मन्थरा ने कही हैं। वे सब गले उतर गयीं। उसे अब सखी का पद मिला। उसने कहा था : राउर सरल सुभाउ। हित अनहित पंछी पसु जाना। उसे ठीक समझते हुए अपने को सूधी मान लिया। यह भी मान गयी कि मैं हित अनहित नहीं पहिचानती। चेरी के कहने से संसार दूसरा दिखाई पड़ने लगा। जो मित्र थे वे शत्रु दिखाई देने लगे और परम शत्रु चेरी हितचिन्तक मालूम होने लगी।

रानी कहती है कि मुझे शत्रु मित्र की पहिचान नहीं थी। यह बात ठीक है। पर जहाँ तक मेरा बस चला मैंने किसी का बुरा नहीं किया। और अपकार करना ही बड़ा भारी पाप है। तब किस पाप से मैं दासी हो रही हूँ और बेटा बन्दी हो रहा है। मैंने सौत भाव नहीं रक्खा। निर्दोष को दण्ड मिल रहा है। पहिले से कभी कुछ दण्ड मिला होता तो सहने की शक्ति भी होती। एक बारगी इतना बड़ा दण्ड तो सर्वथा असह्य है।

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही॥१॥

अर्थ : नैहर : मैके में जाकर बल्कि जिन्दगी बिता दूँगी। परन्तु जीते जी सौत की गुलामी न करूँगी। जिसे दैव शत्रु के वश में रखकर जिलाता है उसके जीने से मरना अच्छा।

व्याख्या : नैहर में अपना कोई हक नहीं होता। इसलिए नैहर में जीवन यापन करने को स्त्रियाँ बड़े हेय दृष्टि से देखतो हैं। रानी कहती है कि मुझे मैके जाकर जीवन यापन करना स्वीकार है। पर सौत की दासी बनकर यहाँ मैं नहीं रह सकती। मन्थरा ने समझा दिया है कि : जौ सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई। इसी पर रानी कह रही है कि मैं घर न रहूँगी। नैहर चली जाऊँगी और वहीं जीवन का शेष काल व्यतीत कर दूँगो।

सौत शत्रु होती हैं। तुम्हारा कहना ठीक है। शत्रु के वश में रहकर कौन जोना चाहेगा। पर दैव पर किसी का चारा नहीं है। यदि दैववश किसी को जीना पड़े तो उससे मरना अच्छा। परवश होकर जीना अच्छा नहीं। पदे पदे अपमान सहना पड़ता है। फिर शत्रु के वश में रहकर जीना कौन चाहेगा ?

दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरीं तिय माया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना॥२॥

अर्थ : बहुत प्रकार से रानी दीन वचन कहने लगी। सुनकर कुबरी ने

त्रियाचरित्र फैलाया। बोली : जी को छोटा करके ऐसा क्या कह रही हो। तुम्हें सुख सोहाग नित्य दूना है।

व्याख्या : रानी होकर दीन वचन कह रही है। पति का भरोसा टूट गया। पुत्र का कुशल नहीं दिखायी पड़ रहा है। रानी अपार चिन्ता में पड़ी है कि क्या करूँ। कहाँ जाऊँ। मेरा कोई नहीं है। सब लोग कौशल्या की ओर मिले हुए हैं। एक मन्थरा ही मेरी शुभचिन्तक है। उस बिचारी का किया क्या होगा? मन्थरा ने समझ लिया कि अब यह दीन हो गयी। अब यह सब कुछ करेगी। पहिले उसने रानी को अथाह में डाल दिया। अब सहारा देने के लिए त्रियाचरित्र फैलाया। कहने लगी कि ऐसी बातें न करो। अपने जी को छोटा क्यों करती हो? तुम्हारा सुख और सोहाग नित्य दूना होता जायगा। अभी तो तुम्हारे पति राजा हैं। जब पुत्र युवराज होगा तब सुख सोहाग दूना हो जायगा।

अथाह में पड़ा हुआ जीव तिनके का सहारा पकड़ता है और उसे छोड़ना नहीं चाहता। इसलिए अब वह रानी को सहारा पकड़ा रही है। नैहर जनम भरब बरु जाई का उत्तर देती है : अस कस कहहु मानि मन ऊना। और जिअत न करबि सवति सेवकाई का उत्तर : सुखु सोहाग तुम कहुँ दिन दूना कहकर देती है।

जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि येहु फलु परिपाका॥
जबतें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि॥३॥

अर्थ : जिसने आपका बुरा ताका है। उसी को यह पका हुआ फल मिलेगा। जब से मैंने हे स्वामिनि! यह कुबुद्धि सुनी तब से मुझे न दिन को भूख लगती है और न रात को नींद लगती है।

व्याख्या : अब : अरि बस दैउ जिआवहिं जाही का उत्तर देती है कि तुम्हारे अनभल ताकनेवाले की ही : उसके कर्मफल रूप में : यह दशा होगी। उसकी पेंच उलटी पड़ जायगी। मैं उस-उद्योग में लगी हूँ। मुझे बड़ी चिन्ता है। जब से मैंने ये सब बातें सुनी तब से मारे चिन्ता के न दिन को भूख लगती है और न रात को नींद लगती है। ऐसा कहकर फिर उसी भावना को दृढ़ कर रही है : पन्द्रह दिन तो समाज सजते हुआ। अयोध्या भर में यह बात प्रख्यात है। कई दिन तो मुझे सुने हुआ। तुमसे बात छिपायी गयी। पर मेरे कान में भनक पड़ गयी तभी से मैं सचेष्ट हूँ। लाचार होकर आज कहना ही पड़ा।

पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यहु साँची॥
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ। हइ तुम्हरीं सेवा बस राऊ॥४॥

अर्थ : मैंने गुनी सज्ञानियों से पूछा तो उन्होंने रेखा खींच दी कि भरत राजा होंगे। यह बात निश्चय है। हे भामिनि! यदि तुम करो तो मैं उपाय बतलाऊँ। राजा तुम्हारी सेवा के वश में हैं।

व्याख्या : मैंने सुनकर यद्यपि उसी समय तुमसे नहीं कहा। पर हाथ पर हाथ रखकर बैठी नहीं रही। गुनी सज्ञानियों के यहाँ गयी। उन्होंने विचार किया। तुम्हारा होनहार भला है। उन्होंने रेखा खींचकर कहा कि भरत राजा होंगे। यह बात सत्य है। अब उद्योग मात्र की देरी है। भरत के युवराज होने की ओर कैकेयी का ध्यान भी नहीं था। जब मन्थरा ने देख लिया कि अब कैकेयी को भरत का युवराज होना इष्ट है। तब कहती है : तुम मेरी बात सुन लोगी पर करोगी नहीं। मुझसे व्यर्थ क्यों पूछती हो? यदि मैंने कह भी दिया और तुमने न किया तो मेरी कुशल नहीं है। अतः वचन दो तो कहूँ। कारण यह कि मेरा वचन तुम्हारे सेवाधर्म के प्रतिकूल पड़ेगा। तुम सेवाधर्म में स्थित हो। पर राजा तुम्हारी सेवा के वश में हैं। तुम्हारे ही किये सब होगा।

दो. परउँ कूप तुअ बचन पर, सकौं पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़, कस न करब हित लागि ॥२१॥

अर्थ : मैं तेरे कहने पर कूएँ में कूद सकती हूँ। पति पुत्र का त्याग कर सकती हूँ। तू मेरा बड़ा भारी दुःख देखकर कह रही है। मैं कल्याण के लिए क्यों न करूँगी?

व्याख्या : भाव यह कि तुम्हारे कहने पर मैं लोक परलोक किसी का विचार न करूँगी। कूप में कूदने से परलोक का नाश कहा। पूत पति त्याग से इस लोक का नाश कहा। जो विपत्ति मेरे पर आया चाहती है उसके सामने लोक परलोक कुछ नहीं है। प्राण भी कुछ नहीं है। तू मेरी परमहित है। तेरा कहा अवश्य करूँगी : रानी कैकेयी ने मन्थरा को वचन दे दिया। महाराज दशरथ की योग्या है। कभी वचन न छोड़ेगी।

कुबरीं करि कबुली कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसे ॥१॥

अर्थ : कुब्री ने कैकेयी से कबूल कराके कपटरूपी छूरी को हृदयरूपी पत्थर पर घिसकर शान दिया। रानी अपने पास आये हुए दुःख को इस भाँति नहीं लख रही है। जैसे बलिदान का पशु हरी घास चरता है।

व्याख्या : कुबरी को बड़ा भारी डर था कि मेरे कहने पर यदि यह नट गयी तो मेरी दुर्दशा का अन्त नहीं है। अतः उसने पहिले ही कैकेयी से कबूल करा लिया कि तेरे कहने पर कूएँ में कूद पड़ूँगी। पति पुत्र को भी छोड़ दूँगी। तब कपट की छूरी को अपने पत्थर जैसे कलेजे पर रगड़कर शान दिया। अर्थात् उसकी धार तीखी बनायी। जिसमें खूब काट कर सके। क्योंकि अब वार किया ही चाहती है। यदि पत्थर सा कलेजा न हो तो कपट की छूरी ठीक काट नहीं करती : अपने ऊपर विश्वास करनेवाले पर नहीं चल सकती।

उसने रानी को बलिदान का पशु बनाया। बलिदान के पशु के आगे हरी हरी घास रख देते हैं। वह प्रसन्न होकर चरता है। उसे पता नहीं कि उस पर प्राणघातक चोट होनेवाली है। वह घास रखनेवाले को हितैषी समझता है। उसके चोट करने की तैयारी : छूरी के पत्थर पर रगड़कर शान देने को नहीं देखता। इसी भाँति रानी कुबरी की दी हुई आशा पर भूली हुई है कि मेरा सुख सोहाग अब दूना हुआ चाहता है। यह नहीं समझती है कि कुबरी अपने स्वार्थ के लिए उसका सर्वनाश किया चाहती है। रानी के न लखने के लिए उसने आड़ खड़ा कर दिया है : कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी। रानी समझती है कि वस्तुतः इसे लाभ हानि नहीं है। यह मेरे हित के लिए सब कर रही है। उसके सूक्ष्म स्वार्थ पर रानी की दृष्टि नहीं जा रही है।

सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी ।।
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं ।।२।।

अर्थ : बात तो मुलायम कहती है पर परिणाम उसका कठोर है। जैसे शहद में विष घोलकर दे रही हो। चेरी बोली कि तुम्हें याद हो या न हो तुमने मुझसे एक कथा कही थी।

व्याख्या : अब दूसरी उपमा देते हैं। पहिली से काम नहीं चलता। छूरी के आघात से तो उसी समय घोर वेदना होती है। परन्तु कुबरी का आघात तो वैसा नहीं है। वह तो अच्छा मालूम होता है। अतः कहते हैं वह शहद में विष मिलाकर दे रही है। जो तत्काल तो मीठा मालूम होता है पर परिणाम में प्राण घातक है। देखने में तो यह मालूम हो रहा है कि इससे सुख सोहाग दूना होगा। पर वस्तुतः इसी से दोनों जायगा। पति और पुत्र दोनों का त्याग होगा और आप भी कुएँ में गिरेगी। यथा : अवनि जमहि जाँचति कैकेई। महि न बीच बिधि मीच न देई। कपट की छूरी खून नहीं बहाती। वह मधुमिश्रित माहुर की भाँति परिणाम में प्राणघातक होती है।

चेरी कहती है कि तुम्हारा भूलना स्वभाव है। तुम्हें भले ही स्मरण न हो। पर मुझे याद है। तुमने मुझे एक बात सुनायी थी। दण्डकारण्य में वैजयन्त नगर के राजा तिमिध्वज जहाँ रहते थे वहाँ शम्बरासुर और इन्द्र का युद्ध हुआ था। उस युद्ध में महाराज के साथ तुम भी गयी थी। वहाँ तुमने महाराज के मूर्च्छित होने पर रथ की रक्षा करके महाराज के प्राण बचाये थे।

दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती ।।
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू ।।३।।

अर्थ : तुम्हारे दो वरदान राजा के पास धरोहर रखे हुए हैं। आज उन्हीं को माँगकर छाती ठण्ढी करो। बेटे को राज्य और राम को वनवास दो और सौत के सब आनन्द को तुम ले लो।

व्याख्या : उस समय रथ की रक्षा और अपनी रक्षा के पलटे में राजा ने तुमसे दो वरदान माँगने के लिए कहा। पर तुमने उस समय नहीं माँगा। उसे थाती के रूप में राजा के पास ही छोड़ दिया। कहा कि जिस समय मुझे आवश्यकता होगी माँग लूँगी। वह थाती तुम्हारी राजा के पास रक्खी हुई है। तुम्हें कुछ करना नहीं है। अपनी थाती माँगनी है। आज उसी को माँगकर अपनी छाती ठण्ढी करो। एक वरदान में बेटे के लिए राज्य माँगो। दूसरे में राम के लिए वनवास माँगो। बस जिस आनन्द को तुम्हारी सौत चाहती है वह तुम्हारा हो जाय और तुम्हारी सौत सदा के लिए निरानन्द हो जाय। राम को वन्दी करने में सम्पूर्ण प्रजा बिगड़ जायगी और उनके यहाँ रहने से भरत का राज्य सुस्थिर न होगा। राम धर्मातमा होने पर भी राज्य के लिए लड़ सकते हैं। यथा—क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम्। वधश्च धर्मयुद्धेन स्वराज्यपरिपन्थिनाम्। वि. पु.। क्षत्रियों का धर्म है कि प्रजा का पालन करें और धर्मयुद्ध से अपना राज्य छीनना चाहनेवालों का वध करें। इसलिए उनका वनवास माँगो। जो करना हो आज कर लो। कल कुछ न कर सकोगी।

भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहि बचन न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें॥४॥

अर्थ : राजा जब राम की शपथ कर लें तब वरदान माँगना। जिससे वचन टल न सके। आज की रात बीत जाने से काम बिगड़ जायगा। मेरी बातों को हृदय से प्रिय समझना।

व्याख्या : पहिले यह उपाय होना चाहिए कि देने का निश्चय कराने के लिए राजा रामजी की शपथ लें। तब माँगना। फिर राजा बात से न हटेंगे और न मन्त्री हटा सकेंगे। नहीं तो तुम्हारे माँगने और राजा के देने को गिनती गुरुजी और मन्त्री नर्म में कर लेंगे। आज रात को काम बना तो बना। सबेरा होते ही फिर कौन किसकी सुनता है। मेरी बातों को भीतर से प्रिय मानना। बड़े बड़े प्रलोभन और बड़ा बड़ा भय दिखाया जावेगा। पर मेरी बातों को ही प्रिय समझना। उन प्रलोभनों में न आना : होइ अकाज कौन बिधि राती की जो उसे चिन्ता थी सो विधि उसने बैठा दी।

दो. बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सबु, सहसा जनि पतिआहु॥२२॥

अर्थ : उस पापिनी ने बड़ा कुघात : विश्वासघात करके कहा कि अब कोपभवन में चली जाओ। सब काम को सावधान होकर सँवारना। एकाएक किसी बात पर विश्वास न करना।

व्याख्या : जो कपट की छूरी उसने पत्थर से हृदय पर तीखी की थी उससे वार कर दिया। कपट की छूरी का वार है इसलिए मधुमाहुर सा मीठा लगा।

जिस ताक में वह थी सो पूरा हुआ। अब रानी को कोपगृह[१] जाने को सलाह दे रही है। जिसमें राजा को शीघ्र ही पता लग जाय और तुरन्त मनाने के लिए आवें और बात फूटे नहीं। नहीं तो राजा किस महल में जायँगे इसका क्या ठीक है। फिर सावधान किये देती है कि बड़ी होशियारी से काम लेना। विश्वास में ही पड़कर बड़े बड़े मारे गये हैं। महाराज का भी विश्वास न करना। डरती है कि राजा का इसका जहाँ सामना पड़ा कि इसने विश्वास किया। अतः न विश्वास करने के लिए सहेजती है। रानी का इसके ऊपर इतना बड़ा विश्वास है और यह उन्हीं के साथ घात करती है। अतः विश्वासघातिनी है। इसलिए कवि ने पापिनी कहा।

कुबरिहि रानि प्रान प्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ॥
तोहि सम हितू न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा ॥१॥

अर्थ : कुब्री को रानी ने प्राणप्रिय जानकर बार बार उसकी बुद्धि की बड़ी प्रशंसा की। कहा : कि संसार में तुझसा मेरा कोई हित नहीं है। बहे जाते हुए के लिए तू आधार हो गयी।

व्याख्या : अब कुब्री रानी को प्राणप्रिय हो गयी। रानी उसकी बुद्धि पर लट्टू है। बार बार उसकी अतीव बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करती है। सब लोग नाहक इसे मतिमन्द कहते हैं। ऐसी पैनी बुद्धि तो किसी की नहीं है। उससे कहती हैं कि पति पूत कोई तेरे सा मेरा हित नहीं है। मैं तो प्रवाह में बही जाती थी। जैसा लोग कहते और समझाते थे वैसा ही मैं भी समझती थी। राम का तिलक सुनकर मैं तो तुझे मनभावती वस्तु देने को प्रस्तुत थी। पर तूने उसकी लालच नहीं की। मुझ बहती हुई को तू ही आधार मिली। अब तुझे पाकर प्रवाह का विरोध करके बच सकती हूँ।

जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चषपूतरि आली ॥
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन[१] गवनी कैकेई ॥२॥

अर्थ : यदि ब्रह्मा मेरा मनोरथ पूरा कर दें तो कल तुझे आँख की पुतली बनाऊँगी। बहुत प्रकार से चेरी को आदर देकर कैकेयी कोपभवन में गयी।

व्याख्या : जो कुछ होना है आज रात को होगा। यदि मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ महाराज ने धरोहर की भाँति रक्खे हुए वरदानों को मुझे दिया। भरत युवराज हुए

———

१. राजाओं के यहाँ कोपगृह होता था। क्रोध आने पर उस गृह में चले जाने का विधान था। जिसके हाथों में बड़ा अधिकार होता है उसके क्रुद्ध होने से बड़े अनर्थ की सम्भावना होती है। उसके एकान्त में रहने में ही कुशल है। वहाँ उसे अपने चित्त के समाधान करने का अवसर मिलता है और वे ही लोग उसके पास जाने का साहस करते हैं जो उस क्रोध का परिमार्जन कर सकें।

और राम वन गये तो तुझे आँख की पुतली बनाऊँगी। तेरे ही द्वारा देखूँगी। वस्तुतस्तु राज की बागडोर तेरे हाथ में रहेगी : जैसा मन्थरा ने सोचा था वैसा ही हुआ। अब मधु मिलने की आशा दृढ़ हुई। देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भाँती। चेरी को बहुत प्रकार से आदर दिया। अर्थात् आज से तू मेरी सखी है। मन्त्री है। ऐसा कहकर जिन वस्त्र आभरण के धारण करने का दासियों को अधिकार नहीं है। जिन वस्त्र भूषणों को सरदार या मन्त्री की स्त्रियाँ धारण कर सकती हैं। वे वस्त्र आभूषण मन्थरा को देकर उसे मन्त्री पद देकर तब कैकेयी कोपभवन गयी।

बिपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुँइ भइ कुमति कैकई केरी॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥३॥

अर्थ : विपत्ति बीज हुई। चेरी वर्षाऋतु हुई। कैकेयी की कुमति पृथ्वी हुई। कपट का जल पाकर अँखुआ निकला। दोनों वर पत्ते हुए और परिणाम में दुःख यही फल हुआ।

व्याख्या : तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। वही भावी विपत्ति बीज हुई। जिस भाँति बीज पृथ्वी के भीतर पड़ा रहता है। उसे कोई नहीं जानता। जब वर्षाऋतु में पानी बरसता है तब बीजों के अँखुये निकलते हैं। उसी भाँति इस भावी विपत्ति का किसी को पता नहीं था। यथा : मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तँह देहिं कैकइहिं गारी। जब चेरी ने वर्षाऋतु होकर कपट जल बरसाया तो वह बीज कैकयी की कुमति रूपी भूमि में अङ्कुरित हुआ। अङ्कुरित होने पर दो पत्ते पहिले व्यक्त होते हैं। यहाँ दोनों वरदान ही दोनों पत्ते हैं। यही विपत्ति का वृक्ष दुःख रूपी फल का देनेवाला है।

कोप समाजु साजि सब सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यहु कुचालि कछु जान न कोई॥४॥

अर्थ : कोप का सब समाज सजकर सोई। राज्य करते हुए अपनी कुबुद्धि से मारी पड़ी। राजमहल और नगर में धूम मची हुई है। इस कुचाल का किसी को पता नहीं।

व्याख्या : जिस भाँति हर्ष का साज समाज होता है। उसी भाँति कोप का भी साज समाज होता है। राजाओं में दोनों के व्यक्त करने का अधिक साधन होता है। उनके व्यक्त करने में ही बहुत कुछ वेग कम हो जाता है। कोप और हर्ष दोनों मनोविकार हैं। अतः मन के स्वास्थ्यलाभ के लिए उनके पृथक् पृथक् साज-समाज होने ही चाहिए। कोप के साज समाज का वर्णन महाराज के आने पर कवि करेंगे। इसलिए यहाँ नहीं करते। इस समय कोप का साज समाज करके कोपभवन में जाने का स्पष्ट अर्थ यह है कि मैं इस अभिषेकोत्सव से अप्रसन्न हूँ और इससे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती। कवि कहते हैं कि कुबुद्धि का प्रभाव देखो। कैकेयी

राज्य करती थी। दुःख का कोई कारण न था। सो उसकी कुबुद्धि हो उसे कष्ट में डाल रही है।

राजकुल का तद्भवरूप राउर है। अन्तःपुर के लिए इसका प्रयोग होता है। भाव यह कि अन्तःपुर में और उसके बाहर सम्पूर्ण नगर में इस समय राजतिलक की धूम मची हुई है। इस समय इतना बड़ा कुचक्र चल रहा है : इस बात का किसी को पता नहीं है : कैकेयी महारानी का कोपभवन में प्रवेश साधारण बात नहीं थी। इस समय कोपभवन में प्रवेश करना इस बात की घोषणा करना है कि मैं इस राजतिलक से अत्यन्त रुष्ट हूँ।

दो. प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहिं सुमंगलचार।
एक प्रविसहिं एक निर्गमहिं, भीर भूप दरबार ॥२३॥

अर्थ : आनन्द में विभोर होकर नगर के नर नारी सुन्दर मङ्गलाचार सज रहे हैं और राजद्वार पर बड़ी भीड़भाड़ है। कोई बाहर निकल रहा है और कोई भीतर जा रहा है।

व्याख्या : राम राज अभिषेकु सुनि हिय हरषे नर नारि। लगे सुमंगल सजन सब विधि अनुकूल बिचारि। इस दोहा से जिस प्रकरण का उपक्रम किया था उसी का उपसंहार दिखला रहे हैं। यहाँ यह भी दिखला दिया कि विधि की अनुकूलता नहीं है। विपत्ति के बीज में अङ्कुर निकल पड़ा। दरबार शब्द का प्रयोग ग्रन्थकार ने द्वार के अर्थ में किया है। यथा : गयउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपद कंज। सिंघ ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुंज। तुरित निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहिं जनावा। सो राजद्वार पर भीड़ है। कैकेयी के कुचाल का पता नगरवासियों को तो है ही नहीं। स्वयं महाराज भी कुछ नहीं जानते।

बाल सखा सुनि हिय हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी। पूँछहिं कुसल खेम मृदु बानी॥१॥

अर्थ : बचपन के साथी यह समाचार पाकर हृदय में हर्षित होते हैं। दस पाँच मिलकर रामजी के यहाँ जाते हैं। प्रेम को पहिचान करके प्रभु आदर करते हैं और मृदुवानी से उनका कुशलक्षेम पूछते हैं।

व्याख्या : बचपन की मैत्री बड़ी दृढ़ होती है। भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा। वही बालसमाज अब बड़ा हुआ है। मृगया आदि खेल के समय अब भी उनकी बराबर बुलाहट होती है। यथा : बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई। वे सब भी आपस में सखा हैं। अतः समाचार पाकर बड़े प्रसन्न होते हैं। हमारा सखा राजा होगा। सो दस पाँच इकट्ठे होकर बधाई देने के लिए रामजी के पास जाते हैं। सखा का सम्बन्ध तो था ही अब राजा प्रजा का सम्बन्ध भी हुआ चाहता है।

प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की। इसलिए कहते हैं कि प्रीति पहिचान कर प्रभु आदर दे रहे हैं। अर्थात् जिसकी जितनी प्रीति है उतना ही उसको आदर दिया जा रहा है। सखा की भाँति ही आदर है। प्रभुता पर कुछ ध्यान नहीं है। वक्ता, वाणी और वाच्य तीनों ही अच्छे हैं। वक्ता स्वयं प्रभु, वाणी मृदु और वाच्य कुशलक्षेम। खेल का समय बीते बहुत दिन हुए। अब भेंट कुछ दिनों पर होती है। इसलिए कुशलक्षेम पूछा।

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा॥२॥

अर्थ : प्रिय की आज्ञा पाकर घर लौटते हैं। आपस में बड़ाई करते जाते हैं कि रघुवीर के समान शील और स्नेह का निबाहनेवाला संसार में कौन है?

व्याख्या : बहुत देर तक नहीं ठहरते। क्योंकि इन्हें बहुतों से मिलना है। कार्यभार अधिक है। फिर भी आज्ञा माँगकर और मिलने पर लौटते हैं। रामजी प्रिय हैं। उनके आज्ञा देने में प्रेम झलकता है। सम्मान की प्राप्ति से प्रसन्न हैं। रास्ते में प्रशंसा करते हुए लौटते हैं। यही सच्ची प्रशंसा है। सखा हैं : मुख पर प्रशंसा नहीं करते। शील के निर्वाह का पता सम्मान से लगा और स्नेह का कुशलक्षेम पूछने से। राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा। परिस्थिति के परिवर्तन में शील स्नेह का निर्वाह कठिन है। राजा द्रुपद ने अपने बालसखा द्रोणाचार्य का अनादर किया। अतः कहते हैं : शील स्नेह के निर्वाह करनेवाले रघुवीर ही हैं।

जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यहु ओर निबाहू॥३॥

अर्थ : कर्म के वश जिस जिस योनि में हम भ्रमते फिरें वहाँ वहाँ ईश्वर हमें यह दें कि हम सेवक हों और सीतानाथ स्वामी हों। इस ओर नाता का निर्वाह हो।

व्याख्या : रामजी के सखा हैं। बड़े उच्चकोटि के उपासक हैं। मोक्ष नहीं चाहते। अशुभ कर्म के फल से छुटकारा नहीं चाहते। वालि की भाँति इतना ही चाहते हैं : जेहि जोनि जन्मौ कर्मबस, तहँ राम पद अनुरागऊँ। सेवक स्वामी के नाता का निर्वाह होता चला जाय। प्रत्येक जन्म में सखा हों। इस नाते पर आग्रह नहीं है। आग्रह सेवकसेव्यभाव के बने रहने पर है।

अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदय अति दाहू॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई॥४॥

अर्थ : नगर में सभी को ऐसा ही अभिलाष है। पर राजा केकय की बेटी के हृदय में बड़ी भारी जलन है। बुरी संगत पाकर कौन नहीं बिगड़ता। नीच की राय होने से चतुराई नहीं रह जाती।

व्याख्या : सम्पूर्ण अयोध्यावासियों को श्रीरामजी के प्रति ऐसा अनुराग है कि भावी जन्म में भी सेवकसेव्यभाव बने रहने की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। परन्तु कैकय देश में उत्पन्न यहाँ दो हैं। एक कैकय की चेरी और दूसरी कैकय की बेटी। सो चेरी का दाह कह आये हैं। यथा : राम तिलकु सुनि भा उर दाहू। अब कैकय की बेटी के हृदय का अति दाह कहते हैं। इन दोनों व्यक्तियों की भावना अयोध्यावासियों से मेल नहीं खाती। अतः कवि इनका परिचय कैकय देश से सम्बन्ध दिखलाकर देते हैं।

जिसके अभिषेक से सम्पूर्ण राष्ट्र को आनन्द हो उसके राजतिलक से दाह होना तो अत्यन्त पतन का चिह्न है। फिर जिसका जन्म राजघर में हो और व्याह राजघर में हुआ हो उसका ऐसा सङ्कीर्ण हृदय कैसे हुआ ? इस पर कवि कहते हैं कि कुसङ्गति से बचना चाहिए। कुसङ्गति के कारण कैकेयी का ऐसा पतन हुआ। वह कपट पेटारी की संगति में पड़ गयी। अतः उसकी उदार बुद्धि का नाश हुआ। या लोकद्वयसाधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी : जिससे दोनों लोक सुधरे वही चतुरता चतुराई है। नीच का साथ हो जाने से निश्चय चतुराई का नाश होता है। परलोक से ध्यान हटे बिना नहीं रहता।

## १० नृपवचन राजरसभङ्ग

दो. साँझ समय सानँद नृपु, गयेउ कैकई गेह।
गवनु निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह ॥२४॥

अर्थ : सन्ध्या के समय आनन्द से राजा कैकेयी के महल में गये। मानो स्नेह शरीर धारण करके निष्ठुरता के पास गया।

व्याख्या : महाराज को रानी कैकेयी अत्यन्त प्रिय है। अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं तो उस आनन्द की अभिवृद्धि के लिए कैकेयी के महल में जाते हैं। आज महाराज बड़े आनन्दित हैं। स्वयं शुभ समाचार सुनाने के लिए कैकेयी के महल में जा रहे हैं। इस आशा से कि इसको भरत से अधिक रामजी प्रिय हैं। वह अत्यन्त ही प्रसन्न होगी। पर बात उल्टी पड़ी। जिसे स्नेहमय समझते थे वह शरीरधारी निष्ठुरता मालूम पड़ी। किसी प्रकार से द्रवीभूत होनेवाली नहीं।

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड परइ न पाऊ ॥
सुरपति बसइ बाहुँबल जाकें। नरपति सकल रहहिं रुख ताकें ॥१॥

अर्थ : कोपभवन सुनकर राजा सङ्कुचित हो गये। डर के कारण उनका पैर आगे की ओर नहीं पड़ता है। इन्द्र जिसके बाहुबल से बसते हैं और सब राजा लोग रुख देखते रहते हैं।

व्याख्या : महाराज के आने पर रानी स्वागत के लिए आगे आती थीं। सो न आयीं। महाराज ने जब पूछा कि तुम्हारी स्वामिनी कहाँ हैं ? दासियों ने

कहा कोपभवन में हैं। सुनते ही महाराज सङ्कुचित हो गये कि इस समय कोपभवन जाने का अर्थ बड़ा बेढङ्गा लगेगा। लोग समझेंगे कि राजा के घर में फूट है। कैकेयी रामजी का अभिषेक नहीं चाहती। स्त्रीजित् की दशा कहते हैं कि महाराज कोपभवन में मनाने जाना चाहते हैं। पर डर से आगे पैर नहीं उठ रहा है। संसार में महाराज के बल और शौर्य की प्रशंसा है। इन्द्र के ऊपर आपत्ति आने पर महाराज दशरथ सहाय होते हैं। इसलिए कहते हैं कि देवताओं के राजा उनके भुजबल के आश्रित होकर बसते हैं और मनुष्यों के राजा तो रुख देखा करते हैं कि आज्ञा होने के पहिले ही महाराज के चाहे हुए कार्य का सम्पादन कर दें। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे।

सो सुनि तिय रिस गयेउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे॥२॥

अर्थ : वह स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये। देखो काम के प्रताप की महिमा। शूल, वज्र और खड्ग के जो सहनेवाले हैं उन्हें कामदेव ने फूल के बाणों से मारा।

व्याख्या : ऐसे शूरवीर स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये। इसमें स्त्री की कोई करामात नहीं है। यह तो काम के प्रताप की महिमा है। काम को स्त्री का बल रहता है। यथा : काम के केवल नारि। सो स्त्री का सामना भी न पड़ा। स्त्री के क्रोध का समाचार सुनकर सूख गये। प्रतापी स्वयं सब कार्य अपने हाथ से सम्पादन नहीं करता। उसके नाम से कार्य होता है। यहाँ न स्त्री को उपस्थिति है न काम की उपस्थिति है। केवल स्त्री के क्रोध के नाम से इतने बड़े वीर सूखे जा रहे हैं। यह काम के प्रताप की महिमा है।

शूल छेदन करता है। असि भेदन करता है। वज्र चूर चूर कर देता है या झुलस देता है। सो इन अस्त्रों को महाराज दशरथ ढाल पर नहीं रोकते थे। छाती पर लेते थे। वे ही आज कामदेव के फूल का बाण सहने में असमर्थ हो रहे हैं। अथवा घोर संग्राम में अनेक शस्त्रों के प्रहार से तो महाराज बचे पर काम के सुमन शर से नहीं बचेंगे। इसलिए सुमन सर मारे कहा।

सभय नरेसु प्रिया पहिं गयेऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयऊ॥
भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिये डारि तन भूषन नाना॥३॥

अर्थ : डरते हुए राजा प्रिया के पास गये। उसकी दशा देखकर दारुण दुःख हुआ। जमीन पर सोयी हुई हैं। मोटा कपड़ा पहन रक्खा है और शरीर के नाना प्रकार के गहनों को फेंक दिया है।

व्याख्या : यद्यपि नरेश हैं और प्रिया के पास जा रहे हैं। फिर भी डर रहे हैं। पहिले कह आये हैं कि डर से आगे पैर नहीं पड़ता। परन्तु बिना मनाये भी तो काम नहीं चलता। इस समय साहस किसका है कि महारानी तक जाय। स्वयं महाराज भयभीत हो रहे हैं। फिर भी डरते डरते गये। प्रिया की दशा देखकर तो

दारुण दुःख हुआ। भाव यह कि कोपभवन सुनने से ही दुःख हुआ था। अब जो कोप के साज में जब प्रिया को देखा तो महाराज को असह्य दुःख हुआ।

अब कोप का समाज साज कहते हैं कि रानी पृथ्वी पर पड़ी हैं। मोटे पुराने कपड़े पहने हुए हैं। शरीर पर के आभूषणों को उतारकर फेंक दिया है। भाव यह कि मैं अनाथा हूँ। दासी हूँ। मुझे अब सुख के साज से क्या मतलब ? जो तुम काल पाकर हमें बनाना चाहते हो वह मुझे आज ही स्वीकार है।

कुमतिहि कसि कुवेषता फाबी। अनअहिवातु सूच जनु भाबी ॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ॥४॥

अर्थ : इस कुबुद्धि को कुवेष धारण करना कैसे फब रहा है। मानो भावी विधवापन को सूचित कर रही है। निकट जाकर राजा कोमल बात बोले कि हे प्राणप्रिये ! तुम क्यों रूठ गयी हो ?

व्याख्या : कवि कहते हैं कि भवितव्य के अनुसार रुचि हो जाती है। कुबुद्धि कैकेयी को आज यह कुरूपता अच्छी लग रही है। सब सुख साज समाज सुलभ है। उसे छोड़कर इसने विधवा का सा स्वरूप बना रक्खा है। मानो भवितव्य वैधव्य की सूचना दे रहा है।

राजा निकट चले गये। प्रसन्न करने के लिए मृदुवाणी से प्रिये ! कहकर सम्बोधन किया और रूठने का कारण पूछा। भाव यह कि मुझे नहीं मालूम कि तू किसलिए रूठी हुई है। यदि मालूम होता तो तुम्हारा अभीष्ट पूरा करके तब आते। इसलिए अपने रूठने का कारण बतलाओ। मेरे जान में कोई ऐसी बात नहीं हुई है जो तुम्हें अप्रिय हो। यदि अनजान में कुछ हुआ हो तो मालूम होने पर तुरन्त दुरुस्त किया जा सकता है। किसी को भी तुम्हारे रूठने का कारण नहीं मालूम। अतः तुम्हारे बतलाने से ही काम चल सकता है।

छं. [1]केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि विषम भाँति निहारई ॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवतव्यता बस काम कौतुक लेखई ॥

अर्थ : रानी किसलिए रूठी हो ? हाथ छूने से पति को रोक रही है। मानों क्रोध से भरी सर्प की स्त्री भयानक रीति से देख रही है। दोनों वासनाएँ दो जीभ हैं और वर दाँत हैं : दंशन के लिए मर्म स्थान देख रही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि राजा होनहार के वश इसे काम कौतुक मान रहे हैं।

महाराज कह रहे हैं कि रानी तुम्हारे रूठने का कारण क्या है ? उत्तर न पाकर पाणिस्पर्श करना चाहते हैं। परन्तु वह हाथ छूने नहीं देती और क्रोधभरी

---

१. इस काण्ड के सभी छन्द हरिगीतिका हैं।

क्रूर दृष्टि से राजा की ओर ऐसी देख रही है। मानों वह उनकी स्त्री ही नहीं है। साँप की स्त्री है। भाव यह कि मुझे न छूओ। तुम्हारा मन मलिन है। झूठा प्रेम दिखाकर ठगने आये हो। मुझ सरलहृदया के साथ तुम्हारा ऐसा कपट व्यवहार कि तुम मुझे कौसिल्या की दासी और मेरे बेटे को राम का बन्दी बनाना चाहते हो : मन्थरा की दी हुई दृष्टि से देख रही है। यथा : मन मलीन मुहु मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ। सर्पिणी को दो जीभ होती हैं। इसकी दो वासनाएँ दोनों जीभ हैं। १. भरत को राज्य २. रामजी को वनवास। और दंशन करनेवाले दो दाँत होते हैं। यहाँ जो दो वरदान माँगनेवाली है वे ही दोनों दाँत हैं। सर्पिणी यदि मर्मस्थान में दंशन कर ले तो काटा हुआ जी नहीं सकता। अतः रानी रूपी सर्पिणी मर्मस्थान देख रही है कि मर्मस्थान हाथ लगे तो दंशन करूँ। यहाँ मर्मस्थान राजा द्वारा रामजी का शपथ ग्रहण है। यथा : भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेउ जेहि बचन न टरई।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि राजा भवितव्यता के वश में हैं। अत्यन्त स्पष्ट बात को नहीं लख रहे हैं। यह मान नहीं है। मान में ऐसी क्रूरदृष्टि नहीं होती। रामजी के अभिषेक के समय कोपभवन प्रवेश का सिवा इसके दूसरा अर्थ ही नहीं होता कि रानी को रामजी के राजतिलक से अप्रसन्नता है। पर राजा भवितव्यता के वश होने से यह सब कुछ लख नहीं रहे हैं। इसे रानी की मानप्रियता समझ रहे हैं। यथा : तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई। इतना बड़ा उलट फेर काम का खेल है जिसने इतने बड़े चतुर राजा को अन्धा बना दिया : कामान्धो नैव पश्यति। यह नहीं देख रहे हैं कि सर्पिणी का लक्ष्य उन्हीं पर है। उन्हीं को सरोष विषम दृष्टि से देख रही हैं। यहाँ प्रेम का गन्ध भी नहीं है।

सो. बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोप कर ॥२५॥

अर्थ : बार बार महाराज कहते हैं कि हे सुमुखि ! हे सुलोचनि ! हे पिकवचनि ! हे गजगामिनि ! अपने क्रोध का कारण तो कहो।

व्याख्या : राजा मितभाषी होते हैं। उनके वचन का बड़ा मूल्य होता है। उनकी एकबार की दी हुई आज्ञा हटायी नहीं जा सकती। सो राजा एकबार के निवारण करने पर फिर स्पर्श का साहस नहीं कर रहे हैं। अपने प्रश्न का उत्तर न पाने पर भी बारबार वही पूछते जा रहे हैं : प्रान प्रिया केहि हेतु रिसानी ? केहि हेतु रानि रिसानि ? कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर ; रानी को प्रसन्न करने के लिए कभी सुमुखि कहते हैं। कभी सुलोचनि कहते हैं। कभी पिकवचनि और कभी गजगामिनि सम्बोधन करके उसकी स्तुति करते हैं। सर्पिणी की भाँति फटाटोप करनेवाली को सुमुखि कहते हैं। विषय दृष्टि से क्रुद्ध होकर देखनेवाली को सुलोचनि कहते हैं। फूत्कार की भाँति हुंकार करके करस्पर्श को रोकनेवाली को पिकवचनि कहते हैं और सर्पिणी की भाँति पलटा खायी हुई को गजगामिनि कह रहे हैं : बात

यही ठीक है कि सौन्दर्य कोई वस्तु नहीं है। मनकी कल्पना मात्र है। रानी की ये सब कुचेष्टाएँ महाराज को प्रणय कोप मालूम हो रही हैं।

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा ॥
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू ॥१॥

अर्थ : प्रिये ! किसने तेरा अहित किया ? किसे दो सिर हैं ? किसे यम लेना चाहते हैं ? बतलाओ किस दरिद्र को राजा कर दूँ या किस राजा को उसके देश से निकाल बाहर करूँ।

व्याख्या : जब बार बार पूछने पर भी क्रोध का कारण नहीं बतलाया तब राजा ने समझा कि मेरे ऊपर क्रुद्ध नहीं है। मालूम होता है किसी दूसरे ने इसका कुछ बिगाड़ा है। अतः पूछते हैं कि तेरा अनहित किसने किया ? राजा के अहित करने का किसी को साहस नहीं होता। तू तो मेरी प्रिया है। तेरा अहित करने का किसे साहस हुआ ? उसे दण्ड देनेवाला मैं हूँ। दण्ड दो प्रकार का होता है, १. शारीरिक और २. आर्थिक। सो यदि तुझे अपराधी को शारीरिक दण्ड दिलाना हो तो बतला मैं उसका शिरच्छेदन कर दूँ। एक सिरवाला तो तेरा अपराध करके नहीं जी सकता। यदि किसी को दो सिर हो तो भले ही बच जाय। एक सिर उसका तो मैं काट ही लूँगा। यदि किसी को आर्थिक दण्ड दिलाना हो तो वह यदि राजा भी हो तो मैं उसका देश निकाला कर सकता हूँ। यदि किसी को कुछ देना चाहती हो तो मैं उसे राजा बना सकता हूँ।

सकौं तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मनु तव आनन चंद चकोरू ॥२॥

अर्थ : तेरा शत्रु यदि देवता भी हो तो उसे मार सकता हूँ। बेचारे नर नारी क्या हैं ? वे तो कीड़े मकोड़े हैं। हे सुन्दर ऊरुवाली ! तू तो मेरा स्वभाव जानती है कि मेरा मन तेरे मुखचन्द का चकोर है।

व्याख्या : मैं अमरों : देवताओं का सहायक हूँ। पर यदि वे तुझसे शत्रुता करें तो उन्हें भी मैं मार सकता हूँ। तेरा अनहित तो किसी मनुष्य ने ही किया होगा। वे क्या हैं ? कीड़े मकोड़े हैं। उनके मारने में क्या रक्खा है ? : भाव यह है कि जो मनोरथ हो उसे पूर्ण करने के लिए महाराज तैयार है। इतना बड़ा यशस्वी न्यायकारी राजा आज स्त्री का क्रीड़ामृग हो रहा है। स्त्री की प्रसन्नता के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत है।

कहते हैं कि इतने क्रोध की क्या आवश्यकता है ? मैं तो तेरे वश में हूँ। जो तू कहे वह मैं करने को तैयार हूँ। तू मेरे स्वभाव से परिचित है कि मेरा मन तेरा मुख देखा करता है जैसे चकोर चन्द्र को देखता है। यहाँ मुखचन्द्र का घाटा नहीं है। पर मेरा मन तो तेरे ही मुखचन्द्र का चकोर है।

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें ॥
जौं कछु कहउँ कपटु करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही ॥३॥

अर्थ : प्रिये ! मेरे प्राण मेरे बेटे मेरा सर्वस्व मेरे कुटुम्बी मेरी प्रजा सब तेरे ही वश में हैं। यदि मैं कुछ कपट करके तुझसे कहता होऊँ तो हे भामिनि ! मुझे रामजी की सौ शपथ है।

व्याख्या : मैं और मेरा जो कुछ है वह सब तेरे अधीन है। इसी भाव को दृष्टि में रखकर कहा गया है : अमित दानि भर्ता वैदेही। मितं ददाति च पिता मितं भ्राता मितं सुतः। अमितस्य च दातारं भर्तारं का नु सेवयेत्। मनु। अधम सो नारि जो सेव न तेही। महाराज के इतना कहने पर भी जब न पसीजी तब उन्होंने समझ लिया कि यह मेरे कहने पर विश्वास नहीं कर रही है और मेरी बातों में इसे कपट का सन्देह हो रहा है। तब उसके विश्वास दिलाने के लिए महाराज ने रामजी की शपथ ली।

बिहसि माँगु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी समुझि जिय देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेखू ॥४॥

अर्थ : मनचाही हुई बात हँसकर माँग लो और मनोहर शरीर पर आभूषण धारण कर लो। समय कुसमय को मनमें ख्याल करके देखो और हे प्रिये ! इस कुवेष का शीघ्र ही त्याग करो।

व्याख्या : महाराज कहते हैं कि लो ! अब हँस दो और जो जी चाहता हो उसे माँग लो। तुम्हारे अङ्ग मनोहर हैं। ये आभूषण के योग्य हैं। इनमें आभूषण साज लो। क्रोध का साज समाज एक न रहे। कहाँ कैसा मङ्गल का समय उपस्थित है कहाँ तुमने यह अमङ्गल वेष धारण कर रक्खा है। जो सुनेगा वह क्या कहेगा ? यह समय मङ्गलाचार का है। अतः कुवेष के परित्याग में देर न करो। जो तुम चाहोगी उसका मिलना ध्रुव है। पर माँगना पीछे और कुवेष परित्याग करो पहिले।

दो. यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु, मनहु किरातिनि फंद ॥२६॥

अर्थ : यह सुनकर और बड़ी शपथ मन में गुनकर मतिमन्द हँस पड़ी और आभूषण सजने लगी। जैसे कि मृग को देखकर किरातिनी अपने फन्दे को सँवारने लगती है।

व्याख्या : रामजी के सौ शपथों को सुनकर और मन्थरा की बात : भूपति राम सपथ जब करई। तब माँगेहु जेहि बचनु न टरई। मनमें गुनकर वह मतिमन्द कैकेयी हँस पड़ी। महाराज कहते हैं : बिहँसि माँगु कैकेयी हँस पड़ी। महाराज कहते हैं : भूषन सजहि मनोहर गाता। कैकेयी भूषन सजने लगी। परन्तु वस्तुतः

महाराज के कहने पर नहीं हँसती है। उनके शपथ लेने पर प्रसन्न होकर हँस रही है और महाराज को अपने फन्दे में फँसाने के लिए आभूषण सज रही है। अतः ग्रन्थकार उसकी उपमा किरातिनी के फन्दा सजने से दे रहे हैं। जिससे वह सम्मुखस्थ मृग को फँसाती है।

पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनंद बधावा ॥१॥

अर्थ : फिर राजाजी उसे हितचिन्तक जानकर प्रेम से प्रफुल्लित होकर कोमल और सुन्दर वाणी बोले : हे भामिनि ! तेरी ही जी चाही बात हुई। नगर में घर घर आनन्द का बधावा बज रहा है।

व्याख्या : महाराज कैकेयी के भूषण सजने के अवसर पर उसे अधिक प्रसन्न करने के लिए शुभ समाचार सुना रहे हैं। उसे अब भी सुहृद समझते हैं। विचारते हैं कि मैंने हँसने को कहा तो हँस पड़ी। गहना साजने को कहा तो साजने लगी। अतः इसे अधिक प्रसन्न करने के लिए यह प्रिय समाचार इसी समय सुनाना चाहिए। सो सुनाने की इच्छामात्र से महाराज को आनन्द हो रहा है। मनमें प्रेम है। तन में पुलक है। वाणी में मृदुता और मञ्जुलता है।

महाराज कहने लगे कि हे भामिनी ! तू जो चाहती थी वही हो रहा है। बात यह है कि पहिले कैकेयी चाहती थी कि रामजी को राजतिलक हो। समाचार पाते ही मन्थरा को ईप्सित पुरष्कार देने को तैयार हो गयी थी। यथा : रामतिलक जौ सो चेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली। बात तो बिगड़ी है मन्थरा के बहकाने पर। पूर्वधारणा के अनुसार महाराज कह रहे हैं कि नगर में घर घर बधावा बज रहा है और जिसका मनभावा हो रहा है उसका यह हाल !

रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू ॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥२॥

अर्थ : कल रामजी को युवराजपद दूँगा। हे सुलोचनि ! तुम मङ्गलसाज साजो। सुनते ही तो उसका कठोर हृदय दलक उठा। जैसे बालतोड़ फोड़ा छू गया है।

व्याख्या : अब शुभ समाचार सुनाते हैं कि कल रामजी को युवराजपद दूँगा। अतः गहना सजने के बाद मङ्गल भी साजो। नगर में तमाम मङ्गलसाज सजा जा रहा है और तुम्हारे यहाँ कुछ भी नहीं है। उलटे कोपभवन में कोप का साज समाज बनाये पड़ी हो।

यद्यपि कैकेयी का हृदय कठोर हो गया था। फिर भी महाराज के मुख से इस वचन के सुनने पर उसके हृदय पर ऐसा आघात बैठा कि वह दलक उठा। बाल के टूटने से जो फोड़ा हो जाता है। उसके छूने से ऐसी पीड़ा होती है कि मनुष्य काँप उठता है। उसी भाँति कैकेयी का कलेजा काँप उठा। जहाँ व्यथा थी वही स्थान अकस्मात् स्पष्ट हो गया।

ऐसिउ पीर बिहँसि तेहिं गोई । चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखी न भूप कपट चतुराई । कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई ॥३॥

अर्थ : ऐसी पीड़ा को भी वह हँसकर छिपा ले गयी। जैसे व्यभिचारिणी स्त्री प्रकट होकर नहीं रोती। राजा कपट चतुराई को नहीं लख रहे हैं। क्योंकि वह करोड़ों कुटिलों की मणिगुरु : कूबरी की पढ़ाई हुई है।

व्याख्या : हुई तो उसे बड़ी भारी पीड़ा और सुख तथा दुःख दोनों चेहरे पर दर्पण के प्रतिबिम्ब की भाँति झलक उठते हैं। उस दुःख की झलक को कहीं महाराज न लख लें। इसलिए वह हँसकर उसे छिपा ले गयी। जैसे चोर नारी प्रत्यक्ष नहीं रोती। चोर नारी व्यभिचारिणी स्त्रो को कहते हैं। आज भी राजा की रखेली को चोर महल कहा जाता है। जैसे व्यभिचारिणो स्त्री पति की चोरी से पर पुरुष के साथ प्रेम करती है। उसका अनिष्ट सुनकर मनसे तो रो देती है। बाहर से प्रीति छिपाने के लिए हँसती है। इसी भाँति रानी भी हँसकर अपनी पीड़ी को छिपा ले गयी। यही महाराज के साथ विश्वासघात का उपक्रम है।

इस कपट चतुराई को महाराज नहीं लख रहे हैं। समझत हैं कि रामराज का समाचार सुनकर रानी आनन्द से हँस रही है। इतनी पण्डिताई कपट विद्या में रानी को कहाँ से आगयी ? इसके उत्तर में ग्रन्थकार कहते हैं कि करोड़ों कुटिलों की शिरोमणि कूबरी ने पढ़ाकर पक्का कर रक्खा है। यथा : कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधेसि रानी। तथा : काज सँवारेउँ सजगसबु सहसा जनि पतिआहु।

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू। नारि चरित जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुहु मोरी ॥४॥

अर्थ : यद्यपि राजा नीति में निपुण हैं। पर स्त्री चरित्र भी अथाह समुद्र है। फिर वह कपट का प्रेम बढ़ाकर आँख और मुख को मोड़कर हँसती हुई बोली।

व्याख्या : नीतिनिपुण सब चरित्रों का थाह लगा तो लेते हैं। पर त्रियाचरित्र उनके लिए भी अथाह समुद्र है। गुरु का पक्का चेला चोट नहीं खाता। मन्थरा कोटि कुटिलमनि गुरु है। उसकी कपट चतुराई को रानी नहीं लख सकीं और रानी की कपट चतुराई को महाराज लखने में असमर्थ हैं। रानी का हृदय ऐसा दारुण हो गया है कि भीतर से पुत्र पति को त्यागने के लिए प्रस्तुत है। यथा : परउँ कूप तुअ बचन पर सकौं पूत पति त्यागि। और बाहर से नयन मुख मोड़कर स्नेह दिखाती हुई हँसकर बोली : यह किलंकिञ्चित हाव है।

दो. माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु ॥२७॥

अर्थ : हे प्रिय ! माँग माँग तो कहते हो पर कभी देना लेना कहीं कुछ भी नहीं। दो वरदान देने को कहा था। उनके मिलने में भी सन्देह है।

व्याख्या : महाराज ने बार बार प्रिये कहकर सम्बोधन किया था। अतः रानी भी प्रिय कहकर सम्बोधन करती है और उपालम्भ करती हुई कहती है कि आप माँग माँग तो कह देते हैं पर उस वचन को कार्य में परिणत नहीं करते। प्रमाण देती है कि पहिले भी इसी भाँति माँगु माँगु कहा था। परन्तु दिया क्या ? अब नया वरदान क्या दोगे ? जो दो वरदान देने के लिए कहा था वही दे दो तो मैंने बहुत पाया। मुझे तो सन्देह है कि उन्हीं दो को न दे सकोगे। सन्देह प्रकाश करने में तात्पर्य यह कि महाराज उस सन्देह को दूर करने के लिए सत्य की सराहना करें। देहु न लेहु कहने का भाव यह कि ईप्सित देते भी नहीं और नहीं कहकर अपयश लेते भी नहीं। यथा : देहु कि लेहु अयशकरि नांहीं।

जानेउ मरमु राउ हँसि कहई। तुमहि कोहाब परम प्रिय अहई ॥
थाती राखि न माँगिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ॥१॥

अर्थ : राजा ने हँसकर कहा कि मैं मर्म जान गया। तुम्हें रूठना परम प्रिय है। तुमने धरोहर रखकर कभी नहीं माँगा। मेरा विस्मरणशील स्वभाव है। मैं भूल गया।

व्याख्या : महाराज ने तुरन्त समझ लिया कि असुर संग्राम में दिये हुए दोनों वरदानों के विषय में कह रही है। सो तो इनका रक्खा ही है। इनके माँगने की देर है। इन्होंने ही उस समय नहीं माँगा। कहा कि जब आवश्यकता होगी माँग लूँगी। सो वरदान में देर होना अप्रसन्नता का कारण नहीं हो सकता। इनका मान करने का स्वभाव है। सो वरदान न देने का बहाना ढूँढ़कर मान किये हुए हैं। अतः कहते हैं कि मुझे मर्म मालूम हो गया। तुम्हें रूठना बढ़ा प्रिय है। उसी के लिए बहाना ढूँढ़ रक्खा है। तुम्हारी थाती रक्खो हुई है। नहीं माँगा इसमें दोष तुम्हारा है। यदि कहो कि धरोहर रखनेवाला यदि भूल भी जाय तो सच्चे महाजन को उचित है कि उसे याद दिलावे कि अपना धरोहर ले जाओ। इस पर महाराज कहते हैं कि मेरा विस्मरणशील स्वभाव है। मुझे भूल गया था कि तुम्हारा धरोहर रक्खा हुआ है। उसे बिना माँगे भी दे देना चाहिए।

झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि मकु लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई ॥२॥

अर्थ : मुझे झूठमूठ दोप न दो। दो के बदले चार क्यों नहीं माँग लेती। सदा से रघुकुल की यह रीति चली आयी है कि प्राण चाहे चले जायँ। पर वचन न जाने पावे।

व्याख्या : कुछ भी संसर्ग रहने से झूठा दोष लग जाता है। परन्तु यहाँ तो मेरा दोष से कोई संसर्ग ही नहीं है। धरोहर में व्याज नहीं लगता। सो मैं व्याज

सहित देने को प्रस्तुत हूँ। व्याज की पराकाष्ठा मूल को द्विगुणित कर देना है। सो तुम मुझसे दो के स्थान में चार वरदान माँग लो। कैकेयी ने कहा था : देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु। उसी का उत्तर देते हुए महाराज कहते हैं कि मेरे कुल की रीति है कि प्राण छोड़ देते हैं वचन नहीं छोड़ते। मैं उस कुल का अग्रणी होकर वचन कैसे छोड़ूँगा ? मैं अपना वचन छोड़ नहीं सकता।

नहि असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मुनु गाए ॥३॥

अर्थ : पातकों के समूह इकट्ठे होकर भी झूठ के बराबर नहीं हो सकते। क्या करोड़ों घुघुची पर्वत के समान हो सकती हैं ? जितने सुन्दर सुकृत हैं वे सब सत्यमूलक हैं। ऐसा ही वेद पुराण कहते हैं और मनु जी भी गान करते हैं।

व्याख्या : और जितने पाप हैं वे सत्य के सामने वैसे ही हैं जैसे पहाड़ के सामने घुघुची। अर्थात् सब पापों में अति विशाल असत्य है। इसीलिए सबसे नीचे का नरक अवीची है। जिसमें झूठे डाले जाते हैं। भाव यह कि ऐसी कुलरीति होने का यथेष्ट कारण है। प्राण देना मेरे पूर्व पुरुषों को स्वीकार था पर इतना बड़ा पाप करना स्वीकार न था।

और भी एक बात है। जितने पुण्य हैं वे सत्य के आधार पर हो खड़े हैं। सत्य के नष्ट होते ही पूर्व के सब पुण्य धराशायी हो जाते हैं। क्योंकि क्रिया के फल को आश्रय सत्य से ही मिलता है। यथा : सत्यप्रतिष्ठायाम् क्रियाफलाश्रयत्वम् तथा समूल एष परिशुष्यति योऽनृतं वदति। अज्ञातार्थज्ञापक होने से पाप पुण्य के निर्णायक वेद पुराण ही हैं। उनमें भी मनुस्मृति का पद बहुत ऊँचा है : यन्मनुरवदत्तद्भेषजम्। मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते। वेद कहता है कि जो मनु कहते हैं वही औषध है। जो मनु के कहने के विपरीत है वह स्मृति मान्य नहीं है। अतः वचन को असत्य करके अपने पूर्वकृत पुण्यों का नाश और अवीचो नरक को कौन स्वीकार करेगा ?

तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली ॥४॥

अर्थ : इस पर श्री रामजी की शपथ मुझसे हो पड़ी। रघुराई रामजी पुण्य और स्नेह की सीमा हैं। बात को पक्की करके कुमति हँसकर बोली। मानो दुष्ट आशय रूपी बाज का टोप खोल दिया।

व्याख्या : रामजी सुकृत की अवधि हैं। यथा : सब कोउ कहै राम सुठि साधू। रामजी स्नेह की अवधि हैं। यथा : राम देत नहिं बनै गोसाईं। भाव यह कि दोही का शपथ लिया जाता है। पुण्यात्मा का या अपने स्नेही का। सो रामजी दोनों की सीमा हैं। सो मैंने रामजी की शपथ ले ली। अव तो नहीं कहने के लिए अवसर ही नहीं रह गया।

महाराज के इतना कहने पर यह बात इतनी दृढ़ हो गयी कि नर्म कहकर किसी भाँति उड़ायी नहीं जा सकती। महाराज ने कहा था : बिहसि माँगु मनभावति बाता। सो हँसकर बोली। बाज के आँख पर पट्टी बाँधकर रक्खा जाता है : जिसे टोप कहते हैं कि कहीं बेमौके झपट न पड़े। कैकेयी के दुष्ट आशय की उपमा बाज से दी है। उसे वह कपट चतुराई रूपी टोप से छिपाये रही। अवसर पाकर टोप खोल दिया। अर्थात् हँसकर बोली। भाव यह कि आशय ही व्यक्त होकर वचन में परिणत हो जाता है।

दो. भूप मनोरथ सुभग बनु, सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति, बचन भयंकर बाजु ॥२८॥

अर्थ : राजा का मनोरथ सुन्दर वन है और सुख ही सुन्दर चिड़ियों का समाज है। भीलनी मानो वचन रूपी भयङ्कर बाझ को छोड़ना चाहती है।

व्याख्या : साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकयी गेह। उसी आनन्द को यहाँ सुख कहा गया है। अर्थात् रामजी को राज्य देने का आनन्द। इस आनन्द के अन्तर्गत बहुत प्रकार के सुख हैं इसीलिए सुख सुबिहंग समाज कहा। एक ही वचन के दो वरदान दो विभाग मात्र हैं। मानो वचनरूपी बाज के दोनों वरदान दो पञ्जे हैं। भयङ्कर बाज है : एक एक पञ्जे में एक एक पक्षी के पकड़ने की ताकत रखता है। यहाँ कैकेयी की उपमा भिल्लिनी से दी। क्योंकि भिल्लिनी चिड़ियों के शिकारके लिए बाज जिलाती है और चिड़ियों का समाज देखकर उसे छोड़ देती हैं। उस बाज द्वारा विहङ्ग समाज का संहार हो जाता है। यहाँ राजा के मनोरथ रूपी वन में सुखरूपी चिड़ियों का समाज विहार करता था। सो कैकेयीरूपी भिल्लिनी के वचनरूपी बाज के चपेट से महाराज का मनोरथ वन सुख से शून्य हो जायगा।

सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका ॥
माँगौं दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥१॥

अर्थ : हे प्राणप्रिय ! मनोवाञ्छित सुनो। एक वर यह कि भरत को राजतिलक दो। दूसरा वरदान हाथ जोड़कर माँगती हूँ। हे नाथ मेरे मनोरथ को पूरा करो।

व्याख्या : प्राणप्रिय को छोड़कर जी का चाहा हुआ कौन पूरा कर सकता है। अतः कैकेयी प्राणप्रिय सम्बोधन दे रही है। बाज के पहिले पञ्जे की चोट है : देहु एक बर भरतहि टीका। राजा चुप हैं। आकार से कुछ लक्षित नहीं होता। अतः उसे स्वीकृत मान लिया।

पहिले वर के मिलने में कैकेयी को भी विशेष शङ्का नहीं थी। समझती थी कि यह वरदान मिल जायगा। दूसरे वर के मिलने में बड़ा सन्देह है। दूसरे वर को पहिले की भाँति नहीं कह सकी। कहने में सिटपिटाती है। क्योंकि स्वयं

रामजी के तिलक की इच्छा प्रकट कर चुकी है। यथा : भामिनि भयउ तोर मन भावा। हाथ जोड़ रही है बोलने में चूक हो रही है। मनोरथ शब्द का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग कर रही है। कहती है कि आप नाथ हैं। आपके बिना मनोरथ कौन पूरा करेगा : अब बाज पहिले पञ्जे के शिकार को सँभालकर दूसरे पञ्जे से चोट किया चाहता है।

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनवासी ॥
सुनि मृदु बचन भूप हियसोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥२॥

अर्थ : तपस्वी का वेष धारण करके और विशेष रूप से उदासीन होकर चौदह वर्ष के लिए रामजी वनवासी हों। कोमल वचन को सुनकर राजा के हृदय में शोक हुआ। जैसे चन्द्र के किरण के स्पर्श से चकवा विकल हो जाता है।

व्याख्या : पहिले चोट : वर का प्रभाव यह हुआ कि हृदय में शोक हुआ। बाहर कुछ नहीं। मनोरथभङ्ग से दाह हुआ। यथा : सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंदनिसि जैसे। दूसरे पञ्जे की चोट। यह वरदान ऐसा माँगा जिससे अपनी निगाह से और दूसरों की निगाह से राजभाव जाता रहे। अतः तापस वेष में रामजी का रहना माँगती है। राज के मामलों से सम्बन्ध न रक्खें। मुनिव्रत वेष अहार से मनोवृत्ति बदल जाय। इसलिए उदासीन रहना माँगती है। कैकेयी के समझ में उससे चौदह दिन बात छिपायी गयी। पन्द्रहवें दिन मन्थरा से पता चला। यथा : भयउ पाख दिनु सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू। अतः एक एक दिन बात छिपाने के बदले में एक एक वर्ष का वनवास माँगती है। फिर भी कैकेयी के हृदय में छिपा प्रेम है। नहीं तो मन्थरा ने सदा के लिए वनवास कहा था। यथा : सुतहि राजु रामहि बनबासू। अथवा १४ वर्ष का समय भरत को अपने शासन को दृढ़ मूलक बना लेने के लिए यथेष्ट समझकर १४ वर्ष का वनवास माँगा। अथवा बुध की महादशा में तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। चौदह बाकी थे। इसलिए रानी के मन में चौदह वर्ष के लिए वनवास माँगने का सङ्कल्प उठा। मृदु वचन यथा : सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का।

गयउ सहमि नहि कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनउ मनसु तरु तालू ॥३॥

अर्थ : सहम गये। कुछ कहते न बना। मानो वन में लवा के ऊपर बाज झपट पड़ा। राजा एक बारगी बेरंग हो गये : रंग फक हो गया। मानो ताड़ के पेड़ पर बिजली गिरी हो।

व्याख्या : दूसरी चोट से तो ऐसे सहमे कि कुछ कहते न बना। बोलना चाहा पर बोल न सके। पहिले में केवल मन की दशा दिखलायी। जब मन की दशा अधिक बिगड़ती है तब वाणी और शरीर पर प्रभाव पड़ता है। यहाँ वाणी की दशा कही। अब बाज झपट का पता लगा। पहिले तक तो मातृप्रेम ही समझते

थे। परन्तु इस दूसरे वरदान के समय तो ऐसी गति हुई जैसे बाज वन में लवा पर झपटता है। बाज के झपटने पर लवा चीं भी नहीं कर सकता। इस भाँति वाणी की दशा कहते हैं।

तालतरु तृणराज है। दूसरे पेड़ पर बिजली गिरने से कोई शाखा विशेष टूट जाती है। पर तृणराज तो एकदम झुलस जाते हैं। उनके डाल पत्ते सिरपर होते हैं वे एकदम नीचे आ पड़ते हैं।

माथे हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥४॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेई ॥५॥

अर्थ : माथे पर हाथ रखकर और दोनों आँखें बन्द करके इस भाँति सोचने लगे जैसे स्वयं सोच शरीर धारण किये हो। मेरा मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष फूल उठा था। फल लगते ही हथिनी ने उसे जड़ से उखाड़ फेंका। कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ दिया और विपत्ति की अटल नींव डाल दी।

व्याख्या : ऊपर की तीन अर्धालियों में क्रमशः मन वचन और तन की दशा कही। आघात पड़ते ही जो विकलता होती है उसे कहकर उसके वाद की दशा कहते हैं। दोनों हाथों पर इस भाँति माथा रखना जिसमें आँखें मुद जायँ शोक की मुद्रा है। जिसे अपने सोच का आरपार नहीं दिखाई पड़ता वह स्वभाव से इसी मुद्रा में हो जाता है। कवि उपमा देते हैं मानो सोच हो शरीर धारण करके सोच रहा है। भाव यह कि चक्रवर्तीजी को इस समय बाह्यज्ञान कुछ भी नहीं है। वे शोकमय हो रहे हैं।

कल्पवृक्ष के पृथ्वी पर आने से सभी अपना भाग्य मानते हैं और सब उसकी बढ़ोत्तरी चाहते हैं। क्योंकि सब जानते हैं कि यह सबकी कामना को पूर्ण करने-वाला है। अतः बड़े यत्न से कल्पतरु की सेवा होती है। हथिनी में बल वड़ा है। पर वह मूर्खा है। कल्पवृक्ष के गुणों से अपरिचित है। उसने आकर अपने बल मद से कल्पवृक्ष को ही उखाड़ फेंका। उखाड़ा हुआ वृक्ष फिर नहीं लगता।

यहाँ चक्रवर्तीजी के मनोरथरूप रामजी स्वयं कल्पवृक्ष हैं। उनका सब लायक होना फूलना है। यथा : कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भये रामु सब बिधि सब लायक। और उनका अभिषेक होना फलना है। यथा : नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू। सो सब समाज हो रहा था। वरदान के बल से दर्पित कैकेयी हथिनी हुई। और किसी में कल्पवृक्ष के उखाड़ने की सामर्थ्य नहीं। इस मूर्खा ने रामजी के दिव्य गुणों को न जाना। उन्हें अयोध्या के बाहर उखाड़ फेंका। सबके हाथ से कल्पवृक्ष जाता रहा।

इतने दिन चक्रवर्तीजी को राज्य करते हुए किसी शत्रु का उजाड़ा अवध न उजड़ सका। कैकेयी ने उजाड़ दिया। भाव यह कि प्रजा रामजी में इतनी अनुरक्त

है कि रामजी के छोड़ते ही कोई अयोध्या में रहना न चाहेगा। यथा : जहँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहि काजू। चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई। तथा : मोहिं लगि यहु कुटाटु तेहि ठाटा। घालेसि सब जग बारहँ बाटा। मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसै अवध नहिं आन उपाएँ। सो इसने अचल विपत्ति की नींव दे दी। रामजी को राज्य कहकर वन दिया जायगा। सो चौदह वर्ष के लिए। इतने दिनों में तो अवध का पता भी न रह जायगा और चौदह वर्ष बीतने पर भी रामजी क्यों लौटेंगे। अतः इसने विपत्ति की अचल नींव डाल दी। अब मकान का बनना किसी के रोके नहीं रुकेगा : भाव यह कि चक्रवर्तीजी ने मन से वन दे दिया।

दो. कवनें अवसर का भयउ, गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अबिद्या नास ॥२९॥

अर्थ : अब किस मौके पर क्या होगा ? मैं तो स्त्री के विश्वास में मारा गया। जैसे योगसिद्धि के फल के समय अविद्या सन्यासी का नाश कर देती है।

व्याख्या : कह्यौ राज बन दियो नारि वस गरि गलानि गये राउ। अतः कहते हैं कि कहाँ तो मैं राज देने चला और कहाँ वन दे रहा हूँ। ऐसा होने का कारण कहते हैं कि राजनीति में मैं चूक गया। विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राज-कुलेषु च। मैंने क्यों स्त्री का विश्वास किया ? इसी चूक से मेरा सर्वनाश उपस्थित है। साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकयी गेह। महाराज कैकेयी को आनन्द का समाचार सुनाने गये। उन्हें विश्वास था कि कैकेयी सुनकर परम प्रसन्न होगी। क्योंकि सदा कहा करती है कि भरत से भी मुझे रामजी प्यारे हैं। यथा : भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना। जब कैकेयी को रूठी हुई पाया तब उसे प्रसन्न करने के लिए रामजी के तिलक का निश्चय सुनाते हैं : रामहिं देउँ कालि युबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू। इसपर कैकेयी भी बाहर से हँस पड़ी। इस भाँति चक्रवर्ती जी के विश्वास को और भी दृढ़ कर दिया कि कैकेयी को रामजी का अभिषेक पहिले की भाँति परम इष्ट है।

उदाहरण देते हैं कि जैसे योगसिद्धि के फल के समय, अर्थात् जड़ चेतन की ग्रन्थि विमोक के समय अविद्या बल छल करके ज्ञान दीप को बुझा देती है। यथा : छोरत ग्रंथि जानि खग राया। विघ्न अनेक करै तब माया। कल बल छल करि जाइ समीपा। अंचल बात बुझावहि दीपा। ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि विकल भइ विषय बतासा। विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। एहिं बिधि दीप को वार बहोरी। तब फिर जीव बिबिध बिधि पावै संसृति क्लेस। हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ विहँगेस।

सो जिस भाँति उक्त संन्यासी का नाश अविद्या ने किया उसी भाँति मेरा सर्वनाश स्त्री द्वारा हुआ।

एहि बिधि राउ मनहि मन झाँखा । देखि कुभाँति कुमति मनु माखा ।।
भरतु कि राउर पूत न होहीं । आनहु मोल बेसाहि कि मोहीं ।।१।।

अर्थ : इस भाँति राजा मन ही मन झींख रहे थे । देखकर कुवुद्धि : कैकेयी के मन में बुरी तरह से क्रोध हुआ । वोली : क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं । मुझे क्या मोल खरीद लाये हो ?

व्याख्या—इस विधि से अर्थात् आँख मूँदे माथे पर हाथ रक्खे राजा अपने मनोरथ के नाश और अयोध्या के उजड़ने का सोच कर रहे थे । कवि कहते हैं कि कैकेयी की सुमति चली गयी । अब वह कुमति के अधीन है । उसने देखा कि राजा का ढङ्ग तो अच्छा नहीं है । राजा की यह अवस्था देखकर सुमति को दया आती । पर कुमति के मनमें क्रोध उमड़ा ।

उसने कहा कि क्या भरत आपके बेटे नहीं हैं ? भाव यह कि जैसे राम बेटे हैं वैसे ही भरत हैं । भरत को राज्य माँगने से आपको दुःख क्यों है ? मैं भी तो रानी हूँ । दासो को भाँति मुझे मोल खरीद करके नहीं लाये हो । भाव यह कि राजा का बेटा राजा नहीं होता रानी का बेटा राजा होता है । दासी से भी राजाओं को सन्तति होती हैं पर वे पुत्र नहीं माने जाते । क्योंकि उनको जल पिण्ड का अधिकार नहीं होता । भरत के पिता आप राजा हैं और मैं भी पाणिगृहीता भार्या रानी हूँ । हम दोनों का बेटा भरत कैसे राज्य का अधिकारी नहीं है ? उसके लिए यदि मैंने राज्य माँगा तो आप को इतना दुःख क्यों है ?

जो सुनि सरु अस लागु तुम्हारें । काहे न बोलहु बचनु सँभारें ।।
देहु उतरु अनुकरहु[1] कि नाहीं । सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं ।।२।।

अर्थ : जो सुनने से तुम्हें बाण सा लगा तो तुम पहिले ही सोच समझकर क्यों नहीं बोले ? जवाब दो । इनकार कर जाओ कि 'नहीं' । तुम रघुकुल में सत्यप्रतिज्ञ हो ।

व्याख्या : कैकेयी कहती है कि मेरे वरदान के वचन तुम्हें बाण से लगे । यथा : बिबरन भयउ निपट महिपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरुतालू । परन्तु इस भाँति दुःख होने का कारण तो कोई है नहीं । तुमने कहा था—कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू । कहु केहि नृपहिं निकासउँ देसू । सो मैंने तो किसी रङ्क को नरेश करने के लिए भो नहीं कहा । मैं तो एक राजकुमार को नरेश वनाने को कहती हूँ और न मैंने किसी नरेश को देश निकालने के लिए कहा । मैं तो केवल दूसरे राजकुमार के लिए १४ वर्ष का वनवास माँगती हूँ । तुम्हारे कहने से बहुत कम मैंने माँगा है । मैंने माँगने में सँभाल रक्खा । तुमने सँभालकर वचन क्यों न कहा । इस भाँति कैकेयो महाराज की नीतिज्ञता पर आक्षेप करतो है ।

---

१. इनकार को ही ग्राम्यजन अनुकार कहते हैं ।

राजा को चुप देखकर फिर कहती है कि चुप न रहो। एक बात कह दो। इनकार ही कर जाओ कि नहीं दूँगा। रघुकुल की रीति है कि प्राण जाय तो जाय वचन न जाय और तुम तो उस कुल में सत्यसन्ध हो। संसार देख ले कि कितने बड़े सत्यसन्ध हो : स्त्रियाँ पति के स्वभाव को खूब जानती हैं। कैकेयी भी जानती है कि महाराज अपयश को डरते हैं। 'नहीं' कभी न कहेंगे।

देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू ॥
सत्य सराहि[1] कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना ॥३॥

अर्थ : वर देने को कहा था। अब मत दो। सत्य को त्याग दो और संसार में अपयश लो। सत्य की सराहना करके वर देने को कहा तो क्या समझा था कि यह चबेना माँग लेगी।

व्याख्या : भाव यह कि पहिले तो कहा : झूठेहुँ हमहि दोसु जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि मकु लेहू। रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई। इस दृढ़ता से वर देनें को कहा। अब अपनी बात से हट जाओ मत दो। देना तो तुम्हारे हाथ में है। पर समझ लो कि सत्य को त्याग रहे हो और अपनी अपकीर्ति को अपना रहें हो।

यदि कहो कि मैं नहीं समझता था कि यह भरत को राज्य और रामजी को वनवास माँगेगी। मुझे धोखा हुआ। इसपर कहती है कि धोखे की बात नहीं। तुम कठिन से कठिन वर देने को जान बूझकर तैयार थे। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई। नहिं असत्य सम पातक पुंजा। सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। इंत्यादि वचनों को वर देते समय तुमने उच्चारण किया है। वरदान के समय सत्य की प्रशंसा का तात्पर्य ही यही है कि जो चाहो सो माँगो, मैं घोर से घोर संकट सहूँगा पर बात से न हटूँगा। तुम राजा हो। समझ सकते हो कि वरदान में चबैना ऐसी सुलभ वस्तु नहीं माँगी जाती।

सिवि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा ॥
अतिकटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ[2] लोन जरे पर देई ॥४॥

अर्थ : शिवि दधीचि और राजा बलि ने जो कुछ कहा था शरीर और धन का त्याग करके भी वचन और प्रण को रक्खा। कैकेयी अत्यन्त कड़ुए वचन कह रही है मानों जले पर नमक छिड़क रही है।

व्याख्या : शिवि दधीचि और बलि सत्यसन्ध थे। शिवि ने अपने शरीर का माँस काटकर कबूतर के बराबर तौल दिया। कबूतर भारी हो गया। राजा शिवि माँस काट काटकर तुला पर चढ़ाते गये। अन्त मे जब सिर चढ़ाने लगे तब इन्द्र

---

१. यह छेकोक्ति अलङ्कार है।
२. फलसिद्धास्पदा उत्प्रेक्षा।

और अग्नि ने प्रकट होकर उनकी सत्यप्रतिज्ञा की प्रशंसा की और उनके शरीर को ठीक कर दिया। राजा की शरणागतवत्सलता की परीक्षा के लिए इन्द्र बाज और अग्नि कबूतर बने थे। कबूतर भागता हुआ राजा शिवि की गोद में जा छिपा। बाज ने आकर कहा कि यह मेरा भक्ष्य है। इसे दे दीजिये। राजा ने कहा इसके बदले में जो माँगो दूँगा। बाज ने कहा अपने शरीर का मांस इसके बराबर तौल दो। शिवि कह सकते थे कि मुझे धोखा हुआ मैं नहीं समझता था कि तुम मेरे शरीर का मांस माँगोगे। परन्तु उन्होंने ऐसा न कहा। काटकर अपना मांस तौलने लगे। वे चबैना देनेवाले सत्यसन्ध नहीं थे।

दधीचि ऋषि देवताओं का धरोहर अस्त्र शस्त्र रक्खे हुए थे। राक्षसों से हैरान होकर वे उनको पान कर गये। जब देवता माँगने आये तो उन्होंने कहा कि वे तो जठरानल में पककर मेरी अस्थि में लीन हो गये हैं। मेरी हड्डी ले जाकर अपने अस्त्र शस्त्र बना लो। सो दधीचि जी इस भाँति रक्खी हुई थाती को लौटानेवाले सत्यसन्ध थे। चबैनावाले नहीं थे।

राजा बलि से वामन ने तीन हाथ पृथ्वी माँगी। दान पाने पर वामन ने अपना विराट् रूप कर लिया और उसके त्रैलोक्य का राज्य तथा उसकी शरीर भी नाप ली। राजा बलि ने यह न कहा कि मुझे धोखा हुआ मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी बड़ी शरीर बना लोगे। क्योंकि वे सत्यसन्ध थे। चबैना देनेवाले नहीं थे।

इस भाँति शिवि दधीचि ने तन दिया। बलि ने तन धन दोनों दिया। पर न शिवि अपने प्राग से हटे और न दधीचि और न बलि अपने वचन से हटे। तीनों के साथ कपट हुआ। पर वे धर्म से न हटे। वे सत्यसन्ध थे। चबैना देनेवाले नहीं थे। तुम्हें न तन देना है न धन देना है। मुफ्त में सत्यसन्ध कहलाना है। इन कटु वचनों से महाराज को अति पीड़ा हो रही है। जैसे जले पर कोई नमक छिड़के और वह मनुष्य छटपटा उठे।

दो. धरम धुरंधर धीर धरि, नयन उघारे राय।
सिर धुनि लीन्ह उसास असि, मारेसि मोहि कुठांय ॥३०॥

अर्थ : धर्म की धूरि धारण करनेवाले महाराज ने धीरज धरकर नेत्र खोले और सिर धुनकर लम्बी श्वास ली कि इसने बुरी जगह मुझे तलवार मारी।

व्याख्या : महाराज के हृदय में शोक था। सो धैर्य धारण किया। माथे हाथ रखकर आँख मीचे हुए थे। सो आँख खोली। जले पर नमक छिड़कने के कारण सिर पीटा, अतिपीड़ा से लम्बी श्वास लेकर मन में कहा कि इसने मेरे मर्म पर तलवार मारी। इस चोट से मैं बच नहीं सकता। कहने के लिए इसकी चोट राम पर है। वस्तुतस्तु यह मेरे प्राण पर आघात हुआ।

कैकेयी ने कहा कि अपने को सँभालकर कुछ बोलो तो। हाँ या ना कुछ उत्तर तो दो और राजा की विकलता पर अनेक आक्षेप किया। तब राजा ने अपने

को सँभाला। धैर्य धारण करके आँख खोली। पर सामने का दृश्य देखकर सिर पीटने लगे। कैकेयी को ऐसा क्रोध में भरा पाया कि उससे दया या स्नेह की कोई आशा ही नहीं रह गयी। जब मनुष्य से कुछ करते नहीं बनता तभी वह सिर पीटता है। लम्बी साँस लेता है। राजा सत्य के अनुरोध से ना कर नहीं सकते और रामजी प्राणों से अधिक प्रिय हैं। उन्हें आँख से ओट करना और प्राण छोड़ना एक बात है। अतः हाँ करना भी असम्भव है। अब यदि कैकेयी ही दया करे तो कोई रास्ता निकल सकता है। सो कैकेयी : आगे दीख जरत रिसि भारी। मनहु रोष तरवारि उघारी हो रही है। अतः सिर पीटते हैं और लम्बी साँस लेते हैं। सोचते हैं कि इसके क्रोध रूपी खड्ग का आघात रामजी पर नहीं है मुझपर है। राम पुनीत विषय रस रूखे हैं : देवताओं ने भी कहा था कि विस्मय हर्ष रहित रघुराऊ। अतः रामजी की भी कोई विशेष हानि नहीं है। इसमें मरण हमारा है जो रामजी के बिना जी नहीं सकते। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मैंने ही रामजी से कहलाया था कि कल तुम्हारा अभिषेक होगा और जब कल का दिन आवे तब मैं ही कहूँ कि मैं तुम्हें वनवास देता हूँ। यह तो प्राण रहते नहीं हो सकता। यथा : कह्यो राज बन दियो नारि बस गरि गलानि गयो राउ। अतः यह तलवार की चोट ऐसे मर्म पर की गयी है कि इसका परिणाम मृत्यु ही है। इसका कोई उपचार नहीं हो सकता। इसलिए कहते हैं कि यह तलवार मुझ पर चली है और इसने सद्यःप्राणहर मर्म को काट दिया।

आगे दीखि जरत रिस भारी। मनहु रोष तरवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरीं सान बनाई॥१॥

अर्थ : सामने क्रोध से जलती हुई : कैकेयी को देखा मानों खिंची हुई क्रोध की तलवार है। कुबुद्धि मूठ है। निष्ठुरता धार है। जिसपर : कबरी ने शान दे रक्खा है।

व्याख्या : आँख खोलते ही महाराज की दृष्टि कैकेयी पर पड़ी। देखते हैं कि वह अपने वश में नहीं है। क्रोध के हाथ की शस्त्र हो गयी है। पहिले कोष में तलवार थी। यथा : ऐसिउ पीर बिहँसि तेहि गोई। चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई। अब कोष के बाहर निकल आयी है। चोट कर रही है।

उस तलवार की मूठ कुबुद्धि है। उसे मजबूती से पकड़े हुए है और निष्ठुरता ही धार है। उसे शान रखकर कूबरी ने खूब तीखी कर रक्खी है। यथा : काजु सँवारेउ सजग सबु सहसा जनि पतिआहु।

लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा॥
बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती॥२॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने लखा कि कराल कठोर है। क्या सचमुच मेरा प्राण लेगी। राजा छाती कड़ी करके विनययुक्त वाणी जो उसे अच्छी लगे बोले।

व्याख्या : राजा हैं। स्वरूप देखते ही लख लिया कि यह तलवार : कैकेयी तो भयानक कठोर है। कुठाँव तलवार लगाने पर भी राजा समझते थे कि यह मेरा प्राण न लेगी। इतनी कठोर नहीं हो सकती कि पति के प्राण की परवाह न करे। पर अब उसकी कराल कठोरता देखकर यह भी सम्भव मालूम होने लगा।

राजा ऐसे सहमे हुए थे कि उनके मुख से शब्द नहीं निकलते थे। यथा : गयेउ सहमि नहि कछु कहि आवा। सो आवश्यकता देखकर उन्होंने छाती कड़ी की और बोले। क्रोधी से विनय करने और उसे अच्छी लगनेवाली वाणी बोलने से ही काम निकलता है। क्रोधी के ऊपर क्रोध करने से बात और बिगड़ती है। अतः राजा विनययुक्त प्रिय लगनेवाली वाणी बोले।

प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती॥
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकरु साखी॥३॥

अर्थ : हे प्रिये! हे भीरु! विश्वास और प्रीति का हनन करके ऐसी बुरी तरह से वचन क्यों बोलती हो। मेरे तो भरत और राम दोनों आँखें हैं। शङ्कर को साक्षी देकर सत्य कहता हूँ।

व्याख्या : तू मेरी प्रिया है। तेरे मुख से प्रीति और प्रतीतियुक्त वचन ही शोभा देते हैं। सो तू ऐसे वचन क्यों बोल रही है जिससे प्रीति और प्रतीति का हनन हो। प्रीति का हनन यथा : सत्य सराहि कहहु बर देना। जानहु लेइहि माँगि चबेना। प्रतीति का हनन यथा : देहु उतरु अनुकरहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं। यह विनययुक्त वचन है।

कैकेयी ने कहा था : भरतु कि राउर पूत न होहीं। आनेउ मोल बिसाहि कि मोही। उसी का उत्तर देते हुए कहते हैं कि भरत और राम ये ही दोनों मेरी आँखें हैं। भरत पहिले राम पीछे। जो मनकी बात जाने उसी को साक्षी दिया जाता है। चक्रवर्तीजी शङ्कर को साक्षी देकर कह रहे हैं। जिसमें इस वचन के सत्य होने में कैकेयी को सन्देह न हो।

अवसि दूतु मैं पठइब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिनु सोधि सबु साज सजाई। देउँ भरत कहुँ राजु बजाई॥४॥

अर्थ : मैं सबेरा होते ही दूत भेजूँगा। समाचार : सुनते ही दोनों भाई शीघ्र आवेंगे। तब : सुदिन दिखाकर और सब साज सजकर भरत को डंका देकर राज दूँगा।

व्याख्या : सबेरा होते ही पहिला काम यह होगा कि भरत को बुलाने दूत भेजे जायँगे। दूत के पहुँचने की देर है भरत शत्रुघ्न के आने में देर न लगेगी। भाव यह कि टालमटोल की बात नहीं है। जितनी शीघ्रता सम्भव है की जायगी। रामजी के अभिषेक की तो अब कोई बात नहीं है।

मुझे भरत को राज्य देने में उतना ही उत्साह है जितना रामजी को

देने में था। अतः अच्छा मुहूर्त्त दिखवाकर धूमधाम के साथ डंका की चोट देकर भरत को राज्य दूँगा। यह देहु उतरु अनुकरहु कि नाहीं का उत्तर है। यह तासु सोहाती वाणी है।

दो. लोभु न रामहि राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय, करत रहेउँ नृपनीति ॥३१॥

अर्थ : रामजी को राज्य का लोभ नहीं है और भरत से बहुत प्रेम करते हैं। मैं ही छोटे बड़े के विचार से राजनीति का बर्ताव करता था।

व्याख्या : रामजी को चौदह वर्ष वनवास देने का कारण यही हो सकता है कि वे भरत के अभिषेक में बाधक होंगे अथवा शासन में विघ्न उपस्थित करेंगे। परन्तु ऐसा तो वही कर सकता है जिसे राज्य का लोभ हो या जिसे तिलक दिया जाता हो उससे विरोध हो। रामजी को राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उनकी बड़ी प्रीति है। अतः उनसे कोई भय नहीं है। उन्हें तो मैं राजनीति का ख्याल करके राज देता था। राज्य का विभाजन नीति सम्मत नहीं है। नीतिशास्त्र की आज्ञा बड़े को ही राज्य देने की है अतः मैंने रामजी कों राज्य देना चाहा था। कोई दूसरा कारण इसमें नहीं है।

राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काऊ॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूछें। तेहि तें परेउ मनोरथ छूछें॥१॥

अर्थ : मैं राम की सौ शपथ खाकर वस्तुस्थिति कहता हूँ कि रामजी की माता ने कभी कुछ नहीं कहा। मैंने सब बिना तुझसे पूछे किया। इससे मनोरथ खाली गया।

व्याख्या : मान लिया जाय कि रामजी को राज्य का लोभ नहीं है। तो कौसल्या की प्रेरणा से तो सब हो रहा है। इसपर चक्रवर्तीजी कहते हैं कि राम की माता ने कभी कुछ इस विषय में नहीं कहा और विश्वास दिलाने के लिए रामजी की शपथ ले रहे हैं।

चक्रवर्तीजी कहते हैं कि इसमें यदि कोई अपराध है तो मेरा है। मुझे उचित था कि इतना बड़ा कार्य करने के पहिले तुमसे सम्मति ले लेता। सो मैंने नहीं किया। उसका फल मिल गया। आजतक मेरा कोई मनोरथ विफल नहीं गया था। सो आज हुआ। अब रामजी का अभिषेक नहीं होगा।

रिस परिहरु अब मंगल साजू। कछु दिन गए भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुख लागा। बर दूसर असमंजस माँगा॥२॥

अर्थ : अब क्रोध छोड़कर मङ्गल साज सजाओ। कुछ दिन के बाद भरत युवराज होंगे। एक ही बात में मुझे दुःख हुआ। यह दूसरा वर तुमने बेतुका माँगा है।

व्याख्या : कैकेयी क्रोध से भरी हुई है। इसलिए कहते हैं कि क्रोध को छोड़ दो। क्रोध करने से विवेक नहीं रह जाता। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ। भूषण तो सज लिया है। अब मङ्गल भी साजो। कल तो नहीं हो सकता। भरत के आने पर उन्हें युवराज पद दूँगा। अतः पहिला वरदान मैं खुशी से देता हूँ।

दुःख तो मुझे दूसरे वरदान के देने में है। क्योंकि उसका तुक : सामञ्जस्य किसी भाँति नहीं बैठता। पहिले का तुक तो बैठ जाता है। भरत तुम्हारे और सुपुत्र हैं। उनके लिए तुम राज्य माँगती हो ठीक है। मुझे भी प्रिय है। परन्तु दूसरे वरदान से तुम्हें कोई लाभ नहीं और मेरी पीड़ा का कोई अन्त नहीं। अतः यह वरदान बेतुका है।

अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा। रिसि परिहास कि साँचेहु साँचा ॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू। सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू ॥३॥

अर्थ : उस आँच से अब भी हृदय जल रहा है। यह क्रोध है। हँसी है कि सचमुच सच्चा है। क्रोध छोड़कर राम का अपराध बताओ। सारी जनता कहती है कि रामजी अत्यन्त भले हैं।

व्याख्या : कैकेयी ने कहा था : जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारे। इस पर चक्रवर्तीजी कहते है कि शर की भाँति नहीं वज्र की भाँति लगा। यथा : दामिनि हनउ मनहु तरु तालू। बिजली से तलवार सी चोट नहीं होती। उससे आग लग जाती है। सो इस दूसरे वर से मेरे शरीर में आग लग गयी। अब भी उसकी आँच से हृदय जल रहा है। मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि जो तुम कह रही हो वही तुम्हारा अभिप्रेत है। ऐसी बात तो क्रोध के वेग में कही जाती है। उसकी सचाई क्रोध के वेग मात्र में ही रहती है या परिहास में कही जाती है। जिसकी सचाई परिहास मात्र में सीमित रहती है।

यदि यह बात सचमुच सच्ची है तो अवश्य रामजी से कोई ऐसा अपराध बन पड़ा है जिसका दण्ड तुम उन्हें इस भाँति दिया चाहती हो। तो उसे मैं भी सुन लूँ। जिसमें वरदान देने में मुझे सन्तोष हो कि जो मैं कर रहा हूँ सो ठीक कर रहा हूँ। सम्भव है कि बात समझने में कुछ चूक हो रही हो। क्योंकि सारी जनता राम की साधुता की प्रशंसा करती है। ऐसे साधु से इतना बड़ा अपराध नहीं हो सकता। जिसके लिए यह दण्ड दिया जाय और बड़े अपराध पर ही ऐसा क्रोध होता है कि अपराध बिना प्रकट किये दण्ड देना ही उचित मालूम पड़ता है। अतः क्रोध का परित्याग करके पहिले अपराध बतलाओ।

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू ॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥४॥

अर्थ : तू भी सराहना करती थी। प्रेम करती थी। अब सुनकर मुझे सन्देह

हुआ है। जिसका स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल पड़ता है। वह माता के प्रतिकूल आचरण कैसे करेगा ?

व्याख्या : रामजी की सराहना जैसा संसार करता है जैसा प्रेम करता है वैसा ही तू करती थी और आज तू उन्हें वन दे रही है। अतः वन देना सुनकर मुझे सन्देह हुआ कि बात क्या है कि एकाएक तेरे भाव में इतना बड़ा परिवर्त्तन हुआ। अवश्य रामजी से कोई बड़ा अपराध बन पड़ा।

पर यह भी नहीं हो सकता। रामजी का स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल पड़ता है। यथा : वैरिहु राम बड़ाई करहीं। ऐसे राम माँ के प्रातकूल आचरण करें यह हो नहीं सकता। कहीं समझने में भूल हो रही है।

दो. प्रिया हास रिस परिहरहि, माँगु बिचारि बिबेकु।
जेहि देखौं अब नयन भरि, भरत राज अभिषेकु ॥३२॥

अर्थ : प्रिये ! हँसी या रिस : इनमें से जो हो : छोड़ दो और विवेक विचार कर माँगो। जिसमें अब मैं भरत का राज्याभिषेक तो देख लूँ।

व्याख्या : हास्य या क्रोध में अतथ्य भी कहा जाता है। पर उसे कार्य में परिणत नहीं किया जाता। वर माँग लेने पर तो उसे कार्य में परिणत किया जायगा। अतः वर माँगने के समय स्वस्थ चित्त होकर माँगना चाहिए। अतः तुम भी विवेक पूर्वक विचार करके वर माँगे। पहिला वर मैंने दे दिया। अतः राम का अभिषेक नहीं देख सकूँगा। यदि दूसरा वर भी तूने वही रहने दिया तो भरत का अभिषेक तो होगा पर मैं न देख सकूँगा। जब से भरत आवें और शुभ मुहूर्त आवे उसके पहिले ही मेरा शरीर छूट जायगा। अतः ऐसा वर माँगो कि भरत के अभिषेकोत्सव को आँख भर देख लूँ।

जिअइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिअइ दुख दीना ॥
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं ॥१॥

अर्थ : चाहे मछली बिना जल के जीती रहे। बिना मणि के सर्प चाहे दुःख से दीन होकर जीये। मैं स्वभाव कहता हूँ मेरे मन में छल नहीं है कि मैं बिना राम के जी नहीं सकता।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी समझ रहे हैं कि इसे रामजी से द्वेष हो गया है। पर मेरे ऊपर तो ममता होगी ही। अतः कहते हैं कि मैं राम के बिना जी नहीं सकता। इस बात का ख्याल करके रामजी का वनवास मत माँगो। यह मत समझो कि अपने मरने का डर दिखाकर मैं तुम्हें दूसरे वरदान से विरत कर रहा हूँ। अतः मेरे मन में छल है। मैं वस्तुस्थिति कहता हूँ। जिस भाँति मछली बिना जल के जी नहीं सकती। मणि के बिना सर्प छटपटाकर प्राण दे देता है। उसी भाँति बिना राम के मैं जी नहीं सकता : पूर्वजन्म में जो वरदान माँगा था : मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहि अधीना। वही स्थिति इस जन्म में हो गयी है।

विश्वामित्र के साथ जब रामजी गये थे तब महाराज की स्थिति मणि बिनु फणि की सो हो गयी थी। यथा : सुत हिय लाइ दुसह दुःख मेटे। मृतक शरीर प्रान जनु भेंटे। अब जल बिनु मीनवाली स्थिति हो रही है। सच्चा स्नेह जल के साथ मीन का ही है। यथा : मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह। तुलसी केवल मीन को है सांचिलो सनेह। जो जिसके बिना प्राण धारण न कर सके वही स्नेह सच्चा है।

समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना ॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहु अनल आहुति घृत परई ॥२॥

अर्थ : हे प्रवीण प्रिये ! तू समझ कर देख कि मेरा जीवन रामजी के दर्शन के अधीन है। कोमल वचनों को सुनकर कुबुद्धि : कैकेयी और भी जल उठी। मानो आग में घी की आहुति पड़ रही हो।

व्याख्या : तू मेरी प्रियाओं में प्रवीण है। तू विचार कर देख कि क्या मेरा प्रेम राम के प्रति इस प्रकार का है कि मैं उन्हें बिना देखे जी सकूँगा : सभी जानते हैं कि महाराज बिना राम के नहीं जी सकते। यथा : नृप कि जिअव बिनु राम। महाराज ने पूर्व जन्म में जैसा वरदान माँगा था वैसी ही दशा का अनुभव कर रहे हैं।

ये अत्यन्त कोमल वचन थे। सुमति के द्रवीभूत करने के लिए यथेष्ट थे। पर कैकेयी भी तो कुमति का स्वरूप हो गयी थी। वह एक एक बात पर इस भाँति भभक उठती थी जैसे घी की आहुति से आग भभकती है। कोमल वचन क्रोधाग्नि में घी की आहुति का काम कर रहे हैं। वह सोचती है कि :

१. स्वयं जो प्रीति प्रतीत की हानि की उसे नहीं विचारते और मुझे विचारने को कहते हैं।

२. अपनी इस करणी को नृपनीति बतलाते हैं।

३. कौसल्या को निर्दोष सिद्ध करने के लिए सब दोष अपने ऊपर ले रहे हैं।

४. राम पर इतना प्रेम है और भरत विदेश में हैं। इसकी चिन्ता ही नहीं है। यह जो कुछ कह रहे हैं वह सब राम को घर रखने का उपाय है। मैं अपने सरल स्वभाव से बहुत ठगी गयी। कुबरी ने ठीक कहा था : मन मलीन मुहु मीठ नृपु।

कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥३॥

अर्थ : चाहे करोड़ों उपाय करो पर यहाँ आप की माया नहीं चलेगी। या तो दो या नहीं कहकर अपयश लो। मुझे बहुत प्रपञ्च अच्छा नहीं लगता।

व्याख्या : रानी कुबरी की एक एक बात को गाँठ बाँधे। है उसने कहा था : काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। सो सब वह अपने समझ में राजा

पर विश्वास न करके सजग होकर अपना काम सँवार रही है। कहती है कि अभी तो तुमने दो ही उपाय किया। एक तो राम के वनवास को वरदान से हटाकर जाँच पड़ताल का विषय बनाकर राजा की भाँति निर्णय करना चाहते हो। दूसरे वैधव्य का डर दिखाकर मुझे अपने निश्चय से हटाना चाहते हो। सो होने का नहीं। करोड़ उपाय से भी मैं अपने निश्चय से नहीं हट सकती। तुम अपनी माया के बोल से सत्यवादी बने हो। सब जगह तुम्हारी माया चल गयी पर यहाँ वह माया काम नहीं करेगी।

महाराज वाणी सविनय तासु सोहाती बोले थे। उसे वह प्रपञ्च बतला रही है। कहती है कि यह सब प्रपञ्च है। तुम्हें प्रपञ्च अच्छा लगता है। मुझे नहीं अच्छा लगता : भाव यह कि महराज ने कहा था कि कहौं सुभाउ न छल मनमाहीं। रानी ठीक उसके विपरीत समझ रही है कि यह सब छल है। मैंने पहिले ही कहा था कि माँगु माँगु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु। सो इस बार तो देना पड़ेगा। या दो या स्पष्ट नहीं कहकर अपयश लो।

रामु साधु तुम्ह साधु सयानें। राम मातु भलि सब पहिचानें ॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥४॥

अर्थ : राम साधु हैं और तुम सयाने साधु हो और सबने पहचान लिया है कि राम की माता भली हैं। कौसल्या ने जैसा मेरा भला चाहा है वैसा ही फल उन्हें ऐसा दूँगी कि शाका चल जाय।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी का रामजी के विषय में यह कहना : लोभ न रामहि राजकर और अपने प्रति यह कहना : कहउँ सुभाउ न छल मनमाहीं तथा कौसल्याजी के लिए यह कहना कि राम मातु कछु कहेउ न काऊ कैकेयी को बहुत ही बुरा लगा। वह व्यङ्ग्य लिये हुए कहती हैं कि राम को राज का लोभ नहीं है। राम साधु हैं और तुम उनके पिता हो। इसलिए सयाने साधु हो। अपना काम साधना खूब जानते हो और राम की माता भली हैं। वे कुछ कहती सुनती नहीं। यह सब बातें किसी से छिपी नहीं हैं। इस षड्यन्त्र का पता सबको है। डर से भले ही कोई कुछ न कहे। मेरी सिधाई का फायदा उठाकर सब मेरा नाश चाहते हैं। इस षड्यन्त्र की मूल कौसल्या हैं। अतः उन्हें ऐसा फल दूँगी कि उसका शाका चल जाय। लोगों को यह घटना ऐसी चित्त पर खिच जाय कि उस समय से दूसरी घटनाओं का समय लोग निश्चय करने लगें। यथा : अमुक घटना राम वनवास के दो वर्ष बाद हुई या इतने दिन पहिले हुई इत्यादि।

दो. होत प्रातु मुनिबेष धरि, जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजसु, नृप समुझिअ मन माहीं ॥२३॥

अर्थ : सवेरा होते ही मुनिवेष धारण करके यदि राम वन न जायँगे तो राजन्! मैं प्राण दे दूँगी और आप का अयश होगा। इस बात को मन में विचारिये।

व्याख्या : सवेरे आप दूत भेजेंगे। भरत आवेंगे। सुदिन देखा जायगा। तब भरत को गद्दी होगी। यह तो दूर की बात है। सबेरा होते ही पहिले राम को वन भेजिये। दूत को पीछे भेजियेगा। वे मुनि का वेष धारण करके जायँ। संसार देख ले कि कपट से राज्य चाहनेवालों की ऐसी गति होती है। कौसल्या देख लें कि जिस पुत्र को उन्होंने राज वेष में देखना चाहा था वह तपस्वी वेष में वनवास के लिए जा रहा है। आप कहते हैं कि राम वन जायँगे तो मैं मर जाऊँगा। मैं कह रही हूँ कि राम वन न जायँगे तो मैं प्राण दे दूँगी और आपकी मरने से कहीं अधिक दुर्गति होगी। यथा : संभावित कहुँ अपजसु लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। राजा हो मन में विचार करो। मुझे कहते हो : समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना। आप स्वयं विचार क्यों नहीं करते। महाराज प्रिया प्रवीणा कहते हैं। कैकेयी प्राणपति अब नहीं कहती नृप कहती हैं।

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर कुटिल उठकर खड़ी हो गयी। मानो क्रोध की नदी में बाढ़ आगयी हो। वह पाप के पहाड़ से निकली है। क्रोध जल से भरी हुई है। देखते नहीं बनता।

व्याख्या : कुटिल है। समझती है कि बातचीत बढ़ाने से अपनी जगह से हटना पड़ेगा। अतः बात खतम करती है। क्रोध के वेग से खड़ी हो गयी। मानो नदी में बाढ़ आगयी। पहिले कहा था : मनहु रोष तरवारि उघारी। अब क्रोध का वेग उमड़ चला। इससे कहते हैं तरंगिनि बाढ़ी। क्रोध में मुख की आकृति विकृत हो जाती है। अतः ऐसी भयानक मालूम होती है कि देखते नहीं बनता।

चित्तनदी उभयतोवाहिनी कल्याणवहा पापवहा च। चित्त नदी दोनों ओर बहती है कल्याणवहा और पापवहा। यथा : त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी। पापबहा यथा : मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी।

नदी पहाड़ से प्रकट होती है। सो पुण्यपहाड़ से कल्याणवहा उद्गम स्थान है और पाप [1]पहाड़ पापवहा का उद्गम स्थान है। नदी में जल भरा रहता है। इस पापवहा नदी में क्रोधरूपी जल भरा है।

दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥२॥

अर्थ : दोनों वर किनारे हैं। कठिन हठ धारा है। कूबरी के वचन का प्रचार भँवर है। राजारूपी वृक्ष के मूल को ढहाती हुई विपत्ति के समुद्र की ओर चली।

---

१. ऋषिकुमार का वध तथा उनके माता पिता का अग्निप्रवेश यही पाप पहाड़ है।

व्याख्या : नदी सदा दो किनारों के बीच से बहती है। सो इस पापवहा नदी के दोनों वर : भरत को राज्य और राम को वनवास दोनों किनारे हैं और हठधार दोनों कूलों का अवगाहन करता चलता है। उस हठधार में जहाँ तहाँ कूबरी के वचन का चमत्कार दिखाई पड़ता है। वही मानों इस नदी का भँवर है। कूबरी कुटिल उसकी उक्ति कुटिल। अतः उसके वचन का प्रभाव जो हठ की धारा में दृष्टिगोचर होता है उसकी उपमा भँवर से दी गयी।

जब नदी बढ़ती है तो किनारे पर के पेड़ की जड़ को धो देती है और पेड़ जा पड़ता है। यह पापवहा नदी राजा रूपी पेड़ के जड़ को गिराती हुई विपत्ति के समुद्र की ओर को उन्मुख हुई। नदी को समुद्र छोड़कर दूसरी गति नहीं। इसी भाँति पापवहा नदी को भी विपत्ति के समुद्र को छोड़कर अन्यगति नहीं है। अर्थात् अब यह क्रोधतरंगिणी विपत्ति के समुद्र में बिना पहुँचे कहीं रुक नहीं सकती।

लखी नरेस बात फुरि साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाँची ॥
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी ॥३॥

अर्थ : राजा ने लखा कि बात तो सचमुच सच्ची है। स्त्री के व्याज से मौत सिरपर नाच रही है। तब राजा ने कैकेयी के चरण पकड़ लिये और बिठलाया कहा कि : सूर्यकुल के लिए तू कुल्हाड़ी मत बन।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी ने लखा कि मृत्यु तो आगयी। रानी निमित्त मात्र है। क्योंकि राम को वन माँगना रिसि परिहास में सत्य नहीं है। सचमुच सत्य है। अब जो यह यहाँ से चली जाती है तो बात खतम हो जाती है। यदि ठहरे तो और भी प्रयत्न किया जाय और यह अब आज्ञा देने से नहीं रुकेगो। अतः चरण पकड़ लिया। विनय किया कि बैठ जाओ। रानी इतने क्रोध में भी पति के इस भाँति विनय की अवहेलना न कर सकी। बैठ गयी। तब कहा कि सूर्यकुलरूपी वन के विध्वंस के लिए तू कुल्हाड़ी बनने का अपयश अपने ऊपर मत ले। रामचन्द्र के वन जाने से सूर्यकुल नष्ट हो जायगा। इस भाँति दूसरे वन में सङ्कोच करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

माँगु माथ अबहीं देउँ तोही। राम बिरह जनि मारसि मोही ॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँति। नाहि त जरिहि जनम भरि छाती ॥४॥

अर्थ : सिर माँग मैं अभी : उतारकर : देता हूँ। पर रामजी के विरह में मुझे मत मार। रामजी को जिस किसी भाँति रख ले। नहीं तो जन्म भर छाती जलेगी।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी कहते हैं कि मुझे मरने का भय नहीं है। जो तू कहती है : सिवि दधीचि बलि जो कुछ भाखा। तन धन तजेउ बचन पन राखा। सो मैं भी कहता हूँ कि तू सिर माँग। देख मैं उतारकर देता हूँ. कि नहीं। पर राम के विरह में घुल घुलकर मैं मरना नहीं चाहता। यहाँ राम के वन का प्रश्न नहीं है। मेरे मरने जीने का प्रश्न है। अतः राम को वन न जाने दे। मेरे सामने तापस वेष

विशेष उदासी रूप में ही सही रहने दे। मुझसे अलग न होने दे। यदि न मानेगी तो तुझे भी जन्म भर पछताना पड़ेगा।

दो. देखी ब्याधि असाधि नृपु, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ ॥३४॥

अर्थ : राजा ने देख लिया कि रोग असाध्य है। तब परम आरत वचन राम राम रघुनाथ कहते हुए सिर पीट पीटकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

व्याख्या : पहिले लखा था कि स्त्री के बहाने मौत आगयी और लोगों को रोग के बहाने मौत आती है। सम्भव है कि स्त्री रूपी रोग कष्टसाध्य हो। अतः उसके उपशम का उपाय किया। चरण पकड़कर बैठाया। ऊँचा नीचा समझाया। पर वह टस से मस नहीं हुई। सिर देने पर तैयार हुए। राजा शिवि के सिर देने पर तैयार होने पर बाज मान गया। पर यह नहीं मानती। तब राजा ने देख लिया कि रोग असाध्य है। यह घुला घुलाकर ही प्राण लेगा। अतः अपने परम प्रिय को स्मरण करते हुए सिर पीटकर पृथ्वी पर गिर गये। अब चिकित्सा का प्रयत्न करेंगे। परेउ धरनि से शरीर की गति कही। धुनि माथ से मन की गति कही। कहत परम आरत बचन से वाणी की गति कही।

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहु निपाता॥
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीनु बिनु पानी॥१॥

अथ : राजा व्याकुल है। अङ्ग सब ढीले पड़ गये। मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को जड़ से उखाड़ डाला। कण्ठ सूखने लगा। मुख से शब्द नहीं निकलते। जैसे पहिना : मछली बिना जल के दीन हो जाय।

व्याख्या : हथिनी क्या जाने कि कल्पवृक्ष में क्या गुण है। उसने उसे उखाड़ कर फेंक दिया। उसे यह भी ख्याल नहीं है कि इसके उखाड़ने से संसार की कितनी बड़ी हानि हुई। उखड़ने पर कल्पवृक्ष की क्या दशा है। इस पर उसे पश्चात्ताप भी नहीं। राजा का मनोरथ कल्पवृक्ष था। यथा : मोर मनोरथु सुरतरु फूला। राजा उसकी जड़ थे। यथा : ढाहत भूप रूप तरु मूला। सो कैकेयी रूपी हथिनी ने मनोरथ के सहित राजा को समूल वृक्ष की भाँति उखाड़ फेंका। अब चक्रवर्तीजी की दशा उखड़े हुए वृक्ष की सी हो गयी।

अब राम राम रघुनाथ नहीं कहते हैं। क्योंकि गला सूख गया। शब्द ही नहीं निकलता। जल बिनु मीन की दशा हो गयी। मणि बिनु फणि की दशा तो पहिले थी। अब तो चक्रवर्तीजी बिना जल के पहिना मछली की भाँति छटपटा रहे हैं।

पुनि कह कटु कठोरु कैकेई। मनहुँ घाय महुँ माहुरु देई॥
जौं अंतहु अस करतबु रहेऊ। माँगु माँगु तुम्ह केहि बल कहेऊ॥२॥

अर्थ : फिर कैकेयी ने कठोर कटु कहा मानो घाव में विष दे रही है। यदि अन्त में तुम्हें यही करना रहा तो माँग माँग किस बूते पर तुमने कहा ?

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : असि मारेसि मोहि कुठाँव । अब उसी तलवार के घाव में विष दे रही है। रक्त से विष का सम्बन्ध हो जाने से विष तुरन्त प्राण लेता है। खाने से तो पाक होने पर मारक होता है। अतः कैकेयी की कठोर कटु उक्ति की उपमा घाव में विष देने से दे रहे हैं। उसे राजा की इस दीन दशा पर दया नहीं आयी । बल्कि उसका क्रोध और बढ़ा कि सौत के लड़के पर इतना प्रेम है। मेरे लड़के की चिन्ता इन्हें नहीं है। अतः कहने लगी कि यदि अन्त में तुम्हें पैर पकड़कर विनती ही करनी रही तो माँग माँग किस बूते पर कहा। तब तो ऐसा बोलते रहे जैसे आकाशवाणी हो : माँगु माँगु तब भै नभ वाणी । अब पैर पकड़ते विनती करते हो ।

दुइ कि होहिं एक समय भुआला । हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई । होइ कि खेम कुसल रौताई ॥३॥

अर्थ : राजन् ! क्या ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाना दोनों बातें एक ही समय में हो सकती हैं ? दानी कहलाना चाहते हो और कृपणता भी करते हो । राजापन में कहीं कुशल क्षेम हो सकता है ।

व्याख्या : शोक और हर्ष प्रसन्नता और अप्रसन्नता यह दोनों भाव एक दूसरे के अत्यन्त विरुद्ध है। हर्ष में आदमी हँसता है और शोक में रोता है। प्रसन्नता से अट्टहास करता है और अप्रसन्न होकर गाल फुलाता है। यह दोनों बातें युगपत् हो नहीं सकती । कहाँ यह कहना : कहु केहि रंकहि करउँ. नरेसू । कहु केहि नृपहिं निकासउँ देसू । कहाँ यह कहना कि राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँति । यही ठठाकर हँसने के साथ गाल फुलाना है ।

सकुच विहाइ माँगु नृप मोही । मोरे नहिं अदेय कछु तोहीं । ऐसी वाणी दानी के मुख से शोभा देती है और माँग कहकर माँगने पर सङ्कोच करने को कहना कृपिण का काम है। कृपणता करनेवाले को दानी कहलाने की इच्छा नहीं होनी चाहिए। राजापन में क्षेम कुशल कहाँ ? कुशल क्षेम तो बनियापन में होता है।

छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू । जनि अबला जिमि करुना करहू ॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी । सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी ॥४॥

अर्थ : या वचन छोड़ो या धीरज धरो । औरतों की तरह रोओ मत । शरीर, स्त्री, बेटे, धन, घर, जमीन ये सब सत्यसन्ध के लिए तिनके के बराबर कहे जाते हैं।

व्याख्या : रानी कैकेयी उपर्युक्त कठोर वचन कहकर अब कटुकठोर कहती है कि वचन छोड़ दो । इसमें कौन बात है। यदि बात का पास है तो धैर्य धरो। मर्द की तरह काम करो। रो गाकर काम निकालना तो स्त्रियों का काम है। सत्यसन्ध होना दिल्लगी नहीं है। सत्यसन्ध के लिए शरीर क्या है ? स्त्री क्या है ?

बेटे क्या हैं ? घर क्या चीज है ? और धन धरणी क्या है ? तुम्हें तो सबका सोच है । तन का सोच यथा : समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना । जीवनु राम दरस आधीना ।

तिय का सोच यथा : राम मातु कछु कहेउ न काऊ ।
तनय का सोच यथा : राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती ।
धाम, धन, धरनी का सोच यथा : अवध उजार कीन्हि कैकेयी ।

दो. मरम बचन सुनि राउ कह, कहु कछु दोषु न तोर ।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि, कालु कहावत मोर ॥३५॥

अर्थ : मर्म वचन सुनकर राजा ने कहा कि तेरा दोष कहीं कुछ भी नहीं है । मेरी मृत्यु तुझे पिशाच की भाँति लगी हुई है । वही यह सब कहला रही है ।

व्याख्या : महाराज कैकेयी के स्वभाव से भली भाँति परिचित हैं । यह ऐसी थी नहीं । यह ऐसा कह सकती नहीं । ये सब बातें यह अपने होश में नहीं कह रही है । मेरी मृत्यु इसे पिशाच की भाँति लग गयी है । वही इससे ये बातें कहला रही है । पिशाच लगने पर वह मनुष्य होश में नहीं रहता । उसके मुख से पिशाच बोलता है । कैकेयी ने सदा महाराज को सेवा वश कर रक्खा था । ये अरुन्तुद बातें उसके स्वरूप के सर्वथा प्रतिकूल थीं ।

चहत न भरत भूप[1] तहि भोरें । बिधि बस कुमति बसी जिय तोरें ॥
सो सबु मोर पाप परिनामू । भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू ॥१॥

अर्थ : भरत भूलकर भी राजा होना नहीं चाहते । विधिवश तेरे हृदय में कुमति बस गयी है सो सब मेरे पाप का फल है जो बेमौके ब्रह्मा बायें हो गये ।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं : कछुक दोष नहिं तोर । उसी को स्पष्ट करते हैं कि जिस भरत के लिए तू सब कर रही है वे भूलकर भी राज्य नहीं चाहते । होनहार बुरा है इसलिए तेरे हृदय में कुबुद्धि आ बसी है । क्योंकि पहिले तेरी बुद्धि ऐसी नहीं थी । तेरी ऐसी बुद्धि के एकाएक ऐसा हो जाने का कारण मेरा पाप है । ब्रह्मदेव तो शुभाशुभ कर्म के फल देनेवाले हैं । उसी पाप का फल देने के लिए कुअवसर में बायें हो गये । यही बात रामजी को राज देने के लिए कहलाने के पहिले हुई होती तो दूसरी बात थी : कहेउ राज बन दियो नारि बस गरि गलानि गये राउ । इतना समय नहीं है कि भरत को बुलवा सकूँ । अतः यह मेरे पाप के कारण हो रहा है । तेरा दोष नहीं है । ब्रह्मदेव के बायें होने से मृत्यु होती है । सो यदि रणाङ्गन में वीरगति हो तो वह ब्रह्मदेव का सुठाहर में बायें होना कहा जायगा । प्रियतम के विरह में प्राण त्याग और संसार में स्त्रैण होने की अपकीर्ति का होना ब्रह्मदेव का कुठाहर में बायें होना है ।

———

१. भूपतित्व शब्द में प्रकृतिप्रत्ययसन्धिर्लोपविकारागमाश्च वर्णानाम् से ति का लोप हुआ और सर्वत्र लवराम् इस सूत्र से 'वकार' का लोप होकर 'भूपत' रूप हो गया ।

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई । सब गुन धाम राम प्रभुताई ॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुँ पुर रामु बड़ाई ॥२॥

अर्थ : सुन्दर अयोध्या फिर स्वच्छन्द होकर वसेगी। सब गुणों के धाम रामजी की प्रभुता होगी। सब भाई सेवकाई करेंगे। तीनों लोक में रामजी की प्रशंसा होगी।

व्याख्या : अब चक्रवर्तीजी भविष्य कहते हैं। जो तू चाहती है वह तो होना नहीं है। होगा यह कि मैं तो रहूँगा नहीं। अयोध्या रामके वन जाने से एक बार अवश्य उजड़ जायगी। परन्तु फिर स्वच्छन्द होकर वसेगी। राम सब्रगुणधाम हैं। वे ही राजा होंगे और भाई लोग उनकी सेवा करेंगे। रामजी का यश इतना बढ़ेगा कि तीनों लोक में फैल जायगा। क्योंकि सब विधि सब लायक हैं।

तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुँहु गोई ॥३॥

अर्थ : तेरा कलङ्क और मेरा पश्चात्ताप मरने पर भी नहीं मिटेगा और सदा बना रहेगा। अब जो तुझे अच्छा लगे सो कर। मेरी आँख के ओट होकर मुँह छिपाकर बैठ।

व्याख्या : तेरे कलङ्क और मेरे पश्चात्ताप का शाका अलबत्ता चलेगा। संसार कहेगा कि कैकेयी ने इतना बड़ा अनर्थ कर डाला और राजा उसी पश्चात्ताप में मर गये। हम लोगों के मरने पर भी लोग स्मरण रक्खेंगे। यह इतिहास हो जायगा और यावच्चन्द्रदिवाकरौ लोग इसे न भूलेंगे। यही होना है अब जो तेरे जी में आवे सो कर। मैं नहीं रोकता। जाना हो तो जा। रहना हो तो रह। पर मेरे सामने से हट जा। तू किसी के सामने मुँह दिखाने लायक नहीं रह गयी। अतः मुँह छिपाकर कहीं बैठ। जो महाराज कहते थे : मन तव आनन चंद चकोरू। वही आज उसका मुँह देखना नहीं चाहते हैं।

जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ॥
फिर पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारू लागी ॥४॥

अर्थ : हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता हूँ तब तक फिर कुछ न वोलना। अरे अभागी ! अन्त में फिर तू पछतायेगी। तू ताँत के लिए गोवध कर रही है।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी कहते हैं कि मेरा अन्तकाल सन्निकट है। अतः जब तक जीता हूँ तब तक फिर कुछ न कहना। दण्ड देने का अवसर नहीं है। अतः हाथ जोड़ते हैं। तेरी वाणी अब मेरे कर्णगोचर न हो। तेरे शब्द भी सुनना नहीं चाहता।

नहारु कहते हैं ताँत को। पुमे नहारु च सिरा धमन्यथ रसागसा : अभिधानप्पदीपिकायाम् श्लोक. २७९। ताँत राग बजाने के काम आता है। यथा : बाज

सुराग कि गाँडर ताती। बूढ़ी गाय या भैंस के ताँत से ही अच्छा राग बजता है। अतः अच्छा राग बजाने के लिए जिसने परमपूज्य गोमाता का वध किया वह अभागा गोहत्या लगने पर पीछे पछताता है। कैकेयी की भी यही दशा है। भरत राजा होना नहीं चाहते। पर यह राजमाता कहलाने का आभिमानिक सुख चाहती है। इस मनोविनोद के लिए परमपूज्य पति का वध कर रही है। इसीलिए चक्रवर्तीजी उसे अभागिनी कहते हैं। जो अल्प के लिए बड़ा भारी दुःख और अपयश मोल ले रही है।

दो. परेउ राउ कहि कोटि बिधि, काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसानु ॥३६॥

अर्थ : राजा करोड़ों भाँति से कहकर कि : बात : क्यों समाप्त करती हैं। गिर पड़े। पर कपट करने में चतुर : कैकेयी कुछ बोलती ही नहीं। मानो मसान जगा रही है।

व्याख्या : राजा घर का मामला निपटाना चाहते हैं। इसलिए कारण पूछते हैं। कैकेयो विचार करने कराने के लिए तैयार नहीं हैं। वह राजा से हाँ या नहीं कराना चाहती है। कपट सयानी है। समझती है कि यहाँ पर कुछ भी कहने से मुझे अन्त में अपने निश्चय से हटना ही पड़ेगा। अतः ऐसी चुप्पी साधे हुए है। जैसे मसान जगाने वाले मौन साधकर बैठते हैं। उनके सामने चाहे जैसा दृश्य उपस्थित हो उसके ओर ध्यान न देकर धैर्य धारण किये हुए मौन होकर अपने साध्यपर ही दृष्टि लगाये रहते हैं।

यद्यपि निदान आदि कारण के अर्थ में आता है। पर इस ग्रन्थ में समाप्ति के अर्थ में भी आता है। यथा : देहि अगिन तन करहुँ निदानू। कार्य का कारण-दशा को प्राप्त होना ही उसकी समाप्ति है।

राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बहालू॥
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहइ जनि कोई ॥१॥

अर्थ : राम राम रटते हुए राजा विकल हैं। जैसे बिना पंख के पक्षी विकल हो। मन में मनाते हैं कि सवेरा न हो। रामजी से जाकर कोई कह न दे।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी को राम राम की रट लगी है। उन्हें अत्यन्त व्याकुलता में सिवा रामजी के कुछ सूझता नहीं है। उन्हें बड़ी बेचैनी है जैसी पक्षहीन पक्षी को होती है। पक्षी का तो सर्वस्व पक्ष ही है। उसके न होने से वह नितान्त असमर्थ दीन हीन हो जाता है। उसे चारों ओर मृत्यु ही दिखाई पड़ती है। कुछ करते नहीं बनता। अत्यन्त विकल होकर चें चें' किया करता है। यही गति राजा की हो रही है। अत्यन्त विकल हैं। राम राम की रट लगाये हैं।

अति अनिष्ट भावी को सन्निकट देखकर उपायहीन आर्तपुरुष असम्भव के लिए प्रार्थना करता है। मन ही मन मनाते हैं कि सवेरा न हो। क्योंकि सवेरा

होते ही यह बात छिपी नहीं रह सकती। अयोध्या भर में फैल जायगी। कोई जाकर रामजी से भी कह देगा। वे उत्तम पुत्र हैं। मेरे बिना कहे ही वन चले जायेंगे।

उदउ करहु जनि रबि रघुकूल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर ॥
भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई ॥२॥

अर्थ : हे रघुकुल गुरु ! सूर्यं को उदय न करो। अयोध्या को देखकर कलेजे में शूल होगा। राजा की प्रीति और कैकेयी की कठिनता दोनों ब्रह्मा ने ऐसी रचकर बनायी कि हद हो गया।

व्याख्या : ईश्वर की नियति तो रुक नहीं सकती। वह तो होकर ही रहेगी। सवेरा तो होगा ही। सूर्य का उदय होना कौन रोक सकता है। इस पर गुरुभक्त राजा को कुलगुरु याद आये। यही विधि गति सदा से छेंकते आये हैं। यथा : सो गोसाइँ जेहि बिधि गति छेकी। अतः उनसे प्रार्थना करते हैं : गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात्परं ब्रह्मतस्मै श्रीगुरवे नमः। आप सूर्य उदय न करें। क्योंकि सजी हुई अयोध्या देखकर हृदय में शूल उठेगा। कोई रघुकुलगुरु को रवि का विशेषण मानते हैं। पर यदि ऐसी बात होती तो उदित होउ जनि पाठ होता उदय करहु जनि न होता।

कवि कहते हैं कि राजा की सी प्रीति भी कहीं नहीं देखी गयी और न कैकेयी की सी कठिनाई कहीं देखी गयी। मालूम होता है कि इन्हें स्वयं ब्रह्मदेव ने रचकर बनाया कि ये दोनों संसार में बेजोड़ हों। नहीं तो ऐसी प्रीति के सामने कठिनाई ठहर नहीं सकती। हृदय द्रवीभूत हुए बिना रह नहीं सकता। पर कैकेयी का हृदय न पसीजा।

बिलपत नृपहिं भयउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा ॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहिं जनु लागहिं सायक ॥३॥

अर्थ : राजा को विलाप करते करते सवेरा हो गया। द्वार पर वीणा, वंशी और शङ्ख की ध्वनि हुई। भाट विरद बोलने लगे। गवैया गुणगान करने लगे। सुन सुनकर राजा के हृदय में मानों वाण लग रहे हैं।

व्याख्या : इसी भाँति विलाप करते रात बीत चली। समय की गति रुकती नहीं। सवेरा हो ही गया। राजाओं के जगाने के लिए पहिले वीणा बजायी जाती है। तब उससे अधिक स्वरवाली वंशी बजायी जाती है। अन्त में शङ्खध्वनि होती है। जिससे निश्चय नींद टूट जाती है। उसके बाद स्फूर्ति उत्पन्न करने के लिए बन्दी विरद बोलते हैं। राजोचित गुणों की याद दिलाने के लिए गायक गुणगान करते हैं। यह सब राजाओं के यहाँ के प्रातःकाल के कृत्य हैं। ये सब इसलिए किये जाते हैं जिसमें महाराज सुखपूर्वक जागें और नित्यकृत्य में लग जायँ।

परन्तु आज तो इनसे उलटा काम हो रहा है। जे हित रहे करैं सोइ पीरा वाला हाल हो रहा है। ये एक एक सुख के साधन शराघात की भाँति पीड़ा दे रहे हैं। वीणा वेणु शङ्ख ने पुकारकर कह दिया कि सवेरा हो गया। बन्दी बोले कि सत्यसन्ध महाराज की जय हो! गवैयों ने गुण गाये कि महाराज के यश से दिगन्त व्याप्त हो रहा है। आज ये सब बातें परिस्थिति के प्रतिकूल पड़ रही हैं। इसीलिए शराघात का काम कर रही हैं।

मंगल सकल सोहाहिं न कैसें। सहगामिनिहि बिभूषन जैसें ॥
तेहि निसि नींद परी नहि काहू। राम दरस लालसा उछाहू ॥४॥

अर्थ : ये सब मङ्गल कैसे अच्छे नहीं लग रहे हैं जैसे सती होनेवाली स्त्री के गहने। उस रात को किसी को नींद नहीं पड़ी। सबको : रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह था।

व्याख्या : जिसे पति की वियोगाग्नि ऐसो बढ़ी हुई है कि लौकिकाग्नि शीतल मालूम होती है उसे भूषण का आभिमानिक सुख कैसे हो सकता है? इसी भाँति महाराज को ये मङ्गल अच्छे नहीं लग रहे हैं। अथवा जैसे सती के आभूषण से शृङ्गाररस की भावना नहीं होती प्रत्युत सती अपने शरीर को अग्नि के अर्पण करेगी ऐसी भावना जाग्रत् होती है। वह अपने पति का अनुगमन करेगी यह सोचकर निर्वेद उत्पन्न होता है। इसी भाँति सब मङ्गल सती का गहना हो गया। क्योंकि अयोध्या अपने पति का अनुगमन करेगी। यथा : अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।

सोया तो उस रात को कोई नहीं। महाराज विषाद के कारण नहीं सोये। कैकेयी क्रोध के मारे नहीं सोयी और लोग रामजी के दर्शन की लालसा तथा उत्साह के कारण नहीं सोये।

दो. द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुँ न अवधपति, कारनु कवनु बिसेखि ॥३७॥

अर्थ : द्वार पर सेवक और मन्त्रियों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। सूर्य को उदय हुआ देखकर कहते हैं कि जगत्पति अब भी नहीं जागे। ऐसा कौन विशेष कारण पड़ गया।

व्याख्या : आज अभिषेक का दिन है। राज्यभर के कामदार तथा मन्त्री कैकेयी के महल द्वार पर एकत्रित हो गये। क्योंकि महाराज उसी महल में हैं। सूर्योदय के बहुत पहिले से लोग जुट गये। आज महाराज भी जल्द उठेंगे। क्या जाने किसको कब कौन सी आज्ञा हो। अतः सभी उपस्थित हैं। पर सूर्य निकल आये। महाराज नहीं उठे। शंखध्वनि ने भी काम नहीं किया। अतः सबको न उठने का विशेष कारण जानने की उत्कण्ठा हुई।

पछिलें पहर भूपु नित जागा। आजु हमहिं बड़ अचरजु लागा ॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिअ काजु रजायसु पाई ॥१॥

अर्थ : पिछले पहर महाराज सदा जग जाते हैं। हमलोगों को बड़ा आश्चर्य हो रहा है। सुमन्त्रजी आप जाकर जगाइये और राजाज्ञा प्राप्त करके काम कीजिये।

व्याख्या : दिन कार्य करने के लिए और रात्रि विश्राम के लिए है। पर रात्रि का नाम ही त्रियामा है। तीन पहर तक की रात में गिनती है। बाद उसके दिन माना जाता है। सो एक पहर रात रहते ही महाराज नित्य जाग जाते थे। आज अभिषेक का दिन है। आज तो और भी सवेरे जगना चाहता था। महाराज नियम के बड़े पक्के हैं। उनके नियम में भङ्ग होना आश्चर्य है और विशेषतः आज के दिन ऐसा होना तो और भी आश्चर्य की बात है।

क्या माजरा है। बात समझ में नहीं आती। कोई दासी बाहर नहीं आ रही है। जिससे कुछ कहलाया जाय और कोई भीतर जा नहीं सकता। केवल सुमन्त्रजी को कहीं रोक नहीं है। ये मन्त्री होने के साथ ही साथ सारथि और सखा भी हैं। अतः सब लोग सुमन्त्रजी से कहते हैं कि अब बिना राजा के जगाये काम नहीं चलता। जगाने के अन्य उपाय सब हो चुके। वीणा बजी। वंशी बजी। शङ्ख बजा। बन्दियों ने विरुदावली कही। गायकों ने गान किया। सूर्यनारायण भी उदय हो गये। अब तो यही शेष है कि आप राजमहल में जाकर स्वयं महाराज को जगावें। यदि भगवान् न करें महाराज अस्वस्थ हों तो काम तो नहीं रुकना चाहिए। आप राजाज्ञा पाकर काम करिये।

गये सुमंत्रु तब [1]राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं ॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहु बिपति बिषाद बसेरा ॥२॥

अर्थ : तब सुमन्त्र जी महल में गये। सो ऐसा भयानक दिखाई पड़ा कि जाने में डर लगने लगा। मानो : वह स्थान : खाने दौड़ता है। देखते नहीं बनता। जैसे विपत्ति और विषाद का डेरा पड़ा हुआ है।

व्याख्या : सबकी आज्ञा शिरोधार्य करके सुमन्त्रजी राजमहल में गये। कहाँ तमाम नगर में उछाह और चहल पहल और कहाँ यहाँ का सन्नाटा उदासी देखकर सुमन्त्रजी को आगे बढ़ने में भय का सञ्चार होने लगा। परिस्थिति की विषमता का ऐसा प्रभाव पड़ा कि सुमन्त्रजी को मालूम होने लगा कि वह स्थान खाने दौड़ रहा है। देखते नहीं बनता। मानो राजलक्ष्मी ने इसे त्याग दिया और विपत्ति विषाद ने डेरा जमा लिया।

पूछे कोउ न ऊतरु देई। गये जेहि भवन भूप कैकेई ॥
कहि जयजीव बैठ सिर नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई ॥३॥

---

१. राजकुल शब्द के ज और क के लोप से राउर शब्द सिद्ध होता है।

अर्थ : पूछने पर कोई उत्तर नहीं देता। तब उस घर में गये जहाँ महाराज और कैकेयी थी। जय जीव कहकर माथा नवाया और बैठे। राजा की दशा देखकर सूख गये।

व्याख्या : सीधे शयनगृह में गये तो वहाँ कोई नहीं। दासियों से पूछते हैं क्या बात है ? महाराज कहाँ हैं ? कोई कुछ बोलता ही नहीं। मानो सब गूँगे बहरे हैं। सब अत्यन्त भयभीत हैं कुछ भी बतलाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने का साहस नहीं कर रहे हैं। तब राजा को खोजते खोजते कोपभवन में गये। जयजीव कहकर अभिवादन किया। सुमन्त्र महाराज के अभिन्नहृदय सखा हैं। अत्यन्त प्रेम करते हैं। महाराज की दशा देखकर सूख गये। अब दशा कहते हैं।

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ ॥
सचिउ सभीत सकै नहिं पूछी। बोली असुभ भरी सुभ छूछी ॥४॥

अर्थ : शोक से विकल हैं। रंग बेरंग है। पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। जैसे कमल की जड़ उखड़ गयी हो। मन्त्री डर के मारे कुछ पूछ नहीं सकते। तब अशुभ से भरी हुई शुभ से रीती : कैकेयी बोली।

व्याख्या : महाराज शोक से विकल हैं। यथा : सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू। विवर्ण हो रहे हैं। यथा : बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू : जैसे कमल की जड़ उखड़ गयी हो और वह सूर्योदय पर भी अल्पप्राण और विवर्ण हो गया हो। उसके जीवित रहने की आशा न हो।

राजा की दशा देखकर मन्त्री सूख गये। यह पहिले ही कहा जा चुका है। अब पूछते भी डर लग रहा है। क्योंकि मन्त्री के आने पर भी महाराज कुछ कह नहीं रहे हैं। न जाने कैसे असामञ्जस्य में पड़े हुए हैं। फिर पूछें कैसे ? सुमन्त्र का आशय समझकर कैकेयी बोलीं। उसी का विशेषण देते हैं : असुभ भरी सुभ छूछी। भाव यह कि पहिले यह मङ्गलघट की भाँति शुभ से भरी थी। सो शुभ सब निकल गया है। उसके स्थान पर अशुभ भर गया है। उसे अब रामजी से आशा है कि वे जब यह बात सुनेंगे तो अवश्य वन चले जायँगे और किसी की न सुनेंगे। अतः चाहती हैं कि रामजी किसी भाँति शीघ्र आजायँ तो उन्हीं के सामने बात खुले। पहिले खुल जाने से अनेक प्रकार की बाधाओं का भय है। अतः ऐसी बात बनावेंगी जिसमें अपना कार्य सिद्ध हो।

दो. परी न राजहि नींद निसि, हेतु जान जगदीसु।
राम् राम् रटि भोरु किय, कहइ न मरमु महीसु ॥३८॥

अर्थ : रात राजा को नींद नहीं आयी। भगवान् जाने क्या कारण है। राम राम रटते रटते इन्होंने सवेरा किया है। अपना मर्म : राजा : बतलाते नहीं।

व्याख्या : कैकेयी बोली कि आज राजा को रात में नींद नहीं आयी। मैं तो इतना ही जानती हूँ। नींद न आने का कारण होना चाहिए। कोई रोग तो है नहीं। कोई चिन्ता होगी। पूछने पर कारण नहीं बतलाते। मैं इतना और कह सकती हूँ कि रातभर राम राम की रट लगाये रहे। इससे अनुमित होता है कि ये उस मर्म को राम से ही कहेंगे। जब तुमसे भी नहीं कहते और मुझसे भी नहीं कहते तो निश्चय यह अपनी पीड़ा राम से ही कहेंगे।

आनहु रामहिं बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछहु आई।।
चलेउ सुमंत्रु राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ।।१।।

अर्थ : शीघ्र रामजी को बुला लाओ तब आकर समाचार पूछना। महाराज का रुख पाकर सुमन्त्र चले। लखा कि रानी ने कुछ कुचाल किया।

व्याख्या : अतः रामजी को बुलाने में शीघ्रता करो। जितनी देर होगी उतनी ही पीड़ा अधिक होगी। रामजी को साथ लेकर लौटने पर समाचार पूछना। उसी समय राजा को जो कुछ कहना है कहेंगे।

रानी की बातें सुनी पर केवल उनकी आज्ञा पर मन्त्री काम नहीं करना चाहता। राजा का रुख देख रहा है। मालूम हुआ कि महाराज की भी यही रुचि है। जो पहिले यह मानते थे कि सवेरा न हो। कोई रामजी से ये बातें न कह दे। वे ही राजा अब रामजी का आना उचित समझ रहे हैं। जिसमें रामजी उनकी दशा देख लें और समझें कि जो आज्ञा हो रही है उसे देने में चक्रवर्तीजी को कितनी पीड़ा है। नितान्त बेवसी की हालत में उन्हें ऐसा कहना पड़ रहा है। सम्भव है कि इस भाँति कहलाई हुई बात के मानने में रामजी अपने को बाध्य न समझेंगे। अतः सुमन्त्रजी चले। पर इतना तो लख ही लिया कि रानी ने कोई कुचाल किया है जिसका प्रभाव रामजी पर बहुत बुरा पड़नेवाला है। नहीं तो कोपभवन में आज क्यों है ? रानी कोपभवन में गयी और महाराज उसे मनाने गये। यही बात मालूम होती है।

सोच बिकल मग परइ न पाऊ। रामहि बोलि कहिहि का राऊ ।।
उर धरि धीरजु गयउ दुआरें। पूँछहि सकल देखि मनु मारें ।।२।।

अर्थ : मन्त्री : शोक से विकल हो गये। उनका कदम आगे नहीं बढ़ रहा है। विचारते हैं : रामजी को बुलाकर राजा क्या कहना चाहते हैं।

व्याख्या : सुमन्त्रजी का भी प्रेम रामजी पर राजा सा ही है। उधर राजा सोच बिकल बिबरन महि परेऊ और इधर मन्त्री : सोच बिकल महि परइ न पाऊ कदम आगे बढ़ता ही नहीं। राजाज्ञा के कारण चलना ही पड़ा। मन में सोचते हैं कि वह कौन सी अनिष्ट बात है जिसे रामजी के आने पर राजा कहेंगे। बात अत्यन्त अनिष्ट न होती तो महाराज इतने विकल न होते। महल के बाहर आने के पहिले

सुमन्त्रजी ने प्रयत्नपूर्वक धैर्य धारण किया। फिर भी उदासी नहीं गयी। लोग पूछने लगे कि क्या बात है ?

समाधानु करि सो सब ही का। गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ॥३॥

अर्थ : उन्होंने सबका समाधान किया और जहाँ सूर्यकुल के टीका थे वहाँ गये। रामजी ने सुमन्त्र को आते देखा तो उनका आदर किया और पिता के समान माना।

व्याख्या : सुमन्त्रजी ने सबका समाधान किया कि महाराज को रात में नींद नहीं आयी। इससे देर हुई। अब रामजी को बुलाया है। लोगों का समाधान हो गया। क्योंकि : तेहि निसि नींद परी नहिं काहू। किसी को भी रात नींद नहीं लगी। राजा को तो न लगना ही प्राप्त था। रामजी को बुलाना भी ठीक ही है। तत्पश्चात् रामजी के पास गये।

निरखि बदनु कहि भूप रजाई। रघुकुल दीपहि चलेउ लेवाई ॥
रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ॥४॥

अर्थ : मुख देखकर राजा की आज्ञा कह सुनायी और रघुकुलदीप को साथ लिवा चले। रामजी जिस रीति से मन्त्रीजी के साथ जा रहे हैं : वह समयोचित नहीं है। यह देखकर लोग जहाँ के तहाँ विषाद करने लगे।

व्याख्या : रामजी पर मन्त्री का बड़ा प्रेम है। अतः पहिले प्रियदर्शन रामजी का मुख देखा तब कहा कि महाराज आपको शीघ्र ही देखा चाहते हैं : सुमन्त्रजी को रामजी के दर्शन की इच्छा थी। इसलिए रामजी को दिनकरकुलटीका कहा। अब साथ लेकर चलते हैं। इसलिए रघुकुलदीपक कह रहे हैं। जहाँ दीप जाता है वहीं प्रकाश करता चलता है और जहाँ से हट जाता है वहाँ अन्धेरा हो जाता है। रामजी तुरन्त चल पड़े।

आज राज्याभिषेक का दिन है। बड़े ठाटबाट से सवारी निकलनी चाहती थी। सो रामजी इस भाँति मन्त्री के साथ क्यों जा रहे हैं। अतः अभिषेक में निश्चय बाधा पड़ी। यह समझकर जो देखता है हताश हो जाता है। अतः जहँ तहँ बिलखाहीं कहते हैं।

दो. जाइ दीख रघुबंसमनि, नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥३९॥

अर्थ : जाकर रघुवंशमणि ने राजा की अत्यन्त गिरी हुई स्थिति देखी। जैसे बूढ़ा गजराज सिंहिनी को देखकर सहम कर : भयभीत होकर गिर गया हो।

व्याख्या : वहाँ जाकर रामजी ने देखा कि दृश्य में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया। अति सौम्य सुशीला रानी कैकेयी आज सिंहिनी की भाँति घात लगाये बैठी

है और शूलकुलिश असि अंगवनिहारे चक्रवर्तीजी बूढ़े गजराज की भाँति भयभीत से पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। यहाँ पर चक्रवर्तीजी की उपमा वृद्ध गजराज से और कैकेयी की उपमा सिंहिनी से देकर कवि ने सारा दृश्य ही आँख के सामने खींच दिया। वृद्ध गजराज सब प्रकार से असमर्थ सिंहिनी से बचने का कोई उपाय नहीं देख रहा है और सिंहिनी क्रोध में भरी हुई उसका प्राण लेने पर तुली हुई है। उसमें तनिक भी दया का लेश नहीं है।

सूखहिं अधर जरइ सब अंगू। मनहु दीन मनि हीन भुअंगू ॥
सरुष समीप दीख कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई ॥१॥

अर्थ : होठ सूख रहा है। सब अंग जल रहे हैं। मानो बिना मणि के सर्प दीन हो रहा है। क्रोध से भरी हुई कैकेयी पास में ही दिखाई पड़ी। मानो साक्षात् मृत्यु बैठी हुई घड़ी गिन रही है।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी की मानसिक दशा कहकर अब शारीरिक दशा कहते हैं कि शोकाग्नि से सारा शरीर जल रहा है। होठ सूख रहे हैं। जैसे मणिधर सर्प की मणि छिन गयी हो। रामजी ही यहाँ मणि स्थानीय हैं। इसीलिए पूर्व के दोहे में कवि भी उन्हें मणि कहते हैं। यथा : जाइ दीख रघुबंसमनि। सिंहिनी कहकर कैकेयी को मृत्यु रूप पहिले ही कह आये हैं। पर अब सीधे सीधे मृत्यु से उपमित कर रहे हैं। क्योंकि वह पास बैठी है मारती नहीं है। मृत्यु मरण शील को तबतक नहीं मारती जबतक कि उसका समय नहीं आ जाता। सो यहाँ समय सन्निकट है। अतः मृत्यु आ पहुँची है। अब वह केवल उस समय की प्रतीक्षा कर रही है। अतः उसके लिए घड़ी का गिनना कहा।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी ॥२॥

अर्थ : रामजी का स्वभाव करुणामय और मृदु है। पहिले पहल दुःख देख रहे हैं। उन्होंने दुःख : कान से भी नहीं सुना था। फिर समय का विचार करके धैर्य धारण किया और माँ से पूछा।

व्याख्या : रामजी ने पिता की दशा देखी कि बुलवाया तो पर कुछ कह नहीं सकते। ऐसे दुःखी हैं। रामजी का स्वभाव करुणामय है। बड़ा कोमल है। इनका स्वभाव देखकर ही चक्रवर्तीजी ने ऐसी व्यवस्था कर रक्खी थी कि रामजी के कान तक किसी का दुःख पहुँचने न पावे। अतः सबके दुःख का प्रतीकार पहिले ही कर दिया जाता था। उनके कान तक पहुँचने नहीं पाता था। अतः दुःख उन्होंने कभी सुना न था। देखने की कौन चलावे। सो आज पहिले पहल दुःख को देखा। अतः धैर्य छूटना स्वाभाविक था। परन्तु रामजी ने विचार से काम लिया। धैर्य धारण करके मीठी वाणी में माँ से पूछा।

मोहि कहु मातु तात दुख कारनु । करिअ जतनु जेहि होइ निवारनु ।।
सुनहु राम सबु कारनु एहू । राजहि तुम्ह पर बहुतु सनेहू ।।३।।

अर्थ : रामजी बोले : माँ ! मुझसे पिता के दुःख का कारण बतला। उसके निवारण का यत्न किया जाय। कैकेयी बोली : रामजी सुनो सब कारण तो यह है कि राजा का तुम्हारे ऊपर बड़ा प्रेम है ।

व्याख्या : पिताजी से ऐसी अवस्था में कुछ पूछना व्यर्थ समझकर माँ से पूछा कि माँ ! पिताजी को बड़ा दुःख है। कोई शारीरिक व्याधि तो है नहीं। मानसिक व्यथा है। उसका कारण तू जानती है और किसी से नहीं कहती तो मुझसे कह। जिसमें उसके हटाने का यत्न किया जाय।

रामजी की बात सुनकर रानी बोली कि इस दुःख का मूल कारण राजा का तुम्हारे ऊपर अत्यधिक स्नेह है। स्नेह सभी पुत्रों पर है। पर तुम्हारे ऊपर अति अधिक है। भाव यह कि वैसा स्नेह मुझे नहीं है। राजा का यह स्नेह ही इनके दुःख का कारण हुआ है नहीं तो यह दुःख आता ही नहीं। सब पुत्रों पर यदि समान स्नेह होता और तदनुकूल कार्य करते तो मैं असन्तुष्ट न होती : यहाँ पर सूक्ष्मरूप से अपने वरदान माँगने का कारण कहा।

देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना । माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना ।।
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू । छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू ।।४।।

अर्थ : मुझे दो वरदान देने को कहा था। सो मुझे जो अच्छा लगा माँगा। उसे सुनकर महाराज के मनमें सोच हुआ है। तुम्हारा सङ्कोच इनसे छोड़ा नहीं जाता।

व्याख्या : इनका इस प्रकार का पुत्रों के साथ विषम व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगा। मुझसे पूर्वकाल में इन्होंने दो वरदान देने को कहा था। उन्हीं को मैंने अवसर उपस्थित होने पर माँगा। वरदान का अर्थ यह है कि जो मनोवाञ्छित हो वह माँगे। मुझे जो अच्छा लगा वह मैंने माँगा। पर राजा को उससे बड़ा शोक हुआ। क्योंकि उसके देने में तुम्हारा सङ्कोच छोड़ना पड़ेगा और इनका किया यह होता नहीं है।

दो. सुत सनेहु इत बचनु उत, संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु ।।४०।।

अर्थ : इधर बेटे का स्नेह उधर वचन का पाश। इसी संकट में राजा पड़े हैं। यदि तुमसे हो सके तो आज्ञा शिरोधार्य करके कठिन क्लेश को काटो।

व्याख्या—जो वरदान मैंने माँगा है वह तुम्हारे प्रतिकूल है। उसके देने में तुमसे प्रेम तोड़ना पड़ेगा। न देने से प्रतिज्ञाभङ्ग होती है। तुमसे प्रेम किसी हालत में राजा तोड़ना नहीं चाहते। पर प्रतिज्ञाभङ्ग को भी डरते हैं। इसी सङ्कट में ये

पड़े हुए हैं। अब तुम्हारा काम है। यदि तुम स्वयं प्रसन्नता पूर्वक उस आदेश को शिरोधार्य कर लो तो सब संकट कटा ही कटाया है।

निधरक बैठि कहै कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान बचन सर नाना। मनहु महिपु मृदु लच्छ समाना ॥१॥

अर्थ : बेधड़क बैठी हुई बातें कह रही है। सुनकर कठोरता अत्यन्त आकुल हो उठी। उसकी जिह्वा ही धनुष है और अनेक प्रकार के वचन ही वाण हैं और चक्रवर्तीजी कोमल निशाना हो रहे हैं।

व्याख्या : रानी होकर पति के लिए कठोर वचन कहने में मन्त्री और पुत्र के सामने सङ्कुचित होना चाहिए। सो यह बेधड़क बोलती चली जा रही है। चक्रवर्तीजी प्रार्थना कर चुके हैं। हाथ जोड़ चुके हैं कि जब तक मैं जीता हूँ तब तक फिर कुछ न बोलना। तू मेरे सामने से हट जा। पर इसका उसे कुछ ख्याल नहीं है। समझती है कि मेरे चुप रहने से या हट जाने से सम्भव है कि ये लोग आपस में बात करके कोई रास्ता ढूँढ़ निकालें। सो मैं न होने दूँगी। उसकी कठिनता देखकर स्वयं कठिनता अत्यन्त व्याकुल हो उठी। राजा के लिए कहना ही क्या है।

इस समय उसके मुख से वचन निकलते हैं वे मानो धनुष से छूटे हुए बाण हैं और सबका लक्ष्य एक मात्र चक्रवर्तीजी हैं। एक एक बाण उन्हें छेदे डालते हैं। उनमें इन आघातों के निष्फल करने योग्य कठिनता नहीं है। इसी से उनकी उपमा मृदु लक्ष्य से दी गयी।

जनु कठोरपनु धरें सरीरू। सिखइ धनुषविद्या बर बीरू ॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहु तनु धरि निठुराई ॥२॥

अर्थ : मानो वीरवर कठोरपन शरीर धारण करके धनुषविद्या सीख रहा है। सब प्रसङ्ग रामजी को सुनाकर इस भाँति बैठी मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किये हुए है।

व्याख्या : बड़े वीरों का काम ही युद्ध करना है। अतः धनुषविद्या उनके बड़े काम की चीज है। वे हाथ बैठाने लिए बार बार लक्ष्य वेध करते हैं। उनका प्रयोजन ही वेध करना है। लक्ष्य के छिन्न भिन्न होने की उन्हें परवाह नहीं। अतः चक्रवर्तीजी को उन आघातों से कितनी पीड़ा पहुँच रही है इसका उसे कुछ ख्याल नहीं है। उसका काम चोट पहुँचाना हो गया है। कोई वार खाली न जाना चाहिए। इधर चक्रवर्ती जी का चित्त इतना कोमल है कि प्रत्येक वाक्यवाण गहरी चोट कर रहे हैं।

ऐसी निष्ठुर है कि अपने वरदान मिलने का प्रसङ्ग उसे थाती की भाँति महाराज के पास ही रहने देना तथा राज्याभिषेक का प्रसङ्ग आने पर भरत को राज्य तथा राम को वनवास माँगना राजा की भरत के राज्यविषयक स्वीकृति

रामजी के वनवास में ही अगामञ्जस्य और अपना उसी पर हठ फलतः चक्रवर्तीजी की विकलता यह सब रामजी को सुना गयी। और तब चुपकी बैठी। भाव यह कि कहो अब क्या कहते हो। पिता के दुःख का कारण तो सुन लिया। अब निवारण करो। अतः कवि कहते हैं कि मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किये बैठी है।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥३॥

अर्थ : सूर्यकुल के सूर्य रामजी सहज आनन्द के निधान हैं। वे मन ही मन मुसकरा रहे हैं। सब दोषों से रहित कोमल और सुन्दर ऐसा वचन बोले मानो वह वाणी का भूषण है।

व्याख्या : सरकार सूर्यकुल के सूर्य हैं। इनके सामने अन्धकार आ नहीं सकता तथा स्वभाव से ही आनन्द के निधान हैं। दुःख की छाया भी इन पर नहीं पड़ सकती। महाराज इनके ऊपर दुःख आया चाहता है इस भावना से दुःखी हैं। यहाँ दुःख का सम्पर्क ही नहीं। वन जाने में अधिक प्रसन्नता है। अतः मन ही मन मुसकराते हैं। प्रकट मुसकराने से माता को कष्ट होगा।

ऐसे दोषयुक्त कठोर अनुचित वचन के उत्तर में पवित्र कोमल और वाणी के भूषणरूप वचन बोले : सुनत सीतापति सील सुभाउ। मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ।

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥४॥

अर्थ : हे माता! वही बेटा बड़ा भाग्यवान् है जिसे पिता माता के वचन में प्रेम हो। माँ! पिता माता को तुष्ट करनेवाला पुत्र सारे संसार में दुर्लभ है।

व्याख्या : ऐसी कटुवादिनी विमाता को जननी कहकर सम्बोधन करते हैं। उसने कहा था : सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु। इसपर कहते हैं कि आज्ञा के शिरोधार्य करने या न करने का तो यहाँ प्रश्न ही नहीं है। यह तो मेरे लिए बड़भागी होने का अवसर है। पुत्र का बड़भागी होना तो पुत्रत्व के साफल्य में है। धन विद्यादि साधनों में नहीं। अतः जिस पुत्र को पिता के वचन में अनुराग हो वही बड़भागी है।

माता पिता तो दिन रात पुत्र की तुष्टि के प्रयत्न में ही रहते हैं। पर पुत्र ऐसा हो जो पिता माता को सन्तुष्ट रक्खे। यह बात संसार में दुर्लभ है। भाव यह कि मैं उन दुर्लभ पुत्रों में हूँ। मुझे पिता माता के वचन में अनुराग है। मैं उसके पालन में अति दुष्कर कर्म भी कर सकता हूँ। यहाँ तो ऐसा आदेश हो रहा है जिसमें सुख ही सुख है।

दो. [1]मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहिं भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर ॥४१॥

अर्थ : वनमें विशेष करके मुनियों से समागम होगा। जिससे सब भाँति मेरा हित है। उसपर पिता की आज्ञा और माँ! तेरी सम्मति।

व्याख्या : सब कल्याण का मूल सत्सङ्ग है। सो जैसा वन में होगा वैसा यहाँ नहीं होता। क्योंकि मुनि लोग अधिकतर वहीं रहते हैं। पिता की आज्ञा और माँ की सम्मति से उसका महत्त्व और अधिक हो गया।

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी इत्यादि वचन की कोमलता है। मुनिगन मिलनु बिसेखि बन सबहिं भाँति हित मोर। इत्यादि में मञ्जुलता अधिक है। वाग्विभूषणता आगे की अर्धाली में झलकेगी। अथवा सर्वत्र तीनों गुण हैं।

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौ न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ॥१॥

अर्थ : भरत मेरे प्राणप्रिय हैं। वे राज्य पावें। मुझे तो आज विधाता सब प्रकार से अनुकूल हैं। यदि ऐसे काम के लिए भी मैं वन न जाऊँ तो मूढ़ों के समाज में प्रथम गणना मेरी ही है।

व्याख्या : इतना ही नहीं प्राणप्रिय भरत को राज्य मिल रहा है। अपने प्रिय के लिए ही लोग राज्य भोग और सुख की कामना करते हैं। यथा : येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च। अतः मेरी कामना भी पूरी हो रही है। आज विधाता मुझपर सर्वथा अनुकूल हैं। सत्सङ्ग की प्राप्ति धर्म की प्राप्ति सुख की प्राप्ति अनायासेन हो रही है।

कोई भी बुद्धिमान् अपने हित पर दृष्टि रखता हुआ इससे मुँह नहीं मोड़ सकता। विधि के सम्मुख होने पर उससे लाभ न उठाना मूढ़ का काम है और सब विधि सम्मुख होने पर लाभ न उठानेवाला मूढ़ों का सरदार है। मैं ऐसा अवसर चूक नहीं सकता।

सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु माँगी॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं ॥२॥

अर्थ : जो कल्पवृक्ष का त्याग करके रेंड़ : एरण्ड की सेवा करते हैं। अमृत का परित्याग करके याचना पूर्वक विष ग्रहण करते हैं वे भी ऐसा अवसर न चूकेंगे। माँ तू मनमें विचार करके देख ले।

व्याख्या : अब मूढ़ की परिभाषा कहते हैं। जिसे सेव्यासेव्य ग्राह्याग्राह्य का विचार न हो वही मूढ़ है। कल्पवृक्ष सेवन करने योग्य है जो सब कामनाओं को

---

१. यहाँ समुच्चय : द्वितीय अलङ्कार है।

पूरा करता है। निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते। जहाँ कोई पेड़ नहीं होता। वहाँ एरण्ड की पूछ होती है। अतः कल्पतरु का त्याग करके एरण्ड की सेवा करनेवाला महामूर्ख है। प्राणदा अमृत का त्याग करके प्राणहर विष की याचना करनेवाला महाअज्ञानी है। पिता का आज्ञापालन कल्पवृक्ष है और राज्यपालन एरण्ड है एवं सत्सङ्ग अमृत है। विषयोपभोग विष है। अतः मूढ़ भी कल्पवृक्ष और अमृत ग्रहण के अवसर को नहीं चूकेगा। मैं कैसे चूक सकता हूँ। राज्यपालन का एरण्ड होना तथा विषयोपभोग का विष होना मनमें विचार करने से सिद्ध होता है। अतः माता को मनमें विचार करने के लिए कह रहे हैं।

अंब एकु दुखु मोहि बिसेखी। निपट बिकल नरनायकु देखी ॥
थोरिहि बात पितहि दुखु भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥३॥

अर्थ : माँ! मुझे एक विशेष दुःख है कि मैं महाराज को अत्यन्त विकल देख रहा हूँ। बात थोड़ी और पिताजी को दुःख बड़ा। इससे माँ मुझे विश्वास नहीं हो रहा है।

व्याख्या : सरकार माता से कहते हैं कि जो जो तुम कह गयी वे सब तो सुख की बातें हैं। दुःखी होने के लिए वहाँ स्थान ही नहीं है। विशेष दुःख तो यह देखकर हो रहा है कि महाराज इतने विकल क्यों हैं। इतने बड़े लाभ के लिए मैं वन जा रहा हूँ। यह कोई बड़े दुःख की बात नहीं है। इसके लिए इतनी बड़ी विकलता इतनी छटपटाहट इतना शोक तो समझ में नहीं आता। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि जो तुम कह रही हो वही कारण है।

राउ धीरु गुन उदधि अगाधू। भा मोहि ते कछु बड़ अपराधू ॥
जातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ॥४॥

अर्थ : महाराज धीर हैं। गुणों के अथाहसमुद्र हैं। मुझसे कोई बड़ा अपराध बन पड़ा है। जिससे महाराज मुझसे नहीं बोल रहे हैं। तुम्हें मेरी शपथ मुझसे साफ साफ बतला दो।

व्याख्या : महाराज धीर हैं। थोड़ी सी बात में विचलित हो नहीं सकते। गुणों के अथाह समुद्र हैं। जो बातें तुमने कही उनके गुणों को भली भाँति जानते हैं। समुद्र में क्षोभ होने का कोई बड़ा कारण होना चाहिए। मैंने जान बूझकर कोई अपराध नहीं किया है। पर अनजान में भी बड़ा अपराध हो जाना सम्भव है। मालूम होता है कि मुझसे ऐसा ही कोई अपराध बन पड़ा है। जिससे महाराज मुझसे बोल नहीं रहे हैं। पर तुमसे तो कहा होगा। तुम क्यों छिपा रही हो। तुम्हें मेरी शपथ सच सच बतला दो। मैं सदा से तुम्हें प्यारा हूँ। अतः अपनी शपथ दे रहा हूँ।

दो. सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल बक्रगति, जद्यपि सलिलु समान ॥४२॥

अर्थं : रघुवर के स्वभाव से ही सरल वचन को उस दुर्बुद्धि ने टेढ़ा ही समझा जैसे पानी के समान होने पर भी जोंक उसमें टेढ़ी चाल से ही चलती है।

व्याख्या : रामजी ने तो स्वभाव से ही सीधी सीधी बातें कहीं पर कैकेयी की बुद्धि उलटी हुई है। उसे उसमें कुटिलता की गन्ध मालूम हुई। उसने समझा कि यह भी वही बात कह रहे हैं जो महाराज कहते थे। यह भी अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए मुझसे कारण पूछते हैं। अपराध की चरचा चलाकर अपना निरपराध होना हमारी निष्ठुरता और अपना प्रेम द्योतित करते हैं। बिधि सब बिधि मोहि सम्मुख आजू कहकर यह दिखला रहे हैं कि तुमने तो अपने समझ में दण्ड दिया। पर उससे मुझे कष्ट नहीं है।

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई ॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मै कछु जाना ॥१॥

अर्थ : रामजी का रुख पाकर रानी प्रसन्न हो गयी और कपट प्रेम जनाती हुई बोली। तुम्हारी शपथ तथा भरत की शपथ मैं दूसरा कारण नहीं जानती।

व्याख्या : वचन को कुटिल मानती हुई भी यह जानकर प्रसन्न हो गयी कि रामजी का रुख वन जाने का है। रामजी की ओर से सब कथा सुनने पर भी कोई बात ऐसी नहीं कही गयी जिससे प्रेम की कमी अनुमित हो। अतः कैकेयी कपट पूर्वक अपना प्रेम जनाती है। रामजी ने मोर शपथ कहकर यह जनाया कि मैं तुझे प्यारा हूँ। तो कैकेयी भी शपथ लेते समय भरत के पहिले रामजी के नाम का उल्लेख करके : भरत न मोहि प्रिय राम समाना : इस भाव का परिचय दे रही है। कहती है कि मैं तो यही जानती हूँ जो तुमसे कहा है। इसके अतिरिक्त यदि कोई बात हो तो मुझे पता नहीं है।

तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता। जननी जनक बंधु सुखदाता ॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू ॥२॥

अर्थ : बेटा! तुम अपराध के योग्य नहीं हो। तुम तो माँ बाप और भाई को सुख देनेवाले हो। रामजी! जो तुम कहते हो सो सत्य है। तुम माता पिता के वचन में अनुरक्त हो।

व्याख्या : पर इससे अतिरिक्त दूसरी बात : मा मोहि ते कछु बड़ अपराधू सम्भव नहीं है। क्योंकि तुम में अपराध करने का माद्दा : योग्यता नहीं है। अपराध तो उससे होता है जिसमें दुःख देने की प्रवृत्ति होती है और तुम तो माँ बाप और भाई को सुख देनेवाले हो। अतः तुम्हारे अपराध का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

तुमने जो कहा कि वन जाने में लाभ ही लाभ है। सो भी सत्य है और तुम माता पिता के तुष्ट करनेवाले हो यह भी सत्य है और तुम पितु मातु वचन अनुरागी भी हो। इस भाँति वन जाने के लिए प्रोत्साहन देते हुए कहती है।

पितहि बुझाइ कहसु बलि सोई। चौथेंपन जेहिं अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे ॥३॥

अर्थ : मैं बलि जाउँ यही बात अपने पिता को समझाकर कहो। जिसमें चौथेपन में अपयश न हो। जिस पुण्य ने उन्हें तुम्हारे ऐसा पुत्र दिया उसका अनादर करना उचित नहीं।

व्याख्या : अब यह सब बातें अपने पिता को समझाओ कि वन में जाने से लाभ ही लाभ है। मैं तो इसे बड़े भाग्य की बात मानता हूँ। जिसमें इनका शोक दूर हो। ये नहीं मानते। मरती समय : बुढ़ाई में अपयश लेने को तैयार हैं। वन तुम्हें जाना है। इसलिए तुम्हारे ही समझाये समझेंगे।

बड़े पुण्य से भगवान् ने तुम्हारे ऐसा बेटा दिया है। उसी पुण्य का शरण ग्रहण करना चाहिए। पुण्य का सञ्चय करना चाहिए। सो अपनी बात छोड़कर इस अवस्था में उस पुण्य का निरादर कर रहे हैं।

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ॥४॥

अर्थ : बुरे मुँह से भले वचन ऐसे लगते हैं जैसे मगध देश में गयादिक तीर्थ हैं। रामजी को माता के वचन सब अच्छे लगे। जैसे गङ्गा में जाने से पानी अच्छा हो जाता है।

व्याख्या : रामजी के विमुख होने से कैकेयी का मुख कुमुख है। उसने चार वचन बहुत उत्तम कहे : १. तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता। २. राम सत्य सबु जो कछु कहहू। ३. पितहि बुझाइ कहसु बलि सोई और ४. तुम सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हें। पर इतने से उसका कुमुखत्व गया नहीं। जैसे मगध में चार तीर्थों के रहते हुए भी उसकी अशुद्धि नहीं गयी। जैसे ऊपर की चार बातें कैकेयीजी की पवित्र हैं। वैसे ही चार स्थल मगध में भी पवित्र हैं। यथा : मगधेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्। च्यवनस्याश्रमः पुण्यो नदी पुण्या पुनः पुनः। पाद्मे। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं : बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास। तीरथहू को नाम भो गया मगध के पास। गया तीर्थ होने पर भी आसुर तीर्थ है। इसलिए उसको शोभा नहीं।

सरकार समझते हैं माता प्रेम करती है। प्रशंसा करती हैं। माता के भावोपहत वचन सरकार को पाकर भावपूर्ण हो गये। जैसे गन्दा पानी भी गङ्गा में मिलकर पवित्र हो जाता है : करमनास जल सुरसरि परई। तेहि को कहो सीस नहिं धरई।

दो. गइ मुरुछा रामहि सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमनु कहि, बिनय समय सम कीन्ह ॥४३॥

अर्थ : मूर्च्छा जाती रही। तब रामजी को स्मरण करके राजा ने करवट बदला। मन्त्री ने रामजी का आगमन कहकर समयानुकूल विनती की।

व्याख्या : अभी आँख बन्द हैं। महाराज मूर्च्छित थे। उन्हें रामजी का आना मालूम नहीं। जब कैकेयी को हट जाने को कहा था और वह नहीं हटी तो स्वयं महाराज ने मुँह फेर लिया। सुमन्त्रजी रामजी को बुलाने गये। उसी समय मूर्च्छा हुई। अब चेत हुआ है तब करवट बदली। जब मन्त्री ने देखा कि महाराज होश में आये तब विनय किया। बड़ा नाजुक समय है। महामन्त्रो भी उतना ही बोलता है जितने बिना काम न चले। अर्थात् महाराज ! धैर्य धरें, आँख खोलें। देखिये रामजी आगये इत्यादि :

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥१॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने यह सुनकर कि रामजी पधारे हैं धैर्य धरकर आँख खोला। मन्त्री ने सँभाल कर महाराज को बिठाया। उन्होंने रामजी को चरणों पर गिरते देखा।

व्याख्या : आकर्ण्य शब्द का प्राकृत रूप अकनि है। महाराज की हालत बड़ी नाजुक है। शरीर व्याकुलता से इतना शिथिल हो गया है कि आँख नहीं खुलती। जब मन्त्री की वाणी सुनी कि रामजी पधारे हैं तब आँख खोली। आँख खोलने में धैर्य धारण करना पड़ा।

आँख तो खुली पर उठकर बैठ न सके। मन्त्री ने देखा कि अब यह बैठना चाहते हैं। पर उठ नहीं सकते। तब उसने सँभालकर बैठाया कि कहीं गिर न जायँ। उसी समय रामजी चरणों में गिरे। राजा ने देखा।

लिये सनेह बिकल उर लाई। गइ मनि मनहु फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू॥२॥

अर्थ : स्नेह से विकल होकर हृदय से लगा लिया। जैसे खोई हुई मणि को सर्प ने फिर से पा लिया हो। नरेश रामजी को देखते रह गये। आँखों से अश्रुधारा बह चली।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी को सन्देह था कि पता लगते ही रामजी कहीं उधर के उधर ही वन न चले जायँ। अतः उस सर्प की उपमा देते हैं जिसकी गयी हुई मणि फिर से मिली हो। अर्थात् मणि के लिए बड़ी उत्सुकता थी। मिलने पर बड़ा सन्तोष हुआ।

मन से वन दे चुके हैं। अतः रामहीन अवध का दृश्य सामने है। रामजी के देखने से मानो शरीर में प्राण का सञ्चार हो रहा है। पर साथ ही साथ यह भी ध्यान है कि थोड़े ही काल में रामजी का दर्शन दुर्लभ हो जायगा। सो प्रेम

उमड़ आया। आँखों से आँसू की धारा बह चली। प्रवाह रुकता नहीं। न जाने इतना जल कहाँ से आगया।

सोक बिबस कछु कहइ न पारा। हृदय लगावत बारहिं बारा॥
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहि रघुनाथु न कानन जाहीं॥३॥

अर्थ : शोक के विवश हैं। कुछ कह नहीं सके। बार बार हृदय में लगा रहे हैं। मन ही मन विधाता से मना रहे हैं कि रामजी वन न जायँ।

व्याख्या : रामहिं चितै रहे से कर्मणा, शोक बिबस से मनसा तथा कछु कहै न पारा से वाचा शोक कहा। गयी हुई मणि मिली। कहीं फिर न चली जाय। अतः वियोग के भय से वार बार हृदय में लगाते हैं। पर तृप्ति नहीं होती।

मन ही मन विधाता से मनाते हैं कि रामजी वन न जायँ। भाव यह कि मैं तो कहूँ कि तुम वन जाओ। पर रामजी मेरे कहने पर भी न जायँ। बिधिहि मनाव कहने का कारण यह कि कोई ऐसी विधि बैठा दे कि मेरी बात भी न जा सके और रामजी भी वन न जायँ।

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥४॥

अर्थ : फिर महादेवजी का निहोरा करके कहते हैं कि हे सदाशिव मेरी विनती सुनो। तुम शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हो और बेहिसाब देनेवाले हो। मैं दीन हूँ। ऐसा जानकर मेरी आर्त्तिहरण करो।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी फिर विचारते हैं कि ब्रह्मदेव तो शुभाशुभ कर्म के फल देनेवाले हैं। साधन निरपेक्ष ईप्सित फल देनेवाले तो महादेव ही हैं और शीघ्र ही प्रसन्न भी होते हैं। यथा : औढरदानि द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन करजोरे। अतः आराधन के फल पर जोर न देकर निहोरा करते हैं कि मुझे दीन जानकर मेरी विनती सुनो और मेरी आर्ति हरण करो।

दो. तुम्ह प्रेरक सबके हृदयँ, सो मति रामहि देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सीलु सनेहु॥४४॥

अर्थ : तुम सबके हृदय के प्रेरक हो। ऐसी बुद्धि रामजी को दो कि मेरे वचन को हटाकर शील सनेह को छोड़कर घर रह जायँ।

व्याख्या : ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में बैठा हुआ सबको कठपुतली की तरह नचाया करता है। अतः उस महादेव से चक्रवर्तीजी प्रार्थना करते हैं कि तुम सबके हृदय के प्रेरक हो। तुम्हारी प्रेरणा से ही रामजी ऐसे आज्ञाकारी हैं। शील सनेह के समुद्र हैं। यह तुम्हारी बड़ी कृपा है। पर आज ये गुण तो मेरे प्राणग्राहक हो रहे हैं। मेरा सर्वनाश उपस्थित है। सो रामजी की बुद्धि फेरने में

तुम्हीं समर्थ हो। उनकी वुद्धि फेर दो कि मैं तो कहूँ कि तुम वन जाओ। पर रामजी शील सनेह तोड़कर कहें कि पहिले अपराध तो बतलाओ तो पीछे वन जाने को कहो। गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते। रामजी धर्मशास्त्र लेकर उठें कि विषयलिप्त गुरु जिसे कार्याकार्य का ज्ञान न हो, सन्मार्गगामी न हो, उसका परित्याग करना चाहिए! अब यदि कहें कि तुम्हारा अशुभ कर्म उदय हुआ है, उसकी क्या गति होगी। तो कहते हैं :

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावउ मोही। लोचन ओट रामु जनि होहीं॥१॥

अर्थ : संसार में अपकीर्ति हो, कीर्ति का नाश हो, बल्कि स्वर्ग जाय मुझे नरक ही हो। मुझे सब दुःसह दुःख सहाओ पर राम आँख के ओट न हों।

व्याख्या : यदि मैं रामजी को वन नहीं देता तो कैकेयी प्राण दे देगी। उसने कह दिया है : होत प्रात मुनिवेषधरि जौं न राम बन जाहिं। मोर मरन राउर अजस नृप समुझिअ मनमाहिं। तो भले ही कैकेयी प्राण दे दें, मेरी अपकीर्ति हो जाय। बड़े परिश्रम और सावधानी से कमाये हुए सुयश का नाश हो जाय। लोग कहें कि राजा भ्रष्टप्रतिज्ञ हैं। इसकी करणी से ऊबकर रानी ने प्राण दिया और अपकीर्ति से स्वर्ग में प्रवेश नहीं होता : केवल दूर्वा पीसकर पीनेवाले मुनि पर लोगों को भ्रम हो गया कि यह ताड़ी पीते हैं। इस अपकीर्ति से उनका स्वर्ग में प्रवेश न हुआ। सो मुझे भी न हो। भ्रष्टप्रतिज्ञ होने के पाप से भले ही नरन भोगना पड़े। इसके अतिरिक्त और जो दुःसह दुःख हैं। उन्हें भी उस अशुभ कर्म के फल रूप से मुझे सहना पड़े। मुझे स्वीकार है। पर रामजी मेरी आँखों के ओट न हों। इस सुख से मैं वञ्चित न होऊँ।

अस मन गुनइँ राउ नहि बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥२॥

अर्थ : मनमें ऐसा विचारते हुए चक्रवर्तीजी कुछ बोले नहीं। परन्तु पीपर के पत्ते की भाँति मन डोल उठा। रामजी ने समझ लिया कि पिताजी प्रेम के वश में पड़ गये हैं और माँ फिर कुछ बोलना चाहती है। ऐसा अनुमान किया।

व्याख्या : रामजी को बुलवाया है। वे आये हुए हैं। उनसे कुछ कहना चाहिए। पर चक्रवर्तीजी कुछ बोले नहीं। क्योंकि उपर्युक्त बातें सोच रहे थे। उनका मन ऐसा अस्थिर हो गया जैसे पीपर का पत्ता होता है। पीपर का नाम ही चलदल है। उसके पत्ते सदा चलायमान रहते हैं। कभी ठहरते ही नहीं। यही दशा राजा के मन की हो रही है। उन्हें उस बात पर भी स्थिरता नहीं जो अभी गुन रहे थे उसपर भी स्थिर हो जाते तो कुछ बिगड़ा नहीं था। पर हैं धर्मधुरन्धर उनसे धर्म भी छोड़ते नहीं बनता।

रामजी ने देखा कि पिताजी प्रेम के वश हो गये हैं। इसलिए बोलने में

असमर्थ हैं और इधर कैकेयी समझे बैठी है कि ये वन न देंगे। इसलिए मुझे समझाने को कह रही है। इनके चुप रहने को वह सह न सकेगी। फिर कुछ बोला ही चाहती है। अनुमान किया कि इसने कह कहकर कष्ट बढ़ाया है। पिताजी का मुझपर इतना प्रेम इसे असह्य हो रहा है।

देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी ॥
तात कहौं कछु करौं ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई ॥३॥

अर्थ : देशकाल और अवसर के अनुसार विनीत वचन विचार कर बोले। हे तात ! मैं कुछ कहता हूँ ढिठाई करता हूँ। मेरे इस अनौचित्य को लड़कपन समझकर क्षमा कीजिये।

व्याख्या : यद्यपि पुत्र का धर्म पिता की आज्ञा मानना है उसे शिक्षा देना नहीं है। इसलिए विचारकर विनीत वचन देशकाल और अवसर के अनुकूल बोले। वहाँ पिता पुत्र का सम्मिलन हो रहा है। दूसरा कौन बोले। अतः रामजी का ही बोलना देश के अनुकूल था। वन जाने का समय भी माता ने सबेरे ही निश्चय किया है। अतः जो कुछ कहना सुनना हो उसका यही समय है। अतः रामजी का कहना काल के भी अनुकूल था। यही अवसर माता के आज्ञापालन का है। यथा : पितहिं बुझाइ कहसु बलि सोई। चौथेपन जेंहि अजसु न होई। अतः रामजी का कहना अवसर अनुकूल था।

बिना पूछे कहता हूँ यह मेरी ढिठाई है। बिना कहे रहा नहीं जाता यह लड़कपन है। ढिठाई और लड़कपन दोनों अनुचित हैं। पर आप पिता हैं। आप बच्चों का अनौचित्य क्षमा करते आये हैं सो इस बार भी क्षमा करेंगे।

अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
देखि गोसाइहिं पूँछिउँ माता। पुनि प्रसंगु भए सीतल गाता ॥४॥

अर्थ : अत्यन्त छोटी सी बात के लिए आपको बड़ा दुःख हुआ। मुझे इस बात का समाचार पहिले किसी ने नहीं दिया। आपको देखकर मैंने माँ से पूछा। सब प्रसङ्ग सुनकर शरीर शीतल हो गया।

व्याख्या : माता ने कहा : छाड़ि न सकहिं तुम्हार संकोचू। सो दुःख सङ्कोच का था कि मैं रामजी से कैसे कहूँ कि तुम वन जाओ। यथा : कह्यो राज बन दियो नारिबस गरि गलानि गये राउ। सो यदि मुझे पहले समाचार मिल गया होता तो सङ्कोच की बात ही न थी मैं उधर से उधर ही वन चला जाता। यहाँ आने पर आपकी विकलता देखकर माता से पूछा। उसने सब प्रसङ्ग मुझसे कह सुनाया सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आपकी दशा देखकर शरीर सन्तप्त हो उठा था। सो शीतल हो गया। क्योंकि यह दोनों बात मुझे मुहमाँगी मिल गयी। मेरा मन नवगजेन्द्र की भाँति वन में ही आनन्द मानता है। राज्य उसे बन्धन मालूम होता है। भरत प्राणप्रिय हैं उन्हें राज्य मिलना ही मुझे इष्ट है। अपने प्रिय के लिए

ही लोग राज्य भोग और सुख चाहते हैं। सो प्राणप्रिय को मिला। इससे अधिक मङ्गल क्या होगा ?

दो. मंगल समय सनेह बस, सोचु परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हिय, कहि पुलके प्रभु गात ॥४५॥

अर्थ : मङ्गल के समय स्नेहवश जो सोच करते हैं उसे छोड़ दीजिये। प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिये। ऐसा कहते हुए प्रभु का शरीर पुलकित हो गया।

व्याख्या : वन के लिए प्रस्थान मेरे लिए मङ्गल है। सोच के लिए इसमें कोई स्थान ही नहीं है। बन्धन से छूटना और सब कल्याणों का मूल मुनिजन समागम से बढ़कर मङ्गल क्या हो सकता है। सो उपस्थित है। क्या सन्तसमागम से किसी का आज तक अकल्याण हुआ है। तब सोच किस बात का ? मेरे स्नेह के कारण आप सोच रहे हैं : लोचन ओट रामु जनि होहीं। इस सोच को छोड़िये और मेरे कल्याण की ओर दृष्टि देकर प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिये। यह कहते हुए पुलक होने का कारण आनन्दातिरेक है। पिता के आज्ञा पालन से जन्म का साफल्य समझकर सरकार को अति हर्ष है।

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें ॥१॥

अर्थ : संसार में उसी का जन्म धन्य है। जिसके चरित्र सुनने से पिता को आनन्द हो। उसके चारों पदार्थ हस्तगत हैं। जिसे माता पिता प्राण के समान प्यारे हों।

व्याख्या : पिता धर्मः पिता कर्मं पितैव परमा गतिः। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः। पिता ही धर्म है पिता ही कर्म है। पिता ही परमगति है। पिता के प्रसन्न होने से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। अतः गोस्वामीजी कहते हैं कि सबसे बड़ी सेवा पुत्र की यह है कि उसके चरित्र सुनने से पिता को आनन्द हो। कौसल्याजी कहती हैं : तात पितहि तुम्ह प्रान पियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे।

जिसका चरित ऐसा हो और जिसे माता पिता प्राण से प्यारे हों। उसे धर्म अर्थ काम और मोक्ष के लिए किसी साधन की अपेक्षा नहीं है। ये सब उसे आप से आप प्राप्त हो जाते हैं : रामजी के चरित्र से यह शिक्षा संसार को मिलती है।

आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगहिं होउ रजाई॥
बिदा मातु सन आवौं माँगी। चलिहौं बनहि बहुरि पग लागी ॥२॥

अर्थ : आज्ञा पालन करके जन्म का फल पाकर के शीघ्र ही लौटूँगा। अब आज्ञा हो। माता से विदा माँग आऊँ। तब फिर चरणों में प्रणाम करके वन जाऊँगा।

व्याख्या : आयसु देइय हरखि हिय कहि पुलके प्रभुगात से प्रसग छोड़ा था। अब फिर वहीं से उठाते हैं। रामजी कहते हैं कि आप की आज्ञा के पालन में ही मेरे जन्म का साफल्य है। मैं अपना जन्म सफल करने जाता हूँ। चौदह वर्ष के बाद लौटने में एक मिनट की देर न लगाऊँगा। यह कोई न समझे कि नाराज होकर न लौटेंगे। या मनाने के लिए किसी को जाना पड़ेगा। मैं स्वयं लौट आऊँगा। बात तय हो गयी। अब आज्ञा हो। मौनं स्वीकारलक्षणम् मानकर कहते हैं कि जाने के पहिले माताजी से विदा माँगना भी परमावश्यक है। उनसे आज्ञा न माँगूगा। विदा माँगूगा और चलने से पहिले फिर चरणों की वन्दना के लिए आऊँगा।

सरकार समझ रहे हैं कि माँ से छुट्टी पाना सहज बात नहीं है और जब तक उनसे छुट्टी न मिल जाय तब तक विदाई का प्रणाम पिताजी से कैसे करें।

## ११. प्रजा विरह विषाद प्रसङ्ग

अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर रामजी तब चले गये। राजा ने शोक के वश होकर उत्तर न दिया। नगर में यही तीखी बात व्याप्त हो गयी। जैसे छू जाने से सम्पूर्ण शरीर में बीछी व्याप्त हो जाती है।

व्याख्या : रामजी इस बात पर नहीं अड़े कि पिताजी मुख से कह दें कि तुम वन जाओ। तब मैं जाऊँगा। उन्होंने पिता की विकलता देखकर समझ लिया कि ये वन दे चुके। मुख से कहने में इन्हें कष्ट होगा। अतः वहाँ से माता के पास चल पड़े।

अभी तक यह बात नगर में फैली ही नहीं थी। पर अब रुक न सकी। तीखी बात होने के कारण सारे नगर में फैलते देर न लगी। जैसे बीछी छू जाने से सारे शरीर में व्याप्त हो जाती है। बीछी नाम का वृक्ष उत्तराखण्ड में होता है। उसके छू जाते ही सारे शरीर में तीव्र वेदना के व्याप्त होते देर नहीं लगती। बीछू यदि डङ्क मारे तो भी ऐसा ही होता है। पर उसके छू जाने से कुछ नही होता।

सुनि भये बिकल सकल नरनारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ विषादु नहि धीरजु होई॥४॥

अर्थ : सुनकर सब नरनारी विकल हो गये। जैसे दावाग्नि देखकर वृक्ष और लता विकल हो जाते हैं। जो जहाँ सुनता है सिर पीटने लगता है। विषाद बड़ा भारी है। धैर्य होता ही नहीं।

व्याख्या : भगवान् मनु कहते हैं कि पेड़ अन्तःसंज्ञ होते हैं। उनके भीतर ज्ञान होता है। महाभारत में युक्तिप्रदर्शनपूर्वक कहा गया है : तस्मात् पश्यन्ति

पादपाः। तस्मात् शृण्वन्ति पादपाः। पेड़ देखते हैं। पेड़ सुनते हैं। वन में आग लगी हुई देखकर लता और वृक्ष विकल हो जाते हैं। उसी भाँति रामजी का वनवास सुनकर नरनारी विकल हो उठे। समाचार के फैलने की शीघ्रता में बीछी की उपमा दी। पर बीछो में शारीरिक वेदना प्रधान है। यहाँ तो सबको रामजी को वनवास होगा यह सुनकर मानसिक वेदना हुई। दावानल देखकर हम भी जलेंगे : इस भय से वेलि विटप को मानसिक वेदना होती है। अतः यह दूसरी उपमा देनी पड़ी।

अब उस मानसिक वेदना का शरीर पर प्रभाव दिखलाते हैं कि जब बड़ा विषाद होता है : धैर्य नहीं बँधता तो आदमी अपना सिर पीटने लगता है। यहाँ अयोध्या में सबकी यही दशा है। जो सुनता है सो रामविरहाग्नि से व्याकुल होकर सिर पीटने लगता है।

दो. मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं, सोकु न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई, उतरी अवध बजाइ ॥४६॥

अर्थ : मुख सूखता है। आँख से आँसू बहता है। शोक हृदय में समाता नहीं। मानो करुणा रस की फौज डङ्का बजाकर अयोध्या में उतर पड़ी है।

व्याख्या : जब शोकाग्नि हृदय में जलती है तब मुख सूखता है। आँख से आँसुओं की धारा बह निकलती है। असह्य शोक में ऐसा होता है। अयोध्या में नरनारियों की यही दशा है। मालूम होता है कि ये करुणा रस की सेना के योद्धा लोग हैं। सम्पूर्ण अयोध्या में फैले हुए अपना पराक्रम दिखलाकर कब्जा कर रहे हैं।

मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी ॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥१॥

अर्थ : मेल के बीच में ही ब्रह्मा ने बात बिगाड़ दी। जहाँ तहाँ कैकेयी को गालियाँ दे रहे हैं। इस पापिनी को समझ क्या पड़ा। जो घर को छाकर उसके ऊपर आग रख दिया।

व्याख्या : इस राजकुल में ऐसा मेल था कि बात बिगड़नेवाली थी ही नहीं। यह ब्रह्मा की ही करामात है कि जहाँ कभी फूट न हुई वहाँ एकाएक बात बिगड़ गयी। फिर भी निमित्त कैकेयी हुई है। अतः जहाँ तहाँ लोग निःशङ्क होकर कैकेयी को गालियाँ देते हैं।

कहते हैं कि यह पापिनी है। इसे इस काम में कौन सा लाभ दिखाई पड़ा। यह तो घर की छानेवाली थी। पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावौं तोरी। कबहुँ न कियउ सवति आरेसू। आदि से लेकर आजतक इसने घर को छाया। कुटुम्ब में विरोध नहीं होने दिया। जब सब ठीक हो गया तो छाये हुए घर पर रामविरह रूपी अग्नि रख दी। यथा : सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी।

निज कर नयन काढ़ि चह दीखा । डारि सुधा बिषु चाहति चीखा ॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी । भइ रघुबंस बेनु बन आगी ॥२॥

अर्थ : अपने हाथों से आँख निकालकर देखना चाहती है। अमृत फेंककर विष चीखना चाहती है। यह कठोर कुटिल है। कुबुद्धि है। अभागी है। रघुवंश रूपी बाँस के वन के लिए यह आग हो गयी।

व्याख्या : नयन अत्यन्त प्रिय का उपलक्षण है। यथा : मोरे भरत राम दुइ आँखी। इसी भाँति कैकेयी को रामजानकी दोनों आँख थे। यथा : जौ बिधि जन्म देइ करि छोहू। होहु रामसिय पूत पतोहू। सो यह अब समझ रही है कि आँख आवरण हैं। ये हट जायँ तो सुस्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। अतः स्वयं वरदान माँगकर रामजी को वन भेज रही है। अपने हाथ से अपनी आँख निकाल रही है। समझती है कि इससे सुख मिलेगा। ऐसी मूर्खा है। रामराज्याभिषेक सुधा है। यथा : कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता। और रामवनगमन विष है। यथा : लोग बियोग बिषय विष दागे। सो यह सुधा को फेंककर विष का रसास्वादन करना चाहती है।

कुटिल दूसरे की हानि करता है। यह कठोर कुटिल है। अपने ही कुल के नाश पर तुली हुई है। बाँस के वन में दैवयोग से बाँसों के रगड़ से अग्नि उत्पन्न हो जाती है। वह अग्नि उसी बाँस के वन का दाह करती है। उसी भाँति यह रघुवंश रूपी बाँस के वन की आग है। रघुवंश को भस्म करके मानेगी। यह कुबुद्धि है और अभागी है।

पालव बैठि पेड़ु येहि काटा । सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा ॥
सदा रामु येहि प्रान समाना । कारन कवन कुटिलपनु ठाना ॥३॥

अर्थ : पल्लव पर बैठकर इसने पेड़ काटा। सुख में इसने शोक का ठाट ठट दिया। सदा रामजी इसे प्राण के समान थे। कारण क्या आपड़ा कि इसने कुटिलपन ठाना।

व्याख्या : भरत पल्लवस्थानीय हैं। रामजी वृक्षस्थानीय हैं। यथा : पेड़ काटि एहि पालव सींचा। जिस पल्लव का यह आश्रय कर रही है वह सर्वथा पेड़ के आश्रित है। यह पल्लव पर बैठकर पेड़ काटनेवाली भरत का आश्रय करके राम को वनवास देनेवाली कुबुद्धि है। रामजी के बिना भरतजी रह नहीं सकते।

इसी भाँति सुख में बलपूर्वक शोक का ठाट रचनेवाला अभागा है। यह आनन्द से राज्य कर रही थी। सो यह बलपूर्वक विपत्ति का आह्वान कर रही है। अतः अभागी है।

यह तो सदा रामजी को प्राण के समान मानती थी। इस कुटिलपन के लिए कारण होना चाहिए। पर कोई कारण तो नहीं मालूम होता। जब कोई कारण

विचार करने पर भी हाथ न लगा और बिना कारण कार्य होता नहीं। तो लोगों ने स्वभाव को ही कारण माना।

सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥४॥

अर्थ : कवि लोग सत्य कहते हैं कि स्त्रियों का स्वभाव सब प्रकार से पकड़ में न आने योग्य अथाह और बात छिपानेवाला होता है। अपनी परछाहीं चाहे पकड़ में आजाय पर स्त्री की गति जानी नहीं जाती।

व्याख्या : अब लोगों को कवियों की उक्तियाँ याद पड़ीं। जिनमें उन लोगों ने वर्णन किया था कि स्त्रियों का स्वभाव ऐसा विचित्र होता है कि पकड़ में नहीं आता। उनके मन का पता नहीं चलता। बात को ऐसा छिपाना जानती हैं कि कभी प्रकट न हो। कैकेयी का स्वभाव स्वयं महाराज के पकड़ में नहीं आया। वे इसी विश्वास में रह गये कि रामजी इसे प्राण से प्यारे हैं। महाराज को उसके हृदय का थाह न लगा। वस्तुतः वह रामजी को प्यार नहीं करती थी। पर इस बात को इसने ऐसा छिपाया कि संसार धोखा खा गया। यथा : ऐसिउ पीर बिहँसि तेहि गोई। चोर नारि जिमि प्रगट न रोई। अपनी स्त्री है। अपने हाथ में है। पर उसकी गति जानी नहीं जाती। यथा : जिमि मुख मुकुर मुकुर निज पानी गहि न जाइ।

दो. काह न पावकु जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करइ अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ॥४७॥

अर्थ : अग्नि क्या नहीं जला सकता? समुद्र में क्या नहीं समाता? प्रबल स्त्री क्या नहीं कर सकती और संसार में किसे काल नहीं खाता?

व्याख्या : यह आक्षेपात्मक प्रश्न है। अर्थात् जिस भाँति अग्नि सब कुछ जला सकती है। समुद्र सब कुछ डुबा सकता है। काल संसार के सभी पदार्थों को खा सकता है। उसी भाँति स्त्री यदि प्रबला हो जाय तो सब कुछ कर सकती है। महाकवि कालिदास कहते हैं : स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम्। जब स्त्री पुरुष की भाँति प्रभुता करने लगती हैं। तो वह घर नष्ट हो जाता है। जलना डूबना और क्षय तीन मार्ग नाश के हैं। तीनों कैकेयी से हुए। १. बिधि कैकई हि किरातिन कीन्ही। जेहि दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही। २. सोक सिन्धु बूड़त सबहि तुम अवलंबन दीन्ह। ३. अवध उजार कीन्हि कैकेयी।

रानी कैकेयी की प्रभुता इतनी बढ़ गयी थी कि महाराज सब काम उससे पूछकर करते थे। यथा : मैं सब कीन्ह तोहि बिनु पूछे। ताते परेउ मनोरथ छूछे। फल यह हुआ कि आज वह अग्नि समुद्र और काल की भाँति घातक हो रही है। अग्नि की भाँति यथा : आगे दीख जरत रिसि भारी। बिधि कैकेयी किरातिनी कीन्ही। जेहि दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही। समुद्र की भाँति यथा : चली बिपति

बारिधि अनुकूला। काल की भाँति यथा : लागेउ तोहि पिसाच जिमि काल कहावत मोर। इसीलिए साध्वी स्त्री स्वातन्त्र्य को अपना अभाग्य मानती हैं। स्थूलदर्शी इस बात को नहीं देख सकते। कवि सूक्ष्मदर्शी होते हैं। इसलिए लोग कवियों का प्रमाण देकर बोल रहे हैं।

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा ॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचारि नहि कुमतिहि दीन्हा ॥१॥

अर्थ : क्या सुनाकर ब्रह्मा ने क्या सुनाया। क्या दिखलाकर अब क्या दिखलाना चाहते हैं। एक कहते हैं कि राजा ने अच्छा नहीं किया जो इस कुबुद्धि को विचार करके वर नहीं दिया।

व्याख्या : यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मदेव के संकल्प से ही उत्पन्न हुआ है और चल रहा है। अत: जो कुछ इसमें होता है सबके मूल में ब्रह्मदेव का सङ्कल्प है। अत: वे ही मुख्य कर्ता हैं। जो कल्याण सुना गया अर्थात् रामजी का अभिषेक : वह भी विधाता के ही कारण से सुना गया और अब जो रामजी का वनवास सुन रहे हैं वह भी उन्हीं की करतूत है। दिखलाया तो यह कि बाज गहागह अवध बधावा और अब उसी अवध में आर्तनाद देखने की बारी आ रही है।

छः प्रकार के विचार के लोग अवध में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वे लोग आपस में अपना अपना विचार प्रकट कर रहे हैं। १. अर्थशास्त्री बोले कि राजा ने अच्छा नहीं किया। सुबुद्धि कुबुद्धि का विचार करके वर देना चाहिए। देखो कुबुद्धि ने कैसा बुरा वर माँगा।

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु। अबला बिबस ग्यानु गुनु गाजनु ॥
एक धरम परमिति पहिचानें। नृपहिं दोषु नहिं देहिं सयानें ॥२॥

अर्थ : जो हठ पूर्वक सम्पूर्ण दुःख के पात्र हो गये। स्त्री के वश में हो जाने से मानो राजा के सब ज्ञान और गुण ही चले गये। एक सयाने धर्म की मर्यादा के जाननेवाले राजा को दोष नहीं देते थे।

व्याख्या : राजा को दुःखी होने की कोई बात नहीं थी। अब इस कारण से व्यर्थ दुःख के भाजन बन रहे हैं। उन्हें अपने वचन पर हठ न करना चाहिए। ऐसा विवेकी और गुणी राजा : धर्म धुरंधर नृपरिषि ज्ञानी। हृदय भगति मति सारँग पानी : सो स्त्री के वश में पड़ा हुआ मानों अपने सब ज्ञान और गुणों को खो बैठा है। यह इससे कहते नहीं बन रहा है कि मैं राजा हूँ। अन्याय नहीं कर सकता। किस अपराध से राम को वन दें।

२. धर्म की मर्यादा के जाननेवाले धर्मशास्त्री सयाने लोग कहते हैं कि इसमें राजा का कोई दोष नहीं है। संग्राम में सहायता के समय उन्होंने दो वर माँगने को कहा था। वे ही वर थाती की भाँति राजा के पास पड़े थे। आज इस दुष्टा ने उन्हीं

वरों से काम लिया। ये नर्म में माँगे हुए वर नहीं हैं जिससे राजा को दोषी कहा जा सके।

सिवि दधीचि हरिचंद कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी ॥
एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भाय सुनि रहहीं ॥३॥

अर्थ : शिवि दधीचि और हरिश्चन्द्र की कहानी एक एक से बखान कर कहते हैं। कोई भरत की सम्मति कहते हैं और कोई उदासीन होकर रह जाते हैं।

व्याख्या : उन धर्मशास्त्रियों का कहना है कि धर्म के निर्वाह में तो दुःख होता ही है। यहाँ तो दुःख की जितनी ही तीव्रातितीव्र मात्रा हो उतना ही धर्म का उत्कर्ष है। राजा शिवि शरणागत कपोत के लिए अपना मांस काटकर तौलते गये और वह कपोत भारी होता ही गया पर राजा अपना मांस काटने से विरत नहीं हुए। दधीचि ने अपनी हड्डियाँ दे डालीं। हरिश्चन्द्र ने अपना राज्य दिया। स्त्री बच्चे को वेंच दिया। स्वयं डोम के हाथ बिक गये। पर अपने धर्म से न हटे। यही महाराज के धर्म की परीक्षा का समय है। इसमें उनका दोष क्या है ?

३. तीसरे प्रकार के कुछ लोग कूटनीतिज्ञ ऐसे हैं कि इसमें भरत की चाल देखते हैं कि माँ को सिखा पढ़ाकर आप ननिहाल बैठे हुए हैं। चौथे ज्ञानी महात्मा हैं जो उदासीन हैं कुछ भी नहीं कहते।

कान मूँदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा ॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। रामु भरत कहुँ प्रानपियारे ॥४॥

अर्थ : कान मूँदकर और जीभ को दाँत से दाबकर कोई कहते हैं कि यह बात झूठ है। तुम्हारे ऐसा कहने से पुण्य का क्षय होगा। राम तो भरत को प्राण से प्यारे हैं।

व्याख्या : पाँचवे प्रकार के लोग भगवद् भक्त हैं। ये ऐसी बात सुनना नहीं चाहते। इसलिए कान मूँद लेते हैं और दूसरे को भी ऐसी बात कहने से निषेध करते हैं। इसलिए दाँत तले जीभ दबाते हैं और कहते हैं कि यह बात निर्मूल है। निर्दोष पर दोषारोपण करने से पुण्य का क्षय होता है। सो क्यों व्यर्थ अपने पुण्य का क्षय करते हो। संसार राज्य सुख तो अपने प्यारों के लिए ही चाहता है और भरत को राम प्राण से प्यारे हैं। उनके अभिषेक में भरत बाधक क्यों होंगे ?

दो. चंदु चवइ बरु अनल कन, सुधा होइ बिष तूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु, भरतु राम प्रतिकूल ॥४८॥

अर्थ : चाहे चाँद में से आग के कण गिरें चाहे अमृत विष हो जाय पर सपने में भी भरत राम के प्रतिकूल कुछ भी नहीं कर सकते।

व्याख्या : चन्द्रमा हिमकर हैं : हिमकण का स्राव करते हैं। वे चाहे अग्निकण का स्राव करने लगें। उनके स्वरूप में इतना बड़ा वैषम्य उपस्थित हो जाय और

अमृत विष तुल्य हो : उसका स्वभाव ही पलट जाय, पर भरत के स्वरूप और स्वभाव में अन्तर नहीं पड़ सकता। यथा : भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई। सो भरतजी रामजी के प्रतिकूल सपने में भी नहीं हो सकते जाग्रत् की कौन चलावे।

एक बिधातहि दूषनु देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ॥
खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू ॥१॥

अर्थ : कोई ब्रह्मा को दोष देते हैं जिसने अमृत दिखलाकर विष दिया। नगर में खलबली मच गयी। सबको सोच हो गया। हृदय में नहीं सहने योग्य दाह पैदा हो गया। उछाह जाता रहा।

व्याख्या : यह छठा प्रकार कर्मकाण्डियों का है। यह सीधे सीधे विधाता को दोष देते हैं। दिखाकर न देना दोष है और अमृत दिखाकर विष देना तो बड़ा ही कराल कर्म है। यथा : सुनिअ सुधा देखिअ गरल सब करतूति कराल। रामराज्याभिषेकोत्सवरूपी अमृत विधाता ने दिखलाया। दिखलाकर न देते। रामजी का अभिषेक न होता यही बहुत था। उनको वनवास रूपी विष दिया जा रहा है!

विष दिये जाने पर जो खलबली मचती है वह मची। सबको सोच है कि इस विष से रक्षा कठिन है। विष काम भी करने लगा। हृदय में जलन उत्पन्न हो गयी। सबके हृदय में उत्साह था। यथा : सुनत राम अभिषेक सोहावा। बाज गहागह अवध बधावा। सो उछाह मिट गया।

बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकेयी केरी ॥
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहिं ताही ॥२॥

अर्थ : ब्राह्मणों की स्त्रियाँ कुल की मान्य बड़ी बूढ़ी जो कैकेयी को परमप्रिय थीं उसके शील की प्रशंसा करती हुई समझाने लगीं। पर वे वचन उसे बाण जैसे लगते थे।

व्याख्या : ब्राह्मणों की स्त्रियाँ जिन्हें अति पूज्य दृष्टि से रानी कैकेयी सदा देखती थी कुल की मान्य ननद फूफी आदि जठेरी जेठानी चचियासास आदि जो कैकेयी को परमप्रिय थीं जब उन लोगों ने यह समाचार सुना तो अपना जोर समझकर कैकेयी के पास पहुँचीं और उसके शील की स्तुति करके समझाने लगीं। पर समझना तो दूर रहा उनके वचन उसे वाण के समान लगने लगे। उसने समझा कि ये ठकुरसोहाती करनेवाली आगयीं। ये सब शत्रु की ओर मिली हुई हैं। मेरे शील की सराहना इसलिए हो रही है कि मैं इनकी बातों में आकर अपने ध्येय से हट जाऊँ। ये एक बात भी मेरे हित की नहीं कह रही हैं। जिसमें कौसल्या का भला हो वही कह रही हैं। अतः वे वचन उसे बाण से लगते थे।

भरतु न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु येहु सबु जगु जाना ॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहि अपराध आजु बनु देहू ॥३॥

अर्थ : राम के समान मुझे भरत भी प्यारे नहीं सदा यह कहती आयी हो और संसार इस बात को जानता है। रामजी पर तुम स्वाभाविक स्नेह करती हो तो आज किस अपराध पर वन दे रही हो।

व्याख्या : अब समझाने का प्रकार कहते हैं। वे सब कहने लगीं कि तुम तो सदा कहती रही कि राम के समान मुझे भरत भी प्यारे नहीं। तुम्हारा बर्ताव भी राम के साथ वैसा ही था। इसलिए संसार में यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि महारानी कैकेयी बेटे से अधिक रामजी को मानती हैं। सो क्या वह कहना और वह वर्ताव मिथ्या था ? तुम्हारा स्नेह रामजी पर बनावटी था। यह तो हम लोग मान नहीं सकतीं। सो स्वाभाविक स्नेह में हठात् इतना बड़ा परिवर्तन क्यों ? बिना-कारण कार्य नहीं होता। अपराध से ही स्नेह में कमी आती है। इतने दिनों तक तो सब ठीक चला। आज जो वन दे रही हो सो किस अपराध पर ? हम लोग भी सुनें कि राम ने यह अपराध किया है। जगत् भी जाने : नहीं तो निरपराध को दण्ड देने का दोषी संसार तुम्हें समझेगा।

कबहुँ न कियहु सवतिआ रेसू। प्रीति प्रतीति जांन सबु देसू ॥
कौसल्याँ अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ॥४॥

अर्थ : तुमने कभी सौतियाडाह नहीं की। तुम्हारी प्रीति और विश्वास को सारा देश जानता है। कौसल्या ने अब क्या बिगाड़ा जिसके लिए तुम सारे नगर पर वज्र ढहा रही हो।

व्याख्या : कुछ उत्तर न मिलने पर उन लोगों ने सोचा कि रामजी से कोई अपराध नहीं हुआ। सौत का स्वभाव है दूसरी के पुत्र की बढ़ोतरी नहीं देख सकतीं। पर यहाँ तो यह बात कभी नहीं थी। अतः कहती है कि तुमने तो आज तक सौतियाडाह नहीं किया। तुम्हारे में और कौसल्या में जैसी प्रीति प्रतीति है वैसी सौतों में कहीं देखी नहीं जाती। यह बात संसार जानता है। रामजो को युवराजपद महाराज देते थे। उसमें कौसल्या का क्या दोष है ? सो तो अब होगा नहीं। अब तो भरत युवराज होंगे। बात समाप्त हो गयी। अब जो राम को वन भेज रही हो यह तो कौसल्या को दण्ड देना है। तुम्हारे विवाह में कौसल्या बाधक नहीं हुई। हवि विभाग में बाधक नहीं हुई। तुम्हारे बढ़ते हुए अधिकार में बाधक नहीं हुई। जब बिगाड़ करने का समय था तब बिगाड़ नहीं किया। अब कौसल्या ने क्या बिगाड़ा जो कहती हो : जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु तिन्हहिं देउँ करि साका। तुम तो चली हो कौसल्या को दण्ड देने सो वह दण्ड कौसल्या पर ही सीमित न रहकर सम्पूर्ण प्रजामण्डल पर गिरेगा। सम्पूर्ण प्रजा पर वज्र क्यों गिरा रही हो ?

दो. सीय कि पिय सँगु परिहरिहि, लखनु कि रहिहहिं धाम ।
राजु कि भूँजब भरत पुर, नृपु कि जिअहि बिनु राम ॥४९॥

अर्थ : सीता क्या पति का संग परित्याग करेगी ? लक्ष्मण क्या घर रहेंगे ? भरत क्या पुर का राज्य भोगेंगे ? राजा क्या बिना राम के जीवेंगे ?

व्याख्या : सीता कुलवधू है : वह निश्चय रामजी के साथ वन चली जायगी। क्या यह भी तुम्हें स्वीकार है ? लक्ष्मण का भी इतना प्रेम है कि वे भी घर नहीं रहेंगे। क्या यह भी तुम्हें इष्ट है ? कह सकती हो कि भरत तो राजा होंगे। भरत के राज्य के लिए मैं सब करती हूँ। पर प्रश्न तो यह है कि क्या ऐसी अवस्था में भरत राज्य स्वीकार करेंगे ? हम कहती हैं कि कभी नहीं करेंगे। रामजी रहते तो कदाचित् भरत स्वीकार भी करते। अतः राम को वन भेजकर तुम अपने मुख्य इष्ट का नाश कर रही हो और सबसे बड़ा अनिष्ट तुम्हारे लिए यह होगा कि महाराज बिना राम के न जीवेंगे। इतना बड़ा अनर्थ तुम्हारे हाथ से हुआ चाहता है।

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोठि जनि होहू ॥
भरतहिं अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू ॥१॥

अर्थ : ऐसा विचारकर क्रोध छोड़ दो। शोक और कलंक की कोठी न बनो। भरत को अवश्य युवराज पद दो। पर राम का वन में क्या काम है ?

व्याख्या : तुम्हारे क्रोध के भयानक दुष्परिणाम होंगे। भरत के राज देने में अर्थ कारण है। पर राम के वन देने में तो क्रोध कारण है। उसके वश होकर शोक और कलङ्क की निधान अपने को क्यों बनाती हो। राम के वन देने से तुम्हें असाधारण कलङ्क लगेगा और जब इस भाँति मिले हुए राज्य को भरत अस्वीकार कर देंगे महाराज बिना राम के प्राण त्याग करेंगे तब तुम शोक की कोठी होओगी। राम को वन भेजकर अव्यापारेषु व्यापार क्यों करती हो ?

नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन विषय रस रूखे ॥
गुरु गृह बसहु रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू ॥२॥

अर्थ : रामजी राज के भूखे नहीं हैं। वे धर्म के धुरा के वहन करनेवाले हैं। विषय रस से रूखे हैं। रामजी घर छोड़कर गुरुजी के घर रहें। तुम राजा से यह दूसरा वर लो।

व्याख्या : यदि कहो कि भरत के राज्य में रामजी बाधक होंगे तो रामजी को सब जानते हैं। उन्हें राज की भूख नहीं है। राज्य की चाह उसे होती है जिसे विषय लिप्सा होती है जो राज धर्म के गौरव को नहीं जानता। रामजी तो सदा विषय रस से रूखे हैं : वे धर्मधुरीण हैं। जानते हैं कि राजधर्म का निर्वाह कठिन है। उन्हें राज्य की भूख हो नहीं सकती।

पर तुम्हें भूख है। तुम्हारे मन में शंका हो सकती है। तो राजा से दूसरा

वर माँग लो कि राम घर में न रहें। वे जाकर गुरुजी के घर रहें। गुरुजी की दृष्टि दिन रात उन पर रहेगी। फिर उनसे कोई भय का कारण न रह जायगा। लोग भी समझेंगे कि केवल भय से रानी ने रामजी को इस दृश्य से पृथक् कर रक्खा है। भरत के राज्य स्वीकार में भी अधिक कठिनता न होगी। महाराज के प्राण भी बच जायँगे।

जौं नहि लगिहहु कहें हमारे। नहि लागिहि कछु हाथ तुम्हारे ॥
जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ॥३॥

अर्थ : यदि तुम हम लोगों का कहना न मानोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ न लगेगा। यदि तुमने हँसी की हो तो उसे प्रकट करके कह दो।

व्याख्या : रुख देखकर सखी कहती हैं कि यदि तुमने हमारा कहना न माना अपनी बात पर ही अड़ी रह गयी कि रामजी वन जायँ तो तुम्हारे हाथ सिवा शोक कलङ्क के और कुछ न लगेगा। कभी भरत राज्य स्वीकार नहीं करेंगे। राजमाता का स्वप्न झूठा हो जायगा। सखी हैं : बात सुधारने के लिए अवसर देती हैं कि यदि तुमने सचमुच हँसी की हो : क्योंकि हँसी में ही ऐसी निष्कारण बात कही जाती है तो बात अब हँसी की सीमा को उल्लंघन कर रही है। स्पष्ट कह दो कि यह तो हमने हँसी की थी।

राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्हे कहुँ लोगू ॥
उठहु वेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई ॥४॥

अर्थ : क्या राम ऐसा बेटा वन के योग्य है। लोग सुनकर तुम्हें क्या कहेंगे। उठो जल्दी से वही उपाय करो जिस विधि से शोक कलङ्क नष्ट हो।

व्याख्या : बेटा वन में भेजने की वस्तु नहीं है। खोटे बेटे को भी कोई वनवास नहीं देता। फिर रामजी ऐसा बेटा वनवास के योग्य कैसे है ? भला, जो सुनेगा वह तुम्हें क्या कहेगा ?

जब सखियों ने देखा कि यह टस से मस नहीं होती तब कहती हैं : बैठी क्या हो। उठो, बैठने से काम नहीं चलेगा। अब तुम्हें बिगड़ी बात के बनाने में परिश्रम करना पड़ेगा। शोक और कलंक तुम पर आ पड़ा। तुम बड़े दुःख में पड़ गयी। तुम्हें सूझता नहीं है।

छं. जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ, उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जात बन, जनि बात दूसरि चालही ॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंदु बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी ॥

अर्थ : जिस भाँति शोक और कलङ्क मिटे वैसा उपाय करके कुल की रक्षा

कर लो। राम को वन जाने से हठ करके लौटाओ। दूसरी बात मुख से न निकालो। जैसे बिना सूर्य का दिन बिना चाँद की रात बिना प्राण का देह तुलसीदास के प्रभु के बिना अवध भी वैसा ही है। हे भामिनि मन में विचारो।

व्याख्या : सखी कहती है कि हम जो कहती हैं उतना ही नहीं। जिस उपाय से शोक कलङ्क मिटे सोई उपाय करो। कुल का नाश होना चाहता है उसे बचा लो। कदाचित् राम न फिरें तो उन्हें हठ करके लौटाओ। रामजी चल पड़े। उनका लौटना सरल नहीं है। चली जाओ कौसल्या के महल में दोनों माताएँ मिलकर रामजी को जाने से रोको।

अवधपुरी सोहावनी मङ्गलमय और पावनी है। सो भयावनी अमङ्गलमय और अपावनी हो जायगी। जैसे चाँद बिना रात भयावनी, सूर्य बिना दिन अपावन, प्राण बिना तन अमङ्गलमय, वही दशा अवध की बिना राम के हो जायगी। भली भाँति मन में समझ लो।

सो. सखिन्ह सिखावनु दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेहिं कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥५०॥

अर्थ : सखियों ने ऐसी सीख दी जो सुनने में मधुर और परिणाम में हित हो। पर उसने एक न सुना। उसे कुटिल कूबरी ने सिखा पढ़ाकर पक्का कर रक्खा था।

व्याख्या : कठोर शब्दों में कहे गये हित शब्द का भी आदर किया जाता है। सखियों ने तो बहुत मधुर शब्दों में कहा। नहीं सुनने का कोई कारण नहीं था। पर कैकेयी ने एक न सुना। क्योंकि उसे कुटिल कूबरी ने समझा रक्खा था कहहिं झूठ फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि। कैकेयी ने समझ लिया कि आगयीं प्रिय बनाकर झूठी बातें कहनेवाली। उसने कहा था : काज सँवारेउ सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। सो कैकेयी अपने समझ में सजग होकर काम सँवार रही थी। उन्हें अब सखियों पर विश्वास नहीं रह गया।

उतरु न देइ दुसह रिसि रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी ॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी ॥१॥

अर्थ : दुःसह क्रोध से रूखी हो गयी है। जवाब नहीं देती और इस भाँति देख रही है मानो भूखी बाघिन मृगी को देखती हो। असाध्य रोग जानकर उन्होंने उसे छोड़ दिया और मतिमन्द अभागी कहती हुई चली गयीं।

व्याख्या : है तो सदा की शीलवती। पर इस समय उसे इतना क्रोध है कि बेकाबू हो रही है। शील का कहीं नाम नहीं है। अति रूक्ष व्यवहार करती हैं। यह भी नहीं कि उनकी ओर देखती न हो। निर्निमेष नेत्र से देख रही है। पर चितवन में क्रोध भरा हुआ है। ऐसा मालूम पड़ रहा है कि किस समय टूट

पड़ेगी कुछ ठिकाना नहीं। जैसे बाघिन दुःसह भूख से उत्पतनोन्मुख हो रही है। कैकेयी की यही दशा दुःसह क्रोध के कारण हो रही है।

सखियों ने देखा कि यह किसी बात का उत्तर देना नहीं चाहती और क्रोध से भरी घूर रही है। तब उन लोगों ने समझ लिया कि यह असाध्य रोग है। यहाँ औषध काम नहीं कर रही है : काल बिबस कहँ भेषज जैसे। महाराज वृद्ध गजराज थे सहमकर गिर पड़े थे। पर ये तो मृगी हैं वहाँ से निकल भागो। यह मतिमन्द है। अभागी है। ऐसा कहती हुई चली गयीं।

राजु करत येह दैव बिगोई। कीन्हेसि अस जस करै न कोई ॥
एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारी। देहिं कुचालिहिं कोटिक गारी ॥२॥

अर्थ : इस दइमारी ने राज करते हुए ऐसा किया जो कोई नहीं करता। इस विधि से पुरनरनारी विलाप करती हैं और इस कुचाल चलनेवाली को करोड़ों गालियाँ देते हैं।

व्याख्या : ऊपर मतिमंद अभागी कह आयी हैं। उसी को स्पष्ट करती हैं। यह दइमारी है। इस पर दैव का कोप हो गया है। अतः अभागी है। जो राज करता है वही प्रजामात्र के लिए आदर्श है। अतः उसे खूब सँभालकर पैर उठाना चाहिए। सो इसने ऐसा किया जैसा कोई नहीं करता। ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठये बन बालक ऐसे। अतः यह मतिमन्द है।

जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ विषाद नहि धीरज होई से उपक्रम और एहि बिधि बिलपहिं कहकर उपसंहार करते हैं। विलाप के साथ ही साथ गाली का उपक्रम यथा—मिलेहिं माँझ बिधिबात बेगारी। जहँ तहँ देहिं कैकेइहि गारी और उपसंहार में : देहि कुचालिहिं कोटिक गारी।

जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा ॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी ॥३॥

अर्थ : विषम ज्वर से जल रहे हैं। लम्बी लम्बी साँस लेते हैं कि रामजी के बिना जीने की कौन आशा है। विषम वियोग से प्रजा विकल हो उठी। जैसे पानी सूखते समय जलचर व्याकुल होते हैं।

व्याख्या : ज्वर का लक्षण है : देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली। यह देह इन्द्रिय और मनको ताप पहुँचाता है। सब रोगों का अग्रज : बड़ा भाई है और बलवान् है। सज्वरा एव जायन्ते सज्वरा एव म्रियन्ते। ज्वर के सहित जन्म होता है और ज्वर के सहित ही मृत्यु होती है और रोग तो पीछे उत्पन्न होते हैं। इसलिए ज्वर सब रोगों का बड़ा भाई है। इसे मनुष्य और देवता को छोड़कर और कोई भी जीव सह नहीं सकता। इसलिए बली कहा। सो वियोग ज्वर है और विषमवियोग विषम ज्वर है : आमज्वर सुविचिकित्स्य होता है और विषम ज्वर दुर्विचिकित्स्य होता है। रामजी का वियोग विषम ज्वर है। इसमें दाह होता है और उसके कारण से

व्याधिग्रस्त पुरुष लम्बी सासें लेता है। यही गति प्रजा की हो रही है। वह कहती है कि राम के बिना जीवन की क्या आशा है। भाव यह कि इस विषमज्वर की दवा केवल राम हैं।

सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंद निहारी। अतः रामजी का वियोग सब वियोगों से अधिक है। जैसे जलचर के लिए जल का वियोग तो सीधे सीधे प्राण का ही वियोग है। पानी सूखने लगा तब सम्पूर्ण जलचरों का व्याकुल हो उठना स्वभावसिद्ध है। जिस भाँति जलचर के लिए पानी है उसी भाँति प्रजा के लिए रामजी हैं। उनका वियोग जितना निकट आता जाता है। उतनी ही प्रजा की व्याकुलता बढ़ रही है।

अति बिषाद बस लोग लोगाई। गये मातु पहिं रामु गोसाई ॥
मुख प्रसन्नु चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ ॥४॥

अर्थ : स्त्री पुरुष तो सब विषादवश हैं और रामजी माँ के पास गये। मुख प्रसन्न है। चित्त में चौगुना आनन्द है। राजा रोक न लें यह सोच भी मिट गया।

व्याख्या : जिसके वनगमन के समाचार से स्त्री पुरुष इस भाँति विषाद वश हो रहे हैं। उन्हें वनगमन में लाभ ही लाभ दिखाई दे रहा है। चार लाभ गिनाये हैं १. मुनिगन मिलनु विसेषबन सबहिं भाँति हित मोर २. तेहिमहँ पितु आयसु ३. बहुरि संमत जननी तोर और ४. भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। इसलिए चित्त में चौगुना आनन्द है। आनन्द मन में होने से मुखपर प्रसन्नता के चिह्न आ ही जाते हैं। माता के कहने पर यह सोच रहा कि कहीं महाराज रख न लें। पर : अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा। राजा के शोकवश होकर उत्तर न देने का अर्थ ही यही है कि राजा ने मन से बन दे दिया। अतः महाराज के रोक लेने का जो सोच रहा वह भी जाता रहा।

दो. नव गयंदु रघुबीर मनु, राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि, उर अनंदु अधिकान ॥५१॥

अर्थ : रामजी का मन नये गजराज के समान है। राज्य बन्धन के समान है। छूटा हुआ जानकर वनगमन सुनने से हृदय में आनन्द अधिक हो उठा।

व्याख्या : बूढ़ा गजेन्द्र छूटने पर भी वन नहीं जाता। घूम फिरकर हाथीखाने में ही आ जाता है। वह स्वातन्त्र्य के सुख को भूले हुए है। पर नये गजेन्द्र को स्वातन्त्र्य का सुख याद है। उसे मलीदा अच्छा नहीं लगता। वह बन्धन से लाचार होकर स्वातन्त्र्य सुख से वञ्चित है। इसी भाँति रामजी का मन है। वह नवगजेन्द्र की भाँति स्वच्छन्द विचरना चाहता है। राज्य उसे बन्धन मालूम हो रहा है। उससे वह सुखी नहीं है। यद्यपि नवगजेन्द्र बँधने पर भी मस्त ही रहता है। पर यदि बन्धन छूट जाय तो और भी आनन्दित हो उठता है। उसी भाँति आत्माराम पूर्ण

काम राम सहज आनन्द निधान हैं। पर गमन सुनने से उनका आनन्द बढ़ गया कि चलो इस राज बन्धन से छुट्टी मिली।

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा ॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे ॥१॥

अर्थ : रघुकुलतिलक रामजी ने दोनों हाथ जोड़े हुए प्रसन्न होकर माँ के चरणों में सिर नवाया। माँ ने आशीर्वाद दिया। हृदय से लगा लिया और गहना कपड़ा निछावर किया।

व्याख्या : सरकार स्वयं ही रघुकुल के तिलक रूप हैं। इन्हें तिलक की आवश्यकता नहीं। वनगमन के निश्चय से बड़े प्रसन्न हैं। उसी प्रसन्नता में दोनों हाथ जोड़कर माँ के चरणों में प्रणाम किया : माँ ने समझा कि तिलक होने जा रहा है। अतः प्रसन्न हैं। आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए प्रणाम करने आये हैं। माता परम प्रसन्न हो उठी। प्रेम उमड़ आया। आशीर्वाद देती हैं। रामजी अतिप्रिय हैं इससे हृदय से लगाती हैं। अभिषिक्त होने जा रहे हैं : इसलिए गहना कपड़ा निछावर करती हैं।

बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए ॥२॥

अर्थ : माँ बार बार मुख चूम रही हैं। आँखों में प्रेमाश्रु भरा हुआ है और शरीर में पुलक हो रहा है। गोद में बिठाकर हृदय से लगाया। सुन्दर स्तनों से प्रेमरस बहने लगा।

व्याख्या : नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग। राजा और रानी का पुण्य भ्रमर है उसे रामजी के मुख कमल के रसास्वादन का अधिकार है। यद्यपि रामजी की उम्र इस समय सत्ताइस वर्ष की है। फिर भी माता का प्रेम वैसा ही है जैसे छोटे बच्चों पर होता है। वह बार बार मुख चूमती है। सात्त्विक भाव का उदय हुआ है। आँखों में आँसू भरे हुए हैं और देह में पुलकावली छायी हुई है। गोद में रामजी को बिठाती हैं और फिर से हृदय लगा रही हैं। सुन्दर स्तनों से प्रेम के मारे दूध बह चला। वात्सल्य भाव के अधिक बढ़ जाने से असमय में भी माता के स्तनों में दूध आ जाता है। इसीलिए गोस्वामीजी ने उसे प्रेमरस कहा।

प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंकु धनद पदबी जनु पाई ॥
सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी ॥३॥

अर्थ : प्रेम और आनन्द का कुछ वर्णन नहीं हो सकता। मानो किसी दरिद्र को कुबेर की पदबी प्राप्त हो गयी हो। आदर के साथ सुन्दर मुख का अवलोकन करके माँ ने मीठे वचन कहे।

व्याख्या : इष्टजन्य भोग को प्रमोद कहते हैं। उस समय जैसा प्रेम और प्रमोद

माँ को हुआ उसका क्या वर्णन किया जाय। मानो दरिद्र को कुबेर का पद मिल गया। धनविहीन को ही दरिद्र कहते हैं। उसे धन मिलना दुर्लभ है। ऐसे को कुबेर का पद यदि मिल जाय अर्थात् नवों निधियाँ उसे प्राप्त हो जायँ जिसे वह जितना चाहे उसे उतना धन दे सके तो उस समय उसे जो आनन्द होता है वह वर्णनातीत है। यही दशा कौसल्या माता की हुई। इन्हें सब कुछ रहते हुए भी पुत्र नहीं था। पुत्र मुख दर्शन दुर्लभ था। सो इन्हें राम सा पुत्र मिला। अब रामजी का राज्याभिषेक होने जा रहा है। यह प्रसन्नता रंक के धनदपद प्राप्ति के समान है।

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी ॥
सुकृत सील सुख सींव सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई ॥४॥

अर्थ : बेटा ! माता बलैया लेती हैं। कहो कब वह आनन्द और मंगल करने वाला लग्न है जो कि पुण्यशील के सुख की सीमा है और जन्म के लाभ की पूर्ण अवधि है।

व्याख्या : शुभकार्य शुभ लग्न में ही होते हैं। यहाँ लग्न का किसी को पता ही नहीं। लोग एक दूसरे से पूछते हैं : कबहिं लगन मुद मंगलकारी। यहाँ तक कि माता कौसल्या को भी पता नहीं। वे राम जी से पूछती हैं कि वह मुद मंगलकारी लग्न कब है ? बात यह हुई कि गुरुजी ने लग्न बताया नहीं कह दिया कि जब राम युवराज हों तभी शुभ लग्न है। वह लग्न इतनी प्रिय है कि माता उसे सुकृत सील के सुख की सीमा कहती है। जिस लग्न में रामजी का तिलक हो माता के लिए वही लग्न सुकृत शील के पुण्य की सीमा है और वही जन्मलाभ की पूरी अवधि है। यथा : राम बाम दिसि सोहति रंमारूप गुन खानि। देखि मातु सब हरखों जन्म सुफल निज जानि।

दो. जेहि चाहत नर नारि सब, अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित, बृष्टि सरद रितु स्वाति ॥५२॥

अर्थ : जिसे सभी स्त्री पुरुष अतिआर्त होकर इस तरह चाहते हैं जैसे प्यासे चातक और चातकी शरद ऋतु के स्वाती की वर्षा को चाहते हैं।

व्याख्या : जैसे महाराज को सब नगर का वृत्तान्त दूतों द्वारा मालूम रहता है उसी भाँति महारानी कौसल्या को भी दूतियों द्वारा सब नगर का वृत्तान्त मालूम है। वे जानती हैं कि प्रजावर्ग भी रामजी के तिलक के लिए आर्त है। अतः कहती हैं कि तुम्हारा तिलक मेरे लिए तो जन्मलाभ की अवधि है ही पर सारी प्रजा : नरनारी सब पपीहा की तरह शरद ऋतु के स्वाती की वर्षा का बाट जोह रहे हैं। स्वाती के बूँद के लिए ही पपीहा तरसता है। बारह महीने से उसी के लिए रट लगाये रहता है। यहाँ तो बारह वर्ष से प्रजा उसी लग्न की प्रतीक्षा कर रही है जिसमें तिलक होनेवाला है।

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू । जो मन भाव मधुर कछु खाहू ॥
पितु समीप तब जायेहु भैया । भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया ॥१॥

अर्थ : बेटा ! मैं बलैया लेती हूँ । जल्दी से नहा डालो । जो मनमें भावे सो मिठाई थोड़ी सी खालो तब पिता के पास जाना । बहुत देर हो गयी है । माँ बलैया लेती है ।

व्याख्या : तुम्हें अभिषेक के लिए जाना है । कल से संयम में हो इसलिए जल्दी से नहाकर कुछ मीठा खालो । अभिषेक में बहुत देर लगेगी कब तक भूखे रहोगे । यदि संयम में हो तो अन्न न खाओ । मीठा खाने में तो कोई दोष नहीं है । अत: कलेवा करने के बाद पिता के पास जाना । दिन चढ़ आया । अभीतक तुमने कुछ खाया नहीं । इतना कहने पर भी अभिरुचि न देखकर कहती हैं कि मैं बलैया जाती हूँ । कुछ खा लो ।

मातु बचन सुनि अति अनुकूला । जनु सनेह सुरतरु के फूला ॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला । निरखि राम मनु भँवरु न भूला ॥२॥

अर्थ : माता के अति अनुकूल वचन सुन करके जो कि स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल की भाँति सुख रूपी मकरन्द से भरे हुए और शोभा के मूल थे; रामजी का मन जो कि भ्रमर सा है देखते हुए भी नहीं भूला ।

व्याख्या : भौंरा पुष्परस : मकरन्द का रसिक है । वह उसके सुगन्ध से आकृष्ट होकर उसके पास पहुँच जाता है और रस लेने में मुग्ध हो जाता है । ऐसा ही रामजी का मन है । यह प्रेम का बड़ा रसिक है । जहाँ प्रेम देखता है वहाँ रस के आस्वादन के लिए पहुँच जाता है । यथा : मुनि मानस पंकज भृंग भजे और उस रसास्वादन में अपने को भूल जाता है । पर यहाँ तो माता के वचन ऐसे अनुकूल थे मानों वे स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल हैं । सुखरूपी मकरन्द से भरे हुए हैं और शोभा के मूल हैं । उसे देखते हुए भी वही मकरन्द रसिक रामजी का मन आज अपने को भूलता नहीं है । उसे कर्तव्य विस्मृति नहीं हो रही है ।

भावार्थ यह : प्रभु भाव ग्राहक अति कृपाल सुप्रेम ते सुख मानहीं और माता का वचन दिव्य प्रेम से भरा हुआ है । उस प्रेम को देखते हुए भी आज उस ओर आकृष्ट नहीं हो रहे हैं । किसी भाँति कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं होना चाहते ।

धरम धुरीन धरम गति जानी । कहुउ मातु सन अति मृदु बानी ॥
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥३॥

अर्थ : धर्मधुरन्धर रामजीने धर्म की गति को जानकर माता से अति कोमल वाणी में कहा कि पिताजी ने मुझें वन का राज्य दिया है और वहाँ सभी तरह से मेरी बड़ी आवश्यकता है ।

व्याख्या : सरकार धर्मधुरन्धर हैं । धर्म का चक्र इन्हीं के आधार पर फिरता

है। जानते हैं कि धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः। पिता की आज्ञा मानना सब धर्मों में श्रेष्ठ है। परन्तु माँ इस प्रकार के प्रेम के शब्द बोल रही है। इसके उत्तर में वज्राघात जैसी बात कैसे कहूँ। अतः उसी बात को जितने कोमल शब्दों में कहा जा सकता था उतने कोमल शब्दों में कहा।

पिताजी ने मुझे वन का राज्य दे दिया। वन की व्यवस्था बहुत बिगड़ी हुई है। वहाँ बिना मेरे गये काम बन नहीं सकता। इस भाँति पिता के सत्य की तथा सद्भावना की रक्षा की। यही कथन का पाण्डित्य है कि जो कुछ सरकार ने कहा वह सत्य, प्रिय और हित था।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनँदु अंब अनुग्रह तोरे॥४॥

अर्थ : माँ तू प्रसन्न मन से आज्ञा दे जिससे वन जाते हुए मुझे आनन्द मङ्गल हो। प्रेमवश होकर भूलकर भी मत भयभीत हो। क्योंकि तेरे अनुग्रह से ही सब आनन्द होगा।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि पिताजी की आज्ञा हो चुकी पर प्रसन्न मन से नहीं हुई। अतः तू प्रसन्न होकर आज्ञा दे। यदि पिताजी की भाँति तू भी दुःखी होकर आज्ञा देगी तो मुझे वन यात्रा में आनन्दमङ्गल कैसे होगा?

वन के दुःख को दृष्टि में रखकर भय से तू आज्ञा देने में विषण्ण मत हो। क्योंकि आनन्द का निवास तो माता के अनुग्रह में हैं। तेरा अनुग्रह यदि बना रहा तो रन में वन में मेरे लिए सर्वत्र ही आनन्द है।

दो. बरष चारि दस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान॥५३॥

अर्थ : चौदह वर्ष वन में रहकर और पिता के वचन को प्रमाण करके लौटकर फिर चरणों का दर्शन करूँगा। तू मन को मलिन मत कर।

व्याख्या : अब वनवास की अवधि कहते हैं। चौदह वर्ष सुनने में बड़ा कठोर प्रतीत होगा। अतः उसे खण्ड करके कहते हैं। उसमें चार पहिले कहकर पीछे दश कहते हैं। पिता का वचन अप्रमाण न हो इसलिए वन में बसेंगे। कुछ राज्य न मिलने से नाराज होकर नहीं। बस अवधि पूरी होते ही लौटकर चरणों का दर्शन करूँगा। माता के मुखपर म्लानता की रेखा देखकर कहते हैं तू मन को म्लान मत कर।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परे पावस पानी॥१॥

अर्थ : रघुवर के विनययुक्त और मीठे वचन माँ को बाण जैसे लगे। कलेजा

बेध दिया। शीतल वाणी सुनकर सहमकर सूख गयो। जैसे जवासे पर बरसात का पानी पड़ा हो।

व्याख्या : इतने मधुर शब्दों में और विनीत भाव से कही हुई बात : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू ''बरष चारिदस बिपिन बसि। माँ है : उसे वाण से लगे। कलेजा बिंध गया। जिसे वाण लगता है. वह पृथ्वी पर गिर जाता है। माँ गिरी तो नहीं पर सहमकर सूख गयी। इसलिए कवि ने दूसरी उपमा दी। पावस का पानी बड़ा शीतल होता है। संसार को हरा भरा कर देता है। पर उसी शीतल जल से जवासा झुलस जाता है। उसके पत्ते गिर जाते हैं। वह बिल्कुल सूख जाता है। इसी भाँति कौसल्याम्बा भी रामजी की शीतल वाणी से सूख गयी : यहाँ विषमालङ्कार है।

**कहि न जाइ कछु हृदय विषादू। मनहूँ मृगी सुनि केहरि नादू॥**
**नयन सजल तन थर थर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी॥२॥**

अर्थ : हृदय में ऐसा विषाद हुआ जो कहा नहीं जा सकता। जैसे मृगी को सिंहनाद सुनने पर होता है। आँखों में जल भर आया। शरीर थर थर काँपने लगा। जैसे माँज़ा खाकर मछली विकल हो।

व्याख्या : माता का धैर्य एकदम छूट गया। जैसे सिंह का गर्जन सुनकर मृगी का धैर्य छूट जाता है। वह चौकड़ी भूल जाती है। हृदय में जो विषाद हुआ उसे कहा नहीं जा सकता। आँखों में जल आगया और थर थर काँपने लगी और ऐसी विकल हुई जैसे मछली ने माँजा खा लिया हो। पहिले पानी बरसने से जो गाज नदी में उत्पन्न होता है उसे खाकर मछली वड़ी विकल हो जाती हैं। इन तीन अर्धालियों से मनसा वाचा कर्मणा विषाद कहा।

**धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥**
**तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥३॥**

अर्थ : धैर्य धरके बेटे का मुख देखकर गद्गद वाणी से माता कहने लगी : बेटा! तुम तो पिता को प्राण के समान प्यारे थे। वे नित्य तुम्हारे चरित्रों को देखकर प्रसन्न होते थे।

व्याख्या : थोड़ी देरतक यह विकलता रही। फिर माता ने धैर्य धारण किया और पुत्र का मुख देखा। माता ऐसी स्नेहमयी है कि पुत्र का मुख़ देखकर तब कुछ कहती है। आते ही : सादर सुंदरबदनु निहारी। बोलीं मधुर बचन महतारी। अव फिर वोलना है तो फिर पुत्र मुखावलोकन करती है। पर इस बार मुख की सुन्दरता देखने का भाव नहीं है। इस बार देखती है कि इन पर पिता की आज्ञा का क्या प्रभाव पड़ा? इसलिए सादर नहीं कहते। गला रुँधा हुआ है फिर भी बोलीं।

बात क्या है? घर से वह बेटा निकाला जाता है जो अप्रिय हो। महादुश्चरित्र

हो। तुम तो पिता को प्राण समान प्यारे हो। यथा : सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाइँ। राम देत नहि बनै गोसाइँ। और तुम्हारे चरित्र देख देखकर वे सदा प्रसन्न होते थे। यथा : आयसु माँगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरखै मन राजा। अतः महान् आश्चर्य है। हुआ क्या ?

राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा ॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू ॥४॥

अर्थ : राज्य देने के लिए शुभ दिन निश्चय किया। वन जाने को किस अपराध पर कहा ? बेटा ! मुझे इसका आदि कारण बतलाओ। सूर्यकुल के लिए आग कौन हुआ ?

व्याख्या : तुम्हारे ऊपर कल तक इतने प्रसन्न थे कि तुम्हें राज्य देने के लिए शुभ दिन ठीक किया था। रातभर में ही क्या हो गया कि आज वन जाने को कह रहे हैं। यह तो तभी सम्भव है जब तुमसे कोई भारी अपराध हुआ हो। छोटे अपराध में भी इतना बड़ा दण्ड नहीं दिया जाता। अतः बतलाओ कि वह कौन सा अपराध तुमसे हुआ ? पूछने को तो पूछा पर वह जानती है। पक्का विश्वास है कि रामजी से अपराध हो नहीं सकता। अतः यह प्रश्न करती है कि सूर्यकुल के लिए आग कौन हुआ ? भाव यह कि महाराज अपना बस चलते तुम्हें वन दे नहीं सकते। कोई ऐसा हो असामञ्जस्य आ पड़ा है जिसमें उन्हें ऐसा करना पड़ा। जिसके कारण ऐसा करना पड़ा वह सूर्यवंश के लिए आग हो गया। इस आघात से वंश का वंश नष्ट हो जायगा। माँ कौसल्या उसका नाम जानना चाहती हैं।

दो. निरखि राम रुख सचिव सुत, कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहि जाइ ॥५४॥

अर्थ : रामजी का रुख देखकर मन्त्रीपुत्र ने सब कारण समझाकर कह दिया। प्रसंग सुनकर कौसल्याजी गूँगे की भाँति चुप रह गयीं। उनकी दशा वर्णन नहीं की जा सकती।

व्याख्या : माँ की करतूत रामजी अपने मुख से नहीं कहना चाहते। मन्त्री के पुत्र साथ थे। उन्होंने रामजी का रुख पाकर आद्योपान्त सब कारण समझाकर कह दिया :

देवासुर संग्राम में महाराज के संग।
गई कैकेयी रानिहू जहाँ मच्यौ रन रंग ॥१॥
रिपु के प्रबल प्रहार ते मूर्छि परयौ जब राय।
तब रथ हाक्यौ कैकेयी नृप को लिये बँचाय ॥२॥
ह्वै प्रसन्न माँगन कह्यौ महाराज वर दोय।
कह्यौ कैकेयी माँगिहौ जब मोहि अवसर होय ॥३॥

आज राति को कैकेयी माँग्यौ सो वरदान।
भरत राज अरु राम वन चौदह वरिस प्रमान ।।४।।
धर्मपाश से बँध्यौ नृप नाहि कह सकत नाहि।
कहा कहौं भूपति विपति समुझहिं इतनहि माँहि ।।५।।

यह सब सुनकर माँ कौसल्याजी ठक रह गयीं। बोलने के लिए शब्द न मिले। जैसा गूँगा कहना चाहता हो पर कह नहीं सकता। आश्चर्य, असामञ्जस्य, शोक, धर्म सङ्कटादि अनेक भावों का जमघट हृदय में उदग हो गया। अतः कवि कहते हैं : दसा बरनि नहिं जाय।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू ।।
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू ।।१।।

अर्थ : न रख सकती है न जाने को कह सकती है। क्योंकि दोनों तरह से हृदय में दारुण दाह है। चन्द्रमा लिखने चले और राहु लिख बैठे। ब्रह्मा की गति सदा सब के लिए टेढ़ी है।

व्याख्या : महारानी कौसल्या माता होने के कारण रख सकती है। पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते। पिता से माता दसगुना बड़ी है। वह यदि आज्ञा दे कि तुम घर रहो वन न जाओ तो धर्मधुरन्धर रामचन्द्र को मानना ही पड़ेगा। पर महारानी कौसल्या ऐसा नहीं कर सकतीं। पति के धर्म की रक्षा करना ही पत्नी का कर्त्तव्य है। अतः सामर्थ्य रहते भी रामजी को रख नहीं सकती और जाने को भी नहीं कह सकती। पुत्र के वियोग से जो दाह होगा वह सर्वथा असह्य है। धर्म त्याग में भी वैसा ही दाह है और दो ही रास्ते हैं। या जाने को कहें या घर रक्खें। कुछ सूझता नहीं कि क्या करें। अतः मूक : गूँगे की भाँति चुप रह गयीं।

नवग्रह पूजा में राहु की मूर्ति सूर्पाकार बनाते हैं और चन्द्रमा की मूर्ति द्वितीया के चन्द्र के आकार को बनाते हैं। कोई चन्द्रमा बनाने चला स्याही अधिक टपक पड़ी तो द्वितीया के चन्द्र का पेटा भर गया। सूर्पाकार हो गया एवम् राहु लिख गया। वही दशा यहाँ हुई। देने चले राज्य सो बीच में कैकेयी का वरदान टपक पड़ा राज्य का वन बन गया। ठीक उलटा हो गया। राहु चन्द्र का ग्रास करता है। सो वनगमनरूपी राहु ने अभिषेकरूपी चन्द्र का ग्रास कर लिया।

धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी ।।
राखौं सुतहि करौं अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू ।।२।।

अर्थ : धर्म और स्नेह दोनों ने बुद्धि को घेर लिया। साँप छछूँदर की सी गति हो गयी। यदि अनुरोध करके बेटे को रोक लूँ तो धर्म भी जाता है और बन्धु विरोध भी खड़ा होता है।

व्याख्या : न तो धर्म छोड़ते बनता है और न स्नेह ही छोड़ते बनता है।

सो यहाँ कौसल्याजी की साँप छछूँदर सी गति हो गयो। भूखे साँप ने छछूँदर पकड़ा और उसे निगलने लगा। तब उसे छछूँदर की उत्कट दुर्गन्ध का बोध हुआ। केवड़े के वन में रहनेवाले सर्प को छछूँदर की दुर्गन्धि असह्य हो गयी। वह उसे उगलना चाहता है। पर इधर भूख भी जोरों से लगी हुई है। इसलिए उगला भी नहीं जाता। इसी भाँति महारानी से न तो धर्म छोड़ते बनता है और न ग्रहण करने में ही समर्थ हो रही हैं।

कहौं जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी ॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी ॥३॥

अर्थ : यदि वन जाने को कहती हूँ तो भी बड़ी हानि है। इस भाँति संकट और सोच के विवश महारानीजी हो गयी। फिर सयानी स्त्री धर्म को समझकर तथा राम और भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर।

व्याख्या : वन जाने की आज्ञा देने में भी बड़ी हानि दिखाई पड़ रही है। महाराज का अगाध प्रेम रामजी पर है। उनके वन जाने में स्वयं महाराज के प्राण संकट में पड़ जायँगे। एक ओर धर्म संकट दूसरी ओर पुत्र का सोच और सौभाग्य का सोच।

परन्तु महारानी कौसल्या सयानी हैं। पलड़ा धर्म की ही ओर झुका है। उन्होंने स्त्री धर्म का स्मरण किया। मेरे लिए राम और भरत बराबर हैं। क्योंकि एक स्त्री के पुत्रवती होने से शेष सब सपत्नियाँ पुत्रवती हो जाती हैं।

सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी ॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरम क टीका ॥४॥

अर्थ : रामजी की माँ हैं। स्वभाव सरल है। भारी धीर धारण करके बोलीं। बेटा ! मैं तुम्हारी वलैया लेती हूँ। तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा सब धर्मों की टीका है।

व्याख्या : रामजी सरल स्वभाव के हैं। यथा : सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ। उनकी माँ का भी स्वभाव वैसा ही सरल है। पहिले : धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी। इस बार वन जाने की आज्ञा देनी है। अतः भारी धैर्य धारण किया। न तो बेटे का मुख देखा और न कण्ठ ही गद्‌गद हुआ और बोलीं।

यह पिता की आज्ञा मानने लायक नहीं थी। तुम कह सकते थे कि आपने मुझको भी राज्य देने का वचन दिया है। सो न करके आज्ञा मान ली। यह अच्छा किया। पिता की आज्ञा धर्मों की टीका है। तुमने राज्य का टीका छोड़कर धर्म का टीका स्वीकार किया। जीविते वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्। गयायां पिण्डदानैश्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता।

दो. राजु देन कहि[1] दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु ।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु ।।५५।।

अर्थ : राज्य देने को कहकर वन दे दिया इसका तो मुझे दुःख का लेश नहीं है । तुम्हारे बिना भरत को महाराज को और प्रजा को प्रचण्ड क्लेश होगा ।

व्याख्या : राज्य देने को कहकर वन जाने को कहना वन जाने के दुःख को तीव्रतम करना है । सो कैकेयी के कारण से कर रहे हैं । इस बात का दुःख मुझे होना चाहिए । पर मुझे इस दुःख का लेश भी नहीं है । क्योंकि मुझे सौतियाडाह नहीं है । मुझे दुःख इस बात का है कि तुम्हारा वियोग भरत को महाराज को तथा प्रजावर्ग को असह्य होगा । मुझे इनका दुःख स्मरण करके अपना दुःख कुछ जँचता नहीं ।

क्या हृदय है ! कैसा प्रचण्ड त्याग है ! माता का सन्देह भरत पर जाता ही नहीं । वे भरत को ठीक जानती हैं । इसीलिए पहिले उन्हीं का नाम लेती हैं ।

जौं केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ।।१।।

अर्थ : बेटा ! यदि केवल पिता की ही आज्ञा हो तो माता को बड़ी जानकर मत जाओ । यदि माता पिता दोनों ने वन जाने को कहा हो तो वन सौ अयोध्या के समान है ।

व्याख्या : यहाँ तो धर्मशास्त्र से निर्णय हो रहा है । पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते । मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा ।। धर्मशास्त्र माता का गौरव पिता से दशगुण अधिक बतलाता है । पर विमाता तो माता से भी दशगुण अधिक मान्य है । अतः कौसल्याम्बा कहती हैं कि यदि केवल पिता ने ही वन जाने की आज्ञा दी है तो मैं रोकती हूँ : वन मत जाओ और यदि माता पिता दोनों ने कह दिया हो तो धर्म का पलरा भारी वन जाने की ओर हो जाता है । धर्मो रक्षति रक्षितः । धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा । वन सौ अयोध्या के समान सुखदायी हो जायगा । यथा : राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत । जिमि वासव बस अमर पुर सची जयंत समेत ।

पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग मृग चरन सरोरुह सेवी ।।
अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू । बय बिलोकि हिय होइ हरासू ।।२।।

अर्थ : वन देव पिता हैं और वनदेवी माता हैं और पशु पक्षी चरण कमल के सेवक हैं । अन्त में भी तो राजा को वनवास ही उचित है । अवस्था देखकर जी दहलता है ।

---

१. आक्षेप : तृतीय अलङ्कार ।

व्याख्या : धर्म पालन के प्रभाव से वन की अधिष्ठात्री देवी और देव माता पिता के समान तुम्हारी रक्षा करेंगे। कोई भय तुम्हारे ऊपर न आने पावेगा। वन के पशु पक्षी भी तुम्हारे चरणों की सेवा करेंगे।

राजाओं के लिए वनवास कोई दुष्कर बात नहीं है। अन्त में तो राजाओं के लिए वनवास विहित ही है। यथा : चौथेपन जाइहिं नृप कानन। परन्तु तुम्हारी अवस्था वन जाने की नहीं है। शैशवेऽभ्यस्तविद्यानाम् यौवने विषयैषिणाम्। वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्। इस कुल का नियम है कि वचपन में विद्या पढ़ते हैं। यौवन में विषय का सेवन करते हैं। वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति ग्रहण करते हैं और अन्त में योग से शरीर छोड़ते हैं। सो तुम्हारी उम्र देखकर कि यही खेलने खाने का समय है जी दहलता है। यथा : कैकयनंदनि मंदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह। जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह।

बड़भागी बनु अवध अभागी। जो रघुबंस तिलकु तुम्ह त्यागी ॥
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ संदेहू ॥३॥

अर्थ : बड़भागी वन है। अवध अभागी है। हे रघुवंशतिलक ! जिसे तुम त्याग रहे हो यदि मैं कहूँ कि मुझे साथ ले लो तो बेटा ! तुम्हारे मन में सन्देह होगा।

व्याख्या : जब से तुम्हारा जन्म हुआ तब से अवध बड़भागी हुआ। जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए। अवधराजु सुरराज सिहाई इत्यादि : अब तुम इसका परित्याग कर रहे हो। यदि तुम न त्यागना चाहो तो तुम्हें कौन हटा सकता है। तुम्हारे त्यागने से यह अभागी हो जायगा। यथा : लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी। बड़भाग और अभाग तो तुम्हारे ग्रहण और त्यागने में है।

इस दुःसह दाह मिटने का एक रास्ता और भी है और वह यह है कि मैं तुम्हारे साथ चलूँ। पर यह मैं कह भी नहीं सकती। मैं तुम्हारे स्वभाव को जानती हूँ। तुम्हें तुरन्त सन्देह होगा कि इनके मन में सवति आरेसु है तभी न इनको भरत का राज्य नहीं रुचा संग चलने को कहती है।

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछताऊँ ॥४॥

अर्थ : हे पुत्र ! तुम सभी को परम प्रिय हो। प्राण के प्राण हो। जीवन के जीवन हो। सो तुम कहते हो कि माँ ! मैं वन जाऊँ और मैं तुम्हारा वचन सुनकर बैठकर पछताऊँ।

व्याख्या : तुम मेरे पुत्र हो। तुम पर मेरा प्यार होना स्वाभाविक है। पर तुम तो प्राणी मात्र को परम प्रिय हो। यथा : अस को जीव जंतु जग मांही। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नांही। तथा : प्रान प्रान के जीव के जीव सुख के सुख राम। श्रोत्रस्य

श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो ह वाचं स हि प्राणस्य प्राणः। यह कौसल्याजी का अलौकिक विवेक है।

सो तुमने कहा कि माँ मैं वन जाऊँ और सुनकर माँ जीती रह गयी। इससे सिद्ध है कि मेरा स्नेह झूठा है। मेरा पछताना व्यर्थ है। तुम्हारे विरह में मैं नहीं मरूँगी।

दो. एह बिचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेहु बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाइ ॥५६॥

अर्थ : यह सोचकर और झूठे स्नेह को बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती। मैं बलैया लेती हूँ। तुम माता का नाता मानकर मुझे भूल न जाना।

व्याख्या : मैंने विचार लिया कि जब वनगमन सुनकर मैं नहीं मरी तो मैं नहीं मरूँगी। मेरा स्नेह झूठा है। उस झूठे स्नेह को बढ़ाकर साथ जाने का हठ मैं क्यों करूँ। स्नेह झूठा सही पर माता का नाता सच्चा है। उस पर तुम ख्याल रखना। मैं माता होने योग्य नहीं फिर भी नाता समझकर मुझे भूल न जाना।

देव पितर सब तुमहि गोसाईं। राखहुँ पलक नयन की नाईं॥
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना ॥१

अर्थ : सब देवता पितृगण तथा ईश्वर तुम्हारी रक्षा पलक नयन की भाँति करें। वनवास की अवधि जल है। प्रिय कुटुम्बी लोग मछली हैं। और तुम करुणाकर धर्मधुरन्धर हो।

व्याख्या : गोसाईं शब्द ईश्वर : विष्णु भगवान् का वाचक है। यथा : समरथ के नहिं दोष गोसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं। आज भी बोलते हैं कि गोसइयाँ की जैसी मर्जी। माँ आशीर्वाद देती हैं। देवगण पितृगण अदृश्य रूप से सबकी रक्षा करते हैं। अतः उनकी पूजा संसार में प्रचलित है। यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। और विष्णु भगवान् जगत् के पालक हैं। अतः सबसे माँ प्रार्थना करती है कि जैसे पलक नयनों की रक्षा करती हैं उसी भाँति आप लोग रामचन्द्र की रक्षा करना।

ऐसा आशीर्वाद देकर तब रामजी से कहती हैं कि तुम्हारे वनवास की अवधि ही इस समय जल का काम करेगी। उसी के भरोसे मछली की भाँति प्रिय परिजन यथाकथञ्चित् प्राण धारण करेंगे। ज्यौं ज्यौं अवधि बीतती जायगी त्यौं त्यौं तुमसे मिलने के लिए इनकी आकुलता बढ़ेगी। जल के समाप्त होते ही सब मछलियाँ प्राण त्याग करेंगी। अतः विषम समस्या उपस्थित है। अवधि के भीतर तुम आ नहीं सकते। यद्यपि तुम धर्मधुरीण हो। अवधि के भीतर आने के लिए तुमसे आशा रखना व्यर्थ है तथापि करुणाकर हो। अतः

अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जियत जेहि भेंटहु आई॥
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ॥२॥

अर्थ : ऐसा विचार करके वही उपाय करना जिसमें जीते जी तुम आकर मिल सको। मैं बलैया लेती हूँ। तुम प्रिय कुटुम्बियों और गाँव को अनाथ करके सुख से वन जाओ।

व्याख्या : ऐसा उपाय करना जिसमें तुम्हारे आने तक सब जीते रहें : अत: सरकार ने वैसा ही उपाय किया। अवधि बीतने के एकदिन पहले ही अपने आगमन का समाचार हनुमानजी द्वारा अवध भेज दिया।

यहाँ तक माँ अपने को रोके रही। अब हृदय का उद्गार नहीं रुक सका। अत: आक्षेप के साथ आज्ञा दे रही हैं। तुम प्रसन्न मन से मेरे पास आये और मुझसे मुदित मन होकर आज्ञा देने को कहा सो मैं आज्ञा दे रही हूँ। प्रिय परिजन और गाँव को अनाथ करके तुम सुख से वन जाओ। भाव यह कि तुम्हारे जाने से प्रिय परिजन और राज्य सब अनाथ हो जायगा। कौन तुम्हारा विरह उतने दिनों तक सह सकेगा कौन नहीं सह सकेगा। ऐसे विषम संकटावस्था में मैं मुदित मन से आज्ञा कैसे दे सकती हूँ। पर तुम कहते हो उसे टाल भी नहीं सकती। अत: कहे देती हूँ कि सुख पूर्वक वन जाओ।

सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ करालु काल बिपरीता ॥
बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी ॥३॥

अर्थ : आज सबके पुण्यों का फल बीत गया। कराल काल विपरीत हो गया। बहुत भाँति विलाप करके चरणों में लिपट गयी। अपने को परम अभागिन माना।

व्याख्या : सरकार का दर्शन सब सुकृतों का फल है। यथा : सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसन पावा। सो दर्शन सबको दुर्लभ हुआ चाहता है। अत: कहती हैं कि सबके पुण्यों का फल आज समाप्त हो गया। सब विधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद मुख चंदु निहारी। सो सभी का सुख छिन गया। जो काल सबके अनुकूल था आज वह कराल होकर विपरीत हो गया। किसी का सामर्थ्य नहीं है कि उसका अतिक्रमण कर सके। यथा : अंडकटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी।

बहुत प्रकार से विलाप किया और अति आर्त होकर अपने को परम अभागिन मानकर चरणों में लिपट गयी। स्त्रियों को दो ही परम प्रिय हैं पति और पुत्र। सो पुत्र का वियोग तो हो ही रहा है और फलस्वरूप पति को भी प्राण संकट है। अत: परम भाग्यवती होने पर भी संसार का चक्र ऐसा है कि उन्होंने अपने को परम अभागिन माना और पुत्र के चरणों में लिपट गयी। मानों क्रिया से दिखला रही हैं कि मैं तुम्हें छोड़ना नहीं चाहती।

दारुन दुसहु दाह उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा ॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई ॥४॥

अर्थ : कठिन दुःसह दाह हृदय में व्याप गया। विलाप के विस्तार का वर्णन नहीं किया जा सकता। रामजी ने उठाकर माँ को हृदय से लगा लिया और कोमल वचनों से फिर समझाया।

व्याख्या : पहिले कहा था : दुहू भाँति उर दारुन दाहू। सो एक रास्ते पर आ जाना पड़ा। जाने के लिए कह दिया। अब वियोग तथा उसके परिणाम पर ध्यान गया तो दारुण दुःसह दाह हृदय में व्याप गया। ऐसे समय में माँ जो विलाप कर रही हैं उसे विस्तार से कौन कह सकता है!

माँ व्याकुलता से पृथ्वी पर गिर गयी थी। सो रामजी ने उठाकर सान्त्वना देते हुए मृदुवचन कहकर फिर समझाने लगे। यथा :

अँब राउ अति ही दुखित तिनको करिय सँभार।
सब सनाथ नर नाथ ते तिनही पर सब भार॥
धरि धीरज संकट सहहु सत्य न नृप को जाय।
अवसि प्रथम दिन आइहौं चौदह वर्ष विताय॥
मेरो तो जीवन सफल वनहि गये ते होय।
मेरे हित तो भूलि कर सोच करै जनि कोय॥
तेरे मन काँचा किये मेरो धर्म नसाय।
धर्म सार संसार यह समुझि देखु जिय माय॥
पिता धर्म मम धर्म अरु अपनो धर्म विचारि।
आयसु दीजै हरखि हिय एहि कुलके अनुहारि॥

दो. समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग, बंदि बैठि सिरु नाइ॥५७॥

अर्थ : उस समय यह समाचार पाकर सीताजी व्याकुल हो उठीं। जाकर सास के दोनों चरणों की वन्दना करके सिर नीचा किये हुए बैठ गयीं।

व्याख्या : सीताजी को पता लगा कि पिता ने सरकार को चौदह वर्ष के लिए वन दिया है। सो माता से विदा लेने आये हैं। सुनते ही आकुल होकर उठ खड़ी हुई कि कहीं उधर से उधर ही वन न चले जायँ और वहाँ चली गयीं जहाँ कौसल्याजी को रामजी समझा रहे थे। वहाँ चले जाने का अर्थ ही यही है कि मैं भी साथ जाऊँगी। साथ ही मैं भी विदा ले लूँ। अतः सास की वन्दना करके सिर झुकाकर बैठीं। सिर झुकाकर बैठना यहाँ चिन्ता सूचक है।

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेमु पुनीता॥१॥

अर्थ : सास ने कोमल वाणी में आशीर्वाद दिया। अत्यन्त सुकुमारी देखकर आकुल हो उठीं। रूप की राशि और पति के प्रेम से पवित्र सीताजी बैठी हुई सिर झुकाये सोच रही हैं।

व्याख्या : सासु पद कमल जुग बंदि बैठ सिरु नाइ। अतः मृदुवानी से सास ने आशीर्वाद दिया। स्त्रियों में चिरजीवनी होने के आशीर्वाद की प्रथा ही नहीं है। सौभाग्य का ही आशीर्वाद दिया जाता है। सास ने तुरन्त समझ लिया कि इस समय यहाँ चले आने का अर्थ ही यही है कि साथ जाने को तैयार है। सुकुमार तो रामजी भी हैं। पर यह तो अत्यन्त सुकुमारी है। इसका निर्वाह बन में कैसे होगा ? अपने धर्म पर खड़ी है। अतः क्या कहकर रोकें ? ऐसा सोचकर सास व्याकुल हो उठीं।

इधर सीताजी रूपराशि हैं : परम विरोधिनी सूर्पणखा कहेगी : रूप रासि बिधि नारि सवारी। रति सतकोटि तासु बलिहारी। कदापि वन के योग्य नहीं। परन्तु पतिप्रेम से पुनीत है। स्त्रियों को पवित्र करनेवाला पतिप्रेम ही है। यथा : एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा। यह पति का साथ छोड़ेगी नहीं। सोच से सिर झुकाये सोच रही है। चित्त संशय में पड़ा हुआ है।

चलनु चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना ॥२॥

अर्थ : प्राणनाथ वन को जाना चाहते हैं। देखें : किस पुण्यात्मा से इनका साथ होगा। शरीर और प्राण दोनों से साथ होगा कि केवल प्राण से ही होगा। विधाता को क्या करना है यह समझ में नहीं आता।

व्याख्या : जीवननाथ शब्द के प्रयोग से वियोग का असह्य होना द्योतित किया। सो प्राणनाथ वन जाना चाहते हैं। इनका साथ होना सुकृत का फल है। यथा : नाहि त हम कह सुनहु सखि इन्हकर दरसन दूरि। यह संघट तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि। सो प्राण में पाप का बेध नहीं होता। अतः इसके सुकृती होने में तो सन्देह नहीं है। पर शरीर साथ में जायगा कि नहीं इसी में संशय है। विधाता ही कर्म शुभाशुभ के फल देनेवाले हैं। अतः भोगायतन शरीर उनके अधीन है और वे क्या करेंगे यह कौन कह सकता है !

चारु चरन[1] नख लेखत धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी।
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीयपद जनि परिहरहीं ॥३॥

अर्थ : सुन्दर चरण के नख से पृथ्वी पर लिख रही हैं। नूपुर को कवियों ने मधुर मुखर : मीठा बकवादी कहकर वर्णन किया है। मानो प्रेमवश विनती कर रहे हैं कि हमें सीताजी के चरण त्याग न करें।

व्याख्या : सीताजी के सोचने के समय की शोभा कहते हैं। स्त्रियों का स्वभाव है कि सोचने के समय पादाङ्गुष्ठ नख से पृथ्वी पर रेखा बनाने लगती हैं। यथा : महि नख लिखन लगीं सब सोचन : उसी के अनुसार सीताजी भी सुन्दर

---

१. हेतुसिद्धास्पदा : उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

चरण नख से पृथ्वी पर लिख रही हैं। नववधू हैं। नूपुर धारण किये हुए हैं। चरण के हिलाने से नूपुर से कुछ शब्द भी हो रहा है। इसलिए कवि उसे मधुर मुखर कह रहे हैं। नहीं तो चलने के समय तो उसमें से ध्वनि होती ही है। यथा : कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।

उसकी उत्प्रेक्षा करते हुए कवि कहते हैं कि मानो वे नूपुर पैर में लग लगकर विनती कर रहे हैं कि हम लोगों का इन चरणों से बिछोह न हो। भगवती वन जाने को प्रस्तुत हैं। उस समय नूपुर परित्याग की भी सम्भावना है। अतः पहिले से ही विनती करते हैं कि हमें भी अपने साथ ले चलना। भाव यह कि सीताजी को कौन कहे उनके नूपुर भी वन जाने को प्रस्तुत हैं।

मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोलीं देखि राम महतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहिं पियारी॥४॥

अर्थ : सुन्दर नेत्रों से आँसू बहाते हुए देखकर रामजी की माता बोलीं : बेटा! सुनो सीता अत्यन्त सुकुमारी हैं और सास ससुर तथा परिजनों की प्यारी हैं।

व्याख्या : उस समय आँसू बहाने का अर्थ यही है कि मुझसे साथ जाने की आज्ञा माँग रही हैं। मैं नारीधर्म को जानती हुई इसे जाने से रोक नहीं सकती : ये पति हैं, ये अपने अधिकार से इसे रोक सकते हैं। अतः सीताजी से कुछ न कहकर रामजी से कहती हैं कि सीता अत्यन्त सुकुमारी हैं। कथमपि वन जाने योग्य नहीं है। सास ससुर परिजन की प्यारी है। तुम्हारा वियोग तो सबको ही होगा। इसके चले जाने से सबका दुःख अत्यन्त बढ़ जायगा।

दो. पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन, बिधु गुन रूप निधानु॥५८॥

अर्थ : इसके पिता जनक राजाओं में मणि हैं। ससुर सूर्यकुल के सूर्य हैं और पति सूर्यकुलरूपी कुमुद वन के लिए रूप निधान चन्द्र हैं।

व्याख्या : ऐसे घर की बेटी ऐसे घर आयी और ऐसा गुणवान् पति पाया। यह क्या जाने कि कष्ट सहन किसे कहते हैं। यह तो कथमपि वन जाने योग्य नहीं है। दूसरी बात यह कि इसके वन जाने से लोग क्या कहेंगे? महाराज जनक की बेटी पैदल वन चली जा रही है। महाराज दशरथ की पुत्रवधू की यह दुर्दशा। रामचन्द्र की धर्मपत्नी होकर इस भाँति कष्ट उठा रही है एवं इसके वनगमन में तीनों का दुर्यश है।

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥१॥

अर्थ : मैंने प्रिय पुत्रवधू पायी जो कि रूप की राशि है और सुन्दर गुण

शीलवाली है। आँखों की पुतली बनाकर प्रेम बढ़ाया और अपने प्राणों को जानकी में लगाकर रक्खा।

व्याख्या : सदा चिन्ता रही कि मेरा पुत्र ऐसा है इसके समानशीला वधू कहाँ मिलेगी। सो मिल गयी। पुत्रवधूचित सभी बातें इसमें हैं। रूप को तो राशि ही है और इसमें सुन्दर गुण और शील है। अतः मुझे प्रिय है। आँख की पुतली की भाँति इससे प्रीति बढ़ायी। महाराज की भी ऐसी ही आज्ञा थी। यथा : बधू लरिकिनी पर घर आई। राखेहु पलक नयन की नाईं। सो मैंने इसमें प्रान लगाकर रक्खा है।

कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा ॥२॥

अर्थ : कल्पलता की भाँति इसका बहुत भाँति से दुलार किया है और स्नेह के जल से सींचकर इसका पालन किया है। फूलते फलते समय विधाता बायें हो गये। क्या परिणाम होगा जाना नहीं जाता।

व्याख्या : माँ कौसिल्याजी कहती हैं कि मैंने इसे : सीताजी को कल्पवेलि माना कि इससे मेरे सब मनोरथ सिद्ध होंगे। वंशवृद्धि होगी। पुत्र पौत्र होंगे। दूसरे स्थान से लाकर यहाँ लगायी गयी है। अतः सब भाँति से रक्षा करके स्नेह रूपी जल से बराबर सींचती रही कि कहीं सूख न जाय। इस भाँति मैंने इसका पालन किया। जब अयोध्या में आयी बिल्कुल बाल्यावस्था थी। बच्चे प्रेम से ही पालन करने से जीते हैं। सो मैंने उसमें त्रुटि नहीं आने दी। अब बड़ी हुई। फूलने फ़लने का समय आया। बाल बच्चे की आशा हुई तो विधाता बायें हो गये। वनवास का प्रकरण आपड़ा। क्या परिणाम होगा नहीं जाना जाता। यह यह मरेगी कि जीयेगी कौन कह सकता है।

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ॥
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ॥३॥

अर्थ : पलङ्ग पीढ़ा गोद और हिंडोला छोड़कर सीता ने कठिन पृथ्वी पर कभी पाँव रक्खा नहीं। इसे सञ्जीवनी बूटी की भाँति सावधानी से रक्षा करती चली आयी। दीये की बत्ती को उसकाने : बढ़ाने के लिए कभी नहीं कहा।

व्याख्या : सोते समय पलङ्ग पर भोजन के समय पीढ़े पर चलने के समय गोद में मन बहलाने के लिए पालना पर रहती थी। इसने कठोर भूमि पर आज तक पाँव न रक्खा। सञ्जीवनी बूटी की भाँति अत्यन्त दुर्लभ समझकर बड़ी सावधानी से इसका लालन पालन किया। अथवा बूटी की भाँति जिसमें प्राण बसता हो दिन रात चौकसी के साथ रक्षा की : रामजी की रक्षा महाराज जीवनतरु की भाँति करते थे और सीताजी की रक्षा कौसल्याजी जीवन मूलिका की भाँति करती थीं। हलके से हलका काम इससे कभी नहीं लिया। दिये की बत्ती को आगे खिसकाने

के लिए भी कभी आज्ञा नहीं दी। अर्थात् दासी आदि की अनुपस्थिति में हलके से हलका काम मैं कर लेती थी। पर सीताजी को किसी काम के लिए कभी नहीं कहा।

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा ॥
चंद किरिन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकै किमि जोरी ॥४॥

अर्थ : वही सीता अब साथ में वन जाना चाहती है। हे रघुनाथ! इसके लिए क्या हुकुम देते हो। चन्द्रमा के किरणों के रस की रसिक चकोरी क्या कभी सूर्य की ओर आँख उठाकर देखने में समर्थ हो सकती है।

व्याख्या : ऐसी लाड प्यार से पाली हुई सीता तुम्हारे साथ वन जाने को प्रस्तुत है। अपने धर्म पर खड़ी है। सम्भव असम्भव कुछ नहीं देख रही है। एक तो वन जाने में जो कष्ट होता है उसके सहने में यह सर्वदा अनुपयुक्त है। तिसपर तुम्हारे साथ जाने में तुम्हारी सेवा भी इसे करनी पड़ेगी। दास दासी होते तो फिर भी दूसरी बात थी। तुम रघुकुल के नाथ हो। बात समझ लो। अवसर ऐसा है कि मैं कुछ नहीं कह सकती। तुम्हारी आज्ञा मानना इसका परम धर्म है। अतः तुम इसे उचित आज्ञा प्रदान करो। परन्तु यह ध्यान में रखकर आज्ञा देना कि चकोरी सदा चन्द्रकिरण रसामृत का नेत्रों द्वारा पान किया करती है। उसमें इतना सामर्थ्य ही कहाँ कि सूर्य की ओर निर्निमेष नेत्र से देख भी सके : भाव यह कि सीता आँख से वन को देख न सकेगी।

दो. करि केहरि निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिष बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवन मूरि ॥५९॥

अर्थ : वन में बहुत से हाथी सिंह राक्षस आदि दुष्ट जन्तु घूमा करते हैं। बेटा! सुन्दर सञ्जीवनी बूटी की शोभा क्या विषवाटिका में हो सकती है?

व्याख्या : करि केहरि निसिचर ये सब हिंसक और दुष्ट जन्तु निष्कारण हिंसक अर्थात् छोटे से बड़े जीव तक सबके सब दुखदायी हैं। इसलिए वन को विषवाटिका कहा। सीता सदा सुख में पली हुई सुन्दर सञ्जीवनी बूटी है। इसे विषवाटिका में आरोपण करने से ही यह सूख जायगी। अतः इसे वन ले जाने में किसी भाँति शोभा नहीं है।

बन हित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय सुख भोरी ॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ ॥१॥

अर्थ : ब्रह्मदेव ने वन के लिए कोल किरात की लड़कियों को बनाया है। वे विषय सुख जानती ही नहीं। पत्थर के कीड़े के समान उनका स्वभाव होता है। उन्हें वन में कोई कष्ट नहीं।

व्याख्या : यदि कहिये कि वन में कोल किरात की बेटियाँ तथा तपस्वी की

स्त्रियाँ रहती हैं वैसे ही यह भी रहेगी सो यह बात भी ठीक नहीं। कोल और किरात की बेटियों को ब्रह्मा ने वन में रहने के लिए ही पैदा किया है। वे वन में पैदा हुई हैं। वन की कठिनाइयाँ उन्हें सात्म्य हो गयी हैं। उत्तम शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध से उनका परिचय ही नहीं है। वे पत्थर के कीड़े की भाँति हो गयी हैं। पत्थर का कीट पत्थर में रहता है। पत्थर में ही उन्हें जीवनोपयोगी सामग्री मिल जाती है। उस सामग्री से वे ही काम चला सकते हैं। दूसरा कोई चाहने पर भी नहीं चला सकता। इसी भाँति कोल किरात की बेटियों को वन में कोई कष्ट ही नहीं है।

कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डेराती॥२॥

अर्थ : या तपस्वी की स्त्रियाँ वन के योग्य हैं। जिन्होंने तप के लिए सब भोग छोड़ दिया है। हे बेटा! सीता वन में कैसे रहेगी? यह तो चित्र में लिखे हुए बन्दर को देखकर डर जाती है।

व्याख्या : यदि कहिये कि वन में तपस्वी की स्त्रियाँ तो रहती हैं उनके लिए यह बात नहीं कही जा सकती। वे पूर्व आश्रम में सब सुखों से परिचित हैं। तपस्वी लोग प्रायः स्त्री के सहित वन में बसते हैं। पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वने गच्छेत् सहैव वा। शास्त्र की आज्ञा है कि भार्या को पुत्रों में छोड़ दे या साथ वन ले जाय।

बात ठीक है। पर उन्होंने तो स्वेच्छापूर्वक पुत्रोत्पादन के बाद दूसरा आश्रम ग्रहण किया है। वे तप के लिए सब भोगों का त्याग किये हुए हैं। यथा : बिसरी देह तपहिं मन लागा। यहाँ तो पिता का वचन पालन के लिए वनगमन हो रहा है। दूसरे आश्रम ग्रहण का कोई प्रश्न ही नहीं है। सीता का उन तपस्विनियों से कोई समता नहीं है। यह तो चित्र में विकटरूप देखकर डर जाती है। करि केहरि निशिचर को प्रत्यक्ष देखने से तो यह प्राण छोड़ देगी। यह वन में कैसें रहेगी?

सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥३॥

अर्थ : मानससरोवर के सुन्दर कमल वन में विचरनेवाली हंस की बेटी क्या गड़ही के योग्य है? ऐसा विचार करके जो आदेश दो मैं तदनुसार जानकीजो को शिक्षा दूँ।

व्याख्या : जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल। जिस भाँति ब्रह्मदेव के कोल किरात किशोरी को वन के लिए बनाया है उसी भाँति हंस कुमारी को मानस सर के लिए बनाया। उसके कमल वन में विहार करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। वह डाबर : गड़ही के योग्य नहीं। उसके योग्य तो काक उलूक बक हैं। सीता राजा जनक की बेटी हंसकुमारी राजभोग पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार

है। वह वन के योग्य नहीं है। ऐसा विचार करके तुम जो आदेश दो क्योंकि धर्मपत्नी पर पूरा अधिकार पति का ही होता है। तदनुसार मैं जानकी को शिक्षा दूँ।

जौं सिय भवन रहइ कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी ॥४॥

अर्थ : माँ ने कहा कि यदि सीता घर रह जाय तो मुझे बहुत अवलंब रहेगा। रामजी ने माता की शील और प्रेमामृत से सनी प्रिय वाणी सुनकर।

व्याख्या : सीताजी के वनवास में जो दोष थे उन्हें दिखलाकर अब उनके घर रहने के गुणों को दिखलाती हैं। कहती हैं कि यदि सीता घर रह जाय : भाव यह कि इसके रहने का रास्ता तो नहीं मालूम हो रहा है पर यदि रह जाय तो तुम्हारे जाने पर मैं निरावलम्ब न हो जाऊँगी। पति घर हैं ही पुत्रवधू भी है केवल पुत्र बाहर है। यही अवलम्बन की बहुतायत है।

रामजी ने माँ की प्रिय वाणी सुनी। शील और स्नेहयुक्त वाणी ही प्रिय होती है। सो माँ की वाणी में शील और स्नेह दोनों का बहुत उत्कर्ष है। अतः अमृत से उपमा दी। शील यथा—आयसु काह होइ रघुनाथा······अस बिचारि जस आयसु होई। स्नेह यथा : मो कहँ होइ बहुत अवलंबा।

दो. कहि प्रिय बचन बिबेकमय, कीन्ह मातु परितोषु।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन गुन दोषु ॥६०॥

अर्थ : विवेकमय और प्रिय वचन कहकर माता का परितोष किया और जानकीजो को वन के गुण और दोषों को प्रकट करके समझाने लगे।

व्याख्या : सरकार ने कहा कि इनके जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपका कहना ठीक है। मेरे न रहने की अवस्था में आपकी सेवा का भार फिर किसपर रहेगा ? मुझे मुनिव्रत वेष आहार की आज्ञा है। इसमें स्त्री का साथ ठीक भी नहीं। माँ से इतना कहकर सरकार जानकीजी को वन में जाने के दोषों और न जाने के गुणों को समझाकर कहने लगे। माँ के कहनें के समय ही सरकार का रुख साथ न ले जाने का था। पर अब तो स्पष्ट शब्दों में कहना प्रारम्भ किया।

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं ॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आनि भाँति जिय जनि कछु गुनहू ॥१॥

अर्थ : माँ के सामने बोलने में सङ्कोच करते हैं। पर मनमें समय को समझकर बोले। हे राजकुमारी ! शिक्षा सुनो और अपने मनमें कुछ और बात न समझो।

व्याख्या : बारह वर्ष ब्याह हुए हुआ। पर सरकार ऐसे सङ्कोची हैं कि माँ के सामने अभी तक कभी सीताजी से नहीं बोले। आज ऐसा समय आगया कि बिना बोले काम नहीं चलता। माँ चाहती हैं कि रामजी स्वयं सीताजी को समझावें।

अतः राजकुमारी कहकर सम्बोधन करके कहते हैं। भाव यह कि तुम राजकुमारी हो। सुशिक्षिता हो। हठ न करोगी। मैं जो बातें तुमसे कहूँगा उसका यह अर्थ न लगाना कि मेरा तुम्हारे प्रति प्रेम में कोई कमी है : प्रिया शब्द से सम्बोधन न करके रुखे शब्द राजकुमारी से सम्बोधन करता हूँ। इसे प्रेम में त्रुटि आने का लक्षण न समझना। मैं सिखावन देता हूँ तुम्हारी भलाई के लिए।

आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू ॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥२॥

अर्थ : अपना और मेरा यदि भला चाहती हो तो मेरा वचन मानकर घर रहो। मेरा आदेश सास के सेवकाई के लिए है। हे भामिनी! घर में रहने से ही सब प्रकार की भलाई है।

व्याख्या : तुम्हारा धर्म विपत्ति में साथ न छोड़ने का है। सो तुम उसके लिए प्रस्तुत हो। तुम्हारी ओर से कोई त्रुटि नहीं है। परन्तु साथ चलने में न तुम्हारा कल्याण है और न मेरा। अतः हम दोनों की भलाई के लिए मेरा वचन मानकर घर रहो। जिस भाँति मैं पिता का वचन मानकर वन जाता हूँ उसी भाँति तुम मेरा वचन मानकर घर रहो। यदि कहो कि घर रहने से आपकी सेवा से वञ्चित हो जाऊँगी तो : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। मेरी आज्ञा मानों यही बड़ी भारी सेवा है। सो मैं सास की सेवा के लिए तुम्हें आज्ञा देता हूँ। हे भामिनी! घर रहकर ही तुम हमारी सेवा करती रहोगी। मैं तुम्हारी ओर से निश्चिन्त रहूँगा। अतः घर रहने में ही सब प्रकार की भलाई है। वन में जाने से सब विधि से भलाई नहीं है।

एहि ते अधिकु धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा ॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ॥३॥

अर्थ : आदर के साथ सास ससुर के चरणों की पूजा से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। जब जब माता मेरी याद करेगी तब तब प्रेम के विवश होकर सुध वुध खो बैठेगी।

व्याख्या : नारिधर्म पतिदेव न दूजा यह ठीक है। पर सास ससुर तो पति के मान्य हैं। धर्म की दृष्टि से भी। श्रद्धा के साथ सास ससुर के चरणों की पूजा ही परम धर्म है। तुम्हें शिक्षा भी मिली है : सास ससुर गुर पूजा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरहू। अतः मेरा आदेश मानो।

और दूसरी भी बात है कि जब जब माँ को मेरी सुध आवेगी और वह प्रेम के विवश होकर सुध बुध खो बैठेगी तब इसे सँभालनेवाला कौन है? दास दासी हैं। मान लिया कि वे सेवा करेंगी और विकलता के समय समझावेंगी भी पर उनके समझाने का प्रभाव क्या पड़ेगा?

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समझायेहु मृदु बानी ॥
कहउँ सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ॥४॥

अर्थ : हे सुन्दरी! तब तब तुम पुराणों की कथा कहकर मृदु वाणी से समझाना। मैं सौ शपथ लेकर कहता हूँ : हे सुमुखि! मैं माता के लिए तुम्हें घर रखता हूँ।

व्याख्या : तुमने इतिहास पुराण सुना है। तुम उन सब आख्यानों को जानती हो जिनमें सङ्कट के समय बड़े लोगों ने धैर्य धारण करके उससे विमुक्ति पायी है। उन कथाओं के सुनने से शोक का वेग रुक जाता है। ढाढस बँधता है। माता की विकलता के समय तुम उन कथाओं को कोमल वाणी से कहकर माँ को समझाना। हे सुन्दरी! तुम्हारे धैर्य का : तुम्हारे व्यक्तित्व का माँ पर प्रभाव पड़ेगा।

मैं स्वभाव कहता हूँ तुम्हारे आश्वासन के लिए ही नहीं कहता हूँ। मैं तुम्हें स्वयं साथ चलने के लिए कहता अथवा साथ ले जाता। पर मैं सौ शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हें घर पर छोड़ने का कारण एकमात्र माँ है। इन्हें मैं किसके भरोसे छोड़ूँ?

दो. गुर श्रुति संमत धरम फलु, पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस ॥६१॥

अर्थ : गुरु सम्मत और वेद सम्मत धर्म का फल बिना आयास के तुम्हें मिलेगा। हठ के वश होकर गालव और राजा नहुष ने सब सङ्कट सहा।

व्याख्या : वेद सम्मत होने पर भी शिष्टानुगृहीत होने की आवश्यकता है। अतः सरकार कहते हैं कि गुरुश्रुति सम्मत जो धर्म है उसका फल तुम्हें अनायास प्राप्त हो रहा है। सास ससुर की सेवा करना कुलवधू का धर्म है और पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्। सो मैं भी आदेश दे रहा हूँ। अब इससे बढ़कर धर्म क्या होगा। सो वह फल तुम्हें घर बैठे मिल रहा है। उसे ग्रहण न करके यदि तुम हठ करोगी तो हठ का फल तो सङ्कट है। विश्वामित्रजी का शिष्य गालव था। गुरुजी उससे गुरुदक्षिणा नहीं लेना चाहते थे पर उसने हठ किया। तब गुरुजी ने ८०० श्यामकर्ण घोड़े माँगे। उनके लिए उसे राजाओं के यहाँ दौड़ना पड़ा और अनेक प्रकार का सङ्कट उठाना पड़ा। गुरुजी ने तो वैसे ही गुरुदक्षिणा के ऋण से विनिर्मुक्त कर दिया था। पर गालव ने हठ करके सङ्कट मोल लिया।

इसी भाँति नहुष राजा अपने तेज से इन्द्र हो गये। सम्पूर्ण इन्द्रलोक पर उनका अधिकार हो गया। उन्होंने उस अधिकार का दुरुपयोग इन्द्राणी पर भी करना चाहा। हठ पकड़ लिया। यहाँ तक कि चढ़ेउ भूमिसुर यान। फल यह हुआ कि अगस्त्यजी के शाप से पृथ्वी पर आकर अजगर हो गये। फलतः हठ का फल सङ्कट झेलना है। अतः तुम हठ न करो। धर्मफल तुम्हें अनायास प्राप्त है।

मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा ॥१॥

अर्थ : और मैं पिता के वचन को प्रमाण करके हे सुमुखि सयानी ! शीघ्र ही लौट आऊँगा। दिन जाते देर न लगेगी। हे सुन्दरी ! मेरी शिक्षा सुनो।

व्याख्या : यह नहीं कहते कि मैं तुम्हें साथ नहीं ले जाऊँगा या ले जा नहीं सकता। जो अपने धर्म पर खड़ा है उसे बलपूर्वक कैसे रोकें। समझाने बुझाने से वही मान जाय तो ठीक है। अतः सरकार कहते हैं कि मैं अपनी इच्छा से वन विहार करने नहीं जा रहा हूँ। जिसमें यह शङ्का हो कि सम्भव है मन लग जाने से लौटने में देर हो। तो मैं केवल पिता की वाणी को प्रमाण करने जा रहा हूँ। न जाऊँ तो पिता का वचन अप्रमाण हुआ जाता है। जहाँ चौदह वर्ष बीते कि मैं घर आया। सुमुखि सुन्दरी सम्बोधन देकर अपनी आसक्ति प्रकट करते हैं। सयानी सम्बोधन से अपना हृद्‌गत भाव प्रकट करते हैं कि तुम मेरे प्रेम को जानती हो। मुझे स्वयं तुमसे मिलने की उत्कण्ठा रहेगी। मैं देर क्यों लगाऊँगा ?

जौं हठ करहु प्रेमबस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा ॥
काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी ॥२॥

अर्थ : हे शोभने ! यदि तुम प्रेमवश हठ करोगी तो परिणाम में तुम्हें दुःख होगा। वन भारी कठिन और भयङ्कर है। घोर घाम, पाला, जल और हवा है।

व्याख्या : तुम्हारा वन में निर्वाह होना दुस्तर है। तुम सुन्दर स्वभाववाली हो। हठीली नहीं हो। पर यदि प्रेमवश हठ करोगी तो परिणाम में दुःख पाओगी : सरकार के इस कथन में सीताहरण और सीता परित्याग का संकेत है। अब वन के दुःखों का वर्णन करते हैं। पहिले यह कि वन में कहीं मृदुता का नाम नहीं। उसके देखने से बड़ा भय उत्पन्न होता है। उसमें रहना तो दूर की बात है। जाड़ा गरमी बरसात तीनों काल में महा दुःख है। गरमी के दिनों में असह्य घाम। जाड़ा के दिनों में असह्य पाला। बरसात में पानी और हवा असह्य होती है। अथवा वन की हवा और पानी भी अनुकूल नहीं पड़ता है। वन में शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध सभी भयानक हैं। कानन कठिन भयंकर भारी से रूप की भयानकता कहा। घोर घामु हिम बारि बयारी से स्पर्श की भयानकता कहते हैं।

कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहि बिनु पद त्राना ॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर मारे ॥३॥

अर्थ : रास्ते में कुशा काँटे और अनेक प्रकार के कंकड़ : भरे पड़े : हैं। पैदल चलना जूता भी नहीं। तुम्हारे चरण कमल कोमल और सुन्दर हैं। रास्ता दुर्गम और भारी भारी पहाड़।

व्याख्या : दूसरे यह कि रास्ते में कुश उगे रहते हैं। जो बड़े तीखे होते हैं।

काँटे और कङ्कड़ ऐसे होते हैं कि जूते की दुर्गति हो जाती है। हमलोगों को मुनिव्रत पालन करना है। अतः पैदल चलना होगा। जूता भी नहीं पहन सकते। तुम्हारे चरण कमल से कोमल और सुन्दर हैं। ये दुर्गम मार्ग और बड़े बड़े पहाड़ों का सामना नहीं कर सकते।

कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा ॥४॥

अर्थ : कन्दरा, खोह, नदी, नद और नाले सभी दुर्गम और अथाह होते हैं। जिन्हें देखते नहीं बनता। बाघ, भालू, भेड़िया और हाथी ऐसा चिग्घाड़ करते हैं कि सुनकर धैर्य छूट जाता है।

व्याख्या : उन बड़े बड़े पहाड़ों में ऐसी ऐसी कन्दरा और ऐसे ऐसे खोह हैं। कितने भयानक नाले रास्ते में पड़ते हैं। बहुत से नाले मिलकर एकनद हो जाता है और बहुत से नद मिलकर नदियाँ बन जाती हैं। ये सबके सब दुर्गम हैं। अथाह हैं। ऐसे भयानक हैं कि देखते नहीं बनता। तीसरे यह कि उन वनों में हिंस्र जन्तु बाघ, भालू, भेड़िया, सिंह और हाथी रहते हैं जिनका चिग्घाड़ सुनकर धैर्य छूट जाता है। इससे शब्द की भयानकता कहा।

दो. भूमि सयन बलकल बसन, असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबुइ समय अनुकूल ॥६२॥

अर्थ : पृथ्वी पर सोना, पेड़ की छाल पहनना, कन्द फल मूल खाना वह भी सदा नहीं मिलता। सभी अपने अपने समय पर मिलते हैं।

व्याख्या : तुमने कठोर पृथ्वी पर पैर नहीं रक्खा। सदा पलंग पीठ, गोद और पालने पर रही। वन में पृथ्वी पर सोना पड़ेगा। पेड़ों की छाल को कपड़ा की भाँति पहनना होगा। खाने के लिए केवल कन्द, फल और मूल मिलेंगे। वे भी सदा प्राप्य नहीं। सबके लिए ऋतु नियत है। स्थान नियत है। कोई किसी ऋतु में होता है और कोई किसी ऋतु में होता है। कोई कहीं पाया जाता है और कोई कहीं पाया जाता है। जीवनोपयोगी वस्तु भी दुर्लभ हैं। यहाँ रस ओर गन्ध के विषय में कहा।

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहि जाइ बखानी ॥१॥

अर्थ : मनुष्यों को खानेवाले राक्षस वहाँ घूमा करते हैं। करोड़ों प्रकार के कपट वेष धारण किया करते हैं। पहाड़ी पानी बड़ा विकार करता है। वन की विपत्ति का वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या : चौथे यह कि राक्षसों के मनुष्य ही आहार हैं। मनुष्य ही खाकर वे जीते हैं : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। वे आहार के खोज में घूमा करते हैं। कपट से अनेक वेष बनाया करते हैं। जिसमें कोई उन्हें जान न ले। कहीं मृग

बन जाते हैं। कहीं यति बन जाते हैं। इत्यादि। पहाड़ का पानी बड़ा विकार करता है। उसे पीकर लोग घर आने पर भी बीमार पड़ते हैं। मरणासन्न हो जाते हैं। वन में एक विपत्ति नहीं है। वन की विपत्तियों का पारावार नहीं।

काल कराल बिहंग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आए। मृग लोचनि तुम्ह भीरु सुभाए ॥२॥

अर्थ : वन में कराल सर्प होते हैं। भयावने पक्षी होते हैं। राक्षस लोग स्त्री और पुरुष को चुरा ले जाते हैं। धीर पुरुष भी वन की याद आने से डर उठते हैं। हे मृगलोचनि ! तुम तो स्वभाव से ही डरपोक हो।

व्याख्या : सुरक्षित स्थान में भी खतरा रहता है। वहाँ कराल सर्प होते हैं। जिनके काटने से कोई बच नहीं सकता। वहाँ के पक्षी भी घोर हैं। मनुष्य को तो अपना आहार समझते हैं। यथा : मोहि अहार दीन्ह जगदीसा। सुन्दर पुरुष पर राक्षसी आसक्त हो जाती हैं। सुन्दरी स्त्री पर राक्षस आसक्त हो जाते हैं। तब उन्हें खाते नहीं चुरा ले जाते हैं। जो खा जाने से बुरा है।

जिनकी धीरों में गिनती है और कभी वन में रहने का अवसर मिल चुका है वे वन की याद आ जाने से सिहर उठते हैं। हे मृगलोचनि ! तुम तो स्वभाव से भीरु हो। माँ कहती है : चित्र लिखित कपि देखि डराती। तुम वन में कैसे बसोगी ? वन में मृग बसते हैं। मृगलोचनी नहीं बसतीं।

हंस गवनि तुम नहि बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवंन पयोधि मराली ॥३॥

अर्थ : हे हंसगामिनि तुम वन योग्य नहीं हो। सुन करके लोग मुझे अपयश देंगे। मानससरोवर के अमृत सदृश जल में पली हुई हंसिनी क्या क्षार समुद्र में जी सकती है ?

व्याख्या : पाँचवें यह कि तुममें वन की योग्यता नहीं है। जिसमें जिस बात की योग्यता न हो उसमें उस वस्तु का विनियोग नीति विरुद्ध है। तुम्हारो हंस की भाँति मन्द गति है। वन में तीव्र गतिवाली कोल किरात किशोरियों का निर्वाह होता है। जो दौड़धूप कर सकें। तुम तो जाना चाहती हो पर साथ ले जाने में मेरा कितना भारी अपयश है। लोग कहेंगे कि भले ही सीता साथ जाने के लिए हठ करती रही हों पर रामचन्द्र कैसे थे जो ऐसी सुकुमारी को साथ वन ले गये। तुम वन में जी नहीं सकती। जैसे मानसरोवर के अमृत सदृश जल से पली हुई हंसिनी लवण समुद्र में नहीं जी सकती।

नव रसाल बन बिहरन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंद बदनि दुखु काननु भारी ॥४॥

अर्थ : नयी अमराई में विहार करनेवाली कोकिल की शोभा क्या करील के

वन में हो सकती है। ऐसा मनमें विचार करके घर रहो। हे चन्द्रवदनि ! वन में बड़ा दुःख है।

व्याख्या : तुम्हारा वन जाना एक अशोभन कार्य है। कोकिल की शोभा नये आम के वन में विहार करने में है। आम्रवन में स्पर्श रूप रस गन्ध की बहुतायत तो स्वभाव से ही है। नवतरु किसलय में मृदु स्पर्श और सुन्दर रूप बौर में सुन्दर गन्ध फल में सुन्दर रस रहता है। केवल मनोहर शब्द का घाटा रहता है। उसे पूरा करके कोकिल आम्रवन को सर्वेन्द्रिय तर्पण बना देती है। अतः वहाँ उसकी शोभा है। करील में न तो पत्ते हैं, न सरस फल है, न सुगन्ध है। उसमें कोकिल जाती ही नहीं। करील के वन में यदि कोकिल जाय तो उसकी शोभा नहीं।

आपन मोर नीक जौ चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू से उपक्रम करके रहहु भवन अस हृदय बिचारी से उपसंहार कर रहे हैं। सारांश इतना ही है कि वन में भारी दुःख है जो तुम झेल नहीं सकती।

दो. सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि ॥६३॥

अर्थ : स्वाभाविक हितचिन्तक गुरु और स्वामी की शिक्षा जो शिरोधार्य नहीं करता। वह मन में पेट भर पछताता है। उसके हित की अवश्य हानि होती है।

व्याख्या : स्वाभाविक हित चिन्तक माता पिता आदि गुरुजन ससुर सास आदि और स्वामी इनके वचन को अवश्य शिरोधार्य करना चाहिए। इसी में कल्याण है। नहीं तो निश्चय ऐसा अकल्याण होता है कि नहीं माननेवाला मन में पेट भर पछताता है चाहे मुख से न कहे। स्त्री का तो पति सहज सुहृद भी है। यथा : मितं ददाति च पिता मितं भ्राता मितं सुतः। अमितस्य च दातारं भर्तारं कानुसेवयेत्। अमितदानि भर्त्ता वैदेहीगुरु भी हैं। यथा : पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् और स्वामी तो हैं ही। अतः उनके वचन को तो अवश्य ही शिरोधार्य करना चाहिए। नहीं मानने से अवश्य हित की हानि होती है और मुख से चाहे न कहे पर मन में उसे पेट भर पछताना पड़ता है। भाव यह कि यदि मेरा वचन न मानोगी तो निश्चय हित हानि होगी और तुम पेट भर पछताओगी।

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल[1] सिख दाहक भइ कैसें। चकइहि सरद चंद निसि जैसें ॥१॥

अर्थ : प्रिय के मनहरण करनेवाले कोमल वचन सुनकर सीताजी के सुन्दर नेत्र जल से भर आये। शीतल शिक्षा ऐसी दाहक हुई जैसे चकइ को शरद् चन्द्रमा-वाली रात दाहक होती है।

व्याख्या : एक तो प्रिय के वचन स्वभाव से ही प्रिय लगते हैं। तिस पर

---

१. विषम : अलङ्कार तृतीय।

ऐसे कोमल और मनोहर थे कि मन उसी के ग्रहण में तन्मय हो गया था। आँसू गिरना बन्द हो गया था। सो कथन समाप्त होते ही सीताजी के सुन्दर नेत्रों में फिर जल भर गया।

बड़ी शीतल शिक्षा थी पर सीताजी को वह दाहक हो गयी। जैसे शरद् चन्द्रमावाली रात स्वभाव से ही शीतल और सुखद है। पर चकई को तो वह अधिक दाह उत्पन्न करती है। पति वियोग के कारण चकई के लिए सभी रात्रि दाहक हैं। पर शरद् चन्द्र से युक्त रात्रि अधिक दाहक होती है। भाव यह कि कौसल्याजी के वचन भी दाहक थे। पर रामचन्द्र के मुख से उसी आशयवाले वचन अधिक दाहक हो उठे। रामजी ने वही भाव शब्दान्तर में कहे जो भाव कौसल्याजो ने व्यक्त किया था। पर प्रियतम के मुख से सुनने से वे अधिक वियोग-जन्यदाह के उत्पन्न करनेवाले हुए।

उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनि कुमारी ॥२॥

अर्थ : वैदेही विकल है उत्तर देते नहीं बनता। पवित्र और स्नेही स्वामी मुझे छोड़ना चाहते हैं। पृथ्वी की बेटी सीताजी ने धैर्य धारण किया और बलपूर्वक नेत्र के जल को रोका।

व्याख्या : जो रामजी कह गये उसका उत्तर है। पर मन में जो यह भावना उठी कि ऐसे पवित्र और स्नेही स्वामी मुझे छोड़ना चाहते हैं तो वैदेही विकल हो गयी। उत्तर मुख से निकलता ही नहीं। शुचि कहने का भाव यह कि सरकार विषय रस रूखे हैं। यथा : राम पुनीत विषय रस रूखे फिर भी स्नेही हैं। यथा : तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा। सो मन सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनहि माहीं : भाव यह कि अलौकिक प्रेमी होने पर भी मुझे छोड़ना चाहते हैं।

इस दाह से धैर्य छूट चला था। पर ये तो सर्वसहा पृथ्वी की बेटी हैं। माँ के सब गुण विद्यमान हैं। धैर्य धारण किया और नेत्र के जल को बल पूर्वक रोका।

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देवि बड़ि अबिनय मोरी ॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥३॥
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं ॥४॥

अर्थ : सास के पाँव पड़कर और हाथ जोड़कर बोलीं कि हे देवि! मेरी बड़ी भारी ढिठाई को क्षमा करना। मुझे प्राणपति ने वही शिक्षा दी जिससे मेरा परम कल्याण हो। मैंने भी उसे समझकर मन में देख लिया कि पति के वियोग से बढ़कर कोई दुःख संसार में नहीं है।

व्याख्या : पहिले सास से ही प्रार्थना करना है। क्योंकि सरकार ने कह दिया : सुमुखि मातु हित राखहुँ तोहीं और माता का बहुत बल इस बात पर है

कि सीता वन के दुखों को न सह सकेगी और उन्हीं के प्रेरणा से सरकार ने वैसी ही शिक्षा दी। जब सीताजी आयी थीं तब वन्दना करके बैठीं। अब कुछ कहना है अतः फिर वन्दना करती हैं। भगवती ने आज तक सास की बातों का कभी उत्तर नहीं दिया। आज बिना दिये स्वीकृति समझी जायगी। अतः उत्तर देना पड़ा। इसे सीताजी बड़ी भारी ढिठाई मानती हैं। अतः उसके लिए पहिले ही क्षमा प्रार्थी होती हैं।

आरम्भ से ही आर्यपुत्र न कहकर सङ्कोच छोड़कर प्राणपति कहा। इसका अर्थ ही यही है कि इनके बिना मैं जी नहीं सकती। प्राणपति की शिक्षा में कोई दोष नहीं है और वह शिक्षा मेरे बहुत भले के लिए है। मैंने उसे दत्तचित्त होकर सुना। समुझि कहकर उसका मनन करना कहती हैं और दीख मन माहीं से निदिध्यासन कहती हैं। अर्थात् ऊँचा नीचा अच्छी भाँति विचार लिया। सो यह निश्चय हुआ कि प्रिय वियोग के समान दुःख दूसरा जगत में है नहीं अधिक कहाँ से होगा। सास से सीताजी ने इतना ही कहना यथेष्ट समझा। क्योंकि स्त्री हैं। स्त्रीहृदय को जानती हैं। स्त्रीधर्म को जानती हैं। इनके लिए इतना ही अलं है। अतः यह : सहज सुहृद गुरुस्वामि सिख जो न करैं हित मानि आदि का उत्तर है।

दो. प्राननाथ करुनायतन, सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान ॥६४॥

अर्थ : हे प्राणनाथ, करुणायतन, सुन्दर, सुखद, सुजान, हे रघुकुल कुमुद चन्द्र! तुम्हारे बिना स्वर्ग भी नरक के तुल्य है।

व्याख्या : अब सरकार से कहती हैं। प्राणनाथ सम्बोधन से वियोग में प्राण त्याग कहा। करुणायतन कहकर करुणा की प्रार्थी हैं। सुन्दर कहकर द्योतित किया कि मैं नित्य दर्शन चाहती हूँ। सुखद कहकर वियोग दुःख न देने की प्रार्थना करती है। सुजान कहकर मनोगत का जानकार होना कहती हैं। रघुकुल कुमुद विधु कहकर अपना सहज प्रेम कह रही हैं। इतनी बात केवल सम्बोधन में ही कह गयीं। अब कहती हैं कि तुम्हारे बिना मेरे लिए स्वर्ग भी नरक है। स्वर्ग में लोकोत्तर सुख मिलता है और नरक में लोकोत्तर दुःख मिलता है। भाव यह कि प्रियतम के बिना सुख सब दुःख रूप है। यथा : जे हित रहे करइँ ते पीरा। यह : रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंद बदनि दुःख कानन भारी का उत्तर है।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥१॥

अर्थ : माता, पिता, बहन, प्रिय भाई, प्रिय परिवार, सुहृद् समूह, सास, ससुर, गुरु, स्वजन, सहायक और सुन्दर सुशील सुखदायक पुत्र।

व्याख्या : १. पहिला परिचय माता से २. फिर पिता से फिर ३. बहन और ४. प्रिय भाई से। ये तो परम आत्मीय ठहरे। तत्पश्चात् ५. प्रिय परिवार

चाचा बाबा इत्यादि और ६. सुहृद्वर्ग। ये छः मैके के आत्मीय हैं। इस भाँति १. सास २. श्वसुर ३. गुरु ४. स्वजन ५. सहायक और ६. सुन्दर सुशील सुखदायक पुत्र ये छः आत्मीय सुसराल के। सब मिलाकर बारह हुए। इन्हीं पर स्त्रियों को प्रीति होती है।

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहुँ ते ताते ॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू ॥२॥

अर्थ : हे नाथ जहाँ तक स्नेह और नाता है पति के बिना स्त्री को सब सूर्य की भाँति तापप्रद हैं।

व्याख्या : इन बारहों के भीतर ही सब स्नेह और सम्बन्ध का अन्तर्भाव है। इसीलिए स्नेही और सम्बन्धी न कहकर स्नेह और सम्बन्ध कहा। ये सब सुखदायी हैं। पर तभी तक जब तक कि स्त्री को पति का साथ है। पति का विछोह होने पर ये बारहों द्वादशादित्य की भाँति तापक हो जाते हैं। एक आदित्य का ताप सहन नहीं होता बारह आदित्य का ताप कौन सह सकता है। यह : नव रसाल बन बिरहन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला : का उत्तर है।

चेतन की व्यवस्था कहकर अब जड़ वस्तुओं में जिनपर प्रेम होता है उन्हें गिनाती हैं। १. शरीर २. धन ३. धाम ४. धरणी ५. पुर और ६. राज्य यह सुख का समाज है। पर तभी तक जब तक पति का साथ है। पति के विछोह में ये शोक के समाज हैं। इस बात को पतिव्रता स्त्रियाँ ही समझ सकती हैं। सामान्य स्त्री भी इसे नहीं समझ सकती। तब पुरुषों से समझने की कौन आशा है। अतः इन बातों को कौसल्या जी से कहकर सरकार से कहती हैं : यह मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली का उत्तर है।

भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥३॥

अर्थ : भोग रोग के समान हो जाता है। गहने बोझ मालूम होते हैं और संसार तो यमयातनामय हो जाता है। हे प्राणनाथ ! तुम्हारे बिना इस संसार में मुझे तो सुखद कहीं कुछ भी नहीं है।

व्याख्या : भोग की सामग्री रोग की भाँति दुःखद हो जाती है। भूषण धारण करने योग्य प्रिय वस्तु है। वह बोझा हो जाता है। संसार में जो व्यवहार चलता है यमयातना की भाँति महाकष्टप्रद प्रतीत होता है। यह : हंस गवनि तुम नहिं बन जोगू : का उत्तर है। इस भाँति भगवतीजी ने पतिव्रता स्वभाव का वर्णन किया : ऐसी स्त्री जो पति के साथ सती होती हैं उन्हें सती हो जाने में ही सुख है। वे सती हो जाने से इन महादुःखों से त्राण पा जाती हैं। जो इन गुणों से अपरिचित हैं उन्हें सती होना घोर नृशंस क्रिया प्रतीत होती है। अन्त में भगवती कहती हैं कि जो आपने कहा : रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंद बदनि दुख कानन भारी। सो

पुरुष होने के नाते स्त्री स्वभाव से अपरिचित होने के कारण कहा। हे प्राणनाथ! तुम्हारे बिना संसार में कहीं कुछ भी सुखद नहीं है।

जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥४॥

अर्थ : जैसे जीव के बिना देह बिना जल की नदी वैसे ही हे नाथ! पुरुष के बिना स्त्री हो जाती हैं। हे नाथ! तुम्हारे साथ मुझे सब सुख निर्मल शरत् चन्द्र के समान आपके मुख दर्शन में है।

व्याख्या : जैसे जीव के बिना देह अमङ्गल रूप अपवित्र और व्यर्थ हो जाता है : जिस भाँति जल के बिना नदी भयानक और कष्टप्रद हो जाती है वही दशा स्त्री की हो जाती है। तो क्या मैं इस संसार में अमङ्गल रूप अपवित्र व्यर्थ भयानक और कष्टप्रद होकर रहूँ? जो सरकार ने कहा : मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली। सो मेरे लिए घर ही लवण पयोधि है। मैं यहाँ नहीं जीऊँगी। सरकार के मुखचन्द्र के दर्शन में ही मुझे सब सुख है।

दो. खग मृग परिजन नगर बनु, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुख मूल॥६५॥

अर्थ : नाथ के साथ पशु पक्षी कुटुम्बी वन नगर और पेड़ों की छाल निर्मल वस्त्र तथा पत्ते की कुटिया स्वर्ग की भाँति सुखमूल हो जायगी।

व्याख्या : नाथ का साथ रहने से वन्यजन्तु मेरे कुटुम्बी हो जायंगे। वन ही नगर की भाँति सुखद होगा। पेड़ों की छाल ही निर्मल वस्त्र का काम देंगे और पत्ते की कुटी में स्वर्ग का सुख होगा। प्रिय का साथ होने से सब दुःखद पदार्थ सुखद हो जाते हैं। जङ्गल में ही मङ्गल होगा। कोई दुःखद न होंगे यह विपिन विपति नहिं जाइ बखानी का उत्तर है।

बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥१॥

अर्थ : उदार वनदेव और वनदेवी सास ससुर की भाँति रक्षा करेंगे। सरकार के साथ कुशा और कोमल पत्तों का बिछौना सुन्दर कामदेव का तोशक हो जायगा।

व्याख्या : माता ने आशीर्वाद दिया है : पितु बनदेव मातु बनदेवो। अतः कहती हैं कि वनदेव और वनदेवी उदार हैं। बिना पूजा पाये वन्य जीवों की रक्षा करते हैं। सो वनदेवी मेरी सास की भाँति रक्षा करेंगी और वनदेव ससुर की भाँति रक्षा करेंगे। यह : नर अहार रजनीचर करहीं। कपट वेष बिधि कोटिक चरहीं : का उत्तर है।

सरकार ने कहा था कि भूमि पर सोना होगा। इस पर कहती हैं कि भूमि

पर क्यों सोऊँगी कुश किशलय का बिछौना बनाया जायगा और प्रभु के साथ सुन्दर कामदेव के तोशक की भाँति सुखद होगा।

कंद मूल फल अमिअ अहारू । अवध सौध सत सरिस पहारू ॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी । रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी ॥२॥

अर्थ : कन्दमूल फल का आहार अमृत के आहार सा होगा। पहाड़ अवध के सौ महलों की भाँति हो जावेंगे। क्षण क्षण सरकार के चरण कमल का दर्शन करके ऐसी प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन में चकई प्रसन्न रहती है।

व्याख्या : सरकार ने कहा : असन कन्द फल मूल। सो कन्द फल और मूल का भोजन सरकार के साथ होने से अमृत के भोजन की भाँति स्वादिष्ट होंगे और जिन पहाड़ों के लिए सरकार ने कहा है : मारग अगम भूमिधर भारे। कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे : इत्यादि सो वे भूमिधर पहाड़ अयोध्या के सौ महल के समान सुखदायक होंगे।

सरकार ने कहा : कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे। सो कन्दर खोह नदी नद नारे में सरकार आगे आगे रहेंगे। मैं तो सरकार के चरणों को बराबर दर्शन करती हुई प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन को चकई रहती है।

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥३॥

अर्थ : सरकार ने वन के बहुत से दुःख भय विषाद और परितापों का वर्णन किया। पर वे सब मिलकर प्रभु के वियोग के लवलेश के समान नहीं हैं।

व्याख्या : सरकार ने वन के बहुत दुःखों का वर्णन किया। उसमें भय का वर्णन किया। यथा : कानन कठिन भयंकर भारी। विषाद का वर्णन किया। यथा : घोरघाम हिम बारि बयारी। परिताप का वर्णन किया। यथा : कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहि बिनु पद त्राना। चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे। सो इन सब भय विषाद और परितापों को इकट्ठा किया जाय तो भी सरकार के वियोग के लवलेश के समान सब मिलकर भी नहीं होंगे।

अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि । लेइअ संग मोहि छाँड़िअ जनि ॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी । करुनामय उर अंतरजामी ॥४॥

अर्थ : हे सुजान शिरोमणि ! ऐसा जानकर मुझे साथ ले लीजिये। छोड़ न दीजिये। हे स्वामिन् ! मैं बहुत विनती क्या करूँ। आप करुणामय हैं और अन्तर्यामी हैं।

व्याख्या : सरकार ने कहा : जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा। इसपर कहती हैं कि मैं हठ नहीं करती हूँ। वस्तुस्थिति कहती हूँ। आप सुजान शिरोमणि हैं। यथा : यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि

कोसल राऊ। जो निष्करुण हो हृदय की बात न जानता हो उससे अधिक विनती की जाती है। सरकार तो करुणामय हैं। अन्तर्यामी हैं। आप से अधिक विनती क्या करें।

दो. राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहत जानिअहि प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद, सील सनेह निधान ॥६६॥

अर्थ : यदि आप समझें कि अवधि : चौदह वर्ष तक मेरे प्राण रह सकेंगे तो अवध में मुझे रखिये। आप दीनबन्धु हैं। सुन्दर हैं और शील तथा स्नेह के निधान हैं।

व्याख्या : सरकार ने कहा : दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा। सो मैं शिक्षा शिरोधार्य करने को प्रस्तुत हूँ। पर प्राण मेरे वश में नहीं हैं। ये नहीं रहेंगे। यदि आप समझते हों कि ये चौदह वर्ष बिना आपके रह सकेंगे तो मुझे अवध में ही रहने दीजिये। दीनबन्धु सम्बोधन से अपनी दीनता कहा। सुन्दर कहकर अपनी आसक्ति कही और सील सनेह निधान कहकर साथ ले जाने के लिए प्रार्थना की। रहत न जानि अहि : पाठ मानने से अर्थ होगा कि मैं नहीं जी सकूँगी।

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥१॥

अर्थ : मुझे रास्ता चलने में थकावट नहीं मालूम होगी। क्योंकि क्षण क्षण चरण कमलों का दर्शन होता रहेगा : सभी तरह से मैं प्रिय की सेवा करूँगी और रास्ते की थकावट दूर करूँगी।

व्याख्या : ऊपर के दोहों में पाँच सम्वोधन दिया है : १. दीनबन्धु २. सुन्दर ३. सुखद ४. शील निधान और ५. स्नेह निधान। अतः दीनबन्धु से अपनी दीनता कहती हैं। सरकार ने कहा था : चलब पयादेहि बिनु पद त्राना। इसका उत्तर भी साथ ही साथ है। कहती हैं कि मुझे तो रास्ते चलते थकावट होगी नहीं। क्योंकि सरकार के प्रत्येक पादप्रक्षेप को मुझे ध्यान से देखना पड़ेगा। यथा : प्रभु पद रेख बीचबिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता। इस भाँति क्षण क्षण चरण कमल का दर्शन करती चलूँगी। उसी आनन्द में मुझे पथश्रम का भान ही न होगा।

इतना ही नहीं सरकार के साथ कोई सेवक न होगा तो सेवा कौन करेगा। यहाँ तो सेवा का पूरा सौभाग्य प्राप्त नहीं था। अवसर ही नहीं मिलता था। प्रिय की सेवा करने में सुख मिलता है सो सब सेवा मैं करूँगी। एहि ते अधिक धरम नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा : वा उत्तर दे रही हैं कि आपकी सेवा का अधिक सुअवसर प्राप्त होगा। एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पतिपद प्रेमा। भाव यह कि मैं बोझ होकर साथ नहीं रहूँगी। मैं तो थकूँगी ही नहीं और सरकार के थकावट को दूर करूँगी। यह सीताजी आर्त्त होकर कह रही हैं। नहीं तो : घर

ते निकरी रघुवीर वधू, धरि धीर धरी मग में पग द्वै । झलकीं भली भाल कनी जल की, रद सूख गये अधराधर द्वै । इत्यादि ।

पाय पखारि बैठि तरु छाहीं । करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं ॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें । कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें ॥२॥

अर्थ : पैर धोकर पेड़ की छाया में बैठकर प्रसन्न मन से हवा करूँगी । पसीने की बूदों के सहित स्याम शरीर के दर्शन से : प्राणनाथ के अवलोकन में दुःख के लिए समय कहाँ है ।

व्याख्या : मैं जानती हूँ कि थकावट कैसे दूर की जाती है । जब आप थककर विश्राम के लिए पेड़ तले बैठेंगे तो मैं आपका पाँव धोकर प्रसन्न मन से हवा करूँगी । आपकी थकावट दूर होगी ।

श्यामसुन्दर राम से अपनी आसक्ति कहती हैं कि जब थकावट में आपके शरीर की शोभा पसीने के बूँदों से और भी बढ़ जाती है सो उसके देखने में ही मन लग जायगा । दुःख के लिए अवसर कहाँ है ? भाव यह कि अनवरत मन के आप में लगे रहने से दुःख का भान हो नहीं सकता । सो दिन तो इस भाँति आनन्द से कटेगा ।

सम महि तृन तरु पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही । लागिहि ताति बयारि न मोही ॥३॥

अर्थ : समतल भूमि पर तृण और तरुपल्लव बिछाकर यह दासी रात भर पैर दाबेगी । बार बार इस कोमल मूर्ति को देखकर मुझे गरम हवा न लगेगी ।

व्याख्या : अब रात की व्यवस्था कहती हैं कि भूमि शयन क्यों होगा ? मैं समतल भूमि देखकर उस पर तृण और पेड़ के कोमल पल्लव की शय्या बिछाऊँगी । मैं तो दासी हूँ । चरण सेवा मेरा धर्म है । सरकार थके रहेंगे । मैं रात भर चरण सेवा करूँगी । सरकार सुखद हैं । सेवा में भी सुख मिलता है । सरकार के नवनील नीरद सुन्दर मूर्ति का दर्शन करती रहूँगी । मुझे गरम हवा क्यों लगेगी । घोर घाम हिम बारि बयारी : का उत्तर ।

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा । सिंध बधुहि जिमि ससक सिआरा ॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू । तुम्हहिं उचित तप मो कहुँ भोगू ॥४॥

अर्थ : सरकार के साथ मुझे आँख उठाकर देखनेवाला कौन है ? सिंह की वधू को खरहा : खरगोश और सियार के देखने की सामर्थ्य कहाँ ? मैं सुकुमारी हूँ और सरकार वन के योग्य हैं । आपको तप उचित है और मुझे भोग उचित है ।

व्याख्या : निसिचर निकर नारि नर चोरा : का उत्तर : सिंहवधू में ही ऐसी सामर्थ्य है कि शशक सिआर उसकी ओर आँख नहीं उठा सकते कि पुनः जब

वह सिंह के साथ हो। सरकार सिंह हैं। राक्षसादि आपके सामने शशक सिआर हैं। उनसे मुझे कौन डर है ?

सरकार शील सनेह निधान हैं। ऐसी बातें कैसे कहते हैं कि मैं वन में तप करूँगा और तुम घर में राजभोग भोगो। व्याह में प्रतिज्ञा कराया गया है कि धर्म अर्थ और काम में इसके साथ वरतना। तो क्या तप में मेरा साथ न होगा। यदि मैं सुकुमारी हूँ तो आप तो और भी अधिक सुकुमार हैं। यथा : व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः। पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम्। यदि मैं वन के योग्य नहीं हूँ तो आप और भी अधिक नहीं हैं। वनवास की कौन कहे केवल पति के प्रवास में स्त्री को तप विहित है। सो मुझे सरकार कन्दमूल अशन को डरा रहे हैं।

दो. ऐसेउ[1] बचन कठोर सुनि, जौ न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषय बियोग दुखु, सहिहहिं पाँवर प्रान ॥६७॥

अर्थ : ऐसा कठोर वचन सुनकर भी यदि कलेजा न फटा तो यह नीच प्राण सरकार के विरह के दुःख को भी सह लेगा।

व्याख्या : हौं रहौं भवन भोग लौलुप ह्वै पति कानन कियो मुनि को साजु। तुलसीदास ऐसे विरह वचन सुनि कठिन हियो विहर्यौ न आजु। पिय निठुर वचन कहे कारन कवन। जगदम्बा कहती हैं : हंसगवनि तुम नहिं बन जोगू। यह वचन निष्ठुर है। हृदय विदारक है। आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम्। सो मुझे आप अपने से अलग समझ रहे हैं। अतः यह वचन निष्ठुर है। मुझे सुख भोगने के लिए घर छोड़ रहे हैं। अतः हृदयविदारक हैं। इस वचन से हृदय फट जाना चाहता था। सो नहीं फटा। ऐसा कठिन है। इससे तो यही अनुमान होता है कि यह नीच प्राण सरकार के वियोग का विषम दुःख भी सह लेगा : यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत ध्वनि है।

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोग न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर सीताजी अत्यन्त विकल हो गयीं। वियोग के वचन को सँभाल न सकीं। दशा देखकर रामजी ने मन में समझ लिया कि हठ पूर्वक छोड़ जाने से यह प्राण छोड़ देगी।

व्याख्या : समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ : से उपक्रम करके : अस कहि सीय बिकल भइ भारी से उपसंहार करते हैं। वियोग तो दूर की बात है वियोग वचन के ही सुनने में असमर्थ हो गयीं। भारी विकल हो गयीं। अर्थात् मूर्च्छित हुईं। यथा : तुलसीदास प्रभु विरह वचन सुनि सहि न सकी मुर्छित भइ भामिनि। गी.।

---

१. यहाँ व्याघात : द्वितीय अलङ्कार है।

उनकी यह दशा देखकर रामजी ने मन में समझ लिया कि ऐसी अवस्था में इन्हें घर रहने के लिए जोर देना हठ करना है। हठ इनका नहीं है। हठ मेरी ओर से हो रहा है। क्योंकि घर रखने से तो यह प्राण छोड़ देगी।

कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा ॥
नहि बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू ॥२॥

अर्थ : कृपाल सूर्यकुल के नाथ ने कहा कि सोच न करो। साथ में वन चलो। आज विषाद का अवसर नहीं है। जल्दी वन चलने की तैयारी करो।

व्याख्या : सरकार सूर्यकुल के नाथ हैं। सूर्यकुल की रक्षा अपना कर्तव्य समझते हैं। सीताजी की दशा देखकर भगवती भास्वती अनुकम्पादेवी का उदय हुआ। क्योंकि सरकार स्वभाव से ही कृपाल हैं। कहने लगे कि अब सोच न करो। साथ में तुम भी वन चलो। आज ब्रह्मदेव सब प्रकार से मुझ पर अनुकूल हैं। अतः आज आनन्द के अवसर पर विषाद न करो। उठो! अब वन चलने की तैयारी करो।

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई ॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई ॥४॥

अर्थ : प्रिय वचन कहकर प्रिया को समझाकर माता को प्रणाम किया और आशीर्वाद पाया। माता बोली : जल्द आकर प्रजा का दुःख मिटाना और अपनी निष्ठुर माता को भूल न जाना।

व्याख्या : सरकार ने प्रिय वचन कहकर प्रिया को समझाया। यथा :

सहि न सकिहि वन दुख समुझि रह्यौं प्रीति उर गोय।
नतरु तिहारे संगते वन नंदनवन होय ॥
दोऊ कुल अनुरूप यह शुभ संकल्प तुम्हार।
दम्पति सम्पति में यथा तथा धर्म सहचार ॥
वेगि चलहु वनि धन रतन विप्रन्ह देहु बुलाय।
आभूषन गुरु तिय चरन अरपित करहु सुभाय ॥

कठोर वचन से जो हृदय पर चोट हुआ था उसी के मिटाने के लिए प्रिय वचन कहकर सीताजी को समझाया। तत्पश्चात् विदा होने के लिए माता के चरणों में प्रणाम किया और माता ने आशीर्वाद दिया। यह आशीर्वाद विदाई का है।

ऐसी दशा में भी माता को प्रजा की चिन्ता है। अतः कहती हैं कि तुम्हारे बिना प्रजावर्ग बड़ा दुःखी होगा। यथा : राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपवास। परिहरिभूषन भोग सुख जिअत अवधि की आस। सो लौटने में जल्दी करना। चौदह वर्ष वियोग का दुःख झेलना कठिन काम है। मैं निष्ठुर हूँ। भूल जाने लायक हूँ। पर माता का नाता स्मरण करके तुम भूल न जाना।

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी । देखिहों नयन मनोहर जोरी ॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि । जननी जिअत बदन बिधु जोइहि ॥४॥

अर्थ : हे विधाता ! क्या मेरी दशा भी फिर फिरेगी । मैं इस मनोहर जोरी को आँख से देखूँगी वह शुभ दिन और शुभ घरो बेटा ! कब आयेगी जब कि माता तुम्हारा चाँद सा मुखड़ा जीते जी फिर देखेगी ।

व्याख्या : कैसी ग्रहदशा मेरे ऊपर आयी हुई है । क्या मेरे दिन फिर लौटेंगे । यह मनोहर जोड़ी आँख के ओझल चौदह वर्ष के लिए हुआ चाहती है । क्या मैं उस शुभ दिन और उस शुभ घड़ी तक जीती रहूँगी जब कि यह जोड़ी वन से लौटेगी और फिर मैं तुम्हारे मुखचन्द्र का दर्शन पाऊँगी । उस दिन के सुख को याद करके माता कहती है :

दो. बहुरि बच्छ कहि लालु कहि, रघुपति रघुबर तात ।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ, हरखि निरखिहउँ गात ॥६८॥

अर्थ : फिर कब वत्स कहकर, लाल कहकर, रघुपति, रघुवर और तात कहकर बुलाऊँगी और हृदय से लगाकर हर्षित होकर तुम्हें देखूँगी ।

व्याख्या : कौसल्याम्बा इन्हीं पाँच प्यार के शब्दों से रामजी को पुकारती थीं । कभी वत्स, कभी लाल, कभी रघुपति, कभी रघुवर और कभी तात करके सम्बोधन करती थीं । वह कहती हैं कि चौदह वर्ष ऐसा सम्बोधन के लिए अवसर न मिलेगा । किसे ऐसा सम्बोधन करके मैं बुलाऊँगी और हृदय में लगाकर हर्षित्त होकर शरीर की सुन्दरता देखूँगी । अतः मेरे सुख के दिन गये । अब देखें कब वे सुख के दिन लौटते हैं । मैं आशा लगाये उसी दिन की बाट जोहती रहूँगी ।

लखि सनेह कातरि महतारी । बचनु न आव बिकल भइ भारी ॥
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना । समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥१॥

अर्थ : रामजी ने माता को स्नेह से ऐसा विह्वल देखकर कि मुख से वचन नहीं निकल रहा है और अत्यन्त विकल है नाना प्रकार से समझाया । उस समय का स्नेह वर्णन करते नहीं बनता ।

व्याख्या : कौसल्याजी बड़ी धैर्यवाली हैं । परन्तु माँ हैं । पुत्रवधू के विरह से अवलम्बनहीन सी होकर अत्यन्त विकल हो गयी हैं । सनेह कातरि : से मन की दशा कहा । बचनु न आव : से वाणी की दशा कहा । बिकल भई भारी : से तन की दशा कहा । रामजी ने देखा कि माँ अत्यन्त विकल है । साथ ले जाना धर्म नहीं हैं । महाराज का त्याग अनुचित्त है । अतः अनेक प्रकार से समझाया । यथा :

कवित्त

देखिवे में दुःख जो अपार दिखरात मात, किये ते विचार तामें कछुहू न सार है ।
जाते होत मिलन विछोह पुनि ताते होत, योग औ वियोग को ही रूप संसार है ॥

याते सुख दुख को समान मानि धीर धरो, वर्ष दस चार बीतने में नहिं वार है।
तेरे ही असीस लौटि वन ते नवैहौं सीस, ईश की कृपा से पासे ढरत सुढार हैं॥

कवि कहते हैं कि उस समय जैसा प्रेम उमड़ा उसका बखान नहीं किया जा सकता।

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥२॥

अर्थ : तब जानकी सास के पाँव पड़ीं और कहने लगीं कि माँ सुनो! परम अभागिन तो मैं हूँ। मेरा सेवा करने का समय था। सो दैव ने वन दे दिया। मेरा मनोरथ पूरा नहीं किया।

व्याख्या : विदा होने के लिए पहिले रामजी पाँव पड़े। यथा : लगे मातुपद आसिस पाई। इसके बाद जानकीजी के प्रणाम करने की बारी थी। पर माता ऐसी विकल हो गयी कि रामजी को बहुत भाँति समझाना पड़ा। जब कुछ शान्ति हुई तब जानकी पाँव पड़ीं और बोलीं कि माँ परम अभागिनी तो मैं हूँ। आप अपने को अभागिनी क्यों मानती हैं। आपने तो अपना कर्तव्य भलीभाँति निबाहा। मुझे पालपोसकर बड़ी किया। अब मैं इतनी बड़ी हुई कि आपकी सेवा कर सकूँ। सो दैव दुर्विपाक से मैं सेवा से वञ्चित हो रही हूँ। मेरा इतना पुण्य नहीं कि आपकी सेवा कर सकूँ। मेरा मनोरथ मेरे मन में ही रह गया। अतः अभाग मेरा है। सेवा का छीना जाना बड़ा भारी अभाग्य है। सो मुझसे आपकी सेवा छिन गयी। आपको छोड़कर वन जाना पड़ा।

तजब छोभु जनि छाँड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी॥३॥

अर्थ : आप दुःख को छोड़ देना पर छोह न छोड़ना। कर्म बलवान् है। मेरा भी कोई दोष नहीं हैं। सीताजी का वचन सुनकर सास व्याकुल हो गयीं। उस दशा का वर्णन कैसे करें।

व्याख्या : मन की अस्थिरता को क्षोभ कहते हैं। सीताजी कहती हैं कि मेरे जाने से जो आपको क्षोभ हो रहा है : सिय बन बसब तात केहि भाँती। सो क्षोभ को आप छोड़ दीजियेगा। यह क्षोभ आपको कष्ट देगा। पर छोह बनाये रखियेगा। क्योंकि आपके छोह से ही हमारा कल्याण है। मैं जो इस समय आपको छोड़ रही हूँ सो दैववश होकर छोड़ रही हूँ। इच्छा पूर्वक नहीं छोड़ रही हूँ। ऐसा ही कर्म फलोन्मुख हुआ है जिससे आपको छोड़ना पड़ रहा है।

सीताजी के प्रेम और विवेकमय वचन सुनकर इनके गुणों को स्मरण करके फिर चित्त अशान्त हो उठा। व्याकुल हो गयीं। उनकी दशा कहने की कोई विधि ही नहीं बैठती। तजब छोभ जनि छाड़अ छोहू। इस वाक्य में जो भाव भरे हुए हैं

उन्होंने कौसल्याजी के हृदय में सीताजी की कीमत और बढ़ा दी। अतः रामजी के समझाने से जो विकलता कुछ कम हुई थी वह और बढ़ गयी।

बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा ॥४॥

अर्थ : बार बार कौसल्याजी ने सीताजी को हृदय से लगाया। धैर्य धारण करके शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जब तक गङ्गा और यमुना में जल धारा है तब तक तुम्हारा सोहाग बना रहे।

व्याख्या : सीता जी को हृदय से लगा लिया। एक बार के लगाने से सन्तोष नहीं होता। अतः बार बार हृदय से लगाती हैं। फिर धैर्य धारण करके वन में किस प्रकार से रहना चाहिए इस बात की शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया।

स्त्रियों के लिए सोहाग से बढ़कर और कुछ नहीं है। उसके अचल होने का आशीर्वाद सास दे रही है। पर संसार में अचल कुछ भी नहीं सभी ओर से चलाचली है। यहाँ नित्यता प्रवाह रूपेण ही सम्भव है। अतः गङ्गा और यमुना की उपमा दी। अन्तिम कलियुग में गङ्गा का लोप कहा जाता है। अतः यमुना को भी साथ में कहा। अथवा सोहाग के बने रहने में दोनों का बना रहना आवश्यक है। गङ्गा यमुना दोनों मिलकर बहनेवाली नदियों की उपमा दी।

दो. सीतहि सासु असीस सिख, दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु, अति हित बारहिं बार ॥६९॥

अर्थ : सीताजी को सास ने अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिया और शिक्षा दी। सीताजी अत्यन्त प्रेम से बार बार चरणों में सिर झुकाकर चलीं।

व्याख्या : पहिले कहा था : मैं सिख देउँ जानकिहि सोई। सो इस समय वनवास के विषय में शिक्षा दी और सौभाग्यवती भव, पुत्रवती भव आदि अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिया। अब सीताजी विदा होती हैं। अत्यन्त प्रेम से बार बार चरण कमलों में प्रणाम करती हैं। सास ने अत्यन्त प्रेम से बार बार हृदय से लगाया। वधू फिर भी अत्यन्त प्रेम से बार बार चरण कमलों में नत होती है।

## १२. राम लक्ष्मण संवाद

समाचार जब लछिमन पाये। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाये ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥१॥

अर्थ : जब लक्ष्मणजी ने समाचार पाया व्याकुल होकर म्लान मुख किये हुए उठकर दौड़ पड़े। उनके शरीर में कम्प था। आँखों में आँसू भरा था। प्रेमाधिक्य से अधीर होकर चरण पकड़ लिया।

व्याख्या : समाचार ही ऐसा था कि जो सुनता था विकल हो जाता था।

यथा : जो जहँ सुनै धुनै सिर सोई। बड़ विषाद नहिं धीरज होई। कौसल्याजी के लिए कहा गया : सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस पानी। कहि न जाइ कछु हृदय विषादू। मनहु मृगी सुनि केहरि नादू। नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी। सीताजी : समाचार तेहि समय सुनि सीय उठीं अकुलाइ। यहाँ तो : बारहिं ते निजहित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी। अतः लक्ष्मणजी को समाचार सुनते ही ऐसी व्याकुलता बढ़ी कि विषाद की रेखा मुख पर स्पष्ट दिखलायी पड़ी और दौड़ पड़े। घर में न किसी से कुछ कहा न सुना। मानो किसी से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अति उत्सुकता साथ जाने की है। कौसल्याजी के महल के बाहर आते ही आते रामजी के चरणों को व्याकुल होकर जा पकड़ा। प्रेमाधिक्य के कारण धैर्य छूटा जा रहा है। शरीर में काँप है। पुलक है। आँखों में आँसू भरा है।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े ॥
सोचु हृदय बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा ॥२॥

अर्थ : कुछ भी बोल न सके। खड़े खड़े देखने लगे। जैसे जल से निकाली हुई मछली दीन हो जाय। मनमें सोच रहे हैं कि हे विधाता ! क्या होनेवाला है। मेरा तो सब सुख और पुण्य समाप्त हो गया।

व्याख्या : कौसल्याजी की भाँति इनके मुख से भी बोली नहीं निकल रही है। इनके जाकर चरण पकड़ लेने से सरकार खड़े हो गये। अब लक्ष्मणजी को जो कुछ कहना है उसके लिए निवेदन करने का अवसर है। पर इनकी दशा जल से बाहर निकाली हुई मछली की सी हो रही है। अनिमेष नयन से खड़े खड़े देख रहे हैं। मछली को पलक होती नहीं। बोल सकती नहीं। जल के बिना दीन हो जाती है और उस दीनता के व्यक्त करने का भी कोई साधन नहीं। होनहार क्या है। कुछ सूझ नहीं पड़ता। बस इतनी बात समझ में आ रही है कि मेरा सब पुण्य समाप्त हो गया। सुख समाप्त होने पर भी यदि पुण्य शेष रहे तो काल पाकर फिर सुख हो सकता है और यदि पुण्य भी समाप्त हो जाय तो फिर सुख की आशा ही नहीं। यथा : नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे।

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेह सब सन तृनु तोरें ॥३॥

अर्थ : मुझे रघुनाथजी क्या कहेंगे ? घर में रक्खेंगे कि साथ लेंगे। रामजी ने भाई को हाथ जोड़े हुए देह घर सबकी उपेक्षा तृण के समान किये हुए देखा।

व्याख्या : रघुकुल के नाथ हैं। जो इनकी आज्ञा होगी सो हटाया नहीं जा सकता। करना ही पड़ेगा। सीताजी को साथ ले लिया। देखें मेरे लिए क्या आज्ञा होती है। यद्यपि वे अर्धांङ्गिनी हैं। पर मैंने भी बचपन से साथ नहीं छोड़ा है। परिस्थिति ऐसी है कि मुझे घर रहने के लिए छोड़ भी सकते हैं और सेवा के लिए

साथ भी ले सकते हैं। सीताजी के साथ होने से मेरी बड़ी आवश्यकता है। अतः लक्ष्मणजी संशय में पड़े हुए हैं।

इधर रामजी ने लक्ष्मण को देखा कि हाथ जोड़े खड़े हैं। कुछ कहते नहीं। इतना कहने से सब कुछ कह दिया। लक्ष्मण के देखने से मालूम होता है कि घर की उपेक्षा तृण की भाँति किये हुए तो ये आ ही रहे हैं देह की भी, इन्हें अपेक्षा नहीं है। स्वयं चक्रवर्तीजी की भाँति बिना ज़ल के मछली की सी दशा हो रही है।

बोले बचनु राम नयनागर। सील सनेह सरल सुख सागर ॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥४॥

अर्थ : नीति में निपुण शील स्नेह सरलता और सुख के सागर कहने लगे कि हे तात ! प्रेम के वश होकर धैर्य न छोड़ो। हृदय में समझो कि इसका परिणाम उत्साहमय है।

व्याख्या : सरकार नीति में निपुण हैं। ऐसे समय में लक्ष्मणजी को अयोध्या से हटाना नहीं चाहते। शील और स्नेह के कारण घर रहने की आज्ञा देते भी नहीं बनता। सरल हैं। जो बात मनमें है वही कहेंगे और सुख के सागर हैं। उनके मनमें कोई विकार नहीं है। इस समय भी सुखी हैं। सागर चार हैं। इसलिए शील स्नेह सरलता और सुख चारों का समुद्र कहा।

सरकार ने कहा कि मनुष्य को सात्त्विक सुख के लिए यत्नशील होना चाहिए। जो आरम्भ में विष की भाँति प्रतीत होता है और परिणाम में अमृत सा मधुर है वही सात्त्विक सुख है। मेरे वन जाने का परिणाम बड़ा उत्साहमय होगा। बहुत बड़े यश की प्राप्ति होगी। अतः प्रेम के वश धैर्य त्याग न करो। धैर्य छोड़ने की कोई बात नहीं है।

दो. मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनमकर, नतरु जनमु जग जायँ ॥७०॥

अर्थ : जो स्वभाव से ही माता पिता गुरु और स्वामी की शिक्षा शिरोधार्य करते हैं उनका ही जन्म सुफल है। नहीं तो जगत् में जन्म ही व्यर्थ है।

व्याख्या : जो शिक्षा भगवती को दी थी वही लक्ष्मणजी को दे रहे हैं। यथा : सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख जो न करै हित मानि। सो पछिताइ अघाइ उर अबस होइ हित हानि। भेद इतना ही है कि सीताजी का साथ चलना धर्मतः प्राप्त है लक्ष्मणजी का वैसा नहीं है। सरकार अपने लिए कहते हैं कि मैं तो अपना जन्म सफल करने जाता हूँ। अतः यहाँ दुःख की कोई चर्चा नहीं है। तुम भी माता पिता की सेवा करके जन्म सफल करो। तुम्हारा धर्म माता पिता की सेवा है। मेरे साथ चलना तुम्हारा धर्म नहीं है। यदि माता पिता की आज्ञा न मानें तो मेरा जन्म होना ही निष्फल हो जायगा। तुम्हें आज्ञा है नहीं। तुम माता पिता की सेवा छोड़कर जन्म को व्यर्थ क्यों करते हो !

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई । करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं । राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं ॥१॥

अर्थ : हे भाई ! ऐसा मन में समझकर मेरी शिक्षा सुनो । माता पिता के चरणों की सेवा करो । भरत शत्रुघ्न नहीं हैं । महाराज वृद्ध हुए । तिस पर उनके मन में मेरा दुःख है ।

व्याख्या : तुम भाई हो । स्त्री की दूसरी बात है । उसका धर्म मेरी सेवा है । उसने मेरी शिक्षा यदि नहीं सुनो चलने के लिए हठ किया तो उसके धर्मानुकूल था । तुम्हारा धर्म तो माता पिता की सेवा है । उनके सामने भाई की क्या गिनती है । तुम उनकी सेवा करो । यदि भरत शत्रुघ्न घर होते तो भी एक बात थी कि वे माता पिता की सेवा कर लेंगे और राज्य भी सँभाल लेंगे । सो वे भी घर नहीं हैं । यदि कहो कि महाराज तो हई हैं उन्हें सेवकों का क्या घाटा है ? तो यह बात भी नहीं । महाराज वृद्ध हुए । अब उनका किया कुछ हो नहीं सकता । तिस पर मेरे लिए वे दुःखी हैं । उनसे कुछ करने धरने की आशा नहीं की जा सकती । इस दुःख की अवस्था में सेवकों से उनको सान्त्वना नहीं हो सकती । तुम्हारे पास रहने से ही उन्हें ढाँढ़स बँध सकता है ।

मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा । होइ सबहि बिधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू । सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू ॥२॥

अर्थ : यदि मैं तुम्हें साथ लेकर वन चला जाऊँ तो सब प्रकार से अवध अनाथ हो जायगा । गुरु पिता माता और कुटुम्ब सभी पर न सहने योग्य दुःख का बोझा आ पड़ेगा ।

व्याख्या : सीताजी के साथ ले जाने से अवध अनाथ न होगा । इस समय मेरे ही जाने से अवध के लोग अपने को अनाथ समझेंगे । यदि तुम साथ चले तब तो अवधनाथ के रहते भी प्रजा अपने को सब विधि से अनाथ समझेगी । तुम्हारे रहने से सबको ढाढ़स बँधा रहेगा कि कम से कम लक्ष्मण तो हैं । सब सँभालेंगे । गुरु पिता और माता राज्यरक्षक और प्रजा तथा परिवार रक्ष्य हैं । सो सब पर नहीं सहने योग्य दुःख का बोझा आ पड़ेगा । मैं तुम्हें दुःख का बोझा सँभालने के लिए यहाँ छोड़ता हूँ । जिसमें इन लोगों को जिनके ऊपर दुःख का आना किसी प्रकार इष्ट नहीं है असह्य दुःख न आ पड़े ।

रहहु करहु सब कर परितोषू । नतरु तात होइहि बड़ दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥३॥

अर्थ : तुम घर रहो । सबका परितोष करो । नहीं तो भाई तुम्हें बड़ा दोष लगेगा । जिसके राज्य में प्रिय प्रजा दुःखी होती है वह राजा निश्चय नरक का पात्र हो जाता है ।

व्याख्या : इसलिए तुम्हारा साथ चलना किसी प्रकार से उचित नहीं है। तुम घर रहो और सबका परितोष करो। यदि तुमने ऐसा न किया तो बड़ा भारी दोष होगा। सबके दुःख के कम करने का सामर्थ्य रहते हुए भी जो दूर नहीं करता केवल मोह के वश यथेच्छाचरण करता है वह निश्चय दोषी है। हे भाई! तुम व्यर्थ दोषी क्यों बनते हो? दूसरी सबसे बड़ी बात यह है कि जो नरक से पिता की रक्षा करे वही पुत्र है। जो ऐसा नहीं करता वह पुत्र कैसा? अरक्षित होकर प्रजा के दुःखी होने का पाप महाराज पर पड़ेगा। क्योंकि राजा वे ही हैं। उनका परलोक यदि हम लोगों के रहते बिगड़ा तो हम लोगों का पुत्र होना ही व्यर्थ हो जायगा। रञ्जनात् राजा। राजा शब्द का अर्थ ही यह है कि प्रजा को सुख देने-वाला। सो हम लोगों के रहते महाराज की गणना शोचनीयों में नहीं होने पावे। यथा : सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भये ब्याकुल भारी॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसें। परसतु तुहिन तामरसु जैसें॥४॥

अर्थ : ऐसी नीति बिचार करके तुम घर पर रह जाओ। सुनते ही लक्ष्मणजी भारी व्याकुल हुए। शीतल वाणी से ऐसे सूख गये जैसे पाला के छू जाने से कमल सूख जाता है।

व्याख्या : हे भाई! नीति का विरोध नहीं करना चाहिए। नीति विरोध सोहाय न मोहीं। अतः न चाहते हुए भी नीति का विचार करके घर रह जाओ। सुनते ही लक्ष्मणजी अत्यन्त व्याकुल हो उठे। पहिले ही : ब्याकुल बिलखि बदन उठि धाये। अब तो भारी व्याकुल हुए। सरकार के शीतल वचन सुनकर वे तो सूख गये कि वही बात तो हुई जिसे मैं डरता था। श्रीगोस्वामीजी उपमा देते हैं कि जैसे शीतल पाला के स्पर्श से कमल सूख जाता है। भाव यह कि लक्ष्मणजी भी चक्रवर्तीजी की भाँति विवर्ण हो गये।

दो. उतरु न आवत प्रेम बस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मइँ स्वामि तुम्ह, तजहु त काह बसाइ॥७१॥

अर्थ : उत्तर रहते हुए भी प्रेम के वश हो जाने से देते नहीं बनता। आकुल होकर चरण पकड़ लिया : कहने लगे कि : नाथ! मैं दास हूँ। आप स्वामी हैं। यदि त्याग दें तो मेरा वश क्या है।

व्याख्या : जितनी बातें सरकार ने कहीं लक्ष्मणजी के पास सबके उत्तर हैं। पर लक्ष्मणजी प्रेम के पराधीन हो गये हैं। देना चाहने पर भी देने में असमर्थ हैं। पहिले : गहे चरन अति प्रेम अधीरा। अब : गहे चरन अकुलाइ। विरह निश्चित मालूम होता है। अतः व्याकुल हैं। चुप रह जाने से स्वीकृति द्योतित होती है। अतः दो शब्दों में जो कुछ कहना था सब कह दिया। आप स्वामी हैं। मैं दास हूँ। यदि त्याग करें तो क्या वस है। भाव यह कि आप बारबार भाई कहते हैं और

भाई को जैसी शिक्षा देनी चाहिए वैसी शिक्षा देते हैं। पर मैं तो दास हूँ। बारहिं ते निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी। आप स्वामी हैं। स्वामी को दास के परित्याग का अधिकार है। यदि आप त्याग करते हैं तो मेरा कौन जोर है। ये सब कही हुई बातें मेरे चलने में बाधक नहीं हैं। आपकी आज्ञा बाधक है।

जिस भाँति ज्ञान और उपासना : भक्ति की समस्या पर उत्तरकाण्ड में विचार है उसी भाँति कर्म और भक्ति की समस्या पर यहाँ प्रकाश डाला गया है।

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥
नर बर धीर धरम धुरधारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी॥१॥

अर्थ : गोसाईं ने तो मुझे अच्छी शिक्षा दी। पर अपनी कायरता से मुझे अगम जान पड़ती है। जो धीर धर्म की धुरा के धारण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष हैं वे हो वैदिक नीति के अधिकारी हैं।

व्याख्या : अब लक्ष्मणजी प्रत्येक बातों के विषय में कुछ कहेंगे। क्योंकि वे सब उन्हें स्वीकार नहीं हैं। लक्ष्मणजी कहते हैं कि सरकार की शिक्षा बड़ी पवित्र बड़े उदार भाव की तथा सुगम है। पर मैं उसका अधिकारी नहीं। मुझसे ऐसा हो नहीं सकता। परिणाम में उछाह होगा। इस भरोसे मुझसे यह दुःख नहीं सहा जायगा। मुझमें साहस की बड़ी कमी है। मैं कायर हूँ। यह विनय : तात प्रेम बस जनि कदराहू के उत्तर में है।

इसके बाद : मातु गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहि सुभाय इत्यादि के उत्तर में कहते हैं कि सरकार ने वैदिकी नीति का वर्णन किया जिससे जन्म सफल होता है। मैं उसका भी अधिकारी नहीं। धीर पुरुष जो धर्म की धुरा के धारण में समर्थ हैं वे ही वैदिकी नीति के अधिकारी हैं।

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥२॥

अर्थ : मैं तो बच्चा हूँ। सरकार के प्रेम से पला हूँ। क्या हंस मन्दर मेरु उठा सकता है। मैं गुरु पिता माता किसी को नहीं जानता। मैं स्वभाव कहता हूँ नाथ विश्वास करें।

व्याख्या : सरकार जानते हैं कि मैं भी शिशु ही हूँ। संसार के प्रपञ्च से अपरिचित हूँ। सरकार ने कहा भी है : सूध दूध मुख करिय न कोहू। कमल के पत्ते पर बैठनेवाले हंस में इतना सामर्थ्य कहाँ कि मन्दर मेरु को उठा सके। मुझे तो सरकार ने स्नेह से पाला है। कभी कोई बोझा मेरे ऊपर आने ही नहीं दिया। मैं मेरु मन्दर सदृश गुरु भारवाले निगम धर्म को कैसे उठा सकता हूँ ? यह मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। मैं अवध को सनाथ नहीं कर सकता।

अब : गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परइ दुसह दुख भारू आदि का उत्तर देते हुए लक्ष्मणजी कहते हैं कि मैं गुरु पिता माता किसी को नहीं जानता। मैं अपने हृदय का भाव कहता हूँ। सरकार विश्वास करें। भाव यह कि सबकी ममता का तागा इकट्ठा करके लक्ष्मणजी डोरी बरकर सरकार के चरणों में दृढ़ता के साथ बाँध चुके हैं। अतः कहते हैं :

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी ॥३॥

अर्थ : जगत् में जितने नेह और नाते हैं और स्वयं वेद ने जिस प्रीति और प्रतीति का गान किया है। हे स्वामी दीनबन्धु, उर प्रेरक ! मेरे तो सब कुछ आप ही हैं।

व्याख्या : त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव। यह भाव मुझे स्वभावसिद्ध है। अतः मेरे सर्वस्व आप ही हैं। मैं बिना आपके दीन हूँ। आप दीनबन्धु हैं। अपना साथ न छोड़ाइये। आप स्वामी हैं। नाथ हैं। मुझे अनाथ न कीजिये। आप अन्तर्यामी हैं। बिना आपकी प्रेरणा मेरी बुद्धि ऐसी हुई कैसे ?

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ॥४॥

अर्थ : धर्म नीति उसे उपदेश करना चाहिए। जिसे कीर्ति ऐश्वर्य और सद्‌गति प्रिय हो। मनसा वाचा कर्मणा जो चरण में रत हो हे कृपासिन्धु ! क्या उसे छोड़ा जाता है ?

व्याख्या : रहहु करहु सबकर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू इत्यादि का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मुझे न कीर्ति चाहिए न ऐश्वर्य चाहिए और न शुभगति चाहिए। जिन्हें इन सब वस्तुओं की अपेक्षा हो उन्हें धर्म नीति का उपदेश उचित है। यहाँ तो : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू सिद्धान्त है। मैं तो मनसा वाचा कर्मणा सरकार का दास हूँ। मेरे छोड़ने का तो प्रश्न ही नहीं उठाना चाहिए।

दो करुनासिंधु सुबंधु के, सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत ॥७२॥

अर्थ : करुणासिन्धु रामजी ने सुबन्धु के कोमल और विनीत वचन सुनकर स्नेह से डरा हुआ जानकर हृदय में लगाकर समझाया।

व्याख्या : रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भये ब्याकुल भारी। लक्ष्मणजी की व्याकुलता देखकर करुणासिन्धु प्रभु ने जाना कि यह सुबन्धु है।

स्नेह से सभीत हो गया। अतः व्याकुलता मिटाने के लिए कलेजे से लगा लिया और समझाया। यथा :

सवैया : तुम्हरोइ भरोस हमेस हमें तुमही मम जीवन को रखवारे।
तजि देह सकौं न सकौं तजि तोहि तुही विजयानँद प्रान पियारे।।
मन में न धरो कछु हानि गलानि करैं हम सोइ जोई निरधारे।
यह प्रेम को नेम न टारे टरै हम भक्तन के अरु भक्त हमारे।।
पाँख पखेरुन को प्रिय ज्यौं फनि को मनिज्यौं करिको कर जैसे।
तू प्रिय मोहि तथा विजयानंद आनत क्यों उर ख्याल अनैसे।।
देखि दुखी परिवार कह्यो सो यथा रुचि तात करौ तुम तैसे।
वाम तजौ धन धाम तजौ वरु प्रान तजौं मैं तजौ तोहि कैसे।।

माँगहुँ बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई।।
मुदित भये सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बढ़ गइ बड़ि हानी।।१।।

अर्थ : हे भाई ! माताजी से विदा माँगो। जल्दी आओ और वन चलो। रामजी की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये। बड़ा भारी लाभ हुआ और बड़ी भारी हानि दूर हुई।

व्याख्या : रामजी के पास : मन क्रम बचन चरन रति होई। कृपा सिंधु परिहरिअ कि सोई का उत्तर नहीं था। अतः कहा कि मेरी ओर से अब रोक नहीं है। यदि माता आज्ञा दे दे। माता की आज्ञा सर्वोपरि है। वेद ने पहिले : मातृदेवो भव कहा। पितृदेवो भव पीछे कहा। यति पिता से भी वन्द्य है पर उसे भी माता की वन्दना का विधान है। पर सुमित्रा माता आज्ञा दे देंगी। तुम जाओ उनसे आज्ञा माँगो और वन चलने के लिए जल्दी करो। सरकार को वन जाने की बड़ी जल्दी है। माता ने कहा है : होत प्रातु मुनि बेष धरि जौं न राम बन जाहिं इत्यादि। अतः सीताजी से भी कहा : वेगि करहु बन गवन समाजू।

वन गमन का समाचार सुनकर व्याकुल हो गये थे। सो सरकार की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये। क्योंकि बड़ा भारी लाभ हुआ और बड़ी भारी हानि गयी। सरकार की सेवा : भक्ति ही लाभ की पराकाष्ठा है और सेवा न करना ही बड़ी भारी हानि है। यथा : लाभ कि कछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना। हानि कि कछु एहि सम जग भाई। भजिअ न रामहिं नर तनु पाई। अतः लक्ष्मण जी प्रसन्न हो उठे।

हरषित हृदय मातु पहिं आए। मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाए।।
जाइ जननि पग नायेउ माथा। मनु रघुनंदनु जानकि साथा।।२।।

अर्थ : प्रसन्न मन से माता के पास आये। मानो अन्धे को फिर से आँख मिल गयी। जाकर माता के चरणों में सिर नवाया। परन्तु मन तो रामजानकी के साथ था।

व्याख्या : जन्मान्ध को अन्धेपन का दुःख नहीं होता : जन्मान्ध को यदि आँख मिल जाय तो वह बड़ी विपत्ति में पड़ता है। इतना बड़ा संसार उसके सामने आ जाता है। उसके समझ में नहीं आता कि यह क्या है ? कई महीने की शिक्षा के बाद उसे बन्द दरवाजा और खुले दरवाजा का भेद मालूम होता है। रंग पहिचानने में महीनों लग जाते हैं। उसे आँख मिलने से आनन्द नहीं होता। आनन्द तो उसको होता है जो बीच में अन्धा हो जाता है और फिर आँख हो जाती है। लक्ष्मणजी को राम जानकी दोनों आँखों की भाँति थे। उनके विरह में अन्धे से हो गये थे। सूझ नहीं पड़ता था कि क्या होनेवाला है। जब सरकार ने साथ वन चलने को कहा तो मानो गयी हुई आँखें फिर मिल गयीं। ऐसी प्रसन्नता हुई। उसी खुशी से माँ के पास आये।

जाकर माँ को प्रणाम किया। पर मन उड़ा हुआ था। वह तो राम जानकी के साथ था। मन दूसरी जगह है। प्रणाम दूसरी जगह हो रहा है। रसम की तामीली मात्र हो रही है।

पूछे मातु मलिन मनु देखी। लषन कही सब कथा बिसेखी ॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा ॥३॥

अर्थ : मलिन मन देखकर माता ने पूछा। तब लक्ष्मणजी ने सब विशेष कथा कह सुनायी। कठोर वचन सुनकर। माँ सहम गयी। जैसे चारों ओर वन में आग लगी हुई देखकर मृगी घबड़ा जाय।

व्याख्या : चित्त के मल से ही मन मलिन होता है ऐसी बात नहीं है। चित्त के विक्षेप से भी मन मलिन होता है। जैसे चञ्चल जल प्रतिबिम्ब के स्पष्ट ग्रहण में असमर्थ होता है। यद्यपि लक्ष्मणजी प्रसन्न थे। पर माँ है उसने आभ्यन्तर चञ्चलता को देखा। जिसका कारण सरकार का वन जाना था। तब माता ने पूछा कि क्या बात है ? रामजी के अभिषेक की बात तो माँ जानती ही थी। रात में कैकेयी के वरदान माँगनेवाली ही कथा विशेष थी। उसे लक्ष्मण ने कह सुनाया।

उस कठोर वचन को सुनकर एक बार तो माता सुमित्रा की वही दशा हो गयी जो महाराज की हुई थी। यथा : गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जिमि सचान बन झपटेउ लावा। माता सहम गयी। कुछ कहते सुनते न बना। उसे चारों ओर आग ही आग दिखायी पड़ी। १. पति वियोग २. पुत्र वियोग ३. राम सीता वियोग और ४. राज्य नाश। उसकी वही दशा हुई जो चारों ओर वन में आग देखकर मृगी को हो जाती है। बिधि कैकयी किरातनि कीन्हीं। जिन दव दुसह दसहु दिसि दीन्हीं।

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू ॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं ॥४॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने लखा कि आज अनर्थ हुआ। यह प्रेम के वश होकर काम

बिगाड़ेगी। विदा माँगने में भय के साथ सङ्कोच होता था कि हे विधाता ! साथ जाने को कहेगी या नहीं।

व्याख्या : लक्ष्मणजी को साथ जाना है। इसलिए विदा माँगने आये हैं। पर माता की अवस्था देखकर विदा माँगने में सङ्कोच हो रहा है। कैसे विदा माँगें ? इसकी दशा तो बहुत खराब हो गयी। विदा माँगने में डर भी लगता है कि कहीं नहीं न कह बैठें। फिर रामजी साथ न ले जायँगे। विश्वामित्र यज्ञ रक्षा में जब मैं सरकार के साथ गया तब इसने नहीं रोका था। आज की बात कुछ दूसरी दिखायी पड़ती है। यह प्रेम के वश मुझे रोकना चाहती है और इसने यदि रोका तो अनर्थ हो गया। मेरा तो सब सुख सुकृत ही समाप्त हो जायगा।

दो. समुझि सुमित्रा राम सिय, रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिरु, पापिनि दीन्हि कुदाउ ॥७३॥

अर्थ : सुमित्राजी ने राम जानकी के रूप शील और स्वभाव को स्मरण करके और चक्रवर्तीजी के प्रेम को लख करके सिर पीटने लगीं कि पापिनी ने भारी दगा दिया।

व्याख्या : सुमित्राजी ने राम जानकी के वनवास को सुनकर उनके रूप शील और स्वभाव का स्मरण किया कि ऐसे बेटे का वन भेजना क्या सामान्य बात है। फिर चक्रवर्तीजी के प्रेम पर दृष्टि डाला तो यही मालूम हुआ कि महाराज तो प्राण ही छोड़ देंगे। अतः अति व्याकुलता में सिर पीटने लगी। बोल उठी कि कैकेयी पापिनी है। इसके हृदय में बड़ा कपट था और सदा उसे छिपाये रही। मुँह से : भरत न मोहि प्रिय राम समाना कहती थी। सदा सबसे प्रेम से मिलती थी। यथा : कबहुँ न कियेउ सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू। इसीसे महाराज ने धोखा खाया। यथा : सिर धुनि लीन्ह उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ।

धीरजु धरेउ कुअवसरु जानी। सहस सुहृद बोली मृदुबानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥१॥

अर्थ : कुअवसर जानकर धैर्य धारण किया। सुमित्राजी स्वभाव से ही सुहृद थीं। अतः मीठे वचन कहे। हे तात ! तुम्हारी तो माता जानकी है और सब भाँति स्नेह करनेवाले रामजी पिता हैं।

व्याख्या : आपत काल परिखिये चारी। धीरज धर्म मित्र अरु नारी। सो सुमित्राजी ने धैर्य धारण किया। सच्ची भलाई लक्ष्मणजी की देखी। लड़का रामजी की सेवा से वञ्चित हो जायगा ऐसा समझकर मीठे शब्दों में बोलीं। स्वभाव से सुहृद थीं। अतः रामजी के सम्मुख होते देखकर सहायक हुईं : जरउ सो संपति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो राम पद करइ न सहस सहाइ।

लक्ष्मणजी विदा माँगने से सभीत और सङ्कुचित हो रहे हैं। इस बात को लख लिया। अतः उनके बिना कुछ कहे ही कहती हैं कि तुम्हारी माता तो जानकी

और पिता रामजी हैं। तुमने सदा हो ऐसी भावना की है ओर वे भी तुम्हें प्राण समान प्यारा मानते हैं। यथा : पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे। तुम मुझसे आज्ञा माँगने क्यों आये ? उन्हीं से आज्ञा माँग लेना था।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥
जौं पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥२॥

अर्थ : जहाँ राम रहें वही अयोध्या है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वही दिन है। यदि राम जानकी वन जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कोई काम नहीं है।

व्याख्या : कहती है कि जिस भाँति राम जानकी पिता माता हैं उसी प्रकार जहाँ वे रहें वही अयोध्या है। यदि वे वन में रहें तो वन ही अयोध्या है। बिना राम के अयोध्या कैसी। यथा : लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी। उपमा देती हैं कि जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वही दिन है। प्रकाश तो चन्द्र से भी होता है। अग्नि से भी होता है। पर दिन नहीं हो जाता। यथा : राका ससि षोड़श उवहिं तारागन समुदाइ। सकल गिरिन्ह दव लाइये बिनु रबि रात न जाइ। दिन तो सूर्य के प्रकाश से ही होता है। भाव यह कि रामजी के चले जाने से अवध का आनन्द चला जायगा और उनके बसने से जङ्गल में मङ्गल होगा। यथा : राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा इत्यादि।

यदि सीता राम वन जाते हैं तो तुम यहाँ रहकर क्या करोगे। अवध उजाड़ हो जायगा। तुम्हारे बसाये नहीं बसेगा। माँ जानती हैं कि बिना राम जानकी के यह जी नहीं सकता। लक्ष्मणजी के रख लेने पर कटुता बढ़ जाने की आशङ्का थी। अतः कहते हैं कि अवध तुम्हार काज कछु नांही। तुम्हारे रामजी के साथ रहने में ही कुशल है।

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ॥
रामु प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथरहित सखा सबही के ॥३॥

अर्थ : गुरु पिता माता बन्धु देवता और स्वामी इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। राम तो प्राण से भी प्यारे हैं। प्राण के प्राण हैं और सबके स्वार्थ रहित सखा हैं।

व्याख्या : शरीर में पाँच प्राण हैं। प्राण अपान व्यान समान और उदान उसी भाँति पाँच बहिश्चर प्राण हैं : गुरु पिता माता भाई और स्वामी। अतः इनकी सेवा भी प्राण की भाँति ही करनी चाहिए। परन्तु रामजी तो प्राण के भी प्राण हैं। अतः प्राण से भी प्यारे हैं और सभी के स्वार्थ रहित सखा हैं। ईश्वर का जीव से स्वार्थ रहित सख्य है। द्वासुपर्णा सयुजा सखाया इत्यादि श्रुति प्रमाण है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। अतः इन बहिश्चर प्राणों की उपेक्षा करके भी राम जानकी की सेवा करनी चाहिए।

माता लक्ष्मणजी के सब प्रकार के भय और सङ्कोच का निराकरण करती

हैं। राम जानकी को माता पिता बतलाकर उनके निवास को अयोध्या बतलाकर भय दूर करती हैं और गुरु पिता माता भाई और देवता यद्यपि ये पाँचों बहिश्चर प्राण की भाँति हैं। पर इन्हें भी प्राण के प्राण स्वामी राम के लिए छोड़ा जा सकता है। यह कहकर सङ्कोच को दूर करती हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहि राम के नातें ॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू ॥४॥

अर्थ : जहाँ तक पूज्य और परम प्रिय हैं सबको राम के नाते से मानना चाहिए। ऐसा मनमें समझकर उनके संग वन जाओ और बेटा ! संसार में जीने का लाभ उठाओ।

व्याख्या : यदि राम से नाता है तभी पूज्य पूज्य हैं और प्रिय प्रिय हैं। यदि राम से नाता नहीं तो वे पूज्य भी नहीं प्रिय भी नहीं। उनका त्याग ही हितकर है। यथा : जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही। ऐसा मनमें निश्चय करके निश्चिन्त होकर वन में जाओ और अपने जीवन को सफल बनाओ। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मनु लावा।

दो. भूरि भाग भाजनु भयेउ, मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मनु छाँड़ि छलु, कीन्ह राम पद ठाउँ ॥७४॥

अर्थ : यदि तुम्हारे मन ने छल छोड़कर रामजी के चरणों का आश्रय किया तो मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ। तुम तो हुए ही तुम्हारे साथ मैं भी बड़ी भाग्यवती हो गयी।

व्याख्या : जब तक राज्य की आशा थी तब तक रामजी के सेवन में स्वार्थ की भी सम्भावना थी। अब तो राज्य की कोई आशा नहीं। उलटा वन जाना पड़ा। इसी समय की सेवा सच्ची सेवा है। जिसमें स्वार्थ की गन्ध नहीं है ऐसे समय में रामचरणों का आश्रय करना अहोभाग्य है। सो तुम महाभाग्यवान् हुए और मुझे भी महाभाग्यवती बनाया। आज तुम्हारे होने से मैं भी परम भाग्यवती हुई।

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी ॥१॥

अर्थ : वही युवती पुत्रवाली होती हैं जिसका बेटा रघुपति का भक्त हो। नहीं तो वन्ध्या भली। राम विरोधी बेटे से भलाई समझकर उसने व्यर्थ पुत्र उत्पन्न किया।

व्याख्या : पुत्रवती कहने का भाव यह कि अल्पवयस्का या वृद्धा में प्रसव की योग्यता नहीं। युवती ही पुत्र उत्पन्न करती हैं और उनसे भलाई की आशा रखती हैं। ऐसी युवतियों से संसार भरा पड़ा है। फिर भी वे सब पुत्रवती नहीं हैं। पुंनाम नरक का है। उससे जो माँ बाप की रक्षा करे वही पुत्र है। अतः पुत्रवाली युवतियाँ वे

ही हैं जिनके बेटे रामभक्त हैं। जो रामभक्त नहीं हैं : तिनते खर सूकर स्वान भले जड़ता बसते न कहैं कछु वै। तुलसी जेहि राम ते नेह नहीं सो सही पसु पूछ विषान न द्वै। जननी भरिभार मुई दस मास भई किन बाँझ गई किन च्वै। जरि जाउ सो जीवन जानकी नाथ जियैं जग में तुम्हरो बिनु ह्वै।

यद्यपि माता नहीं जानती कि पुत्र कैसा होगा और न उसके जानने का पुत्र जनन में कोई उपयोग है। तथापि माता को बेटे से बहुत कुछ आशा होती है। सो अपने जनने को वह व्यर्थ नहीं मानती। पर वस्तुतः उसने पशु उत्पन्न किया। इसलिए कवि बियानी शब्द का प्रयोग करते हैं। वह उसका मनुष्य सा रूप देखकर भूली हुई है। पर सब मनुष्याकारवालों में मनुष्यता नहीं होती। आहार निद्रा भय मैथुन में मनुष्यता नहीं है। क्योंकि यह तो पशु में भी होता है। मनुष्यता तो धर्म में है और धर्म का साफल्य भगवद् भजन में है, अतः धर्महीन मनुष्य पशु के समान है। इस भाँति माता सुमित्रा लक्ष्मणजी को भगवद्भक्त देखकर अपने को पुत्रवती मान रही है। इसीलिए कहा : भूरिभाग भाजन भयेउ मोहि समेत बलिजाउँ इत्यादि।

तुम्हरेहि भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥२॥

अर्थ : बेटा ! तुम्हारे ही भाग्य से रामजी वन जा रहे हैं। दूसरा कोई कारण नहीं है। राम जानकी के चरणों में स्नेह होना सब पुण्यों का बड़ा फल यही है।

व्याख्या : यशोधन के कुटुम्ब में यश से ही भाग्य का निर्णय होता है। रामजी का साथ देने से यश तुम्हारे हाथ लगेगा और सेवा का ऐसा सुअवसर भी तुम्हें कभी न मिलता। अतः रामजी के वन जाने में प्रधान कारण तुम्हारा है। दूसरे कारण गौण हैं। नहीं तो कैकेयी के मनोरथ की पूर्ति तो भरत के राज्य मिलने से ही हो जाती। जो रामजी को भी इष्ट ही था। भरत के राज्य से राम वनवास का कौन सम्बन्ध ? अतः तुम्हारा भाग्य ही कारण है।

लौकिक सुख स्वर्ग और मोक्ष सुकृत के ही फल हैं जिसमें पूर्व पूर्व से उत्तरोत्तर बड़े हैं। पर सब सुकृतों का बड़ा फल तो रामजानकी के चरणों में स्वाभाविक स्नेह है। यथा : जहँ लगि साधन वेद बखानो। सबकर फल हरि भगति भवानी। आगे भरत जी भी कहेंगे : अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंद अनुरागी। माता को रामजी के स्वरूप का यथार्थ बोध है। अतः सेवा धर्म की दृढ़ता के लिए उपदेश दे रही है।

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥३॥

अर्थ : राग द्वेष ईर्ष्या मद और मोह के वश में सपने में भी न होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग करके मनसा वाचा कर्मणा सेवा करना।

व्याख्या : रागद्वेष दि छवों रिपु हैं। इनके वश में पड़ने से उसी भाँति कल्याण की हानि होती है जिस भाँति शत्रु के वश में पड़ जानेवाले को होती है। अथवा ये पाँच भक्ति के बाधक हैं इनसे बहुत बचना। गृह के प्रति राग, कैकेयी के प्रति रोष, भरत के प्रति ईर्ष्या, अपने गुणों के प्रति मद और रामजी के प्रति मोह को हृदय में स्थान न देना अर्थात् स्वप्न में भी इनके वश न होना।

मन में विकारों को स्थान देने से रामभक्ति के लिए स्थान नहीं रह जाता। ये ही सब सेवा धर्म में छल है और : भानु पीठ सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी। अतः मनसा वाचा कर्मणा सेवा करना।

तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू ॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥४॥

अर्थ : तुमको तो वन में सब प्रकार का सुभीता है। जिसके साथ सीता और राम माँ बाप हैं। जैसे रामजी को वन में क्लेश न हो वैसा ही करना। बेटा! मेरा यही उपदेश है।

व्याख्या : तुम्हारे सुभीते के लिए कुछ कहना नहीं है। तुम्हारे माता पिता राम जानकी तुम्हारे साथ जा रहे हैं। वे स्वयं तुम्हारे सुभीते के लिए कुछ उठा न रक्खेंगे। यथा : जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे। अतः तुम अपनी चिन्ता न करना और न अपने कष्ट को कष्ट गिनना। तुम यह ध्यान रखना कि रामजी को वन में कष्ट न हो। मेरा इतना ही उपदेश है।

छं. उपदेसु येहु जेहिं तात तुम्हरें रामु सिय सुखु पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ॥

अर्थ : बेटा! यही उपदेश है कि तुम्हारे रामजानकी ऐसा सुख पावें कि उन्हें पिता माता प्रिय परिवार और नगर का सुख भूल जाय। तुलसीदासजी कहते हैं कि बेटे को शिक्षा दी। पश्चात् आज्ञा दी और आशीर्वाद दिया कि तुम्हें रामजी के चरणों में दिनदिन अविरल और निर्मल प्रीति हो।

व्याख्या : भक्ति के तीन दर्जे हैं : १. तस्यैवाहम् २. ममैवासौ और ३. स एवाहम् इति त्रिधा। प्रारम्भ में भक्त तदीय होते हैं। उनकी भावना होती है कि मैं सरकार का हूँ। दृढ़ता अधिक होने से वही भावना ममैवासौ के रूप में बदल जाती है तब भक्त की भावना हो जाती है कि सरकार हमारे हैं। स एवाहम् के सन्निकट में भक्तिवाले नहीं जाते। माता जानती है कि लक्ष्मणजी की ममैवासौ भावना है। इसलिए कहती है : तुम्हारे रामसिय। माता उपदेश देती है कि ऐसी सेवा करना कि जिसमें रामजानकी को पिता माता प्रिय परिवार और नगर का

सुख याद न पड़े। ऐसा उपदेश देकर आज्ञा दी कि तुम भी साथ में वन जाओ। तत्पश्चात् प्रेमाभक्ति प्राप्ति के लिए आशीर्वाद दिया।

दो. मातु चरन सिरु नाइ, चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ, मनहु भाग मृगु भाग बस ॥७५॥

अर्थ : माता के चरण में सिर नवाकर डरते हुए निकल भागे। जैसे कठिन जाल को तोड़कर भाग्यवश मृगा भाग जाय।

व्याख्या : जब माता ने प्रसन्नता से वन में बरताव करने का उपदेश, जाने की आज्ञा, भक्ति का आशीर्वाद दिया तब शङ्कित हृदय से निकल भागने का अर्थ क्या ? उत्तर यही है कि समाचार पाकर कहीं भगवती उर्मिला न आजायँ और सीताजी की भाँति वन जाने के लिए मचल न पड़ें। अतः भगवती उर्मिला के आ जाने की शङ्का से शङ्कित हैं। इसीलिए कठिन जाल में फँसे हुए मृग का देवात् जाल तोड़कर निकल भागने से उपमा दिया। कठिन जाल माँ नहीं होती स्त्री होती है और इसीलिए सरकार ने अकेले लक्ष्मणजी को भेजा। आप विदा होने के साथ नहीं गये। पर भगवती उर्मिला चुप रह गयी। उनके चुप रह जाने में जितने भाव निकलते हैं कुछ भी कह देने से वह बात नहीं आती। यदि लक्ष्मणजी को वनवास मिला होता तो भगवती उर्मिला किसी के रोके न रुकतीं। पर वन तो मिला रामजी को। लक्ष्मणजी तो अपनी इच्छा से सेवा के लिए साथ जा रहे हैं। अतः उनके सेवा धर्म में विघ्नाचरण नहीं किया।

## १३. वनगमन : केवट अनुराग प्रसङ्ग

गये लखनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥
बंदि राम सिय चरन सुहाए। चले संग नृप मंदिर आए ॥१॥

अर्थ : लक्ष्मणजी वहाँ गये जहाँ जानकीनाथ थे। प्रिय साथ पाकर प्रसन्न मन हुए। रामजानकी के सुन्दर चरणों की वन्दना करके साथ चल पड़े और महाराज के महल में आये।

व्याख्या : सरकार जानकीजी के साथ धीरे धीरे चले जा रहे हैं। जहाँ से लक्ष्मणजी को माता के पास भेजा था वहाँ से आगे बढ़ गये हैं। अतः कवि लिखते हैं कि जहाँ जानकीनाथ थे वहाँ गये। साथ मिल गया। प्रिय का साथ ही सब आनन्दों में अधिक है। माता के और स्त्री के छोड़ने में दुःख का लेश भी नहीं है। प्रिय के साथ हो जाने की प्रसन्नता है।

जाकर रामजानकी के सुन्दर चरणों की वन्दना की और साथ हो लिये। इतना ही इस सूचना के लिए पर्याप्त था कि आज्ञा मिल गयी। यहाँ नृपमन्दिर से अभिप्राय उस महल से है जिसमें महाराज उस समय विद्यमान थे। अर्थात् महारानी कैकेयी के महल में, नहीं तो सभी रानियों के महल नृपमन्दिर हैं।

कहहिं परसपर पुर नर नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥
तन कृस मन दुखु बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥२॥

अर्थ : पुर नरनारी आपस में कहते हैं कि विधाता ने बात अच्छी बनाकर बिगाड़ दी। उनके शरीर कृश हो गये। मन में दुःख है। चेहरा उदास है। ऐसे विकल हैं जैसे शहद के छिन जाने से मक्खियाँ विकल हो जाती हैं।

व्याख्या : जिस प्रसङ्ग को : अति बिषाद बस लोग लोगाई कहकर छोड़ा था उसी को उठाते हैं। जब महाराज के महल से कौसल्याजी के महल की ओर चले थे उस समय प्रजावर्ग का विषाद कहा था। अब कौसल्याजी के महल से जानकी और लक्ष्मणजी के साथ कैकेयी के महल में जा रहे हैं। उस समय के प्रजावर्ग के विषाद का वर्णन करते हैं। तीनों मूर्तियों को साथ देखकर नर नारी आपस में कहते हैं कि विधाता ने कैसी अच्छी बात बना रक्खी थी कि वैसी बात कहीं देखने में नहीं आती। सो जैसी अच्छी बात बनी थी वैसी ही बिगड़ गयी। यह भी विधाता ने ही बिगाड़ा। एक को वन दिया गया। सो तीन चले।

विषाद अतिमात्रा में है। उसका प्रभाव शरीर पर ऐसा पड़ा कि घण्टों और मिनटों में शरीर दुबले पड़ गये। कारण कहते हैं कि सबके मन में दुःख है। सबका चेहरा उदास है। सब ऐसे विकल हैं जैसे किराती ने मधु के छत्ते में से मधु निकाल लिया हो और मधु की मक्खियों ने देख न पाया हो कि किसने मधु छीन लिया। पहिले ही कह आये हैं : देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकइ लेउँ केहि भाँती। सो उसने ले ही लिया। रामराज्याभिषेक रूपी मधु छिन गया। अब प्रजावर्ग मधुमक्खियों की भाँति विकल होकर इधर उधर भनभना रहा है।

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषादु अपारा ॥३॥

अर्थ : हाथ मीजते हैं। सिर पीटकर पछताते हैं। जैसे बिना पंख का पक्षी व्याकुल होता है। राजा के द्वार पर बड़ी भीड़ हुई। अपार विषाद का वर्णन नहीं किया जा सकता।

व्याख्या : सामान्य लोगों का हाल कहकर अब बड़े बड़ों का हाल कहते हैं। छोटों की उपमा मक्खी से दी। अब बड़ों की उपमा पक्षियों से देते हैं। ये हाथ मीजते हैं। सामर्थ्य रहते हुए कुछ कर नहीं सकते। शोकावेग में सिर पीटते हैं। बड़ा भारी अनिष्ट हुआ इसलिए पछताते हैं। बिना पंख के पक्षी की भाँति अगतिक होकर आकुल हो रहे हैं कि अब जीवन यापन कैसे होगा ?

दरबार शब्द का प्रयोग मानस में राजद्वार के अर्थ में देखा जाता है। यथा : करि मज्जन सरयू जल गये भूप दरबार। तथा : गयउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपद कंज इत्यादि। सब लोगों का महल के भीतर प्रवेश नहीं है। अतः राजद्वार

पर सब लोग इकट्ठे हो गये। बड़ी भीड़ हुई। विषाद का पारावार नहीं है। विषाद के उत्कटता का वर्णन नहीं हो सकता। सब हाय हाय कर रहे हैं।

सचिव उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी॥४॥

अर्थ : मन्त्री ने : रामजी आये हुए हैं ऐसा प्रिय वचन कहकर उठाकर राजा को बिठाया। सीताजी के सहित दोनों बेटों को देखकर महाराज को भारी व्याकुलता हुई।

व्याख्या : महाराज को अचेत देखकर मन्त्री क्षणभर के लिए हटता नहीं। शोक से अशौच लग जाता है नित्यकृत्य का अधिकार नहीं रह जाता। राजा का यह हाल है : ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कल्पतरु मनहु निपाता। आप से उठने में भी असमर्थ हैं। कहाँ क्या हो रहा है इसका ज्ञान नहीं। मन्त्री सोचता है कि ये लोग विदा होने आये हैं। इन्हें बिठाना चाहिए। जो कहना हो कहें। इसलिए महाराज को उठाकर बिठलाता है। होश में लाने के लिए रामजी पधारे हैं ऐसा प्रिय वचन सुनाता है। क्योंकि यदि इस समय भी महाराज न बोले तो ये लोग प्रणाम करके चले जायँगे।

इस प्रिय वचन को सुनकर महाराज ने आँख खोल दिया तो देखा बेटे वन जाने को प्रस्तुत हैं और सीताजी भी साथ में हैं। यह देखकर तो महाराज की व्याकुलता बहुत बढ़ गयी। दोनों बेटे प्राण के समान हैं। यथा : मेरे प्रान नाथ सुत दोउ। सो दोनों चले और महाराज जनक ने यह कहकर जानकी को सुपुर्द किया है : ये दारिका परिचारिका करि पालवी करुना नई। सो मैंने यही करुणा किया कि वन भेज रहा हूँ।

दो. सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस, राउ लेइ उर लाइ॥७६॥

अर्थ : सीताजी के सहित दोनों बेटों को देखकर महाराज आकुल हो रहे हैं। और प्रेम के वश होकर बार बार छाती से लगा लेते हैं।

व्याख्या : सीताजी पर महाराज का पुत्रों से कम प्रेम नहीं है। मन्त्री से महाराज कहेंगे : एहि बिधि करेउ उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा। सीताजी पर बेटों से भी अधिक प्रेम कहने में अत्युक्ति नहीं है। दोनों भाइयों के वन चले जाने पर भी सीताजी के रह जाने से महाराज जी सकते थे। सो ये भी चलीं। अतः बार बार इन तीनों मूर्तियों को महाराज देखते हैं और प्रेमवश होकर बार बार कलेजे से लगाते हैं।

सकइ न बोलि बिकल नरनाहू। सोक जनित उर दारुन दाहू॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब माँगा॥१॥

अर्थ : महाराज शोक से विकल थे। कुछ बोल नहीं सकते थे। शोक से उत्पन्न भयानक दाह हृदय में हो रहा था। अत्यन्त प्रेम से चरणों में सिर नवाकर रामजी ने उठकर विदा माँगी।

व्याख्या : राम जानकी और लक्ष्मण को बार बार हृदय से लगा रहे हैं। कहना भी चाहते हैं पर मुख से शब्द नहीं निकलते। क्योंकि शोक से कलेजा जल रहा था। दाह होने पर मनुष्य कराहता है पर दारुण दाह में कराहते भी नहीं बनता। पहिले जब रामजी ने कहा था : बिदा मातु सन आवहुँ माँगी। चलिहौं बनहि बहुरि पग लागी। तब भी शोक वश होने से महाराज बोल न सके। अब माता से विदा लेकर चलते समय केवल प्रणाम करने आये हैं। फिर भी महाराज बोलने में असमर्थ हैं।

रामजी रघुकुल में वीर हैं। उत्साहवर्धनो वीरः। पिता का अत्यन्त प्रेम देखकर समझ लिया कि यहाँ ठहरना वियोग के समय की यातना को और बढ़ाना ही है। अतः अत्यन्त प्रेम से चरणों को प्रणाम किया और उठ खड़े हुए और तब बिदा माँगी।

पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमउ कत कीजै ॥
तात कियें प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाई होइ अपबादू ॥२॥

अर्थ : पिताजी ! मुझे आशीर्वाद दीजिये और आज्ञा दीजिये। यह तो हर्ष का समय है। इसमें शोक क्यों करते हैं। हे तात ! प्रिय के प्रेमवश प्रमाद करने से संसार में यश नष्ट हो जायगा और दुर्यश होगा।

व्याख्या : भाव यह कि अब मैं चल रहा हूँ। मुझे आशीर्वाद दीजिये। आप पिता हैं। मेरे देवता हैं। आपके आशीर्वाद से सब मङ्गल होगा और कह दीजिये कि जाओ इतना आपके कह देने से मुझे कोई विघ्नबाधा न करेगा। यथा : गुरु पितु मातु स्वामि सिखपाले। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें। मैं अपना जन्म सफल करने जा रहा हूँ। अतः हर्ष का समय है। इसमें विषाद को स्थान नहीं देना चाहिए। मुझे कष्ट होगा यह सोचकर ही आप शोक करते हैं। सो मुझे हर्ष है। क्योंकि मेरा जन्म सफल होने जा रहा है।

श्रीरामजी ने देखा कि वचन देने पर उसे कार्य में परिणत होते देखकर इस भाँति शोक करना प्रमाद है। अतः पिता से कहा कि जो शोक मनाया जा रहा है इसमें कोई तत्त्व नहीं है। यह केवल प्रिय प्रेम प्रमाद है। इससे लाभ कुछ नहीं और हानि बड़ी भारी। क्योंकि संसार में जो आपका यश फैला हुआ है वह नष्ट हो जायगा और अयश होगा। सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।

सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ ॥
सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। रामु चराचर नायकु अहहीं ॥३॥

अर्थ : सुनकर प्रेमवश चक्रवर्तीजी उठ खड़े हुए और रामजी को बाँह

पकड़कर बैठाया और कहा कि हे तात ! तुमको मुनि कहते हैं कि राम चर अचर सबके मालिक हैं ।

व्याख्या : यह तो जाया ही चाहते हैं यह समझकर चक्रवर्तीजी आवेश में आकर उठ खड़े हुए । रामजी की बाँह पकड़ ली कि मैं जाने न दूँगा और बिठलाया कि अभी कुछ बातें करना है । मेरा प्रश्न है उसका उत्तर दे लो तो जाओ । तुम मेरे शोक को प्रिय प्रेम प्रमाद कहते हो । मैं पूछता हूँ कि प्रमाद किसका है ! हमारा या तुम्हारा ? यद्यपि मेरे मन में बात नहीं बैठती पर मुनि की गिरा असत्य नहीं हो सकती । वे कहते हैं कि राम चराचर के नायक हैं ।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी ॥
करै जो करमु पाव फलु सोई । निगम नीति असि कह सबु कोई ॥४॥

अर्थ : शुभ और अशुभ कर्म के अनुसार ईश्वर हृदय में विचारकर फल देते हैं और जो कर्म करता है वही फल पता है । यही निगम की नीति है और सब लोग भी ऐसी ही कहते हैं ।

व्याख्या : दण्ड और अनुग्रह का नियम अनादि काल से प्रवर्तित है । शुभकर्म का शुभफल और अशुभकर्म का अशुभफल होता है । यथा : तुलसी यह तनु खेत है मन वच करम किसान । पाप पुन्य द्वै बीज हैं बवै सो लवै निदान । ईश्वर फल दाता है । वह शुभाशुभ कर्म का फल मात्रा प्रकार तथा काल का विचार करके देता है ।

जो कर्म करता है उसका फल उसी को मिलता है । यही निगम की नीति है और सब लोग भी यही कहते हैं । इसमें मतभेद नहीं । अतः यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है ।

दो. औरु करै अपराधु कोउ, और पाव फल भोगु ।
अति बिचित्र भगवंत गति, को जग जानइ जोगु ॥७७॥

अर्थ : अपराध कोई और ही करे और फल भोग किसी दूसरे को मिले । यह अति विचित्र गति भगवान् की है । इसे संसार में कौन जान सकता है ?

व्याख्या : अपराध और फल भोग में वैषम्य होना विचित्रता है । दूसरे का दण्ड दूसरे को मिलना अति विचित्रता है । अवश्य सामञ्जस्य होगा । पर संसारी के समझ में नहीं आता । उसे ईश्वर का ही प्रमाद मालूम होता है ।

अपराधिनी कैकेयी तुम से निरपराध को वन भेज रही है । कहु तजि रोष राम अपराधू पूछने पर उसके पास देने के लिए कोई उत्तर नहीं है । अन्त में उसे भी यही कहना पड़ा : तुम अपराध जोग नहिं ताता । माँग्यौ जो कछु मोहि सोहाना और मुझसे विश्वासघात किया : तुहूँ सराहसि करसि सनेहू । पहिले स्नेह करती थी सराहना करती थी । जब मैंने कहा : भामिनि भयउ तोर मन भावा तो कैकेयी ने हँसकर और गहने पहनकर मुझे धोखा दिया । मेरे साथ विश्वासघात हुआ । मेरा

क्या दोष है ? मुझे दण्ड क्यों मिल रहा है ? यदि ईश्वर हो तो मुझे तुम्हारा प्रमाद मालूम हो रहा है। उत्तर न पाने पर कहते हैं कि भगवान् की गति जानी नहीं जाती। अत्यन्त विचित्र है : अभी तक चक्रवर्तीजी को तापस अन्ध शाप का स्मरण नहीं आ रहा है।

राय राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किये छलु त्यागी ॥
लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने ॥१॥

अर्थ : राजा ने रामजी के रखने के लिए छल छोड़कर बहुत उपाय किये। रामजी का रुख लख लिया। समझ लिया कि ये नहीं रहेंगे।

व्याख्या : महाराज ने जो उपाय रामजी के रखने के लिए सोचा या किया उनमें छल था। वे चाहते थे कि मैं रामजी को रहने के लिए न कहूँ रामजी स्वयं जाने के लिए तैयार न हों। यथा : तुम प्रेरक सबके हृदय सो मति रामहि देहु। बचन मोर तजि रहहिं गृह परिहरि सील सनेहु। अथवा : उदय करहु जनि रबि रबिकुलगुरु इत्यादि। परन्तु जब देख लिया कि ऐसे उपायों से काम न चलेगा तब छल रहित उपाय करने लगे कि मैंने चाहे कैकेयी से जो कहा हो पर तुम्हें तो मैंने वन जाने की आज्ञा नहीं दी। आज्ञा वही मान्य है जो इच्छापूर्वक दी जाय। मेरी इच्छा नहीं है कि तुम वन जाओ इत्यादि।

रामजी चुप हैं। उत्तर नहीं देते। पहिले ही एक बात ऐसी कह दी कि उसके सामने कोई बात अड़ती नहीं। उन्होंने कहा था कि यह सब. प्रिय प्रेम प्रमाद है : इनमें वास्तविकता नहीं। यदि वास्तविकता होती तो महाराज इतने विकल न होते। विकलता कह रही है कि राजा ने वन दे दिया। अयोध्या में रुख देखकर काम होता है। संसार का नियम है कि प्रधान का रुख सभी देखते हैं। रामजी की प्रधानता इसी से सिद्ध है कि स्वयं चक्रवर्तीजी रुख देखते हैं और को कौन कहे स्वयं गुरुजी सबको रामजी के रुख रखने का उपदेश देते हैं। यथा : राखे राम रजाइ रुख हम सबकर हित होइ इत्यादि। महाराज यह भी जानते हैं कि रामजी धर्मधुरन्धर हैं। ये धर्म से न हटेंगे। सयाने धीर हैं। धर्म के मर्म को समझते हैं।

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही ॥
कहि बन के दुखु दुसह सुनाये। सासु ससुर पितु सुख समुझाये ॥२॥

अर्थ : तब महाराज ने सीताजी को हृदय से लगा लिया और अत्यन्त प्रेम से बहुत प्रकार से शिक्षा दी। वन के न सहने योग्य दुःखों को कह सुनाया। सास ससुर और पिता के सुखों को समझाया।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी का प्रेम सीताजी पर ठीक बेटी की भाँति है। गोद में लेकर समझा रहे हैं। यथा :

दो. सासु ससुर जोगवत रहत तथा यथा पितु मात।
बेटी तू नहिं सहि सकिहि विकट विपिन उतपात ॥१॥

सोई कारज कीजिये जामे होइ निवाह।
नहिं पिपीलिका को उचित लेन सिंधु की थाह ।।२।।
कानन कानन ते सुन्यौ कानन बड़ी बलाय।
जहँ वसिबे को को कहै आँखि देखि नहिं जाय ।।३।।
हिंसक जीवन ते भरो कुशकण्टक भरिपूरि।
ठाम नहीं विश्राम को बिपिन बिपत्ति अति भूरि ।।४।।
कटुकषाय फल असन वन, वसन छाल अरु पात।
बिना त्रान अति, बिषम हिमि आतप बर्षा बात ।।५।।
सब सुपास गृहवास रुख लखत रहत रनिवास।
सखी करत मनुहारि मुख जोहँत दासी दास ।।६।।
सब सुख अवध विदेहपुर रहहु जहाँ मनमान।
सीख मानि मम पुत्रि जनि कानन करहु पयान ।।७।।

सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा ।।
औरउ सबहि सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई ।।३।।

अर्थ : सीताजी का मन रामजी के चरणों में अनुरक्त था। उनको घर रहने में सुभीता और वन में असुभीता नहीं मालूम पड़ा और सबों ने भी वन की विपत्तियों को बढ़ा बढ़ाकर वर्णन करते हुए समझाया।

व्याख्या : रामचरन पंकज रति जिनहीं। बिषय भोग बस करहि कि तिनहीं। रमा बिलास राम अनुरागी। तजत वमन जिमि नर बड़भागी। फिर जगदम्बा को घर सुगम और वन विषम कैसे मालूम हो? सभी लोग एक मुख से वन के दुःख को बढ़ा बढ़ाकर समझाने लगे। ऐसी नीति है कि कार्यसिद्धि के लिए रोचक भयानक बातें कही जाती हैं। यथा :

छप्पय : वन निर्जन झन झनत चलत सन सन समीर खर।
भूमि तपत ज्यौं भाड़ अगिनि वरसत दिनकर कर ।।
जहँ तहँ बीछी व्याल फिरत गज भालु बाघ हरि।
दिनहि भूत बेताल नचत बिकराल रूप धरि ।।
जीवजंतु जरि जरि मरें जब दावानल लगि परै।
याते तू बन जान को ध्यान बधू जनि उर धरै ।।

लक्ष्मणजी को कोई नहीं समझाता क्योंकि वे तो रामजी के बाटे : हिस्से पड़े हुए हैं। यथा : लखन राम के नेव। दूसरी बात यह भी है कि यदि रामजी वन जायँ तो लक्ष्मणजी का साथ जाना सबको प्रिय है। ये वीर हैं। रामजी के साथ सब कष्ट सह लेंगे और रामजी भी अकेले न रहेंगे भाई का साथ रहेगा।

सचिव नारि गुरु नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी ।।
तुम्ह कहँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू ।।४।।

अर्थ : मन्त्री और गुरु की सयानी स्त्रियाँ स्नेह से साथ कोमल वाणी में कहने लगीं कि तुमको तो वनवास नहीं दिया। इसलिए जैसा ससुर गुरु और सास कहें वैसा करो।

व्याख्या : भारी उत्पात सुनकर इस समय जो स्त्रियाँ महलों में आती जाती हैं वे सभी आगयी हैं। मर्दों के समझाने का प्रभाव सीताजी पर पड़ते न देखकर मन्त्री की स्त्रियाँ और गुरुजनों की स्त्रियाँ सीताजी को समझाने लगीं। स्नेह के साथ मृदु वाणी से समझाने का बड़ा प्रभाव पड़ता है। किं पुनः ये तो बड़ी बूढ़ी हैं। स्त्री धर्म और स्त्री हृदय की जाननेवाली हैं। रामजी जो इस समय सुख दुःख को न गिनकर वन जाने को प्रस्तुत हैं तो उनके लिए कारण है। उन्हें वनवास मिला है। तुमको तो वनवास नहीं दिया है। तो जिसका वचन मानकर रामजी वन जाते हैं उसका वचन तुम भी शिरोधार्य करके घर रहो। पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् : यह ठीक है। पर ससुर गुरु और सास तो गुरूणां गुरुः हैं। वे जो कहें सो तुम्हें कर्त्तव्य है।

दो. सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चंद चंदिनि लगत, जनु चकई अकुलानि ॥७८॥

अर्थ : शीतल हित मधुर और कोमल शिक्षा सीताजी ने सुनी। पर उन्हें अच्छी न लगी। जैसे शरच्चन्द्र की चाँदनी के लगने से चकई व्याकुल हो जाती है।

व्याख्या : चाँदनी रात सबको प्रिय होती है पर चकई को नहीं। क्योंकि उसमें पति का विछोह होता है। शरद् की चाँदनी रात और भी दाहक होती है। सो सरकार ने जो शिक्षा दी वह शरद्चन्द निशि की भाँति दाहक हुई। यथा : सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरदचन्द निसि जैसे। पर सचिव नारि गुरु नारि सयानी की शिक्षा तो शरद्चन्द चाँदनी की भाँति अति अधिक दाहक हुई। भगवती व्याकुल हो उठीं। शिक्षा का गुणाधिक्य दाहाधिक्य का कारण हो गया है। सरकार को शिक्षा शीतल थी। इसलिए उसे शरद्चन्द निशि कहा। सचिव नारि गुरु नारि सयानी की शिक्षा सीतल हित मृदु मधुर थी। इसलिए शरद्चन्द की चाँदनी से उपमित कर रहे हैं। स्नेह के सहित शिक्षा दे रही हैं। अतः शीतल है। तुम कहँ तौ न दीन्ह बनबासू। यह हित की बात है। करउ जो कहहिं ससुर गुरु सासू। यह मधुर शिक्षा है और मृदुवाणी में कहती हैं। यह मृदुता है। शरद्चन्द चाँदनी में शीतलता लाभ मधुरता और मृदुता होती है। अतः इससे शिक्षा को उपमित किया।

सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई ॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी ॥१॥

अर्थ : सीताजी सङ्कोचवश उत्तर नहीं देती हैं। यह सुनकर कैकेयी तमक उठी। मुनियों का वसन भूषण और बरतन लाकर आगे रक्खा और मीठी वाणी बोली।

व्याख्या : जिस इन्द्रिय से जिस विषय का ग्रहण होता है उसी से उसके अभाव का भी ग्रहण होता है। इसी से उत्तर न देने का सुनना कहते हैं। उत्तर प्रत्येक बातों का है। पर कुलवधू सीताजी इतने बड़े जनसमाज में सङ्कोच से उत्तर नहीं देतीं। कैकेयी से यह सहन न हुआ। वह समझती है कि सीता भी यदि साथ चली जावे तो सम्भव है कि ये वन से न लौटें। ये सब इतना प्रयत्न इसलिए कर रही हैं जिसमें रामजी अवश्य वन से लौटें। ये सब हमारी शत्रु हैं। अतः क्रोध के वेग में आकर उठ खड़ी हुईं।

राजदरबार है। मुनियों की विदाई के लिए मुनि पट भूषण भाजन आदि सभी वस्तुएँ प्रस्तुत रहती हैं। अतः मुनि पट भूषण और भाजन उठा लायीं। जिसमें वहाँ से ही वेष बदलकर वन में जायँ। जो लोग आज छत्रचामर के साथ चलते देखने के लिए उत्सुक थे वे अपने प्रिय को मुनि वेष में जाते देख लें और बात भी थी कि मुनि पट भूषण सामने रखते ही रामजी धारण कर लेंगे। तब समझाना बुझाना भी बन्द हो जायगा और व्यर्थ जो देर हो रही है वह न होगी। उन पट भूषण भाजनों को रामजी के सामने ला रक्खा और बोलीं :

नृपहि प्रान प्रिय तुम रघुबीरा। सील सनेह न छाँड़िहि भीरा ॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहिं जान बन कहिहिं न काऊ ॥२॥

अर्थ : रघुवीर ! तुम महाराज को प्राणप्रिय हो। सो यह भीड़ शील सनेह न छोड़ेगी। चाहे पुण्य सुयश और पर परलोक भले ही नष्ट हो जाय पर तुम्हें वन जाने को कोई न कहेगा।

व्याख्या : रानी कैकेयी कहती हैं कि तुम रघुकल के वीर हो। साहस का कार्य करने में समर्थ हो। यहाँ इतना साहस किसी को नहीं है कि तुम्हें वन जाने को कहे। महाराज को तुम प्राणप्रिय हो। वे अपने मुँह से कहेंगे नहीं और यह जो लोगों की भीड़ लगी हुई है यथा : भइ बड़ि भीर भूप दरबारा : उनमें किसका साहस है कि राजा के प्राणप्रिय को वन जाने की सम्मति दे। इन लोगों को इस बात से क्या मतलब कि महाराज का सुकृत सुयश और परलोक नष्ट हो रहा है। ये राजा की प्रसन्नता के लिए शील और स्नेह जनाते ही रहेंगे।

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुख पावा ॥
भूपहिं बचन बान सम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे ॥३॥

अर्थ : ऐसा विचार करके जो तुम्हें अच्छा लगे सो करो। रामजी ने माता की शिक्षा सुनकर सुख पाया। राजा को ये वचन बाण के समान लगे। कहने लगे कि-अभागे प्राण निकलते भी नहीं।

व्याख्या : कैकेयी कहती है कि अब बात तुम्हारे ऊपर है। चाहे इन वसन भूषण भाजनों को धारण करो और वन जाओ चाहे न जाओ। इस व्यर्थ के प्रपञ्च में कुछ रक्खा नहीं है। माँ की शिक्षा सुनकर रामजी को तो सुख हुआ। बड़े शील

सङ्कोच में पड़े हुए थे । उसको तोड़ना न पड़ा । माँ ने रास्ता साफ कर दिया । परन्तु ये वचन जिसमें महाराज पर भी आक्षेप था, हितचिन्तकों पर भी आक्षेप था, सीताजी के रोकने के प्रयत्न का मूलच्छेदन करनेवाला था महाराज को बाण की भाँति लगे । वे कह चुके थे : जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहेसि बहोरी । जानते थे कि जो बात इसके मुख से निकलेगी वह मर्म को काटनेवाली ही होगी । पर कैकेयी ने न माना । वाण की भाँति चोट करनेवाली वाणी फिर बोली : जीभ कमान बचन सर नाना । मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना । जनु कठोरपन धरे सरीरू । सिखइ धनुष बिद्या बड़ बीरू । महाराज इस चोट को न सह सके । अभागे प्राण जाते भी नहीं ऐसा कहकर मूर्च्छित हो गये ।

लोग बिकल मुरिछित नरनाहू । काह करिअ कछु सूझ न काहू ॥
रामु तुरत मुनि वेषु बनाई । चले जनक जननी सिरु नाई ॥४॥

अर्थ : लोग विकल हो उठे । राजा मूर्च्छित हो गये । किसी को नहीं सूझता कि क्या करें । इधर रामजी ने तुरन्त मुनि वेष बनाया और पिता माता को सिर नवाकर चले ।

व्याख्या : मुनि पट भूषण भाजन को रामजी के सामने ला रखने से कुछ कहने सुनने का मार्ग ही अवरुद्ध हो गया । अब तो यही शेष है कि रामजी उसे धारण करें और वन चले जायँ । अतः सब लोग विकल हो उठे । महाराज को मूर्च्छा हो गयी । रामजी ने इस अवसर से लाभ उठाया । जानते थे कि मुनिवेष में देखकर महाराज तत्काल प्राणत्याग करेंगे । अतः इन्होंने मुनिवेष धारण में जल्दी की जिसमें महाराज की मूर्च्छितावस्था में ही बाहर निकल जायँ और महाराज दशरथ तथा रानी कैकेयी को सिर नवाकर चल पड़े ।

दो. सजि बन साजु समाजु सब, बनिता बंधु समेत ।
बंदि बिप्र गुरु चरन प्रभु, चले करि सबहिं अचेत ॥७९॥

अर्थ : वन का साज समाज सजकर स्त्री और भाई के सहित ब्राह्मण और गुरु की वन्दना करके तथा सबको अचेत करके चले ।

व्याख्या : मुनि पट भूषण का धारण करना साज सजना है । भाई और स्त्री को साथ लेना और उन्हें भी मुनि पट भूषणयुक्त करना समाज सजना है । सो साज समाज ठीक करके सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ चले । मुनि पट भूषण भाजन के सामने रख देने से महाराज मूर्च्छित हो गये और उनके धारण करने पर सब अचेत हो गये । चलने के पहिले सरकार ने अभेद्य कवच धारण कर लिया अर्थात् ब्राह्मण और गुरु को प्रणाम कर लिया । यथा : कवच अभेद्य बिप्र गुरु पूजा ।

निकसि बसिष्ठ द्वार भये ठाढ़े । देखे लोग बिरह दव दाढ़े ॥
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए । बिप्र बृंद रघुबीर बुलाए ॥१॥

अर्थ : निकलकर वसिष्ठजी के दरवाजे पर खड़े हुए। देखा कि सब लोग विरह के दावानल से झुलसे हुए हैं। प्रिय वचन कहकर सबको समझाया। फिर रघुवीर ने ब्राह्मणों को बुलाया।

व्याख्या : अवसि फिरब गुरु आयसु मानी। अब सरकार को लौटानेवाला केवल गुरु का आदेश ही है। ऐसा न हो कि कुछ दूर जाने के बाद गुरु की आज्ञा लेकर कोई पहुँचे कि लौट चलो। अतः गुरुजी के घर से ही प्रस्थान उचित है। दूसरे गुरु या ब्राह्मण के घर से ही प्रस्थान शास्त्र सम्मत है। अतः गुरुजो के द्वार पर खड़े हो गये। सब लोग साथ साथ चल रहे हैं। उनकी दशा देखा कि विरह के दावानल से मानो झुलसे हुए हैं। बिधि कैकेयी किराततिनि कीन्हीं। जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्हीं। सरकार ने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया यथा :

दोहा : हितकारी भारी सबै सब विधिते तुम मोर।
समय देखि धीरज धरहु करहु न निज मन थोर॥
वेगि लौटिहैं अवध हम केवल अवधि बिताय।
जाते नृप धीरज धरै सब मिलि करहु उपाय॥
भरत सुजान सुशील शुचि मोहि प्रिय प्रान समान।
धर्म शील पालिहि प्रजहि सब गुन भवन अमान॥

इस भाँति सबको समझाने के बाद रघुवीर ने ब्राह्मण समाज को बुलाया। सरकार धर्मवीर हैं, दानवीर हैं, दयावीर हैं : यहाँ उन्हीं गुणों से अधिक काम लिया गया है। अतः श्री गोस्वामीजी उनके लिए बार बार रघुवीर शब्द का प्रयोग करते हैं।

**गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनय बस कीन्हे॥**
**जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥२॥**

अर्थ : गुरुजी से कहकर वर्ष भर के लिए भोजन दिया और उन्हें आदर दान और विनय से वश कर लिया। तत्पश्चात् मंगनों को दान और सम्मान से सन्तुष्ट किया और मित्रों को पवित्र प्रेम से परितोष किया।

व्याख्या : एक वर्ष से अधिक अन्न रखने की आज्ञा ब्राह्मणों को शास्त्रतः नहीं है। अतः विप्रवृन्द को वर्षासन दिया। सरकार नित्य अन्न दान करते हैं। वन में दान के लिए अन्न नहीं मिलेगा। अतः प्रभूतान्न दान आज किया जा रहा है। अब अपने महल में न जायँगे। अतः गुरुजी से कहा कि इन लोगों को अन्न दें दिया जाय। ब्राह्मणों के वश करने की विधि कहते हैं कि ये आदर दान और विनय से वश होते हैं। इन्हें वश करने की दूसरी विधि नहीं है। ब्राह्मणों के वश करने में इनसे अतिरिक्त दूसरी विधि के प्रयोग से राजा भानुप्रताप मारे पड़े।

याचक को दान देनेवाले तो अनेक हैं। पर उनका सम्मान करनेवाला कौन है? और सम्मान ही सबसे बड़ा दान है। यथा : तुलसी कहत पुकारि कै सुनहु सकल

दै कान। भूमिदान गजदान ते बड़ों दान सम्मान। सो सरकार याचकों को भी सम्मान पूर्वक दान दे रहे हैं। जो सरकार के मित्र हैं उन्हें किस बात की कमी है। वे तो केवल प्रेम के भूखे हैं। उन्हें पवित्र प्रेम से परितुष्ट किया अर्थात् अत्यन्तप्रेम से मिले।

दासी दास बोलाइ बहोरी। गुरुहिं सौंपि बोले कर जोरी ॥
सब कै सार सँभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं ॥३॥

अर्थ : फिर दासी दासों को बुलाया। उन्हें गुरुजी को सुपुर्द करके हाथ जोड़कर बोले कि हे गोसाईं ! इनकी देखभाल माँ बाप की भाँति कीजियेगा।

व्याख्या : सरकार को दास बड़े प्रिय हैं। यथा : तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निजदासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। अतः उन्हें गुरुजी को सौंपते हैं और हाथ जोड़कर विनय करते हैं कि इनकी देखभाल माँ बाप की भाँति कीजियेगा। भाव यह कि बाप माँ बच्चों के सब अपराध सहन करते हैं। मैंने भी इनके अपराधों को बाप माँ की भाँति सहन किया है और प्रतिपालन किया है। उसी भाँति आप भी इनके अपराधों को क्षमा करके इनका पालन करियेगा : इससे यंह पता चलता है कि सरकार ने अपनी निजी सम्पत्ति को गुरुजी के सुपुर्द किया।

बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सब सन मृदु बानी ॥
सोइ सब भाँति मोरि हितकारी। जेहि तें रहइ भुआल सुखारी ॥४॥

अर्थ : बार बार हाथ जोड़कर रामजी सबसे कोमल वाणी से कहते हैं कि वही मेरा सब प्रकार से हितकारी है जिससे महाराज सुखी रहें।

व्याख्या : रामजी कहते हैं कि आपलोग सभी मेरे हितकारी हैं। पर सब प्रकार से मेरा हितकारी वही है जो महाराज को सुख सम्पादन में कृतकार्य हो। भाव यह कि रामजी महाराज को प्रजावर्ग के सुपुर्द कर रहे हैं। अतः सबसे यही विनय हाथ जोड़कर बार बार कह रहे हैं।

दो. मातु सकल मोरें बिरह, जेहि न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब, पुरजन परम प्रबीन ॥८०॥

अर्थ : मेरी सब माताएँ मेरे विरह से जिसमें दुःख से दीन न हों हे परम प्रवींण पुरजन ! वही उपाय आप लोग करियेगा।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि हे पुरजन ! आप लोग परम प्रवीण हैं। मेरे विरह में माताएँ सब दुःखी हैं। वे लोग जब सुनेंगी कि प्रजा रामजो के विरह से अत्यन्त दुःखी हैं तो उनके दुःख का पारावार न रहेगा। वे दुःख से दीन हो जायेंगी। अतः आप लोग मेरे चले जाने पर शोक न मनाइयेगा। यथा : कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी। आप लोग आपस में मिलकर सुख से रहने की चेष्टा कीजियेगा।

रामजी पिता माता का प्रजावर्ग के सुपुर्द कर रहे हैं। उन्हें भय है कि उनके चले जाने पर प्रजा महाराज की निन्दा करेगी। विरोध करेगी। भरत के राज्य का स्वागत नहीं करेगी। इससे माता पिता का कष्ट अधिक बढ़ जायगा। अतः उनको सुख पहुँचाने का भार रामजी प्रजा पर ही छोड़ रहे हैं।

एहि बिधि राम सबहिं समुझावा। गुरु पद पदुम हरषि सिरु नावा ॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार रामजी ने सबको समझाया। गुरुजो के चरणकमल में हर्षित होकर सिर नवाया और गणेश गौरी और महेश को मनाकर आशीर्वाद पाकर रघुराज चल पड़े।

व्याख्या : कहि प्रिय बचन सकल समुझाये से उपक्रम करके विप्रमण्डली याचकगण, दासी, दास, प्रजावर्ग से यथोचित मिलना कहा। अब : एहि बिधि राम सबहिं समुझाये कहकर इस प्रसङ्ग का उपसंहार करते हैं। अब गुरुजी को प्रणाम करके प्रस्थान करना कहते हैं। प्रस्थान के समय हर्ष का होना मङ्गल सूचक है। छूट जानि बन गमन सुनि उर अनंद अधिकान कहा था। सुनने से हर्ष हुआ था। अब तो वस्तुतः छुट्टी हो गयी। अतः सरकार हर्षित हैं। गणपति गौरी गिरीश प्रत्यक्ष नहीं हैं। अतः उनकी मानसवन्दना कहते हैं। स्वयं स्त्री और अनुज के साथ यात्रा कर रहे हैं। अतः अपने इष्टदेव की वन्दना भी स्त्री पुत्र के साथ ही करते हैं। गणपति गौरी गिरीश का ध्यान परिपूर्ण ब्रह्म का ध्यान है। शिवजी निर्गुण ब्रह्म हैं। उनकी गोद में मूलशक्ति गौरी हैं और उनके गोद में सगुण ब्रह्म गजानन हैं। गुरुजी ने प्रत्यक्ष आशीर्वाद दिया और गणपति गौरी गिरीश ने अन्तर्हित होकर आशीर्वाद दिया।

रामु चलत अति भयेउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू ॥
कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरष बिषाद बिबस सुरलोकू ॥२॥

अर्थ : रामजी के चलने के समय बड़ा विषाद हुआ। नगर का आर्त्तनाद सुना नहीं जाता था। लङ्का में अपशकुन होने लगे। अयोध्या में अति शोक छा गया। देवता लोग हर्ष और विषाद के वश हो गये।

व्याख्या : लोगों को अति विषाद तो उसी समय हुआ जब रामजी माता से विदा माँगने चले। यथा : अति बिषाद बस लोग लोगाई। गये मातु पहँ राम गोसाँई। पर रामजी को वन जाते देखकर वह विषाद असह्य हो गया। लोग फूटकर रोने लगे। नगर भर में ऐसा आर्तनाद होने लगा कि सुनते नहीं बनता था। सुननेवाले का कलेजा फटने लगता था।

सरकार की यह यात्रा वस्तुतः लङ्काविजय यात्रा का पूर्व रूप था। अतः लङ्का में अपशकुन हुए। अयोध्या में अति शोक छा गया। कवि ने यहाँ यात्रा की दोनों सीमाओं की व्यवस्था कही। अभिषेक में विघ्नाचरण करनेवाले देवताओं

को तो प्रसन्नता होनी चाहती थी। पर इस आर्तनाद से उनके हर्ष में भी शोक का अनुवेध हो गया।

गई मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे ॥
रामु चले बन प्रान न जांहीं। केहि सुख लागि रहत तन मांहीं ॥३॥

अर्थ : तब मूर्च्छा गयी। राजा जगे। सुमन्त्र को बुलाकर कहने लगे कि राम तो वन को चले पर प्राण नहीं जा रहे हैं। किस सुख के लिए अब शरीर में टिके हुए हैं।

व्याख्या : पुर में आर्तनाद जब होने लगा तब महाराज की मूर्च्छा गयी। जागकर सुमन्त को बुलाया। महाराज की बड़ी आस्था सुमन्त्र पर है। भूपति कहने का भाव यह कि प्रजा का आर्तनाद सुनकर जाग उठे। सुमन्त्र भी कहीं अचेत पड़े थे। बुलाने पर आये। राजा जब मूर्छा से जगे तो रामजो को नहीं पाया। नगर के आर्तनाद से जान लिया कि रामजी जा रहे हैं। सुमन्त्र से कहने लगे कि प्राणप्यारे राम तो जा रहे हैं। पर प्राण उनका साथ नहीं दे रहा है। एक ही तो अभिलाषा मेरे मन में थी वह बुरी तरह से भङ्ग हो गयी। अब किस सुख की आशा से प्राण शरीर में टिके हुए हैं।

एहि तें कवन ब्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना ॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू ॥४॥

अर्थ : इससे कौन सी पीड़ा बलवती है। जिस दुःख के पाने से प्राण शरीर को छोड़ता है। फिर धैर्य धरकर राजा कहते हैं कि हे सखे! तुम रथ लेकर साथ जाओ।

व्याख्या : महाराज को शिरोच्छेदन से अधिक पीड़ा राम विरह में है। यथा : माँगु माथ अबही देउँ तोहीं। रामबिरह जनि मारेसि मोहीं। अतः मन्त्री से पूछते हैं कि क्या इस पीड़ा से भी अधिक कोई दुःख है जिसे पाकर प्राण शरीर छोड़ता है? मन्त्री से कोई उत्तर न पाकर धैर्य धारण करके राजा ने कहा कि मित्र! तुम रथ लेकर साथ जाओ। भाव यह कि तुम्हारा जाना मेरे जाने के बराबर है। रामजी के हृदय में तुम्हारा बड़ा आदर है। यथा : राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा। अतः तुम स्वयं रथ लेकर रामजी के साथ जाओ।

दो. सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु, फिरेउ गयें दिन चारि ॥८१॥

अर्थ : दोनों कुमार अति सुकुमार हैं और जनकसुता सुकुमारी हैं। सो रथ चढ़ाकर वन दिखलाकर चार दिनों में लौट आना।

व्याख्या : श्रीमद्भागवत में जनकनन्दिनी से अधिक सुकुमार सरकार को माना है। यथा : प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम् मृदितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।

इसलिए दोनों राजकुमारों को सुठि सुकुमार और जनकसुता को केवल सुकुमारी कहते हैं। भाव यह कि ये लोग पैदल चलने में समर्थ नहीं। इन्हें रथ पर चढ़ाकर वन के साथ इनका चक्षु:संयोग मात्र करा दो और चार दिन में लौटा लाओ। कह देना कि वनवास की अवधि में महाराज ने सङ्कोच करके केवल चार दिन का कर दिया। अत: अब घर लौट चलो।

जौ नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ ब्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु करजोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥१॥

अर्थ : यदि दोनों भाई न फिरैं क्योंकि धीर हैं, सत्यसन्ध हैं, दृढ़व्रत हैं, रघुराई हैं तो तुम हाथ जोड़कर विनय करना कहना कि प्रभो! मिथिलेश की बेटी को लौटा दीजिये।

व्याख्या : चार कारण न फिरने के हैं। रघुराई हैं : रघुकुल की प्रतिष्ठा बिगड़ने न देंगे। धीर हैं : सङ्कट से मुँह न मोड़ेंगे। सत्यसन्ध हैं : कैकेयी से वचनबद्ध भी हो चुके हैं। मुनिव्रत ग्रहण कर लिया है। दृढ़व्रत होने के कारण उसे न छोड़ेंगे।

महाराज मिथिलेशकिशोरी के लिए अतिआर्त हैं। सुमन्त्र से कहते हैं कि पहिला प्रयत्न तो सबके लौटाने के लिए करना। असफल होने पर तुम हाथ जोड़कर विनय करना। तुम्हारी विनय रामचन्द्र न टालेंगे। कहना कि प्रभो आप समर्थ हैं। आप जानकी को लौटा सकते हैं। आपकी आज्ञा पतिदेवता सुतीयमणि कभी नहीं टालेंगी। मैंने जानकी को तो समझाया। पर रामचन्द्र को जानकी के लिए आज्ञा देने की बात कहने का अवसर न मिला।

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेउ मोर सिख अवसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥२॥

अर्थ : जब सीता वन देखकर डरे तो अवसर पाकर मेरी शिक्षा कहना कि सास ससुर ने ऐसा कहा है कि बेटी! लौट चलो वन में बड़ा क्लेश है।

व्याख्या : अब रह गयी यह बात कि यदि वह किसी का कहना पातिव्रतधर्म को अग्रसर करके न माने तब तुम अवसर देखना। अवसर पर की कही हुई बात प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। सीता नहीं जानती कि वन कैसा है। वह उसे एक बड़े बगीचे के रूप में समझती है। वह स्वभाव से बड़ी भीरु है। चित्र में लिखे हुए बन्दर को देखकर डरती है। वन देखकर अवश्य डरेगी। वही अवसर मेरी शिक्षा के कहने का है। साथ ही साथ कौसल्या की ओर से भी कहना। क्योंकि ससुर से अधिक सास का प्रभाव वधू पर होता है। उससे दोनों की ओर से कहना कि बेटी! फिर चलो अभी तो तुमने वन में प्रवेश किया है। वन में बड़ा कष्ट मिलता है। उत्तरोत्तर कष्ट बढ़ता ही जायगा। तुम सहन के योग्य नहीं हो।

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥३॥

अर्थ : चाहे बाप के घर चाहे ससुराल जहाँ तुम्हारी रुचि हो वहाँ रहना। इस भाँति बहुत से उपाय करना। यदि लौट आवे तो प्राण को [1]सहारा मिल जाय।

व्याख्या : कुलवधू माता पिता और श्वसुर सास की सम्मति से कभी पितृगृह में रहती है और कभी पतिगृह में रहती हैं। महाराज ने कहलाया कि तुम्हारी जबतक रुचि हो तबतक अयोध्या में रहना। जबतक रुचि हो तबतक जनकपुर रहना। मेरा यह आग्रह नहीं है कि तुम वन से लौटकर अयोध्या में ही रहो। जहाँ रहने से जितने दिनों तक जी बहले तबतक अपनी रुचि के अनुसार रहना।

इस प्रकार से प्रलोभन देना और जो जो उपाय तुम्हें उपयुक्त प्रतीत हो सो सब करना। यदि सीता किसी प्रकार से लौट आवे तो मेरे प्राण को अवलम्ब मिल जाय। भाव यह कि महाराज को सीताजी भी उतनी ही प्रिय हैं जितने कि रामजी हैं। श्रुति कहती है कि स्त्री पुरुष का आधा शरीर है। अतः सीताजी के रहने से मानो आधे शरीर से वे ही विद्यमान हैं। अतः प्राणवियोग न होगा। कष्ट चाहे जितना हो।

नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भये बिधि बामा॥
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। राम लखनु सिय आनि देखाऊ॥४॥

अर्थ : नहीं तो इसका परिणाम मेरी मृत्यु ही है। विधाता के बायें होने से कोई वश नहीं चलता। ऐसा कहके राजा मूर्च्छा खाकर गिर गये कि राम लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखला दो।

व्याख्या : सीता के लौट आने की आशा से ही मैं जो रहा हूँ। राम लक्ष्मण के लौटने की आशा तो बहुत कम है। यदि सीता भी नहीं लौटी तो इसका परिणाम यह होगा कि मैं मर जाऊँगा। विधाता बायें होने पर कोई वश नहीं चलता। कहते कहते महाराज अधीर हो गये। बोले कि राम लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखा दो और मूर्च्छित होकर गिर गये। पहिले भी मूर्च्छित थे और इतनी बात कहके फिर मूर्च्छित हो गये। महाराज की हालत ऐसी नाजुक हो रही है।

दो. पाइ रजायसु नाइ सिरु, रथु अति बेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर, सीय सहित दोउ भाइ॥८२॥

अर्थ : राजाज्ञा पाकर सिर नवाया और अत्यन्त त्वरा के साथ रथ जोतकर नगर के बाहर जहाँ सीता के सहित दोनों भाई थे वहीं गये।

व्याख्या : सुमन्त्र ने महाराज की मूर्च्छा की ओर ध्यान नहीं दिया। ध्यान देनेवाले बहुत लोग थे। रामजी के पास जल्दी पहुँचने की आवश्यकता थी। महाराज को सिर नवाया और फुरती से रथ जोतकर चले। तबतक रामजी नगर के बाहर

---

१. पूर्व जन्म में युगल मूर्ति वरद होकर प्रकट हुई थी। अतः एक के रह जाने से प्राण को सहारा मिलने की बात कह रहे हैं।

पहुँच चुके थे। रामजी का एक पग पैदल चलना सुमन्त्रजी को असह्य था। राजाज्ञा मात्र की देर थी।

तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए ॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहिं सिरु नाई ॥१॥

अर्थ : तब सुमन्त्र ने राजा का वचन सुनाया और प्रार्थना करके रामजी को रथपर चढ़ाया। सीताजी के सहित दोनों भाई रथ पर चढ़कर अवध को प्रणाम करके चले।

व्याख्या : सुमन्त्र ने रथपर से ही कहा कि महाराज ने आपके लिए रथ भेजा है और कहा है कि आप लोग रथ पर चढ़कर जायँ पैदल न जायँ और अपनी ओर से भी प्रार्थना की। सरकार रथ पर चलना उचित नहीं समझते थे। सुमन्त्रजी ने विनती की कि आवश्यकता पड़ने पर मुनिजी रथ पर चढ़ते ही हैं। मुनिव्रत में रथ पर चढ़ना निषिद्ध नहीं है। यथा : तेहि रथ रुचिर वसिष्ठ कहँ हरखि चढ़ाइ नरेस।

तब दोनों भाई सीताजी के सहित रथ पर सवार हुए और चले। अवध को प्रणाम किया। यहाँ अवध से अयोध्या नगर अभिप्रेत है अयोध्या प्रान्त नहीं। कर्मणा और वाचा प्रणाम करने से कहीं लोगों की यह धारणा न हो कि अब ये अयोध्या न लौटेंगे। अतः मनसे ही प्रणाम किया। नगर के बाहर पहुँचने पर रथ आया। अतः नगर को प्रणाम करते हैं। अयोध्या मोक्षपुरी है। जन्मभूमि है। महाप्रभावा है। अतः प्रणाम किया।

चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा ॥
कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं ॥२॥

अर्थ : राम को चलते अवध को अनाथ देखकर लोग विकल होकर साथ लग गये। कृपासिन्धु रामजी बहुत समझाते हैं। लोग फिर भी जाते हैं पर प्रेमवश फिर लौट आते हैं।

व्याख्या : रामजी को इस प्रकार जाते देखकर लोगों ने विचारा कि अवध तो अनाथ हो गया। यथा : मैं बन जाउँ तुमहि लै साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा। अतः लोग विकल होकर अनाथ नाथ के साथ लगे : अयोध्या खाली पड़ जाती है। लोग सरकार के साथ बनवास के लिए चले।

सरकार कृपासिन्धु हैं। लोगों के कष्ट का ध्यान करके उन्हें लौटने के लिए अनेक प्रकार से समझाते हैं। यथा :

सवैया : जिन पाल्यौ सदा प्रिय प्रान समान प्रजातिनको तजिबो नहि नीको।
यदि संग चलौ हमरे नृपको तो परै अति उज्ज्वलहू जस फीको ॥
नहि धर्म न अर्थ न काम सधै सबही विधिते असमंजस जी को।
विनती मन मानि फिरो घर को सबहीं प्रतिपालहु धर्म गृही को ॥

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधियारी ॥
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी ॥३॥

अर्थ : अयोध्या भारी भयावनी सी मालूम पड़ती है। मानों अँधेरी कालरात्रि है। पुर के नर नारी मानों हिंसक जन्तु हैं। एक दूसरे को देखकर डर रहे हैं।

व्याख्या : सरकार के समझाने से लोग समझ तो जाते हैं और नगर में लौट भी आते हैं। पर अयोध्या जो सदैव सोहावनी तथा मङ्गलमय थी यथा : यद्यपि अवध सदैव सोहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि। सो आज भारो भयावनी मालूम पड़ती है। मानो वह कालरात्रि है। कालरात्रि स्वभाव से ही भयवानी है। तिसपर अँधेरी यदि हो तो भारी भयावनी हो जाती है। इसी भाँति अयोध्या कालरात्रि सी हो गयी और मानो घोर जन्तुओं से व्याप्त होने से और भारी भयावनी हो गयी।

जो वहाँ के वासी थे वे नररत्न थे। यथा : मनिगन पुर नरनारि सु जाती। सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती। सो आज व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओं के समान हो गये। जो एक दूसरे को देखकर डरा करते हैं। व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओं में कभी मेल होता नहीं। ये गोल बाँधकर रहते नहीं देखे जाते। अतः एक दूसरे से डरा करते हैं। यही गति अवध निवासियों की हो रही है एक दूसरे को देखकर डर रहे हैं।

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोबर देखि न जाहीं ॥४॥

अर्थ : घर मानो श्मशान है। कुटुम्बी लोग मानो भूत हैं और बेटे हित तथा मित्र मानो यमदूत हैं। बगीचों में पेड़ और लता कुँभिला रही हैं। नदी और तालाब देखते नहीं बनते।

व्याख्या : प्राणों के प्राण जीवों के जीव सुख के सुख राम के न होने से आज अयोध्या की यह दशा है कि लोगों को अपने अपने घर श्मशान की भाँति भयानक और अपवित्र मालूम हो रहे हैं। कुटुम्बी लोगों पर भूत की भावना हो रही है। बेटे सम्बन्धी और मित्र तो मानो साक्षात् प्राणहारक यमदूत से दिखायी पड़ते हैं। यह दशा चेतन प्राणियों की हो रही है। घर की यह दशा देखकर जी बहलाने के लिए बाग में जाते हैं तो वहाँ नित्य सींचे जानेवाले वृक्ष और लताओं को कुम्हिलाया हुआ देखते हैं। पहिले नदी और तालाब देखते ही बनते थे। सो आज देखते नहीं बनते। भाव यह कि सरकार के चले जाने से नगर की प्रकृति में भयानक परिवर्तन हो गया।

दो. हय गय कोटिन्ह केलिमृग, पुरपसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका, सारस हंस चकोर ॥८३॥

अर्थ : हाथी घोड़े जिनकी संख्या करोड़ों की है और खेल के लिए जिलाये हुए पशु तथा ग्राम्य पशु, चातक, मोर, कोयल, चकवे, तोता, मैना, सारस, हंस और चकोर।

व्याख्या : महाराज की सेना में करोड़ों हाथी घोड़े हैं तथा नागरिकों के यहाँ भी हाथी घोड़े हैं। केलिमृग अजायबखाने तथा धनियों के बाग में जिलाये हुए हैं। ग्राम्य पशु गाय, भैंस, कुत्ता आदि चातक, मोर, कुहू कुहू ध्वनि करनेवाली कोकिलाएँ जल के सन्निकट रहनेवाले चकवा चंकई तथा मनुष्य की बोली के अनुकरण करनेवाले तोता मैना मकान के ऊपर शोभा देनेवाले सारस और हंस तथा चन्द्र के प्रेमी चकोर इन सबों में कोई भी स्थिर रहनेवाले नहीं हैं।

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहु चित्र लिखि काढ़े ॥
नगरु सफल बनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नरनारी ॥१॥

अर्थ : रामजी के वियोग से विकल सब जहाँ के तहाँ खड़े हैं। मानों चित्र में लिखे हुए हैं। नगर मानों फलवाला घना वन है और सब नर नारी मानों बहुत से पशु पक्षी हैं।

व्याख्या : ये पशुपक्षी भी रामजी के वियोग से विकल होकर जो जहाँ थे वहीं खड़े हैं। कोई हिलते डोलते या बोलते नहीं। मालूम होता है कि ये सज़ीव नहीं हैं : चित्र में खींचे हुए हैं। ऐसा भयानक सन्नाटा छाया हुआ है। नगर में चहल पहल सब कुछ रामजी के कारण था। जहाँ राम नहीं वहाँ आराम कहाँ ?

नगर को सफल वन कहा। क्योकि फल रहित वन में पशु पक्षी नहीं रहते। सफल वन पशु पक्षी से भरा रहता है। पशु वृक्ष के नीचे रहते हैं और पक्षी ऊपर रहते हैं। नगर में भी अनेक भूमिका : मरातिव के मकान हैं। सब में लोग रहते हैं। इसलिए पशुपक्षो से उपमित किया।

बिधि कैकेई किरातिनि कीन्हीं। जेहि दव दुसह दसहुँ ि सि दीन्हीं ॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्या भागी ॥२॥

अर्थ : विधाता ने कैकेयी को किराती बना दी। जिसने दुःसह दावानल : वन की आग दसो दिशा में लगा दी। लोग रामजी की विरहाग्नि न सह सके। सो व्याकुल होकर भाग खड़े हुए।

व्याख्या : आज भी किराती अपने बच्चों को रोग विनिर्मुक्त करने के लिए वन में आग लगा देती है। उनकी ऐसी धारणा है कि ऐसा करने से लड़के का लाभ होगा। कैकेयो ऐसी भली और समझदार रानी को किराती सा बना देना विधाता की ही करामात थी। ये ही चलते फिरते हंस को काग बना सकते हैं। यथा : बिचरत हंस काग किय जेही। पहिले कैकेयो की लगायी हुई अ ग चारों ओर थी। यथा : मृगी देखि दव जनु चहुँओरा। अब वही आग दसों दिशा में फैल गयी। वन में दशों दिशा में आग देखकर जैसे पशु पक्षी अपना अपना बसेरा

छोड़कर भाग चलते हैं इसी भाँति विरहाग्नि से सारे नगर को भस्मीभूत होते देखकर सब निवासी भाग खड़े हुए। प्रयत्न किया कि इस विरहाग्नि को सह ले जायँ। पर सहने में असमर्थ हो गये।

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लखनु सिय बिनु सुख नाहीं॥
जहाँ राम तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥३॥

अर्थ : सबने मन में विचार किया कि राम लक्ष्मण और सीता के बिना सुख नहीं। जहाँ राम होंगे वहीं सब समाज रहेगा। बिना रघुवीर के अयोध्या में कोई काम नहीं है।

व्याख्या : मेल किसी से नहीं है। यथा : डरपहिं एकहिं एक निहारी। अतः इकट्ठे होकर सम्मति नहीं कर सकते। पर सबके मन में एक ही विचार उदय हुआ कि राम लक्ष्मण और सीता के बिना सुख हो नहीं सकता। सब लोगों ने नगर का घर का और अपना हाल देख लिया। अतः इसी निर्णय पर पहुँचे कि सब सुख तो सीता राम लक्ष्मण के रहने ही में था। सब सामग्री तो ज्यों की त्यों मौजूद है। पर दुःख ने डेरा जमा लिया और बिना सुख के कोई जी नहीं सकता।

अतः जहाँ रामजी रहेंगे वहीं सब समाज भी रहेगा। बिना रामजी के अयोध्या में रहने का कोई प्रयोजन नहीं है। यहाँ रहकर भी हम किसी को सुख नहीं दे सकेंगे। क्योंकि स्वयं दुःख से विकल रहेंगे।

चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुखु सदन बिहाई॥
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हहीं। विषय भोग बस करहिं कि तिन्हहीं॥४॥

अर्थ : ऐसा मन्त्र दृढ़ करके सुर दुर्लभ सुखवाले घरों को छोड़कर : रामजी के साथ : चले। रामजी के चरण कमल जिन्हें प्रिय हैं उन्हें क्या विषयभोग वश कर सकता है?

व्याख्या : घर जल्दी किसी से नहीं छूटता। अत्यन्त दुःख मिलने से ही आदमी घर को छोड़ता है। अयोध्या में तो सबको सुरदुर्लभ सुख प्राप्त है। पर उन्हें वे सुख ही बिना रामजी के महादुःखमय प्रतीत होते हैं। अतः सबने अपने मन में यही ठान ली कि रामजी के साथ ही वन चलना चाहिए। बात यह है कि जिन्हें रामजी के चरण में रति है उन्हें विषयभोग वश कर नहीं सकते। उन्हें स्वतः वशीकार संज्ञा वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है। सारे संसार पर विषय भोग का अधिकार है केवल रामभक्त पर नहीं है।

दो. बालक बृद्ध बिहाइ गृह, लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय, प्रथम दिवसु रघुनाथ॥८४॥

अर्थ : बाल वृद्ध को घर छोड़कर सब लोग साथ हो गये। पहिले दिन रामजी का निवास तमसा के किनारे हुआ।

व्याख्या : बालक वृद्ध को कोई साथ नहीं लेता है। क्योंकि उनके साथ लेने से रामजी का साथ ही न हो सकेगा। कितना भो धीरे रथ चले पर बालक वृद्ध तो उस तक नहीं पहुँच सकते। अयोध्या से चलकर पहिले दिन सरकार तमसा के किनारे ठहरे। अर्थात् चैत्र सुदी १० दसमी पुष्प नक्षत्र में सरकार ने वनयात्रा की। इसी दिन राज्याभिषेक होनेवाला था।

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदय दुखु भयउ बिसेखी ॥
करुनामय रघुनाथ गोसाईं। बेगि पाइअहिं पीर पराईं ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रजा को प्रेमवश देखा। हृदय में दया है इसलिए विशेष दुःख हुआ। रघुनाथ गोसाईं करुणामय हैं। पराये दुःख को शीघ्र ही प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : रामजी ने देखा कि प्रजा प्रेम के वश है। मुझे छोड़ना नहीं चाहती। बड़े बूढ़े छोटे बच्चे सुख सम्पत्ति को छोड़कर मेरे साथ रहना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में दुःख होना स्वाभाविक है। पर सरकार के दयार्द्र हृदय में विशेष दुःख हुआ। सरकार पानी पीकर रह गये। प्रजावर्ग ने भी उन्हीं का अनुसरण किया। रघुकुल के नाथ हैं। हृषीकेश हैं। पराये दुःख से शीघ्र ही द्रवीभूत हो जाते हैं। रघुनाथ हैं। अतः प्रजा को दुःखी नहीं देख सकते। इन्द्रियों के स्वामी हैं। अतः पराये दुःख की अनुभूति में इन्हें देर नहीं लगती।

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहुबिधि राम लोग समुझाए ॥
किए धरम उपदेश घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरें ॥२॥

अर्थ : प्रेम के साथ सुन्दर कोमल वचन कहकर बहुत विधान से रामजी ने लोगों को समझाया। बहुत सा धर्मोपदेश किया। परन्तु लोग प्रेम के वश थे। फेरने से फिरते नहीं थे।

व्याख्या : प्रेममय सुन्दर कोमल वचन द्वारा रामजी ने समझाया। धर्मोपदेश किया। यथा :

तुम सुजान जनि धर्म को मेटौ मिलि मर्याद।
बाल वृद्ध ह्वै हैं करत घर में अधिक विषाद ॥
धर्म पिता माता धरम धर्म साइँ सुत भाय।
जाते निबहै धर्म सोइ सब मिलि करहु उपाय ॥
होइ अवसि वन गवन ते गृही धर्म को लोप।
जो तजि मैं वन जात पुनि होइ तासु आरोप ॥
राउ निरादर उचित नहिं धरहु प्रीति उर गोय।
हमहु प्रजा तुमहू प्रजा करहु जो आयसु होय ॥
कष्टित तुम सबको निरखि मोहि कष्ट अति होय।
तजि विचार वन गवन को भवन जाहु सब कोय ॥

परन्तु लोग प्रेम के वश थे। प्रभु के फेरने पर भी नहीं फिरे।

सीलु सनेहु छाँड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई ॥
लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमाया मति मोई[1] ॥३॥

अर्थ : शील सनेह छोड़ते नहीं बनता। रामजी बड़े असमञ्जस : दुविधा में पड़ गये। लोग शोक और परिश्रम के वश होकर सो गये। देवताओं की माया से भी कुछ मोहित हुए।

व्याख्या : को रघुबीर सरिस संसारा। सील सनेह निबाहनि हारा। रामजी का स्वभाव है कि शील और स्नेह का निर्वाह करते हैं। इन लोगों के साथ चलने का अर्थ ही यही है कि घर लौटो। नहीं तो जहाँ तुम बसोगे वहीं हम लोग भी बसेंगे। इन सबका साथ ले जाना सम्भव नहीं और साथ ये छोड़ते नहीं। बिना शील स्नेह तोड़े साथ ये छोड़ नहीं सकते। अतः रामजी असमञ्जस में पड़ गये।

इधर लोग सवेरे से ही शोक कर रहे हैं। यथा : जो जहँ सुनै धुनै सिर सोई। बड़ बिषाद नहिं धीरज होई। तिस पर रथ के साथ साथ आये हैं। इसलिए थके हुए थे। सब के सब सो गये। उनकी नींद की बेखबरी को देवताओं की माया ने बढ़ा दिया। क्योंकि इन लोगों का साथ रहना रामजी के वन जाने में विघ्नरूप था।

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥
खोजु मारि रथु हाँकहु ताता। आन उपाय बनिहि नहिं बाता ॥४॥

अर्थ : जब दो पहर रात्रि बीत गयी तब रामजी ने मन्त्री से प्रेमपूर्वक कहा कि हे तात! इस भाँति रथ चलाओ कि पता न चले। दूसरे उपाय से बात नहीं बनेगी।

व्याख्या : रामजी असमञ्जस में थे। सोये नहीं। जब आधी रात बीती देखा कि तमाम सोता पड़ा हुआ है। कोई सगबगाता तक नहीं। तब प्रीति के साथ सुमन्त्र से कहा। सुमन्त्रजी पिता के सखा हैं। अतः उन्हें आज्ञा नहीं देते। प्रीति के साथ कहते हैं कि इस समय यदि इस भाँति रथ आप हाकें कि लीक देखने पर किसी को पता न चले कि रथ किधर गया। तभी हमारा साथ इन लोगों से छूट सकता है। दूसरा उपाय कोई है नहीं। यह सारथि का पाण्डित्य है कि रथ को घुमाकर मार्ग में पहिले की पड़ी हुई लीकों से रथ की लीक को ऐसा मिला दे कि ढूँढ़नेवाला यह निश्चय न कर सके कि रथ ने किस लीक का अनुसरण किया है।

दो. राम लखनु सिय जान चढ़ि, संभु चरन सिरु नाइ।
सचिव चलायेउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ ॥८५॥

---

१. यहाँ हकार का लोप होकर मोही का मोई रूप हो गया। यथा : प्रकृतिप्रत्ययसन्धिर्लोपविकारागमाश्च वर्णानाम्।

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीता ने रथ पर चढ़कर शिवजी के चरणों में सिर नवाया और मन्त्री ने इधर उधर के पता को छिपाकर तुरन्त रथ चला दिया।

व्याख्या : यह पता किसी को न था कि रामजी किस वन में और किस रास्ते से जावेंगे। सब लोग साथ हो गये थे कि चाहे जहाँ जायँ हम लोग साथ न छोड़ेंगे। जहाँ जाना था सो सुमन्त्रजी से कह दिया। वे उधर रथ ले गये। पर पहिले रथ को इधर उधर ऐसा घुमाया कि पता न चल सके कि रथ किधर गया। चोरी से जा रहे हैं। इसलिए तस्कराणां पति को नमस्कार करके चले।

जागे सकल लोग भये भोरू। गे रघुनाथ भयेउ अतिसोरू॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं॥१॥

अर्थ : सबेरा होने पर लोग जागे। बड़ा शोर मचा कि रामजी तो चले गये। रथ का पता कहीं से नहीं चलता है। लोग राम राम कहकर चारों ओर दौड़ते हैं।

व्याख्या : थके माँदे देव माया से मोहित लोग ऐसे सोये कि सवेरा होने पर ही जागे। देखा न तो रामजी हैं और न रथ है। जैसे रात को किसी का सर्वस्व चोरी हो जाय और जागने पर वह हाय हाय करे। वही गति अवधवासियों की हुई। बड़ा शोर मचा कि रामजी चले गये। किधर गये ! कहाँ गये ! किसी को मालूम नहीं। रथ का पता चले कि किधर से गया तो लीक का अनुसरण करके गन्तव्यस्थान तक पहुँचने का प्रयत्न किया जा सकता है। पर रथ का कुछ पता नहीं लगता कि किधर से गया। अतः लोग विकल हैं। उनके मुँह से कोई बात नहीं निकल रही है। केवल राम राम कहते हुए चारों ओर रथ के खोज में दौड़ रहे हैं।

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू॥
एकहिं एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू॥२॥

अर्थ : मानों समुद्र में जहाज डूबता हो और व्यापारी का समाज अति विकल हो उठे। एक दूसरे को उपदेश दे रहे हैं कि रामजी ने क्लेश जानकर हमें छोड़ दिया।

व्याख्या : लोगों की विकलता जहाज के डूबने के समय वणिक् समाज की विकलता के समान हुई। यहाँ राम वियोग को अपार समुद्र से उपमित किया है। यथा : राम बियोग पयोधि अपारू। करन धार तुम अवध जहाजू इत्यादि। अवध जहाज पर तो सभी सवार हैं पर विकलता साथ जानेवाले वणिक् समाज को अधिक है। क्योंकि उन्हें प्राणों से अधिक प्रिय उनके सर्वस्व राम हैं। उन्हें वे गले बाँधे हुए हैं साथ नहीं छोड़ते। प्राण जाने की उतनी चिन्ता नहीं जितनी चिन्ता प्राणधन के वियोग से है। रामजी ने हमारा परित्याग किया इस बात की बड़ी विकलता है।

अतः एक दूसरे को समझाते हैं कि रामजी ने हम लोगों को अप्रिय जानकर परित्याग नहीं किया है। हम लोग उनको प्रिय हैं। हमें क्लेश न हो इसलिए हम लोगों को छोड़कर चले गये।

निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघुबीर बिहीना ॥
जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न मागें दीन्हा ॥३॥

अर्थ : अपनी निन्दा करते हैं और मछली की सराहना करते हैं। कहते हैं : रघुवीर के बिना जोने को धिक्कार है। विधाता ने यदि प्रिय का वियोग किया तो माँगो मौत क्यों नहीं दिया !

व्याख्या : अपने प्रेम को कच्चा पाकर अपनी निन्दा करते हैं। प्रशंसा मछली की करते हैं। क्योंकि उसका प्रेम सच्चा है। प्रिय पानी के वियोग से प्राण दे देती हैं : यथा : तुलसी केवल मीन को है साँचिलो सनेह। रघुबीर बिहीन जीवन अधम का जीवन है। अतः हमारे जीवन को धिक्कार है।

विधाता का नाम विधि है। उन्हें अविधि कार्य न करना चाहिए। उचित तो यह था कि वे प्रिय का वियोग ही न देते। यदि दिया तो माँगने पर मौत भी देना था। पहिले तो अपनी निन्दा की। अब विधि की निन्दा करते हैं।

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा ॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना ॥४॥

अर्थ : इस प्रकार रोते कलपते परिताप से भरे हुए अयोध्या आये। विषम-वियोग का वर्णन नहीं किया जा सकता। अवधि की आशा से सब प्राण धारण कर रहे हैं।

व्याख्या : जब रथ का खोज न मिला तो लाचार होकर रोते कलपते घर लौटे। पर लौटने में महा दुःख उसी भूत यमदूत से व्याप्त श्मशान में ही रहना पड़ा। राम वियोग की अग्नि के ताप से सब परितप्त हैं। ऐसा दारुण वियोग व्यथा है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता जो वर्णन किया गया। वह बहुत ही अल्प है। अब चौदह वर्ष के बाद तो भेंट होगी। इसी आशा पर सब जी रहे हैं। यदि यह आशा न होती तो निश्चय सब मर जाते। कौसल्याम्बा ने ठीक कहा था : अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धर्म धुरीना। अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहिं जियत जेहि भेटहु आई।

दो. राम दरस हित नेम ब्रत, लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन बिहीन तमारि ॥८६॥

अर्थ : रामजी के दर्शन के लिए सब नर नारी नियम व्रत करने लगे। मानों ये कोक कोकी और कमल हैं बिना सूर्य के दीन हो रहे हैं।

व्याख्या : ये सब पूर्वजन्म के तपस्वी हैं। अपने स्वरूप पर आगये। नियम व्रत रामजी के दर्शन के लिए करने लगे। यथा : पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग। करत रामहित नेमब्रत परिहरि भूषन भोग। जिस भाँति सूर्यनारायण के चार भक्त हैं : १. कमल २. कोक ३. मधुकर और ४. खगनाना उसी

भ्रांति : राम भगत जग चारि प्रकारा। १. ज्ञानी २. जिज्ञासु ३. अर्थार्थी और ४. आर्त। सो अयोध्या में अर्थार्थी और आर्त नहीं हैं। केवल ज्ञानी और जिज्ञासु हैं। ज्ञानी को उपमा कमल से और जिज्ञासु की उपमा कोक कोकी से दी गयी। ये रामजी के बिना वैसे ही दीन हो रहे हैं जैसे सूर्य के बिना कमल और कोक कोकी दीन रहते हैं।

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई ॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेखी ॥१॥

अर्थ : सीता और मन्त्री के सहित दोनों भाई जाकर शृङ्गवेरपुर पहुँच गये। देवनदी गङ्गाजी को देखकर रामजी ने रथ त्याग किया और विशेष हर्ष के साथ दण्डवत् किया।

व्याख्या : राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिर नाइ। सचिव चलाएउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ : से प्रसङ्ग छोड़ा था। बीच में पुरवासियों की कथा कहने लगे। अब फिर वहीं से कथा उठाते हैं कि चारों मूर्ति शृङ्गवेरपुर जाकर पहुँच गये। शृङ्ग है शरीर में जिसके उसे शृङ्गवेर कहते हैं अर्थात् शृङ्गीऋषि। उनका पुर शृङ्गवेरपुर। अथवा शृङ्गवेर अदरक को कहते हैं। सम्भव है कि वहाँ अदरक अधिक होता रहा हो इससे शृङ्गवेरपुर कहलाया हो। आजकल उसे सिंगरौर कहते हैं। यथा : सो जामिनि सिंगारौर गँवाई।

अब तीर्थ स्नान की विधि कहते हैं। गङ्गाजी के दर्शन से रामजी को विशेष हर्ष हुआ। क्योंकि गङ्गा जी के दर्शन मात्र से मुक्ति सुनी गयो है। यथा : गङ्गे ते दर्शनान्मुक्तिर्न जाने स्नानजं फलम्। गङ्गाजी के दर्शन होते ही रथ से उतर पड़े। यह तीर्थ का आदर है और दण्डवत् प्रणाम किया। क्योंकि गङ्गाजो सर्वतीर्थमयी हैं।

लखन सचिव सिय किये प्रनामा। सबहि सहित सुख पाएउ रामा ॥
गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला ॥२॥

अर्थ : लक्ष्मण मन्त्री और सीताजी ने प्रणाम किया और सबके साथ रामजी ने सुख पाया। गङ्गा जी सभी मुद मङ्गल की मूल हैं। सब सुख करनेवाली और सब शूलों को हरनेवाली हैं।

व्याख्या : जिस समय रामजी ने दण्डवत् किया लक्ष्मण मन्त्री और सीताजी ने उसी समय प्रणाम किया। बड़े के दण्डवत् करने के समय सब लोग दण्डवत् न करें। केवल भक्तियुक्त प्रणाम कर दें यही विधि है। तीर्थ की प्राप्ति होने पर आनन्द होना चाहिए कि मुझे तीर्थ प्राप्ति हुई मेरा बड़ा भाग्य है। अतः कहते हैं सबके साथ रामजी को सुख हुआ।

सब अमङ्गलों का मूल सब दुःखों का करनेवाला सब शूलों की उत्पत्ति का कारण पाप है और गङ्गा के समान पापनाशक कोई तीर्थ नहीं है। शास्त्र कहता है : प्रायश्चित्तं तु तत्रैव यत्र गङ्गा न विद्यते। अतः गङ्गा जी को मुदमङ्गलमूल

निराकार ब्रह्म अथवा ब्रह्मद्रवा कहा। यथा : ब्रह्मद्रवेति विख्याता पापानि हर जाह्नवि।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। राम बिलोकहिं गंग तरंगा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई ॥३॥

अर्थ : करोड़ों कथा प्रसङ्ग कहकर रामजी गङ्गा का तरङ्ग देखते हैं। मन्त्री अनुज और प्रिया को देवनदी की महामहिमा कह सुनाया।

व्याख्या : शत सहस्र लक्ष कोटि आदि शब्द बहुवचन वाची हैं। इनका अर्थ बहुत है। दर्शन प्रणाम विश्राम के बाद माहात्म्य कथन श्रवण भी होना चाहिए। इसलिए रामजी अनेक कथा प्रसङ्ग कहते जाते हैं और गङ्गाजी के तरङ्गों के दर्शन का आनन्द भी ले रहे हैं। इस भाँति देवनदी का महामहिमा कथन रामजी ने किया। भाव यह कि गङ्गा माहात्म्य के वक्ता स्वयं रामजी हुए और श्रोता सीताजी लक्ष्मण जी और सुमन्त्रजी हुए।

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रमु यह लौकिक ब्यवहारू ॥४॥

अर्थ : स्नान किया। रास्ते की थकावट दूर हुई। पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिसके स्मरण करने से श्रम का बोझ दूर हो जाता है उसे श्रम होना लौकिक व्यवहार है।

व्याख्या : अदृष्टसुख कहकर अब दृष्टसुख कहते हैं। मज्जन पान से पाप हरण तो होता है यथा : मज्जन पान पाप हर एका। लौकिक सुख भी होता है। मज्जन से रास्ते की थकावट दूर हो जाती है और जल पीने से मन प्रसन्न हो जाता है। ऐसा जल जगतीतल में दूसरा है नहीं। अतः रामजी के मज्जन पान पर भी वही फल कहा गया।

प्रश्न उठता है कि क्या रामजी में संसारियों की भाँति श्रम का संसर्ग माना जायगा। इस पर कहते हैं कि सबसे भारी श्रम तो भवश्रम है। सो तो सरकार के स्मरण से मिट जाता है। जैसे : भवश्रम सोषक तोषक तोषा। उस प्रभु का श्रम के साथ संसर्ग कहना लौकिक व्यवहार है।

दो. सुद्ध सच्चिदानंदमय, कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति सागर सेतु ॥८७॥

अर्थ : सूर्यकुल के पताका रामचन्द्र शुद्ध सच्चिदानन्द मेघ हैं। मनुष्य के अनुरूप चरित्र करते हैं जो संसार सागर के लिए पुल हैं।

व्याख्या : सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से स्वरूप कहा। भानुकुल केतु से अवतार कहा : चरित करत नर अनुहरत से लीला कहा। संसृति सागर सेतु से लोकोपकार कहा। अथवा सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से चिन्मय महाविष्णु कहा।

भानुकुल केतु कहकर रघुकुल में दशरथ के यहाँ जन्म होना जनाया। चरित करत नर अनुहरत कहने से राजते यो महीस्थित: का भाव दर्शाया और संसृति सागर सेतु से स्वस्वरूप प्रदातृत्व गुण का वर्णन किया। यथा : चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ। रघो: कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थित:। रामतापनीये।

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रिय बंधु बोलाई ॥
लिये फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा ॥१॥

अर्थ : यह खबर जब गुहनामी निषाद को लगी बड़ा प्रसन्न होकर प्रिय बन्धुओं को बुलवाया। बहँगी भर कर फल मूल भेंट के लिए और अपार आनन्द के साथ मिलने चला।

व्याख्या : गुहनाम भगवान् स्वामि कार्तिकेय का है। यथा : सेनानीरग्निभूर्गुह:। उस निषाद का भी यही नाम था। यह निषादों का अधिपति था। शृङ्गवेर पुर में रहता था। इसे जब खबर लगी कि सस्त्रीक सानुज रामजी मन्त्री के साथ पधारे हैं तो बड़ा प्रसन्न हुआ। भेंट के लिए फल मूल से बँहगी भर ली। अपने प्रिय भाई बन्धुओं को साथ ले लिया और मिलने चला। रामजी के आने का तो अर्थ ही यह है कि लक्ष्मण जी साथ हैं। पर भगवती सीताजी साथ हैं। यह सुनकर उसे अपार आनन्द हुआ कि युगलमूर्ति का दर्शन करूँगा। मालूम होता है कि गङ्गा स्नान के लिए आये हैं।

करि दंडवत भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकत अति अनुरागे ॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई ॥२॥

अर्थ : भेंट सामने रखकर दण्डवत् प्रणाम किया और अत्यन्त प्रेम से सरकार का दर्शन करने लगा। रामजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश उसे निकट बिठलाया और कुशल पूछी।

व्याख्या : राजा दण्डधर गुरु हैं। इसलिए दण्डवत् प्रणाम किया। रिक्तपाणि होकर : खाली हाथ राजदर्शन का निषेध है। इसलिए भेंट सामने रक्खा। जगदम्बा के दर्शन का अधिकार नहीं है। इसलिए प्रेम से टकटकी बाँधे सरकार का दर्शन कर रहा है।

हाथ बाँधे दूर खड़ा है। उसे सरकार के प्रति स्वाभाविक प्रेम है। किसी कारण से नहीं और सरकार सहज प्रेम के वश में रहनेवाले हैं। अत: उसे बुलाकर अपने निकट बिठलाया और कुशल पूछा। कुशल पूछने का अर्थ ही यह है कि पूछनेवाला कुशल चाहता है। जो अप्रसन्न होता है वह कुशल नहीं पूछता। यथा : दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता। निकट बैठना और कुशल पूछना आदर देना है : सम्मान करना है। हेमदान गजदान तें बड़ो दान सम्मान।

नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयेउँ भागभाजनु जन लेखें ॥
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीच सहित परिवारा ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! आपके चरणों के दर्शन से सब कुशल है। मेरी तो गिनती भाग्यवानों में हो गयी। हे देव ! धरणी धन धाम सब आपका है। मैं तो परिवार के सहित नीच सेवक हूँ।

व्याख्या : सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू। सरकार के चरण आने से सब कुशल है। जगदम्बा भी साथ हैं। अतः कहता है कि आज मेरी गणना भाग्यावानों में हो गयी। यहाँ इस तरह रहना ठीक नहीं है। मेरा तो सब कुछ सरकार का ही है। धरणी आपकी, धन आपका, घर आपका, मैं तो नीच सेवक परिवार के सहित हूँ। अतएव उनका परिवार सहित उपभोग करता हूँ। जब घर मौजूद है तब जगदम्बा संहित यहाँ ठहरना ठीक नहीं। यद्यपि वह जगदम्वा का नाम नहीं लेता है। पर उसके बरताव से यह झलक आती है।

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिय जनु सब लोग सिहाऊ ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयेसु आना ॥४॥

अर्थ : कृपा करिये। पुर में पधारिये। मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाइये। सब लोग मेरे भाग्य की प्रशंसा करें। रामजी बोले : सुजान सखा ! तुमने ठीक कहा। पर पिताजी ने मुझे दूसरे प्रकार की आज्ञा दी है।

व्याख्या : पुर में न उतर कर गङ्गातीर में उतरे सो ठीक ही किया। पर अब तो स्नानादिक सब धर्मकृत्य हो चुके। अब मुझ पर कृपा कीजिये। पुर में पधारिये। पुर में पधारने से मेरी प्रतिष्ठा है। मैं प्रतिष्ठा की हुई मूर्ति की भाँति पूज्य हो जाऊँगा। लोग मेरे भाग्य की सराहना करेंगे।

श्रीरामजी ने उसे सखा सुजान कहकर सम्बोधन किया और कहा कि तुम्हारा कहना ठीक है। सस्त्रीक होने से मेरा पुर में उतरना उचित है। पर जैसा तुमने सुना होगा कि मेरा अभिषेक होनेवाला था सो नहीं हुआ। पिताजी की दूसरे प्रकार की आज्ञा हुई।

दो. बरष चारि दस बासु बन, मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि, गुहहिं भयउ दुख भारु ॥८८॥

अर्थ : चौदह वर्ष वनवास करने की और मुनिव्रत वेष और आहार की आज्ञा हुई है। अतः ग्रामवास मुझे उचित नहीं है। यह सुनकर गुह को बड़ा भारी दुःख हुआ।

व्याख्या : अभी वनवास का प्रारम्भ ही है। इसलिए चारिदस कहते हैं। रामजी ने कहा कि चौदह वर्ष के लिए मुझे वनवास की आज्ञा है और तबतक के लिए मुनियों का व्रत पालन करने मुनियों का सा वेष धारण करने और मुनियों का

सा आहार करने की आज्ञा है। इसलिए अयोध्या छोड़कर वन जा रहा हूँ। ग्रामवास मुझे उचित नहीं है। नहीं तो मैं अवश्य तुम्हारे पुर में जाकर तुम्हारा आतिथ्य स्वीकार करता। मैं जबतक यहाँ ठहरूँगा पुर के बाहर ही रहूँगा।

राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी ॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये वन बालक ऐसे ॥१॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीताजी का रूप देखकर गाँव के नर और नारियाँ कहती हैं कि सखि! वे[1] पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे बालकों को वन में भेज दिया।

व्याख्या : गाँव में समाचार फैलते क्या देर लगती है। बन्धुओं के सहित निषादराज को चलते देखकर गाँव के लोग जुट गये : देव देखि तब बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवै कोऊ। तथा : जग अस जुवति कहाँ कमनीया। ऐसा उन्मादकारक रूप देखकर ग्राम नर नारियों के हृदय में बड़ा प्रेम उमगा। आपस में कहने लगे कि जिसके रूप को देखकर हम लोगों को इतना प्रेम हो रहा है उनके माता पिता का कैसा हृदय है कि उन्होंने ऐसे बालकों को वन भेज दिया। वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का समय नहीं आया है इसलिए बालक कहते हैं।

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोचन लाहु हमहि बिधि दीन्हा ॥
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिसुपा मनोहर जाना ॥२॥

अर्थ : कोई कहता है कि राजा ने अच्छा ही किया। विधाता ने हमको भी लोचन लाभ दे दिया। तब निषादपति ने मन में अनुमान किया तो अशोक का पेड़ मनोहर जँचा।

व्याख्या : आँख होने का यथार्थ लाभ तो यही है कि सरकार के सुन्दर मुखकमल का दर्शन हो। यथा : करहु सुफल सबके नयन सुंदर बदन देखाये। अतः किसी एक ने कहा कि भाई! राजा ने अच्छा किया जो इनको वन भेजा। विधाता ने ऐसा अवसर प्रदान कर दिया कि हमारे नयन भी इनके दर्शन से सफल हो गये।

इधर निषादपति ने मन में अनुमान किया कि ये मनोहर स्थान के रहनेवाले हैं। अतः इन्हें ठहरने के लिए भी मनोहर स्थान चाहिए। अमुक स्थान में अमुक त्रुटि है। ध्यान में अशोक का वृक्ष आया। मन में ठीक ठहराया कि यही मनोहर है। यहाँ सभी सुभीता है।

लै रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा ॥
पुरजन करि जोहारु घर आये। रघुबर संध्या करन सिधाये ॥३॥

अर्थ : रामजी को ले जाकर उस स्थान को दिखलाया। रामजी ने कहा कि

———

१. यहाँ असङ्गति : द्वितीय अलङ्कार है।

यह सब भाँति सुन्दर है। पुर के लोग ज़ोहार करके घर आये और रामजी सन्ध्या करने गये।

व्याख्या : स्वयं तो पसन्द कर लिया पर सरकार को पसन्द हो तब ठीक। इसलिए सरकार को ले जाकर वह स्थान दिखलाया। सरकार को भी पसन्द आगया। कहने लगे कि यह तो सब प्रकार से सुन्दर है। अर्थात् सभी प्रकार का सुभीता भी है।

जिस भाँति आजकल एक हाथ से वन्दना करते हैं अर्थात् सलाम करते हैं। उसी भाँति दोनों हाथ से वन्दना को जोहार कहते हैं। एक हाथ से वन्दना करने का बहुत बड़ा निषेध धर्मशास्त्र में है। सरकार के साथ पुरजन भी उस स्थान पर गये। पसन्द आने पर सरकार के वहीं ठहरने का निश्चय हुआ। तब पुरजन जोहार करके अपने अपने घर आये। तब तक सन्ध्या का समय हो गया। सरकार सन्ध्या के लिए गङ्गातट गये। अहरहः सन्ध्यामुपासीत। वेद की आज्ञा है कि प्रति दिन सन्ध्या करनी चाहिए। प्रातः सन्ध्या और सायं सन्ध्या दोनों ही के लिए विधि है। सरकार सायं सन्ध्या करने गये : रामोपासक को सन्ध्या का परित्याग नहीं करना चाहिए।

गुह सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई ॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी ॥४॥

अर्थ : गुह ने कुश और कोमल पत्तों की मुलायम और सुन्दर साथरी सँवार कर बिछाया और पवित्र फल और मूल जो उसके जाने हुए थे कि मीठे और कोमल होते हैं उन्हें लाकर तथा पानी को भी दोनों में भरकर रक्खा।

व्याख्या : गुहराज दरबार से सम्बन्ध रखता है। उसे मालूम है कि कौन कौन से फल पवित्र हैं। उनमें जो मधुर और मृदु होते हैं उन्हें दोने में भरकर रक्खा और पानी भी दोने में भर भरकर रक्खा। जङ्गली लोग आज भी ऐसा दोना बनाते हैं जिसमें पानी रक्खा जा सकता है : जनश्रुति है कि उसी दिन से मल्लाहों का छुआ हुआ जल ग्राह्य हो गया। क्योंकि रामजी ने उसे ग्रहण कर लिया।

दो: सिय सुमन्त्र भ्राता सहित, कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि, पाय पलोटत भाइ ॥८९॥

अर्थ : सीताजी सुमन्त्र और भाई सहित कन्द मूल फल खाकर रघुवंशमणि रामजी ने शयन किया और भाई पैर दबाने लगे।

व्याख्या : आज दूसरे दिन रात के समय सरकार ने सीताजी सुमन्त्र और लक्ष्मणजी के साथ गुह के लाये हुए फल और मूल का भोजन किया। तत्पश्चात् उसी साथरी पर सोये जिसे गुह ने बिछाकर रक्खा था। लक्ष्मणजी चरणसेवा में लग गये।

उठे लखन प्रभु सोवत जानी । कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी ॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन । जागन लगे बैठि बीरासन ॥१॥

अर्थ : सरकार को सोते हुए जानकर लक्ष्मणजी उठे। मृदु वाणी से मन्त्री को सोने के लिए कहा। कुछ दूर पर धनुष वाण साजकर वीरासन से जागने लगे।

व्याख्या : सरकार को थकावट से नींद जल्द आगयी। निद्रित जानकर उठ गये। उस समय भी पैर दाबने से निद्राभङ्ग का भय था। तब लक्ष्मणजी ने मृदु वाणी से मन्त्री से कहा कि अब आप भी सोइये मैं जागूँगा। आपके जगने की आवश्यकता नहीं है। बिना मन्त्री के सोये और लक्ष्मणजी के हटे जगदम्बा न सोयेंगी।

तब लक्ष्मणजी वहाँ से कुछ दूर जाकर जहाँ से सरकार को देखते भी रहें और विस्पष्ट दिखायी भी न पड़ें वाण को ठीक किया। उसमें लगे हुए पर को ठीक किया। धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाया और वीरासन लगाकर जागने लगे। वीरासन लगाने पर निद्रा नहीं आती : आज से जागना प्रारम्भ हुआ और जबतक सरकार वन में हैं रात्रि को जागकर सरकार की रखवारी करते रहेंगे। यथा : तेहि पाछे लछिमन बीरासन कटि निषंग कर बान सरासन।

गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती । ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती ॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई । कटि भाथी सर चाप चढ़ाई ॥२॥

अर्थ : गुह ने विश्वासपात्र पहरेदारों को बुलाकर स्थान स्थान पर अतिप्रीति के कारण नियुक्त कर दिया और स्वयं कमर में तरकस और हाथों में वाण और चढ़ा हुआ धनुष लेकर लक्ष्मणजी के पास जा बैठा।

व्याख्या : प्रेमी का हृदय पापशङ्की होता है। इसलिए निषादराज ने विश्वासपात्र पहरेदारों को जो शत्रु से मिल न जायँ। मौके मौके पर नियुक्त कर दिया। जिसके कारण वनवास हुआ है उसी के कारण वन में भी चोट हो सकती है। अथवा राजाओं के अनेक गुप्त शत्रु मित्र होते हैं जिनसे सदा सावधान रहना चाहिए।

लक्ष्मणजी को सोने के लिए नहीं कहता स्वयं सुसज्जित होकर उनके पास जा बैठता है। इतनी बड़ी जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेना चाहता। केवल लक्ष्मणजी का सहायक बनता है। लक्ष्मणजी अकेले जागेंगे साथ रहने से बातचीत होती रहेगी। रात कट जायगी।

## श्री लक्ष्मण गीता

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू । भएउ प्रेम बस हृदय बिषादू ॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई । बचन सप्रेम लखन सन कहई ॥३॥

अर्थ : प्रभु को सोते हुए देखकर प्रेम के वश निषाद के हृदय में विषाद हुआ। शरीर पुलकित हो उठा। नेत्रों से जल बहाने लगा। और प्रेम के साथ लक्ष्मणजी से कहने लगा।

व्याख्या : जब निषादराज लक्ष्मणजी के पास बैठे तो सरकार को निहारने का अवसर मिला। यह शयन की झाँकी है : नीदहु बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना। सरकार के शयनागर की शोभा देखे हुए है। अतः शिंशिपा वृक्ष के नीचे सोये हुए देखकर प्रेमवश उसके हृदय में विषाद हुआ।

विषाद से सात्त्विक भाव हुआ। शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। आँसू बहने लगे प्रेम के साथ लक्ष्मणजी से कहने लगा। विषाद से मन की दशा कही। तन पुलकित लोचन जल बहई से तन की दशा कही और बचन सप्रेम लखन सन कहई से वचन की दशा कही।

भूपति भवनु सुभाय सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा॥
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे॥४॥

अर्थ : राजमहल स्वभाव से ही ऐसा सुन्दर है कि इन्द्रासन से उसकी उपमा नहीं हो सकती। मणियों से रचे हुए चौवारे ऐसे मनोहर हैं मानो कामदेव ने उन्हें अपने हाथों सँवारा हो।

व्याख्या : महाराज के महल में सजावट की आवश्यकता नहीं। वे स्वभाव से ही परमसुन्दर बने हुए हैं। उसमें चार द्वारवाले घर : ऊपर के बँगले मणिगण से रचे हुए ऐसे मनोहर हैं कि मालूम होता है कि स्वयं कामदेव ने ही इनकी रचना की है। लंका और अयोध्या का जोड़ है। उधर : तेहिं मय दानव बहुरि सँवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा और इधर : मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रति पति निज हाथ सँवारे।

दो. सुचि सुबिचित्र सुभोगमय, सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनि दीप जहँ, सब बिधि सकल सुपास॥९०॥

अर्थ : वे पवित्र बड़े विचित्र सुन्दर भोगों से पूर्ण फूलों के सुगन्ध से सुवासित रहते हैं। वहाँ सुन्दर पलङ्ग हैं। मणि के दीप हैं। सब प्रकार से सभी सुभीते हैं।

व्याख्या : सोने से ही मनुष्य अपवित्र हो जाता है। उठने पर स्नानादि का विधान है। सो वहाँ का शयनागार पवित्र है। पवित्रता होने पर भी सुन्दरता की कमी नहीं। अति विचित्र है। सब भोग की सामग्रियों से पूर्ण रहता है। सब प्रकार के पदार्थ स्रक् चन्दन वीणा आदि से सुसज्जित रहता है। फूलों के सुगन्ध से सुवासित रहता है। तीव्र गन्धवाले सुगन्ध की भी वहाँ गति नहीं है। सोने के लिए सुन्दर पलङ्ग ठण्ढी रोशनी के लिए मणिदीप कामशास्त्रानुमोदित सभी सामग्री और सभी प्रकार की जहाँ सुविधाएँ हैं।

विविध बसन उपधान तुराईं । छीर फेन मृदु बसन सुहाईं ॥
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं । निज छबि रति मनोज मद हरहीं ॥१॥

अर्थ : दूध के फेन की भाँति मुलायम सुन्दर अनेक प्रकार के कपड़े तकिये और गद्दियाँ थीं । वहाँ राम जानकी सदा सोते थे और अपनी शोभा से रति और कामदेव के गर्व को हरण करते थे ।

व्याख्या : प्रत्येक ऋतु के उपयोगी वस्त्र तथा तकिये और तोशकें वे भी अनेक प्रकार की । मृदुता की पराकाष्ठा है । वे दूध के फेन के समान उज्ज्वल और कोमल हैं । ये सिय राम जिनके लिए चक्रवर्तीजी ने सारे उपभोग एकत्रित कर रक्खे थे । ऐसे भोगमय महल के सोनेवाले हैं । भोग्य की सुन्दरता कहकर भोक्ता की सुन्दरता कहते हैं कि उनकी छवि देखकर रति और कामदेव का गर्व छूट जाता था ।

ते सिय रामु साँथरी सोये । श्रमित बसन बिनु जाहि न जोये ॥
मातु पिता परिजन पुरबासी । सखा सुसील दास अरु दासी ॥२॥

अर्थ : वे सियराम साथरी पर सोये हुए हैं । थके हुए हैं । बिना कपड़े के देखते नहीं बनता । माता पिता कुटुम्बी पुरवासी सखा सुशील दासी और दास ।

व्याख्या : ऐसे परम सुन्दर तथा सुरदुर्लभोपभोग में पले हुए सियराम साथरी पर सोये हुए हैं । प्रश्न उठता है कि ऐसे सुखों में पले हुए को ऐसी साथरी पर नींद कैसे आयी ? इस पर कहना हैं कि थके हुए हैं । यथा : श्रमित भूप निद्रा अति आई । एक चादर शरीर ढकने के लिए नहीं है । कहाँ : रति मनोज छबि हरही और कहाँ : जाहि न जोये ।

माता पिता सब प्रकार का सार सँभार करनेवाले यथा : सब कर सार संभार गोसाईं । करव जनक जननी की नाईं । परिजन पुरवासी सब प्रेम करनेवाले यथा : पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं । सब सुचि सरस सनेह सगाईं । सेवक सेव्यभाव रखनेवाले सखा यथा : सेवक हम स्वामी सिय नाहू । होउ नात एहिओर निबाहू और अनन्य गतिक दास और दासी ।

जोगवहिं जिन्हहिं प्रान की नाईं । महि सोवत तेइ रामु गोसाईं ॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ । ससुर सुरेस सखा रघुराऊ ॥३॥

अर्थ : जिसकी प्राण की भाँति रक्षा करते थे । वे राम गोसाईं पृथ्वी पर सो रहे हैं । जिसके जनक जैसे पिता हैं जिनका प्रभाव जगत में विदित है । जिसके ससुर इन्द्र के मित्र रघुराज दशरथ हैं ।

व्याख्या : ऐसे माता पिता ऐसे परिजन पुरवासी ऐसे सखा ऐसे दास दासी जिनकी रात दिन चारों ओर से प्राण की भांति रक्षा करते थे वे भगवान् रामचन्द्र पृथ्वी पर सो रहे हैं । इससे अधिक अनर्थ क्या होगा ?

स्त्री के भाग्य का निर्णय पिता ससुर और पति के योग्य मिलने पर निर्भर

है। सो जिनके पिता महाराज जनक : कौन हैं जो उनके प्रभाव को न जानता हो। जिनके ससुर महाराज दशरथ : आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंहासन आसन देई। स्वयं देवराज इन्द्र के मित्र।

रामचंदु पति सो बैंदेही। सोवति महि बिधि बाम न केही ॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करमु प्रधान सत्य कह लोगू ॥९॥

अर्थ : जिसके रामचन्द्र से पति हों वह वैदेही पृथ्वी पर सो रही है। विधाता किसके विपरीत नहीं हो जाते। राम जानकी क्या वन के योग्य हैं। लोग ठीक कहते हैं कि कर्म ही प्रधान है।

व्याख्या : जो वड़ होत सो राम बड़ाई। वे रामचन्द्र जिसके पति हों। भाव यह कि जिसको पिता ससुर और पति लोकोत्तर मिले वह भगवती सीता पृथ्वी पर सोवें। इनके भूमि पर सोने का कोई कारण ही नहीं। सिवा विधाता की करनी के और क्या कहा जा सकता है? बिधि क़रतब पर कछु न बसाई।

बनहित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय सुख भोरी। कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू। कोल किरात विषय सुख जानते ही नहीं वे कानन योग्य हैं। तपस्वी लोग विषय सुख से अपरिचित नहीं हैं। पर तपस्या के लिए उसे छोड़ रक्खा है। वे भी कानन योग्य हैं। पर ऐसे सुख में पले हुए नवीन अवस्थावाले राम जानकी क्या वन के योग्य हैं। वे आँखों में रखने योग्य हैं। यथा : ये रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं। सो इन्हें वनवास मिल गया। अतः कर्म ही प्रधान है। निषाद शास्त्र नहीं पढ़े हैं। अतः कहता है : सत्य कह लोगू। यहाँ निषादराज को मोह हुआ। उसने नहीं समझा कि प्रभु के जन्म कर्म दिव्य हैं। वे ईश्वर हैं। अपनी इच्छा से शरीर धारण करते हैं और ऐसी लीला करते हैं जिसे सुनने समझनेवालों को परमपद की प्राप्ति होती है। जिस भाँति जीव कर्मवश दुःख सुख के भागी रहते हैं। उसी भाँति रघुनाथजी को समझकर उसे मोह हुआ। विषाद होने पर ही अर्जुन को गीता का उपदेश हुआ। उसी भाँति निषादराज को मोह होने पर साक्षात् भगवान् रामानुज गीता का उपदेश करते हैं।

दो. कैकय नंदिनि मंदमति, कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहि रघुनंदन जानकिहि, सुख अवसर दुखु दीन्ह ॥९१॥

अर्थ : मन्दमति कैकय की बेटी ने घोर कुटिलपन किया। जिसने राम जानकी को सुख के अवसर में दुःख़ दिया।

व्याख्या : कैकयनन्दिनी तो रघुकुल कमल चन्दनी हैं। राजा कैकय भले ही नाती का राज्य सुनकर प्रसन्न हों पर रघुकुल का तो इसने नाश कर दिया। मन्दमति है। अवसर चूक गयी। सदा राम को प्राण के समान मानती रही। जब राम के अभिषेक का समय आया तब इसे उसी भाँति अनुमोदन करने में आगे होना था। सो इसने वनवास माँगा। राम जानकी को जो जगत् के हित हैं

दुःख दिया। यह उसका कुटिलपन है और सुख के अवसर पर दुःख दिया। यह कठिन कुटिलपन है।

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सबु बिस्व दुखारी ॥
भयउ बिषाद निषादहिं भारी। राम सीय महि सयन निहारी ॥१॥

अर्थ : यह सूर्यकुलरूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी रूप बन गयी। इस कुबुद्धि ने सारे विश्व को दुःखी कर दिया। राम सीय का पृथ्वी पर सोना देखकर निषाद को भारी विषाद हुआ।

व्याख्या : महाराज ने कहा था : जनि दिनकर कुल होसि कुठारी। आज वही बात निषादराज कह रहे हैं। कुल्हाड़ी लोहे की होती है। पर उसका बेंट काठ का ही होता है। बेंट से सम्बद्ध होकर ही वह वृक्ष काटने में समर्थ होती है। इसी भाँति कैकेयी कैकय देश की है। पर रघुवंश से सम्बद्ध होने के कारण आज वह दिनकर कुलरूपी विटप के काटने में समर्थ हो रही है। कुमति है : जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना। सो इस कुमति ने तो सारे विश्व को दुःखी कर दिया। यथा : राम गवन बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल विश्व भइ सूला। इस भाँति निषादराज भगवती कैकेयी का दो अपराध बतलाते हैं। १. राम जानकी को सुख अवसर में दुःख देना और २. सम्पूर्ण विश्व को दुःखी करना।

राम जानकी का महीशयन देखकर सभी देखनेवाले को विषाद हुआ। पर निषाद को भारी विषाद हुआ : संसार से विषण्णा होने पर ही ज्ञानोपदेश की पात्रता होती है। अतः इसे लक्ष्मणजी उपदेश करेंगे। इस उपदेश को महात्माओं ने लक्ष्मणगीता के नाम से अभिहित किया।

बोले लखनु मधुर मृदुबानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी ॥
काहु न कोउ सुखदुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥२॥

अर्थ—ज्ञान विराग भक्ति रससानी मधुर मृदुवाणी लक्ष्मणजी बोले। कोई भी किसी को सुख दुःख का देनेवाला नहीं है। हे भाई! यह सब अपने किये हुए कर्म के भोग का फल है।

व्याख्या : भगवती कैकेयी पर निषादराज ने जो दोषारोपण किया है उसका निराकरण करना है तथा निषादराज ऐसे हितचिन्तक का मोहापनयन करना है अतः शिक्षा ग्रहण के लिए प्रार्थना न करने पर भी लक्ष्मणजी की प्रवृत्ति उसको उपदेश देने की ओर हुई। निषादराज की उक्तिः कैकयनंदिनि मंद मति कठिन कुटिलपन कीन्ह। जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुःख दीन्ह। तथा : कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी का खण्डन करना है। अतः मधुर मृदुवाणी बोले जिससे उसे अरुन्तुद प्रतीत न हो और उसके मोह को दूर करना है। इसलिए ज्ञान विराग भक्ति रससानी वाणी बोले।

कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी का उत्तर देते हैं। निषादराज ने पहिले कहा था : कर्म प्रधान सत्य कह लोगू और फिर कैकेयीजी को दोष देने लग गया कि उन्होंने रघुनन्दन जानकी को सुख के अवसर पर दुःख दिया। ये दोनों बातें एक दूसरे के विरुद्ध हैं। मोह होने पर लोग इसी प्रकार से सोचा करते हैं। स्थिर नहीं कर सकते कि वस्तुस्थिति क्या है? इस पर लक्ष्मणजी कहते हैं कि जो तुम भगवती कैकेयी को दुःखदाता समझ रहे हो यह तुम्हारी भूल है। जीव तो कर्मवश दुःख सुख का भागी होता है। जैसा कर्म करता है वही उसका फल भोगता है। यही वेद की नीति है और सभी इसे मानते हैं। कर्म जड़ है स्वयं फल नहीं दे सकता। ईश्वर फलदाता है। वह शुभकर्म का शुभफल और अशुभ कर्म का अशुभ फल हृदय में विचार कर देता है। अतः कहा है : सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा। कोई सुख दु.ख का देनेवाला नहीं। दूसरा कोई देता है यह कुबुद्धि है। कर्म किया कैकेयी ने और दुःख पाया विश्व ने यह मानना अपसिद्धान्त है। विश्व के अशुभ कर्म के बिना उदय हुए विश्व को दुःख नहीं मिल सकता।

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करम अरु कालू ॥३॥

अर्थ : मिलना और बिछुड़ना बुरे और भले भोग शत्रु मित्र और मध्यस्थ ये भ्रम के फन्दे हैं। जन्म मरण जहाँ तक संसार का जाल है सम्पत्ति विपत्ति कर्म और काल।

व्याख्या : श्रीलक्ष्मणजी कहते हैं कि दुःख सुख का होना भी व्यावहारिक सत्य है पारमार्थिक सत्य नहीं है। क्योंकि विषय और इन्द्रिय का संयोग ही शीत उष्ण सुख दुःख के देनेवाले हैं। ये उत्पत्ति विनाशशील एवं अनित्य हैं। यथा : मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः। आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत : गीतायाम्। असङ्ग आत्मा को योग वियोग कहाँ? और जब योग वियोग नहीं तब दुःख का संयोग कैसा और उनके देनेवाले हित अनहित मध्यस्थ कहाँ से आगये। इसीलिए कहा है : शत्रु मित्र मध्यस्थ तीन ये मन कीन्हें बरिआई। त्यागव गहव उपेक्षणीय अहि हाटक तृन की नाई। अतः योग वियोग भल मन्द भोग और शत्रु मित्र मध्यस्थ भाव ही भ्रम है। इसी से लोग बँधे हैं। आगे चलकर उस जाल का भी निरूपण करेंगे। जिसमें ये सात प्रकार के फन्दे लगे हुए हैं।

वह जाल जिसके फन्दे में सभी संसारी जीव फँसे हैं यही जगत् है। वह जन्म से लेकर मरण तक फैला हुआ है। पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्। इसी जाल में फँसा हुआ जीव जन्म मरण का अनुभव सदा किया करता है। इसमें परमार्थ कुछ भी नहीं। सब व्यावहारिक है। सम्पत्ति विपत्ति भी वास्तविक नहीं। सबके सब क्षणिक हैं।

धरनि धामु धनु पुर परिवारू । सरगु नरकु जँह लगि ब्यवहारू ॥
देखिय सुनिय गुनिय मनमांहीं । मोह मूल परमारथ नांहीं ॥४॥

अर्थ : धरती, गृह, धन, पुर, परिवार, स्वर्ग, नरक आदि जहाँ तक व्यवहार है देखिये सुनिये मनमें विचार कीजिये तो सबका कारण मोह है। ये कोई परमार्थ नहीं है।

व्याख्या : उनके कारण कर्म और काल की भी व्यावहारिक सत्ता है। निष्क्रिय आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं। अतः ममता के आस्पद धरणो धाम पुर परिवार यहाँ तक कि स्वर्ग और नरक सब क्षयिष्णु हैं। इनमें भी कोई टिकाऊ नहीं। अतः सब असत्य हैं। सत्य तो वही है जिसमें देशतः कालतः वस्तुतः व्यभिचार न हो।

आँखों देखते हैं कि इस जगत् में कहीं किसी पदार्थ में क्षणमात्र के लिए स्थिरता नहीं है। परिवर्तन ही जगत् का स्वरूप है। कहाँ गये पिता पितामह जिनके गोद में स्वर्गीय आनन्द के भोग का अनुभव होता था ! कहाँ गये वे मित्र जिनके साथ में दुःख भूल जाते थे ! कहाँ गये वे महाप्रतापी सम्राट् जिनके विषय में सुना जाता है कि अपने धनुष की कोटि से पर्वतों को हटा हटाकर पृथ्वी के जोतने बोने योग्य बनाया ! नगर ग्राम बसाकर मनुष्य को समाज बाँधकर रहना सिखाया ! मन में विचारते हैं तो कहीं कोई सत्य हाथ नहीं आता। किसी वस्तु में सुख दुःख स्थायी नहीं है। जो वस्तु गरमी में दुःखद है वही जाड़े में सुखद हो जाती है। जो वस्तु एक देश में जैसा प्रभाव दिखाती है दूसरे देश में उसका दूसरा प्रभाव हो जाता है। स्वतः न कोई वस्तु सुखद है न दुःखद है न किसी में स्थिरता है। अतः कुछ भी पारमार्थिक सत्य नहीं है। अपना अज्ञान ही इन सबका मूल है। आत्म-स्वरूप के ज्ञान से इनका अभाव प्रत्यक्ष भासता है।

दो. सपने होइ भिखारि नृपु, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥९२॥

अर्थ : सपने में राजा भिखारी हो जाता है और दरिद्र इन्द्र हो जाता है। जागने पर न कुछ हानि है न लाभ है। इसी प्रकार से इस संसार को भी जी से जानो।

व्याख्या : सपना प्रातिभासित सत्य है। उस काल में वह सत्य ही प्रतीत होता है। किसी को यह प्रतीति नहीं होती कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। जो देख रहा हूँ वह मिथ्या है। सभी उस समय उसको सत्य मानते हैं। सिंहासन पर सोया हुआ राजा सपने में अपने को अति दीन दरिद्रावस्था में पाता है। उसे उस समय अपना राजा होना नहीं भासता। सिंहासन में ही लेटा हुआ उसे अपनी दीनता दरिद्रता ही सच्ची मालूम पड़ती है। इसी भाँति महादरिद्र सपने में देखता है कि इन्द्र हो गया। सब देवता ऋद्धि सिद्धि हाथ बाँधे खड़ी हैं। उस समय भी वह दरिद्र ही है।

पर निद्रादोष के हटते ही वह भ्रम जाता रहता है। उससे न राजा की कोई हानि हुई और न उस दरिद्र का कोई लाभ हुआ।

लक्ष्मणजी कहते हैं कि यह प्रपञ्च : व्यावहारिक सत्य भी सपना ही है। भेद इतना ही है कि यह सपना अधिक स्थायी है। वह सपना निद्रादोष से था। यह सपना मायादोष से है। जिस भाँति निद्रादोष की निवृत्ति से वह सपना नहीं रह जाता।

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू॥
मोह निसा सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥१॥

अर्थ : ऐसा विचारकर न क्रोध करना चाहिए और न किसी को दोष देना चाहिए। सब मोह रात्रि में सोनेवाले हैं। अनेक प्रकार के सपने देख रहे हैं।

व्याख्या : जगत् को भी सपना रूप जानो। यथा : उमा कहौं मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना। विचार तो करो सपने में का शत्रु मित्र, सपने में का हानि लाभ तो अपने स्वरूप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। सपने में तो कोई दूसरा रहता नहीं। आप ही अपना शत्रु बन जाता है और आप ही अपना मित्र बन जाता है फिर दोष किसे दें? सपने में जिसे शत्रु रूप देखा था क्योंकि उसने हानि की थी। जागने पर तो कोई उसे न शत्रु मानता है और न उस हानि को हानि समझता है। जानता है कि वह मिथ्या प्रपञ्च था। अतः न तो रोष करना चाहिए और न किसी को दोष देना चाहिए। भगवती कैकेयी को दोष देना सर्वथा असङ्गत है।

जिस भाँति सूर्य के न होने से रात होती है उसी भाँति ज्ञानसूर्य के अभाव से मोहरात्रि होती है। जिस भाँति रात को सब सोते हैं और अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं उसी भाँति मोहरात्रि में सब सो रहे हैं और जागृतरूप अनेक प्रकार के स्वप्न देख रहे हैं। रात्रि के स्वप्न में जिस भाँति जाग्रत् का भान होता है। सभी स्वप्न देखनेवाले अपने को जागता हुआ ही मानते हैं। उसी भाँति मोहरात्रि में सोनेवालों का यह जागना भी स्वप्न ही है। यह जागना सच्चा जागना नहीं है। क्योंकि मोहनिशा के दूर होने पर इसका बाध देखा जाता है।

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥२॥

अर्थ : इस जगत्रूपी रात्रि में जोगी जागते हैं जो परमार्थी हैं और संसार से जिसका बिछोह है। इसमें जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए जब सभी विषय विलास से उसे वैराग्य हो।

व्याख्या : यही संसाररूपी रात्रि है। इसमें सपना देखनेवाले अपने को मिथ्या ही जागता हुआ मानते हैं। इसमें सच्चे जागनेवाले जोगी हैं। क्योंकि वे ही पारमार्थिक सत्य का साक्षात्कार करते हैं। इस स्वप्नरूपी प्रपंच का उनके लिए

सर्वथा बाध हो जाता है। वे व्यावहारिक सत्य को उसी भाँति मिथ्या अनुभव करते हैं जिस भाँति प्रातिभासिक सत्य उन्हें मिथ्या मालूम होता है। यथा : जेहि निसि सकल जीव सूतैं तव कृपापात्र जन जागैं। भाव यह कि जिस ओर योगी लोग जाग रहे हैं उस ओर संसारी लोग सोये हुए हैं और जिस ओर संसारी लोग जाग रहे हैं उस ओर योगी लोग सो रहे हैं। जैसे जिस समय उल्लू को दिखायी पड़ता है उस समय कौवा को नहीं सूझता और जिस समय कौवा को सूझता है उस समय उल्लू को नहीं सूझता। यही मति संसारी लोगों और योगियों की है।

अब सच्चे जागे हुए का लक्षण कहते हैं। जब तक चित्त में विषय विलास का राग है तबतक मोह निद्रा बनी हुई है। जब सब विषय विलास से विराग हो तब जानिये कि जीव जाग गया। अतः रामानुरागी ही सच्चे जागनेवाले हैं। यथा : रमा बिलास राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड़ भागी। भगवान् भी यही कहते हैं कि सभी योगियों में वे ही उत्तम है। जो मेरा भजन करते हैं। यथा : योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः। गीतायाम्।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू ॥३॥

अर्थ : विवेक होता है मोह भ्रम भाग जाता है। तब रघुनाथ के चरणों में अनुराग होता है। हे सखा ! परम परमार्थ यही है कि मनसा वाचा कर्मणा रामपद में अनुराग हो।

व्याख्या : जब तक विषय विलास में विराग नहीं होता तब तक विवेक नहीं होता। केवल शास्त्रीय ज्ञान से पूरा काम नहीं चलता। विवेकज ज्ञान से ही मोह का नाश होता है। पहिले अज्ञान होता है तब विपरीत ज्ञान होता है। विपरीत ज्ञान ही भ्रम है। विवेकज ज्ञान से भ्रम और उसके मूल मोह का नाश होता है। भ्रम और मोह के रहते रघुनाथजी के चरण में अनुराग नहीं होता। भगवान् गीता में कहते हैं कि पापी मोह में फँसे हुए जिनका ज्ञान माया से अपहरण हो गया है ऐसे अधम पुरुष मेरे शरण नहीं आते। अतः मनसा वाचा कर्मणा रामजी के चरणों में प्रेम होना ही परम पुरुषार्थ है। क्योंकि मोक्ष सुख भी बिना हरिभक्ति के ठहर नहीं सकता और सगुणोपासक तो मोक्ष चाहते ही नहीं। यथा : साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥४॥

अर्थ : राम ब्रह्म परमार्थ रूप हैं। अव्यक्त, अलक्ष्य, अनादि और अनूप हैं। सब विकारों से रहित और भेद रहित हैं। उन्हें न इति न इति कहकर वेद निरूपण करते हैं।

व्याख्या : कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी का उत्तर देकर : जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह का उत्तर रामजी के स्वरूप का निरूपण करके देते हैं। रामजी जीव नहीं हैं। वे ब्रह्म हैं। देशतः कालतः और वस्तुतः अपरिच्छिन्न हैं। इसलिए वे ही परमार्थं सत्य हैं। अरूप होने से अव्यक्त हैं। मन और वाणी से परे होने से अलख हैं। अथवा स्थूल दृष्टि से नहीं देखे जा सकने से अलख कहा। सबके आदि होने से अनादि कहा। अद्वितीय होने से अनूप कहा। यथा : जग सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप शिरोमने। चिदानन्द मय होने से विकार रहित कहा। यथा : चिदानन्दमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी। सर्वगत होने से भेदरहित कहा। इदमित्थं रूप से नहीं कहे जा सकने के कारण वेद नेति नेति कहकर निरूपण करते हैं : अथवा वेद नेति नेति कहकर अर्थात् यह भी नहीं यह भी नहीं अथवा स्थूल भी नहीं सूक्ष्म भी नहीं कहकर सब प्रकार के विशेषों का निषेध करते हैं। ऐसे प्रभु जिस भक्ति के अनुरोध से देह धारण करते हैं वह भक्ति महा प्रभावा है।

दो. भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहिं जग जाल ॥९३॥

अर्थ : वे कृपालु हैं। भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ, देवता के लिए मनुष्य शरीर धारण करके लीला करते हैं। उसके सुनने से जग जाल मिट जाता है।

व्याख्या : अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहि परमारथवादी। नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा। संभु बिरंचि बिस्नु भगवाना। उपजहि जासु अंस ते नाना। ऐसउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई। यद्यपि प्रभु जगत् से विलक्षण हैं। पर जगत पर कृपा करके भक्त, भूमि ब्राह्मण, गौ और देवताओं के लिए अर्थात् साधु के दुःख निवारण के लिए वही रामजी मनुष्यरूप धारण करके लीला कर रहे हैं। जेहि कहत गावत सुनत समुझत परमपद नर पावई। उस चरित के सुनने से जग जाल मिट जाता है। अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से रहित हो जाता है। यह चरित की अद्भुत महिमा है :

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू॥
कहत राम गुन भा भिनुसारा। जागे जग मंगल सुखदारा ॥१॥

अर्थ : हे सखा ! ऐसा समझकर मोह को छोड़ो और सिय रघुवीर के चरणों में प्रेम करो। इस भाँति रामजी के गुणों को कहते कहते सबेरा हो गया और सुखरूप स्त्रीवाले जगमङ्गल रामजी जागे।

व्याख्या : उपसंहार करते हुए लक्ष्मणजी ने कहा कि हे सखा ! रामजी ब्रह्म हैं। जगत् के मङ्गल के लिए अवतीर्ण होकर नर चरित कर रहे हैं। ऐसा समझकर मोह को छोड़ दो। जाग जाओ। इनको प्राकृत नर समझकर विषाद न करो। इनके स्वरूप को न पहचानकर इन्हें मनुष्य मानना ही मोह है। परमार्थ

रूप ब्रह्म ही सिय रघुवीर रूप से दो मूर्ति धारण किये हुए हैं। अतः इनके चरणों में भक्ति करो। तुम्हें विषयों में राग है इससे इन्हें दुःखी समझ रहे हो।

इस प्रकार से रामगुण कहते कहते रात बीत गयी। समय का कुछ भान ही न रहा। एहि बिधि कहत रामगुन ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य बिश्रामा। सोने से जगत् को विश्राम मिलता है। यहाँ जागने से अनिर्वाच्य विश्राम मिला है। सवेरा होते ही सुखरूप दारा हैं जिसकी अर्थात् साक्षात् आह्लादिनी शक्तिरूपा जिनकी स्त्री सीताजी हैं वे जगत् के मङ्गल करनेवाले रामजी जागे।

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मँगावा ॥
अनुज सहित सिर जटा बनाये। देखि सुमंत्र नयन जल छाये ॥२॥

अर्थ : पवित्र और सुजान रामजी ने पहिले सब शौचविधि की फिर स्नान किया। तत्पश्चात् वटवृक्ष का दूध मँगाया। भाई के सहित जटा बनाया। जिसे देखकर सुमन्त्रजी की आँखों में आँसू आगये।

व्याख्या : शौच दो प्रकार का होता है। ध्यानादि मानसिक शौच है और शरीर की शुद्धि शारीरिक शौच है। रामजी स्वभाव से ही पवित्र हैं। फिर भी शास्त्रानुमोदित रीति से दोनों प्रकार का शौच करके स्नान किया। जब से घर से चले हैं तभी से मुनिव्रत और आहार चल रहा है। वल्कल धारण कर ही लिया है। अब मुनिवेष की पूर्ति के लिए जटा बनाना शेष है। सुमन्त्रजी किसलिए साथ आये हैं इस बात को समझ रहे हैं। अतः अपना अभिप्राय उनको सुस्पष्ट कर देने के लिए तुरन्त वटक्षीर मँगाया और दोनों भाइयों ने जटा बना ली। देखते ही सुमन्त्र समझ गये कि ये दोनों भाई लौटनेवाले नहीं हैं। बड़े सुजान हैं। जटा बनाकर ही जो कहना था कह दिया। अतः इस भाँति निराश होने से सुमन्त्रजी के नेत्रों में जल आगया। दूसरी बात यह कि सुमन्त्रजी पुत्र की भाँति स्नेह करते हैं। इनको जटा धारण किये हुए देखकर प्रेम उमड़ पड़ा। अतः आँखों में आँसू आगये।

हृदयँ दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना ॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लै रथु जाहु राम के साथा ॥३॥

अर्थ : कलेजे में अत्यन्त दाह उत्पन्न हो गया। मुख मलिन हो गया। हाथ जोड़कर दीन वचन बोले कि हे नाथ! कोसलनाथ ने कहा कि तुम रथ लेकर रामजी के साथ जाओ।

व्याख्या : सुमन्त्रजी के हृदय में दाह तो पहिले ही से था जटा धारण किये हुए देखकर वह दाह बहुत बढ़ गया। अतः उसका प्रभाव मुख पर पड़ा। मुख मलिन हो गया। समझा कि यही समय निवेदन का है। अतः हाथ जोड़कर अति दीन वचन बोले। हृदय दाह अति से मन की दशा कहा। बदन मलीना से तन की दशा कहा। बचन अति दीना कहकर वचन की दशा कह रहे हैं।

सुमन्त्रजी ने कहा कि आप भी मेरे नाथ हैं। पर कोसलनाथ सबसे बड़े हैं। उनकी आज्ञा आप को भी शिरोधार्य है। वे नहीं चाहते कि आप पैदल चलें। इसीलिए रथ लेकर मुझे भेजा। आपके लिए मुनि व्रत बेष आहार की जो आज्ञा थी वह जटा बना लेने से पूरी हो गयी। अब आगे क्या करना चाहिए उसके लिए भो आज्ञा हुई है।

बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥
लखनु राम सिय आनेहु फेरी। संसय सकल सँकोच निबेरी ॥४॥

अर्थ : वन दिखाकर गङ्गा स्नान कराकर दोनों भाइयों को जल्दी लौटा लाना। सब संशय और सङ्कोच को दूर करके लक्ष्मण राम और सीता को लौटा लाना।

व्याख्या : सो आपने वन भी देख लिया। गङ्गा के उस पार वन है और गङ्गा स्नान भी कर लिया। रथ साथ है। लौट चलिये यही आज्ञा है। वन से आपका चक्षुः संयोग हो गया। यह संशय न कीजिये कि पिता की आज्ञा तो चौदह वर्ष के लिए थी। अब दूसरी आज्ञा चार दिन के लिए हुई तो इनमें से मैं किसे मानूँ। सो चौदह वर्ष की अवधि को ही सङ्कुचित करके चार दिन किया गया है। मैं मन्त्री हूँ। महाराज के प्रतिनिधि के नाते कह रहा हूँ। यह भी संशय न कीजिये कि आज तो लौट चलें। कल फिर कैकेयी की सम्मति से न जाने कैसी आज्ञा हो। सो कुछ न होगा। अब कैकेयी का कुछ सुना न जायगा। यह सङ्कोच भी न कीजिये कि जब वन के लिए चल पड़े तो लौटें क्या ? मैं स्वयं महाराज की आज्ञा से रथ लेकर लौटाने के लिए आया हूँ। इसमें आपके लिए सङ्कोच की कोई बात नहीं है।

दो. नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहइ करौं बलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥९४॥

अर्थ : महाराज ने ऐसा कहा है। हे नाथ ! मैं बलैया लेता हूँ। अब जैसी आपकी मर्ज़ी हो वैसा करूँ। इस प्रकार से प्रार्थना करके पैर पर गिर पड़े और बालक की भाँति रो दिया।

व्याख्या : सुमन्त्रजी कहते हैं कि महाराज की तो ऐसी आज्ञा हुई है। परः राम रजाइ भेंट मन माँहीं। देखा सुना कतहुँ क.उ नाँहीं। अतः मैं बलि जाऊँ। अब आप जो कहैं सो मैं करूँ। ऐसा कहकर सुमन्त्रजी पैर पर गिर पड़े वे समझते थे कि दूसरी आज्ञा को प्रियप्रेमप्रमाद समझकर स्वीकार नहीं करेंगे। अतः उसके स्वीकार करने के लिए अनेक प्रकार से विनती की और बच्चों की भाँति फूट फूट कर रोने लगे।

तात कृपा करि कीजिअ सोई। जातें अवध अनाथ न होई ॥
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम सब सोधा ॥१॥

अर्थ : हे तात ! कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। मन्त्री को रामजी ने उठाकर समझाया कि आप तो धर्म के सब सिद्धान्त समझे बूझे हैं।

व्याख्या : मन्त्री के विनय का सार इतना ही था कि यद्यपि कोई नियम ऐसा नहीं है जिससे कि आप लौट चलने को विवश हों। पर कृपाभिक्षा दीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। आपके बिना अयोध्यानाथ के रहते हुए भी अयोध्या अनाथ हो जायगी। ऐसी विनती पैर पर पड़े हुए सुमन्त्रजी कर रहे हैं।

सुमन्त्रजी पैर पर गिरे थे इसलिए रामजी ने उठाया। बच्चों की भाँति रो रहे थे इसलिए समझाया कि धर्मशास्त्र आपका भली भाँति जाना हुआ है। आप पिताजी को भी उपदेश देनेवाले हैं। आप ऐसा कैसे कहते हैं। धर्म के लिए कष्ट सहना ही तो धर्म पालन है। जो कष्ट को डरेगा वह धर्माचरण क्या करेगा ? अतः कष्ट के लिए धर्म नहीं छोड़ा जा सकता।

सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना ॥२॥

अर्थ : शिवि दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों कष्ट सहे। रन्तिदेव और सुजान बलि राजा ने नाना संकट सहकर भी धर्म को नहीं छोड़ा।

व्याख्या : श्रीरामचन्द्र महाजनों का उदाहरण देते हैं कि राजा शिवि अपने शरीर का माँस अपने हाथ से काट काटकर कपोत के साथ तौलते गये। शरणागत होने पर भी कपोत ने कपट किया। वह भारी होता गया। राजा अपने बात से न हटा। सारा शरीर काट डाला। दधीच ऋषिने देवताओं की याचना करने पर अपनी शरीर की हड्डी दे दी। राजा हरिश्चन्द्रने राज्य दिया। स्वयं चाण्डाल के हाथ बिके। इन महाजनों ने धर्म के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहे और महाजन जिस रास्ते से गये हों वही रास्ता है। रन्तिदेव ने अपना सर्वस्व दान कर दिया। बाल बच्चों के साथ अड़तालीस दिन बिना अन्न के रह गये। अन्न मिलते ही अतिथि लोग पहुँच गये। महाराज रन्तिदेव ने प्रसन्नतापूर्वक सब अन्न उनको खिला दिया। अपने लिए पानी भी न रक्खा। राजा बलि दान देने में ठगे गये। तीन पग के व्याज से तीनों लोक उनसे ले लिया गया। उस महात्मा ने यह भी नहीं कहा कि जिस रूप से दान लिया था उसी रूप से पृथ्वी नापो। अन्त में उन्हें नागपाश से बाँधा गया। पाताल भेज दिये गये पर धर्म नहीं छोड़ा। इन महाजनों ने रास्ता दिखला दिया कि कष्ट के समय में धर्मपालन ही सच्चा धर्मपालन है। कष्ट ही धर्मपरीक्षा का समय है। बड़े धर्मात्माओं को बड़ा कष्ट उनकी धर्मपरीक्षा के लिए आता है। अतः परीक्षा काल में दृढ़ता की आवश्यकता है।

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना ॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा ॥३॥

अर्थ : शास्त्रों वेदों और पुराणों में कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। मैंने उसी धर्म को सुलभ करके पाया है। छोड़ने से तीनों लोक में अपकीर्ति होगी।

व्याख्या : वेद कहता है। सत्यं वद : धर्मशास्त्र कहता है : सत्यान्नास्ति परो धर्मः। इतिहास पुराण कहते हैं : धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्। न स धर्मो यत्र न सत्यमस्ति। अतः सत्य सब धर्मों से बड़ा होने में सब शास्त्रों का ऐकमत्य है। वही सत्य मुझे सुलभ रीति से प्राप्त हुआ है। मुझे धर्मपरीक्षा में उत्तीर्ण होने में बड़ी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ रहा है। केवल चौदह वर्ष वनवास करने से ही मैं धर्मपरीक्षा में उत्तीर्ण हो जाऊँगा। यदि इस समय मैंने कच्चाई की तो बड़ा भारी अपयश होगा कि रामचन्द्र धर्म के लिए चौदह वर्ष वन जाने को भी तैयार न हुए।

संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दियें उतरु फिर पातकु लहऊँ॥४॥

अर्थ : प्रतिष्ठित पुरुष को अपयश होने से करोड़ों मरण के समान घोर दाह होता है। हे तात ! आपसे बहुत क्या कहें उलटकर जवाब देने से पाप होगा।

व्याख्या : वन जाने से धर्म का लाभ है और न जाने से प्रत्यवाय है। सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते। प्रतिष्ठित पुरुष की अकीर्ति मरणदाह से कहीं अधिक दाहक हाती है। भाव यह कि आप लोग मुझे दुःखी मानकर इतने दुःखी हैं। पर मेरा भला इस समय वन जाने में ही है। वन न जाने में मरणान्त वेदना होगी। अतः मेरे ऊपर दया करके मेरे लिए दुःखी न होइये।

आप स्वयं बड़े जानकार हैं। स्वयं इन बातों को खूब समझते हैं। आप पूज्य हैं। आपकी बात काटकर उत्तर देने से पाप होता है। अतः अधिक कहना सुनना व्यर्थ है।

दो. पितु पद गहि कहि कोटि नति, बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहुँ बात कै, तात करिअ जनि मोरि॥९५॥

अर्थ : पिताजी का चरण पकड़कर करोड़ों नमस्कार करके : मेरी ओर से हाथ जोड़कर विनय कीजियेगा कि आप मेरे लिए किसी बात की चिन्ता न करें।

व्याख्या : सुमन्त्रजी ने कहा था : नृप अस कहेउ गोसाईं जस कहउँ करउँ बलि सोइ। इसी के उत्तर में कहते हैं कि आप जाकर मेरी ओर से चरण पकड़कर पिताजी से करोड़ों प्रणाम कहियेगा और हाथ जोड़कर विनती कीजियेगा कि मेरे लिए किसी बात की चिन्ता न करें। धर्म के लिए इस थोड़े से कष्ट को मैं सुख के साथ सहन करूँगा और धर्मो रक्षति रक्षितः रक्षा किया हुआ धर्म आचरण करनेवाले की रक्षा करता है।

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करौं तात करजोरें ॥
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुखु न पाव पितु सोच हमारें ॥१॥

अर्थ : आप पिता के समान मेरे अत्यन्त हित हैं। हे तात! हाथ जोड़कर विनती करता हूँ। सब विधि से आपका वही कर्तव्य है जिसमें हमारे सोच से पिताजी को दुःख न हो।

व्याख्या : रामजी सुमन्त्रजी से कहते हैं कि आप पिताजी के सखा हैं। पिता के समान ही मेरा कल्याण चाहनेवाले हैं। अब आपसे मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ। मुझे इस बात की बड़ी चिन्ता है कि पिताजी को मेरे लिए बड़ा शोक होगा। मेरी विनती पर भी सम्भव है कि न मिटे। अब यहाँ आपका सब प्रकार से यह कर्तव्य होना चाहिए कि पिताजी मेरे शोक से दुःखी न हों। क्योंकि आप मन्त्री हैं। सखा हैं। परम विश्वासपात्र है। आपकी सम्मति का पिताजी आदर करते हैं। आपके समझाने बुझाने का प्रभाव पड़ेगा।

सुनि रघुनाथ सचिव संबादू। भयेउ सपरिजन बिकल निषादू ॥
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी ॥२॥

अर्थ : रामजी और मन्त्री का सम्वाद सुनकर कुटुम्बियों के सहित निषाद विकल हो गया। फिर लक्ष्मणजी ने कुछ कड़वी बात कही। प्रभु ने बड़ा अनुचित जानकर मना कर दिया।

व्याख्या : निषादराज कुटुम्ब के सहित रामजी के चरणों के प्रेमी हैं। रामजी और मन्त्री का संवाद ऐसा करुणापूर्ण हुआ कि सबके सब विषाद से विकल हो गये। उनके मन में निश्चय हो गया कि रामजी नहीं लौटेंगे। लक्ष्मणजी ने जो कहा उसे कवि ने दोहराना पसन्द नहीं किया। जिस बात के लिखने से कोई लाभ नहीं : कोई उपदेश नहीं उसे न लिखना ही उचित है। इतना ही कहना यथेष्ट है कि प्रभु ने उसे बड़ा अनुचित समझा और लक्ष्मणजी को अधिक कहने से रोक दिया। निःसन्देह वह पिताजी के प्रति अनादर सूचक बात थी। जैसा कि लोग ऐसे अवसर पर क्रोध से बोल देते हैं। सरकार ने रोक दिया कि क्या कहते हो।

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई ॥
कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू ॥३॥

अर्थ : रामजी सङ्कुचित हो गये। अपनी शपथ दिलायी कि लक्ष्मण का सन्देश जाकर मत कहियेगा। तब सुमन्त्र ने महाराज का सन्देशा कहा कि सीताजी वन का कष्ट सह न सकेगी।

व्याख्या : लक्ष्मणजी के कटु कहने पर रामजी सङ्कुचित हो गये। क्योंकि दोनों भाइयों का हृदय इतना अभिन्न समझा जाता है कि लक्ष्मणजी की उक्ति को रामजी के आन्तरिक भाव के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। यहाँ पर यह बात

भी खुल गयी कि लक्ष्मणजी ने जो कटु कहा था वह सन्देश रूप में था। अतः रामजी ने सुमन्त्रजी को अपना शपथ दिलाया कि पिताजी से लक्ष्मण का सन्देश न कहें। केवल मेरा सन्देश कहें।

सबके लौट जानेवाली आज्ञा के अस्वीकार करने पर सुमन्त्रजी ने राजा का सन्देश सुनाया कि तुम लोग पुरुष हो, वीर हो वन के क्लेश को सह जाओगे। पर सीताजी तो न सह सकेंगी। महाराज ने सुमन्त्र से कहा था : जौं नहिं फिरैं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई। तौ तुम्ह विनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी। उसी आज्ञा का पालन सुमन्त्रजी कर रहे हैं।

जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहिं तुम्हहि करनीया ॥
नतरु निपट अवलंब बिहीना। मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना ॥४॥

अर्थ : जिस भाँति सीताजी अवध में फिर आवें वही तुम्हें और रामजी को कहना चाहिए। नहीं तो एकदम निराधार हो जाने से मैं बिना जल की मछली की भाँति नहीं जीऊँगा।

व्याख्या : महाराज का सन्देश कहते हुए सुमन्त्रजी कहते हैं कि सीता किस विधि से अवध लौट चलेंगी इसका निश्चय महाराज ने मेरे और आपके ऊपर छोड़ दिया है और स्वयं कह दिया है कि सीता वन के क्लेश को न सह सकेंगी केवल इतनी ही बात नहीं है। वह यदि नहीं लौटीं तो मैं जी नहीं सकता। मैं बिना पानी की मछली की भाँति निरालम्ब हो जाऊँगा। गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। रामजी जल हैं। सीताजी लहर हैं। सो मछली यदि जल में न भी हो पर जल के लहर से सम्पर्क बना रहे तो भी मछली जी सकती है। यदि वह भी न रहे तो मरण ही परिणाम है।

दो. मइकें ससुरें सकल सुख, जबहिं जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय, जब लगि बिपति बिहान ॥९६॥

अर्थ : पितृगृह में और ससुराल में सभी सुख है। जहाँ जी चाहे वहाँ सीता जब तक विपत्ति की रात न बीते सुख से रहे।

व्याख्या : रामजी का वन गमन सूर्यास्त है। उनका विरह रात्रि है। सो जब तक यह रात्रि न बीते रामजी लौट न आवें तब तक सीता का जहाँ जी चाहे रहें। मैके और ससुराल में सभी सुख है। कोई घाटा नहीं। जब तक जी चाहे अवध में रहें जी बहलाने के लिए जनकपुर में भी रहें, मेरा कोई अनुरोध नहीं है। पर वन में न रहें।

बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती ॥
पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना ॥१॥

अर्थ : महाराज ने जिस भाँति विनती की है वह आर्ति और विनय कहते

नहीं बनता। पिता का सन्देशा सुनकर कृपानिधान रामजी ने सीताजी को करोड़ों तरह से सीख दी।

व्याख्या : महाराज ने सीताजी के लौटाने के लिए विनती की। क्योंकि विपत्ति के समय पति से स्त्री को हटाने का कोई हक किसी को नहीं। विपत्ति के समय स्त्री की परीक्षा है। आपत काल परिखअहि चारी। धीरज धरमु मित्र अरु नारी। महाराज अपने को सापराध मान रहे हैं और स्नेहाधिक्य से आर्त हो रहे हैं। इसलिए विनती करते हैं कि तुम्हारा अनुरोध सीता को मानना ही पड़ेगा।

सरकार एक तो कृपानिधान हैं। आर्त पर कृपा करने का स्वभाव है। तिस पर पिता का सन्देश आर्ति और प्रीति से युक्त सुनकर सीताजी को कोटि प्रकार की शिक्षा दी। माता के कहने पर अनेक विधान से शिक्षा दी थी। अब कोटि विधान से देते हैं। ध्यान देने की बात है कि इतना होने पर भी शिक्षा ही देते हैं। आज्ञा नहीं देते कि तुम चली जाओ। क्योंकि जो अपने धर्म पर अग्रसर है उसे क्रिया की दुष्करता दिखलाकर सावधान किया जा सकता है। हठात् रोका नहीं जा सकता। दूसरे यह कि बोल चुके हैं : परिहरि सोच चलहु बन साथा और राम दो बार नहीं बोलते : रामो द्विर्नाभिभाषते।

सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू। फिरहुं त सब कर मिटै खँभारू॥
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही॥२॥

अर्थ : तुम लौट जाओ तो सास, ससुर, गुरु, प्रिय और परिवार सबका दुःख मिट जाय। पति का वचन सुनकर वैदेही बोलीं कि हे प्राणपति! हे परम सनेही सुनो।

व्याख्या : रामजी के कोटि भाँति समझाने का निर्गलितार्थ यह कि जब तुम्हारे लौट जाने से सास, ससुर, गुरु, प्रिय, परिवार का दुःख मिटता है तब तुम अपने ऊपर दु.ख को अङ्गीकार करके लौट जाओ। इन गुरुजनों का जिस कार्य से सन्तोष होता हो उससे बड़ा धर्म कौन है? रह गयो मेरी बात तो मेरी इस विषय में पूरी सम्मति है। मैं कह रहा हूँ और मेरे भी गुरुजन सास ससुर गुरु भी कह रहे हैं। वही करना पथ्य है। जिस धर्म की प्राप्ति मैं वन जाकर करना चाहता हूँ उसी धर्म की प्राप्ति अनायासेन घर लौटने से तुम्हें होगी इत्यादि।

पति का वचन पतिव्रता के लिए परम श्रद्धेय है। उसे सुनकर वैदेही ने कहा कि आप प्राणपति हैं। परम सनेही हैं। आप न सुनेंगे तो मेरी कौन सुनेगा।

प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई॥३॥

अर्थ : प्रभु तो करुणामय हैं। परम विवेकी हैं। कहिये तो शरीर को छोड़कर क्या छाँह रोके रुक सकती है? सूर्य को छोड़कर प्रभा कहाँ जाय और चाँद को छोड़कर चाँदनी को कहाँ ठिकाना है?

व्याख्या : सरकार प्रभु हैं। समर्थ हैं। सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु करुणामय हैं। यथा : करुणामय रघुनाथ गोसाईं। वेगि पाइहैं पीर पराई। मेरी पीड़ा का भी ध्यान करिये और आप परम विवेकी हैं। विचार करके देखिये। सरकार शरीर हैं तो मैं छाया स्थानीया हूँ। सरकार सूर्य हैं तो मैं प्रभा हूँ। सरकार चन्द्र हैं तो मैं चन्द्रिका हूँ। क्या छाया को सामर्थ्य है कि वह शरीर को छोड़कर पृथक् स्थिति अपनी रख सके। क्या प्रभा सूर्य को और चन्द्रिका चन्द्र को छोड़कर कहीं जा सकती है। यहाँ समझाने का कोई उपयोग नहीं है। मैं समझती सब हूँ पर पृथक् रहना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। यदि समझाने से छाया शरीर को छोड़कर पृथक् रह सके। प्रभा सूर्य को छोड़कर अलग हो सके। चन्द्रिका को चन्द्र के सिवा कोई दूसरा ठिकाना हो तो मुझपर भी समझाने का प्रभाव पड़ सकता है। जिसे छाया को प्रभा को या चन्द्रिका को रोकना हो। वह शरीर को रोके। सूर्य को रोके। चन्द्र को रोके। छाया प्रभा और चन्द्रिका रुकी ही रुकायी है। शरीर का वन भेजे और छाया को घर लौटाने के लिए कहे यह कौन सा विवेक है।

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहत सचिव सन गिरा सुहाई॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिर अनुचित भारी॥४॥

अर्थ : पति को प्रेममय विनती सुनाकर मन्त्री से सुन्दर वाणी बोलीं। आप पिता तथा ससुर के सदृश हित करनेवाले हो। मैं उलटकर उत्तर देती हूँ। यह भारी अनुचित है।

व्याख्या : पति से जो विनय किया वह प्रेममय था। प्रेम विश्लेष को नहीं सहन कर सकता। यद्यपि सुमन्त्र ने सीताजी से कुछ नहीं कहा था। जो कुछ उन्होंने कहा सो रामजी से कहा और रामजी ने सीताजी को समझाया। पर सीताजी उत्तर के रूप में प्रेममय विनय करके सुमन्त्रजी को उत्तर देने लगीं। जिसमें रामजी को यह कहना न पड़े कि देखिये यह नहीं मानतीं।

सुमन्त्र से सीताजी ने कहा कि मैं आपको पिता के समान मानती हूँ। पतिदेव भी आपको पिता के समान मानते हैं। अतः मैं आपको पिता और ससुर दोनों के समान हितकारी मानती हूँ। जिसके लिए पतिदेव ने कहा : दिये उतरु फिर पातकु लहऊँ। उसे मेरा उत्तर देना तो भारी अनुचित है।

दो. आरति बस सनमुख भइउँ, बिलग न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात॥९७॥

अर्थ : मैं आर्ति के वश होकर सम्मुख हुई हूँ। इससे आप अप्रसन्न न हूजियेगा। आर्यपुत्र के चरण कमलों के बिना जहाँ तक नाते हैं सब व्यर्थ हैं।

व्याख्या : मैं आर्त हो रही हूँ। अतः आपके सम्मुख हूँ। अर्थात् उत्तर दे रही हूँ। आपके अप्रसन्न होने के लिए यथेष्ट कारण हैं। उत्तर भी भेद उत्पन्न

करनेवाला होगा। फिर भी आपसे प्रार्थना है कि आप अप्रसन्न न हों आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ गुआरिहि आपन दाऊँ। तथा : अति आरत अतिस्वारथी अति दीन दुखारी। इनको विलगु न मानिये बोलहिं न विचारी। मेरा उत्तर यही है : सब मानिये राम के नाते। आर्यपुत्र के चरण कमल बिना सब नाते व्यर्थ हैं। आगे की चौपाइयों में इसी बात को स्पष्ट किया है।

पितु बैभव बिलासु मै डीठा। नृप मनि मुकुट मिलिति पद पीठा ॥
सुख निधान अस पितु गृह मोरें। पिय बिहीन मन भाव न भोरें ॥१॥

अर्थ : पिताजी के ऐश्वर्य्य का विलास मेरा देखा हुआ है। जिनके चरण पीठ को राजाओं के मणिमुकुट स्पर्श करते हैं। मेरा पितृगृह : मायका ऐसा सुखनिधान है। पर पति के बिना मुझे भूलकर भी अच्छा नहीं लगता।

व्याख्या : जहँ लगि नात को स्पष्ट करते हुए पहिले पिता के ही विषय में कहती हैं कि पिताजी के चरणों पर राजा लोग मस्तक नहीं रख सकते। दूर से ही प्रणाम करते हैं। केवल उनके मणि मुकुट का ही स्पर्श उनके चरणपीठों से होता है। ऐसा सुखद मेरा पितृगृह है। पर वह भी तभी सुखद है जब तक कि सरकार साथ रहें। उनके बिना वह पितृगृह भी मुझे पसन्द नहीं। कहा गया था : मइके ससुर सकल सुख जबहिं जहाँ मन मान। तब तहँ रहिहि सुखेन सिय जब लगि विपति विहान। सो मइके के विषय में तो कह चुकी। अब ससुराल के विषय में सुनिये।

ससुरु चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिघासन आसन देई ॥२॥

अर्थ : ससुर तो कोसलपति चक्रवर्ती हैं। चौदहों भुवन में उनका प्रभाव प्रकट है। जिसे स्वयं देवराज आगे आकर स्वागत करते हैं और आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देते हैं।

व्याख्या : अब कहती हैं कि ससुर का प्रभाव उनसे भी बढ़कर है। कोसल के राजा होते हुए भी चक्रवर्ती हैं। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखे। उनका प्रभाव चौदह भुवन में प्रकट है। भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरखहिं सुख बारी। रिधि सिधि संपति नदी सोहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई।

जब कभी अपने सखा इन्द्र से मिलने जाते हैं तो देवराज स्वयं स्वागत के लिए आगे से आकर लिवा जाते हैं और अपने साथ सिंहासन पर बिठाते हैं यथा : लोकप करहिं प्रीति रुचि राखे।

ससुरु एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू ॥
बिनु रघुपति पद पदमु परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा ॥३॥

अर्थ : ऐसे ससुर और अयोध्या का निवास प्रेम करनेवाले कुटुम्बी और माता के समान सास। पर रघुपति के चरण कमल की धूलि के बिना मुझे सपने में भी कोई सुखद नहीं मालूम हुआ।

व्याख्या : ससुर इन्द्र के तुल्य। अवधराज सुरराज से अधिक यथा : अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धन सुनि धनद लजाई। परिवार के लोग सब प्रेम करने-वाले। सास तो माता के ऐसी यथा : कलप बेलि जिसि बहुविधि लाली। सींचि सनेह सुधा प्रतिपाली। अतः मन न लगने का कोई कारण नहीं। पर मुझे बिना रघुपति पद पंकज पराग के कोई सुखद सपने में भी नहीं मालूम हुआ। यथा : राम चरन पंकज प्रिय जिनहीं। विषय भोग बस करहिं कि तिनहीं।

अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा॥४॥

अर्थ : दुर्गम रास्ते, वन, भूमि, पहाड़, हाथी, सिंह, ताल और अपार नदियाँ, कोल, किरात, हिरनें और चिड़ियाएँ मुझे सभी प्राणपति के साथ होने से सुखद हैं।

व्याख्या : मइके ससुरे सकल सुख का उत्तर देकर अब : सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू का उत्तर दे रही हैं। वन में जो दुःखद वस्तुएँ हैं जिनका वर्णन करके लोगों ने सीताजी को वन जाने के लिए समझाया था और जिसका उत्तर सङ्कोचवश सीताजी उस जन समुदाय में न दे सकीं। यथा : सीय सकुच बस उतरु न देई। इस समय उन सबों का नाम गिनाकर उत्तर दे रही हैं। वन का रास्ता दुःखद है। वन की भूमि वन के पहाड़ दुःखद हैं। वन में हाथी सिंहादि हिंस्र जन्तु भरे हैं। वन के ताल वन की नदियाँ वन के रहनेवाले कोल किरात अन्य पशु पक्षी दुःखद हैं। पर प्राणपति के साथ होने से मेरे लिए वे सब सुखद हैं।

दो. सास ससुर सन मोर हुँति, बिनय करबि परि पायँ।
मोर सोचु जनि करिअ कछु, मैं बन सुखी सुभायँ॥९८॥

अर्थ : सास ससुर के पाँव पड़कर मेरी ओर से विनय कीजियेगा कि मेरा कुछ भी सोच न करें। मैं स्वभाव से ही वन में सुखी हूँ।

व्याख्या : सास ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू। इस बात का उत्तर देते हुए कहती हैं कि मैं वन छोड़कर घर जा नहीं सकती। अतः आप मेरी ओर से उनके पाँव पड़कर विनय कर दीजियेगा कि मेरे लिए तो कुछ भी सोच न करें। मैं स्वभाव से ही वन में सुखी हूँ। अर्थात् मुझे स्वभाव से ही वन प्रिय है। महल प्रिय नहीं है। रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड़ भागी।

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरे धनु भाथा॥
नहिं मग श्रमु भ्रमु दुखु मन मोरे। मोहि लगि सोच करिअ जनि भोरे॥१॥

अर्थ : मेरे साथ में प्राणनाथ हैं। प्रिय देवर हैं जो कि वीरों में धुरीण हैं और धनु तरकस धारण किये हुए हैं। मुझे रास्ते चलने के थकावट का भ्रम भी मेरे मन में नहीं है। मेरे लिए तो भूल करके भी सोच न कीजियेगा।

व्याख्या : सोच तो अनाथ का किया जाता है। मैं तो सनाथा हूँ। मेरे प्राणनाथ मेरे साथ हैं। मेरे प्रिय देवर भी साथ हैं। दोनों महापुरुष वीरों में धुरन्धर हैं। तिस पर उनके पास धनुष और तरकस है। कोई विघ्न बाधा मेरे सन्निकट आ नहीं सकती। मेरे मन में वन चलने का उत्साह है। मुझे पैदल चलने में थकावट नहीं होगी। मुझे थकावट के दुःख का भ्रम भी नहीं है। अतः मेरे लिए तो भूल करके सोच न कीजियेगा। लोगों को भ्रम है कि मुझे दुःख होगा। कहते थे वन देखकर डर जाओगी। सो मुझे वन देखकर बड़ा आनन्द हुआ। कन्द मूल फल भी मैंने खाया। पतिदेव को जटा धारण किये भी देखा। पर मुझे दुःख न हुआ। अब तो मुझे दुःख का भ्रम भी नहीं है।

सुनि सुमंत्रु सिय सीतल बानी। भयेउ बिकल जनु फनि मनि हानी॥
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकै कछु अति अकुलाना॥२॥

अर्थ : सुमन्त्र सीताजी की शीतल वाणी सुनकर ऐसे विकल हो गये जैसे मणि के चले जाने से सर्प विकल होता है। आँख से न सूझता है। न कान से सुनायी पड़ता है। अत्यन्त आकुल हो गये। कुछ कह नहीं सकते।

व्याख्या : सीताजी की वाणी तो शीतल थी पर उसमें बड़ी दृढ़ता थी। सुमन्त्रजी ने समझ लिया कि ये नहीं लौटेंगी। जो मैंके और ससुराल के इतने बड़े ऐश्वर्य सुख को दुःखरूप देख रही है। जिस पतिदेवता शिरोमणि पति के साथ होने पर सम्पूर्ण दुःखों को सुख स्वरूप देख रही है। वह पति को वन में छोड़कर घर लौट सकती नहीं। अतः यह अन्तिम आशा भी निराशा में परिणत हो गयी। अतः उनकी दशा उस सर्प सी हो गयी जिसकी मणि छिन गयी हो। वधुओं की रक्षा बड़े प्यार के साथ महाराज के महल में की जाती थी। यथा : सुंदरि बधुन्ह सासु लइसोई। फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोई।

इन्द्रियाँ भारी विकल हो गयीं। अपने अपने विषयों के ग्रहण में असमर्थ हो गयीं। न आँख से दिखायी पड़ता है। न कान से सुनायी पड़ता है। न मुख से शब्द निकलते हैं।

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होत नहिं सीतलि छाती॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हें। उचित उतरु रघुनंदन दीन्हें॥३॥

अर्थ : रामजी ने बहुत प्रकार से समझाया। फिर भी छाती ठण्डी नहीं होती। साथ चलने के लिए अनेक यत्न किया पर रामजी ने उचित उत्तर दिया।

व्याख्या : सुमन्त्रजी की व्याकुलता देखकर रामजी समझाने लगे। यथा :

कवित्त : तात के प्रधान गुण ज्ञान के निधान
धर्मनीति में प्रमान आप सरिस जनैया कौन।
काको मुख ताकों एहि संकट विकट मांहि
धरि उर धीर लाजपति को सँभारो जौन ।।
पितहिं बुझाइ समुझाइ सब मातुन को
कीजिये रजाय वेगि भरत बुलावो भौन।
सुकृत न जाय जग जस सरसाय ताप
तिमिर नसाय आप करिय उपाय तौन ।।

इस भाँति बहुत समझाया पर सुमन्त्र के हृदय का दाह नहीं जाता। वह साथ चलने को उद्यत हो गये कि यदि आप लोग कोई नहीं लौटते, तो मुझे भी साथ ले चलिये। मैं अकेला लौटकर अयोध्या में क्या मुख दिखलाऊँगा। पर रामजी ने उचित उत्तर दिया। हम चारों भाइयों में से कोई भी इस समय अयोध्या में नहीं है। महाराज की यह दशा है। आप मंत्री हैं। ऐसे समय में महाराज को छोड़कर वन जाना आपका धर्म नहीं है।

मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई ।।
राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिकु जिमि मूरु गँवाई ।।४।।

अर्थ : रामजी की आज्ञा मिटायी नहीं जा सकती। कर्म की गति कठिन है। उस पर कोई वश नहीं चलता। राम लक्ष्मण तथा सीताजी के चरणों में सिर नवाकर लौटे। जैसे मूल पूँजी खोकर व्यापारी लौटता है।

व्याख्या : 'राम रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय विषहु अमीके। राम रजाइ मेटि मन माँहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाँहीं। अत: रामजी की आज्ञा मेटी नहीं जा सकती। नहीं तो सुमन्त्र किसी भाँति न लौटते। उनके लिए बिना राम के लौटना मरण से बढ़कर कष्टप्रद था। लौटकर महाराज से सन्देशा कहने के बाद फिर सुमन्त्रजी ने मुँह न दिखाया। महाराज का स्वर्गवास हुआ। क्रिया हुई। भरत सभा हुई। भरतजी चित्रकूट गये, लौटे पर सुमन्त्रजी का पता नहीं। रामजी के वन से लौटने पर ही सुमन्त्रजी घर के बाहर निकले। ऐसी चिरस्थायिनी पीड़ा सुमन्त्रजी को लौटने में थी। परन्तु कर्मगति कठिन है। उस पीड़ा को सहना ही पड़ा। कोई वश न चला।

राम लक्ष्मण और सीताजी के चरणों में सिर नवाकर इस भाँति चले जैसे कोई व्यापारी व्यापार के लिए गया हो। उसके मन में बड़ी आशा थी कि बहुत लाभ होगा। घरवाले आशा लगाये बैठे थे कि खूब मुनाफा करके घर आवेंगे। पर दैव दुर्विपाक से कोई ऐसी घटना हुई कि मुनाफा को कौन कहे मूलधन भी नष्ट हो गया। जिस तरह से दुःखी होकर वह व्यापारी घर लौटता है उसी भाँति सुमन्त्रजी भी लौट चले।

सुमन्त्रजी रथ लेकर चले थे कि मैं राम लक्ष्मण जानकी को लौटा लाऊँगा और बड़ा भारी यश भी हाथ लगेगा कि राम लक्ष्मण जानकी किसी के भी समझाने पर भी घर न रहे उन्हें सुमन्त्रजी लौटा लाये। यहाँ मूलधन राम लक्ष्मण जानकी और मुनाफा लौटा लाने का यश था। सो रामजी के न लौटने पर बात ही दूसरी हो गयी। अब तो सुमन्त्रजी सीधे सीधे रामजी को वन पहुँचानेवाले हो गये। अतः मूल भी हाथ से गया और दुर्यश के भागी हुए। सारी अयोध्या कहेगी कि इसी ने हम लोगों के सो जाने पर चोरी से रामजी को वन पहुँचाया।

दो. रथु हाँकेउ हय राम तन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषादबस, धुनहिं सीस पछिताहिं ॥९९॥

अर्थ : रथ हाँका तो घोड़े रामजी की ओर देखकर हिहिनाते हैं। यह देखकर निषाद लोग सिर धुन धुनकर पछताने लगे।

व्याख्या : सुमन्त्रजी ने रथ हाँका अयोध्या जाने के लिए। पर घोड़ों को रामजी का वियोग सह्य नहीं। राम रहित होकर वे जाना नहीं चाहते। रामजी को देखकर हिनहिनाते हैं। यही इनका करुण क्रन्दन हैं। इनको रामजी का बड़ा विरह हुआ। गीतावली में कौसल्याजी के मुख से इसका विस्तार से वर्णन है। सचिव और रामजी का संवाद सुनकर निषाद परिजन के सहित विषाद से विकल हो गये थे। घोड़ों का हाल देखकर तो वे सिर पीट पीटकर पछताने लगे।

जासु बियोग बिकल पशु ऐसे। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें ॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आये ॥१॥

अर्थ : जिसके वियोग से पशु इतने विकल हैं उसके प्रजा माता पिता कैसे जीयेंगे? रामजी ने सुमन्त्र को जबरदस्ती लौटाया और तब स्वयं गंगाजी के किनारे गये।

व्याख्या : पशु आसन्नचेतन होते हैं। उन्हें कल : अनागत का ज्ञान नहीं होता। वे भी जब रामजी के वियोग से इतने विकल हैं तो जो बुद्धिजीवी अति निकट सम्बन्धवाले हैं यथा : प्रजा माता और पिता वे कैसे जीयेंगे ? यही सोचकर निषादगण सिर धुनकर पछता रहे हैं।

प्रश्न यह उठता है कि फिर सुमन्त्र कैसे गये? इस पर कहते हैं कि राजी खुशी से नहीं गये रामजी ने जबरदस्ती उन्हें भेजा। वे रामजी की आज्ञा टार न सके। सुमन्त्र के रवाना होने के बाद रामजी गंगा के किनारे गये। स्नान के समय देख लिया था कि नाव घाट पर रहती है। इसलिए निषादराज को उसकी व्यवस्था के लिए नहीं कहा। सुमन्त्र के रहते गङ्गा तीर नहीं गये। जिसमें उन्हें साथ चलने का अवसर न मिले।

माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥२॥

अर्थ : नाव माँगी तो केवट नहीं लाया। कहने लगा कि तुम्हारा मर्म मेरा जाना हुआ है। सभी लोग कहते हैं कि चरण कमल की धूलि मनुष्य बना देनेवाली कोई जड़ी है।

व्याख्या : वहाँ जाकर देखा कि नाव किनारे पर नहीं। केवट उसे कुछ दूर छलका ले गया है। तब सरकार ने कहा कि नाव ले आवो। केवट कहता है कि यदि मैं आपका मर्म न जानता होता तो नाव को घाट पर ही रहने देता। मैं तो मर्म जानता हूँ। मैं नाव को कैसे ले आऊँ। यह बात तो किसी से छिपी नहीं है कि आपके चरणों की रज मनुष्य बनानेवाली जड़ी है : केवट ने देखा कि सुमन्त्र की विदाई से सरकार कुछ खिन्न से हो गये हैं। अतः उनके हँसाने का उपाय कर रहा है। शृङ्गवेरपुर शृङ्गीऋषि का आश्रम है। उन्हीं से भगवती शान्ता व्याही हैं। उसी नाते से वहाँ के मुनिपुत्रों ने सरकार से हँसी की थी। यथा :

बिंधि के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा मैं सुनि मुनिवृन्द सुखारे।
ह्वै हैं शिला सब चंद्रमुखी परसे पद मंजुल कंजु तुम्हारे।
कीन्ही कृपा रघुनायक जू करुना करके इतको पग धारे।

यहाँ के बच्चे बच्चे इस बात को जानते हैं। केवट उसी नाते को काम में लाना चाहता है।

छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ[1] मुनि घरनी होई जाई। बाट परै मोरि नाव उड़ाई ॥३॥

अर्थ : छूने ही शिला मुनि की स्त्री हो गयी। पत्थर से काठ कठिन नहीं होता। नाव भी मुनि की स्त्री हो जायगी। रास्ते में पड़ने से मेरी नाव ही उड़ जायगी।

व्याख्या : परसि जासु पदपंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी। जब शिला रज के स्पर्श मात्र से सुन्दर स्त्री हो गयी यथा : गौतम गये गृह गौनो सो लवाइके। तो इस काठ की नाव को मुनि की स्त्री हो जाने में क्या देर लगेगी। पत्थर से तो काठ कोमल होता है। यथा : पाहन ते वन वाहन काठ को कोमल है जल खाइ रहा है यह प्रसङ्ग कवित्त रामायण में देखने लायक है। यह नाव भी किसी मुनि की स्त्री हो जायगी। यह भी नहीं कि मेरी हो कर रहे। रास्ते में पड़ने से मेरी नाव उड़ जायगी। इसी भय से तो मैं किनारे से दूर हटा लाया हूँ।

एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउँ कछु और कवारू ॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू ॥४॥

---

१. ब्याज स्तुति अलंकार है।

अर्थ : इसी से मैं सब परिवार का प्रतिपालन करता हूँ। दूसरा कोई काम धन्धा मैं जानता नहीं। अवश्य ही यदि पार जाना चाहते हैं तो मुझे चरण कमल के धोने की आज्ञा दीजिये।

व्याख्या : पात भरी सहरी सकल सुत वारे वारे
केवट की जाति कछु वेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो यहि लागि राजा जू
दीन वित्त हीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।
गौतम की घरनी ज्यौं तरनी तरैगी मेरी
प्रभु सो निषाद ह्वै के बाद ना बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईश राम रावरे सों साँची कहौं
बिना पग धोए नाथ नाव ना चढ़ाइहौं।

मैं तो यही जानता हूँ कि सरकार को पार जाना नहीं हैं। किसी मुनि को सुन्दर स्त्री भेंट करना है। इस मर्म को मैं समझ रहा हूँ। यदि कहिये कि नहीं मुझे पार जाना आवश्यक है तो आज्ञा दीजिये मैं पैर धो लूँ जिसमें कोई रज का लेश न रह जाय।

छं. पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहों।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहों ॥
बरु तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहों।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहों ॥

अर्थ : चरण कमल धोकर नाव पर चढ़ाकर हे नाथ ! मैं उतराई नहीं चाहता। मुझे आपकी शपथ दशरथ की सौगन्ध मैं सच्ची कहता हूँ। चाहे लक्ष्मणजी तीर मार दें। पर जब तक पैर न धो लूँगा तब तक हे कृपाल तुलसीदास के नाथ ! मैं पार न उतारूँगा।

व्याख्या : सरकारी आज्ञा पालन में मुझे रत्ती भर आगा पीछा नहीं है। चरणों को धोकर नाव की रक्षा चाहता हूँ। फिर आपको नाव पर चढ़ाऊँगा। नहीं तो फिर चरणों में रज लग जायगा। सरकार के चढ़ जाने पर पार उतारने का तो कोई प्रश्न ही नहीं। मैं उतराई भी नहीं लूँगा। उतराई ली जाती है बटोहियों से। सरकार तो नाथ हैं। नाथ से उतराई कैसी ? यदि कहिये कि नहीं तू बातें बनाता है तो इस पर कहता है कि मैं सच्ची बात कहता हूँ। सरकार नाथ हैं। सो आपकी शपथ लेता हूँ। महाराज दशरथ जगतीपति हैं उनकी शपथ लेता हूँ। पार उतारने में मुझे कोई उज्र नहीं है।

लखन बान धनु धरे बनाई। लक्ष्मणजी पार जाने की तैयारी करते हैं। धनुष बाण को सुधार रहे हैं। तो उन्हें भी हँसाने के लिए उन पर मारने की धमकी का

आरोप करता है। कहता है कि चाहे लक्ष्मणजी तीर मार दें पर बिना पैर धोये तो मैं पार उतारता नहीं।

दो. सुनि केवट के बयन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना अयन, चितइ जानकी लखन तन ॥१००॥

अर्थ : केवट के प्रेम लपेटे अटपटे वचन सुनकर करुणाअयन रामजी जानकी और लक्ष्मण की ओर देखकर जोर से हँस पड़े।

व्याख्या : अटपटी बात अटपटी चेष्टा हास्यरस का उद्बोधक है। किं पुनः यदि प्रेम से पगी हुई हो। सो इसका मुख्य तात्पर्य तो पैर धोने में है। उसके लिए इतने बखेड़ेबाजी की बात पर सरकार हँस पड़े। हास्यरस का आनन्द प्रेमियों के साथ ही लिया जा सकता है अकेले नहीं। अतः उस रसोपभोग में सम्मिलित करने के लिए लक्ष्मण और सीताजी की ओर देखा। प्रसङ्ग प्राप्त अर्थ तो यही है : हास्य रस के विभाव की पुष्टि के लिए सखा और सखी की ओर देखना आवश्यक था। नहीं तो अकेले तो पागल हँसा करते हैं। जानकी लक्ष्मण की ओर देखने का और भी अर्थ लगाया जा सकता है। जानकीजी के हृदय में यही भाव उठा था। यथा : गौतम तिय गति सुमिरि करि नहि परसत पद पानि। मन विहंसे रघुवंसमनि प्रीति अलौकिक जानि। वहाँ मन में विहँसे थे। यहाँ प्रत्यक्ष विहँस रहे हैं। सखियों के कहने पर भी सीताजी के चरण स्पर्श न करने के साक्षी इस समय लक्ष्मणजी हैं। अतः उस समय का स्मरण करके प्रभु लक्ष्मण और जानकी की ओर देखकर हँस रहे हैं। कुछ लोग यहाँ पर हँसने के आशय को स्पष्ट करने के लिए किसी पूर्वजन्म की कथा की कल्पना करते हैं। पर ऐसी कल्पनाएँ यहाँ अप्रासङ्गिक हैं।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तब नाव न जाई ॥
बेगि आनु जलु पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू ॥१॥

अर्थ : कृपासिन्धु मुसकुरा कर बोले कि अच्छा वही करो जिसमें तुम्हारी नाव बची रहे। शीघ्रता से जल लाकर पैर धो लो। देर हो रही है। पार उतार दो।

व्याख्या : कृपासिन्धु हैं। उसकी सब बखेड़ेबाजी को माने लेते हैं। कहते हैं कि जैसे तुम्हारी नाव बची रहे वही करो। मुझे इसे स्त्री बनाकर किसी मुनि को नहीं देनी है। मुझे पार जाने की जल्दी है। सो जल लाकर पैर धोने में जल्दी करो। इन सब बातों के कहने में सरकार के चेहरे पर मुसकुराहट है : हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरिन मनोहर हाँसा।

जासु नामु सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ॥
सोइ कृपालु केवटहिं निहोरा। जेहिं जगु किये तिहुँ पगहुँ तें थोरा ॥२॥

अर्थ : जिसके नाम के एक बार स्मरण कर लेने से मनुष्य अपार भवसागर के

पार उतर जाता है। वही नामी कृपाल प्रभु केवट का निहोरा कर रहे हैं। जिन्होंने संसार को तीन पग से भी छोटा कर दिया था।

व्याख्या : आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे। कहि नाम वारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते। जिसके नाम में ऐसी तारिणी शक्ति है कि एक वार उच्चारण करने से महापापी भी पावन होकर भवसागर पार होता है वही कृपाल गङ्गा पार जाने के लिए केवट से नाव माँगते हैं। वह नहीं लाता बखेड़ेबाजी करता है। तब आप उसका निहोरा करते हैं : सोई करु जेहि तव नाव न जाई··होत बिलंबु उतारिहि पारू। यहाँ पर कवि प्रभु के वामनावतार का स्मरण दिलाते हैं कि राजा बलि से सङ्कल्प लेकर जो नापने चले तो तीनों लोक नाप डाले। तीन पग पूरा न हुआ। उसे आज गङ्गा पार करना असम्भव हो रहा है। यह उनकी लीला है।

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी ॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि ले आवा ॥३॥

अर्थ : चरण के नख को देखकर गङ्गाजी प्रसन्न हुई। पर उनके वचन सुनकर मोह की ओर बुद्धि खिंच गयी। केवट ने रामजी की आज्ञा पा ली सो कठौता भर के पानी लाया।

व्याख्या : गङ्गाजी को अपनी जन्मभूमि देखकर हर्ष हुआ। यथा : नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक्य पावन सुरसरी। क्योंकि सरकार के पद नख से उनकी उत्पत्ति है। पर निहोरावाला वचन सुनकर मोह की ओर बुद्धि खिंचने लगी कि क्या वे वही सरकार नहीं हैं। भाव यह कि सरकार का मनुष्यभाव का अभिनय ऐसा मार्मिक होता है कि ऐसे जानकार को भी भ्रम हो जाय : और भ्रम नहीं है तो केवट को। यह सरकार की लीला है। उसे आज्ञा की देर थी। जल से भरकर कठौता ले आया कि इसमें पदरज धोयेंगे। उड़ जायगा तो कोई भारी हानि नहीं है।

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा ॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं ॥४॥

अर्थ : अत्यन्त आनन्द से प्रेम के उमङ्ग में आकर चरण कमल धोने लगा। फूलों की वर्षा करके देवता लोग ईर्ष्यापूर्वक कहने लगे कि इसके समान पुण्यात्मा कोई नहीं है।

व्याख्या : प्रभु रुख पाइके बोलाइ बाल घरनी को वंदि के चरन चहूँदिसि बैठे घेरि घेरि। छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गङ्गाजी को धोइ पाय पियत पुनीत वारि फेरि फेरि। इसीलिए कवि कहते हैं पखारन लागा। क्या शोभा हुई। बीच में सरकार हैं। केवट बाल बच्चों के सहित घेरे हुए बैठा है। सरकार के चरण कमल को धोकर उस जल को फेर फेर कर पी रहा है। जिसमें रज नीचे न बैठ जाने पावे। ऊपर से देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। ईर्ष्या कर रहे हैं कि हमारा

भाग्य ऐसा नहीं। इन चरणों को जनकजी ने धोया था। यथा : बहुरि रामपद पंकज धोये। जे हर हृदय कमल मँह गोये। उन चरणों को यह केवट होकर धो रहा है। अतः इस सा पुण्यवान् कोई नहीं।

दो. पद[1] पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयेउ लइ पार ॥१०१॥

अर्थ : पैर धोकर स्वयं परिवार सहित जलपान किया और पितरों को पार करके प्रभु को हर्षित होकर पार ले गया।

व्याख्या : कोशलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ जानकीकरसरोजलालितौ। प्रभु के चरण शिव अज से वन्दित हैं। जानकीजी के कर कमलों से लालित हैं। जेहि पद परसि तरी रिषि नारी। दंडक कानन पावन कारी। हर उर सर सरोज पद जोई। उस पद को अपने हाथों से प्रक्षालन करके उस चरणामृत को परिवार के साथ केवट ने पान किया। इससे उसके पितृकुल श्वशुरकुल तथा बन्धुओं के सभी कुल तर गये। इस भाँति उसने पहिले पितरों को भवसागर पार कर लिया तब प्रसन्न होकर प्रभु को गङ्गापार ले गया।

## १४. सुरसरि उतरि प्रयाग निवास

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहिं सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ॥१॥

अर्थ : सीता और रामजी गुह और लक्ष्मण के सहित उतरकर गङ्गाजी के रेत में खड़े हो गये। केवट ने उतरकर दण्डवत् किया। प्रभु को सङ्कोच हुआ कि इसे कुछ दिया नहीं गया।

व्याख्या : गङ्गापार पहुँचकर सीता और रामजी निषादराज और लक्ष्मण के साथ नाव पर से उतरकर रेत में खड़े हो गये। क्योंकि यहाँ नित्यकृत्य करना है। तब केवट ने उतरकर दण्डवत् किया। यहाँ पर यह बात अभ्रान्त रूप से स्पष्ट हो जाती है कि केवट और निषादराज गुह दो व्यक्ति थे। राजाओं के यहाँ नट आदि जब अपनी करामात दिखा चुकते हैं तो पीछे इनाम के लिए दण्डवत् करते हैं। सो केवल को दण्डवत् करते देखकर प्रभु को सङ्कोच हुआ कि इसे कुछ दिया नहीं गया। यद्यपि इसने कहा कि मुझे उतराई नहीं चाहिए। पर इससे परिवार का प्रतिपालन उतराई से ही होता है। अतः इसे कुछ देना चाहिए था। पैर धोने की गिनती उतराई में नहीं हो सकती।

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुँदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई ॥२॥

---

१. यहाँ अत्यन्तातिशयोक्ति : अलङ्कार है।

अर्थ : पिय के हिय की जाननेवाली सीताजी थीं। उन्होंने प्रसन्न मन से मणि की अगूँठी उतार दी। कृपालु ने कहा कि उतराई लो। केवट ने आकुल होकर चरण पकड़ लिया।

व्याख्या : प्रभु के सङ्कोच को सीताजी ने लखा। वे इनके मन की जाननेवाली हैं। क्योंकि इनका मन सदा उनके पास रहता है। यथा : सो मन सदा रहत तोहि पाँही। उतराई बड़ी छोटी चीज है। मणिमुदरी बड़ी अमूल्य वस्तु है। उतराई देने के लिए ऐसे अमूल्य आभूषण को उतारना स्त्रियों के लिए बड़े कष्ट की बात हैं। पर सीताजी को सरकार के सङ्कोच के सामने मणिमुदरी क्या है। अतः प्रसन्न मन से उतार दिया। सरकार देखते रहे। दीनों पर बड़ी कृपा है। उस मुदरी को उतराई के रूप में देने लगे।

उतराई का नाम सुनने ही केवट विकल हो गया। उतराई कैसी? क्या मैंने इन्हें उतराई के लिए पार उतारा है। इतना ही तो मुझसे सेवा यावज्जीवन में बन पड़ी। उसका भी विनिमय दे रहे हैं। मेरी सेवा स्वीकार नहीं। लोग मुझे क्या कहेंगे कि उतराई के लिए स्त्री का गहना उतरवा लिया।

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आज दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी ॥३॥

अर्थ : हे नाथ! आज मैंने क्या नहीं पाया। दोष दुःख और दरिद्र की दावाग्नि शान्त हो गयी। मैंने बहुत दिनों से मजदूरी की है। पर विधाता ने आज मुझे अच्छी और पूरी मजदूरी दी है।

व्याख्या : भाव यह कि मैं पूर्णकाम हो गया। हृदय में दोष दुःख और दरिद्रता का दावानल जला करता था सो आज शान्त हो गया। मिटे दोष दुःख भव रजनीके। सो दोष दुःख से परलोक के दुःख का नाश कहा और दारिद कहने से ऐहिक दुःख का नाश कहा।

केवट कहता है कि कभी ऐसी मजदूरी मिली ही नहीं थी। यदि कहिये कि मैंने तो दी ही नहीं मिल कैसे गयी। इस पर कहता है कि विधाता ने दी। मनुष्य ऐसी मजदूरी दे नहीं सकता। मैंने आप से मजदूरी न लेने का प्रण किया था इसलिए विधि ने दी।

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें ॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मइँ सिर धरि लेबा ॥४॥

अर्थ : हे नाथ! हे दीनदयाल! तुम्हारे अनुग्रह से अब मुझे कुछ न चाहिए। लौटती बार जो देंगे वह प्रसाद मैं सिर धर कर लूँगा।

व्याख्या : मैं कृतकृत्य हो गया। आपके अनुग्रह से मुझे कोई घाटा नहीं रह गया। प्रभु दीनदयाल हैं। दया ने ही सब घाटा पूरा कर दिया। यदि कहिये घाटा नहीं सही। पर जो मिलता है उसके स्वीकार करने में क्या आपत्ति। इस पर कहता

है कि लौटती बार जो मिलेगा उसे शिरोधार्य करूँगा। क्योंकि उस समय मैं अयोध्या लौटने में सहायक होऊँगा। इस समय तो मैं प्रभु के वन जाने का मार्ग निरर्गल कर रहा हूँ। प्रभु की आज्ञा न टाल सका। इसलिए पार उतार दिया नहीं तो मैं कदापि पार न ले आता।

दो बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहिं कछु केवटु[१] लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बरु देइ ॥१०२॥

अर्थ : सीता लक्ष्मण और रामजी ने बहुत प्रयत्न किया। पर केवट कुछ नहीं लेता। तब करुनायतन ने निर्मल भक्ति देकर विदा किया।

व्याख्या : जब जानकीजी के हाथ से लेना केवट ने किसी भाँति नहीं चाहा तो लक्ष्मणजी देने लगे। उनसे भी जब नहीं लिया तो स्वयं सरकार देने लगे। पर उसने किसी तरह से लेना स्वीकार नहीं किया। महात्माओं का कथन है कि उस अँगूठी का मूल्य तीनों लोक था। जब उसने नहीं लिया तो सरकार ने सब प्रकार से उसे निःस्पृह समझकर निर्मल भक्ति का वर दिया। देय को चौदह वर्ष तक नहीं रोका जा सकता। दूसरी बात यह है कि प्रभु का सङ्कल्प अमोघ है। अतः उसे बिना माँगे अनुपमसुखमूल भक्ति दी। बिना माँगे अविरल भक्ति केवट ने हो पायी।

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा। पूजि पारथिव नायेउ माथा ॥
सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ॥१॥

अर्थ : तब रघुकुलनाथ रामजी ने पार्थिव पूजन करके प्रणाम किया। सीताजी ने हाथ जोड़कर गङ्गाजी से प्रार्थना की कि माँ! मेरे मनोरथ को पूरा करना।

व्याख्या : गृहस्थ के लिए मध्याह्नकृत्य में ही विस्तार का विधान है। प्रातः-कृत्य तो सन्ध्या मात्र है। पूजनादि का विधान मध्याह्न में ही है। श्रीरामजी रघुकुलनाथ हैं। नित्य पार्थिवपूजन करते हैं। शिवजी के सावयव मूर्ति पूजने से लिङ्गपूजन अधिक विजयप्रद है। अश्वत्थामा ने व्यासजी से पूछा कि क्यों कृष्णार्जुन की ही विजय होती है मेरी क्यों नहीं होती। व्यासजी ने कहा कि तुम तीनों जन्म जन्मान्तर के शिवभक्त हो। कृष्णार्जुन ने महालिङ्ग पूजन किया और तुमने सावयव मूर्ति का पूजन किया है। अतः कृष्णार्जुन के सामने तुम विजयी नहीं हो सकते और लिङ्गपूजन में भी पार्थिव पूजन का बड़ा माहात्म्य है। अतः मध्याह्न स्नान करके रामजी ने पार्थिव : मिट्टी का शिवलिङ्ग बनाकर पूजन किया और अन्त में प्रणाम करके विसर्जन किया।

---

१. केवट में गुणमाहात्म्यासक्ति थी। यह ग्यारह प्रकार की भक्तियों में प्रथम है। यथा : गुणमाहात्म्यासक्तिरूपासक्तिपूजासक्तिस्मरणासक्तिदास्यासक्तिसख्यासक्तिकान्तासक्ति-वात्सल्यासक्तिआत्मनिवेदनासक्तितन्मयासक्तिपरमविरहासक्तिरूपा एकधाप्येकादशधा भवति। ना. भ. सू. ८२।

रामजी ने शिवजी की आराधना की और जानकीजी ने गङ्गाजी से मनौती मानी। उमा और गङ्गा दोनों शिवजी की शक्तियाँ हैं। सीताजी ने उमा : गौरी के पूजन के समय माँ सम्बोधन किया। यथा : पति देवता सुतीय महँमातु प्रथम तब रेख और यहाँ गङ्गा के पूजन में भी मातु सम्बोधन दे रही हैं। आज भी स्त्रियाँ सौभाग्य के लिए गौरीपूजन और मनोरथ पूर्ति के लिए गङ्गापूजन करती हैं।

पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करउँ जेहि पूजा तोरी ॥
सुनि सिय बिनय प्रेमरस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी ॥२॥

अर्थ : जिससे पति और देवर के साथ कुशलपूर्वक लौटकर फिर तुम्हारी पूजा करें। प्रेमरस से ओत प्रोत सीताजी विनती सुनकर निर्मल जल से श्रेष्ठ शब्द निकले।

व्याख्या : यहाँ बहोरी पद से पता चलता है कि जिस समय रामजी पार्थिव पूजन कर रहे थे उस समय सीताजी गङ्गापूजन कर रही थीं। पूजनोपरान्त हाथ जोड़कर मनौती मानती हैं। गङ्गाजी तक कोसलराज की सीमा है। वन में प्रवेश तो इसी के बाद होगा। अतः प्रार्थना करती हैं कि पति देवर के साथ मैं चौदह वर्ष के लिए वन जा रही हूँ। अब यदि आपकी कृपा से सब कुशल रहे तो चौदह वर्ष के बाद ही फिर दर्शन का संयोग हो सकता है। अतः आप ऐसी कृपा करें कि पति और देवर के साथ लौटकर फिर मैं आपकी पूजा कर सकूँ।

व्याख्या : सीताजी का विनय और प्रेम ऐसा सच्चा है कि उसने उमा को वश कर लिया था। यथा : विनय प्रेमवश भई भवानी। यहाँ उन्होंने गङ्गाजी को विनय और प्रेम के वश में कर लिया। वहाँ मूर्ति बोल उठी। यथा : बोली गौरि हरष उर भरेऊ। यहाँ विमल जल से श्रेष्ठ वाणी निकल रही है। मूर्ति पूजन का यही रहस्य है कि विनय और प्रेम से जड़ मूर्तियों में देवत्व का आविर्भाव हो उठे।

सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तव प्रभाव जग बिदित न केही ॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें ॥३॥

अर्थ : हे रघुवीर की प्रिया वैदेही! सुनो तुम्हारी प्रभुता संसार में कौन नहीं जानता। जिसे तुम देख दो वह लोकपाल हो जाय। तुम्हारी सेवा सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े किया करती हैं।

व्याख्या : वहाँ भगवती गौरी ने कहा : सुनु सिय सत्य असीस हमारी। यहाँ गङ्गा कह रही हैं : सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। विवाह के बाद पति के नाम के साथ सम्बोधन करने की चाल है। पति के नाम के साथ स्त्री के नाम के लय हो जाने से सर्वथा ऐक्य हो जाता है। अथवा रघुवीर प्रिया और वैदेही दोनों सम्बोधन देने से पतिकुल और पितृकुल दोनों की उत्तमता कहा। तुम उद्भवस्थितिसंहारकारिणी क्लेशहारिणी तथा सर्वश्रेयस्करी हो। तुम्हारा प्रभाव कौन नहीं जानता। जिसकी ओर दृष्टि फिर जाय वह लोकपाल हो जाता है। यथा : जाकी कृपा कटाक्ष सुर

चाहत चितव न सोइ। सिद्धियाँ सब हाथ जोड़े तुम्हारी सेवा किया करती हैं। यथा : सिधि सब सिय आयेसु अकनि गई जहाँ जनवास। लिये संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास।

तुम्ह जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई ॥
तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा ॥४॥

अर्थ : तुमने जो हमें बड़ी विनय सुनायी सो तुमने बड़ी कृपा की। मुझे बड़ाई दी। फिर भी हे देवि ! मैं अपनी वाणी को सफल करने के लिए तुम्हें आशीर्वाद दूँगी।

व्याख्या : तुम्हारा इतना कहना हो बड़ा भारी विनय है। तुम जो चाहोगी वह होकर ही रहेगा। फिर भी जो तुम विनय करती हो यह तुम्हारी कृपा है। मुझे बड़ाई दे रही हो। प्रभु बड़ाई दे चुके। यथा : सचिवहि अनुजहिं प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई। सो तुम उसी को पुष्ट कर रही हो।

यद्यपि तुम सर्व समर्थ हो। फिर भी तुम्हारा विनय मोघ न हो इसलिए मैं आशीर्वाद दूँगी। अथवा भागीरथी होने से मैं नाते में तुमसे बड़ी हूँ। अतः आशीर्वाद देने का मेरा हक भी है और आशीर्वाद देने में मेरी वाणी का साफल्य है। क्योंकि ऐसा होने ही वाला है। अब आशीर्वाद देती हैं।

दो. प्राननाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मन कामना, सुजसु रहहि जग छाइ ॥१०३॥

अर्थ : तुम प्राणनाथ और देवर के सहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सब मन की कामनाएँ पूरी होंगी और तुम्हारी कीर्ति संसार में छा जायेगी।

व्याख्या : प्राणनाथ और प्रिय देवर के साथ जिस भाँति वन जा रही हो उसी भाँति कुशल पूर्वक अयोध्या में चौदह वर्ष बाद लौटोगी। तुम्हारे मन में सासों की सेवा करने की कामना है। यथा : सेवा समय देव वन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा। सो मनोरथ सफल होगा और भी जितने मनोरथ हैं सभी पूर्ण होंगे और तुम्हारी कीर्ति संसार भर में व्याप्त हो जायगी। यथा : जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवन कीन्ह बिधि अड करोरी। वहाँ भगवती गौरी ने भी ऐसा ही आशीर्वाद दिया था। यथा : सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी।

गंग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला ॥
तब प्रभु गुहहिं कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू ॥१॥

अर्थ : गङ्गाजी के मङ्गल मूल वचन को सुनकर सीताजी प्रसन्न हुई कि गङ्गाजी मेरे अनुकूल हैं। तब प्रभु ने गुह से कहा कि घर जाओ सुनते ही उसका मुख सूख गया और हृदय में दाह उत्पन्न हुआ।

व्याख्या : गङ्ग सकल मुद मङ्गल मूला। अतः उनके वचन भी मङ्गलमूल हैं। वहाँ : जानि गौरि अनुकुल सिय हिय हरख न जाइ कहि। यहाँ : मुदित सीय सुरसरि अनुकूला। जितना माँगा था उससे अधिक के लिए आशीर्वाद पाकर जाना कि गङ्गाजी अनुकूल हैं। अतः सीताजी मुदित हैं।

गङ्गाजी के आशीर्वाद के बाद सरकार आगे चलने को तैयार हुए। इसलिए निषादराज को आज्ञा दी कि घर जाओ। हमें तो वन जाना है। निषादराज घर से तैयार होकर चले थे कि सरकार जहाँ रहेंगे उसे देखकर लौटेंगे। मैं तो जङ्गली हूँ। मेरे साथ रहने में क्या रोक है। पहिले भी आखेट में मैं साथ रहता ही था। पर सरकार की आज्ञा सुनते ही उसके हृदय में दाह उत्पन्न हुआ। अतः मुख सूख गया।

दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी ॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाई ॥२॥

अर्थ : गुह हाथ जोड़कर दीन वचन बोला कि हे रघुकुलमणि! मेरी विनती सुनिये। मैं सरकार के साथ रहकर रास्ता दिखाऊँगा। चार दिन चरणों की सेवा करूँगा।

व्याख्या : आर्त होकर निषादराज दीन वचन बोले। भा उर दाहू से मन की दीन वचन कहकर वाणी की और करजोरी कहकर तन की दीनता दिखायी। रघुकुलमणि सम्बोधन से भाव यह कि इस कुल से अर्थी के मनोरथ की सदा से पूर्ति होती आयी है। सरकार तो उसमें मणि हैं। मेरी प्रार्थना स्वीकार हो।

सरकार हमारे नाथ हैं। मैं इस भाँति वन में कैसे जाने दूँ। वन का रास्ता मेरा देखा है। मैं साथ रहकर रास्ता बतलाऊँगा। वन्य फल मूल का पता हम लोगों को ही रहता है। शयन के लिए साथरी आदि बनाने का काम मैं करूँगा। इस भाँति चार दिन के लिए सेवा का सौभाग्य मुझको प्राप्त होगा।

जेहि बन जाइ रहब रघुराई। परन कुटी मैं करबि सुहाई ॥
तब मोहि कहँ जसि देब रज़ाई। सोइ करिहौं रघुबीर दोहाई ॥३॥

अर्थ : हे रघुराई! जिस वन में जाकर आप रहेंगे उसमें सुन्दर पत्ते की कुटी मैं बना दूँगा। तब मुझे जो आज्ञा होगी सरकार की दोहाई मैं वह करूँगा।

व्याख्या : निषादराज रहने का पूरा पता जान लेना चाहता है। कहता है कि जिस वन में आप रहेंगे वहाँ पर्णकुटी कौन बनावेगा? यदि कहिये कि हम लोग बना लेंगे। तो इस पर कहता है कि वह ठीक न बनेगी। पत्ते की कुटी सुन्दर बनाना तो हम लोग जानते हैं। जब मैं कुटी बना लूँगा तब मेरे जाने या रहने पर विचार कीजियेगा। यदि आज्ञा होगी कि तुम चले जाओ तो सरकार की दोहाई मैं चला जाऊँगा। रहने के लिए हठ न करूँगा।

सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू ॥
पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हें। करि परितोषु बिदा तब कीन्हें ॥४॥

अर्थ : उसका सनेह देखकर रामजी ने गुह को साथ ले लिया। उसके हृदय में उल्लास हुआ। तत्पश्चात् गुह ने जातिवालों को बुला लिया और उनका सन्तोष करके विदा किया।

व्याख्या : सरकार सहज स्नेह के वश हैं। यथा : सहज सनेह बिबस रघुराई। अतः गुह की विनती स्वीकृत हुई। उसे साथ ले लिया। उसके हृदय में हर्ष है। साथ जाने की खुशी है।

गुह निषादराज है। अतः जातिवाले उसके साथ आये हैं। उनको बुलाकर गुह ने समझा दिया कि तुम लोग लौट जाओ। मेरा ही साथ जाना कठिन हो रहा है। तुम लोग साथ रहोगे तो मैं भी न जाने पाऊँगा। इनके रहने की व्यवस्था करके लौट आऊँगा। आगे भयङ्कर वन है। सम्भव है कि जानकीजी डरें। तो मुझे उन्हें लौटा ले जाने की आज्ञा मिलनी भी सम्भव है। ऐसी बातें कहकर उनका परितोष करके उन्हें विदा दिया।

दो. तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन, गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

अर्थ : तब गणपति और शिवजी का स्मरण करके और गङ्गाजी को सिर नवाकर सखा अनुज और सीताजी के साथ सरकार वन को चले।

व्याख्या : अपना नाम अपने रखने से रहता है। अतः जिनकी प्रथम पूजा नाम के प्रभाव से होती है उन्हें पहिले स्मरण किया। तत्पश्चात् अपने सर्वार्थकारी शिवजी का स्मरण किया। यथा : सेवक स्वामि सखा सिय पीके। प्रत्यक्ष नहीं है। इसलिए स्मरण मात्र किया और गङ्गाजी घर की बड़ी बूढ़ी हैं और सामने हैं। अतः उन्हें सिर नवाया। आरम्भ में चले थे तब गणपति तथा शिवजी के साथ गौरीजी को मनाया था। यहाँ गङ्गाजी को प्रमाण किया। दोनों शक्तियाँ शिवजी की है। सो दोनों का मान रक्खा। तब सखा निषादराज, लक्ष्मण और सीता के साथ रघुनाथजी ने वनगमन किया।

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखा सब कीन्ह सुपासू ॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥१॥

अर्थ : उस दिन पेड़ के नीचे निवास किया। लक्ष्मणजी और सखा निषादराज ने सब प्रबन्ध किया। सवेरे नित्यकृत्य करके प्रभु ने जाकर तीर्थराज का दर्शन किया।

व्याख्या : गङ्गा पार होने के बाद वहाँ से सीधा रास्ता चित्रकूट का हैं। पर सरकार प्रयागराज को बायाँ देना नहीं चाहते। अतः पूर्व की ओर मुड़े। रास्ते में ही सन्ध्या हो गयी। अतः वृक्ष के नीचे ठहर गये। भोजन शयनादि का प्रबन्ध लक्ष्मण और निषादराज ने किया।

सरकार जहाँ सोते हैं उठने पर प्रातःकाल का कृत्य वहीं करते हैं। जिसमें काल का लोप न हो। प्रयागराज निकट हैं। अतः मध्यान्ह कृत्य वहीं होगा। तीर्थों के राजा हैं। इसलिए प्रयागराज कहलाते हैं। सरकार चले। तीर्थराज का दर्शन हुआ।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥२॥

अर्थ : सत्य मन्त्री हैं। श्रद्धा प्रिय स्त्री है। माधव जैसे हितकारी मित्र हैं। चारों पदार्थ से भण्डार भरा हुआ है। पुण्य प्रदेश ही अति सुन्दर राज्य है।

व्याख्या : तीर्थराज हैं। सब राजसी ठाट बाट है। राजा के छः अङ्ग होते हैं : मन्त्री, मित्र, राज्य, कोष, दुर्ग और सेना। राजा का मुख्य अङ्ग मन्त्री है : राज्य से भ्रष्ट राजा भी मन्त्री के होने से फिर राज्य प्राप्त कर सकता है। सो यहाँ सत्य ही मन्त्री हैं। बिना इनकी कृपा राजा से भेंट नहीं हो सकती। बिना सत्य के आश्रयण के तीर्थ फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। पट्टाभिषिक्ता महिषी श्रद्धा तीर्थराज को बड़ी प्रिय है। इनके बिना धर्म की उत्पत्ति ही नहीं होती। दूसरे अङ्ग मित्र रूप से माधव हैं। सब प्रकार से तीर्थराज के सहायक हैं। तीसरा अङ्ग कोष है। उसमें चारों पदार्थ धम अर्थ काम और मोक्ष भरा हुआ है और अन्तर्वेदो : गङ्गा यमुना के बीच का पुण्य प्रदेश ही राज्य है।

छेत्रु अगमु गढ़ु गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रन धीरा ३॥

अर्थ : प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम दृढ़ दुर्ग : किला शोभायमान हैं। जिसे पाने का स्वप्न भी शत्रु नहीं देख सकते। सब तीर्थ ही वीरों की सेना हैं। जो पाप की सेना के नाश में बड़े रणधीर हैं।

व्याख्या : प्रयागराज का जो क्षेत्र है वही किला स्थानीय है। जिसमें न तो शत्रु का प्रवेश हो सकता है न उनका तोड़ा टूट सकता है। शत्रुओं ने कितने तीर्थ नष्ट कर डाले। पर प्रयागराज पर उनका बल न कभी चला और न चल सकने का वे स्वप्न ही देख सकते हैं। बौद्धों के काल में जब अयोध्यादि तीर्थ लुप्त हो गये थे केवल तीर्थराज बने रहे उन पर बौद्धों का जोर न चला। महाराज विक्रमादित्य ने प्रयाग की दूरी पुराणों से देख देखकर तीर्थों की स्थिति का पता लगाया और फिर से स्थापन किया। जितने बड़े बड़े तीर्थ संसार में हैं जो दिन रात पापों का नाश किया करते हैं वे सब तीर्थराज के ही सैनिक हैं।

संगमु सिंघासनु सुठि सोहा। छत्रु अछयबटु मुनि मनु मोहा॥
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥४॥

अर्थ : गङ्गा यमुना का सङ्गम ही श्रेष्ठ सुन्दर सिंहासन है। मुनियों के मन

को मोहित करनेवाला अक्षय वट ही जिसका छत्र है। गङ्गा यमुना की लहरें चँवर हैं। जिनको देखकर दुःख और दारिद्रय जाता रहता है।

व्याख्या : अब छओं अङ्ग कहकर साज सामान कहते हैं। सङ्गम तीर्थराज के बैठने के लिए सिंहासन है। वहीं दरबार लगता है। सब हाजिर होते हैं। बड़ी शोभा है। ऐसी शोभा कहीं देखी नहीं जाती। अक्षयवट का छत्र लगा हुआ है जो प्रलय में भी नष्ट नहीं होता। उसके पत्र पर बालमुकुन्द शोभित होते हैं। यथा : चिरजीवी मुनि ज्ञान बिकलजनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु। मुनि लोग इसके स्पर्श के लिए लालायित रहते हैं।

सङ्गम में गङ्गाजी का श्वेत हिलोरा और यमुनाजी का काला हिलोरा मिलता जुलता रहता है। मानों दोनों ओर से चँवर चल रहा है। दर्शन का माहात्म्य कहते हैं कि यमुना के दर्शन से दुःख और गङ्गा के दर्शन से दारिद्रय का नाश होता है।

दो. सेवहिं सुकृती साधु सुचि, पावहिं सब मन काम।
बंदी बेद पुरान गन, कहहिं बिमल गुन ग्राम ॥१०५॥

अर्थ : पुण्यात्मा साधु लोग उनकी सेवा करते हैं और मनोभिलषित पदार्थ पाते हैं। वेद पुराण वन्दीगण हैं जो निर्मल गुणगान किया करते हैं।

व्याख्या : जैसे राजसेवक राजा की कृपा से धनादि प्राप्त करते हैं उसी भाँति पुण्यवान् तथा साधु प्रयागराज की कृपा से धर्मार्थ काम और मोक्ष अपनी कामनानुसार पाया करते हैं। ऐसी उदार निर्मलकीर्ति का गान वेद पुराण वन्दीजन की भाँति करते हैं। अर्थात् उनके इस प्रकार की उदारता के प्रमाण वेदपुराण हैं।

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुखु पावा ॥१॥

अर्थ : प्रयागराज के माहात्म्य को कौन कह सकता है। जो पापसमूह रूपी हाथी के लिए सिंहरूप हैं। ऐसे सुहावने तीर्थराज को देखकर सुखसागर रघुपति को भी सुख मिला।

व्याख्या : राजसमाज का प्रभाव वर्णन करके अब स्वयं राजा के विषय में कहते हैं कि इनका प्रभाव कोई नहीं वर्णन कर सकता है। संगम रूपी सुन्दर सिंहासन पर साक्षात् सिंह बैठा है। इसके सामने पापसमूह रूपी हाथी आते नहीं। इसका गन्ध पाकर क्षेत्र के बाहर भाग जाते हैं। इस सिंह को महापातक रूपी हाथी पर बड़ा चोप है। क्योंकि उन्हीं पर यह अपने नखों का पाण्डित्य दिखला सकता है। नखानां पाण्डित्यं प्रकटयतु कस्मै मृगपतिः।

तीरथराज दीख प्रभुजाई से उपक्रम करके : अस तीरथ पति देखि सुहावा से उपसंहार करते हैं। श्रीरामजी स्वयं सुखसागर हैं। सो उन्हें भी सुख हुआ।

प्रयागराज मित्र हैं। यथा : माधव सरिस मीत हितकारी। अतः मित्र के समागम का सुख हुआ।

कहि सिय लखनहि सखहिं सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई ॥
करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा ॥२॥

अर्थ : श्रीमुख से सीता, लक्ष्मण और सखा को सुनाकर तीर्थराज की महिमा कह सुनायी। प्रणाम करके वन और बागों को देख रहे हैं और अति अनुराग से माहात्म्य कह रहे हैं।

व्याख्या : वेद पुराण द्वारा प्रयागराज की महिमा वर्णित है। फिर भी आज श्रीमुख से महिमा कह रहे हैं। अतः उसके प्रामाणिक होने में क्या सन्देह है। तीर्थ में जाने पर तीर्थ की महिमा का वर्णन होना चाहिए। माहात्म्यश्रवण बिना पूरा फल नहीं होता। इसलिए सीताजी लक्ष्मणजी को सुना रहे हैं। क्षेत्र की सीमा पर बाग वन है। उनके दर्शन का भी पुण्य है। अतः प्रमाण करके अति अनुरागों से माहात्म्य वर्णन किया।

एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी ॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा ॥३॥

अर्थ : इस विधि से आकर त्रिवेणी का दर्शन किया। जो स्मरण करने से सब सुमङ्गल को देनेवाली हैं। प्रसन्न होकर स्नान किया और तीर्थ देवताओं की यथाविधि पूजा करके शिवजी की सेवा की।

व्याख्या : तीर्थयात्रा की यही विधि है। तदनुसार चलकर त्रिवेणी का दर्शन किया। जिसका स्मरण सभी सुमङ्गल का देनेवाला है। फिर दर्शन का क्या माहात्म्य कहा जाय। तीर्थराज में आज स्नान कर रहे हैं। इस बात की बड़ी खुशी है। तत्पश्चात् तीर्थ देवताओं की पूजा भो यथाविधि से की।

त्रिवेणीं माधवं सोमं भारद्वाजञ्च वासुकिम्। वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्। त्रिवेणी माधव सोमनाथ वासुकी अक्षयवट और शेषनागादि वहाँ के देवता हैं। तत्पश्चात् शिवजी की सेवा की। पूजन कार्य समाप्त हुआ।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये। करत दंडवत मुनि उर लाये ॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई ॥४॥

अर्थ : तब सरकार भरद्वाजजी के यहाँ गये। दण्डवत् करते हुए उनको मुनिजी ने हृदय से लगा लिया। मुनिजी को ऐसा आनन्द है कि उनसे कुछ कहते नहीं बनता। मानो ब्रह्मानन्द की राशि की ही प्राप्ति हो गयी।

व्याख्या : भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिनहि रामपद अति अनुरागा। तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना। ये महात्मा जङ्गम तीर्थराज हैं। अतः सरकार ने दण्डवत् प्रणाम किया। भरद्वाजजी इनको दण्डवत्

करते देख न सके। बीच में ही उठाकर हृदय से लगा लिया। मुनिजी को बड़ा आनन्द हुआ। कहना चाहते हैं पर कुछ भी कहते नहीं बनता। उन्हें मानो ब्रह्मानन्द की राशि हाथ लग गयी। सरकार का शरीर पाञ्चभौतिक नहीं है। घनीभूत ब्रह्मानन्द ही हैं। यथा : चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।

दो. दीन्हि असीस मुनीस उर, अति अनंदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किए बिधि आनि ॥१०६॥

अर्थ : मुनिजी ने हृदय से ही आशीर्वाद दिया। उनके मन में ऐसा जानकर अत्यन्त आनन्द है कि विधाता ने लाकर मेरे पुण्य के फल को मेरे दृष्टिगोचर कर दिया।

व्याख्या : आशीर्वाद देना चाहते थे। पर बोल न सके। अतः मन से ही आशीर्वाद दिया। उन्हें ऐसा आनन्द है मानो सब साधनों के फल को ब्रह्मदेव ने लाकर दिखला दिया। सोचते हैं कि मैं खोजने भी न गया। ब्रह्मदेव ने लाकर दिखला दिया। तीन ही श्रेय के उपाय हैं। कर्मयोग भक्तियोग और ज्ञानयोग मैंने तीनों का अनुष्ठान किया। सो तीनों के फल मानो राम जानकी और लक्ष्मण के रूप में मुझे प्राप्त हो गये। यथा : सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसन पावा।

कुसल प्रश्न करि आसन दीन्हें। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हें ॥
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहु अमी के ॥१॥

अर्थ : कुशल पूछकर आसन दिया। पूजा करके प्रेम से परिपूर्ण किया। कन्द मूल फल और अच्छे अङ्कुर अमृत से सुस्वादु लाकर मुनिजी ने दिये।

व्याख्या : कुशल प्रश्न शिष्टाचार है। जो अपने यहाँ आवे उससे कुशल पूछना आसन देना जलपान कराना धर्मशास्त्र की विधि है। यथा : तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी तु सूनृता। एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन। पूजन का प्राण श्रद्धा और भक्ति है। उसी से पूजा पूर्ण होती है। त्रुटियों का मार्जन होता है। अतः मुनिजी ने पूजा को प्रेम से परिपूर्ण कर दिया।

नैवेद्य में कन्द मूल और अङ्कुर का भोग लगाया। मुनियों का यही आहार है। भरद्वाजजी कुलपति हैं। एक आवाज पर पचासों शिष्य दौड़ आते हैं। प्रयागराज में मुनियों का आना जाना लगा ही रहता है। अतः कन्द मूलादि संग्रह अधिक रहता है। उसमें से देखने में सुन्दर और खाने में अमृत से स्वादिष्ट फल मूलादि का नैवेद्य सामने रक्खा।

सीय लखन जन सहित सुहाये। अति रुचि राम मूल फल खाये ॥
भये बिगत श्रम रामु सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे ॥२॥

अर्थ : सीता लक्ष्मण और निषादराज के साथ रामजी ने सुन्दर मूल फल को बड़े चाव से खाया। थकावट दूर हुई। रामजी सुखी हुए। तब भरद्वाजजी कोमल वचन बोले।

व्याख्या : चारों मूर्तियों को एक साथ परोसा। कन्द मूल फल अङ्कुर बड़े स्वादु थे और बड़े प्रेम से दिये गये थे। अतएव बड़े चाव से रामजी ने भोजन किया। पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः। पत्र पुष्प फल जो कोई मुझे प्रेम से देता है सो मैं उस प्रेम से दिये हुए पदार्थ को बड़े चाव से खाता हूँ : भगवद्गीतायाम्।

आज की यात्रा बड़ी लम्बी थी। अतः लौकिक व्यवहारानुसार सरकार थक गये थे। प्रेम परिपूर्ण पूजन से थकावट दूर हुई। पूजनोपरान्त स्तुति होनी चाहिए। अतः भरद्वाजजी मृदु वचन बोले।

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू॥
सुफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू॥३॥

अर्थ : हे रामजी! आपके दर्शन से आज तप तीर्थ त्याग सफल हुआ। जप योग विराग सफल हुआ। शुभ साधनों के सब साज सुफल हुए।

व्याख्या : भरद्वाज तपस्वी थे। तीर्थराज में निवास करते थे। उदासीन थे। जप योग किया करते थे। वैराग्यवान् थे। अर्थात् परलोक के जो साधन हैं उनमें तत्पर थे। बहुत दिनों से यह क्रम चल रहा था। सो सबके सब आज अकस्मात् सफल हो गये। क्योंकि सब साधनों का फल रामजी का दर्शन है। यथा : मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा। सरकार के दर्शन से मुनिजी को सहज स्वरूप की प्राप्ति हुई। इसलिए कहते हैं कि आज सब सफल हो गये।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बरु एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥४॥

अर्थ : न तो लाभ की दूसरी अवधि है न सुख की दूसरी अवधि है। तुम्हारे दर्शन से सब आशा पूर्ण हो गयी। अब कृपा करके यह वर दो कि आपके चरण कमलों में मेरी स्वाभाविक भक्ति हो।

व्याख्या : यं लब्ध्वा नापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः। सो मुनिजी अनुभव कर रहे हैं कि इससे बढ़कर दूसरा लाभ हो नहीं सकता और ब्रह्मानन्द राशि की प्राप्ति के सुख से बढ़कर दूसरा सुख हो नहीं सकता। यही सुख की पराकाष्ठा है। क्योंकि सभी आनन्द ब्रह्मानन्द के उपजीवी हैं। यथा : एषोऽस्य परमानन्दो योऽखण्डैकरसात्मकः। अन्यानि भूतान्येतस्य मात्रामेवोपभुञ्जते। सो मुनिजी ने ब्रह्मानन्द की राशि ही मानों पा ली। परम अनूप फल सहज स्वरूप की प्राप्ति से पूर्णकाम हो गये। इसलिए कहते हैं कि आस सब पूजी।

महात्माओं में साध्य से अधिक आदर साधन का होता है। भगवान् से भी

अधिक आदर भक्ति का है। अतः चरण कमलों में सहज स्नेह प्राप्ति का वर माँगते हैं। बिना प्रयत्न के ही प्रेम बना रहे। यह अविरल भक्ति कृपासाध्य है। अतः पूजोपरान्त यही प्रार्थना है।

दो. करम बचन मन छाड़ि छलु, जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहिं, कियें कोटि उपचार ॥१०७॥

अर्थ : मनसा वाचा कर्मणा छल छोड़कर जब तक कोई तुम्हारा भक्त न होगा तब तक चाहे करोड़ों उपाय करे उसे सपने में सुख नहीं मिल सकता।

व्याख्या : कर्म वचन मन छल छोड़कर भक्त हो जाना यही सहज स्नेह है। बिना सहज स्नेह सुख नहीं। क्योंकि भक्ति ही सब सुखखानि है। यथा : सब सुखखानि भक्ति तैं माँगी। अन्य उपचार की निःसारता कहा। यथा : नाहि न आवत आन भरोसो। एहि कलिकाल सकल साधन तरु है श्रम फलनि फरो सो। सुख सपनेहु न जोग साधन फल रोग वियोग धरोसो।

यह सातवीं स्तुति पुनर्वसु नक्षत्र है। इसमें चार तारे चमकते हैं : फल आशा स्नेह और सुख। फल की प्राप्ति आशा की पूर्ति स्नेह का वरदान सुख प्राप्ति का उपाय ये ही चार बातें इस स्तुति में हैं। यहाँ तप तीर्थ त्याग सब सकाम दिखायी पड़ रहे हैं। लाभ सुख आशा सभी गृहधर्म दिखायी दे रहे हैं। अतः स्तुति की आकृति गृह सी है। पुनर्वसु की आकृति गृह सी ज्योतिषशास्त्र बतलाता है। फल-श्रुति है। बीज सकल ब्रत धरम नेम के। यहाँ सब व्रत धर्म नियम का सफल होना कहा है और फल में ही बीज रहता है।

सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने ॥
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहिं सुनावा ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर रामजी सङ्कुचित हो गये और भावभक्ति के आनन्द से तृप्त हुए। तब रामजी ने मुनि के सुन्दर सुयश को करोड़ों भाँति कहकर लोगों को सुनाया।

व्याख्या : सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई। केवट मीत कहे सुख मानत बानर बंधु बड़ाई। सो मुनिजी सहज स्वरूप को लक्ष्य करके वरदान माँग रहे हैं। अतः रामजी सङ्कुचित हो गये। एवमस्तु भी नहीं कहा। परन्तु मुनिजी के कृतकृत्यता के भाव तथा भक्ति के आनन्द से तृप्त हो गये। भक्ति के आनन्द कहने का भाव यह कि भक्ति : राजसी और तामसी तो असुरों में पायी जाती है। ईर्ष्या पूर्वक द्वेष होना राजसी भक्ति : और भय पूर्वक द्वेष होना तामसी भक्ति है। पर इन भक्तियों में आनन्द नहीं। यथा : बैर भाव सुमिरत मोहिं निसिचर। पर परलोक उनका अवश्य बन जाता है। आनन्द तो सात्त्विकी भक्ति में है। मुनिजी की सात्त्विकी भक्ति है। अतः भक्ति का आनन्द कहा। जहाँ बड़े का नाता मान लेते हैं वहाँ वर माँगने पर एवमस्तु नहीं कहते मनोरथ पूर्ण कर देते हैं। यहाँ

मुनिजी की बड़ाई के व्याज से उनकी प्रार्थना की स्वीकृति द्योतित की। लोगों से मुनिजी के सुयश का वर्णन करने लगे कि ये साक्षात् जङ्गम प्रयागराज हैं। इतना बड़ा श्रोत्रिय कौन है। प्रणव की प्राप्ति इन्होंने इन्द्र से की है। संसार को रोग से आर्त देखकर इन्हीं महात्मा ने वैद्यशास्त्र का प्रचार सुश्रुत संहिता रचकर किया है करोड़ लक्ष सहस्र शत शब्द बहुवचन वाची हैं : इत्यादि।

सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम आदर देहू॥
मुनि रघुबीर[1] परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥२॥

अर्थ : हे मुनीश्वर! जिसे तुम आदर दो वही बड़ा है और वही गुणगण का घर है। मुनिजी तथा रामजी परस्पर विनीत हो रहे हैं और ऐसे सुख का अनुभव कर रहे हैं जो वाणी का विषय नहीं।

व्याख्या : अपने सहज स्वरूप को छिपाना है और मुनिजी के वचन को अप्रमाण कैसे कहें? अतः कहते हैं कि आप सत्यसङ्कल्प हैं। सत्यकाम हैं! आप जिस किसी को जैसा कह दें वही वैसा हो सकता है। आपने जो मेरी स्तुति की है वह कृपा करकें मुझे बड़ाई दी है। आपके आदर प्रदान से मैं बड़ा भी हुआ। गुण गेह भी हुआ।

भक्त और भगवान् का परस्पर विनय दिखलाते हुए अनिर्वचनीय आनन्द का आविर्भाव दिखलाया। विनय से ही प्रीति की वृद्धि होती है और जहाँ आनन्द है वहीं प्रीति है।

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आश्रम सब आये। देखन दसरथ सुअन सुहाये॥३॥

अर्थ : यह समाचार पाकर प्रयाग के रहनेवाले ब्रह्मचारी तपस्वी मुनि और उदासीन दशरथ के सुन्दर बेटों को देखने आये।

व्याख्या : जहाँ सरकार जाते हैं सब लोग उनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। चारों ओर सौन्दर्य की ख्याति फैल जाती है। अतः यह समाचार सब लोगों में फैल गया कि राजा दशरथ के बेटे प्रयाग स्नान के लिए आये हैं। उनके रूप की सम्पत्ति अलौकिक है। इस समय वे भरद्वाज के आश्रम में हैं। अतः ब्रह्मचारी वानप्रस्थ सन्यासी सिद्ध और विरतिरत गृही सभी देखने आये।

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोयन लाहू॥
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई॥४॥

अर्थ : रामजी ने सभी को प्रणाम किया। सब नेत्रों का लाभ पाकर प्रसन्न हुए। परम सुख पाकर सब आशीर्वाद देते हैं और सुन्दरता की प्रशंसा करते हुए घर लौटते हैं।

---

१. यहाँ अन्योन्यालङ्कार है।

व्याख्या : बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी। सभी प्रणम्य ठहरे। अतः मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् ने सबको प्रणाम किया। नयनवन्त रघुपतिहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी। सो ये लोग भी नयनफल पाकर विशोक हुए। सरकार के दर्शन से परम सुख हुआ। यथा : मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा। परम सुख पाकर सबने आशीर्वाद दिया और सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए लौट आये।

दो. राम कीन्ह विश्राम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखन जन, मुदित मुनिहि सिरु नाइ ॥१०८॥

अर्थ : रामजी ने रात्रि को विश्राम किया। प्रातःकाल प्रयाग स्नान करके सीता लक्ष्मण और भक्त निषाद के साथ मुनिजी को सिर नवाकर प्रसन्न मन चले।

व्याख्या : रामजी ने रात को भरद्वाजजी के आश्रम में ही विश्राम किया। एक रात्रि तीर्थ में बिताया। प्रातः स्नान प्रयागराज अर्थात् त्रिवेणी में हुआ। अब और आगे चले। वाल्मीकि मुनिजी के दर्शन के लिए उत्साह है। अतः प्रसन्न मन से चलना कहा। रामजी सीता लक्ष्मण और गुह निषाद के साथ मुनि : भरद्वाजजी को प्रणाम किया और चल पड़े।

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं ॥
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहुँ अहहीं ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रेम के साथ मुनिजी से कहा कि हे नाथ! बतलाइये कि हम लोग किस रास्ते से जायँ। मुनिजी मन ही मन हँसकर रामजी से कहते हैं कि सभी रास्ते तुम्हारे लिए सुगम हैं।

व्याख्या : भरद्वाजजी वाल्मीकिजी के शिष्य हैं। यद्यपि रामजी रास्ता पूछते हैं। पर किसी स्थान का नाम नहीं लेते : जहाँ जाना है। भाव यह कि मुनिजी रास्ता भी बतलायें और गन्तव्य स्थान का भी निश्चय कर दें। मुनिजी से स्वामी सेवक भाव रखते हुए नाथ सम्बोधन देते हैं और प्रेम से पूछते हैं।

ऐश्वर्य छिपाते देखकर मुनिजी मन ही मन हँसे कि ये हमसे रास्ता पूछते हैं। अतः उत्तर देते हैं कि सभी रास्ते तुम्हारे लिए सुगम हैं। जिसने जग को तीन पग से भी थोड़ा कर डाला उसके लिए दुर्गम क्या है। मुनिजी ने गुरुजी के पास पहुँचाने का रास्ता ठीक कर दिया और गन्तव्य स्थान का निर्णय उन्हीं पर छोड़ा।

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाये। सुनि मन मुदित पचासक आये ॥
सबहि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मगु दीख हमारा ॥२॥

अर्थ : साथ के लिए मुनिजी ने शिष्यों को बुलाया। सुनते ही प्रसन्न मन से लगभग पचास के आगये। सभी का रामजी पर अपार प्रेम है। सभी कहते हैं कि रास्ता हमारा देखा है।

व्याख्या : रास्ता ऐसा नहीं था कि केवल बतला देने से काम चले। अर्थात् कोई पगडण्डी ऐसी नहीं थी जिसे पकड़ा देने से काम चल जाय। रास्ता दिखाने के लिए साथ जाने की आवश्यकता थी। अतः साथ भेजने के लिए मुनिजी ने शिष्यों को आवाज दिया। सुनते ही लगभग पचास के आगये। मुनिजी ने पूछा कि गुरुजी के यहाँ जाने का रास्ता किसका देखा है। सभी कहने लगे कि हमारा देखा है। हमारा देखा है। सभी का रामजी पर अपार प्रेम था। सभी की इच्छा थी कि रामजी के साथ जायँ।

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे॥
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई॥३॥

अर्थ : मुनिजी ने चार ब्रह्मचारियों को साथ कर दिया। जिन्होंने बहुत जन्मों तक सब पुण्य किया था। प्रणाम करके ऋषिजी की आज्ञा पाकर रामजी प्रसन्न होकर चल पड़े।

व्याख्या : एक के भी साथ देने से रास्ता दिखाने का काम चल सकता था। फिर भी मुनिजी ने चार शिष्य साथ कर दिये। क्योंकि जङ्गल की बात थी। उन्हें रामजी को पहुँचाकर लौटना भी था और मार्ग चलने में चार का विधान भी है। मुनिजी शिष्य सभी रामजी के प्रेमी थे। सभी पुण्यात्मा थे। अतः मुनिजी को उनके पूर्व जन्म के सुकृत के अनुसार निर्णय करना पड़ा।

रामजी विदाई के लिए प्रणाम करते हैं। अथवा आज्ञा प्राप्त करने के लिए प्रणाम करते हैं। आज्ञा पाकर प्रमुदित होकर चले। मुदित होकर सिर नवाया था। अब प्रमुदित होकर चले।

## पंथ कथा प्रसङ्ग

ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई॥
होहिं सनाथ जनम फलु पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥४॥

अर्थ : जब किसी गाँव के निकट होकर निकलते थे तो स्त्री पुरुष दौड़कर दर्शन करते थे। जन्म फल पाकर सनाथ होते थे और मन को साथ भेजकर दुःखी लौटते थे।

व्याख्या : वन के छोर पर कहीं कहीं ग्राम है। उनके निकट जब वन में से निकलते हैं तो दर्शन के लिए ग्रामवासी नर नारी दौड़ पड़ते हैं। सरकार की शोभा देखते हैं। अपने को सनाथ मानते हैं। संसार में जन्म लेने का फल उन्हें प्राप्त हो गया। उनका मन सरकार के साथ हो गया और फिर न लौटा। लौटने में उन्हें बड़ा कष्ट हुआ।

दो. बिदा किये बटु बिनय करि, फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाये जमुन जल, जो[1] सरीर सम स्याम ।।१०९।।

अर्थ : विनय करके ब्रह्मचारियों को विदा किया और वे मन चाहा फल पाकर लौटे। यमुना पार होकर स्नान यमुना जल में किया। जो उनके शरीर की भाँति श्याम था।

व्याख्या : ब्रह्मचारी अधिक दूर तक साथ जाने को उत्सुक थे। लौटना नहीं चाहते थे। सो उन्हें विनय करके लौटाया। वे भी खाली हाथ नहीं लौटे। उनकी कामनाएँ पूर्ण हुईं। यमुना पार होकर मध्याह्न कृत्य किया। पार होने की व्यवस्था निषादपति ने की। यमुना जल को शोभा कहते हैं कि वह सरकार के शरीर सा श्याम था : सम्भवतः जो अत्र गुलौरीघाट कहलाता है वहाँ पहुँच गये।

सुनत तीर बासी नर नारी। धाए निज निज काज बिसारी ।।
लखन राम सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई ।।१।।

अर्थ : सुनते ही तीर के रहनेवाले नर नारी अपना अपना काम भूलकर दौड़े। लक्ष्मण राम और सीता की सुन्दरता देखकर अपने भाग्य की बड़ाई करते हैं।

व्याख्या : इस समाचार को सुनकर अति उत्कण्ठावश यमुना तीर के रहनेवाले अपना अपना काम अधूरा छोड़कर दौड़े कि उनके पहुँचने के पहिले ही कहीं चले न जायँ। जैसे मुरली की ध्वनि सुनकर व्रजगोपिकाएँ दौड़ीं थीं। किसी ने एक ही आँख में अञ्जन लगा पाया था। किसो ने दूध को उफनता हुआ आग पर ही छोड़ा। वे श्रीकृष्ण के दर्शन की उत्सुकता में सब काम भूल गयीं। वही दशा आज यमुनातीरवासी नर नारियों की हुई।

आकर जब लक्ष्मण राम और सीता की सुन्दरता को देखा तो उन्हें ऐसा अलौकिक सुख हुआ कि अपने भाग्य की बड़ाई करने लगीं। अचिन्तित सुख या दुःख की प्राप्ति में भाग्य ही कारण माना जाता है।

अति लालसा बसहिं मन मांहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं ।।
जे तिन्ह महुँ बय बिरिध सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने ।।२।।

अर्थ : उन लोगों के मन में बड़ी लालसा हो रही थी। फिर भी नाम ग्राम पूछने में सङ्कोच होता था। उनमें जो सयाने चतुर रहे उन्होंने युक्ति लगाकर रामजी को पहिचान लिया।

व्याख्या : जिसके देखने से मन को इतना सुख मिल रहा है उनके नाम और पता जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है। पर पूछने में सङ्कोच होता है।

---

१. यहाँ प्रतीपालङ्कार है।

महामहिम पुरुष से सामान्य पुरुष को ऐसा प्रश्न करने में सङ्कोच होता ही है। पर जानने की अभिलाषा प्रबल है। उनमें जो ज्ञानवृद्ध थे उन्होंन युक्ति से पहिचाना।

चतुर हैं। उनका संसार देखा हुआ है। पर ऐसे बटोही तो नहीं देखे। निश्चय राजकुमार हैं। पर मुनिवेष बनाये हुए हैं। राजा दशरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को वन दिया है। वही राम ये हैं। ऐसा युक्ति से निश्चय किया।

सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥३॥

अर्थ : उन्होंने सब कथा सब लोगों को सुनायी कि पिता की आज्ञा से ये वन को जा रहे हैं। सुनकर सब लोग विषाद के साथ पछताने लगे कि राजा रानी ने अच्छा नहीं किया।

व्याख्या : उन सयाने लोगों को रामजी के अभिषेक की तैयारी कैकेयी का वरदान माँगने तथा रामजी का पिता की आज्ञा शिरोधार्य करने की कथा मालूम थी। अतः रामजी के पहिचानने में कठिनाई न हुई और अब उन्होंने सबको वह कथा कह सुनायी कि वे ही रामजी पिता की आज्ञा से वन जा रहे हैं। तब यह सुनकर सबको विषाद हुआ। सब पछताने लगे और राजा रानी को दोष लगाने लगे कि उन लोगों ने अच्छा नहीं किया। यहाँ तक नर का पछताना कहा।

तेहि अवसरु एक तापसु आवा। तेज पुंज लघु बयस सुहावा॥
कबि अलखित गति बेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥४॥

अर्थ : उसी समय में एक तपस्वी आया। जो तेजस्वी सुन्दर और अल्पवयस्क था। वह गूढ़गति कवि था। उसका विरागी सा वेष था और मनसा वाचा कर्मणा रामानुरागी था।

व्याख्या : जिस समय लोग सविषाद पछता रहे थे उसी समय एक तपस्वी भी आगया। यमुना तीर के आनेवाले नर नारियों में उसकी विशेषता थी। अतः उसकी कथा अलग लिखते हैं।

सरकार अभी यमुना पार उतरे हैं। यहीं गुरौली घाट है। जहाँ पर सरकार का उतरना कहा जाता है। राजापुर श्रीगोस्वामीजी का जन्म स्थान यहाँ से बहुत निकट है। यहाँ इष्टदेव का आगमन वर्णन करने में भावावेश से कवि के लिए भूतकाल वर्तमान में परिणत हो गया और आप स्वयं आगये। तेज पुञ्ज से भौतिकता का अभाव कहा। दिव्य मानसिक शरीर से आये : बालपने सूधोमन राम सनमुख भयो। इसी से लघुबयस सुहावा कहा। कवि अलखित गति कहकर गोस्वामी जी स्पष्ट ही अलक्ष्यगति से अपना आना कहते हैं। श्रीगोस्वामीजी का विरागी वेष था ही। यथा : वेष विराग को राग भरो तनु। मन क्रम वचन श्रीरामजी में अनुराग होना प्रसिद्ध ही है।

दो. सजल नयन तन पुलकि निज, इष्ट देउ पहिचानि ।
परेउ दंड जिमि धरनि तल, दसा न जाइ बखानि ॥११०॥

अर्थ : अपने इष्टदेव को पहिचाकर उसकी आँखों में जल भर आया। रोंगटे खड़े हो गये। दण्ड के समान पृथ्वी तल पर गिर पड़ा। उसकी दशा वर्णन नहीं की जा सकती।

व्याख्या : इन महात्मा को सरकार के पहिचान करने में युक्ति का सहारा नहीं लेना पड़ा। इन्होंने सीधे सीधे पहिचाना कि जिन तीन मूर्तियों का नित्य ध्यान करता हूँ वे यही तो हैं। यथा : राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर। ध्यान सकल कल्यान मय सुरतरु तुलसी तोर। अतः कहते हैं : निज इष्टदेव पहिचानि सात्त्विक भाव हुआ। प्रेम में विभोर होकर दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिरे। शरीर का अध्यास नहीं रह गया। इसलिए कहते हैं : दसा न जाइ बखानि।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंकु जनु पारसु पावा ॥
मनहुँ प्रेम परमारथु दोऊ। मिलत धरें तनु कह सबु कोऊ ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रेम के साथ पुलकित होकर इस भाँति हृदय से लगाया जैसे परम दरिद्र को पारस मिल गया हो। सब लोग कहने लगे कि मानो प्रेम और परमार्थ शरीर धारण करके मिल रहे हों।

व्याख्या : भक्त सजल नयन पुलकित तन होकर दण्ड के समान पृथ्वी पर गिरा। भगवान् ने सप्रेम पुलकित तन होकर हृदय से लगा लिया। भक्त की दशा बखानी नहीं जाती। भगवान् की भी ऐसी ही दशा है। महादरिद्र को पारस मिलने से जैसा आनन्द होता है वैसा आनन्द हो रहा है। ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

परमार्थ को प्राप्त करानेवाला प्रेम है और प्रेम का चाहनेवाला परमार्थ है। अतः देखनेवालों ने इस मिलन को देखकर कह दिया कि मानों प्रेम और परमार्थ शरीरधारी होकर मिल रहे हैं। राम ब्रह्म तो परमार्थ रूप हैं ही। इधर भक्त भी प्रेममय हो रहा है। अतः ऐसी उपमा दी गयी।

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमँगि अनुरागा ॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्ह असीसा ॥२॥

अर्थ : तत्पश्चात् वह लक्ष्मणजी के पाँव पड़ा। उन्होंने प्रेम से उमँगकर उठा लिया। तत्पश्चात् सीताजी के चरणों की धूलि सिर पर रक्खा। माँ ने बच्चा जानकर आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी के चरण शीतल सुभग भक्त सुखदाथा हैं। अतः उन चरणों को प्रणाम किया। उन्होंने भी अनुराग से उठा लिया। उठा लेने का अर्थ ही मिलना है।

फिर उसने अधिकारानुसार सीताजी के चरणों की धूलि को सिर पर धारण किया। जगदम्बा ने उसका शिशु भाव देखकर आशीर्वाद दिया। इस भाँति वह कृतकृत्य हो गया। यथा : अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तौ अमोघ विख्याता।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मेलेउ मुदित लखि राम सनेही ॥
पिअत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा ॥३॥

अर्थ : निषाद ने उसे दण्डवत् किया। उसने रामजी का स्नेही जानकर गले लगाया। वह नेत्ररूपी चषक से सौन्दर्यामृत का पान करने लगा और ऐसा प्रसन्न था जैसे सुन्दर भोजन पाकर भूखा प्रसन्न होता है।

व्याख्या : निषादराज ने उसे दण्डवत् किया। उन्होंने गले लगा लिया। निषादराज से पहिले पहल ये ही मिले। इन्होंने राम प्रेम के सामने जाति के अपकर्ष को कुछ न गिना। यथा : तुलसी भगत स्वपच भलो भजै रैन दिन राम। ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम। अति ऊँचे भूधरन पै भुजगन्ह के अस्थान। तुलसी नीचे होत हैं ईख अन्न अरु पान।

अब वह तपस्वी आँखों को पान पात्र बनाकर सौन्दर्यरूपी अमृत का पान करने लगा और ऐसा प्रसन्न था जैसे भूखा स्वादिष्ट अन्न पाकर प्रसन्न होता है। सरकार के रूप सुधा के पान करने से भक्तिरूपी सुस्वादु अन्न भी करतलगत होता है। यहाँ पर पीने और खाने की द्विविध तृप्ति का वर्णन किया। ये महात्मा तो इस प्रकार आनन्द लूटते रहे। अब नारी समाज का हाल सुनिये।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे ॥
राम लखन सिय रूपु निहारी। होहिं सनेह बिकल नर नारी ॥४॥

अर्थ : हे सखि ! वे माता पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे बालकों को वन भेजा है। राम लक्ष्मण और जानकी के रूप को देखकर नर और नारी स्नेह से विकल हो रहे थे।

व्याख्या : आँखिन में सखि राखिवे जोग इन्हें किमि कै वनवास दयो है। जैसे निषादपति के यहाँ की नर नारियों ने कहा था वैसे ही ये भी कह रही हैं। यह अर्धाली मानस में दो बार आयी है। इन्हें माता पिता के निर्दयता पर आश्चर्य है।

पहिले तो राम लक्ष्मण और सीताजी के रूप को देखकर सब अपने भाग्य की बड़ाई करते थे। परन्तु जब सब कथा जान लिया तब उनके रूप को देखकर स्नेह से विकल होने लगे।

दो. तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहिं सिखावनु दीन्ह।
राम रजायसु सीस धरि, भवन गवनु तेइँ कीन्ह ॥१११॥

अर्थ : तब रामजी ने अनेक विधि से सखा को शिक्षा दी। रामजी की आज्ञा शिरोधार्य करके वह घर गया।

व्याख्या : जब तक सरकार वहाँ थे यमुनातीरवासियों की ऐसी ही दशा थी। सरकार को सङ्ग में किसी का रखना पसन्द नहीं। अतः सखा निषादराज को अनेक प्रकार से शिक्षा दी। मेरा भजन जैसा वियोग में होता है वैसा संयोगावस्था में नहीं होता। अथवा वाल्मीकिजी के आश्रम जाने में कोई बाधक नदी भी नहीं है। हम लोग चले जायँगे। तुम्हारे साथ रहने में राज सम्बन्ध लगा रहेगा। मेरे उदासीन व्रत में बाधा रहेगी इत्यादि। फिर भी निषाराज को लौटने की इच्छा नहीं। पर रामजी की आज्ञा माननो ही पड़ी और वह घर लौट चला।

पुनि सिय राम लखन कर जोरी। जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कइ करत बड़ाई॥१॥

अर्थ : फिर सीता राम और लक्ष्मण ने फिर यमुनाजी को प्रणाम किया। सोताजी के सहित प्रसन्न होकर दोनों भाई सूर्य की बेटी यमुनाजी की महिमा कहते चले।

व्याख्या : आने के समय प्रणाम नहीं कहा था। इसलिए जाते समय बहोरी पद देकर जनाया कि आने के समय भो प्रणाम किया था। बड़ी श्रद्धा से तीनों प्राणियों ने प्रणाम किया। मुख्य तो नदी की अधिष्ठात्री देवता हैं। जिनके जलमय शरीर को नदी कहा जाता है। आगे कहे हुए रवितनुजा शब्द से यही अर्थ स्पष्ट है।

यमुना स्नान करके सीता राम और लक्ष्मण सभी प्रसन्न हैं। रास्ते चलते यमुनाजी की महिमा कहते चले। दर्शन करने के समय महिमा कहने का अवसर नहीं मिला था। वहु : गी. प्रे.। यमुना की महिमा यथा : यमुना ज्यौं ज्यौं लागी बाढ़न। त्यौं त्यौं सुकृत सुभट कलि भूपहिं निदरि लगे वहु काढ़न। ज्यौं ज्यौं जलमलीन त्यौं त्यौं जमगन मुख मलीन लहैं आढ़न। तुलसीदास जगदघ जवास ज्यौं अनघ मेघ लागे डाढ़न : वि. प.।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राज लखन सब अंग तुम्हारें। देखि सोचु अति हृदय हमारें॥२॥

अर्थ : रास्ते में जाते हुए अनेक बटोही : राहचलतू मिलते हैं। दोनों भाइयों को प्रेम के सहित देखकर कहते हैं। तुम्हें तो सब राजलक्षण पड़े हैं। देखकर हमारे हृदय में बड़ा सोच है।

व्याख्या : रास्ते से जा रहे हैं। अतः वन की ओर से आनेवाले पथिकों से भेंट होती है। दोनों भाइयों के दर्शन मात्र से उनके हृदय में प्रेम उमड़ आता है। उनमें सामुद्रिक के पण्डित भी हैं। देखते हैं तो दोनों भाइयों को राजलक्षण पड़े हुए हैं। कोई लक्षण ऐसे नहीं है जिससे इस दशा में पैदल चलें। उनसे बिना कहे नहीं

रहा जाता। वे कहते हैं कि तुम्हें देखकर हमें बड़ा सोच हो रहा है, कि लक्षण तुम्हें तो सब राजा के से पड़े हैं।

मारग चलहु पयादेहिं पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाएँ ॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारी सुकुमारी ॥३॥

अर्थ : पैदल रास्ता चल रहे हो। हमारी समझ में तो ज्योतिष शास्त्र झूठ मालूम पड़ता है। रास्ता दुर्गम है। भारी पर्वत और वन है। तिस पर साथ में सुकुमारी स्त्री है।

व्याख्या : ऐसे लक्षण युक्त पुरुष टहलने भले ही पैदल चले। तीर्थ में पैदल चलें। पर रास्ता पैदल नहीं चलते। हम ज्योतिषी ठहरे। हमारे फलकथन से ज्योतिष शास्त्र सच्चा समझा जाता है। सो जहाँ कुछ लक्षण अच्छे हैं कुछ बुरे हैं वहाँ फल न घटने पर मानना पड़ता है कि दोषगुण के तारतम्य के न समझने से चूक हुई। पर यहाँ तो जितने राजलक्षण हैं सब तुम्हारे में मौजूद हैं और तुम पैदल मञ्जिल तय कर रहे हो। अतः मेरा हृदय तो अब ज्योतिष को सच्चा मानने के लिए तैयार नहीं है।

मार्ग भी दुर्गम है। बड़े बड़े पहाड़ हैं। भारी जङ्गल हैं। बीच में कोई विश्राम स्थान नहीं। साथ में कोई सहायक नहीं। उलटे सुकुमारी स्त्री साथ में है। तुमलोग इसकी रक्षा करोगे कि अपना प्राण बचाओगे।

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई ॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई ॥४॥

अर्थ : हाथी और सिंहों का वन देखते नहीं बनता। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें। आप लोग जहाँ तक जायँगे वहाँ तक पहुँचाकर फिर हम तुम्हें प्रणाम करके लौट आवेंगे।

व्याख्या : फिर वन भी कैसा है कि इसमें हाथी भी हैं। सिंह भी है। अतः बड़ा भयानक है। देखते नहीं बनता। हम उसी में से होते आ रहे हैं। रक्षा के लिए आपके सङ्ग चलने को तैयार हैं। परन्तु बिना आज्ञा सङ्ग चलना भी अनुचित है।

यदि कहिये कि कहाँ तक साथ चलोगे। इसपर कहते हैं कि जहाँ तक आप जायँ वहाँ तक साथ चलेंगे। आपको गन्तव्य स्थान तक पहुँचाकर तब लौटेंगे। तुमहि सिरु नाई भाव यह कि इसका एहसान : निहोरा आप पर न होगा। हम अपने को कृतकृत्य मानेंगे।

दो. एहि बिधि पूछहिं प्रेम बस, पुलक गात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहि तिन्हहि, कहि बिनीत मृदु बैन ॥११२॥

**अर्थ :** इस भाँति प्रेमवश पूछते हैं। उनको पुलक हो जाता है। आँखों में जल आ जाता है। पर कृपासिन्धु सबको विनीत कोमल वचन कहकर लौटा देते हैं।

**व्याख्या :** जो ज्योतिषी हैं। लक्षण देखकर पहिचानते हैं और जो नहीं लक्षण जानते वे भी रूप देखकर मुग्ध हो जाते हैं। प्रेम में उन्हें पुलकावली हो जाती है। आँखों में जल आ जाता है। सभी साथ जाने को तैयार हो जाते हैं। पर सरकार किसी को साथ नहीं लेते। विनीत और कोमल वचन कहकर लौटा देते हैं। क्योंकि कृपा के समुद्र हैं। समुद्र में जो कुछ डालिये उसे वह स्वीकार नहीं करता। गर्जन पूर्वक बाहर फेंक देता है पर सरकार कृपासिन्धु हैं। अतः विनीत मृदु वचन कहकर प्रार्थना अस्वीकार कर देते हैं।

**जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं॥**
**केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुन्यमय परम सुहाये॥१॥**

**अर्थ :** रास्ते में जो पुर और ग्राम पड़ते थे उनसे ईर्ष्या नागलोक और देवलोक करते थे कि किस पुण्यवान ने किस शुभ घड़ी में ये धन्य और पुण्यमय तथा बड़े सोहावने गाँव बसाये हैं।

**व्याख्या :** यहाँ नागसुरनगर से उनके अधिष्ठात्री देवता अभिप्रेत हैं। जहाँ सरकार जाते हैं वहाँ परमानन्द की बाढ़ आ जाती है। नागसुरनगर में तो केवल विषयानन्द का प्रचार है। अतः वे ईर्ष्या करते हैं कि ऐसा आनन्द हमारे यहाँ कभी नहीं हुआ।

पुर और ग्राम की विभूति उसके बसानेवाले के पुण्य और बसाने के मुहूर्त पर निर्भर है। क्योंकि वे ग्राम और पुर बसानेवाले के पुत्र स्थानीय हैं। उनके यश को बनाये रहते हैं। उनने पुण्यानुसार ही उन पुर और ग्रामों की उन्नति होती है। बसाने का मुहूर्त ही उन पुर और ग्रामों का जन्म मुहूर्त है। सो ये ऐसे पुण्यमय हैं कि सरकार का चरण इनकी प्रान्तभूमि में आगया। अतः उन बसानेवाले सुकृतियों और उन पुण्यमुहूर्तों की प्रशंसा करते हैं।

**जहँ जहँ राम चरन चलि जांहीं। तिन्ह समान अमरावति नांहीं॥**
**पुन्यपुंज मग निकट निवासी। तिन्हहिं सराहहिं सुरपुरबासीं॥२॥**

**अर्थ :** जहाँ जहाँ रामजी के चरण चले जाते हैं उनके समान अमरावती भी नहीं है। रास्ते के निकट के रहनेवाले तो पुण्य के समूह ही हैं। उनकी प्रशंसा सुरपुरवासी करते हैं।

**व्याख्या :** गाँव जो रास्ते में पड़ते हैं उनकी महिमा कहकर जिस स्थल में प्रभु के चरण पड़े उसकी महिमा कहते हैं। जिस भरत ने विधिविस्मयदायक विभव को आँख उठाकर नहीं देखा। वे ही : रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं। तब उसकी महिमा क्या कही जाय। इतना भाग्य इन्द्रपुर का कहाँ ?

स्वर्गवासियों का तो कमाया हुआ पुण्य क्षण क्षण क्षीण होता जाता है। जब सब पुण्य क्षीण हो जाता है तो स्वर्ग से गिरा दिये जाते हैं। मग निकट निवासियों ने तो अपना मन ही सरकार को अर्पण कर दिया। यथा : फिरहिं दुखित मन संग पठाई। उनका पुण्य नित्य बढ़ता जा रहा है। वे पुण्यपुञ्ज हैं। अतः उनकी प्रशंसा स्वर्ग-निवासी कर रहे हैं।

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीता लखन सहित घनस्यामहिं ॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं ॥३॥

अर्थ : जो घनश्याम राम को सीता लक्ष्मण सहित आँख भरकर देख रहे हैं। जिस सरोवर और नदी में रामजी स्नान करते हैं उन्हें देवता के सर और सरित प्रशंसा करते हैं।

व्याख्या : सुरपुरवासियों के प्रशंसा करने का कारण कहते हैं कि इतना भाग्य उनका नहीं है कि आँख भर सीता लक्ष्मण सहित रामजी का दर्शन पा सकें। नित्य-स्नान में सदा नदी नहीं मिलती है। तब सरोवर में स्नान होता है। सरकार सदा अवगाहस्नान करते हैं। कूप स्नान नहीं करते। देवसरि और देवसर मानसरोवर आदि हैं। इनका इतना भाग्य इस समय नहीं है कि सरकार के सर्वाङ्ग प्रक्षालन का सौभाग्य प्राप्त हो। अतः ये सब उन सरित सरोवर की प्रशंसा करते हैं जिनमें सरकार स्नान कर लेते हैं।

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई ॥
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा ॥४॥

अर्थ : जिस पेड़ के तले सरकार जाकर बैठते हैं। उसकी बड़ाई कल्पवृक्ष करता है। रामजी के चरण की धूलि का स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा भाग्य मानती है।

व्याख्या : सूर्यमण्डल के मध्य में चन्द्रमण्डल और उसके मध्य में अग्निमण्डल है और उसके भी मध्य में कल्पवृक्ष के नीचे दिव्य सिंहासन पर सरकार के ध्यान की विधि है। सो आज वही सरकार उस कल्पवृक्ष का अनादर करके साधारण वृक्ष के नीचे श्रमापनोदन के लिए जा बैठे हैं। अतः उस वृक्ष की बड़ाई कल्पवृक्ष करता है। जिसे कभी सरकार के श्रमापनोदन का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ।

सौभाग्य की हजारों मुहर तो पृथ्वी पर ही लग रही हैं। ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे। इन चिह्नों से पृथ्वी अङ्कित हो रही है। जो चरण अज शंकर से वन्दित है उनके स्पर्श का सौभाग्य दिन रात हो रहा है। अतः भूमि का अपना भूरि भाग्य मानना प्राप्त ही है।

दो. छाँह करहिं घन बिबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, रामु चले मगु जाहिं ॥११३॥

अर्थ : मेघ छाया करते और देवता फूल बरसाते और बड़ाई करते हैं। पर्वत वन पक्षी और मृगों को देखते हुए रामजी रास्ते में चले जा रहे हैं।

व्याख्या : अद्भुत शोभा है। पृथ्वी मङ्गलमयी हो रही है। आकाश से मेघ छाया करते चले जाते हैं। देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। सरकार पर्वत वन पक्षी मृगों को देखते हुए चल रहे हैं। वन यात्रा वन विहार हो रहा है। देवता लोग इस आनन्द को देखकर स्वर्ग सुख को तुच्छ मान रहे हैं। देवलोक में दो बड़े दोष हैं। एक ईर्ष्या और दूसरा गर्व। ये लोग दूसरे के सुखोत्कर्ष देखकर ईर्ष्या करते हैं और अल्पसुख देखकर गर्व करते हैं। उसी स्वभावानुसार इन्हें पृथ्वी पर के आनन्द को देखकर ईर्ष्या हो रही है।

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई ॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृहकाज बिसारी ॥१॥

अर्थ : जब सीता और लक्ष्मण सहित रामजी किसी गाँव के निकट निकलते थे तो सुनते ही सब बालक वृद्ध नर और नारी घर का कार्य भूलकर तुरन्त चल पड़ते थे।

व्याख्या : ग्राम के मध्य से नहीं जाते। वन में से जब मैदान में निकल आते थे तो खेतिहरों की दृष्टि पड़ी। यह अलौकिक शोभा देखकर उन्होंने दौड़कर गाँव में खबर दिया : अवस देखिये देखन जोगू।

बालक वृद्ध गृह कार्य से विनिर्मुक्त हैं। अतः पहिले बालक चले। पीछे से बूढ़े चले। नरनारी अर्थात् युवक युवती गृहकार्य में लगे हैं। उन्होंने भी कार्य छोड़ा। समाचार देनेवाले के शब्द में ऐसी शक्ति आगयी है कि सुननेवाला घर का काम छोड़ देता है।

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयनफलु होहिं सुखारी ॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भये मगन देखि दोउ बीरा ॥२॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीताजी को देखकर नेत्र होने के फल को पाकर सुखी होते थे। उनके नेत्रों में जल आगया। शरीर पुलकित हो उठा। सब दोनों वीरों को देखकर मग्न हो गये।

व्याख्या : राम लक्ष्मण पर दूर से ही दृष्टि पड़ी और सीताजी पर निकट आने पर। स्त्री पर विशेष रूप से दृष्टि न देना भारत की प्राचीन सभ्यता है। राम लक्ष्मण को दूर से ही देखते चले आते हैं। निकट आने पर सीताजी पर दृष्टि पड़ी। इसलिए राम लषन को पहिले कहा। दर्शन पाते ही शोकरहित हो गये। आँख होने का फल मिल गया। विशोक होना ही जन्म का फल है। अतः वे सुखी हो गये।

दोनों भाइयों का दर्शन चित्त देकर कर रहे हैं। अतः उसी आनन्द में मग्न हो गये। सात्त्विक भाव हो गया। आँखों में आँसू डबडबा आया और शरीर पुलकित हो उठा।

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्हि सुरमनि ढेरी ॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं ॥३॥

अर्थ : उनकी दशा वर्णन करते नहीं बनता। जैसे कङ्गालों को चिन्तामणि का ढेर हाथ लग जाय। एक दूसरे को पुकारकर शिक्षा देते हैं कि इस क्षण नेत्रों का लाभ ले लो।

व्याख्या : उनकी दशा कहने योग्य नहीं सब होश के बाहर हो रहे हैं। कङ्गाल को रोटी दुर्लभ उन्हें मानो चिन्तामणि का ढेर हाथ लग जाय ऐसी दशा सबकी हो रही है। एक दूसरे को पुकारकर शिक्षा देते हैं। अवलोकहु भरि नयन बिकल जनि होहु करहु सुबिचार। धैर्य धारण करके इस क्षण दर्शन करके नेत्र होने के फल को प्राप्त करो। ये बहुत शीघ्र आँख के ओट हो जायँगे तब पछतावा रह जायगा कि आँख भर देख न पाये।

रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं संग लागे ॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बरबानी ॥४॥

अर्थ : रामजी को देखकर किसी को ऐसा प्रेम हुआ कि देखते हुए साथ लगा चला जा रहा है। कोई नेत्र के मार्ग से छबि को हृदय में लाकर मनसा वाचा कर्मणा शिथिल हो गया।

व्याख्या : पहिले ही कह आये हैं : सुनि सब बाल वृद्ध नरनारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी। अतः पहिले बालकों की दशा कहते हैं कि उन्हें रामजी को देखकर बड़ा प्रेम हुआ। अतः उन्हें देखते रहने के लिए बाल्यावस्थानुसार उन्हें देखते हुए साथ चले जा रहे हैं। तत्पश्चात् वृद्धों की दशा कहते हैं कि वे सरकार की मनोमयी मूर्ति हृदय में लाकर शिथिल हो गये। उनका तन मन वाणी कोई काम नहीं करती है।

दो. एक देखि बट छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गँवाइअ छिनुकु श्रमु, गवनव अबहिं कि प्रात ॥११४॥

अर्थ : कोई वट की अच्छी छाया देखकर कोमल तृण और पत्ते बिछाकर कहता है कि क्षण भर यहाँ आराम कर लीजिये अभी जाइयेगा या कल प्रातःकाल।

व्याख्या : अब नर युवा का हाल कहते हैं कि उसने देख लिया कि वन में से आ रहे हैं। उसमें विश्राम का स्थान नहीं है। अतः दौड़कर पहिले ही रास्ते में के बरगद के पेड़ को देखा कि यहाँ शीतल छाया है। उनके विश्राम योग्य है। सो थोड़े से कोमल तृण और पत्ते आसन के लिए बिछा दिये। जब रामजी वट के सन्निकट गये तब कहा कि यहाँ क्षण भर आराम कर लीजिये। आपको जल्दी जाना है कि प्रातःकाल तक ठहरियेगा ? उसकी हार्दिक इच्छा है कि रात भर ठहर जायँ।

एक कलसं भरि आनहिं पानी । अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी ॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी । राम कृपालु सुसील बिसेखी ॥१॥

अर्थ : कोई घड़ा भरकर पानी लाता है और मीठी वाणी से कहता है कि नाथ ! जल पी लीजिये । प्रिय वचन सुनकर और अत्यन्त प्रीति देखकर कृपालु रामजी जो विशेष सुशील हैं ।

व्याख्या : अब नारी की व्यवस्था कहते हैं कि घड़े में जल लेकर पहुँच गयीं और मीठी वाणी से कहने लगीं कि नाथ ! थोड़ा जल पी लिया जाय । सरकार ने प्रिय वचन सुना और उनका प्रेम देखा कि विश्राम के लिए स्थान भी ठीक कर रक्खा है । आसन के लिए कोमल तृण और पत्ते भी बिछे हैं । जल भी प्रस्तुत है । मीठी वाणी से स्वीकार करने के लिए प्रार्थना भी करते हैं । निदान आतिथ्य की देशकालानुसार पूरी तैयारी है । रामजी स्वभाव से ही कृपालु हैं और विशेष सुशील हैं । इनसे शील छोड़ते नहीं बनता ।

जानी श्रमित सीय मन मांहीं । घरिक बिलंबु कीन्ह बट छांहीं ॥
मुदित नारि नर देखहिं सोभा । रूप अनूप नयन मनु लोभा ॥२॥

अर्थ : मन में सीताजी को थकी हुई जानकर वट की छाया में लगभग एक घड़ी के विश्राम किया । प्रसन्न होकर नर नारी शोभा देखने लगे । अनूपरूप ने उनके मन को लुभा लिया ।

व्याख्या : चौथी बात यह कि यद्यपि सीताजी ने कुछ न कहा । पर सरकार ने मन में जान लिया कि ये थकी हुई हैं । इसलिए बरगद की छाया में ठहर गये । ग्रीष्मकाल में बट की छाया शीतल होती हैं । लगभग एक घड़ी के वहाँ विश्राम किया ।

लोगों को स्थिर होकर शोभा देखने का अवसर मिल गया । अतः बड़े प्रसन्न होकर देखने लगे । ऐसा अनुपम रूप कभी देखा नहीं था । इसलिए नेत्र और मन लुब्ध हो गये । वहाँ से हटाये नहीं हटते । किसी भाँति तृप्ति नहीं होती ।

एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा । रामचन्द्र मुख चंद चकोरा ॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा । देखत कोटि मदन मनु मोहा ॥३॥

अर्थ : सब एकटक चारों ओर शोभित हुए । रामचन्द्र के मुखचन्द के लिए उनकी आँखें चकोर हो गयीं । नये तमाल के रंग की सी शरीर की शोभा थी । जिसके देखते हुए करोड़ों कामदेवों का मन मोहित हो जाता था ।

व्याख्या : नयन और मन का लोभ दिखलाते हैं कि सबों ने चारों ओर से घेर लिया और पलक पड़ना बन्द करके देख रहे हैं । रामजी की शोभा से वे भी शोभित हो रहे हैं । चारों ओर से चन्द्रमा को घेरकर देखने में चकोरों की भी शोभा हो जाती है । यथा : मुनि समूह मह बैठे सनमुख सबकी ओर । सरद इंदु तन चितवत मानहु निकर चकोर ।

नये तमाल वृक्ष से श्यामता की उपमा दी गयी है। रामजी का वर्ण श्याम है इससे तरुण तमाल से उपमित किया। परन्तु लावण्य इतना है कि कोटि काम का मन मोह जाय। बिचारे ग्रामवासियों का मोहित होना कौन सी बड़ी बात है।

दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जीके ॥
मुनि पट कटिन्ह कसें तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा ॥३॥

अर्थ : बिजली ऐसे वर्णवाले लक्ष्मणजी अत्यन्त भले लगते थे। नख से लेकर शिख तक उनकी सुन्दरता मन को बड़ी प्यारी लगती थी। वल्कल वसन से कमर में तरकस कसा हुआ था और हाथों में धनुष वाण शोभायमान थे।

व्याख्या : गौरवर्ण और दीप्तिमान होने से लक्ष्मणजी की उपमा बिजली से देते हैं। नख से शिख तक अवयव संगठन ऐसा है कि मन को बड़ा प्यारा लगता है। दोनों मूर्तियों का रूप पृथक् पृथक् वर्णन करके अब वेष का एक साथ ही वर्णन करते हैं कि यद्यपि वल्कल वसन पहने हैं। पर कमर में तरकस कसा हुआ है। हाथों में धनुष और बाण है। वन में से आ रहे हैं। अतः एक बाण तरकस से निकालकर हाथ में लिये हुए हैं खतरा का सामना करने के लिए।

दो. जटा मुकुट सीसन्हि सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर, लसत स्वेद कन जाल ॥११५॥

अर्थ : मस्तकों पर सुन्दर जटा के मुकुट विशाल वक्षःस्थल भुजा और नेत्र शरदपुनो के चन्द्रमा से श्रेष्ठ मुखों पर पसीने के बूदों का जाल शोभायमान था।

व्याख्या : जटा के जूट उनके सिरों पर मुकुट की भाँति शोभा दे रहे हैं एवं वेष तो मुनियों सा है। पर उर भुज नयन का विशाल होना वीरता द्योतित कर रहा है। और शरदपूनों के चाँद से मुखड़ों पर पसीने की बूदों का जाल शृङ्गार को स्थान दे रहा है। यथा : श्रमकन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें। इस भाँति शान्त वीर और शृङ्गार रस तीनों का मेल इस झाँकी में दृष्टिगोचर हो रहा है।

बरनि न जाय मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी ॥
राम लखन सिय सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई ॥१॥

अर्थः मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं किया जा सकता। शोभा बहुत है। मेरी बुद्धि थोड़ी है। राम लक्ष्मण और सीता की सुन्दरता को सब चित्त मन और बुद्धि लगाकर देख रहे हैं।

व्याख्या : यहाँ सीताजी की शोभा का वर्णन कवि ने अनधिकार के कारण नहीं किया। कहते हैं कि राम लक्ष्मण की जोड़ी का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ। क्योंकि मेरी बुद्धि थोड़ी है। उसमें यह अपार शोभा समाती नहीं। जो वस्तु बुद्धि में नहीं समाती उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है?

जो लोग उस शोभा को देख रहे हैं। उनकी अवस्था वर्णन से शोभा की महत्ता को समझिये। वे लोग राम लक्ष्मण और सीता की सुन्दरता को मन बुद्धि चित्त लगाकर देख रहे हैं। यहाँ चार अन्तःकरणों में केवल तीन का उल्लेख है। अहंकार का उल्लेख नहीं है। क्योंकि उसका पता ही नहीं। सब अपनपौ को भूले हुए हैं।

थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से ॥
सीय समीप ग्रामतिय जांहीं। पूछत अति सनेह सकुचांहीं ॥२॥

अर्थ : प्रेम की प्यास से स्त्री पुरुष ऐसे थके जैसे मृगी मृग दीपक को देखकर थकित हो जाते हैं। सीताजी के पास गाँव की स्त्रियाँ जाती हैं और अति स्नेह से पूछने में सकुचाती हैं।

व्याख्या : प्रेम की प्यास मिटती ही नहीं बढ़ती ही जाती है। सरकार को देख रहे हैं। पर ऐसी इच्छा है कि यों ही देखते ही रहें। मृग और मृगी को दीपक देखने का अवसर नहीं मिलता। यदि मिल जाय तो वे निश्चल होकर देखा ही करें। उनके दीपक प्रेम की प्यास नहीं बुझती।

ग्राम की स्त्रियाँ प्रेम से सीताजी के पास पहुँच गयीं। प्रेमवश सबका परिचय पूछना चाहती हैं। प्रयोजन कुछ बतला नहीं सकती। पर जानने की अभिलाषा है। अतः पूछने में सङ्कोच है।

बार बार सब लागहिं पाए। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाए ॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं ॥३॥

अर्थ : बार बार सब पाँव पड़ती हैं और कोमल वचन सुन्दर भाव से पूछती हैं। हे राजकुमारी ! मैं विनती करती हूँ। पर स्त्री स्वभाव के कारण पूछते डरती हूँ।

व्याख्या : अविनय के क्षमापन के लिए बार बार पाँव पड़ती हैं। पूछत अति सनेह सकुचाहीं से मनसा प्रेम कहते हैं। बार बार सब लागहिं पाएँ से कर्मणा प्रेम कहते हैं। कहहिं वचन मृदु सरल सुभाए से वचसा प्रेम कहते हैं। सुन्दर भाव से मृदु सरल वचन कहती हैं। स्वरूप देखकर ही समझ गयी कि ये राजघराने की हैं। अतः राजकुमारी कहकर सम्बोधन करती हैं। कहती हैं कि मेरी विनती यही है कि मैं कुछ पूछना चाहती हूँ। स्त्री स्वभाव से पूछने में डर लगता है। कहीं आप अप्रसन्न न हो जायँ कि तुम्हें इन बातों से क्या प्रयोजन ?

स्वामिनि अविनय छमबि हमारी। बिलगु न मानबि जानि गँवारी ॥
राजकुँअर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि[1] दुति मरकत सोने ॥४॥

---

१. यहाँ निदर्शना : द्वितीय अलङ्कार है।

अर्थ : हे स्वामिनि ! मेरी ढिठाई क्षमा करना। गँवारी जानकर नाराज न होना। ये दोनों राजकुमार स्वभाव से लावण्यधाम हैं। नीलम और सोने ने इन्हीं से चमक पायी है।

व्याख्या : राजकुमारी होने से स्वामिनि सम्बोधन करती हैं। यह मेरा अविनय है जो मैं नाता सम्बन्ध पूछती हूँ। मेरा क्या अधिकार है जो पूछूँ। पर मैं गँवारी हूँ। मैं नहीं जानती कि क्या और कैसे पूछा जाता है। मेरे गँवारपन के पूछने से अप्रसन्न न होना।

भगवती दोनों भाइयों से कुछ हटकर बैठी हैं। अतः उनसे पूछती हैं कि राजकुँवर दोउ बड़े ही सुन्दर हैं। नीलम की और सोने की द्युति इनके तेज के आगे फीकी है। इनके विषय में मुझे बड़ी उत्सुकता है।

दो. स्यामल गौर किसोर बर, सुंदर सुखमा अयन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु, सरद सरोरुह नयन ॥११६॥

अर्थ : ये श्यामल गौर किशोर अत्यन्त सुन्दर और परम शोभा के निवास-स्थान है। शरद्चन्द्र ऐसा इनका मुख है और शरत् कमल ऐसी आँखें हैं।

व्याख्या : श्यामल गौर से वर्ण कहा। किशोर वर से अवस्था कही। सुन्दर सुखमा अयन से शोभा कही। शोभा की मर्यादा मुख और नेत्र ही हैं। सो शरद्चन्द्र से तो मुख हैं और शरत् के कमलों सी आँखे हैं। यद्यपि श्यामल गौर कहने से ही काम चल जाता। परन्तु वह शोभा पर इतनो लुब्ध है कि जैसा उससे हो सकता है पूरा वर्णन कर रही है।

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ॥१॥

अर्थ : हे सुमुखि ! ये करोड़ों कामदेव के लजानेवाले तुम्हारे कौन हैं। प्रेम से पूर्ण सुन्दर वाणी सुनकर सीताजी सङ्कुचित हुईं और मन में मुसकुरायीं।

व्याख्या : सुमुखि सम्बोधन का भाव यह कि श्यामल गौर किशोर ही सुन्दर नहीं है। तुम भी सुन्दरी हो। अतः कहती हैं कि मुझे सम्बन्ध जानने की उत्कण्ठा हुई है। काम में ही सौन्दर्य की पराकाष्ठा मानी गयी है। सो ये तो करोड़ों काम-देव के लजानेवाले हैं। ये तुम्हारे कौन हैं ? यही मैं जानना चाहती हूँ। भाव यह है कि बिना सम्बन्ध के तो स्त्री अकेली साथ जा नहीं सकती। अतः ग्राम-वधूटियाँ कुछ सम्बन्ध का अन्दाज कर रही हैं। वह अन्दाज ठीक है कि नहीं इसीलिए पूछती हैं। राम जानकी की शोभा ही ऐसी है कि इसमें दाम्पत्य भाव का होना देखनेवाले को इष्ट हो जाता है। यथा : जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बर रचेउ बिचारी। जौं बिधिबस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू।

स्पष्ट शब्दों में यह कहने में कि ये मेरे पति हैं स्त्रियों को सङ्कोच होता

ही है। फिर जानकीजी से आज तक ऐसा प्रश्न किसी ने किया ही नहीं था। अतः सङ्कुचित हुईं और मनमें मुसकुरायीं कि इस स्नेहमय सुन्दर वाणी की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः कहना ही पड़ा।

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिक बयनी ॥२॥

अर्थ: उन्हें देखकर पृथ्वी की ओर देखने लगीं। सुन्दर वर्णवाली सीताजी दोनों सङ्कोचों से सङ्कुचित हुईं। मृग के बच्चे सी आँखें हैं जिसकी और कोयल सी जिसकी वाणी है। ऐसी जानकीजी मधुर वचन बोलीं।

व्याख्या: सङ्कोच के समय वर्ण में दीप्ति अधिक हो जाती है। अतः बरबरनी विशेषण दिया। उनकी ओर देखकर फिर पृथ्वी की ओर देखने लगना सङ्कोच की मुद्रा है। पति के सामने उनके साथ सम्बन्ध का परिचय देने में भी सङ्कोच है और ऐसे प्रेम से पूछी हुई बात का उत्तर न देने में भी सङ्कोच है। अतः सीताजी दोनों सङ्कोचों से सङ्कुचित हो रही हैं।

नेत्र चञ्चल हो रहे हैं। इसलिए बालमृगनयनी विशेषण दिया। स्वभाव से ही बड़ा मधुर स्वर है। अतः पिकबयनी विशेषण दिया। ऐसी जानकीजी सङ्कोच और प्रेम से मधुर वचन बोलीं।

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥३॥

अर्थ: स्वभाव से ही सुन्दर भाव वाले और गौर शरीरवाले का नाम लक्ष्मण है। ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर मुखचन्द्र को अञ्चल से ढककर और भौहें को टेढ़ी करके प्रिय की ओर देखकर।

व्याख्या: भगवती सीताजी कहती हैं कि स्वभाव से भी सुन्दर शरीर से भी सुन्दर गौरवर्णवाले मेरे छोटे देवर हैं। अर्थात् इनसे बड़े भी एक देवर हैं। इनका नाम तो लक्ष्मण है। अप्रसक्त होने से भरतजी का नाम नहीं लिया। अब रामजी को अपना पति कहना है और कहने में सङ्कोच है। स्त्रियाँ पति का नाम नहीं लेतीं। सो पहिले देवर का परिचय नाम लेकर देने से और बाद उनके नाम न लेने से ही बहुत कुछ कह दिया। नाम लेने के स्थान पर पति की ओर देखा। परिचय देने में सङ्कोच द्योतित करने के लिए मुखचन्द्र को अञ्चल से ढँककर देखा।

खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि ॥
भई मुदित सब ग्रामबधूटीं। रंकन्ह राय रासि जिमि लूटीं ॥४॥

अर्थ: खञ्जन सी आँखों को तिरछा करके सीताजी ने उन्हें इशारे से बतला

दिया कि ये हमारे पति हैं। गाँव की सब स्त्रियाँ ऐसी प्रसन्न हुईं मानो उन्होंने सर्वोत्तम राशि लूट ली।

व्याख्या : एक तो भगवती की आँखें स्वभाव से ही खञ्जन सी सुन्दर हैं। तिस पर भौंह टेढ़ी करके तिरछी निगाह से रामजी की ओर देखा। भाव यह है कि कुलवधू के टेढ़ी भौंह और तिरछी निगाह के पात्र उनके पति ही होते हैं। अतः इस इङ्गित से उन्हें अपना पति बतला दिया। मनचाही बात मालूम पड़ने से सब ग्राम की स्त्रियाँ बड़ी प्रसन्न हुईं। मानो लूट में सर्वोत्तम राशि ढेर उन्हीं के हाथ लग गयी।

दो. अति सप्रेम सिय पाय परि, बहुबिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महि अहि सीस ॥११७॥

अर्थ : अत्यन्त प्रेम से सीताजी के पाँव पकड़कर बहुत भाँति से आशीर्वाद देती हैं कि जब तक पृथ्वी शेष के सिर पर हैं तब तक तुम सदा सुहागिनी बनी रहो।

व्याख्या : ग्राम की स्त्रियों को बड़ा आनन्द हुआ। अतः अति प्रेम से सीताजी के पाँव पड़ती हैं। नीच जाति की हैं। अतः पाँव भी पड़ती हैं और आशीर्वाद भी देती हैं। स्त्रियों के लिए भारत में सौभाग्य का ही आशीर्वाद सबसे बड़ा माना जाता है। अहि महि सीस कहकर युगलजोड़ी के चिरञ्जीवी रहने की कामना द्योतित की।

पारबती सम पति प्रिय होहू। देबि न हम पर छाड़ब छोहू ॥
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी ॥१॥

अर्थ : पार्वती के समान पति को प्रिय होओ। हे देवि ! हम पर से छोह न हटाना। बार बार हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि यदि आपका इसी रास्ते से लौटना हो।

व्याख्या : पति का प्रेम होना भी सोहाग है। यथा : मानौ मुख देखरावनी दुलहिन करि अनुराग। सास सदन मन ललन हू सौतिन्ह दीन्ह सोहाग। अतः दूसरे प्रकार के सोहाग का भी आशीर्वाद देती हैं कि पार्वती के समान पति को प्यारी हो शिवजी ने पार्वतीजी को अपने आधे शरीर में मिला लिया। इसीलिए सती से उपमा नहीं दिया। वे अन्त में प्रिय न रह सकीं। आशीर्वाद देकर विनती भी करती हैं। जान गयी थीं, कि सीताजी का हम पर छोह हैं। अतः उस छोह को बनाये रखने के लिए विनय है।

बार बार विनय करती हैं। हाथ जोड़कर कहती हैं कि यदि आपका लौटना इसी मार्ग से हो जिस मार्ग से आप जा रही हैं।

दरसनु देब जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेम पियासी ॥
मधुर बचन कहि कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषीं ॥२॥

अर्थ : तो अपनी दासी जानकर दर्शन देना। सीताजी ने लखा कि इन सबों को प्रेम की प्यास है। सो उन्हें मधुर वचन कहकर ऐसा सन्तुष्ट किया जैसे चाँदनी कुमुदिनी को पुष्ट करती है।

व्याख्या : पहिले ही स्वामिनि सम्बोधन करके उन सबों ने सेव्य सेवक भाव का नाता जोड़ रक्खा है। अतः कहती हैं कि जैसे हम लोग आपको स्वामिनी जानती हैं वैसे ही आप हम लोगों को दासी जानकर लौटते समय दर्शन दीजियेगा। हम लोगों के लिए अपनी सुविधा छोड़कर आप इधर से ही लौटें यह हम नहीं चाहतीं क्योंकि ऐसी प्रार्थना सेवक धर्म के विरुद्ध है।

भगवती चन्द हैं। उनकी मधुर वाणी चाँदनी है। सो जैसे चाँदनी कुमुदिनी का परितोष करती है : कुमुदिनी खिल उठती है उसी प्रकार से सीताजी के मधुर वचन से उनकी प्रेम की प्यास शान्त हुई। वे सन्तुष्ट हो गयीं।

तबहि लखन रघुबर रुख जानी। पूछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी ॥
सुनत नारि नर भये दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी ॥३॥

अर्थ : तब लक्ष्मणजी ने रामजी का रुख जानकर लोगों से कोमल वाणी द्वारा रास्ता पूछा। सुनते ही स्त्री पुरुष सब दुःखी हो गये। उनको रोमाञ्च हो गया। नेत्रों में जल भर आया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने रामजी के रुख से लख लिया कि सरकार की अब चलने की इच्छा है। सीताजी और ग्रामवधूटियों का सम्वाद भी समाप्त हो चुका था। अतः मृदु वाणी से वाल्मीकिजी के आश्रम का रास्ता लोगों से पूछा। सुनते ही स्त्री पुरुषों ने समझ लिया कि अब जाना चाहते हैं। पुलकित होना और सजलनयन होना सात्त्विक भाव है। यह दुःख में भी होता है। सुख में भी होता है। यहाँ पर दुःख से पुलक हुआ। इसलिए दुःखारी शब्द भी लिख दिया।

मिटा मोदु मन भये मलीने। बिधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने ॥
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ॥४॥

अर्थ : हर्ष मिट गया। मन मिलन हो गया। मानों विधाता निधि देकर अब छीने लेते हैं। कर्मगति समझकर धैर्य धारण किया और उन लोगों ने विचार करके सुगम रास्ता बतला दिया।

व्याख्या : सरकार के दर्शन से वे लोग : लहि जनु रंकन्हि सुरमनि ढेरी। ऐसे प्रसन्न थे जैसे दरिद्रों को चिन्तामणि का ढेर मिल जाय। सो रामजी का चला जाना सोचकर ऐसे दुःखी हुए मानों विधाता ने जो निधि दी थी उसे छीने लेते हैं।

अतः धैर्य छूट गया था। पर समझा कि कर्मगति दुर्लंघ्य है। इतना ही सुख भाग्य में था। धैर्य धारण करके विचार किया और सुगम रास्ता बतला दिया।

दो. लखन जानकी सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिये लाइ मन साथ ॥११८॥

अर्थ : तब लक्ष्मण और जानकी के सहित रामजी चले। सबको प्रिय वचन कहकर लौटाया। पर उनका मन साथ ले लिया।

व्याख्या : रघुनाथ हैं। अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ हैं। एक वन से दूसरे में घुसते ही चले जाते हैं। ग्रामवासी भी साथ चले। प्रिय वचन कह के उनको लौटा दिया। पर उनके मन को साथ ले लिया। इस बार चित्त की चोरी नहीं की। पहिले की थी। यथा : लिये चोरि चित राम बटोही। वे सब साथ चलने को तैयार नहीं थे। इसलिए चोरी करनी पड़ी। ये तो साथ चलने को तैयार थे। अतः केवल उनके मन को साथ लिया। उन्हें लौटा दिया।

फिरत नारि नर अति पछताहीं। दैअहिं दोषु देहिं मन माहीं ॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं ॥१॥

अर्थ : लौटते हुए स्त्री पुरुष अत्यन्त पछताते थे। मन ही मन दैव को दोष देते थे। विषाद के साथ एक दूसरे से कहने लगे कि विधाता के करतब सब उलटे ही हैं।

व्याख्या : रामजी के कहने पर सब लौट पड़े। पर उन्हें पश्चात्ताप हो रहा है कि हम क्यों लौट रहे हैं। यह निधि दर्शन हम लोगों को विधाता ने दी थी। उसे छोड़कर हम घर लौट रहे हैं। यह भी विधि की प्रेरणा ही है। अतः मन ही मन कह रहे हैं कि इसमें भी विधाता का दोष है। लौटना न लौटना उनकी इच्छा की बात थी। इसमें भी विधाता को दोष देने पर लोग क्या कहेंगे। अतः इस मानसिक भाव को प्रकट नहीं करते पर मन में विधाता से अप्रसन्न हैं।

अतः उस अप्रसन्नता को विधाता के सभी कार्य उलटे होते हैं ऐसा कहकर प्रकट कर रहे हैं। रामजी के वन जाने से दुःखी हैं। अतः एक दूसरे से कह रहे हैं।

निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू ॥
रूखु कलप तरु सागर खारा। तेहि पठए बन राजकुमारा ॥२॥

अर्थ : वह बिल्कुल निरंकुश निर्दय और निडर है। जिसने चन्द्रमा को रोगी और कलङ्की कर दिया। कल्पवृक्ष को पेड़ और समुद्र को खारा कर दिया। उसी ने राजकुमारों को वन भेजा।

व्याख्या : सब दुःखी होकर ब्रह्मदेव को ही बुरा भला कह रहे हैं। कहते हैं : १. निपट निरंकुश २. निठुर और ३. निःशङ्क हैं। यदि किसी का अङ्कुश उस पर होता तो जगत के आह्लाददायक तथा तापहारक चन्द्रमा को क्षयी : रोगयुक्त तथा कलङ्कयुक्त न करता। यदि कुछ भी दया उसे होती तो कल्पवृक्ष ऐसे उदार को जड़ न बनाता। यदि कुछ भी डर उसे होता तो समुद्र को खारा न बनाता। जब कि छोटी छोटी तलैया कूप आदि मीठे हैं। छोटे जलाशय के जल को बिगाड़नेवाला

अपराधी माना जाता है। जल के इतने बड़े भण्डार को खारा कर देनेवाला कैसे दण्डनीय नहीं है। पर उसे किसी का डर नहीं है। उसी विधाता ने राजकुमारों को वन भेजा है। रामजी को वन देने से निरंकुशता सीताजी को वन भेजने से निष्ठुरता और लक्ष्मणजी को वन भेजने से निःशङ्कता द्योतित होती है।

जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू ॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना ॥३॥

अर्थ : यदि विधाता ने इन्हें वनवास दिया तो भोग विलास का निर्माण व्यर्थ ही किया। यदि ये रास्ते में नंगे पाँव चल रहे हैं तो विधाता ने अनेक प्रकार के वाहन व्यर्थ ही बनाये।

व्याख्या : सब वस्तुओं के लिए अधिकार अपेक्षित है। भोग विलास का इनसे बढ़कर अधिकारी कौन है। इन्हें भोग विलास करते हुए देखकर संसार को सुख होगा। क्योंकि : ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी और इनको वन जाते देखकर लोग दुःखी होंगे। यथा : जो सुनि सकल विस्व भइ सूला। अतः ऐसे अधिकारी को वन दिया तो विधाता का भोग विलास निर्माण ही व्यर्थ है।

ये वाहन पर निकलते तो देखकर संसार सुखी होता। इन्हें नङ्गे पाँव चलते देखकर किसका कलेजा नहीं फटेगा। यथा : राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि वेषु फिरहिं बन बनहीं। एहि दुःखदाह दहइ दिन छाती। भूख न वासर नींद न राती। अतः विधाता का नाना प्रकार के वाहन की रचना ही व्यर्थ है।

ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता ॥
तरुतर बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवल धामु रचि रचि श्रमु कीन्हा ॥४॥

अर्थ : जब ये कुश और पत्ते बिछाकर पृथ्वी पर ही पड़ जाते हैं तो सुन्दर सेज विधाता ने क्यों बनाये हैं। जब विधाता ने इनके लिए पेड़ तले रहना नियत किया तो उज्ज्वल प्रासाद : महल रच रचकर केवल परिश्रम के भागी हुए।

व्याख्या : इन्हें कुश पत्ते बिछाकर जमीन पर सोते देखकर किसे दुःख न होगा। यथा : भयउ बिषाद निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी। सुन्दर सेज की शोभा तो इन्हीं के सोने से हो सकती है। यथा : जहँ सिय राम सयन नित करहीं। निज छबि रति मनोज मन हरहीं। अतः ब्रह्मा द्वारा सुन्दर सेजों का बनाया जाना ही व्यर्थ हो गया।

उज्ज्वल प्रासादों में ही इनका निवास उचित था। जब विधाता ने इन्हें तरुतर वास दिया तब धवल धाम की आवश्यकता न रह गयी। उनके बनाने में विधाता को श्रम ही हाथ लगा। फल कुछ न हुआ।

दो. जौ यें मुनि पट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किये करतार ॥११९॥

अर्थ : यदि ये अत्यन्त सुन्दर सुकुमार वल्कल पहिने और जटा रखाये हैं तो अनेक प्रकार के भूषण वसन विधाता ने व्यर्थ ही बनाये।

व्याख्या : सुन्दर सुकुमारों के लिए मुनिपट और जटा नहीं है। मुनिपट और जटा तो उनके लिए है जो तप के लिए सब भोग त्यागे हुए हैं। इनके लिए अनेक प्रकार के भूषण वसन चाहिए जिससे उन भूषन वसनों की शोभा हो। इनके जटा वल्कल धारण करने पर विधाता का भूषण वसन की रचना ही निष्प्रयोजन है।

जौं ए कंद मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं ॥
एक कहहिं ए सहज सुहाये। आपु प्रगट भए बिधि न बनाये ॥१॥

अर्थ : यदि ये कन्द मूल खा रहे हैं तो संसार में अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही हैं। एक ने कहा कि ये स्वभाव से ही सुन्दर हैं। ये आप ही प्रकट हुए हैं। इन्हें ब्रह्मा ने नहीं बनाया है।

व्याख्या : ये अमृत आदि भोजन करने योग्य हैं। इन्हें यदि कन्दमूल फल खिलाना रहा तो अमृतादि भोजन किसके लिए बनाये ? भावार्थ यह कि जितने छः प्रकार के दुःख ऊपर गिना आये हैं वे सब वनवास के ही दुःख के अन्तगत हैं। ऐसे पुरुष को वनवास देने से विधाता को कौन सी फलसिद्धि हुई ?

इस पर एक ने कहा कि ये स्वभाव से ही सुन्दर हैं। स्वयम्भू हैं। स्वयं प्रकट हो गये। ये ब्रह्मदेव के बनाये नहीं हैं।

जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर बरनी ॥
देखहु खोजि भुवन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी ॥२॥

अर्थ : जहाँ तक वेदों ने ब्रह्मदेव की करणी बतलायी है जो श्रवण नयन और मन का विषय है उसे खोजो। चौदहों भुवन खोज डालो। कहाँ ऐसे पुरुष हैं और कहाँ ऐसी नारी हैं।

व्याख्या : यह पण्डितों का गाँव मालूम होता है। यहाँ वेद के जानकार मौजूद हैं। कहते हैं कि श्रवण नयन मनगोचर जो कुछ विधि की करणी है सब में दोष का अनुवेध है। यथा : बिधि प्रपंच गुण अवगुण साना। ये निर्दोष उसमें कहाँ से आगये ? चौदहों भुवन खोजकर देखो। न कहीं ऐसे पुरुष हैं न ऐसी नारियाँ ही कहीं हैं। ऐसे लोगों को वन क्यों दिया ?

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोगु बनावइ लागा ॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहि इरिषा बस आनि[1] दुराए ॥३॥

अर्थ : इन्हें देखकर विधाता के मन में बड़ा प्रेम हुआ तो इनके ऐसा दूसरा

---

१. यहाँ हेतु असिद्धास्पदा उत्प्रेक्षा है।

बनाने लगे। परिश्रम बहुत किया। पर कोई अन्दाज ही नहीं लगा। उसी ईर्ष्या से इन्हें वन में लेकर छिपा दिया।

व्याख्या : कलाकार जब कोई अच्छी चीज देखता है और उसे पसन्द आ जाती है तब वह वैसी ही दूसरी बनाने का प्रयत्न करता है। मालूम होता है कि उसी भाँति ब्रह्मदेव ने भी चाहा कि इनके ही ऐसा दूसरा बनावें। सो ब्रह्मदेव ने बहुत उद्योग किया। पर कुछ करते धरते नहीं बन पड़ा। तब उन्हें ईर्ष्या हुई कि लोग कहेंगे कि इन्हें बनाने नहीं आता। बनाने आता तो दूसरा भी ऐसा बनाते। इसलिए इन्हें लाकर वन में छिपा दिया। जिससे लोग इन्हें देख ही न पावें और उनकी रचना शक्ति का आदर बना रहे।

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं ॥
ते पुनि पुन्य पुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे ॥४॥

अर्थ : एक ने कहा कि हम बहुत नहीं जानते। हम तो अपने को परम धन्य मान रहे हैं। हमारे लेखे तो वे भी पुण्यपुञ्ज हैं जो इन्हें देखते हैं देखेंगे और जिन्होंने देखा है।

व्याख्या : तीसरे ने कहा कि भाई! तुम्हारी कल्पनाशक्ति बड़ी बलवती है। तुम बहुत जानते हो। अच्छा कारण ढूँढ़ निकाला। पर मैं कार्य कारण के पीछे नहीं पड़ता। मैंने इसका दर्शन पाया। इसी से अपने को धन्य मानता हूँ।

मैं ही नहीं पहिले जिन्होंने इनका दर्शन किया आज जो कर रहें हैं और भविष्य में जो करेंगे वे भी पुण्ययुञ्ज हैं। मेरा तो यही मत है।

दो. एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर ॥१२०॥

अर्थ : इस भाँति प्रिय वचन कह कहकर आँखों में आँसू भर लाते हैं कि अत्यन्त ही सुकुमार शरीरवाले ये दुर्गम रास्ते को कैसे पार करेंगे।

व्याख्या : फिरत नारि नर अति पछिताहीं से उपक्रम करके : लेहिं नयन भरि नीर से उपसंहार करते हैं। यहाँ पर तीन प्रकार से लोग बोले हैं। पहिले के कहने में तमोगुण की झलक आती है। दूसरे में रजोगुण स्पष्ट है। तीसरे में सत्त्वगुण का प्रकाश है। इस भाँति यह सोचकर कि ऐसे सुकुमार शरीर इस दुर्गम रास्ते में कैसे निबहेंगे। उन लोगों की आँखों में आँसू आ जाता है।

नारि सनेह बिमल बस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोही ॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदय कहँहि बर बानी ॥१॥

अर्थ : स्त्रियाँ स्नेह से विकलता के वश हो जाती हैं। जैसे सायंकाल के समय चकई की शोभा हो जाती है। चरण कमल को कोमल और रास्ते को कठिन जानकर भरे हृदय से अच्छी वाणी बोलती हैं।

व्याख्या : विछोह के समय प्रेमपात्र पर अधिक प्रीति बढ़ जाती है। इसलिए विकलता के वश होना कहा। पुरुषों की दशा ऊपर कह आये कि उन्हें भी विषाद है। अब स्त्रियों की दशा कहते हैं कि वे तो विकलता के वश हो गयी हैं। उनकी अवस्था की उपमा सन्ध्या के समय चकई की अवस्था से दी गयी जब कि वह प्रिय के विरह से विकल होती है। प्रेमी की शोभा प्रेमपात्र के विछोह में विकल होने में है। इसलिए सोही शब्द का प्रयोग किया। स्त्रियाँ सरकार के रूप पर मोहित हैं। अतः चकई से उपमित किया। यथा : कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी।

स्त्रियों के हृदय में भी वही विचार उठा जो पुरुषों के हृदय में उठा था कि कोमल सुन्दर चरण कठिन रास्ते में अत्यन्त पीड़ित होंगे। उस पीड़ा को सोचकर हृदय भर आया। अतः वर वाणी कहती हैं। प्रेमयुक्त वाणी ही वर वाणी है।

परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
जौं जगदीस इन्हहिं बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा॥२॥

अर्थ : कोमल और लाल चरणों को छूने में पृथ्वी उसी भाँति सङ्कुचित होती है जिस तरह हमारा हृदय सङ्कुचित होता है। यदि जगदीश ने इन्हें वन दिया तो रास्ते को पुष्पमय क्यों नहीं बनाया ?

व्याख्या : इस अरुण मृदुल चरण को हृदय में लाने से मेरा हृदय सकुचता है कि इन चरणों के स्पर्श योग्य हमारे दूषित हृदय नहीं हैं। इसी भाँति पृथ्वी को सङ्कोच हो रहा है कि इन कोमल चरणों के धारण योग्य मेरा वक्षस्थल नहीं है।

कमल का पुष्पों के ऊपर रहना ही उचित है। अतः इनके चरण कमल के लिए पुष्पमय मार्ग ही उपयुक्त है। जब विधि ने इतना उलटा पलटा किया कि इन्हें वन दे दिया तो मार्ग में भी उलटा पलटा करना चाहता था। उसे कठोर से पुष्पमय बना देते।

जौं माँगा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं॥
जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए॥३॥

अर्थ : यदि ब्रह्मदेव से मुँह माँगा मिले तो हे सखि ! इन्हें आँखों में रखना चाहिए। जो नरनारि उस समय नहीं आये वे रामजी को नहीं देख पाये।

व्याख्या : विधि है। अपनो विधि बैठाया करते हैं। मुह माँगा नहीं देते। यदि देते तो इन्हें आँखों में रखती। कहीं जाने ही न देती। आँख बड़ी कोमल होती हैं। पुष्प का भी स्पर्श सहन नहीं कर सकती। आँखिन में सखि राखिवे जोग इन्हें किमि कै वनवास दयो हैं। आँख निर्लेप है। उनके रहने योग्य है। हृदय तो कलुषित है। वहाँ उन्हें रहने को कैसे कहें।

कुछ लोग गाँव में नहीं थे। पीछे से आये। सबने देखा। वे देख ही नहीं पाये। पता लगा कि ऐसी अलौकिक सुन्दर तीन मूर्तियाँ इधर से ही वन गयी हैं।

वटतर कुछ दर तक विश्राम भा किया था। लोगों ने चाहा भी था कि रात को यहीं ठहरें पर वे ठहरे नहीं।

सुनि सरूप बूझहिं अकुलाई। अब लगि गये कहाँ लगि भाई॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनम फलु पाई॥४॥

अर्थ: स्वरूप की प्रशंसा सुनकर आकुल होकर पूछते हैं कि भाई! वे लोग कहाँ तक गये होंगे। समर्थ लोग दौड़कर जाते थे और दर्शन करके जन्मफल पा जाते थे और प्रसन्न होकर लौटते थे।

व्याख्या: अलौकिक स्वरूप का वर्णन सुनकर दर्शन के लिए आकुल होकर पूछते थे कि अब तक वे कितनी दूर आगे बढ़ गये होंगे। उनके मन में बड़ी उत्कण्ठा दर्शन की है। सभी ने दर्शन पाया। हम ही रह गये। अतः पहुँच के भीतर हों तो जाकर दर्शन करना चाहिए।

लोगों ने दूरी बतला दी। तब जो दौड़ने में समर्थ थे दौड़े पड़े। जाकर दर्शन किया। मनुष्य जन्म का फल ही सरकार का दर्शन है। यथा: राम चरन वारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं। सो दर्शन प्राप्ति से कृतकृत्य हुए। जन्मफल पाकर आनन्द से लौटे।

दो. अबला बालक बृद्ध जन, कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेम बस लोग इमि, रामु जहाँ जहँ जाहिं॥१२१॥

अर्थ: स्त्री बच्चे और बूढ़े हाथ मल मलकर पछताते हैं। इस भाँति जहाँ जहाँ रामजी गये वहाँ के लोग सब प्रेम के वश हो गये।

व्याख्या: अब असमर्थों की बात कहते हैं कि स्त्री बालक और वृद्ध हाथ मलते हैं। पछताते हैं कि हमारे भाग्य में दर्शन बदा नहीं था। स्त्रियाँ दौड़ नहीं सकती थीं। वृद्ध महाअसमर्थ थे। बच्चे भी दूरतक नहीं दौड़ सकते थे। अतः इन्हें पछताना ही हाथ लगा। समर्थ को दौड़कर जाते देखकर ये जी मसोसकर रह जाते हैं। इस भाँति जहाँ रामजी जाते हैं वहाँ प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ता है। ऐसी मूर्त्ति है कि जिन्होंने देखा वे भी पछताते हैं कि मैं संग क्यों नहीं गया और जिन्होंने दर्शन नहीं पाया वे भी पछताते हैं कि मेरे भाग्य में दर्शन नहीं रहा।

गाँव. गाँव अस होई अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू॥
जे कछु समाचार सुनि पावहि। ते नृप रानिहि दोसु लगावहिं॥१॥

अर्थ: सूर्यकुल के कुमुद के चन्द्रमा रूप रामजी को देखकर गाँव गाँव में ऐसा आनन्द हो रहा है। जो कोई समाचार पाते हैं वे राजा रानी को दोष लगाते हैं।

व्याख्या: सरकार का सौन्दर्य ही ऐसा है कि उसे देखकर स्त्रियाँ चन्द्रोदय पर कुमुदिनी की भाँति खिल उठती हैं। यथा: नारि कुमुदिनी अवध सर रघुपति बिरह दिनेस। अस्त भये बिगसित भईं निरखि राम राकेस। वैसी ही गति पुरुषों

की भी है। अतः कहते हैं कि इसी गाँव की यह दशा नहीं जितने गाँव रास्ते में पड़ते हैं वहीं आनन्द की लहर आ जाती है।

उन देखनेवालों में से किसी किसी को कुछ टूटा फूटा पता चल जाता है। वे राजा रानी को दोष देने लगते हैं। यथा : ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठए बन बालक ऐसे।

कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहिं जेइ लोचन लाहू॥
कहहिं परसपर लोग लोगाई। बांतें सरल सनेह सुहाई॥२॥

अर्थ : किसी ने कहा कि राजा बहुत अच्छा है। जिसने हमको नेत्र होने का फल दिया। स्त्री पुरुष आपस में स्नेह से सरल और सोहाई बाते कहते हैं।

व्याख्या : अधिक लोग तो दोष लगानेवाले हो हैं। पर कोई ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छा है। उसने हम लोगों के कल्याण के लिए इतने बड़े स्वार्थ का त्याग किया। यदि इन्हें वन न भेजता तो हम लोगों के नेत्र सफल कैसे होते। यथा : करहु सफल सबके नयन सुन्दर बदन देखाइ।

घर के भीतर बात हो रही है। अतः लोग लोगाई का परस्पर कहना कहते हैं। स्नेह भरा चित्त होने से सरल बातें ही मुख से निकलती हैं और वे सोहाई भी होती हैं।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये। धन्य सो नगरु जहाँ ते आये॥
धन्य सो देसु सैलु बनु गाऊँ। जहँ जहँ जाहिं धन्य सो ठाऊँ॥३॥

अर्थ : वे माता पिता धन्य हैं जिन्होंने इन्हें जन्म दिया। वह नगर धन्य है जहाँ से आये हैं। वह देश पर्वत गाँव धन्य हैं। वह स्थान धन्य है जहाँ ज़हाँ ये जा रहे हैं।

व्याख्या : कहहु तात केहि भाँति कोउ करै बड़ाई तासु। राम लखन तुम सत्रुहन सरिस तनय सुचि जासु। अतः माता पिता धन्य हैं : धन्य अवध जो राम बखानी। अतः जहाँ से आये वह नगर धन्य है और : परसि राम पद पदुम परागा। मानत भूमि भूरि निज भागा। अतः वह देश वह पर्वत वह वन वह गाँव धन्य है जहाँ जहाँ ये जावेंगे। यथा : बड़ भागी बनु अवध अभागी। जौ रघुबंस तिलकु तुम त्यागी।

सुखु पायेउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही॥
राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥४॥

अर्थ : ब्रह्मदेव ने उसी को रचकर सुख पाया। जिसके ये सब भाँति से स्नेही हैं। राम लक्ष्मण के रास्ते की सोहाई कथा तमाम रास्ते और वन में छा गयी।

व्याख्या : माता पिता धन्य हैं। जन्मस्थान धन्य है। जहाँ जाते हैं वह स्थान धन्य है। पर इनके स्नेही भक्त ऐसे धन्य हैं कि उनको रचकर ब्रह्मदेव अपने को सुखी मानकर धन्य हुए। यथा : सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।

श्रीरघुनाथ परायन जहँ नर उपज़ बिनीत। भक्त के उत्पन्न होने से कुल धन्य होता है। सभी कुल ब्रह्मदेव निर्मित हैं। अतः वे भी धन्य हुए। अथवा ब्रह्मदेव के निर्माण कला की पराकाष्ठा मनुष्य की रचना में है। पर मनुष्यता की पूर्णता तो हरिभक्ति से होती है। नहीं तो : तुलसी जेहि राम ते नेह नहीं सो सही पशु पूँछ विषाण न द्वै। अतः हरिभक्त के निर्माण से अपनी कला की पूर्णता देखकर ब्रह्मदेव सुखी होते हैं।

जिधर से सरकार जाते हैं उधर आनन्द की लहर आ जाती है। उसकी कथा चल पड़ती है और वह कथा सोहाई होती है। मनभावनी होती है। उसे कहते सुनते लोग सुख पाते हैं। यथा : भव मग अगम अनंदु बिनु श्रम रहेउ सिराइ।

दो. एहि बिधि रघुकुल कमल रबि, मग लोगन्ह सुख देत।
जाँहि चले देखत बिपिन, सिय सौमित्रि समेत ॥१२२॥

अर्थ : इस भाँति रघुकुल कमल के सूर्य रास्ते के लोगों को सुख देते हुए सीता और लक्ष्मण सहित वन को देखते हुए चले जाते हैं।

व्याख्या : छाँह करहिं घन बिबुध गन बरखहिं सुमन सिहाहिं। देखत गिरिवन बिहँग मृग रामचले वन जाहिं से उपक्रम करके एहि बिधि रघुकुल कमल रवि मग लोगन सुख देत इत्यादि से उपसंहार करते हैं। नौ दोहों में कैसे रास्ते के लोगों को सुख देते हुए रामजी वन देखते चले जा रहे हैं। इस बात का वर्णन किया।

आगें राम लखन बन पाछें। तापस बेष बिराजत काछें ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें ॥१॥

अर्थ : आगे आगे रामजी पीछे पीछे लक्ष्मणजो तपस्वियों का वेष बनाये हुए शोभायमान हैं। दोनों के बीच सीताजी कैसी सोहती हैं। जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया हो।

व्याख्या : अब वन में जाते हुए तीनों मूर्तियों की कैसी शोभा है। इसे वर्णन करते हुए कहते हैं कि सम्बन्धानुसार तथा रक्षा के विचार से भी रामजी आगे आगे चलते हैं और लक्ष्मणजी पीछे पीछे चलते हैं। तपस्वियों के वेष में कसे कसाये शोभायामान हैं। यथा : अनुज सहित सिर जटा बनाये। दोनों के बीच में सीताजी हैं। इनका वेष अभी तपस्विनियों सा नहीं है। अतः कवि राम लक्ष्मण की उपमा तो ब्रह्मजीव से देते हैं और सीताजी की माया से। ब्रह्म माया को नहीं देखता। सर्वथा स्वतन्त्र है। परन्तु माया उसी के आश्रित है। उसी के पीछे चलती हैं। जीव यद्यपि ब्रह्म का ही अंश है। पर माया का अनुसरण करता है। ब्रह्म और जीव सजातीय पुरुष हैं। माया विजातीय स्त्री है। अतः वेष में भेद है। ब्रह्मजोव में भेद मायाकृत है। अतः माया को ब्रह्म जीव के बीच में कहा। इन्हीं सब बातों पर विचार करके कवि ने राम जानकी और लक्ष्मण की उपमा ब्रह्म, माया और जीव

से दिया। देखनेवाला जहाँ खड़ा है वहाँ से आते हुए तीनों मूर्तियों में पहिले रामजी को देखता है। पीछे सीताजी को तत्पश्चात् लक्ष्मणजी को। यहाँ देखनेवाला कवि है। इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि वर्णन करने के समय कवि अपने को किस स्थान पर मान रहा है। अभी तीनों मूर्तियाँ दूर हैं। बहुत स्पष्ट दिखलायी नहीं पड़ रही हैं। अतः ब्रह्म माया और जीव से उपमित किया।

बहुरि कहहुँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई ॥
उपमा बहुरि कहौं जिय जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही ॥२॥

अर्थ : फिर जैसी छवि मन में बसी है वैसी कहता हूँ। मानों मधु और कामदेव के बीच में रति शोभित हो। फिर अपने जी में सोचकर उपमा कहता हूँ। जैसे बुध और चन्द्रमा के बीच रोहिणी शोभायमान हो।

व्याख्या : यहाँ मधु चैत्र मास वसन्त का उपलक्षण है। मदन और रति दम्पती हैं। वसन्त मदन का सखा है। चलते चलते ठीक सामने आजाने पर कवि शोभा को स्पष्ट देख रहा है। अतः मधु मदन और रति की उपमा देता है। आगे बढ़ने के बाद उपमा देने के समय सबसे पीछे होने के कारण लक्ष्मणजी को कवि पहिले देखता है तत्पश्चात् सीताजी को और उसके बाद रामजी को। अतः मधु को पहिले कहकर तब मदन रति का उल्लेख करता है। कवि शोभा देखने में मग्न है।

जब मूर्तियाँ बहुत दूर निकल गयीं, अब दृष्टि के ओझल हुआ चाहती हैं, तब फिर उपमा देते हैं कि बुध और चन्द्रमा के बीच में जैसे रोहिणी हो। चन्द्रमा और रोहिणी दम्पती हैं। बुद्ध चन्द्रमा का पुत्र है। तीनों बहुत दूर हैं। दूर चले जाने पर उसी भाँति कवि पहले लक्ष्मणजी तत्पश्चात् सीता और रामजी को देखता है और उसी क्रम से वर्णन करता है। दूर की उपमा ब्रह्म, माया और जीव से दे आये हैं। और फिर दूर की ही उपमा देनी है। अतः कवि को सोचना पड़ा कि अब कौन सी उपमा दें। तो तीन तेजोमय वस्तु चन्द्र, रोहिणी और बुध से जो दूर स्थित हैं दे डाला। पर हृदय में बीचवाली छवि बसती है। अतः मधु, मदन, रति की उपमा दी। क्योंकि सबके मन में काम का निवास है और गोस्वामीजी के मन में उसके स्थान पर राम बसते हैं।

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता ॥
सीय राम पद अंक बराएँ। लखनु चलहिं मग दाहिन लाएँ ॥३॥

अर्थ : प्रभु के चरणों की रेखाओं के बीच बीच में सीताजी अपना पाँव धरती और डरती हुई रास्ता चलती हैं। सीता और रामचन्द्र के चरणों के चिह्नों को बचा बचाकर लक्ष्मणजी दाहिनी ओर से रास्ता चलते थे।

व्याख्या : सीताजी ठीक रामजी का अनुसरण करती हैं और अनुसरण करनेवाले का पैर अग्रगामी के चरण चिह्नों पर पड़ेगा ही। अतः सीताजी रामचन्द्र के चरण चिह्नों के बीच बीच में पैर रखती हैं और डरती हुई रास्ता चलती हैं कि

कहीं सरकार के चरण चिह्नों पर मेरा पैर न पड़ जाय। सीताजी की ऐसी पूज्य बुद्धि सरकार पर है।

वैसो ही पूज्य बुद्धि लक्ष्मणजी की दोनों सरकारों पर है। उन्हें दोनों मूर्तियों के चरण चिह्नों को बँचाना ठहरा। अतः वे दाहिनी ओर हटकर चल रहे हैं।

राम लखन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई॥
खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिये चोरि चित राम बटोही॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण राम और सीताजी की प्रीति वचन का विषय ही नहीं है। अतः कैसे कही जा सकती है। उनकी छवि देखकर पशु पक्षी मगन हो जाते थे। क्योंकि पथिक राम ने उनके चित्त चुरा लिये।

व्याख्या : राम लक्ष्मण और सीताजी की प्रीति ऐसी पवित्र और सुन्दर है कि मन में तो बड़ी अच्छी लगती है पर कहते नहीं बनती। यथा : इनकै प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि। सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।

शोभा कैसी अद्‌भुत है कि पशु पक्षी देखकर मोहित हो जाते हैं। अपनी जाति की ही शोभा पर जीव रीझते हैं। खग की शोभा खग ही समझते हैं। मृग की शोभा मृग ही समझते हैं। ये मनुष्य की शोभा नहीं समझ सकते। पर यहाँ महाशोभा की ऐसी अतिशयता है कि वे भी मगन हो जाते हैं। कवि कहते है कि इसमें खग मृग की कोई बात नहीं है। राम बटोही ही मन के चोर हैं।

दो. जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगमु अनंदु तेइ, बिनु श्रमु रहे सिराइ॥१२३॥

अर्थ : जिसने जिसने सीता सहित दोनों भाई प्रिय पथिकों को देखा उनको संसार के अगम मार्ग में सुख हुआ और वह बिना परिश्रम के ही कट गया। समाप्त हो गया।

व्याख्या : अब प्रिय पथिकों के दर्शन का माहात्म्य सुनिये। संसार का रास्ता अगम है। दुःखमय है। पता नहीं कहाँ जा रहा है। पर जिसने इन तीनों मूर्तियों को रास्ता चलते देखा उसे भवमग आनन्दमय हो गया और बिना परिश्रम ही उसका अन्त मिल गया। अर्थात् वे अनायास ही भवसागर के पार हो गये।

[1]अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखन सिय राम बटाऊ॥
रामधाम पथ पाइहि सोई। जो पथु पाव कबहुँ मुनि कोई॥१॥

अर्थ : अब भी जिसके हृदय में कभी सपने में भी लक्ष्मण सीता और राम

---

१. यहाँ भाविक अलङ्कार है।

तीनों पथिक बसते हैं। वह राम धाम के मार्ग को पायेगा। जिसको कोई मुनि कभी कभी पाते हैं।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं कि जिन्होंने रास्ते जाते हुए तीनों मूर्तियो को देखा उनका कैसा कल्याण हुआ। अब उक्त घटना से आजकल के लोगों का कैसे कल्याण होगा। सो बतलाते हैं। जैसा मनुष्य दिन को सोचता है वैसा ही रात को स्वप्न देखता है। अतः स्वप्न में देखना तभी सम्भव है जब जाग्रत में मनोयोग-पूर्वक ध्यान करे। इस भाँति यदि सपने में भी पथिक रूप से राम लक्ष्मण सीता मन में आजयँ तो उसे रामधाम का पथ मिल जाता है। रामधाम का पथ मिलना अतीव दुर्लभ है। किसी मुनि को किसी समय मिल जाता है।

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी ॥
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई ॥२॥

अर्थ : तब रामजी सीताजी को थकी हुई जानकर और पास ही बरगद का पेड़ और ठण्ढा पानी देखकर वहाँ बसे। कन्द मूल फल खाया और सवेरा होते ही स्नान करके चल पड़े।

व्याख्या : दोपहर को भी सीताजी को थकी देखकर बरगद के पेड़ तले ठहरे थे। यथा : जानी श्रमित सीय मन माँहीं। घरिक बिलंब कीन्ह बट छाँहीं। अब फिर सीताजी थक गयीं तो फिर बरगद के तले ही ठहरे। वहाँ शीतल जलाशय भी था। रात्रि उसी पेड़ के तले बितायी। कन्द मूल फल भोजन किया। इससे यह भी पता चलता है कि केवल एक बार भोजन का नियम ले रक्खा है।

## १५. वाल्मीकि मिलन प्रसङ्ग

देखत बन सर सैल सुहाये। बाल्मीकि आश्रम प्रभु आये ॥
रामु दीख मुनि बास सुहावन। सुन्दर गिरि काननु जलु पावन ॥३॥

अर्थ : सुन्दर वन तालाब पर्वत को देखते हुए प्रभु वाल्मीकिजी के आश्रम में आये। रामजी ने मुनि के सुहावने निवास स्थान को देखा कि सुन्दर वन है। पर्वत भी सुन्दर है और पवित्र जल है।

व्याख्या : ग्रामवासियों ने विचार करके सुगम रास्ता बतलाया था। सो उसकी सुगमता कहते हैं कि सुन्दर वन जलाशय और पर्वत देखते देखते प्रभु वाल्मीकिजी के आश्रम पर पहुँच गये। रामजी ने मुनिजी के सुन्दर आश्रम को देखा। आदि कवि हैं। रम्य स्थान पर अपना आश्रम बनाया था। जहाँ सुन्दर पर्वत हैं, सुन्दर वन हैं और पवित्र जल है।

सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले ॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं ॥४॥

अर्थ : तालाबों में कमल और वनों में वृक्ष फल रहे थे और सुन्दर भौंरे रस में मस्त हुए गुञ्जार कर रहे थे। बहुत से पशु पक्षी कोलाहल कर रहे थे और वैर छोड़े हुए आनन्द से विचर रहे थे।

व्याख्या : आदि कवि के निवास योग्य रमणीय स्थल था। जलाशयों की शोभा कमलों के फूलने से हो रही थी और वन की शोभा वृक्षों के फूलने से हो रही थी और वे फूल ऐसे सरस थे कि चारों ओर वन में भौंरे गुञ्जार कर रहे थे। चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। वन्य पशु भी अनेक प्रकार के शब्द कर रहे थे। किसी में स्वाभाविक वैर का नाम नहीं। सब प्रसन्न मन से विचर रहे थे।

सरनि सरोज बिटप बन फूले से गन्ध कहा। गुंजत मंजु मधुप रस भूले से रस कहा। खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं से शब्द कहा। सुन्दर गिरि कानन जल पावन से रूप कहा। इस भाँति उस वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण बतलाया। मुनिजी में ऐसी अहिंसा की प्रतिष्ठा थी कि उनके सन्निधान से पशुपक्षी स्वाभाविक वैर छोड़कर उस वन में निर्भय आनन्द से विचर रहे थे।

दो. सुचि सुंदर आश्रमु निरखि, हरखे राजिव नेन।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि, आगे आयेउ लेन ॥१२४॥

अर्थ : राजीव लोचन राम पवित्र और सुन्दर आश्रम देखकर प्रसन्न हुए और मुनिजी रामजी के आगमन का समाचार सुनकर उनके लेने के लिए आगे आये।

व्याख्या : जैसा कवि के लिए आश्रम चाहिए वैसा आश्रम है। पवित्र भी है। सुन्दर भी है। उसे देखकर राजीवलोचन रामजी भी प्रसन्न हो गये। चितइ कृपा करि राजिव नयना। रामजी के रास्ते की कथा सम्पूर्ण वन में फैल गयी थी। शिष्यों ने समाचार दिया। पहाड़ पर आश्रम है। अतः उन लोगों ने दूर से ही सरकार को आते देखा। समाचार सुनकर मुनिजी ने आगे से आकर स्वागत किया।

मुनि कहुँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमानु आश्रमहिं आने॥१॥

अर्थ : मुनिजी को रामजी ने दण्डवत् किया। विप्रवर ने आशीर्वाद दिया। रामजी की छवि देखकर आँखें शीतल हो गयीं। सम्मान करके आश्रम में ले आये।

व्याख्या : वाल्मीकिजी बड़े तपस्वी और मुनियों में श्रेष्ठ हैं। अतः आते हुए देखकर रामजी ने दण्डवत् प्रणाम किया। जिस भाव से रामजी ने दण्डवत् किया। उसी भाव के अनुकूल ब्राह्मणों में श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने आशीर्वाद दिया।

मुनिजी की आँखें दर्शन की प्यासी थीं। अतः सन्तप्त हो रही थीं। जिसके नाम को इतने दिन से जप रहे थे, जिसके नाम के प्रताप से शुद्ध होकर ऋषिराज हुए आज वही नामी मिलने के लिए आश्रम में पधार रहे हैं। अतः आँखें उनकी छवि देखकर शीतल हुईं। स्वागत के लिए बहुत आगे चले आये थे। अतः बड़े सम्मान के साथ आश्रम में लिवा ले गये।

मुनिवर अतिथि प्रानप्रिय पाये। कंद मूल फल मधुर मँगाये ॥
सिय सौमित्र राम फल खाये। तब मुनि आसन दिये सुहाये ॥२॥

अर्थ : श्रेष्ठ मुनि प्राणप्रिय अतिथि पाया। मीठे मीठे कंद मूल और फल मँगाये। सीताजी लक्ष्मणजी तथा रामजी ने फल खाया। तब मुनिजी ने सुन्दर आसन दिये।

व्याख्या : पहिला काम मुनिजी ने यह किया कि भोजन की व्यवस्था पहिले की। प्रात काल स्नान करके सरकार चले हैं। रास्ता चलकर आये हैं। भूख अवश्य लगी होगी। अति मीठे मीठे कन्द मूल फल मँगाये। मुनिजी महाराज जनक के मित्र हैं। वात्सल्य भाव के उपासक हैं। रामजी इन्हें प्राण से प्यारे हैं। सो इस समय अतिथि होकर आये हैं। अत तुरन्त भोज्न की व्यवस्था की सीताजी लक्ष्मणजी तथा रामजी जब भोजन कर चुके तब मुनिजी ने सुन्दर आसन दिये। भाव यह कि पहिले भी आसन दिये थे। पर वे सोहाये न थे। भोजन के समय पीढ़ा का ही विधान है। भोजनोपरान्त सोहाये अर्थात् कोमल आसन दिये।

बालमिकि मन आनँदु भारी। मंगल मूरति नयन निहारी ॥
तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले बचन श्रवन सुखदाई ॥३॥

अर्थ : मङ्गलमूर्ति को आँखों से देखकर वाल्मीकिजी को बड़ा आनन्द हुआ तब हाथ जोड़कर रामजी कानों को सुख देनेवाले वचन बोले।

व्याख्या : ब्रह्म तन्मङ्गलं विदु । ब्रह्म ही मङ्गलमूर्ति है। वह नयन का विषय नहीं। सो मूर्तिमान होकर आश्रम में पधारा है। अतः उन्हें आँखों से देखकर वाल्मीकिजी को भारी आनन्द हुआ। यथा : नयन बिषय मों कहुँ भयेउ सो समस्त सुखमूल। सबइ लाभ जग जीव कहँ भये ईस अनुकूल।

वाल्मीकिजी का पिता सा भाव देखकर सरकार करकमल जोड़कर श्रवण सुखद वचन बोले। देख लिया कि वाल्मीकिजी ने भरद्वाज की भाँति कुशल नहीं पूछा। त्रिकालज्ञ हैं। सब जान गये। कष्टकर बात की चर्चा चलाना नहीं चाहते। पर मुझे तो इनसे आज्ञा लेकर निवास करना ठहरा। अतः मैं स्वयं सब कथा कहकर तब निवास के लिए स्थल पूछूँ। अतः श्रवण सुखद वचन बोले।

तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदरि जिमि तुम्हरें हाथा ॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी ॥४॥

अर्थ : हे मुनिनाथ! आप त्रिकालदर्शी हैं। संसार आपके हाथ में बेर के फल के समान है। ऐसा कहकर सरकार ने जिस जिस भाँति रानी ने वन दिया सो सब कथा कह सुनायी।

व्याख्या : रामजी ने कहा कि आप मुनियों के नाथ हैं। परम ज्ञानी हैं तथा त्रिकालदर्शी हैं। आप से कुछ छिपा नहीं है। यह संसार आपके करगत बेर के

फल के समान है। अर्थात् संसार में जो कुछ हो रहा है वह सब आपको प्रत्यक्ष है। बदरी फल कहने का भाव यह कि आप संसार को अपथ्य जानते हैं। यथा : धात्रीफलं सदा पथ्यमपथ्यं बदरीफलम्। आप समझ सकते हैं कि राज्य महाबन्धन है। इसके छूटने से मुझे हर्ष है।

ऐसा कहकर सरकार ने वाल्मीकिजी से सब कथा कही। जिस भाँति रानी ने वन दिया। भाव यह कि महाराज ने वन नहीं दिया। रानी ने दिया। सब कथा कहने का भाव यह कि जिससे सम्मति लेना हो उसे अपनी परिस्थिति से परिचित कर देना परम आवश्यक है। वाल्मीकि से निवासस्थल के लिए सम्मति लेनी थी। इसलिए सब कथा कह सुनायी। मुनिजी पूछते ही कि तुम राजकुमार होकर वन में क्यों बसना चाहते हो। अतः उनसे सब कहना प्राप्त था।

दो. तात बचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु, सबु मम पुन्य प्रभाउ ॥१२५॥

अर्थ : पिता का वचन तिस पर माता का हित और भरत जैसे भाई का राजा होना और हे प्रभु! मुझे आपका दर्शन मिलना यह सब मेरे पुण्य का प्रभाव है।

व्याख्या : जो बात सरकार ने महारानी कैकेयी से कहा था वही यहाँ भी कहते हैं। यथा : मुनिगन मिलन बिशेष बन सबहिं भाँति हित मोर। तेहि महुँ पितु आयसु बहुरि संमति जननी तोर। भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि संमुख आजू। भाव यह कि पहिले भी विधि सम्मुख थे। पर आज तो सब विधि से सम्मुख हो गये हैं कि एक कार्य करने में चार चार कार्य सध रहे हैं। वन में आने से पिता का भला माता का भला भाई का भला और स्वयं अपना भला।

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई॥१॥

अर्थ : हे मुनिराज! आपके चरणों को देखकर मेरे सब पुण्य सुफल हो गये। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ रहने से कोई मुनि उद्वेग न पावे।

व्याख्या : सुकृत का फल सुयश है। यथा : पावन जस कि पुन्य बिनु होई। सो सरकार के सुयश का प्रचार वाल्मीकिजी द्वारा ही होनेवाला है। अतः कहते हैं कि मेरे सब सुकृत तो आपके दर्शन से सुफल हुए। निश्चित आसन्न भविष्य को भूतकाल में वर्णन किया जाता है। यथा : रंगभूमि आये दोउ भाई।

भरद्वाजजी वाल्मीकिजी के शिष्य हैं। सो शिष्य से रास्ता पूछा था। अब गुरुजी से निवास स्थान पूछते हैं कि हम क्षत्रिय हैं। आखेट आदि करेंगे। इससे मुनिलोगों के उद्वेग का भय है। अतः मुझे ऐसा स्थान चाहिए जहाँ रहने से किसी मुनि को उद्वेग न हो। क्योंकि उद्वेग उत्पन्न करना भी हिंसा है। यथा : उद्वेगजननं हिंसा सन्तापकरणं तथा।

मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं ॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू ॥२॥

अर्थ : मुनि तपस्वी जिनसे दुःख पाते हैं वे राजा बिना आग के जल जाते हैं। ब्राह्मण का परितोष सब मङ्गलों का मूल है और ब्राह्मण का क्रोध करोड़ों कुल को भस्म करता है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि मैं अपने कल्याण के लिए पूछता हूँ। क्योंकि सब मङ्गलों का मूल ब्राह्मणों का परितोष है। क्योंकि इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। यथा : हरितोषणव्रत द्विज सेवकाई और ब्राह्मण के रोष से कोटि कुल भस्म हो जाता है। यथा : इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला। जो इनकर मारा नहिं मरई। बिप्र रोष पावक सो जरई। इसलिए कहते हैं कि वह राजा बिना आग के जल जाता है।

अस जिअ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु कालु कृपाला ॥३॥

अर्थ : ऐसा मन में समझकर वह स्थान बतलाइये जहाँ सीता और लक्ष्मण के साथ मैं जाऊँ। वहाँ सुन्दर पत्ते और तृणों की कुटी बनाकर हे कृपालु ! मैं कुछ दिनों तक वहाँ निवास करूँ।

व्याख्या : स्थान पूछने के साथ ही साथ छुट्टी भी माँगते हैं कि हमलोग वहीं जाकर रहें। गृहस्थी के साथ रहना है। अतः वहाँ जलाशय आदि सभी बातों का सुपास चाहिए।

रास्ते में तो वृक्ष तले भी रह जाते थे। परन्तु वहाँ तो कुछ काल तक रहना होगा। अतः पर्णतृणशाला बनानी पड़ेगी। वनवास चौदह वर्ष के लिए है। अतः साल छः महीने तो कम से कम रहना है।

सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी ॥
कस न[१] कहहु अस रघुकुल केतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू ॥४॥

अर्थ : रामजी की स्वभाव से ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि ने साधु साधु : वाह वाह कहा। हे रघुकुल के ध्वज ! आप ऐसा क्यों न कहें। आप सदा वेद के पुल के रक्षक हो।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि वेदमार्ग का पालन तो रघुवंशियों का सहज स्वभाव है। यथा : रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथु पगु धरहिं न काऊ। और आप तो रघुवंश के ध्वज रूप हो। आप ऐसी बात क्यों न कहें। आप श्रुति सेतु का पालन सदा सर्वदा करते हैं। ब्राह्मणत्व की ही रक्षा से वैदिक धर्म रक्षित

---

१ यहाँ सम : द्वितीय अलङ्कार है।

होता है। अतः ब्राह्मणत्व का रक्षा विधायक वाक्य जिस सरलता से आप ने कहा है वह आपके लिए स्वाभाविक है। सिवा आपके ऐसा वाक्य कौन कहे !

छं. श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह, जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति, रुख पाइ कृपानिधान की ।।
जो सहस सीसु अहीसु महिधरु, लखनु सचराचर धनी ।
सुर काज धरि नरराज तनु, चले दलन खल निसिचर अनी ।।

अर्थ : हे रामजी ! आप वेद के पुल के रक्षा करनेवाले जगदीश हैं। जानकी माया हैं। जो कृपानिधान का रुख पाकर संसार की रचना पालन तथा संहार किया करती हैं। जो सहस्र सिरवाले सर्पराज पृथ्वी के धारण करनेवाले हैं वे ही चराचर के स्वामी लक्ष्मण जी हैं। देवताओं के कार्य के लिए नृप शरीर धारण करके खल निशाचरों की सेना के संहार के लिए चले हैं।

व्याख्या : यही आधिदैविक रामायण की कुञ्जी है। वाल्मीकिजी कहते हैं कि आप श्रुतिसेतु पालक हो। सो आवश्यकता पड़ते ही आगये। सन्तत पालक कहा था उसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आप जगदोश हैं और यह जानकी आपको माया हैं। यथा : आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। सो आपलोग वेष बदले हुए ऐसा सुन्दर नाट्य कर रहे हैं। ये लक्ष्मणजी सहस्रशीर्षापुरुषः जाग्रत के विभु हैं। जाग्रत के आधार हैं। अतः चराचर के स्वामो हैं। ये भी मनुष्य बने हुए आपके साथ हैं। इस समय देवलोक और मनुष्यलोक से जो व्यापार चलता रहा : देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ। ब्रह्मदेव ने यज्ञ के साथ प्रजा की सृष्टि की और कहा कि इसी से तुम लोग देवताओं को बढ़ाओ और वे पूजित होकर तुम्हें बढ़ावें। इसी भाँति परस्पर भावना करते हुए परम कल्याण को प्राप्त हो। सो बन्द सा हो गया है। सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई। द्विज भोजन मख होम सराधा। सबकै जाइ करहु तुम बाधा। इत्यादि। सो इस समय सुरकाज नरराज तन से ही हो सकता है। अतः आप लोग नरराज तन धारण करके खल निशाचरों का नाश करने चले हैं : गोस्वामीजी इस काण्ड के छन्दों में से केवल इसी में अपना नाम नहीं देते।

सो. राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।१२६[1]।।

अर्थ : हे रामजी ! आपका स्वरूप वाणी का अविषय और बुद्धि के बाहर की

---

१. गोस्वामीजी का यह भी नियम है कि कोई क्रम नहीं निबहने देते। अयोध्याकाण्ड भर में पचीस के सोरठा के साथ छन्द देते हैं। पर यहाँ छब्बीसवें सोरठा के साथ दिया।

बात है। अव्यक्त है। अकथ है। अपार है। इसे नेति नेति कहकर वेद वर्णन करते हैं।

व्याख्या : लीला विग्रह कहकर परम स्वरूप कहते हैं। न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदिता-दथो अविदितदधि।

वेद कहता है कि न तो वहाँ दृष्टि जाती है न वाणी जाती है न मन जाता है। उसे न सामान्य रूप से जानते हैं न विशेषरूप से जानते हैं। कैसे कहें। वह जानने और न जानने दोनों से परे ही अतद्व्यावृत्ति से ही उसके विषय में कुछ कहा जा सकता है। अतः यह भी नहीं यह भी नहीं। स्थूल भी नहीं सूक्ष्म भी नहीं। इस प्रकार से वेद तुम्हारा निरूपण करता है।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे ॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा ॥१॥

अर्थ : संसार तमाशा है और तुम देखनेवाले हो और ब्रह्मा विष्णु और शिव नचानेवाले हैं। वे भी तुम्हारा मर्म नहीं जानते और तुम्हें जाननेवाला कौन है।

व्याख्या : संसार दृश्य होने से जड़ है। तुम द्रष्टा होने से चिद्रूप हो। विधि हरि शम्भु संसार की सृष्टि पालन और संहार करनेवाले तुम से ही बल पाकर अपने अपने कार्य में समर्थ हैं। यथा : जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा। वे भी तुम्हारे मर्म को नहीं जानते। यथा : पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मर्म न जानइ कोई। मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्व-भूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः। न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। भूतभृन्नच भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः। भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि मुझसे यह जगत् परिपूर्ण है। सब भूत मेरे में स्थित हैं। मैं उनमें स्थित नहीं हूँ और वे सब भूत मेरे में स्थित नहीं हैं। मेरे ऐश्वर योग को देख। भूतों को उत्पन्न करनेवाली मेरी आत्मा भूतों में स्थित नहीं है। मर्म का जानना ही वस्तुतः जानना है। अतः कहना होगा कि कोई तुम्हें नहीं जानता। यथा : न मे विदुः सुरगणा। प्रभवं न महर्षयः। गीतायाम्।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन ॥२॥

अर्थ : जिसे तुम जना देते हो वही तुम्हें जानता है और तुमको जानते ही तुम्हीं हो जाता है। हे रघुनन्दन ! तुम्हारी कृपा से हे भक्त उर चन्दन ! तुम्हें भक्त जानते हैं।

व्याख्या : भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं। भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः। भक्ति से मुझे जानता है कि तत्त्वतः मैं क्या हूँ और कितना हूँ और : ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति। ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है। यमेष वृणुते

तेन लभ्यः। जिसे वह वरण करता है। उसी से वह प्राप्य है। अर्थात् तुम्हें जानना कृपा साध्य है। क्रिया साध्य नहीं है। भजन करनेवाले पर भगवान् कृपा करते हैं। निर्गलितार्थ यह है कि भजन करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं और भक्त को अपना ज्ञान करा देते हैं और ज्ञान हो जाने पर भक्त भगवन्त में भेद नहीं रह जाता। यथा : भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम वपु एक।

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी ॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥३॥

अर्थ : तुम्हारी देह चित् आनन्दमय है। विकार से रहित है। इसे अधिकारी लोग जानते हैं। सन्त और देवताओं के लिए मनुष्य शरीर धारण कर रक्खा है। सांसारिक राजाओं की भाँति कहते हो और करते हो।

व्याख्या : सबके देह में और तुम्हारे देह में बड़ा अन्तर है। तुम में देह देही भेद नहीं है। चिदान्दमय लीलाविग्रह है। यथा : आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः। मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति। माया के गुणों का अनुसरग करता हुआ वैसा ही मालूम होता है। वस्तुतस्तु अविकारी हैं। इसीलिए गोता में कहा है कि जन्म कर्म च मे दिव्यम्। मेरा जन्म कर्म दिव्य है।

कर्मवश होकर तुमने देह धारण नहीं किया है। भक्त भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल। करत चरित धरि मनुज तन सुनत मिटहिं जग जाल।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा ॥४॥

अर्थ : हे रामजी ! तुम्हारे चरित्र को देख सुनकर मूर्खों को मोह होता है और पडित सुखी होते हैं। तुम जो कहते हो और करते हो सो सब सत्य है। क्योंकि जैसा काछ काछे वैसा ही नाच नाचना चाहिए।

व्याख्या : अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीतनुमाश्रितम्। परं भावमजानन्तो मम लोकमहेश्वरम्। भगद्गीता में भगवान् ने कहा है कि मूढ लोग मुझ मनुष्य शरीर धारण करनेवाले की अवज्ञा करते हैं। मेरे परम भाव को नहीं जानते कि मैं लोक का महेश्वर हूँ। मनुष्य की भाँति चरित देखकर और सुनकर मूढों को विपरीत ज्ञान होता है कि ये भी मनुष्य हैं। प्रभु के परम भाव को तो पण्डित जानते हैं कि लोक महेश्वर होकर कैसी मनुष्य लीला करते हैं। अतः वे सुखी होते हैं। यथा : उमा राम गुन गूढ़ पंडति मुनि पावहिं बिरति। पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति।

यथा अनेक बेष धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ भाव देखावै आपुन होइ न सोइ। नाटय में जो कुछ कहा या किया जाता है वह वस्तु स्थित न होने पर भी रंगमञ्च के लिए सच्चा है। क्योंकि जैसा वेष धारण करे वैसा ही अभिनय करने का नियम है।

दो. पुछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहिं देखावउँ ठाँउ ॥१२७॥

अर्थ : मुझसे पूछते हो कि कहाँ रहूँ और मैं पूछते हुए सङ्कोच करता हूँ कि जहाँ तुम न हो वह स्थान मुझे बतला दो तो वही स्थान मैं तुम्हें दिखा दूँ।

व्याख्या : अब जहँ राउर आयसु होई का उत्तर देते हैं कि तुमने तो सङ्कोच नहीं किया। वेषानुसार ठीक ठीक अभिनय कर दिया। पर मुझे सङ्कोच लगता है। मैं भी वैसा ही तुम्हें कैसे मान लूँ मैं तो जानता हूँ कि तुम सर्वव्यापक हो। अतः तुम्हारे प्रश्न का ठीक उत्तर तो यही है कि पहले यह बतलाओ कि तुम कहाँ नहीं हो। तब मैं कह दूँ कि वहीं रहो।

यह स्तुति पुष्य नक्षत्र है। तीन तारे यहाँ राम लक्ष्मण जानकीजी हैं। इन्हीं की चमक दिखायी पड़ती है। यहाँ ब्रह्म : राम लक्ष्य का वेध हुआ। अतः शर की आकृति माना। इसकी फलश्रुति है : समन पाप संताप सोक के। सो : जानत तुमहि तुमहिं होइ जाई से सन्ताप शोक का शमन कहा।

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने ॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी ॥१॥

अर्थ : मुनिजी के वचन सुनकर रामजी सकुचे और मन ही मन मुसकुराये। वाल्मीकिजी फिर हँसकर मीठी वाणी अमृत रस से भिगोयी हुई बोले।

व्याख्या : सरकार में शील की पराकाष्ठा है। जब मुनि लोग सहज स्वरूप कथा का वर्णन करने लगते हैं तो सरकार को सङ्कोच होता है। मुनिजी की इस उक्ति पर : जहँ न होउ तहँ देउ कहि तुमहिं देखावउँ ठाँउ : सरकार मुसकुराये। मुनिजी के गौरव से प्रकट नहीं मुसकराये। अतः कहते हैं : मन मह मुसुकाने।

सरकार ने माधुर्य में प्रश्न किया। वाल्मीकिजी ऐश्वर्य में उत्तर देते हैं। उसी बात को और भी बढ़ाते हुए बहुत कुछ कहेंगे। इसलिए हँस रहे हैं। भक्ति से पूर्ण वाणी है। इसलिए मधुर और अमिअ रस बोरी कहा। मिठास तो भक्ति में ही है।

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥२॥

अर्थ : रामजी सुनो ! अब मैं घर बतलाता हूँ। जहाँ तुम सीता और लक्ष्मण के साथ बसो। जिनके कान समुद्र के समान हैं और तुम्हारी कथाएँ सुन्दर नदियाँ हैं।

व्याख्या : आपने कहा : अस जिय जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्र सहित जहँ जाऊँ। तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बास करौं कछु काल कृपाला। सो पर्णशाला में क्यों रहोगे। मैं तुम्हें घर बतलाता हूँ और ऐसा विस्तृत घर जहाँ तीन मूर्ति रह सको। यहाँ भगवान् वाल्मीकि ने घर के व्याज से पूरी रामायण कही।

रामायण का अर्थ ही यह है : रामस्य अयनम् रामायणम्। रामजी का घर ही रामायण है। ग्रन्थ का नाम रामायण इसलिए है कि इसमें रामजी ही प्रतिपाद्य हैं। यथा : जेहि मह आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।

वस्तुतस्तु भगवान् की कथा और भागवत की कथा में भेद नहीं है। भागवत की कथा में सिवा भगवत् कथा के और कुछ होता ही नहीं। इसी भाँति भगवान् की कथा में भक्त की कथा रहती है। भगवान् वाल्मीकि ने यहाँ भक्त की कथा कहते हुए भगवान् की कथा अर्थात् पूरी रामायण कही है। अब बालकाण्ड के पूर्वार्ध के भक्तों के लिए कहते हैं। इसमें उमा और भरद्वाज मुख्य श्रोता हैं। इनकी कथा पूर्वार्ध में है। ऐसे ही भक्तों को लक्ष्य करके कहा गया है कि जिनके कान समुद्र के समान हैं। समुद्र में स्वयं अपार जल भरा है। फिर भी १८०० नदियाँ इसमें अनवरत जल उड़ेला करती हैं और समुद्र सब को ग्रहण करता है। इसी भाँति श्रोता का हृदय राम कथा से पूर्ण है। फिर भी उसे कथा श्रवण से तृप्ति नहीं।

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे ॥३॥

अर्थ : दिन रात उन्हें भरती हैं किन्तु पूरे नहीं होते। उनके हृदय में तुम्हारे लिए सुन्दर घर है। जिन्होंने अपनी आँखों को पपीहा बनाकर रक्खा है और मेघरूपी आपके दर्शन के लिए लालायित रहते हैं।

व्याख्या : इतने जल के ग्रहण से भी समुद्र भर नहीं उठता। इसी भाँति जा श्रोता कथा श्रवण से ऊबता नहीं सुनता ही जाता है उसके हृदय में तुम्हारे लिए सुन्दर घर है। उमा ने कहा : नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर। श्रवन पुटन्ह मन पान करि नहि अघात मतिधीर। इसी भाँति भरद्वाज भी नहीं अघाते। यथा : संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुख पावा। बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीर रोमावलि ठाढ़ी।

बालकाण्ड के उत्तरार्ध के भक्त रूप के प्रेमी हैं। अतः उन्हें चातक कहा। चातक का नेम अटल है। वह मेघ से ही माँगता है। मेघ का दर्शन चाहता है। बूँद पान करता है। संसार में समुद्र भरा है। नदी तालाब जल से भरे हैं। पर चातक के लिए कुछ नहीं। इस प्रकार के भक्त मनु सतरूपा हैं। यथा : उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई। जो भुसुंडि मनमानस हंसा। सगुन अगुन जेहिं निगम प्रसंसा। इत्यादि।

निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ॥४॥

अर्थ : नदी समुद्र और तालाब के जल का निरादर करते हैं। रूप बिन्दु जल से ही सुखी होते हैं। उनका हृदय सुखदायक घर है। उसमें भाई और सीताजी के सहित हे रघुनायक ! तुम रहो।

व्याख्या : ऊपर मनु सतरूपा का चातक की भाँति राम श्यामघन के दर्शन की लालसा कहा। यहाँ : निदरहिं सरित सिन्धु सर बारी का मिलान कहते हैं। पानी का खजाना तो सरित सिन्धु और सर ही हैं। इसी भाँति सबके ध्येय ज्ञेय और आराध्य विधि हरिहर हैं। सो : बिधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा। माँगहु बर बहु भाँति लोभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये। अन्त में प्रभु के रूप बिन्दु को पाकर ही कृतकृत्य हुए। ये ही दशरथ कौसल्या हुए। जनकजी की भी वही गति है। कहते हैं : इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा। जानकीजी भी रूप बिन्दु से ही आनन्दित हैं। यथा : जनु चातकी पाइ जल स्वाती। जनक दूत : देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ। माता लोग : जे दिन गये तुमहिं बिनु देखे। ते बिरंचि नहिं पारहिं लेखे। चक्रवर्तीजी यथा : सुत हिअ लाइ दुसह दुःख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे। इस भाँति उत्तरार्ध ऐसे भक्तों से ही भरा पड़ा है।

ऐसे भक्तों का हृदय आपके लिए सुखदायक घर है। यहाँ आवभगत बराबर होती रहेगी। यहाँ भाई और सीताजी के साथ रहो। राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर। ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।

दो. जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हिय तासु ॥१२८॥

अर्थ : तुम्हारे यश रूपी निर्मल मानससरोवर में जिसकी जीभ हंसिनी रूपा है तुम्हारे गुणगण रूपी मुक्ताफल को चुना करती है। हे रामजी! उसके हृदय में बसो।

व्याख्या : अयोध्याकाण्ड के पूर्वार्ध के भक्त हैं अवध निवासी। ये दिन रात रामजी का गुणगान करते हैं। महाराज दशरथ को सब समाचार दूतों द्वारा लगा करता है। यथा : रामरूप गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ। सबकें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु। आपु अछत युबराज पदु रामहि देउ नरेसु। को रघुबीर सरिस संसारा। सील सनेह निबाह निहारा। इन्हीं लोगों की जिह्वा हँसी है जो रामयश मानस में विचरती हुई गुणगण रूपी मुक्ताफल चुना करती है। यथा : जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहै सिखावहिं। भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहिं इत्यादि। वाल्मीकिजी कहते हैं कि ये आपका ही गुणगान करते हैं। अतः इनके हृदय में बसने में आपकी ही प्रधानता है।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहि निवेदित भोजनु करहीं। प्रभु प्रसाद पटु भूषन धरहीं ॥१॥

अर्थ : जिसकी नाक प्रभु के सुन्दर पवित्र प्रसाद के सुगन्ध को आदर के साथ लेती है और जो तुमको अर्पण करके भोजन करते हैं और प्रभु का प्रसाद वस्त्र और भूषण धारण करते हैं।

व्याख्या : जिन्होंने अपनी ज्ञानेन्द्रियों तथा मन को आप में ही लगा रक्खा है। १. सरकार के प्रसाद का पवित्र और सुन्दर सुगन्ध से जिसकी घ्राणेन्द्रिय नित्य तृप्त हुआ करती हैं अर्थात् जो बड़े आदर के साथ उस तुलसीयुक्त प्रसाद के गन्ध को ग्रहण करते हैं और जो आपके नैवेद्य का ही भोजन करते हैं अनिवेदित पदार्थ का ग्रहण नहीं करते हैं। यथा : यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः। भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् और २. गहना कपड़ा भी सरकार को चढ़ाने के बाद ही धारण करते हैं। अर्थात् यज्ञशिष्ट पदार्थ को ही अपने उपभोग में लाते हैं। एवम् अपने ज्ञानेन्द्रियों को सरकार में ही लगाये हुए हैं।

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेखी ॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोसे हृदय नहिं दूजा ॥२॥

अर्थ : देवता गुरु और ब्राह्मण को देखकर प्रीति के सहित विशेष विनय करके जिनके मस्तक झुक जाते हैं। जो नित्य हाथों से रामजी के चरणों की पूजा करते हैं। जिनके हृदय में रामजी का ही भरोसा है दूसरे का नहीं।

व्याख्या : देवता गुरु और ब्राह्मण प्रभु की अपरमूर्ति हैं। ३. जो इन्हें देखकर मनसा वाचा कर्मणा प्रणत होते हैं। प्रीति से मनसा विनय विसेखी से वाचा तथा सीस नवहि से कर्मणा प्रणाम कहा। ४. हाथों से रामजी के चरणों की पूजा नित्य करते हैं। इसभाँति कर्मेन्द्रियों को सफल करते हैं। ५. मन में राम का ही भरोसा रखते हैं दूसरे किसी का नहीं। यथा : बनै सो रघुबर से बनै या बिगरै भरिपूरि। तुलसी बनै जो और ते ता बनिबे मँह धूरि।

चरन राम तीरथ चलि जाँहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माँहीं ॥
मन्त्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा ॥३॥

अर्थ : ६. जिसके पैर रामजी के तीर्थों में चले जाते हैं। हे रामजी ! तुम उनके मन में बसो। १. जो तुम्हारे मन्त्रराज का नित्य जप करते हैं और २. परिवार के सहित तुम्हारा पूजन करते हैं।

व्याख्या : अयोध्याकाण्ड के उत्तरार्ध में ऐसे भक्त भरतजी हैं। १. प्रसाद : अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावइ देवा। सरकार के प्रवास से अन्य प्रसादों से वञ्चित हो रहे हैं। अतः मुख्य प्रसाद के लिए प्रार्थना करते हैं। २. निवेदित भोजन। यथा : जात पयादे खात फल पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहिं भरत सरिस को आज। क्योंकि भरतजो फलादि ही नैवेद्य लगा सकते हैं। ३. सीस नवहि सुर गुरु द्विज देखी। यथा : करि प्रनाम पूछहिं जेहि तेही। तथा : कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। ४. रामपद पूजा। यथा : नित पूजहि प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति। ५. राम भरोस। यथा : आपन जानि न त्यागिहैं मोहि रघुबीर भरोस ६. रामतीर्थ सेवन। यथा। चले राम बन अटन पयादे।

अब आरण्यकाण्ड के पूर्वार्ध के भक्त मुनियों के लिए कहते हैं। ये दीक्षित

लोग हैं। मन्त्रराज षडक्षर राम मन्त्र का जप करते हैं। वेदविधि से परिवार के साथ पूजन करते हैं। जप एकाकी होकर करते हैं। पूजन कुटुम्ब के साथ करते हैं।

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्ह ते अधिक गुरहिं जिअ जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी ॥४॥

अर्थ : जो लोग नाना विधि से तर्पण और होम करते हैं, ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं और बहुत दान करते हैं, जो तुमसे भी अधिक गुरुजी को मन से जानकर सब भाव से सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं।

व्याख्या : जप के दशांश का होम करते हैं और उसके भी दशांश का तर्पण करते हैं और उसके भी दशांश का ब्राह्मण भोजन करते हैं। इसीलिए यहाँ तीनों का उल्लेख है। अर्थात् जप का साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान करते हैं। इसके अतिरिक्त पितृ तर्पण दैव होमादि कराते हैं।

गुरुदेव की पूजा सत्कार जो लोग भगवद्विग्रह से भी अधिक करते हैं। पूजन के समय यदि दैवात् गुरुजी का आगमन हो जाय तो भगवद्विग्रह की पूजा वहीं समाप्त करके शेष पूजन गुरुदेव का करना चाहिए। अर्थात् यदि चन्दन भगवद् विग्रह पर अर्पण कर चुका हो तो गुरु के आगमनोपरान्त तुलसीदल गुरुदेव पर ही चढ़ेगा। गुरु गोविंद दोनों खड़े काके लागू पाँय। बलिहारी उन गुरु की जिन गोविंद दान्ह दिखाय।

दो. सबु करि मांगहिं एक फलु, राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु, सिय रघुनंदन दोउ ॥१२९॥

अर्थ : सब अनुष्ठान करके एक ही फल माँगते हैं कि रामजी के चरणों में प्रेम हो। ऐसे के मन मन्दिर में सीता और दोनों रघुनन्दन बसो।

व्याख्या : उपर्युक्त अनुष्ठान किसी अन्य कामना से नहीं करते। उनको एक मात्र भक्ति की ही कामना रहती है। सीताजी और दोनों रघुनन्दन राम लक्ष्मण तीनों मूर्ति के हृदय में बसने का कारण यह है कि उपासक ने परिवार सहित उपासना की थी। अतः परिवार : स्त्री और भाई सहित हृदय में बसने को कहते हैं : ऐसे भक्त आरण्य काण्ड के पूर्वार्ध में मुनिगण हैं।

१. मन्त्रराज का जप यथा : निसिदिनु देव जपत हहु जेही।
२. परिवार सहित पूजन यथा : भजे ससक्ति सानुज।
३. गुरुसेवा यथा : गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
४. रामचरनरति यथा : जोगजग्य जप तप जत कीन्हा।
प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा।

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह के कपट दम्भ नहि माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया ॥१॥

अर्थ : जिनके हृदय में १. न काम है २. न क्रोध है ३. न भेद है ४. न मान है ५. न मोह है ६. न लोभ है ७. न क्षोभ है ८. न राग है ९. न द्वेष है १०. न कपट है ११. न दम्भ है १२. न माया है हे रघुराज ! तुम उनके हृदय में बसो।

व्याख्या : काम क्रोधादि सभी मानस रोग हैं। जिनका वर्णन उत्तरकाण्ड के अन्त में किया गया है। ये सदा जीव को पीड़ा पहुँचाया करते हैं। अतः उसे समाधि की प्राप्ति नहीं होती। जब मन इनसे रहित हो तब नैर्मल्य को प्राप्त होकर स्वस्थ होता है। उसी के लिए कहा गया है : निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

इस प्रकार के भक्त आरण्यकाण्ड के उत्तरार्ध में नारदजी हैं।

| | | |
|---|---|---|
| १. कामाभाव | यथा : | कामकला कछु मुनिहि न व्यापी। |
| २. क्रोधाभाव | यथा : | भयउ न नारद मन कछु रोषा। |
| ३४. मद मानाभाव | यथा : | मोर सापकरि अंगीकारा।<br>सहत राम नाना दुःख भारा।<br>ऐसे प्रभुहि विलोकउँ जाई। |
| ५. मोह मायाभाव | यथा : | साँचहुँ इनके मोह न माया। |
| ६. लोभाभाव | यथा : | रामसकल नामन ते अधिका।<br>होहु नाथ अघ खग गन वधिका। |
| ७. क्षोभाभाव | यथा : | मुनिगति देखि सुरेस डेराना। |
| ८९. रागद्वेषाभाव | यथा : | उदासीन धन धाम न जाया। |
| १०. कपटाभाव | यथा : | तब बिबाह मैं चाहौं कीन्हा।<br>प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा। |
| ११. दम्भाभाव | यथा : | निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा।<br>भयउ रमापति पद अनुरागा। |
| १२. मायाराहित्य | यथा : | सहज बिकल मन लागि समाधी। |

**सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥**
**कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥२॥**

अर्थ : जो सबको प्रिय है। सबके हित करनेवाले हैं। दुःख सुख प्रशंसा और गाली जिन्हें समान हैं। सत्य और प्रिय वचन विचार पूर्वक बोलते हैं। जो जागते और सोते तुम्हारे शरण हैं।

व्याख्या : सबके प्रिय होने का कारण सबका हितकारी होना है। हितकारी ही प्रिय होता है। दुःख और सुख को समान मानना धीर का लक्षण है। यथा : सुख हरषहिं जड़ दुःख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं। जिनको सरकार के चरणों में ममता होती है वे ही प्रशंसा गाली के समान मानने में समर्थ होते हैं। यथा : स्तुति निंदा उभय सम ममता मम पदकंज। विचार पूर्वक सत्य

प्रिय वचन बोलने की शास्त्राज्ञा है। यथा : सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेषधर्मः सनातनः। जीव का भगवत् शरण जाना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। गीता में स्वयं भगवान् ने कहा है : सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। जाग्रत में ऐसी भावना दृढ़ हो गयी है कि स्वप्न में भी शरणागत ही रहते हैं।

ऐसे भक्त किष्किन्धाकाण्ड के पूर्वार्ध में सुग्रीवजी हैं। इनका सर्वप्रिय होना इसी से सिद्ध है कि इनको लोगों ने इनके न चाहने पर भी राजा बनाया। यथा : दीन्हेंउ मोहि राज बरिआई। ये सबके हितकारी थे। वालि का भी इन्होंने हित ही चाहा। यथा : बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम समन बिषादा। इन्हें दुःख सुख प्रशंसा गाली भी समान ही थी। यथा : सत्रु मित्र सुख दुःख जग माँही। मायाकृत परमारथ नाँहीं। ये सत्य और प्रिय वचन विचार पूर्वक बोलते थे। यथा : विषयवस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अतिकामी। शरणागत तो ये सदा से ही थे। हनुमानजी कहते हैं : सो सुग्रीव दास तव अहई।

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं पर नारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी ॥३॥

अर्थ : जिन्हें तुम्हें छोड़कर दूसरी गति नहीं है। हे रामजी ! तुम उनके मन में बसो जो परायी स्त्री को माँ के समान जानते हैं। पराये धन को विष से भी भारी विष मानते हैं।

व्याख्या : सरकार को छोड़कर सुग्रीवजी को दूसरी गति नहीं थी। यथा : सुनि सुग्रीव परम भय माना। ऐसे भक्तों के हृदय में रामजी तुम बसो। भाव यह कि जो एकाकी तुम्हें भजता है उसके हृदय में एकाकी बसो और जिसकी भावना सस्त्रीक सानुज में हो उसके हृदय में सस्त्रीक सानुज बसो।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्। आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति। अनुवाद में उत्कर्ष और भी बढ़ गया। पर द्रव्य को लोष्ट : ढेला नहीं विष से भी अधिक विष बतलाया गया। यह पच नहीं सकता। प्राण हरण करेगा। पुत्र पौत्र को भी अनिष्टकर होगा।

जे [1]हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपत बिसेखी ॥
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान पिआरे। जिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥४॥

अर्थ : जो दूसरे की सम्पत्ति देखकर प्रसन्न होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर दुःखी होते हैं। जिनको रामजी तुम प्राण के समान प्यारे हो। उनके मन तुम्हारे लिए मङ्गलमय घर हैं।

व्याख्या : पर सम्पत्ति से हर्ष, पर विपत्ति से विशेष दुःख, अपने सुख दुःख में

---

१. यहाँ उल्लास अलङ्कार है।

उतना हर्ष विषाद नहीं। यहाँ अनुवाद मूल से अधिक जोरदार : उत्कर्षयुक्त हो गया। इनका हर्ष और दुःख भी अलौकिक हो गया। अपना सुख दुःख वैसा कार्य नहीं करता।

पुत्र कलत्र प्राण प्यारे नहीं। तुम जिसे प्राण प्यारे हो अथवा अन्य देव भी मान्य हैं पर प्राण प्यारे तो तुम्हीं हो। अतः उनका मन तुम्हारे शुभ सदन हैं।

ये किष्किन्धाकाण्ड के उत्तरार्ध के भक्त वानरवीर हैं जो सीताजी की खोज के लिए दक्षिण दक्षिण भेजे गये थे। जननी सम जानहि पर नारी। यथा : मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज। दूरि ते ताहि सबन्हि सिर नावा। धन पराव बिष ते बिष भारी। भूख प्यास से मर रहे थे। पर बिना मालिक की आज्ञा के पानी तक न ग्रहण किया। यथा : तेहि तब कहा करहु जलपाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना। पर सम्पत्ति से हर्ष यथा : धन्य जटायू सम कोउ नाँहीं। पर दुःख से दुःखी यथा : अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई। राम तुम प्रानपियारे यथा : राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह।

दो. स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३०॥

अर्थ : हे तात ! जिनके तुम स्वामी सखा माता और गुरु सब कुछ तुम ही हो उसके मन मन्दिर में सीता सहित दोनों भाई बसो।

व्याख्या : जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा। सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बर डोरी। सब भाव से जो सरकार की ही उपासना करता है। सब नाता उन्हीं से जोड़े हुए हैं। अतः वर्तमान सभी सम्बन्धी स्त्री और भाई सहित उसके मन मन्दिर में वास करो।

ऐसे भक्त सुन्दरकाण्ड के प्रारम्भ में हनुमानजी हैं। सरकार को ही स्वामी और पितु मातु मानते हैं। यथा : सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे। सरकार इन्हें सखा मानते हैं। यथा : ये सब सखा सुनहु मुनि मोरे। भये समर सागर कहँ बेरे। शिष्य होकर स्वयं हनुमानजी ने सरकार से प्रश्न किया था। यथा : तापर मैं रघुबीर दोहाई। जानहुँ नहि कछु भजन उपाई।

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥१॥

अर्थ : १. जो अवगुणों को छोड़कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं। २. ब्राह्मण और गायों के लिए संकट सहते हैं। ३. नीति निपुण होने की संसार में जिनकी थाप है। उनका सुन्दर मन तुम्हारा घर है।

व्याख्या : जिनका स्वभाव हंस सा है। अवगुणरूपी जल का त्याग करके गुणरूपी दुग्ध का ग्रहण करते हैं। यथा : संत हंस गुण गहहिं पय परिहरि बारि बिकार। विप्र धेनु यज्ञ के साधक हैं। विप्र में मन्त्र और गाय में हवि प्रतिष्ठित है।

इनकी रक्षा होनी ही चाहिए। अतः इनके लिए जो संकट सहते हैं। जो नीति में निपुण हैं। जिन्हें अनीति अच्छी नहीं लगती। ऐसे उत्तम हृदयवाले मनुष्य का हृदय तुम्हारा घर है। सरकार को नीति विरोध अच्छा नहीं लगता। यथा : नीति बिरोध सोहाइ न मोहीं। अतः मुनिजी नीति निपुण के हृदय में उन्हें बसने के लिए कहते हैं।

ऐसे भक्त सुन्दरकाण्ड के उत्तरार्ध में विभीषणजी हैं। १. अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। यथा : सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महँ जीभ बिचारी २. विप्र धेनु हित यथा : बिप्र रूप धरि बचन सुनाये। सुनत बिभीषनु उठि तहँ आये इत्यादि। ३. नीति निपुन यथा : मैं जानौं तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती।

गुन तुम्हार समुझाइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥२॥

अर्थ : १. जो गुण तो तुम्हारा और दोष अपना समझता है। २. जिसे सब भाँति से तुम्हारा भरोसा है। जिसको रामजी के भक्त प्यारे लगते हैं। उसके हृदय में वैदेही सहित वास करो।

व्याख्या : संसार में उलटी बात है। जो बन जाय सो तो मैंने बनाया। बिगड़ जाय तो राम ने बिगाड़ा। यहाँ : गुन तुम्हार समुझै निज दोसा। संसार में धन जन परिजन गुण चतुराई का भरोसा रहता है। पर यहाँ तो सब भाँति राम का भरोसा है। राम का प्रिय लगना नहीं कहते पर भक्त प्रिय लगैं। अर्थात् भक्ति पर विशेष श्रद्धा है। यथा : पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। अतः वैदेही सहित बसने को वाल्मीकिजी ने कहा।

इस प्रकार के भक्त लङ्काकाण्ड के पूर्वार्ध में समुद्रजी हैं। १. गुन तुम्हार समुझैं निज दोषा। यथा : छमहु देव सब अवगुन मोरे। प्रभु भल कीन्हि मोहि सिख दीन्हीं। २. जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा। यथा : प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई। ३. रामभक्त प्रिय। यथा : जल निधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहिं श्रम हारी।

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदनु सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई ॥३॥

अर्थ : जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई प्रिय परिवार सुखदाई घर सब छोड़कर जो तुम्हारे में लौ लगाये रहता है हे रघुराई ! तुम उसके हृदय में रहो।

व्याख्या : जाति पांति धन धर्म बड़ाई ये पाँच स्थान प्रतिष्ठा के हैं और परिवार तथा घर दो सुख के हैं। सो सबों को छोड़कर मन की वृत्तियों को तुम्हारे में लगावे उसके हृदय में रहो। वह अकेला है और अकेले तुम्हीं में लौ भी लगाये है। अतः अकेले आप भी रहो।

ऐसे भक्त लङ्काकाण्ड के उत्तरार्ध में वानर सैनिक हैं। यथा : जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरखे देव बिलंब न कीन्हा। बनचर देह धरी छिति माँहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं। गिरि तरु नख आयुध सब्र बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। तथा : सुनु सुरपति कपि भालु हमारे। परै भूमि निसिचरन्ह जे मारे। मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जियाउ सुरेस सुजाना।

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना ॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा ॥४॥

अर्थ : जिसे स्वर्ग नरक और मोक्ष समान है। सर्वत्र ही धनुर्वाणधारी को देखता है। मनसा वाचा कर्मणा आप का दास है। उसके हृदय में डेरा लगाओ।

व्याख्या : १. जो सर्वत्र धनुर्वाणधारी सरकार को देखता है। उसके लिए स्वर्ग नरक दोनों समान है।

२. मनसा वाचा कर्मणा सेवा में रत है। जिसे दूसरे का भरोसा नहीं। ऐसे भक्त उत्तरकाण्ड के पूर्वार्ध में सनकादिक हैं। ये सभी जगह सरकार को देखते हैं। अभेददर्शी हैं। यथा : रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा। ३. सरकार में रति। यथा : आसा बसन ब्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनहीं। ये असङ्ग विचरनेवाले हैं। गृही नहीं हैं। अतः इनके हृदय में आप भी संग रहित होकर डेरा कीजिये।

दो. जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु ॥१३१॥

अर्थ : जिसे कभी कुछ भी नहीं चाहिए और तुमसे जिसका स्वाभाविक प्रेम है उसके हृदय में निरन्तर वास करो। वही आपका अपना घर है।

व्याख्या : किसी काल में किसी वस्तु की इच्छा नहीं। ऐसे भक्त भुसुण्डिजी हैं। यथा : मन से सकल बासना भागी। केवल रामचरन लय लागी। ऐसे का हृदय खास घर है। अतः इसमें निरन्तर रहो। ये ही चौदह भक्तिसूत्र वाल्मीकिजी से गोस्वामीजी को मिले हैं और इन्हीं के भाष्यरूप में सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखा गया है।

एहि बिधि मुनिवर भवन देखाये। बचन सप्रेम राम मन भाये ॥
कह मुनि सुनहु भानु कुल नायक। आश्रमु कहउँ समय सुखदायक ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार मुनिजी ने घर दिखाये। उनके प्रेमयुक्त वचन रामजी को अच्छे लगे। मुनिजी ने कहा कि हे सूर्यकुल के नायक! सुनिये। अब इस समय सुख देनेवाला आश्रम बतलाता हूँ।

व्याख्या : मुनिजी विधि के साथ बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक के भक्तों के मन को रहने के लिए दिखलाते-गये। समझा कि अवध के महल में रहनेवाले हैं। जहाँ क्रोध के लिए भी पृथक् भवन बना हुआ है। कहीं सीताजी के

साथ रहते हैं। कहीं एकान्त में एकाकी रहते हैं। कहीं लक्ष्मणजी भी आजाते हैं। इनका एक भवन से काम नहीं चल सकता। इसलिए चौदह भवन दिखलाया और अनेक प्रकार से रहना कहा। बानी मधुर अमिअ रस बोरी से उपक्रम और वचन सप्रेम से उपसंहार किया। अतः राम मन भाये कहकर प्रभु की स्वीकृति दिखलाया। मुनिजी के गौरव से स्पष्ट एवमस्तु न कहा।

भानुकुलनायक से लीलाविग्रह सूचित करते हैं। समय सुखदायक से भाव यह कि अन्तर्यामी रूप योग्य गृह। इस समय के लीला विग्रह के अनुकूल नहीं है। अतः इस समय के लिए सुखदायक स्थान बतलाते हैं।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू॥२॥

अर्थ : चित्रकूट पर्वत पर निवास करो। वहाँ तुम्हारे लिए सब प्रकार की सुविधा है। सुहावना पर्वत है। सुन्दर वन है। हाथी सिंह मृग और पक्षी विहार किया करते हैं।

व्याख्या : रामजी ने पूछा था : अब जहँ राउर आयसु होई : बास करहु कछु काल कृपाला। उसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि चित्रकूट पर्वत पर निवास करो; यहाँ आपके लिए सब प्रकार की सुविधा है। बड़ा सुहावना पर्वत है। राजधानी बनाने लायक है। वन भी बड़ा सुन्दर है। वन की सम्पत्ति से सम्पन्न है। उसीको इस समय राज्य बनाइये : इसका विस्तार भरतजी के आगमन के प्रसङ्ग में कहा गया है।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि प्रिया निज तपबल आनी॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥३॥

अर्थ : पवित्र नदी है। जिसकी प्रशंसा पुराणों में है। इसे अत्रिजी की स्त्री अपने तपबल से लायी हैं। यह गङ्गाजी की धारा है। इसका नाम मन्दाकिनी है। पापरूपी बच्चों के लिए डाकिनीरूप है।

व्याख्या : जलाशय का सान्निध्य कहते हैं। मन्दाकिनी नदी वहाँ बहती है। बड़ी पवित्र है। गङ्गा की धारा है। भगीरथ तपबल से भागीरथी को लाये हैं और इसे अत्रिप्रिया अपने तपबल से लायी हैं। बड़े बड़े महापातक इसके आहार हैं। जैसे डाइन बच्चों को खा जाती है उसी भाँति यह महापातकों को खा जाती है।

अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू॥४॥

अर्थ : अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं। योग और जप करते हैं तथा तप से शरीर को कसते हैं। रामजी! चलो सबके परिश्रम को सफल करो और पर्वत श्रेष्ठ को बड़ाई दो।

व्याख्या : मुनियों के सत्सङ्ग की तुम्हें बड़ी चाह रहती है। यथा : मुनिगन मिलन विसेष बन सबहिं भाँति हित मोर। सो अत्रि आदि बड़े बड़े मुनीश्वर वहाँ बसते हैं। जो मनसा वाचा कर्मणा परलोक जय में लगे हुए हैं। योग से मनोनिग्रह जप से वाणी का सदुपयोग तथा तप से शरीर का कसना कहा। यथा : भरत भवन बसि तप तन कसहीं। देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजुबलु मुख छबि सोई।

तुम्हारे वहाँ चलने से सबका श्रम सफल होगा। क्योंकि योग जप तप सब तुम्हारी प्राप्ति के लिए ही लोग करते हैं और तुम्हारे निवास से चित्रकूट की महिमा बढ़ेगी। अतः पर्वत श्रेष्ठ को बड़ाई दो। वह मेरुसे विमुक्त होकर विन्ध्य का शृङ्ग हो रहा है।

## १६. चित्रकूट निवास प्रसङ्ग

दो. चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ।
आइ नहाये सरित बर, सिय समेत दोउ भाइ ॥१३२॥

अर्थ : महामुनि ने चित्रकूट की अपार महिमा का वर्णन किया। तब सीता सहित दोनों भाइयों ने आकर उस श्रेष्ठ नदी में स्नान किया।

व्याख्या : वाल्मीकिजी महामुनि हैं। इनका वर्णन अमोघ है। इन्होंने चित्रकूट की अपार महिमा कही। चित्रकूट वस्तुतः पर्वतों में जो परमेश्वर की विभूति मेरु पर्वत है उसका शिखर है। एकबार मेरु के गर्व से क्रुद्ध होकर वायुदेव ने उसे उड़ा देने की ठान ली। भगवान् ने उसकी सहायता के लिए गरुड़जी को भेजा। उन्होंने मेरु को अपने डैनों से आच्छादित कर लिया। अतः वायु के प्रचण्ड वेग से भी मेरु की कोई हानि न हुई। मेरु ने कहा कि गरुड़जी ! मुझे तो कुछ पता नहीं चल रहा है। वायु कुछ बल दिखा रहे हैं कि नहीं। गरुड़जी ने कहा कि बोलो मत। दबके पड़े रहो। बड़ी आपत्ति है। मेरु ने कहा कि तनिक सा मुझे भी सामना करने का अवसर दो। गरुड़जी ने थोड़ा सा डैना खिसका दिया तो दो शृङ्ग उड़ गये। एक वृन्दावन में गिरा जिसका गोवर्धन नाम है। दूसरा विन्ध्य शृङ्खला में जा गिरा जिसे चित्रकूट कहते हैं। ये दोनों महामहिम शृङ्ग देवताओं के विहार स्थल मेरु के हो हैं। अतः पर्वतों में इनकी महिमा है।

मालूम होता है कि मुनिजी भी सरकार के साथ चित्रकूट आये। अतः विदाई नहीं लिखी। आकर दोनों भाइयों ने सीताजी के सहित वियद्गङ्गा मन्दाकिनी में स्नान किया। यहाँ आकर कहने का भाव है कि कवि अपने को चित्रकूट में मान रहे हैं।

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू ॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ॥१॥

अर्थ : रामजी ने कहा कि हे लक्ष्मण ! घाट अच्छा है। अब कहीं ठहरने का

ठिकाना करो। लक्ष्मणजी ने पयस्विनी नदी के उत्तर का करार देखा। जिसके चारों ओर धनुष की भाँति नाला फिरा हुआ था।

व्याख्या : नहाने के बाद घाट की प्रशंसा की और लक्ष्मणजी से कहा कि यहीं कहीं ठहरने की व्यवस्था करनी चाहिए। लक्ष्मणजो ने पयस्विनी नदी के उत्तर के किनारे को पसन्द किया। क्योंकि उसके चारों ओर स्वभाव से ही रक्षा की व्यवस्था है। तीन तरफ तो एक नाला धनुष की भाँति घूना हुआ है और दोनों ओर से पयस्विनी नदी में जा मिला। इस भाँति चारों ओर स्वभाव से खाइँ बनी हुई है।

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना ॥
चित्रकूट जनु अचलु अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥२॥

अर्थ : नदी मानों प्रत्यञ्चा है। शम दम दान वाण है। कलियुग के सब पाप शिकार हैं। चित्रकूट पर्वत ही मानो शिकारी है। मुठभेड़ के युद्ध में उसकी चोट खाली नहीं जाती।

व्याख्या : नदो मानो प्रत्यञ्चा है। बराबर धनुष पर मानों प्रत्यञ्चा चढ़ा ही रहता है। शम दम और दान ये तीन प्रकार के वाण हैं। नदी का आश्रयण करके इनका अनुष्ठान करने से कलियुग के सम्पूर्ण पाप मारे पड़ते हैं। वे ही मानो शिकार हैं।

अहेरी बड़े चञ्चल होते हैं। लेट बैठकर दौड़कर चोट करते हैं। पर चित्रकूट रूपी अहेरी अचल है। पर घात कभी नहीं चूकता। सामने जाते ही मारता है। शिकारी को शिकार पर बड़ा चोप होता है। इसी भाँति चित्रकूट को कलिकलुष विध्वंसन का बड़ा चोप है। पाप को मन्दाकिनी खा जाती है और कलिकलुष को चित्रकूट नष्ट करता है।

अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा ॥
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना ॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर लक्ष्मणजी ने स्थान दिखाया। स्थल के देखने से रामजी को सुख हुआ। देवताओं ने जाना कि रामजी का मन रम गया। सो देवताओं के थवइयों में : स्थपति प्रधान विश्वकर्मा के साथ चले।

व्याख्या : रामजी ने कहा : करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू। सो लक्ष्मणजी ने जगह तजबीज करके रामजी को दिखलाया। भाव यह कि मुझे तो पसन्द है। यदि सरकार को भी पसन्द हो। सरकार को बहुत पसन्द आया। इसलिए दर्शन मात्र से सुख पाना लिखते हैं : चित्रकूट भी अहेरी है। सरकार भी अहेरी हैं।

इधर देवताओं ने जान लिया कि यह स्थल सरकार को पसन्द है। यहीं ठहरेंगे। अत: विश्वकर्मा को साथ लेकर कुटी बनाने चले। सरकार को सुन्दर पर्णशाला की रुचि है। मुनिजी से कहा है : तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बास करहुँ कछु काल कृपाला। इसलिए देवताओं ने विश्वकर्मा को साथ लिया सोचा कि

हम लोगों के कारण अयोध्या का राजप्रसाद छोड़ा है। कुटी बनाकर रहना चाहते हैं। अतः पर्णशाला इनके रहने योग्य बननी चाहिए।

कोल किरात बेष सब आये। रचे परन तृन सदन सुहाये ॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला ॥४॥

अर्थ : सब कोल किरात के वेष में आये और पत्ते तथा तृणों के घर बनाये। दो घर ऐसे सुन्दर बनाये कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता। उसमें एक सुन्दर छोटा सा है और एक बड़ा।

व्याख्या : यदि देवता लोग अपने वेष से आते तो सरकार सेवा न लेते। इसलिए कोलकिरात का वेष धारण करके आये और पत्ते तथा तृणशाला बनाने लगे। विश्वकर्मा बनाने में लगे हैं। अतः पर्ण तृणशालाएँ ऐसी बनीं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। लक्ष्मणजी के रहने के लिए एक छोटी सुन्दर सी शाला बनायी और सरकार के लिए बड़ी शाला बनायी। क्योंकि जगदम्बा साथ में थीं।

दो. लखन जानकी सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि बेष जनु, रति रितु राज समेत ॥१३३॥

अर्थ : लक्ष्मण और जानकी सहित प्रभु उस पर्णशाला में ऐसे विराजमान हुए मानो कामदेव रति और वसन्त के साथ मुनि का वेष धारण किये हुए हैं।

व्याख्या : जो सुन्दर है वह सभी अवस्था में सुन्दर है। सरकार लक्ष्मण और जानकीजी के साथ मुनिवेष से पत्ते की कुटिया में ठहरे हैं। पर वहाँ भी उनकी शोभा है। मानो स्वयं काम ने अपनी प्रिया रति तथा सखा वसन्त ऋतु के साथ मुनिवेष धारण कर रक्खा है।

अमर नाग किन्नर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला ॥
रामु प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू ॥१॥

अर्थ : देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल उस समय चित्रकूट आये। रामजी ने सबको प्रणाम किया। देवता लोग नेत्र का फल पाकर प्रसन्न हुए।

व्याख्या : अमर नाग किन्नर दिक्पाल कहने का भाव कि सभी श्रेणी के देवता उस समय चित्रकूट आये। जिस भाँति नारदजी को सोच हुआ था : बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेखी। मोर श्राप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुःख भारा। उसी प्रकार का भाव देवताओं के भी हृदय में उदय हुआ कि हम लोगों के कारण रामजी आज अयोध्या का राजप्रासाद छोड़कर पर्णकुटी में निवास कर रहे हैं। अतः इस समय दर्शन के लिए उपस्थित होना चाहिए। इस प्रकार से प्रत्यक्ष रूप से देवता लोग कभी नहीं आये थे।

मर्यादापुरुषोत्तम रामजी ने सबको प्रणाम किया। देवता लोग सरकार का

दर्शन पाकर प्रसन्न हो गये। इन लोगों ने भी रामजी के दर्शन से अपने नेत्रों का साफल्य माना।

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भये हम आजू ॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाये। हरषित निज निज सदन सिधाये ॥२॥

अर्थ : देव समाज ने पुष्पवर्षा कर दी और कहने लगे कि हे नाथ! आज हम लोग सनाथ हो गये। विनती करके अपना दुःसह दुःख सुनाया और प्रसन्न होकर अपने अपने घर गये।

व्याख्या : इन्हीं लोगों ने कुमन्त्रणा करके सरस्वती द्वारा मन्थरा तथा कैकेयी की बुद्धि को पलटवाया। फलतः रामजी को वनवास मिला। अतः अपने को सापराध मान रहे हैं। सबने पुष्पाञ्जलि दी। अतः फूलों की वर्षा हो गयी। बोले कि हम लाग अनाथ हो रहे थे। जब सरकार ने इतना कष्ट उठाया कि हम लोगों के लिए आज पर्णशाला में निवास स्वीकार किया तो हम लोग सनाथ हो गये। इस भाँति अनेक विनती करके अपना अपना दुसह दुःख सुनाया कि रावण के मारे हम लोगों के लोक उजाड़ हो गये। रावण के दरबार में हाथ जोड़कर खड़ा रहना पड़ता है। तिस पर भी इज्जत नहीं बचती। देव जच्छ गंधर्व मुनि किन्नर नाग कुमारि। जीति बरी निज बाहु बल बहु सुन्दर वर नारि। इत्यादि। अपनी रक्षा के लिए सन्नद्ध मालिक से अपना सब दुःख सुना देने से सन्तुष्ट हैं। उन्हें अनुकूल देखकर प्रसन्न हो घर लौट गये।

चित्रकूट रघुनंदनु छाये। समाचार सुनि सुनि मुनि आये ॥
आवत देखि मुदित मुनि बृंदा। कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा ॥३॥

अर्थ : श्रीरामजी चित्रकूट में आ बसे हैं। यह समाचार सुन सुनकर मुनि लोग आये। मुनिवृन्द को आनन्दित हुए आते देखकर रघुकुल के चन्द्रमा रामचन्द्र ने दण्डवत् प्रणाम किया।

व्याख्या : देवताओं को सब पता था। इसलिए कोल किरात वेष से आकर पर्णशाला बना गये। फिर अपने रूप से आकर अपना दुःख निवेदन कर गये। पर मुनि लोगों को सरकार के निवास करने के बाद पता चला। अतः पीछे से मुनि लोग आये। सरकार ने देखा कि मुनि लोग बड़े प्रसन्न चले आ रहे हैं। देवताओं से भी अधिक आदर सरकार के हृदय में मुनियों का है। अतः साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। रघुकुल के चन्द हैं। सभी चकोरों को एक साथ प्रणाम करने में समर्थ हैं। अथवा रघुकुल में मुनियों का बड़ा आदर है और ये तो उस कुल के चन्द्रमा हैं। ये क्यों न इतना आदर करें।

मुनि रघुबरहिं लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं ॥
सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं ॥४॥

अर्थ : मुनि लोग रामजी को कलेजे से लगा लेते हैं और वाणी की सफलता के लिए उन्हें आशीर्वाद देते हैं। सीता लक्ष्मण और रामजी की छवि देखते हैं और अपने सब साधनों को सफल मान रहे हैं।

व्याख्या : सरकार के उन्मादकारी सौन्दर्य पर मुनिगण मोहित हैं। कलेजे से लगाते हैं। सरकार की महिमा जानते हैं। फिर भी आशीर्वाद अपनी वाणी की सफलता के लिए देते हैं। भाव यह कि इनके कल्याण में सन्देह क्या ? अतः जो आशीर्वाद इन्हें देंगे सभी सफल होंगे। ये ही मुनि लोग कृष्णावतार में गोपिका हुए। तीनों मूर्तियों की छवि के दर्शन से अपने साधन की सफलता मानते हैं। यथा : आज सफल तप तीरथ त्यागू। आज सफल जप जोग बिरागू। सफल सकल सब साधन साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू। वाल्मीकिजी ने जा कहा था : चलहु सफल श्रम सबकर करहू : सो सब का श्रम सफल हुआ।

दो. जथाजोग सनमानि प्रभु, बिदा किये मुनि बृंद।
करहिं जोग जप जाग तप, निज आश्रमन्हि सुछंद ।।१३४।।

अर्थ : प्रभु ने जो जिस योग्य था उसका वैसा सम्मान करके विदा किया। वे लोग अपने अपने आश्रमों में स्वतन्त्र होकर योग यज्ञ जप तप करने लगे।

व्याख्या : साष्टाङ्ग दण्डवत् तो प्रभु ने सबको समान रूप से ही किया। पर सम्मान में योग्यता के तारतम्य पर ध्यान रक्खा। मिलने के बाद सबको विदा किया। अब ये लोग अपने अपने आश्रमों में योग यज्ञ जप स्वच्छन्द होकर करते हैं। पहिले राक्षसों को डरते थे। अतः स्वच्छन्दता नहीं रही। वाल्मीकिजी ने यज्ञ का नाम नहीं लिया। इतना ही कहा : करहि योग जप तप तन कसहीं। योग जप तप तो छिपकर भी हो सकता है। पर यज्ञ तो छिपकर नहीं हो सकता और : देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुःख पावहिं। सो मुनि लोग यज्ञ नहीं कर सकते थे। अब किसी का डर नहीं। स्वच्छन्द होकर यज्ञ भी करते हैं।

यह सुधि क़ोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई ।।
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना ।।१।।

अर्थ : यह समाचार कोल किरातों को मिला। वे ऐसे प्रसन्न हुए मानो नवोनिधि घर में आगयो। वे कन्द मूल फल दोना भर भर के ऐसे चले जैसे दरिद्र सोना लूटने चले हों।

व्याख्या : मुनिवृन्द को जाते और लौटते देखकर जिज्ञासा हुई कि क्या बात है। तब पता लगा। केवल पता लगने का यह माहात्म्य है कि उन्हें ऐसा आनन्द हुआ कि नवोनिधियाँ घर में आगयीं। महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ। मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव। निधि का अर्थ खजाना भी है पर खजाने का आना नहीं बनता। इसलिए नवनिधि की अधिष्ठात्री देवी अर्थ किया गया।

देवता और ऋषियों को भेंट मिला करती है। इसलिए वे लोग भेंट लेकर नहीं आये। ये भेंट लेकर भी चले। जो जिसके पास होता है वही भेंट भी देता है। इनके पास कन्द मूल फल छोड़कर और क्या है। इसलिए कन्द मूल फल को दोनों में भर भरकर ऐसे आह्लाद से चले जैसे दरिद्र जिसे अन्न भी मिलना कठिन हो सुने कि सोने की लूट हो रही है और दौड़ पड़े। उसी भाँति ये भी चले।

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहिं पूछहिं मगु जाता ॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई ॥२॥

अर्थ : उनमें से जिन्होंने दोनों भाइयों को देखा था दूसरे रास्ते में जाते हुए उनसे पूछते हैं। इस भाँति रामजी की सुन्दरता कहते सुनते आकर सबों ने रघुराई को देखा।

व्याख्या : कुछ देखकर लौट रहे थे। उनसे सरकार के विषय में प्रश्न करते हैं कि तुम देख आये। बतलाओ तो कैसे सुन्दर हैं? कैसा स्वभाव है? वे भी वर्णन करते हुए साथ हो लिये। इस भाँति सौन्दर्य और स्वभाव का वर्णन करते हुए और सुनते हुए सबों ने आकर सरकार को देखा।

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकहिं अति अनुरागे ॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े ॥३॥

अर्थ : भेंट सामने रखकर जोहार करते हैं और बड़े प्रेम से प्रभु का दर्शन करते हैं। जैसे चित्र में लिखे हों वैसे ही जो जहाँ था वह वहीं खड़ा रह गया। उनके शरीर पुलकित हो गये और नेत्रों में जल भर आया।

व्याख्या : कन्द मूल फल जो दोना में भरकर लाये थे उन्हें पहिले भेंट के रूप में सामने रक्खा तब जोहार किया। आजकल जैसे हाथ से लोग सलाम करते हैं उसी भाँति दोनों हाथों से जोहार किया जाता है। तत्पश्चात् सरकार के रूप माधुर्य का दर्शन करते हुए प्रेम में मग्न होकर एकदम स्तब्ध हो जाते हैं। उनका कोई अङ्ग हिलता नहीं। मानों चित्र में लिखे हैं। सात्त्विक भाव हो जाने से शरीर में पुलक हो गया है और नेत्रों में जल है।

राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने ॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी ॥४॥

अर्थ : रामजी ने जान लिया कि सब स्नेह में मग्न हैं। अतः प्रिय वचन बोलकर सबका सम्मान किया। बार बार जोहार करते हैं और विनययुक्त वचन हाथ जोड़कर कहते हैं।

व्याख्या : देखा कि सब प्रेम में डूबाडूब हैं। कोई कुछ बोलता नहीं तो स्वयं सरकार ही प्रिय वचन बोले। तुम लोग राजी तो हो। बाल बच्चे तो राजी हैं। वन

में फल मूल तो यथेष्ट रूप से प्राप्त होता है। तुम लोगों को कोई कष्ट तो नहीं है इत्यादि।

सरकार की वाणी सुनकर और भी प्रेम बढ़ा। अतः बार बार जोहार करते हैं और विनीत वचन हाथ जोड़कर बोलते हैं।

दो. अब हम नाथ सनाथ सब, भये देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमन, राउर कोसलराय ॥१३५॥

अर्थ : अब हम प्रभु के चरणों के दर्शन से सनाथ हो गये। हे कोशलराय! हमारे भाग्य से आपका यहाँ आगमन हुआ है।

व्याख्या : मालिक के चरण दर्शन से दास सनाथ हो जाते हैं। नाथ के चरण दर्शन न होने से जीव अनाथ रहते हैं। कोसलराय के वन में आकर बसने का प्रयोजन क्या? यह मेरा भाग्य हो है जो आप यहाँ आ बसे हैं। देवताओं से प्रेमाधिक्य मुनियों ने दिखाया। अब उनसे भी अधिक प्रेम कोल किरातों में दिखलाते हैं। पिता दीन्ह मोहि कानन राजू का साफल्य स्पष्ट दिखायी पड़ रहा है।

धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा॥
धन्य बिहँग मृग कानन चारी। सफल जनम भए तुम्हहिं निहारी ॥१॥

अर्थ : हे नाथ! जहाँ जहाँ तुमने पाँव रक्खे वह भूमि वन रास्ता और पहाड़ धन्य हैं। ये वनचारी पशु पक्षी धन्य हैं जिनके जन्म तुम्हारे दर्शन से सफल हो गये।

व्याख्या : घर से चलने में भूमिखण्ड वन मार्ग और पहाड़ अवश्य ही मिले होंगे। क्योंकि इस घोर वन में बिना वन पहाड़ आदि उल्लंघन किये कोई आ नहीं सकता। वे सब आपके चरण स्पर्श से धन्य हो गये : प्रेम के आवेश में कोल किरातों के मुख से ऐसी बातें निकल रही हैं जो शास्त्र सम्मत हैं।

नगर के बिहँग मृग तो तुम्हारा दर्शन पाते हो थे। पर अब तो जङ्गल के विहँग मृग धन्य हो रहे हैं। दर्शन पा रहे हैं। उनका जन्म सफल हो गया। यथा : राम चरन वारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं।

हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ॥२॥

अर्थ : हम सब तो सकुटुम्ब धन्य हो गये। क्योंकि तुमको आँख भरकर देख रहे हैं। तुमने बहुत अच्छी जगह तजवीज करके निवास किया है यहाँ पर सभी ऋतुओं में सुखी रहोगे।

व्याख्या : भूमि वन पंथ पहाड़ जड़ हैं वे देख नहीं सकते। अतः चरण स्पर्श से धन्य हुए। वनचारी विहँग मृग उनकी अपेक्षा चेतन हैं। देख सकते हैं। वे चलते फिरते दृष्टि पड़ जाने से धन्य हुए। पर हम लोग तो बालबच्चों के साथ

धन्य हुए। क्योंकि आँख भरकर देख रहे हैं : जे हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नहीं अघाय।

उन कोल किरातों ने इस बात पर भी विचार किया कि यहाँ पर सरकार ठहरे हैं तो किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं होगा। तो इसी निश्चय पर पहुँचे कि यह स्थल सभी ऋतुओं में सुखदायक है। अतः सरकार के पसन्द का अनुमोदन करते हैं कि निवास स्थान सरकार ने ठीक तजबीज किया।

हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥३॥

अर्थ : हम लोग हाथी सिंह सर्प और व्याघ्र को इधर आने ही न देंगे। सब प्रकार से सेवा करेंगे। वन अगम्य पर्वतों को अगम्य कन्दराएँ और खोह सबके सब हमारे रत्तो रत्ती देखे हुए हैं।

व्याख्या : हम लोग सरकार की सब भाँति से सेवा करेंगे। ईंधन पत्ता कन्द मूल फल आदि से तो सेवा करेहींगे। खतरे में भी बँचावेंगे। करि केहरि को इधर न आने देना कौन सी बड़ी बात है। हम साँप को भो इधर से न आने देंगे।

बीहड़ वन में करि केहरि कन्दर में सर्प और खोह में व्याघ्र रहते हैं। सो सब हमारे रत्ती रत्ती देखे हुए हैं। करि केहरि अहि व्याघ्र के निवास स्थान जानते हैं। उनकी संख्या जानते हैं। उन्हें बहकाकर दूसरे रास्ते में कर देना जानते हैं।

तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निरझर जल ठाँउ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥४॥

अर्थ : हम आपको जहाँ तहाँ शिकार खेलावेंगे। तालाब झरने और रमणीय स्थल दिखलावेंगे। हम परिवार सहित सरकार के सेवक हैं। नाथ ! आज्ञा देने में सङ्कोच न करियेगा।

व्याख्या : आज भी जङ्गली ही शिकार खेलाते हैं। इसलिए कहते हैं कि तालाब झरना जहाँ जहाँ जानवर पानी पीने जाते हैं और रम्यस्थल जहाँ वे रहते हैं सब तुमको दिखायेंगे। हँकवा करके आपके सामने ला देंगे। वे सब समझ रहे हैं कि बड़े शिकारी हैं। शिकार के लिए यहाँ ठहरे हुए हैं।

दो. बेद बचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुना अयन।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक बयन॥१३६॥

अर्थ : जो वेद के लिए वचन से अगम्य हैं। मुनि के लिए मन से अगम्य हैं। वे करुणायतन किरातों की बातें इस भाँति सुन रहे हैं जैसे बाप बच्चों की बातों को सुनता है।

व्याख्या : नेति नेति जेहि बेद निरूपा। अतः वेद वचन से अगम और जितिपवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुक पावही। अतः मुनि मन अगम है।

प्रभु ऐसे करुणायतन हैं कि किरातों की बातें मन लगाकर बड़े चाव से सुन रहे हैं। जैसे पिता बालक की बातें सुनता है। यथा : जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता।

रामहिं केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥१॥

अर्थ : रामजी को केवल प्रेम ही प्यारा है। जो जाननेवाला हो जान ले। रामजी ने सब जङ्गलियों को प्रेम से परिपुष्ट कोमल वचन कहकर तुष्ट किया।

व्याख्या : जप योग नियमव्रत रहित प्रेम केवल प्रेम है। सो रामजी को केवल प्रेम प्यारा है। यथा : जौ जप जाग जोग व्रत वर्जित केवल प्रेम न चहते। तौ कत सुर मुनिबर बिहाय ब्रज गोपगेह बसि रहते। केवल प्रेम पर सरकार रीझ जाते हैं। यथा : रीझत राम सनेह निसोतें। ग्रन्थकार कहते हैं कि इस प्रसङ्ग से जो जिज्ञासु हैं वे जान लें।

प्रेम की प्यास को सरकार ने प्रिय वचन से शान्त किया। मृदु वचन से ही प्रेम परिपुष्ट होता है। यह सरकार की बड़ाई है कि वनचर को भी तुष्ट करते हैं।

बिदा किए सिरु नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई॥२॥

अर्थ : विदा किया तो प्रणाम करके चले। सरकार के गुणों को कहते सुनते घर आये। इस भाँति सुरमुनिसुखदायी दोनों भाई सीता सहित वन में बसने लगे।

व्याख्या : आश्वासन देकर देवताओं को विदा किया। सम्मान करके मुनियों को विदा किया। अब प्रेम से परितुष्ट करके कोल किरातों को विदा किया। सरकार की निकाई कहते सुनते आये थे। अब प्रभु का गुण कहते सुनते घर लौटते हैं।

दरबार लगा रहता है। कभी देवता लोग आये। कभी मुनिगण पधारे। कभी कोल किरात हाजिर हुए। इस भाँति प्रभु वन में सुखी होकर बसते हैं। सुर मुनि के सुख के लिए ही वनवास अङ्गीकार किया है।

जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयउ बनु मंगल दायकु॥
फूलहि फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना॥३॥

अर्थ : जब से रघुनायक आकर बसे तब से वन मङ्गलदायक हो गया। नाना प्रकार के पेड़ फूल और फल से भरे हुए हैं। सुन्दर लताओं ने लिपटकर मण्डप बना रक्खा है।

व्याख्या : जब से प्रभु आकर ठहरे तब से प्रकृति में परिवर्तन हो गया। वन में अनेक प्रकार के पेड़ हैं। उनके फूलने और फलने का समय अलग अलग है। पर प्रभु के पदार्पण का यह प्रभाव है कि सब के सब फूल फल रहे हैं। इस भाँति भयानक

वन भी मङ्गलदायक हो गया। इस प्रकार का प्रकृति में परिवर्तन प्रभु के पूर्णावतार का द्योतक है। इनके संयोग से चराचर सुखी तथा वियोग में दुःखी हो जाते हैं।

सुरतरु सरिस सुभाय सुहाये। मनहुँ बिबुध बन परिहरि आये ॥
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी ॥४॥

अर्थ : कल्पवृक्ष के समान वे स्वभाव से ही सुन्दर हैं। मानों अनेकों उपवनों को छोड़कर आये हैं। भँवरों की श्रेणियाँ अधिक सुन्दर गुञ्जार कर रही हैं और सुख देनेवाली शीतल मन्द सुगन्ध हवा बह रही है।

व्याख्या : जिन पेड़ों का ऊपर उल्लेख हुआ है अब उनकी शोभा कहते हैं कि ऐसे सुन्दर पेड़ कहीं दिखायी नहीं देते। मालूम होता है कि ये इस लोक के वृक्ष ही नहीं हैं। ये देवलोक के वृक्ष हैं। सरकार का आना सुनकर ये भी नन्दनादि वनों का परित्याग करके यहाँ चले आये हैं। उनके फल फूल के देखने से मालूम होता था कि ऐसे ही कल्पवृक्ष होते होंगे।

भौरों का गुञ्जार मञ्जु होता ही है। पर यहाँ के भौरों का गुञ्जार भी अधिक मञ्जु है। वन में घोर घाम हिम वात चलता है। सो यहाँ शीतल मन्द सुगन्धयुक्त वायु चल रही है।

दो. नीलकंठ कलकंठ सुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग, श्रवन सुखद चित चोर ॥१३७॥

अर्थ : नीलकण्ठ कोयल तोता पपीहा चकवा और चकोर अनेक प्रकार की बोलियाँ बोल रहे हैं। जो कानों को सुख देनेवाली तथा चित्त को चुरानेवाली हैं।

व्याख्या : जिस भाँति सब ऋतु के फूल और फल लग रहे हैं। उसी भाँति सब ऋतुओं की चिड़िया बोल रही हैं और ऐसा मधुर बोल रही हैं कि सुनने से कान को ऐसा सुख होता है कि मन उधर ही लग जाय। नीलकण्ठ ग्रीष्म में : बोलते हैं। कलकण्ठ वसन्त में शुक शिशिर में चातक वर्षा में चकवा हिमऋतु में रात के बड़ी होने से। चकोर शरद में : चन्द्रमा के निर्मल होने से। सो यहाँ सभी ऋतुओं में बोल रहे हैं। इस भाँति वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण कहा।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा ॥
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृगबृंद बिसेखी ॥१॥

अर्थ : हाथी सिंह बन्दर वाराह और मृग वैर छोड़कर एक सङ्ग विचर रहे हैं। शिकार के लिए घूमते हुए रामजी की छवि देखकर मृग लोग अधिक आनन्दित होते थे।

व्याख्या : पक्षियों का वर्णन करने के बाद वन्य पशुओं का वर्णन करते हैं। करि केहरि कपि कोल कुरंगा में वर्ण मैत्री दिखाकर इनमें मैत्री द्योतित करते हैं। इनमें भक्ष्यभक्षक सम्बन्ध है प्रीति हो नहीं सकती। पर सरकार के पादार्पण से यह

असम्भव भी सम्भव हो गया। सब जीवों ने सहज वैर परित्याग किया ! उस स्थल में आकर परस्पर में अनुराग करने लगते थे।

राघव भावत मोहि विपिन की वीथिन्ह धावनि।
सुन्दर स्यामल अंग वसन पीत सुरंग कटि निषंग परिकर मेरवनि।
तैसइ श्रमसीकर रुचिर राजत मुख तैसिये ललित भ्रुकुटिन्ह की नवनि।
देखत खग निकर मृगरवनिन्ह जुत थकित विसारि जहाँ तहाँ की भवनि।
हरिदरसन फल पायों है ग्यान विमल जांचत भगति मुनि चाहत जवनि।
श्रवन सुख करनि भवसरिता तरनि गावत तुलसीदास कीरत पवनि।

बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माहीं। देखि रामबनु सकल सिहाहीं ॥
सुरसरि सरसइ, दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या ॥२॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना। मंदाकिनि कर करहि बखाना ॥

अर्थ : संसार में जितने देवताओं के वन हैं वे सब रामवन को देखकर सिहाते हैं। गङ्गा सरस्वती यमुना नर्मदा और गोदावरी आदि पुण्य नदियाँ सभी सरोवर नाना नदी और नद सब मन्दाकिनी की सराहना करते हैं।

व्याख्या : जिस भाँति सब देवताओं के पृथक् लोक हैं वैसे ही उनके पृथक् पृथक् उपवन हैं जहाँ वे विहार करते हैं। वे वन आज रामवन की सम्पत्ति और भाग्य देखकर ईर्ष्या करते हैं कि हमारा भाग्य ऐसा नहीं हुआ कि सिय रघुवीर विहार स्थल हो सकें।

संसार में गङ्गादिक जितनी पुण्य नदियाँ हैं वे मन्दाकिनो की प्रशंसा करती हैं कि मन्दाकिनी धन्य है ! जिसमें तीनों काल सरकार लक्ष्मण और जानकीजी के सहित अवगाहन करते हैं।

उदय अगस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल सुरबासू ॥३॥
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते ॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई ॥४॥

अर्थ : उदयाचल अस्ताचल कैलास और मन्दर मेरु आदि जितने देवताओं के निवास स्थान हैं और हिमालय आदिक जितने पर्वत हैं सब चित्रकूट का यशोगान करते हैं। विन्ध्याचल तो ऐसे प्रसन्न हैं कि उनके मन में आनन्द समा नहीं रहा है। उन्हें बिना परिश्रम ही बड़ी भारी बड़ाई मिल गयी।

व्याख्या : उदयाचल और अस्ताचल सूर्य नारायण से सम्बद्ध हैं। कैलास जहाँ सदाशिव उमा का निवास रहता है। मन्दर और मेरु पर तो सब देवताओं का निवास है। हिमालय पर्वतों के राजा ही ठहरे और अन्य जो महेन्द्राचलादि पुण्य पर्वत बड़े बड़े विशाल हैं वे सब छोटे से चित्रकूट पर्वत का यशोगान कर रहे

हैं। क्योंकि वह आज सरकार का निवासस्थान हो रहा है। उसकी महिमा बहुत बढ़ी हुई है।

विन्ध्याचल के आनन्द का तो कुछ ठिकाना ही नहीं। क्योंकि उन्हें बिना परिश्रम ही इतनी बड़ी बड़ाई मिली। चित्रकूट विन्ध्यश्रेणी में ही है। विन्ध्य को बड़ाई पाने की बड़ी इच्छा थी। इसलिए वे बढ़े भी थे। पर अगस्त्यजी ने उनका बढ़ना रोक दिया। उनका सब श्रम ही व्यर्थ हो गया था। सो इस समय बिना परिश्रम ही इतनी बड़ी बड़ाई पा गये।

दो. चित्रकूट के बिहँग मृग, बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति ॥१३८॥

अर्थ : चित्रकूट के पक्षी पशु लता वृक्ष और तृण की जातियाँ पुण्यपुञ्ज हैं और धन्य हैं ऐसा देवता दिन रात कहते हैं।

व्याख्या : इन सबों को सरकार का सानिध्य प्राप्त है। अतः सामीप्यसुख का अनुभव कर रहे हैं। देवताओं को तो केवल वैषयिक सुख प्राप्त है। अतः देवता लोग चित्रकूट के पशु पक्षी लता वृक्ष और घास फूस के पुण्य की प्रशंसा करते हैं। देवलोक में रात दिन इनके पुण्य का कथनोपकथन चल रहा है।

नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी॥
परसि चरन रज अचर सुखारी। भये परम पद के अधिकारी ॥१॥

अर्थ : आँखवाले रामजी को देखकर जन्म होने का फल पाकर शोक रहित पद को प्राप्त होते हैं और अचर चरणरज को स्पर्श करके सुखी होते हैं। उन्हें मोक्ष का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

व्याख्या : देवताओं द्वारा दिन रात चित्रकूट के चर अचर के गुणगान का कारण कहते हैं कि जिन्हें आँखें हैं वे तो रामजी को देखकर आँख होने का फल पा जाते हैं। आँख होने का फल तो यह है कि रामजी के चरणकमलों का दर्शन करके जन्म सफल हो। यथा : राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जनम सफल करि लेखौं। सो यहाँ चित्रकूट के विहँग मृग दर्शन करके शोक रहित पद को प्राप्त हो रहे हैं। जिन्हें आँखें नहीं हैं ऐसे अचर : स्थावर योनिवाले चरण की धूलि के स्पर्श से सुखी हो रहे हैं। उन्हें परमपद का अधिकार प्राप्त हो रहा है जो देवताओं को प्राप्त नहीं है। यावदधिकार देवताओं को मुक्ति नहीं मिलती।

सो बनु सैलु सुभाय सुहावन। मंगलमय अतिपावन पावन ॥
महिमा कहिअ कवन बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू ॥२॥

अर्थ : वह वन और पर्वत तो स्वभाव से ही सुहावना है। मङ्गलमय है। अति पवित्र को भी पवित्र करनेवाला है। उसकी महिमा किस भाँति कही जाय। सुख के समद्र ने स्वयं जहाँ निवास किया हो।

व्याख्या : अब रामवन और रामशैल का वृत्तान्त कहते हैं कि वह स्वभाव से ही सोहावना है। सरकार का निवास होगा इसलिए वे सुन्दर पैदा ही हुए। मङ्गलमय हैं। वहाँ निवास करने से यात्रा करने से मङ्गल होता है। जो अति पावन हैं उन्हें भी पावनता वहाँ से मिलती है। क्योंकि सुखसागर रामजी ने वहाँ निवास किया है। उसकी महिमा अकथनीय है कही नहीं जा सकती।

पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय लखनु रामु रहे आई ॥
कहि न सकहिं सुखमा जसि कानन। जौ सत सहस होहिं सहसानन ॥३॥

अर्थ : क्षीर सागर और अवध छोड़कर जहाँ आकर राम जानकी ने निवास किया है। यदि एक लाख शेष भी हों तो भी वन की शोभा वे नहीं कह सकते।

व्याख्या : सरकार का विशेष रूप से प्राकट्य क्षीरसागर और वैकुण्ठ में माना जाता है। यथा : पुर बैकुण्ठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई। वैकुण्ठ से भी अधिक अवध माना गया है। यथा : अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यहाँ अवध का उल्लेख है इसलिए वैकुण्ठ का नाम नहीं दिया। भावार्थ यह कि दोनों प्रिय निवास स्थान छोड़कर राम जानकी और लक्ष्मण यहाँ आ बसे हैं। उस वन की शोभा को लाखों शेष भी नहीं कह सकते। यथा : जो सुख सुधा सिंधु सीकरते सिव बिरंचि प्रभुताई। सो सुख सिंधु उमगि चल्यौ दस दिसि कवन जतन कहौं गाई।

सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। डाबर कमठ कि मंदर लेहीं ॥
सेवहिं लखनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी ॥४॥

अर्थ : उसे मैं किस भाँति वर्णन कर सकता हूँ। कछुवा का बच्चा क्या मन्दर धारण कर सकता है। लक्ष्मणजी कर्म मन बाणी से सेवा करते हैं। उनके स्नेह शील की प्रशंसा नहीं की जा सकती।

व्याख्या : उस परम शोभा का वर्णन गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं कैसे करूँ। मन्दर पर्वत को सब सुरासुर मिलकर धारण न कर सके तब कच्छपरूप से भगवान् ने पीठ पर धारण किया। उसे क्या कच्छप का बच्चा धारण कर सकता है? वह शोभा मन्दर की भाँति महान् है और मैं कच्छप के बच्चे की भाँति तुच्छ जीव हूँ। उसका वर्णन मुझसे सर्वथा अशक्य है। डाबर शब्द का प्रयोग पुत्र के अर्थ में गोस्वामीजी ने कवित्त रामायण में भी किया है। यथा : सोई बाँह गही जो गह्यौ समीर डाबरो।

बिना शील और स्नेह के सेवा में सरसता नहीं आती। मनसा वाचा कर्मणा सेवा लक्ष्मणजी वर्णनातीत स्नेह के साथ कर रहे हैं। जेहि न राम बन लहहि कलेसू। सुत सोइ करेहु इहै उपदेसू का साफल्य दिखाया।

दो. छिनु छिनु लखि सिय राम पद, जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखन चितु, बंधु मातु पितु गेहु ॥१३९॥

अर्थ : क्षण क्षण सीता रामजी के चरणों का दर्शन करके और अपने ऊपर उनका प्रेम देखकर सपने में भी लक्ष्मणजी भाई माँ बाप तथा घर का ध्यान नहीं करते।

व्याख्या : लक्ष्मणजी का प्रेम इतना बढ़ा चढ़ा है कि प्रत्येक क्षण राम जानकी के चरणों के दर्शन का आनन्द लूट रहे हैं तथा उनका प्रेम अपने ऊपर देख रहे हैं। जिस पर अपना प्रेम हो वह भी अपने से प्रेम करे तभी प्रेम का आनन्द पूरा होता है। सो लक्ष्मणजी को पूर्णानन्द प्राप्त है। अतः उसी में मग्न होकर लक्ष्मणजी भाई माँ बाप और घर को याद भी नहीं करते। यहाँ घर शब्द से गेहिनी अभिप्रेत है।

**राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ॥**
**छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी ॥१॥**

अर्थ : पुर परिजन और घर की सुधि भूलकर रामजी के साथ सीताजी सुखी रहती हैं। प्रतिक्षण प्रिय के चन्द्रवदन को देखकर चकोर कुमारी की भाँति प्रसन्न रहती हैं।

व्याख्या : बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा। का साफल्य दिखलाते हैं। स्वभाव से ही स्त्रियों को पुर परिजन और घर पर अधिक ध्यान रहता है। सो सीताजी ऐसी सुखी हैं कि उनको पुर परिजनादि स्मरण भी नहीं आते। नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे तथा : छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी। का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि सीताजी प्रतिक्षण प्रिय : रामजी का मुखचन्द्र देखा करती हैं और चकोर कुमारी की भाँति प्रसन्न रहती हैं। चकोर कुमारी का चन्द्र से नवीन प्रेम है। बूढ़ी चकोरी में उतना प्रेम नहीं रह जाता। इसलिए चकोर कुमारी से उपमित किया।

**नाह नेह नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी ॥**
**सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा ॥२॥**

अर्थ : अपने नाथ के प्रेम को नित्य बढ़ता हुआ देखकर ऐसी हर्षित रहती हैं जैसे दिन में कोकी : चकई प्रसन्न रहती है। सीताजी का रामजी के चरणों में ऐसा अनुराग है कि सहस्र अयोध्या की भाँति वन प्रिय लग रहा है।

व्याख्या : रामजी का अपने ऊपर प्रेम नित्य बढ़ता हुआ देखकर चकई की भाँति सीताजी हर्षित रहने लगीं। रात्रि की प्रसन्नता द्योतित करने के लिए चकोरी से उपमा दी। अब दिन की प्रसन्नता कोकी से उपमा देकर दिखलाते हैं। भाव यह कि रात दिन प्रसन्न हैं। दुःख का लेश नहीं। अब : औध सौध सत सरिस पहारू का साफल्य दिखाते हैं कि जब वन का पहाड़ अवध के सौ महलों के बराबर है तो वन के भी सैकड़ों अवध के तुल्य होने में सन्देह क्या है ?

परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग विहंगा ।।
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिवर। असनु अमिअ सम कंद मूल फर ।।३।।

अर्थ : अत्यन्त प्यारे के साथ पत्ते की कुटी भी प्यारी है। पशु पक्षी प्रिय परिवार हो रहे हैं। मुनि की स्त्रियाँ और मुनि लोग सास ससुर हैं। कन्द मूल फल का भोजन अमृत के समान जान पड़ता है।

व्याख्या : नाथ साथ सुर सदन सम पर्नसाल सुख मूल का साफल्य दिखलाते हैं कि पत्ते की कुटी प्रियतम के सङ्ग में प्रिय हो रही है। अर्थात् जो जो बातें सीताजी ने अयोध्या में कही थीं वे सब सफल हो रही हैं। वहाँ कहा था : खग मृग परिजन। उसका साफल्य यह कहकर दिखलाते हैं कि कुरङ्ग विहङ्ग प्रिय परिवार हो रहे हैं। वहाँ कहा था : बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा। सो सास के कथन के बल पर कहा था। यथा : पितु बन देव मातु बनदेवी। सो वनदेव और वनदेवी तो अदृश्य हैं। प्रत्यक्ष तो मुनियों की स्त्रियाँ और मुनि लोगों का व्यवहार सास ससुर सा है। कन्द मूल फल अमिअ अहारू का साफल्य : असनु अमिअ सम कन्द मूल फर कहकर दिखलाया।

नाथ साथ साँथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई ।।
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू ।।४।।

अर्थ : नाथ के साथ सुन्दर साँथरी : पत्तों की चटाई कामदेव के सैकड़ों बिछौने के समान सुखदायक हो रहा है। जिसके देखने से लोकपाल पद प्राप्त होता है उसे क्या विषयविलास मोहित कर सकता है?

व्याख्या : नाथ साथ साथरी सुहाई। पिय संग मंजु मनोज तुराई का साफल्य दिखा रहे हैं। अयोध्या में जो कुछ सीताजी ने कहा था उससे कुछ भी बढ़ाकर नहीं कहा था। हृदय का केवल शुद्ध भाव व्यक्त किया था। अतः ठीक वैसा ही अनुभव हो रहा है। जो बात गङ्गाजी ने कहा था। यथा : लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे। उसी का उद्धरण करते हुए कवि का कथन है कि उसे क्या विषय विलास मोहित कर सकता है : राम चरन पंकज मन जिनहीं। विषय भोग वस करहि कि तिनहीं।

दो. सुमिरत रामहिं तजहिं जन, तृन सम बिषय बिलासु।
राम प्रिया जग जननि सिय, कछु न आचरजु तासु ।।१४०।।

अर्थ : रामजी को सुमिरते हुए भक्त लोग विषय विलास का तृण के समान परित्याग करते हैं। सीताजी तो रामजी की प्रिया हैं। जगदम्बा हैं। उनके लिए यह कौन सी आश्चर्य की बात है।

व्याख्या : रमा बिलास राम अनुरागी। तजहिं वमन जिमि नर बड़भागी। रामजी के अनुरागी मनुष्य लक्ष्मी के विलास को तो वमन की भाँति त्याग करते हैं।

पर विषय विलास को भी वे तृण के समान त्याग देते हैं। उनकी दृष्टि में विषय विलास उपेक्षा का विषय है और लक्ष्मी के विलास को तो वे सहन नहीं कर सकते। वमन की भाँति त्याग करके सुखी होते हैं। उत्तम पदार्थों का सेवन विषय विलास है और लक्ष्मी विलास यथा : झूमत द्वार मतंग अनेक जंजीर जड़े पद अंबु चुचाते। तीखे तुरंग मनो गति चंचल पौन के गौनहु ते बढ़ि जाते। भीतर चंदमुखी अवलोकत्ति बाहर भूप खड़े न समाते। एते भए तो कहा तुलसी जो पै जानकी नाथ के रंग न राते।

सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं ॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखन सिय अति सुखु मानी ॥१॥

अर्थ : सीताजी और लक्ष्मण को जिस भाँति सुख मिले वही रामजी करते थे और कहते थे। पुरानी कथा और कहानियाँ कहते थे। लक्ष्मण और सीताजी अत्यन्त सुख मानकर सुनते थे।

व्याख्या : सरकार ने अपनी इच्छा को सीता और लक्ष्मण की इच्छा में तन्मय कर दिया। यहाँ तक कि सीताजी और लक्ष्मणजी को जैसे सुख मिले वही काम करते हैं। यद्यपि रघुनाथ हैं। फिर भी अपने को भक्त पराधीन कर रक्खा है।

सीताजी और लक्ष्मणजी प्रभु के मुख की वाणी सुनना चाहते हैं। यथा : सुनी चहैं प्रभु मुख कौ बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी। अतः सरकार पुरानी कथा कहानी कहते हैं। कहानी के द्वारा भी प्राचीन काल में शास्त्रोपदेश की प्रथा थी। पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश से सभी परिचित हैं। बालपन से ही सरकार को वेद पुराण के कहने सुनने का व्यसन भी है। यथा : बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई।

जब जब राम अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं ॥
सुमिरि मातु पितु पुरजन भाई। भरत सनेहु सीलु सेवकाई ॥२॥

अर्थ : जब जब रामजी अवध की याद करते हैं तब तब माता पिता पुरजन भाई और भरतजी के स्नेह और सेवकाई को स्मरण करके आँखों में आँसू भर लाते हैं।

व्याख्या : सीताजी और लक्ष्मणजी अवध की सुधि नहीं करते। क्योंकि जिस प्रेमी के लिए अवध छोड़ा है वह साथ है। रामजी अवध की सुधि करते हैं। क्योंकि उन्होंने किसी के लिए अवध नहीं छोड़ा है। दूसरी बात यह कि अवध सरकार को वैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय है। अतः आँख में आँसू आ जाता है। कहते कुछ नहीं हैं। स्नेहमयी जननी, प्रेमनिधि पिता, शीलनिधि भाई शत्रुघ्न और भरतजी का स्नेह, शील और सेवा का स्मरण करके आँख में आँसू आ जाना स्वाभाविक है।

कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी ॥
लखि सिय लखन बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं ॥३॥

अर्थ : कृपासिन्धु प्रभु दुःखी हो जाते हैं। पर कुसमय जानकर धैर्य धारण करते हैं। इस बात को लखकर सीताजी और लक्ष्मणजी विकल हो जाते हैं। जैसे परछाहीं पुरुष का अनुसरण करती है।

व्याख्या : यद्यपि विस्मय हर्षरहित है। पर भगवान् कृपासिन्धु हैं। भक्त के दुःख से दुःखी हो जाते हैं। जानते हैं कि उनके बिना वे लोग कैसे दुःखी होंगे। कुसमय में शोक का परित्याग करके धैर्य धारण करने का विधान है। इसलिए धैर्य धारण करते हैं। कुछ कहते नहीं। फिर भी प्रतिक्षण सरकार के मुख देखनेवाली सीताजी और लक्ष्मणजी लखकर विकल हो जाते हैं। इन्हें सरकार का दुःख सह्य नहीं है। इन्हें प्रतिबिम्ब की भाँति अपना सुख दुःख कुछ नहीं है। रामजी के दुःख से दुःखी और रामजी के सुख से सुखी होते हैं। जैसे प्रतिविम्ब विम्ब के सुख दुःख से सुखी दुःखी हुआ करता है।

प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपाल भगत उर चन्दनु ॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुखु लहहिं लखनु अरु सीता ॥४॥

अर्थ : रघुनन्दन धीर कृपाल और भक्त के हृदय के लिए चन्दन हैं। प्रिया और भाई की दशा देखकर कुछ पवित्र कथा कहने लगे। सुनकर लक्ष्मणजी और सीताजी ने सुख पाया।

व्याख्या : कृपाल रघुनन्दन हैं। दुःखी नहीं रहने देंगे। धैर्य से अपने को भी सँभाला और अब सीता और लक्ष्मणजी को सँभालने के लिए कुछ पवित्र कथा कहने लगे। भक्त के हृदय को शीतलता पहुँचाने के लिए चन्दन रूप हैं। अतः कथा कहकर शोकापहरण किया। सीता और लक्ष्मणजी ने सुनकर सुख पाया।

दो. रामु लखन सीता सहित, सोहत परन निकेत।
जिमि बासब बस अमरपुर, सची जयंत समेत ॥१४१॥

अर्थ : लक्ष्मण और सीताजी के सहित रामजी पर्णकुटी में ऐसे शोभित हैं जैसे इन्द्र इन्द्रपुर में इन्द्राणी और जयन्त के साथ बसते हैं।

व्याख्या : पर्णकुटी में निवास है। पर तीनों मूर्तियों में परस्पर ऐसा प्रेम है कि पर्णकुटी इन्द्रासन हो गयी और उसमें सरकार इन्द्र की भाँति, शची रूप सीताजी और जयन्त रूप लक्ष्मण के साथ निवास करते हैं। दरबार लगा है। कभी देवता लोग और कभी मुनि लोग हाजिरी बजाते हैं।

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें ॥
सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहिं। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं ॥१॥

अर्थ : प्रभु और सीताजी लक्ष्मणजी की कैसा सँभाल रखते हैं जैसे पलक नेत्र के गोलक का सँभाल रखता है और लक्ष्मणजी सीता और रामजी की कैसी सेवा करते हैं जैसी अविवेकी पुरुष शरीर की सेवा करता है।

व्याख्या : रामजी का सीता और लक्ष्मण के साथ कैसा बर्ताव था और सीता तथा लक्ष्मण का रामजी के साथ कैसा बर्ताव था। इस बात को कहकर अब राम जानकी का लक्ष्मण के साथ कैसा बर्ताव था तथा लक्ष्मणजी का राम जानकी के साथ कैसा बर्ताव था सो कहते हैं।

पलक दोनों नेत्र के गोलक की जिस भाँति रात दिन रक्षा करती है। कोई सदमा यदि गोलक पर आवे तो उसे अपने ऊपर लेती है। उसी भाँति रामजानकी दोनों लक्ष्मणजी की ऐसी रक्षा करते हैं कि कोई सदमा लक्ष्मणजी पर न आने पावे। आता हो तो उसे अपने ऊपर ले लेते हैं और लक्ष्मणजी श्री सीतारामजी की ऐसी सेवा करते हैं जैसे देह को ही आत्मा माननेवाला अविवेकी पुरुष शरीर की सेवा करता है। वह धर्माधर्म कुछ नहीं जानता। जिसमें शरीर को सुख मिले वही करता है। इसी भाँति लक्ष्मणजी सेवाधर्म के आगे किसी धर्म को नहीं गिनते। जिससे श्री सीतारामको सुख हो वही करते हैं। यथा : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी ॥
कहेउँ राम बन गवन सुहावा। सुनहुँ सुमंत्र अवध जिमि आवा ॥२॥

## १७. सचिवागमन प्रसङ्ग

अर्थ : इस विधि से खग मृग सुर और तपस्वी के हितकारी प्रभु वन में सुखी बसते हैं। रामजी का सुन्दर वन गमन तो कहा। अब सुमन्त्र अवध जिस भाँति आये उसे सुनिये।

व्याख्या : प्रभु का वन गमन भी सुन्दर है। अवध के लोगों का दु:खी होना और खग मृग सुर तापस का सुखी होना भी वनगमन की सुन्दरता का पोषक है। प्रभु तो सुख रूप ही ठहरे। वन में भी सुखी हैं। वन में भी सुखी रहने की विधि भी गोस्वामीजी ने यहाँ बतला दिया कि कुटुम्ब के लोगों में यदि परस्पर प्रेम हो और कुटुम्बियों के सुख के आगे अपने सुख को न गिने। परस्पर एक दूसरे के सदमा को अपने ऊपर लेने को तैयार हों तो वन में भी सुखी रह सकते हैं। इसके विपरीत होने से घर भी नरक हो जाता है। यहाँ तक रामचरित है। अब सुमन्त्र के अवध लौटने का प्रसङ्ग आरम्भ होता है।

फिरेउ निषाद प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई ॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ बिषादू ॥३॥

अर्थ : निषाद प्रभु को पहुँचाकर लौटा तो मन्त्री सहित रथ को देखा। मन्त्री निषाद को देखकर विकल हो गये। ऐसा विषाद हुआ जो कहा नहीं जा सकता।

व्याख्या : चैत्र शुक्ल दशमी को वनवास हुआ। एकादशी को शृङ्गवेरपुर

ठहरे। द्वादशी को सुमन्त्र को विदा किया। त्रयोदशी को भरद्वाज के आश्रम में ठहरे। चतुर्दशी को निषादराज लौटे। देखा तो सुमन्त्रजी रथ के साथ अभी वहीं हैं।

मन्त्रीजी निषादराज को देखकर विकल हो गये। रही सही आशा भी टूट गयी। सम्भावना थी कि घोर वन देखकर सीताजी डरेंगी तब रामजी उन्हें लौटा देंगे। वह भी नहीं हुआ। निषादराज भी दुःखी होकर लौटे थे। एक दूसरे को देखकर दोनों रो पड़े। विषाद का वर्णन नहीं हो सकता।

राम राम सिय लखनु पुकारी। परेउ धरनि तल व्याकुल भारी ॥
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं ॥४॥

अर्थ : राम राम लक्ष्मण और सीता ऐसा पुकारते हुए पृथ्वी पर भारी व्याकुल होकर गिरे। दक्षिण की ओर देखकर घोड़े हिनहिना रहे हैं जैसे बिना डैना का पक्षी व्याकुल हो।

व्याख्या : मन्त्री रथ से नीचे गिर पड़े। हाय मारकर रोने लगे। मानो राम लक्ष्मण और सीताजी उतने ही दूर हैं जहाँतक उनकी आवाज पहुँच सकती है। इस भाँति तीनों मूर्तियों को नाम लेकर पुकारा। इधर घोड़े अनाथ होकर दक्षिण की ओर देखकर अलग रो रहे हैं। उनका हिनहिनाना ही रोना है। ऐसे दीन हो रहे हैं जैसे बिना पंख के पक्षी हों।

दो. नहि तृन चरहिं न पियहिं जल, मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भयेउ निषाद सब, रघुबर बाजि निहारि ॥१४२॥

अर्थ : न तृण चरते हैं न जल पीते हैं। आँखों से आँसू बहाते हैं। निषाद लोग रामजी के घोड़ों को देखकर व्याकुल हो गये।

व्याख्या : सरकार से विछोह हुए तीसरा दिन है। तब से घोड़ों ने न घास खाया है न पानी पीया है। उनके आँख से आँसू बह रहा है। जिस ओर रामजी गये हैं उधर देख देखकर हिनहिनाना ऊपर कह आये हैं। घोड़ों की यह दशा देखकर निषादगण व्याकुल हो गये कि रामजी के विरह में जो न हो जाय सो थोड़ा है। जब पशुओं की यह दशा है तो सगे सम्बन्धियों की क्या दशा होगी। एक घोड़े की यह दशा होती तो समझा जाता कि बीमार है।

धरि धीरज तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरउ बिषादू ॥
तुम पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता ॥१॥

अर्थ : धैर्य धारण करके निषादराज कहने लगा कि सुमन्त्रजी! अब विषाद को छोड़ो। तुम पण्डित हो। परमार्थ के जाननेवाले हो। विधाता को प्रतिकूल जानकर धैर्य धारण करो।

व्याख्या : विषाद में धैर्य छूट जाता है। सो सुमन्त्रजी तो धैर्य नहीं धारण कर सके। पर निषाद ने धैर्य धारण करके कहा कि मन्त्रीजी! जो होना था सो

हो चुका। विषाद छोड़ने से ही छूटता है। अशोच्य को सोचना पण्डित का काम नहीं। सत्रु मित्र सुख सुःख जग माँही। मोह मूल परमारथ नाहीं। आप परमार्थ के जाननेवाले हैं। आपको दुःखी नहीं होना चाहिए। जब ब्रह्मा प्रतिकूल हो जाते हैं तब कोई उपाय काम नहीं करता। धैर्य की परीक्षा का यही समय है। अतः आप धैर्य धारण कीजिये।

बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी॥
सोक सिथिल रथु सकै न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी॥२॥

अर्थ : कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथाएँ कहकर जबरदस्ती लाकर सुमन्त्र को रथ पर बिठाया। वह शोक से ऐसे शिथिल थे कि रथ हाँक नहीं सकते थे। उनके हृदय में रामजी के विरह की तीखी पीड़ा थी।

व्याख्या : सुमन्त्र किसी तरह बिना रामजी के अयोध्या लौटना नहीं चाहते। निषादराज ने कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथाएँ कहीं। जिनसे धैर्य बँध सके और जबरदस्ती रथ पर ला बिठाया। रामजी के विरह की पीड़ा ऐसी तीव्र थी कि समझाने बुझाने का कोई फल नहीं हुआ। हार्दिक व्यथा से अङ्ग शिथिल थे। रथ हाँकने की शक्ति नहीं।

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे॥
अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। राम बियोग बिकल दुख तीछे॥३॥

अर्थ : घोड़े तड़फड़ाते थे। रास्ता नहीं चलते थे मानो जङ्गली जानवरों को लाकर रथ में जोड़ दिया है। ठोकर खाते हैं। घूम घूमकर पीछे देखते हैं। रामजी के तीखे दुःख से विकल हैं।

व्याख्या : सारथि की यह दशा है कि रख हाँक नहीं सकता। घोड़ों की यह दशा है कि वे आगे बढ़ना नहीं चाहते। रामजी के वियोग की पीड़ा उन्हें भी ऐसी कड़ी है कि वे रथ में जुते हुए तड़फड़ा रहे हैं। अन्य पशुओं की भाँति अशिक्षित से मालूम हो रहे हैं। बार बार ठोकर खाते हैं। आगे बढ़ाइये तो घूमकर पीछे देखते हैं।

जो कहु रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती॥४॥

अर्थ : जो कोई राम लक्ष्मण और सीताजी का नाम ले लेता है हिनहिनाकर उसकी ओर प्यार की दृष्टि से देखते हैं। घोड़ों की दशा कैसे कही जाय। वे मणि विहीन सर्प की भाँति विकल हैं।

व्याख्या : सरकार सबकी आत्मा हैं। आत्मा किसे प्यारी नहीं है। घोड़ों की विकलता तो सारथि से कम नहीं। वे कुछ कह नहीं सकते। पर समझते सब

कुछ हैं। अतः व्याकुल हैं। मणि विहीन सर्पों की सी उनकी दशा हो रही है। माँ कौसल्या ने कहा है :

राघव एकबार फिरि आवो।
ये वरवाजि विलोकि आपने बहुरो बनहि सिधावो।
जे पय प्याइ पोखि करपंकज बार बार चुचुकारे।
क्यों जीवै मेरे राम लाड़िले ते अब निपट बिसारे।
भरत सौगुनीसार करत हैं अतिप्रिय जानि तुम्हारे।
तदपि दिनहि दिन होत झाँवरे मनहु कमल हिम मारे।
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं वन कहियो मातु संदेसो।
तुलसी मोहि और सबहिन ते इनको अधिक अंदेसो।

दो. भयउ निषादु बिषादुबस, देखत सचिव तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिये सारथी संग ॥१४३॥

अर्थ : मन्त्री और घोड़ों को देखकर निषाद विषादवश हो गया। चार सुसेवकों को बुलाकर सारथि के साथ कर दिया।

व्याख्या : निषादराज धैर्य धारण किये था। पर मन्त्री और घोड़ों की दशा देखकर उसका धैर्य जाता रहा। चारों घोड़ों के सँभालने के लिए चार सेवक साथ कर दिये। जो घोड़ों को भी सँभाले तथा सारथि पर भी ध्यान रक्खें। इसीलिए सुसेवक कहा। अथवा देख चुका है कि मुनिजी : भरद्वाजजी ने पहुँचाने के लिए चार बटु साथ कर दिये थे। यथा : मुनि बटु चार संग तब दीन्हें। इसलिए इसने भी चार सुसेवक साथ दिये। रास्ता चलने में चार का साथ चाहिए।

गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरह बिषादु बरनि नहिं जाई॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा ॥१॥

अर्थ : गुह : निषादराज सारथि को पहुँचाकर लौट आये। विरह से जो विषाद उन्हें है उसका वर्णन नहीं हो सकता। निषाद लोग रथ लेकर अयोध्या चले। वे भी क्षण क्षण विषाद में मग्न होते जाते हैं।

व्याख्या : कुछ दूर तक निषादराज पहुँचाने गये। अपनी आँखों देख लिया कि सुसेवक घोड़ों को सँभाले लिये जाते हैं। तब लौटे। जब मन्त्री का सामना हुआ तब भी कहा : कहि न जाइ जस भयउ बिषादू। अब घर लौटने पर कहते हैं : बिरह बिषाद बरनि नहिं जाई। बाल बच्चे सब रो रहे हैं।

अब मन्त्री की अवध यात्रा कहते हैं। घोड़े एकदम बेकार हैं। निषाद लोग रथ लिये चले जा रहे हैं। पर वे भी क्षण क्षण विषाद में मग्न हो जाते हैं। बार बार अपने को सँभालते हैं। पर सरकार का विरह ही ऐसा है कि उसे हटा नहीं सकते। बार बार मग्न हो जाते हैं।

सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना । धिग जीवन रघुबीर बिहीना ॥
रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरू । जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू ॥२॥

अर्थ : सुमन्त्रजी व्याकुल और दुःख से दीन होकर सोचते थे कि रघुवीर के बिना जीवन को धिक्कार है । अन्त में यह अधम शरीर रहने का नहीं । फिर रघुवीर के बिछुरते समय इसने यश क्यों न लिया ।

व्याख्या : विकल पुरुष कैसा सोचता है सो कवि दिखलाते हैं । रघुबर बिरह पीर उर बाँकी है । उसे न सहकर मन्त्री दीन हो गया है । ऐसी पीड़ा के सहित जीवन को धिक्कारता है । रघुवीर विहीन होने की पीड़ा है । रामजी ने पिता सम माना । यथा : आदर कीन्ह पिता सम लेखा । सो मन्त्री ने भी पुत्र सम माना । जौ पै प्रिय बियोग बिधि कीन्हा । तौ कस मरन न माँगे दीन्हा । छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित यह अधम सरीरा । सो भी अन्त में जाने ही वाला है । अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः । चाहे आज मरें चाहे सौ वर्ष बाद मरें । मरना तो ध्रुव ही है । इस समय मोका था । बड़ा यश मिलता । यथा : जिअन मरन फल दसरथ पावा । अंड कटाह अमित जस छावा । जिअत राम बिधु बदन निहारा । राम बिरह करि मरन सँवारा । सो यही मौका शरीर छोड़ने का था । सो नहीं छूटा ।

भए अजस अघ भाजन प्राना । कवन हेतु नहिं करत पयाना ॥
अहह मंद मनु अवसर चूका । अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥३॥

अर्थ : मेरे प्राण अपयश और पाप के पात्र हो गये । किस कारण से ये नहीं निकलते । अहो ! यह मन्दमन मौका चूक गया । अब भी हृदय दो टुकड़ा नहीं हो जाता ।

व्याख्या : परम पावन प्राण आज अयश तथा अघ के भाजन हुए । जगत् में दुर्यश हुआ कि मन्त्री होकर कुँअर को वन पहुँचा आया । यह मन्त्री होने योग्य न था । बिना पाप के पीड़ा होती नहीं और तीखी पीड़ा हृदय में हो रही है । अतः अघभाजन भी हुए । प्राण प्रयाण के दोनों हेतु यहाँ उपस्थित हैं । अत्यन्त पीड़ा और दुर्यश । फिर भी प्राण नहीं निकल रहा है । मन्त्री मन को धिक्कारता है कि यह अवसर चूक गया । रामजी के वियोग होते ही हृदय को फट जाना चाहता था । सो अब भी नहीं फटता ।

मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई । मनहुँ कृपन धन रासि गवाँई ॥
बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई । चलेउ समर जनु सुभट पराइ ॥४॥

अर्थ : हाथ मलकर सिर पीटकर पछता रहा है । मानो कृपण ने धन की राशि गवाँ दी । वीरता का बाना बाँधकर और श्रेष्ठ वीर कहलाकर रणाङ्गन से जैसे सुभट भाग चला हो ।

व्याख्या : धनराशि के गँवा देने पर हाथ मलना सिर पीटना ये सब लक्षण कृपणों में प्रकट होते हैं। उनके पश्चात्ताप की कोई सीमा नहीं रहती। सुमन्त्र ने राम लक्ष्मण और जानकी तीनों धनराशि खोया। अब लोभी कृपण की भाँति पछता रहे हैं कि मैं रामजी के वन पहुँचाने का साधन बन गया। मेरे करतव से रामजी वन गये। मैंने ही पता न लगे इस भाँति रथ पर चढ़ाकर वन पहुँचा दिया। यथा : सचिव चलायेउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ।

सुमन्त्रजी इस हौसले से चले थे कि मैं लौटा लाऊँगा। लोग भी कहते थे कि मन्त्री है। महाराज का सखा है। निष्फल नहीं लौट सकता। कम से कम सीताजी को लौटा ही लावेगा। पर सरकार के सामने कोई युक्ति चली नहीं। लौटाने के लिए थे सो पहुँचाकर लौट रहे हैं। वीर लब्धप्रतिष्ठ जिस भाँति संग्राम से भागकर मुख दिखाना नहीं चाहता। उसी भाँति सुमन्त्रजी भी मुँह दिखाना नहीं चाहते। यश प्यारा नहीं हुआ। प्राण प्यारा हुआ।

दो. बिप्र बिबेकी बेदबिद, संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखें मद पान कर, सचिव सोंच तेहि भाँति ॥१४४॥

अर्थ : जैसे विवेकी वेद का जाननेवाला, साधु सम्मत, कुलीन ब्राह्मण धोखे से मद्य पी ले। उसी भाँति मन्त्री को सोच हुआ।

व्याख्या : विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण यदि धोखे से मद्य पी ले तो उसका ब्राह्मणत्व ही चला जाता है। ब्राह्मण के लिए मद्य पीने पर जितने प्रायश्चित्त हैं सब मरणान्त हैं। अतः उसके शोक का ठिकाना नहीं। यही हाल सुमन्त्र का हुआ। यह धोखा खा गये। समझा था कि मैं अवश्य कम से कम सीताजी को लौटा लाऊँगा। पर नहीं लौटा सके। परम्परया महाराज के मृत्यु के कारण हो गये। यदि धोखा न होता तो उसी रथ पर महाराज को बिठला ले जाते।

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम बन बानी॥
रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू ॥१॥

अर्थ : जिस भाँति किसी कुलीन, साध्वी, सयानी, मनसा वाचा कर्मणा पतिव्रता स्त्री को कर्मवश पति को छोड़कर रहना पड़े। वैसा ही दारुण दाह मन्त्री के हृदय में था।

व्याख्या : कुलीन से जाति कहा। साधु से स्वभाव कहा। पतिदेवता कर्म मन वाणी से धर्म निष्ठा कहा। सभी साधन सौभाग्य के हैं। परन्तु कर्मवश विधि के प्रतिकूल होने से उसे पति का वियोग हो गया। ऐसी स्त्री को दारुण दाह होता है। यथा : बन दुःख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे। प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना।

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी॥
सूखहिं अधर लागि मुह लाटी। जिव न जाइ उर अवधि कपाटी ॥२॥

अर्थ : नेत्रों में जल आ जाने से दृष्टि थोड़ी हो गयी। कानों से सुनायी नहीं पड़ता था। विकलता के कारण वुद्धि भोरी हो गयी। होठ सूख गये। तालू सूख गया। परन्तु अवधिरूपी किवाड़ के कारण प्राण नहीं निकल सकते थे।

व्याख्या : ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। बुद्धि भोरी हो गयी। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। मुख में शोष हो रहा है। मरण की दशा उत्पन्न हो गयी। फिर भी मौत नहीं आती। आशा लगी हुई है कि चौदह वर्ष बाद सरकार फिर लौटेंगे। मानों अवधिरूपी किवाड़ लगे हुए हैं। प्राण को निकलने नहीं देते।

बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पंथ सोच जिमि पापी ॥३॥

अर्थ : शरीर का रङ्ग ऐसा विकृत हो गया कि देखते नहीं बनता। मानो मातृ-हत्या पितृहत्या लगी हुई है। बड़ी हानि और ग्लानि मन में व्याप रही है। जैसे पापी यमपुर पंथ में सोच करता हो।

व्याख्या : शोक का वेग बढ़ता ही जा रहा है। पहिले कृपण वैश्य का पछतावा कहा। उससे अधिक दुःख वीर क्षत्रिय का दुःख कहा। उससे भी अधिक विवेकी ब्राह्मण का सोच कहा। तीनों से तीव्र दाह पतिव्रता का कहा। इस भाँति उदाहरण देकर मन्त्री के शोक की बढ़ोत्तरी दिखायी। परन्तु ये सब उदाहरण दैव वश दुःख प्राप्ति के थे। अब शोक का वेग और बढ़ा तो सोचने लगा कि मैं महाराज के मृत्यु का कारण हो रहा हूँ। अतः उनके चेहरे का रङ्ग बिगड़ गया। अब जितना अवध निकट आ रहा है उतनी ही विकलता बढ़ती जा रही है। जो हानि होनेवाली है उसका ध्यान बंधा और उससे मन में ग्लानि उत्पन्न हुई। अयोध्या यमपुर मालूम होने लगा। जैसे पापी यमपुर के रास्ते में महा दुःख पाता हुआ सोचता है कि जब रास्ते में यह दशा हो रही है तो यमपुर पहुँचने पर क्या दशा होगी। इसी भाँति मन्त्री भी, अयोध्या पहुँचने पर जिस दुःख का सामना करना पड़ेगा उसे सोच रहा है।

यहाँ सुमन्त्रजी सोच रहे हैं कि अवध जाने पर उन्हें सात प्रकार की परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा और इस भाँति सात प्रकार की तीव्रतम मानसिक व्यथाओं को झेलना पड़ेगा। उन्हें स्मरण करके सुमन्त्रजी का हृदय ऐसा कातर हो रहा है मानों उन्हें उन व्यथाओं का इसी समय अनुभव करना पड़ रहा हो।

| परिस्थिति | व्यथा |
|---|---|
| १. बचन न आव हृदय पछिताई। | १. अहह मंद मन अवसर चूका। |
| अवध काह मैं देखब जाई। | अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका। |
| २. राम रहित रथु देखिहि जोई। | २. मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई। |
| सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई। | मनहु कृपन धन रासि गँवाई। |

| परिस्थिति | व्यथा |
| --- | --- |
| ३. धाइ पूछिहहिं मोहि जब विकल नगर नर नारि। उतरु देव मैं सबहिं तब हृदय बज्रु बैठारि। | ३. बिरुद बाँधि बर बीर कहाई। चलेउ समर जिमि सुभट बराई। |
| ४. पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता। | ४. बिप्र बिबेकी बेदबिद संमत साधु सुजाति। जिमि धोखे मद पान कर सचिव सोच तेहि भाँति। |
| ५. पुछिहहिं जबहिं लखन महतारी। कहिहौं कवन सँदेस सुखारी। | ५. जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पति देवता करम मन बानी। रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू। |
| ६. राम जननि जब आइहि धाइ। सुमिरि बच्छ जनु धेनु लवाई। पूँछत उतरु देव मैं तेही। गे बन रामु लखनु बैदेही। | ६. लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन विकल मति भोरी। सूखहि अधर लागि मुँह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी। बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी। |
| ७. पूछिहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना। देहौं उतरु कवनु मुँह लाई। आयेउ कुसल कुअँर पहुँचाई। सुनत लखन सिय राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू। | ७. हानि गलानि विपुल मन व्यापी। जमपुर पंथ सोच जनु पापी। |

बचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥
राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥४॥

अर्थ : उसके मुख से बात नहीं निकलती। मन में पछतावा हो रहा है कि अयोध्या जाकर मैं क्या देखूँगा। राम से रहित जो रथ देखेगा वह मुझे देखने में सङ्कोच करेगा।

व्याख्या : बिबरन भयउ से तन की दशा कहा। गलानि बिपुल मन ब्यापी से मन की दशा कहा। अब : बचन न आव से वचन की दशा कहते हैं। मन में पछता रहे हैं कि अभी अवध में जाकर न जाने क्या देखना है। यहाँ सीता राम लक्ष्मण वन गमन देखा। अवध में मरण देखना शेष है।

गर्हित कर्म करनेवाले को चाहे मुँह दिखाने में सङ्कोच न हो पर शिष्ट पुरुष को उसका सामना करने में सङ्कोच होता है। मन्त्रीजी सोच रहे हैं कि उसी

भाँति अयोध्या में लोग मुझे देखने में सङ्कोच करेंगे कि यह रामजी को वन पहुँचाकर जीता लौट रहा हूँ।

दो. धाइ पूछिहहिं मोहि जब, बिकल नगर नर नारि।
उतरु देब मैं सबहिं तब, हृदय बज्रु बैठारि ॥१४५॥

अर्थ : जब नगर के नर नारी व्याकुलता से दौड़कर मुझसे पूछेंगे तब कलेजे पर वज्र रखकर मुझे जवाब देना होगा।

व्याख्या : नगर के नर नारी विकल हैं। मेरे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरा आना सुनकर सब दौड़े हुए मेरे पास आवेंगे। तब उनको उत्तर देने के लिए मुझे वज्र सा कलेजा करना पड़ेगा। सुमन्त्रजी राष्ट्र के महामन्त्री हैं। अवध में बड़ी प्रतिष्ठा है। सबको भरोसा है कि रामजी वन गये। फिर भी महामन्त्री साथ हैं। बिना कुछ किये न लौटेगा। अतः मैं कुछ न कर सका। रामजी वन चले ही गये यह कहने में उसे मृत्युतुल्य कष्ट है।

पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहिं बिधाता ॥
पुछिहहिं जबहिं लखन महतारी। कहिहौं कवन सँदेस सुखारी ॥१॥

अर्थ : जब दीन दुःखी माताएँ पूछेंगी हे विधाता! तब मैं उनसे क्या कहूँगा। जब लक्ष्मण की माँ पूछेंगी तब मैं सुखी होकर कौन सा सन्देश कहूँगा।

व्याख्या : यम पुर पंथ सोच जनु पापी : पहिले कह आये हैं। उसी को स्पष्ट करके दिखला रहे हैं कि पुरजन को उत्तर देने में महाकष्ट। फिर माताओं के उत्तर देने में जो स्वयं दुःखी दीन हो रही हैं और भी अधिक कष्ट होगा। फिर लक्ष्मण की माँ पूछेंगी जिनके बेटे को मैं वन पहुँचाकर आ रहा हूँ। उनको उत्तर देने में कितने बड़े कष्ट का सामना है। यहाँ दुःखी होकर सुमन्त्रजी अपने को सुखारी कह रहे हैं।

राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई ॥
पूँछत उतरु देब मैं तेही। गे बनु राम लखनु बैदेही ॥२॥

अर्थ : जैसे नयी व्याई हुई गाय बछड़े का याद करके दौड़ती है। उसी भाँति जब दौड़ी हुई रामजी की माँ आवेंगी तब मैं उन्हें उत्तर दूँगा कि राम लक्ष्मण जानकी वन चले गये।

व्याख्या : नयी व्याई हुई गाय को बछड़े का प्यार होता है। उसके स्मरण से उसके थन से दूध टपक पड़ता है। इस भाँति कौसल्याजी को रामजी पर बड़ी प्रीति है। मेरे आने का समाचार सुनकर वे स्वयं दौड़ी हुई आकर समाचार पूछेंगी। उनसे यह उत्तर देना कि राम लक्ष्मण जानकी वन चले गये कष्ट की पराकाष्ठा है।

जोइ पूछिहिं तेहि ऊतरु देबा। आइ अवध अब यहु सुखु लेबा ॥
पूँछिहिं जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना ॥३॥

अर्थ : जो पूछेगा उसे जवाब देना। यही सुख मुझे अब अवध में जाकर लेना है। जब दुःख से दीन महाराज पूछेंगे जिनका जीवन ही रामजी के आधीन है।

व्याख्या : अब पूछने के प्रसङ्ग का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि अयोध्या जाकर मुझे जिस बड़े भारी दुःख का सामना करना है वह यही है कि जो पूछेगा उसे उत्तर देना पड़ेगा। यदि सरकार को मैं लौटाने में समर्थ होता तो किसी को मुझसे पूछने की आवश्यकता ही क्या थी ? महा दुःखद सन्देश सबसे कहना मेरे लिए यही कार्य अयोध्या में है। यहाँ सुख से दुःख ध्वनित है। जैसे : कहिहौं कवन सँदेश सुखारी।

यद्यपि महाराज हैं। पर इस समय दुःख से दीन हो रहे हैं। क्योंकि उनका जीवन ही राम दर्शन के आधीन है। यथा : समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना। जीवन राम दरस आधीना।

देहौं उतरु कौन मुहु लाई। आएउँ कुसल कुँअर पहुँचाई ॥
सुनत लखन सिय राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू ॥४॥

अर्थ : कौन मुँह लगाकर जवाब दूँगा कि कुँअर को पहुँचाकर मैं कुशल से लौट आया। लक्ष्मण सीता और रामजी का सन्देश सुनकर राजा तृण के समान शरीर छोड़ देंगे।

व्याख्या : सुमन्त्रजी विचार करते हैं कि मैं मन्त्री होकर उनसे कौन मुँह लेकर उत्तर दूँगा। उन्होंने कह दिया था : नाहि त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भयेउ बिधि बामा। ऐसे अवसर पर रामजी के न लौटने पर मुझे जीते जी लौटना किसी तरह से शोभा नहीं देता और लक्ष्मण सीता और रामजी का सन्देश सुनने की देर है। राजा के शरीर छोड़ने में देर न लगेगी। वे तृण के समान शरीर छोड़ देंगे।

दो. हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि, बिछुरत प्रीतमु नीरु।
जानत हों मोहि दीन्ह बिधि, यहु जातना सरीरु ॥१४६॥

अर्थ : प्रियतम जल के बिछुड़ते ही हृदय कीचड़ की भाँति फट नहीं गया। मालूम होता है कि ब्रह्मदेव ने मुझे यह यातना शरीर दे दिया है।

व्याख्या : कीचड़ का प्रियतम जल है। क्योंकि वही उसके अस्तित्व का कारण है। उससे विछोह होते ही कीचड़ सूखकर फट जाता है। उसी भाँति प्रियतम रामजी के बिछुड़ते ही मेरे हृदय को फट जाना चाहता था परन्तु नहीं फटा। इससे अनुमान होता है कि ब्रह्मदेव ने मुझे यातना शरीर दे रक्खा है। यातना शरीर नारकी लोगों को मिलता है। जो पीड़ा का तो ठीक ठीक अनुभव करता है

पर फटने छेदने पीटने आदि दण्ड पाने से छूटता नहीं। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका से उपक्रम करके : हृदय न बिदरेउ से उपसंहार करते हैं।

एहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथु आवा ॥
बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पाय परि बिकल बिषादा ॥१॥

अर्थ : इस विधि से रास्ते में पछतावा करते करते रथ तुरन्त तमसा के तटपर पहुँच गया। विनय करके निषादों को विदा किया। वे भी चरणों पर गिरकर विषाद से विकल लौट गये।

व्याख्या : पछतावा तो बहुत हुआ। कहाँ तक लिखें। बचन न आव हृदय पछिताई से लेकर यहाँ तक पछताने की विधि दिखाने के लिए प्रादेश मात्र कथन किया। सुमन्त्रजी अयोध्या पहुँचने के भय से इतने डरे हुए हैं कि वहाँ पहुँचने में जितनी देर हो उतना ही अच्छा समझते हैं। सई और गोमती नदी पार किया तब तमसा तीर पहुँचे। पर उन्हें मालूम हो रहा है कि तुरन्त पहुँच गये।

तमसा नदी अयोध्या नगर से बहुत निकट है। नगर की सीमा उसके बाद पड़ती है। यथा : गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ। सुमन्त्रजी ने वहीं रथ रोका और निषादों को लौटाने लगे। वे सुसेवक थे। राजभवन तक बिना पहुँचाये लौटना नहीं चाहते थे। पर सुमन्त्र ने विनय करके उन्हें लौटा दिया। वे भी नमस्कार करके विषाद से विकल होकर ही लौटे।

पैठत नगर सचिव सकुचाई। जिमि मारेसि गुरु बाँभन गाई ॥
बैठि बिटप तर दिवस गँवावा। साँझ समय तब अवसरु पावा ॥२॥

अर्थ : नगर में प्रवेश करते हुए मन्त्री को ऐसा सङ्कोच होता था मानों उन्होंने गुरु ब्राह्मण और गाय की हत्या की है। पेड़ के तले बैठकर दिन बिताया जब सन्ध्या हुई तब मौका मिला।

व्याख्या : गुरुहत्या ब्रह्महत्या और गोहत्या ऐसे निन्दित कर्म हैं कि इनमें से एक का भी करनेवाला समाज से बहिष्कृत हो जाता है। उससे कोई सम्पर्क रखना नहीं चाहता। उसे समाज में मुख दिखाते नहीं बनता और जिसने तीनों किया हो उसके लिए कहना ही क्या है। मन्त्रीजी राम लक्ष्मण और जानकीजी को वन क्या पहुँचा आये मानों इन्हें तीनों हत्याएँ लग गयीं। अतः इन्हें नगर प्रवेश करने में परम सङ्कोच है। तमसा तीर निकट होने पर भी नगर से इतनी दूर है कि नागरिकों का जाना वहाँ तक कम होता है। अतः पेड़ के तले बैठकर दिन का शेष भाग व्यतीत किया जब सन्ध्या हुई तब प्रवेश का अवसर मिला।

अवध प्रबेसु कीन्ह अँधियारे। पैठ भवन रथु राखि दुआरे ॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए। भूप द्वार रथु देखन आए ॥३॥

अर्थ : अँधेरे में नगर में प्रवेश किया। रथ को दरवाजे पर छोड़कर राजभवन

में घुस गये। जिन जिन लोगों ने समाचार सुना वे राजद्वार पर रथ देखने आये।

व्याख्या : यहाँ नगर का क्या हाल है कि तमाम अँधेरा पड़ा है। नगर में दीया नहीं जल रहा है। संन्ध्या समय सुमन्त्रजी तमसा तीर से चले। अँधेरा होते होते नगर में प्रविष्ट हो गये। रथ को द्वार पर छोड़कर तुरन्त राजभवन में घुस गये। जिसमें किसी से सामना न हो। फिर भी कुछ लोगों को समाचार लग गया कि सुमन्त्रजी लौट आये। रथ द्वार पर खड़ा है। सो लोग बात को पक्की करने के लिए रथ देखने आये। इतनी अधिक उत्सुकता लोगों को है।

रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे ॥
नगर नारि नर ब्याकुल कैसें। निघटत नीर मीनगन जैसें ॥४॥

अर्थ : रथ को पहिचान करके और घोड़ों को विकल देख करके उनके शरीर की दशा धूप में गलते हुए ओले की सी हो गयी। नगर के नर नारी ऐसे व्याकुल हुए जैसे पानी के घटने से मछलियाँ व्याकुल होती हैं।

व्याख्या : रथ को पहिचाना कि वही रथ है जिस पर सरकार सवार होकर गये थे। घोड़ों को देखा कि विकल हैं। समझ गये कि सरकार नहीं लौटे तो पसीना छूटने लगा। जैसे धूप में ओले की दशा हो रही है। नगर के लोग ऐसे व्याकुल हुए जैसे जल के घटने के समय मछलियाँ व्याकुल होती हैं। यथा : अवध अबु प्रिय परिजन मीना।

दो. सचिव आगमनु सुनत सबु, बिकल भयउ रनिवासु।
भवनु भयंकरु लाग तेहिं, मानहुँ प्रेत निवासु ॥१४७॥

अर्थ : मन्त्री का आगमन सुनकर सारा रनिवास विकल हो गया। उसे घर ऐसा भयंकर लगा मानो वह प्रेत का निवास है।

व्याख्या : मन्त्री आगये यह सुनकर रनिवास विकल हो उठा। क्योंकि इस समाचार का तो अर्थ ही यही है कि रामजी नहीं आये। रामजी आये होते तो समाचार मिलता कि रामजी आये। इधर सुमन्त्रजी को राजमहल ऐसा भयंकर प्रतीत हुआ कि मानो यहाँ प्रेत का निवास है। यहाँ मनुष्य नहीं रहते। जिस घर में प्रेत का निवास होता है वह स्थान देखने से भयंकर दिखायी पड़ता है। भले ही उसमें मनुष्य भी रहते हों। अथवा प्रेतनिवास का अर्थ यमपुर किया जा सकता है : क्योंकि यमराज परेतराट् कहलाते हैं। उनका निवास प्रेतनिवास है। पहिले कह आये हैं : जमपुर पंथ सोच जिमि पापी। सो मानो पापी यमपुर पहुँच गया। अब उसकी भयंकरता देखता है। यथा : यमद्वारे महाघोरे घोरा वैतरणी नदी।

अति आरति सब पूँछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भई बानी ॥
सुन इन श्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा ॥१॥

अर्थ : अत्यन्त आर्त होकर सब रानियाँ पूछ रही हैं। उत्तर नहीं दे सकते। वाणी विकल हो गयी। न तो आँख से सूझता है न कान से सुनायी पड़ता है। जिस तिस से पूछ रहे हैं कि राजा कहाँ हैं ?

व्याख्या : मन्त्रीजो किसी तरकीब से नर नारियों के पूछने से तो बचे। पर रनिवास में हैं और रानियाँ अत्यन्त आर्त हैं। अतः सबकी सब पूछ रही हैं। पहिले यही उनके समझ में नहीं आता था कि उनको क्या उत्तर देंगे। यथा : पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिनहि बिधाता। सो वही हुआ वाणी विकल हो गयी। कुछ कहते नहीं बनता। विकलता और बढ़ी। ज्ञानेन्द्रियाँ ठीक काम नहीं कर रही हैं। न तो आँख से सूझ पड़ता है कि कौन मुझसे पूछ रहा है न कान से सुनायी पड़ता है कि क्या पूछ रहा है। यही सबसे पूछ रहे हैं कि महाराज कहाँ हैं ? एक धुन सवार है कि महाराज ने भेजा था। उन्हीं से सब कहना है।

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृह गईं लेवाई ॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। असिअ रहित जनु चंदु बिराजा ॥२॥

अर्थ : दासियों ने मन्त्री की विकलता देखी तो कौसल्याजी के महल में लिवा ले गयीं। जाकर सुमन्त्र ने राजा को देखा। जैसे अमृत विहीन चन्द्रमा विराजमान हों।

व्याख्या : रानियों ने भी मन्त्री की विकलता देखी कि वे तो सुन ही नहीं रहे हैं उत्तर किसे दें। दासियों ने मन्त्री की विकलता देखी कि यहाँ मुख से कहने से काम न चलेगा। इन्हें महाराज तक पहुँचाना होगा। तब उन्हें कौसल्याजी के महल में लिवा ले गयीं। सुमन्त्रजी को महाराज ने कैकेयी के महल से भेजा था और वहीं मूर्च्छित हो गये थे। मूर्च्छा से जागने पर कौसल्याजी के महल में चले गये। कैकेयी का परित्याग किया। वहाँ जाने पर मन्त्री ने महाराज को देखा। स्वरूप में बड़ा भारी अन्तर पाया। एक बारगी हतप्रभ हो गये हैं जैसे अमृतहीन चन्द्रमा पर राम विरह में हतप्रभ होने की ही शोभा है। अतः विराजमान होना कहते हैं।

आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना ॥
लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर ते जनु खसेउ जजाती ॥३॥

अर्थ : न तो आसन है। न शय्या है। न गहने हैं। अत्यन्त मलिन होकर पृथ्वी तल पर पड़े हैं। लम्बी लम्बी श्वास ले रहे हैं और इस भाँति सोच रहे हैं जैसे स्वर्ग से ययाति राजा गिरे हों।

व्याख्या : राजा रत्नभुक् होता है। संसार में जितनी उत्तम वस्तु हैं उसका पात्र राजा है। उसे अपने गौरव की रक्षा के लिए सर्वोत्तम आसन, सर्वोत्तम शय्या, सर्वोत्तम वस्त्राभूषण रखना पड़ता है। पर दुःखी को सुख की सामग्री और भी दाहक होती है। अतः महाराज आसन शयन विभूषण हीन होकर भूमि पर पड़े हुए हैं। उनकी उपमा ययाति राजा से दी जा सकती है। जो इन्द्र से ठगे गये। अपने मुख से अपने

पुण्य का बखान करके क्षीणपुण्य होने से स्वर्ग से गिरा दिये गये। इस अंश में तो यह उपमा ठीक है कि दूसरे से ठगे गये निरपराध राजा स्वर्ग से गिराये गये। पर वे पृथ्वी पर नहीं आने पाये। उनके नातियों ने अपनी अपनी तपस्या का कुछ भाग देकर उन्हें फिर स्वर्ग भेज दिया। इतने अंश में उपमा मेल नहीं खाती। अतः सम्पाती की उपमा देते हैं।

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती॥
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही॥४॥

अर्थ : क्षण क्षण में सोच से छाती भर लेते हैं। जैसे दग्धपक्ष सम्पाती गिरा हुआ है। राम राम प्यारे राम कहते हैं। फिर राम लक्ष्मण विदेहपुत्री ऐसा कहते हैं।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। अतः दग्धपक्ष सम्पाती से उपमा दी गयी। यथा : जरेउ पंख अति तेज अपारा। परेउ धरनि करि घोरचिकारा। बिना पङ्ख का विहँग दीन हो जाता है। उसके सोच का पारावार नहीं रहता। वही गति महाराज की हो रही है। प्रेमपात्र राम का स्मरण करते हैं। फिर राम लक्ष्मण वैदेही का स्मरण करते हैं। कोई दूसरी भावना ही मन में नहीं है।

दो. देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ व्याकुल नृपति, कहु सुमन्त्र कहँ रामु॥१४८॥

अर्थ : देखकर मन्त्री ने जयजीव कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। सुनते ही व्याकुल होकर राजा उठ बैठे और कहा कि सुमन्त्र कहो राम कहाँ हैं?

व्याख्या : राजा को ऐसी दशा में देखकर मन्त्री ने जयजीव कहकर दण्डवत् की। महाराज का सामना होते ही मन्त्री सावधान हो गये। सुनने भी लगे और देखने भी लगे। जिसका हृदय में अधिक गौरव होता है उसका सामना होते ही एक बार पागल को भी सावधान होते देखा गया है। जयजीव : का शब्द सुनते ही महाराज ने जान लिया कि सुमन्त्र आगये। उत्सुकता से उठ बैठे और पूछा कि राम कहाँ हैं?

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाइ। बूड़त कछु अधार जनु पाई॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूछत राउ नयन भरि बारी॥१॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने सुमन्त्र को हृदय से लगा लिया। डूबते हुए को जैसे कुछ सहारा मिल जाय। प्रेम के सहित निकट बैठाकर आँखों में आँसू भरे हुए राजा ने पूछा।

व्याख्या : राजा का परम बल मन्त्री होता है। तिस पर सुमन्त्रजी सखा भी हैं। अति सङ्कट के समय ऐसे व्यक्ति के मिलने से कुछ आधार सा मिल जाता है। डूबते हुए को तिनका का सहारा भी सहारा मालूम होता है। राजा ने मन्त्री को

हृदय से लगा लिया और प्रेम से निकट बिठा लिया और आँख में आँसू भरकर महाराज ने पूछा। आते ही प्रश्न किया था कि राम कहाँ हैं? कुछ उत्तर न पाकर परिस्थिति का आभास मिल गया। अत: नेत्रों में आँसू भरकर पूछते हैं।

राम कुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लखनु बैदेही ॥
आने फेरि कि बनहि सिधाए। सुनत सचिव लोचन जल छाए ॥२॥

अर्थ : हे सनेही सखा! रामजी का कुशल कहो। राम लक्ष्मण और वैदेही कहाँ हैं? लौटा लाये कि वन को ही चले गये। सुनते ही मन्त्री की आँखें डबडबा आयीं।

व्याख्या : चक्रवर्ती जो मन्त्री से कहते हैं कि तुम मेरे सखा हो। प्रेम के पात्र हो। तभी तुम्हें रामजी के साथ लौटाने को भेजा था। सो सबसे पहिले तो रामजी का कुशल कहो। वे स्वस्थ तो हैं। तुम अकेले मेरे पास आये। राम लक्ष्मण सीता को कहाँ छोड़ा। वे लौट आये और तुम शुभ समाचार देने आये हो कि वन को ही चले गये? सुनते ही मन्त्री की भी आँखें आँसू से भर गयीं।

सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसू। कह सिय राम लखन सँदेसू ॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥३॥

अर्थ : शोक से विकल हैं। इसलिए फिर महाराज पूछते हैं कि सीता राम और लक्ष्मण का सन्देश कहो। रामजी के रूप गुण शील और स्वभाव को स्मरण करके मन में राजा सोच रहे हैं।

व्याख्या : शोक से विकल हैं इसलिए दोबारा पूछते हैं। नहीं तो राजा हैं पहिले ही उत्तर न पाकर उन्हें समझ लेनां चाहिए। फिर भी उत्तर न मिला। तब कहते हैं कि यदि नहीं लौटे तो कुछ कहा तो होगा। वह सन्देश ही सुना दो। ऐसा पूछते हैं और मन में रामजी का रूप गुण शील और स्वभाव नाच रहा है। मन ही मन सोचते हैं कि :

राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू ॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना ॥४॥

अर्थ : राज सुनाकर मैंने वनवास दे दिया। सुनकर जिसके मन में न हर्ष हुआ न शोक हुआ ऐसे बेटे से विछोह होते प्राण न गया। संसार में मेरे सा पापी कौन है?

व्याख्या : मैंने वसिष्ठजी द्वारा राज देने का सन्देशा भेजा। सो देना तो दूर रहा मैंने वनवास दे दिया। ऐसा आज्ञाकारी बेटा कि उसने सुख दु:ख को न गिना। मेरी आज्ञा के शिरोधार्य करने में ही अपनी मनस्तुष्टि मानी। ऐसे पुत्र के बिछुड़ते ही मुझे मर जाना चाहता था। सो मैं नहीं मरा। न जाने कैसा पाप मैंने किया है कि मुझे यह दु:ख भोगना पड़ रहा है। इससे तो मर जाना कितना अच्छा था। संसार

में कोई भी ऐसा दु:ख पड़ने पर मर जाता। पर मैं नहीं मरा क्योंकि मुझे अपने किये हुए पाप का दुःख भोगना है। अतः मेरे समान पापी संसार में कोई नहीं है।

दो. सखा रामु सिय लखनु जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब, प्रान कहउँ सतिभाउ ॥१४९॥

अर्थ : हे सखे ! जहाँ राम जानकी लक्ष्मण हैं वहाँ मुझे पहुँचा दो नहीं तो मैं सत्य भाव से कहता हूँ कि प्राण मेरे चला चाहते हैं।

व्याख्या : मन्त्री स्वयं नहीं जानते कि राम जानकी सीता कहाँ हैं? इसीलिए रामजी ने मन्त्री को शृङ्गवेरपुर से ही विदा किया। निषादराज साथ चला उसे भी यमुना पार से लौटा दिया। मन्त्री कहना नहीं चाहता कि मैं नहीं जानता कि राम लक्ष्मण सीता कहाँ हैं? इधर महाराज कह रहे हैं कि मुझे जल्दी से राम जानकी लक्ष्मण के पास पहुँचाओ। नहीं तो मैं मरा चाहता हूँ।

पुनि पुनि पूजत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम सुअन संदेस सुनाऊ ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ ॥१॥

अर्थ : बार बार मन्त्री से महाराज पूछते हैं कि मुझे परम प्रिय बेटे का सन्देश सुनाओ। हे सखे ! तुरन्त ऐसा उपाय करो कि मैं राम सीता और लक्ष्मण को आँख से देखूँ।

व्याख्या : मन्त्री का धैर्य छूटा हुआ है। वह बोलने में असमर्थ हो रहा है। इधर महाराज बार बार पूछ रहे हैं कि मुझे परम प्रिय बेटे राम का सन्देश सुनाओ। साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि जल्दी उन्हें लाकर मुझे दिखा देने का उपाय करो। विकलता में चित्त स्थिर न होने पर लोग ऐसा ही बोलते हैं। कैसे कोई राम जानकी लक्ष्मण को जल्दी से लाकर दिखा दे।

सचिउ धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम्ह पंडित ज्ञानी ॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा ॥२॥

अर्थ : मन्त्री ने धैर्य धारण करके कोमल वाणी कहा कि महाराज ! आप पण्डित ज्ञानी हैं। आप वीर हैं। सुन्दर धीरों में धुरन्धर हैं। आपने सदा साधु समाज का सेवन किया है।

व्याख्या : मन्त्री ने देखा कि महाराज का ज्ञान शोक से अपहृत हो गया है। अतः इन्हें अपने स्वरूप का स्मरण दिलाना चाहिए। अतः कहता है कि महाराज आप तो पण्डित हैं। पण्डित सोच नहीं करते। गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः। आप ज्ञानी हैं। सर्वज्ञ समदर्शी हैं। आप के लिए पुत्र क्या और कलत्र क्या? यथा : ज्ञान मान जहँ एकौ नाँहीं। देखइ ब्रह्म समाज सब माँही। आप वीर हैं। शूराणां मरणं तृणम् : आपको मृत्यु से भय कैसा? आप धीर धुरन्धर हैं। दुःख से विचलित क्यों होते हैं? आपने साधु समाज की सदा सेवा की है।

समधी बनकर बारात ले चलने के समय भी आपने साधुओं का साथ नहीं छोड़ा। यथा : साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिं सुख सेवा। आपको यह मोह कहाँ से आया ?

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा ॥
काल करम बस होंहि गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं ॥३॥

अर्थ : जन्म, मरण, सब दुःख सुख के भोग, हानि, लाभ, प्रिय मिलन तथा उनका वियोग कालकर्म के वश है। जबरदस्ती रात और दिन की नाईं हुआ करते हैं।

व्याख्या : जन्म के बाद मरण फिर उसके बाद जन्म। दुःख के बाद सुख फिर उसके बाद दुःख, हानि के बाद लाभ उसके बाद फिर हानि प्रिय मिलन के बाद वियोग उसके बाद फिर मिलन। ये सब कर्म के फल के विपाक से होते हैं। नहीं चाहने से ये हटते नहीं। रात दिन की भाँति बलपूर्वक होते हैं। किसी के रोके नहीं रुकते। सुखस्यानन्तरे दुःखं दुःखस्यानन्तरे सुखम्। इस ईश्वर की नियति को कोई अन्यथा नहीं कर सकता।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मनमाहीं ॥
धीरजु धरहु बिबेकु बिचारी। छाड़िअ सोचु सकलु हितकारी ॥४॥

अर्थ : सुख से हर्षित होना और दुःख आजाने पर विलखने लगना तो अज्ञानी का काम है। पण्डित तो दोनों को समान ही देखते हैं। आप विवेक से विचार करके धैर्य धारण कीजिये। हे सकल हितकारी ! सोच को छोड़िये।

व्याख्या : सुख दुःख आगमापायी हैं। अनित्य हैं। इनके लिए सहन करने का विधान है। यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ। समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते। जिसे दुःख सुख पीड़ा नहीं देते ऐसा धीर पुरुष अमृतत्व के योग्य होता है। आप सबके हित करनेवाले हैं। आप सोच को छोड़िये। आपके सोच करने से सबके हित में बाधा पड़ेगी।

दो. प्रथम बासु तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपानु करि, सिय समेत दोउ बीर ॥१५०॥

अर्थ : पहिला निवास तमसा तट पर हुआ। दूसरा गङ्गा के तट पर दोनों वीर सीताजी के सहित नहाने के बाद पानी पीकर रह गये।

व्याख्या : शोक शान्ति की भूमिका बाँधकर पूरी कथा कहनी प्रारम्भ कर दी। जिसमें महाराज को पूरी परिस्थिति से परिचय हो जाय। कहा कि पहिले दिन तो तमसा तीर पर निवास हुआ। दूसरे दिन गङ्गातट पर निवास हुआ। दोनों भाई वीर हैं। सीता राम की योग्या हैं। तीनों मूर्तियों ने स्नान करके केवल पानी पी लिया। भाव यह कि वनवास में तीनों समर्थ हैं। यह व्यवस्था तब तक की है

जब तक निषादराज से भेंट नहीं हुई। वीर कहने का तात्पर्य ही यह है कि भोजन न करने से कोई म्लानता न हुई।

केवट कीन्ह बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गँवाई ॥
होत प्रात वट छीर मँगावा। जटामुकुट निज सीस बनावा ॥१॥

अर्थ : केवट ने बड़ी सेवा की। वह रात सिंगरौर : शृङ्गवेरपुर में बीती। तब सबेरा होते ही बरगद का दूध मँगाया और अपने सिर पर जटा मुकुट बनाया।

व्याख्या : दिन भर पानी पीकर ही रह गये। केवट ने बड़ी सेवा की। उसने सोने की भी व्यवस्था की। भोजन की भी व्यवस्था की। रात को वहीं रहे। प्रातःकाल होते ही बरगद का दूध मँगाया और उससे जटा बनायी और सिर पर जूट : जूड़ा बाँधने से उसकी मुकुट सी शोभा हुई। भाव यह कि एकदम वन जाने पर तुले हुए देखकर कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

राम सखा तब नाव मँगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई ॥
लखनु बान धनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई ॥२॥

अर्थ : राम सखा ने तब नाव मँगायी। प्रिया : सीताजी को सवार कराकर तब सरकार सवार हुए। लक्ष्मणजी ने धनुष वाण सँवारकर रख दिया। फिर प्रभु की आज्ञा पाकर स्वयं भी सवार हो गये।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : बरबस राम सुमन्त्र पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आये और सुमन्त्र रथ पर जाने के लिए सवार हो गये और यहाँ रामजी के नाव पर सवार होने के समय सुमन्त्रजी की उपस्थिति कह रहे हैं। सो यह दोनों बातें कैसे बनती हैं ? बात यह हुई कि सुमन्त्रजी से रहा न गया। रथ से उतरकर सरकार के सवार होने के समय फिर वहाँ पहुँचे। रामजी और केवट के संवाद से जो रस पाठकों के हृदय में उत्पन्न होता है उसे कुछ समय तक बने रहने देने के लिए उस समय कवि ने सुमन्त्र के लौटने का उल्लेख नहीं किया। अतः सुमन्त्र के विदाई के पहले और उनके लौटने के बाद जो जो बातें हुईं उनका सार सुमन्त्र के मुख से कहला रहे हैं।

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा ॥
तात प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पद पंकज गहेहू ॥३॥

अर्थ : रघुवीर रामजी मुझे विकल देखकर धैर्य धारण करके मीठी बात बोले कि हे तात ! पिताजी से प्रणाम कहना और बार बार चरण कमल मेरी ओर से पकड़ना।

व्याख्या : भाव यह कि सुमन्त्र की विकलता देखकर रामजी का जी भर आया। अतः बोलने में धैर्य धारण करना पड़ा और बोले कि पिताजी से मेरा प्रणाम कहना और अनेक बार मेरी ओर से चरण पकड़कर तब मेरा सन्देशा कहना।

यथा : पितु पद गहि करि कोटि नति बिनय करब कर जोरि। चिन्ता कवनि बात की तात करब जनि मोरि।

करवि पाय परि बिनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी ॥
बन मग मंगल कुसल हमारे। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे ॥४॥

अर्थ : फिर चरणों पर गिरकर विनय कीजियेगा कि मेरे लिए चिन्ता न करें। वन के रास्ते में हम लोगों का कुशल मङ्गल आपकी कृपा अनुग्रह और पुण्य से होगा।

व्याख्या : भाव यह कि मन्त्री को रथ सहित भेजना जिसमें मुझे रास्ता चलने का कष्ट न हो अथवा चार दिन में वन का दर्शन करके चले आना आदि सन्देश का तात्पर्य यही है कि आपको मेरी चिन्ता है। सो चिन्ता न कीजियेगा। आपका पुण्य ऐसा है जिसके प्रभाव से वन के मार्ग में भी हम लोगों का कुशल मङ्गल रहेगा।

छं. तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं ॥
जननी सकल परितोषि परि परि पाय करि बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसल धनी ॥

अर्थ : हे पिता ! आपके अनुग्रह से वन जाते हुए सब सुख पाऊँगा। आज्ञा पालन करके कुशल के साथ चरणों के दर्शन के लिए फिर लौट आऊँगा। सब माताओं का सन्तोष करके उनके चरणों पर पड़कर विनय कीजियेगा। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा यत्न कीजियेगा जिसमें अवधपति कुशली रहें।

व्याख्या : यद्यपि वन में दुःख ही दुःख होता है। पर आपके अनुग्रह से मुझे सब सुख होगा। कानन नन्दन वन हो जायगा। यथा : जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। यह न समझियेगा कि सब सुख मिलने से कहीं वहीं न रह जायँ। इसलिए कहते हैं कि इतने दिनों तक आपके चरणों के दर्शन की उत्कण्ठा रहने से अवधि पूरी होते न होते मैं सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा। श्रीरामजी ने यह सन्देश पिता को देकर अब माताओं के लिए कहते हैं कि उनके पैरों पर गिरकर मेरी ओर से बड़ी विनती कीजियेगा। विनती वही है जो पिता से की गयी। इसलिए दोहराते नहीं हैं और मुझसे भी विनय किया कि आप ऐसा यत्न कीजियेगा जिससे महाराज कुशल रहें। रामजी पिता के प्रेम को जानते हैं। अतः उनकी ओर से इन्हें चिन्ता है। बार बार उनके कुशल के लिए कह रहे हैं।

दो. गुर सन कहब संदेसु, बार बार पद पदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु, जेहि न सोच मोहिं अवधपति ॥१५१॥

अर्थ : बार बार गुरुजी के चरण कमलों को पकड़कर सन्देश कहना कि वही उपदेश करें जिससे मुझको कोसलपति न सोचें।

व्याख्या : विश्वामित्रजी के साथ भी महाराज मुझे नहीं जाने देते थे। गुरुजी के उपदेश से ही जाने दिया था। यथा : तब बसिष्ठ बहुबिधि समझावा। नृप सन्देह नास कहँ पावा। रामजी कहते हैं कि आज भी उसी उपदेश की आवश्यकता है। जिसमें अवधपति मेरा सोच न करें। मेरे सोच करने से उन्हें खतरा है और सम्पूर्ण अवध की रक्षा का भार उन्हीं पर है। उन्हीं के कुशल से सब का कुशल है।

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएउ बिनती मोरी ॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जा तें रह नरनाहु सुखारी ॥१॥

अर्थ : पुरवासी कुटुम्बी आदि सबका निहोरा करके हे तात! मेरी विनती सुना देना कि वही मेरा सब प्रकार से हितकारी है जिससे महाराज सुखी रहें।

व्याख्या : सरकार पुरजन का प्रेम देखते आये हैं कि उनके लिए सब लोग घर द्वार पुत्र कलत्र सबको छोड़कर वनवास के लिए साथ चल पड़े। अतः उनसे निहोरा करके विनती करते हैं कि आप लोग निःसन्देह मेरा हित चाहते हैं। पर मेरे साथ वन में आकर बसने में मेरा सब प्रकार से हित नहीं है। सब प्रकार से हित तो महाराज के सुखी रखने में है।

कहब संदेसु भरत के आए। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ ॥
पालेहु प्रजहिं करम मन बानी। सेयेहु मातु सकल सम जानी ॥२॥

अर्थ : भरतजी के आने पर सन्देश कहना कि राजपद पाने पर नीति न छोड़ना। मनसा वाचा कर्मणा प्रजा का पालन करना। सब माताओं को समान जानकर सेवा करना।

व्याख्या : यद्यपि रामजी भलीभाँति जानते हैं कि भरतजी में वे सब बातें हैं जिनका कि वे उपदेश देना चाहते हैं। फिर भी छोटों को शिक्षा देना बड़ों का धर्म है। दूसरी बात यह है कि भरत को भी सन्देश देना है। न देने से नाराजगी मालूम होगी। अतः उपदेश के व्याज से उन्हें राज्य करने की आज्ञा देते हैं। कहते हैं कि राज्याभिषेक होने पर नीति नहीं छोड़ना। भाव यह कि तुम सदा नीति पर चलनेवाले हो। उसी रास्ते पर बनें रहना। प्रजा के पालन में प्रमाद न करना। माताओं में भेद न रखकर सबकी सेवा करना अर्थात् कैकेयी पर रुष्ट न होना।

ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई ॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहि करइ न काऊ ॥३॥

अर्थ : पिता माता और स्वजन की सेवा करके भाईपन की सीमा तक निर्वाह करना। महाराज को इस भाँति रखना जिससे वे कभी मेरा सोच न करें।

व्याख्या : मेरे मत से यहाँ : और पाठ होना चाहिए। ओर निबाहने का तो

अर्थ ही यह है राज्य स्वीकार न करना। ऐसा रामजी नहीं कह सकते। मैं तो यही अर्थ करूँगा कि माताओं को समान जानकर सेवा करना और माता पिता और स्वजन की सेवा करके भाईपन निबाहना। अर्थात् तुम्हारा भाईपन निबाहना मैं इसी बात में मानूँगा कि माता और स्वजन की सेवा करो। यथा : सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जाते रह नरनाह सुखारी। और पिताजी को तो इस भाँति रक्खो कि उन्हें मुझे स्मरण करने का अवसर न मिले कि रामजी यदि यहाँ होते तो मुझे यह कष्ट न होता या अमुक प्रकार से सुख देते। मेरे वन देने के कारण किसी भाँति अपमान न करना।

लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई ॥४॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे। उन्हें रोककर रामजी ने मेरा निहोरा किया और बार बार शपथ दिलायी कि लक्ष्मण के लड़कपन को पिताजी से न कहना।

व्याख्या : रामजी के सन्देश के बाद लक्ष्मणजी के सन्देश की बारी आई। इस पर कहते हैं कि लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे। रामजी ने उन्हें ऐसा कहने से रोका। वे वचन रामजी को बड़े अनुचित मालूम पड़े। मैं आप से उसे नहीं कह रहा हूँ। क्योंकि रामजी ने बार बार मुझे शपथ दिलाया है कि लक्ष्मण का सन्देशा पिताजी से नहीं कहना और मेरा निहोरा किया है।

दो. कहि प्रनाम कछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल, पुलक पल्लबित देह ॥१५२॥

अर्थ : प्रणाम कहके कुछ कहना चाहा पर सीताजी स्नेह से शिथिल हो गयीं। वाणी रुक गयी। नेत्र में जल आगये और देह में पुलकावली हो आयी।

व्याख्या : महाराज ने तीनों मूर्तियों का सन्देश पूछा था। अतः सुमन्त्रजी अन्त में सीताजी का हाल कहते हैं कि उन्होंने प्रणाम कहकर कुछ सन्देश भी कहना चाहा पर कह न सकीं। स्नेह से शिथिल हो गयीं। यहाँ यह शङ्का उचित नहीं है कि सीताजी ने जो जवाब सुमन्त्रजी को दिया। उसे सुमन्त्रजी नहीं क्यों कह रहे हैं? महाराज ने राम लक्ष्मण और सीताजी का सन्देश पूछा था। सुमन्त्रजी तीनों का सन्देश कह रहे हैं। उनसे जो जो बातें रामजी से या सीताजी से हुई। उसके कहने की कोई आवश्यकता वन जाने के पश्चात् नहीं रह गयी।

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई ॥
रघुकुल तिलक चले एहि भाँती। देखेउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती ॥१॥

अर्थ : उसी अवसर रामजी का रुख पाकर केवट ने पार के लिए नाव चला

दी। रघुकुलतिलक इस प्रकार चले गये और मैं खड़ा हुआ छाती पर वज्र रक्खे देखता रहा।

व्याख्या : जिस समय सीताजी सन्देश कहने को थीं और स्नेहवश कह न सकीं। उसी अवसर पर सरकार का रुख हुआ कि नाव आगे बढ़ाओ रुकने में कष्ट ही बढ़ेगा। अतः केवट ने पार की ओर नाव चला दिया। मैं कलेजे को वज्र किये हुए देखता रह गया और रघुकुल के तिलक रामजी चले गये।

मैं आपन किमि कहहुँ कलेसू। जिअत फिरेउ लेइ राम सँदेसू ॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोचबस भयऊ ॥२॥

अर्थ : मैं अपना क्लेश कैसे कहूँ। जो मैं राम का सन्देश लेकर जीता लौटा। ऐसा कहकर मन्त्री की वाणी रुक गयी और वह हानि ग्लानि और सोच के वश हो गये।

व्याख्या : मन्त्री जी कहते हैं कि मुझे इसी बात का बड़ा भारी क्लेश है कि मैं रामजी को न लौटाकर उनका सन्देश लेकर लौटा। मैं मर क्यों नहीं गया ? इससे आगे मन्त्रीजी कुछ न कह सके। हानि ग्लानि और शोक के वश हो गये। रामजी का वन चला जाना यह मूलधन की हानि है। मैं मर क्यों नहीं गया। इस बात की ग्लानि है अब क्या होनहार है। इस बात का सोच है।

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू ॥
तलफत बिषम मोह मन मापा। माँजा मनहुँ मीन कहुँ ब्यापा ॥३॥

अर्थ : सारथि का वचन सुनते ही महाराज पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके हृदय में दारुण दाह हुआ। तड़पने लगे। विषम मोह से विकल हो गये। मानो मछली को माजा व्याप्त हो गया।

व्याख्या : सारथि के वचन से पूर्ण निराशा हुई और महाराज जो थोड़ी बहुत आशा के सञ्चार से उठकर बैठ गये थे पृथ्वी पर गिर पड़े। विरह की ज्वाला हृदय में भभक उठी। तड़पने लगे। विषम मोह में ऐसे विकल हो गये जैसे माजा खाकर मछली विकल होती है। बरसात का पहला पानी पड़ने से जो फेन नदियों में उत्पन्न होता है उसे मांजा : मञ्जा कहते हैं। उसे मछलियाँ खाकर अत्यन्त विकल होकर पानी के ऊपर आ जाती हैं।

करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी ॥
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा ॥४॥

अर्थ : विलाप करके सब रानियाँ रोने लगीं। महाविपत्ति का वर्णन कैसे किया जाय। उस विलाप को सुनकर दु:ख भी दुःखी हो गया। धैर्य का भी धैर्य जाता रहा।

व्याख्या : पुत्र और पुत्रवधू के लौटाने की आशा नहीं रही और पति को

यह दशा देखकर रानियाँ विलाप करके रोने लगीं। अर्थात् हार्दिक दुःख को व्यक्त करती हुई रोने लगीं। महाविपत्ति आ पड़ी। उसका बखान किया नहीं जा सकता।

उस विलाप को जिसने सुना वही दुःखी हो गया। उसका धैर्य छूट गया। अर्थात् वह भी रोने लगा। इसी बात को आलङ्कारिक भाषा में कवि कहते हैं कि दुःख भी दुःखी हो गया। धैर्य का भी धैर्य जाता रहा।

## १८. नृपमरणप्रसङ्ग

दो. भयउ कोलाहलु अवध अति, सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहग बन परेउ निसि, मानहु कुलिस कठोरु ॥१५३॥

अर्थ : महाराज के खास महल में शोर सुनकर अवध में बड़ा भारी हाहाकार मचा। जैसे बहुत से पक्षीवाले वन में कठोर बज्रपात हुआ हो।

व्याख्या : महाराज का खास महल महारानी कौसल्या का महल है। प्रजा भी जान रही है कि महाराज उसी महल में हैं और उनकी अवस्था चिन्ताजनक है। सुमन्त्र असफल होकर लौटे हैं। ऐसे अवसर पर उस महल में भारी रुदन शब्द का होना अत्यन्त अनिष्ट का सूचक है। अतः सम्पूर्ण अयोध्या में हाहाकार मच गया। उपमा देते हुए कवि कहते हैं कि जैसे पक्षियों से भरे वन में रात को वज्रपात हो और सम्पूर्ण वन के पक्षी चीं चीं करने लगे। महाराज के महल का शोर वज्रपात से उपमित है और नगर का कोलाहल पक्षियों के शब्द से उपमित है। तुम जेहि लागि बज्र पुर पारा का साफल्य दिखाया।

प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू ॥
इन्द्री सकल बिकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी ॥१॥

अर्थ : राजा का प्राण कण्ठ में आगया। ऐसे व्याकुल हुए जैसे मणिविहीन सर्प। सब इन्द्रियाँ अत्यन्त विकल हो गयीं। जैसे तालाब का कमलवन बिना जल के हो जाता है।

व्याख्या : समाचार सुनते ही राजा की मरणासन्न दशा हो गयी। प्राण कण्ठ में आगये। निकलने में देर नहीं है। जैसे मणि के बिना सर्प व्याकुल हो जाता है। प्राणों के उखड़ने से इन्द्रियाँ भारी विकल हुईं। जैसे कमलवन के तालाब का पानी सूख गया हो। कमल सब मौजूद हैं पर नीरस होकर सूख चले हैं। इसी भाँति इन्द्रियाँ हैं। पर नीरस होकर विकल हो रही हैं। यहाँ शरीर की उपमा तालाब से है। इन्द्रियों को कमलवन से और रामजी की जल से।

कौसल्या नृपु दीख मलाना। रबिकुल रबि अँथयउ जिय जाना ॥
उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी ॥२॥

अर्थ : कौसल्या ने राजा को कुँभलाया हुआ देखा। समझ लिया कि सूर्यकुल के सूर्य अस्त हुआ चाहते हैं। हृदय में धीरज धारण करके रामजी माता समयानुकूल वचन बोलीं।

व्याख्या : राजा की दशा देखकर कौसल्या ने समझा कि इनका शरीर अब नहीं रहा चाहता। मानसिक पीड़ा ही इस दशा का कारण है। अतः उस पीड़ा को कम करना चाहिए। मैं रामकी माता हूँ। मैं यदि आश्वासन दूँ तो सम्भव है कि ये सँभल जायँ। अतः स्वयं अधीर होती हुई भी उन्होंने धैर्य धारण किया और ऐसे अवसर पर जैसा उचित है वैसा बोलीं।

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥३॥

अर्थ : नाथ ! मन में समझ कर विचार कीजिये। राम का वियोग अपार समुद्र है। इस अवध जहाज के आप ही कर्णधार : माँझी हैं। सब प्रिय लोगों का समाज ही इस पर सवार है।

व्याख्या : भाव यह कि शोक छोड़कर आप विचार में स्थित हो जाइये। बड़े असमञ्जस का समय उपस्थित है। राम वियोग रूपी समुद्र का सामना पड़ गया। जिसका पार करना सबके सामर्थ के बाहर की बात है। अयोध्या रूपी जहाज इस समुद्र में आ फँसा है। इस पर सभी स्वजन बान्धव सवार हैं। आप ही इसके कर्णधार हो। कर्णधार से ही आशा की जाती है कि वह जहाज पार लगा देगा और पार लगना ही चाहिए। क्योंकि सब बन्धु बान्धव इस पर हैं।

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहि त बूड़िहि सबु परिवारू॥
जौ जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥४॥

अर्थ : धैर्य धारण कीजिये तो पार पाया जा सकता है। नहीं तो सब परिवार ही डूब मरेगा। यदि हे प्रिय ! आप मेरे विनय को हृदय में स्थान दें तो फिर राम लक्ष्मण सीता से भेंट होगी।

व्याख्या यदि कर्णधार धैर्य धारण किये रहे तो बेड़ापार हो नहीं तो सारा परिवार डूब मरेगा। अतः इस सङ्कट के समय में भले ही सबका धैर्य छूट जाय पर आपका धैर्य बना रहना चाहिए। आप यदि मेरे विनय को हृदय में स्थान दें तो राम लक्ष्मण सीता से फिर भेंट होगी।

दो. प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचत सीतल बारि॥१५४॥

अर्थ : प्रिया का कोमल वचन सुनकर राजा ने आँख खोलकर देखा। जैसे तड़पती हुई मलिन मछली शीतल जल से सींची गयी।

व्याख्या : महाराज प्राणकण्ठगत थे। इन्द्रियाँ विकल थीं। आखें बन्द थीं।

तड़पते थे। पर अपनी प्रिया कौसल्याजी का वचन सुनकर आँख खोल दिया। कुछ आश्वासन मिला। जैसे बिना जल के तड़पती हुई मछली को कोई ठण्ढे पानी से सिञ्चन करे और उसकी वेदना में तात्कालिक कमी हो जाय।

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमन्त्र कहँ राम कृपालू ॥
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही ॥१॥

अर्थ : धैर्य धरकर महाराज उठ बैठे और बोले। सुमन्त्र ! बतलाओ कि कृपाल राम कहाँ हैं ? लक्ष्मण कहाँ हैं ? स्नेही राम कहाँ हैं ? प्रिय पुत्रवधू वैदेही कहाँ है ?

व्याख्या : महाराज राम लखन और सीता के फिर मिलने की बात सुनकर धैर्य धारण करके उठ बैठे। पर उन्हें शोक से उन्माद सा हो गया। वे सुमन्त्र से पूछने लगे कि राम लक्ष्मण जानकी हैं कहाँ ? सुन चुके हैं कि शृङ्गवेरपुर में गङ्गा पार जाते हुए सुमन्त्र ने देखा। उसके बाद का हाल उसे कुछ मालूम नहीं। फिर भी पूछते हैं कि वे लोग कहाँ हैं।

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती ॥
तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई ॥२॥

अर्थ : राजा विकल होकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। रात युग के समान हो गयी। समाप्त ही नहीं होती। अन्धे तपस्वी के शाप को बात याद आगयी। सब कथा कौसल्याजी को सुनाया।

व्याख्या : राजा अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। रात बीतना कठिन हो गया। दुःख की रात है। इसलिए युग के बराबर मालूम होने लगी। रात बीते तो राम लक्ष्मण जानकी कहाँ गये इसका पता लगाया जाय। उनसे भेंट करने का उपाय किया जाय। महाराज ने वन जाते समय रामजी से प्रश्न किया था : और करै अपराध कोउ और पाव फल भोग। उसका उत्तर उस समय रामजी ने नहीं दिया। राजा को भी याद न रहा कि युवावस्था में मैंने हाथी के धोखे में रात के समय अन्धतापस के पुत्र को शब्दवेधी वाण मारा था। पुत्रशोक से दुःखी होकर तपस्वी ने शाप दिया था कि मेरी भाँति पुत्रशोक में मरोगे। यही उस प्रश्न का उत्तर था। रामजी की प्रेरणा से इस समय वह घटना याद आगयी तो सब कथा कौसल्याजी को सुनाया।

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा ॥
सो तनु राखि करबि मैं काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा ॥३॥

अर्थ : उस इसिहास को वर्णन करते हुए विकल हो गये : कहने लगे कि राम रहित जीवन की आशा को धिक्कार है। उस शरीर को रखकर मैं क्या करूँगा जिसने कि मेरे प्रेमप्रण का निर्वाह न किया।

व्याख्या : अन्ध तपस्वी का इतिहास वर्णन करने में उसका पुत्रशोक स्मरण करके भारी ताप हुआ। अतः और भी विकल हुए। कहने लगे कि राम के न होने पर जीने की आशा को धिक्कार है! रामजी जहाँ हों वहाँ जाकर भेंट कर आवें तो जी जायँगे। ऐसा जीवन मैं नहीं चाहता। यदि राम के बिना शरीर रह गया तो मेरा प्रेम झूठा हो जायगा। अतः जो मेरे प्रेमप्रण का निर्वाह न करे ऐसे शरीर को रखकर मैं क्या करूँगा और प्रेमप्रण का निर्वाह शरीर छूटने से ही होगा। अतः हर हालत में शरीर छूटना ही ठीक है।

हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर॥४॥

अर्थ : हा प्राणप्यारे रघुनन्दन! तुम्हारे बिना जीते बहुत दिन बीत गये। हा जानकी! हा लक्ष्मण! हा रघुवर! हा पिता के चित्तचातक के हित करनेवाले जलधर!

व्याख्या : महाराज विलाप करते हुए कहते हैं कि हा प्यारे रघुनन्दन! तुम्हारे बिछोह होते ही मुझे मर जाना चाहता था। सो तुम्हारे बिना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गये। दशमी को रामजी वन गये। छठे दिन सुमन्त्र लौटे। सो छ दिन महाराज को बहुत दिन मालूम हो रहा है। रामजी को स्मरण करके लक्ष्मणजी को स्मरण करके तथा वैदेहीजी को स्मरण करके हाय हाय कर रहे हैं और अन्त में फिर रामजी के लिए हाय करते हैं और कहते हैं कि पिता के चित्तचातक के लिए बादलरूप तो तुम्हीं हो।

दो. राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयउ सुरधाम॥१५५॥

अर्थ : राम राम कहकर, राम कहकर और फिर राम राम कहकर राम कहा और शरीर छोड़कर रामजी के विरह में राजा सुरलोक को पधारे।

व्याख्या : असाध्य व्याधि को देखकर तीन बार नाम लिया। यथा : देखी ब्याधि असाधि नृप परेउ धरनि धुनि माथ। कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ। और मृत्यु को सामने देखकर छः बार स्मरण किया। यथा : राम राम राम राम राम राम जपत। मंगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत। सो मङ्गल मुद के उदय तथा घरेलू झगड़े की शान्ति के लिए यही छः नामवाला मन्त्रोच्चारण ठीक समझा। इसी भाँति अनेक प्रकार से नाम लेने की अलग अलग फलश्रुतियाँ हैं। विनय-पत्रिका द्रष्टव्य है। अथवा[1] षटचक्र वेधै जौन। हरि रूप देखै तौन। अतः एक

---

१. १. मूलाधार २. स्वाधिष्ठान ३. मणिपुर ४ अनाहत ५. विशुद्ध ६. आज्ञाचक्र। ये छः चक्र शरीर में हैं। इनके वेधन से सहस्रार में गति होती है जहाँ ब्रह्म साक्षात्कार होता है।

एक नाम स्मरण से एक एक चक्र का वेध किया। अथवा छः दिन तक सरकार का वियोग रहा। इसलिए छः बार लिया।

जिअन मरनु फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा ॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरन सँवारा ॥१॥

अर्थ : जीने मरने का फल राजा दशरथ ने पाया। अनेक ब्रह्माण्डों में उनका निर्मल यश छा गया। जीतें जी रामजी का चन्द्र वदन देखते रहे और राम के विरह में प्राण त्याग करके अपने मरणको सँवार लिया।

व्याख्या : एक बार जो रामजी का दर्शन पाता है उसका जीवन सफल हो जाता है और ये महाराज तो रामजी का दर्शन बराबर सत्ताईस वर्ष तक करते रहे। इनके ऐसा जीवन का फल पानेवाला कौन है : जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमै मुकुत होइ श्रुति गावा। और इनका मरण तो रामजी के विरह में राम राम स्मरण करते हुए ही हुआ। अतः मरण का फल भी इनके समान किसी को नहीं मिला। यथा : बंदौं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद। बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृण इव परिहरेउ।

जीना मरना उसी का फल है जिसका संसार में यश हो। महाराज दसरथ का निर्मल यश तो अनेक ब्रह्माण्डों में व्याप्त हो गया। यथा : तुलसी जान्यौ दसरथहिं धरमु न सत्य समान। राम तजेउ जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान।

सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सीलु बलु तेज बखानी ॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा ॥२॥

अर्थ : शोक से विकल होकर सब रानियाँ रो रही हैं। रूप शील बल और तेज का बखान करके अनेक प्रकार से विलाप करती हैं और पृथ्वीतल पर बार बार गिर रही हैं।

व्याख्या : महाराज चक्रवर्ती थे। इन्द्र के सखा थे। चौदहों भुवन में इनका प्रभाव था। इनके रूप शील बल और तेज के लिए कहना ही क्या है। ऐसे महाराज की रानियाँ आज रो रही हैं। उनके गुणों का बखान करके विलाप करती हैं। पृथ्वी पर पछाड़ खाकर गिर रही हैं। ऐसी ही जगत् की गति है। यह जगत् का नाटक ही दुःखान्त है।

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिं पुरबासी ॥
अथएउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू ॥३॥

अर्थ : दास और दासी विकल होकर विलाप कर रही हैं। घर घर पुरवासी रो रहे हैं। आज सूर्यकुल के सूर्य अस्त हो गये। जो धर्म के अवधि और गुण रूप के निधान थे।

व्याख्या : ऐसे स्वामी के वियोग में दास दासी भी विकल होकर रो रहे हैं।

घर घर रोना गाना मचा हुआ है। महाराज ऐसे प्रजावत्सल थे कि इनके आनन्द में प्रजा आनन्दित होती थी और इनके वियोग में रो रही है। गोस्वामीजी ने शोक में भी तारतम्य दिखलाया है। पुरवासी उनकी धर्मनिष्ठा और गुण रूप की प्रशंसा कर रहे हैं। कहते हैं कि आज सूर्यकुल का सूर्य अस्त हो गया।

गारी सकल कैकइहिं देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं ॥
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी ॥४॥

अर्थ : सब कैकेयी को गालियाँ देती हैं। जिसने संसार भर को नेत्ररहित कर दिया। इस प्रकार से विलपते हुए रात बीती और सब महामुनि ज्ञानी लोग आये।

व्याख्या : क्या रानियाँ, क्या दास दासी, क्या पुरवासी सब कैकेयी को गालियाँ देते हैं। सूर्य ही जगत् के चक्षु हैं। उनके अस्त होने से संसार नेत्रहीन हो जाता है। सो यह सूर्यास्त तो कैकेयी के कारण से हुआ। संसार में जो आया है सो जायगा। पर उस आने जाने का प्राकृत नियम है। तदनुसार कार्य होने से दुःख कम होता है। यथा : जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू।

इस भाँति विलाप कलाप में रात बीती। सवेरा होते ही महामुनि ज्ञानी आये। जिन पर शोक का प्रभाव नहीं पड़ता और दूसरों के शोकनिवारण में भी जो समर्थ हैं।

दो. तब बसिष्ठ मुनि समय सम, कहि अनेक इतिहास।
सोक निबारेउ सबहि कर, निज बिग्यान प्रकास ॥१५६॥[1]

अर्थ : तब वसिष्ठ मुनि ने समयानुकूल अनेक इतिहास कहकर सबके शोक की निवृत्ति अपने विज्ञान के प्रकाश से किया।

व्याख्या : वसिष्ठजी बड़े ज्ञानी हैं। कुलगुरु हैं। जानते हैं कि शोकनिवारण कैसे किया जाता है। उन्होंने ऐसे ऐसे इतिहास सुनाये जिनसे शोकनिवारण हो। ऐसे समयानुकूल इतिहास वर्णन तथा अपने विज्ञान के प्रकाश से संसार की असारता का प्रतिपादन करके सबके शोक का निवारण किया।

तेल नाव भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा ॥
धावहु बेगि भरत पहि जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू ॥१॥

अर्थ : नाव में तेल भरकर राजा के शव को उनमें रख दिया। फिर दूतों को बुलाकर कहा कि जल्दी दौड़ो। भरतजी के पास जाओ। राजा का हाल कहीं भी किसी से न कहना।

व्याख्या : पहिला काम गुरुजी ने यह किया कि राजा के शव को तेल भरी

---

१. १५६ दोहों में रामचरित कहकर अब १४ दोहों में दशरथ का और्ध्वदैहिक क्रिया-प्रसङ्ग कहेंगे।

नाव में रक्खा। जिसमें संस्कार के समय तक बिगड़ न जाय। तत्पश्चात् दूत को बुलाकर भरतजी के पास भेजा जो कि दूर कैकय देश में थे। निकट ही चित्रकूट में राम लक्ष्मण थे उनके पास दूत नहीं भेजा। रामजी के स्वभाव को जानते थे कि पिता ने मेरे वियोग में प्राण त्याग किया। यह सुनकर रामजी की क्या दशा होगी। इसलिए यह समाचार रामजी को मेरी अनुपस्थिति में न लगे और उन्हें समाचार देना भी व्यर्थ है। वे नगर में आ नहीं सकते। भरतजी को ही महाराज अभिषेक करने के लिए वचनबद्ध हो चुके हैं। अतः भरतजी को ही बुलाना उचित समझा। इसलिए वहीं दूत भेजा और राजा का समाचार कहीं किसी से कहने के लिए मना कर दिया। समय ऐसा था कि उस समय महाराज के चारों बेटों में से कोई भी न था। ऐसे ही अवसर पर शत्रु चढ़ दबाते हैं। इसलिए राजा के मृत्यु का समाचार छिपाया गया।

एतनइ कहेउ भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयेउ दोउ भाई ॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए २॥

अर्थ : भरत से इतना ही कहना कि गुरुजी ने दोनों भाइयों को बुला भेजा है। मुनिजी की आज्ञा सुनकर दूत दौड़ चले। अपने वेग से उत्तम घोड़ों को लज्जित करते थे।

व्याख्या : यह समाचार भरतजी से भी न कहना। उनसे इतना ही कहना कि गुरुजी ने दोनों भाइयों को बुलाया है। मेरा नाम सुनते ही दोनों भाई तुरन्त चल पड़ेंगे। वसिष्ठजी की यह बात सुनकर दूत दौड़ चले। अश्वारोही भी नहीं भेजा। जिसमें किसी का ध्यान आकर्षित न हो। परन्तु वे दूत ऐसे थे कि उनके वेग को देखकर उत्तम घोड़े लज्जित हो जायँ। अतः अश्वारोहियों को भेजना उचित नहीं था।

अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें ॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना ॥३॥

अर्थ : जब से अयोध्या में अनर्थ आरम्भ हुआ तब से भरतजी को अपशकुन होने लगे। रात को भयानक स्वप्न देखते हैं और जागने पर करोड़ों बुरी कल्पनाएँ करते हैं।

व्याख्या : बाह्य जगत् और आन्तर जगत् में घना सम्बन्ध है। ईश्वर के घर से खतरे की घण्टी बजती है। उसी को अपशकुन कहते हैं। अवध में जब से अनर्थ आरम्भ हुआ अर्थात् जब से देवताओं की प्रार्थना से सरस्वती का आगमन विघ्नाचरण के लिए अवध में हुआ। यथा : हरषि हृदय कोसलपुर आई। जिमि ग्रहदसा दुसह दुखदाई। तभी से भरतजी को अपशकुन होने लगा। उसी का विवरण देते हैं। रात को भयानक सपना देखते हैं। जागने पर अनेक बुरी बुरी कल्पनाएँ

करते हैं। भयानक स्वप्न का फल बुरा होता है। भरतजी कैकेयदेश : ननिहाल में हैं। घर पर क्या होता है इसका पता नहीं।

**बिप्र जेंवाइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना ॥**
**माँगहिं हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई ॥४॥**

**अर्थ :** नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराके दान देते थे। अनेक विधि से रुद्राभिषेक करते थे। महादेव को मनाकर मन में माता पिता कुटुम्बी और भाइयों की कुशल चाहते थे।

**व्याख्या :** स्वप्नदोष की शान्ति के लिए ब्राह्मण-भोजन दान तथा रुद्राभिषेक का विधान है। अभिषेक भी जल दुग्धादि से अनेक प्रकार से किया जाता है। शिवलिङ्ग पर गोदोहन सद्यः प्रत्यय कारक है। भरतजी ब्राह्मण भोजन कराते हैं। दक्षिणा देते हैं। तत्पश्चात् स्वयं अनेक विधि से रुद्राभिषेक करते हैं।

अभिषेक के बाद माता पिता परिजन और भाई के कुशल की प्रार्थना करते हैं। क्योंकि : भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी। अपने प्रेमियों के प्रति मन सदा पापाशङ्की होता है। सोचते हैं। सबेरे सपना देखा और वह ऐसा भयानक था कि मैं जाग उठा। इसका फल निश्चय अशुभ है।

## १९. भरतागमन प्रसङ्ग

**दो. एहि बिधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ।**
**गुरु अनुसासन श्रवन सुनि, चले गनेसु मनाइ ॥१५७॥**

**अर्थ :** इस भाँति भरतजी सोच ही रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुजी की आज्ञा सुनकर गणेशजी को मना कर चले।

**व्याख्या :** भरतजी इस भाँति अशुभ की आशङ्का करके सोच रहे थे। तब से अयोध्या से दूत आगये। उन्होंने गुरुजी का अनुशासन सुनते ही गणेश को मनाकर प्रस्थान कर दिया। यहाँ गुरु अनुशासन शब्द ही कह रहा है कि इसमें विचार को स्थान नहीं है। अनिष्ट के अनुमान से भयभीत हो गये। गुरुजी की इच्छा मालूम होती है कि पहुँचने के पहिले मुझे कोई समाचार न मिले। ऐसा सोचकर भरतजी ने दूतों से अधिक पूछताछ न की और न यात्रा मुहूर्त दिखलाया। गुरु की आज्ञा को ही सब कुछ मानकर जय गणेश कहकर चल पड़े।

**चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके ॥**
**हृदय सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जिअँ जाउँ उड़ाई ॥१॥**

**अर्थ :** उन्होंने हवा के वेगवाले घोड़ों को हाँका। नदी पहाड़ तथा बाँके जङ्गलों को पार करते हुए चले। हृदय में बड़ा भारी सोच था। इसलिए कुछ

अच्छा मालूम नहीं होता था। जी में ऐसा मालूम होता था कि उड़कर जल्दी से पहुँच जायँ।

व्याख्या : बड़ी शीघ्रता है। अतः वायुगतिवाले घोड़ों को रथ में जोड़ा। उन्हें भी जल्दी के लिए हाँक रहे हैं। बाँके शैल वन और नदियों को लाँघते चले जा रहे हैं। किसी की ओर दृष्टिपात नहीं करते। यद्यपि कैकय देश कश्मीर प्रान्त में है। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य बड़ा सुहावना है। पर भरतजी के हृदय में बड़ा भारी सोच है। उन्हें कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। रथ के इतने वेग से भी वे सन्तुष्ट नहीं हैं। चाहते हैं कि मैं उड़कर पहुँच जाऊँ। वे सोच रहे हैं गुरुजी ने बुलाया है। इतना ही कहकर दूत चुप है और कुछ नहीं कहता। बात रोकी गयी है। जो हमारे पहुँचने पर खोली जायगी। पिताजी ने क्यों नहीं बुलाया ? जिस बात का कहना उसे मना किया गया है। उसे जानने के लिए दूत पर दबाव डालना भी उचित नहीं। इधर भयानक सपना भी देखा। बात क्या हुई ?

एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगरु निअराई ॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा ॥२॥

अर्थ : एक निमेष वर्ष के समान बीतता था। इस भाँति नगर के सन्निकट भरतजी पहुँचे। नगर में अब प्रवेश के समय अपशकुन होने लगे। कराल काग : कुखेत में बुरी तरह से शब्द करने लगे।

व्याख्या : सोच की मात्रा इतनी बढ़ी हुई है कि निमेष वर्ष के समान बीतने लगा। ऐसे समय में सरित शैल वन की शोभा देखने का अवकाश या रुचि किसे हो सकती है। नगर पहुँचने की विधि कहकर प्रवेश कहते हैं।

प्रवेश के समय दाहिने सुखेत में काग का होना शुभ है। सो वहाँ बायें कुखेत में काग कठोर शब्द कर रहे हैं। काग की बोली अनेक प्रकार की होती है। कोई बड़ी ही भयङ्कर होती है।

खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला ॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा ॥३॥

अर्थ : गधे और सियार प्रतिकूल बोलने लगे। सुन सुनकर भरत के हृदय में शूल उठता था। तालाब नदी वन बाग सब शोभारहित हो रहे थे और नगर तो विशेषरूप से भयावन मालूम हुआ।

व्याख्या : गधे रेंकते हैं। सियारिन फेकरती हैं। ये सब महा असगुन हैं। सुन सुनकर भरतजी के हृदय में शूल होता था कि कोई भारी अनर्थ हुआ है। जिसे वहाँ सुनाना मुझे अच्छा नहीं समझा गया।

बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं। लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी। यह अवस्था रामजी के वन गमन

के समय हुई थी। अब तो महाराज भी नहीं हैं। स्थानों में मनुष्य के चेहरे की भाँति उदासी छा जाती है।

खग मृग हय गय जाँहि न जोए। राम बिरोग कुरोग बिगोए ॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहु सबन्हि सब संपति हारी ॥४॥

अर्थ : रामजी के वियोगरूपी कुरोग से सताये हुऐ पक्षी मृग घोड़े और हाथियों को देखते नहीं बनता था। नगर के स्त्री पुरुष एकदम दुःखी हो गये थे। मानों सबने अपनी सम्पति हार दी हो।

व्याख्या : हय गय कोटिन्ह केलि मृग पुरपसु चातक मोर। सुक रथांग पिक सारिका सारस हंस चकोर। राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहु चित्र लिखि काढ़े। ये इतने दुःखी हैं कि इनको देखते नहीं बनता। रोगी होने से कैसा भी सुन्दर पुरुष दर्शनीय नहीं रह जाता। सो ये सब राम वियोगरूपी रोग से ग्रस्त हैं। अतः हतप्रभ हैं।

नगर के भीतर जाने पर नर नारियों को देखा। उनकी दशा सुनिये। सब सम्पति हार जाने पर जैसे कोई दुःखो होता है। उसे कुछ सूझता नहीं। वैसी दशा सबकी हो रही है। रामजी ही सबके सर्वस्व थे। उन्हीं से : सब बिधि सब पुर लोग सुखारी थे। उन्हीं का मुखचन्द्र अयोध्या के लिए चन्द्र था। सो वन गये। इधर सूर्यास्त भी हो गया। यथा : अथएउ आज भानुकुल भानू। अतः अवध वासियों के दुःख का पारावार नहीं।

दो. पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गँवहिं जोहारहि जाँहिं।
भरत कुसल पूछि न सकहिं, भय बिषाद मन माँहीं ॥१५८॥

अर्थ : पुरजन मिलते हैं तो कुछ बोलते नहीं। चुपचाप जोहार करके अपना रास्ता पकड़ते हैं और भरतजी के मन में भय भी था विषाद भी था। इसलिए कुशल नहीं पूछ सकते थे।

व्याख्या : रास्ते में जो मिले उनका हाल सुनिये। उन्हें भरतजी के देखने पर किसी प्रकार का हर्ष नहीं है। उदासीनता इतनी बढ़ी हुई है कि कुशल तक नहीं पूछते। राजा के नाते जोहार कर देते हैं और चुपके से अपना रास्ता पकड़ते हैं। जिसमें बातचीत का अवसर न आने पाये। उन्होंने कुशल न पूछा तो भला भरतजी ही पूछते। सो ये पूछ नहीं सकते थे। उनके मन में भय था कि पूछने पर कोई बड़ी ही अनिष्टकारी घटना का समाचार मिलेगा। जिससे परिचित करना मुझे उचित नहीं समझा गया। अतः अत्यन्त विषण्ण थे।

हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी ॥
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनी। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनी ॥१॥

अर्थ : बाजार और रास्ता देखते नहीं बनता था। मानों नगर के दसों

दिशाओं में आग लगी हो। बेटे का आगमन सुनकर सूर्यकुल कमल के लिए चाँदनी रूपी कैकयनन्दिनी : कैकेयी बड़ी प्रसन्न हुई।

व्याख्या : जिस नगर के दशों दिशाओं में आग लगी हो वहाँ के हाट बाट की दुर्दशा के लिए क्या कहना है। यह आग कैकेयी रूपी किरातिनी ने अपने बेटे के कल्याण के लिए लगाया है : गोड़वाने में आज भी बीमार बच्चों के कल्याणार्थं वन में आग लगाने की मनौती मानी जाती है। इसीलिए उसे रबिकुल जलरुह चन्दिनि कहा। भले ही वह कैकयानन्द वर्धनी क्यों न हो।

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेंहिं भेंटि भवन लेइ आई॥
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहुं तुहिन बनज बनु मारा॥२॥

अर्थ : आरती सजाकर बड़े हर्ष से उठकर दौड़ी। द्वार पर ही मिलकर घर लिवा ले गयी। भरत ने परिवार को दुःखी देखा। जैसे कमलवन पर पाला पड़ा हो।

व्याख्या : बेटा राजा होने आ रहा है। अतः आरती साजी जा रही है। बड़ी प्रसन्न है। आप ही आरती करने दौड़ी। दूसरा कोई साथ नहीं है। द्वार पर पहुँच कर वहीं आरती की और मिल-भेंटकर अपने घर लिवा ले गयी कि कहीं दूसरे किसी महल में प्रणाम करने न चले जायँ। कोई ऐसी पट्टी न पढ़ा दे कि सब करा धरा व्यर्थं पड़ जाय।

भरतजी गुरुजी के यहाँ न जाकर सीधे घर आये। जानते हैं कि पूर्णकाम गुरुजी को कोई निज का काम हो नहीं सकता। कोई बात घर में बिगड़ी है। माता पिता पुरजन और भाई के विषय में आशङ्का है। स्वप्न में भी भारी अशुभ माता के विषय में ही देखा है। दरवाजे पर लोग जुट गये हैं। पर दुःखी हैं। कुछ पूछते पर माँ आगयी। आरती करके मिल भेंटकर अपने महल में लिवा ले गयी। सब भेद कहना है। क्योंकि भरतजी कुछ जानते नहीं। शत्रुओं से सावधान करना है। मित्र रूप में शत्रु बहुत हैं। क्योंकि इसी ने रघुकुल कमल विपिन पर चाँदनी रात बनकर पाला गिराया है।

कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहि ससोच देखि मनु मारें। पूंछति नैहर कुसल हमारे॥३॥

अर्थ : कैकेयी इस प्रकार प्रसन्न है जैसे किराती वन में आग लगाकर प्रसन्न होती है। बेटे को शोकयुक्त तथा मन मारे देखकर पूछती है कि हमारे मायके में सब कुशल तो है।

व्याख्या : किराती जङ्गल में आग लगाकर प्रसन्न हो जाती है कि अब मेरा बेटा चङ्गा हो जायगा। इसी भाँति इतना बड़ा अनर्थं करके कैकेयी प्रसन्न है कि अब मेरा बेटा राजा हो जायगा। जैसे किराती जङ्गल में आग लगाकर हर्षित होती है कि अब मेरा बेटा चङ्गा हो जायगा। किरातों में अब भी ऐसा विश्वास है कि

जङ्गल में आग लगा देने से बीमार अच्छा हो जाता है। अतः आज भी वे बीमार बच्चों के स्वास्थ्य लाभ के लिए वन में आग लगा देती है।

लोगों को दुःखी देखकर भरत उदास हैं। इस बात का ख्याल ही नहीं है। रहै न नीच मते चतुराई। भय उत्पन्न हुआ कि मेरे मायके में तो सब कुशल है न! मायके का बड़ा भरोसा है। यथा: नैहर जन्म भरब बरु जाई इत्यादि। भरतजी को सशोक मन मारे देखकर नैहर के कुशल के प्रति आशङ्का हुई।

सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुसल भलाई ॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता ॥४॥

अर्थ: भरतजी ने सब कुशल कह सुनाया। तब अपने कुल का कुशल मङ्गल पूछा। बतला कि पिताजी कहाँ हैं, सब मातायें कहाँ हैं? सीताजी रामजी और प्रिय भाई लक्ष्मण कहाँ हैं?

व्याख्या: परिजनों को देख ही लिया। अब जिन्हें नहीं देखा उन्हें पूछते हैं। महाराज कैकेयी को अधिक मानते थे। प्रायेण उसी के महल में रहते थे। इसी से सब का आना जाना लगा रहता था। सो कोई नहीं दिखायी पड़ रहा है। भरत का आना सुनकर भी कोई नहीं आया। इसलिए एक एक को पूछ रहे हैं।

दो. सुनि सुत बचन सनेहमय, कपट नीर भरि नयन।
भरत श्रवन मन सूल सम, पापिनि बोली बयन ॥१५९॥

अर्थ: पुत्र के स्नेहमय वचन को सुनकर वह पापिनी आँखों में कपट के आँसू भरकर भरत के मन और कानों के लिए शूल के समान वचन बोली।

व्याख्या: पति विषयक स्नेहमय जिज्ञासा के वचन सुनकर विधवा माता की पीड़ा का पारावार नहीं रहता। सो कैकेयी को कोई पीड़ा नहीं हुई। उसे सात्त्विक भाव नाट्य करने के लिए आँखों में कपट के आँसू भरने पड़े। मन में दुःख नहीं है। दिखाना चाहती है कि मैं दुःखी हूँ। पति में प्रेम न देखकर पुत्र को माता के प्रति अश्रद्धा होती है। अतः यह नाट्य हो रहा है। इसी से कवि पापिनी कह रहे हैं। इसी के करतब से पति मरे। रामजी को वनवास हुआ। यह सब भरत के लिए किया। सो भरत को भी उसके वचन शूल की भाँति चोट पहुँचावेंगे।

तात बात मैं सकल सँवारी। भइ मंथरा सहाय बिचारी ॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ ॥१॥

अर्थ: बेटा! मैंने सारी बातें बना ली थीं। बिचारी मन्थरा सहायक हुई। बीच में विधाता ने कुछ काम बिगाड़ दिया। महाराज इन्द्रपुर को पधार गये।

व्याख्या: कहती है कि आदमी का बिगाड़ा हुआ तो सब मैंने सँवार लिया। अर्थात् राम को राज्य सब मिलकर दिलवा ही चुके थे। इतना बड़ा रघुवंश है। किसी ने मेरी सहायता न की। बिचारी मन्थरा ने वचन सहाय किया। वही एक

मायके की है। जो करणी किया है उसी के प्रकट करने की भूमिका बाँध रही हैं। पहिले ही वार्ता विशेष न कहकर ऐसी बातें करना जिसमें पीछे विवक्षित बात जम जाय यही भूमिका है। जो बात ब्रह्मा बिगाड़ते हैं वह मनुष्य का सुधारा नहीं सुधारता। राजा का देहान्त हो गया। सँवारा सो हमने, बिगाड़ा सो ब्रह्मा ने : यही तामसी बुद्धि है। बात को सँभालकर कहती है। जिसमें भरतजी को कम पीड़ा हो। मरना न कहकर इन्द्रपुर पधारना कह रही है।

सुनत भरतु भए बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा ॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमि तल ब्याकुल भारी ॥२॥

अर्थ : सुनते ही भरतजी विषाद के वश हो गये। जैसे सिंह का नाद सुनकर हाथी सहम उठा हो। तात! तात! हा तात! ऐसा पुकार करके अत्यन्त व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

व्याख्या : हाथी के लिए सिंह का नाद श्रवण मन के लिए शूल के समान है। केहरि का गन्ध हाथी नहीं सह सकते। कोसों दूर भागते हैं। नाद सुनने पर तो कुछ करते धरते नहीं बनता। महाराज का अस्वस्थ होना भरतजी नहीं सह सकते थे। अतः मरण सुनने पर भारी विकलता हुई। अपने को सँभाल न सके। धैर्य छूट गया। चिल्लाकर रो उठे और पृथ्वी पर गिर गये।

चलत न देखन पायउँ तोहीं। तात न रामहिं सौंपेहु मोहीं ॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी ॥३॥

अर्थ : अन्त समय में मैं आपको देख न सका। हे तात! आपने मुझे रामजी को सौंपा भी नहीं। फिर धैर्य धारण करके सँभलकर उठे। बोले माँ! पिता के मरण का कारण बताओ।

व्याख्या : सुरपुर गवन सुनावा। अतः कहते हैं : चलत न देखन पायउँ तोही। भरतजी ने समझा कि सरकार ने दाह क्रिया किया होगा। सो मरती समय मैं मुख भी न देख सका। अन्तिम दर्शन मेरे भाग्य में नहीं था। एक आवश्यक बात मेरे लिए नहीं कर सके। रामजी को मुझे नहीं सौंपा कि मेरे बाद तुम्हीं इसके पिता हो।

कैकेयी कुछ नहीं कहती कि शोक का वेग निकल जाने दो। तब खुशी की बात सुनावेंगे। बेटे को ख्याल है कि राजा तो रामजी हो गये अब मेरा भरण पोषण रामजी के हाथ है। यदि सौंप देते तो बड़ी जागीर मिलने की आशा थी। नहीं तो थोड़ी ही मिलेगी और कौन कह सकता है कि न भी मिले। यह इसे नहीं मालूम है कि अब मैं ही राजा हूँ। अब इसे खुशखबरी सुनानी चाहिए। तब से भरतजी अपने को सँभालकर उठ बैठे। उठने में अपने को सँभालते हैं। हाथ पैर ठीक काम नहीं करते। अब पूछते हैं कि महाराज को कौन सा रोग हो गया था?

सुनि सुत बचन कहति कैकेई । मरमु पाछि जनु माहुर देई ॥
आदिहु तें सब आपनि करनी । कुटिल कठोर मुदित मन बरनी ॥४॥

अर्थ : बेटे का वचन सुनकर कैकेयी कहती है। मानो मर्म पर घाव करके विष दे रही है। वह कुटिल कठोर कैकेयी। आरम्भ से अपनी करणी बड़े प्रसन्न मन से सुना गयी : वर्णन कर गयी।

व्याख्या : भरतजी का वचन सुनकर जो कैकेयी ने कहा उसे आगे कहा जायगा। पहले प्रभाव कहते हैं। मानो मर्म पर घाव करके उस पर विष की पट्टी दी जा रही है। पहला वरदान भरत को राज्य माँगना मर्म पर घाव करना है और दूसरा वरदान रामजी को वनवास देना उस पर जहर की पट्टी बाँधना है। विष खिलाने से भी अधिक सद्यः परिणाम घाव पर विष देने से होता है। क्योंकि खाने के बाद पाक होने में कुछ समय लगता है और घाव पर विष रखने से उसका संसर्ग रक्त से सद्यः हो जाता है। अतः उसका तुरन्त प्रभाव होता है। शूल से वचन ने मर्म पर घाव किया। यथा : भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बयन। दूसरे वचन ने उस पर विष प्रयोग सा प्रभाव डाला।

कैकेयी ऐसी कठोर है कि अपनी कुटिलता भरी करणी लगी प्रसन्न होकर वर्णन करने। कहने लगी कि मन्थरा द्वारा पता लगने पर कि राम का राज्याभिषेक होनेवाला है। मुझे बड़ी चिन्ता हुई कि उनके अभिषेक होने पर तुम्हें उनका गुलाम होकर रहना पड़ेगा। उधर अभिषेक की सब तैयारी हो चुकी थी। फिर मन्थरा ने जैसे जैसे समझाया जैसे जैसे वरदान माँगा गया, जैसे रामजी वन गये, जिस भाँति महाराज का देहावसान हुआ, सब कह गयी।

दो. भरतहिं बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौनु ।
हेतु अपनपउ जानि जिअँ, थकित रहे धरि मौनु ॥१६०॥

अर्थ : भरतजी को रामजी का वन जाना सुनकर पिता का मरण भूल गया। अपने को ही कारण समझकर चुप होकर ठक हो गये।

व्याख्या : राम वनगमन का चोट पितु मरण से भी बड़ा हुआ। मर्म पर घाव करने से विष की पट्टी अधिक दुःखदायक हुई। बड़ा भारी दुःख आजाने से छोटा दुःख भूल जाता है। पिता का मरण सुनने पर तो रोये चिल्लाये। पर राम वनगमन सुनकर मौन होकर स्तब्ध हो गये। क्योंकि मन में समझा कि सब अनर्थ का कारण तो मैं हुआ : पहिले वरदान का ही दूसरा वरदान पोषक है।

बिकल बिलोकि सुतहिं समुझावति । मनहुँ जरे पर लोनु लगावति ॥
तात राउ नहिं सोचइ जोगू । बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू ॥१॥

अर्थ : विकल देखकर बेटे को समझाती है। मानो जले पर नमक छिड़कती

है। बेटा ! महाराज सोचने योग्य नहीं हैं। उन्होंने पुण्य और यश उपार्जन करके संसार में सुख किया है।

व्याख्या : समझती है कि बाप के मरने के शोक में लड़के को राज्य प्राप्ति की खुशी दब गयी। मर्म पर चोट करके विष देना सहा जाता है। जले पर नमक छिड़कना नहीं सहा जाता। भरतजी का कलेजा जल रहा है। तिस पर इसका समझाना नमक का काम कर रहा है। सहा नहीं जाता। कैकेयी कहती है कि पाप कर्म करके सुख नहीं भोगा। पुण्य भी कमाया। यश भी कमाया और सांसारिक सुख भी भोगा। पापी के लिए सोचा जाता है कि इसकी क्या गति होगी या दुखिया के लिए सोचा जाता है कि बिचारा मर गया। कुछ सुख भोगने को न मिला। राजा को तो दोनों लोक में सुख ही सुख हुआ। उनके लिए क्यों सोचते हो ?

जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए ॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राजु पुर करहू ॥२॥

अर्थ : जीते जी जन्म पाने का सभी फल पाया। अन्त में इन्द्रासन पर चले गये। ऐसा अनुमान करके शोक को छोड़ो और समाज सहित नगर का राज्य करो।

व्याख्या : इन्द्रपुर जाना अनुमान से सिद्ध है। महाराज अश्वमेधान्त याजी थे। उनके इन्द्रपुर जाने में सन्देह क्या ? तिस पर इन्द्र के मित्र थे। यथा : ससुर सुरेस सखा रघुराऊ। अतः इन्द्र ने बुलाकर अपने पास रक्खा होगा। इस अनुमान के बल पर सोच छोड़ो। राजा गये। पर अपना समाज छोड़ गये हैं। उस समाज के साथ राज्य करो। क्यों व्यर्थ दुःख करते हो।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाके छत जनु लाग अँगारू ॥
धीरजु धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा ॥३॥

अर्थ : सुनकर राजकुमार भरतजी एकदम सहम गये। मानो पके घाव पर अङ्गार छू गया। वे धैर्य धारण करके लम्बी साँस ली और बोले कि रे पापिनी ! तैने सभी तरह से कुल का नाश किया।

व्याख्या : एक एक बात रानी साहिबा की दूसरे से बढ़कर हो रही है। अतः कवि उपमा भी वैसी ही देते जाते हैं। पहिली बात : मर्म पाछि जनु माहुर देई। दूसरी बात : मानहु लोन जरे पर देई। अब तीसरी बात की उपमा देते हैं कि मानो पके हुए फोड़े पर कोई अङ्गार रख दे। राम का वनवास कहना मानो घाव पक गया है। उस पर राजपुर करऊ कहने ने तो मानो उस पर अङ्गार रखने का काम किया।

धैर्य करके तब उच्छ्वास लिया। नहीं तो स्तब्ध खड़े थे। इस बार बोल ही बैठे। पापिनि बोली बैन। अतः कहते हैं पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा। दिन कर कुल जलरुह चन्दिनि है। राजा को मारा। परिजन को मरणान्त कष्ट दिया। बेटे को वन दिया। कुल नाश में कोई कसर न छोड़ा।

जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहें न मारे मोही ।।
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा ।।४।।

अर्थ : यदि तुझे अत्यन्त ही कुरुचि थी तो जन्म लेते ही मुझे क्यों नहीं मार दिया ? पेड़ काटकर तूने पल्लव सींचा। मछली के जीने के लिए तूने पानी ही उलीच डाला।

व्याख्या : रघुकुल की रीति के विरुद्ध रुचि होना कुरुचि है और मुनिवेष धारण कराके रामजी को वन भेजना अत्यन्त कुरुचि है। इस कुरुचि द्वारा तैंने मेरे यशोमय शरीर का वध किया। तब मुझे जनमते ही क्यों नहीं मारा ? उस समय मर गये होते तो हम अपयश भाजन, प्रियजन द्रोहो तो न होते।

यहाँ सींचा और उलीचा दोनों क्रियाओं से दोनों वरदान अर्थात् १. भरत को राज्य २. राम का वन माँगना द्योतित किया। रामजी को राज्य मिलना आमूल वृक्ष रूप था। उसके सिञ्चन से हम लोग पल्लव रूप आप से आप सिंच जाते। सो उसे तैंसे काटा। वृक्ष की जड़ ही कट गयी। पल्लव के सींचने से पल्लव की रक्षा नहीं हो सकती।

मुझे राज्य देकर ही तू सन्तुष्ट नहीं हुई। तूने समझा कि राम के रहने से मैं राज्य न कर सकूँगा। सम्भव है कि मैं मारा जाऊँ। तूने यह न जाना कि जैसे मछली का जीवनाधार जल है उसी भाँति मेरे जीवनाधार राम हैं। जैसे कोई महामूर्ख यह समझकर कि जल में मछली डूब मरेंगी। पानी उलीच दे उसी भाँति तूने मेरी रक्षा के लिए रामजी को वनवास दिया। पहिले उदाहरण से राम के सुख से अपना सुख कहा। दूसरे से उन्हें जीवनाधार बताया। भाव यह कि मेरा हित चाहती हुई तूने मेरा सर्वनाश कर दिया।

दो. हंसबंस दसरथु जनकु, राम लखन से भाइ।
जननी तूँ जननी भई, बिधि सन कछु न बसाइ ।।१६१।।

अर्थ : सूर्यवंश ऐसा कुल, दशरथ, ऐसे पिता, राम लक्ष्मण ऐसे भाई हुए और माता ! तुम माता हुई। विधाता से कोई वश नहीं चलता।

व्याख्या : जब ब्रह्मदेव ने सूर्यवंश ऐसे उज्ज्वल कुल में जन्म दिया, जिसके समान दूसरा नहीं ऐसा पिता दिया। यथा : दसरथ गुन मन बरनि न जाहीं। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं। राम लक्ष्मण सा भाई दिया : जिन्हके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे और माँ तुम्हें बना दिया। जिसके पापी हृदय ने मेरा हित चाहते हुए सर्वनाश कर दिया। यहाँ दूसरे जननी शब्द में काकु है। भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते।

जबतैं कुमति कुमत जिअ ठयेऊ। खंड खंड ह्वै हृदय न गयेऊ ।।
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा ।।१।।

अर्थ : रे कुमति ! जब यह दुर्बुद्धि तेरे हृदय में आयी तेरा हृदय टुकड़े टुकड़े क्यों न हो गया ! वर माँगने में तेरे मन में पीड़ा क्यों न हुई ! तेरी जीभ गली नहीं ! मुख में कीड़े न पड़े !

व्याख्या : जिस हृदय में सदा सुमति रही। जो सदा राम प्रेम से सरस रहा, उसमें जब दुर्बुद्धि का प्रवेश हुआ, उससे राम प्रेम जाता रहा। तब वह टुकड़े टुकड़े क्यों न हो गया। क्योंकि सरस वस्तु रस के वियोग से फट जाता है। इसलिए हृदय को फट जाना चाहता था।

यदि फटा नहीं तो कम से कम वर माँगते समय उसमें पीड़ा तो होनी ही चाहती थी। पर तुझे पीड़ा तक न हुई। यथा : मागउँ दूसर बर करजोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी। जिस जीभ से जिस मुख से तैने ऐसा वरदान माँगकर इतना बड़ा घोर पाप किया उस जीभ को सद्यः गल जाना चाहता था और उस मुख में कीड़े पड़ जाने चाहते थे। यथा : ते नर नरकरूप जीवत जग भवभंजन पद बिमुख अभागी। भला तुझसे बिगड़ा तो बिगड़ा महाराज कैसे भूल गये ?

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही ॥
बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी ॥२॥

अर्थ : राजा ने तेरा विश्वास कैसे किया। मरती समय विधाता ने उनकी बुद्धि हरण कर ली। ब्रह्मदेव भी स्त्री के हृदय की गति नहीं जान पाते जो सब प्रकार के कपट पाप और अवगुण की खानि होती है।

व्याख्या : महाराज तो नीतिकुशल थे। उन्हें समझना चाहिए था कि रामजी का अभिषेक है। आज यह कोपभवन में आयी है। खुशी नहीं मनाती। वरदान माँगती है। अवश्य इसे रामजी से भय है। रामजी के विरुद्ध ही कुछ माँगेगी। ऐसे अवसर पर विशेषतः तेरा विश्वास तो करना ही नहीं चाहता था। क्योंकि कोपभवन में जाने से ही तेरा भव व्यक्त हो गया था। सो : कालदण्ड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा।

यदि कहिये कि राजा को इस बात का भरोसा था कि इसके हृदयगति को मैं जानता हूँ। यथा : जानेउ मरम राउ हँसि कहई। तुमहि कोहाब परम प्रिय अहई। तो मायारूप होने से ब्रह्मा भी नहीं जान सकते कि किस स्त्री की किस समय कैसी गति हो जायगी। माया के परिवार काम क्रोध से शिव चतुरानन के डरने की बात सुनी जाती है और नारि तो उनमें सबसे अधिक दारुण दुःखद है। यथा : काम क्रोध लोभादि पद प्रबल मोह कै धारि। तिन मह अति दारुन दुःखद मायारूपी नारि। जो जिसकी गति नहीं जानता उससे वह डरता है। अतः कहा जा सकता है कि विधाता को भी नारी के हृदय की गति नहीं मालूम। जितने कपट हैं, पाप हैं और अवगुण हैं। ये सब स्त्रियों के हृदय से ही उत्पन्न हुए हैं। जिस भाँति जितने धातु हैं। वे सब खानि से ही उत्पन्न होते हैं। कुछ पण्डितों का मत है कि विष देना

पहिले पहल स्त्रियों ने ही निकाला। नहीं तो जिसके पिता को वेदाधिकार हो, पति को हो, पुत्र को हो पर उसे न हो। यह बात निष्कारण नहीं हैं।

सरल सुसील धरमरत राऊ। सो किमि जानइ तीय सुभाऊ॥
अस को जीव जंतु जग मांही। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नांहीं॥३॥

अर्थ : महाराज सरल सुशील धर्मात्मा थे। वे स्त्री स्वभाव को क्या जानें। ऐसे जीव जन्तु संसार में कौन है जिसे रघुनाथ प्राणप्रिय न हों।

व्याख्या : सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगह अगाध दुराऊ। महाराज सरल, स्त्री कपटखानि : महाराज सुशील और स्त्री अघखानि : महाराज धर्मरत और स्त्री अवगुणखानि। कपटखानि होने से अगह, अघखानि होने से अगाध और अवगुणखानि होने से दुराऊ। अतः महाराज तो जान ही नहीं सकते थे।

जिनहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहि बिषम बिष तामस तीछी। क्योंकि अपनी आत्मा किसे प्रिय नहीं है। राम सो परमातमा भवानी। राम परमात्मा होने से सबकी आत्मा हैं। अतः वे सबको प्रिय हैं।

भे अति अहित रामु तेउ तोहीं। को तू अहसि सत्य कहु मोहीं॥
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बठहि जाई॥४॥

अर्थ : वे राम तुझे अत्यन्त अहित हो गये। तू है कौन मुझे ठीक ठोक बतला। चाहे तू जो हो मुख में कालिख लगाकर उठ और मेरी आँखों के आड़ में जाकर कहीं बैठ।

व्याख्या : अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा। बैरिहु राम बड़ाई करहीं। वे राम तुझे अत्यन्त अहित हो गये। अब तू है कौन ? मुझसे सत्य बतला दे। मेरी वह माँ तो तू नहीं है। उसे तो रामजी प्राण से भो प्यारे थे। तब मेरे माँ के रूप में तू कौन है ? कोई राक्षसी है या पिशाची है। जो मेरी माँ का रूप धारण किये हुए है।

अच्छा चाहे तू वही हो चाहे दूसरी हो। दुष्ट बुद्धि का मुख मसि योग्य होता ही है। यथा : असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लोई। लोचन ओट बैठु मुँह गोई कहकर पति ने त्याग किया था : आँखि ओट उठि बैठहि जाई कहकर पुत्र ने भी त्याग किया। यथा : तजेउ पिता प्रह्लाद विभोषन बंधु भरत महतारी।

दो. राम बिरोधी हृदय तें, प्रकट किन्ह बिधि मोहिं।
मो समान को पातकी, बादि कहौं कछु तोहिं॥१६२॥

अर्थ : ब्रह्मदेव ने मुझे राम विरोधी के हृदय से प्रकट किया है अतः मेरे समान पापी कौन है। तुझे मैं व्यर्थ ही कुछ कह रहा हूँ।

व्याख्या : त्याग के बाद अब उस ओर से क्रोध हटा तब आत्मग्लानि हुई कि मैं विरोधी के हृदय से पैदा हुआ। ऐसी ही ग्लानि सती को हुई थी। यथा : दच्छ सुक्र सम्भव यह देही। पापो मैं हूँ तुम्हें व्यर्थ पापिनी कहता हूँ। कर्म सुभासुभ

देइ विधाता। विधाता ने मेरा पाप देखकर ही तेरे उदर से मेरा जन्म दिया है। तू तौ राम विरोधी के उदर से नहीं उत्पन्न हुई। मैं तो पूर्वजन्म का पापी हूँ। तू तो केवल इस जन्म की पापिनी है अतः मेरा तुझसे कहना व्यर्थं है।

सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई॥१॥

अर्थ : शत्रुघ्न का शरीर माता की कुटिलता सुनकर क्रोध से जल रहा था। कोई वश नहीं चलता था। उस अवसर पर कुबरी वहाँ आगयी। उसने अनेक प्रकार के कपड़े और गहने से अपने को सजा रक्खा था।

व्याख्या : अभी तक शत्रुघ्नजी बोले ही नहीं। यह रघुकुल का विनय है। बड़ों के सामने छोटे बोलते ही नहीं। शत्रुघ्नजी सबसे छोटे हैं। रामायण भर में ये बोले ही नहीं। यही हाल लक्ष्मणजी का भरतजी के सामने रहता है। शत्रुघ्नजी भरतजी के साथ हैं। माता को कुटिलता सुन सुनकर देह में आग लगी हुई है। आज दूसरे से यह बात हुई होती तो क्या न कर बैठते। माँ हैं। इसलिए कुछ कर नहीं सकते। भरतजी ने तो खरी खोटी भी कही। पर ये चुप ही रहे।

जिस समय भरतजी ने माता का त्याग किया उसी अवसर पर कुबरी वहाँ चली आयी। वहाँ कोई आ नहीं सकता था। एकान्त में बात हो रही थी। कुबरी का साहस बढ़ा हुआ है। वाहवाही लेने आयी है। समझ लिया कि मेरी हितचिन्तकता अब तक रानी साहिबा कह चुकी होंगी। सो वस्त्राभूषण जो कैकेयी से मिले हैं उससे सज धजकर चखपूतरी बनी हुई आयी मुबारकबादी देने।

लखि रिसि भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुह भरि महि करत पुकारा॥२॥

अर्थ : लखकर लक्ष्मणजी के छोटे भाई क्रोध से भर गये। मानो जलती हुई आग में घी की आहुति पड़ी। कूबर ताककर हुमक : कस कर लात मारा। मुँह के बल जमीन पर पुकार करती हुई गिरी।

व्याख्या : यद्यपि भरतजी के साथ हैं। पर लक्ष्मणजी के छोटे भाई हैं। तेजस्वी स्वभाव है। उसके सजधजकर आने का आशय लखा। क्रोध से भर गये कि इसी की लगायी सब आग है। उसके आने से जलती हुई आग में घी का काम किया। क्रोध भभक उठा न बोले न चाले।

कूबर ताककर लात मारा कि सब दोष की गठरी यही है। वीर के लात का आघात कूबरी क्या सहती। मुँह के बल पृथ्वी पर गिरी। चिल्लाने लगी कि क्या यही नेकी का बदला है? होम करते हाथ जल रहा है।

कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू॥
आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा॥३॥

अर्थ : कूबर टूटा। सिर फूटा। दाँत टूट गये। मुँह से रक्त बह चला : कहने लगी हाय दैव ! मैंने क्या बिगाड़ा ? मैंने भला किया : उसके बदले में फल बुरा मिला ?

व्याख्या : कूबर पर लात लगा। इसलिए कूबर टूट गया। मुँह के बल गिरी। इससे कपाल में भी चोट आयी। दाँत भी टूट गये। भीतर से भी रक्त और बाहर से भी रक्त बह चला। फोरें जोग कपार हमारा का साफल्य है। कहने लगी अरे दैया रे मैंने क्या बिगाड़ा। बिगाड़ा तो कौसल्या ने जिन्होंने : रचि प्रपञ्च भूपति अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई। मैंने तो भला किया। रानी को खबर दे दिया। नहीं तो आज रामचन्द्र राजा हो गये होते।

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी ॥
भरत दयानिधि दीन्ह छड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई ॥४॥

अर्थ : सुनकर शत्रुघ्नजी उसे नख से चोटी तक खोटी जानकर उसको झोंटा : केश पकड़ पकड़कर घसीटने लगे। दयासागर भरतजी ने उसे छोड़ा दिया। दोनों भाई कौसल्याजी के पास गये।

व्याख्या : उसकी बात सुनकर शत्रुघ्नजी ने लखा कि इसके कूबर में ही दोष नहीं हैं। इसके सर्वाङ्ग में दोष भरा है। उसका केश पकड़कर एक ओर घसीटकर फेंका और फिर घसीटकर दूसरी ओर फेंक दिया।

भरतजी दयानिधान हैं। उस पर भी दया किया कि यह चेरी है। इसकी इतनी ही बुद्धि थी। जब रानी की यह गति है तो चेरी का क्या दोष है। उठकर छोड़ाया। कहने से काम नहीं चला। अतः दुःखिनी रामजी की माता कौसल्याजो के पास दोनों भाई गये। महाराज का शव वहीं था।

## प्रेमवर्णन प्रसङ्ग

दो. मलिन बसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुख भारु।
कनक कलप बर बेलि बन, मानहुँ हनी तुसारु ॥१६३॥

अर्थ : देखा कि : कपड़े मैले, बेरङ्ग, विकल, शरीर दुबली, दुःख के बोझ से दबी : ऐसी मालूम होती थीं। जैसे सुनहली लहलहाती हुई कल्पलता को वन में पाला मार गया हो।

व्याख्या : आज महाराज दशरथ की पट्टाभिषिक्ता महिषी की यह दशा है कि कपड़े मैले हो गये हैं। शरीर का रङ्ग काला पड़ गया है। शोक से विकल हैं। दुबली पड़ गयी हैं। बड़ा भारी दुःख है। क्या थीं क्या हो गयीं ? जैसे पाला मार देने से कल्पलता झुलस गयी हो। कैकेयी में ऐसे लक्षण एक भी न थे। उसके कपड़े भी साफ थे। रङ्ग भी फीका नहीं था। पहले की सी ज्यों की त्यों थी। बल्कि अधिक प्रसन्न दिखायी पड़ी थी।

भरतहिं देखि मातु उठि धाई । मुरुछित अवनि परी झइआई ॥
देखत भरतु बिकल भये भारी । परे चरन तनु दसा बिसारी ॥१॥

अर्थ : भरत को देखकर माता :`कौसल्या उठकर दौड़ीं पर चक्कर खाकर पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। देखते ही भरतजी बड़े विकल हुए। चरणों पर गिर पड़े। शरीर की सुध बुध न रही।

व्याख्या : कैकेयी और कौसल्या में अन्तर दिखला रहे। दुःख के समय बेटे को आते देखकर जैसी माँ की गति होती है वही कौसल्याजी की है। जैसा वात्सल्य रामजी पर वैसा ही भरत पर। आते देखकर मिलने के लिए उठ दौड़ीं। दुर्बलता से चक्कर आगया। मूर्च्छित हो गयीं। इधर भरतजी की यह दशा हुई कि देखकर भारी व्याकुल हुए। कौसल्याजी के चरणों पर शरीर की सुध.बुध खोकर जा गिरे। कौसल्याजी की दशा देखकर विकल हुए थे। मूर्च्छित देखकर भारी विकल हुए।

मातु तात कहँ देहि देखाई । कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
कैकइ कत जनमी जग माँझा । जौं जनमि त भइ काहें न बाँझा ॥२॥

अर्थ : माता ! पिताजी को दिखा दो। सीताजी और दोनों भाई राम लक्ष्मण कहाँ हैं। कैकेयी संसार में क्यों पैदा हुई। यदि हुई तो वन्ध्या क्यों न हुई ?

व्याख्या : मातु सम्बोधन से भाव यह कि कैकेयी माता नहीं। माता तो तू है। जो पिता को दिखावे वही माता है : मरती समय पिता को नहीं देखा। अतः शव का ही दर्शन चाहते हैं। सीताजी और राम लक्ष्मण दोनों भाई कहाँ हैं ? इन दोनों प्रश्नों से पिता के प्रति तथा भाइयों के प्रति अपना प्रेम द्योतित किया। अथवा इतना ही मालूम है कि वन गये। पर कहाँ हैं यह नहीं जानते। भाव के शुद्ध होने से अर्थ युक्त बातें आप से आप मुख से निकलती हैं। भरतजी के प्रश्न स्वाभाविक हैं। पर कैसा शोकोद्गार उससे प्रकट होता है।

माता नहीं कहते कैकेयी कहते हैं। उसी ने सब बिगाड़ा। इसलिए कहते हैं कि वह जनमी क्यों ? जगत् के हित के लिए जगत् में जन्म होता है। उससे घोर अहित हुआ। यदि जनमी तो उसे वन्ध्या होना चाहिए था। न बेटा होता न उसके लिए यह इतना बड़ा अनर्थ करती।

कुल कलंकु जेहि जनमेउ मोही । अपजस भाजन प्रियजन द्रोही ॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी । गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥३॥

अर्थ : जिसने मुझ कुलकलङ्क को जन्म दिया है। मैं अपयश का पात्र और प्रियजन का द्रोही हुआ। मेरे समान तीनों भुवन में कौन अभागा है। जिसके कारण माँ ! यह तेरी दशा हुई।

व्याख्या : जिसके पुत्रवती होने से रघुकुल में कलङ्क लगा। मैं कलङ्की पैदा

हुआ। जगत कहेगा कि भरत के कारण उसके पिता मरे। रामजी को वन हुआ। महाराज के मरण और रामजी के वन से बढ़कर प्रियजन द्रोह क्या होगा ?

जिस बेटे के कारण माता को विधवा होना पड़े, पुत्र शोक भी सहन करना पड़े, मूर्च्छित होना पड़े और उस : बेटे ने कुछ किया न हो तो उस बेटे से बड़ा अभागा तीनों लोक में कौन होगा ?

पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू ॥
धिग मोहि भयेउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूखन भागी ॥४॥

अर्थ : पिताजी स्वर्ग गये। रघुकुल केतु वन गये। मैं इन सब अनर्थों का कारण हुआ। मुझे धिक्कार है। मैं बाँस के वन में आग होकर कठिन दाह दुःख और दूषण का भागी हुआ।

व्याख्या : अपना अभाग कहते हैं : पातीति पिता। रक्षा करनेवाले पिता तो स्वर्ग सिधारे और रघुकुल केतु श्रुतिसेतुरक्षक वन को गये। दोनों को असाधारण पीड़ा हुई। ये सब बड़े बड़े अनर्थ मेरे कारण हुए। दुसह दाह भागी यथा : मरन कोटि सम दारुन दाहू। दुःख के भागी यथा : संकर साखि रहेऊ ये घाये। दूषण के भागी यथा : एक भरत कर सम्मत करही। यह सब दुःख मुझे हुआ। विलाप में ही भरतजी जो कुछ उन्हें कहना था कह गये। अपने जन्म को धिक्कारते हैं। रघुबर केतू पाठ मानने से चारों भाइयों में श्रेष्ठ अर्थ करना पड़ेगा।

दो. मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि ॥१६४॥

अर्थ : माता भरत के वचन सुनकर फिर से संभलकर उठीं। उठाकर छाती से लगाया। आँखों से आँसू चल रहा था।

व्याख्या : अभी तक माँ भी पृथ्वी पर पड़ी है। भरतजी भी पड़े हैं। भरत का विलाप पृथ्वी पर पड़े ही पड़े हो रहा है। भरत के मृदु वचन ने सिञ्चन का काम किया। माँ सँभलकर उठ बैठी। भरतजी को उठाकर छाती से लगाया और हृदय में लगाये हुए रो रही हैं। माँ हैं : बेटे का बिलाप नहीं सुन सकीं।

सरल सुभाय मायँ हिय लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए ॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदयँ समाई ॥१॥

अर्थ : सरल स्वभाव से माँ ने हृदय में लगाया। अत्यन्त प्रेम के साथ मानों रामजी लौट आये। फिर लक्ष्मणजी के छोटे भाई से मिलीं। शोक और स्नेह हृदय में समाता नहीं है।

व्याख्या : कौसल्याजी महाराज दशरथ की योग्या हैं। यथा : तुम गुरु विप्र

धेनु सुर देवी। तस पुनीत कौसल्या देवी। जैसे महाराज सरल थे वैसी ही यह भी सरल हैं। भरतजी के मिलने पर ऐसा प्रेम है मानो रामजी लौटकर आये हैं।

भरत को राम समान जानकर मिलीं और शत्रुघ्न को लक्ष्मण के समान जानकर मिलीं। शोक भी हृदय में समाने लायक नहीं। न प्रेम ही समाने लायक है। स्नेह से कलेजे से लगाती हैं। शोक से रो रही हैं। यहाँ पर स्पष्ट है कि शत्रुघ्नजी लक्ष्मणजी सहोदर भाई थे।

देखि सुभाउ कहत सबु कोई। राम मातु अस काहे न होई॥
माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे॥२॥

अर्थ : स्वभाव को देखकर सब कोई कहता था कि रामजी की माँ ऐसी क्यों न हों! माता ने भरतजी को गोद में बिठा लिया और आँसू पोंछकर कोमल वचन कहा।

व्याख्या : घर के लोग प्रिय परिजन जिन्हें वहाँ जाने का अधिकार था सब लोग वहाँ पहुँच गये। बड़े मारके का समय है। यहीं भविष्य का निर्णय है। कोसल्याजी के स्वभाव की सरलता देखकर सबके मुँह से वाह निकल गया। कहने लगे कि यह राम की माँ हैं। न रामजी के हृदय में भेद न इनके हृदय में भेद। दूसरी माँ ऐसे समय में कठोर बोलती।

कौसल्याजी का भरतजी पर बिल्कुल और सपुत्र सा भाव है। गोद में बिठाती हैं। आँसू पोंछती हैं। रुख से समझ गयीं कि कैकेयी का अनादर करके आ रहे हैं। कष्ट को कम करने के लिए इस प्रकार का बर्ताव कर रही हैं।

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥३॥

अर्थ : वत्स! मैं बलि जाऊँ। अब भी धैर्य धरो। बुरा समय जानकर धैर्य धरो। मन में हानि ग्लानि न मानो। इस बात को जान लो कि काल और कर्म की गति बनायी हुई नहीं है।

व्याख्या : धैर्य न धारण करने से बहुत काम बिगड़ चुका। धैर्य न धारण करने से ही महाराज का देहावसान हुआ। बहुत हो चुका। अब धैर्य धारण करो। समय घोर उपस्थित है। यह जानकर शोक छोड़ो। बड़ी बड़ी आपत्ति का सामना करना है : महाराज की और्ध्वदैहिक क्रिया की ओर इङ्गित है। जो बिगड़ा सो बिगड़ा। अधिक न बिगड़े :

पितु सुर पुर बन रघुकुल केतू। यह हानि है। धिग मोहि भयउ बेनुबन आगी इत्यादि ग्लानि है। माँ समझाती हैं कि हानि ग्लानि न मानो। काल और कर्म गति किसी की की हुई नहीं है। अर्थात् किसी के करने से काल की और कर्म की गति नहीं बनती।

काहुहि दोसु देहु जनि ताता । भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ।।
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा । अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ।।४।।

अर्थ : बेटा ! किसी को दोष मत दो। विधाता सब प्रकार से मेरे प्रतिकूल हो गये हैं। यदि इतने दुःख पर भी मुझे जिलाया तो कौन जाने उसे क्या मञ्जूर है।

व्याख्या : वही बात जो लक्ष्मणजी ने निषादराज से कही था : काहु न कोउ सुख दुःख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता : कौसल्याजी कह रही हैं। य रामजी की माता हैं। इन्हें कैकेयी को दोष देना अखरता है। रामजी को भी इसी भाँति अच्छा नहीं मालूम हुआ कहा : दोष देइ जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई। कहती हैं कि उनकी बुद्धि का पलटा खाना मेरे प्रति विधाता के वाम होने का फल है। न कैकेयी को दोष दो न अपने को।

दो. पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु, पहिरे बलकल चीर ।।१६५।।

अर्थ : बेटा ! पिता की आज्ञा से रघुवीर ने गहने और कपड़े उतार दिये। हृदय में न हर्ष हुआ न विस्मय हुआ। वल्कल : छाल धारण कर लिया।

व्याख्या : यही चोट राजा दशरथ को हुई : राउ सुनाइ दीन्ह बनवासू। सुनि मन भयउ न हरष हरासू। सो सुत बिछुरत गये न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना। कौसल्याकी के हृदय में सरकार का बिना हर्ष विषाद के मुनिवेष धारण करना चुभा हुआ है। उसी कष्ट को भरतजी के सामने व्यक्त कर रही हैं।

मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू । सब कर सब बिधि करि परितोषू ।।
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागीं । रहइ न राम चरन अनुरागी ।।१।।

अर्थ : प्रसन्न मुख न राग, न रोष। सबका सब बिधि से परितोष करके वन को चले। सुनिके सीता सङ्ग लगी। राम चरण से अनुराग करनेवाली रुकी नहीं।

व्याख्या : भूषण वसन परित्याग और वल्कल धारण में भी मुखश्री वैसी ही प्रसन्न थी जैसी सदा रहा करती थी। क्योंकि उनके मन में न किसी के प्रति राग था न रोष था। राग और रोष दोनों में से किसी के वेग से आकृति में विकार हो जाता है। उन्हें वन जाने का विषाद भी नहीं हुआ। राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं। जाने के पहिले सबका सब विधि से परितोष किया। यथा : कहि प्रिय बचन सकल समुझाये। बिप्रबृंद रघुबीर बोलाये। जाचक दान मान परितोषे। कहि प्रिय बचन प्रेम परिपोषे इत्यादि।

विकलता से क्रम का ध्यान नहीं है। इसलिए कहती हैं कि उन्होंने किसी को साथ नहीं लिया। उनका जाना सुनकर सीता साथ लग गयी। उसको मैंने समझाया। स्वयं रामजी ने समझाया। उसके श्वसुर ने समझाया। और भी लोगों ने

समझाया। पर उसका अनुराग ऐसा दृढ़ था कि कोई उसको अपने निश्चय से हटा न सका।

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥२॥

अर्थ : सुनते ही लक्ष्मणजी उठकर साथ चले। रामजी के यत्न करने पर भी न रुके। तब रामजी सब ही को सिर नवाकर सीता और छोटे भाई को साथ लेकर चले।

व्याख्या : सुनते ही लक्ष्मण ने सोचने विचारने को स्थान ही नहीं दिया। उनके रोकने के लिए केवल रामजी ने ही यत्न किया। सुमित्राजी ने आज्ञा ही दे दी। उर्मिला बोली ही नहीं। महाराज ने अकेले उनका रोकना अनुचित समझा। अत: उन्हें केवल रामजी ने रोका था पर नहीं रुके। तब रामजी सबको प्रणाम करके सीता और लक्ष्मण के साथ चले।

रामु लखनु सिय बनहि सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए॥
एहु सब भा इन्ह आँखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु जीव अभागे॥३॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीता वन को चले गये। मैं न साथ गयी और न प्राणों को ही साथ भेज सकी। यह सब इन्हीं आँखों के सामने हुआ। फिर भी अभागे जीव ने शरीर न छोड़ा।

व्याख्या : लक्ष्मण और सीता के वन जाने पर दो ही रास्ता था। या तो मैं साथ चली जाती या प्राणों को साथ भेज देती। जैसा कि सीता ने सोचा था : चलन चहत वन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू। की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना।

सुनने में और आँखों से देखने में बड़ा भेद है। आँखों देखने में जैसा प्रभाव हृदय पर पड़ता है वैसा सुनने में नहीं पड़ता। यथा : अब सब आँखिन्ह देखेंउ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई। सो मैंने तो सब आँखों से देखा। परन्तु मेरा जीव सुकृती नहीं है। सुकृती होता तो शरीर छोड़ देता। यह अभागा है। इसलिए नहीं छोड़ सका। न जाने इसे क्या क्या देखना है।

मोहिं न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना॥४॥

अर्थ : अपने स्नेह का विचार करने पर मुझे लज्जा नहीं है। राम जैसा बेटा और मैं माँ हूँ। जीना मरना ठीक महाराज ने जाना। मेरा हृदय तो सौ वज्र के समान है।

व्याख्या : राम ऐसा बेटा जिसने माँ बाप की आज्ञा से प्रसन्नता पूर्वक क्षण भर में सर्वस्व त्यागकर वन का रास्ता लिया। मैं उसकी माँ हूँ। उसके विरह

होने पर जीते रहने में मुझे लज्जा होनी चाहिए। सो मुझे लज्जा नहीं है। जिसे लज्जा थी उसने शरीर छोड़ दिया। लज्जा महाराज को थी। यथा : कहेउ राज बन दियेउ नारि बस गरि गलानि गए राउ। उन्होंने ही जाना कि कैसे जीना चाहिए और कैसे मरना चाहिए। जिअत राम बिधु बदन निहारा। राम बिरह करि मरन सँवारा। मेरा हृदय तो सौ वज्र का सा कठोर है। जो ऐसे ऐसे आघात : पुत्र वनवास और पति के स्वर्गवास पर भी खण्ड खण्ड नहीं हुआ।

दो. कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवासु।
ब्याकुल बिलपत राजगृह, मानहुँ सोक निवासु ॥१६६॥

अर्थ : कौसल्याजी के वचनों को सुनकर भरतजी के सहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा। राजगृह मानों शोकगृह हो गया।

व्याख्या : यहाँ मातु बचन न कहकर कौसल्या के वचन कहते हैं। क्योंकि भरतजी का आना सुनकर सभी रानियाँ वहाँ चली आयीं थीं और सबने कौसल्याजी का वचन सुना। सबका धैर्य छूट गया। सब की सब विलाप कर रही हैं। वहाँ रोनेवाले सब हैं। समझानेवाला कोई नहीं। इसलिए कहते हैं कि राजगृह सीधे सीधे शोक का निवास स्थान हो गया।

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदयँ लगाई ॥
भाँति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुहाए ॥१॥

अर्थ : दोनों भाई विकल होकर विलाप करने लगे। तब कौसल्या ने हृदय से लगा लिया और विवेकमय अनेक बातें कहकर भरतजी को समझाया।

व्याख्या : भरतजी के साथ शत्रुघ्नजी भी विलाप करने लगे। शत्रुघ्नजी अब तक धैर्य धारण किये रहे। कौसल्याजी मूर्च्छित होकर गिरीं। भरतजी व्याकुल होकर गिरे। विलाप करने लगे। पर शत्रुघ्नजी ने धैर्य न छोड़ा। पर कौसल्याजी के वचन सुनने पर उनका भी धैर्य छूट गया।

कौसल्याजी का अलौकिक विवेक है। भरतजी के प्रेम को जानती हैं। आगे कहेंगी भी : गूढ़ सनेह भरत मन माँहीं। रहे नीक मोहि लागत नाँहीं। सो दोनों भाइयों को विकल देखकर अपने हृदय के साथ बड़ी जबरदस्ती करती हैं। दोनों भाइयों को अधिक विकल देखकर हृदय से लगा लेती हैं। सुन्दर विवेकमय वचन कहकर अनेक भाँति से समझाती हैं। यथा :

दो. पुत्रजन्म पितु मातु गति हेतु होत जग जान।
याते सुत पितु हेतु जनि सोक करहु मति मान ॥
यथा दारुद्वै सरित बिच बहत कबहुँ मिली जात।
तथा मिलन जग जीव को नहिं अचरज बिलगात ॥
चौदह वर्ष बिताइ पुनि ऐहैं रघुकलकेतु।
भावी प्रबल न सकइ मिटी जनि सोचउ तेहि हेतु ॥

दुख सुख फल निज कर्म के टारि सकै नहिं कोय।
याते धरि धीरज सहिय जो कछु होनी होय॥

भरतहुँ मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाई॥
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥२॥

अर्थ : भरतजी ने भी सब माताओं को पुराण और वेद की सुन्दर कथायें कहकर समझाया। भरतजी दोनों हाथ जोड़कर छलरहित पवित्र और सरल वाणी बोले।

व्याख्या : जब भरतजी शान्त हुए। तब सब माताओं को समझाने लगे। वेद के अधिकारी हैं। अतः वेद पुराण की कथा कहकर समझाने लगे। यथा :

दो. बड़े बड़े संकट सहत सहि न सकत सो छोट।
काँच सहै नहिं सहि सकै हीरक घन को चोट॥
पतिदुःख सुतदुःख राजदुःख निजदुःख शैव्यारानि।
सह्यौ कह्यौ काहुहि न कछु धर्म मर्म पहिचानि॥
यहि असार संसार में पग पग कठिन कलेस।
ईस भजन बिनु अम्ब सुनु कतहुँ नहीं सुख लेस॥
जहँ संयोग वियोग तहँ कोउ सकैं नहि टारि।
सब प्रकार ममता तजै बुध अस हिय निरधारि॥
सपनो सो अपनो न कछु झूठो जग व्यवहार।
भजिय राम सब काम तजि अम्ब इहै जगसार॥

जब कुछ शान्ति हुई तब भरतजी अपनी सफाई देते हैं। स्थिति ऐसी बेढङ्ग है कि कोई मान नहीं सकता और न सफाई हो दी जा सकती है। अतः शपथ लेते हैं। छलविहोन वाणी है। इसलिए शुचि है फिर भी सरल है। जिसके अर्थ समझने में कोई कठिनता न हो। मृदु मधुर विनययुक्त वाणी ही सुवाणी है। माताओं के सामने बोल रहे हैं। अतः दोनों हाथ जोड़कर बोलते हैं कि कृपा करके सुन लिया जाय !'

जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइ गोठ महि सुरपुर जारें॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हे॥३॥
जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं एहु होइ मोर मत माता॥४॥

अर्थ : जो पाप माता पिता और पुत्र के मारने से होता है और जो पाप गोशाला और ब्रह्मपुरी जलाने से होता है। जो पाप स्त्री और बालक के मार डालने से होता है और जो पाप मित्र और राजा को विष देने से होता है और जो जो पातक उपपातक मन वाणी और शरीर से किये हुए कवियों द्वारा कहे गये हैं। हे विधाता ! वे सब पाप मुझे हों। यदि इसमें माता ! मेरी सम्मति हो।

व्याख्या : वेद की आज्ञा है : मातृदेवो भव पितृदेवो भव। माता पिता परमेश्वर के रूप हैं। वे ही उत्पन्न करनेवाले और पालन करनेवाले हैं। सन्तति अपनी आत्मा हैं। उन्हें जिसने मारा उसके पाप का क्या ठिकाना? गाय लोक की माता है जिसके रोम रोम में देवताओं का निवास है। जिसके पञ्चगव्य से त्वगस्थिगत पाप दूर होता है। जिसके गोबर के लेप से स्थान पवित्र होकर धर्म कर्म करने योग्य होता है। उनके रहने के लिए जो शाला बनी है उसमें जिसने आग लगाया, न जाने कितनी गाय उसमें बँधी हैं, ऐसे आग लगानेवाले के पाप का अन्त क्या है? वर्णमात्र के जो गुरु हैं, जिनके धर्म की रक्षा से वैदिक धर्म की रक्षा है, उनकी पुरी में जिसने आग लगाया उसने कौन सा महा पाप नहीं किया। इन लोगों का पाप घोरातिघोर है। इनके अतिरिक्त और भी महा पाप हैं। जैसे स्वर्णस्तेय सुरापान आदि तथा उपपातक हैं। यथा : महायन्त्र निर्माण; बड़े बड़े इंजिन बनाना। जिनसे हजारों लाखों की जीविका मारी पड़े। भरतजी ब्रह्मदेव को साक्षी देकर कहते हैं कि ये सब पातक मुझे हों। अर्थात् अकृत्यकरणवाले सब पाप मुझे हों। यदि इस अनर्थ में मेरी सम्मति हो।

दो. जे परिहरि हरि हर चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि, जौं जननी मत मोर ॥१६७॥

अर्थ : हे माता! जो हरिहर के चरणों को छोड़कर घोर भूतगण का भजन करते हैं, ब्रह्मदेव मुझे उनकी गति दें। यदि इस अनर्थ में मेरी सम्मति रही हो।

व्याख्या : कर्म सम्बन्धी पाप के विषय में कहकर अब उपासना सम्बन्धी पाप के विषय में कहते हैं। परिहरि का भाव यह कि पहिले हरिहर का भजन करते थे। पर तुच्छ सिद्धियों के लोभ में पड़कर घोर भूत प्रेतादि के पूजन में लग गये। ऐसे कर्णपिशाची आदि देखे गये हैं। जो अतीत घटना सब ठीक ठीक कह देते हैं। उनको सदा अशुद्ध रहना पड़ता है। देव पितृकर्म से उन्हें वञ्चित रहना पड़ता है। फलतः मरने पर उन्हें भूत ही होना पड़ता है : आजकल परलोक विद्या के नाम से भूत भजन का प्रचार बढ़ चला है। भरतजी कहते हैं कि मुझे उनकी गति मिले। यदि इस अनर्थ में मेरा मत हो।

बात यह है कि इतनी बात तो सभी जानते हैं कि भरतजी ने किया कुछ नहीं है। अधिक से अधिक जो उनके विरुद्ध कहा जा सकता है वह इतना ही है कि उनके सम्मति से सब कुछ हुआ। यथा : एक भरत कर सम्मत कहहीं। इसलिए भरतजी अपनी सम्मति न होने का शपथ ले रहे हैं।

बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं ॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी ॥१॥
लोभी लंपट लोलुप चारा। जे ताकहि पर धनु पर दारा ॥
पावउँ मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी एहु संमत मोरा ॥२॥

अर्थ : जो वेद को बेंचते हैं। धर्म को दूह लेते हैं। चुगुलखोर हैं। जो दूसरे का पाप मुँह से बोल देते हैं। कपटी कुटिल झगड़ालू क्रोधी वेद की दिल्लगी उड़ानेवाले और विश्व के विरोधी हैं। लोभी हैं। लम्पट हैं। लालच के दास हैं। जो पराये धन और पराई स्त्री पर निगाह लगाये रहते हैं। मैं उनकी घोर गति को प्राप्त होऊँ। यदि माँ ! अनर्थ में मेरी सम्मति हो।

व्याख्या : अब ज्ञान सम्बन्धी पाप के विषय से कहते हैं। मोल भाव का करना ही बेचना है। वेद का दान होता है विक्रय नहीं। गुरुदक्षिणा का ग्रहण होता है मूल्य का नहीं। वेद की कीमत आँकना महापाप है। धर्म को भावोपहत करना पाप है। जैसे विवाद के लिए विद्या पढ़ना, मद के लिए धन कमाना, दूसरे को पीड़ा देने के लिए शक्ति सञ्चय करना, दूसरे का पाप कहना : उसका पाप भक्षण करना है। कपटी छली को कहते हैं। जिसके मन की वक्रगति हो उसे कुटिल कहते हैं। वेद साक्षात् परमेश्वर की वाणी है। उसका मजाक उड़ानेवाला वेद विदूषक है। संसार से द्रोह करनेवाला विश्व विरोधी है। अथवा वेदविक्रयी आदि आठों विश्व-विरोधी हैं। पैसे पैसे का लोभी बेहया। यथा : लोलुप भ्रम गृहपशु ज्यों जहँ तहँ सिर पद त्रान बजै। तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै। ऐसे को ही लोलुपचार कहते हैं और जो साकांक्ष दृष्टि से परधन और पराई स्त्री को देखते हैं, उसके हरण का अवसर देखा करते हैं, ऐसे लोगों की बड़ी घोर गति होती है। भरतजी कहते हैं कि मैं इनकी घोर गति को प्राप्त होऊँ। यदि मेरी इस अनर्थ में सम्मति रही हो।

जे नहिं साधु संग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सुहाई॥३॥
तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं एहु जानउँ भेऊ॥४॥

अर्थ : जिन्होंने साधु सङ्ग में प्रेम नहीं किया। जो अभागे परमार्थ पथ से विमुख हैं। जिन्होंने नर शरीर पाकर भगवान् को नहीं भजा। जिन्हें हरि हर सुयश अच्छा नहीं लगता। जो वेदमार्ग छोड़कर वाममार्ग में चलते हैं। ठग हैं। वेष बनाकर संसार को ठगते हैं। मुझे शङ्कर उनकी गति दें यदि माता ! मुझे यह भेद मालूम हो।

व्याख्या : अब कृत्याकरण के लिए शपथ ग्रहण करते हैं। मान लिया कि भरत की सम्मति नहीं थी। पर उन्हें यह भेद मालूम था। उन्होंने प्रकाश नहीं किया चुप रह गये। यही कृत्याकरण है। इसके लिए कहते हैं।

मति कीरति गति भूति भलाई। जो जेहि जतन जहाँ जब पाई। सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ। जिसका ऐसे सत्सङ्ग में अनुराग नहीं वह तो परमार्थ पथ विमुख होगा ही। अतः वह अभागा है। नरतन भव-

बारिधि कहँ बेरो। जो न तरइ भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृत निंदक मन्दमति आतम हन गति जाइ। जिसे हरि हर सुयश नहीं सोहाता वह खल है। यथा : हरि हर जस राकेस राहु से। पहिले जो वैदिक थे वामाचार को श्रेष्ठ समझकर दक्षिणमार्ग परित्याग किया। सिद्धि के लालच से पञ्चमकार में रत हुए। सिद्धि कहीं कुछ नहीं। लाल कपड़ा पहन लिया। लाल तिलक हड्डी की माला धारण करके सिद्ध बने हुए संसार को ठगते हैं। ऐसे घोर कर्मियों की गति भरतजी कहते हैं कि मुझे शङ्कर दे यदि मुझे यह भेद भी मालूम हो।

गोस्वामीजो ने दो प्रकार का भेद माना : १. अकृत्यकरण और २. कृत्याकरण। अकृत्यकरण के तीन भेद माने : १. कर्म सम्बन्धी २. उपासना सम्बन्धी ३. ज्ञान सम्बन्धी। कर्म सम्बन्धो के तीन भेद माने : १. शरीरजन्य २. वाक्जन्य और मनोजन्य। सो उपर्युक्त शपथों में सभी को गिनाया है।

दो. मातु भरत के बचन सुनि, सांचे सरल सुभायँ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह, सदा बचन मन कायँ ॥१६८॥

अर्थ : माता भरत के सरल स्वभाव के सच्चे वचन सुनकर कहने लगीं कि बेटा! तुम मनसा वाचा कर्मणा सदा रामजी को प्रिय हो।

व्याख्या : सरल स्वभाव से कहे हुए सच्चे वचन बिना प्रभाव डाले नहीं रहते। ऐसे वचन सुनकर माँ कौसल्या ने कहा कि मेरी जानी बात है। तुमको राम मनसा वाचा कर्मणा प्रिय हैं और राम को तुम मनसा वाचा कर्मणा प्रिय हो। राम प्रिय शब्द से दोनों अर्थ निकलते हैं और यहाँ दोनों अभिप्रेत हैं।

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम रघुपतिहिं प्रानहु ते प्यारे ॥
बिधु बिष चबइ स्रवइ हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी ॥१॥
भये ज्ञान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू ॥

अर्थ : तुम्हें राम प्राणों से भी प्यारे हैं और तुम रामचन्द्र को प्राणों से प्यारे हो। चन्द्रमा से विष टपके और हिम : पाले : से आग निकले। जलचर जल से विरक्त हो जाय। ज्ञान होने पर चाहे मोह न मिटे पर तुम रामचन्द्र के प्रतिकूल नहीं हो सकते।

व्याख्या : प्राण का प्राण ही प्राण से प्यारा हो सकता है। सो प्राण का प्राण आत्मा है। तो तुम राम की आत्मा हो और राम तुम्हारी आत्मा हैं। इससे वनवास में तुम्हारी सम्मति हो नहीं सकती। चन्द्रमा सुधाकर हैं। उनके किरणों में अमृत स्राव हुआ करता है। सो चाहे वे अपना स्वभाव छोड़कर विष गिराने लग जायँ और आग का स्वभाव गरम है। पाला उसके निकट नहीं फटक सकता। यथा : तात अनल कर सहज सुभाउ। हिम तेहि निकट जाय नहिं काऊ। सो चाहे हिम से आग निकलने लगे। जलचरों को जल हो शरण है। सो चाहे जलचर जल से विरक्त हो जाय। मोह का नाश ही ज्ञान है। यदि मोह न मिटा तो ज्ञान कैसा? इस पर

कहते हैं कि यदि ज्ञान होने पर भी मोह न मिटे। अर्थात् यदि ये चारों महा असम्भव सम्भव हो जायँ। पर तुम राम के प्रतिकूल हो नहीं सकते।

भरतजी ने चार बार शपथ लिया। माता यहाँ चार दृष्टान्त देकर उन्हीं चारों का अनुमोदन करती हैं।

मत तुम्हार एहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं ॥२॥
अस कहि मातु भरतु हिय लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए ॥
करत बिलाप बहुत एहि भाती। बैठेहिं बीत गई सब राती ॥३॥

अर्थ : संसार में जो कोई इसमें तुम्हारी सम्मति कहेगा। उसे सपने में भी सुख और सुमति की प्राप्ति नहीं होगी। ऐसा कहकर माता ने भरतजी को कलेजे से लगा लिया। छाती से दूध बहने लगा और आँखों में आँसू भर आया। इस भाँति बहुत विलाप करते बैठे ही बैठे सारी रात बीत गयी।

व्याख्या : माता कौसल्याजी कहती हैं कि तुम्हारे ऐसे साधु को जो मिथ्या दोष लगावेगा उसे सुख और गति सपने से भी नहीं मिलेगी। अर्थात् उसका लोक परलोक दोनों नष्ट हो जायगा। पुरवासियों में से जब किसी ने कहा कि इसमें भरतजी सम्मत हैं तो तुरन्त दूसरे ने कहा कि : सुकृत जाय अस कहे तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रान पियारे। महारानी कौसल्या इस व्याज से स्वयं शपथ ले रही हैं कि मुझे तुम पर सन्देह नहीं हो सकता।

ऐसा कहकर भरत को हृदय से लगा लिया। वात्सल्य भाव के उमड़ आने से छाती में दूध आगया और आँख में आँसू आगया। इतने दिनों बाद छाती में दूध का आना : अति वात्सल्य का द्योतक है।

कवि कहते हैं कि उस समय की करुणा का मैंने प्रादेशमात्र वर्णन किया। इसी भाँति बहुत विलाप करते बैठे ही बैठे सारी रात बीत गयी। करुणा भी एक प्रधान रस है। रोने से शोक का वेग निकल जाता है। इस भाँति कुछ सुख मिल जाता है। जो अति दुःख में नहीं रोता उसके मरने की सम्भावना रहती है।

## २०. नृपक्रिया प्रसङ्ग

बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए ॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे ॥४॥

अर्थ : तब वामदेव और वसिष्ठजी आये। मन्त्री तथा महाजन लोगों को बुलवाया। बहुत भाँति से मुनिजी ने अवसरानुकूल परमार्थ के वचन कहकर भरतजी को बहुत भाँति से समझाया।

व्याख्या : वामदेव और वसिष्ठ दोनों महाज्ञानी और रघुकुल के हितचिन्तक हैं। भरतजी के आने का समाचार पाकर प्रातःकाल होते ही आये। महाराज का शव अन्तःपुर में ही पड़ा है। अब भरतजी आगये। उनके हाथ संस्कार कराना है।

अतः मन्त्रियों और नगर के प्रतिष्ठितों को बुलवाया। तब भरतजी को बहुत भाँति से उपदेश दिया। क्योंकि भरतजी पर अनेक प्रकार का शोक आ पड़ा है। परमार्थ के वचन ही शोक के दूर करने में समर्थ हैं।

दो. तात हृदय धीरजु धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरु बचन सुनि, करन कहेउ सबु साजु ॥१६९॥

अर्थ : बेटा! धैर्य धरो और जैसा अवसर आ पड़ा है वैसा आज करो। भरतजी गुरुजी के वचन सुनकर उठे और सब साज करने की आज्ञा दी।

व्याख्या : वसिष्ठजी ने उपदेश के अन्त में कहा कि हृदय में धैर्य धारण करो और जो अवसर आज उपस्थित है उसे करो। भाव यह कि भरतजी की अनुपस्थिति में सबका कार्य वसिष्ठजी की आज्ञा से होता रहा। भरतजी के आते ही सब कार्य गुरुजी उनके सुपुर्द करते हैं कि अब तुम्हारी आज्ञा से कार्य होगा। अतः भरतजी उठे और सब साज करने के लिए आज्ञा दी।

नृप तनु बेद बिहित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमानु बनावा ॥
गति पग भरत मातु सब राखीं। रहीं रानि दरसन अभिलाषी ॥१॥

अर्थ : महाराज के शरीर को वेदोक्त विधि से स्नान कराया। परम विचित्र विमान बनाया। चरणों को पकड़ पकड़कर माताओं को सती होने से रोका। वे भी रामजी के दर्शन की अभिलाषा से रुक गयीं।

व्याख्या : कार्य विवरण कहते हैं। भरतजी के न रहने से मरणोपरान्त का सब कार्य रुका हुआ था। और्ध्वदैहिक कृत्य प्रारम्भ हुआ। स्नान में वेद मन्त्र पढ़े गये। शव के स्नान कराने की विधि है। शव के वहन के लिए परम विचित्र विमान बनाया गया। उत्साह से क्रिया हो रही है।

माताएँ वीरप्रसू होने पर भी सती होने के लिए उठीं। वीरप्रसू को सती होने का अधिकार नहीं। यथा : नान्वगात् वीरसूः कृपी। परन्तु अन्य रानियों को अधिकार था। पर भरतजी ने सबको चरण पकड़कर रोका। एक को पुत्र होने से सब माताएँ पुत्रवती हो जाती हैं। आप लोगों को चार चार पुत्र हैं। आप क्यों सती होती हैं? फिर जिसे अन्य वासना नहीं होतो वे ही सतो होती हैं तो क्या आप लोगों को रामजी के दर्शन की कामना नहीं है? यह दूसरी युक्ति काम कर गयी और सब रानियाँ रुक गयीं।

चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए ॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई ॥२॥

अर्थ : चन्दन और अगर के बहुत से बोझे आये और बेपरमान बहुत से सुगन्धित पदार्थ आये। सरयू के किनारे रचकर चिता बनायी गयी। मानों स्वर्ग की सुन्दर सीढ़ी हो।

व्याख्या : जहाँ नदी हो वहाँ नदीतटपर ही दाह का विधान है। यहाँ पुण्यतोया सरयू बहती हैं। अतः सरयू के किनारे चन्दन अगर आदि सुगन्धित पवित्र द्रव्यों से रचकर बड़ी ऊँची चिता बनायी गयी। देखने से मालूम होता था कि यही स्वर्ग जाने की सुन्दर सीढ़ी है। सुन्दरता का बड़ा ध्यान सब कार्यों में है। यहाँ तक कि चिता बनाने में भी इसका ध्यान रक्खा गया।

एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्हीं। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्हीं ॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात्र बिधाना ॥३॥

अर्थ : इस विधि से सब दाह क्रिया की और विधि के साथ स्नान करके तिलाञ्जलि दी। फिर स्मृति वेद और पुराणों को देख सुनकर भरतजी ने दशगात्र का विधान किया।

व्याख्या : उपर्युक्त सब विधि दाह क्रिया के अन्तर्गत हैं। दाह के बाद स्वयं स्नान करके दाहजनित तृषोपशान्त्यर्थं तिलाञ्जलि दिया। प्राण निकल जाने पर भी यावत् देह पूर्णरूपेण नष्ट नहीं हो जाता। जब तक जीवात्मा का मृत शरीर से सम्बन्ध बना रहता है। यहाँ तक कि शरीर के जलने से जीव को ताप होता है।

दाह क्रिया के बाद दश दिनों तक दशगात्र विधान होता है। जिससे वह पुरुष सम्पूर्ण शरीरवाला होकर स्वर्ग में आनन्द करता है। यथा : यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयज्जातवेदः। तद्एतन्युनराप्यायामि साङ्गात्स्वर्गे पितरो मादयध्वम् : अथर्ववेद। अर्थ : हे पितरो ! पितृलोक जाते समय जो आपके जिस अङ्ग को अग्नि ने जलाया है उस अङ्ग को फिर पुष्ट करता हूँ। जिसमें सम्पूर्ण अङ्गवाले होकर आप स्वर्गलोक में आनन्द करें। दशगात्र विधान में त्रुटि होने से वह पुरुष विकलाङ्ग होकर स्वर्ग में पूर्ण सुख का भागी नहीं हो सकता। अतः दशगात्र विधान के सुसम्पन्न करने में भरतजी ने बड़ी सावधानी से काम लिया। श्रुति स्मृति पुराण के समन्वय से दशगात्र विधान किया।

जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा ॥
भये बिशुद्ध दिये सब दाना। धेनु बाजि गज वाहन नाना ॥४॥

अर्थ : जहाँ मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी ने जैसी आज्ञा दी वहाँ सब वैसा ही हजारों तरह से किया। शुद्ध हो जाने पर गाय घोड़े हाथी और नाना प्रकार की सवारियाँ दान में दी।

व्याख्या : अब एकादशाह का कृत्य कहते हैं। मुनिजी की आज्ञा का पालन हजार विधि से किया गया। दशगात्र के बाद जो कृत्य होता है उसे एकादशाह का कृत्य कहते हैं। शुद्ध होने पर वह कृत्य किया जाता है। उसके बाद विशुद्ध हो गये तो पिता के प्रीत्यर्थं सब प्रकार का दान किया। यथा : गोदान वाजिदान गजदान शिविकादि दान दिये।

दो. सिंघासन भूषन बसन, अन्न धरनि धन धाम ।
दिये भरतु लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम ।।१७०।।

अर्थ : सिंहासन गहने कपड़े अन्न पृथ्वी धन प्रासादादि भरतजी ने दिये। पाकर ब्राह्मण लोगों की कामना पूर्ण हो गयी।

व्याख्या : अब एकादशाह का दान कहते हैं। धेनु घोड़े हाथी तथा अनेक प्रकार के वाहन पहिले कह आये हैं और सात अब गिनाते हैं। इस भाँति ग्यारह की गिनती से एकादशाह का कृत्य कहते हैं। दान देने में देश काल पात्र का विचार होना चाहिए। अतः गोस्वामीजी तीनों दिखला रहे हैं। देश अयोध्यापुरी, काल एकादशाह, पात्र पृथ्वी के देवता, विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण। अब दान का परिमाण कहते हैं कि प्रतिगृहीता पूर्णकाम हो गये। उन्हें अब किसी वस्तु की इच्छा न रह गयी। महाराज चक्रवर्तीजी के तृप्त्यर्थं दान हो रहा है। अतः शय्या का नाम न लेकर सिंहासन कहते हैं। भाव यह कि राजोपयोगी सम्पूर्ण वस्तुओं का दान किया।

## राज्याभिषेक प्रस्ताव

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी । सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी ।।
सुदिनु सोधि मुनिवर तब आए । सचिव महाजन सकल बोलाए ।।१।।

अर्थ : पिता के निमित्त भरतजी ने जो करणी की उसे मुख से वर्णन नहीं किया जा सकता। सुदिन सोधकर वसिष्ठजी आये और सब महाजनों यथा मन्त्रियों को बुलाया।

व्याख्या : त्रिभुवन तीन काल में महाराज दशरथ ऐसा राजा हुआ नहीं। अतः जैसे पिता थे उन्हीं के अनुरूप करणी भरतजी ने की। इस भाँति एकादशाह का दान कहा। महाराज को यह सब अनन्तगुणित होकर प्राप्त होगा। ऐसा भाव मन में रखकर भरतजी ने दान दिये। इस लोक और पर लोक का सुदृढ़ सम्बन्ध है। ब्रह्मदेव ने प्रजा की सृष्टि के साथ ही साथ यज्ञ की भी सृष्टि की और कहा कि इसी से तुम लोग बढ़ो और यही तुम लोगों के लिए कामधेनु हो। इससे तुम लोग देवताओं की भावना करो और बदले में देवता तुम्हारी भावना करें। इस प्रकार परस्पर की भावना करते हुए परमश्रेय को प्राप्त हो। तदनुसार यज्ञ द्वारा इस लोक और पर लोक में व्यापार चलता है। उसी व्यापारानुसार योग्य पात्र में उत्तम देशकाल में दी हुई वस्तु जिसके निमित्त दी जाती है उसे अनन्त गुणित होकर प्राप्त होती है। भरतजी की करणी ही ऐसी होती है। जिसका वर्णन नहीं हो सकता। किं पुनः पिता के लिए जो करणी की उसका वर्णन तो हो ही नहीं सकता। इसलिए सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी कहा।

जब तक किसी का राज्याभिषेक न हो जाय तब तक मुनिजी पर राज्य का विशेष भार था। अतः स्वयं मुहूर्त देखकर वसिष्ठजी आये। पहिले से किसी को

सूचना न दी। रामजी के अभिषेक का समाचार एक रात पहिले फैल जाने से इतनी बड़ी बाधा उपस्थित हो गयी। अतः गुरुजी ने किसी को सूचना न देना ही उचित समझा। सभा से आ जाने पर मन्त्रियों को बुलाया। तब सब नगर के महाजनों को बुलाया। महाजनो येन गतः स पन्थाः। महाजन का अर्थ यह है : जिसे लोग मानते हों, अनुसरण करते हों। देश के सच्चे प्रतिनिधि ऐसे महाजन हैं। उनके चुनने की आवश्यकता नहीं होती। स्वभावतः उनकी ख्याति होती है। इस भाँति मन्त्र को गुप्त रखकर कार्य करने में गुरुजी की नीतिमत्ता द्योतित होती है। गुरुजी सबकी सम्मति से आज ही भरत को गद्दी दिया चाहते हैं।

बैठे राजसभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे॥२॥

अर्थ : वे सब राजसभा में आकर बैठे। तब भरत शत्रुघ्न दोनों भाइयों को बुलवाया। भरतजी को वशिष्ठजी ने निकट बैठाया और धर्म नीतिमय वचन बोले।

व्याख्या : राजसभा में आकर गुरुजी ने सबको बुलवाया। अतः सब वहीं आये दरबार लग गया। इस समय कवि भरतजी के साथ हैं। अतः लिखते हैं कि बैठे राजसभा सब जाई। दरबार लग जाने पर दोनों भाई भरत की बुलाहट हुई। चक्रवर्तीजी के पुत्रों में इस समय ये ही दो भाई हैं। गुरुजी ने भरतजी से कहा था : तात हृदय धीरज धरहु करहु जो अवसर आज। तदनुसार भरतजी ने धैर्य तो धारण किया। परन्तु पिता की क्रिया करने के बाद फिर सोच में पड़ गये।

अतः गुरुजी उन्हें बुलाकर आदर के लिए निकट बैठाया। भाव यह कि भरतजी पहिले से ही सिंहासन से दूर बैठ रहे हैं। तत्पश्चात् गुरुजी ने ऐसा वचन कहा जो धर्म और नीति दोनों दृष्टि से ठीक हो। यहाँ अर्थ का प्रश्न उपस्थित है। अर्थ का मूल्य राज्य है। जो अर्थ धर्म विरोधी होता है उसे अनर्थ कहते हैं और नीति विरुद्ध राज्य स्थायी नहीं होता। अतः गुरुजी के वचन धर्मनीतिमय हैं।

प्रथम कथा सब मुनिवर बरनीं। कइकइ कुटिल कीन्हि जसि करनीं॥
भूप धरमब्रतु सत्य सहारा। जेहि तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥३॥

अर्थ : पहिले मुनिवर ने जिस भाँति कुटिल कैकेयी ने करणी की थी वह सब कह सुनायी। फिर राजा के धर्मव्रत और सत्य की प्रशंसा की जिसने शरीर त्यागकर प्रेम का निर्वाह किया।

व्याख्या : जो बातें राजमहल में हुई उनका सुना सुनाया ज्ञान लोगों को था। भरतजी थे नहीं। अतः उन्हें भी सुनी सुनायी जानकारी है। गुरुजी निष्पक्ष पुरुष हैं। अतः सबकी जानकारी के लिए उपक्रम के रूप से कैकेयी की कुटिल करणी का वर्णन किया कि रामजी का अभिषेक आप लोगों की सम्मति से होनेवाला था। यह सुनकर कैकेयी जाकर कोपभवन में सोई। चक्रवर्तीजी मनाने गये। पूछा क्या

चाहती हो। कहने लगी दिया हुआ जब नहीं मिलता तो नयी बात क्या माँगे। राजा ने रामजी की शपथ ली। तब उसने वरदान माँगे।

राजा धर्मव्रत थे। अधर्म उन्होंने कभी किया नहीं। अतः सत्य को धर्म का मूल समझकर उसे नहीं छोड़ा। तुलसी जान्यौ दसरथहि धरमु न सत्य समान। राम तज्यो जेहि लागि बिनु राम परिहर्यौ प्रान। सो राजा धर्म और सत्य से न हटे। पर धर्म और सत्य के त्याग न करने से प्रेम का त्याग होता था। अतः राजा ने शरीर परित्याग करके इस असामञ्जस्य को भी दूर किया। अर्थात् प्रेम का निर्वाह भी भली भाँति किया।

कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥४॥

अर्थ : मुनिराज रामजी के गुण और स्वभाव को वर्णन करते हुए सजल नयन तथा पुलकित हो गये। फिर लक्ष्मणजी और सीताजी की प्रीति की प्रशंसा करने में ज्ञानी मुनि शोक और स्नेह में मग्न हो गये।

व्याख्या : आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः। श्रीरामजी के गुण शील और स्वभाव ही ऐसे हैं कि मुनि लोगों के भी चित्त जो हरण करते हैं। अस सुभाउ कहुँ सुनैं न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं। को रघुबीर सरिस संसारा। सील सनेह निबाहनिहारा। इस अवसरपर उनके गुण शील और स्वभाव का ऐसा चमत्कृत प्रकाश हुआ कि उसके कहने में मुनिराज को भी पुलक हो गया और आँखें डबडबा आयीं।

प्रीति के बखान में लक्ष्मणजी की प्रशंसा पहिले सीताजी की पीछे। सीताजी तो साथ जाने के लिए धर्मतः भी बद्ध थीं। पर लक्ष्मणजी को तो इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं था। इनकी प्रीति का प्रभाव मुनिजी पर ऐसा पड़ा था कि वर्णन करने में ज्ञानीमुनि होने पर भी शोक और स्नेह में मग्न हो गये। रामजी की प्रीति न बखानी। क्योंकि वे किसी को सङ्ग नहीं लिया चाहते थे। यहाँ पर रामजी के प्रीति प्रदर्शन न करने में ही शोभा है।

दो. सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवन मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ॥१७१॥

अर्थ : मुनिनाथ ने बिलखकर कहा कि भरतजी सुनो! यह प्रबल भावी है। हानि लाभ जीना मरना यश अपयश यह सब ब्रह्मदेव के हाथ में है।

व्याख्या : भरतजी की अनुपस्थिति में जो कुछ हुआ उसे कहते है। राम वनवास कहने में मुनिजी बिलख उठे। कारण यह कि प्रबल भावी के सामने किसी का बल नहीं चलता। त्रिपुरारि भावी मेट सकते हैं। पर हरिइच्छा रूपी भावी के सामने उनका भी बल नहीं चलता। सो इन घटनाओं में हरिइच्छा रूपी प्रबल भावी काम करती थी। इसी से प्रतीकार न हो सका। हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश

मनुष्य के हाथों में नहीं है। [1]लाभ जीवन और यश कौन नहीं चाहता। पर सबको प्राप्त नहीं होता। हानि मरण और अपयश कोई नहीं चाहता। पर इससे कोई बचता नहीं। अतः यह सब ब्रह्मदेव के हाथ में है। यथा : कर्म सुभासुभ देइ बिधाता। सो यहाँ तो बात बिगाड़ने स्वयं सरस्वती आयी थीं। मुनिजी ने रामजी का वनवास नहीं कहा। बिलखने से वनवास सूचित हुआ।

अस बिचारि केहि देइअ दोसू। व्यर्थ काहि पर कीजिअ रोसू ॥
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोगु दसरथु नृपु नाहीं ॥१॥

अर्थ : ऐसा विचार करके किसको दोष दिया जाय और व्यर्थ किस पर क्रोध किया जाय। हे तात ! मन में विचार तो करो। राजा दशरथ शोचनीय नहीं हैं।

व्याख्या : गुरुजी भरतजी को दुःखी देखकर समझाते हैं कि हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश विधि के हाथ में है। मनुष्य के हाथ में नहीं है। क्योंकि काहु न कोउ दुःख सुखकर दाता। निजकृत कर्म भोग फल भ्राता। कोई किसी को दुःख सुख नहीं दे सकता। सब अपने ही किये का फल भोगते हैं। विधि भी शुभ और अशुभ कर्म के फल दाता हैं। अतः विचार करने से कोई दोषी नहीं ठहरता। राम गवन बन अनरथ मूला : यह हानि है। भूपति सुरपति पुर पगु धारे : यह मरण है और हेतु अपनपौ जानि जिय थकित भये धरि मौन : यह अपयश है। इसमें कैकेयी का भी दोष नहीं। यथा : सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचाल अंतहु पछितानी। अतः : पापिनि सबहि भाँति कुल नासा। इस भाँति दोष देना अथवा जोहसि सोहसि मुह मसिलाई। लोचन ओट बैठु तैं जाई। इस भाँति क्रोध करना उचित नहीं है।

यदि कहिये कि मैं दोष नहीं देता हूँ। परन्तु पिता के मरण का सोच है। इस पर गुरुजी कहते हैं कि सोच तो असद्वृत्ति पुरुषों का किया जाता है। महाराज दशरथ तो परम सद्वृत्ति थे। जिसकी प्रजा सोच योग्य नहीं है। वह राजा सोच योग्य कैसे हो सकता है ?

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना ॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥२॥

अर्थ : वह ब्राह्मण शोचनीय है जो वेदविहीन है और अपने धर्म को त्याग करके विषय में दत्तचित्त रहता है। वह राजा शोचनीय है जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राण के समान प्रिय नहीं है।

———

१. सर्वं एव महाभाग महत्त्वं प्रति सोद्यमाः। तथापि पुंसां भाग्यानि नोद्यमा भोगहेतवः। वि. पु.। अर्थ : हे महाभाग ! सभी महत्त्व के लिए प्रयत्न करते हैं। परन्तु पुरुष का भाग्य भोग्य के कारण है। उद्यम कारण नहीं है।

व्याख्या : केवल गायत्री जाननेवाला ब्राह्मण यदि वह धर्मात्मा है विषय-लीन नहीं है तो वह तीनों वेद जाननेवाले सदाचारहीन ब्राह्मण से अच्छा है। ऐसा मनु भगवान् का मत है। अतः यहाँ वेद विहीन से सन्ध्या गायत्री के भी न जाननेवाले से अभिप्राय है। अतः जिस ब्राह्मण को सन्ध्या गायत्री तक का ज्ञान नहीं है और अपने धर्म शम दम तप शौचादि से रहित है वह स्पर्श रूप रसादि के सुखों में भूला हुआ है। वह सोचने योग्य है कि इसकी क्या गति होगी ? क्योंकि तप श्रुति और योनि ये तीन ही ब्राह्मण कारक हैं। सो योनि तो उसे ईश्वर की कृपा से मिल गयी। पर उसने न तप किया न वेद : विद्या पढ़ी। ऐसा पतित ब्राह्मण सर्वथा शोचनीय है।

राजन्यवर्ग के लिए नीति का जानना और प्रजा पालन ये ही प्रधान धर्म हैं। क्योंकि बिना नीति जाने राज्य नहीं रह सकता। राज कि रहइ नीति बिनु जाने। और राजा की सृष्टि ही प्रजापालन के लिए हुई। प्रजा के लिए प्राणोत्सर्ग करना राजा का धर्म है। अतः जिस राजा ने नीति न जाना और प्राण के समान प्रजा का पालन नहीं किया उसके लिए सोचना चाहिए। क्योंकि उसका दोनों लोक बिगड़ गया। नीति न जानने से राज्य नहीं रहेगा। सो यह लोक बिगड़ गया और ठीक प्रजा पालन न करने से नरक का भागी होगा। यथा : जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी। परलोक भी बिगड़ा। अतः शोचनीय है।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू ॥
सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी। मुखरु मानप्रिय ग्यान गुमानी ॥३॥

अर्थ : धनी कृपण वैश्य को सोचना चाहिए जो अतिथि और शिवभक्त तथा सुजान नहीं है। ब्राह्मण की निन्दा करनेवाले शूद्र को सोचना चाहिए जो कि बकवादी प्रतिष्ठा चाहनेवाला और अपने को ज्ञानी मानता हो।

व्याख्या : वैश्य यदि निर्धन है तो कृपण होना दोषावह नहीं है। धनवान होने पर उसे कृपिण न होना चाहिए। मनुजी का कथन है कि ब्राह्मणों में वही श्रेष्ठ है जिसे ज्ञान अधिक है। क्षत्रियों में अधिक बलवाला श्रेष्ठ है और वैश्यों में धनी श्रेष्ठ है। ईप्सित फल की प्राप्ति बिना शिवजी की आराधना के नहीं होती। अतः वैश्य धनधान्य की समृद्धि के लिए अवश्य शिवभक्ति करे और अपने धन का विनियोग आतिथ्य सत्कार में करे। क्योंकि जितने में पेट भरे उतना ही धनियों का धन है। उससे अधिक को जो अपना धन मानता है उसे शास्त्र चोर बतलाता है। उसे दण्ड होना चाहिए। वैश्य को सुजान अर्थात् गुणग्राहक होना चाहिए। धनी यदि गुणग्राहक न होगा तो गुणों की पूजा का लोप हो जायगा। अतः श्रेष्ठ वैश्य यदि कृपण है, शिवभक्त नहीं है, अतिथिभक्त नहीं है, गुणग्राहक नहीं है तो वह निरयगामी होगा। वह सोचने योग्य है।

शूद्र शोचनीय होता है ब्राह्मणनिन्दक होने से। सति प्राप्तौ निषेधः। राज्य

की कामना धन की कामना ब्राह्मणों ने नहीं की। अतः राजन्य और वैश्य के निन्दित होने के लिए स्थान नहीं है। शूद्रों की सेवावृत्ति विधान करने से अज्ञानी मानप्रिय शूद्रों द्वारा निन्दा की सम्भावना है। वे यह नहीं सोचेंगे कि जाति आयु और भोग पूर्वजन्म के कर्म का फल है। उन्हें नहीं मालूम : ब्रह्माद्या ऋषिपर्यन्ताः स्मारका न तु कारका। ब्रह्मदेव से लेकर ऋषि पर्यन्त सब स्मरण करनेवाले हैं। बनानेवाले कोई नहीं। वे धर्मशास्त्रों में अपना निम्न अधिकार देखकर ब्राह्मणों को दोषी ठहरावेंगे। उनकी निन्दा करेंगे। इस भाँति अपने लिए नरकका मार्ग निरर्गल करेंगे। शूद्र का धर्म है कि ब्राह्मण की सेवा करे। विनीत हो। ज्ञानी होने में रोक नहीं है ज्ञानमानी न हो। युधिष्ठिर के यज्ञ में ज्ञानी चाण्डाल के भोजन कराने की कथा है। बिना उसके भोजन कराये यज्ञ की पूर्ति नहीं होती थी। सो उसे बहुमान पुरःसर पाण्डव अपने यज्ञ में लाना चाहते थे। पर उस ब्रह्मज्ञानी चाण्डाल ने सम्मान स्वीकार नहीं किया। केवल अन्न ग्रहण करके उनका यज्ञ पूर्ण कर दिया। अतः ब्राह्मणनिन्दक मुखर मानप्रिय और पण्डितम्मन्य शूद्र शोचनीय हो जाता है। क्योंकि उसकी असद्गति ध्रुव है।

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई ॥४॥

अर्थ : उस स्त्री को सोचना चाहिए जो पति को ठगती हो। कुटिल हो। लड़ाकी हो और स्वतन्त्र हो। उस ब्रह्मचारी को सोचना चाहिए जिसने अपना व्रत त्याग किया और गुरु की आज्ञा के बाहर हो गया।

व्याख्या : चारों वर्णों के धर्मों का वर्णन करके स्त्रियों का धर्म कहते हैं। जो पति को ठगती है अर्थात् परपति में रत है ऐसी स्त्री निरयगामिनी होती है। क्योंकि स्त्रियों के लिए एक ही धर्म व्रत और नियम शास्त्र में कहा है कि वे मनसा वाचा कर्मणा पति के चरणों में प्रेम करे और जो पति को धोखा देकर जार को भजती है वह सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ती है। यथा : एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पतिपद प्रेमा। पति बंचक पर पति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई। ऐसी पतिवंचक नारी सरल तो हो ही नहीं सकती। कुटिल अवश्य होगी। कटुवादिनी के लिए सद्यः त्याग का विधान है। स्त्री में स्वातन्त्र्य की योग्यता नहीं है। उसका अवयव सङ्गठन इस प्रकार का होता है कि उसे सदा दूसरे की रक्षा की आवश्यकता रहती है। इसीलिए कहा है : पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। जो इच्छाचारी स्त्री पिता पति और पुत्र से स्वतन्त्र होकर विचरेगी उसका पतन ध्रुव है। अतः ऐसी स्त्री को शोचनीय कहा है।

अब आश्रम का वर्णन करते हुए पहिले ब्रह्मचर्याश्रम के ही विषय में कहते हैं कि वह बटु ब्रह्मचारी : सोचने योग्य है जो अपना व्रत परित्याग कर देता है। उसे अवकीर्णी कहते हैं। यथा : अवकीर्णी भवेद् गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम्। गर्दभं

पशुमालभ्य नैऋतं स विशुध्यति। ब्रह्मचर्यावस्था में ब्रह्मचर्य ही प्रधान है। तीनों प्रकार के स्नातकों के लिए व्रतपालन आवश्यक है। जिसने पूर्ण विद्या नहीं भी पढ़ी वह भी व्रतस्नात होकर आश्रम के फल को प्राप्त होता है। इसी भाँति महाभारत में अनेक उदाहरण आये हैं कि गुरु की आज्ञा पालनमात्र से वे सिद्धि को प्राप्त हुए। भाव यह कि व्रतपालन और गुरु आज्ञापालन ये ही दोनों ब्रह्मचर्याश्रम के सार हैं। इनके अनादर से बटु निरयगामी होता है। अतः शोचनीय है।

दो. सोचिअ गृही जो मोह बस, करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत, बिगत बिबेक बिराग ॥१७२॥

अर्थ : उस गृहस्थ को सोचना चाहिए जो मोहवश होकर कर्मपथ का त्याग करता है और उस संन्यासी को सोचना चाहिए जो प्रपञ्च में लगा हुआ है और उसे वैराग्य और विवेक नहीं है।

व्याख्या : जो ब्रह्मचर्य अवस्था से संन्यास ग्रहण में असमर्थ होता है वह गृहस्थाश्रम स्वीकार करता है उसका अधिकार केवल कर्म में है। यथा : कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयिनान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे। ईश०। केवल कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। इसके अतिरिक्त हे नराभिमानी! तेरे लिए दूसरा रास्ता नहीं है। फल की इच्छा न करने से तुझे कर्म का लेप न होता। अतः गृहस्थ को नित्य नैमित्तिक कर्म सदा करते रहने की विधि है। उसके त्याग से उसे प्रायश्चित होता है। ज्ञान होने पर वह संन्यास ग्रहण करके कर्मपथ का त्याग कर सकता है। पर मोहवश त्याग[1] करने से वह त्याग बन्धन का कारण है। इस भाँति मोहवश होकर कर्मपथ के त्याग से अधोगति होती है। अतः ऐसा गृहस्थ शोचनीय है। बन्धायैव भवत्येषा ह्यविद्याप्यक्रमोज्झिता। क्रम से छोड़ी हुई अविद्या बन्धन का ही कारण होती है। वि. पु.।

लोकत्रय त्याग पूर्वक संन्यास ग्रहण किया जाता है। उसे यह सब संसार ब्रह्ममय प्रतीत होना चाहिए और त्याग पूर्वक जीवन यापन करना चाहिए। किसी के धन की इच्छा नहीं करनी चाहिए। यथा : ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद् धनम्। ईश०। संन्यास लेने पर जो प्रपञ्च में पड़ जाता है, ज्ञान वैराग्य खो बैठता है, उसे वान्ताशी : कुत्ता कहते हैं। क्योंकि उसने जिस वस्तु का त्याग किया था उसे फिर ग्रहण कर लिया। अतः प्रपञ्चो संन्यासी शोचनोय हो जाता है।

बैषानस सोइ सोचइ जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी ॥१॥

---

१. मोहवश कर्मपथ त्याग की इच्छा वाले अर्जुन को। भगवान् ने गीता का उपदेश करके कर्मपथारूढ़ किया।

अर्थ : वह वानप्रस्थ सोचने योग्य है जिसे तपस्या छोड़कर भोग अच्छा लगे। चुगुलखार निष्कारण क्रोध करनेवाले तथा माँ बाप गुरु और भाई से विरोध करनेवाले को सोचना चाहिए।

व्याख्या : तीसरा आश्रम वानप्रस्थ तपःप्रधान है। ब्राह्मणों को चारों आश्रम का अधिकार है। क्षत्रिय को संन्यास का अधिकार नहीं है। वह विरक्त होकर वानप्रस्थ हो सकता है। यथा : संत कहहिं यह नीति दसानन। चौथेपन जाइय नृप कानन। अंतहु नृपहिं उचित बनबासू। वानप्रस्थ में ऐसी तपस्या करनी चाहिए कि देह भूल जाय और तपस्या में ही मन लग जाय। यथा : बिसरी देह तपहिं मन लागा। सो जिस वानप्रस्थी को भोग प्रिय है, तपस्या में मन नहीं लगता, वह स्वधर्म विरुद्धाचरण के कारण पापी है। उसे निरय निश्चय है।

वर्णाश्रमानुकूल सद्वृत्ति कहकर अब सर्व सामान्य असद्वृत्ति कहते हैं। चुगुलखोरी से बढ़कर कोई पाप नहीं है। यथा : अघ कि पिसुनता सम किछु आना। अकारण क्रोधी ही पिशुन होते हैं। अकारण क्रोधी का कुशल होता नहीं। यथा : जिमि चह कुसल अकारन क्रोधी। वही माँ बाप गुरु और बन्धु का भी विरोधी होता है। माँ बाप गुरु तो साक्षात् देवता हैं। भाई की सहायता करना परम कर्तव्य है। पर पिशुन इन लोगों का भी विरोध करता है। अतः उसका दोनों लोक बिगड़ता है। वह निश्चय शोचनीय है।

सब बिधि सोचिय पर अपकारी। निज तनु पोषक निर्दय भारी॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छल हरि जन होई॥२॥

अर्थ : दूसरे के अपकार करनेवाले को सब भाँति सोचना चाहिए। क्योंकि वह अपने शरीर का पोषण करनेवाला बड़ा भारी निर्दय है और सब प्रकार से तो वह सोचनीय है जो छल छोड़कर हरिजन नहीं हो जाता।

व्याख्या : उपर्युक्त शोच्य तो वर्ण धर्म की दृष्टि से अथवा आश्रम धर्म की दृष्टि से अथवा कुशल की दृष्टि से शोच्य हैं। परन्तु सब विधि शोच्य तो परापकारी हैं। क्योंकि उनसा अधम कोई नहीं है। यथा : परपीड़ा सम नहि अधमाई। उन्हीं का लक्षण कहते हैं कि वह अपने शरीर का पोषण करनेवाला है। महा अविवेकी है। यह नहीं समझता : सबके देह परम प्रिय स्वामी। वह भारी निर्दय होता है। क्योंकि ठण्ढी तबीयत से दूसरे को पीड़ा पहुँचाता है। निर्दय तो क्रोधी भी होता है। पर उसकी निर्दयता तभी तक है जब तक कि उसे क्रोध है। शान्तावस्था में क्रोधी बड़ी दया भी करते हैं। इसलिए परापकारी को भारी निर्दय कहते हैं। ये ही सच्चे खल हैं। परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हर्ष बिषाद बसेरे। हिंसा पर अति प्रीति तिनके पापहि कवन मिति। अतः ये सब विधि शाचनीय हैं।

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृत निंदक मंद मति आतमहन गतिजाइ। जो ऐसा नरजन्म पाकर भव सन्तरण नहीं करता वह आत्मघाती

है और भव सन्तरण बिना भगवद् भजन के हो नहीं सकता। यथा : साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कवि कोबिद कृतज्ञ संन्यासी। जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित विज्ञानी। तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी। अतः भजन न करनेवाला आत्मघाती है। अन्य दोषों के न रहते हुए भी जिसने छल छोड़कर हरिभक्ति न ग्रहण की वह सब प्रकार से शोचनीय है। हरिजन का अर्थ हरिभक्त है। समय ऐसा आगया है कि हरिजन शब्द का अर्थ लिखना पड़ा। इस काल में शब्दों के सनातन से परिगृहीत अर्थ बदल रहे हैं। देखते देखते हरिजन शब्द का अर्थ अछूत हो गया। कोई ऐसा अर्थ न समझ ले इसलिए लिखना पड़ा।

सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ अब होनिहारा। भूपु भरत जस पिता तुम्हारा॥३॥
बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा॥४॥

अर्थ : कोसलनाथ सोचने योग्य नहीं हैं। उनका प्रभाव तो चौदहों लोको में प्रकट है। हे भरत! तुम्हारे पिता जैसे राजा थे वैसा न कभी कोई हुआ न इस समय है और न भविष्य में होनेवाला है।

व्याख्या : कोसलनाथ महाराज दशरथ धर्मं धुरन्धर राजर्षि ज्ञानी और परम भक्त थे। प्रजा का पालन उन्होंने और स पुत्र की भाँति किया। वे शोचनीय कैसे हो सकते हैं? उनकी सद्गति ध्रुव है। त्रिभुवन तीन काल जग माँही। भूरिभाग दसरथ सम नाँहीं। यह वेजोड़ राजा था। पहिले भी बड़े बड़े राजा हुए पर दशरथ ऐसा कोई न हुआ। इस समय भी कोई नहीं है और न भविष्य में कोई होगा। रामचन्द्र भी दशरथ की बराबरी न कर सकेंगे। क्योंकि राम सा पुत्र होना तो दशरथ के ही भाग्य में था।

संभु बिरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना। जिस रामजी के अंश से त्रिदेवों की उत्पत्ति है, वे राम उनके पुत्र हैं। अतः त्रिदेव दशरथजी के गुण-ग्राम वर्णन करते हैं। यथा : जासु सनेह सकोच बस राम प्रकट भए आइ। जे हरि हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ। सुरपति बसहिं बाहु बल जाके। इसलिए सुरपति उनके गुण गाथ वर्णन करते हैं। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे। अतः दिक्पाल भी उनके गुणों का गान करते हैं।

दो. कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बड़ाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु॥१७३॥

अर्थ : हे तात! कहो कोई उनकी बड़ाई कैसे कर सकता है जिनके राम, लक्ष्मण से, तुम से और शत्रुघ्न से बेटे हैं।

व्याख्या : अब गुरुजी बड़ाई का मुख्य कारण कहते हैं। पुत्रेणायं लोको जय्यः। पुत्र से ही यह लोक जीता जाता है। अतः यदि किसी को तुम लोगों के ऐसा पुत्र हो तो उसकी गणना करें। ऐसा भाग्यवान् कौन है? पिता के पुण्य की इयत्ता तो पुत्र

की महिमा से ही की जाती है। तुम चारों भाइयों सा शुद्धान्तःकरण पवित्र कौन हैं ? यथा : ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधूँ देवसरि बारी। अतः जिसके पुण्य से तुम चारों भाइयों का उनके घर जन्म हुआ उसकी बड़ाई कोई करना चाहे तो कैसे करे। इस व्याज से गुरुजी ने चारों भाइयों की बड़ी प्रशंसा की।

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी ॥
यहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू ॥१॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी सब प्रकार से भाग्यवान् थे। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। इसको सुनकर और समझकर शोक करना छोड़ दो और सिर पर धारण करके राजाज्ञा का पालन करो।

व्याख्या : चार प्रकार से हो लोग बड़भागी होते हैं। यशस्वी होने से, राजा होने से, गुणी होने से तथा सत् सन्तान के होने से। भुवन चारि दस प्रकट प्रभाऊ से लेकर : सरिस सुअन सुचि जासु तक कहकर गुरुजी ने चक्रवर्तीजी के चारों प्रकार का अत्यन्त उत्कर्ष कहा। अतः चक्रवर्तीजी सब प्रकार से ही अशोच्य हैं। उन सा बड़भागी कौन होगा। सोचे जाते हैं अभागी, जिनका न यह लोक बना न परलोक बना।

तात बिचार करहु मन माँहीं से शोक न करने का उपक्रम करके यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। से उपसंहार करते हैं और उपदेश देते हैं कि राज्य को सिर पर चढ़ाकर अर्थात् स्वीकार करके राजाज्ञा का पालन करो। सुख के ध्यान से नहीं राजाज्ञा के ध्यान से करो। राजा दण्डधरो गुरुः। सबको राजाज्ञा मानना चाहिए। विशेषतः तुम तो उनके पुत्र हो।

राय राजपदु तुम कहुँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥
तजे रामु जेहिं बचनहिं लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी ॥२॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने राजगद्दी तुम्हें दी। पिता के वचन को सत्य करना चाहिए। जिस वचन के लिए उन्होंने रामजी को त्यागा और रामजी की विरहाग्नि में शरीर त्याग दिया !

व्याख्या : भरतजी को चुप देखकर गुरुजी फिर कहते हैं कि तुम्हारे मन में यदि यह हो कि बड़े भाई के रहते मेरा गद्दी स्वीकार करना उचित नहीं है तो ऐसी बात नहीं है। महाराज सर्वथा राज्य के स्वामी थे। वे राज्य दान कर सकते थे। उनका राज्य पर पूरा अधिकार था। उन्होंने तुम्हें राज्यपद दिया। तुमको तो उनके वचन को सत्य करना ठहरा। यहाँ राज्य सुख का प्रश्न नहीं है। पिता के वचन के सत्य करने का प्रश्न है।

यदि कहो कि पिता को तो राम का राज्य प्रिय था तो यह बात भी नहीं है। उन्हें सबसे प्रिय अपना वचन था। अपने वचन के लिए ही उन्होंने रामजी का परित्याग किया और रामजी उनको अपने देह से भी अधिक प्यारे थे। अतः उनके

विरहाग्नि में शरीर का भी परित्याग किया। अर्थात् देह से प्रिय राम और राम से भी अधिक प्रिय वचन। यथा : तुलसी जान्यौ दसरथहि धरमु न सत्य समान। रामु तज्यौ जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान।

नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना ।।
करहु सीस धरि भूप रजाई। हइ तुम कहँ सब भाँति भलाई ।।३।।

अर्थ : राजा को वचन प्यारा था। प्राण प्यारा नहीं था। हे तात ! पिता के वचन को प्रमाण करो। राजाज्ञा का सिर चढ़ाकर पालन करो। इसी में तुम्हारी सब प्रकार की भलाई है।

व्याख्या : राजा का वचन ही सब कुछ होता है। अतः राजा को वचन प्रिय था। प्राण प्रिय नहीं था। उस वचन को प्रमाण करना ही चाहिए। तुम पुत्र होकर उनके वचन को प्रमाण न करोगे तो कौन करेगा। जिस वचन के लिए उन्होंने प्राण दिया वही अप्रमाण हो जायगा।

यदि कहो कि महाराज के बाद हक बड़े भाई का होता है। बड़ा भाई भी पिता के समान होता है। ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः। अतः राज्य स्वीकार करने में मेरी भलाई नहीं है तो यह बात भी नहीं है। राजाज्ञा को शिरोधार्य करने में ही तुम्हारी सब प्रकार की भलाई है। तुम तो अपनी इच्छा से राज्य नहीं ले रहे हो। तुम पुत्रधर्मपुरःसर पिता की आज्ञा मान रहे हो। उस आज्ञा में यदि कोई दोष है तो उसके जिम्मेदार तुम नहीं हो। उसका प्रातिभाव्य आज्ञा देनेवाले पर है। प्रतिज्ञा और हेतु देकर अब उदाहरण देते हैं।

परसुराम पितु आग्या राखी। मारी मातु लोग सब साखी ।।
तनय जजातिहि जौवनु दयऊ। पितु आग्याँ अघ अजसु न भयऊ ।।४।।

अर्थ : परशुरामजी ने पिता की आज्ञा पालन की और माता को मार डाला। इसको संसार जानता है। ययाति राजा को बेटे ने जवानी दे दी। परन्तु पिता की आज्ञा के कारण उन लोगों को न पाप हुआ और न अपयश हुआ।

व्याख्या : परशुरामजी ने पिता की आज्ञा से मातृवध किया। उन्हें मातृवध इष्ट नहीं था। मातृवध से बड़ा कोई पाप नहीं। तुमने भी पहिले उसी को गिनाया। यथा : जे अघ मातु पिता सुत मारे। इतने बड़े पाप को परशुरामजी ने पिता की आज्ञा के सामने कुछ न गिना और पितृ आज्ञा पालन के प्रताप से पाप उनका स्पर्श भी न कर सका और न उनकी इस कारण अपकीर्ति हुई। संसार इस कथा को जानता है कि एकबार जमदग्निजी ने अपनी पत्नी रेणुकादेवी पर रुष्ट होकर अपने पुत्रों को आज्ञा दे दी कि इसे मार डालो। पर कोई राजा नहीं हुआ। तब अपने छोटे पुत्र परशुरामजी को आज्ञा दी कि इसे मार डालो और मेरी आज्ञा न माननेवाले अपने भाइयों को भी मार डालो। परशुरामजी ने वैसा ही किया। जमदग्नि ऋषि प्रसन्न हो गये। परशुरामजी से कहा वर माँग। उन्होंने

वर माँगा कि मेरी माँ और भाई जी उठें और उन्हें यह याद न रहे कि मैंने उन्हें मारा था। पिता ने तथास्तु कह के जिला दिया। जो हो मातृवध तो उनके हाथ हुआ। बतलाओ कौन उन्हें पूज्य नहीं मानता ?

ययाति राजा भगवान् भार्गव के शाप से बूढ़े हो गये। कामवासना से उनका मन तृप्त नहीं हुआ था। बड़ी विनती करने पर ऋषिजी ने शापानुग्रह किया कि यदि कोई तुम्हारी बुढ़ाई लेकर अपनी जवानी दे दे तो मेरे प्रसाद से यह सम्भव होगा। अपने लड़कों से उन्होंने जवानी माँगी पर किसीने न दिया। छोटे लड़के ने अपनी जवानी दी और बाप की बुढ़ाई लेकर बूढ़ा हो गया। यदि विचारा जाय तो कितना बड़ा अनर्थ हुआ। बेटा अपनी जवानी बाप को दे इससे बड़ा अनर्थ क्या होगा ! क्योंकि पुत्र के यौवन से उसकी माता को ही भोगेगा। इस पाप और दुर्यश का क्या ठिकाना ? परन्तु उसे यौवन देने की इच्छा न थी। बाप की आज्ञा से दे दिया। अतः न पाप हुआ न दुर्यश हुआ।

दो. अनुचित उचित बिचारु तजि, जे पालहिं पितु बयन।
ते भाजन सुख सुजसु के, बसहिं अमरपति अयन ॥१७४॥

अर्थ : जो उचित अनुचित का विचार छोड़कर पिता के वचन का पालन करते हैं वे सुयश के पात्र होकर इन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : पिता के वचन में उचित अनुचित के विचार को स्थान ही नहीं हैं। जो पिता ने आज्ञा दे दी वही पालनीय है। औचित्यानौचित्य का भार पिता पर है। पुत्र तो आज्ञा पालक ठहरा। उसे पिता के वचन पालन का पुण्य होता है। पाप से उसका स्पर्श नहीं होता। ऐसा वचन यदि दुःख का कारण दुर्यश का कारण तथा निरय का कारण भी जान पड़े तो भी पुत्र पर इनका कोई प्रभाव न पड़ेगा। पिता की आज्ञा पालनेवाला दुःख न पाकर सुख पावेगा। उसकी अपकीर्ति न होकर कीर्ति होगी। वह नरकगामी न होकर इन्द्रलोक में निवास पायेगा।

अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोकु परिहरहू॥
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू। तुम्ह कहुँ सुकृत सुजसु नहिं दोषू ॥१॥

अर्थ : तुम राजा के वचन को अवश्य सत्य करो। प्रजा का पालन करो और शोक का त्याग करो। राजा को स्वर्ग में सन्तोष होगा और तुमको पुण्य और सुन्दर यश होगा। दोष नहीं होगा।

व्याख्या : पहिले गुरुजी ने राजाज्ञा पालन करने को कहा। फिर पिता के वचन को सत्य करने को कहा। तीसरी बार पिता के प्रिय होने से वचन को प्रमाण करने के लिए कहा। चौथी बार राजाज्ञा पालन में भरतजी की भलाई दिखलाया। अब पाँचवीं बार भलाई का उदाहरण देकर उसी बात पर जोर देते हुए कहते हैं कि अवश्य राजा के वचन को सत्य करो। प्रधान राजधर्म प्रजा पालन है। वह इस समय सिवा तुम्हारे करता कौन है ? इसलिए शोक छोड़कर राजधर्म सँभालो।

यदि कहो कि राजा ने सन्तुष्ट होकर नहीं कहा है, वचनबद्ध होने से लाचार होकर कहा है। इसपर कहते हैं कि सुरपुर में राजा को सन्तोष होगा। तुम्हारे वचन पालन से जब सुरपुर में राजा का सम्मान बढ़ेगा तो उन्हें सन्तोष होगा। गुरु की हैसियत से कह रहे हैं कि तुम्हें पुण्य होगा, सुयश होगा। डरो मत कि मुझे पाप होगा या दुर्यश होगा। कारण देते हैं :

बेद बिदित संमत सबहीका। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥
करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचनु हित जानी ॥२॥

अर्थ : वेद में भी ऐसा ही कहा है और लोक भी ऐसा ही मानता है कि जिसे पिता दे वही राजतिलक पावे। ग्लानि छोड़कर राज्य करो और मेरे वचन को हित जानकर मानो।

व्याख्या : सर्वोपरि प्रमाण वेद है। वह भी यही कहता है कि जिसे पिता दे वह राज्य पावे। वेद की आज्ञा ही धर्म है। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। लोकविद्विष्ट-धर्म को न करने का भी विधान है। पर इस विषय में लोक भी ऐसा हो मानता है कि जिसे पिता दे वह राज्य पावे। कुलरीति पिता के विशेष आज्ञा के अभाव में मान्य है।

इतना कहने पर भी भरतजी चुप हैं। अतः कहते हैं कि तुम ग्लानि को छोड़कर राज्य करो। मैं जो कहता हूँ उसे हित समझकर मानो। फिर भी भरतजी चुप हैं। गुरुजी की आज्ञा पर भी राज्य स्वीकार नहीं है। मर्म यह है कि स्वार्थ-सिद्धि की आज्ञा में विचार को अवसर मिलता है। स्वार्थ विरोध की आज्ञा में विचार को अवसर नहीं है। यही कारण है कि रामजी ने रुख देखकर आज्ञा मान ली और भरतजी कहने पर भी नहीं मान रहे हैं। गुरुजी इस बात को भलीभाँति समझते हैं कि इन्हें राम जानकी की अप्रसन्नता का भय है। कौसल्या आदि माताओं के दुःखी होने का ख्याल है। रामजी के लौटने पर उनके सामने सिंहासन पर कैसे बैठेंगे। इस बात का क्षोभ है। अतः फिर गुरुजी बोले।

सुनि सुख लहब राम बैदेहीं। अनुचित कहब न पंडित केहीं ॥
कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी ॥३॥

अर्थ : इस बात को सुनकर राम जानकी को सुख होगा और कोई पण्डित इसे अनुचित नहीं कहेगा। कौसल्या आदिक माता लोग भी प्रजा के सुख से सुखी होंगी।

व्याख्या : राम जानकी यह सुनकर कि तुमने भी पिता की आज्ञा को शिरो-धार्य किया : सुखी होंगे। यह न सोचो कि वे अप्रसन्न होंगे। मैं उनके स्वभाव से भली भाँति परिचित हूँ। राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे। मूर्खों की कोई गणना नहीं। उनका कोई चला नहीं सकता। गणना तो पण्डित के कहने की है। उसका जिम्मा मैं लेता हूँ कि कोई पण्डित अनुचित नहीं कह सकता।

मूर्खों के विषय में कहा गया है : भलो कहे बिनु जानहीं बिनु जाने अपवाद। ते नर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख विषाद।

माताएँ श्री महाराज दशरथ की योग्या हैं। उनको सबसे अधिक ख्याल प्रजा का रहता है। रामजी के वन चलते समय माता कौसल्याजी ने कहा : वेगि प्रजा दुख मेटव आई। इस समय प्रजा के अनाथ होने से वे सब दुःखी हैं। तुम्हारे राजा होने से प्रजा सुखी होगी तो वे लोग भी सुखी हो जावेंगी।

मरम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि ॥
सौंपेहुँ राजु राम के आएँ। सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ॥४॥

अर्थ : जो तुम्हारे और रामजी के मर्म को जानेंगे वे सब प्रकार से तुमसे भला मानेंगे। रामजी के आने पर उन्हें राज सौंप देना और सुन्दर प्रेम के साथ उनकी सेवा करना।

व्याख्या : अब प्रजा के विषय में कहते हैं कि वे तो इस समय भी तुमसे भला मानते हैं। वे ही क्यों जो तुम्हारे और रामजी के मार्मिक प्रेम को जानेगा वह सब तुमसे भला मानेगा। यथा : देवि परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहीं तरकी. विधु विष चवइ स्रवइ हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी। भए ग्यान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू।

तुम्हारा सेवाधर्म भी नहीं बिगड़ेगा। तुम केवल रामजी की अनुपस्थिति में राज्य करो। उनके आने पर राज्य सौंप देना और आनन्द से उनकी सेवा करना। यह राज्य करना भी उनकी सेवा करना ही है। इतना कहकर गुरुजी मौन हो गये। वस्तुतः जो निष्कर्ष गुरुजी ने निकला वह किसी का किया अन्यथा नहीं हो सका। फिर भी भरतजी का रुख अनुकूल न देखकर मन्त्री लोग बोले। राज्यकार्य में गुरुजी के बाद इन्हीं का नम्बर है।

दो. कीजिअ गुर आयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आयें उचित जस, तस तब करब बहोरि ॥१७५॥

अर्थ : मन्त्री हाथ जोड़कर कहते हैं कि अवश्य गुरुजी की आज्ञा का पालन कीजिए। रामजी के लौट आने पर जैसा उचित होगा वैसा कीजियेगा।

व्याख्या : गुरुजी के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए मन्त्री लोग बोले कि पहिली चार बातें जिनमें राज करने को कहा गया है स्वीकार न हो तो गुरुजी की आज्ञा तो अवश्य कीजिये। यह बात मन्त्री लोग हाथ जोड़कर विनय कर रहे हैं। अर्थात् प्रजापालन अवश्य कीजिये। सरकार को लौटने पर उचित विचार का अवसर है। इस समय तो प्रजापालन कर्तव्य है। आप नहीं पालन करेंगे तो कौन करेगा? पिता की आज्ञा का पालन भी हो गया और आपका सेवा धर्म भी बना रह गया। तब तस करब बहोरि : भाव यह कि इस समय दूसरा कुछ करने का अवसर नहीं है।

कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयेसु अहई ॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी ॥१॥

अर्थ : कौसल्याजी धैर्य धारणकर बोलीं : बेटा ! गुरुजी की आज्ञा पथ्य है। उसका आदर करो और हित मान करके आचरण करो। कालगति मानकर विषाद छोड़ो।

व्याख्या : इस अवसर पर कौसल्याजी का बोलना अत्यन्त आवश्यक था। सब रानियों में प्रधान हैं। इन्हीं के पुत्र को वनवास दिया गया। इनके बिना कहे भरतजी का राज्य स्वीकार करना उचित भी नहीं था। भरतजी का प्रेम देखकर धैर्य छूट जाता था। अभिषेक की चर्चा से राम वनवास आँख के सामने आगया। इसलिए धैर्य छूट रहा था। उसे धारण किया। तीसरे यह कि आज महाराज के न होने से यह गति हो रही है नहीं तो अभिषेक के लिए कितना बड़ा उत्सव होता इत्यादि। धैर्य छूटने के अनेक कारण वर्तमान होने पर भी धैर्य धारणकर माँ बोली। पूत सम्बोधन में ही वात्सल्य उमड़ा पड़ता है। कहती हैं कि गुरुजी की आज्ञा पथ्य है। रोगी के लिए हितकर है। इस समय रामवियोगरूपी कुरोग से सब दुःखी हैं। यथा : राम वियोग कुरोग बिगोये। इसी से रोग का उपशमन सम्भव है। रोगी हो, अपने मन का न करो। सद्गुरु के वचन का विश्वास करो : कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। सद्गुरु बैद्य बचन विश्वासा : यहाँ विश्वास करना हो आदर करना है और आचरण करना हो पथ्य सेवन है।

गुरुजी ने कहा था : मानहु मोर बचन हित जानी। कौसल्याजी को गुरुचरणों में महाराज की सी भक्ति है। यथा : तस पुनीत कौसल्या देवी। मेरे विशेषि गति रावरी तुलसी प्रसाद जाके सकल अमंगल भागे : अतः गुरुजी के वचन के लिए कहती हैं : सो आदरिअ करिअ हित मानो और बिषाद छोड़ने को कहती हैं। क्योंकि काल की गति हटाई नहीं जा सकती। यथा : काल करम गति अघटित जानी। अतः विषाद व्यर्थ है। भरतजी रो रहे हैं। इस पर कहती हैं।

बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम एहिं भाँति तात कदराहू ॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुमहीं सुत सब कहँ अवलंबा ॥२॥

अर्थ : रघुपति रामजी वन में हैं। महाराज इन्द्र के यहाँ हैं। और तुम इस भाँति कादर हो रहे हो। कुटुम्बीजन प्रजा मन्त्री तथा माताओं को बेटा ! केवल तुम अवलम्ब हो।

व्याख्या : माता कहती हैं कि उपाय भी तो दूसरा कोई नहीं है। रघुपति पालन में समर्थ थे सो तो वन में हैं यहाँ हैं नहीं महाराज भी नहीं हैं। वे अपने सखा इन्द्र के यहाँ चले गये। पहिले रामजो का नाम लिया। क्योंकि उन्हीं का अभिषेक सर्वसम्मति से होनेवाला था। महाराज वृद्ध हो गये थे। राज्य के भार से हलका होना चाहते थे। अतः उनका नाम पीछे से लिया। वे भी होते तो लाचार

होकर पालन करते हो। जब दोनों नहीं हैं तो तुम्हारे अतिरिक्त पालन कौन करता है ? सो तुम वीर होकर इस भाँति कादर हो रहे हो कि रोते हो।

प्रिय परिजन पुरजन, तुम्हारे पिता के सामने के मन्त्री, माताएँ सब इस समय निराधार हो रहे हैं। केवल तुम्हारा सहारा है। तुम्हारे साहस छोड़ने से ये सब मारे पड़ेंगे। इन पर दुःसह दुःख का भार आ पड़ेगा।

लखि बिधि बाम काल कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई ॥
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि पुरजन दुखु हरहू ॥३॥

अर्थ : विधाता की प्रतिकूलता और काल की कठिनता को लखकर धैर्य धारण करो। माता तुम्हारी बलैया लेती है। गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करो और तदनुसार आचरण करो। प्रजा का पालन करके नागरिकों के दुःख का हरण करो।

व्याख्या : धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परखिअहिं चारी। सो यह आपत्काल उपस्थित है, विधाता प्रतिकूल है : जिसने कैकेयी को पागल बना दिया। यथा : विधि वाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्हीं बावरी और काल भी कठिन उपस्थित है जिसके आगे किसी का बल नहीं चलता। यथा : सब कर आज सुकृत फल बीता। भयउ कराल काल विपरीता : यही समय धर्म की परीक्षा का है। अतः मैं माँ हूँ तुम्हारी बलैया लेती हूँ तुम धैर्य धरो।

पूत पथ्य गुरु आयसु अहई से उपक्रम करके सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू से उपसंहार करती हुई कहती हैं कि प्रजापालन कौन करेगा ? इसलिए प्रजापालन करके पुरजन का दुःख हरण करो। क्योंकि इस समय बिना राजा के प्रजा अनाथ हो रही है।

गुरु के बचन सचिव अभिनंदनु। सुने भरत हिय हित जनु चंदनु ॥
सुनि बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी ॥४॥

अर्थ : गुरुजी के वचन और मन्त्रियों का अभिनन्दन भरतजी ने सुना। जो हृदय के लिए चन्दन सा हितकर था। फिर शील स्नेह और सरलता के रस से सनी हुई माता की वाणी सुनी।

व्याख्या : गुरु के वचन प्रतीत न जेही। सपनेहु सुलभ न सुखसिधि तेही। जिसके लिए स्वयं भरतजी कहते हैं : अवसि फिरव गुरु आयसु मानी। सो गुरु को वाणी किसी प्रकार हटाने योग्य नहीं जिसके विषय में धर्म विरुद्ध होने की शङ्का भी नहीं की जा सकती। फिर मन्त्रियों ने उसका अनुमोदन किया। अतः नीति विषयक सन्देह भी उस पर नहीं किया जा सकता। वह वाणी शीतल और हित कारक थी। जिस भाँति चन्दन हृदय के लिए और स्पर्श में शीतल है।

फिर माता की मृदु वाणी सुनी। जो शील, स्नेह और सरल रस से सनी हुई थी। शील यथा : पूत पथ्य गुरु आयसु अहई। सनेह यथा : तुमही सुत सब कहँ

अवलम्बा। सरल यथा : धीरज धरहु मातु बलि जाई। तथापि भरतजी का कष्ट घटने के स्थान में बढ़ा। उन्हें आशा थी कि कम से कम माता कहेगी कि यदि भरतजी राज्य नहीं लेते तो रामजी को लौटाओ पर ये ऐसो सरल थीं कि जो सबने कहा उसी को इन्होंने भी मान लिया।

छं. सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत व्याकुल भये।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नये॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की॥

अर्थ : सरलता के रस से सनी हुई वाणी को सुनकर भरतजी व्याकुल हो गये। उनके कमल रूपी नेत्रों से आँसू बहकर हृदय के नये विरहाङ्कुरों को सींचने लगे। उस दशा को देखकर सबको अपने देह की सुधि न रह गयी। तुलसीदासजी कहते हैं कि उस सहज सनेह की सीमा को सब लोग आदर के साथ सराहने लगे।

व्याख्या : माता को ऐसी सरल वाणी सुनने से भरतजी व्याकुल हो गये। ऐसे सरल के ऊपर इतना बड़ा आघात हुआ और फिर भी इनकी सरलता ज्यों की त्यों है। भरतजी के नेत्रों से आँसू की धारा चली जिससे हृदय भींग उठा। मानो जो नये विरह के अंकुर उगे हैं उन्हें यह अश्रुधारा सिञ्चन कर रही है। विरह के नये अङ्कुर उगने का भाव यह है कि भरतजी देखते हैं कि सभी ने रामजी का चौदह वर्ष वनवास मान लिया। उनके लौटाने के लिए यत्न करने की भावना भी किसी में नहीं है। अतः नये विरह के अङ्कुर उगे।

भरतजी के प्रेम की वह दशा देखने से सभी लोग प्रेम में मग्न हो गये। किसी को अपने देह की सुधबुध न रही। कुछ समय तक तो यह दृश्य था। मन के सँभलने पर सभी लोग आदर के साथ सहज प्रेम की सीमा की सराहना करते लगे। भाव यह कि सभी को सरकार के चरणों में प्रेम था। पर परम प्रेम की सीमा तो भरत में थी। प्रेमियों में प्रेम की गुण ग्राहकता होती है। अतः सादर सराहना करते हैं।

सो. भरतु कमल कर जोरि, धीर धुरन्धर धीर धरि।
बचन अमिअ जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहि॥१७६॥

अर्थ : धैर्य की धुरा के धारण करनेवाले भरतजी धैर्य धारण करके अपने कमल सदृश हाथों को जोड़कर मानो अमृत में डुबाए हुए वचनों से सबको उचित उत्तर देने लगे।

व्याख्या : भरतजी को किसीकी सम्मति स्वीकार नहीं है। पर सब लोग धैर्य धारण करने को कहते हैं। इसलिए धैर्य धारण किया अथवा बिना धैर्य धारण किए उत्तर दिया नहीं जा सकता और यदि उत्तर नहीं देते तो मौनं स्वीकारलक्षणम्

हुआ जाता है। जिनको उत्तर देना है वे सब बड़े हैं। इसलिए हाथ जोड़कर उत्तर देते हैं। उत्तर देने में कसर न रक्खेंगे इसलिए कहते हैं : देत उचित उत्तर सबहिं। जिसको जैसा उत्तर देना चाहिए वैसा उत्तर देंगे। परन्तु उत्तर वस्तु ही ऐसी है जो किसी को प्रिय नहीं लगती। सभी चाहते हैं कि मेरी बात का कोई उत्तर न दे। क्योंकि उत्तर सुनने में रस बिगड़ता है। परन्तु भरतजी ऐसे शब्दों में उत्तर देते हैं जिससे सुननेवाले को परम सुख हो। उत्तर मीठा लगे और उससे सन्तोष हो। भरतजी की पण्डिताई है कि भरतजी उत्तर तो देते हैं पर प्रजा को, पञ्च परमेश्वर को उत्तर देते हैं। धर्मतन्त्र के मूल सिद्धान्त को पकड़े हुए उत्तर दे रहे हैं। उत्तर देने के लिए उपक्रम का ही यह अर्थ है कि कही हुई बात स्वीकार नहीं है और न स्वीकार करने का यथेष्ट कारण है।

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव संमत सबहीका ॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा ॥१॥

अर्थ : मुझे गुरुजी ने अच्छा उपदेश दिया। प्रजा मन्त्री सभी की यह राय है। माँ ने भी उचित की धारणा से आज्ञा दी है। मैं शिरोधार्य करके अवश्य करना चाहता हूँ।

व्याख्या : पहिले पहल गुरुजी ही बोले थे। कहा था : मानहु मोर बचन हित जानी। इसलिए कहते हैं कि उपदेश में कोई त्रुटि नहीं है। वह अच्छा है। गुरुजी ने मानने के लिए कारण दिया। अतः भरतजी उसे आज्ञा न मानकर उपदेश मानते हैं। बात पर जोर देने के लिए मन्त्री कहते हैं कीजिअ गुरु आयसु अवसि। माँ कहती हैं : पूत पथ्य गुरु आयसु अहई। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि वह आज्ञा नहीं है उपदेश है। वह उपदेश मन्त्रियों की सम्मति के अनुकूल है। परन्तु प्रजा ने तो कुछ नहीं कहा फिर भा भरतजी प्रजा की सम्मति कहते हैं। क्योंकि प्रजा की ओर से विरोध नहीं हुआ। धर्मशास्त्र कहता है कि सभा में प्रवेश न करे और करे तो स्पष्ट बोले। क्योंकि अनुचित कहनेवाला और चुप रहनेवाला समान पापी है। आजकल लोग उस नियम को भूल गये। इसलिए हाथ उठवाना पड़ता है। जब प्रजा चुप रह गयी तो निश्चय हो गया कि उसकी भी यही राय है।

माता ने निःसन्देह आदेश दिया। पर उन्होंने भी उचित की धारणा से आदेश दिया। उसे पथ्य समझकर करने को कहा। भरतजी कहते हैं कि मैं भी चाहता हूँ कि तदनुसार कार्य करूँ। पर करने में असमर्थ हूँ। आप लोग कहते हैं कि शिरोधार्य करो। मैं शिरोधार्य करता हूँ। परन्तु चाहने पर भी करते नहीं बनता।

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी ॥
उचित कि अनुचित कियें बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू ॥२॥

अर्थ : गुरु पिता माता स्वामी और हित की वाणी सुनकर उसे प्रसन्न मन

से अच्छा समझकर करे। उसमें उचित अनुचित का विचार करने से धर्म जाता रहता है और सिर पर पाप का भार होता है।

व्याख्या : गुरु पिता माता स्वामी और हित इनमें से एक का भी वचन उल्लंघनीय नहीं है। यहाँ तो पाँचों का ऐकमत्य है। यथा :

गुरुवाणी : करहु राजु परिहरहु गलानी।
पितुवाणी : कछु दिन गये भरत जुबराजू।
मातुवाणी : प्रजा पालि पुरजन दुख हरहू।
स्वामिवाणी : कहब सँदेसु भरत के आये। नीति न तजिअ राजपदु पाये।
हितवाणी : कीजिय गुरु आयसु अवसि।

अतः इसकी उपादेयता में तो कोई प्रश्न ही नहीं है। सहज सुहृद गुरुस्वामि सिख जो न करई हित मानि। सो पछिताय अघाय उर अवसि होय हितहानि। इनकी वाणी में उचित अनुचित विचार करने से धर्म का लोप होता है और पाप का बोझ सिर पर आ जाता है। अतः इसमें औचित्यानौचित्य के विचार को अवकाश नहीं है। अतः इस पर मैं भी विचार नहीं करता।

तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समुझत हौं नीकें। तदपि होत परितोष न जीकें॥३॥

अर्थ : तुम लोग तो वही शिक्षा मुझे देते हो जिसके आचरण से मेरा भला हो। यद्यपि मैं इस बात को भली भाँति समझ रहा हूँ। फिर भी जी को परितोष नहीं होता।

व्याख्या : उपदेश भी भावोपहत नहीं है सरल है। उसके समझने में भी कठिनता नहीं है। तुम लोग मेरा भला देख रहे हो। इस बात को अच्छी तरह से मैं समझ रहा हूँ। परन्तु अपने ही भले से मुझे सन्तोष नहीं होता। भाव यह कि तुम लोग सरकारके कष्ट की ओर दृष्टिपात नहीं कर रहे हो। क्या उनके कष्ट विनिर्मुक्ति का कोई उपाय नहीं है? जब तक वे दुःख सहते वन में फिरते हैं तब तक मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है कि सोच छोड़कर प्रजापालन में दत्तचित्त हो जाऊँ। मेरे चित्त में परितोष नहीं हो रहा है। मैं आप लोगों की आज्ञा नहीं टाल सकता। परन्तु अपना हार्दिक भाव तो प्रकट कर सकता हूँ।

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू॥
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥४॥

अर्थ : अब तुम मेरी विनय सुन लो और मेरी योग्यतानुसार सिखावन दो। मैं उत्तर देता हूँ : मेरे अपराध को क्षमा करो। सज्जन लोग दुःखी आदमी के दोष गुण को नहीं गिनते।

व्याख्या : अन्तिम आदेश के पहिले विनय सुनना उचित है। अतः मेरी विनती सुनिये और तब ऐसी शिक्षा दीजिये जो मुझसे हो सके। जो बात मेरी की

हुई नहीं हो सकती उसे मैं चाहता हुआ भी नहीं कर सकता। आप लोगों ने जो शिक्षा मुझे दी वह है बड़ी अच्छी पर मैं उसका अधिकारी नहीं। तदनुसार आचरण करना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है।

आप लोग बड़े हैं। आपका उत्तर देना अपराध है और मैं उत्तर देता हूँ। इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। उत्तर देने का कारण यह है कि मैं दुःखी हूँ। आप लोग साधु हैं। साधु लोग न तो दुःखी के दोष को ही गिनते हैं और न गुण को ही गिनते हैं। यहाँ उत्तर देने का प्रकरण है। इसलिए दोष पहिले कहा। गुण पीछे कहते हैं। दुःखी गाढ़े में पड़कर कटु बोलता है। यथा : कटु कहिये गाढ़े परे सुनि समुझि सुसाँई। परन्तु स्वामी उसके दोष को नहीं गिनता। दुःखी वैराग्ययुक्त वाणी बोलता है। पर उसके राग या विराग की वाणी पर साधु कुछ ख्याल नहीं करते। यथा : सुनि बिराग संजुत कपि बानी।

दो. पितु सुरपुर सिय रामु बन, करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काजु ॥१७७॥

अर्थ : पिताजी स्वर्ग चले गये। सीता राम वन में हैं। मुझे राज करने को कहते हो। इसमें—मेरी भलाई समझते हो या अपना कोई बड़ा काम समझ रहे हो।

व्याख्या : पहिले यह विचार लो कि किस परिस्थिति में किससे क्या कह रहे हो। पिता मर गये। श्रीसीतारामजी वन गये और मेरे कारण से ये दुर्घटनाएँ हुईं। सो मुझ ही को राज करने को कहते हो। यह नहीं समझ रहे हो कि मेरे राज्य स्वीकार का अर्थ ही यही है कि इन दुर्घटनाओं में मेरी सम्मति थी। अतः समझ लो कि राज्य स्वीकार करना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। दूसरी बात यह है कि जो कोई किसी काम के करने के लिए किसी से कहता है तो दो बातों में एक बात अवश्य रहती है। उससे या तो करनेवाले का भला ईप्सित होता है या अपना भला ईप्सित होता है। भरतजी पूछते हैं कि यह तो बतलाओ कि तुम लोगों ने किसका भला सोचकर मुझे शिक्षा दी है। इससे तुम लोगों का भला होगा या मेरा ?

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीखि मन माँही। आन उपाय मोर हित नाँहीं ॥१॥

अर्थ : मेरी भलाई तो सीतापति की सेवा में हैं। उसे माता की कुटिलता ने हरण कर लिया। मैंने मन में अनुमान करके देख लिया कि किसी दूसरे उपाय से मेरा हित सम्भव नहीं है।

व्याख्या : यदि पहिला पक्ष लो कि मेरा हित राज्य स्वीकार में है तो ठीक नहीं। क्योंकि : सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई। वह सेवकाई मुझे प्राप्त थी। उस सेवकाई को माता की कुटिलता ने हरण कर लिया।

मेरे हाथ से सेवकाई निकल गयी। अहह धन्य लछिमन बड़ भागी। राम पदारविंद अनुरागी : सियपति कहकर महामाया पति कहा। यथा : उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीं। सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभां। माता और पुत्र का सम्बन्ध ऐसा है कि माता की कुटिलता का आरोप पुत्र पर होता ही है। विशेषतः उस समय जब कि उसका कुटिलाचरण पुत्र के स्वार्थ के लिए हो। अतः अब मेरी गणना सेवकों में नहीं रह गयी। माता पुत्र की हित करती है। सो माता ने मेरा हित ही हरण कर लिया। आप लोग यदि हित चाहते हो तो सेवा का अवसर दो। माँ ने उन्हें वन में भेजकर हित से वञ्चित किया है। यदि लौटें तो हित हो। स्वारथ साँच जीव कर एहा। मन क्रम बचन रामपद नेहा।

अनुमान द्वारा ही मन से देखा जाता है। पर्वतो वह्निमान् कहनेवाले ने बिना आँख से देखे मन द्वारा देख लिया। अन्वयव्यतिरेक से यही सिद्ध होता है कि मेरा हित दूसरे उपाय से होनेवाला नहीं। यथा : तुम बिनु दुखी सुखी तुमते ही। मेरा हित कहने का भाव यह कि दूसरे का हित भले ही दूसरे उपाय से हो : एक अंग जो सनेहता निसिदिन चातक नेह। तुलसी जा सो हित लगै वहि अहार वहि देंह। जीव चराचर जहँ लगे है सबको हित मेह। तुलसी चातक मन बस्यो घन सो सहज सनेह।

सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें॥
[1]वादि बसन बिनु भूषन भारू। वादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू॥२॥

अर्थ : लक्ष्मण राम और सीता के चरणों को बिना देखे यह राज्य किस गिनती में है। यह शोक समाज है। कपड़े के बिना गहने का बोझा व्यर्थ है और वैराग्य के बिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है।

व्याख्या : यह राज्य नहीं है शोक समाज है। प्रिय के विरह में सुखद वस्तु भी दुःखद हो जाती है। यथा : जे हित रहे करैं ते पीरा। अतः यह राज समाज शोक समाज मालूम पड़ता है। इसका भला सुख में क्या गिनती है। लक्ष्मण राम सीता के चरणों का दर्शन हो तो सभी में सुख है। सुख उन चरणों में है बाह्य उपकरणों में नहीं। यथा : नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे। अब शङ्का यहाँ उठ सकती है कि लक्ष्मणजी तो छोटे हैं। उनके चरण दर्शन के लिए भरतजी क्यों कहते हैं। सीधा सा उत्तर यही है कि सीता और रामजी के साथ हैं। इसलिए : छत्रिणो गच्छन्ति की भाँति लक्ष्मणजी के साथ भी चरण शब्द का व्यवहार कर दिया। यथा : अनुज समेत गहेउ प्रभु चरना। दूसरो बात यह भो है कि यन्त्रराज के मुख्य त्रिकोण में ये ही तोन मूर्तियाँ हैं और इसी त्रिकोण रूप के शरण में देवता लोग गये। यथा :

---

१. विनोक्ति : प्रथम अलङ्कार है।

हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया[1] चिता।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोसलात्मजः॥ ९॥
दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुनः।
हेमाभेनानुजेनैव तदा कोणत्रयं भवेत्॥१०॥
एवं त्रिकोणरूपं स्यात् तं देवा ये समाययुः। रा० ता० ४.११

स्वर्ण वर्णवाली दो भुजाओंवाली सब अलंकार धारण किये हुए हाथ में कमल लिये हुए सीता देवी से युक्त श्रीरामजी हैं। उनके दाहिनी ओर धनुष हाथ में लिये हुए लक्ष्मणजी है जिनका रङ्ग सोने सा है। इस भाँति त्रिकोण होता है। उसी त्रिकोण के शरण में देवता लोग गये।

शत्रुघ्न भरत और हनुमान दूसरे त्रिकोण में हैं। यथा :

उदग्दक्षिणयोः स्वस्य शत्रुघ्नभरतौ धृतः।
हनूमन्तं च श्रोतारमग्रतः स्यात् त्रिकोणकम्॥४.३२।

अतः मुख्य त्रिकोण रूप में भक्ति द्योतित करते हैं।

गहना शोभा का कारण है पर यदि वस्त्र हो तो और यदि वस्त्र ही नहीं तो भूषण से शोभा नहीं। वह व्यर्थ होकर भाररूप हो जाता है। इसी भाँति रामजी हों तो राज्य सुखद है। उनके न होने पर राज्य में सुख कहाँ? वह तो भाररूप हो जायगा। बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी। इसी भाँति वैराग्य हो तो ब्रह्मविचार में आनन्द है। यदि वैराग्य ही नहीं तो ब्रह्मविचार में आनन्द कहाँ? उल्टा ब्रह्मविचार बड़ा भारी बोझा हो जाता है। उसका स्मरण रखना कठिन हो जाता है।

सरुज सरीर वादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जायँ जप जोगा॥
जाँय जीव बिनु देह सुहाई। वादि मोर सबु बिनु रघुराई॥३॥

अर्थ : रोगी शरीर हो तो बहुत से भोग व्यर्थ हैं। बिना हरिभक्ति के जप योग व्यर्थ है। जीव के बिना सुन्दर देह व्यर्थ है। रघुराई के बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है।

व्याख्या : भोग सुख देनेवाला है। पर यदि शरीर में कोई रोग हो तो भोग शक्ति भी घट जाती है और भोग से उस रोग की वृद्धि भी होती है। या यों कहिये कि रोगी के लिए भोग विष है। यथा : कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनउ मुनि जोगी। अतः सब भोग उसके लिए व्यर्थ हैं। इसी भाँति राम वियोग रूपी कुरोग से जो दुःखी हैं उनके लिए राज्य अपथ्य है।

जप योगादि अनुष्ठान हरिभक्ति के लिए ही किया जाता है। यथा : जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी। यदि हरिभक्ति ही न हुई तो

---

१. पाठभेद : सर्वालङ्कृतया।

सब्र साधन व्यर्थ गये। यथा : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जह नहिं राम प्रेम परधानू।

सुन्दर देह हो पर उसमें जीव न हो तो वह देह व्यर्थ है। अमङ्गल रूप है। जीव रहने से वही देह मङ्गल रूप थी। यथा : जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी। परन्तु रामजी के बिना मेरा तो सब कुछ व्यर्थ है। अर्थात् रामजी से ही मेरी शोभा है। रामजी से ही आनन्द है। रामजो से ही हित है। रामजी से ही सफलता है और रामजी से ही मङ्गल है अर्थात् बिना रामजी के न शोभा है, न आनन्द है, न हित ?, न सफलता है, न मङ्गल है।

जाउँ राम पहि आयसु देहू। एकहि आँख मोर हित एहू॥
मोहि नृपु करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू॥४॥

अर्थ : मुझे आज्ञा दीजिये। मैं भी रामजी के पास जाऊँ। इसी एक बात में मेरा हित है। मुझे राजा बनाकर जो अपना भला चाहते हो सो स्नेह की जड़ता के वश होने से कहते हो।

व्याख्या : भरतजी सभा से कह रहे हैं कि मैं आज्ञा से बाहर नहीं हूँ। अतः आज्ञा माँगते हैं कि मुझे रामजी के पास जाने की आप लोग आज्ञा दें। क्योंकि मेरा भला उनके यहाँ जाने में ही है और आप लोग मेरा हित चाहनेवाले हैं। अतः अवश्य ही दीजिये।

यदि कहो कि हम लोग अपने लाभ के लिए तुम्हें राजा बनाना चाहते हैं। तब तो मैं यही कहूँगा कि मेरे ऊपर आप लोगों का इतना स्नेह है कि आप लोगों की बुद्धि में जड़ता आगयी है। आप लोगों की दोषों की ओर दृष्टि ही नहीं जा रही है। दोषज्ञ पण्डित का नाम है। जो दोष का विवेचन न कर सके वह कैसा पण्डित? मेरे राज्य से सुख हो नहीं सकता। कारण कहते हैं।

दो. कैहइ सुअन कुटिलमति, राम बिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस, मोहि से अधम के राज॥१७८॥

अर्थ : कैकेयी का बेटा, कुटिल बुद्धि, राम विमुख और निर्लज्ज ऐसे अधम के राज्य में तुम सुख चाहते हो।

व्याख्या : मैं कैकेयी का बेटा हूँ। कैकेयी की बुद्धि की कुटिलता को सब जानते हैं। माँ का प्रभाव कहाँ तक बेटे पर न पड़ेगा। मेरी बुद्धि कुटिल है। रामजी के वन भेजने का कारण होने पर भी अपने को निर्दोष मानता हूँ। रामजी के विमुख हूँ। उनके सम्मुख होने की कोई चेष्टा न करने से निर्लज्ज हूँ। इतना बड़ा अपयश सहन करके जीवित हूँ। अधम कहते किसको हैं? जिसका जन्म बुद्धि कर्म और शील प्रशस्त न हो वही अधम है। मुझमें ये चारों नहीं हैं अतः मैं बहुत बड़ा अधम हूँ। अधम को राजा बनाना नहीं चाहिए। क्योंकि उसके कारण प्रजा का आदर्श बिगड़ जाता है। यथा राजा तथा प्रजा। केवल दण्ड विधान करना ही राजा

का कार्य नहीं है। उसका चरित्र प्रजा के लिए आदर्शरूप होना चाहिए। अधम के राजा बनने से प्रजा अधम हो जायगी। फिर सुख का लेश कहाँ ? अतः अधम को राजा बनाकर सुख चाहना जड़ता है।

कहौं साँचु सब सुनि पतियाहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥१॥

अर्थ : मैं सच कहता हूँ। सुनकर विश्वास करो। राजा धर्मात्मा होना चाहिए। मुझे हठपूर्वक राज्य जिस समय दोगे उसी समय पृथ्वी रसातल को चली जाएगी।

व्याख्या : मैं विनय प्रदर्शन के लिए नहीं कह रहा हूँ। अथवा जब मैं अपने को अधम स्वीकार कर चुका हूँ तो यह न समझ लो कि इस समय मैं झूठ कह रहा हूँ। मैं सच कहता हूँ। आप लोग विश्वास करिये। मैं वस्तुतः कुटिल हूँ। आप लोगों का सरलभाव से कहना मेरे हृदय में नहीं बैठ रहा है। मैं समझ रहा हूँ कि आप लोग मुझे वस्तुतः राज्यलिप्सु समझ रहे हैं। मुझे माँ को राय में समझ रहे हैं। यथा : तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोइ। जो आचरत मोर भल होई। मैं राम विमुख हूँ। मेरे कारण रामजी सब प्रकार का कष्ट झेल रहे हैं। मुझे लज्जा नहीं है। जिसे लज्जा थो उसने शरीर त्याग दिया। मैं आप लोगों के सामने मुख दिखला रहा हूँ। अतः मैं राज्य के योग्य नहीं। कुटिल रामविरोधी और बेहया राजा नहीं होना चाहिए। राजा धर्मशोल होना चाहिए। जिसमें प्रजा उसका अनुसरण करके धर्मात्मा हो।

अतः मैं राज लेना नहीं चाहता। आज्ञा के बल से मुझे दोगे तो मुझे लेना पड़ेगा। पर इसका फल बड़ा भयानक होगा। प्रजा मेरा अनुसरण करने लगेगी। पितृवध बन्धविरोध धन-सम्पत्ति के लिए होने लगेगा। यथा राजा तथा प्रजा। प्रजा पतित हो जायगी। ऐसा पाप पृथ्वी पर बढ़ेगा कि वह सह न सकेगी। रसातल को चली जायगी। मेरे सिंहासन पर बैठने की देर है। तुम्हारा भला कुछ न होगा। उलटा बड़ा भारी विनाश उपस्थित हो जायगा।

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू ॥
रायँ राम कहु काननु दीन्हा। बिछुरत गमनु अमर पुर कीन्हा ॥२॥

अर्थ : भला मेरे बराबर पाप का निवास स्थान कौन होगा ? जिसके लिए सीता और राम को वनवास हुआ। राजा ने रामजी को वन तो दिया पर उनके बिछुड़ने पर आप सुरपुर भी चले गये।

व्याख्या : रसातल जाने का कारण कहते हैं कि मेरा पाप हो ऐसा है। क्योंकि मैं सीताजी और रामजो जैसे महापुण्यवानों के वनवास का कारण हूँ। वनवास बड़ा भारी दण्ड है। यथा : डरपहि धोर गहन सुधि आये। महा निकम्मों को वनवास दिया जाता है। यथा : अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।

मेरे कारण इतने बड़े पुण्यवान् को ऐसा घोर दण्ड दिया गया। मेरे पाप का क्या ठिकाना ?

यदि कहिये कि तुम तो केवल वनवास दिये जाने के कारण हुए। प्रयोजक कर्त्ता हुए। मुख्यकर्त्ता अर्थात् वनवास देनेवाले तो महाराज थे। तो इसपर यह कहना है कि उन्होंने अपना प्राण देकर संसार के सामने अपनी सफाई भी दे दी। संसार जान गया कि राजा ने खुशी से वनवास नहीं दिया। वनवास जबरदस्ती राजा से दिलवाया गया जिसका उन्हें इतना दुःख हुआ कि उन्होंने प्राण दे दिया।

मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनहुँ सचेतू ॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू ॥३॥

अर्थ : मैं शठ हूँ। सब अनर्थ की जड़ हूँ। बैठा हुआ सब बातें सुन रहा हूँ। बिना रघुबीर के घर को देखकर भी ये प्राण जगत् की हँसी सहकर भी बने हैं।

व्याख्या : मैं शठ हूँ। मीठी बातें शठ कहे करिके महा बिगार। महाराज साधु थे। मैं अनर्थ का मूल होकर नहीं मरा। जीते जागते होश हवास में बैठा सब बातें सुनता हूँ। एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भावसुनि रहहीं आदि। यदि कहिये कि तुम तो थे ही नहीं जब यह काण्ड हुआ। तो इसका उत्तर यह है कि जब घर लौटे और बिना सीता रामजी का घर पाया उस समय तो मुझे मर जाना था। पर नहीं मरा। मुझे कलङ्क से कौन बचा सकता है ? संसार मुझ पर हँसता है कि इसी के कारण रामजी को वन हुआ और मैं जीता हूँ। अतः मेरे निर्लज्ज होने में त्रुटि क्या है ?

राम पुनीत बिषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे ॥
कहँ लगि कहौं हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई ॥४॥

अर्थ : पवित्र राम विषय रस से रूखे हैं। लालची लोग पृथ्वी के भोग के भूखे होते हैं। मैं अपने हृदय की कठिनता को कहाँ तक कहूँ। इसने वज्र का भी निरादर करके बड़ाई पाया है।

व्याख्या : राज्य करने में अपनी अयोग्यता कहकर रामजी की योग्यता कहते हैं। चाहिअ धर्मसील नरनाहू। तो रामजी पुनीत हैं। धर्मसील हैं। उन्हें राज्य की भूख नहीं। वे विषय रस के रसिक नहीं। यथा : नवगयंद रघुबीर मनु राज अलान समान। छूट जान बनगवन सुनि उर अनन्द अधिकान। उन्हें राज्य छोड़ने और वन जाने की आज्ञा हुई। तुरन्त छोड़कर चले गये। परम त्याग का उदाहरण प्रजा के सामने उपस्थित कर दिया। आज कोई लालची भोग का भूखा होता तो क्या इस भाँति छोड़ देता। रामजी का वचन है।

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यमापातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः।
प्राणास्तृणाग्रजलविन्दुसमा नराणां धर्मः सदा सुहृदहो न विरोधनीयः ॥

हवा के बवण्डर की भाँति यह पृथ्वी का स्वामित्व है और विषयोपभोग भी

तत्काल क लिए ही मधुर है और तिनके के सिरे पर लटकते हुए जलबिन्दु की भाँति प्राणों की स्थिति है। अतः हे मित्रो ! कभी भी धर्म का विरोध नहीं करना चाहिए।

ऐसे पुनीत रामजी के वनवास पर भी हृदय नहीं फटा तो यही कहना है कि इसने अपनी कठिनता से वज्र को भी मात कर दिया। अब मेरे हृदय की कठिनता की प्रशंसा है। कोमल हृदय महाराज का था जिन्होंने : बिछुरत गवन अमरपुर कीन्हा।

दो. कारन ते कारजु कठिन, होइ दोष नहि मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर ॥१७९॥

अर्थ : कारण से कार्य कठिन होता है। इसमें मेरा दोष नहीं है। हड्डी से वज्र और पत्थर से लोहा कराल कठोर होता है।

व्याख्या : मेरा हृदय ऐसा कठोर हो गया कि रामजी से सूना घर देखकर नहीं फटा और संसार में उपहासास्पद होने पर भी नहीं सरका। इसमें मेरा दोष नहीं है। क्योंकि कार्य से कारण कठोर अधिक होता ही है। वज्र दधीच ऋषि की अस्थि से बना है। पर वह अस्थि से कहीं अधिक कराल है। पत्थर में ही लोहा पाया जाता है। सभी धातु पहाड़ से ही निकलते हैं। परन्तु पत्थर से भी अधिक कठोर लोहा होता है। भाव यह कि कैकेयी से मेरा जन्म हुआ है। अतः उनसे भी अधिक कठोर होने में मेरा दोष नहीं है।

कैकेयी ने मेरे लिए सब कुछ किया। पर वह इस समय अचेत है। पगली सी हो रही है और मैं सचेत होकर सब बात सुन रहा हूँ। अतः मैं अधिक कठोर हूँ।

कैकई भव तनु अनुरागे। पावन प्रान अघाइ अभागे ॥
जौ प्रिय बिरह प्रान प्रिय लागे। देखव सुनव बहुत अब आगे ॥१॥

अर्थ : कैकेयी से उत्पन्न देह से प्रेम करनेवाले ये पावन प्राण बड़े अभागे हैं। यदि प्यारे के विरह में प्राण प्रिय लगा तो आगे बहुत कुछ देखना और सुनना है।

व्याख्या : प्राणों में पाप का वेध नहीं होता। वह सदा पावन है। परन्तु बड़ा ही अभागा है। क्योंकि मेरे इष्ट रामजी से विरोध करनेवाली कैकेयी से उत्पन्न शरीर पर इसने प्रेम कर रक्खा है। उसे छोड़ना नहीं चाहता। इष्ट विरोधी से उत्पन्न तन पर सती ने अनुराग नहीं किया। यथा : पिता मंद मति निंदत ओही। दक्ष सुक्र संभव यह देही। तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद मौलि वृषकेतू। नहीं छोड़ने का फल यह हुआ कि भवभञ्जन पद विमुख होना पड़ा। यही अभाग है। यथा : भवभंजन पद विमुख अभागी। प्राण ही जीवात्मा बुद्धि और मन का सम्बन्ध शरीर से बनाये रखता है। यह यदि सम्बन्ध शरीर से तोड़ दे तो टूट जाता है। इसे यदि यह तन प्रिय न होता तो यह छोड़ देता। यह बड़ा भारी अभागा है कि ऐसे शरीर से सम्बन्ध बनाये हुए हैं।

प्राण सबको प्यारा होता है। परन्तु ऐसे प्रेमी होते हैं जिन पर प्राण से

अधिक प्रेम होता है। उनके विरह में प्राण प्रिय नहीं मालूम होता है। उसे छोड़ दिया जाता है। क्योंकि वह महा दुःखदायी हो जाता है। उसके रहने से प्रिय के प्रतिकूल बहुत सी बातें देखने और सुनने में आती हैं। परन्तु मुझे तो प्राण प्रिय मालूम होते हैं। चाहता तो था कि यदि प्राण शरीर से सम्बन्ध नहीं छोड़ते तो मैं ही प्राणों से सम्बन्ध छोड़ देता। जिस भाँति चक्रवर्तीजी ने छोड़ दिया और वेदना से मुक्त हो गये। पर मैं न छोड़ सका। इससे अनुमान होता है कि अभी न जाने क्या क्या मुझे देखना और सुनना बाकी है। भोग शेष है। इसलिए जीवात्मा प्राण और शरीर एक दूसरे से बँधे हुए हैं। भाव यह कि जिस परिस्थिति में भरतजी हैं उसमें उन्हें राज्य के लिए कथन मात्र से दु सह वेदना हो रही है और जितना ही उनको स्वीकार के लिए बल दिया जाता है उतनी ही उनकी वेदना बढ़ रही है।

लखन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा ॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेंउ प्रजहिं सोकु संतापू ॥२॥

अर्थ : लक्ष्मण राम और सीता को वन दिया। स्वर्ग भेजकर पति का हित किया और स्वयं विधवापन और अपयश लिया। प्रजा को शोक और सन्ताप दिया।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि जिस कैकेयी से मेरा शरीर उत्पन्न हुआ है और उसकी करणी कैसी है कि राम जानकी को वन देकर अपयश लिया। पति को स्वर्ग भेजकर विधवापन लिया। मातृधर्म पत्नीधर्म तथा आत्मधर्म का खूब निर्वाह करके रानीपन भी खूब निबाहा! प्रजाओं को शोक सन्ताप दिया। यथा : मुख सुखाहि लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ। मनहु करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ। बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिं पुरवासी। यहाँ व्यङ्ग से भरतजी माता की भर्त्संना कर रहे हैं।

मोहि [1]दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू ॥
एहि ते मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम टीका ॥३॥

अर्थ : मुझे सुख सुयश और सुन्दर राज्य दिया। कैकेयी ने सबका काम बना दिया। इससे अच्छा मेरा क्या होगा। तिस पर तुम लोग मुझे टीका देने को कह रहे हो।

व्याख्या : मैं खास बेटा था। इसलिए मुझे तीन बातें दी : १. सुख २. सुयश और ३. सुराज और लोगों को दो दो ही दी थीं।

सुख। यथा : भरतहि बिसरयौ पितु मरन सुनत रामंवन गौन।
सुयश। यथा : हेतु अपनपौ जानि जिय थकित परे धरि मौन।
सुराज। यथा : सोक समाज राज केहि लेखे।

---

१. यहाँ लेश अलङ्कार है।

इस भाँति कैकेयी ने पुत्रों का पति का अपना प्रजा का और सबका काम पूरा कर दिया। अर्थात् सर्वनाश कर दिया।

खास मेरी माँ के हाथ से यह सब अनर्थ हुआ। मेरे सुख, सुयश और सुराज के लिए। तिस पर तुम लोग यह चाहते हो कि मैं टीका भी कढ़वा लूँ। कहीं मुख दिखाने लायक भी मुझे रक्खोगे? यह तो मेरे सिर कलङ्क का टीका लगा देना है। मेरी माँ ने मेरे लिए इतना किया इतना ही अपयश कौन कम है। टीका देकर उसी बात की पुष्टि किया चाहते हो।

कैकै जठर जनमि जग माँही। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाँही ॥
मोरि बात सब बिधिहि बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई ॥४॥

अर्थ : जगत् में कैकेयी के पेट से जन्म लेने पर यह बात मेरे लिए अनुचित नहीं है। मेरी बातें तो सब ब्रह्मा ने ही बना दी हैं। अब प्रजा और पञ्च इसमें क्यों सहायता दे रहे हो।

व्याख्या : ऐसी स्थिति में टीका लेना संसार में किसी के लिए उचित न होता। पर मेरे लिए अनुचित नहीं है। क्योंकि मैं कैकेयी के पेट से पैदा हूँ। उसने इतना इतना काम कर डाला। मैं इतना भी न करूँ कि टीका ले लूँ। मुझे तो अनुचित नहीं है। पर तुम्हें भी उचित नहीं है कि मेरे कलङ्क को और भी दृढ़ बनाओ।

मेरी बात तो सब ब्रह्मदेव ने ही बिगाड़ दी। यथा : हंस बंस दसरथ जनक राम लखन से भाइ। जननी तूँ जननी भई बिधिसन कछु न बसाइ। अब बिगड़े हुए को और क्या बिगाड़ते हो। तुम प्रजा हो। तुम्हें ऐसा न करना चाहिए। पञ्च परमेश्वर है। इस नाते भी ऐसा न करना चाहिए।

दो. ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पिआइअ बारुनी, कहहु काह उपचार ॥१८०॥

अर्थ : जो ग्रह से ग्रसित हो, बाई, चढ़ी हो बीछी भी मारे हो उसे मद्य पिला रहे हो कहो तो यह कैसी चिकित्सा है।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं १. लखन राम सिय कहुँ बन दीन्हा २. पठइ अमर पुर पति हित कीन्हा ३. दीन्हेंउ प्रजहिं सोक सन्तापू ४. मोहि दीन्ह सुख सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकयी सब कर काजू। इसी प्रसङ्ग के उपसंहार में यह दोहा कहा गया है। इसमें भी चार बातें हैं १. ग्रह ग्रहीत २. बातबस ३. तेहि पुनि बीछी मार ४. ताहि पिआइय बारुनी कहहु काह उपचार। इससे स्पष्ट है कि पहिले के कही हुई चार बातों के दोषों को दिखलाते हुए पिछली चार बातें उदाहरण के रूप में कही गयी हैं। लखन राम सिय का वन जाना ही ग्रह ग्रहीत होना है। यथा— हरखि हृदय कोसलपुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुःखदाई। पति को अमरपुर भेजना और विधवापन लेना एक ही बात है। इसका प्रभाव भरत जी पर सन्निपात

सा पड़ा। भरतजी ऐसे धीर ने माता को दुर्वाद कहा। सन्निपात जल्पसि दुर्वादा : ३. प्रजा को बीछी मारे जाने सा कष्ट है। अतः भरतजी को वैसी ही पीड़ा हो रही है। ४. राज मिलने को वारुणी के समान समझ रहे हैं। यथा : सबते कठिन राज मद भाई। सबका निर्गलितार्थ यह है कि भरत जी कह रहे हैं कि मैं तो इतना दुःखी हूँ और आप लोग उस दुःख को मिटाने के लिए मुझे राजरूपी वारुणी पिला रहे हैं। जिससे उसके नशे में सब दुःख भूल जाऊँ। नहीं समझ रहे हैं कि ऐसे रोगी को वारुणी घातक है। इसके लोक परलोक दोनों को नष्ट करेगी। ऐसी दयनीय दशा में जो पड़ा हो उसके लिए सर्व शोकहरा सुरा देकर रोग शान्त करने का प्रयत्न करना कौन सी चिकित्सा है। ऐसे पुरुष के लिए तो सुरा विष है। भाव यह कि राज्य देना सुरा है। यथा : सबसे कठिन राजमद भाई। जो अँचवत मातहिं नृप तेई। मेरे रोग की चिकित्सा करो। राज दे दो। सब भूल जाँयगे। इस विचार से अनर्थ परम्परा बढ़ेगी, घटेगी नहीं।

कैकइ सुअन जोगु जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई ॥
दसरथ तनय राम लघु भाई। दीन्हि मोहि बिधि वादि बड़ाई ॥१॥

अर्थ : कैकेयी के पुत्र के लिए जगत् में जो योग्य था चतुर विधाता ने मुझे वही दिया। परन्तु दशरथ का बेटा होना और रामजी का छोटा भाई होना यह बड़ाई विधि ने मुझे व्यर्थ ही दी।

व्याख्या : योग्य माता को योग्य बेटा दिया। विरञ्चि बड़े चतुर हैं। माँ बेटे का अच्छा जोड़ जुटा दिया। अथवा कैकेयी के बेटे को क्या क्या मिलना चाहिए : सो सब ब्रह्माजी ने मुझे दिया। अर्थात् दुःख दुर्यश निर्लज्जता कठोरता करालता आदि।

पर दो बड़ाईं मुझे व्यर्थ दिया। अर्थात् महाराज दशरथ का बेटा और रामजी का छोटा भाई बनाया। जब इस बड़ाई की ओर देखता हूँ तब पिता का प्राण देना और बड़े भाई का वन जाना देखते हुए ऐसे पिता का पुत्र और ऐसे भाई का भाई होकर राज्य कैसे ग्रहण करूँ। ब्रह्मदेव यदि ये व्यर्थ की दो बड़ाइयाँ न दिये होते तो मैं राज्य स्वीकार कर लिये होता। अतः :

तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका ॥
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही ॥२॥

अर्थ : तुम सब लोग मुझे राजतिलक कढ़ाने को कहते हो। क्योंकि राजा की आज्ञा है और सबको अच्छा लगता है। मैं किसे किसे और किस विधि से उत्तर दूँ। जिसकी जैसी रुचि हो सुख पूर्वक कहते जाओ।

व्याख्या : मेरे टीका के लिए राजा की आज्ञा भी है और सब लोग अच्छा समझते हो। मुझे तो न यह राजाज्ञा मालूम होती है और न सबके लिए उपकारक मालूम होती है। किसे किसे जवाब दें और किस विधि से दें। कहनेवालों में

गुरुजी हैं और पिताजी के मन्त्री भी सम्मिलित हैं। कोई उत्तर देने योग्य नहीं और न मुझे कोई विधि मालूम पड़ती है। जिस विधि से उत्तर दिया जा सके। सभी लोग समझते हों कि इस कुचक्र में मेरी सम्मति है। इसकी सफाई मैं दे नहीं सकता। अतः जिसे जैसी रुचि हो वह वैसा कहे। क्योंकि टीका के लिए कहना और इस कुचक्र में मेरी सम्मति मान लेना एक बात है। बात भी ऐसी ही है। राज्य उसी को दिया जाता है जिसने भलाई की हो। सो :

मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई ॥
मो बिनु को सचराचर माही। जेहि सिय रामु प्रान प्रिय नाही ॥३॥

अर्थ : कुमाता के समेत मुझे छोड़कर और कौन कहेगा कि : मैंने भलाई की है। संसार में मेरे बिना कौन है जिसे रामजानकी प्राणप्रिय न हों।

व्याख्या : टीका मुझे होना ही चाहिए। क्योंकि राज्य के भलाई करनेवाले दो ही ठहरे : मेरी माँ या मैं। रामजी की माँ या रामजी ने तो राज की कोई भलाई की ही नहीं है। उन्हें टीका देने को आप लोग क्यों कहेंगे! इतना दबाव मुझ पर डाला जाता है अपयश के लिए। क्योंकि यह मानी हुई बात है कि जगत् के प्राणसम राम मुझे प्रिय नहीं है। यदि सब लोग इतना दबाव रामजी पर दें गुरुजी भी, मन्त्री भी, माताएँ भी और प्रजा भी तो रामजी को राज्य स्वीकार करना पड़े।

जिसे राम प्राणप्रिय न हों वही टीका स्वीकार कर सकता है। नहीं तो प्राणप्रिय से छीने हुए टीके को कौन स्वीकार कर सकता है? इसीलिए आप लोग मुझे स्वीकार करने को कहते हैं।

परम हानि सबु कहँ बड़ लाहू। अदिन मोर नहिं दूषन काहू ॥
संसय सील प्रेम बस अहहू। सबुइ उचित सबु जो कछु कहहू ॥४॥

अर्थ : जो परम हानि है उसी में सबको बड़ा लाभ दिखायी पड़ता है। यह मेरा बुरा दिन है। किसी का दोष नहीं है। तुम सब लोग सन्देहशील और प्रेम के वश हो। इसलिए सब लोग जो कुछ कहो वह उचित ही है।

व्याख्या : जिसमें मेरी यशोहानि, धर्महानि, प्रेमहानि अर्थात् परम हानि है उसी में सबको लाभ दिखायी पड़ना विपरीत बुद्धि ह। मेरे बुरे दिन के कारण सबकी बुद्धि विपरीत हो गयी। मैं किसी को दोष नहीं देता।

भीतर से संशय है कि भरत की रुचि देखकर ही माँ ने राज माँगा होगा। आँखों में शील है। इससे कैसे कहें कि तेरा राज मुझे स्वीकार नहीं। रामजी को बुलाओ। मेर ऊपर प्रेम भी है। अजी इसी को राजा होने दो। ऐसी परिस्थिति में जो कुछ कहते हो उचित ही है। यथा : सो सनेह जड़ता बस कहहू।

दो. राम मातु सुठि सरलचित, मो पर प्रेम बिसेखि।
कहइ सुभाय सनेह बस, मोरि दीनता देखि ॥१८१॥

अर्थ : रामजी की माता अत्यन्त सीधे स्वभाववाली हैं और मुझपर उनका प्रेम भी अधिक है। वे स्वभाव और स्नेह के वश होकर मेरी दीनता देखकर कह रही हैं।

व्याख्या : रामजी की माता का कहना कोई कहना नहीं है। वे बड़ी सरल हैं। जो सब लोगों ने कह दिया उन्होंने तुरन्त मान लिया और मुझ पर प्रेम भी अधिक करती हैं। मुझे आर्त देखकर वे भी वही बात कहती हैं। वे इस पेंच के बात को नहीं पकड़ सकतीं कि मेरे राज्य स्वीकार करने से मेरी और मेरी माँ की एक सम्मति प्रमाणित हुई जाती है। कौसल्याजी के प्रति संशय का आक्षेप नहीं है। अतः उनके विषय में अलग कह रहे हैं। उनके सामने शपथ भी ले चुके हैं। वे कह चुकी हैं कि : मत तुम्हार यह जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं।

गुर बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना॥
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भय बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ॥१॥

अर्थ : संसार जानता है कि गुरुजी विवेक के समुद्र हैं। जिन्हें सारा संसार हाथ में आये हुए बेर के समान है। वे भी मेरे लिए तिलक का साज सज रहे हैं। ब्रह्मा के विमुख होने पर सभी विमुख हो जाते हैं।

व्याख्या : दूसरा व्यक्ति जिस पर संशय का आरोप नहीं हो सकता गुरुजी हैं और वे विवेक के समुद्र हैं। जिसने योगवासिष्ठ देखा है उसे मानना पड़ेगा कि वसिष्ठजी विवेक के समुद्र हैं। इतना ही नहीं सर्वज्ञ हैं। संसार में कोई बात इनसे छिपी नहीं है। इनके हाथ में संसार बदरी फल की भाँति है। सो और लोगों ने तो केवल मुख से कहा। पर गुरुजी तो साइत देखकर आये हैं तिलक देने के लिए। ये तो जानते हैं कि मेरा मत नहीं था। न मैं चाहता हूँ। न उचित है। फिर ये राज्य देने की तैयारी क्यों करते हैं? अतः कहना पड़ेगा कि ब्रह्मा के विमुख होने से सब विमुख हो गये। ब्रह्मा हिरण्यगर्भ हैं। प्राण और मन की समष्टि हैं। जब समष्टि ही विमुख हो गया तो व्यष्टि प्रतीपाचरण कैसे कर सकता है! जब सभी विमुख हो गये तो यह भी हो गये। अथवा गुरुजी ब्रह्मदेव के पुत्र हैं। पिता के नाराज हो जाने से ये भी अप्रसन्न हो गये हैं। पिता के प्रतिकूलाचरण धर्मतः भी नहीं कर सकते।

परिहरि रामु सीय जग माँहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाँहीं॥
सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी॥२॥

अर्थ : रामजी और सीताजी को छोड़कर जगत् में और कोई नहीं है। जो

यह कहे कि इसमें मेरी सम्मति नहीं है। सो मैं सब सुनूँगा और सुख मानकर सहूँगा। क्योंकि जहाँ पानी होता है वहाँ कीचड़ होता ही है।

व्याख्या : जो लोग मुझे राज्य लेने को कहते हैं वे दूसरे शब्दों में यह कहते हैं कि भरत का मत रहा है। अतः अब सब किसी ने मुझे माता के राय में कह दिया। परन्तु एक ठिकाना मुझे है जो कहेगा कि इसमें भरत का मत नहीं है और वह राम सीता हैं। भरतजी का जैसा विश्वास रामजी पर है वैसा ही सीताजी पर है। जानते हैं कि दोनों मूर्त्तियों में वास्तविक अभेद है। कोउ नहि कहहि का भाव यह कि जानता भी है कि मेरा मत नहीं है वह भी न कहेगा। नीति ही ऐसी है। असम्भाव्यं न वक्तव्यं साक्षात् दृष्टमपि क्वचित्। शिला तरति पानीयं गीतं गायति वानरः। इसी से कोई भी नहीं कहता।

जो बात लोग कह रहे हैं वह न सुनने लायक है न सहने लायक है। पर मैं सुनूँगा और सुख मानकर सहूँगा। क्योंकि : गगन चढ़े रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलै नीच जल संगा। सो मेरा जल रूप कैकेयी का संग है। अतः मेरा कीच होना प्राप्त है।

डरु न मोहि जग कहहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय राम दुखारी॥३॥

अर्थ : मुझे संसार बुरा कहे इसका मुझे डर नहीं है। परलोक का भी मुझे सोच नहीं है। मेरे हृदय में एक ही दुःसह दावानल दहक रहा है कि मेरे लिए श्रीराम जानकी दुःखी हुए।

व्याख्या : दुर्यश का भय सब ही प्रतिष्ठित पुरुषों को रहता है। यथा : संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। परन्तु मुझे उसका भी डर नहीं है। जिसका अपयश होता है उसकी स्वर्ग में गति नहीं होती। उसका परलोक बिगड़ जाता है। इस पर कहते हैं कि मुझे परलोक का भी सोच नहीं है। भाव यह कि इनको भी लक्ष्मणजी की भाँति कीर्ति भूति सुगति प्रिय नहीं है। यथा : धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।

भरत जी कहते हैं कि मुझे एक ही सोच है जो मेरे हृदय में दावानल की भाँति दहक रहा है। यथा : जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी। इस समय अनेक प्रकार की दावाग्नि लगी हुई है। मेरे लिए उनमें से एक असह्य है और उसी ने हृदय में डेरा डाल रक्खा है और वह यह है कि मेरे लिए राम जानकी दुःखी हुए। अपने प्रेमी को कष्ट हो और अपने द्वारा हो इससे बढ़कर और कष्ट क्या होगा ?

जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण जी ने जीने का अच्छा फल पाया। सब कुछ छोड़कर रामजी

के चरण में मन लगाया। मेरा तो जन्म ही रामजी के वनवास के लिए हुआ। मैं अभागी झूठमूठ क्या पछताऊँ।

व्याख्या : लक्ष्मण छोटा है पर बाजी उसी ने मारा। सबका त्याग करके रामजी के चरण में मन लगाया। यथा : गुरु पितु मातु न जानउ काहू। कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू। जहँ लगि जगत् सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई। मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। अतः लक्ष्मण बड़भागी है।

मैं अभागी हूँ। अभागी वही है जिसने कुछ न किया हो और उस पर विपत्ति आवे। मेरा जन्म ही रामजी के वन के लिए हुआ। रामजी के वन जाने के लिए कोई रास्ता ही नहीं था। मेरे जन्म लेने से उनके वन जाने का मार्ग निर-र्गल हुआ। अतः मेरा पछताना भी व्यर्थ है। जासु सुभाव अरिहु अनुकूला। उसके वन जाने की कौन सी बात थी।

दो. आपनि दारुन दीनता, कहहु सबहिं सिरु नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद, जिय कै जरनि न जाइ॥१८२॥

अर्थ : मैं सबको सिर झुकाकर अपनी दारुण दीनता कहता हूँ। बिना रामजी के चरणों के दर्शन किये मेरे जी की जलन मिट नहीं सकती।

व्याख्या : मुझे आप लोगों से आज्ञा लेना है। आप लोग आज्ञा दें तो मेरा असह्य दुःख दूर हो। न आज्ञा देंगे तो न जाऊँगा। आप लोगों का हुकुम बजाऊँगा। पर अपनी दारुण दीनता जो सही नहीं जाती सिर नवाकर कहता हूँ। मेरा कलेजा जल रहा है और वह जलन रघुनाथजी के दर्शन से ही दूर होगी। दूसरा उपाय नहीं है।

आन उपाय मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा॥
एकहि आँक इहै मन मांहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभु पांहीं॥१॥

अर्थ : मुझे और कोई उपाय नहीं सूझता। बिना रघुवर के हृदय की बात कौन समझें। एक यही बात मेरे मनमें जमी हुई है कि सबेरा होते ही सरकार के पास चलूँगा।

व्याख्या : अपनी दारुण दीनता के मिटाने का उपाय तो मुझे यही सूझ रहा है कि आज की रात्रि बीतने पर सरकार के पास चलूँगा। आप लोगों को यदि कोई दूसरा उपाय सूझता हो तो कहिये। यदि कहिये कि प्रभु के पास जाने से क्या होगा? इस पर कहते हैं कि हृदय की बात के समझनेवाले तो वही हैं। जो हृदय की बात नहीं समझता वह दारुण दीनता के दूर करने का उपाय क्या बतलावेगा। जो रोग नहीं पहिचान सकता दवा क्या दे सकता है? अथवा वे दारुन दीनता दूर करने में समर्थ हैं और मैं कितना दीन हूँ यह बात भी वे ही जान सकते हैं। अब मैं अधिक देर नहीं कर सकता। कल प्रातःकाल प्रभु के पास जाऊँगा।

मैंने तो एक यही बात निश्चय की है। भाव यह कि मैं भी इसी चिन्ता में हूँ कि क्या करना चाहिए और आप लोग भी इसी चिन्ता में हैं। आप लोगों ने मुझे राज्य देने का निश्चय किया है उसे कह सुनाया। अतः मैं भी कहे देता हूँ कि मेरा निश्चय तो सवेरे सरकार के पास जाने का है।

जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी ॥२॥

अर्थ : यद्यपि मैं बुरा हूँ। अपराधी हूँ। मेरे ही कारण से सब उपद्रव हुआ है। तथापि मुझे शरण में आया हुआ देखकर सब क्षमा करके विशेष कृपा करेंगे।

व्याख्या : यदि कहिये कि तुम बुरे हो। क्योंकि अपराधी हो। अपराध यह है कि सम्पूर्ण उपाधि की जड़ तुम ही हो। मैं इस बात से इनकार नहीं करता। मैं ऐसा ही अपराधी हूँ कि मुझे क्षमादान दिया नहीं जा सकता है। अपराधी तो कैकेयी है। फिर भी वह अपराध का कारण नहीं है उसने अपराध मेरे लिए किया। तो सबकी जड़ तो मैं ही ठहरा।

यदि कहिये कि शरण जाने पर तो वे क्षमा अवश्य करेंगे। अपने प्रण का निर्वाह करेंगे। पर शरण जाना ही कौन आसान काम है। शरण जाने में मद मोह कपट छल सब छोड़कर शरण जाने का विधान है। तो क्या तुमने मद मोह कपट छोड़ दिया जो शरण जाते हो। इस पर कहते हैं कि भले ही मुझमें शरणागतोंचित गुण नहीं हैं फिर भी जाने से शरण सम्मुख तो होऊँगा। शरण की ओर मेरी प्रवृत्ति तो रहेगी। उनके क्षमा दान के लिए इतना ही यथेष्ट है। इतने से ही न केवल सब अपराध क्षमा होगा बल्कि विशेष कृपा भी करेंगे।

सीलु सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ॥३॥

अर्थ : रघुराज सुशील अत्यन्त सरल तथा सङ्कोची स्वभाववाले हैं। वे कृपा और प्रेम के घर हैं। राम ने कभी शत्रु का भी बुरा नहीं किया और मैं तो प्रतिकूल होने पर भी बालक और सेवक हूँ।

व्याख्या : सरकार शीलनिधान हैं। प्रभु तरुतर कपि डार पर ते किय आपु समान। तुलसी कहूँ न राम ते साहिब सीलनिधान। शीलनिधान बुरे को बुरा कहकर तिरस्कार नहीं कर सकता। इन सा सङ्कोची तो तीन काल में कहीं कोई हुआ ही नहीं। यथा : प्रेम कनौड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई। तरोरिनी हौं कह्यो कपि सों ऐसी मानिहि करे सेवकाई। अपराधी पर भी क्रोध नहीं करते। अत्यन्त ही सरल हैं। यथा : रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरिगत सलिल सोहाए। माता के वन माँगने को ही उन्होंने प्रतोपाचरण नहीं माना। अतः तीनों स्वभाव के अङ्ग मेरे अनुकूल पड़ते हैं। चौथी बात यह कि कृपा और स्नेह के तो घर ही हैं।

अतः मेरे अपराध को क्षमा करके विशेष कृपा करना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं है।

उनका नाम राम है। उन्होंने शत्रु का भी कभी बुरा नहीं किया। 'बैरिउ राम बड़ाई करहीं। वे वैर को सदा प्रेम से जीतना चाहते हैं। शत्रु का आदर शत्रु से भी विनय शत्रु पर प्रेम करने में वे ही समर्थ हैं। मैं प्रतिकूल तो हूँ पर शिशु, सेवक हूँ। अतः मेरे अपराधको क्षमा करते उन्हें कितनी देर लगेगी।

तुम्ह पै पाँच मोर भल जानी। आयसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी ॥४॥

अर्थ : तुम पञ्चलोग भी इसमें मेरा कल्याण मानकर आज्ञा दो और सुन्दर वाणी से आशीर्वाद दो। जिससे मेरी प्रार्थना सुनकर मुझे अपना सेवक जानकर रामजी राजधानी को लौट आवें।

व्याख्या : तुम पञ्च हो। परमेश्वर हो। यदि अपना कल्याण न समझो तो मेरा कल्याण समझकर मुझे आज्ञा दो। आशीर्वाद दो। अर्थात् जाने के लिए आज्ञा दो और सफल मनोरथ होने के लिए आशीर्वाद दो। अयोध्या का नियम है कि पञ्च की सम्मति से सब काम होता है। यथा : जौ पाँचइ मत लागै नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका। आयसु आसिष देहु सुबानी। यहाँ सुबानी के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आप लोग ऐसी वाणी कहिये कि तुम्हारी विनय सुनकर तुम्हें सेवक जानकर रामजी लौट आवें। मेरे कारण सकल उपाधि हुई। वही मैं लौटने के लिए विनय करने जाता हूँ। जब वनवास का कारण ही हट गया तब वनवास का प्रयोजन ही नहीं रह गया।

दो. जद्यपि जनम कुमातु तें, मैं सठु सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघुबीर भरोस ॥१८३॥

अर्थ : यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मैं शठ सदा दोष युक्त हूँ। पर अपना समझकर नहीं त्यागेंगे। मुझे तो रघुवीर का ऐसा ही भरोसा है।

व्याख्या : कुमाता से जन्म। यथा : साँइ द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता। मैं शठ काम बिगाड़कर मीठी बातें करता हूँ। सदा सदोष हूँ। मेरे दोष की सफाई नहीं दी जा सकती। मेरी ओर से तो सब बिगड़ा बिगड़ाया हुआ ही है। पर : मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई। हौं तो साँई द्रोही पै सेवक हित साइँ। अतः मुझे भरोसा है। अपना जानकर त्याग नहीं करेंगे। यथा : ससि कलंक हरि भृगुलता बड़वानलहि समुद्र। ग्रहण किये त्यागत नहीं महाघोर विषरुद्र।

भरत बचन सब कहुँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे ॥
लोग बियोग बिषय बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु[1] जागे ॥१॥

———

[1] १. ये दोनों पद राजापुर की प्रति में नहीं है और न उनकी आवश्यकता ही मालूम पड़ती है।

अर्थ : भरत के वचन सबको अच्छे लगे : मानो वे रामजी के स्नेहरूपी अमृत से पगे हुए थे। लोग वियोगरूपी विषम विष से जल रहे थे। वे मानो बीज सहित मन्त्र सुनते ही जाग उठे हों।

व्याख्या : गुरुजी बोले, माता बोलीं, मन्त्री लोग बोले, पर प्रजा की ओर से उपेक्षा बुद्धि ही थी। पर भरत के वचन सबको प्रिय लगे। यहाँ राज्य के लिए प्रस्ताव हो रहा था। पर प्रजा मानो सो रही थी। कोउ नृप होउ हमहि का हानी वाली बात चरितार्थ हो रही थी। प्रजा रामजी के दर्शन के लिए आर्त थी। यथा : राम दरस हित नेम व्रत लगें करन नर नारि। मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि। सांसारिक सुख दुःख की ओर से उपेक्षा थी। अतः राज्य कौन करेगा ? इस प्रश्न पर ध्यान नहीं देते थे। राज्य के देवता तो प्रजा वर्ग हैं। उनके पुजारी राजा हैं। रञ्जनात् राजा। प्रजा के हित के लिए ही राजा हैं। प्रजा अपना हित रामदर्शन में मानती थी। वह राम विरह की अग्नि से जल रही थी। गुरुजी माता तथा सचिव सभी का मन्त्र तो अच्छा था। परन्तु उन मन्त्रों में बीज नहीं था। इससे देवता जाग्रत होकर अभिमुख नहीं होते थे। भरतजी के मन्त्र में बीज था : प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं। जेहि सुनि बिनय मोहि जन जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी। इसलिए कहते हैं कि लोग सबीज मन्त्र सुनते ही मानो जाग पड़े। अमृत में बोरी हुई बात थी। इसलिए सबको प्रिय भी लगी।

मातु सचिव गुर पुर नर नारी। सकल सनेह बिकल भये भारी॥
भरतहिं कहहि सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही॥२॥

अर्थ : माताएँ मन्त्री गुरु और नगर के स्त्री पुरुष स्नेह से विकल हो गये। सब लोग भरतजी की प्रशंसा करके कहने लगे कि यह शरीर तो राम के प्रेम की मूर्ति ही है।

व्याख्या : माता, मन्त्री, गुरुजी तथा प्रजा सब अपना अपना प्रेम दबाये बैठे थे। महाराज के वरदान के सच्चा करने के लिए तथा भरतजी के सङ्कोच से राज्य के प्रस्ताव में सहमत थे। उद्बोधक कारण के पाते ही दबा हुआ प्रेम उमड़ उठा। जिसके लिए सब कुछ हुआ वही राज्य अस्वीकार करके रामजी के पास चलने को कहता है। इससे बड़ा उद्बोधक कारण और क्या हो सकता है। सब उमड़े हुए प्रेम के वेग के सँभालने में असमर्थ हैं। इसलिए विकल भये भारी कहते हैं।

भक्तों का सिद्धान्त है : सब मानिअहि राम के नातें। भरत पर भी अधिक प्रेम राम के ही नाते था। यथा : भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहुँ बेगि नयन फल पावहिं। इतनी भक्ति से भरतजी ने पिता की क्रिया की : पितु हित भरत कीन्ह जस करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी। पर भरतजी की प्रशंसा प्रजा ने नहीं की। अब भरतजी की बार बार सराहना होती है कि भरतजी तो मानो रामजी के प्रेम की मूर्ति है। मानो राम प्रेम ने नराकार धारण कर रक्खा है। ये भी रामजी की भाँति विषयरस रूखे हैं।

तात भरत अस काहें न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू ॥
जो पाँवरु अपनी जड़ताई। तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाई ॥३॥

अर्थ : तात भरत ! तुम ऐसा क्यों न कहोगे। तुम रामजी को प्राण के समान प्यारे हो। जो नीच अपनी जड़ता से माता की कुटिलता का तुम पर आरोप करता है।

व्याख्या : प्रजा कहती है कि भैया भरत ! ऐसी बात तुम्हीं बोल सकते हो। क्योंकि रामजी को प्राणसे प्यारे हो। यथा : रामहिं बंधु सोचु दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँति। भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। भरत सरिस प्रिय को जग माँहीं। जिसको जितना भरोसा रामजी पर होता है वह रामजी को उतना ही प्रिय होता है। भरतजी को रामजी का बड़ा भारी भरोसा है। अतः रामजी को प्राण समान प्रिय हैं। कहते भी हैं : जद्यपि जनम कुमातु ते मैं सठ सदा सदोस। आपन जानि न त्यागिहैं मोह रघुबीर भरोस।

भरतजी ने कहा है : परिहरि राम सीय जगमाहीं। कोउ नहिं कहिह मोर मत नाहीं। संसय सील प्रेम बस अहहू। इस बात का उत्तर सब लोग दे रहे हैं। शपथ लेते हुए कहते हैं कि हम लोगों को तुम पर सन्देह नहीं है। जिसे तुम पर सन्देह हो वह नीच है। उसे जड़ता हो गयी है। अपनी जड़ता से माता की कुटिलता का आरोप तुम पर करता होगा।

सो सठु कोटिक पुरुष समेता। बसहि कलप सत नरक निकेता ॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥४॥

अर्थ : वह शठ करोड़ों पुरुषों के साथ सौ कल्प तक नरक में रहेगा। साँप के अवगुण और पाप का मणि नहीं ग्रहण करती। वह साँप के विष का हरण करती है और दुःख और दरिद्र को जला देती है।

व्याख्या : ऐसा अनर्थकारी आरोप करनेवाला नरक में निवास करेगा। यह अपराध इतना भारी है कि इसके करने से उसके कोटि कोटि पूर्वजों को भी नरक होगा और सौ कल्प के लिए होगा। इस व्याज से प्रजा वर्ग स्वयं शपथ लेतो है कि हम लोगों को तुम पर सन्देह नहीं है। पहिले कहा : सुकृत जाइ अस कहे तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रान पियारे। भरत के शपथ लेने पर माता कौसल्या ने कहा : मत तुम्हार यह जो जग कहही। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहही। अब सबोज मन्त्र सुनकर जगी हुई प्रजा कह रही है कि ऐसा कहनेवाला कोटि पुरुषों के साथ अनन्त काल तक नरक निवास करेगा।

यद्यपि जन्म कुमातु ते : का प्रजा उत्तर देती है कि कैकेयी सर्प है इसमें सन्देह नहीं। यथा : मानहु सरोष भुअंग भामिनि बिषय भाँति निहारई। पर सर्प से ही मणि उत्पन्न होती है और मणि उसे बहुत प्यारी भी है। दिन रात का साथ है। पर उसका गुण सर्प से सर्वथा विपरीत है। उसमें पुण्य गुण हैं। जो सर्प कृत दोषों

को हरण करता है सो भरतजी आप मणि हैं। अवसि चलिअ बन राम पहँ। यह निश्चय आप का विषहरण करनेवाला है और : आवहिं बहुरि राम रजधानी। यह निश्चय आप का दुःख दरिद्र का दाह करनेवाला है।

दो. अवसि चलिअ बन रामु जहँ, भरत मंत्रु भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहिं, तुम्ह अवलम्बनु दीन्ह ॥१८४॥

अर्थ : भरत ने बड़ी अच्छी सम्मति स्थिर की है। जहाँ वन में रामजी हैं वहाँ अवश्य चलना चाहिए। शोकरूपी समुद्र में डूबते हुए को तुमने सहारा दिया।

व्याख्या : मन्त्र सबीज सुनत जनु जागे। अतः कहते हैं : भरत मन्त्र भल कीन्ह। जब रामजी प्रजा को तमसा तट पर सोते छोड़कर चले गये तब कहा था : मनहु बारिनिधि डूब जहाजू। भये बिकल सब बनिक समाजू। अतः इस समय कह रहे हैं : सोक सिंधु बूड़त सबहिं तुम अवलम्बन दीन्ह। यहाँ बूड़त कहकर यह दिखलाया कि डूबता हुआ पुरुष इस बात पर ध्यान नहीं दे सकता कि गद्दी पर कौन बैठे। लोग कहते हैं कि भरतजी ! हम लोग तुम्हारे सहारे बच गये। समुद्र के बाहर तो सरकार के निकाले निकलेंगे। कौसल्याजी ने यही बात महाराज से कही थी : नाथ समुझि मन करिअ बिचारा। राम बियोग पयोधि अपारा। कर्नधार तुम अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू। इत्यादि। सब को आशा थी कि महाराज जीते रहेंगे। तो कोई उपाय रामजी को लौटाने का होगा। सो महाराज ने धैर्य छोड़ दिया। बिना कर्णधार के जहाज डूब रहा था कि भरतजी ने पतवार हाथ में लिया। रामजी के पास दूसरे दिन चलने का दृढ़ निश्चय किया।

भा सब के मन मोदु न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा ॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरतु प्रान प्रिय भे सबही के ॥१॥

अर्थ : सबके मन में थोड़ा आनन्द न हुआ। जैसे मेघ का गर्जन सुनकर चातक और मोर को होता है। सवेरे चलने का अभ्रान्त निर्णय समझकर भरतजी सभी को प्राणप्रिय हो गये।

व्याख्या : चातक को बड़ी प्यास होती है। यथा : चातक रटत तृषा अति ओही। उसे घन के गर्जन से बड़ा आनन्द होता है। मोर को घन के आगमन से ऐसा आनन्द होता है कि नाचने लगता है। अयोध्या में दो प्रकार के भक्त हैं। ज्ञानी और जिज्ञासु। यथा : मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि। इन्हीं दोनों प्रकार के भक्तों की यहाँ चातक और मोर से उपमा दी हुई है।

जब भरतजी ने रामजी के पास जाने के लिए सब से आज्ञा और आशीर्वाद माँगा तब सब लोग भरतजी की बड़ाई करने लगे और स्वयं चलने को तैयार हो गये। अतः रामजी के पास वन चलने का स्पष्ट निर्णय हो गया। जब रामजी वन को चलने लगे तो अवध को अनाथ जानकर लोग विकल होकर

साथ लगे थे। रामजी तमसा तीर सबको सोता हुआ छोड़कर चले गये। उस समय ऐसी गति हुई : मनहु बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू। सो रामजी के पास जाने का सुअवसर भरतजी के द्वारा मिल रहा है। अतः भरतजी सबको प्राण से प्यारे हो गये।

मुनिहि बंदि भरतहिं सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई ॥
धन्य भरत जीवनु जग माहीं। सील सनेह सराहत जाहीं ॥२॥

अर्थ : मुनिजी की वन्दना करके भरतजी को सिर झुकाया और सब बिदा, माँगकर घर चले। जाते हुए भरतजी के शील और स्नेह की प्रशंसा करते जाते हैं कि संसार में भरतजी का जीवन धन्य है।

व्याख्या : काम पूरा हो गया। बात निर्णीत हो गयी। सबके मन में भरतजी के साथ ही प्रस्थान करने का विचार है। यात्रा के लिए साज सामान करने की जल्दी है। इसलिए मुनिजी द्वारा सभा समाप्ति की घोषणा का इन्तजार बिना किये सब लोग जाने के लिए छुट्टी माँग रहे हैं। इतनी जल्दी है कि छुट्टी माँगने के पहिले ही विदाई का प्रणाम होने लगा। मुनिजी ने बुलवाया था भरतजी के लिए। अतः दोनों व्यक्तियों से विदाई लेना प्राप्त था।

भरतजी की सराहना सभा में सब लोगों ने किया था। पर इतने से सन्तोष नहीं है। घर जाते समय रास्ते में भरतजी के शील और स्नेह की प्रशंसा करते जाते हैं। शील यथा : तुम पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी। इत्यादि। स्नेह यथा : देखे बिनु रघुनाथपद जियकै जरनि न जाइ। इत्यादि।

## २१. पुरवासी सहित चित्रकूट प्रस्थान प्रसङ्ग

कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलइ कर साजहिं साजू ॥
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥३॥
कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू। कौन चहइ जग जीवन लाहू ॥४॥

अर्थ : एक दूसरे से कहने लगे कि हुआ तो बड़ा भारी काम और अब चलने का साज सामान बनाने लगे। जिसे घर की रखवारी के लिए आज्ञा देते हैं वह समझता है कि मेरा सिर काट लिया गया। कोई कोई यह समझने लगे कि किसी को रहने के लिए न कहो। कौन संसार में जीने का लाभ नहीं चाहता।

व्याख्या : लोग कहते हैं कि बड़ा काम हुआ। तपस्या बहुत शीघ्र सफल हुई। रामजी के दर्शन के लिए सब लोग नियम व्रत कर रहे थे। सो उसका योग जुट गया। भरत के साथ में हम लोग भी चलेंगे। उनसे किसी ने न कहा कि तुम भी चलो और न वह किसी से पूछते हैं। सीधे सीधे चलने का सामान ठीक कर रहे हैं। ये लोग कोक कोकी हैं। अर्थात् गृहस्थ हैं। घर की भी चिन्ता है। अरक्षित घर को छोड़ जाना ठीक न समझा। अतः किसी को घर की रखवारी के लिए चलने

से रोकते हैं। उसे घर में रहने के ख्याल से प्राणदण्ड पाने सा कष्ट हो रहा है। जिस मसान को भूत भी छोड़ रहे हैं उस सूने श्मशान में कैसे रहें। यथा : घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहु जमदूता।

उनका दुःख देखकर कोई कमल स्थानीय कहने लगे कि किसी को घर रहने के लिए न कहो। अपने ही भाँति दूसरे को भी समझो। आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति। जिस भाँति तुम जीवन लाभ चाहते हो उसी भाँति दूसरा भी चाहता है। जीवन लाभ तो सब छोड़कर रामजी के चरणों में चित्त लगाने में है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन मन लावा।

दो. जरउ सो संपति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहस सहाइ ॥१८५॥

अर्थ : वह सम्पत्ति वह गृहसुख और वे माता पिता भाई जल जायँ जो रामजी के चरणों के सम्मुख होने में सहस्रों सहायता न करें।

व्याख्या : सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। ये सब रामभगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक। अतः सम्पत्ति गृहसुख मित्र माता पिता और भाई यदि रामजी के सम्मुख होने में सहायक हों तो रहें नहीं तो जल जायँ। भाव यह कि सम्पत्ति सदन सुख जले। जिसकी रक्षा के लिए मैं श्रीरामजी के दर्शन से वञ्चित किया जाता हूँ और सुहृद माता पिता भाई जलें जो इनकी रखवारी के लिए मुझे रामदर्शन से वञ्चित कर रहे हैं। इनका तो कर्तव्य था कि रामजी के सम्मुख होने से सहस्र प्रकार से सहायता करते। क्योंकि ये तो हितचिन्तक हैं। इन्हें मेरा सच्चा स्वार्थ देखना चाहिए था। यथा : स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन रामपद नेहा। ये सच्चा स्वार्थ नहीं देखते। कच्चे हितचिन्तक हैं। अतः इनसे कोई सम्बन्ध नहीं।

घर घर साजहिं बाहन नाना। हरषु हृदय परभात पयाना ॥
भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। नगरु बाजि गज भवन भँडारू ॥१॥

अर्थ : घर घर अनेक प्रकार के वाहन लोग साज रहे हैं। सबके हृदय में आनन्द है कि सवेरे चलना है। भरतजी ने घर जाकर विचार किया कि नगर घोड़े हाथी घर और कोष।

व्याख्या : अयोध्या नगर बड़ा सम्पत्तिशाली है। घर घर वाहन हैं। लोगो की उत्सुकता देखिये। प्रयाण तो प्रभात समय होगा और वाहन इसी समय साजे जा रहे हैं। अति मोद में ऐसा ही होता है। लोग सोचते हैं कि कौन जाने भरतजी उसी वेग से चित्रकूट चलें जिस वेग से कैकय देश से अयोध्या आये हैं। यथा : चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके। अथवा वहीं अभिषेक के लिए चतुरङ्गिणी सेना लेकर चलें। तब तो हम लोगों को भी तैयारी के साथ सङ्ग चलना चाहिए। अतः सब प्रकार की तैयारी चाहिए। प्रस्थान करने में केवल रात्रि

मात्र का व्यवधान है। इसलिए हर्षित हैं। भरतजी विचार करते हैं कि राजा इस समय कोई है नहीं। मन्त्री लोगों का साथ चलना आवश्यक है। नगर वाजि गज भवन और भण्डार : कोष अरक्षित हो जायगा। नगर भी एक प्रकार से सूना हो जायगा। सभी चलने की तैयारी कर रहे हैं। नगर की रक्षा से ही सब की रक्षा है।

संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही ॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साँइ दोहाई ॥२॥

अर्थ : यह सब सम्पत्ति रघुपति की है। जो बिना रक्षा किये छोड़कर चल दूँ तो अन्त में मेरे लिए अच्छा न होगा। स्वामि दोहाई मैं पाप शिरोमणि हो जाऊँगा।

व्याख्या : उपर्युक्त सब सम्पत्ति सरकारी है। अपनी होती तो मैं भी कह देता कि जरौ सो सम्पत्ति सदन सुख। इन्तजाम इस समय मेरे हाथ में है। मैं सम्पत्ति को अरक्षित कैसे छोड़ जाऊँ। जो भवितव्य है वही होगा : यह ठीक है पर भवितव्य के भरोसे पुरुषार्थ त्याग तो नीति नहीं है। यत्ने कृते यदि न सिध्यत्ति कोऽत्र दोषः। अतः दोष के बचाने लिए यत्न करना प्राप्त है।

यदि अरक्षित छोड़कर चलूँ तो परिणाम में दूसरे की भलाई चाहे हो भी पर मेरी भलाई तो नहीं ही होगी। मैं प्रभु और पिता के वचन को मोहवश हटाकर साज समाज के साथ वन जा रहा हूँ। इतनी ही धृष्टता कौन कम है। इतने से ही मैं पाप से बच न सकूँगा और इस पर यदि रक्षा में भी असावधानता रही तो राम दोहाई मेरे पाप शिरोमणि होने में कोई कसर न रह जायगी। अतः रक्षा करके ही चलना चाहिए।

करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई ॥
अस बिचारि सुचि सेवकु बोले। जे सपनेहुँ निजधर्म न डोले ॥३॥

अर्थ : सेवक वही है जो स्वामी का हित करे। भले ही लोग उसे करोड़ों दूषण क्यों न लगावें। ऐसा विचार करके पवित्र सेवकों को बुलाया। जो स्वप्न में भी अपने धर्म से विचलित नहीं हुए थे।

व्याख्या : पर यहाँ रक्खें किसे ? जिनहि कहहि रहु घर रखवारी। सो जानै जनु गर्दन मारी। सब चलने को तैयार हैं। जिसे रहने को कहूँगा वही दूषण देगा। अथवा संसार कहेगा कि झूठ ही भरत राज्य से इनकार करते हैं, इन्हें तो राज्य की बड़ी ममता है। जैसा हम लोगों को घर वैसा ही इनको राज्य। हमें तो अपने घर की परवाह नहीं और ये राज्यरक्षा के लिए हमें छोड़ रहे है। भरतजी सोचते हैं कि इस प्रकार का दूषण लोग मुझे लगा सकते हैं। पर मुझे इन दूषणों की परवाह नहीं करनी चाहिए। मुझे सेवक धर्म सँभालना है। मैं स्वामी का हित करूँगा। भले ही लोग मुझे दोष लगावें।

यहाँ पर शुचि सेवक की परिभाषा स्वयं ग्रन्थकार दे देते है कि जो सेवक

अपने धर्म से स्वप्न में भी चलायमान नहीं हुए। अर्थात् मालिक के न रहने पर शुचिसेवक ही प्राण की बाजी लगाकर स्वामी के हित की रक्षा कर सकता है।

कहि सब मरमु धरमु सब भाखा। जो जेहि लायक सो तेहिं राखा ॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरतु सिधारे ॥४॥

अर्थ : सब मर्म कहकर धर्म का उपदेश दिया और जो जिस योग्य था उसे उस कार्य पर नियुक्त किया। सब प्रबन्ध करके रक्षकों को नियुक्त किया। तब रामजी की माता के पास भरतजी गये।

व्याख्या : राज्य के ऐसे मर्म होते हैं जो केवल राजा ही जानते हैं। प्रजा को उसका पता भी नहीं रहता। उसे तो यह भी नहीं मालूम होना चाहिए कि राजा किस भाँति शोषण कर रहा है। यथा : हरखत बरखत सब लखै करषत लखै न कोय। तुलसी पुहुमी भाग से भूप भानु सम होय। उसके मर्म को थोड़ा बहुत कामदार जानते हैं। मन्त्री को बड़ी जानकारी होती है पर पूरी जानकारी राजा को ही होती है। अतः शुचि सेवकों को बुलाकर आवश्यक सब मर्म बतलाया। जिसमें भरतजी की अनुपस्थिति में यथोचित कार्य करने में समर्थ हों। कैसी अवस्था आ पड़ने पर क्या करना धर्म होगा। ये सब बातें भी बतलायीं। परिस्थिति में परिवर्तन होने से राजधर्म में परिवर्तन करना होता है। अब भरतजी की पण्डिताई कहते हैं कि जो जिस योग्य था उसे वैसा ही कार्य भार दिया : अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः।

यह सब व्यवस्था करके तत्पश्चात् भरतजी ने यथास्थान रक्षकों की नियुक्ति की। नगर के रक्षक अलग, वाजि गज के अलग, कोष के अलग रक्षक योद्धा नियुक्त किये। तब कौसल्याजी के पास गये महल की व्यवस्था के लिए।

दो. आरत जननी जानि सबु, भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकी, सजन सुखासन जान ॥१८६॥

अर्थ : स्नेह के पारखी भरतजी ने सब माताओं को आर्त जानकर उनके लिए पालकी सजने तथा सुखपाल आदि सवारी तैयार करने के लिए कहा।

व्याख्या : भरतजी ने जान लिया कि सब माताएँ दर्शन के लिए आर्त हैं। कैकेयी भी आर्त हैं। माताओं के लिए पालकी साजने तथा उनके सभी सहेलियों के लिए सुखासन, दासियों के लिए यान तैयार करने के लिए कहा। भरतजी प्रेम के बड़े पारखी हैं। यद्यपि माताएँ अपने चलने के लिए अनुरोध नहीं कर रही हैं। फिर भी उनको आर्त देखकर उनके चलने के लिए सवारी की आज्ञा देकर उनकी आर्ति को तत्काल दूर करना चाहते हैं। माताएँ स्त्री धर्म को आगे किये हुए अपने को पुत्र के अधीन मानती हैं। पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।

चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी। चलत प्रात उर आरत भारी ॥
जागत सब निसि भयउ बिहाना। भरत बोलाए सचिव सुजाना ॥१॥

अर्थ : चकवा चकई की भाँति पुर नर नारी सवेरे गमन के लिए आर्त हो रहे थे। पूरी रात जागते ही सवेरा हुआ। भरतजी ने सुजान मन्त्रियों को बुलाया।

व्याख्या : चक्रवाक और चक्रवाकी में रात्रि को विछोह रहता है। एक नदी के इस पार तो दूसरा नदी के उस पार रहता है। इस भाँति उनकी रात्रि विरहव्यथा में कटती है। वे चाहते हैं कि कब रात्रि बीते और हम प्रियतम के पास चलें। इसी भाँति पुर नर नारी को भी रामजी के पास चलने में रात्रि व्यवधानरूप है। अतः उसके बीतने के लिए बड़े आर्त हो रहे हैं। किसी समय अभिषेक के लिए ऐसी ही उत्सुकता थी। यथा : सकल कहहिं कब होइहि काली।

लालसा और उछाह के कारण उस रात में किसी को नींद नहीं आयी। यथा : तेहि निसि नीद परी नहिं काहू। राम दरस लालसा उछाहू। चित्त के चञ्चल होने से निद्रा नहीं आती। सवेरा होते ही भरतजी ने सुजान मन्त्रियों को बुलाया जिनके लिए इशारा काफी था। सुमन्त्रजी ने एकान्त वास ले रक्खा है। रामजी को वन पहुँचाने के बाद से उनका उल्लेख नहीं मिलता। रामजी जब वन से लौटे हैं तब सुमन्त्रजी भी दिखायी पड़ते हैं। अतः अन्य सुजान मन्त्रियों को बुलाया।

कहेउ लेहु सब तिलक समाजू। बनहि देब मुनि रामहि राजू ॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे ॥२॥

अर्थ : कहा कि तिलक का सामान सब ले चलो। वन में ही मुनिजी रामजी को राज्य देंगे। जल्दी चलो ऐसा सुनकर मन्त्रियों ने जोहार किया और तुरन्त घोड़े रथ और हाथी सजाये।

व्याख्या : भरतजी ने आज्ञा दी कि तिलक का सामान जो सरकार के लिए पिताजी का एकत्रित किया हुआ है उसे साथ ले चलने की व्यवस्था करो। यथा : आनहु सकल सुतीरथ पानी। औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना। चामर चमर बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित भाँती। मनिगन मंगल वस्तु अनेका। जो जग जोग भूप अभिषेका। कारण भी कह देते हैं कि पिता जी का संकल्प सत्य हो। इसी सामान से मुनिजी वन में ही रामजी को राज्य दें। रामजी ने माता से कहा था : पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू : सो गुरुजी वन में ही राज्य देंगे।

उन सब चीजों को लेकर जल्द चलो। यहाँ जोहार से भाव यह कि आज्ञा शिरोधार्य है। पहिला काम यह कि चतुरङ्गिनी सेना सजायी। मुनिजी ने अभिषेक के समय यह भी कहा था कि सजहु तुरंग रथ नाग और सामान तो सब सजा सजाया ही रक्खा था। उठाने मात्र की देर थी। तुरङ्ग रथ नाग की अभिषेक योग्य तैयारी करनी थी। अतः पहिले यही किया।

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ॥
बिप्र बृंद चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना ॥३॥

अर्थ : पहिले वसिष्ठजी भगवती अरुन्धती और अग्निहोत्र के सब सामान सहित रथ पर चढ़कर चले। फिर तपस्या और तेज के निधान ब्राह्मण लोग अनेक प्रकार के वाहनों पर चढ़कर चले।

व्याख्या : गुरुजी ने पत्नी के सहित अग्निहोत्र का सामान सब साथ में लिया : अभिषेकाङ्गभूत हवनादि प्रक्रिया की सिद्धि के लिए। इस यात्रा में अधिक दिन लगेंगे। अतः पूरी तैयारी से चले। पहिला रथ वसिष्ठजी का चला : मुनिजी को रामजी के लौटने में पूरा सन्देह है। राज्य भरतजी का हो गया। वे चाहे रामजी को दे सकते हैं। परन्तु चौदह वर्ष की अवधि के परिवर्तन में स्वयं चक्रवर्तीजी का अधिकार रघुनाथजी ने नहीं माना। चक्रवर्तीजी ने तो कह दिया : रथ चढ़ाइ देखराइ बन फिर्यौ गये दिन चारि। परन्तु रामजी ने इस आज्ञा को प्रियप्रेम प्रमाद ही समझा।

गुरुजी के पीछे ब्राह्मणों का समूह चला। ये लोग कोई रथ पर कोई घोड़े पर कोई हाथी पर चढ़कर चले। सिविका सुभग सुखासन याना। आदि महारानियों की सवारी में नियुक्त हैं। ये ब्राह्मण लोग बड़े तेजस्वी थे। तप तेज के निधान थे। यथा : बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। भावार्थ यह कि पूरे ब्राह्मण[1] थे तपः स्वाध्याय निरत थे।

नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी ॥४॥

अर्थ : नगर के सवारियों को सजकर चित्रकूट को चल पड़े। सुन्दर पालकियों में जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता सब रानियाँ चढ़कर चलीं।

व्याख्या : इसके बाद नगर के लोग चले। स्त्री पुरुष दोनों हैं। इसलिए : सब सजि सजि जाना कहा। नगर खाली पड़ गया। चित्रकूट की ओर चले। यद्यपि यह स्थिर नहीं है कि सरकार कहाँ हैं। पर इतना निषादराज से सुमन्त्रजी को पता चल गया है कि भरद्वाजजी के आश्रम से वाल्मीकिजी के आश्रम की ओर गये। वाल्मीकिजी का आश्रम चित्रकूट से अति सन्निकट है और चित्रकूट प्रख्यातस्थल है। अतः चित्रकूट की ओर प्रयाण करना कहते हैं।

भरतजी की आज्ञा से शिविका साजी गयी है। अतः कहते हैं : न जाहिं बखानी। माताएँ बेटे को राज्य देने चल रही हैं। अतः मङ्गल उपस्थित है। इसलिए

---

१. तपःश्रुतञ्च योनिश्च ह्येतद् ब्राह्मणकारकम्। तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः। तप श्रुति और जन्म ये तीन ब्राह्मण कारक हैं। जो तप और श्रुति से हीन हैं। वह केवल जन्म से ब्राह्मण हैं।

शिविका का श्रृङ्गार किया गया है। सात सौ पालकी रानियों की चलीं। नगरवासियों के पीछे रानियों की सवारी हैं।

दो. सौंपि नगर सुचि सेवकन्हि, सादर सकल चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब, चले भरत दोउ भाइ ॥१८७॥

अर्थ : शुचि सेवकों को नगर सौंपकर और आदर के साथ सबको रवाना करके राम जानकी के चरणों का स्मरण करके दोनों भाई भरत चले।

व्याख्या : पहिले शुचि सेवकों की नियुक्ति कहा। यथा : जो जेहि लायक सो तहँ राखा। अब उन्हीं को नगर सौंपते हैं। भाव यह कि नगर सूना है। सबका ध्यान रखें। भरतजी के आज्ञानुसार क्रम से सब चल रहे हैं। माँ की पालकियों के पीछे दोनों भाई स्वयं चले। सरकार गणपति गौरी गिरिश को मनाकर चले थे। भरतजी राम जानकी के चरणों का स्मरण करके चल रहे हैं। खिन्न को इन्हीं चरणों का भरोसा है। यथा : बंदौं सीताराम पद जिनहि परम प्रिय खिन्न।

राम दरस बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी ॥
बन सिय रामु समुझि मन माँहीं। सानुज भरत पयादेंहि जाँहीं ॥१॥

अर्थ : राम दर्शन वश सभी नर नारी ऐसे चले जैसे हाथी हथिनी जल को लक्ष्य करके चले हों। श्री राम जानकी वन में हैं ऐसा मन में समझकर भाई के साथ भरतजी पैदल चले।

व्याख्या : रामजी के दर्शन की सबको प्यास है। जैसे प्यास वश हाथी हथिनी जल को ताककर चले। इसी भाँति पुर नर नारी श्री रामनिवासस्थल चित्रकूट को लक्ष्य में रखकर चले। बड़ी शीघ्रता है कि कब चित्रकूट पहुँचेंगे। नर नारी मत्त-गजगामी हैं। शीघ्रता से चलने का स्वभाव नहीं। पर चाहके वश अति वेग से चले।

श्री सीताराम वन में हैं। यथा : ए बिचरहिं बन बिनु पदत्राना। रचे वादि बिधि बाहन नाना। स्वामी पैदल विचरते होंगे। सेवकधर्म नहीं कि वाहन पर चढ़ें। वे भी सानुज पयादे हैं। इसलिए भरतजी सानुज पयादे चले। इस दर्जे की सेवाधर्म की बारीकी भरतजी में है। सबको एक साथ चलने का कारण यह कि जंगल में ही आग लगी है। यथा : सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी।

देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे ॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली ॥२॥

अर्थ : भरतजी का स्नेह देखकर लोगों को अनुराग हुआ। घोड़े हाथी रथ से उतरकर चलने लगे। तब रामजी की माता अपनी पालकी भरतजी के पास ले जाकर कोमल वाणी बोलीं।

व्याख्या : पयादे चलने से स्नेह दिखायी पड़ गया। देखकर सबका अनुराग बढ़ा। सब लोग सवारियों पर से उतर पड़े। जब भरतजी पैदल चलते हैं तो हम लोग सवारी पर कैसे चलें। हमारे सवारी पर चलने को धिक्कार है। अर्थात् सब समाज पैदल चला। राग के पीछे अनुराग होता है। भरतजी को राग तथा नगरवासियों को अनुराग हुआ।

सवारियों से उतरने के समय एकाएक समाज रुक गया। पूछने पर मालूम हुआ कि भरतजी के पैदल चलने से सब लोग सवारी से उतर रहे हैं। अतः रामजी की माँ से अपनी पालकी रोक ली। पहली पालकी उन्हीं की है। निकट आ जाने पर बोलीं। डोली पालकी यहाँ समानार्थक शब्द हैं। रामजी की माँ हैं। सबके कष्ट को नहीं देख सकतीं।

तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी ॥
तुम्हरे चलत चलिहि सबु लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू ॥३॥

अर्थ : बेटा! माता बलैया लेती है। तुम रथ पर सवार हो लो : नहीं तो प्यारा परिवार दुःख पायेगा। तुम्हारे पैदल चलने पर सब लोग पैदल चलेंगे। सब शोक से दुर्बल हो रहे हैं। रास्ता चलने योग्य नहीं है।

व्याख्या : माता कौसल्या मृदु वाणी बोलती हैं। आज्ञा नहीं देतीं। प्रेम की शिक्षा है। अतः कहती हैं मैं बलि जाती हूँ। मेरी प्रीति के लिए रथ पर चलो। यदि कहो कि इसमें आप का क्या लाभ। अतः कहती हैं कि प्रिय परिवार दुःखी हो जायगा। तुम्हारे पैदल चलने पर सब लोग पैदल चलेंगे। यह नहीं कहतीं कि तुम्हारा पैदल चलना मुझे सह्य नहीं है। कहती हैं कि तुम चाहे दुःख उठाओ पर सम्पूर्ण परिवार को दुःखी न करो।

जब सरदार पैदल चला तो लोग सवारी पर कैसे चलेंगे। तन कृस मन दुःख बदन मलीने। बिकल मनहु माखी मधु छीने। ये लोग पैदल चलने योग्य नहीं हैं। कृश होने का कारण शोक है। शोक युक्त से रास्ता नहीं चला जाता। रास्ते में बैठ जाते हैं।

सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई ॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसरि गोमति तीर निबासू ॥४॥

अर्थ : आज्ञा को शिरोधार्य करके, चरणों में सिर नवाकर, दोनों भाई रथ पर चढ़कर चले। पहिले दिन तमसा तीर निवास करके दूसरे दिन गोमती के किनारे निवास किया।

व्याख्या : बड़ों की आज्ञा शिरोधार्य करके तदनुसार कार्य करना परम धर्म है। अतः प्रणाम करके रथ पर दोनों भाई चढ़कर चले। सरकार भी पहिले पैदल हो चले थे। पर पीछे से सुमन्त्र द्वारा चक्रवर्तीजी की आज्ञा जानकर रथ पर चढ़े। यथा : तब सुमंत नृप बचन सुनाये। करि बिनती रथ राम चढ़ाये।

सरकार देर में चले थें। बीच बीच में लोगों के समझाने बुझाने में भी देर हुई। अतः पहिला निवास तमसा तीर हुआ। भरतजी बड़े सबेरे चले। परन्तु सेना साथ थी। अतः तमसा तीर रुक गये। बहुत लोग साथ हैं। अतः नदी तीर पर डेरा देते हैं। सरकार दूसरे दिन गङ्गा तीर पहुँचे। पर भरतजी चौथे दिन पहुँचे। इन्हें बीच में गोमती तीर पर भी विश्राम करना पड़ा।

दो. पय अहार फल असन एक, निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम ब्रत, परिहरि भूषन भोग ॥१८८॥

अर्थ : कोई दूध ही पीते हैं। कोई फलाहार ही करते हैं। कोई रात्रि में हो भोजन करते हैं। सब लोग रामचन्द्र के लिए भूषण और भोग छोड़कर नियम और व्रत करते थे।

व्याख्या : राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि। इसी का स्पष्टीकरण करते हैं। पय अहार और फलअशन व्रत हैं और निशि भोजन नियम है। यह नियम व्रत रामजी के दर्शन के लिए हो रहा है। लोगों ने श्रृङ्गार और भोग दोनों को त्याग दिया है : भोग रोग सम भूषण भारू। पय अहार फल अशन ज्ञानी भक्त कर रहे हैं। निशि भोजन करनेवाले जिज्ञासु भक्त गृहस्थ लोग हैं। गृहस्थों के लिए रात्रि का उपवास वैद्यक शास्त्र में मना है। राम के वियोग का विधायक जो पाप है उसके नाश के लिए अवधवासियों ने यह नियम और व्रत ले रखा है।

सई तीर बसि चले बिहाने। श्रृंगबेरपुर सब निअराने ॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदयँ बिचार करै सबिषादा ॥१॥

अर्थ : सई के किनारे बसकर सबेरे ही चले। श्रृंगवेरपुर के पास पहुँचे। निषाद ने जब सब समाचार पाया तो विषाद के साथ मन में विचार करने लगा।

व्याख्या : तीसरे दिन सई नदी के किनारे बसे। सबेरे ही चल पड़े। जो रास्ता सरकार ने एक दिन में तय क़िया था उसे तय करने में सेना साथ रहने से भरतजी को तीन दिन से अधिक लगे। श्रृङ्गवेरपुर को ही सिंगरौर कहते हैं। यथा : सो जामिनि सिंगरौर गँवाई। सब लोग सिंगरौर के निकट पहुँच गये। अभी सबेरा ही है।

जब सिंगरौर से कुछ दूर रहे तभी निषादराज को पता लग गया कि भरतजी चित्रकूट जा रहे हैं और बड़ी भारी चतुरङ्गिनी सेना साथ लिये हैं। जिस बात की विधि नहीं बैठती उसमें विचार होता ही है। अनिष्ट की शङ्का में सविषाद विचार होता है और इष्ट प्राप्ति की आशा में सानन्द विचार होता है। सेना के साथ भरतजी का आगमन सुनने से उसे अनिष्ट की आशङ्का हुई। इसलिए सविषाद विचार करने लगा।

कारन कवन भरतु बन जाँहीं। है कछु कपट भाव मन माँहीं ॥
जौ पै जियँ न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई ॥२॥

अर्थ : क्या कारण है कि भरतजी वन जा रहे हैं। कुछ कपट भाव मन में है। यदि कुटिलाई मन में न होती तो साथ में सेना क्यों लिया ?

व्याख्या : रामजी के वन जाने का कारण था। वे पिता के वचन से गये। भरत को तो राज्य मिला है। महाराज की क्रिया से छुट्टी पाते ही इन्हें राज्य सँभालना था। ये वन क्यों जा रहे हैं ? यद्यपि ऐसे अवसर पर भाई से मिलकर उनका सन्तोष करके ही राज्य करना शिष्टता है। पर यह बात ऊपरी है। देखौआ है। इनके मन में दूसरी बात है।

यदि इनके मन में कपट न होता तो साधारण रीति से चले जाते। पर सेन संग चतुरंग न थोरी की क्या आवश्यकता पड़ी। निष्कारण कार्य होता नहीं। सेना का साथ लेना ही कुटिलता का प्रमाण है। ठीक ऐसा ही लक्ष्मणजी ने सोचा। यथा : जौं जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहात रथबाजि गजाली। यह निषादराज लक्ष्मणजी का शिष्य है। उन्हीं की भाँति इसने भी सोचा। भरत के हृद्गत भाव तक गति नहीं हुई। यह न सोच सका कि भरत वन में ही राज्य देने जा रहे हैं।

जानहि सानुज रामहि मारी। करौं अकंटक राजु सुखारी ॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवन हानी ॥३॥

अर्थ : समझते हैं कि भाई के सहित रामजी को मारकर सुखी होकर निष्कण्टक राज्य भोगेंगे। भरत ने राजनीति को चित्त में स्थान नहीं दिया। तब तो कलङ्क ही था। अब प्राणों की हानि होगी।

व्याख्या : चौदह वर्ष के वनवास से इनका पेट न भरा। समझा कि चौदह वर्ष के बाद ही सही पर रामचन्द्र भारी कण्टक हैं। अभी तो पिता के वचन से बँधे हुए हैं। नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते मृगैः। विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता। विक्रम करके भी तुम राज्य न लेना। ऐसा वचन तो पिता का है नहीं। अतः कण्टकोद्धार के लिए चौदह वर्ष बाद का खटका न बना रहे राम लक्ष्मण को मारकर सुखी होकर राज्य करना चाहते हैं। लक्ष्मण और राम का अभिन्न हृदय है। अतः लक्ष्मण का भी बध चाहते हैं।

दण्डनीति अन्तिम उपाय है। पहिले तो राजा को साम, दान, और भेद से काम लेना चाहिए। यथा : साम दान अरु दंड विभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा। नीति धर्म के चरन सोहाये। सो पहिले दण्डनीति से ही काम लेते जान पड़ते हैं। यह राजनीति नहीं है। राज करने में तो यशोहानि थी। पर अब अकण्टक राज करने के उद्योग में जीवन हानि होगी।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतनिहारा ॥
का आचरजु भरत अस करहीं। नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरहीं ॥४॥

अर्थ : जितने योद्धा देवता और असुर हैं वे सब जुट जाँय। फिर भी रामजी को नहीं जीत सकते। भरतजी के ऐसा करने में कौन आश्चर्य है ? विषकी लता में अमृत फल नहीं फलता।

व्याख्या : कारण यह है कि रामजी अजेय हैं। यथा : जीति को सकै अजय रघुराई। सुरासुर में सभी योद्धा नहीं होते। सो यदि सुरासरों में से छाँटकर सब योद्धा इकट्ठे हो जाँय फिर भी समर में अकेले रामजी को नहीं जीन सकते। फिर यह मानुषी सेना उनका क्या कर सकती है। उसके लिए अकेले रामजी ही यथेष्ट हैं कि पुनः लक्ष्मणजी भी साथ हैं। इनके जीतने की इच्छा करना ही मृत्यु सूचक है।

भरतजी यदि रामजी से संग्राम के लिए प्रस्तुत हों तो इसमें क्या आश्चर्य है। निषादराज कहते हैं कि जब माता ने १४ वर्ष के लिए वन दिया तब बेटा यदि प्राण लेना चाहे तो क्या आश्चर्य है! कैकेयी रूपी विषवेलि के ही फल तो भरतजी हैं। ये अमृतफल कैसे हो जावेंगे ? विचार करके निषादराज इस निर्णय पर आगये।

दो. अस बिचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथवासहु बोरहु तरनि, कीजिअ घाटारोहु ॥१८९॥

अर्थ : ऐसा विचारकर गुह ने अपने जाति बिरादरी से कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ। हाथ लगाओ और नावों को डुबा दो और घाट को रोक लो।

व्याख्या : हृदय विचार करै से उपक्रम, और अस बिचरि से उपसंहार है। निषादराज का नाम गुह था। इन्हें सेना नहीं थी। इनके जाति भाई ही इनकी सेना थे। उनसे कहा कि तुम लोग होशियार हो जाओ। भरत से खतरा है। सब नावों को उठा उठाकर नदी में डुबा दो। जिसमें हम लोगों का अनादर करके गङ्गा पार न होने पावें। तब घाट रोककर डँट जाओ। हम लोगों के मारे जाने पर भी हमारी नावों से काम न ले सकें।

होइ सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥१॥

अर्थ : तैयार होकर घाट को रोक लो और सब लोग मरने का साज साजो। सनमुख भरत से लोहा मैं लूँगा और जीते जी गङ्गा न उतरने दूँगा।

व्याख्या : भरतजी का सामना करना है। अतः सब लोग तैयार हो जाओ। पार उतरने की जो जगह है वहीं रोको। यदि कहो कि इतनी बड़ी सेना को कैसे

रोकेंगे ? इसपर निषादराज कहते हैं कि रोक न सकेंगे तो मर तो सकेंगे। इसलिए मरने का सामान साजो। ठाटहु कहने का भाव है कि वीरगति प्राप्ति के लिए उत्साह चाहिए। गङ्गा तुलसी मुख में लेकर तैयार हो जाओ तुम लोग सेना को रोको।

भरतजी के सम्मुख लोहा मैं लूँगा। युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला : अतः यह निश्चय नहीं कि मैं ही हारूँगा। पर सम्भावना ऐसी ही है। अतः यह निश्चय है कि जीते जी गङ्गा उतरने न दूँगा। मुझे मारकर तब पार उतरें। यहाँ आकर सेना ठहर जावेगी। नाव सब डूबी रहेंगी। अतः पार उतरने की व्यवस्था उन्हें करनी होगी। उसी समय संग्राम का अवसर प्राप्त होगा। जो व्यवस्था करें उसे बिगाड़ो। उतरते समय उन पर प्रहार करो।

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृप मै जन नीचू। बड़े भाग असि पाइअ मींचू॥२॥

अर्थ : युद्ध में वीरगति तिस पर गङ्गा का किनारा तिस पर भी रामजी के कार्य के लिए और यह शरीर क्षण में नष्ट हो जानेवाला है। भरत उनके भाई हैं, राजा हैं, मैं नीच सेवक हूँ, बड़े भाग्य से ऐसी मौत मिलती है।

व्याख्या : यदि कहिये कि मर जाने से लाभ क्या ? तो इस पर निषादराज कहते हैं कि यदि शरीर चिरस्थायी होता तो यह प्रश्न बन सकता था। यह शरीर तो क्षणभङ्गुर है। कब छूट जायगा इसका क्या ठिकाना। पर छूटना निश्चित है। परन्तु ऐसा अवसर शरीर छोड़ने का क्या फिर मिल सकेगा ? द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राट् योगयुक्तस्तु रणे चाभिमुखे हतः। समर मरण से उत्तम काल कहा। सुरसरि तोर से उत्तम देश कहा। यथा : रेवातीरे तपः कुर्यात् मरणं जान्हवीतटे। भाव यह कि अनित्य वस्तु को नित्य की प्राप्ति के लिए त्यागना बड़ा भारी लाभ है। यह ऐसे ही किसी को बड़े भाग्य से मिलता है। यथा : मरे बहुत मरिहैं बहुत आज कालि के बीच। तुलसी काहू नहिं लही गीधराज की मीच : राजा का संग्राम साधारण पुरुषों से नहीं होता। पर यहाँ ऐसा ही सुयोग आ पड़ा है। उत्तम के हाथ से मरना प्रशस्त है। भरतजी रामजी के भाई और नराणां च नराधिपः हैं। इनसे उत्तम कौन होगा ?

स्वामि काज करिहहुँ रन रारी। जस धवलिहौं भुवन दस चारी॥
तजौं प्रान रघुनाथ निहोरे। दूहूँ हाथ मुद मोदक मोरे॥३॥

अर्थ : मैं स्वामी के कार्य के लिए रण में युद्ध करूँगा और चौदहों भुवन को अपने यश से सफेद कर दूँगा। रघुनाथ के लिए प्राण त्याग करूँगा। मेरे दोनों हाथ में आनन्द के लड्डू हैं।

व्याख्या : मेरे स्वामी तो रामजी हैं। सब कुछ उनको अर्पण हो चुका है। यथा : देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं सेवक समेत परिवारा। अतः भरतजी भले साम्राज्य के स्वामी हों पंर मेरे स्वामी तो रघुनाथजी ही हैं। उनके लिए

संग्राम में भरतजी के हाथ से शस्त्रपूत होकर गङ्गाजी के तीर वीरगति को प्राप्त हूँगा। मेरे यश से चौदह भुवन भर उठेगा। यश का कवियों ने श्वेत रङ्ग माना है। इसलिए निषादराज कहते हैं कि चौदहों भुवन मेरे यश से सफेद हो जायँगे।

निषादराज मरण का निश्चय किये हुए युद्ध को प्रस्तुत हैं। उनका इतना ही मात्र प्रयोजन है कि : जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ। भरत को समर में जीतने की तो आशा भी नहीं की जा सकती। अपने लाभ के लिए लड़ने को तैयार हैं। लाभ यह है कि दोनों हाथ में आनन्द के मोदक है। लोक परलोक दोनों बन जायगा। जस धवलिहौं भुवन दसचारी : से लोक बनेगा और रघुनाथ निहोरे प्राण त्याग से परलोक बन जायगा। आज भी यह चाल है कि सौभाग्यवती स्त्री के मरने में उसके दोनों हाथ में लड्डू रखकर ही श्मशान ले जाते हैं। दोनों हाथ के लड्डू लोक परलोक दोनों के बन जाने के प्रतीक है।

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा ॥
जाय जिअत जग सो महि भारू। जननी जौवन बिटप कुठारू ॥४॥

अर्थ : साधु समाज में जिसकी गिनती न हो और रामजी के भक्तों में जिसकी रेखा न हो वह संसार में व्यर्थ जीता है। वह पृथ्वी का बोझ है। माता के यौवन रूपी वृक्ष के छेदन के लिए वह कुठार रूप हुआ।

व्याख्या : परहित लागि तजहिं जे देही। संतत संत प्रसंसहि तेही। अतः परहित के लिए शरीर त्याग से संत समाज में गणना होगी और रघुनाथजी के निहोरे वीरगति प्राप्त होने से रामभक्तों में मेरी रेखा होगी। रेखा से भाव यह कि मेरे भक्त होने का निश्चय हो जायगा। यथा : रेख खँचाइ कहौं बल भाखी। सब भक्तों को रामजी के निहोरे प्राण त्याग करने का अवसर नहीं मिलता। यथा : धन्य जटायू सम कोउ नाँहीं। राम काज कारन तन त्यागी। हरिपुर गयउ परम बड़ भागी।

दो. बिगत बिषाद निषादपति, सबहिं बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाहु ॥१९०॥

अर्थ : विषाद से रहित होकर निषादपति ने सबका उत्साह बढ़ाकर रामजी का स्मरण करके तुरन्त तरकस धनुष और कवच माँगा।

व्याख्या : जब तक विचार करता था तब तक सविषाद था। अब निश्चय पर पहुँच गया। अतः कहते हैं कि निषादपति विषाद से रहित हुए। इतना ही नहीं अपने जाति भाइयों का उत्साह भी अपने मरण को मङ्गलमय वर्णन करके बढ़ाया और उस उत्साह को कार्य में परिणत करने के लिए पहिले स्वयं युद्ध के लिए तैयार होने लगा। इष्टदेव रामजी का स्मरण करके तरकस धनुष और कवच को जल्दी से लाने के लिए आज्ञा दी। जल्दी इसलिए है कि भरतजी की सेना आगे बढ़ती चली आती है।

बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ ॥
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावइ करषा ॥१॥

अर्थ : भाइयो ! जल्दी करो सब तैयारी कर लो। मेरी आज्ञा को सुनकर कोई साहस न छोड़ो। सब हर्ष के साथ कहने लगे कि : नाथ ! बहुत अच्छा और वे आपस में एक दूसरे से चढ़ा ऊपरी करने लगे।

व्याख्या : निषादराज बोले कि मैं तैयार हो रहा हूँ। तुम लोग जल्दी से तैयार हो जाओ। तुम लोग भाई हो। होहिं कुठाहर बंधु सहाए। तैयारी में कसर न रहे। इसलिए सजहु कह रहे हैं। मैंने मरने का ठाट ठटने की आज्ञा दे दी है। कादर मरने से डरते हैं। वे ऐसी आज्ञा सुनकर साहस छोड़ देते हैं। तुम लोग वीर हो। तुम में से कोई भी कादर की भाँति आचरण न करे।

निषादराज ने सबका उछाह बढ़ाया था। इसलिए सभी हर्ष के साथ आज्ञा को शिरोधार्य कर रहे हैं। सब गुह को राजा मानते हैं। अतः नाथ सम्बोधन दे रहे हैं। एक दूसरे से अमर्ष बढ़ाते हैं। जिसमें युद्ध करने में कसर न लगावें। आपस में चढ़ा ऊपरी है कि देखें कौन कैसा पुरुषार्थ करता है।

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचै रारी ॥
सुमिरि राम पद पंकज पनही। भाथी बाँधि चढ़ाइन्हि धनही ॥२॥

अर्थ : निषाद जोहारकर करके चले। सब शूर हैं। युद्धप्रिय हैं। रामजी की जूतियों का स्मरण करके तरकस बाँधा और धनुहियों को चढ़ाया।

व्याख्या : रजायसु हुई : बेगहु भाइहु। अतः जोहारि जोहारि चले। क्योंकि सबके सब शूर हैं। रन रूचै रारी। भावार्थ यह कि संग्राम में झगड़ा रुचता है। घर में नहीं। निषाद की जाति की जाति ही वीर थी।

यहाँ पर कवि ग्राम्य शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। ये सब सरकारी जूतियों के उपासक हैं। अतः इष्ट स्मरणपूर्वक भाथी बाँधा। भाथी तरकस को कहते हैं। मालिक रामजी का स्मरण करता है। उसके सेवक रामजी के जूते का स्मरण करते हैं। दासानुदास हैं। तत्पश्चात् धनुही को चढ़ाया। धनुही छोटे धनुष को कहते हैं।

अँगरी पहिरी कूँड सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं ॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहु छिति छाँड़े ॥३॥

अर्थ : कवच पहनकर सिर पर कटोरा बाँधते हैं और परशु बाँस तथा बरछियों को सुधारते हैं। कोई कोई तलवार ढाल के बड़े पण्डित हैं। वे मानो पृथ्वी छोड़कर आकाश में कूद रहे हैं।

व्याख्या : अँगरी लोहे की अँगरखी अङ्गरक्षा के लिए पहन रहे हैं। सिर पर टोप के स्थान पर कटोरा आदि बरतन बाँध रहे हैं। भाथी और धनुष बाँधा था।

दूर से लड़ाई के लिए फरसा, बाँस और बरछा निकट से लड़ने के लिए सीधा कर रहे हैं। ये दूसरे प्रकार के वीर हैं।

तीसरे प्रकार के तलवार बहादुर वीर हैं। बड़े पैंतरेबाज हैं। ओड़न ढाल स्थानीय वस्तु को कहते हैं। उनका पैंतरा अभी से आरम्भ हो गया। ऐसे उछल रहे हैं मानो धरती पर उनका पैर ही नहीं पड़ रहा है।

निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहिं जोहारे जाई ॥
देखि सुभट सब लायक जानें। लै लै नाम सकल सनमानें ॥४॥

अर्थ : अपना अपना साज समाज तैयार करके उन्होंने अपने स्वामी गुह को जाकर प्रणाम किया। देखकर सुभटों को सब योग्य जाना और नाम ले लेकर सबका सम्मान किया।

व्याख्या : तीनों प्रकार के वीरों ने अपना अपना साज समाज तैयार करके अपने मालिक गुह को जाकर प्रणाम किया। यहीं से सब तैयारी के लिए चले थे। यथा : चले निषाद जोहारि जोहारी। और तैयार होकर यहीं लौटे और निषादराज का फिर से जोहार किया कि हम लोग तैयार होकर आगये।

गुह राउत ने जब सुभटों को देखा तो बड़ा भरोसा हुआ कि ये सब लायक हैं। भली प्रकार सामना करने में समर्थ हैं। गुह राउत सबका नाम जानते हैं। कोई सेना तो है नहीं जो सबका नाम याद न रहे। यह तो टोली है। अपने ही भाई बन्धु सब हैं। अतः एक एक का नाम लेकर सम्मान कर रहे हैं। किसी से कहते हैं कि तुम्हारा बड़ा भरोसा मुझे है। किसी से कहते हैं कि तुम मेरी भुजा हो।

दो. भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट, बीरु अधीरु न होंहि ॥१९१॥

अर्थ : भाइयो ! कुछ भी कसर न उठा रखना। आज मेरा बड़ा भारी काम आ पड़ा है। सुनकर सब सुभट सरोष होकर बोले कि वीर धैर्य नहीं छोड़ते।

व्याख्या : निषादराज कहते हैं कि तुम सब भाई हो। नौकर नहीं हो। अतः लड़ने में कोई कसर न पड़ने पावे। बड़ा काम मेरा तो आज ही पड़ा है। स्वामी का कार्य होने से मेरा बड़ा भारी काम है। दूसरी बात यह कि आज बड़ा भारी लाभ मेरे सामने है जो कि तुम्हारी सहायता से ही सिद्ध हो सकता है और वह यह है : जस धवलिहौं भुवन दस चारी। मेरे यश से चौदह भुवन प्रकाशित होनेवाला है और कीर्तिर्यस्य स जीवति। इतना सुनते ही वीरों को जोश आगया। कहने लगे कि वह वीर ही नहीं जो समय पर अधीर हो जाय। यह बात धनुर्धरों ने कही।

राम प्रताप नाथ बल तोरें। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरें ॥
जीवत पाउ न पाछे धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! रामजी के प्रताप से और आपके बल से सेना को बिना वीर और बिना घोड़े का कर देंगे। जीते जी पीछे पैर न रक्खेंगे। पृथ्वी को रुण्ड मुण्ड से पाट देंगे।

व्याख्या : तब फरसा बाँस सेल सम करनेवाले बोले कि प्रताप रामजी का और बल आपका है, मेरा कुछ नहीं। सो उस प्रताप और बल की सहायता से सेना को बिना भट का और बिना घोड़े का कर दूँगा। भाव यह कि ऐसा चोट करूँगा यदि सवार बचे तो घोड़ा न बचेगा और यदि घोड़ा बचे तो सवार न बचेगा। मेरी चोट खाली जानेवाली नहीं है। भरत की सेना की यह विशेषता है कि उसमें सवार हैं। हमलोगों के पास घोड़े नहीं हैं। इसलिए हम लोग ऐसा युद्ध करेंगे कि घोड़ा बचे तो सवार नहीं और सवार बचा तो घोड़ा नहीं।

तब ओडन खाँडे में कुशल तलवार बहादुर बोले कि हमलोग मरने पर चाहे जिस बल गिरें पर जीते जी पैर पीछे न रक्खेंगे। जिसमें कदराई का प्रश्न ही न उठने पावे और यों ही न मर जायेंगे। जिसे एक हाथ मारेंगे वे दो टुकड़े हो जायेंगे। इस भाँति पृथ्वी को रुण्ड मुण्डमय बना देंगे। मुण्ड सिर को और रुण्ड धड़ को कहते हैं।

दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ॥
एतना कहत छींक भइ बाएँ। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाएँ ॥२॥

अर्थ : निषादनाथ ने देखा कि टोली तो अच्छी है। बोले कि जुझाऊ ढोल बजने दो इतना कहते ही बायीं ओर छींक हुई। शकुन विचार करनेवालों ने कहा कि रणक्षेत्र सुन्दर होगा अपने पक्ष की जीत होगी।

व्याख्या : लोगों की बातें सुनकर निषादनाथ ने सुभटों की ओर देखा और मन में कहा कि टोली तो अच्छी है। वीरों के उत्साह वर्धन के लिए कहा कि जुझाऊ ढोल बजने दो। जुझाऊ बाजा तो है नहीं कि मारूराग बज सके। अतः जुझाऊ ढोल बजाने की आज्ञा दी। इससे भरतजी की सेना को भी सूचना देना है कि निषाद लोग युद्ध के लिए प्रस्तुत हैं। निषादराज के पास छोटे परिमाण में सब कुछ था।

निषादराज के आज्ञा देते ही बायें ओर छींक हुई। प्राचीन काल में सेना के साथ सगुन विचारनेवाले भी रहते थे। उन्होंने कहा विजय होगी पर थे सब नौजवान बिना बिचारे ही बोल दिया कि जिसमें टोली का जी न टूटे। यात्रा में छींक अच्छी नहीं मानी जाती। अथवा उन सबों ने यह अर्थ लगाया कि जो हम लोगों के बाएँ हैं, उन्हें विघ्न होगा।

बूढ़ एक कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी ॥
रामहि भरतु मनावन जाँहीं। सगुन कहै अस विग्रहु नाँहीं ॥३॥

अर्थ : एक बूढ़े ने सगुन विचारकर कहा कि भरतजी से मिलिये झगडे की

बात नहीं है। भरत रामजी को मनाने जाते हैं। सगुन कह रहा है कि झगड़ा नहीं है।

व्याख्या : नौजवान सगुनियों ने विचार नहीं किया। यथा : कह्यौ सगुनिअन्ह खेत सोहाए। अवसरोपयुक्त बात बोल उठे। पर उनमें एक बूढ़ा था उसने सगुन पर विचार किया कि जुझाऊ ढोल बजने की आज्ञा देते ही छींक हुई तो इसका तात्पर्य यह कि जुझाऊ ढोल बजने की आज्ञा न दो। अतएव कहता है कि सगुन कह रहा है कि झगड़े की बात नहीं है आप भरतजी से मिल लीजिये।

जब सगुन कहता है कि झगड़ा नहीं है तब निश्चय है कि भरत लड़ने नहीं जा रहे हैं। क्योंकि सगुन जुझाऊ बाजा बन्द करने को कह रहा है। यदि लड़ने नहीं जा रहे हैं तो सिवा मनाने के लिए जाने के दूसरी बात हो क्या सकती है ? सेना मन्त्री सब अगवानी के लिए जा रहे हैं।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें। बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें ॥४॥

अर्थ : यह बात सुनकर निषादराज गुह ने कहा कि वुड्ढा अच्छी बात कह रहा है। बिना विचारे काम करके विमूढ़ पछताते हैं। भरत का स्वभाव और शील बिना समझे अनजान में लड़ाई कर बैठने में बहुत बड़े कल्याण की हानि होगी।

व्याख्या : इस समय बड़ा भारी अनर्थ हो चुका था। सगुन के सावधान कर देने से बड़ा भारी अकल्याण रुक गया। सगुन पर ध्यान न देना अभिमान सूचक है। यथा : अति गर्व गनै न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते। निषादराज विचार शील थे। बूढ़े की राय पर विचार किया कि मैंने तो जूझने में ही कल्याण देखा था पर यदि भरत सचमुच मनाने जा रहे हों तो उनके साथ जूझना रामजी का सद्यः विरोध हुआ। रामजी के लिए जूझने में जितना लाभ था उतनी ही हानि राम विरोधी होकर जूझने में है। लोक परलोक दोनों बिगड़ेगा। संसार में अपकीर्ति होगी कि बड़ा बेवकूफ था। बिना समझे ही लड़ गया। इससे यह लोक बिगड़ेगा और परलोक भागवत के विरोध से नष्ट हो जायगा।

दो. गहहु घाट भट समिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तस तब करिहउँ आइ ॥१९२॥

अर्थ : सब वीर लोग इकट्ठे होकर घाट पर कब्जा किये रहो। मैं मिलकर भेद लेने जाता हूँ। शत्रु मित्र और उदासीन भाव का पता लगाकर फिर जैसा उचित होगा वैसा करूँगा।

व्याख्या : निषादराज अपने वीरों को आज्ञा दे रहे हैं कि सब लोग सिमिट-कर घाट पर कब्जा जमाये रहो बाजा बजते क्या देर लगेगी। मैं जाकर भरतजी से मिलकर पता लगाये लेता हूँ कि उनका भाव क्या है ? रामजी का विरोध इनके

हृदय में है कि मित्र भाव है कि उपेक्षा है। यदि मित्र होंगे तो सेवा करूँगा। विरोधी होंगे तो युद्ध करूँगा। यदि उनकी उपेक्षा दृष्टि होगी तो मैं भी उदासीन रहूँगा।

लखब सनेहु सुभाय सुहाएँ। वैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराएँ॥
अस कहि भेंट सजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग माँगे॥१॥

अर्थ : सुन्दर स्वभाव से प्रेम पहिचाना जायगा। वैर और प्रीति छिपाने से नहीं छिपती। इतना कहकर भेंट की तैयारी करने लगे। कन्द मूल फल पक्षी और मृग मँगाये।

व्याख्या : मित्र अरि और मध्यगति के समझने में कोई कठिनता नहीं है। सुन्दर स्वभाव से ही प्रेम की परख हो जाती है। प्रेमी का ही सुन्दर स्वभाव सम्भव है। फिर बैर और प्रीति ऐसे प्रबल भाव हैं जो यत्नपूर्वक छिपाने से भी नहीं छिपते। जो स्वभाव और चेष्टा से मनोगत भाव नहीं लख सकता वह भेंट के पसन्द से क्या लखेगा? रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं भिषजं गुरुम्। अतः भेंट की व्यवस्था करने लगे।

ईंधन पात किरात मिताई के अनुसार भेंट की तैयारी होने लगी। यद्यपि मङ्गल कार्य में जलभाजन में रखकर ही मछलियाँ लायी जाती हैं और केलि मृग पक्षी भी भेंट में जाते हैं पर यहाँ ऐसा नहीं मालूम होता। सेना में सब प्रकार के लोग होते हैं। राजसिक और तामसिक वृत्ति का तो यह आहार ही है। अतः उनके लिए भी शास्त्र में देव पितृ अर्चन पूर्वक ही खाने का विधान है। निषादराज सात्त्विकों के सत्कार के लिए कन्द मूल फल, राजसिक के लिए खग मृग इकट्ठा कर रहे हैं।

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए। मंगल मूल सगुन सुभ पाए॥२॥

अर्थ : कहाँर लोग पुरानी मोटी मोटी पहिना मछलियों के भार भरकर लाये। मिलने का सामान सजकर मिलने चले तो मङ्गल मूल शुभ शकुन मिले।

व्याख्या : शास्त्रों में मछली खाने की बड़ी निन्दा है। मत्स्यादः सर्वमांसादः। जिसने मछली खायी वह सब मांस खा चुका। अतः मछली घोर तामसिकों का आहार है। अतः उनके लिए मछलियाँ आयीं। यद्यपि कहाँर निषाद की अपेक्षा उच्च जाति के हैं पर बहँगी ढोना उन्हीं का काम है। यथा : कोटिन्ह काँवर चले कँहारा।

निषादराज ने मिलने का साज सजा अर्थात् तर्कस धनुष और सन्नाह कवच उतार दिया। और स्वजात्यनुकूल वस्त्र भूषादि से सुसज्जित होकर तथा उपहारादि लेकर मिलने गया। लड़ने की तैयारी के समय छींक बायें हुई। पर मिलने चले तो मङ्गल मूल शुभ शकुन हुए। दधि दुर्वा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला। ये ही मङ्गलमूल शकुन हैं। इन्हीं का मिलना मङ्गलमूल शुभ शकुनों का मिलना है।

देखि दूरि ते कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू ।।
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा । भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ।।३।।

अर्थ : दूर से ही मुनिराज को देखकर अपना नाम कहकर दण्डवत् किया । राम का प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और मुनिराज ने भरत को समझाकर कहा ।

व्याख्या : पहिले ही मुनिराज के दर्शन हुए । यथा : अरुंधती अरु अगिन समाजू । रथ चढ़ि चलत भये मुनिराजू । सो निषादराज ने उनसे दूर से ही साष्टाङ्ग प्रणाम किया । जिसमें छाया न छू जाय । यथा : जासु छांह छुइ लेइय सींचा । अपना नाम परिचय के लिए कहा । अर्थात् नामग्रहण पूर्वक प्रणाम किया ।

गुरुजी ने नाम सुना था कि निषादराज रामजी का प्रेमी है और सरकार भी उस पर प्रेम करते हैं । अतः मुनिराज ने आशीर्वाद दिया । मुनिराज के रथ के बाद ही भरतजी का रथ है । माताजी की आज्ञा से जब रथ पर सवार हुए तो रथ अन्य रथियों के पीछे नहीं रह सकता । सो गुरुजी ने कहा :

यह निषाद पति सुहृद अति, रघुपति सखा सुजान ।
निरखि सेन संकित सजग, कीजिय याको मान ।।

राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा । चले उतरि उमगत अनुरागा ।।
गाउँ जाति गुह नाम सुनाई । कीन्ह जोहारू माथ महि लाई ।।४।।

अर्थ : यह सुनते ही कि यह रामजी का सखा है । भरतजी रथ से उतर पड़े और अनुराग से उमगते हुए उसकी ओर चले । गुह ने गाँव जाति और नाम सुनाकर पृथ्वी पर सिर रखकर जोहार किया ।

व्याख्या : राम सखा से भाव यह कि सरकार की बराबरी का दर्जा है । अतः भरतजी ने उसके आदर के लिए रथ का त्याग किया और पैदल चल पड़े । क्योंकि निषादराज दूर पर थे । यथा : देखि दूरि ते कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू । चलते समय हृदय में अनुराग उमगा पड़ता था ।

अपनी ओर भरतजी को बढ़ते देखकर निषादराज ने पहिले ही अपने निवासस्थान का परिचय दिया । जिसमें समझ जाँय कि यह निषादों के गाँव का रहनेवाला निषाद है । अस्पृश्य है । फिर भी भरतजी नहीं रुके । तब स्पष्ट रूप से जाति की घोषणा की । तत्पश्चात् नाम भी सुना दिया । उसे भ्रम हुआ कि मुनीशजी से जो मैंने कहा है उसे शायद भरतजी नहीं सुन सके । इसलिए उसने इस बार जोर से कह सुनाया । पर भरतजी आगे बढ़ते ही गये । तब पृथ्वी पर सिर रखकर जोहार करता है । जिसमें स्पष्ट हो जाय कि यह अछूत है । मुनिजी को दण्डवत् किया । भरतजी को जोहार करता है । राजा लोगों को दोनों हाथ उठाकर प्रणाम किया जाता है । जिसे जोहार कहते हैं ।

दो. करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ ।।
मनहु लषन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ ।।१९३।।

अर्थ : उसे दण्डवत् करते देखकर भरतजी ने छाती से लगा लिया। मानो लक्ष्मणजी से भेंट हुई है। हृदय में प्रेम नहीं समाता था।

व्याख्या : प्रेम के उमङ्ग का अवसान तो हृदय लगाने पर ही होता है। भरतजी ने निषादराज को हृदय से लगा लिया और इतने अनुराग से गाढ़ालिङ्गन किया मानो लक्ष्मणजी से भेंट हुई हो। फिर भी हृदय में प्रेम नहीं समाता पुलक के मिससे प्रकट हो रहा है। लक्ष्मणजी पर भरतजी का साधारण प्रेम नहीं है। यथा : सोक समाजु राजु केहि लेखे। लखन रामसियपद बिनु देखे। लक्ष्मणजी सा प्रेम होने का कारण यह कि इसका भी त्याग श्रीरामप्रीत्यर्थं वैसा ही है जैसा लक्ष्मणजी का है। यथा : देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा।

भेटत भरत ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ।।
धन्य धन्य धुनि मंगल मूला। सुर सराहि तेहि बरसहिं फूला ।।१।।

अर्थ : भरतजी उसे बड़े प्रेम से भेंटे। लोग ईर्ष्या करने लगे। यह प्रेम की रीति है। देवता लोग मङ्गलका मूल धन्य धन्य ध्वनि करके उसकी बड़ाई करते हैं और फूलों की वर्षा करते हैं।

व्याख्या : प्रेम वस्तु ही ऐसी है जिसमें नीच ऊँच का विचार रह नहीं सकता। प्रेम के प्रवाह में भेद बह जाता है। निषादराज ने सरकार से कहा था कि : थापिअ जनु सब लोग सिहाऊ। सो भरतलाल ने उसे स्थापन कर दिया और लोग भी इस प्रेम की रीति का डाह करने लगे कि वाह रे ! निषादराज का भाग्य।

नीचे लोग सिहाते हैं। ऊपर देवता सराहते हैं। बार बार उसे धन्य कहते हैं। देवताओं की धन्य धन्य ध्वनि मङ्गल मूल है। निषादराज साधारण धन्य नहीं हुए। देवपूजित हो गये। देवताओं ने उन पर पुष्पवर्षा की। ऐसी स्थापना हुई कि देवताओं ने फूल चढ़ाया।

लोक वेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा ।।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता ।।२।।

अर्थ : जो लोक में और वेद में सब भाँति नीच था। जिसकी छाया छू जाने से मार्जन का विधान है उसी से रामजी के छोटे भाई पुलकित होकर छाती से लगाकर मिल रहे हैं।

व्याख्या : लोक में नीच। यथा : हम जड़ जीव जीवगन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती। पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं। यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई। इस भाँति लोक में नीच हुआ। य इह कपूयाचरणा अभ्याशो हयत्ते कपूयां योनिमापद्येरन्

श्वयोनिं सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा। इस भाँति निषाद होने से वेद में भी कपूय नीच योनि कहा गया। उसकी छाया के स्पर्श से मार्जन का विधान है। उसे स्पर्श करने की कौन चलावै ?

सो रामजी के छोटे भाई उसे अङ्क भरके हृदय लगा रहे हैं और प्रेम से ऐसे परिपूर्ण हैं कि सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो रहा है। रामजी के छोटे भाई कहने का भाव यह है कि जिसके विषय में स्वयं वसिष्ठजी कहते हैं कि समुझव कहव करव तुम्ह जोई। धर्मसारु जग होइहि सोई।

राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं ॥
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जग पावन कीन्हा ॥३॥

अर्थ : जो राम राम कहकर जँभाई लेते हैं पापों के समूह उनका सामना नहीं करते। इसे तो रामजी ने हृदय से लगा लिया और कुल के सहित जगत में पवित्र कर दिया।

व्याख्या : जो राम कहकर जँभाई लेते हैं : भाव यह कि जो आलस्य से भी रामनामोच्चारण करते हैं उनका सामना करने का सामर्थ्य पापपुञ्ज को भी नहीं। क्योंकि उनका सामना पड़ते ही नष्ट हो जाते हैं। नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्दहने हरेः। तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकीजनः। आलस्य से जपना। यथा : भाव कुभाव अनख आलसहूँ। राम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

भरतजी के हृदय लगाने से ही रामजी का हृदय लगाना हो गया। यथा : तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहिं मोहि कछु अंतर काऊ। पहिले ही यदि रामजी हृदय लगाये होते तो भरतजी के हृदय लगाने पर देवताओं की पुष्प वर्षा इस समय न होकर उस समय होती सो वहाँ मिलना भी नहीं कहते। यथा : लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरखु अपारा। करि दंडवत भेट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे। देवता लोग कहते हैं कि अब यह कुल समेत संसार में पवित्र हो गया। भरतजी ने जब इसे हृदय से लगा लिया तो रामजी लगा चुके। लोक में यह जनश्रुति है कि रामजी के जल ग्रहण कर लेने से मल्लाहों की गिनती सत्शूद्रों में हो गयी। इनका पानी चलने लगा।

करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ॥
उलटा नामु जपत जग जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥४॥

अर्थ : कर्मनाशा का जल गङ्गाजी में गिरता है। तो उसे कौन सिर पर नहीं चढ़ाता। संसार जानता है कि उलटा नाम जपते-जपते वाल्मीकि जी ब्रह्म के तुल्य हो गये।

व्याख्या : जनश्रुति है कि कर्मनाशा का जल स्पर्श करने से कर्म का नाश हो जाता है। इसलिए कर्मनाशा का जल कोई छूता नहीं। परन्तु कर्मनाशा जाकर गङ्गाजी में मिल गयी है। उसके जल के अनवरत गङ्गा में गिरते रहने पर भी

गङ्गाजल में अशुचिता नहीं आती। उसे सभी पापनाश के लिए सिर पर धारण करता है। अर्थात् जिसे सरकार ने अपना लिया वही पूज्य हो जाता है। उसके जाति आदि का विचार नहीं किया जाता। पर यह निश्चय हो जाना चाहिए कि रामजी ने अपना लिया। यथा :

जाको हरि दृढ़ करि अंग करयौ।
सोई सुसील पुनीत वेद विद विद्या गुननि भरयौ॥
उतपति पांडु सुतन की करनी सुनि सत पंथ डरयौ।
ते त्रैलोक्य पूज्य पावन जस सुनि सुनि लोक तरयौ॥
जो निज धर्म वेद बोधित सो करत न कछु बिसरयौ।
बिनु अवगुन कृकलास कूप मज्जित कर गहि उघरयौ॥
ब्रह्म विसिख ब्रह्माण्ड दहन क्षम गर्भ न नृपति जरयौ।
अजर अमर कुलिसहु नाहिन वध सो पुनि फेन मरयौ॥
विप्र अजामिल अरु सुरपति ते कहा जो नहिं बिगरयौ।
उनको कियो सहाय बहुत उर को संताप हरयो॥

वाल्मीकिजी का उलटा नाम जप करना जगत् प्रसिद्ध है। उलटा जप का फल भी उलटा होना चाहिए। नाम के संसर्ग से उलटा जप भी महा फलदायक हुआ। वाल्मीकिजी ब्रह्म के समान हुए और उनकी वाणी वेद के समान हुई। यथा : वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षात्‌रामायणात्मना।

दो. स्वपच सबर खस जवन जड़, पाँवर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम, होत भुवन बिख्यात ॥१९४॥

अर्थ : चाण्डाल खश मूर्ख यवन नीच कोल किरात आदि सभी राम नाम के कहने से पवित्र होकर संसार में विख्यात हो जाते हैं।

व्याख्या : वाल्मीकिजी उदाहरण मात्र हैं। नियम यही है कि नीच भी राम कहने से परम पवित्र और भुवन विख्यात हो जाते हैं। स्वपच यवन आदि कहने से वेदबाह्यलोग अभिप्रेत हैं। अर्थात् जो जन्म से अपावन हैं वे भी पावन हो जाते हैं और उनकी संसार में ख्याति हो जाती है। कोई उनकी जाति का परवाह नहीं करता। इस प्रकार शास्त्र और लोक दोनों से शुद्धि कही।

नहिं अचरज जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्ह रघुबीर बड़ाई॥
राम नाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं ॥१॥

अर्थ : आश्चर्य की बात नहीं है। यह प्रथा तो युग युग से चली आती है। रामजी ने किसे बड़ाई नहीं दी ? राम नाम की महिमा देवता लोग कहते थे और सुन सुनकर अवधवासी सुखी होते थे।

व्याख्या : अनहोनी बात का हो पड़ना आश्चर्य है। पहिले बड़ा संशय हुआ कि लोक वेद सब भाँति से जो नीच है उससे इस भाँति भरतजी मिलते हैं। यह

क्या बात है ? फिर उस संशय का निरसन भी स्वयं ही करते हैं कि जो बात सदा से होती चली आयी हो उसके होने में आश्चर्य नहीं है। यथा : संतत दासन्ह देहु बड़ाई। जो बड़ होत सो राम बड़ाई। सदा से ही भगवान् दासों को बड़ाई देते हैं। यह भी सरकार का अनन्य दास है। अतः उस नाते से इसे बड़ाई मिल रही है। जो जाति में बड़े कहलाते हैं उन्हें ही बड़ाई कहाँ से मिली ? जिसने उन्हें बड़ाई दी थी वही निषादराज को भी बड़ाई दे रहा है।

राम की और नाम की महिमा देवगण आकाश में वर्णन कर रहे हैं। सुर सराहि तेहि वरषहिं फूला से उपक्रम और राम नाम महिमा सुर कहहीं से उपसंहार। देवता कह रहे हैं और अवधवासी श्रवण कर रहे हैं। इससे उन्हें सुख हो रहा है। यथा : हम सम पुण्य पुंज जग थोरे। जिन्हहिं राम जानत करि मोरे। देवताओं का सङ्कल्प है कि अवधवासी सुनें। अतः सुन रहे हैं, नहीं तो आकाश में कही हुई बात पृथ्वी पर क्यों सुनाई देने लगी ?

राम सखहि मिलि भरतु सप्रेमा। पूछी कुसल सुमंगल षेमा ॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद देहि समय बिदेहू ॥२॥

अर्थ : रामजी के सखा के साथ सप्रेम मिलकर भरतजी ने कुशल मङ्गल और क्षेम पूछा। भरतजी का शील और स्नेह देखकर निषादराज उस समय देह की सुधि भूल गये।

व्याख्या : मिलन प्रसङ्ग पूरा करके फिर कथा प्रसङ्ग प्रारम्भ करते हैं। सप्रेम शब्द देहली दीपक न्याय से दोनों ओर लगेगा। अर्थात् सप्रेम मिलकर कुशलादि सप्रेम पूछा। कुशल शब्द से विघ्नराहित्य अभिप्रेत है। यथा : बूझत्र राउर सादर साइँ। कुसल हेतु सो भयउ गोसाइँ। मङ्गल से इष्ट प्राप्ति और षेम से इष्ट संरक्षण के विषय में प्रश्न किया। अर्थात् योगक्षेम पूछा।

निषादराज भरतजी के शील स्नेह का पता लगाने चले थे। सो उनका शील स्नेह देखकर स्तब्ध हो गये। उन्हें अपने देह की सुधि न रह गयी। शील देखा कि राम सखा सुनि स्यन्दनु त्यागा और स्नेह देखा : भरत लीन्ह उर लाइ। मनहु लखन सन भेंट भइ। प्रेम न हृदय समाइ। मन में भी यह बात न आयी थी कि भरतजी में इतना शील स्नेह होगा। अतः आश्चर्य और प्रेम में डूबाडूब होकर शरीर की सुधि भूल गया।

सकुच सनेहु मोद मन बाढ़ा। भरतहिं चितवत एकटक ठाढ़ा ॥
धरि धीरज पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी ॥३॥

अर्थ : मन में सङ्कोच प्रेम और आनन्द बढ़ गया और खड़ा खड़ा एकटक भरतजी को देखने लगा। धैर्य धारण करके फिर चरणों में प्रणाम किया और प्रेम के साथ हाथ जोड़कर विनय करने लगा।

व्याख्या : निषादराज को अपने पूर्वकृत सन्देह पर सङ्कोच हुआ। शील

देखकर भरतजी पर स्नेह बढ़ा और स्वभाव देखकर मन में मोद हुआ। भरतजी कुशल पूछते हैं। उसका उत्तर देना चाहिए। परन्तु निषादराज भरतजी के गुणों को देखकर स्तब्ध हैं और प्रेम के उल्लास से भरतजी को एकटक देख रहे हैं। उत्तर देते नहीं बनता।

अतः धैर्य धारण किया। पहिले प्रेम से धैर्य छूट गया था। सो मनसा : धरि धीरज, कर्मणा : पद वंदि और वचसा : वचन सप्रेम कहत कर जोरी। सप्रेम प्रेम हुआ था। यथा : सप्रेमा, पूछी कुसल सुमंगल षेमा। अतः विनय सप्रेम करत कर जोरी। यह दूसरी वन्दना उत्तर देने के समय की है।

कुसल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी ॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित कोटि कुल मंगल मोरें ॥४॥

अर्थ : श्रीचरण ही कुशल के मूल हैं। उनका दर्शन करके मैंने तीनों काल में अपना कुशल निश्चय कर लिया। प्रभो ! अब आपकी कृपा से कोटि कुल के सहित मेरा मङ्गल है।

व्याख्या : कुशल पूछने का उत्तर निषादराज देते हैं कि अब तो मैं कुशल के मूल : जड़ तक पहुँच गया। नहीं तो : तब लगि कुसल न जीव कहँ सपनेहुँ मन विश्राम। जब लगि भजत न राम कह सोक धाम तजि काम। पूर्व काल में कुशल था। इसलिए चरणों का दर्शन हुआ। इस समय भी कुशल है। दर्शन कर रहा हूँ और भविष्य में भी इन्हीं चरणों के प्रताप से कुशल होगा।

मङ्गल पूछने का उत्तर निषादराज देते हैं कि दर्शन के बाद जो अनुग्रह हुआ उससे करोड़ों कुल के साथ मेरा मङ्गल हुआ। मेरी पूरी जाति पावन हो गयी। यथा : कुल समेत जग पावन कीन्हा। यथा : नभ सराहि सुर वरषहि फूला।

दो. समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जिअ जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद, जग बिधि बंचित सोइ ॥१९५॥

अर्थ : मेरे कूल और करतूति को समझकर और प्रभु की महिमा देखकर जो रघुवीर के चरण को न भजे वह संसार में विधाता द्वारा ठगा गया।

व्याख्या : अब क्षेम का उत्तर देते हैं। कुल और करतूति दोनों मलिन हैं। यथा : जासु छाँह छुइ लेइय खींचा। हम जड़ जीव जीवगन घाती। कपटी कायर कुमति कुजाती और सरकार की महिमा का पारावार नहीं। यथा : भरत महा महिमा जल रासी। मुनि मति तीर ठाढ़ि अवलासी। इन दोनों बातों को जो देखेगा वह सब रघुवीर के पद को भजेगा। मैं भी भजूँगा। जो न भजे वह नृपशु है। मनुष्य शरीर देकर ब्रह्मदेव ने उसे ठग लिया। वह मनुष्य शरीर में पशु ही है। आहार निद्रा भय मैथुन में लगा है। उसे कुछ भी विवेक नहीं है। रघुवीर पद भजने से ही क्षेम होता है। यथा : राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।

कपटीं कायरु कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती ॥
राम कीन्ह आपन जबहीं ते। भयेउँ भुवन भूषन तबहीं ते ॥१॥

अर्थ : कपटी कादर कुबुद्धि और कुजाति हूँ। सब भाँति लोक वेद से बाहर हूँ। पर जब से रामजी ने मुझे अपना कर लिया तभी से मैं संसार का भूषण हो गया।

व्याख्या : निषादराज कहते हैं न मेरा स्वभाव अच्छा, न हृदय अच्छा, न बुद्धि अच्छी और न जाति अच्छी, स्वभाव से कपटी, हृदय से कादर, बुद्धि तामसी और जाति से निषाद। मेरे स्वभाव में कपट है। उसका आरोप भरतजी ऐसे महासाधु पर किया। यथा : कारन कवन भरत बन जाँहीं। है कछु कपटभाव मन माँहीं। हृदय मेरा कादर है। युद्ध के लिए तैयार भी हुआ तो जाति भाइयों के भरोसे। फिर भी अधीर हो उठा। जाति भाइयों ने कहा : वीर अधीर न होहि। मैंने अधर्म को धर्म माना। भरतजी ऐसे महा भागवत से युद्ध करने का संकल्प किया। इससे मेरी बुद्धि तामसी। अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी। मेरी जाति पापमय है। राजा वेणु की जंघा के मन्थन से जो पाप पुरुष उत्पन्न हुआ वही हमारा मूल पुरुष है। उसी से निषाद जाति हुई। कहा भी है कि अधम को वेनु समान।

मुझे न लौकिक कर्म : समाज प्रवेश का अधिकार और न वैदिक कर्म : यज्ञादि साधनों का अधिकार। अतः हम लोक और वेद दोनों से बहिष्कृत हैं। कोई मुझसे सम्पर्क रखना नहीं चाहता। परन्तु जब से रामजी ने मुझे अपना लिया मेरे : देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं जन नींच परिवारा। कहकर आत्मनिवेदन करने पर सरकार ने : कहेउ सत्य सबु सखा सुजाना। कहकर स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं आतिथ्य भी स्वीकार किया। तब से तो मैं भुवन का भूषण हो गया। सब लोग मेरी ऐसी चाह करने लगे जैसी आभूषण की चाह करते हैं। अर्थात् अब मेरे साथ से लोग अपने को कृतकृत्य मानने लगे।

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाईं। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई ॥
कहि निषाद निज नामु सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी ॥२॥

अर्थ : प्रीति देखकर और सुन्दर विनय सुनकर फिर भरतजी के छोटे भाई मिले। मोठी वाणी से अपना नाम ले लेकर उसने सब रानियों का आदर से जोहार किया।

व्याख्या : भरतजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी तत्पश्चात् मिले। यहाँ बहोरि शब्द तत्पश्चात् के अर्थ में आया है। भरतजी के मिलने के बाद इन्हें कुछ देखने सुनने की आवश्यकता नहीं थी। पर भरतजी तो साक्षात् गुरु आज्ञा से मिले। शत्रुघ्नजी को कोई ऐसी आज्ञा नहीं थी। अतः शत्रुघ्नजी को देखने सुनने की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने निषादराज की प्रीति आँखों देखा। यथा : सकुच सनेह

मोद मन बाढ़ा । भरतहिं चितवत एकटक ठाढ़ा । और सुन्दर विनय जो ऊपर लिखी गयी हैं कानों से सुना । अतः उसे आदर का पात्र जानकर उससे मिले ।

तत्पश्चात् जिस भाँति मुनिजी को दण्डवत् दूर से अपना नाम सुनाकर किया था उसी भाँति सुन्दर वाणी से अपना नाम सुना सुनाकर सब रानियों का आदर से जोहार किया । जोहार : कर्मणा । सादर : मनसा । निज नाम सुबानी : वचसा ।

जानि लखन सम देहिं असीसा । जिअहु सुखी सय लाख बरीसा ॥
निरखि निषाद नगर नर नारी । भए सुखी जनु लखनु निहारी ॥३॥

अर्थ : लक्ष्मण के समान जानकर रानियाँ आशीर्वाद दे रही हैं कि तुम सौ लाख बरस तक जीओ और सुखी रहो । निषादराज को देखकर नगर नर नारी ऐसे सुखी हुए मानो लक्ष्मण को देख पाया हो ।

व्याख्या : संसार रानियों को जोहार करता है । पर रानियाँ सबको आशीर्वाद इस भाँति देती नहीं फिरतीं । अपने अति प्यारे पुत्रादि को ही आशीर्वाद देती हैं । पर निषादराज को सब ओर से आशीर्वाद इस भाँति दे रही हैं जैसे लक्ष्मणजी के प्रणाम करने पर माताएँ जिन शब्दों में आशीर्वाद देती थीं । सुखी होने का आशीर्वाद देती थीं और दीर्घायु का आशीर्वाद देती थीं । सौ लाख वर्ष यहाँ चिरकाल का बोधक है अथवा कीर्तियुक्त जीवन व्यतीत करने का आशीर्वाद देती थीं । यथा : कीर्तियस्य स जीवति ।

नगर नर नारी ने भी वैसा ही मान लिया । क्योंकि भरतजी ने उसी भाव से उसका सत्कार किया था । लक्ष्मणजी : पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे थे । अतः प्रिय के दर्शन से जैसे सुखी होते थे वैसे हुए । इसका आदर भरतजी माताओं और प्रजावर्ग की ओर से लक्ष्मणजी का सा हो रहा है । क्योंकि इसकी भक्ति उसी प्रकार की है । यह भी लक्ष्मणजी के समान रामजी के लिए प्राण निछावर करने को प्रस्तुत हैं ।

कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू । भेटेउ रामभाइ भरि बाहू ॥
सुनि निषादु निज भाग बड़ाई । प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई ॥४॥

अर्थ : कहने लगे कि जीने का लाभ इसने पाया । रामजी के भाई ने इसे भुजा भरकर भेंटा । निषादराज अपने भाग्य की बड़ाई सुनकर प्रसन्नचित्त होकर सबको लिवा ले चला ।

व्याख्या : सब कहने लगे कि इसने जीने का लाभ प्राप्त कर लिया । क्योंकि रामजी के भाई इससे भुजा पसारकर मिले । यदि रामभद्र पाठ माना जाय तो अर्थ करना होगा कि रामजी ने इसको परिष्वङ्ग दिया : रामभद्र का प्रयोग रामजी के लिए कवि ने कहीं किया नहीं । लक्ष्मणजी ने जीवन लाभ पाया है । यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा । सब तजि राम चरन मन लावा । भरतजी लक्ष्मण के समान

मानकर मिले। अतः सत्र इसे लक्ष्मण के समान मान रहे हैं। इस प्रकार का मतैक्य अयोध्या में चलता है।

अयोध्यावासियों के मुख से अपनी बड़ाई सुनकर निषादराज प्रमुदित हैं। क्योंकि अयोध्यावासी सरकार को अति प्रिय हैं। यथा : अति प्रिय मोहि इहाँ के वासी। जब रामजी के प्रिय किसी के भाग्य की बड़ाई करें तभी उसे भाग्यवान् समझना चाहिए। सर्व साधारण की बड़ाई का कोई मूल्य नहीं है। भलो कहै बिनु जाने ही बिनु जाने अपवाद। सो नर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख बिषाद।

दो. सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन, बास बनाएन्हि जाइ ॥१९६॥

अर्थ : सब सेवकों को इशारा किया। वे स्वामी का रुख पाकर चले। उन्होंने घरों में वृक्षों के नीचे तालाबों पर बगीचों और जंगलों में सबके ठहरने के लिए डेरे सँवारे।

व्याख्या : निषादराज ने कहा था : देखि मित्र अरि मध्यगति तब तस करिहौं आइ। सो सबको लिवाकर निषादराज आगे आगे आ रहे हैं। इससे मित्र होना स्पष्ट हो गया और यह भी स्पष्ट हो गया कि निषादराज इनका आतिथ्य सत्कार करेंगे। अब्र इशारा पाकर उनके रुख से समझ गये कि टिकाने का बन्दोबस्त होना चाहिए। अतः घाट को छोड़ा औ र टिकाने की व्यवस्था में लग गये। सेना बड़ी है। सबके टिकाने का काम साधारण नहीं है। अतः प्रधान लोगों के लिए घर में दूसरों को गाँव में औरों को पेड़ तले सैनिकों को ग्राम के बाहर सर बाग वन में डेरे सँवारे।

सृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेह बस अंग सिथिल तब ॥
सोहत दिए निषादहिं लागू। जनु धनु धरे बिनय अनुरागू ॥१॥

अर्थ : जब भरतजी ने शृङ्गवेरपुर को देखा तब प्रेमवश अङ्ग ढीले पड़ गये। निषादराज को टेके हुए ऐसे शोभित हैं मानो विनय और अनुराग ने धनुष धारण कर रक्खा हो।

व्याख्या : सरकार ने जब से अयोध्या से प्रस्थान किया तब से शृङ्गवेरपुर में ही फल मूल भोजन किया। यहीं सोये। यहीं जटा बनायी। यहीं से वन चले। यथा : सो जामिनि सिंगरौर गँवाई। अतः शृङ्गवेरपुर के देखने से सरकार की स्मृति अति अधिक रूप में हुई। स्नेह के वश हो गये। अपने वश में नहीं रह गये। अतः अङ्ग ढीलें पड़ गये।

ऐसो शिथिलता हुई कि सहारा लेने की आवश्यकला हुई तो निषादराज का सहारा लिया। उसके हाथ में हाथ दिये चले जा रहे हैं। भरतजी मानो अनुराग की मूर्ति हैं और निषादराज इस समय विनय की मूर्ति हो गये। हाथ से हाथ मिलने की उपमा आकृति साम्य से धनुष के साथ दिया। विनय अनुराग का धनुष धारण

करना उनके उस समय प्रबल होने का द्योतक है। यहाँ भरतजी की उपमा अनुराग से और निषाद की उपमा विनय से दिया। तनु धरे पाठ मानने से यह अर्थ करना पड़ेगा कि मानो विनय और अनुराग ने शरीर धारण कर लिया है।

एहि बिधि भरत सेनु सबु संगा। दीख जाइ जग पावनि गंगा॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू॥२॥

अर्थ : इस विधि से भरत ने सेना के साथ जाकर जगत् को पवित्र करनेवाली गङ्गाजी का दर्शन किया। रामघाट को प्रणाम किया। मन ऐसा मग्न हुआ मानो रामजी मिल गये।

व्याख्या : भरतजी निषादराज से मिलने के बाद फिर रथ पर सवार नहीं हुए और भरतजी के पैदल चलने से सारा समाज पैदल चला। तीर्थ के निकट सवारी पर चलना निषिद्ध है। यथा : गिरिवर दीख जनक नृप जबहीं। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबहीं। अतः सब पैदल चले। पहिले श्रृङ्गवेरपुर दिखायी पड़ा और उसके बाद ही गङ्गाजी दिखायी पड़ीं। जगपावनि कहने से सर्वतीर्थमयी गङ्गा कहा। यथा : समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः।

अब जहाँ सरकार ने स्नान किया था उसका नाम रामघाट पड़ गया था। यथा : उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरष बिसेखी। वह स्थल रामजी से अधिक पवित्र हो गया। विरह दशा में प्रेमास्पद के अङ्ग से लगी हुई वस्तु भी उसी की भाँति प्रिय मालूम होती है। अतः भरतजी का मन मगन हो गया। मानो राम ही मिल गये। पहिले सवारी से उतरना कहा। तत्पश्चात् दर्शन कहा : अब सप्रेम प्रणाम कहते हैं।

करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी॥
करि मज्जनु माँगहिं कर जोरी। रामचंद्र पद प्रीति न थोरी॥३॥

अर्थ : नगर के नर नारी ब्रह्ममय वारि का दर्शन करके हर्षित होकर प्रणाम करते हैं। स्नान करके हाथ जोड़कर माँगते हैं कि रामचन्द्र के चरणों में अधिक प्रेम हो।

व्याख्या : भरतजी का प्रणाम कहकर अब पुरवासियों का प्रणाम कहते हैं कि नगर के नर और नारी सभी प्रणाम कर रहे हैं। भावना यह है कि गङ्गा जल जल नहीं है। स्वयं ब्रह्म ही द्रवीभूत होकर जल रूप से विद्यमान हैं। अतः गङ्गा का दर्शन ब्रह्मसाक्षात्कार है और स्पर्श ब्रह्मस्पर्श है। गोलोक में भगवान् वासुदेव स्वयं द्रवीभूत होकर गङ्गारूप में बह चले। ऐसी कथा गर्ग संहिता में है। इसीलिए गङ्गाजी की उपासना नीराकार ब्रह्म की उपासना है।

दर्शन और प्रणाम के बाद मज्जन का विधान है। अतः सब स्नान करने लगे। स्नान के बाद गङ्गाजी से प्रार्थना करते हैं। गङ्गाजी मनोरथ पूर्ण करती हैं। ऐसा विश्वास सभी गङ्गातटवासियों को है। सभी मङ्गलकार्य सम्पन्न होने पर गङ्गा

पुजैया होती है। अवधवासियों को एक मात्र यही मनोरथ है कि रामचन्द्र के चरणों में अनुराग बढ़े। जितना अनुराग है उतने को वे थोड़ा मानते हैं।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू ॥
जोरि पानि बर माँगउ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू ॥४॥

अर्थ : भरतजी ने कहा हे सुरसरि ! तुम्हारी रेणु सब कामनाओं को देनेवाली कामधेनु है। हाथ जोड़कर यही वर माँगता हूँ कि सीता राम के पद में सहज स्नेह हो।

व्याख्या : सबने वारि की प्रशंसा की और गङ्गाजी से वरदान माँगा। भरतजी रेणु की प्रशंसा करते हैं। जो दिन रात जल से सम्बद्ध है। कहते हैं कि गङ्गाजी की रेणु सब सुख देनेवाली है और सेवक के लिए तो कामधेनु ही है। जो चाहे वह ले लो। अतः भरतजी कहते हैं कि तब आपकी क्या प्रशंसा की जाय। मैं हाथ जोड़कर यह वर माँगता हूँ कि सीताराम के चरणों में सहज अनुराग हो। जो किसी प्रकार भङ्ग न हो। इसी का विस्तार प्रयागराज से वर माँगने के प्रसङ्ग में है। यथा : जलद जनम भर सुरति बिसारउ। जाचत जल पवि पाहन डारउ। चातक रटनि घटे घटि जाई। बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई। यही सहज प्रेम है।

दो. एहि बिधि मज्जनु भरत करि, गुरु अनुसासन पाइ।
मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लवाइ ॥१९७॥

अर्थ : इस विधि से गुरुजी की आज्ञा पाकर स्नान करके और यह जानकर कि सब माताएँ स्नान कर चुकीं सबको डेरा पर लिवा ले चले।

व्याख्या : भरतजी ने गुरुजी की आज्ञा लेकर तब स्नान किया। क्योंकि पुण्यकार्य की शोभा बिना गुरुपूजन के होती नहीं। यथा : सुकृत संभुतन बिमल बिभूती। भरतजी का स्नान सबके पीछे है। देख लिया कि माता लोग भी स्नान कर चुकीं। तब सबको डेरे पर लिवा ले चले।

जह तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा ॥
सुर सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहिं गे दोउ भाई ॥१॥

अर्थ : लोगों ने जहाँ तहाँ डेरा डाल दिया। भरतजी ने सबकी खोज खबर ली। तत्पश्चात् देवार्चन किया। तब आज्ञा पाकर माँ के पास गये।

व्याख्या : निषादराज के सेवकों ने तब तक घर तरुतर सर बाग और वन में डेरा के योग्य स्थान बना दिया। निषादराज की सम्मति के अनुसार सब लोगों ने डेरा डाल दिया। अब भरतजी की सावधानी कहते हैं कि सबकी खोज खबर ली। कौन कहाँ ठहरा हुआ है ? किसे क्या चाहिए ? यही खोज खबर लेना है। पहिला काम प्रजा संरक्षण है। सुर सेवा उसके बाद का काम है।

राजा के लिए प्रजा का रञ्जन ही सबसे बड़ी ईश्वर पूजा है। उससे समय

बचे तो देवार्चन भी करें। अतः भरतजी ने प्रजा की व्यवस्था करके तब देवार्चन किया। राजाओं में आज भी माँ के पास जाने में आज्ञा की आवश्यकता रहती है। अतः दासियों द्वारा आज्ञा पाकर तब कौसल्या के पास दोनों भाई गये।

चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननी सकल भरतु सनमानी ॥
भाइहिं सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई ॥२॥

अर्थ : भरतजी ने सब माताओं के पैर दबाकर और मृदु वाणी कहकर उनका सम्मान किया। माता कैकेयी की सेवा भाई को सौंपकर स्वयं निषादराज को बुला लिया।

व्याख्या : आज माताएँ पैदल चलीं हैं। अतः भरतजी सबके पैर दबाते हैं और मदु वाणी कहते हैं। माँ ! आज आपको बड़ा कष्ट हुआ। पर तीर्थाटन में पैदल चलने का ही माहात्म्य है। इत्यादि बातें भरतजी ने कहीं।

कैकेयी का त्याग किया है। यथा : तज्यौ पिता प्रहलाद विभीषन बंधु भरत महतारी। अतः उसके पास स्वयं सेवा के लिए नहीं गये। पर यह नहीं कि सेवा में त्रुटि होने पावे। इसलिए भाई शत्रुघ्न को उनकी सेवा का भार सौंपा। इस भाँति सब व्यवस्था करके तब अपने दुःख सुख की ओर दत्तचित्त हुए। अपनी जलन को कम करने के लिए निषादराज को बुला लिया।

चले सखा कर सों करजोरे। सिथिल सरीरु सनेहु न थोरे ॥
पूँछत सखहिं सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ ॥३॥

अर्थ : सखा के हाथ से हाथ मिलाये हुए चले। शरीर शिथिल हो रहा था। क्योंकि स्नेह थोड़ा न था। सखा से पूछते हैं कि वह स्थान बतलाओ। मैं अपने नेत्र और मन की जलन को कुछ शीतल कर सकूँ।

व्याख्या : सरकार ने निषादराज़ से सखा का नाता मान रक्खा है। अतः भरतजी भी सखा मान रहे हैं। उसके हाथ से हाथ मिलाये चले। जहाँ चले वहाँ का स्मरण आते ही फिर पहिले की भाँति शरीर शिथिल हो चला। अतः उसी भाँति सखा का सहारा लिए हुए चले। यथा : राम सखा कर दीन्हें लागू।

वह स्थल देखना चाहते हैं जिसका वर्णन आगे करेंगे। अतः सखा से पूछते हैं। क्योंकि उसी ने सरकार का आतिथ्य सत्कार किया है। प्रयोजन यह है कि नयन और मन विरहानल से सन्तप्त हो रहे हैं। यथा : देखे बिनु रघुबीर पद जिय की जरनि न जाय। सो जलन तो सरकार के दर्शन से ही मिटेगी। पर जिस स्थान से सरकार का सम्बन्ध वनगमन के समय हुआ है उसके दर्शन से भी कुछ शान्ति होगी।

जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए ॥
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लइ गयेउ निषादू ॥४॥

अर्थ : जहाँ सीता राम और लक्ष्मण रात को सोये थे। इतना कहते ही

नयन गोलक में जल भर आया। भरतजी के वचन सुनकर निषाद को बड़ा दुःख हुआ। तुरन्त उन्हें वहाँ ले गया।

व्याख्या : अब भरतजी निषादराज से कहते हैं कि जहाँ श्री सीता रामजी तथा लखनलाल रात को सोये थे उस विश्राम स्थल का मैं दर्शन करना चाहता हूँ। पृथ्वी पर ही सोये होंगे। यह बात चित्त पर चढ़ते ही आँखों में आँसू डबडबा आये। सरकार को सोते देखकर परिजन के साथ निषाद विकल हो गया था। यथा : सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ सपरिजन बिकल बिषादू। अतः भरतजी को उसका ध्यान बँधते ही विषण्ण होना प्राप्त ही था।

जब सरकार को सोते देखकर निषाद विकल हुआ तो लखनलाल ने उसे समझाया। लक्ष्मण गीता का उपदेश किया। उसका विषाद जाता रहा। दूसरों को विषादत्याग का उपदेश देने लगा था। यथा : अब सुमंत परिहरहुँ बिषादू। सो भरतजी का वचन सुनकर उसे फिर विषाद हो गया। वह तुरन्त भरतजी को वहाँ ले गया। जिसमें जितनी जल्दी इनका ताप कम हो उतना ही अच्छा है।

दो. जहँ सिंसुपा पुनीत तरु, रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हेउ दंड प्रनामु ॥१९८॥

अर्थ : जिस अशोकवृक्ष के नीचे रामजी ने विश्राम किया था वहाँ भरतजी ने अत्यन्त आदर और स्नेह के साथ दण्डवत् प्रणाम किया।

व्याख्या : वह स्थल तीर्थंपूत हो गया था। यथा : जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कल्पतरु तासु बड़ाई। और उस वृक्ष के नीचे तो सरकार सोये थे। उसके तीर्थ होने में सन्देह ही क्या ? जिसकी कृपा से मनुष्य विश्राम का पात्र होता है। यथा : जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ। पायेउ परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ। उस महाप्रभु ने जिस स्थल में विश्राम पाया उसकी क्या महिमा कही जाय। इसलिए भरतजी ने उस स्थल को अत्यन्त स्नेह और आदर के साथ दण्डवत् प्रणाम किया।

कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई ॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥१॥

अर्थ : कुश की सुन्दर चटाई को देखकर जाकर के प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की। चरण की रेखाओं के रज को आँखों में लगाया। प्रीति की अधिकता कहते नहीं बनती।

व्याख्या : सरकार के शृंगवेरपुर आने के समय कह चुके हैं : गुह सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सोहाई। सो वह साथरी आज तक जैसी की तैसी पड़ी है। जनसंबाधवर्जित देश में वस्तु ज्यों की त्यों पड़ी रह जाती हैं। अतः भरतजी ने उस सुन्दर साथरी का दर्शन किया। देखते ही भरतजी समझ गये कि

यही सरकार की शय्या रही है। अतः सन्निकट जाकर प्रणामपूर्वक प्रदक्षिणा की जिस भाँति देवताओं की प्रदक्षिणा की जाती है।

उसी साथरी के निकट चरण चिह्न थे। ध्वज कुलिश अङ्कुश कञ्ज के स्पष्ट चिह्न को देखकर भरतजी पहिचान गये कि ये सरकार के चरण चिह्न हैं। चिह्न गम्भीर रेखा के हैं। अतः अब तक स्पष्ट बने हैं। भरतजी सरकार के चरण चिह्न पहिचानते हैं। जगदम्बा जानकीजी के चरण चिह्न नहीं पहचानते। क्योंकि : पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पद अवनि कठोरा। पूज्य चरणों के चिह्न भी पूज्य हैं और प्रिय हैं। अतः उनकी धूलियों को आँखों में लगाते हैं आँखों की जलन कम करने के लिए। यथा : नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ। उसके स्पर्श से प्रीति ऐसी बढ़ी कि कवि वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं।

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे ॥
सजल बिलोचन हृदय गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी ॥२॥

अर्थ : दो चार सोने के घुँघुरू अथवा सलमा सितारा देखे। सीताजी के समान समझकर सिर पर रख लिया। आँखों में आँसू और हृदय में ग्लानि आयी। सखा से सुन्दर वाणी बोले।

व्याख्या : रामजी और लक्ष्मणजी तो मुनि वेष में थे। परन्तु भगवती वसिष्ठजी की आज्ञा से राजवेष में ही थी। उनके साथरी के निकट दो चार सोने के घुँघुरू गिरे हुए थे। अतः भरतजी ने तुरन्त जान लिया कि ये भगवती के हैं। अतः उन्हें सीताजी के समान जानकर उन्हें सिर पर रख लिया। उनका पृथ्वी पर पड़ा रहना सहन न कर सके। भरतजी को शृङ्गवेरपुर में लक्ष्मण राम और जानकीजी तीनों व्यक्तियों से मिखने का सुख हुआ। रामजी से मिलने का सुख यथा : रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भे मनु मगनु मिले जनु रामू। लक्ष्मणजी से मिलने का सुख यथा : करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ। मनहु लखन सन भेंट भइ प्रीति न हृदय समाइ। सीताजी से मिलने का सुख यथा : राखे सीस सीय सम लेखे।

अब भरतजी की दशा कहते हैं। तन की दशा : सजल बिलोचन। मन की दशा : हृदय गलानी। वचन की दशा : कहत सखा सन बचन सुबानी। घुँघुरुओं ने सीताजी के भी साथरी की याद दिला दी। सरकार के साथरी शयन के दुःख से भी अधिक दुःख सीताजी के साथरी शयन से भरतजी को हुआ। अतः सखा से बोले।

श्रीहत सीय बिरह दुतिहीना। जथा अवध नर नारि बिलीना ॥
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोग जोग जग जेही ॥३॥

अर्थ : ये घुँघुरू भी सीताजी के विरह से ऐसे कान्ति हीन हो गये हैं जिस भाँति रामजी के विरह से अवधवासी निस्तेज हो गये हैं। इनके पिता महाराज जनक की उपमा किससे दूँ। संसार में योग और भोग दोनों जिनकी मुट्ठी में हैं।

व्याख्या : उन कनकबिन्दु के उठाने के समय भरतजी कहते हैं कि ये श्रीहत हो गये हैं। इनकी श्री तो तब थी जब कि ये जगदम्बा के शरीर के साथ थे। मानो इन्हें भी सीताजी के विरह का दुःख है। पहिले ये विनती भी कर चुके हैं। यथा : नूपुर मधुर मुखर कबि बरनी। मनहु प्रेमबस बिनती करहीं। हमहिं सीय पद जनि परिहरहीं। अब उदाहरण देते हैं कि जैसे रामजी के विरह से अवधवासी श्रीहीन हो गये हैं। भाव यह कि रामविरह से अवधवासी श्रीहीन और सीताजी के विरह से कनकबिन्दु श्रीहीन हैं। यहाँ विलीन और दुतिहीन शब्द समानार्थक है।

स्त्रियों की महिमा चार प्रकार से होती है : १. पिता के प्रभाव से २. श्वसुर की महिमा से ३. पति के उत्कर्ष से और ४. अपने गुणों से। अतः पहिले पिता का वर्णन भरतजी करते हैं। महाराज तो अनेक हैं। पर जनकजी का जोड़ी कोई नहीं। जहाँ योग है वहाँ भोग नहीं। जहाँ भोग है वहाँ योग नहीं है। योग भोग की युगपत् स्थिति ईश्वरकोटि में ही देखी जाती है। जीवकोटि में केवल जनकजी ही ऐसे हैं जहाँ दोनों दिखायी पड़ते हैं।

ससुर भानुकुल भानु भूआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू ॥
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं। जे बड़ होत सो राम बड़ाईं ॥४॥

अर्थ : जिसके श्वसुर सूर्यकुल के सूर्य हैं जिससे अमरावती के राजा : इन्द्र भी ईर्ष्या करते हैं। जिनके प्राणनाथ स्वामी रामजी हैं। जो कोई बड़ा होता है वह उन्हीं की बड़ाई से होता है।

व्याख्या : पिता का वर्णन करके श्वसुर का वर्णन करते हैं कि एक तो सूर्यकुल बड़ा। उनमें भी वे सूर्य। तिस पर राजा। तेज और ऐश्वर्य दोनों से सम्पन्न। यथा : अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई। भाव यह कि जो सुख इन्द्र को अमरावती में नहीं वह सुख महाराज दशरथ अवध में कर रहे हैं। इसलिए इन्द्र लज्जित हैं। सांसारिक सुख की पराकाष्ठा इन्द्र सुख ही है। सो भी महाराज दशरथ के भोग के जोड़ का नहीं। अवधवासियों को सुरदुर्लभ सुख है। यथा : सुरदुर्लभ सुख सदन बिहाई। ऐसे महाराज दशरथ की पुत्रवधू सीताजी हैं।

श्वसुर का वर्णन करके पति का वर्णन करते हैं कि वे तो रघुकुल के नाथ हैं। तिस पर गोसाईं हैं। अर्थात् हृषीकेश हैं : हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि अति भरोस जिअँ मोरे। तुलसिदास यह जीव सृंखला छुटिहि तुम्हारेहि छोरे। अर्थात् रामजी स्वयं : बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव हैं। मुख्य बड़ाई उन्हीं में है। दूसरे तो उनकी बड़ाई पाकर बड़े होते हैं। बिधिहि बिधिता हरिहि हरिता हरहि हरता जिन दई। सो जानकी पति मधुर मूरति मोद मय मंगल मई।

दो. पति देवता सुतीय मनि, सीय साँथरी देखि।
बिहरत हृदय न हहरि हर, पबि तें कठिन बिसेखि ॥१९९॥

अर्थ : पतिव्रता भली स्त्रियों में मणि सीताजी की कुशशय्या देखकर मेरा हृदय हे हर ! फट नहीं जाता। यह वज्र से भी अधिक कठोर है।

व्याख्या : अब स्वयं भगवती के गुण कहते हैं कि ये तो साक्षात् पार्वती सी पतिव्रता हैं। यथा : पति देवता सुतीय मनि मातु प्रथम तव रेख। यहाँ : पति देवता सुतीय मणि कहकर वही बात कही। उक्त विशेषण से पतिप्रिया भी कहा। यथा : पारवती सम पतिप्रिय होहूँ। जिनमें ऐसे अलौकिक गुण हैं उन्हें साथरी पर सोना पड़ा और यह दुःख उन्हें मेरे कारण हुआ। भरतजी शङ्कर को स्मरण करके कहते हैं कि मेरे हृदय को तो फट जाना चाहता था। शङ्कर के स्मरण का भाव यह है कि ये दूसरे के दुःख दूर करने के लिए विषपान करनेवाले हैं। मेरा हृदय वज्र से भी कठिन है जो अब भी नहीं फटता। भावार्थ यह कि हर इस दुःख को हरण करें।

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने ॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रानपिआरे ॥१॥

अर्थ : छोटे लोने लखनलाल लाड़ प्यार के योग्य हैं। ऐसे भाई न हुए, न हैं, न होनेवाले हैं। पुरवासियों को प्रिय माता पिता के दुलारे और रामजानकी को तो प्राण से प्यारे हैं।

व्याख्या : लक्ष्मणजी की साथरी नहीं देखी। इससे भरतजी समझ गये कि लक्ष्मणजी नहीं सोये। सरकार का पहरा देते थे। अतः कहते हैं कि लक्ष्मणजी पहरा देने योग्य नहीं हैं। लाड़ प्यार के योग्य हैं। छोटे भाई हैं। पुत्र के समान हैं। सुन्दर सलोने हैं। पहरा इन्हें शोभा भी नहीं देता। इतिहास पुराण में भी ऐसे भाई सुनने को नहीं मिले जो राज्य छोड़कर भाई के साथ वन चला जाय। इस समय भी लक्ष्मण से भाई कहाँ हैं और भविष्य में भी सम्भावना नहीं। क्योंकि द्वापर में में तो सत्त्वगुण स्वल्प होता है। कलियुग में तो नाम मात्र शेष रह जाता है। उनमें ऐसे भाइयों के होने की कौन सी आशा है ?

लक्ष्मणजी में गुण ही ऐसे हैं कि सब कोई इनका सम्मान करता है। भाईपन जो इनका है वह तो आँख के सामने है। प्रजापालक भी ये ऐसे हैं कि पुरजन को प्रिय है। मातृ पितृ भक्ति ऐसी है कि पितु मातु दुलारे हैं। अर्थात् सभी लखनलाल का मुँह जोहते हैं। रामजानकी के तो परम प्रिय हैं। भाव यह कि जन्म से इनकी लालना सब ओर से होती आयी है। इन्हें कभी कष्ट का सामना ही नहीं पड़ा।

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती ॥२॥

अर्थ : मूर्ति कोमल है। स्वभाव सुकुमार है। गरम हवा कभी शरीर में लगी नहीं। वे वन में सब भाँति विपत्ति सहते हैं। इस मेरी छाती ने कोटि वज्रों का निरादर किया।

व्याख्या : जैसे शरीर सुकुमार होने से शीतोष्ण सहने में असमर्थ हैं उसी भाँति सुकुमार स्वभाव होने से किसी की बात सह नहीं सकते। जन्म से ऐसे दुलार में पले हैं कि गरम हवा शरीर में कभी लगी नहीं। इस गरमी में क्या वह अयोध्या में घर के बाहर निकलने पाते।

आज वे वन में जहाँ गरमी से बचने के लिए कोई त्राण नहीं है और भयानक लू बहा करती है वहाँ सब प्रकार की विपत्ति सहन कर रहे हैं और कहाँ तक कहें सोते भी नहीं। रात दिन पहरा दे रहे हैं : इससे स्पष्ट है कि यह ज्येष्ठ का समय है और यह सब मेरे कारण हो रहा है। अतः मेरी छाती फट जानी चाहिए। पर वह नहीं फटती। उसके सामने कोटिवज्र भी कुछ नहीं है।

राम जनमि जगु कीन्हं उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर ॥
पुरजन परिजन गुर पितु माता। राम सुभाउ सबहि सुखदाता ॥३॥

अर्थ : रामजी ने जन्म लेकर सारे जगत् को उज्ज्वल कर दिया। वे रूप शील सुख सब गुणों की खानि है। पुरवासी कुटुम्बी गुरु पिता और माता सभी को राम का स्वभाव सुख देनेवाला है।

व्याख्या : पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख है। सो रामजी सा पुण्य किसका हो सकता है जिसके जन्म से ही संसार में उजेला फैल गया। यथा : भुवन कोटि कल्यान कंद जायो पूत कौसिल्या रानी। चारों भाई रूप शील और गुण के धाम हैं। उनमें भी रामजी अधिक सुख सागर हैं। यथा : चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। यहाँ सुख सागर के गुणाधिक्य का वर्णन करते हुए भरतजी कहते हैं रामजी का स्वभाव ही ऐसा पुण्यमय है कि उससे प्रजा कुटुम्बी गुरु पिता और माता को सुख उपजता है। यथा : अस सुभाउ कहुँ सुनौं न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं।

बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ॥
सारद कोटि कोटि सत सेखा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा ॥४॥

अर्थ : शत्रु भी रामजी की बड़ाई करते हैं। उनका बोलना मिलना और विनय मन को हरण कर लेता है। कोटि कोटि शत शेष आदर के साथ प्रभु के गुणगान की लेखा नहीं कर सकते।

व्याख्या : स्वभाव का सौष्ठव कहाँ तक कहा जाय। इतने से ही समझ लेना चाहिए कि वैरी भी रामजी की बड़ाई करते हैं। क्योंकि रामजी का स्वभाव उनके भी प्रतिकूल नहीं पड़ता। यथा : जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। रामजी के बोलने मिलने और विनय से उनका भी मन हरण हो जाता है। यहाँ वैरी से कुल वैरी अभिप्रेत है। महाराज चक्रवर्तीजी कहते हैं : सेवक सचिव सकल पुरवासो। जे हमरे अरि मित्र उदासी। सबहि राम प्रिय जेहिं बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही। नियम यही है कि वैरी सदा निन्दा ही करते हैं।

क्योंकि वे गुण को नहीं देख सकते। यथा : बैर अन्ध : प्रेमहि न प्रबोधू। पर सरकार के गुण ऐसे हैं कि अन्ध भी बिना अनुभव किये नहीं रह सकता।

यद्यपि प्राचीन पाठ सादर सेष है। परन्तु ठीक पाठ सारद सेष है। लेखक के प्रमाद से सारद के स्थान पर सादर लिख गया। शारदा वाग्देवता हैं। जितना वाग्व्यवहार है सो उन्हीं की कृपा से चालू है। अतः उनसे बढ़कर लेखा करनेवाला स्वर्गादि लोकों में कौन है और अति बुद्धिमान् शेषजी को सहस्र शीष हैं और प्रत्येक मुख में दो दो जिह्वा हैं। अतः वर्णन की इससे अधिक सामग्री किसी के पास हो नहीं सकती। ये पाताल के वक्ता हैं। सो दोनों लोकों के प्रधानवक्ता कोटि संख्या में प्रभु के गुणों की लेखा करना चाहें तो कर नहीं सकते। क्योंकि सरकार के गुणों का अन्त ही नहीं। जलसीकर महि रज गनि जाही। रघुपति गुन नहिं बरनि सिराही।

दो. सुख सरूप रघुबंस मनि, मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डारि महि, बिधि गति अति बलवान ॥२००॥

अर्थ : रघुकुलमणि रामजी सुखस्वरूप ही हैं। मङ्गल और आनन्द के निधान हैं। वे पृथ्वी पर कुश बिछाकर सोते हैं। तो विधाता की गति अति बलवती है।

व्याख्या : श्रीरामजी तो सुख के स्वरूप ही हैं। मङ्गल और मोद के निधान हैं। यथा : जो आनंद सिंधु सुख रासी। सीकरते त्रैलोक्य सुपासी। मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी। अर्थात् आनन्दमङ्गल के स्रोत हैं। भूपति भवनु सुभाय सुहावा। सुरपति सदन न पटतर आवा। मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे। सुभग सुरभि पयफेन समाना। कोमल कलित सुपेती नाना। पलंग मंजु मनि दीप जहँ सब बिधि सकल सुपास। ऐसे सुख सामग्री के साथ शयन करनेवाले वे कुशा बिछाकर पृथ्वी पर सोते हैं। तो यहाँ यही कहना पड़ता है कि विधि की गति ही बड़ी बलवती है। जो अचिन्त्य कार्य बिना कारण के कर डालती है।

राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवन तरु जिमि जोगवइ राऊ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती ॥१॥

अर्थ : रामजी ने कभी कान से भी दुःख नहीं सुना। चक्रवर्तीजी जीवनवृक्ष की भाँति रक्षा करते थे। जैसे पलक आँखों की और सर्प मणि की रक्षा करता है। उसी भाँति माताएँ रक्षा करती थीं।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी की आज्ञा थी कि कुमार रामभद्र बड़ा करुणाकर तथा वैराग्यवान् हैं। उसके पास कोई दुःख का समाचार न पहुँचने पावे। दुःख के दृश्य देखने की बात तो दूर है। इसलिए रामजी ने कभी कान से भी दुःख नहीं सुना। ऐसी जनश्रुति है कि किसी किसी का प्राण किसी वृक्ष में बसता है। उसके हरे रहने से वह स्वस्थ रहता है। मुरझाने से रुग्ण होता है और सूखने से मर जाता

है। एतद्विषयिणी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। अतः प्राणपन से उस जीवन तरु की लोग रक्षा करते थे। क्योंकि उनका जीवनाधार वह वृक्ष था। महाराज चक्रवर्ती के जीवनवृक्ष रामजी थे। उसी भाँति वे उनकी रक्षा करते थे। यथा : सब सुत मोहिं प्रिय प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनै गोसाईं।

केवल कौसल्याजी ही नहीं बल्कि सब माताएँ दिन रात बड़ी सावधानी और प्रेम से रक्षा करती थीं। जैसे पलक गोलक की रक्षा दिन रात करता है। कोई आघात आ जाने पर अपने ऊपर उसे ले लेता है। इतने से काम न चला। इसलिए फणिमणि से उपमा दी। क्योंकि फणि : सर्प मणि के पास किसी गैर को आने नहीं देता और बलप्रदर्शन करनेवाले को यमलोक पहुँचा देता है। इसी भाँति जननी भी रामजी की रक्षा करती थीं। अथवा जागृतावस्था की उपमा पलक नयन से है और सुषुप्तावस्था की उपमा फणिमनि से है। अथवा रामजी की रक्षा की उपमा पलक नयन से है और जानकीजी की रक्षा की उपमा फणिमणि से है। यथा : सुंदर बंधुन्ह सास लै सोई। फनिकन्ह जिमि निज मनि उर गोई।

ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी॥
धिग कैकेई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला॥२॥

अर्थ : वे अब पैदल जङ्गल में घूमते हैं और कन्द मूल फल और फूल खाते हैं। अमङ्गल की मूल कैकेयी को धिक्कार है जो अपने प्राणप्रियतम के प्रतिकूल हो गयी।

व्याख्या : राजमहल के बाहर आँख के ओट जाने देने में जिसके इतना कड़ा पहरा रहता था। सवारी की इतनी बड़ी व्यवस्था थी। दुःख का दृश्य जिसके सामने आने नहीं पाता था और न दुःख के समाचार सुनने पाते थे। वे रामजी अब जङ्गल में घूमते हैं। उरपहिं धीर गहन सुधिआएँ। और वहाँ भी पैदल घूमते हैं। यथा : बिनु पानहिन्ह पयादेहिं पाएँ। संकर साखि रहेहुँ एहि धाएँ। अन्न का अधिकार नहीं। नहीं तो जङ्गल को ही मङ्गल बना दिया जाता। सब कुछ यहीं प्रस्तुत कर दिया जाता। जिस भाँति राजा लोग मृगया के लिएँ जंगल में जाते हैं उसी भाँति वनवास मङ्गलमय हो जाता। आज सब कुछ रहते किसी को सुख देने का सामर्थ्य नहीं।

उस सामर्थ्य की हरण करनेवाली कैकेयी को धिक्कार है। यही अमङ्गल की मूल है। मेरे घर में अमङ्गल इसी के कारण हुआ। स्त्रियों के लिए पति ही सब कुछ है। यथा : मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई। जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहुते तांते। तनु धनु धाम धरनि पुर राजू। पति बिहीन सब सोक समाजू। भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू। सो यह अपने प्राणप्रियतम महाराज चक्रवर्ती के प्रतिकूल हो गयी। अथवा : जीव जन्तु असको जग माँहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाँहीं। भे अति

अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोहीं। सबको रामजी प्राणप्रियतम हैं। उनसे भी प्रतिकूल हो गयी।

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सबु उतपातु भयउ जेहि लागी ॥
कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाता। साँइ दोह मोहिं कीन्ह कुमाता ॥३॥

अर्थ : मुझ पापसिंधु भाग्य रहित को धिक्कार है। जिसके लिए ये सब उत्पात हुए। विधाता ने मुझे कुलकलङ्क पैदा किया और कुमाता ने मुझे स्वामिद्रोही कर दिया।

व्याख्या : कैकेयी भी प्राणप्रियतम के प्रतिकूल पुत्र स्नेह के कारण हुई। अतः भरतजी अपने को धिक्कार देते हैं। मैं पापसिन्धु हूँ। क्योंकि दुर्यश बिना पाप के नहीं होता। मैं ऐसा अपयश भाजन पैदा हुआ। अतः अघउदधि हूँ और अभागी हूँ। भाग्यदोष से यह सब उत्पात मेरे लिए हुआ। अथवा सब उत्पात का मूल कारण होने से मैं अभागी हूँ। भवभञ्जन श्रीरामजी के विमुख होने की परिस्थिति आ पड़ी। काई कुमति कैकयी केरी। परी जासु फल बिपति घनेरा। चक्रवर्तीजी का स्वर्गवास और राम वनवास संक्षेपतः ये ही दोनों विपत्तियाँ हैं। भरतजी राज्य मिलने पर अपने को अघउदधि और रामजी के वनवास से अपने को अभागी मानते हैं। अथवा माताओं के विधवापन का कारण मानते हुए अपने को अभागी कहते हैं। यथा : को त्रिभुवन मोहिं सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी। मोर जनम रघुबर बन लागी। व्यर्थ काह पछिताउँ अभागी।

भरतजी कहते हैं कि ब्रह्मा ने ही मुझे कुल का कलङ्क बनाकर सिरजा। क्योंकि मैं अपयश भाजन हुआ और प्रियजन द्रोही हुआ और स्वामिद्रोह तो मुझे कुमाता के प्रसाद से प्राप्त हुआ। कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति। जो अपने पुत्र को भगवद् द्रोही बनावे अपयश का भाजन बनावे वही कुमाता है।

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिअ कत बादि बिषादू ॥
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि। यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि ॥४॥

अर्थ : सुन करके प्रेम के साथ निषादराज समझाते हैं कि हे नाथ! आप व्यर्थ विषाद क्यों करते हैं। रामजी तुम्हें प्रिय हैं और रामजी को तुम प्रिय हो। इसमें वाम विधि का ही सच्चा : निखालिस दोष है।

व्याख्या : जब स्वामी को सेवक प्रिय है और सेवक स्वामी प्रिय है तब स्वामी द्रोही की बात कहाँ से आयी? यहाँ पर तो निष्केवल दोष वाम विधि का है और स्थलों पर तो कुछ करणा कुछ कर्म गति मिलकर ही कार्य होता है। यहाँ तो करणी कुछ भी नहीं केवल कर्मगति काम कर रही है।

प्रेमी को प्रेम से ही सब समझाया जाता है तब वह समझता है नहीं तो नहीं समझता। अतः भरतजी को निषादराज प्रेम से समझा रहे हैं। प्रेम का पंथ ही

ऐसा है। निषादराज भरतजी से कहते हैं कि आप का विषाद व्यर्थ है। न उसके लिए कोई कारण है और न फल ही है।

छं. बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्हीं बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहि प्रभु सादर सरहना रावरी॥
तुलसी न तुम सों राम प्रीतम कहत हौं सोहैं कियें।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिये धीरजु हियें॥

अर्थ : विधि वाम की करणी बड़ी कठिन है जिसने माता को पागल बना दिया। उस रात में प्रभु बार बार तुम्हारी सराहना करते थे। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामजी को तुमसे अधिक प्रियतम कोई नहीं है। मैं इस बात को शपथ लेकर कहता हूँ। परिणाम में मङ्गल जानकर अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिये।

व्याख्या : वाम विधि की करणी बड़ी कठिन होती है। वह स्वभाव ही पलट देती है। यथा : भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। माता ऐसी थी नहीं और न अब ऐसी है। बीच में ही अकस्मात् उसके स्वभाव में घोर परिवर्तन हो गया। जैसे कोई पागल हो जाता है। आप विचार कर देखिये।

कैकयी करी धौं चतुराई कौन।
राम लखन सिय बनहि पठाए पति पठए सुरभौन॥१॥
कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुनतन दौन।
पुरवासिन्ह के नयन नीर बिनु कबहुँ तो देखति हौन॥२॥
कौसल्या दिनरात बिसूरति बैठि मनही मन मौन।
तुलसी उचित न होइ रोइवो प्रान गए सँग जौन॥३॥

सुमति कुमति में परिवर्तित हो गयी। हिताहित परिज्ञान शून्य हो गयी : चरइ हरित तृन बलि पसु जैसे। अपने होश में कैकेयी ने कुछ नहीं किया। अतः मैं उनका कुछ दोष नहीं मानता। प्रभु के हृदय में भी कुछ नहीं है। वे आप पर सन्देह नहीं करते। जिस रात को यहाँ ठहरे थे। बार बार आपकी प्रशंसा करते थे। निषादराज भरतजी के आश्वासन के लिए शपथ लेते हैं कि रामजी को तुमसे अधिक प्रियतम कोई नहीं है। क्योंकि जब पहिले पहल साथरी पर सोये तो वह समय कटु कहने का था सो आप की प्रशंसा कर रहे थे। सरकार जहाँ जाते थे भरतलाल की भूरि भूरि प्रशंसा करते थे। जिसमें उनकी कीर्ति को कलङ्कपङ्क स्पर्श न कर सके।

इस समय तो अमङ्गल हो ही गया। पर परिणाम में मङ्गल होगा। यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्। जो सुख प्रारम्भ में विष की भाँति होता है। पर परिणाम उसका अमृत के समान होता है। वही सात्त्विक सुख है। वह आत्मबुद्धि के प्रसाद से प्राप्त होता है। अतः परिणाम में सात्त्विक सुख की प्राप्ति होगी। इस बात को मन में लाकर अधीर न होइये। हृदय में धैर्य को स्थान दीजिये।

दो. अंतरजामी रामु, सकुच सप्रेम कृपायतन ।
चलिअ करिअ बिश्रामु, एह बिचार दृढ़ आनि मन ॥२०१॥

अर्थ : रामजी अन्तर्यामी हैं। सङ्कोच प्रेम और कृपा के आयतन हैं। ऐसा विचार मन में दृढ़ करके चलिये। विश्राम कीजिये।

व्याख्या : निषादराज कहते हैं कि रामजी अन्तर्यामी हैं। उनसे कुछ छिपा नहीं है। यथा : तुमते कछु न छिपी करुनानिधि तुम हो अंतरयामी। भीतर की बात सब जानते हैं। तब निर्दोष को भय क्या ? तिस पर सङ्कोची स्वभाव है। यथा : कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची। रामजी कभी शील नहीं तोड़ेंगे। बात बनी बनायी समझिये। प्रेमी हैं। आप के सामना की देर है। प्रेम रोके न रुकेगा। कृपायतन हैं। आपको दुःखी देखकर कृपा करेंगे। इस भाँति चार कारण धैर्य धरने का देकर निषादराज कहते हैं कि बहुत देर हो गयी। आप चलकर विश्राम करिये। जो कारण मैंने दिये हैं। उन्हें आप भी जानते हैं। पर उन्हें दृढ़ रूप से मन में स्थान नहीं देते हैं इसलिए व्यर्थ विषाद कर रहे हैं।

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरंत रघुबीरा ॥
एह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी ॥१॥

अर्थ : सखा का वचन सुनकर हृदय में धैर्य धारण किया और रामजी को स्मरण करते डेरे पर चले। यह खबर पाकर अवध के नर नारी अत्यन्त आर्त होकर देखने चले।

व्याख्या : सखा का वचन सुनकर धैर्य धारण किया। समझते हैं कि यह अन्यथा नहीं कहेगा। सुत की प्रीति प्रतीत मीत की। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि प्रीति तो बेटे पर होती है। परन्तु विश्वास तो मित्र का ही होता है। सखा ने कहा : चलिअ करिअ विश्राम। अतः रघुवीर का स्मरण करते डेरे पर चले। भाव यह कि रघुवीर हैं। सब सङ्कटों के सामना करने में समर्थ हैं। सखा के कथनानुसार विचार को दृढ़ करने के लिए रघुवीर का स्मरण करते हैं।

जैसा श्रेष्ठ पुरुष आचरण करता है वैसा ही दूसरे भी आचरण करते हैं। वह जो प्रमाण करता है संसार उसी का अनुसरण करता है। खबर फैल गयी कि भरतजी शयनस्थान के दर्शन के लिए गये हैं। अब सब अयोध्यावासा शयनस्थान के दर्शन के लिए आर्त हो उठे कि भरतजी चले गये हम लोगों को नहीं ले गये। अथवा उनके भी नयन मन में जरनि है। उसे शीतल करने के लिए चले।

परदछिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा ॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं ॥२॥

अर्थ : प्रदक्षिणा करके प्रणाम करते हैं और कैकेयी को अत्यन्त दोष देते हैं। आँखों में आँसू बार बार आ जाता है और वाम विधि को दोष देते हैं।

व्याख्या : जिस भाँति भरतजी ने जाकर कुश साथरी की प्रदक्षिणा की थी और प्रणाम किया था उसी भाँति सारे अयोध्यावासी प्रदक्षिणा करके प्रणाम करते हैं। उन्हें भी साथरी देखकर विषाद होता है। अतः वे सब कैकेयी की निन्दा करते हैं कि यह सब अनर्थ केवल इसी के दोष से हुआ।

अत्यन्त दुःख से आँखों में जल भर आता है। सोचते हैं कि क्या घाटा रहा। जङ्गल में ही सब भोग की सामग्री जुट जाती। सब कुछ रहते कुछ करते नहीं बन रहा है। अतः वाम विधाता को दोष देते हैं। जिसके कारण कैकेयी के स्वभाव ने पलटा खाया। नहीं तो कैकेयी बड़ी शीलवती थी।

एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू ॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहिं। को कहि सकइ बिमोह बिषादहिं ॥३॥

अर्थ : कोई भरतजी की प्रशंसा करते हैं। कोई कहते हैं कि स्नेह का निर्वाह तो चक्रवर्तीजी ने किया। अपनी निन्दा और निषाद की सराहना करते हैं। विमोह के विषाद को कौन कह सकता है।

व्याख्या : कोई भरतजी के स्नेह की प्रशंसा करता है कि इन्हीं के प्रेम से रामजी के दर्शन की आशा है। अथवा इसलिए प्रशंसा करते हैं कि उनके कारण से साथरी का दर्शन हुआ। हम लोग तो सोच भी नहीं सकते थे। भरतजी का ऐसा प्रेम है कि सरकार के इस चिह्न को खोजकर निकाला। कोई चक्रवर्ती जी के स्नेह के निर्वाह की प्रशंसा करते हैं कि सत्य के पास में बँधकर यद्यपि रामजी को वन दिया पर शरीर का परित्याग करके स्नेह का भी भलीभाँति निर्वाह किया। यथा : नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई। वे लोग कहते हैं कि प्रेम का पन्थ ही ऐसा कठिन है कि निबह जाय तब जान पड़े कि प्रेमी हैं। सो राजा की निबह गयी और किसी से प्रेम निबाहते न बना। भरतजी भी धर्म से बँधे हैं। देखैं यह कैसे नेह का निर्वाह करते हैं।

अयोध्यावासी अपनी निन्दा करते हैं कि हम लोग सम्पत्ति के साथी हैं। निषादराज की प्रशंसा करते हैं कि यह विपत्ति का साथी है। जन्म से हमारा साथ था। सो हम में उतना प्रेम नहीं जितना निषादराज में है। बात फैल गयी कि कुटुम्ब के साथ मरने को तैयार था। हम लोग मरने को तैयार नहीं हुए। माधुर्य में विषाद बढ़ा। अतः बिमोह कहते हैं। साथरी देखने से अवधवासियों को करुणा उमड़ आयी। शोक और मोह ये ही दो संसारवृक्ष के बीज हैं। परन्तु ये ही भगवत्सम्बन्धी होने से कल्याण के हेतु हो गये।

एहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार गुदारा लागा ॥
गुरहिं सुनाव चढ़ाइ सोहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई ॥४॥
दंड चारि महँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहि सँभारा ॥५॥

अर्थ : इस भाँति रात भर सब लोग जागते रहे। सवेरा होते ही गुदारे की

नाव लग गयी। पहिले अच्छी और सुन्दर नाव पर गुरुजी को चढ़ाया। नयी नावों पर माताओं को चढ़ाया। चार घड़ी में सब पार हो गये। तब भरतजी उतरकर सबको सँभालने लगे।

व्याख्या : इस भाँति रोते गाते रात बीती। करुणा से किसी को नींद न आयी। केवल कैकेयी भरत चक्रवर्तीजी और निषादराज की ही चर्चा होती रही। उधर निषादराज का इन्तजाम है। सवेरा होते ही नावें आकर घाट पर लग गयीं। सुन्दर और मजबूत नाव पर पहिले गुरुजी को चढ़ाया। सभी मङ्गलयात्रा में गुरुजी की ही सवारी पहिले निकलती है : अरुंधती अरु अगिन समाजू। रथ चढ़ि चलत भये मुनिराजू। इसलिए एक नाव केवल गुरुजी के लिए है। माताओं को नयी नावों पर चढ़ाया जिसमें भीतर जल आने का भय न रहे। भरतजी सबके पीछे उतरे। सेना बड़ी थी इसलिए कई खेवा करना पड़ा। चार घड़ी में सब पार हो गये। टिकने के समय भी : भरत सोध सबही कर लीन्हा और उतरने पर भी : उतरि भरत तब सबहिं सँभारा।

दो. प्रात क्रिया करि मातु पद, बंदि गुरहि सिरु नाइ।
आगे किये निषाद गन, दीन्हेउ कटकु चलाइ ॥२०२॥

अर्थ : प्रातःकाल की क्रिया करके माता के चरणों की वन्दना करके गुरुजी को सिर नवाया और निषादगण को आगे करके सेना का कूच बोल दिया।

व्याख्या : उस पार उतरकर प्रातःकाल का कृत्य किया। तब माता की वन्दना पश्चात् गुरु की वन्दना की। आगे का रास्ता निषादगण का देखा है। अतः उन्हीं को आगे कर दिया और सेना चल पड़ी। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। ऐसा वेद की आज्ञा है। अतः माता का चरण वन्दन करके तब गुरुजी की वन्दना की।

कियेउ निषादनाथु अगुआई। मातु पालकी सकल चलाईं ॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन्ह सहित गवन गुर कीन्हा ॥१॥

अर्थ : निषादराज ने अगुआई किया : अर्थात् आगे आगे चले। माताओं की पालकियाँ उसके बाद चलायी गयीं। छोटे भाई को बुलाकर साथ में दिया। ब्राह्मणों के साथ गुरुजी चले।

व्याख्या : अपने राज्य की सीमा से बाहर वन में चल रहे हैं इसलिए इन्तजाम बदल गया। सबसे पहिले गुरुजी की सवारी चलती थी। सो सुरक्षा की दृष्टि से सबके पीछे चली। सबके आगे सेना चल रही है। उसके भी आगे रास्ता दिखलाने के लिए निषादगण चल रहे हैं। उसके बाद माताओं की पालकियाँ चलीं। उन पालकियों के आगे आगे स्वयं निषादराज चल रहे हैं। माताओं की रक्षा भरतजी ने निषादराज के जिम्मे अपना प्रतिनिधि बनाकर किया और शत्रुसूदनजी को निषादराज के साथ कर दिया। उसके बाद ब्राह्मणों के समाज के साथ गुरुजी

चले। इन्तजाम करनेवाले से कोई कारण नहीं पूछता। वह जैसा उचित है वैसी व्यवस्था करता है : एक नायक की आज्ञा चलनी चाहिए। क्योंकि बिना नायक के नाश होता है और अनेक नायक के होने से भी नाश होता है। अनायका विनश्यन्ति बहुनायका:।

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लखन सहित सिय रामू॥
गवने भरत पयादेहि पाएँ। कोतल सँग जाहिं डोरिआएँ॥२॥

अर्थ : भरतजी ने स्वयं गङ्गाजी को प्रणाम किया। लक्ष्मणजी के सहित सीताराम का स्मरण किया। भरतजी पाँव पैदल चले। कोतल बिना सवार के घोड़े बागडोर से बँधे चले जा रहे थे।

व्याख्या : आने के समय भी गङ्गाजी को प्रणाम किया। अब जाने के समय भी प्रणाम कर रहे हैं। भेद इतना ही था कि आने के समय : रामघाट कहँ कीन्ह प्रणामू। अब उस पार चले गये हैं। उधर जंगल होने से घाट नहीं है। अत: सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू लिखा। लक्ष्मणजी के सहित सीतारामजी का स्मरण करते हैं। क्योंकि वे ही यात्रा के लक्ष्य हैं। यथा : सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे।

यहाँ से ही रामजानकी तथा लक्ष्मणजी ने पाँव पैदल यात्रा की थी। अत: यहाँ से भरतजी ने पैदल यात्रा आरम्भ की। अयोध्या से ही पैदल चले थे पर माताजी ने रोक दिया। कहा : तुम्हारे चलत चलिहि सब लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू। फिर भी वही बात होगी। इसलिए इस बार भरतजी ने सबको आगे चला दिया। आप पीछे रह गये। जिसमें उन्हें पैदल देखकर लोग सवारी से उतर कर पैदल न चलने लगें। सेवकों ने सब समाज को चले जाते देखकर भरतजी की सवारी के लिए घोड़े रख लिये। समझा कि कुछ दूर पैदल चलने की इच्छा है। फिर सवारी का काम पड़ेगा ही। शत्रुघ्नजी भी साथ नहीं हैं। अत: रथ पर चलने की इच्छा नहीं मालूम होती है। इसलिए उन सबों ने भरतजी के सवारी के घोड़े रोक रक्खे। वे बिना सवार को बागडोर से बँधे चल रहे हैं।

कहहि सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहिं पाय सिधाये। हम कहँ रथ गज बाजि बनाये॥३॥

अर्थ : सुसेवक लोग बार बार कह रहे हैं कि सरकार घोड़े पर सवार हो जायँ। रामजी पाँव पैदल ही गये हैं और मेरे लिए रथ हाथी घोड़े बनाये गये हैं।

व्याख्या : जब देख लिया कि मन बहलाने के लिए जितनी दूर पैदल चला जाता है उस सीमा का अतिक्रमण हो गया। तब सुसेवकों ने कहा कि सरकार घोड़े पर सवार हो जायँ। वे सुसेवक हैं। स्वामी का उचित से अधिक पैदल चलना सहन नहीं कर सकते। सेवक समय न ढीठ ढिठाई। अत: बोल बैठे। भरतजी ने उस कहने की उपेक्षा की। आगे बढ़ते ही चले गये। सुसेवकों से नहीं रहा गया।

फिर कहा फिर कहा। तब भरतजी बोले कि सरकार रामजी तो पैदल गये। रथ हाथी घोड़े सब उनके लिए हैं। मेरे लिए नहीं हैं। यथा : संपति सब रघुपति कै आही। मैं सेवक हूँ। जहाँ उनका पैर पड़ा है वहाँ मेरा सिर लगना चाहिए। वहाँ मैं सवारी पर कैसे चलूँ।

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा ॥
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी ॥४॥

अर्थ : मेरे लिए उचित तो यह था कि सिर के बल जाता। क्योंकि सब धर्मों से कठिन सेवक धर्म है। भरतजी की अवस्था देखकर और कोमल वाणी सुनकर सेवकगण ग्लानि से गले जा रहे थे।

व्याख्या : कहहु तो कहाँ चरन कहँ माथा। जहाँ मालिक का चरण वहाँ सेवक का मस्तक। अतः उचित तो था कि जहाँ रामजी पाँव के बल चले वहाँ मैं सिर के बल चलूँ। परन्तु यह सम्भव नहीं है। इससे कम से कम मैं पैदल तो चलूँ। सेवक का ठीक धर्म पालन में मैं असमर्थ हो रहा हूँ।

भरतजी की प्रेम परवश दशा देखकर और मृदु वाणी सुनकर सेवक लोग ग्लानि से गले जा रहे थे। अर्थात् उन्हें ग्लानि हुई कि हम सुसेवक कहलाकर भी सेवाधर्म से अनभिज्ञ ठहरे और भरतजी स्वामी होकर सेवाधर्म में ऐसे पटु हैं। भरतजी ने मृदु वाणी कहा। धिक्कारा नहीं पर बात लग गयी। ऐसे उच्चकोटि के सेवक हैं कि उन्हें अविवक्षित ध्वनि से ग्लानि हुई।

दो. भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग ॥२०३॥

अर्थ : भरतजी ने तीसरे पहर में प्रवेश किया। सीताराम सीताराम अनुराग के उमङ्ग में कहते जा रहे थे।

व्याख्या : सब लोग बहुत पहिले प्रयाग पहुँच गये। पर भरतजी तीसरे पहर में प्रयाग पहुँचे। ये पैदल पाँव बिना जूते के चल रहे थे। रेत धूप से जल रही थी। अतः चलने में अधिक कठिनता पड़ी। चित्रकूट जाने की इतनी त्वरा होने पर भी तीर्थ को बाँया नहीं दिया। प्रयागराज चले गये। मनसा वाचा कर्मणा धर्म प्रवृत्ति। यथा : कर्मणा : कीन्ह प्रवेस प्रयाग। वचसा : कहत रामसिय रामसिय। मनसा : उमगि उमगि अनुराग।

झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसें ॥
भरत पयादेहिं आए आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ॥१॥

अर्थ : चरणों में झलका : छाले कैसे चमक रहे हैं जैसे कमल के कोष में ओस के कण चमकते हैं। भरतजी आज पैदल ही आये। यह समाचार सुनकर सब समाज दुःखी हो उठा।

व्याख्या : जलती हुई धूलि में बिना जूते के चलने से सम्पूर्ण चरणों में छोटे छोटे छाले पड़ गये। परन्तु चरणों की शोभा और भी बढ़ गयी। कमल के कोष पर ओस के कणों के पड़ जाने पर जैसी कमल की शोभा होती है वैसी ही चरणों की शोभा हुई। डेरे पर आने पर जब धूलि धूसरित चरण धोये गये तब यह शोभा दिखायी पड़ी।

समाचार सब समाज में फैल गया। सब चिन्तित थे कि भरतजी के आने में देर क्यों हो रही है। जब मालूम हुआ कि आज भरतजी पैदल ही आये। तो यह सुनकर सब समाज दुःखी हो गया। सब लोग समझ गये कि जहाँ से जहाँ तक रामजी पैदल गये हैं भरतजी सवारी पर नहीं चलेंगे। अब भरतजी की यात्रा पैदल होगी। कोमल चरण हैं। जेठ की धूप से पृथ्वी तप रही है। पहिले दिन के चलने में ही पैर में छाले पड़ गये। यह पूरा रास्ता कैसे कटेगा ? भरतजी का निश्चय है यह टल भी नहीं सकता। अतः सब समाज दुःखी हो गया। माता लोग भी उनके सेवा धर्म में बाधक नहीं होना चाहती।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाये। कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आये ॥
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिये दान महिसुर सनमाने ॥२॥

अर्थ : पता लगा लिया कि सब लोग नहा चुके। तब त्रिवेणी में आकर प्रणाम किया। विधि के साथ श्याम और श्वेतजल के सङ्गम में स्नान किया। ब्राह्मणों का सम्मान किया और दान दिया।

व्याख्या : आते ही भरतजी सबका सँभाल करते हैं। पता लगा कि सब लोग स्नान कर चुके। क्योंकि पहिले ही पहुँच चुके थे। तब आप स्नान के लिए सङ्गम पर गये और भगवती त्रिवेणी को प्रणाम किया।

सितासित शब्द से प्रयागराज का वेद प्रतिपाद्य होना द्योतित किया। यथा : सितासिते सरिते यत्र संगते। श्रुतिः। प्रयागराज में त्रिवेणी स्नान की जो विधि है। उस विधि से स्नान किया। संगम सिंहासन सुठि सोहा। चँवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुःख दारिद भंगा। स्नान के उपरान्त दान की विधि है। अतः ब्राह्मणों को दान दिया और सम्मान किया। क्योंकि सम्मान सबसे बड़ा दान है। यथा : तुलसी कहत पुकार के सुनहु सकल दै कान। हेम दान गज दान ते बड़ो दान सम्मान। सरकार के स्नान के समय कहा : मुदित नहाइ कीन्ह सिव सेवा। पूजि यथाबिधि तीरथ देवा। दान देना नहीं कहा। क्योंकि वे उदासीन थे। भरतजी के साथ धन है। अतः दान सम्मान दोनों लिखा। बिना सम्मान का दान व्यर्थ है और बिना दान का सम्मान केवल दम्भ है। अतः दान सम्मान दोनों होना चाहिए।

देखत स्यामल धवल हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल काम प्रद तीरथ राऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥३॥

अर्थ : काली और सुफेद लहरों को देखकर भरतजी ने पुलकित होकर हाथ

जोड़ा। हे तीर्थराज ! आप सब कामनाओं के देनेवाले हैं। आपका प्रभाव संसार में प्रकट है और वेद में भी विदित है।

व्याख्या : स्यामल धवल हिलोरे के देखने से भरतजी को रामजानकी का स्मरण हो उठा। अतः शरीर में पुलक हो गया। यथा : उतरि नहाये जमुन जल जो सरीर सम स्याम। तीर्थराज को प्रणाम करना चाहिए और मनोरथ प्राप्ति के लिए वरदान माँगना चाहिए। क्योंकि तीर्थराज का भण्डार चारों फल से भरा पूरा है। यथा : चारि पदारथ भरा भंडारू। सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम। बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुनग्राम। इस दोहे के पहिले पद से जग प्रगट प्रभाऊ और दूसरे पद से बेद बिदित पद की व्याख्या की।

मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू ॥
अस जिय जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी ॥४॥

अर्थ : मैं अपना धर्म छोड़कर भीख माँगता हूँ। क्योंकि आर्त कौन सा कुकर्म नहीं करते। ऐसा मन में समझकर जो सुजान सुदानी हैं वे संसार में याचक की वाणी को सफल करते हैं।

व्याख्या : भिक्षा माँगना क्षत्रिय के लिए निषिद्ध है। परन्तु आर्त पुरुष को विधि निषेध का ख्याल नहीं रहता। अतः आर्त होकर क्षत्रिय भी भिक्षा माँगते हैं। भरतजी कहते हैं कि हे तीर्थराज ! आप प्रख्यात दानी हैं और मैं अत्यन्त आर्त हूँ। प्रमाण यह है कि क्षत्रिय होकर आप से भिक्षा माँगता हूँ। इतना आर्त हूँ कि अपने धर्म का भी परित्याग कर रहा हूँ। अतः मैं आर्त अधिकारी हूँ।

सुजान सुदानी जाचक के पात्रापात्र का विचार यदि वह आर्त हो तो नहीं करते। अपात्र भी आर्त होने से पात्र ही है। अतः उसकी वाणी को सफल करते हैं। आप भी पात्रापात्र का विचार न करके मेरी वाणी सफल कीजिये।

दो. अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहौं निरबान।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन ॥२०४॥

अर्थ : मुझे धर्मार्थ काम की रुचि नहीं है और निर्वाण गति भी नहीं चाहता हूँ। मैं यही वरदान चाहता हूँ कि जन्म जन्मान्तर में मेरी भक्ति श्रीरामजी के चरणों में हो। दूसरी कोई बात मैं नहीं चाहता।

व्याख्या : इतने आर्त होने का कारण कहते हैं कि आपका भण्डार धर्मार्थ काम और मोक्ष से भरपूर है और यही याचकों को मिला करता है। पर इनमें मेरी रुचि नहीं। मैं तो जन्म जन्म में रामजी के चरणों में रति प्राप्ति का वरदान चाहता हूँ। जो भण्डार में नहीं है वह चाहता हूँ। आप याचक की वाणी पूरा करनेवाले सुजान दानी है। आप जैसे हो सके मुझे भक्ति भिक्षा दीजिये। अर्थ धर्म काम तथा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए। यथा : सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं।

जानहु रामु कुटिल करि मोही । लोगु कहउ गुर साहिब द्रोही ॥
सीताराम चरन रति मोरें । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ॥१॥

अर्थ : रामजी भले ही मुझे कुटिल समझें और भले ही लोग मुझे गुरुद्रोही और स्वामिद्रोही कहें। सीताराम के चरणों में मेरी प्रीति आपके अनुग्रह से नित्य बढ़ती रहे।

व्याख्या : वरदान में भरतजी एकाङ्गी प्रीति माँगते हैं। रामजी चाहे प्रेम करें चाहे प्रेम न करें। भले ही मुझे कुटिल मानकर घृणा करें मुझे स्वीकार है। उन पर आप कोई प्रभाव न डालें। उन्हें स्वच्छन्द रहने दें। पर रामजी के कुटिल जानने से दुर्यश होगा। लोग कहेंगे कि भरत गुरुद्रोही और स्वामिद्रोही हैं और रघुकुल यशोधन हैं। यशोहानि कैसे सही जायगी ? इस पर भरतजी कहते हैं कि यशोहानि मुझे स्वीकार है। पर सरकार की स्वच्छन्दता में भेद न पड़ने पावे। भरतजी कहते हैं कि वरदान का प्रभाव मुझ पर पड़े। श्रीसीतारामजी के चरणों में मेरी प्रीति नित्य बढ़ती रहे। अर्थात् सिद्धा भक्ति के लिए भरतजी की प्रार्थना है।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ । जाचत जलु पबि पाहन डारउ ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई । बढ़ें प्रेम सब भाँति भलाई ॥२॥

अर्थ : मेघ चाहे जन्म भर पपीहे को याद न करे। जल माँगने पर पत्थर और वज्र गिरावे। पपीहे की रटन घटने से वह घट जावेगा। प्रेम बढ़ने में ही उसकी सब भाँति से भलाई है।

व्याख्या : चातक हंस सराहियत टेक विवेक विभूति। हंस विवेकी है और चातक प्रेमी है। अतः हंस में विवेक की विभूति है और चातक में टेक की विभूति है। यदि चातक की रटनि घट जावे तो उसके टेक की विभूति ही जाती रही। उसकी भलाई तो प्रेम के बढ़ने में ही है। चाहे मेघ उसे कितना भी कष्ट दे। इसी बात को गोस्वामीजी ने दोहावली में बड़े मार्मिक शब्दों में वर्णन किया है। यथा :

मान राखिवो माँगिवो पिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फवैं जौ चातक मत लेहु॥
तीनलोक तिहुकाल जस चातक ही के हाथ।
तुलसी जासु न दीनता सुनौ दूसरे नाथ॥
जौ घन बरसै समयसिर जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस॥
रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग॥
चढत न चातक चित कबहुँ प्रियपयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख॥

परखि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिये चतुर चातकहि चूक॥
उपल बरषि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर॥

पवि पाहन दामिनि गरज झरि झँकोरि खरि खीझि।
रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीझि॥
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउडो कियो कनौडौ दानि॥

साधन सांसति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि बुध काहु॥
चातक जीवन दायकहि जीवन समय सुरीति।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति॥

जीव चराचर जहँ लगे है सबको हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यौ घन सों सहज सनेह॥
प्रेम न परखिय परुषपन पयद सिखावन एह।
जग कह चातक पातकी ऊसर बरषै मेह॥

चरण चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर।
तुलसी परवस हाड़ पर परिहैं पुहमी नीर॥
बध्यौ बधिक पर्यौ पुन्यजल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच॥
तुलसी चातक देत सिख सुतहि बारही बार।
तात न तर्पन कीजिये बिना बारिधर धार॥

सो. जियत न नाई नार चातक घन तजि दूसरहि।
सुर सरिहू को बारि मरत न माँगेउ अरध जल॥
सुन रे तुलसीदास प्यास पपीअहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास जो अँचबै ज़ल स्वातिको॥
जाचै बारह मास पियै पपीहा स्वाति जल।
जान्यौ तुलसीदास जोगवत नेही नेह मन॥

दो. उष्णकाल अरु देह खिन मग पंथी तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुचीं अनजल सीचे ऊख॥

जलद चातक का प्रेम पात्र है। चातक उसी का जल पोता है। दूसरे की उसे आशा नहीं। जलद जो उसे भूल जाय उस पर अत्याचार करे फिर भी चातक का प्रेम बढ़ता ही जाता है। इसी भाँति भरतजी भी श्रीरामजी के चरणों में प्रेम चाहते हैं। यही वरदान है।

कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहें । तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें ॥
भरत बचन सुनि माँझ त्रिबेनी । भइ मृदु बानि सुमंगल देनी ॥३॥

अर्थ : जिस भाँति सोने को तपाने से उस पर रङ्ग चढ़ जाता है वैसा ही रङ्ग प्रियतम के चरणों में प्रीति निर्वाह करने में चढ़े। भरतजी का वचन सुनकर मध्य त्रिवेणी में शुभ मङ्गल देनेवाली कोमल वाणी हुई।

व्याख्या : चेतन की उपमा देकर अब जड़ की उपमा देते हैं। प्रेम जड़ की अवस्था अभीष्ट है। चेतन का दुःखी होना सम्भव है। इसलिए जड़ की उपमा देते हैं। उसमें भी सोना तपाने के समय दमक उठता है। प्रेमास्पद के जलाने से और भी प्रेम में चमक बढ़े। जानते हैं कि सरकार विरहानल में तप्त करके प्रेम को परीक्षा ले रहे हैं। यथा : प्रेम अमिअ मन्दर बिरह भरत पयोधि गँभीर। मथि प्रगटेउ सुरसाधु हित कृपासिंधु रघुबीर।

भरतजी के ये वचन सुनकर मध्य त्रिवेणी अर्थात् सङ्गमरूपी सिंहासन से वचन सुनायी पड़ा। स्वयं त्रिवेणीजी बोल रही हैं।

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । राम चरन अनुराग अगाधू ॥
बादि गलानि करहु मन माँही । तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाँही ॥४॥

अर्थ : तात भरत ! तुम सब प्रकार से साधु हो। रामचरण में तुम्हें अथाह प्रेम है। मन में व्यर्थ ग्लानि कर रहे हो। तुम्हारे समान रामजी को कोई प्रिय ही नहीं है।

व्याख्या : जानहु राम कुटिलकरि मोही। लोग कहउ गुरुसाहिब द्रोही। का उत्तर तीर्थराज देते हैं : तुम्ह सब बिधि साधू। पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया। तुम में स्वार्थ कहाँ ? साधु समाज में तुम्हारी रेखा और रामभक्तों में तुम्हारी लेखा है। तुम्हें स्वयं अगाध अनुराग है। मैं क्या दूँ ? केवल तुम्हारे सन्देह मिटाने के लिए निषादराज की भाँति निषादराज के ही शब्द दोंहराये देता हूँ। यथा : नाथ करिअ कत बादि बिषादू। राम तुमहि प्रिय तुम प्रिय रामहिं। तुलसी न तुम सम राम प्रीतम कहत हौं सौंहे किये। इत्यादि।

दो. तनु पुलकेउ हिय हरषु सुनि, बेनि बचन अनुकूल ।
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरषित बरषहिं फूल ॥२०५॥

अर्थ : वेणी के अनुकूल वचन सुनकर भरतजी का शरीर पुलकित हो गया और हृदय में हर्ष हुआ। भरतजी धन्य हैं धन्य हैं ऐसा कहकर देवता फूलों की वर्षा करते हैं।

व्याख्या : भई मृदु बानि सुमंगल मूला से उपक्रम करके : बेनि बचन अनुकूल से उपसंहार करते हैं। गङ्गा यमुना सरस्वती के सङ्गम तीर्थराज का सिंहासन है। अतः त्रिवेणी की वाणी ही प्रयागराज की वाणी है। भरतजी ने : धिग धिग मोहि

अघ उदधि अभागी कहा था। अतः उसी का सम्मार्जन करते हुए देवता लोग भरतजी को धन्य धन्य कह रहे हैं और पुष्पवर्षा करके पूजन कर रहे हैं।

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी ॥
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा ॥१॥

अर्थ : प्रयागराज के रहनेवाले वानप्रस्थ गृहस्थ उदासी सब प्रसन्न हुए और दस पाँच आपस में मिलकर कहते हैं कि भरतजी का प्रेम और शील पवित्र और सच्चा है।

व्याख्या : भरतजी के साथ सेना आयी है। बड़ी भीड़भाड़ है। अतः सबको भरतजी के आने की खबर है। वैखानस वानप्रस्थ आश्रमी को कहते हैं। गृहस्थाश्रमी को गृही कहते हैं। बटु ब्रह्मचारी को कहते हैं और उदासी से यहाँ संन्यासी से तात्पर्य है। तीर्थराज हैं। अतः यहाँ सभी आश्रम के लोग बसते हैं। अतः भरतजी को देखने के लिए पहिले से ही तैयार हैं। रामजी जब आये थे तो उनके साथ भीड़ नहीं थी। अतः उनके आने का पता देर से लगा और वे सुन्दरता देखने की भावना से आये थे। यथा : यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापसमुनि सिद्ध उदासी। भरद्वाज आश्रम सब आये। देखन दसरथ तनय सुहाये।

जहाँ तहाँ गोष्ठी में बातचीत हो रही है। त्रिवेणी के मध्य से जो वाणी का प्रादुर्भाव हुआ उसी का अनुवाद कर रहे हैं। यथा : रामचरन अनुराग अगाधू। भरत सनेह सील सुठि साँचा। यथा : तात भरत तुम सब बिधि साधू।

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए ॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे ॥२॥

अर्थ : रामजी के गुणगणों को सुनते हुए भरद्वाज मुनिवर के पास आये। मुनिजी ने भरतजी को साष्टाङ्ग प्रणाम करते देखा तो उन्हें मूर्तिमान् अपना भाग्य माना।

व्याख्या : भरतजी के स्नेह और शील वर्णन के बाद प्रसङ्ग प्राप्त रामजी का गुणग्राम वर्णन करने लगे। रामजी का रूप और स्वभाव देख चुके हैं। यथा : राम प्रणाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोचन लाहू। देहिं असीस परम सुख पाई। फिरे सराहत सुंदरताई। रामजी के दर्शन से मुदित थे। आज भरतजी के दर्शन से मुदित हैं। भरतजी उधर से ही जा रहे हैं। तमाम रास्ते यही चर्चा है। अतः राम गुणग्राम सुनते हुए भरद्वाज के आश्रम पर आये। प्रयाग में भरद्वाजजी का दर्शन प्रधान है। क्योंकि ये जङ्गम तीर्थराज हैं। प्रयागराज के देवताओं की भाँति ये भी अङ्गभूत है। यथा : प्रयागं माधवं सोमं भारद्वाजं च वासुकिम्। वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्।

न तो सरकार के ही आने का पता मुनिजी को था जो आगे लेने आते और न भरतजी के ही आने का पता लगा। भावार्थ यह कि तीर्थराज में रहने से इनके

यहाँ लोगों का आना जाना सदा लगा रहता था। घोर वन में रहनेवाले मुनियों के यहाँ जिस भाँति किसी विशेष व्यक्ति का आना एक विशेष घटना समझी जाती थी और उसका समाचार बटु लोग पहिले से ही दे देते थे। वैसी कोई बात यहाँ न थी। अतः शिष्यों ने पहिले से खबर नहीं दी। इसलिए भरतजी को दण्डवत् प्रणाम करते मुनिजी ने देखा तो अपना बड़ा भाग्योदय माना। पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। अतः भरतजी को मूर्तिमान पूर्व जन्मकृत पुण्य माना। सरकार को वर्तमान जन्म का किया हुआ पुण्य माना था। यथा : लोचन गोचर सुकृत फल मनहु किये बिधि आनि।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हें। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हें॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे॥३॥

अर्थ : दौड़े और उठाकर छाती से लगा लिया। आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया आसन दिया तो सिर झुकाकर बैठे मानो सङ्कोच रूपी घर में भागकर घुस जाना चाहते हैं।

व्याख्या : भरतजी ने दूर से प्रणाम किया था। अतः दौड़ पड़े। इतने बड़े भागवत का दण्ड की भाँति भूमि में पड़ा रहना सह्य न सके तथा उन्हें हृदय लगा लेने की बड़ी चाह है। सत्कार करने का बड़ा उत्साह है। आशीर्वाद देने के लिए हृदय उमगा आ रहा है। अतः चार क्रियाओं का एक साथ ही प्रयोग है। भरतजी इस सत्कार से कृतार्थ हुए अथवा भक्तिरस्तु ऐसा आशीर्वाद दिया। इससे भरतजी ने अपने को कृतार्थ माना। सिर झुकाकर बैठना सङ्कोच तथा सोच की मुद्रा है। सरकार से मुनिजी ने कुशल प्रश्न करके तब आसन दिया। भरतजी से कुशल प्रश्न नहीं किया। आसन दे दिया। मुनिजी समझते हैं कि जब जानता हूँ कि कुशल नहीं है तब उसका प्रश्न करना और भी छेड़कर दुःख देना है। भरतजी को देखा कि ये इतने सङ्कुचित हैं मानो सङ्कोचरूपी घर में पैठ जाना चाहते हैं। सम्मुख होकर बात करने में कष्ट है।

मुनि पूछब कछु येह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई॥४॥

अर्थ : यह बड़ा सोच था कि मुनिजी कुछ पूछेंगे। ऋषिजी भरतजी का शील सङ्कोच देखकर बोले : भरतजी! सुनो मुझे सब पता लग गया है। विधाता के किये हुए को कौन मिटा सकता है। किसी का कुछ वश्य नहीं है।

व्याख्या : सङ्कोच को स्पष्ट करते हैं। मुनिजी ने कुशल तो नहीं पूछा। फिर भी कुछ तो पूछेंगे ही और यह पूछना चाहे किसी विषय में हो। माता की चर्चा बिना चले नहीं रह सकती। माता के निन्दनीय कर्म से सन्तान को सङ्कोच होता ही है और विशेषतः जब उसी के पुत्र को किसी के पूछने पर कहना पड़े। ये मुनि ठहरे। इनसे सब कहना पड़ेगा। इस सङ्कोच को लखकर मुनिजी बोल उठे कि भरतजी!

तुम्हें कुछ कहना नहीं है। मुझे सब पता लग गया है। जो कुछ हुआ है उसमें मानुषी करणी नहीं है। वह सब विधि की करणी है। मानुषी करणी होती तो उस पर बल लग सकता था। जो बिधि लिखा लिलार। देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार। अतः किसी का कोई वश्य नहीं है।

दो. तुम्ह गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं, गई गिरा मति धूति ॥२०६॥

अर्थ : तुम माता की करतूत समझकर अपने मन में ग्लानि न करो। हे तात ! इसमें कैकेयी का दोष नहीं है। सरस्वती उनकी बुद्धि को ठग ले गयी।

व्याख्या : मुनिजी को देवताओं के रहस्य का पता हैं। अतः स्पष्ट कहे देते हैं कि सरस्वती ने आकर मन्थरा द्वारा कैकेयी की बुद्धि हरण कर ली। कैकेयी का दोष कुछ भी नहीं है। ब्रह्मदेव का रुख पाकर ही सरस्वती ने देवताओं के विनय को स्वीकार किया। अतः यह सब विधि की करणी है। तुम व्यर्थ ग्लानि न करो।

यहउ कहत भल कहहि न कोऊ। लोकु बेदु बुध सम्मत दोऊ ॥
तात तुम्हार बिमल जस गाई। पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहने को कोई अच्छा नहीं कहेगा। क्योंकि पण्डितों को लोक और वेद दोनों मान्य हैं। हे तात ! तुम्हारे निर्मल यश को गाकर लोक और वेद दोनों बड़ाई पायेंगे।

व्याख्या : बात तो मैंने ठीक कही। पर इसे अच्छा कोई न कहेगा। क्योंकि इसके कहने में पण्डिताई नहीं है और पण्डितों को लोक और वेद मान्य हैं। लोक पहिले वेद पीछे। क्योंकि वेद कौन है ? इस प्रश्न का निपटारा तो लोक से ही होगा। अतः वेद भी लोक प्रमाण पर ही ठहरा है। माता के निर्दोष होने से तुम निर्दोष हो यह कहना तुम्हारा अपमान करना है। बात तो यह है कि कैकेयी के करतब से ही तुम्हारा इतना निर्मल यश हुआ।

क्योंकि तुम्हारा यश बड़ा पवित्र है। तुम्हारे ऐसा आचरण करना महा दुर्लभ है। उसके वर्णन से लोक और वेद की बड़ाई होगी। जो लोग तुम्हारा यश गावेंगे उनकी बड़ाई होगी। वेद की भी तुम्हारे यशोगान से प्रशंसा होगी। ऐसे महायशस्वी को यदि कोई कहे कि निर्दोष है तो कहनेवाले को ससार कहेगा कि इनसे कहते न बना।

लोक बेद सम्मत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई ॥
राउ सत्य ब्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई ॥२॥

अर्थ : सब लोग ऐसा ही कहते हैं। यह बात लोक और वेद सम्मत है कि जिसे पिता दे वह राज्य पावे। सत्यव्रत राजा तुम्हें बुलाकर राज्य सुख धर्म और बड़ाई दे देते।

व्याख्या : लोक और वेद के बड़ाई पाने का कारण कहते हैं कि तुम्हारी करणी लोक और वेद दोनों से ऊँची निकली। क्योंकि इस बात में सबका ऐकमत्य है कि जिसे पिता दे वही राज्य पावे। यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है।

राजा सत्यव्रत थे। अतः विशेष नियम से काम ले सकते थे। वरदान दे दिया था उसे मिथ्या नहीं कर सकते थे। अतः रामजी को न देकर तुम्हें दे देते और उसके साथ सुख धर्म और बड़ाई भी देते। सुख यथा : हरखे सकल पाइ जनु राजू। धर्म यथा : प्रजा पालि परिजन दुख हरहू। बड़ाई यथा : राजा दण्डधरो गुरुः।

राम गवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥
सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहु पछितानी॥३॥

अर्थ : रामजी का वन जाना अनर्थ का मूल हो गया। जिसे सुनकर संसार को शूल हुआ। सो भी होनहार के वश बेसमझ रानी कुचाल करके अन्त में पछतायी।

व्याख्या : पर दूसरा वर बड़ा अनर्थकारी माँगा। राम वनगमन से अयोध्या उजाड़ हुई। महाराज मरे। जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध था उनकी गति कौन कहे। संसार भर में जिसने सुना उसे शूल हो गया। संसार से अभिप्राय उन लोगों से है जिनमें वस्तुतः मनुष्यता है। मनुष्यरूप से जो पशु विचरते हैं उनकी गणना मनुष्यों में नहीं है।

भावीवश हो जाने से बड़े बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि बिगड़ जाती है। ज्ञानी महाराज भानुप्रताप की बुद्धि बिगड़ गयी। जिसने जन्मभर वासुदेवार्पण कर्म किया। यथा : करै जे धरम करम मन बानी। वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी। उसने वर माँगा देहाध्यासियों की भाँति। यथा : जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ। एकछत्र रिपुहीन महि राज कल्पसत होउ। महारानी तो सूधी थी। यथा : काह कहौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन वाम न जानेहुँ काऊ। यह यदि भावीवश होकर विकृत मस्तिष्क हो गयी तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? भावीवश इसकी बुद्धि मारी गयी। यथा : भावी बस प्रतीति उर आई। फिर जब प्रकृतिस्थ हुई तो पछतायी। पहिले भी रामजी में प्रेम था। आज भी प्रेम है। तो बीच में हो क्या गया? यही भावी है।

तहउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहइ सो अधमु अयान असाधू॥
करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू॥४॥

अर्थ : वहाँ भी यदि कोई तुम्हारा स्वल्प भी अपराध कहे तो वह अधम है। अज्ञानी है और साधु नहीं है। यदि तुम राज्य भी करते तो तुम्हारा कोई दोष न होता। रामजी को सुनकर सन्तोष होता।

व्याख्या : कुचाल में बड़ा अपराध प्रयोजक कर्ता का हुआ करता है और स्वल्प अपराध उपेक्षा करनेवाले का होता है। सो तुम्हें प्रयोजक कर्ता तो कोई कह नहीं सकता। यदि कोई स्वल्पापराध भी कहे तो वह अधम है। अर्थात् लोक वेद

से विमुख है। बुद्धिहीन है और उसका हृदय दूषित है। ऐसे पुरुष ही अपने बुद्धि दोष से दूसरों में दोष देखते हैं।

अधम यथा : कहहि सुनहि अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।

अयान यथा : मरम तुम्हार रामकर जानिहि।
ते सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि।

असाधु। यथा : मत तुम्हार यहु जो जग कहही।
ते सपनेहुँ सुख सुगति न लहही।

जो वसिष्ठजी ने कहा था वही भरद्वाजजी भी कहते हैं। यथा : सुनि सुख लहब राम वैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही। राय राजपद तुम कहँ दीन्हा। पिता वचन फुर चाहिअ कीन्हा।

दो. अब अति कीन्हेउ भरत भल, तुर्महि उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग, रघुबर चरन सनेहु ॥२०७॥

अर्थ : भरतजी ! अब तुमने बहुत अच्छा किया। तुम्हारे लिए यही उचित राय थी। रामजी के चरणों में प्रेम होना इस संसार में सब सुमङ्गलों का मूल है।

व्याख्या : भरतजी ! यदि तुम राज्य करते तो वह भी भली बात थी : धर्माविरुद्ध [1]प्रेय को कौन नहीं चाहता ? तुमने नहीं किया। यह अत्यन्त भली बात हुई। राज्य करते तो धर्मानुकूल होता। इसलिए उसे भला कहा। परन्तु तुमने श्रीरामचरणानुराग को आगे करके राज्य का त्याग करके श्रेय का ग्रहण किया। अतः यह बहुत ही भला हुआ। तुम्हारे ऐसे साधु पुरुष के योग्य कार्य हुआ।

सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू। अतः रामजी के चरणों में स्नेह ही सब मङ्गलों का मूल है। क्योंकि रामजी स्वयं मङ्गल मूल हैं। यथा : मंगल मूल राम सुत जासू। अतः मङ्गल मूल से स्नेह करना स्वयं मङ्गल मूल है।

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरिभाग को तुम्हहि समाना ॥
यह तुम्हार आचरजु न ताता। दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता ॥१॥

अर्थ : और वह तुम्हारा धन जीवन और प्राण है। तुम्हारे ऐसा महाभाग्यवान् कौन है ? हे तात ! यह तुम्हारे लिए आश्चर्य की बात नहीं है। तुम दशरथ के पुत्र और रामजी के प्रिय भाई ठहरे।

---

१. अन्यच्छ्रेयोन्यदुत एव श्रेयस्तेनानार्थे पुरुषः सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति। हीयतेऽर्थातय उ प्रेयो वृणीते। काठके। श्रेय दूसरी वस्तु है और प्रेम दूसरी वस्तु है। वे दोनों पृथक् पृथक् विषय में मनुष्यों को बांधते हैं। उनमें से श्रेय के ग्रहण करनेवाले का कल्याण होता है और वह अर्थ से गिर जाता है जो प्रेय को स्वीकार करता है।

व्याख्या : वह रघुवर चरण स्नेह तुम्हारा धन है। यथा : माँगहु भीख त्यागि निज धर्मूं से : अनुदिन बढ़हु अनुग्रह तोरे तक अथवा : सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे। तुम्हारा जीवन है। यथा : वादि जीव बिनु देह सोहाई। वादि मोर सब बिनु रघुराई। और वही तुम्हारा प्राण है। यथा : अस को जीव जन्तु जग माँही। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं। अतः तुम्हारे ऐसा महाभाग्यवान् कोई नहीं।

जिस कुल में जो न हो आयी हो उस काम को कर बैठना आश्चर्य की बात है। तुम्हारे कुल में तो ऐसा होता आया है। अतः तुम्हारे लिए आश्चर्य की बात नहीं है। पहिले की बात न कहकर वर्तमान की बात कहता हूँ। तुम्हारे पिता महाराज दशरथ प्रेम के समुद्र थे। यथा : बंदौ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद। बिछुरत दीन दयाल प्रिय तन तृन इव परिहरेउ। तुम्हारे बड़े भाई कैसे भ्रातृवत्सल हैं। यथा : भरत प्रान प्रिय पावहि राजू। विधि सब बिधि मोहि संमुख आजू। रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती। अतः तुम में इतना राम स्नेह होना आश्चर्य की बात नहीं है।

सुनहु भरत रघुपति मन माँहीं। प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाँहीं ॥
लखन राम सीतहिं अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती ॥२॥

अर्थ : भरतजी ! सुनो। रामजी के मन में तुम्हारे समान प्रेमपात्र कोई दूसरा नहीं है। लक्ष्मण राम और सीताजी की सारी रात तुम्हारी प्रशंसा करने में ही बीती।

व्याख्या : भरद्वाजजी भरतजी को आश्वासन देते हुए कहते हैं कि रामजी तुमको प्रिय हैं; इतना ही नहीं है रामजी को तुम्हारे समान प्रिय कोई नहीं है। यथा : भरत सरिस प्रिय को जग माँहीं। इहै सगुन फल दूसर नाँहीं

भरतजी की उस समय यह गति थी कि रात को भयानक सपने देखते थे। यथा : देखहिं रात भयानक सपना। जागि करहि कटु कोटि कलपना। भक्त भयानक स्वप्न देखता है। जागकर अनेक चिन्ता करता है। अतः सरकार नहीं सो रहे हैं। भक्त का स्मरण कर रहे हैं। इसी बात को निषादराज कह रहे हैं। यथा : तेहि रात पुनि पुनि करहि प्रभु सादर सरहना रावरो। और यही बात भरद्वाजजी कह रहे हैं कि जिस दिन मेरे यहाँ ठहरे तीनों प्राणी रात भर तुम्हारी ही सराहना करते रह गये।

जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होंहि तुम्हरे अनुरागा ॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें। सुख जीवन जग जस जड़ नर कें ॥३॥

अर्थ : मैंने प्रयाग में स्नान करते उनके मर्म को जाना। वे तुम्हारे प्रेम में मग्न हो रहे थे। तुम पर ऐसा स्नेह रामजी का है जैसे जड़ पुरुष को संसार के सुखमय जीवन पर होता।

व्याख्या : भरद्वाजजी कहते हैं कि यद्यपि सब रात तुम्हारी प्रशंसा होती रही। पर तुम्हारे और रामजी के प्रेम का मर्म मैंने उनके प्रयाग स्नान करते समय जाना कि शरीर तो सितासित नीर में मग्न हो रहा है। पर मन तुम्हारे अनुराग में मग्न था। श्यामवर्ण वारि को देखकर तुम्हारे स्मरण से शरीर में पुलक हो गया : इसी भाँति भरतजी भी श्याम वर्ण जल को देखकर रामजी के स्मरण हो आने से विरह समुद्र में मग्न हुए थे। यथा : रघुबर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज। होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज।

भरद्वाजजी कहते हैं कि तीर्थराज में स्नान के समय में भी तुम्हारे अनुराग में मग्न रहना श्रीरामजी के अतीव प्रेम का द्योतक है। ऐसा प्रेम जो जड़ मनुष्य को सुख जीवन पर होता है वह सुख जीवन के लिए क्या नहीं करता धर्म अर्थ काम और मोक्ष सबसे हाथ धो बैठता है। इसी का साफल्य दिखाते हुए कहेंगे : मुख प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।

यह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत कुटुंब पाल रघुराई॥
तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू॥४॥

अर्थ : यह रामजी के लिए अधिक बड़ाई की बात नहीं है। वे प्रणत : प्रणाम करनेवाले के कुटुम्ब के पालन करनेवाले हैं। हे भरतजी ! मेरा मत तो यह है कि तुम शरीरधारी रामप्रेम ही हो।

व्याख्या : तुम्हारे ऊपर रामजी का इतना प्रेम होना रामजी के लिए कोई बड़ाई की बात नहीं है। क्योंकि वे तो एक बार के प्रणाम करनेवाले को अपना बना लेते हैं। उसके कुटुम्ब को अपना मान लेते हैं। अतः उसके पालन की बात कौन कहे। उसके कुटुम्ब का पालन करते हैं और तुम तो मेरे मत से शरीरधारी रामप्रेम ही हो। अतः तुम्हारे ऊपर उनका इतना प्रेम होना प्राप्त ही है।

दो. तुम्ह कहँ भरत कलंक यह, हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित, भा यह समउ गनेसु॥२०८॥

अर्थ : तुम्हारे लिए तो भरत यह कलङ्क है। पर हम तपस्वियों के लिए तो यह उपदेश : हो गया। रामभक्ति रस सिद्धि के लिए यह समय : जब कि रामजी तापस वेष से वन में हैं और तुम उन्हें लौटाने जा रहे हो गणेश रूप हो गया।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं : अवधराज सुरराज सिहाई। दसरथ धन सुनि धनद लजाई। ऐसा राज्य पिता ने तुमको दिया। उसकी स्वीकृति तुम : गृहस्थ को कलङ्क मालूम हो रही हैं। यह बात हम वनवासी तपस्वियों के लिए उपदेश रूप है। रामभक्ति के लिए तुम ऐसे समृद्ध राज्य का त्याग कर रहे हो जिसका अर्थ यही है कि भक्तिसुख के सामने स्वर्ग सुख भी तुच्छ है। यथा : सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज। छीन लेइ जनि जानि जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज।

तथा : सब सुख खानि भगति तैं माँगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़ भागी। लाभ कि कछु हरिभगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना।

यह समय तो सिद्धिदाता गणेश हो गया। इसके स्मरण करने से भक्तिरस की सिद्धि होगी। यथा : जेहि सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन। विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों से व्यञ्जना वृत्ति द्वारा जो स्थायी भाव अभिव्यक्त होता है उसी को रस कहते हैं। यथा : प्रीति की उत्पादिका ललना आदि आलम्बन है। प्रीति के पोषक चन्द्रोदय आदि उद्दीपन हैं। इन्हीं आलम्बन और उद्दीपनों को विभाव कहते हैं। इसके बाद अश्रु और पुलक आदि जो अनुभव में लाने योग्य विकृति होती है। उसे अनुभाव कहते हैं। विशेष रूप से हृदय में स्थायी भाव सञ्चार करानेवाले जो हर्षादि भाव हैं उन्हें व्यभिचारी भाव कहते हैं और अविच्छिन्न प्रवाहवाला भाव स्थायीभाव कहलाता है।

जैसे : सियमुख ससि भये नयन चकोरा। यहाँ सीताजी आलम्बन हैं। कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि उद्दीपन है। भये बिलोचन चारु अचंचल यह अनुभाव है। मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्वबिजय कहँ कीन्ही। यह व्यभिचारी भाव है और यहाँ सीता विषयक जो प्रेमरूपा चित्तवृत्ति है यही रति स्थायी भाव है। यथा : देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा। यही स्थायी भाव उपर्युक्त आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और विभाव से पुष्ट होकर रसरूप हो गया और श्रृङ्गार कहलाया।

इसी भाँति जहाँ सर्वेश्वर रामचन्द्र आलम्बन हैं। रामचरित्र का पाठ या श्रवण उद्दीपन है। पुलक और अश्रु अनुभाव है। हर्षादि व्यभिचारी भाव है। ये रामचरणरति स्थायी भाव को पुष्ट करके रसरूप में परिणत कर देते हैं। यही भक्तिरस है।

परन्तु काव्य शास्त्र के पारङ्गत कहते हैं : रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्चितः। स्त्री पुरुष की एक दूसरे के विषय में प्रेम नामक जो चित्तवृत्ति होती है उसे रति स्थायी भाव कहते हैं। वही प्रेम यदि देवता गुरु तथा पुत्रादि के विषय में हो तो भाव कहलाता है। इसके लिए वे कई सूक्ष्म कारण भी देते हैं। परन्तु वह केवल बाल की खाल निकालना है। उन कारणों पर विचार करने पर यद्यपि वे इस बात को स्पष्ट नहीं कहते। तात्पर्य इतना ही निकलता है कि कान्ता विषयक प्रेम जितना गाढ़ा होता है उतना देवतादि विषयक प्रेम नहीं होता।

और बात भी ऐसी ही है। संसार में ऐसा ही देखा जाता है। वेद भगवान् भी साक्षी देते हैं कि उस प्रेम में न बाहर का ज्ञान रहता है न भीतर का ज्ञान रहता है। जब देवादि के विषय में वैसा प्रेम नहीं होता तो उसे रस कैसे कहें? स्वयं गोस्वामीजी नौ रस मानते हैं। यथा : नवरस जप तप जोग बिरागा। भक्ति को रस मानने से तो दस हो जायँगे।

इस पर भरद्वाजजी कहते हैं कि यह ठीक है। पहिले ऐसा ही था। पर भरतजी

तुम्हारे प्रेम ने भक्तिभाव का रस होना सिद्ध कर दिया। यथा : परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई : रामजी और भरत लाल के मिलन में दोनों भाइयों का प्रेम ऐसा है कि बाहर भीतर का ज्ञान जाता रहा। इसका प्रभाव भी दर्शकों पर ऐसा पड़ता है कि भरत मिलाप जैसा मेला दूसरा काशी में कोई होता नहीं। अतः अब से भक्तिरस की सिद्धि हुई।

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ।।
उदित सदा अथइहि कबहू ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ।।१।।

अर्थ : हे तात ! तुम्हारा यश निर्मल नया चन्द्रमा है और रामजी के भक्त लोग उसके लिए कुमुद और चकोर हैं। यह सदा उदित रहेगा। कभी अस्त न होगा और संसाररूपी आकाश में यह घटेगा नहीं। दिन दिन दूना होता चला जावेगा।

व्याख्या : रामभक्ति रस साक्षात् अमृत है। उसकी स्थिति भरत यश रूपी चन्द्र में सदा रहेगी। इसी के दिखलाने के लिए कवि भरतयश को नव विधु से उपमित करते हुए रूपक बाँधते हैं। भरद्वाजजी कहते हैं कि हे तात ! तुम्हारा यश, निर्मल नवीन चन्द्र है। निर्मल शब्द से कलङ्क रहित होना कहा और नवीन शब्द से उसे बढ़नेवाला कहा। नवीन : दुइज का चन्द्र नित्य वर्धनशील होता है और पुराना पूर्णिमा का चन्द्र ह्रासशील होता है। रामजी के दो प्रकार के भक्त पंकज और कोक स्थानीय भरतयश चन्द्र के लिए क्रमशः कुमुद और चकोर स्थानीय हो जाते हैं। रामचन्द्र का यश सूर्य है और भरत का यश चन्द्र है। रामोपासक ही भरतयश के प्रेमी होते हैं। अतः जो रामयश के लिए पङ्कज हैं वे भरतयश के लिए कुमुद हो जाते हैं और जो रामयश के लिए कोक हैं वे भरतयश के लिए चकोर हो जाते हैं।

भरतयश चन्द्र की इस चन्द्र से बहुत विशेषता है। यह चन्द्र कभी उदय होता है और कभी अस्त हो जाता है। शुक्लपक्ष में बढ़ता है और कृष्णपक्ष में घटता है। पर भरतयश चन्द्र अस्त होना जानता ही नहीं और न घटना जानता है। दिन दिन बढ़ता ही जाता है। इस चन्द्र का प्रचार तो आकाश में है। पर भरतयश चन्द्र का प्रसार सम्पूर्ण संसार में होगा। निर्गलितार्थ यह कि चन्द्रमा में बहुत दोष है। यथा : अवगुन बहुत चन्द्रमा तोहीं। परन्तु भरतयश चन्द्र निर्दोष है और गुणाधिक्य भी इसमें है।

कोक तिलोक प्रीति अति करिहीं। प्रभु प्रतापु रबि छबिहि न हरिहीं ।।
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतब राहू ।।२।।

अर्थ : त्रैलोक्यरूपी कोक इस पर अत्यन्त प्रीति करेगा। प्रभु रामजी के प्रताप का सूर्य इसकी छवि का हरण न करेगा। यह रात दिन सदा सबको सुख देनेवाला होगा और इसे कैकेयी का करतबरूपी राहु न ग्रस सकेगा।

व्याख्या : चन्द्र तो कोक को शोक देता है। परन्तु भरतयश चन्द्र के प्रति त्रिलोकरूपी कोक का अत्यन्त प्रेम है। चकोररूपी रामभक्त तो प्रेम करते ही हैं और

चन्द्र से न प्रेम करनेवाले कोक भी भरतयश चन्द्र से अत्यन्त प्रेम करते हैं। अर्थात् विरही को भी भरतयश चन्द्र शान्तिप्रद है।

इस चन्द्र की छवि को सूर्य का प्रताप छीन लेता है। पर भरतयश चन्द्र की छवि को प्रभु प्रताप रवि नहीं छीनता। चन्द्रमा निसिदिन सबको सुखद नहीं होता। दिन के समय किसी को सुखद नहीं होता और रात्रि के समय विरहियों के लिए महा दुःखद है और भरतयश चन्द्र सदा सबको सुखद है।

राहु सूर्य और चन्द्र दोनों के तेज पर चोट करता है। इसी भाँति कैकेयी के करतबरूपी राहु ने राम और भरत दोनों के ऊपर अपना प्रभाव डाला। राम के प्रति यथा : तापस बेष बिसेष उदासी। चौदह वर्ष राम बनवासी। भरत के प्रति यथा : देहु एक बर भरतहिं टीका। सो रामरूपी सूर्य पर तो कैकेयी के करतव का प्रभाव पड़ गया। अर्थात् रामजी को वनवास हो गया। पर भरतजी पर प्रभाव न पड़ा। भरतजी ने टीका स्वीकार नहीं किया।

पूरन राम सुपेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहिं दूषा॥
राम भगत अब अमिअ अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू॥३॥

अर्थ : रामजी के प्रेमामृत से परिपूर्ण है और गुरुअपमान रूपी दोष से दूषित नहीं है। रामजी के भक्त लोग अब इस अमृत से परितृप्त हों। क्योंकि तुमने इस अमृत को वसुधा में भी सुलभ कर दिया।

व्याख्या : चन्द्र में अमृत का निवास माना गया है। पर भरतयश चन्द्र तो राम सुप्रेमामृत से पूर्ण है। चन्द्र गुरुअपमान से दूषित हैं। यथा : ससि गुरुतियगामी नहुष चढ़ेउ भूमि सुर यान। पर भरतयश चन्द्र गुरुअपमान दोष से दूषित नहीं है। गुरुअपमान का प्रसङ्ग आ पड़ा। महाराज दशरथ ने रामजी को युवराज पद देना कहकर स्त्रीवश हो भरत को राज्य दिया। यदि भरतजी स्वीकार कर लेते तो बड़े भाई के अपमान से दूषित हो जाते। पर भरतजी ने वह राज्य अङ्गीकार नहीं किया। अथवा भरतजी ने पिता की आज्ञा भङ्ग किया। फिर भी गुरु अपमान दोष से दूषित नहीं हुए।

चन्द्रमा में अमृत बसता है। पर वह किसी को पान करने के लिए नहीं मिलता। संसार में उसका मिलना दुर्लभ है। अब इस अमृत के रसिक रामभक्त लोग इस अमृत को जो भरकर पीकर परितृप्त हो जायँ। भरतजी के द्वारा श्रीराम सुप्रेमामृत जगत् को सुलभ हो गया।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी॥
दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं॥४॥

अर्थ : राजा भगीरथ गङ्गा लाये जो स्मरण करने से सुमङ्गल की खानि है। राजा दशरथ के गुणगण का वर्णन नहीं हो सकता। अधिक के लिए क्या कहा जाय जिसके समान कोई भी नहीं है।

व्याख्या : भानु वंस भये भूप घनेरे। अधिक एक ते एक बड़ेरे। इनमें राजा भगीरथ ने तो लाकर गङ्गाजी को पृथ्वी पर वहा दिया। जिस गङ्गा को स्मरण करने से सब सुमङ्गल सिद्ध होते हैं। गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति। गङ्गा गङ्गा ऐसा स्मरण करने से सब पाप कट जाते हैं। विष्णुलोक में गति हो जाती है। इतना बड़ा कल्याण संसार का किया।

इसी वंश में राजा दशरथ हुए। इनके गुणों का वर्णन नहीं हो सकता। उनसे बड़ा कोई क्या होगा ? उनके बराबरी का ही संसार में कोई नहीं हुआ। इसी बात को अगले दोहे में स्पष्ट करते हैं।

दो. जासु सनेह सकोच बस, राम प्रगट भए आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ, निरखे नहीं अघाइ ॥२०९॥

अर्थ : जिसके स्नेह और सङ्कोच के वश में पड़कर रामजी आकर प्रकट हुए। जिन्हें महादेवजी हृदय की आँखों से जीभरकर कभी न देख सके।

व्याख्या : राजा भगीरथ विष्णुपदी गङ्गा लाये। राजा दशरथ स्वयं उस प्रभु को लाये जिनके चरणकमल से गङ्गाजी की उत्पत्ति है। राजा दशरथ ने स्वायम्भू मनु के रूप से बड़ा भारी तप करके रामजी का दर्शन पाया। संसार को भी यह दर्शन हो इसलिए पुत्ररूप में उन्हें माँगा। उनके प्रेम और सङ्कोच से रामजी इस पृथ्वी पर आकर प्रकट हुए। नहीं तो रामजी का यथेष्ट दर्शन शिवजी को भी ध्यान में दुर्लभ है। उस रामजी को जगत् के सब लोगों ने भौतिक नेत्रों से पेट भर देखा। अतः महाराज दशरथ राजा भगीरथ से भी बढ़ गये।

कीरति बिधु तुम कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम प्रेम मृगरूपा ॥
तात गलानि जरहु जिय जाएँ। डरहु दरिद्रहि पारस पाएँ ॥१॥

अर्थ : तुमने बड़ा अनोखा कीर्तिरूपी चन्द्रमा बनाया जहाँ राम का प्रेम मृग रूप होकर बसता है। हे तात ! तुम व्यर्थ ही जी में ग्लानि करते हो। पारस पाने पर भी तुम दरिद्र को डरते हो।

व्याख्या : राजा भगीरथ को भरद्वाजजी ने गङ्गाजी के लाने के कारण महा यशस्वी कहा। महाराज दशरथ का यश उनसे अधिक हुआ। उन्होंने स्वयं राम को लाकर सबके लिए उनका दर्शन सुलभ कर दिया। परन्तु हे भरतजी जिस यशचन्द्र को तुमने बनाया उसकी उपमा नहीं है। इस चन्द्र में तो राम का प्रेम भक्त के प्रति मृग रूप से बसता है। यथा : जग जप राम राम जप जेही। राम सम्बन्धी प्रेम तो अमृतरूप से इस चन्द्र में पूर्ण तो है ही। यथा : पूरण राम सुप्रेम पियूषा। राम प्रेम भक्त के प्रति इसमें मृगरूप से बसता है। यह रामप्रेम मृगरूप हैं। कहीं स्थिर नहीं रहता। यथा : बोले बिहँसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ। जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ। पर तुम्हारे यशचन्द्र में यह मृग स्थिर होकर बस गया

है। इसे छोड़कर कहीं जाता ही नहीं। यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा। अतः तुम्हारी महिमा सबसे बड़ी है।

तुम तो व्यर्थ ही मन में ग्लानि करते हो। तुम रामोपासक परहितनिरत हो। तुम्हें दुःख कहाँ ? यथा : कबहुँक दुःख सबकर हित ताके। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाके। ग्लानि का कारण तुम्हारे सन्निकट आ नहीं सकता। अतः व्यर्थ दुःख मत मानो।

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं ॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा ॥२॥

अर्थ : भरतजी सुनो ! हम झूठ नहीं कहते क्योंकि उदासीन हैं। तपस्वी हैं और वन में रहते हैं। सब साधनों की सुन्दर सफलता लक्ष्मण राम और सीताजी का दर्शन पाना है।

व्याख्या : भरद्वाजजी कहते हैं कि जो बात मैं कहूँगा वह हठात् मनमें न बैठेगी। अतः यह कहना आवश्यक पड़ गया कि मैं झूठ नहीं कहता। अतः मेरी बात को अर्थवाद न मान लेना। क्योंकि झूठ तो रागद्वेषवाले पुरुष विषय लोलुप तथा जनसमाज में रहनेवाले बोलते हैं। मैं उदासीन हूँ। तपस्वी हूँ और वन में रहता हूँ। मुझे किसी से रागद्वेष नहीं। मैं झूठ क्यों बोलूँगा। सत्य से कर्मफल को आश्रय मिलता है। मैं यदि झूठ बोलूँ तो तपस्या ही नष्ट हो जाय। मैं वन में रहता हूँ। किसी से कोई प्रयोजन नहीं। असत्य तो किसी प्रयोजन से बोला जाता है।

इतनी भूमिका के पश्चात् भरद्वाजजी ने निम्नलिखित बात कही। लक्ष्मणजी रामजी तथा सीताजी का दर्शन पाना सब साधनों की सुन्दर सफलता है। यथा : आजु सफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सफल जप जोग बिरागू। सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू। लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी।

तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा ॥
भरत धन्य तुम्ह जस जग जयेऊ। कहि अस पेम मगन मुनि भयेऊ ॥३॥

अर्थ : उस फल का फल तुम्हारा दर्शन है। प्रयागराज के सहित हमारा अहोभाग्य है। भरतजी ! धन्य हो। तुमने यश से जगत् को जीत लिया। ऐसा कहकर मुनि जी प्रेम में मग्न हो गये।

व्याख्या : लखन रामजानकी का दर्शन तो दिव्य फल है। उस फल में भी फल लगता है। यथा मनु सतरूपा ने तप करके राम जी का दर्शन पाया। वह दर्शन उनके तप का फल था। पर उस फल में भी फल लगा। सरकार बोले : माँगहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि। सो मैंने जो कुछ साधन किया था उसके फल रूप में रामजानकी तथा लक्ष्मणजी का दर्शन लाभ किया और उस फल का फल है कि

तुम्हारा दर्शन पाया। इस दर्शन से मैं भी कृतार्थ हुआ और प्रयागराज भी कृतार्थं हुए। क्योंकि महात्मा लोग ही तीर्थ को तीर्थ बनाते हैं।

भरद्वाजजी कहते हैं कि भरतजी तुम धन्य हो। तुमने यश से संसार को जीत लिया। शस्त्रबल अस्त्रबल सैन्यबल से संसार के जीतनेवाले धन्य नहीं हैं। ऐसा कहकर मुनिजी प्रेममग्न हो गये। आगे कुछ नहीं कह सके। भरतजी चुपचाप सुन रहे हैं। मुनिजी चार दोहे तक बोलते ही गये। प्रेम उनका बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि प्रेम में मग्न होकर चुप हो गये।

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा। सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा॥४॥

अर्थ : मुनिजीका वचन सुनकर सभासद हर्षित हुए और साधु साधु ऐसी प्रशंसा करके देवताओं ने फूल बरसाये। आकाश में और प्रयागराज में धन्य धन्य की ध्वनि गूँज उठी। उसे सुन सुनकर भरतजी प्रेम में मग्न हो रहे थे।

व्याख्या : जिस समय भरतजी वहाँ गये थे मुनियों की सभा लगी थी। यथा : तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा। सो सभा की सभा ने मुनिजी के वचन का अनुमोदन हर्षित होकर किया। भरद्वाजजी के वचन ऐसे प्रभावपूर्ण थे कि आकाश से देवताओं ने उनकी प्रशंसा करके पुष्पवृष्टि की।

आकाश में देवताओं की धन्य धन्य ध्वनि और प्रयागराज में मुनियों की धन्य धन्य ध्वनि हुई। भगवती सत्योक्ति की पूजा दोनों लोकों में हुई। कहनेवाले मग्न और सुननेवाल भरतजी प्रेम में मग्न हो रहे थे।

दो. पुलक गात हियँ रामु सिय, सजल सरोरुह नयन।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहिं, बोले गदगद बयन॥२१०॥

अर्थ : शरीर में पुलक और हृदय में राम जानकी और नेत्रकमल अश्रु से पूर्ण थे। इस भाँति भरतजी मुनि मण्डली को प्रणाम करके गद्गद वचन बोले।

व्याख्या : पुलकगात और सजल सरोरुह नयन से भरतजी के तन की दशा कही। गद्गद बयन कहकर वाणी की दशा कही : हिय राम सिय से मन की दशा कही। इस भाँति प्रेम से पूर्ण भरतजी मुनिमण्डली को प्रणामकर बोले। भाव यह कि मुनिजी ने जो कुछ कहा है भरतजी का दुःख उससे व्यतिरिक्त है। यदि वही दुःख होता तो बोलने के लिए अवकाश नहीं था।

मुनि समाजु अरु तीरथ राजू। साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू॥
एहि थल जौं किछु कहिअ बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई॥१॥

अर्थ : मुनियों का समाज और तीर्थों के राजा प्रयागराज यहाँ सच्चा शपथ लेने से भी हानि को पराकाष्ठा है। यहाँ पर यदि कुछ बनाकर कहा जाय तो इसके बराबर या अधिक पाप और नीचता नहीं है।

व्याख्या : सच्ची शपथ लेना भी धर्मशास्त्र से गर्हित है। फिर झूठी शपथ के लिए क्या कहा जाय। उससे तो बड़ा भारी पाप होता है। कोई अधम ही ऐसे पाप करने का दुःसाहस करेगा। उसमें भी तीर्थ पुण्य पाप के लिए उर्वरा भूमि है। इसमें किया हुआ पाप शतगुण सहस्रगुण अधिक हो जाता है। यह तो तीर्थराज प्रयाग है। तिस पर जङ्गम तीर्थराज साधु समाज के बीच में बैठा हुआ हूँ। मुनिजी ने कहा था : सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। यहाँ पर भरतजी कहते हैं कि मैं झूठ नहीं कहता हूँ। मुनिजी यति हैं। अतः झूठ न कहने का कारण अपनी विरक्तता बतलाते हैं। भरतजी गृहस्थ हैं। अतः झूठ न कहने का कारणरूप से स्थल की महत्ता कहते हैं। भाव यह कि अपनी अपनी बातों पर सन्देह दोनों महापुरुषों को है कि श्रोता झूठ समझेंगे।

अतः मुनि समाज अरु तीरथ राजू कहकर भरतजी शपथ ग्रहण कर रहे हैं। कहते हैं कि इस स्थल में सच्ची बात में भी यदि अलङ्कारादि रचना से कुछ बनावट की जाय तो इसके समान पाप नहीं है। नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा। उस असत्य का पुट भी यदि इस स्थल में आ जाय तो उसके समान पाप कोई नहीं और ऐसे पाप करनेवाले सा अधम कोई नहीं। इससे अधिक पाप और अधमाई क्या होगी। भाव यह कि जो कुछ मैं कहूँगा वह निवारण सत्य होगा। अर्थवाद को भी स्थान नहीं है।

तुम्ह सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ। उर अंतरजामीं रघुराऊ ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू ॥२॥

अर्थ : आप सर्वज्ञ हैं। मैं सच्चे भाव से कहता हूँ। रामजी हृदय की बात जाननेवाले हैं। मुझे माता की करतूति का सोच नहीं है और न इस बात का दुःख है कि संसार मुझे नीच समझेगा।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि तिस पर यह बात है कि आप सर्वज्ञ हैं। आपके सामने बनावट नहीं चल सकती और न जिसके विषय में कुछ कहना है उसी के सामने कोई बनावट चल सकेगी। क्योंकि रघुराज रामजी उर अन्तर्यामी हैं। आपने कहा : तुम गलानि जिय जनि करहु समुझि मातु करतूति। अतः मुझे माता की करतूति का सोच नहीं है। आपने कहा : तात गलानि करहु जिय जायें। अतः मुझे संसार के यह समझने का कि भरत नीच हैं : कोई दुःख नहीं है। क्योंकि श्री मुख से उसका निराकरण हो चुका।

नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू ॥
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाए। लछिमन राम सरिस सुत पाए ॥३॥

अर्थ : परलोक बिगड़ने का भी मुझे डर नहीं है। पिताजी के मरने का भी मुझे सोच नहीं है। उनका सुन्दर पुण्य और कीर्ति संसार में भर उठी है और लक्ष्मण तथा राम ऐसे उन्हें पुत्र मिले हैं।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं : आपने कहा कि करतेहु राज त तुमहि न दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू। सो मुझे इस बात का डर नहीं है कि राज्य ग्रहण से परलोक बिगड़ेगा। अथवा जो मैं पिता का वचन न मानकर जा रहा हूँ इससे परलोक बिगड़ेगा। इस बात का डर मुझे नहीं है। भले ही मेरा परलोक बिगड़े। पर रामजानकी और लक्ष्मण को सुख हो।

और क्या कहें पिताजो के मरने का भी मुझे सोच नहीं हैं। यथा : भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन। अब गुरु मुख से सुने हुए अशोच्य प्रतिपादक प्रसङ्ग के अनुकूल पिता का अशोच्य होना कहते हैं। यथा :

सोचनीय नहि कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जसपिता तुम्हारा॥
बिधि हरिहर सुरपति दिसिनाथा। बरनहि सब दसरथ गुनगाथा॥
दो. कहहु तात केहि भाँति कोऊ करहि बड़ाई तासु।
रामलखन तुम शत्रुहन सरिस सुअन सुचिजासु॥
सब प्रकार भूपति बड़ भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी॥

राम बिरह तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवनु प्रसंगू॥
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेषु फिरहिं बन बनहीं॥४॥

अर्थ : रामजी के विरह में क्षणभङ्गुर शरीर का परित्याग किया। इसलिए महाराज के शोक का तो कोई प्रसङ्ग नहीं है। परन्तु राम लक्ष्मण और सीताजी पावों में बिना जूता पहिने मुनिवेष धारण किये हुए वन वन में फिर रहे हैं।

व्याख्या : गुरुजी ने जो : सब प्रकार भूपति बड़ भागी कहा था उसी को स्पष्ट करते हुए भरतजी कहते हैं कि उनके मरण की विधि में भी उनके बड़े भाग्य ने उनका साथ दिया। यथा : राम बिरह दसरथ मरन मुनि मम अगम सुमीचु। राम विरह में प्राण त्यागना यह इतने बड़े भाग्य की बात है कि मुनि लोग मन से भी इसके पाने की आशा नहीं रखते। इसलिए भरतजी कहते हैं कि चक्रवर्तीजी के सोच करने के लिए तो कोई प्रसङ्ग ही नहीं है।

उपर्युक्त ये चार बातें ही ऐसी थीं जिसके लिए दुःख होना चाहता था। सो उनका मुझे दुःख नहीं है। अब जिस बात का दुःख है उसे कहते हैं। राम लखन जिनके बारे में निषादराज कहता है :

मातु पिता परिजन पुरवासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥
जोगवहिं जिन्हहिं प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ रामु गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ॥
रामचंदु पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही॥

लक्ष्मणजी के विषय में स्वयं भरतजी कह चुके हैं। यथा :

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे॥
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ॥

ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। इन तीनों मूर्तियों के पैरों में कुशकण्टकादि से रक्षा के लिए जूते नहीं हैं। शीत ऊष्ण निवारण के लिए कपड़े नहीं हैं। मुनि का वेष बनाये हुए हैं। त्राण के लिए कोई स्थान नहीं है। वन वन में घूम रहे हैं। राजा का रङ्क की भाँति रहना अति कष्ट कारक है।

दो. अजिन बसन फल असन महि, सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम, आतप बरषा बात॥२११॥

अर्थ : मृगछाला पहनना; फलों का भोजन, कुश और पत्ते बिछाकर पृथ्वी पर सोना और पेड़ों के नीचे रहकर नित्य धूप वर्षा और वात का सहन करना।

व्याख्या : जीवन के जितने आवश्यक साधन हैं उन सब में ही तीनों मूर्तियों को अत्यन्त कष्ट हो रहा है। बहुमूल्य सुखप्रद वस्त्र धारण करनेवालों को मृगचर्म पहनना पड़ रहा है। अमृतवत् सुस्वादु भोजन करनेवालों को अन्न दुर्लभ है। वन्य फलों पर गुजारा करना पड़ रहा है। क्षोर फेन सम मृदु बिछावन युक्त मञ्च : पलङ्ग पर सोनेवालों को कुश पल्लव बिछाकर पृथ्वी पर सोना पड़ रहा है। महल में रहनेवाले पेड़ तले धूप पाला और झंझावात सह रहे हैं। सुख के सब साधन सुलभ हैं। पर उनके उपभोग से वे बिना अपराध के वञ्चित किये गये हैं। भरतजी कहते हैं कि इन चार बातों का मुझे दुःख है।

एहि दुख दाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती॥
एहि कुरोग कर औषधु नाँही। सोधेउँ सकल बिस्व मन माँही॥१॥

अर्थ : इस दुःख की जलन से सदा छाती जला करती है। न दिन को भूख लगती है और न रात को नींद लगती है। इस कुरोग की कोई दवा नहीं है। मैंने मन ही मन सारा विश्व ढूँढ़ डाला।

व्याख्या : चिन्ता ज्वाल सरीर वन दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुआँ नहिं देखिये उर अंतर धुँधुवाय। उर अंतर धुँधुवाय जरै जिमि काँच की भट्टी। जरिगे लोहू मांस रह गयी हाड़ की ठट्टी। कह गिरिधर कवि राय सुनोरे मेरे मीता। सो नर कैसे जियै जासु उर व्यापै चीता।

सो भरतजी को रामजी की चिन्ता रूपी ज्वाला हृदय को जला रही है। क्षण भर भी शान्त नहीं होती। भूख और नींद जाती रही। कहीं विश्राम नहीं। यथा : निसि न नींद दिन भूख नहिं भरत बिकल सुठि सोच। नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सकोच।

यह कुरोग है। इसने नित्यरोग क्षुधा निद्रा को भी दबा लिया है। यथा :

कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुन तन दौन। अथवा इसकी दवा नहीं है इसलिए कुरोग है। यह मानसिक रोग है। इसके शान्ति के उपाय ढूँढ़ने में भरतजी कहते हैं कि मैंने मन से सम्पूर्ण विश्व ढूँढ़ डाला। सद्गुरु वैद्य का भी वचन सुन चुका। कोई औषध हाथ न लगा।

मातु कुमत बढ़ई अघ मूला। तेहिं हमार हित कीन्ह बसूला ॥
कलि कुकाठ करि कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवध पढ़ि कठिन कुमंत्रू ॥२॥

अर्थ : माता का बुरा विचार ही पापों का मूल बढ़ई हुआ। उसने हमारे हित को वँसूला बनाया। उसने कलि के कुकाठ का कुयन्त्र बनाया और कठिन कुमन्त्र को पढ़कर अवध में गाड़ दिया।

व्याख्या : भरतजी का कहना है कि इस दुःख से मैं ही दुःखी नहीं हूँ। सम्पूर्ण प्रजा मण्डल का यही हाल है। अचल विपत्ति की नींव पड़ गयी। सम्पूर्ण अयोध्या उजाड़ हुआ चाहती है। इसी बात को यन्त्र के रूपक में कहते हैं। देश के उजाड़ने के लिए बढ़ई वँसूला द्वारा बहेड़े के काठ का यन्त्र बनाता है। कलि शब्द का अर्थ बहेड़े का वृक्ष है और विरोध अर्थ भी है। उस यन्त्र को कुमन्त्र पढ़कर गाड़ा जाता है। इससे वह देश उजाड़ हो जाता है। सिवा उस यन्त्र को उखाड़ फेंकने के देश के बसने का कोई उपाय नहीं। यहाँ कैकेयी का कुविचार ही बढ़ई हुआ। उसने भरतजी के हित को वँसूला बनाकर विरोध-रूपी काठ से वह यन्त्र तैयार किया और : तापस वेष बिसेष उदासी। चौदह बरिस राम बनवासी। इस मन्त्र को पढ़कर अयोध्या में गाड़ दिया : अर्थात् वरदान माँग लिया। अघमूला। यथा : काई कुमति कैकेई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी। अवधि पाठ मानने से भी अर्थ वही रहेगा। पर गाड़ने के स्थान का निश्चय नहीं हो सकेगा।

मोहि लगि यहु कुठाटु तेहिं ठाटा। घालेसि सबु जगु बारहँबाटा ॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसै अवध नहिं आन उपाएँ ॥३॥

अर्थ : उसने यह कुठाट मेरे लिए रचा और सारे लोगों को बारह बाट करके नष्ट कर दिया। रामजी के लौटने से यह कुयोग मिट सकता है। अयोध्या के बसने का उपाय यही है। दूसरा नहीं है।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि यह कुसाज मेरे हित के लिए साजा गया। इससे साजनेवाले की महामूर्खता द्योतित किया। यन्त्र बनानेवाले ने यह न समझा कि इससे भरत का हित नहीं हो सकता उलटा देश उजड़ जायगा। जिस भाँति रामचरण में लीन रहने से अन्तःकरण में स्वाराज्य रहता है। परन्तु बहिर्मुख होने से दश इन्द्रियाँ और मन बुद्धि का मार्ग पकड़कर बारह बाट हो जीव दीन हो जाता है। उसी भाँति रामजी के रहने से सब सुख रहेगा और उनके वन जाने से सम्पूर्ण राज्य नष्ट हो जायगा। रामजी का लौटना ही उस यन्त्र का उखाड़ना है। वे यदि फिर आवें तो अयोध्या बसती है। नहीं तो दूसरा उपाय नहीं है।

भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई। सबहि कीन्ह बहु भाँति बड़ाई॥
तात करहू जनि सोचु बिसेखी। सब दुख मिटिहि राम पग देखी॥४॥

अर्थ : भरत के वचन को सुनकर मुनि ने सुख पाया और सबने बहुत प्रकार से प्रशंसा की और बोले हे तात ! विशेष सोच न करो। रामजी के चरण दर्शन से सब दुःख मिट जायगा।

व्याख्या : भरतजी का वचन सुनकर मुनि भरद्वाज को सुख हुआ। भरतजी का श्रीराम चरणों में प्रीति सूचक वचन सुनने से परमार्थपद परम सुजान को सुख होना स्वाभाविक है। सबने बहुत भाँति से भरतजी की प्रशंसा की अर्थात् भरतजी के भायप, भगति, भरोस, भलाई की बड़ाई की।

मुनिजी सोच करने को नहीं रोकते। क्योंकि यह सोच भी कल्याणदायक है। विशेष सोच न करने की सलाह देते हैं। क्योंकि दूसरी दवा है और वह यह : सब दुख मिटिहि रामपद देखी। भरतजी पहिले कह भी चुके हैं : देखे बिन रघुवीर पद जिय की जरनि न जाय।

इस भाँति सोच को कम करने का आदेश देकर भोजन शयन के लिए आग्रह करते हैं।

दो. करि प्रबोधु मुनिवर कहेउ, अतिथि प्रेमप्रिय होहु।
कंद मूल फल फूल हम, देंहि लेहु करि छोहु॥२१२॥

अर्थ : समझाने के बाद मुनिराज ने कहा कि अब तुम प्रेमप्रिय अतिथि होओ और कन्द मूल फल फूल जो कुछ हम दें कृपा करके उसे स्वीकार करो।

व्याख्या : आतिथ्य सत्कार की स्वीकृति के लिए पहिले प्रबोध किया। चित्त का कष्ट मिटाया। उचित आतिथ्य की योग्यता अपने में न समझकर प्रेम प्रिय होहु कहते हैं। अर्थात् मेरे प्रेम को स्वीकार करो। तुम्हें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। कृपा करके मेरा दिया हुआ फल फूल स्वीकार करो। मुझ पर छोह करो। मुनिजी भरतजी की महामहिमा जानते हैं। यथा : जयति बिबुधेश धनदादि दुर्लभ महाराज सम्राज सुखप्रद बिरागी।

सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू। भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू॥
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर भरतजी के मन में सोच हुआ कि कुअवसर में कठिन सङ्कोच आ पड़ा। फिर गुरु की वाणी का गौरव समझकर चरणों की वन्दना करते हुए हाथ जोड़कर बोले।

व्याख्या : भरतजी समझ गये कि भरद्वाजजी हम लोगों को विश्राम देना चाहते हैं। परन्तु यह अवसर सुखोपभोग का नहीं है। मैं सेवा धर्म में हूँ। जब तक स्वामी सुखोपभोग स्वीकार न करें तब तक सेवक सुखोपभोग कैसे करे ! अथवा

भरतजी ने यह सोचा कि मैं तीर्थ में आया हूँ। यहाँ दान करना प्राप्त है। ब्राह्मण का आतिथ्य कैसे स्वीकार करूँ। परन्तु भरद्वाजजी के वचन का उल्लंघन भी नहीं किया जा सकता। वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। तिस पर भरद्वाजजी तापस शम दम दया निधान और परमार्थ पथ में परम सुजान हैं। ये तो नितरां गुरु हैं।

ऐसे अवसर पर गुरुगिरा ही प्रमाण हैं। जहाँ धर्म दूसरा हो और गुरु आज्ञा कुछ भिन्न हो तो गुरु आज्ञा ही बड़ी मानी जाती है। गुरु की आज्ञा पालन में उचित अनुचित विचार को स्थान नहीं है। यथा : कह सिव जदपि उचित अस नाँहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाँहीं।

सिर धरि आयेसु करिअ तुम्हारा। पर धरम येहु नाथ हमारा॥
भरत बचन मुनिवर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए॥२॥

अर्थ : आप की आज्ञा को शिरोधार्य करके पालन करूँ। यही हे नाथ! मेरा परम धर्म है। भरत के वचन मुनिराज को अच्छे लगे। उन्होंने पवित्र सेवकों और शिष्यों को निकट बुलाया।

व्याख्या : सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धर्म यह नाथ हमारा। यही अर्धाली ज्यौं की त्यौं उस प्रकरण में आयी है। जिसमें रामजी उमा के स्वीकार करने के लिए शङ्करजो से अनुरोध करते हैं। वहाँ शङ्करजी की प्रतिज्ञा थी कि एहि तन सतिहि भेट मोहि नाँहीं और रामजी का अनुरोध इसके विपरीत था। यथा : जाइ विवाहहु सैलजहि यह मोहि माँगे देहु। यहाँ शिवजी को भी कुअवसर कठिन सङ्कोच पड़ा था। सामान्य धर्म का परम धर्म से बाध होता है। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करना परम धर्म है। अतः भरतजी ने अपने सामान्य धर्म के प्रतिकूल शिवजी की भाँति गुरु आज्ञा को परम धर्म मानते हुए आतिथ्य को स्वीकार कर लिया।

भरतजी की स्वीकृति से मुनिजी को प्रसन्नता हुई। अतः मन भाए लिखते हैं। भरतजी से छोह करने के लिएं मुनिजी ने कहा था। सो भरतजी नें छोह कर दिया। अतः आतिथ्य सत्कार की तैयारी करनी चाहिए। भरतजी के आतिथ्य का अर्थ है सम्पूर्ण सेना तथा अयोध्यावासियों का आतिथ्य। इसलिए जितने व्यक्ति मुनिजी की सेवा में थे क्या शिष्य क्या भृत्य जो सपने में भी अपने धर्म से विचलित नहीं हुए थे उन्हें निकट बुलाया। भरतजी के आतिथ्य में केवल पुण्यात्मा लोगों से ही काम लिया जायगा। रामजी को मार्ग प्रदर्शन के लिए भी भरद्वाजजी ने इस बात का ध्यान रक्खा। यथा : मुनि बटु चारि संग तब दीन्हें। जिन बहु जन्म सुकृत सब कीन्हें।

चाहिअ कीन्ह भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाए। प्रमुदित निज निज काज सिधाए॥३॥

अर्थ : उनसे कहा कि भरत की पहुनाई करनी चाहिए। इसलिए कन्द मूल

फल जाकर ले आवो। उन्होंने कहा हे नाथ! बहुत अच्छा। सिर नवाया और प्रसन्न होकर अपने अपने काम पर चले गये।

व्याख्या: भरत की पहुनाई करनी चाहिए। इतने में ही जो कुछ कहना था मुनिजी ने कह दिया। जगत् के भरण पोषण करनेवाले भरत की पहुनाई करनी है। अतः इनके अनुरूप कन्द मूल फल ले आवो। मुनिजी के शिष्य सेवक बड़े पटु हैं। मुनिजी के पास अत्युत्तम फल मूलकन्द तैयार भी रहता है। रामजी के सत्कार के समय कहा गया है: कन्द मूल फल अंकुर नीके। दिये आनि पुनि मनहु अमीके।

वे सेवक और शिष्य बड़े शुचि थे। आज्ञा पाकर बड़े प्रमुदित हुए। खोज खोजकर अधिक मात्रा में जल्दी से लाना है। अतः तुरन्त चल दिये और छितरा कर चले फल लाने को कोई फलवाले वृक्षों की ओर चले। कन्द लाने कोई उस ओर चले जिधर उसकी बहुतायत थी। सब ने काम बाँट लिये। इसलिए निज निज काज सिधाये कहा: ऋषियों के सत्कार के लिए तो कन्द मूल ही जायगा।

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं। आयसु होइ सो करहिं गोसाईं॥४॥

अर्थ: मुनिजी को सोच हुआ कि मैंने पाहुन: मेहमान तो बड़ा नेवत दिया है। अब जैसा देवता हो वैसी पूजा भी चाहिए। यह सुनकर ऋद्धि और अणिमादि सिद्धि आयीं। बोलीं हे स्वामिन् जो आज्ञा हो सो हम करें।

व्याख्या: नेवता देना तो सहल है। पर आतिथ्य सत्कार कठिन कार्य है। देवता के स्वरूपानुकूल पूजा होनी चाहिए। बिश्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई। अतः भरत की महामहिमा है। ये बड़े पाहुन हैं। इनके स्वरूपानुकूल आतिथ्य कैसे हो मुनिजी इस सोच में पड़े। रामजी के आने पर सोच नहीं हुआ। क्योंकि उनका मुनिव्रत वेष अहार था। कन्द मूल फल से काम चल गया। पर भरत के लिए तो यह बात नहीं है और राज समाज के साथ हैं। अतः इनका आतिथ्य तो बड़े ठाट बाट से होना चाहिए।

परन्तु भरद्वाजजी की तपस्या और त्याग ऐसा है कि ऋद्धि सिद्धि शिष्यों से पूछती रहती हैं कि हम लोगों की सेवा का समय आ पड़े तो बतलाना। ऋषिजी से जाकर पूछने का उनका साहस नहीं पड़ता। ऋषिजी को उनकी आवश्यकता नहीं। आज शिष्यों में दौड़ धूप देखकर पूछा। अपना अवसर जानकर स्वयं मुनिजी की सेवा में उपस्थित हो गयीं और आज्ञा माँगने लगीं कि हमलोगों को भी कुछ सेवा के लिए हुकुम हो।

दो. राम बिरह ब्याकुल भरतु, सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु स्रमु, कहा मुदित मुनिराज॥२१३॥

अर्थ: मुनिराज ने प्रसन्न होकर कहा कि रामजी के विरह में भरतजी अपने

छोटे भाई और समाज के साथ विकल हैं। सो तुमलोग उनका आतिथ्य सत्कार करके थकावट दूर करो।

व्याख्या : ऋद्धि सिद्धि के इस समय आ जाने से मुनिराज प्रसन्न हो उठे। बोले भरतजी शत्रुघ्नजी और उनका सारा समाज रामविरह से व्याकुल है। मनसे पीड़ित शरीर से श्रमित हैं। यथा : भरत पयादेहि आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू। झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओस कन जैसे। सो इन लोगों की ऐसी पहुनाई हो कि इन लोगों का चित पहुनाई के सुख की ओर खिंच आवे और कुछ समय के लिए विरह भूल जाँय और श्रम जाता रहे।

रिधि सिधि सिर धरि मुनिवर बानी। बड़भागिनी आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई ॥१॥

अर्थ : ऋद्धि सिद्धि ने श्रेष्ठ मुनिजी की वाणी को शिरोधार्य करके अनुमान किया कि हम लोग बड़ी भाग्यवान् हैं। आपस में सिद्धि लोग कहती हैं कि रामजी के छोटे भाई ऐसे अतिथि हैं जिनकी तुलना नहीं।

व्याख्या : ऋद्धि साक्षात् कुबेरजी की धर्मपत्नी हैं। सिद्धियाँ आठ हैं। यथा : १. अणिमा २. लघिमा ३. प्राप्ति ४. प्राकाम्य ५. महिमा तथा ६. ईशित्व ७. वशित्व च ८. तथा गरिमा। ऋद्धि और सिद्धियों ने भरद्वाजजी की आज्ञा शिरोधार्य किया। आज तक मुनिजी ने कभी कोई काम नहीं लिया था। अतः उन लोगों ने अनुमान किया कि हम लोगों का बड़ा भाग्य जगा है। तभी मुनिजी ने सेवा स्वीकार की है। सानुज सहित समाज भरतजी के पहुनाई करने का अवसर मिला और इस समय हमारी की हुई पहुनाई मुनिजी की मानी जायगी। अतः भरतजी को स्वीकार करना पड़ेगा। इससे भी अपने को बड़भागिनी माना। यथा : सीतापति सेवकाई। कामधेनु सत सरिस सोहाई। तथा : मानत सुख सेवक सेवकाई।

सिद्धि लोग आपस में बात करने लगीं कि तस पूजा चाहिअ जस देवता और भरतजी तो रामजी के छोटे भाई हैं। अत बेजोड़ अतिथि हैं। इनके स्वरूपानुकूल पूजा कैसे बनेगी ? भरतजी के बेजोड़ होने के प्रमाण में स्वयं कवि कहते हैं : निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि। कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि।

मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू ॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥२॥

अर्थ : मुनिजी के चरणवन्दन करके आज ऐसा ही काम करना चाहिए जिसमें सारा राजसमाज सुखी हो। ऐसा कहकर उन लोगों ने ऐसे सुन्दर सुन्दर घर बनाये। जिन्हें देखकर विमान विलख उठें।

व्याख्या : भरद्वाजजी कुबेरजी के नाना हैं। ऋद्धि सिद्धि ने सलाह की कि उनके चरणों की वन्दना करके ऐसा तो कर ही डालना चाहिए। जिसमें यदि

भरतजी को सुखी न कर सकें तो उनका समाज तो सुखी हो जावे। ऋद्धि सिद्धि को आशा नहीं है कि वे भरतजी को सुखी करने में समर्थ होंगी। तब उन्होंने सोचा कि यदि उनके समाज को हम लोग सुखी बना सकी तो यह भी भरतजी के सुखी होने का कारण होगा।

ऐसा विचार करके उन लोगों ने अपनी दिव्य शक्ति से क्षणभर में ऐसे घर बनाये जिनके सामने विमान भी कुछ न ठहरें। घर ही सुख के समान का आश्रय है। अतः यही सम्पूर्ण भोग का उपलक्षण है। इसलिए पहिले गृह रचे। विमान की उपमा देकर उन्हें दैवी भोगों से परिपूर्ण कहा तथा अत्यन्त ऊँचा कहा अथवा उन्हें मङ्गम गृह कहा। समाज को टिकाना है। इसलिए नाना प्रकार के गृह बनाये।

भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिनहि अमर अभिलाखे ॥
दासी दास साजु सब लीन्हे। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हे ॥३॥

अर्थ : उन घरों में बहुत सा भोग और ऐश्वर्य भर रक्खा। जिन्हें देखकर देवताओं का जी ललच जाय। दासी दास सब प्रकार के सामान लिये हुए मन में मन मिलाकर उसकी सँभाल करते हैं।

व्याख्या : उन घरों में सब प्रकार के भोग तथा उनके साधन विभूति ऐश्वर्य : को खूब भरा। मकान तो ऐसे बने जिनके टक्कर के विमान नहीं और उनमें सामान ऐसे भरे गये जिन्हें देखकर देवताओं को भी अभिलाषा हो उठे। क्योंकि अवधवासी उनमें ठहरनेवाले हैं। जो ऋद्धि सिद्धि से तथा सुरदुर्लभ सुख से अपरिचित नहीं हैं। यथा : रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई। तथा : सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई।

यदि अनुकूल सेवक न हों तो सम्पत्ति का आनन्द नहीं मिलता। अतः घरों में दासी दास सुख का साज लिए प्रस्तुत हैं। मालिक से मन मिलाकर सेवा करना जानते हैं। चाहते ही ईप्सित पदार्थ प्रस्तुत कर देते हैं। आज्ञा को आवश्यकता नहीं। यथा : मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनिमन मँहु चहैं। भरे कनक कोपर कलस सो तब लिये परिचारक रहैं।

सब समाजु सजि सिधि पल माँही। जे सुख सुरपुर सपनेहु नाँही ॥
प्रथमहि बास दिये सब केही। सुंदर सुखद यथा रुचि जेही ॥४॥

अर्थ : सिद्धियों ने वहाँ पलभर में सब समाज सजा दिये। जो सुख स्वर्ग में भी सपने में न मिले। पहिले तो सबको उनकी रुचि के अनुसार सुन्दर सुखदायी निवास स्थान दिये।

व्याख्या : इतने बड़े समाज को सजने में ऋद्धि सिद्धि को कुछ भी विलम्ब न हुआ। सिद्धियों के लिए यह क्षणभर का काम था। जितना जल्दी पहुनाई आरम्भ हो जाय उतना ही अच्छा। अतः पहिले उन घरों में सब लोगों को टिकाया। इस टिकाने में यथायोग्य से काम नहीं लिया गया। बल्कि यथारुचि से काम लिया

गया। योग्यता पर ध्यान देने से यथेप्सित सुख न मिलता। ये घर देखने में सुन्दर और रहने में सुखद थे।

दो. बहुरि सपरिजन भरत कहुँ, रिषि अस आयेसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव, मुनिवर तपबल कीन्ह ॥२१४॥

अर्थ : फिर कुटुम्ब सहित भरत को निवास दिया। क्योंकि ऋषिजी ने ऐसी ही आज्ञा दी और उन्होंने अपने तप बल से ऐसा वैभव रच दिया जिसे देखकर ब्रह्मदेव को भी आश्चर्य हो।

व्याख्या : सपरिजन भरत के रहने के लिए ऋषिजी ने ऋद्धि सिद्धि कों यह आज्ञा दी कि सबके टिका देने के पीछे इन्हें टिकाना और अपने तपबल से विधि विस्मय दायक विभव उत्पन्न किया। यथा : तप से अगम न कछु संसारा। बिधि विस्मय दायक विभव से त्रिपाद् विभूति का विभव कहा। मुनिजी ने ऐसी व्यवस्था की कि मुनियों का सत्कार तो शिष्य सेवकों के सुपुर्द किया। राज समाज का सत्कार ऋद्धि सिद्धि के सुपुर्द किया और भरतजी का सपरिजन सत्कार तपबल से स्वयं करने लगे।

मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका ॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी ॥१॥

अर्थ : मुनिजी के प्रभाव को जब भरतजी ने देखा तो उन्हें सभी लोकपतियों के लोक छोटे जँचने लगे। सुख समाज की प्रशंसा नहीं हो सकती। जिसके देखते ही ज्ञानी का वैराग्य भूल जाय।

व्याख्या : भरतजो का स्वभाव है कि सबकी खोज लेते हैं। अतः ऋद्धि सिद्धि का भी प्रभाव देखा : राजा जनक की ओर से सीताजी की आज्ञा से ऋद्धि सिद्धि आयी थीं। यथा : सिधि सब सिय आयसु अकिन गयी जहाँ जनबास। लिये संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास। निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती। बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना। सबका खोज खबर लेकर जब अपने डेरे की ओर देखा तो वहाँ की समृद्धि के सामने इन्द्रादि लोकपाल के लोक हलके मालूम पड़े।

वहाँ कैसा सुख समाज था ? इसका वर्णन नहीं हो सकता। क्योंकि वह तो विस्मय दायक विभव था। विधि के सृष्टि के जीव उसका क्या वर्णन कर सकें। उसे देखकर ज्ञानी का वैराग्य भूल जाय। ज्ञानी में वैराग्य की पराकाष्ठा होती है। यह समाज महामाया की कृपा से हुआ। ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। पर भरतजी परम भक्त हैं। इनकी विरति बनी रही। यथा : भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाय।

आसन सयन सुबसन बिताना । बन बाटिका बिहग मृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना । बिमल जलासय बिबि बिधाना ॥२॥

अर्थ : आसन, शय्या, वस्त्र, चँदवा, उपवन, फुलवारी और नाना प्रकार के पक्षी और मृग सुगन्धित फूल और अमृत के समान स्वादिष्ट फल और अनेक प्रकार के निर्मल जलाशय ।

व्याख्या : आसन बैठने के लिए, शय्या सोने के लिए, सुबसन शीत उष्ण निवारण के लिए, वितान क्षुद्र जन्तुओं से रक्षा के लिए । बन वाटिका विहार के लिए, नाना प्रकार के पक्षी चहचहाने के लिए और मृग कुलेल करने के लिए । अब उन उपवन तथा वाटिका के फल फूल का वर्णन करते हैं । फूल सुगन्धित हैं और फल अमृत के समान स्वादु हैं ।

असन[1] पान सुचि अमिअ अमीं से । देखि लोग सकुचात जमी से ॥
सुर सुरभी सुरतरु सबहीं के । लखि अभिलाषु सुरेस सची के ॥३॥

अर्थ : खान पान और पवित्र अमृत सा जल जिन्हें देखकर लोग यमी की भाँति सङ्कोच करते हैं । सभी के पास कामधेनु और कल्पवृक्ष थे । जिन्हें देखकर इन्द्र और इन्द्राणी को अभिलाष उत्पन्न हो ।

व्याख्या : अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः । १. अहिंसा २. सत्य ३. चोरी न करना ४. ब्रह्मचर्य ५. संग्रह न करना । ये पाँच यम हैं । जिन्होंने इनका व्रत ले रक्खा है वे यमी हैं । इन्हें भोग्य पदार्थ के संग्रह में सङ्कोच होता है । पर यहाँ के भोग्य पदार्थ इतने ऊँचे दर्जे के हैं कि लोगों को उन्हें देखकर यमियों की भाँति सङ्कोच होता है । उनका चित्त कहे देता है कि इनके उपभोग की मेरे में योग्यता नहीं । अमिअ का अर्थ जल भी है । यथा : पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम् । यहाँ प्रथम अमिअ का अर्थ जल है ।

इतने पर भी कोई घाटा न रह जाय । इसलिए सबके पास कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं । जिन्हें देखकर इन्द्र इन्द्राणी को अभिलाष हो कि मेरे नन्दन वन में भी ऐसी कामधेनु और ऐसे कल्पतरु होते । राजसमाज के सुख को देखकर अमर अभिलाखे पर मुनिवर के तपबल से अर्जित सम्पत्ति ऐसी थी कि उसे देखकर इन्द्र इन्द्राणी को अभिलाष हो जावे ।

रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी । सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा । देखि हरख बिस्मय बस लोगा ॥४॥

अर्थ : वसन्त ऋतु हो गयी । शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी । सबको धर्मार्थ काम मोक्ष सुलभ हो गया । माला चन्दन तथा स्त्री आदि में है जिनके : ऐसे भोगों को देखकर लोग हर्ष और आश्चर्य के वश में हो गये ।

---

१. यहाँ अभेद : रूपक सम है ।

व्याख्या : समय का परिवर्तन हो गया। ग्रीष्म ऋतु वसन्त हो गयी। अतः त्रिविध समीर बहने लगा। धमार्थ काम की कौन चलावे मोक्ष भी उस समय सुलभ हो गया। माला और चन्दन का गृही को अधिकार है। क्योंकि ये कामोपभोग की सामग्री हैं और स्त्री शरीर को सांसारिक सुखों का सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है। इसीलिए वनितादिक भोग कहते हैं। जब स्वर्ग के सभी सुख हैं, कामधेनु हैं, कल्पवृक्ष हैं तो अप्सराएँ क्यों न हों? यह सब देखकर लोगों को हर्ष भी हुआ और आश्चर्य भी हुआ कि ऐसा भोग मोक्ष का एकत्रकरण कहीं देखा नहीं गया था और न सुना ही गया था।

दो. संपति चकई भरतु चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ, राखे भा भिनुसार ॥२१५॥

अर्थ : सम्पत्ति चकई हुई, भरतजी चकवा हुए और मुनिजी की आज्ञा मानो खेलवाड़ हो गया। उस रात को आश्रम रूपी पिंजड़े में दोनों को रक्खे ही रक्खे सवेरा हो गया। चकवा चकई का समागम न हुआ।

व्याख्या : चकवा चकई में भोक्तृभोग्य सम्बन्ध है। परन्तु उनका मिलन सूर्य साक्षिक ही होता है रात्रि में वियोग रहता है। यह जानकर मानो किसी खेलवाड़ी ने उन दोनों को रात के समय एक पिजड़े में बन्द कर दिया। यह देखने के लिए इतने सन्निकट होने पर भी दोनों का वियोग कैसे स्थिर रह सकता है। पर उन दोनों के एकत्रित होने पर वियोग बना रहा। दोनों ने एक दूसरे की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। यहाँ तक कि सवेरा हो गया। वैसी ही दशा यहाँ हुई। यहाँ चकवा स्थानीय भरतजी और चकई स्थानीय सम्पत्ति हुई। भानुकुल भानु के न होने से वह समय रात्रि स्थानीय हुआ। उस विशेष रात्रि में मानों भरतजो सम्पत्ति के साथ एक स्थान में मुनिजी की आज्ञा से एकत्रित हो गये। अन्यथा भरतजो सम्पत्ति से दूर रहते थे। यथा : नंदि गाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवास धरम घुर धीरा। पर उस एकत्रित होने से भरतजी के नियम में भङ्ग न हुआ। सम्पत्ति का कोई प्रभाव भरतजी पर नहीं पड़ा। भरतजी की वियोग व्यथा ज्यों की त्यों बनी रह गयी और रात्रि व्यतीत हो गयी। यथा : मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि।

कीन्ह निमज्जनु तीरथ राजा। नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा॥
रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाषी ॥१॥

अर्थ : तीर्थराज में स्नान किया। समाज के सहित मुनिजी की वन्दना की। ऋषिजी की आज्ञा और आशीर्वाद को शिरोधार्य करके दण्डवत् की और बहुत विनय किया।

व्याख्या : तीर्थराज़ में प्रवेश होने के समय भी स्नान और जाते समय भी स्नान की विधि है। सरकार ने भी ऐसा ही किया था। यथा : राम कीन्ह बिश्राम

निसि प्रात प्रयाग नहाइ। चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिर नाइ। सहित समाज पहुनाई हुई थी। अतः सहित समाज सिर नवाया। विदाई माँगा। यहाँ प्रयाग न कहकर तीर्थराज कहा। भाव यह कि यह भी सहित समाज विराजमान हैं।

ऋषिजी की आज्ञा से पहुनाई स्वीकार किया था। अतः जाने के लिए भी आज्ञा माँगी। सो आज्ञा मिली। वन्दना किया था। इसलिए आशीर्वाद मिला कि मनोवाञ्छित सिद्ध हो। अतः आज्ञा और आशीर्वाद दोनों को शिरोधार्य करके दण्डवत् किया। आने के समय भी दण्डवत् किया था। मुनिजी ने सत्कार करने में कुछ उठा नहीं रक्खा। इसलिए बहुत विनती भी की।

पथ गति कुसल साथ सब लींन्हे। चले चित्रकूटहिं चितु दीहे॥
राम सखा कर दीन्हें लागू। चलत देहु धरि जनु अनुरागू॥२॥

अर्थ : रास्ते के जानने में चतुर लोगों को साथ लिया और चित्रकूट में चित्त दिये हुए चले। राम सखा के हाथ का सहारा पकड़े चले जा रहे हैं। मानो देह धारण किये हुए साक्षात् अनुराग ही है।

व्याख्या : सरकार के चलने के समय जब रास्ता दिखाने के लिए शिष्यों को बुलाया तो पचासों आगये और सब कहने लगे कि हमारा सब रास्ता देखा है। पर चार व्यक्तियों को रास्ता दिखाने के लिए पचास तो भेजे नहीं जा सकते। अधिक से अधिक चार जा सकते हैं। अतः मुनिजी ने ऐसे चार को चुना जिन्होंने अनेकों जन्म में बहुत से पुण्य किये थे। शेष शिष्यों का अभिलाष मन में ही रह गया। आज भरतजी को रास्ता दिखाना और इनके साथ पूरा समाज है। अतः आज पचासों की नियुक्ति रास्ता दिखाने के लिए कर दी गयी। अथवा सरकार को रास्ता दिखाने के लिए चारों वेद शिष्य वेष में गये थे और सारे समाज को रास्ता दिखाने के लिए साङ्गोपाङ्ग वेद सरहस्य सोपनिषदं सेतिहास पुराण रास्ता दिखाने चले। पहिले तो चित्तवृत्ति प्रयाग की ओर थी। तीर्थराज को बायाँ देकर जाना नहीं चाहते थे। पर अब तो मन सीधे चित्रकूट में लगा हुआ है।

अत्यन्त प्रेम से शरीर शिथिल है। अतः निषादराज का सहारा लिये चल रहे हैं। मानों शरीरधारी अनुराग हैं। इस समय सखा में वह विनय नहीं है जो प्रथम मिलन के समय था। यथा : राम सखा कर दीन्हे लागू। जनु धनु धरे बिनय अनुरागू। घनिष्ठता अधिक हो जाने से विनय की मात्रा कम हो गयी।

नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया। पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया॥
लखन राम सिय पंथ कहानी। पूछत सखहि कहत मृदु बानी॥३॥

अर्थ : न पावों में जूते हैं, न सिर पर छाया है और प्रेम नेम व्रत और धर्म सब मायारहित है। लक्ष्मण और रामजानकी की पन्थ कथा पूछते चलते हैं और सखा मृदुवाणी से कहता चला जा रहा है।

व्याख्या : राजा लोग जूता तो पहनते हैं पर छाता नहीं लगाते। छाता दूसरे खोले रहते हैं उसी की छाया में चलते हैं। यहाँ न जूता पैर में है न सिर पर छाया है। प्रेम ऐसा है : चलत देह धरि जनु अनुरागू। नेम ऐसा है : गवने भरत पयादहि पाएँ। कोतल संग जाहिं डोरिआएँ। व्रत ऐसा है : नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया और धर्म ऐसा : लखन रामसिय पंथ कहानी। पूछत सखहिं कहत मृदु बानी। इन सब में छल का स्पर्श नहीं। अतः अमाया कहते हैं।

पन्थ कहानी में पहिले लक्ष्मण विषयक प्रश्न किया। क्योंकि वे सर्वार्थकारी थे। तत्पश्चात् प्रभु विषयक प्रश्न है। सीता विषयक प्रश्न सबके पीछे है। क्योंकि वे तो रक्ष्य रहीं। सखा शृङ्गवेरपुर से यमुनातीर तक साथ रहा है। अतः उस कथा को मृदुवाणी से कह रहा है और भरतजी सुनते जा रहे हैं।

राम बास थल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहि रोके॥
देखि दसा सुर बरसहिं फूला। भइ मृदु महि मग मंगलु मूला॥४॥

अर्थ : रामजी के निवासस्थल के वृक्ष को देखने से हृदय में अनुराग रोके नहीं रुकता। यह दशा देखकर देवगण पुष्पवृष्टि करते हैं। पृथ्वी कोमल हो गयी। रास्ता मङ्गलमूल हो गया।

व्याख्या : पन्थ कथा सुनते भरतजी अपने अनुराग को रोके चले जा रहे हैं। तब से वह वटवृक्ष आगया जिसके तले भगवान् ने विश्राम किया था। उसे देखने से अनुराग रोकने पर भी नहीं रुकता। सच्चे अनुरागी अपने अनुराग को छिपाया चाहते हैं पर वह छिपता नहीं। अति सनेह सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनाम। यह भरतजी की यात्रा विधि है।

अब प्रेम की दशा का फल कहते हैं। भक्ति की दशा में पूजन का सौभाग्य मिलना कठिन है। अतः देवताओं ने फूल की वर्षा ऊपर से की। पृथ्वी ने अपनी सहज कठोरता परित्याग किया। कुश कण्टकादि को दूर करके रास्ते को मङ्गलमूल कर दिया। क्योंकि भरतजी के पाँव में जूते नहीं है।

दो. किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात॥२१६॥

अर्थ : बादल छाया करते जा रहे हैं। सुख देनेवाली हवा बह रही है। वैसा रास्ता रामजी को भी नहीं हुआ जैसा भरत को जाने के समय में हुआ।

व्याख्या : भरतजी को छाता नहीं लगा था। अतः बादल छाया करते जा रहे हैं। बादल की छाया के सामने छाता की छाया क्या वस्तु है। ज्येष्ठ का महीना है। सो लू नहीं चल रही है। शीतल मन्द सुगन्ध वायु बह रही है। यद्यपि ऐसी ही बात रामजी के चलने के समय हुई थी। यथा : परसि रामपद पदुम परागा। मानत भूमि भूरि निज भागा। छाँह करहि घन बिबुध गन बरखहि सुमन सिहाँहो। इत्यादि। पर भरत की यात्रा के समय में अधिकता से हुई। राम ते अधिक रामकर दासा।

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ॥
ते सब भये परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू ॥१॥

अर्थ : रास्ते में जड़ चेतन जीव भरे पड़े थे। उनमें जिन्होंने प्रभु को देखा या जिनको प्रभु ने देखा वे सब परमपद के अधिकारी हो गये। भरत के दर्शन से उनका संसाररूपी रोग छूट गया।

व्याख्या : सरकार के दर्शन के विषय में कह चुके हैं : जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ। भवमग अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ। अब भरतजी की विशेषता कहते हैं कि रास्ते के जीवमात्र को परमपद की योग्यता प्राप्त हो गयी। जो चेतन जीव थे उन्होंने प्रभु भरतजी को देखा और जो जड़जीव थे देखने में असमर्थ थे उन्हें प्रभु भरत ने देखा। दोनों कृतार्थ हो गये। जिन्होंने प्रभु को देखा उनकी अन्तःकरणवृत्ति भरताकार में परिणत हुई और ऐसा होते ही उनके सम्पूर्ण कल्मष दूर हो गये। उन्हें परमपद प्राप्ति की योग्यता हो गयी और जिनको भरतजी ने देखा। उनके आकार से भरतजी की अन्तःकरण की वृत्ति आकारित हो गयी। जिसके आकार से परम पुनीत भरतजी की वृत्ति आकारित हो जाय उसके सद्गति में सन्देह ही क्या है? यहाँ प्रभु शब्द भरतजी के लिए आया है। क्योंकि यहाँ भरतजी की प्रभुता कह रहे हैं। मेघनाद वध प्रकरण में देवताओं ने प्रभु कहकर ही लक्ष्मणजी की स्तुति की है। यथा : तुम प्रभु सब देवन्ह निस्तारा। भव रोग को नष्ट होने से अभिप्राय आवागमन से रहित होने का है।

यह बड़ि बात भरत कइ नाँही। सुमिरत जिनहि रामु मन माँही ॥
बारक नाम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ ॥२॥

अर्थ : भरतजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। जिन्हें स्वयं रामजी मन में स्मरण किया करते हैं। संसार में यदि कोई एक बार भी नाम स्मरण करता है वह स्वयं तरता है और दूसरों को तारता है।

व्याख्या : यदि कोई कहे कि यह तो बड़ी भारी बात है। रामजी के दर्शन से तो नेत्रवाले ही तरे। नेत्रविहीनों का कोई उपकार नहीं कहते और भरतजी के कारण चराचर का उपकार हुआ। इस पर कवि कहते हैं कि भरतजी के लिए बड़ी बात नहीं है। जिसके नाम का जप स्वयं रामजी किया करते हैं। यथा : जग जप राम राम जप जेही। उनकी महिमा स्पष्ट ही रामजी से बड़ी है। अब मार्ग के मङ्गलदातृत्व का कारण कहते हैं।

एक बार भी जिसके नाम को लेकर मनुष्य स्वयं भी तर जाता है और दूसरों को भी तारता है। सँभालकर रामजी का नाम लिया जाता है। यथा : बार बार रघुबीर संभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी। संभारि श्रीरघुबीर धरि प्रचारि कपि रावन हन्यौ। महात्मा किनारामजी ने कहा है : सो प्रभु सब में रमि रह्यौ सर्व रूप सब ओर। ताते राम सँभारि गहु सब नामन को मोर। इसीलिए

कहते हैं। जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं। जिसके नाम की इतनी प्रभुता है।

भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता ॥
सिद्ध साधु मुनिवर अस कहहीं। भरतहि निरखि हरषु हिय लहहीं ॥३॥

अर्थ : भरतजी तो रामजी को प्रिय हैं और उनके छोटे भाई हैं। अतः रास्ता मङ्गलदाता क्यों न हो ! यह बात सिद्ध साधु और श्रेष्ठ मुनि गण कहते हैं। और भरतजी का दर्शन करके हृदय से हर्षित हो रहे हैं।

व्याख्या : अपने सत्कार से मनुष्य उतना प्रसन्न नहीं होता जितना कि अपने प्रिय के सत्कार से तथा अपने पुत्र के सत्कार से प्रसन्न होता है। भरतजी तो रामजी को अत्यन्त प्यारे हैं। यथा : भरत सरिस प्रिय को जगमाँहीं। और छोटे भाई होने से पुत्र स्थानीय हैं। अतः रास्ता भरत के लिए रामजी से भी अधिक सुखकारक हुआ। कवि कहते हैं कि ऐसा न होने का कोई कारण नहीं।

ऐसी बातें सिद्ध साधक और स्थितधी महात्मा आपस में कहने लगे और भरतजी का दर्शन करके कृतकृत्य हो गये। सिद्ध लोग चाहने से सिद्धि द्वारा प्रकृति के किसी नियम में परिवर्तन कर सकते हैं। यहाँ आप से आप हो रहा है। साधु लोगों का मनसा वाचा परोपकार करने का स्वभाव है। सो देख रहे हैं कि भरतजी के मार्ग में चलने से चराचर का आप से आप उपकार हो रहा है। मुनि लोग स्थितप्रज्ञ हैं। इन्हें जीवों की परम प्राप्ति योग्यता से हर्ष है। अथवा बिना साधन के ही अपने कल्याण की प्राप्ति से हर्षित हैं।

देखि प्रभाउ सुरेसहिं सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहुँ पोचू ॥
गुरु सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहिं भेंट न होई ॥४॥

अर्थ : यह प्रभाव देखकर इन्द्र को चिन्ता हुई। संसार भले को भला और बुरे को बुरा है। गुरुजी से कहा कि हे प्रभो ! अब ऐसा कीजिये कि राम से और भरत से भेंट न हो।

व्याख्या : प्रकृति में परिवर्तन द्वारा भरत की महामहिमा देखकर उपर्युक्त महानुभावों को तो सुख हुआ। परन्तु इन्द्र को सोच हुआ कि यहाँ तो जड़ पिघल रहे हैं। राम तो करुणासिन्धु हैं। उन्हें पिघलते कितनी देर लगेगी। संसार विचित्र वस्तु है। बुरे को यहाँ भला खोजने से नहीं मिलता। उसी भाँति भले को बुरा नहीं मिलता। यहाँ एक ही वस्तु एक को विष है और दूसरे को अमृत है। निर्णायक कुछ भी नहीं। अतः यही कहना होगा कि अपने भावनानुसार संसार की प्रतीति होती है।

इन्द्र गुरुजी को आज्ञा देते हैं। उनसे उपाय पूछना चाहिए। सो उन्हें ही उपाय बतलाते हैं। यह उनकी आसुरी सम्पत्ति है। कहते हैं कि आप प्रभु हैं। आप में सामर्थ्य है। आप चाहे तो रामजी से भरतजी की भेंट न हो और इसी में हम लोगों का कल्याण है और आप गुरु हैं। हमारा कल्याण साधन कीजिये।

दो. राम सँकोची प्रेम बस, भरत सपेम पयोधि ।
बनी बात बिगरन चहति, करिअ जतनु छलु सोधि ।।२१७।।

अर्थ : रामजी सङ्कोची और प्रेम के वश हैं और भरतजी सुन्दर प्रेम के समुद्र हैं। बनी बात बिगड़ना चाहती है। अतः माया करके कोई उपाय करना चाहिए।

व्याख्या : इन्द्रजी कहते हैं कि रामजी स्वभाव से सङ्कोची हैं। आगे कहेंगे : तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू और प्रेमवश हैं। यथा : रामहि केवल प्रेम पियार। जानिलेहु जो जाननि हारा। ये सङ्कोच प्रेमवश होकर सब कुछ कर सकते हैं और भरत प्रेम के समुद्र हैं। इन दोनों महात्माओं के मिलने की देर है। भरत निश्चय रामजी को लौटा ले जावेंगे। हम लोगों की बात बन गयी है। रामजी राज्य छोड़कर वन आगये हैं। सो सब करा धरा मिट्टी हुआ चाहता है। अतः इनके न मिलने में ही हम लोगों की कुशल है और न मिलने देने का कोई प्रशस्त यत्न नहीं है। माया से ही ऐसा उपाय सम्भव है। क्योंकि वही अघटित घटना पटीयसी है। सो ऐसी माया हम लोगों से साध्य नहीं है। आप गुरु हैं। समर्थ हैं। आप ही कोई ऐसी माया कीजिये जिससे राम और भरत से भेंट न हो।

बचन सुनत सुरगुरु मुसकानें। सहसनयन बिनु लोचन जानें ।।
मायापति सेवक सन माया। करियत उलटि परइ सुरराया ।।१।।

अर्थ : वचन सुनकर वृहस्पतिजी मुसकुराये और हजार आँखवाले को बिना आँख का समझा। बोले हे देवराज ! मायापति के सेवक से यदि माया की जाय तो उलटकर अपने गले पड़ती है।

व्याख्या : देवराज ने तो कहा : करिय जतन छल सोधि। पर गुरुजी मुसकुरा पड़े। सोचा कि इनकी तो यह दशा है : लोचन सहस न सूझ सुमेरू। इन्द्र को हजार आँखें हैं पर क्या एक से भी नहीं सूझता। ये अन्धे ही हैं। यथा : तुलसी स्वारथ सामुहे परमारथ तन पीठि। अंध कहे दुःख पाइहैं दिठियारो केहि डीठि। ये केवल अपना ही स्वार्थ देख रहे हैं। परमार्थ की ओर से मुँह फेर लिया है। अतः ये अन्धे हैं। इन्हें आँखवाला किस हिसाब से कहा जाय।

देवराज से कहा कि रामजी मायापति हैं। इनकी माया सबसे प्रबल है। यथा : सुन खग प्रबल राम कै माया। माया सब सिय माया माहू। वह रामजी की माया उनके सेवक पर बड़ी कृपा करती है। उसे नहीं व्यापती। यथा : नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहिं न व्यापै माया। यदि उनके सेवक से कोई माया करता है तो वह माया उलटकर उस माया करनेवाले के गले पड़ जाती है। यथा : हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते। पीड़ा देनेवाला अपने पाप से ही मारा पड़ता है और साधु समदर्शिता द्वारा भय से छूट जाता है।

तकै नीच जो मीच साधुकी सो पामर तेहि मीच मरै।
बेद बिदित प्रहलाद कथा सुनि को न भगति पथ पाँव धरै ।।

तब किछु कीन्ह राम रुख जानी । अब कुचालि करि होइहि हानि ॥
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥२॥

अर्थ : उस समय तो रामचन्द्र का रुख जानकर कुछ किया था । अब कुचाल करने से हानि होगी । हे देवराज ! रघुनाथजी का स्वभाव सुनो । अपने अपराध से कभी अप्रसन्न नहीं होते ।

व्याख्या : यदि कहो कि पहिले आप ऐसा कर चुके हैं । सरस्वती को प्रेरणा किया था । यथा : बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु । राम जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुर काजु । यद्यपि उस प्रसङ्ग में स्पष्ट वृहस्पतिजी का उल्लेख नहीं आया है । पर मालूम होता है कि देवताओं की ओर से प्रवक्ता गुरुजी ही थे । गुरुजी ने उस समय रामजी का रुख देख लिया था । यथा : जनमे एक संग सब भाई । भोजन सयन केलि लरिकाई । कर्नवेध उपवीत बिआहा । संग संग सब भयउ उछाहा । बिमल बंस यह अनुचित एकू । बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू । तथा : नवगयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान । छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान । रुख देखकर माया के लिए सरस्वती की प्रेरणा की । राम रुख पाकर कुचाल में भी हानि नहीं । यथा : चलेहुँ कुमग पग परहिं न खाले । इस समय रामजी का रुख भरत से मिलने का है । दिन रात सोचते हैं । यथा : रामहिं बंधु सोच दिन राती । इस समय कुचाल करने से रक्षा नहीं है ।

देवता स्वार्थी होते हैं । देवराज होने से इनका महास्वार्थी होना द्योतित किया । यहाँ सुरेश शब्द में यही व्यङ्ग्य है । अब रामजी का स्वभाव देवराज को बतलाते हैं । जिससे व्यवहार करना हो उसके स्वभाव को समझ लेना बड़ा आवश्यक है । उनका स्वभाव है कि अपने अपराध से अप्रसन्न नहीं होते । रामजी को वन हुआ यह उनके प्रति अपराध था । इसलिए सरकार अप्रसन्न न हुए ।

जो अपराधु भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई ॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा । येह महिमा जानहिं दुरबासा ॥३॥

अर्थ : जो भक्त का अपराध करता है वह रामजी के क्रोधाग्नि में भस्म होता है । इसका इतिहास लोक और वेद में भी विदित है । इस महिमा को दुर्वासाजी जानते हैं ।

व्याख्या : भगवान् भक्त के प्रति किये हुए अपराध को नहीं सहते । क्रोध करते हैं और उनके क्रोध करने पर अपराधी फिर नहीं बचता । यथा : बेद बिरुद्ध मही सुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारयौ । और कहा कहौं तीय हरी तबहूँ करुनाकर कोप न धारयौ । सेवक छोह ते छाड़ी छमा तुलसी कहे राम सुभाउ तुम्हारो । तौलो न दाप दल्यो दसकंधर जौ लौ विभीषन लात न मारयौ ।

दो बड़े भारी प्रमाण हैं : लोक और वेद । सो दोनों में यह बात प्रसिद्ध है । तुम्हें नहीं मालूम यह बड़े आश्चर्य की बात है । भक्त की महिमा दुर्वासा ऋषि

जानते हैं। जिन्होंने भक्त अम्बरीष पर क्रोध करके कृत्या उत्पन्न की। तुरन्त भगवान् का सुदर्शनचक्र चला। उसने कृत्या को भस्म करके दुर्वासा को अपना लक्ष्य बनाया। दुर्वासाजी साल भर भागते फिरे। ब्रह्मधाम शिवलोकादि में रक्षा के लिए गये। पर रक्षा न हुई। सुदर्शन से पीछा नहीं छूटा। तब स्वयं भगवान् के शरण गये। उन्होंने कहा कि तुम्हें क्षमा प्रदान तो अम्बरीष ही कर सकता है। अन्ततः भक्त अम्बरीष के शरण जाने पर ही रक्षा मिली।

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही ॥४॥

अर्थ : भरत के ऐसा राम का स्नेही कौन है? संसार तो राम को जपता है और रामजी भरत को जपा करते हैं।

व्याख्या : राजा अम्बरीष भी बड़े स्नेही रामजी के थे। परन्तु भरत ऐसा तो कोई भी नहीं है। यथा : सुनहु भरत रघुबर मन मांहीं। प्रेमपात्र तुम सम कोउ नांहीं। और कहाँ तक कहा जाय सम्पूर्ण संसार राम को जपता है। सो राम भरतजी के स्नेह के ऐसे वशीभूत हैं कि वे सदा भरत भरत भरत जपा करते हैं। सो भरत के अपराधी को कहाँ त्राण मिलेगा। राम भरत के भेंट में बाधक होना भगवत् अपराध और भागवत अपराध दोनों ही है।

दो. मनहु न आनिअ अमरपति, रघुबर भगत अकाजु।
अजसु लोक परलोक दुख, दिन दिन सोक समाजु ॥२१८॥

अर्थ : हे अमरपति! रघुवर भक्त के काम बिगाड़ने की बात मन भी न आने दो। इससे लोक में दुर्यश और परलोक में दुःख होगा और दिन दिन शोक समाज बढ़ेगा।

व्यांख्या : भगवत् का अपराध तथा भागवत अपराध मन में भी स्थान देने योग्य नहीं है। इन्हें मन में स्थान देने से लोक परलोक दोनों बिगड़ता है और सुख तो भाग ही जाता है। निरन्तर शोक की शृङ्खला बढ़ती है। लोग दुर्यश तथा परलोक का दुःख ऐहिक सुख के लिए अङ्गीकार करते हैं। पर भागवतापराध से ऐहिक सुख भी नष्ट हो जाता है और उसे विपत्ति पर विपत्ति आती ही जाती है। दुर्यश तथा परलोक का नष्ट होना ऊपर से होता है। इस बात को दूसरे शब्द में कहा : करै तो उलटि पड़ै सुरराया। मन में स्थान देना ही कार्यारम्भ है। जिसने मन में स्थान दिया वह एक दिन कर बैठेगा।

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवक परम पियारा ॥
मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई ॥१॥

अर्थ : हे देवराज! मेरा उपदेश सुनो। रामजी को सेवक अत्यन्त प्रिय हैं। वे सेवक की सेवा करने से सुख मानते हैं। सेवक से वैर करने से अधिक वैर मानते हैं।

व्याख्या : इन्द्र ने गुरुजी से कहा था : करिअ प्रभु सोई। रामहिं भरतहिं भेंट न होई। उसी का उत्तर गुरुजी देते हैं कि मेरा उपदेश सुनो ! आज्ञा मत दो। सचिव वैद्य गुरु तीन जौं प्रिय बोलहिं भय आस। राज धर्म तन तीनि कर होइ वेगि ही नास। मैं तुम्हारे भले की बात कहता हूँ। रामजी को सेवक के समान कोई प्यारा नहीं। यथा : पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम कोउ प्रिय नाहीं। सो उनका स्वभाव है कि उनके सेवक की यदि कोई सेवा करे तो बड़े सुखी होते हैं। यथा : सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई।

और यदि कोई उनके सेवक से वैर करे तो उसके प्रति अधिक वैर मानते हैं। उन्हें देवता प्यारे हैं। इसमें सन्देह नहीं। पर सेवक के इतने नहीं : सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। हरहरि किये प्रकट प्रहलादा। देवता लोग तो हिरण्यकश्यप द्वारा बहुत सताये गये। पर अवतार न हुआ। पर जब वह भक्त प्रह्लाद को सताने लगा तो खम्भ फाड़कर प्रकट हुए।

यद्यपि सम नहि राग न रोषू। गहहि न पापु पूँनु गुन दोषू ॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥२॥

अर्थ : यद्यपि सम हैं। न उन्हें राग है न क्रोध है। किसी के पाप पुण्य का ग्रहण नहीं करते। विश्व में कर्म को प्रधान कर रक्खा है। जो जैसा करता है वैसा फल पाता है।

व्याख्या : यद्यपि रामजी समता की सीमा हैं। उनमें रागरोषरूपी विषमता नहीं है। यथा : विस्मय हरष रहित रघुराऊ। तुम जानहु सब राम प्रभाऊ। पर विश्व के कार्य सञ्चालन के लिए कर्म को प्रधान बना रक्खा है। यथा : करै जो कर्म पाव फल सोई। निगम नीति अस कह सब कोई। अर्थात् कर्म की प्रधानता में किसी को सन्देह नहीं है। यथा : तुलसी यह तन खेत है मन वच कर्म किसान। पाप पुन्य द्वै बीज है बवैं सो लवै निदान।

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा ॥
अगुन अलेख अमान एकरस। रामु सगुन भये भगत प्रेम बस ॥३॥

अर्थ : फिर भी भक्त और अभक्त के हृदयानुसार वे सम और विषम विहार करते हैं। निर्गुण. निर्लेप अमान और एकरस होते हुए भी रामजी भक्त के प्रेमवश सगुन हो गये।

व्याख्या : यद्यपि रामजी समता की सीमा है। विषमता से रहित हैं। न उन्हें राग द्वेष है न उन्हें किसी के पुण्य से कोई प्रयोजन है। संसार कर्मानुसार सुख दुःख भोगा करता है। फिर भी उनका विहार कभी सम और कभी विषम होता है। जिस भाँति दर्पण सबके लिए समान है। उसे किसी से रागद्वेष नहीं। पर उसमें यदि क्रोधपूर्वक देखें तो दर्पण में क्रोधमयी मूर्ति का और यदि प्रसन्न होकर देखें तो हँसमुख मूर्ति का दर्शन होता है। उनमें भक्त और अभक्त के हृदयों का

भाव प्रतिफलित होता है। ऐसा होने से न तो दर्पण में विषमता आता है और न रामजी में ही विषमता आती है। पर व्यवहार विषम होता है।

रामजी स्वभाव से निर्गुण हैं। निर्लेप हैं। उनमें भेद को स्थान नहीं है। इसलिए अमान हैं और उनमें विकार नहीं होता। इसलिए एकरस हैं। अतः उन्हें अज कहा है। उनका जन्म नहीं होता। परन्तु परम भक्त स्वायम्भू को अभिलाषा हुई कि मैं उनका दर्शन इस चर्म चक्षु से करूँ तो भगवान् को शरीर धारण करना पड़ा। वे निर्गुण से सगुण हो गये। यथा : उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई। अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथवादी। नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा। संभु बिरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना। ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई।

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी ॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई ॥४॥

अर्थ : रामजी ने सदा सेवक की रुचि रक्खी है। वेद पुराण देवता और सन्त इसके साक्षी हैं। ऐसा मन में समझकर कुटिलता छोड़ो और भरतजी के चरणों में सुन्दर प्रीति करो।

व्याख्या : सेवक सेवा धर्म में स्थिर है। कुछ माँगता नहीं। तब सरकार को उसकी रुचि देखकर कार्य करना पड़ता है। वेद पुराण सन्त और देवता रामकथा के जाननेवाले हैं। सो सब जानते हैं कि रामकथा वस्तुतः सेवकों की रुचि रखने की कथा है। सन्तों की रुचि रखने के लिए रामावतार हुआ। यथा : तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरौं देह नहिं आन निहोरे। बाल लीला कुमार लीला आदि सेवकों की रुचि रखने के लिए हुआ। राज्य त्यागकर वनगमन भी सेवकों की रुचि रखने के लिए ही हुआ। यथा : अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहि जोग जप तप तन कसहीं। चलहु सफल श्रम सबकर करहू। राम देहु गौरव गिरिवरहू। अतः रामजी अपने सेवक भरत की रुचि अवश्य रक्खेंगे। इसमें सन्देह नहीं है।

तुम जो कहते हो : करहु जतन छल सोधि यही कुटिलाई। सो कुटिलाई छोड़कर भरत के चरणों में प्रीति करो। भरत तुम्हारा काम नहीं बिगड़ने देंगे।

दो. राम भगत परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत ते, जनि डरपहु सुरपाल ॥२१९॥

अर्थ : हे सुरपति ! भरतजी रामभक्त हैं। परहित में तत्पर रहते हैं। दूसरे के दुःख से दुःखो होनेवाले दयालु हैं। भक्त शिरोमणि हैं। उनसे डरो मत।

व्याख्या : रामभक्त से भी काम नहीं बिगड़ता। यथा : साधु ते होइ न कारज हानी। क्योंकि रामभक्त परहित निरत होते हैं। दूसरे के दुःख से दुःखी होते हैं। उनका स्वभाव दयालु होता है। यथा : संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्न

पर कहै न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता। यहाँ तो भरतजी भक्त शिरोमणि हैं। इनसे डरने की कौन बात है। सो तुम क्यों डरते हो। तुम तो सुरपाल हो। असुरपाल डरें तो एक बात भी है।

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयसु अनुसारी ॥
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहि राउर मोहू ॥१॥

अर्थ : प्रभु सत्यसन्ध हैं। देवताओं के हितकारी हैं और भरतजी रामजी के आज्ञा पालक हैं। स्वार्थ विवश हो। इसलिए तुम विकल होते हो। भरत का दोष नहीं है। तुम्हारा ही अज्ञान है।

व्याख्या : न डरने का कारण कहते हैं। रामजी समर्थ हैं। सत्यसन्ध हैं। जो प्रतिज्ञा की है उसे पूरा करेंगे। यथा : जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा···हरिहौं सकल भूमि गरु आई। निर्भय होहु देव समुदाई : देवताओं के सदा से हित करनेवाले हैं। यथा : जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुमहि नसायो। जब मालिक ऐसा है और भरतजी सेवक हैं आज्ञाकारी हैं तब डरने की तो कोई बात नहीं है। अत्यन्त स्वार्थ के कारण तुम इस पर ध्यान न देकर विकल हो रहे हो। इसमें भरतजी का कोई दोष है ही नहीं। केवल अपने अज्ञान से आप व्यर्थ दुःखी हो रहे हैं।

सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी ॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ ॥२॥

अर्थ : सुरगुरु की श्रेष्ठ वाणी सुनकर देवराज के मन की ग्लानि मिट गयी और प्रसन्नता हुई। देवराज ने हर्षित होकर फूल बरसाया और भरत के स्वभाव की प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : इन्द्र भगवान् देवताओं में श्रेष्ठ हैं। गुरु के वाक्य पर विश्वास है। उनकी संशयोच्छेदिनी वाणी सुनकर ग्लानि मिट गयी। यथा : वंदौं गुरुपद कंज कृपासिंधु नररूप हर। महा मोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर। देवराज प्रसन्न हो गये। देखि दसा सुर वर्षहिं फूला। सो देवराज के सोच से पुष्प वर्षा बन्द हो गयी थी। अब फिर प्रारम्भ हुई। देवराज ने स्वयं हर्षित होकर बरसाया और भरत के स्वभाव की प्रशंसा करने लगे। देवता लोग पहिले से ही भरत के स्वभाव पर मुग्ध हैं। उन्हें भ्रम हो गया था कि यह स्वभाव उनके प्रतिकूल पड़ेगा। जब गुरुजी के वचन से प्रतिकूलता की शङ्का जाती रही तब प्रशंसा करने लगे।

एहि बिधि भरतु चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं ॥
जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेमु मनहुँ चहुँ पासा ॥३॥

अर्थ : इस भाँति भरतजी रास्ते से चले जाते थे। उनकी दशा देखकर मुनि

और सिद्ध सिहाने लगे। जब राम कहकर लम्बी श्वास लेते थे तो मानो चारों ओर प्रेम उमड़ा पड़ता था।

व्याख्या : राम सखा के हाथ का सहारा लिये हुए नंगे पैर बिना छाता लगाये लक्ष्मण राम और जानकीजी के रास्ते की कहानी सखा द्वारा सुनते प्रेम में मग्न चले जा रहे हैं। यह भरतजी के रास्ता चलने की विधि है। उनकी दशा प्रेम में ऐसी हो रही है जिसे देखकर स्थितप्रज्ञ मुनिगण और जीवन्मुक्त सिद्ध को भी ईर्ष्या होती है कि यह दशा मेरी कभी नहीं हुई। सिद्ध सिहाते हैं कि बिना सिद्धि के लिए प्रयत्न किये ही भरत को ऐसी सिद्धि प्राप्त है : किये जांहि छाया जलद सुखद बहइ बरबात। भई मृदु महि मग मंगल मूला। इत्यादि।

भरतजी प्रेम के पयोधि हैं। पयोधि जब उच्छ्वास लेता है तब जल फैल जाता है ज्वार भाटा आजाता है। इसी भाँति जब भरतजी राम कहकर उच्छ्वास लेते हैं तो चारों ओर प्रेम उमगने लगता है। उनके नामोच्चारण में ऐसा दर्द है कि सुननेवाले का हृदय पिघल उठता है। इस दशा को मुनि लोग सिहाते हैं।

द्रवहि बचन सुनि कुलिस पखाना। पुरजन पेमु न जाइ बखाना ॥
बीचबास कर जमुनहि आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए ॥४॥

अर्थ : वचन सुनकर वज्र और पाषाण पिघले जा रहे हैं। पुरजन के प्रेम का तो वर्णन नहीं हो सकता। बीच में मुकाम करके यमुना तीर पहुँचे। जल देखकर आँखों में जल आगया।

व्याख्या : उनके नामोच्चारण में ऐसा दर्द है कि उसका प्रभाव जड़ पदार्थों पर पड़ रहा है। वज्र और पाषाण पिघल रहे हैं। तेन शृण्वन्ति पादपाः। इस महाभरत के वचन से पता लगता है कि पेड़ भी सुनते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि पत्थर और पाषाण भी सुनते हैं और द्रवीभूत भी होते हैं। पर वचन में वैसा ही दर्द होना चाहिए। भरतजी के साथ पुरजन हैं। उनके कान में जब पाषाण को द्रवीभूत करनेवाली वाणी पड़ती है तो उनकी कैसी दशा हुई जाती थी। इसका तो वर्णन नहीं हो सकता।

एक रात्रि रास्ते में निवास हुआ। दूसरे दिन यमुना तीर पहुँच गये। यहाँ यमुना से तीर में लक्षणा है। यमुना जल की श्यामता की उपमा सरकार की शरीर की श्यामता से दी जाती है। यथा : उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम। उसी का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि उस जल के देखने से सरकार की श्याम मूर्ति हृदय पटल पर हो आयी। अतः नेत्रों में जल डबडबा आया।

दो. रघुबर बरन बिलोकि बर, बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह, चढ़े बिबेक जहाज ॥२२०॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी के रङ्ग का सुन्दर जल देखकर समाज सहित भरतजी राम विरह समुद्र में डूबते डूबते विवेकरूपी जहाज पर चढ़ गये।

व्याख्या : जितना आगे बढ़ते जाते हैं विरह की उत्कण्ठा बढ़ती जाती है। रामवास थल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिं रोके। अब तो प्रभु शरीर सम स्याम यमुना जल देख लिया। बस विरह समुद्र में मग्न होने लगे। मग्न होने का भाव यह कि अपने को ही भूलने लगे। समुद्र में डूबनेवाला यदि जहाज पर चढ़ जाय तो बच जाता है। भरतजी भी समाज सहित विवेक जहाज का आश्रयण करके ही डूबने से बँचे। अपने को सँभालना ही विवेक है। यथा : प्रेम मगन मन जानि नृप करि बिवेक धरि धीर। इस भाँति भरतजी ने समाज सहित अपने : स्वरूप को सँभालकर धैर्य धारण किया।

जमुन तीर तेहि दिन करि बासू। भयेउ समय सम सबहिं सुपासू ॥
रातहिं घाट घाट की तरनीं। आई अगनित जाइ न बरनी ॥१॥

अर्थ : यमुनाजी के किनारे उस दिन निवास किया। समयानुसार सबको सुभीता मिला। रात ही रात घाट की नौकाएँ अनगिनती आगयीं। उनका वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या : पहिले जो बात लक्षणा से कहा था उसे अभिधा से कह रहे हैं पहिले कहा था : बीच बास करि जमुनहि आए। सो यमुना में कोई नहीं आता। सो यमुना शब्द ने अपना मुख्य अर्थ छोड़ा और पवित्र शीतल गुणयुक्त तट का ग्रहण किया। भरतजी समाज सहित यमुना तट आये। परन्तु पार नहीं गये। वहीं डेरा डाल दिया। सबके खाने पीने की व्यवस्था करनी थी। सो ऐसी परिस्थिति में जैसा सुभीता सम्भव है वैसा किया गया। इधर पार होने की भी व्यवस्था होने लगी। नियम यही है कि घाटों पर नाव लगी रहती हैं। जिसे आवश्यकता होती है वहीं से लेते हैं। सो रात ही रात सब घाटों से नावों को मँगाकर वहाँ बाँध दिया जिसमें सबेरे पार जाने में सुभीता हो। सेना को नदी के किनारे ठहराने में सुभीता होता है। नहीं तो जल की व्यवस्था में कठिनाई होती है।

प्रात पार भये एकहि खेवा। तोषे रामसखा की सेवा ॥
चले नहाइ नदिहि सिर नाई। साथ निषादनाथु दोउ भाई ॥२॥

अर्थ : सबेरे एक ही खेवा में पार हो गये। अतः राम सखा की सेवा से तुष्ट हुए। दोनों भाई साथ में निषादनाथ स्नान करके और नदी को प्रणाम करके चले।

व्याख्या : यहाँ चले क्रिया का कर्त्ता दोउ भाई है। शब्द स्पष्ट है। इससे यह कल्पना करना कि निषादनाथ दो भाई थे। केवल श्रोता के मनोरञ्जन के लिए है। क्योंकि ऐसा अर्थ करने से चले क्रिया का कर्त्ता ही लापता हो जाता है।

नाव को एक पार से दूसरे पार ले जाने को खेवा कहते हैं। सो रात ही रात नावों को जुटा लेने का यह फल हुआ कि सारा समाज एक खेवा में ही पार हो गया। यह व्यवस्था रामसखा निषादनाथ ने की। अतः उनकी इस सेवा पर

लोग सन्तुष्ट हुए। बड़ी हैरानी बचीं नहीं तो गङ्गा पार होने में चार दण्ड लगा था। यथा : दंण्ड चार मँह भे सब पारा। उतरि भरत पुनि सबहिं सँभारा।

उस पार जाकर स्नान किया। प्रातः कृत्य का उस पार ही किया जाना अनुमित है। चलने के समय नदी को प्रणाम किया। आने के समय प्रणाम नहीं कहा। नदी क. दर्शन होते ही तो विरह सागर में मग्न होने लगे, प्रणाम की सुधि ही न रही। अतः चलते समय प्रणाम कहते हैं। निषादराज के अधिकृत वन प्रदेश में आगये। अतः शत्रुघ्नजी गुरु के साथ न रहकर भरतजी के साथ हैं। इन्तजाम बदल गया।

आगे मुनिबर बाहन आछें। राज समाजु जाइ सबु पाछें॥
तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें। भूषन बसन बेष सुठि सादें॥३॥

अर्थ : आगे मुनिजी की श्रेष्ठ सवारी थी। पीछे सब राज समाज चल रहा था। उसके पीछे दोनों भाई अत्यन्त सादे भूषण वसन और वेष में पैदल जा रहे थे।

व्याख्या : कोई भय नहीं है। इसलिए मुनिजी की सवारी आगे आगे है। मुनिवर के साथ सारा समाज है। मुनिबर बाहन आछे कहने से सबका सवारी पर होना कहा।

सबके पीछे दोनों भाई पैदल जा रहे हैं इससे भी और लोगों का सवारी पर जाना ही सिद्ध होता है। तापस वेष नहीं है। तथापि अत्यन्त सादा शृङ्गार है। महाराज कुमार के भूषण वसन वेष का सादा होना उदासी का लक्षण है। यहाँ दोउ भाई शब्द का तात्पर्य बहुत स्पष्ट हो गया। साथ निषादनाथ दोउ भाई : पद में जो दोउ भाई शब्द आया है उसी को यहाँ दोउ बंधु पयादे शब्द से कह रहे हैं।

सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा॥
जहँ जहँ राम बास बिश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥४॥

अर्थ : सेवक मित्र और मन्त्री के पुत्र उनके साथ थे। लक्ष्मण और राम जानकी का स्मरण करते जाते थे। जहाँ जहाँ रामजी का निवास या विश्राम हुआ था वहाँ वहाँ प्रेम के साथ प्रणाम करते थे।

व्याख्या : भरत पयादेहिं आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू। अतः आज भरतजी का समाज भरतजी के साथ है। सेवक तो साथ हैं ही सुहृद् अर्थात् बालसखा तथा निषादराज साथ हैं। मन्त्री के पुत्र भी साथ में हैं। राजकुमारों के साथ मन्त्री पुत्र रहते हैं। यथा : निरखि राम रुख सचिव सुत कारन कहेउ बुझाइ।

बीच में रामजी के निवासस्थल भी मिले। विश्रामस्थल भी मिले। श्रद्धातिशय से सभी जगह प्रणाम करते हैं। रामजी के क्षणिक संगर्ग से वे तीर्थ हो गये।

दो. मगबासी नर नारि सुनि, धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब, मुदित जनम फलु पाइ ॥२२१॥

अर्थ : रास्ते में रहनेवाले स्त्री पुरुष सुनकर घर के कामकाज छोड़कर दौड़ पड़ते थे और सब लोग उनके रूप और स्नेह को देखकर जन्म लेने का फल पाकर प्रसन्न हो जाते थे।

व्याख्या : रास्ते में के रहनेवाले प्रभु के आगमन का समाचार पाकर अपना काम छोड़कर दौड़े थे। यथा : सुनत ग्रामबासी नर नारी। धाये निज निज काज बिसारी। राम लखन सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई। वे ही भरतजी का आगमन सुनते हैं। अतः उन लोगों ने अति आतुरता से धाम भी छोड़ा काम भी छोड़ा। दौड़ पड़े।

स्वरूप और स्नेह को देखकर प्रसन्न हैं। स्वरूप से सौन्दर्य और स्नेह से स्वभाव अभिप्रेत है। दर्शन करके लोग कृतार्थ होते हैं। जिन्होंने रामजी को नहीं देखा था शोभा सुनकर पछताते थे। वे भी दौड़े। धाम को भी अरक्षित छोड़ा।

कहहिं सप्रेम एक एक पाँहीं। रामु[1] लखनु सखि होंहि कि नाँहीं ॥
बयबपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली ॥१॥

अर्थ : एक दूसरे से प्रेम के साथ कहती हैं कि हे सखी ! ये राम लक्ष्मण हैं कि नहीं हैं। हे आली ! आयु शरीर रङ्ग और रूप तो वही हैं। शील और स्नेह भी सदृश है तथा चाल भी वैसी ही है।

व्याख्या : स्त्रियों का हाल कहते हैं कि उन सबों ने रामजी का दर्शन किया है। तीनों मूर्तियों के नाम से भी परिचित हैं। यथा : सकल कथा तिन सबहिं सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई। भरतजी रामजी के ही सदृश हैं। एकाएक कोई लख नहीं सकता और लक्ष्मण शत्रुसूदन एक रूप हैं। अतः भरत और शत्रुसूदन दोनों भाइयों को देखकर राम लक्ष्मण का भ्रम हुआ जनकपुर में भरत शत्रुघ्न को देखकर एक सखी की उक्ति है : सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसइ भूप संग दुइ ढोटा। स्याम गौर सब अंग सोहाए। परन्तु कुछ सन्देह भी हो रहा है अतः आपस में एक दूसरे से पूछती हैं कि कदाचित् किसी को अधिक जानकारी हो।

अब संशय का कारण कहती हैं कि उम्र भी इन लोगों की उतनी ही है। शरीर भी वैसा ही है। रंग भी वही है। आकृति भी वैसी ही है। इस भाँति शरीर का मिलान करके स्वभाव का मिलान करती है कि शील और स्नेह भी वैसा ही है : जिस भाँति प्रत्येक पुरुष की आकृति और स्वर में भेद होता है उसी भाँति उनकी गति भी भिन्न प्रकार की होती है। इनकी गति भी वैसी ही है। मत्त मंजु कुँजर बर गामी हैं।

———

१. यहाँ सामान्य अलङ्कार है।

बेषु न सो सखि[१] सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा ।।
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ एहि भेदा ।।२।।

अर्थ : हे सखि ! परन्तु वैसा वेष नहीं है और सीताजी भी साथ नहीं हैं। इनके आगे आगे चतुरंगिनी सेना चल रही है। मुख प्रसन्न नहीं है। इनके मन में खेद है इस भेद से सन्देह हो रहा है।

व्याख्या : जिस भाँति समता के तीन कारण हैं उसी भाँति भिन्नता के तीन कारण हैं। एक तो इनका तापस वेष नहीं है : राजसी वेष है। यथा : भूषन बसन बेष सुठि सादे। इनके साथ सीताजी भी नहीं हैं और तीसरा भेद यह बतलाती हैं कि उनके साथ तो कोई भी नहीं था। इनके साथ चतुरङ्गिणी सेना है। फिर भी ये तीनों भेद बहिरङ्ग हैं। अन्तरङ्ग नहीं हैं। इसलिए अन्तरङ्ग लक्षण कहती है कि इन्हें मानस खेद मालूम होता है। वे लोग तो प्रसन्न थे। यथा : आनद उमंग मन, यौवन उमंग तन शोभा को उमंग उमगत अंग अंग है।

तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तेहि सम न सयानी ।।
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी ।।३।।

अर्थ : उसका तर्क स्त्रियों को ठीक जँचा। सब कहने लगीं कि तेरे समान कोई चतुर नहीं है। उसकी प्रशंसा करके और उसकी सत्योक्ति का सम्मान करके दूसरी स्त्री मधुर वाणी बोली।

व्याख्या : उपर्युक्त सखी की युक्ति बड़ी परिष्कृत थी। समता और भेद को उसने गिनकर अलग दिखला दिया। अतः सबके मन में उसकी बात बैठ गयी। सबकी सब उसको सराहने लगी कि तेरे ऐसी सयानो कोई नहीं है। तूने एक एक बात को निगरा दिया।

तत्पश्चात् दूसरी सखी जिसे कथाप्रसङ्ग का परिचय था उसकी प्रशंसा करके उसकी सत्योक्ति की पूजा की अर्थात् कहा कि यह एकदम ठीक कह रही है। यहाँ सम्मान पूर्वक अनुमोदन ही पूजा है और तब सबकी जानकारी के लिए मधुर शब्दों में कहने लगी।

कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू। जेहि बिधि राम राज रस भंगू ।।
भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी ।।४।।

अर्थ : उसने प्रेम के सहित सब कथाप्रसङ्ग कहा कि इस इस भाँति रामजी के राज्याभिषेक में विघ्न हुआ। तत्पश्चात् वह सुभागी भरतजी और उनके शील सनेह की प्रशंसा करने लगी।

व्याख्या : यह आख्यान उसको प्रिय था। इसलिए उसने प्रेम से रामजी के

---

१. यहाँ विशेष अलङ्कार है।

राज्याभिषेक का प्रस्ताव तथा रानी कैकेयी का चक्रवर्तीजी से दो वरदान माँगना तदनुसार रामजी का वन गमन तथा सीता और लक्ष्मणजी का प्रेम से उनका अनुगमन करना वर्णन किया।

तत्पश्चात् भरतजी की प्रशंसा करने लगी कि जिसके लिए सब कुछ हुआ उसने इस अनर्थ का अनुमोदन नहीं किया और गुरु मन्त्री आदि के अनुरोध पर भी राज्य स्वीकार नहीं किया और भाई प्रेम से दुःखी होकर उनके पास जा रहे हैं। भाव यह कि ये दोनों भी उन्हीं राम लक्ष्मण के भाई हैं। इसीलिए वैसा ही रूप स्वभाव और चाल है। ये राम लक्ष्मण नहीं हैं।

दो. चलत पयादें खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि, भरत सरिस को आजु ॥२२२॥

अर्थ : पैदल चलते हैं। फल खाते हैं। पिता ने राज्य दिया उसे छोड़कर रामजी को मनाने जाते हैं। आज कौन भरत के समान है ?

व्याख्या : शील का वर्णन करती है : चलत पयादे खात फल। स्नेह का वर्णन करती है : पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहि। राज छोड़ने का प्रमाण यह है : चलत पयादे खात फल। तब राज्य कौन करेगा ? इसके उत्तर में कहती है : जात मनावन रघुपतिहि। अर्थात् रामजी लौट आवें और राज्य करें। इसलिए उन्हें मनाने जाते हैं। दूसरे के मनाने से उनके मानने की आशा नहीं है। पिता के दिये हुए राज्य को ठोकर मारनेवाला इस समय कौन है ? भाव यह कि चाहे पहिले कोई हुआ हो तो हम नहीं जानती। पर इस समय ऐसा कौन है : अर्थात् कोई नहीं है।

भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू ॥
जो किछु कहब थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहें न होई ॥१॥

अर्थ : भरत का भाईपन भक्ति और आचरण कहते और सुनते दुःख और दूषण का नाश होता है। हे सखि ! जो कुछ कहा जाय सो थोड़ा है। रामजी के भाई ऐसे क्यों न हों !

व्याख्या : पहिले जो शील सनेह सुभाय कह आये हैं उसी को दूसरे शब्दों में भायप भगति और आचरण शब्द से कह रहे हैं। भायप शील के अन्तर्गत भक्ति स्नेह के अन्तर्गत है और आचरण स्वभाव के अन्तगत है। चलत पयादे खात फल : यह भरतजी की भक्ति है। पिता दीन्ह तजि राज : यह भाई पन है और जात मनावन रघुपतिहि : यह आचरण है। इन बातों के कहने सुनने से दुःख और उसका कारण दूषण दूर हो जाता है। अर्थात् भरतजी सबसे बड़े पुण्यश्लोक हैं। यथा : पुण्यसिलोक तात तर तोरे। अतः इनके ऐसा आज कोई नहीं है।

इनके विषय में जो कुछ कहा जायगा वही थोड़ा पड़ेगा। क्योंकि इनके गुण वैखरी के विषय नहीं हैं। इतना ही कहना यथेष्ट है कि ये रामजी के भाई हैं।

रामजी के गुण इनमें वर्तमान हैं। रामजी में कैसा भायप है ? कहते हैं : भरत प्रान प्रिय पार्वाहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। कैसा स्नेह है कि रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती। और कैसा आचरण है कि : राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाँई।

हम सब सानुज भरतहि देखें। भइन्ह धन्य जुवती जन लेखें ॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताँहीं। कैकइ जननि जोग सुत नाँहीं ॥२॥

अर्थ : हम लोग भाई के साथ भरतजी का दर्शन करके पुण्यवान् स्त्रियों की गिनती में आगयीं। भरतजी के गुण सुनकर और दशा देखकर सब पछताती हैं कि यह बेटा तो कैकेयी माता के योग्य नहीं है।

व्याख्या : भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुःख दूषन हरनू। और हम लोगों ने तो इनका दर्शन पाया है। अतः हम लोगों का भी लेखा पुण्यवान् स्त्रियों में हो गया। कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी। पुण्यवान् स्त्रियाँ कह सकती हैं कि हमने अमुक पुण्य किया है। हम लोग अपना कौन पुण्य बतला सकती थीं। पर अब हम भी कह सकती हैं कि हमने भरत शत्रुघ्न का दर्शन किया है। अतः हम लोग भी धन्य युवतियों के लेखे में आगयीं।

भरतजी का गुण सुना : पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहि। और दशा देखी : चलत देह धरि जनु अनुरागू। तो सब पछताने लगीं कि रामजी को वन नाहक हो गया। जब भरतजी राज्य चाहते ही नहीं तो उनके लिए राज्य और रामजी के लिए वन क्यों माँगा ? अतः कैकेयी बड़ी कठोर हृदय है। भरत ऐसा कोमल हृदय बेटे को ऐसा माता का मिलना योग्य कार्य न हुआ। अथवा भरत रामजी के भाई होने योग्य तो हैं : कैकेयी के बेटे होने योग्य नहीं हैं।

कोउ कह दूषन रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन ॥
कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी ॥३॥

अर्थ : किसी ने कहा है कि इसमें रानी का दोष नहीं है। यह सब ब्रह्मा ने किया जो कि हमारे दाहिने : अनुकूल हैं। कहाँ हम लोग लोक और वेद विधि से हीन स्त्रियों में लघु हैं। कुल की करतूत भी मलिन है।

व्याख्या : एक कहती है हम लोगों को विधाता अनुकूल हो गये थे। घर में बैठे इनका दर्शन दिलाना चाहते थे। अतः उन्होंने इस प्रकार उलट फेर कर दिया। शुद्ध हृदय से जो बात निकलती है वह बिना जाने लक्ष्य वेध कर देती है। जो बात भरद्वाज मुनि कहते हैं : बिधि करतब पर किछु न बसाई। वही बात ये स्त्रियाँ बिना जाने कह रही हैं।

ब्रह्मदेव के अनुकूल होने का कारण देती हैं कि यह अघटित घटना कैसे हुई ? हम लोग तो लोक वेद दोनों में हीन हैं। यथा : लोक बेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा। स्त्रियों में भी हम अधम हैं। यथा : उत्तम मध्यम नीच लघु।

चार प्रकार कहा गया है। लघु शब्द अधम के अर्थ में प्रयुक्त है। कुल करतूति मलीनी। यथा : पाप करत निसि बासर जाही। नहिं कटि पट नहिं पेट अघाहीं।

बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा। कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा ॥
अस अनंदु अचरजु प्रतिग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ॥४॥

अर्थ : हम कुदेश और कुगाँव में बसती हैं और बुरी स्त्री हैं और कहाँ दर्शन पुण्यों का फल है। गाँव गाँव में ऐसा आश्चय और आनन्द हो रहा है जैसे मरुदेश में कल्पवृक्ष उग आया हो।

व्याख्या : यहाँ कुदेश से अभिप्राय वन्य देश से है और कुगाँव से भीलों के ग्राम से तात्पर्य है और हम लोग स्वयं बुरी स्त्री हैं। भाव यह कि पथभ्रष्ट, कुलभ्रष्ट, करणीभ्रष्ट, देशभ्रष्ट और धर्मभ्रष्ट। अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महुँ मैं मतिमंद अधारी। हमें यह दर्शन महादुर्लभ है। यह घटना तो ब्रह्मदेव के हमारे दाहिने होने से हुई है।

अनहोनी बात होने से आश्चर्य और परम मङ्गलदायक होने से आनन्द। गोस्वामीजी उदाहरण देते हैं कि जैसे मरुभूमि में कल्पवृक्ष उग जावे। मरुभूमि में कोई वृक्ष नहीं होता। जहाँ तहाँ आक : मदार के पेड़ दिखायी पड़ते हैं। वहाँ आम का होना आश्चर्य और आनन्द की बात है कल्पवृक्ष के लिए कहना ही क्या है। यहाँ अच्छे लोग दिखायी ही नहीं पड़ते। भरतजी ऐसे महापुरुषों के आने की कौन आशा थी ?

दो. भरत दरसु देखत खुलेउ, मगु लोगन कर भागु।
जनु सिंघलवासिन्ह भयेउ, बिधि बस सुलभ प्रयागु ॥२२३॥

अर्थ : भरत दर्शन से रास्ते के लोगों का तो भाग्य खुल गया। जैसे सिंहलदेश : सीलौन के रहनेवालों को भाग्यवश प्रयागराज सुलभ हो गया हो। भारत वर्ष से सिंहल द्वीप जहाज पर जाना होता है।

व्याख्या : सिंहलद्वीप के निवासी लङ्का के पड़ोसी हैं। उनसे प्रयागराज से क्या मतलब ? यदि ऐसी घटना घट जाय कि विधिवश प्रयागराज को ही वहाँ जाना पड़े तो उनके आश्चर्य और आनन्द का क्या ठिकाना है। श्रीगोस्वामीजी ने सत्सङ्ग को जङ्गम प्रयागराज माना है। उसका भी लङ्का के पड़ोस में जाना दुर्घट है। अतः कवि का कथन है कि मगवासी लोगों का भाग्य खुल गया। जिस भरतजी के दर्शन का भरद्वाजजी : तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा : कहते हैं। वह दर्शन रास्ते के निवासियों को अनायास सुलभ हो गया। अतः उनका अहोभाग्य है।

निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा ॥
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा ॥१॥

अर्थ : अपने गुणों के सहित रामजी के गुणग्राम सुनते और रघुनाथजी को स्मरण करते भरतजी चले जा रहे हैं। तीर्थ मुनि आश्रम और देव मन्दिर देखकर स्नान करते हैं और प्रणाम करते हैं।

व्याख्या : इस समय लोगों में भरतजी की चरचा चल रही है। परन्तु भरत चरित्र का आश्रम रामचरित है। रामचरित से पृथक् करके भरत चरित नहीं वर्णन किया जा सकता। अतः भरतजी रास्ते जाते हुए लोगों के मुख से अपने गुणग्राम के साथ ही साथ रामगुणग्राम सुनते चले जा रहे हैं। भरतजी रामगुणग्राम के सुनने के रसिक हैं। अतः सुनत जाँहि क्रिया का कर्म रामगुणगाथा को रक्खा।

रास्ते में तीर्थ मिलते हैं। उन्हीं को पकड़कर मुनि के आश्रम हैं और उन आश्रमों में देव मन्दिर हैं। यह देखकर भरतजी तीर्थ में स्नान करते हैं। आश्रम और मन्दिरों को प्रणाम करते हैं। यथा : कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। तीर्थ प्रायेण पुण्य जलाशय को ही कहते हैं।

मन ही मन माँगहिं बर एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू ॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। वैषानस बटु जती उदासी ॥२॥

अर्थ : मन ही मन यह वरदान माँगते हैं कि राम जानकी के चरणों में भक्ति हो। कोल किरात वन के रहनेवाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी और उदासी मिलते हैं।

व्याख्या : भरतजी तीर्थ आश्रम और देव मन्दिर को जड़ पदार्थ नहीं मानते। इनके भी अधिष्ठात्री देवता होते हैं। उनकी प्रतिष्ठा होती है। अतः उनको प्रणाम करके मन ही मन वरदान माँगते हैं। तीर्थराज से स्पष्ट शब्दों में वरदान माँगा था। सो स्पष्ट शब्दों में उत्तर मिला। अतः दिखावा बचाने के लिए मन ही मन वरदान माँगा। वरदान भी वही है जो तीर्थराज से माँगा था। यथा : सीता राम चरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे।

वन में जा रहे हैं। अतः रास्ते में किरात कोल वन के रहनेवाले मिलते हैं। वानप्रस्थ मिलते हैं। ब्रह्मचारी तथा संन्यासी मिलते हैं। उदासीन गृहस्थ भी मिलते हैं। भरतजी सबको प्रणाम करते हैं। भक्त : आश्वचाण्डालगोखरम्। कुत्ता, चाण्डाल, गौ, गधा सबमें परमेश्वर को देखते हुए सबको प्रणाम करते हैं।

करि प्रनामु पूछहिं जेहि तेही। केहि बन लखनु रामु वैदेही ॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहि देखि जनम फलु लहहीं ॥३॥

अर्थ : प्रणाम करके जिस किसी से पूछते हैं कि लक्ष्मण और राम जानकी किस वन में रहते हैं। वे लोग सरकार का सब समाचार कहते हैं और भरतजी को देखकर जन्म का फल प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : जिस ज्ञान का आश्रय करके गोस्वामीजी ने जड़ चेतन जितने जीव हैं सबको प्रणाम किया। उसी ज्ञान का आश्रय करके भरतजी सबको प्रणाम

करते हैं। जी में खटका लगा है : राम लखन सिय सुनि मम नाँऊ। उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ। अत. सबसे वन का नाम पूछते हैं। जिसमें लक्ष्मण राम जानकी निवास करते हैं। जैसे मुहल्ले और नगरों के नाम होते हैं उसी भाँति वनों के नाम भी होते हैं।

तब वे लोग प्रभु का समाचार बतलाते हैं। भरतजी तो केवल वन का नाम पूछते हैं। पर वे भरतजी को आर्त देखकर सब समाचार जो उन्हें मालूम हैं बतलाते हैं और भरतजी के दर्शन से उनका जन्म सुफल हो जाता है। भरद्वाजजी ने कहा ही है : तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा।

जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे ॥
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम बनबास कहानी ॥४॥

अर्थ : जो लोग कहते हैं कि हमने देखा है वे कुशल से हैं। उन्हें राम लक्ष्मण के समान प्रिय माना। इस प्रकार सबसे सुन्दर वाणी द्वारा पूछते और रामजी के वनवास की कहानी सुनते चले जाते हैं।

व्याख्या : प्रिय का कुशल कहनेवाला भी परम प्रिय होता है। यथा : जे कहिहैं आए राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। ते तुलसी प्रिय मोहि लागि है ज्यौं सुभाय सुतचारी। शुभ समाचार देनेवाला प्रिय माना जाता है। उसे पुरस्कार दिया जाता है। अतः कुशल कहनेवाले ऐसे प्रिय लगे जैसे राम लक्ष्मण प्रिय थे।

सबसे पूछने का अभिप्राय यही कि यदि सब लोग एक ही वन का नाम लें तो निश्चय हो जाय कि मेरा नाम सुनकर वन छोड़कर अन्यत्र नहीं गये। दूसरी बात यह है कि भरतजी रामचरित के रसिक हैं। सबसे पूछने से कुछ न कुछ नयी बात मालूम ही होती है।

दो. तेहि वासर बसि प्रातहीं, चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥२२४॥

अर्थ : उस दिन रहकर सवेरे ही रघुनाथजी को स्मरण करके चले। भरतजी ही के समान सब साथ में रहनेवालों को रामजी के दर्शन की लालसा है।

व्याख्या : वन में ही डेरा डाला। सवेरा होते ही चल पड़े। पता चल गया कि सरकार का निवासस्थान सन्निकट है। इसलिए रामजी के दर्शन की लालसा बढ़ी हुई है। जैसी भरत को लालसा है वैसी ही सब साथवालों को है। अतः सबको बड़ी जल्दी है। कवि ने भी शीघ्रता की है। कथा संक्षेप में कह रहे हैं। दो शब्द में उस रात का ठहरना कहा। स्मरण में भी संक्षेप कर रहे हैं। पहिले लिखते थे : सुमिरत लखन सीय रघुनाथा। यहाँ कहते हैं : सुमिरि रघुनाथ।

जहाँ नदी किनारे नहीं ठहरते वहाँ स्नानादिक का वर्णन नहीं करते। क्योंकि अवगाह स्नान ही वस्तुतः स्नान है। यथा : बीच बास करि जमुनहि आये और

यहाँ से चलते समय कहते हैं : चले नहाइ नदिहि सिर नाई। लक्ष्मण सीता सहित रघुनाथजी का स्मरण करके प्रस्थान करते थे। आज शीघ्रता में रघुनाथ का ही स्मरण कहा।

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू ॥
भरतहिं सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटहि दुख दाहू ॥१॥

अर्थ : मङ्गल शकुन सब किसी को हो रहा है। सुख देनेवाले नेत्र और भुजाएँ फड़कने लगीं। भरतजी को समाज के सहित उत्साह है कि रामजी मिलेंगे और दुःख का दाह मिटेगा।

व्याख्या : शुभाशुभ सूचक कुछ चिह्न हैं जिन्हें भगवती प्रकृति शुभाशुभ घटनाओं के पहिले प्रकट कर देती हैं। इसके लिए शकुन शास्त्र ही पृथक् बना हुआ है जिसमें उन चिह्न विशेष के फल दिये हुए हैं। यह बराबर घटता है। श्री गोस्वामीजी इनका बार बार उल्लेख करते हैं। यहाँ पर कहते हैं कि मङ्गल सूचक शकुन सबको हो रहा है। सबकी आँखें और भुजाएँ फड़क रही हैं। स्त्रियों के वाम अङ्ग का फड़कना शुभ है और पुरुषों के दक्षिण अङ्ग का फड़कना शुभ है। यथा : भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार। जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार। तथा : जब अति भयेउ बिरह उरदाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू। यहाँ नर नारि दोनों हैं। अतः दक्षिण वाम न कहकर सुखद बिलोचन बाहू कहा।

शकुन विचार करके भरतजी को समाज सहित उत्साह है। क्योंकि प्रिय मिलन ही शुभ शकुन का फल है। यथा : सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। अतः रामजी के मिलन का निश्चय हो रहा है। फलतः वियोगजन्य दुःखदाह के मिटाने की भी दृढ़ आशा है। सो सबके हृदय में उत्साह है। मुनिजी ने कहा भी है : सब दुख मिटिहि रामपद पेखी।

करत मनोरथ जस जिय जाकें। जाहिं सनेह सुरा सब छाकें ॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिह्वल बचन प्रेम बस बोलहिं ॥२॥

अर्थ : जिसके मन में जैसा मनोरथ है वैसा ही मनोराज करते हुए प्रेममयी मदिरा में उन्मत्त हुए सब चले जा रहे हैं। सब अङ्ग शिथिल हैं। पैर भी शिथिल हैं। रास्ते में डगमगाते हुए चल रहे हैं और प्रेमवश विह्वल वचन बोल रहे हैं।

व्याख्या : यहाँ पर सबके प्रेम का वर्णन करते हुए कवि उनकी मद्यपों से उपमा दे रहे हैं। जब मनुष्य सुरापान करके मदोन्मत्त हो जाता है तब अपने मन की बात जोर जोर से कहने लगता है। उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। रास्ते में ठीक ठीक पैर नहीं पड़ते। वही दशा यहाँ हो रही है। सबके सब प्रेममयी मदिरा से उन्मत्त हो रहे हैं। अतः रामजी के दर्शन पाने पर क्या क्या करेंगे। वे सब बातें मन में ही न रखकर मुख से स्पष्ट बोलते जा रहे हैं। प्रिय के मिलने का निश्चय

होने पर मनोरथ उठते हैं। पर उसे व्यक्त कोई नहीं करता। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ। यहाँ मुख से बोलने लगे। शरीर और वाणी की भी वही दशा हो गयी जो शराबियों की होती है। पैर ओखा पड़ता है। हकला हकलाकर बोलते हैं।

राम सखा तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा ॥
जासु समीप सरित पथ तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा ॥३॥

अर्थ : उस समय रामसखा ने उस स्वभावतः सुन्दर पर्वत शिरोमणि को दिखलाया। जिसके समीप पयस्विनी नदी के तीर पर सीताजी के सहित दोनों वीर बसते थे।

व्याख्या : प्रयागराज से ही सब लोग चित्रकूट की ओर चित्त लगाये चले जा रहे थे। यथा : चले चित्रकूटहिं चित दीन्हे। सो चित्रकूट : कामदगिरि दिखायी पड़ने लगा। रामसखा पहिचानता था और उसे पता लग गया था कि सरकार का चित्रकूट के समीप पयस्विनी नदी के तट पर डेरा है। अतः उसने दिखलाया कि वही चित्रकूट दिखला रहा है। चित्रकूट मेरु का शिखर है। वायु देवने मेरु से पृथक् करके यहाँ डाल दिया है। इसलिए सहज सुहावन है और सरकार के निवास से शैलशिरोमणि हो गया। यथा : सैलहिमालय आदिक जेते। चित्रकूट जस गावहिं तेते।

देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा ॥
प्रेम मगन अस राजसमाजू। जिमि फिरि अवध चले रघुराजू ॥४॥

अर्थ : देखकर सब लोग जानकीजीवन रामचन्द्र की जय कहकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। राजसमाज ऐसा प्रेम में मग्न हुआ मानो रामजी अयोध्या लौट-कर चल रहे हों।

व्याख्या : चित्रकूट का महा माहात्म्य है। : शैल शृङ्ग भवभंग हेतु लखु दलन कपट पाखंड दंभ दलु। जहँ जनमें जग जनक जगपति बिधि हरिहरि प्रपंच छलु। त्रिदेव में से किसी से सम्बद्ध होने से ही वह भूमि महातीर्थ हो जाती है और चित्रकूट तो तीनों देव की जन्मभूमि है। यहाँ रुद्र भगवान् दुर्वासा होकर, विष्णु भगवान् दत्तात्रेय होकर, ब्रह्मदेव चन्द्रमा होकर अवतीर्ण हुए हैं और तीनों ब्रह्मज्ञानी ऋषि हुए। उत्पत्ति स्थिति संहार के प्रपञ्च से सम्बन्ध न रक्खा : अतः त्रिदेव की जन्मभूमि होने से इस महातीर्थ का दर्शन करके जनकजी ने रथ परित्याग किया। यथा : गिरिवर दीख जनक नृप जबहीं। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबहीं। अतः सब लोग दण्ड प्रणाम कर रहे हैं। इस समय जानकीजीवन राम का निवास स्थान हो रहा हैं। अतः जानकीजीवन रामजी की जय कहकर दण्डवत् कहते हैं।

दो. भरत प्रेमु तेहि समय जस, तस कहि सकहिं न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख, अह मम मलिन जनेषु ॥२२५॥

अर्थ : उस समय भरत का जैसा प्रेम था वैसा शेषजी भी नहीं कह सकते। कवि को उसका कहना वैसा ही अगम है जैसा अहङ्कार और ममता से मलिन पुरुष को ब्रह्मसुख अगम होता है।

व्याख्या : सारे समाज की दशा कहकर तब भरतजी की दशा कहते हैं कि उनकी दशा तो शेष भी नहीं कह सकते। शेष बड़े प्रेमी हैं, सरकार का साथ नहीं छोड़ते, बड़े वाग्मी हैं, दो सहस्र जिह्वा है। उन्हें अगम नहीं है। पर कह नहीं सकते। गोस्वामीजी कहते हैं कि मुझे अगम है। क्योंकि मुझे अनुभव नहीं है। जैसे ब्रह्मसुख का अनुभव अहन्ता ममता से मलिन हृदय पुरुष को नहीं हो सकता। यथा : मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महामोह निसि सोवत जागू। तथा : मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना। अतः मैं कैसे कह सकता हूँ। जब न द्वैत भासे और न निद्रा हो। उस सुख को ब्रह्मानन्द कहते हैं। अहन्ता ममता से मलिन पुरुष को या तो द्वैत भासेगा या निद्रा होगी। अतः उस ब्रह्मसुख का अनुभव हो ही नहीं सकता।

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें ॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते ॥१॥

अर्थ : सब लोग रामजी के स्नेह में शिथिल हो गये। दो कोस चले। सूर्यं अस्ताचल की ओर अभिमुख हुए। जलाशय देखकर डेरा डाल दिया। सवेरा होते ही रामजी के प्रेमी चल पड़े।

व्याख्या : सब लोग ऐसे स्नेह सुरा से छके थे कि रास्ता चलना असाध्य व्यापार हो पड़ा। शरीर शिथिल है। चलने में डगमगाते हैं परन्तु दर्शन की लालसा से चलना बन्द भी नहीं करते। दिन भर चलते रहे। पर दो ही कोस चल पाये। तब तक सूर्यनारायण अस्ताचल के सन्निकट पहुँच गये।

तब होश आया कि कहीं ठहरना चाहिए। सो जलाशय देखकर ठहर गये। पर रात बीतना कठिन हो गया। रात तीन पहर में ही खतम हो जाती है। चौथे पहर की दिन में गिनती है। सो एक पहर रात रहते ही चल पड़े। ये सबके सब रामजी के प्रेमी हैं। कब भेंट होगी : इस लालसा के कारण बड़ी शीघ्रता है।

## लक्ष्मण क्रोध प्रसङ्ग

उहाँ रामु रजनी अवसेखा। जागें सीय सपन अस देखा ॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए ॥२॥

अर्थ : वहाँ रामजी रात के अन्तिम भाग में जागे। सीताजी ने स्वप्न देखा कि मानो सरकार के वियोग से सन्तप्त भरतजी समाज सहित आये हैं।

व्याख्या : कवि सदा भगवान् के साथ रहते हैं। अतः रामजी के यहाँ का जो कुछ हाल कहना है उस प्रकरण में इहाँ शब्द का प्रयोग करते हैं और दूसरे स्थान

के लिए वहाँ कहते हैं। परन्तु भक्त का प्रसङ्ग आने पर कवि रामजी का साथ छोड़कर भक्त के पास चले जाते हैं। तब उस स्थान को इहाँ और रामजी के पास को उहाँ कहते हैं। इस नियम का निर्वाह सारे ग्रन्थ में कवि ने किया है। अतः इस समय कवि भरतजी के साथ हैं। रामजी के यहाँ की कथा लिखने में उहाँ का प्रयोग करते हैं।

वहाँ अवधवासियों के प्रयाण करने के पहिले ही सरकार जाग गये। उसी समय अर्थात् रात्रि अवशेष में सीताजी ने स्वप्न देखा। जिस स्वप्न का घटना से सम्बन्ध होता है कवि उस स्वप्न का भी उल्लेख करते हैं। सीताजी ने वह सपना रामजी को सुनाया। वे समझती हैं कि यह स्वप्न निरर्थक नहीं है। क्योंकि जागते समय इसे देखा है। सपना देखने के बाद नींद लग जाने से स्वप्न निरर्थक हो जाता है।

और रामजी से कहने लगीं : इतने शब्दों का अध्याहार करना होगा। सपना का हाल कह रही हैं। अतः कहती हैं कि सहित समाज मानो भरतजी आये। अपना प्रातिभासिक सत्य है। व्यावहारिक सत्य की अपेक्षा मिथ्या होता है। अतः मानो शब्द का प्रयोग किया और कहती हैं कि भरतजी समाज के सहित सरकार के वियोग से सन्तप्त हैं। नाथ शब्द का भाव यह कि भरतजी ने राज्य नहीं स्वीकार किया नाथ आप ही को माना। ताप तन ताये का भाव यह कि वियोगाग्नि सहन न हो सकी। मनाने आये हैं।

सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी ॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन ॥२॥

अर्थ : सब मन मलिन हैं। दीन और दुःखी हो रहे हैं और देखा कि सास लोग जैसी थीं वैसी नहीं हैं।

व्याख्या : अब समाज की दशा कहती हैं सब उदास हैं। किसी में प्रसन्नता नहीं बल्कि ऐसे दुःखी हैं कि दीन हो रहे हैं। भाव यह कि मानसिक दुःख से दुःखी हैं। मन की म्लानता से दुःख और दुःख की अधिकता से दीनता है। सास वही हैं पर उनका स्वरूप दूसरा हो रहा है। स्वप्न का कुछ भाग सत्य और कुछ का फल असत्य होता है। यथा : त्रिजटा का स्वप्न : बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी। इतना भाग सत्य हुआ : खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा। इत्यादि का फल असत्य हुआ। इसी भाँति यहाँ भी भरतजी का समाज सहित दुःखी होकर आना सत्य हुआ और : सास आन अनुहारी का फल असत्य हुआ।

सीताजी के स्वप्न के फल का विचार करके आँखों में आँसू भर आया। सरकार सोच विमोचन हैं। फिर भी सोचवश हो गये : ऐसा कहने से सरकार की लीला कही। यथा : जथा अनेक बेष धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ

भाव देखावै आपुन होइ न सोइ। असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी।

लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण ! यह स्वप्न अच्छा नहीं है। कोई बहुत बुरा समाचार सुनावेगा। ऐसा कहकर भाई के साथ स्नान किया और शङ्कर की पूजा करके साधुओं का सत्कार किया।

व्याख्या : जिस समय भगवती ने स्वप्न कहा उस समय लक्ष्मणजी भी पाद वन्दना के लिए आगये थे। अतः सीताजी से कुछ न कहकर लक्ष्मणजी से कहते हैं कि इस स्वप्न का फल अच्छा नहीं है। कोई बड़ा अनिष्ट समाचार सुनावेगा। क्योंकि भरतजी के आने की तो सम्भावना नहीं है। कोई समाचार ही लेकर आवेगा और वह समाचार ऐसा होगा जिसके कारण भरत भी दुःखी हैं। समाज भी दुःखी है और माताओं के स्वरूप में भी अन्तर पड़ा है।

कुछ सपने ऐसे होते हैं जिनका फल होते देखा जाता है। स्वप्नाध्यायी में इसका विस्तार है कि कौन कौन सपने सत्य होते हैं और कौन निष्फल होते हैं तथा किस सपने का फल कितने विलम्ब से होता है। सीताजी का सपना ऐसा था जिसका फल सद्यः होनेवाला था : ऐसा ही सपना त्रिजटा का था।

स्वप्न दोष निवारण के लिए प्रातः स्नान, शिव पूजन, दानादि का विधान है। अतः मर्यादा पुरुषोत्तम ने भाई के साथ स्नान किया। शिव पूजन किया तथा मुनियों का सम्मान किया।

छं. सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे सकल प्रभु आश्रम गये ॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥

अर्थ : देवता तथा ऋषियों का सम्मान करके बैठे तो उत्तर की ओर देखने लगे। आकाश में धूलि है और चिड़ियाएँ तथा मृग भागे हुए प्रभु के आश्रम में पहुँचे। तुलसीदास कहते हैं कि यह देखकर उठे कि क्या कारण है और चकित रह गये। उस समय कोल किरातों ने आकर सब समाचार सुनाया।

व्याख्या : सरकार स्वप्न की यथासाध्य शान्ति करके बैठे। उत्तर की ओर विशेषता दिखायी पड़ी। अतः उस ओर देखने लगे। सेना के आगमन का चिह्न दृष्टिगोचर होने लगा। धूरि पूरि नभ मण्डल रहा। उत्तर से दक्षिण की ओर सेना आ रही है। अतः खग मृग भागकर आश्रम की ओर चले आ रहे हैं। अयोध्या वहाँ से उत्तर ही पड़ती है। विशेष दृष्टि प्रसार के लिए उठे। चकित होकर देखते हैं कि धूलि

उठने और खग मृग के भागने का कारण क्या है। किरात कोलों ने कहा था : हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई। सो सेना का आगमन देखकर उन सबों ने पता लगाया कि किसकी सेना है और आकर पहिले ही सरकार को समाचार दिया।

दो. सुनत सुमंगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल ॥२२६॥

अर्थ : सुन्दर मङ्गल के वचन सुनते ही मन में आनन्द हुआ। शरीर में पुलक हुआ। शरत्काल के कमल से आँखों में तुलसीदास कहते हैं कि प्रेम का जल भर आया।

व्याख्या : भरतजी के आगमन का समाचार सुमङ्गल है। तत्सूचक वचन भी सुमङ्गल है। भरतजी पर सरकार का इतना प्रेम है कि उनके आगमन के समाचार सुनते ही मन में हर्ष हो उठा। शरीर में पुलक हो गया। पुलक होना और नेत्रों में जल भर आना ये अनुभाव है। जो शोक और हर्ष दोनों में होते हैं। यथा : सकल सखी गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना। नारदहूँ यह भेद न जाना। दस एक समुझव बिलगाना। सरकार ने कुछ कहा नहीं। अतः यह पता न लग सका कि यह सजल नयन और पुलक तन किस विभाव का अनुभाव है।

बहुरि सोच बस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगवनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥१॥

अर्थ : फिर जानकी नाथ सोच में पड़ गये कि भरत के आने का कारण क्या है ? फिर एक ने आकर कहा कि उनके साथ थोड़ी चतुरङ्गिनी सेना नहीं है।

व्याख्या : पहिले सीताजी का सपना सुनकर सोचवश हुए थे। यथा : भये सोचबश सोच विमोचन। अब भरतजी का आगमन सुनकर रामजी फिर सोचवश हुए। सोच यह कि भरत के आने का कारण नहीं मालूम होता। पिताजी ने राज्य के लिए कह ही दिया था। मैंने भी उसका बार बार अनुमोदन किया। यथा : भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। और हमारे तथा : कहब संदेस भरत के आए। नीति न तजिअ राजपद पाये। फिर पिताजी के आदेश के प्रतिकूल यहाँ आने का कारण क्या ?

पहिले किरात ने आकर केवल भरतजी के आगमन का समाचार दिया। जैसा सुना था वैसा ही उसने खबर दिया। जब उन सबों ने आँखों देखा कि बड़ी भारी सेना है। यह तो अङ्गरक्षक सेना नहीं है। आक्रमणोपयोगी सेना है। तब दूसरी खबर भेजने की आवश्यकता हुई। क्योंकि सेना का चलना युद्ध की सूचना देता है और यहाँ रामजी के सिवा दूसरा है कौन ? अतः दूसरे ने यह खबर भी दे डाली।

सो सुनि रामहि भा अति सोचू । इत पितु बच इत बंधु सकोचू ।।
भरत सुभाउ समुझि मन माँहीं । प्रभु चित हित थिति पावत नाँहीं ।।२।।

अर्थ : यह सुनकर रामजी को अत्यन्त सोच हुआ । इधर तो पिता का वचन और इधर भाई का सङ्कोच । भरतजी स्वभाव को मन में समझकर प्रभु का चित्त हित स्थिति को प्राप्त नहीं होता ।

व्याख्या : दूसरे समाचार को सुनते ही सरकार समझ गये कि भरत मेरे अभिषेक की तैयारी किये हुए आ रहे हैं । अतः यह सुनते ही सोच की मात्रा अधिक बढ़ गयी । पिता की आज्ञा और भाई का सङ्कोच इन दोनों में कोई कम प्यारा नहीं है । अतः दोनों पक्षों के लिए इत शब्द का प्रयोग हुआ है । यदि तारतम्य होता तो जिधर अधिक प्रवृत्ति होती उधर के लिए इत और जिधर कम प्रवृत्ति होती उधर के लिए उत आता । ग्रन्थभर में इत उत का इसी भाव में प्रयोग हुआ है । इस समय परिस्थिति ऐसी आगयी कि या तो पिता का वचन छोड़ें या भाई का सङ्कोच छोड़ें । तीसरा मार्ग नहीं है । अतः सरकार को बड़ा सोच हुआ ।

रामजी भरत के स्वभाव को सोचते हैं कि भरत को मेरे चरणों में प्रेम है। यथा : राम चरन पंकज मन जासू । लुबुध मधुप इव तजै न पासू । बहुत सम्भव है कि भरतजी राज्य स्वीकार न करें । तब क्या होगा ? मैं पिता का वचन छोड़ नहीं सकता । भरत राज्य स्वीकार नहीं करता । ऐसी विकट स्थिति में तीसरा मार्ग कौन है जिससे सामञ्जस्य बैठ जाय । ऐसा कोई मार्ग दिखायी नहीं पड़ता ।

समाधान तब भा यह जाने । भरत कहे महु साधु सयाने ।।
लखनु लखेउ प्रभु हृदय खभारू । कहत समय सम नीति बिचारू ।।३।।

अर्थ : तब यह जानकर समाधान हुआ कि भरत मेरी आज्ञा में हैं और सयाने साधु हैं । लक्ष्मणजी ने लखा कि प्रभु के हृदय में सोच है । समयानुकूल नीति का विचार कहा ।

व्याख्या : इस विचार से सामञ्जस्य बैठ गया कि भरत मेरी आज्ञा माननेवाले हैं । यथा : भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाय । तथा : भरत राम आयसु अनुसारी । इसके अतिरिक्त भरत सयाने साधु हैं । मुझे पुत्रधर्म से विमुख होने पर कभी हठ न करेंगे । स्वयं कष्ट सह जावेंगे पर किसी के धर्म पर आघात न होने देगें ।

लक्ष्मणजी सदा प्रभु की चित्तवृत्ति को लखा करते हैं । सो इन्होंने लखा कि सरकार कहते कुछ नहीं पर इनके हृदय में सोच है । सीताजी ने बुरा सपना देखा है और उसका फल सरकार ने कह दिया कि कोई बड़ा अनिष्ट का समाचार सुनावेगा । यह किरात आकर चतुरङ्गिनी सेना के साथ भरतजी के आगमन का समाचार दे रहा है । यह समाचार अति अनिष्टकर तभी हो सकता है जब भरत के मन में पाप आवे । अतः यह अवसर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाने का है । यह विचार का समय

नहीं है कि भरत धर्म की मर्यादा कैसे मिटावेंगे और मुझसे प्रेम करना कैसे छोड़ देगें। अतः समयानुकूल नीतिका विचार कहने लगे।

बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाई। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाई॥
तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी। आपुनि समुझि कहउँ अनुगामी॥४॥

अर्थ : हे स्वामी ! बिना पूछे ही कुछ कहता हूँ। सेवक समय पर ढिठाई करने से ढीठ नहीं होता। आप सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं। मैं सेवक हूँ। अपनी समझ कहता हूँ।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने कहा कि बिना पूछे कुछ कहना ढिठाई है। यह ख्यापन करना है कि मैं बड़ा समझदार हूँ। पर मेरी ढिठाई समय : मौके की है। अतः इस ढिठाई से मैं ढीठ नहीं समझा जा सकता। अथवा यह सेवक का समय है अतः मेरी ढिठाई ढिठाई नहीं है। सेना सिर पर आगयी। उसका सामना करना मुझ सेवक का काम है। प्रभु सर्वज्ञों में शिरोमणि है। मैं अल्पज्ञ जीव हूँ। आप का ही समझना उपादेय है पर मैं अपनी समझ कहता हूँ। भरतजी के आगमन के दो ही कारण हो सकते हैं। एक तो जैसा सरकार सोचते हैं। दूसरा वह जो कि मैं सोचता हूँ।

दो. नाथ सुहृद सुठि सरल चित, सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ, जानिअ आपु समान॥२२७॥

अर्थ : नाथ ! आप सुहृद अत्यन्त सरलचित्त और शील स्नेह के निधान हैं। सबके ऊपर आपकी प्रीति है। सब पर विश्वास है और सबको अपने समान जानते हैं।

व्याख्या : लक्ष्मणजी कहते हैं कि जो मैं सोचता हूँ उसे सरकार सोच नहीं सकते। क्योंकि निष्कारण भला चाहने का आपका स्वभाव है। मन वाणी और कर्म एक रूप है। महात्मा हैं। शील और स्नेह के निधान हैं। आप दुःशील निर्दय स्वार्थी कपटियों की बातें समझ नहीं सकते। क्योंकि सब पर आपका प्रेम है और सब पर विश्वास है। अतः प्रीति प्रतीतिवाली बात ही सोचते हैं। यह सोचना भी ठीक ही है। क्योंकि जो जैसा होता है वैसा ही संसार को देखता है।

बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ मोह बस होहिं जनाई॥
भरत नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना॥१॥

अर्थ : विषयी जीव जब प्रभुता पाते हैं तो वे मूढ़ अज्ञान के वश अपने को जनाते हैं। भरतजी नीतिरत हैं। सुजान साधु हैं। उनकी सरकार की चरणों में प्रीति है। यह सारा संसार जानता है।

व्याख्या : तीन प्रकार के जीव संसार में होते हैं। १. सयाने सिद्ध २. साधक और ३. विषयी। यथा : बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग बेद बखाने।

उनमें से सिद्ध और साधक तो सम्पत्ति पाकर अधिक नम्र हो जाते हैं। यथा : फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि नियराय। पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ। परन्तु विषयी जीव की बात ही दूसरी है। उन्हें सम्पत्ति न रहे, प्रभुता न रहे तभी उनकी चित्तवृत्ति शान्त रहती है। बड़े सीधे और बड़े अच्छे बने रहते हैं। पर जहाँ उनको प्रभुता मिली तहाँ वे होश के बाहर हो जाते हैं। अपने को जनाने की धुन उन्हें सवार हो जाती है। मूढ़ लोग ही विषयी होते हैं। प्रभुता पाने से उनकी मूढ़ता अधिक बढ़ जाती है। तब वे अपनी प्रभुता के ख्यापन के लिए अनर्थ करने लगते हैं। यह साधारण नियम है।

नीतिरत साधु प्रकृति हरिभक्त के प्रभुता पाने से तो संसार को सुख होता है। यथा : बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी। वे सूर्य चन्द्र की भाँति सम्पूर्ण विश्व के सुखदाता हो जाते हैं। परन्तु यहाँ तो अद्भुत बात हुई। भरतजी नीतिरत भी हैं और साधुओं में सुजान हैं। उनकी प्रसिद्धि है कि सरकार के चरणों के अनुरागी हैं।

तेऊ आज राज पदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई ॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनबास एकाकी ॥२॥

अर्थ : वे भी आज राज्यपद पाकर धर्म की मर्यादा को मिटा चले। जो कुटिल कुबन्धु होते हैं वे कुअवसर देखनेवाले होते हैं। उन्होंने रामजी को वनवास में अकेला जानकर।

व्याख्या : अतः यह ठीक है : श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि। देखिये जिन भरतजी में आज के पहिले ऐसे उत्कृष्ट गुण थे आज जब उन्हें राजपद मिल गया तो धर्म की मर्यादा मिटाकर चल पड़े। धर्म में कर्म ज्ञान उपासना तीनों का अन्तर्भाव है। सो भरतजी ने तीनों मिटाया : कर्मपथ से विचलित हुए। यथा : भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंक अब जीवन हानी। ज्ञान भी नहीं रह गया : सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनि हारा। उपासना भी गयी : जानहि सानुज रामहि मारी। करौं अकंटक राज सुखारी।

भरतजी की इस करणी को देखकर पता चलता है कि अपने को असमर्थ पाकर अपने रूप को छिपाये रहे। राज पाने पर अपने यथार्थ रूप को प्रकट कर दिया। भरत कुबन्धु हैं। सुबन्धु तो कुअवसर में सहाय होते हैं। यथा : होंहि कुठायँ सुबंधु सहाये। ये कुअवसर के ताक में रहे। वह कुअवसर अब मिला। अयोध्या में तो सारी प्रजा आपके साथ है। वहाँ आपका क्या कर सकते थे? यहाँ देखा कि वन में अकेले हैं। यद्यपि आप अकेले नहीं हैं। पर वे जानते हैं कि अकेले हैं। सरकार सुठि सरल हैं। भरत कुबन्धु हैं। सरकार सील सनेह निधान हैं। भरत कुअवसर ताकी हैं। सरकार को तो : सब पर प्रीति प्रतीति जि है और भरत अकंटक राज करने आये हैं।

करि कुमंत्रु मन साजि समाजू । आए करइ अकंटक राजू ।।
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई । आए दल बटोरि दोउ भाई ।।३।।

अर्थ : मन में बुरी सलाह ठानकर और समाज सजाकर अकण्टक राज्य करने आये हैं। करोड़ों प्रकार की कुटिलता की कल्पना करके दोनों भाई सेना इकट्ठी करके आये हैं।

व्याख्या : अतः आप अपने समान भरत को न समझिये। इन्होंने अपने मन में कुमन्त्र विचारा है। इसलिए साज समाज छोड़कर अकण्टक राज करने चले हैं। माता से जो कसर रह गयी उसे पूरा करने चले हैं। उसने १४ वर्ष के लिए सरकारी वनवास माँगा। पर चौदह वर्ष के बाद तो क्षत्रिय अपना धर्म सँभाले गा ही। राज्य के लिए युद्ध होगा ही। ऐसा निश्चय करके भरत आपको अकण्टक समझते हैं। अतः कण्टकोद्धार के लिए सेना इकट्ठी करके आये हैं।

इन्होंने करोड़ों प्रकार से कुटिलता की कल्पना की है। अपने में कुटिलता है। इसलिए आप ऐसे महापुरुष में उन्हें करोड़ों प्रकार की कुटिलता दिखायी पड़ रही है। शत्रुघ्न भी षड्यन्त्र में सम्मिलित हैं। अतः दोनों भाई सेना लिये आ रहे हैं।

जौ जिय होति न कपट कुचाली । केहि सोहात रथ बाजि गजाली ।।
भरतहि दोसु देइ को जाएँ । जग बौराइ राजपद पाएँ ।।४।।

अर्थ : यदि इनके जी में कपट कुचाल न होती तो रथ घोड़े और हाथियों की पंक्ति किसे अच्छी लगती। व्यर्थ ही भरत को दोष कौन दे। राजपद पाने पर सभी उन्मत्त हो जाते हैं।

व्याख्या : यदि कहिये कि भरतजी सरकार से मिलने आये हैं। उनके मन में कपट कुचाल नहीं है। उनके मन में सरकार के वनवास होने का दुःख है। अतः राजा होने पर भी भाई की समवेदना से मिलने आ रहे हैं तो यह बात भी नहीं है। यदि दुःखी होते तो उन्हें यह ठाट बाट अच्छा न लगता। उन्हें ठाट बाट इतना प्रिय है कि केवल भेंट करने के लिए चतुरङ्गिनी सेना साथ लिये हुए है। यही इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि उन्हें सरकार के वनवास का दुःख नहीं बल्कि खुशी है।

अपनी बात की पुष्टि करते हुए लक्ष्मणजी कहते हैं कि यही संसार का नियम है कि जो राजपद पा जावे वही पागल हो जाय। अतः हमारा भरतजी को दोष देना व्यर्थ है जो दोष सभी से हो जाता हो उसके लिए किसी एक को दोषी नहीं कहा जा सकता।

दो. ससि गुरु तिय गामी नहुषु, चढेउ भूमिसुर जान ।
लोक बेद तें बिमुख भा, अधम को बेन समान ।।२२८।।

अर्थ : चन्द्रमा ने गुरु स्त्री से गमन किया। नहुष ब्राह्मणों के द्वारा ले चलने-

वाले यान पर चढ़े। राजा बेन सा अधम तो कोई नहीं हुआ। क्योंकि वह लोक और वेद दोनों से विमुख हुआ।

व्याख्या : उदाहरण देते हैं। चन्द्रमा ने राज्य पाकर : औषधियों और ब्राह्मणों के पति होकर महापातक किया। गुरुतल्पग हुए। क्या संसार अन्य सुन्दरियों से रिक्त हो गया था। नहुष राजा इन्द्रत्व पाकर ऐसे यान पर चढ़ने की धृष्टता की जिसके ढोने में ब्रह्मर्षि लोग लगाये गये थे। क्या संसार में उसे दूसरी सवारी न मिली। ब्रह्मर्षियों के यान पर चढ़ने में क्या कोई विशेष सुख है। राजा वेणु लोक वेद दोनों से गया। न सांसारिक सुख ही किया न धर्म ही कमाया। उसने परमेश्वर से कोई सम्बन्ध न रक्खा। न प्रेमी ही हुआ न वैरी ही हुआ। उसकी आज्ञा थी : न यष्टव्यं न होतव्यं न दातव्यं कदाचन। कोई यज्ञ न करे, हवन न करे और न कोई दान करे। यज्ञ और होम में खाद्य पदार्थ के हवन करने से लोगों की हानि होती है। दान करने से आलसियों की संख्या बढ़ती है। अतः यह कर्म कोई कर न पावे। इसलिए कहते हैं कि बेन सा नीच कौन होगा?

सहस बाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखव काऊ॥१॥

अर्थ : कार्त्तवीर्यार्जुन इन्द्र तथा त्रिशंकु राजा इनमें से किसे राजमद ने कलङ्क नहीं दिया? भरत ने यह उचित उपाय किया कि शत्रु और ऋण का शेष भी नहीं रखना चाहिए।

व्याख्या : सहस्रबाहु कार्त्तवीर्यार्जुन ने ऋषि की गाय चाही। उन्हें रत्नभुक् होने का मद था और वह जमदग्नि ऋषि की गाय रत्न थी। ऋषिजी ने देने से इनकार कर दिया। इस कलह में ऋषिजी मारे गये। उनके अपराध से इक्कीस बार पृथ्वी निःक्षत्र की गयी। यह कलङ्क राजा सहस्रबाहु को राजमद के कारण लगा। नहीं तो राजा सहस्रबाहु ऐसे योगी थे कि चौदहों भुवन में चौदह शरीर धारण करके एक ही समय में अपना राज्याभिषेक कराया था। इन्द्र रत्नभुक् होने के अभिमान से स्त्रीरत्न अहल्या के जार हुए और घोर दुर्दशा को प्राप्त हुए। आज तक वह कलंक न गया। सहस्र नेत्र के रूप में उनके शरीर में विद्यमान हैं। त्रिशंकु राजा ने सशरीर स्वर्ग जाने की धुन में गुरु वसिष्ठजी का अपमान किया। ऋषि पुत्र के शाप से चाण्डाल हो गये। महर्षि विश्वामित्र की कृपा से ऊर्ध्वगति भी हुई तो आजतक स्वर्ग में उलटे लटके हैं। सो राजमद से सबको कलङ्क लगता ही है।

भरतजी तो राजमद से पागल नहीं हुए। जैसा कि ये लोग हो गये थे। ये तो उचित उपाय कर रहे हैं। नीति शास्त्र कहता है : ऋणशेषोऽग्निशेषश्च व्याधिशेष-स्तथैव च। विवर्धते पुनर्यस्मात् तस्माच्छेषं न कारयेत्। ऋण और शत्रु का शेष भी न रहने देना चाहिए। क्योंकि ये समय पाकर बढ़ जाते हैं। यदि कोई कहे कि हम लोग तो भाई भाई हैं शत्रु कैसे हुए? तो एक भोग्य वस्तु के निमित्त सहोदरों में बड़ा भारी बैर खड़ा हो जाता है। यथा : एकामिषप्रभवमेव सहोदराणामुज्जृम्भते

जगति वैरमिति प्रसिद्धम् । भरत की दृष्टि से आप वैरी हैं । अतः यह प्रयत्न भरतजी का कण्टकोद्धार के लिए है ।

एक कीन्ह नहिं भरत भलाई । निदरे रामु जानि असहाई ॥
समुझि परिहि सो आजु बिसेखी । समर सरोष राम मुखु पेखी ॥२॥

अर्थ : भरत ने एक बात अच्छी नहीं की जो रामजी को असहाय जानकर निरादर किया है । सो आज वह भी विशेष रूप से समझ में आ जायगा जब युद्ध में क्रुद्ध रघुनाथजी का मुख देखेंगे ।

व्याख्या : आज वे असहाय हैं । इसलिए रामजी को असहाय जानकर निरादर करने चले हैं । जब तक रामजी ससहाय थे तब तक तो सेवक ही बने फिरते थे । यथा : प्रभु पद प्रेम सकल जग जाना । उन्होंने समझ लिया है कि रामजी असहाय हैं । पर हैं नहीं । धनुष हाथ में रहते असहाय कैसे हैं ?

भरतजी ने आज तक रामजी का क्रुद्ध मुख देखा ही नहीं है । क्योंकि संग्राम में कभी साथ नहीं रहे । मैंने सुबाहु मारीच के युद्ध में कालानल के सदृश मुख रघुनाथजी का देखा है । वह मुख आज भरतजी को संग्राम भूमि में दिखायी पड़ेगा । तब उन्हें विशेष रूप से समझ पड़ेगा कि रामजी का अनादर करके बहुत ही बुरा किया । यथा : राम बिरोध कुसल चह सठ हठ बस अति अग्य ।

एतना कहत नीति रस भूला । रन रस बिटपु पुलक मिस फूला ॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बल भाषी ॥३॥

अर्थ : इतना कहते हुए नीति रस भूल गया और युद्ध रस रूपी वृक्ष पुलक के व्याज से फूल उठा । प्रभु के चरणों में नमस्कार करके रजको सिर पर चढ़ाया और सच्चे सहज बल की घोषणा करते हुए बोले ।

व्याख्या : उनके रहते सरकार को युद्ध करना पड़ेगा । इस बात को वीर लक्ष्मण सहन नहीं कर सकते । युद्ध में सरकार के मुख के देखने में भरत असमर्थ होंगे । इस बात के मुख से निकालते ही नीतिरस विस्मरण हो गया । क्योंकि रणरस का बड़े वेग से आविर्भाव हुआ । लक्ष्मणजी को पुलक हो गया : मानो रणरस रूपी वृक्ष के लिए बहार आगयी । लक्ष्मणजी मानो स्वयं रणरस हैं और पुलक होना उनका पुष्पित हो उठना है ।

अब फल लग रहा है । युद्ध के लिए आज्ञा माँगेंगे । इसलिए वन्दना करते हैं । भाव यह कि सरकार को धनुष उठाना न पड़ेगा । सरकारी चरण रज के प्रभाव से लक्ष्मण सब करेगा । इसलिए चरणरज सिर पर धारण करते हैं । युद्ध में दर्प करना वीर की शोभा है । अतः दर्प करने में भी लक्ष्मणजी अपने बल को बढ़ाकर नहीं कह रहे हैं । अपने स्वाभाविक बल का सत्य स्वरूप वर्णन करते हैं ।

अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचरा न थोरा ॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! मेरे आचरण को अनुचित न मानियेगा। भरत ने हम लोगों की कम पूजा नहीं की। कहाँ तक सहें और मन मारे रहें। नाथ मेरे साथ हैं और धनुष मेरे हाथ में है।

व्याख्या : लक्ष्मणजी को डर है कि उनके इस आचरण से सरकार अप्रसन्न होंगे। कहेंगे कि तुम अनुचित करते हो। अतः व्यङ्ग से कह रहे हैं कि भरत ने हम लोगों की थोड़ी पूजा नहीं की। माता छोड़ाया। पिता छोड़ाया। कुटुम्ब छोड़ाया। राज्य छोड़ाया। अब हम लोग वन वन मारे फिरते हैं। इतने पर भी सन्तोष नहीं। अब सेना लेकर प्राण लेने आये हैं।

सहने की भी तो कोई सीमा होती है। बिना एक बिन्दु रक्त गिराये हम लोगों ने राज्य छोड़ दिया। घर कुटुम्ब सर्वस्व छोड़ दिया। वन में दुःसह कष्ट बिना एक शब्द मुख से निकाले भोग रहे हैं। तिस पर हमें सेना बल दिखाने आये हैं। तो अब बतलाइये कहाँ तक सहें। यदि कोई कहे कि अनाथ असहाय के लिए अन्य उपाय क्या है ? तो इस पर कहते हैं कि मैं असहाय भी नहीं हूँ। हमारा सहाय धनुष है। मैं अनाथ भी नहीं हूँ। मेरे नाथ मेरे साथ हैं।

दो. छत्र जाति रघुकुल जनमु, राम अनुग. जग जान।
लातहुँ मारे चढति सिर, नीच को धूरि समान ॥२२९॥

अर्थ : एक तो क्षत्रिय जाति दूसरे रघुकुल में जन्म। संसार जानता है कि मैं राम का अनुगामी हूँ। धूल भी लात मारने से सिर चढ़ती है। उसके बराबर तो नीच कोई नहीं है।

व्याख्या : धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते। क्षत्रिय के लिए धर्म युद्ध से अधिक कल्याणकर कुछ भी नहीं। युद्ध हमारे लिए प्रेय भी है श्रेय भी है। दूसरे रघुकुल में जन्म है। जिस कुल में कोई संग्राम में पीठ नहीं दिखाता। तीसरे मैं सरकार का अनुगामी हूँ। ऐसे अवसर पर अनुगामी ही अग्रगामी होता है। अतः मैं चुप नहीं रह सकता। धूल तो महा नीच है। लात खाते हो खाते धूल हुई है। पर उसे कोई हाथ से मारे तो सिर चढ़ जाती है। भरत ने लात तो पहिले मारा। अब हाथ मारने आये हैं। अतः मैं उनके सिर चढ़ जाऊँगा।. आगे बढ़कर भरत से लोहा लूँगा।

उठि करजोरि रजायसु माँगा। मनहु बीर रस सोवत जागा ॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा ॥१॥

अर्थ : उठकर हाथ जोड़ आज्ञा माँगी। मानो वीर रस सोते से जग गया। सिर में जटा बाँधी कमर में तरकस कसा और धनुष को चढ़ाकर हाथ में वाण ले लिया।

व्याख्या : इतना कहकर लक्ष्मणजी उठ खड़े हुए। बिना आज्ञा युद्ध नहीं कर सकते थे। इसलिए रजायसु माँगा। मानो लक्ष्मणजी में वीर रस सो रहा था वह जाग उठा। प्रसुप्तावस्था से उदारावस्था को प्राप्त हुआ। सरकार चुप हैं। सब कुछ सुन रहे हैं। लक्ष्मणजी ने फिर भी युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। आगे चलकर सेना का सामना करना है।

जटा बाँधा जिसमें युद्ध करते समय आँख के सामने न आ जावे। तरकस कमर में बाँधा जिसमें युद्ध करते समय ईप्सित वाण के निकाल लेने में सुभीता हो। धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाना हो धनुष को साजना है। शत्रु का सामना होने पर प्रहार में देर न हो इसलिए एक वाण तरकस से निकालकर हाथ में ले लिया।

आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥२॥

अर्थ : आज रामजी के सेवक होने का यश लूँगा। भरत को लड़ना सिखाऊँगा। रामजी के निरादर का फल पाकर दोनों भाई रणशय्या पर सोवें।

व्याख्या : लक्ष्मणजी यशोधन हैं। बड़ा भारी लाभ रामसेवक रूपी यश है। आज सेवा धर्म की परीक्षा का समय आगया है। आज भारत से युद्ध करना ही सरकारी सेवा है। सो उसमें यश लूँगा। भरत को बतलाऊँगा कि इस प्रकार से लड़ना होता है। तब संसार जानेगा कि तीनों भाइयों में रामजी का सेवक तो लक्ष्मण हैं।

निदरे राम जानि असहाई। सो उस निरादर का फल पावें। राम निरादर का फल यही है कि रणशय्या पर दोनों भाई सोवें। भावार्थ यह कि मेरे हाथ उन लोगों का वध होगा। वे राम निरादर का फल पावेंगे। मैं तो निमित्त मात्र होकर यश का भागी हूँगा। राम का निरादर करनेवाला तो उसी समय गत प्राण हो जाता है जिस समय कि निरादर करता है। उसके मारने में रक्खा क्या है। आये दल बटोरि दोउ भाई। अत: सोवहु समर सेज दोउ भाई। भाव यह कि भरत लक्ष्मण में भाई का नाता है। मुझसे कोई नाता नहीं। मानिय सबहिं राम के नाते। जब रामजी के वैरी हैं तो हमारे वैरी हैं।

आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥३॥

अर्थ : सब समाज आज भले ही जुट गया है पिछले क्रोध को आज प्रकट करूँगा। जैसे सिंह गजगणों का संहार करता है और बाज जैसे लवा को लपेट लेता है।

व्याख्या : शत्रु का पूरा समाज का समाज हाथ लग गया। नहीं तो यह पता लगाना कठिन होता कि शत्रु समाज में कौन कौन लोग हैं। बस इतने ही के संहार से शत्रु मात्र का संहार हो जायगा। वरदान से बँधे हुए हम क्रोध को दबाये

बैठे हैं। रिसि उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसै तापस के साजा। सो गति हमारी हो रही है। लक्ष्मण के हृदय में आरम्भ से ही चोट है। यथा : समाचार जब लछिमन पाये। ब्याकुल बिलखि बदन उठि धाये। तथा : पुनि कछु लखन कही कटु बानी प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी : अतः क्रोध को प्रकट न कर सके।

आज तो बात दूसरी हो गयी। भाग्य से स्वयं भरत सेना साजकर चढ़ आये हैं। अब तो पिछले क्रोध के प्रकट करने का समय आगय।। अब तो युद्ध करने में वरदान बाधक न होगा। आज सबको मारूँगा। समशीलवीर भरत शत्रुघ्न तथा सेनानायकादि हैं। उनका ऐसा विदारण करूँगा जैसे सिंह अकेला गजयूथ का विदारण करता है। रही सेना वह बिचारी क्या लड़ेगी ? लाख लवा क्या एक बाज से युद्ध कर सकते हैं। बाज के चपेट से लवा कहीं दिखायी नहीं पड़ते। यथा : बाज झपट जिमि लवा लुकाने।

तैसेहिं भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता ॥
जौ सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई ॥४॥

अर्थ : वैसे ही भरत को सेना समेत और छोटे भाई के समेत रणक्षेत्र में निरादर करके गिराऊँगा। यदि शिवजी भी सहायता के लिए आवेंगे तो भी राम दोहाई रण में बिना मारे न छोड़ूँगा।

व्याख्या : सानुज भरत के लिए लक्ष्मणजी : जिमिकरि निकर दलइ मृगराजू और सेना के मर्दन के विषय में : लेइ लपेटि लावा जिमि बाजू। उपमा देते हैं। उन्होंने रामजी का निरादर किया है। उसका फल समर भूमि में निरादर करके दूँगा। अर्थात् खेलाकर मारूँगा।

शङ्कर भगवान् संहारकर्ता है। अतः इनका सामना कोई नहीं कर सकता। तो यदि शङ्करजी भी भरतजी की सहायता करें तो भी राम दोहाई मैं रण में भरत को मार ही डालूँगा। दूसरे स्थान में भी लक्ष्मणजी ने इन्हीं शब्दों में शङ्करजी को स्मरण किया है। यथा : जो सत संकर करैं सहाई। तदपि हतौं रन राम दोहाई। अतः यह शङ्का उठनी स्वाभाविक है कि रामजी के अत्यन्त प्रिय शङ्करजी पर लक्ष्मणजी इस भाँति आक्षेप क्यों करते हैं ? इन स्थलों में शङ्करजी का कोई प्रसङ्ग भी नहीं था। फिर व्यर्थ उन्हें अपमानित क्यों करते हैं ?

बात यह है कि इन स्थलों में शङ्कर सम्बन्धी आक्षेप सूचक शब्दों में वक्ता का तात्पर्य नहीं है। तात्पर्य तो इस बात पर जोर देने में है कि मैं शत्रु का वध अवश्य करूँगा। क्योंकि शङ्कर भगवान् का इन स्थलों में कोई प्रसङ्ग नहीं है। अतः तत्सम्बन्धी तात्पर्य नहीं है। न निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवृत्ता किन्तु विधेयं स्तोतुम्। निन्दा का निन्द्य के निन्दा में तात्पर्य नहीं है। किन्तु विधेय की स्तुति में तात्पर्य है। शास्त्रों में जहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण की महिमा है वहीं भस्म रुद्राक्ष की निन्दा है और जहाँ भस्म रुद्राक्ष धारण की महिमा कही गई है वहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा की गयी है।

ऐसे वाक्यों में मोह उन्हीं को होता है जो तात्पर्य निर्णय की विधि से अनभिज्ञ हैं। जहाँ ऊर्ध्वपुण्ड्र तुलसीमाला धारण की महिमा कही जा रही है वहाँ भस्म रुद्राक्ष धारण का कोई प्रसङ्ग नहीं है। अतः वह निन्दा तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की स्तुति के लिए है भस्म रुद्राक्ष की निन्दा के लिए नहीं। इसी भाँति जहाँ भस्म रुद्राक्ष की महिमा गायी गयी है वहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा भस्म रुद्राक्ष की स्तुति के लिए है तुलसी ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा के लिए नहीं। इस बात को न समझकर लोग व्यर्थ बड़ा भारी विवाद उपस्थित करते हैं।

अतः यहाँ शिवजी पर आक्षेप केवल शत्रु वध के निश्चय पर जोर देने के लिए है न कि शिवजी की निन्दा के लिए। आज भी लोग कह बैठते हैं कि ब्रह्मा आवें तो भी मैं नहीं मानूँगा उनका तात्पर्य न मानने पर रहता है। ब्रह्मदेव की आज्ञा भङ्ग पर नहीं।

दो. अति सरोष माखे लखनु, लखि सुनि सपथ प्रवान।
समय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान ॥२३०॥

अर्थ : लक्ष्मणजी को अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ देखकर और उनके प्रमाण शपथ को सुनकर सब लोग डर गये और लोकपतियों ने घबराकर भागना चाहा।

व्याख्या : क्रोध के स्पष्ट चिन्ह देखकर जाना कि लक्ष्मणजी अतिक्रुद्ध है। यथा : माखे लखन कुटिल भइ भौहैं। रदपट फरकत नैन रिसौहें। और प्रमाण शपथ सुनकर समझा कि ये कर दिखावेंगे। यह तो प्रलयवाला क्रोध है। अतः लोकवासी लोग सभय हो गये और लोकपति लोक छोड़कर भागना चाहते हैं। जैसे भूकम्प में लोग घर छोड़कर भागते हैं। जनकपुर में भी : लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले। इस समय तो शपथ लिया है। अतः लोकपति भागना चाहते हैं। लक्ष्मणजी जगत् के आधार साक्षात् शेष है। अतः उनके कोप से जगत् व्याकुल हो उठता है। जाग्रत के विभु के क्रोध के सामने कौन ठहरेगा ?

जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबलु बिपुल बखानी ॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा ॥१॥

अर्थ : जगत् तो भय में मग्न था। इधर आकाश वाणी हुई। लक्ष्मणजी के बाहुबल की विपुलता का बखान किया। हे तात ! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जाननेवाला है।

व्याख्या : यहाँ जग शब्द से जगत् की अधिष्ठातृ देवता अभिप्रेत है। नहीं तो जड़ से हर्ष और भय बन नहीं सकता। आकाश से देवता बोले। देवता दिखायी नहीं पड़ रहे हैं। शब्द सुनायी पड़ रहा है। इसलिए कहते हैं कि आकाशवाणी हुई। वीरों के शान्त करने का यही उपाय है कि उनके उत्कर्ष का वर्णन किया जाय। अपकर्ष कहना तो तेजोवध है और शत्रु पक्ष के उत्कर्ष कहने से क्रोध ही बढ़ता है। इसलिए लक्ष्मणजी के बाहुबल का वर्णन देवताओं ने किया कि आप कन्दुक :

गेंद की भाँति ब्राह्माण्ड के उठाने में समर्थ हैं। कच्चे घड़े की भाँति उसे तोड़ सकते हैं। मन्दर और मेरु को मूली की भाँति तोड़ सकते हैं इत्यादि।

बाहुबल कहने के बाद प्रताप कहते हैं। प्रताप बल से पृथक् होकर काम करता है। यथा : समुझि रामप्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा। प्रताप और प्रभुता दोनों बल से पृथक् काम करते हैं। भेद यही है कि प्रताप में ताप का अनुभव होता है प्रभाव में ऐश्वर्य का। देवता लोग कहते हैं कि आप अनन्त हैं। अनन्त के प्रभाव और प्रताप का ज्ञान ही किसी को नहीं हो सकता। उसका वर्णन कैसे सम्भव हैं। यथा : जय अनंत जय जगदाधारा।

अनुचित उचित काजु किछु कोऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ ।।
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ।।२।।

अर्थ : कोई भी कार्य हो उचित और अनुचित विचारकर तब उसे करना चाहिए। जिसमें सब लोग अच्छा कहें। जो एकाएक कर बैठने के बाद पीछे से पछताते हैं वेद और विद्वान् कहते हैं कि वे पण्डित नहीं हैं।

व्याख्या : आकाशवाणी द्वारा देवता कहते हैं कि अनुचित उचित का विचार करके ही कार्य करना चाहिए। यही नियम है। यहाँ अनुचित होने जा रहा है इसी से उसे पहिले कहा। देवताओं से गुरुजी ने कहा था : करहु भरत पद प्रीति सोहाई। सो यह आकाशवाणी भरत पद प्रीति का फल है। नहीं तो : रामहिं भरतहिं भेंट न होई का संयोग तो जुट ही गया था। यह : आकाशवाणी लक्ष्मणजी के क्रोध को अनुचित ठहराती है।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। एकाएक कोई काम नहीं कर बैठना चाहिए। क्योंकि अविवेक बड़े भारी आपदा का कारण है। नीति रस भूल गये थे। उसे देवता लोग याद दिलाते हैं कि जो बिना विचारे भावावेश में काम कर बैठता है उसे पीछे पछताना होता है। ऐसा कार्य आपके योग्य नहीं है। क्योंकि ऐसा करनेवाले की निन्दा वेद ने भी की है और विद्वान् लोग भी कहते हैं कि बिना विचारे काम करनेवाला पण्डित नहीं है।

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने ।।
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई ।।३।।

अर्थ : देवताओं के वचन सुनकर लक्ष्मणजी सङ्कुचित हो गये। रामजी और सीताजी ने उनका आदर के साथ सम्मान किया और कहा हे तात ! तुमने सुन्दर नीति कही। राजमद सबसे कठिन है।

व्याख्या : जब देवताओं के वचन लक्ष्मणजी ने सुने तो उन्हें सङ्कोच हुआ। देवता मिथ्या कह नहीं सकते। सरकार की ही समझ ठीक है। मैंने बेसमझे बड़े भाई को क्या कह डाला। यह समझकर सङ्कुचित हुए। तब रामजी और जानकीजी ने आदर के साथ सम्मान किया। लक्ष्मणजी की बाँह पकड़कर सन्निकट बिठाया।

भरतजी ने पहिले कहा था : परिहरि राम सीय जग माँहीं। कोउ नहिं कहहि मोर मत नाँहीं। लक्ष्मणजी भी नहीं कहेंगे। दूसरे को गिनती क्या ? वही हुआ।

सरकार पहिले लक्ष्मणजी की नीति की प्रशंसा करते हैं। यही कायदा है कि जिसके बातों का उत्तर देना हो तो पहिले उसके कथन के उस अंश की प्रशंसा करनी चाहिए जितना कि उपादेय हो। तत्पश्चात् अनुपादेय अंश का खण्डन करना चाहिए। पहिले खण्डन ही आरम्भ करने से उपादेय अंश की प्रशंसा करने के लिए अवसर नहीं मिलता। अतः सरकार ने पहिले नीति की प्रशंसा की : कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकात। यह खाये बौरात है वह पाये बौरात। लक्ष्मणजी ने कहा था : जग बौराय राजपद पाये। उसी की पुष्टि सरकार कर रहे हैं। यहाँ मद शब्द मद्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। भाव यह कि सभी मद्यों में राजरूपी मद्य का नशा बड़ा कठिन हैं।

जो अँचवत मातहिं नृप तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई ॥
सुनहुँ लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥४॥

अर्थ : उसे पीते वे ही राजा लोग मतवाले हो जाते हैं जिन्होंने साधु सभा की सेवा नहीं की। लक्ष्मण ! सुनो भरत सा भला ब्रह्मा की सृष्टि में न कोई सुना गया न देखा गया।

व्याख्या : पर इस मद्य की मादकता साधुसेवियों पर प्रभाव नहीं डाल सकतो। जो साधुसेवी नहीं हैं उनके विवेक को यह हरण कर ही लेती है। बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने। राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू। साधु सभा में बैठनेवाला जानता है कि उस सभा में राजा का मान नहीं है। भक्तों का मान है।

ब्रह्मा का प्रपञ्च ही गुण अवगुण मिलाकर बना है। इसमें गुण अवगुण ऐसे मिले हुए हैं जैसे दूध में जल मिल जाता है। यथा : सगुनु खीर अवगुनु जल ताता। मिलइ रचइ परपंच बिधाता। पर भरत ने हंस की भाँति उसमें से गुण को ही ग्रहण किया है। अवगुण को एक बारगी त्याग कर दिया है। यथा : गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उँजियारी। भरत हंस रबि बंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा। भरत साधु शिरोमणि हैं।

दो. भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ ॥२३१॥

अर्थ : भरत को तो विधि हरिहर पद पाने पर भी राजमद नहीं हो सकता। क्या काँजी के छींटे से क्षीरसिन्धु विकृत हो सकता है।

व्याख्या : यह कतिपय देश का राज्य क्या वस्तु है जो कि नदी देश पर्वतादि से सीमित है। विधि हरिहर का अधिकार असीम है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर चलता है। सो उनका पद यदि अकेले भरतजी को मिल जाय तो भी उन्हें राजमद नहीं

हो सकता। थोड़े दूध को छेना में परिवर्तन करने के लिए उसमें काँजी का छींटा दिया जाता है जिससे दूध फट जाता है। पर उसका कुछ भी प्रभाव क्षीरसिन्धु पर नहीं पड़ सकता। विधि हरिहर पद भी भरतरूपी अगाध क्षीरसिन्धु के लिए काँजी का छींटा है। इसमें उसमें विकार आ नहीं सकता।

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूढ़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़इ छोनी॥१॥

अर्थ : अन्धकार चाहे दोपहर के सूर्य को निगल जाय, आकाश चाहे डूबकर मेघ में समा जाय, अगस्त्यजी गोपद के जल में डूब जाय, पृथ्वी चाहे स्वाभाविकी क्षमा छोड़ दे।

व्याख्या : पञ्चभूतों में कभी विकार नहीं होता। केवल सृष्टि के आरम्भ में तथा प्रलय के समय विकार होता है। क्योंकि इनको अपने स्वभाव पर स्थिर रहने से ही जगत् की स्थिति है। यथा : गगन समीर अनल जल धरनी। इन्हकइ नाथ सहज जड़ करनी। तव प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाये। प्रभु आयसु जेहि कहँ जो अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई। सो तेज का स्वभाव है कि वह अन्धकार को नष्ट कर देता है। अन्धकार तेज के सामने ठहर नहीं सकता। सो तेजः पुञ्ज मध्याह्न के सूर्य को चाहे अन्धकार ग्रस ले। आकाश सबको अवकाश प्रदान करता है। सो वह सङ्कुचित होकर मेघ में मिल जाय। अगस्त्यजी समुद्र का शोषण कर गये थे। सो गोपद का जल ऐसा रूप धारण करे कि अगस्त्यजी को ही डुबा दे। पृथ्वी की क्षमा से ही संसार चल रहा है। वह सब कुछ सहन किया करती है। वह भी चाहे अपनी स्वाभाविकी क्षमा का परित्याग करे। इस भाँति तेज, आकाश, जल और पृथ्वी के विषय में कहकर अब वायु के विषय में कहते हैं।

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥२॥

अर्थ : मच्छर की फूँक से चाहे मेरु पर्वत उड़ जाय। पर हे भाई! भरत को राजमद नहीं हो सकता। हे तात! तुम्हारी शपथ और पिता की दोहाई भरत के ऐसा पवित्र और अच्छा भाई कहीं नहीं है।

व्याख्या : गुणों में तीव्रता या मन्दता का होना ही विकार है। अतः पञ्चभूतों में दोनों प्रकार का विकार दिखाते हुए कहते हैं कि मच्छर के फूँक से रूई के कण में भी गति नहीं देखी गयी। वह फूँक यदि मेरु को उड़ा दे ऐसा भारी परिवर्तन हो पर भरत को राजमद नहीं हो सकता। यथा : भरत सुभाउ सुसीलताई। सदा एकरस वरनि न जाई। भाव यह कि पंचभूतों में भले ही विकार हो जाय पर भरत के स्वभाव में विकार आ नहीं सकता।

भरत पर कुटिल कुबंधु का आरोप न करो। तुम सा प्यारा कोई नहीं। पिता सा पूज्य कोई नहीं। सो मैं दोनों की शपथ लेकर कहता हूँ कि भरत के ऐसा पवित्र

सुबन्धु कोई नहीं। भाईपन के नाते तुम भी वैसे नहीं। तुम्हें तो राज्य छूटने का क्रोध है। भरत राज्य को गिनता नहीं। हम लोगों के कष्टों को सोचकर दु:खी हुआ आ रहा है।

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥३॥

अर्थ : गुण रूपी दूध और अवगुण रूपी जल मिलाकर ब्रह्मा ने इस संसार को रचा है। सूर्यवंश रूपी तालाब में भरत हंस हैं। जिसने जन्म ग्रहण करके गुण दोष का विभाग किया है।

व्याख्या : वेद पुराण और इतिहास सभी कहते हैं कि ब्रह्मदेव की सृष्टि गुण दोष को मिलाकर बनी है। यथा : दु:ख सुख पाप पुण्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती। दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू। माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा। कासी मग सुरसरि कबिनासा। मरु मालव महिदेव गवासा। सरग नरक अनुराग बिरागा। निगम अगम गुन दोष बिभागा। ऐसा गुण दोष मिला हुआ है कि पता ही नहीं चलता। वेद शास्त्र ने उसका विभाग करके बतलाया है। परन्तु अवगुण को छोड़कर गुण को ग्रहण करने की शक्ति हंस की भाँति सन्त को है। हंस दूध और पानी मिले हुए में से दूध को ग्रहण कर लेता है जल को छोड़ देता है। सो सूर्यवंश में हंस की भाँति भरत सन्त हैं। जैसे हंस से तालाब शोभित होता है उसी भाँति भरत से सूर्यकुल शोभित है। भरतजी ने जो किया भरतजी जो करते हैं या जो करेंगे सो सब गुण है : इसीलिए गुरुजी ने कहा : समुझव कहब करब तुम्ह जोई। धर्मसारु जग होइहि सोई।

गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उँजिआरी ॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥४॥

अर्थ : गुण रूपी दूध को लेकर और अवगुण रूपी जल का परित्याग करके अपने यश से संसार को उँजेला कर दिया। भरत के गुण शील और स्वभाव को वर्णन करते करते प्रेम के समुद्र में रामजी मग्न हो गये।

व्याख्या : भरतजी ने संसार के सामने आदर्श उपस्थित कर दिया। संसार जान गया कि गुण क्या है और अवगुण क्या है। इस भाँति संसार में जो गुणावगुण के अविवेक का अन्धकार था सो मिट गया।

भरतजी के गुण शील स्वभाव पर सरकार रीझे हुए हैं। अतः उसके वर्णन करने में रामजी प्रेम समुद्र में मग्न हो रहे हैं : इसीलिए कहा है : भरत चरित करि नेम जे सप्रेम गावहिं सुनहिं। सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भव रस बिरति। अथवा रामजी तो थोड़े से प्रेम पर ही रीझ जाते हैं और भरत सुप्रेम पयोधि में मग्न हो रहे हैं।

दो. सुनि रघुबर बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपा निकेतु ॥२३२॥

अर्थ : रामजी की वाणी सुनकर और भरत पर प्रेम देखकर सब देवता लोग सराहने लगे कि प्रभु के ऐसा कृपा निधान कौन है ?

व्याख्या : रामजी की भरत सम्बन्धिनी गुण शील स्वभाव निरूपिणी वाणी सुनी। गुण यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महु सुना न दोसा। शील यथा : भरतहि होइ न राजमद बिधि हरिहर पद पाइ। स्वभाव यथा : भरत हंस रविबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुण दोष बिभागा। और भरत पर रामजी का प्रेम देखा। यथा : प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ। सब देवता प्रशंसा करने लगे कि रामजी के ऐसा कोई प्रभु कृपानिकेत नहीं है। भाव यह कि प्रभु लोग दूसरे की वेदना समझते ही नहीं। [1]लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति प्रायेण परवेदनाम्। शेषो धराभराक्रान्तः शेते नारायणः स्वयम्। सरकार तो सेवक के प्रेम में मग्न हैं। अतः ऐसा कृपानिधान स्वामी कहीं नहीं है।

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइँ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥१॥

अर्थ : यदि जगत् में भरत का जन्म न होता तो सब धर्मों की धुरा रूपी पृथ्वी को कौन धारण करता ? हे रघुनाथ ! कविकुल के पहुँच के बाहर भरत के गुणों की गाथा सिवा तुम्हारे और कौन जाने।

व्याख्या : धारणात् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः। सो एक धर्म का धारण करना कठिन हो जाता है सकल धर्म के धुरा को कौन धारण कर सकता है ? उसके धारण करने में भरतजी ही समर्थ हैं। इनके धारण करने से धरणी की रक्षा है। यथा : भरत भूमि रह राउर राखी। बिना धर्म के धुर धारण किये धारण की हुई भी धरणी अरक्षित होकर नष्ट हो जाती है।

कवियों से कोई बात नहीं छिपी रहती। नारदहू यह भेद न जाना। लछिमनहू यह मरम न जाना। सो कवियों ने जान लिया। परन्तु भरत की गुणगाथा कवियों के लिए अगम है। क्योंकि : कबिहि अरथ आखर बल साँचा। अनुहर ताल गतिहि नट नाचा। अर्थ ही कवि के हृदय में नहीं आता। यथा : कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेषु। जान सिरोमणि कोसल राऊ। मात्र उस गुण गाथ से परिचित हैं।

लखन राम सिय सुनि सुरबानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी ॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाएँ। मंदाकिनी पुनीत नहाएँ ॥२॥

---

१. लक्ष्मीवान् प्रायेण दूसरे के दुःख को नहीं समझते। शेष पर तो सम्पूर्ण पृथ्वी लदी हुई है। उस पर नारायण भी स्वयं जाकर सोते हैं।

अर्थ : लक्ष्मणजी रामजी और सीताजी ने देवताओं की वाणी सुनकर ऐसा सुख पाया जिसका वर्णन नहीं हो सकता। यहाँ भरतजी ने सेना के साथ पवित्र मन्दाकिनी नदी में स्नान किया।

व्याख्या : यह आकाश वाणी देवताओं की हुई थी। इसलिए कहते हैं कि तीनों मूर्ति बड़े प्रसन्न हुए। उसमें पहिले लक्ष्मणजी को कहते हैं। महात्माओं का क्रोध व्यक्ति पर नहीं होता अवगुण पर होता है। अवगुण पर क्रोध हुआ। पर जब मालूम हो गया कि ये अवगुण भरतजी में नहीं हैं। क्योंकि देवता अन्यथा नहीं कहते और भरतजी में बड़े दिव्यगुण हैं जिन्हें रामजी ही जानते हैं। तो लक्ष्मणजी बड़े प्रसन्न हुए। रामजी और सीताजी को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने प्रिय के गुणगणों की प्रशंसा देवताओं के मुख से सुनकर ऐसा सुख हुआ जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

उहाँ राम रजनीं अवसेषा। जागे सीय सपन अस देखा। कहकर जिस प्रसङ्ग को उठाया उसे यहाँ समाप्त कर रहे हैं। अतः इहाँ शब्द का प्रयोग करके कथन आरम्भ करते हैं। भाव यह कि अब भरतजी का चरित कहेंगे और उन्हीं के साथ कवि अपने को मान रहे हैं। जल थल देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते। यहाँ से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब मन्दाकिनी स्नान से प्रसङ्ग फिर से आरम्भ करते हैं। जहाँ ठहरे थे वहाँ से सन्निकट ही मन्दाकिनी थीं। अत: वहीं स्नान किया है। मन्दाकिनी गङ्गाजी की धारा है। इसलिए पुनीत कहते हैं। यथा : सुरसरि धार नाँउ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि।

सरित समीप राखि सब लोगा। माँगि मातु गुर सचिव नियोगा ॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई ॥३॥

## रामजी से भेंट

अर्थ : नदी के तीर पर सब लोगों को ठहराकर तथा माता गुरु और मन्त्री से आज्ञा माँगकर भरतजी वहाँ चले जहाँ सीताजी और रामजी थे। उनके साथ निषादराज और शत्रुघ्नजी थे।

व्याख्या : शरण जा रहे हैं। इसलिए भरतजी किसी को साथ नहीं लेते। मन्दाकिनी के तीर पर सबके टिकने का भी सुभीता है। गुरुजी तथा माताओं को लेने के लिए स्वयं सरकार को आना चाहिए। अतः उन्हें भी साथ नहीं लिया। सरकार मुनिवृत्ति में हैं। अतः वहाँ साज समाज का जाना भी ठीक नहीं। अतः अकेले जाने के लिए गुरुजी माताजी तथा मन्त्रियों से आज्ञा माँगी। निषादनाथ रास्ता दिखाने के लिए साथ हैं। शत्रुघ्न के साथ रहते हुए भी भरतजी दो नहीं गिने जाते। लक्ष्मण ने भी दो नहीं गिना।

समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं ॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ॥४॥

अर्थ : माता का करतव समझकर सङ्कुचित होते हैं और मन में कुतर्क की कोटि करते हैं। रामजी लक्ष्मण और सीताजी मेरा नाम सुनकर स्थान छोड़ किसी दूसरी जगह न चले जायँ।

व्याख्या : माता के कुकृत्य से पुत्र को सङ्कोच होना स्वाभाविक है। माता ने जो कुछ किया पुत्र की कल्याण कामना के लिए ही किया। अतः माता के करतव से पृथक् होना सम्भव नहीं है। इसलिए स्वयं निपराध होते हुए भी सङ्कुचित हैं और ऐसी अवस्था में जैसे कुतर्क की कोटियाँ मन में उठती हैं वैसी ही उठ रही हैं।

भरतजी की कुतर्क की कोटि का प्रादेशमात्र कवि दिखलाते हैं। भरतजी सोचते हैं कि मेरे आने का समाचार सरकार को पहिले ही लग जायगा। क्योंकि मेरे साथ सेना है। मेरे करतब पर ध्यान करके कहीं यह निश्चय न कर लें कि मैं भरत का मुख न देखूँगा। इसलिए कहीं तीनों मूर्ति आश्रम छोड़कर दूसरी जगह न चले जायँ। जहाँ हमें पता न लग सके। सामान कोई पास नहीं है जिसे हटाने में देर लगे। केवल उठकर दूसरी जगह चला जाना ही तो है।

दो. मातु मतें महुँ मानि मोहि, जो किछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर ॥२३३॥

अर्थ : मुझे माता के मत में मानकर जो कुछ कर बैठें वह थोड़ा है और यदि अपनी ओर समझें तो पाप और अवगुण को क्षमा करके आदर कर सकते हैं।

व्याख्या : यहाँ विचार करने में दो ही पक्ष उठ सकते हैं। या तो मुझे माता की राय में समझें जैसा कुछ लोगों ने समझा था : एक भरत कर सम्मत कहहीं। तब तो मेरा अपराध सर्वथा अक्षम्य है। फिर मुझे यह आज्ञा होना : तुम मुख न दिखलाओ यहाँ से चले जाओ आदि जो कुछ कहें वह थोड़ा ही होगा। अपराध इतना गुरुतर है कि कोई दण्ड उसके मुकाबिले का नहीं है और यदि मुझे अपनी ओर समझें माता की ओर न समझें तो मातृकृत अपराध को क्षमा करके आदर भी कर सकते हैं। जैसा पुरवासियों ने कहा था : अहि अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई। अथवा यदि अपने स्वरूप पर ध्यान दें तो अघ अवगुण को क्षमा करके आदर भी कर सकते हैं।

जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी ॥
मोरे सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही ॥१॥

अर्थ : यदि मलिन मन जानकर त्याग करें या सेवक मानकर सम्मान करें। मेरे लिए तो रामजी की जूती ही शरण है। रामजी भले स्वामी हैं। दोष सब सेवक का है।

व्याख्या : अब भरतजी अपना कर्तव्य निश्चय करते हैं। चाहे रामजी का उनके साथ जैसा वर्ताव हो। पर अपने लिए निश्चित मार्ग होना चाहिए। जिससे हर हालत में काम लिया जा सके। मलिन मन का सरकार त्याग करते हैं। यथा :

मोहि कपट छल छिद्र न भावा। परन्तु दूसरा पक्ष यह भी है : निज अपराध रिसाहिं न काऊ। रहत न प्रभु चित चूक किये की। को साहिब सेवकहिं नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी। इत्यादि।

राम तो सुस्वामी हैं। उनमें दोष नहीं है। कुस्वामी पर सन्देह रहता है कि कदाचित् कुछ दोष स्वामी का भी हो। पर जब यह निश्चित है कि सुस्वामी हैं तब जो कुछ दोष सम्भव है वह जन का ही है। अतः चाहे परित्याग करें चाहें सम्मान करें। मुझे उनकी जूती ही शरण है। पर जूती इस समय त्यक्त है। यथा : राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनिवेष फिरिहिं बन बनही। अतः मैं उसी त्यक्त जूती के शरण जाऊँगा या तो उसे पहना दूँगा नहीं तो उसी की उपासना करूँगा।

जग जस भाजन चातक मीना। नेम पेम निज निपुन नवीना ॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता ॥२॥

अर्थ : संसार में पपीहा और मछली ये ही यश के पात्र हैं। जो अपने अपूर्व नेम और प्रेम में निपुण हैं। ऐसा मन में विचारते चले जाते हैं। सङ्कोच और प्रेम से सब शरीर शिथिल है।

व्याख्या : भरतजी मन में कहते हैं कि संसार में प्रेमियों में से दो ने ही यश पाया : एक चातक ने और दूसरे मछली ने। चातक अपूर्व नेम में निपुण है। यथा : डोलत बिपुल बिहंग बन पियत पोखरिन्ह बारि। सुजस धवल चातक नवल तुही भुवन दस चारि। और मीन अपूर्व प्रेम में निपुण है। यथा : मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह। तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह। भाव यह कि मीन के ऐसा प्रेम तो केवल चक्रवर्तीजी निबाह पाये और किसी से न निबहा। यथा : बंदौ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि रामपद। बिछुरत दीन दयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ। अब तो चातकवाला नेम निर्वाह करना है। जो सुख सम्पत्ति राम घनश्याम से न मिले उसे स्वीकार न करना यही निश्चय है

भरतजी रास्ते चले जाते हैं और इसी प्रकार का विचार करते जाते हैं। यहाँ भाव सन्धि है। स्नेह के साथ सङ्कोच है। रास्ते में ही स्नेह से शिथिल शरीर हो रहा है और सरकार के सन्मुख जाने में सङ्कोच भी है। इस द्विविध मनोगति से सारा शरीर शिथिल है।

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी ॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ ॥३॥

अर्थ : माता की की हुई दुष्टता मानो पीछे हटाती है। पर धैर्य धुरीण : भरतजी भक्ति के बल से चल रहे हैं। जब रामजी के स्वभाव को समझते हैं तब रास्ते में जल्दी जल्दी पैर पड़ता है।

व्याख्या : शरीर शिथिल हो रहा है। जिस पर माता की की हुई करणी

मानो पीछे फेर रही है कि कौन मुँह लेकर सामने जाऊँ। पर भरतजी धीर धुरीण हैं। भक्ति के बल से चले जा रहे हैं। भरतजी भक्त शिरोमणि हैं। उनकी गति माता की करणी के स्मरण से तो रुकती है पर जब सरकार के स्वभाव का स्मरण करते हैं : अस सुभाउ कहुँ सुनै न देखैं। केहि खगेस रघुपति सम लेखैं। सुनहु सखा निज कहहुँ सुभाऊ। जान भुसुंडि सम्भु गिरि जाऊ। जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना। तब तो आशा के सञ्चार से पैर जल्दी जल्दी उठने लगता है।

भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रबाह जल अलि गति जैसी ॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥४॥

अर्थ : उस समय भरतजी की दशा वैसी हो रही है जैसी कि भौंरे की जल प्रवाह में होती है। भरतजी के सोच और स्नेह को देखकर निषादराज को तो अपने शरीर की सुधि न रह गयी।

व्याख्या : रामजी के स्वभाव के स्मरण से भरतजी की गति तीव्र हो जाती है और माता के दोष के स्मरण से एकाएक रुक जाते हैं। फिर चल पड़ते हैं। ऐसा ठहर ठहर कर वेग से चलने की उपमा गोस्वामीजी जल के भौंरे से देते हैं। वह प्रवाह में वेग से चलता हुआ बार बार रुकता ही जाता है। गोस्वामीजी ने यह एक अद्भुत उपमा दी जिसे जहाँ तक मेरी जानकारी में कोई भी कवि किसी अवसर में नहीं दे सका है।

निषादराज देखते हैं कि भरतजी कुछ सोचकर ठहर जाते हैं और फिर प्रसन्न होकर चल पड़ते हैं। इससे उनके सोच और स्नेह का अनुभव करते हुए निषादराज ऐसे मग्न हो गये कि उन्हें अपने देह की सुधि न रह गयी।

दो. लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोच होइहि हरषु, पुनि परिनाम बिषादु ॥२३४॥

अर्थ : मङ्गल शकुन होने लगे। उन्हें सुनकर और गुनकर निषादराज ने कहा कि सोच मिटेगा। हर्ष होगा। परन्तु परिणाम में विषाद ही है।

व्याख्या : यहाँ शकुन का सुनना कहते हैं। इससे मालूम होता है कि यहाँ पक्षी की बोली से शकुन निर्णय किया जा रहा है। प्रधान शकुन तो पक्षी ही हैं। पक्षी को ही शकुन कहते हैं। अन्य शुभाशुभ सूचक घटनाएँ तो गौण हैं। निषादराज शकुन ज्ञान में बड़े पण्डित थे। इनकी युद्ध यात्रा के समय जो 'छींक हुई उसके फल निर्णय करने में सगुनियों में मतभेद हुआ तो उसका निर्णय निषादराज ने ही किया। यथा : नीक कह बूढा। पहिले पक्षी के बोलने से मालूम हुआ : मिटिहि सोच दूसरे के वोलने से पता लगा : होइहि हरख। तीसरे के बोलने से मालूम हुआ : पुनि परिनाम बिषाद। अथवा पक्षी नहीं दिखायी पड़ता है। केवल शब्द सुनायी पड़ता है।

इससे अनुमान हुआ कि हर्ष स्थायी नहीं होगा। उसी बात को निषादराज भरतजी से कह रहे हैं।

सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने ॥
भरत दीख वन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥१॥

अर्थ : सेवक की सब बातों को सत्य जाना। आश्रम के सन्निकट जाकर समीप पहुँच गये। भरतजी ने वन और पर्वत के समाज को देखा। ऐसे प्रसन्न हुए जैसे भूखा सुअन्न पाकर प्रसन्न होता है।

व्याख्या : भरतजी ने सेवक के तीनों वचनों को सत्य जाना। अर्थात् सरकार का दर्शन होगा। इसलिए मिटिहि सोच कह रहा है। सरकार सम्मान करेंगे। इसलिए : होइहि हरख कह रहा है। पर अवध नहीं लौटेंगे इसलिए परिणाम विषाद कह रहा है। आश्रम में नहीं पहुँचे परन्तु राम वन जिसमें आश्रम है उसके निकट पहुँच गये।

इतने निकट पहुँचे कि वन और शैल का समाज दिखायी पड़ने लगा। सबका समाज पृथक् पृथक् होता है। सो कवि पहले वन समाज कहकर तब शैल समाज का वर्णन करेंगे। यहाँ उस समाज के देखने से भरतजी को कैसी प्रसन्नता हुई। उसी का वर्णन करते हैं। भूखे को अन्न चाहिए चाहे वह कैसा ही हो। कदन्न पाकर भी भूखा सुखी होता है। यदि उसे सुअन्न मिल जाय तो उसकी प्रसन्नता का क्या ठिकाना ! उस वन शैल समाज को देखने से ही भरतजी अति प्रसन्न हैं। इस प्रसन्नता के साथ आतुरता का योग है। इसलिए भूखे के सुअन्न प्राप्ति से उपमित किया।

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहि भरत गति तेहि अनुहारी ॥२॥

अर्थ : ईति प्रीति से जैसे प्रजा दुःखी हो, तीनों ताप से तप्त हो, मारीग्रह से पीड़ित हो सो सुदेश और सुराज में जाकर सुखी हो वैसी ही भरत की गति हो रही है।

व्याख्या : भरतजी केवल अपने ही दुःख से दुःखी नहीं हैं : उन्हें माताओं और प्रजाओं का भी भारी दुःख है। यथा : देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं त्रिबिध जर पुर नर नारी। पहिले भरतजी के व्यक्तिगत दुःख का मिटना कहकर अब प्रजावर्ग के दुःख का मिटना कहते हैं। प्रजावर्ग के दुःख के मिटने से भरतजी का दूसरे प्रकार का भी दुःख मिटा।

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृता। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टिड्डी, सुग्गों का आक्रमण तथा राजाओं का सन्निकट आना ये छः इति कही गयी है। इन छओं के कारण दुर्भिक्ष पड़ता है। सो जैसे ईति आदि के डर से प्रजा देश छोड़कर भाग चली हो, उसे आधिदैविक

आधिभौतिक और आध्यात्मिक ताप भी हो, ग्रह भी उनके प्रतिकूल हों वे सुराज और सुदेश पाकर सुखी हो जाते हैं। सो अवधवासी ईति के भय से देश छोड़कर चले आ रहे हैं। यथा : मुख सुखाहि लोचन स्रवहिं सोकु न हृदय समाइ। मनहु करुन रस कन्टर्इ कई उतरी अवध बजाइ। उन्हें आधिदैविक ताप भी है। यथा : मिलेहि माझ बिधि बात बिगारी। तथा : कीन्ह मातु मिस काल कुचाली। ईति[1] भीति जनु पाकत साली। आध्यात्मिक ताप। यथा : तन कृस मन दुख बदन मलीने। बिकल मनहु माछी मधु छीने। आधिभौतिक ताप। यथा : नगर फैल गयी बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी। ग्रहमारी भी है। यथा : घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहु जमदूता।

ऐसी प्रजा को सुदेश की चाह होती है। जहाँ सुभिक्ष हो और सुराज की आवश्यकता होती है। जहाँ सुव्यवस्था हो। यदि उन्हें सुदेश और सुराज दोनों की प्राप्ति एक ही स्थल में हो तो वे सुखी हो जाते हैं। सो पुर नर नारियों के दुःख की शान्ति समझकर भरतजी का दूसरे प्रकार का भी दुःख जाता रहा।

राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥३॥

अर्थ : राम वास वन : वन की सम्पत्ति से ऐसा शोभित है जैसे अच्छे राजा की प्राप्ति से प्रजा सुखी होती है। विराग मन्त्री हैं विवेक राजा हैं। सुहावना वन ही पवित्र देश है।

व्याख्या : पहिले राम वन का वर्णन कवि करते हैं कि वह वन वन की सम्पत्ति से शोभायमान है। अर्थात् मुनि तपस्वी के उपयोग की सामग्री से परिपूर्ण है। जैसे अच्छे राजा के होने से प्रजा सुखी हो जाती है। वन सात्त्विक प्रदेश है। यहाँ निवृत्तिमार्ग के ऋषि मुनि रहते हैं। उनके उपयुक्त सभी सामग्री यहाँ हैं।

वहाँ पर विराग मन्त्री हैं, विवेक राजा हैं और वन प्रदेश ही उत्तम देश है। जहाँ विवेक राजा का राज्य है। भाव यह कि संसार में प्रायेण सर्वत्र ही मोह राजा का राज्य है और काम क्रोधादि का आधिपत्य है। पर यहाँ तो विवेक राजा की विजय है। मोह राजा के राज्य में संसार दुःख झेल रहा है। सुख तो तभी सुलभ है जब विवेक राज्य में पदार्पण करे।

भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदर रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ॥४॥

अर्थ : यम नियमादिक योद्धा हैं। पर्वत ही राजधानी है और शान्ति तथा सुमति सुन्दर रानियाँ हैं। श्रेष्ठ राजा सब अङ्गों से परिपूर्ण है और रामजी के चरणों के आश्रित होने से चित्त में प्रसन्नता है।

———

१. यह छठी ईति है। करुण रस रूपी राजा का धावा अवध पर हो गया है।

व्याख्या : राजा विवेक के योद्धा पाँच यम और पांच नियम हैं। जिस भाँति मोह राजा के काम क्रोधादि योद्धा हैं और विवेक राजा की राजधानी राम शैल है जिस भाँति मोह राजा की राजधानी इन्द्रपुर है। राजधानी उस प्रदेश को कहते हैं जहाँ स्वयं राजा का निवास हो। शैल पर मानो विवेक राजा स्वयं रहते हैं। राजा को दो पवित्र रानियाँ भी हैं एक तो शान्ति रानी हैं और दूसरी सुमति रानी हैं।

राजा के जितने अङ्ग सेना कोषादि हैं सबसे विवेक राजा सम्पन्न है और वे रामचरण के आश्रित हैं। अतः स्नेह में मग्न रहते हैं।

दो. जीति मोह महिपालु दल, सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राजु पुर, सुख संपदा सुकालु ॥२३५॥

अर्थ : विवेक राजा मोह राजा को दल सहित जीतकर निष्कण्टक राज्य कर रहे हैं और पुर में सुख सम्पत्ति और सुकाल है।

व्याख्या : इससे यह पता चलता है कि पहिले यहाँ भी मोह राजा का राज्य था। पर जब से सरकार का आगमन हुआ तब से सरकार के आश्रय से विवेक राज की जीत हो गयी। अब वे वन और प्रदेश में अकण्टक राज्य करते हैं। वहाँ सुख सम्पदा और सुकाल बना हुआ है। भाव यह कि जिस भाँति पिण्ड में विवेक जय से आनन्द होता है उसी भाँति राम वन और शैल में आनन्द का साम्राज्य है। यथा : सेवक सुमिरत नाम सुप्रीति। बिनु श्रम प्रबल मोहदल जीती। फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने।

बन प्रदेश मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना ॥१॥

अर्थ : वन प्रदेश में बहुत से मुनियों के निवास स्थान हैं। वे ही मानो पुर, नगर, गाँव और पुरवा हैं। बहुत से अनेक प्रकार के पक्षी और बहुत प्रकार के मृग हैं। वे ही ऐसे प्रजा समाज हैं जिनका बखान नहीं हो सकता है।

व्याख्या : उस वन प्रदेश में बहुत से मुनियों के आश्रम हैं। वे आश्रम ही मानों पुर नगर ग्राम और खेट विस्तार के तारतम्य से हैं। नगर बड़ा होता है। पुर उससे छोटा, ग्राम उससे भी छोटा होता है। खेट शब्द का प्राकृत रूप खेर है अर्थात् पुरवा। यथा : आप पाप को नगर बसावत सहि न सकत पर खेरे।

अब उन पुर, नगर, ग्राम और खेरा के निवासी प्रजा कौन से हैं? मुनि लोग प्रजा हो नहीं सकते और न एक आश्रम में उतने मुनि ही रह सकते हैं कि उनकी उपमा नगरादि से दी जा सके। अतः कहते हैं कि उन आश्रमों में अनेक प्रकार के बहुत से पक्षी बसे हुए हैं। उनमें अनेक प्रकार के मृग भी विचरते हैं। वे ही मानों प्रजा के समाज हैं। पक्षी ऐसे सुन्दर हैं, उनकी बोली इतनी सुहावनी है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर मृग अनेक प्रकार के कलोल कर रहे हैं। उनके लिए भी ऐसी ही बात कही जा सकती है। भगवती ने कहा था : खग

मृग परिजन नगर बन। माँ कौसल्या ने कहा था : खग मृग चरण सरोरुह सेवी। सो उन्हीं का प्रजा रूप से वर्णन हो रहा है।

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा ॥
बयरु बिहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥२॥

अर्थ : गैंड़ा, हाथी, सिंह, व्याघ्र, सूअर, भैंसा, बैल के साज को देखकर प्रशंसा की। वे वैर छोड़कर जहाँ तहाँ विचर रहे हैं। मानो वे ही चतुरंगिणी सेना हैं।

व्याख्या : इस पशु समाज को जो देखता है वही प्रशंसा करता है। खगहा गैंड़े को, हरि सिंह को, वाराह बनैले सुअर को, महिष भैंस और वृष बैल को कहते हैं। इन सबों में एक दूसरे से वैर है। सो स्वाभाविक वैर छोड़कर एक साथ विचर रहे हैं। जैसे चतुरंगिणी सेना विचर रही हो।

पहिले कह आये हैं : सकल अंग संपन्न सुराऊ। उन अङ्गों का वर्णन करते हुए सम्पत्ति, मन्त्री, देश, रानी, सेनापति, प्रजा, सेना का वर्णन करके अब सुराज के मङ्गल का वर्णन करते हैं।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान विविध बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥३॥

अर्थ : झरना झरते हैं। मत्त हाथो गरजते हैं। मानो अनेक प्रकार के डंके बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, शुक, कोयल और हंस प्रसन्न मन होकर कूज रहे हैं।

व्याख्या : जहाँ मङ्गल होता है वहाँ डंके बजते हैं। वहाँ वाद्य, गान और नृत्य होता है। सो यहाँ जो झरना झर रहा और मत्त हाथी गरज रहे हैं। वे ही मानो डंके बज रहे हैं। ध्वनि में भेद होने से बिबिध बिधि कहा।

यहाँ पर छ : पक्षियों का कूजना लिखा जा रहा है। जो भिन्न ऋतुओं में बोलते हैं। पर आनन्दातिरेक से यहाँ सब बोल रहे हैं। ये ही मानो तालधारी हैं बाजे बजा रहे हैं। पुष्पवाटिका में चातक कोकिल कीर चकोरा। कुजत विहंग नटत कल मोरा कह आये हैं। यहाँ नदी के निकट होने से चक और हंस अधिक कह रहे हैं।

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मृदु मंगल मूला ॥४॥

अर्थ : भौंरों के झुण्ड गाते और मोर नाच रहे हैं। मानो सुराज में चारों ओर मङ्गल हो रहा है। विटप तृण सब फल और फूल से सम्पन्न हैं। सब समाज आनन्द और मङ्गल का मूल हो रहा है।

व्याख्या : जब तालधारी लोगों ने साज मिला लिया तब गान आरम्भ होता है। यहाँ भ्रमरगण ही गानेवाले हैं। जब गान होने लगा और वाद्य बजने लगे तब उस रस की पूर्ति तो नृत्य से ही हो सकती है। अतः कहते हैं कि मोर नाच रहे हैं।

नाचनेवाला बड़े सजधज से आता है। पक्षियों में मोर से अधिक सजधज किसी का नहीं है।

लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना। उनमें भी फल फूल लगे हैं। राजा राम चरन आश्रित चित चाऊ हैं। प्रजा बैर बिहाय चरहिं एक संगा। पक्षी नाच गा रहे हैं। बेलि बिटप सब सफल सफूल हैं। इसलिए सब समाज को मङ्गल मूल कह रहे हैं।

दो. राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति पेमु।
तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ॥२३६॥

अर्थ : राम शैल की शोभा देखकर भरतजी के हृदय में अत्यन्त प्रेम हो रहा है। जैसे तपस्या का फल प्राप्त होने पर तपस्वी नियमों की समाप्ति में सुखी होता है।

व्याख्या : भरत दीख वन सैल समाजू : उपक्रम करके : राम सैल सोभा निरखि से उपसंहार करते हैं। उसके देखने से सबके हृदय में आनन्द हुआ। पर भरत के हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ। यहाँ प्रेम का आनन्द है। यथा : तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई। मानो तपस्वी को तप फल मिल गया और जो कष्ट कर नियम उसने स्वीकार किये थे वे सब समाप्त हो गये। उस समय जैसा सुख तपस्वी को होता है वैसा सुख भरतजी को रामशैल शोभा निरीक्षण से हुआ। क्योंकि जहाँ रामजी होते हैं वहीं शोभा रहती है। भरतजी स्वयं अयोध्या की व्यवस्था देख चुके हैं। श्रीहत सर सरिता वन बागा। नगर बिसेषि भयावनु लागा। खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए। अतः रामजी के यहाँ होने के निश्चय से भरतजी को अत्यधिक सुख हुआ। जिस भरतलाल को भरद्वाजजी के विधि विस्मय दायक विभव का कोई प्रभाव न पड़ा उस पर राम शैल का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसके दर्शन के सुख में मग्न हैं।

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला ॥१॥

अर्थ : तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ़ गया और भरतजी से भुजा उठाकर कहने लगा कि हे नाथ ! ये जो बड़े बड़े पेड़ देखे जाते हैं पाकर का पेड़ है। जामुन का पेड़ है। आम और आबनूस का पेड़ है।

व्याख्या : ऊँचे पर चढ़े जाने से दूर के और नीचे के दृश्य स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। केवट ने ठीक अन्दाज कर लिया है। फिर भी निश्चय करने के लिए ऊँचे पर दौड़कर चढ़ गया। भरतजी को अतिप्रिय के दर्शन कराने की उत्सुकता से शीघ्रता की और भरतजी को दिग्दर्शन कराने के लिए भुजा उठाकर बोला।

कहता है कि इस वन के पेड़ों में जो बड़े बड़े पेड़ों का झुण्ड है उसे देखिये।

उसमें पाकर जामुन रसाल और तमाल के पेड़ हैं। भाव यह कि इतने निकट पहुँच गये हैं कि वृक्षों की पहिचान हो रही है।

जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसालु देखि मनु मोहा ॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिचल छाँह सुखद सब काला ॥२॥

अर्थ : उन श्रेष्ठ वृक्षों के बीच में वट का वृक्ष शोभित हो रहा है। वह बड़ा सुन्दर है। विशाल है। उसके देखने से मनमोहित हो जाता है। नीले घने पत्ते हैं और लाल फल हैं। इसकी छाया घनी और सब काल में सुख देनेवाली है।

व्याख्या : अब पाँचवाँ पेड़ दिखला रहे हैं जो उपर्युक्त चारों वृक्षों के बीच में है। वह वट का वृक्ष है। वट के पत्ते दूर से देखने से नीले रङ्ग के मालूम होते हैं। उन पत्तों में लाल फल बड़ी शोभा दे रहे हैं। वटवृक्ष सभी वृक्षों में बड़ा होता है। इसका फैलाव बहुत विस्तृत होता है। घने पत्तों के कारण धूप छनकर भी नहीं आ सकती इससे उसकी छाँह भी घनी होती है। जाड़े में गरम होती है। बरसात में भी यह जल को बहुत रोकता है। अतः ये सब गुण वट को छोड़कर अन्य वृक्षों में नहीं पाये जाते।

मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमासी ॥
ए तरु सरित समीप गोसाईं। रघुबर परनकुटी जहँ छाईं ॥३॥

अर्थ : मानों ब्रह्मदेव ने अन्धकार और अरुणिमा की राशि को इकट्ठा करके परम शोभा सी रच दी है। ये पेड़ हे गोसाइँ! नदी के तीर पर हैं। जहाँ रामजी ने पर्णकुटी बना रक्खी है।

व्याख्या : अब पहिले जो कह आये हैं कि देखि मन मोहा उसी का कारण कहते हैं कि वटवृक्ष में मानो परम शोभा सी छायी हुई है। ऐसा जान पड़ता है कि अन्धकार की राशि और अरुण राशि को मिलाकर इसे ब्रह्मदेव ने बनाया है। अन्धकार और अरुणिमा को लेकर कुछ रचना करना मनुष्य द्वारा साध्य नहीं है। इसलिए कहते हैं कि मानो ब्रह्मदेव ने बना रक्खा है। नील सघन पल्लव मानो अन्धकार है और लाल लाल फूल मानो अरुणिमा है।

ये पेड़ मन्दाकिनी के तट पर हैं। सरकारी पर्णकुटी के आगे हैं। केवट कहता है कि मैंने कहा था : जेहि बन जाइ रहब रघुराई। पर्णकुटी मैं करब सुहाई। सो मुझे यमुना पार से ही लौटा दिया है। कला विधान से मालूम होता है कि स्वयं ही बनाया है।

तुलसी तरुवर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए ॥
बट छायाँ बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सुहाई ॥४॥

अर्थ : अनेक प्रकार के तुलसी के सुन्दर सुन्दर पेड़ कहीं कहीं सीताजी ने

कहीं कहीं लक्ष्मणजी ने लगा रक्खा है। वट की छाया में वेदिका : चबूतरा बना हुआ है। उसे सीताजी ने अपने कर कमलों से बनाया है।

व्याख्या : निषादराज सब बातों की खबर दिन रात लिया करते थे। छोटी सी छोटी बातों का उन्हें पता है। कहते हैं कि बहुत से तुलसी के पेड़ वहाँ लगे हुए हैं। उनमें से किसी किसी को लक्ष्मणजी किसी किसी को सीताजी ने लगा रक्खा है। भाव यह कि तुलसी बहुत पवित्र है और रामजी को प्रिय है। यथा : रामहि प्रिय पावन तुलसी सी। पूजा के भी बड़ी उपयोगी है। स्वास्थ्य के लिए भी परम हितकर है। अतः कोई घर तुलसी से रहित न होना चाहिए।

वट की छाया में जो वेदिका बनी है उसे सीताजी ने अपने हाथ से बनाया है। भाव यह : मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ होने पर भी लक्ष्मणजी तथा परम सुकुमारी जनक दुलारी सीताजी गृहस्थी के सब कार्य सानन्द अपने हाथों कर रही हैं।

दो. जहाँ बैठि मुनिगन सहित, नित सिय रामु सुज़ान।
सुनहिं कथा इबिहास सब, आगम निगम पुरान ॥२३७॥

अर्थ : जहाँ मुनि समाज के साथ बैठकर सुजान सीता रामजी कथा इतिहास शास्त्र वेद और पुराण सुना करते हैं।

व्याख्या : वह वेदिका भी छोटी सी नहीं है जिसे सीताजी ने बनाया है। उस पर मुनियों की सभा लगती है। सीताजी और रामजी बड़े सुजान हैं। कथा सुनने के बड़े प्रेमी हैं। सब जानने पर भी बार बार सुनते हैं। यथा : वेद पुरान वसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं। भाव यह कि इन ग्रन्थों का श्रवण महापुण्य जनक है। कल्याणकांक्षी को इनका श्रवण नित्य करना चाहिए। मुनिगण मिलन विसेष वन सबहिं भाँति हित मोर : का साफल्य दिखला रहे हैं। बचपन से सरकार श्रवण के बड़े रसिक हैं। यथा : बेद पुरान सुनहि मन लाई। आपु कहैं अनुजन्ह समुझाई। काष्ठ जिह्वा स्वामीजी कहते हैं : श्रवनहि सब भावन की जरिहैं। बिना सुने कोउ कैसे जनिहैं बिनु जाने कोउ का करिहैं।

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी ॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥१॥

अर्थ : सखा का वचन सुनकर पेड़ों को देखा तो भरतजी के आँखों में जल उमग चला। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले। उस प्रेम को कहते हुए सरस्वती सङ्कुचित होती हैं।

व्याख्या : राम सैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेम। राम शैल की शोभा देखने से ही भरत के हृदय में अत्यन्त प्रेम उमड़ा था। तब से निषादराज ने भुजा उठाकर दिखलाया कि इस वट विटप को देखिये। जिसके नीचे मुनि सभा में सरकार कथा सुनते हैं। सखा के इस वचन को सुनकर विटप को देखा तो

प्रेम और अधिक उमड़ा आँखों में जल उमग आया। सरकार को अति निकट समझकर वहीं से प्रणाम करते चले। जिस भाँति मन्दिर का शिखर दर्शन करते ही परम भक्त लोग साष्टाङ्ग करते चलते हैं। पहिले ही कहा था : सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सो यही सिर के बल चलना है। उतनी दूर से समाज के साथ इस भाँति चलने में बड़ी बाधा थी। पर यहाँ तो निकट भी पहुँच गये और समाज भी साथ नहीं है। अतः साष्टाङ्ग प्रणाम करते चले।

यहाँ प्रीति के वर्णन का प्रसङ्ग आगया। कवियों को शारदा का भरोसा रहता है। उन्हीं की कृपा से वर्णन करते हैं। यथा : भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवत धाई। सो स्वयं सरस्वती को प्रीति के वर्णन में सङ्कोच है। क्योंकि उस प्रेम तक शारदा की भी गति नहीं है। वर्णन क्या करें ?

हरखहिं निरखि रामपद अंका। मानहु पारस पायेउ रंका ॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ॥२॥

अर्थ : रामजी के चरणों के चिह्न देखकर ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे दरिद्र को पारस मिल गया हो। धूलि को सिर पर धरकर हृदय और आँखों में लगाते हैं। रामजी से मिलने के बराबर सुख पाते हैं।

व्याख्या : यहाँ तक सरकार बराबर आते जाते हैं। दण्डवत् प्रणाम करते समय : ध्वज कुलिश अंकुश कञ्ज के चिह्न विस्पष्ट दिखायी पड़ रहे हैं। रामपद अङ्क पारस है। इसी से अभीष्ट सिद्धि होती है। रामजी मिलते हैं। पारस स्वयं सोना नहीं है। पत्थर है। पर सोना बनाता है। इसलिए उसका आदर सोना से भी अधिक है। गीधराज को दर्शन का बड़ी आर्ति रही। अतः उन्होंने पद अङ्क का ही ध्यान किया। यथा : सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा। अति दरिद्र को सोना की बड़ी चाह है। इसलिए पारस पाने पर उसकी प्रसन्नता का अन्त नहीं है। इसी भाँति चरण चिह्न की प्राप्ति से भरतजी कृतकृत्य हैं।

उस अङ्क के रज को सिर पर धारण करते हैं। प्रिय वस्तु के लिए शरीर में तीन ही स्थान है। सिर हृदय और नयन। अतः उस धूलि को सिर पर रक्खा। जो उंगली लगी रह गयी उसे हृदय में लगाया। फिर भी सूक्ष्म अंश लगा रह गया उसे आँखों में लगा रहे हैं। रामजी मिलते तो आँखों से देखते हृदय से लगाते। सिर से प्रणाम करते। यहाँ भी तीनों अङ्गों को इसी भाँति सुख मिल रहा है। इसीलिए कहते हैं : रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं।

देखि भरत गति अकथ अतीवाँ। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवाँ ॥
सखहिं सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहि फूला ॥३॥

अर्थ : भरत की अत्यन्त अकथनीय गति देखकर पशु पक्षी जड़ जीव प्रेम में मग्न हो गये। सखा तो प्रेम के विवश होने के कारण रास्ता भूल गया। तब देवताओं ने रास्ता बतलाकर फूल बरसाये।

व्याख्या : भरत दसा तेहि समय जस तस कहि सकहिं न सेषु । कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अह मम मलिन जनेषु । मन्दाकिनी के उस पार से ही भरतजी की अकथ दशा थी । इस समय तो अतीव अकथ है । इसका प्रभाव कोल किरात को कौन कहे जड़ जीव पशु पक्षी पर भी पड़ा । वे भी प्रेममग्न हो गये ।

सखा निषादराज रास्ता दिखाने लिए साथ थे । पेड़ों को पहिचानते ही ऊँचे पर चढ़े । भलीभाँति मार्ग का निर्णय कर लिया । पर भरतजी का प्रेम देखकर वे भी ऐसे प्रेममग्न हुए कि उन्हें रास्ता भूल गया । बेरास्ते चल पड़े । देवताओं को सेवा करने का अवसर मिल गया । उन लोगों ने सुन्दर रास्ता बतलाया और ऐसी प्रेमावस्था में भरतजी के पूजन की महा महिमा समझकर फूल बरसाया ।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे । सहज सनेहु सराहन लागे ।।
होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ।।४।।

अर्थ : देखकर सिद्ध और साधक भी अनुराग में आगये । स्वाभाविक स्नेह की सराहना करने लगे । इस भूतल पर यदि भरतजी का अस्तित्व न होता तो जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कौन करता ?

व्याख्या : भरत के प्रेम का प्रभाव पशु पक्षी आदि निम्न कोटि के जीवों तक पड़ा और सिद्ध साधक ऐसे उच्चकोटि के जीवों पर भी पड़ा । विराग के बानावाले सिद्ध साधक भी अनुराग में आगये क्योंकि विरागी जिसके अनुरागी होते हैं यथा : जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी उन्हीं के ये भी अनुरागो हैं । अतः स्वाभाविक प्रेम की प्रशंसा करने लगे । वैधी भक्ति ऐसी हो नहीं सकती । यह तो स्वाभाविकी भक्ति है ।

प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यह सामर्थ्य भरत के ही प्रेम में है जिसके प्रभाव से जड़ तो द्रवीभूत हो जायँ उनमें चेतन के धर्म दृष्टिगोचर होने लगे और चेतन स्तब्ध हो जायँ उनमें जड़ के धर्म लखायी पड़ने लगे । भाव यह कि भरत के कारण जगत् का बड़ा भारी उपकार हुआ और साधुओं के लिए तो आदर्श खड़ा हो गया । यथा :

दो. प्रेमु अमिअ मंदरु बिरहु, भरतु पयोधि गँभीर ।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर ।।२३८।।

अर्थ : प्रेमरूपी अमृत को विरह रूपी मन्दर से भरत रूपी अथाह समुद्र को मथकर कृपा के समुद्र रामजी ने देवता रूपो साधु के लिए प्रकट किया ।

व्याख्या : भरत गम्भीर पयोधि हैं । यथा : कबहुँ कि काँजी सीकरन्हि छीर सिंधु बिनसाइ । पयोधि का मन्थन तो मन्दर से हुआ । पर भरत रूपी गम्भीर पयोधि का मन्थन तो उससे नहीं हो सकता था । इसलिए उनके मन्थन के लिए विरह ही मन्दर हुआ । पयोधि को तो सुरासुर ने मन्थन किया था । परन्तु इस मन्दर के सञ्चालन की शक्ति तो उनमें भी नहीं । अतः सरकार ने स्वयं अपने विरह से

मन्थन किया। भरतजी विचलित हो उठे। भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन। उस पयोधि का मन्थन तो देवताओं के हित के लिए हुआ। पर भरत रूपी पयोधिका मन्थन साधुओं के लिए हुआ। क्योंकि मन्थन से प्रेमामृत प्रकट हुआ जिसके रसास्वादन करनेवाले साधु हैं। इतना बड़ा कष्ट साधुओं के हित के लिए उठाया। अतः कृपासिन्धु कहते हैं।

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदन सुहावन॥१॥

अर्थ : सखा सहित मनोहर जोड़ी को घने वन के आड़ के कारण लक्ष्मणजी ने नहीं लखा। भरतजी ने प्रभु के पावन आश्रम को देखा। जो सब्र सुमङ्गल का सुन्दर घर था।

व्याख्या : भरत शत्रुघ्न की जोड़ी मनोहर है। यथा : सखि जस रामलखन कर जोटा। तैसइ भूप संग दुइ ढोटा। और सखा के सँग हैं। अतः मिलने की बड़ी उत्कण्ठा होनी चाहिए। परन्तु लक्ष्मणजी ने नहीं लखा। लक्ष्मणजी सरकार का पहरा दिया करते हैं। बड़े सावधान रहते हैं। यथा : कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन। परन्तु बीच में सघन वन था। सघन वन में से बाहर की वस्तु दिखायी पड़ती है। परन्तु बाहर से सघन वन के भीतर कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता। अतः सावधान होने पर भी लक्ष्मणजी लख न सके।

परन्तु भरतजी ने प्रभु के आश्रम को देखा जो कि पवित्र भी था। सुमङ्गल भवन भी था और सुन्दर भी था। पवित्र वस्तु इष्ट प्रापक नहीं होता और यदि दोनों बातें हों भी तो वह सुन्दर नहीं होती। प्रभु के आश्रम में तीनों बातें हैं।

करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथु पावा॥
देखे भरत लखन प्रभु आगें। पूछें बचन कहत अनुरागें॥२॥

अर्थ : प्रवेश करते ही दुःख दावानल मिट गया। मानो योगी को परमार्थ की प्राप्ति हुई। भरतजी ने देखा कि लक्ष्मणजी सरकार के सामने हैं। पूछने पर अनुराग में पगे हुए कुछ कह रहे हैं।

व्याख्या : भरतजी के हृदय में दुःख का दावानल लगा हुआ है। वह उस आश्रम में प्रवेश करते ही मिट गया। यथा : एहि दुःख दाह दहै दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती। इससे उस आश्रम का सुमङ्गल सदन होना दिखलाया। दुःखदाव भी मिटा और परम सुख की प्राप्ति हुई। दोषापनयन कहकर गुणाधान कहते हैं कि मानो योगी ने परमतत्त्व पा लिया। यथा : पावा परमतत्त्व जनु योगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी। भावार्थ यह कि भरतजी मानो कृतकृत्य हो गये। यह वही समय है। जब सरकार पूछ रहे हैं कि भरतजी कहाँ तक आगये हैं। तुमने पेड़ पर चढ़कर क्या क्या देखा? और लक्ष्मणजी उत्तर दे रहे हैं। प्रसंगप्राप्त बात तो यही है। वाल्मीकीय में लक्ष्मणजी का पेड़ पर चढ़ना और भरतजी की सेना का अवलोकन

लिखा है। ग्रन्थकार कुछ स्पष्ट लिखते नहीं। अतः अनुमान यही होता है कि लक्ष्मणजी के क्रोध की शान्ति के बाद सरकार उसी विषय में कुछ पूछ रहे हैं।

सीस जटा कटि मुनि पट बाँधे। तून कसें कर सर धनु काँधें ॥
वेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू ॥३॥

अर्थ : सिर पर जटा बाँधे हुए हैं और कमर में वल्कल बँधा हुआ है। तरकस कसे हुए हैं। हाथ में बाण और कन्धे पर धनुष है। वेदी के ऊपर मुनि और साधुओं का समाज है। सीताजी के सहित रामजी सुशोभित हैं।

व्याख्या : लक्ष्मणजो ने बीररस के आवेश में युद्ध को तैयारी की थी अभी तक उसी वेष में हैं। यथा : बाँधि जटा सिर कटि कसि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा। भेद इतना ही है कि उस समय सजा हुआ धनुष था। इस समय कन्धे पर लटक रहा है। लक्ष्मणजी वेदी के नीचे हैं। यह वही वेदी है जिसके बारे में निषादराज ने कहा था : बट छाया बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सोहांई। जहाँ बैठि मुनि गन सहित नित सिय राम सुजान। सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान। सो सरकार भी बैठे हैं सीताजी भी बैठी हैं। मुनि समाज भी जुट गया है। सरकार का दरबार लगा हुआ है। इस मुनि मण्डली में राम जानकी की बड़ी शोभा है। क्योंकि सरकार मुनिवेष में हैं।

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जिमि मुनिबेष कीन्ह रति कामा ॥
कर [1]कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥४॥

अर्थ : पेड़ों के छाल का कपड़ा है। शरीर श्याम है। मानो काम और रति ने मुनि का वेष बना रक्खा है। करकमलों से धनुष वाण फेरते हैं और सहासावलोकन से जी की जलन का हरण कर रहे हैं।

व्याख्या : पीतरङ्ग के वल्कल धारण करने से : स्याम सरीर सुभाय सुहावन की बड़ी शोभा हो रही है। सरकार का रङ्ग श्याम है। जगदम्बा का वर्ण गौर है। सौन्दर्य की पराकाष्ठा रति और काम में ही माना गया है। अतः कवि उपमा देते हैं कि मानो स्वयं रति और काम ने ही मुनि का वेष धारण कर रक्खा है। रति का वर्ण गौर और काम का श्याम है।

सरकार वीरोचित स्वभावानुकूल अस्त्र-शस्त्र से सदा सावधान रहते हैं। उसे सुधारा करते हैं। अभ्यास के लिए फेरा करते हैं। सो उस समय धनुष वाण फेर रहे हैं और हँसकर देख रहे हैं। उस सहासावलोकन से मानो जिय की जलन को हरण कर रहे हैं। भरतजी ने कहा था : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ। सो मानो उसी के मिटाने के लिए हँसकर देख रहे हैं।

---

१. यहाँ परिणामालङ्कार है।

दो. लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचंदु ।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंद्र ॥२३९॥'

अर्थ : सुन्दर मुनिमण्डली के बीच में रामचन्द्र सीताजी के साथ विराजमान हैं। जैसे शरीर धारण किये हुए ज्ञान की सभा में भक्ति और सच्चिदानन्द विराजमान हों।

व्याख्या : ज्ञान प्राचुर्य के कारण मुनि मण्डली की उपमा ज्ञानसभा से दी गयी। अर्थात् साक्षात् विवेक विराग शम दम मानो मूर्तिमान बैठे हैं और ज्ञान की शोभा बिना भक्ति के होती नहीं। यथा : सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जल जानू। जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू। सो सच्चिदानन्द राम हैं। यथा : राम सच्चिदानंद दिनेसा। और भक्ति उनको प्रिया हैं। यथा : पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। अतः सीय रघुचंद की उपमा भक्ति सच्चिदानन्द से दी गयी। वे भी शरीर धारण किये हुए विराजमान हैं।

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं ॥१॥

अर्थ : भरतजी भाई और सखा सहित मगन मन हो गये। हर्ष शोक सुख दुःख सब भूल गये। हे नाथ ! रक्षा करो। हे गोसाईं ! रक्षा करो ऐसा कहकर दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिर गये।

व्याख्या : भरतजी शत्रुघ्न और निषादराज सबका मन मग्न हो गया। अर्थात् अपना कार्य करने में असमर्थ हो गया। अतः हर्ष शोक सुख दुःख का स्मरण न रह गया। अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः। सो स्मृति नहीं रह गयी। पहिले हर्ष हुआ था। यथा : हरषहिं निरखि रामपद अंका। सुख यथा : रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं। दुःख और शोक तो पहिले ही मिट गया था। यथा : करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथ पावा। इस समय तो स्मरण भी नहीं रह गया कि कभी शोक दुःखादि थे।

भूयोऽर्थ में दो बार पाहि कहा। यथा : त्राहि त्राहि आरत हरन। अथवा : प्रभु पितु बचन मोह बस बेली। आएउ इहाँ समाज सकेली। अतः दोनों अपराध की क्षमा के लिए दो बार पाहि कहा। भरतजी दुर्बल हो रहे हैं। अतः लकुटी की नाईं भूमि पर गिरना कहा। मनु शतरूपा हृष्टपुष्ट थे। अतः उनके लिए लिखा : परे दंड इव गहि पद पानी।

बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जियँ जाने ॥
बंधु सनेह सरस एहिं ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा ॥२॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने प्रेम सहित वचन पहिचाने और ऐसा जी में जाना कि

भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। इधर तो भाई का सरस प्रेम और उधर स्वामी की सेवा की प्रबलता।

व्याख्या : भरतजी के सप्रेम वचन को लक्ष्मण ने पहिचाना और किसी ने नहीं। क्योंकि सरकार की सेवा में सावधान हैं। इतना ही नहीं यह भी जान लिया कि भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। भाई के सरस प्रेम ने इस ओर मन को खैंचा : दौड़कर भाई से लिपट जाने को जी चाहा और उधर सरकार पूछते थे। लखनलाल उत्तर दे रहे थे। अतः स्वामी की सेवा में लगे थे। यथा : देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूछे बचन कहत अनुरागे। गोस्वामीजी दोनों ओर इत लिखते हैं। यथा : इत पितु बच इत बंधु सकोचू।

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई ॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ॥३॥

अर्थ : न मिलते बनता है और न छोड़ते ही बनता है। सुकवि लक्ष्मण के चित्त की गति का वर्णन करता है। सेवा पर ही भार रख छोड़ा। जैसे पतङ्ग उड़ानेवाला चढ़ी हुई पतङ्ग को खींचता हो।

व्याख्या : सेवा में रहने से मिलि न जाइ और भाई के सरस प्रेम के खैंच से मन उस ओर से इधर भी नहीं आता। इसलिए कहते हैं : नहिं गुदरत बनई। छोड़ते भी नहीं बनता। लखनलाल दोनों ओर की खैंचतान में पड़ गये। इस समय लखनलाल के मन की गति का वर्णन करना सुकवि का काम है सो सुकवि कहता है।

चङ्ग सीधे ऊपर नहीं जाती हवा के रुख पर जाती है। यहाँ चङ्ग उपमान है। मन उपमेय है। मन भरतजी की ओर खिचा। इसी को चङ्ग का चढ़ना कहा। लक्ष्मणजी की उपमा खेलाड़ी : पतङ्गबाज से है सो खेलाड़ी ने पतङ्ग को हाथ से जाने न दिया। परेते पर बोझा दिया। यहाँ सेवा परेता है। उसी में लखनलाल की मनोवृत्ति रूप नख लिपटा हुआ है।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा ॥
उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण ने प्रेम सहित पृथ्वी पर सिर नवाकर कहा कि हे रघुनाथ ! भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। रामचन्द्र इस बात को सुनते ही प्रेम से अधीर हो उठे। कपड़ा कहीं है। निषंग कहीं है। धनुष कहीं है और तीर कहीं है।

व्याख्या : बात करते करते प्रणाम का भाव यही कि अत्यन्त आवश्यकीय बात इस बीच में आन पड़ी। यदि सादा प्रणाम होता तो बात के सिलसिले में ही समझा जाता। अतः लक्ष्मणजी ने पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया। भरतजी ने नाथ कहकर पाहि कहा था। अतः लक्ष्मणजी रघुनाथ सम्बोधन करके कहते हैं कि आप रघुकुल के नाथ हैं। रघुकुल के मुख्य भरत प्रणाम करते हैं।

लक्ष्मणजी का वचन सुनते ही सरकार उठे। उठते ही सबने देखा तीर की

भाँति भरत के पास पहुँचते कोई देख न पाया। अतः गोसाइंजी ने सरकार का चलना नहीं लिखा। उठने में अधीरता दिखलाते हैं। खबर नहीं कि उत्तरीय कहाँ गिरा। हाथ से धनु सायक फेर रहे थे सो धनुष कहाँ गिरा। निषङ्ग और तीर कहाँ गिरे इसका ध्यान न रहा। रामजी को अधीर करनेवाला केवल प्रेम है।

दो. बरबस लिए उठाइ उर, लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलन लखि, बिसरे सबहि अपान ॥२४०॥

अर्थ : कृपा निधान रामचन्द्र ने भरत को जोर से उठाकर छाती से लगाया। भरत और रामजी के मिलने को देखकर सब अपनी सुधि भूल गये।

व्याख्या : प्रेम में जो मग्न होता है उसे उठना अच्छा नहीं लगता। यथा : प्रेम मगन तेहि उठब न भावा। अतः कहते हैं कि बल पूर्वक सरकार ने उठा लिया। स्वयं प्रेम में अधीर हैं। इसलिए हृदय से लगा लिया। भरतजी ने यह भी अनुमान किया था : जौ सनमानहि सेवक मानी। सो हृदय से लगाकर सम्मान किया। अतः प्रभु को कृपानिधान कह रहे हैं। सो मिलते समय ऐसी प्रीति बढ़ी कि देखनेवाले ऐसे मग्न हुए कि उन्हें अपनी सुधि न रही।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी॥
परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥१॥

अर्थ : मिलने का प्रेम कैसे वर्णन किया जाय। क्योंकि कवियों के लिए मनसा वाचा कर्मणा अगम हैं। मन बुद्धि चित्त अहन्ता को भूलकर दोनों भाई परम प्रेम से परिपूर्ण हो रहे हैं।

व्याख्या : रामजी की प्रीति भरत के प्रति जैसी थी उसे वर्णन भी किया यथा : रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती था। भरत की प्रीति रामजी के प्रति जैसी थी सो भी कहा। यथा : राम चरन पंकज मन वासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू। परन्तु कवि कहते हैं कि मिलने की प्रीति कैसे बखानी जा सकती है जब कि मार्ग में चलने की प्रीति ही कविकुल के लिए अगम थी। यथा : कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेषु। वहाँ तो अगमता की उपमा दी थी। पर यहाँ तो सीधे कह रहे हैं कि मनसा वाचा कर्मणा अगम है।

परम प्रेम में दोनों भाई ऐसे डूबाडूब हैं कि अन्तःकरण चतुष्टय का पता नहीं। प्रेम समाधि लग गयी। दर्शन करने से ही भरतजा को हर्ष शोक सुख दुःख गण भूल गया था। इस समय हर्ष शोक सुख दुःख गण के अनुभव के जो करण हैं : मन बुद्धि और चित्त उनकी भी विस्मृति हो गयी। भाव यह कि स्वयं मिलनेवालों को ही अपनी दशा का पता नहीं तो दूसरे कैसे जानें। मन में प्रेम के भर जाने से उसकी गति रुद्ध हो गयी। यदा : प्रेम भरा मन निज गति छूँछा।

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छायाँ कबि मति अनुसरई॥
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाँचा॥२॥

अर्थ : कहिये तो उस प्रेम को कौन प्रकट करे। किस छाया का कवि की मति अनुसरण करे। कवि को तो अक्षर और अर्थ का सच्चा बल होता है ' जैसे नट ताल की गति के अनुसार नाचता है।

व्याख्या : जिस प्रेम में मन बुद्धि चित्त अहन्ता का विस्मरण हो गया वह कैसे प्रकट किया जा सकता है ? अन्तःकरण ही अन्तः के प्रेम को प्रकट करते हैं। अन्तःकरण की गति की छाया का अनुसरण करके ही कवि वर्णन करते हैं। यहाँ अन्तःकरण में गति ही नहीं। तब किस छाया का कवि अनुसरण करे। कवि को अक्षर और अर्थ का सच्चा बल है। शब्द और अर्थ ही काव्य का शरीर है। वह अक्षर और अर्थ का ऐसा प्रयोग करता है कि उसे सरस्वती का नृत्य कहा जाता है। कुछ भाव अक्षर के प्रयोग से ही प्रकट हो जाते हैं। कुछ अर्थ के बल से प्रकट होते हैं। परन्तु वह तभी सम्भव है जब मन बुद्धि चित्त अहङ्कार में गति हो। बिना गति के ताल कैसे दिया जायगा। तालः कालक्रिया मानम् और बिना ताल के नाचनेवाला कैसे नृत्य करे। इस भाँति कविकुल के लिए कर्म मन वाणी से उस प्रीति को अगम बतलाया।

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को ॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर ताँती ॥३॥

अर्थ : भरत और रामजी का स्नेह दुर्गम है। जहाँ ब्रह्मा विष्णु और रुद्र का भी मन नहीं जाता। उस प्रेम को मुझ सा कुबुद्धि कैसे कह सकता है। क्या भेंड की ताँत से अच्छा राग बज सकता है।

व्याख्या : अब मन से अगम कह रहे हैं कि बिधि हरिहर के मन के लिए अगम है। कवि तो मनुष्य है। उसकी क्या गिनती है। अहङ्कार शिव बुद्धि अज मनराशि चित्त महान। यहाँ मन बुधि चित्त अहमिति का ही विस्मरण है और विधि हरिहर उन्हीं के अधिष्ठाता हैं। अतः उनकी गति नहीं है।

विधि हरिहर सुमतियों के शिरोमणि हैं और मैं तो कुमति हूँ। जब ऐसों की पहुँच नहीं तो मेरी पहुँच कहाँ तक हो सकती है। भेंड़ की ताँत : आँत के नसों से सुराग नहीं बज सकता। सारङ्गी आदि में बूढ़ी भैंस आदि की आँत की नस का प्रयोग होता है तब अच्छा राग बजता है। भेंड़ की आँत छोटी होती है और उसमें लचक नहीं होती। अर्थात् मैं कुमति होकर उसे कैसे कह सकता हूँ। इस भाँति वाणी से अगम कहा। सङ्गीत में तीन की आवश्यकता होती है। गान ताल और नृत्य की। इस भाँति कवित्व में भी तीन की आवश्यकता होती है। शिक्षा जानकारी और शक्ति की। यहाँ विषम अगम्य शक्ति दुर्बल और कुमति गाँडर ताँती है। सुमति वृद्धा भैंसे की ताँती है। गाँडर ताँती से सुराग ही नहीं बजता और जिस गान के ताल का थाह नहीं वह गाँडर ताँती से कैसे वजेगा। गाँडर भेंड़ को कहते हैं। इसीलिए उसके चरवाहे को गँडेरिया कहा जाता है।

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की । सुरगन सभय धकधकी धरकी ॥
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे । बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥४॥

अर्थ : भरत और रघुवर का मिलन देखकर देवताओं की तो डर से छाती धड़कने लगी । जब वृहस्पतिजी ने समझाया तब उनकी जड़ता गयी । फूलों की वर्षा करके प्रशंसा करने लगे ।

व्याख्या : इतने बड़े प्रेम को देखकर देवताओं का कलेजा हिलने लगा कि यह तो वही बात हुई जिसको हमलोग डरते थे । राम सँकोची प्रेमबस भरत सुप्रेम पयोधि । बनी बात बिगरन चहति करिअ जतनु जल सोधि । भरतजी निश्चय लौटा ले जावेंगे और रामजी लौट जायँगे । भरत का अनुरोध कभी व्यर्थ नहीं जा सकता । हम कहते रहे : करिअ प्रभु सोई । रामहि भरतहि भेंट न होई । पर गुरुजी ने नहीं माना । अब तो भेंट हो गयी । अब क्या उपाय है ?

गुरुजी ने समझाया कि रामजी के अनुरोध को भरत ही कैसे टालेंगे । इस समय भक्त और भगवान् का सम्मिलन हो रहा है । यही पूजन का समय है । तुम लोग क्या सोच रहे हो ? तब देवताओं की जड़ता गयी और पुष्पवृष्टि तथा स्तुति करने लगे ।

दो. मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि, केवटु भेंटेउ राम ।
भूरि भायँ भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम ॥२४१॥

अर्थ : प्रेम के साथ शत्रुघ्न से मिलकर फिर रामजी केवट से मिले । लक्ष्मण को प्रणाम करते देखकर भरतजी बड़े प्रेम के साथ उनसे मिले ।

व्याख्या : भरतजी के बाद सरकार शत्रुघ्नजी से मिले । तत्पश्चात् केवट से मिले । जब सरकार भरतजी से मिल चुके तब लक्ष्मणजी को प्रणाम करने का अवसर मिला । भरतजी लक्ष्मण से बड़े प्रेम के साथ मिले । तब तक सरकार केवट से मिले । लक्ष्मणजी की भी वही दशा है जो भरतजी की थी । ये भी उठना नहीं चाहते । अतः भरतजी का मिलना कहते हैं ।

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे । अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥१॥

अर्थ : तब फिर लक्ष्मणजी उमगकर छोटे भाई से मिले । फिर निषाद को छाती से लगा लिया । फिर दोनों भाइयों ने मुनियों की वन्दना की और ईप्सित आशीर्वाद पाकर आनन्दित हुए ।

व्याख्या : भरतजी से छूटते ही लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजो से लिपट गये । प्रणाम करने तक का अवसर नहीं दिया । इतनी उत्सुकता ललकि शब्द के द्योतित होती है । इधर रामजी केवट से मिल चुके तब से लक्ष्मणजो ने उसे हृदय से लगा लिया । जब तक रामजी और भरतजी का मिलन हुआ तब तक लोग स्तब्ध होकर खड़े

रहे। फिर रामजी का और केवट मिलन तथा भरत लक्ष्मण मिलन एक काल में हुआ। तत्पश्चात् लक्ष्मणजी ने केवट को हृदय से लगाया।

यह मिलन वेदी के बाहर हुआ। अब वहाँ से वेदी के पास लौटे तो देखा कि मुनि मण्डली खड़ी प्रेम मिलन देख रही है। अतः मुनिगण को दोनों भाई भरत शत्रुघ्न ने प्रणाम किया। भगवद्भक्तिरस्तु यही अभिमत आशीर्वाद है। इस आशीर्वाद से दोनों भाइयों को बड़ा आनन्द हुआ। क्योंकि मुनियों का अशीर्वाद है। निष्फल नहीं जा सकता।

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए ॥२॥

अर्थ : फिर भरतजी छोटे भाई के साथ उमगकर सीताजी के चरणों की धूलि को माथे चढ़ाकर बार बार प्रणाम करने लगे। सीताजी ने उनके मस्तक को अपने कर कमल से स्पर्श करके उन्हें उठाया और बिठला दिया।

व्याख्या : सरकार तो दौड़ पड़े। लक्ष्मणजी भी साथ ही गये। पर सीताजी जहाँ की तहाँ रह गयीं। अतः वहाँ पहुँचने पर भरतजी ने पग धूलि ली। भगवती की चरण धूलि कहीं नहीं मिली थी। केवल : कनकबिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीयसम लेखे। सरकार की चरण धूलि अपेक्षाकृत सुलभ है। पर भगवती की चरण धूलि महा दुर्लभ है। स्त्रियों के चरण स्पर्श का अधिकार भारतवर्ष में अतिविरल है।

भगवती को बारम्बार भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। क्योंकि इनके अनुग्रह पर सरकार का अनुग्रह अवलम्बित है : जब से यह भाव देश से उठ गया तब से घर में फूट होने लगी। भगवती ने हाथ के इशारे से उठाया। सिर का स्पर्श कर कमल से किया। यह सौभाग्य भरतजी का ही हुआ।

सीयँ असीस दीन्ह मन माहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं ॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच डर अपडर बीता ॥३॥

अर्थ : सीताजी ने मन ही मन में आशीर्वाद दिया। वे स्नेह में मग्न थीं। उन्हें देह की सुधबुध नहीं थी। सब प्रकार से सीताजी को सानुकूल देखकर भरतजी सोच रहित हो गये। निर्मूल भय जाता रहा।

व्याख्या : सीताजी आशीर्वाद देना चाहती हैं। परन्तु स्नेहाधिक्य से वाणी काम नहीं कर रही है। अतः मन में ही आशीर्वाद दिया। दोनों भाई परम प्रेम में पूर्ण थे। भगवती भी परम प्रेम में पूर्ण हैं। इन्हें भी देह की सुधि नहीं है। भरतजी ने लख लिया। सिर के कर कमल द्वारा स्पर्श से जान लिया कि सीताजी सभी प्रकार से सानुकूल हैं। भरतजी को भरोसा भी ऐसा ही था। अवध की सभा में कहा भी था : परिहरि रामुसीय जगमाँही। कोउ नहिं कहिहि मोर मत नाँहीं। फिर भी मन में डर होता था कि कदाचित् दुःखी हों। क्योंकि दुःखी होने के लिए

यथेष्ट कारण है। सो अब मालूम हुआ कि वह डर निर्मूल था। माता की पूरी प्रसन्नता है।

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि ॥४॥

अर्थ : उस समय न किसी ने कुछ कहा न किसी ने कुछ पूछा। मन प्रेम से भर गया था। अतः अपनी स्वाभाविक गति से रीता था। उस अवसर केवट ने धैर्य धारण करके प्रणाम पूर्वक करबद्ध प्रार्थना की।

व्याख्या : इतने दिन के बाद भेंट हो रही है। कुशल मङ्गल पूछना चाहिए। परिस्थिति में इतना बड़ा परिवर्तन हुआ है कि उस विषय की चर्चा होना प्राप्त है। सो कोई कुछ बोलता नहीं। सब व्यवहार का कारण मन की हलचल है। सो मन में प्रेम भरा है। अतः वह स्थिर हो रहा है। फिर पूछने या कहने की प्रक्रिया हो तो कैसे हो : बड़ी सावधानी रक्खी गयी है कि चक्रवर्तीजी के देहावसान का समाचार रामजी को गुरुजी के अनुपस्थिति में न लगने पावे। नहीं तो उन्हें सँभालेगा कौन ?

केवट ने धैर्य धारण किया : डूबती हुई नाव के समय धैर्य धारण करने का उसे अभ्यास है। कुशल कुछ कहने लायक नहीं। अयोध्या का हाल गुरुजी के मुख से ही कहा जाना चाहिए। किसे साहस है कि चक्रवर्तीजो का मरण सुनाये और किसे सामर्थ्य है कि रामजी को उस समय सँभाले। अतः पहिले इनकी भेंट गुरुजी से होनी चाहिए। अतः प्रणाम करके विनय करता है।

दो. नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आए बिकल बियोग ॥२४२॥

अर्थ : हे नाथ ! मुनिनाथ के साथ सब माताएँ, नगर निवासी, सेवक, सैनिक और मन्त्री सब लोग वियोग से व्याकुल आये हैं।

व्याख्या : निषादराज का भाव यह कि भरतजी तो सानुज मेरे साथ चले आये। उधर गुरुजी के साथ माताएँ और सब प्रजा है। इतना ही नहीं मन्त्री लोग सेनापति लोग आये हैं। कारण यह है कि सब सरकार के वियोग से विकल हैं। यथा : सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी। इस तरह से निषादराज कह रहे हैं। जिसमें चक्रवर्तीजी के विषय में प्रश्न ही न उठे। समझ लें कि महाराज वहाँ हैं ही। सबके आने में कोई हानि नहीं।

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदमनू ॥
चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला ॥१॥

अर्थ : शीलसिन्धु रामजो ने गुरुजी का आगमन सुनकर सीताजी के पास शत्रुघ्नजी को रक्खा। धैर्य और धर्म के धुरन्धर दीनदयाल उस समय वेग से चले।

व्याख्या : सदाचार के समुद्र हैं। जिस गुरुजी के कहने से पिता वचन त्याग सकते हैं यथा : अवसि फिरिहि गुरु आयसु मानी : उस गुरुजी का आगमन सुनकर क्षण भर भी नहीं ठहर सकते। निषादराज ने तो माताओं का भी आगमन कहा। पर सबसे अधिक प्रभाव रामजी पर गुरु के आगमन का पड़ा। सीताजी को साथ ले जाने से फिर वहीं ठहरना पड़ेगा और यहाँ ठहरना ठीक नहीं। अतः सीताजी की रक्षा के लिए शत्रुघ्नजी को छोड़ दिया। लक्ष्मणजी का भी जाना प्राप्त था। कुलवधू अरक्षित किसी भाँति नहीं छोड़ी जा सकती।

सरकार मत्तमंजु कुंजर वर गामी हैं। पर उस समय वेग से चले। गुरुजी के अगवानी की त्वरा है। इस भाँति और किसी स्थान पर चलना नहीं पाया जाता। गुरुजी घर पर आये तो वहाँ भी सरकार ने अगवानी किया। गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा। यहाँ तो गुरुजी अयोध्या से चलकर आ रहे हैं। अतः अधिक आगे होकर लेना चाहिए। धीर हैं। पण्डित हैं। धर्म के धुरा के वहन करनेवाले हैं। दीनों के ऊपर दया करनेवाले हैं। बड़ों का सम्मान करेंगे। वियोग से विकल लोगों की आर्त्ति का हरण करेंगे।

गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिवर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥२॥

अर्थ : गुरुजी को देखकर भाई के साथ अनुराग में आगये। प्रभु दण्ड प्रणाम करने लगे। मुनिवर ने दौड़कर उन्हें छाती से लगा लिया और प्रेम में उमगकर दोनों भाइयों से मिले।

व्याख्या : सरकार का आना सुनकर गुरुजी को आगे करके मिलने के लिए सब लोग इकट्ठे हो गये। जहाँ से गुरुजी पर दृष्टि पड़ी वहीं से सरकार ने दण्ड प्रणाम साष्टाङ्ग दण्डवत् आरम्भ किया। क्योंकि गुरुजी के चरणों में अटूट प्रेम है।

सरकार को साष्टाङ्ग करते हुए आते देखकर गुरुजी दौड़ पड़े कि अब एक दण्डवत् भी अधिक न हो। गुरुजी प्रेम से उमगकर दोनों भाइयों से मिले। भावार्थ यह कि दोनों भाई साष्टाङ्ग प्रणाम करते आ रहे थे।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दंड प्रनामू॥
राम सखा रिषँ बरबस भेंटा। जिमि महि लुठत सनेह समेटा॥३॥

अर्थ : फिर केवट ने प्रेम से पुलकित हो अपना नाम कहकर दूर से प्रणाम किया। ऋषिजी राम सखा से जबरदस्ती मिले। मानो जमीन पर गिरते हुए घी प्रेम को समेट लिया।

व्याख्या : सरकार के साथ आया है और तदीय हैं। सरकार दण्डवत् करते हैं तो निषादराज भी दण्डवत् करता है। गुरुजी को देखता है कि प्रेम के उमंग में हैं कहीं मुझे छू न लें। अतः दूर से दण्डवत् करता है। अपना नाम कहता है। यह

नियम हाथ लगा कि अत्यन्त प्रेम में स्पृश्यास्पृश्य का विचार आर्यंसन्तान न करे और अस्पृश्य जाति उनकी धर्मरक्षा के लिए स्वयं दूर रहें।

मुनिजी ने केवट को नहीं भेंटा रामसखा को भेंटा। रामसखित्व के सामने जाति का विचार कुछ नहीं। वह मिलना नहीं चाहता था। ऋषिजी जबरदस्ती मिले। घी का घड़ा तो लुढ़कना चाहता है पर सावधान पुरुष गिरते हुए घी को समेट लेता है गिरने नहीं देता। इसी भाँति मुनिजी स्नेह : प्रेम का पृथ्वी पर लुढ़कना न देख सके। निषादराज के मिलने में मुनिजी ने बल और त्वरा दोनों से काम लिया। यहाँ स्नेह शब्द में श्लेष है। स्नेह प्रेम घी तेल आदि का वाचक है।

**रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहि सुर बरसहिं फूला॥**
**एहि सम निपट नीच कोउ नाँहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माँहीं॥४॥**

अर्थ : आकाश में देवता लोग : रघुपति भक्ति सुमंगल मूल हैं। ऐसी प्रशंसा करके फूल की वर्षा कर रहे हैं। कहते हैं : इसके ऐसा एक बारगी नीच कोई नहीं और वसिष्ठ से बड़ा संसार में कौन है ?

व्याख्या : सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेह। इस स्नेह को प्रारब्ध के मिटाने की शक्ति है। भक्ति ने इसे शुद्ध बना दिया। भक्ति की स्तुति देवता कर रहे हैं और पुष्पवृष्टि द्वारा गुणों का पूजन कर रहे हैं।

देवता लोग आश्चर्य कर रहे हैं कि निषाद अत्यन्त नीच जाति है और वसिष्ठजी से बड़ा कोई नहीं है जिन्हें रामजी के गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन्होंने ही विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण बनाया। अतः जो वसिष्ठजी करें वही प्रमाण है। वसिष्ठजी ने इसे स्पृश्य बना लिया। रामजी के मिलने पर देवताओं ने आश्चर्य नहीं किया। क्योंकि ये तो सदा सर्वमत सर्वहित हैं। सभी से मिले मिलाये हैं। वसिष्ठजी के मिलने पर बड़ा आश्चर्य है। क्योंकि ये तो कर्मकाण्डी हैं। इन्होंने कर्मकाण्ड का अवहेलन कैसे किया।

**दो. जेहि लखि लखनहु ते अधिक, मिले मुदित मुनिराउ।**
**सो सीतापति भजन को, प्रकट प्रताप प्रभाउ॥२४३॥**

अर्थ : जिसे देखकर मुनिराज लक्ष्मणजी से भी अधिक आनन्दित होकर मिले। यह सब सीतापति के भजन का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

व्याख्या : वसिष्ठजी लक्ष्मणजी से भी अधिक आनन्दित होकर निषादराज से मिले। स्वयं मुनिनाथ हैं। लक्ष्मणजी मिलना चाहते थे और यह नहीं चाहता था। अतः मुनिजी को बलपूर्वक मिलना पड़ा। भजन सत्कार विशेष के पाने की इच्छा से नहीं किया जाता। पर भजन का प्रभाव ऐसा है कि भक्त का जगत् सत्कार करता है। उसमें भी उद्भवस्थिति संहारकारिणी, क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी सीता के वल्लभ के भजन का प्रभाव क्यों न सकल सुमङ्गल मूल हो।

आरत लोग राम सबु जाना। करुनाकर सुजान भगवाना ॥
जो जेहि भायँ रहा अभिलाखी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी ॥१॥

अर्थ : करुणा की खानि तथा सुजान भगवान् ने सब लोगों को जाना कि आर्त हो रहे हैं। जो जिस भाव का अभिलाषी रहा उसकी वैसी ही रुचि रक्खी।

व्याख्या : शत्रुघ्नजी से मिलने के बाद और लोगों से मिलने की बारी है और सब लोग मिलने के लिए उत्सुक हैं। सब लोग अपने हृदय में अपना पृथक् पृथक् मनोरथ लिये हैं कि मैं इस भाँति मिलूँगा। भगवान् सुजान हैं। यथा : को जियकै रघुबर बिनु बूझा। करुणाकर हैं। सबको देख रहे हैं कि मिलने के लिए आर्त हैं। अतः जिसे जिस भाव से जिसकी मिलने की अभिलाषा थी उससे उसी भाव से मिले। किसी की रुचि में भेद न पड़ने पाया। मिलने में सबकी रुचि रखते हैं। कोई कृपा कटाक्ष के भूखे थे। कोई चरणरज चाहते थे। कोई गले लगाना चाहते थे। कोई अपने सिर पर सरकार का हाथ चाहते थे। कोई वचनामृत सुनना चाहते थे। सो सबकी अभिलाषा पूर्ण की।

सानुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुख दारुन दाहू ॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाँहीं ॥२॥

अर्थ : एक पल में भाई के सहित सबसे मिलकर दुःख और दारुण दाह को दूर किया। रामजी के लिए यह बड़ी बात नहीं है। जैसे करोड़ों घड़ों में एक सूर्य की छाया पड़ती है।

व्याख्या : यह भगवान् का ऐश्वर्य है कि एक पल में सबसे भाई के साथ मिले। अमित रूप प्रकटे तेहि काला। सो नहीं हुआ। सरकार उसी रूप से लक्ष्मणजी के साथ सबसे मिले। एहि दुख दाह दहै दिन छाती। सो दाह कार्य और दुःख कारण है। मानसिक दुःख दाह का कारण होता है। सो कारण के साथ कार्य को दूर किया।

अब उदाहरण देते हैं कि जैसे भगवान् सूर्य एक ही हैं पर प्रतिबिम्ब द्वारा करोड़ों घट से एक साथ मिलते हैं। उसी भाँति अपनी अघटित घटना पटीयसी माया द्वारा सबसे मिले।

मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा ॥
देखीं राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवलीं हिम मारी ॥३॥

अर्थ : सब पुरजन अनुराग से उमगकर केवट से मिलकर भाग्य की सराहना करते हैं। रामजी ने माताओं को दुःखी देखा। जैसे सुन्दर लता की श्रेणी को पाला मार दिया हो।

व्याख्या : सरकार से मिलकर सब केवट से मिलते हैं। गुरुजी का अनुसरण करते हैं। यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः। स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु-

वर्तते। वास्तविक गुण पूजा के सामने जाति पर ध्यान नहीं दिया जाता। अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं। अथवा केवट के भाग्य की प्रशंसा करते हैं। केवट को सरकार का साथी मानते हैं। यह अयोध्यावासी नहीं है। वनवासी है।

देखी सास आन अनुहारी। यह भाग सीताजी के स्वप्न का ठीक हो रहा है। कौसल्याजी को भरत ने देखा : कनक कलप बर बेलि जनु मानहु हनी तुषार। यही अवस्था सब माताओं की रामजी देख रहे हैं। मानो सुनहली कल्पवल्ली को पाला मार दिया हो। पाला मारते ही वेली झुलस जाती है। सरकार सबसे मिलकर तब माताओं से मिल रहे हैं।

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई ॥
पग पर कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी ॥४॥

अर्थ : पहिले रामजी कैकेयी से मिले। सरल स्वभाव के साथ और बुद्धि उनकी भक्तिरस से भींगी हुई थी। चरणों पर गिरकर फिर समझाया और दोष का कालकर्म और विधि के सिर पर रक्खा।

व्याख्या : सरकार का यह हाल है : कहैं मोहि मैया कहौं मैं न मैया भरत की बलैया लैहौं भैया तेरी मैया कैकेयी है। सरल सुभाय रघुराय तेहि मातु मानी काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है। अतः पहिले कैकेयी से सरल स्वभाव तथा भक्ति भरे हुए मिले;

कैकेयी रोने लगी। अतः चरणों को पकड़कर समझाया। भरद्वाजजी ने केवल विधि को दोष दिया था। सरकार ने काल कर्म और विधि को दोष दिया। इन्हीं को कर्म फल प्राप्ति का कारण कहा।

जननी जनि होय दुखी जिय में करनी बिधि की कछू जात न जानी।
सब नाचत कर्म की डोर बँधे अस कोइ नहीं अपने बस प्रानो ॥
मतिहू तसि होत समय जस होत बृथा मन में नर मानत ग्लानी।
सपनो सो सबै अपनो न कछु जिय जानि के हानि न मानत ज्ञानी ॥

दो. भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोधु परितोषु।
अंबु ईस आधीन जगु, काहु न देइअ दोषु ॥२४४॥

अर्थ : फिर रामजी प्रबोध और परितोष करके सब माताओं से मिले। बोले : हे अम्ब ! यह जगत् ईश के अधीन है। किसी को दोष नहीं देना चाहिए।

व्याख्या : तत्पश्चात् सब माताओं से मिले। यहाँ स्पष्ट है कि तीनों पट्टमहिषियों के अतिरिक्त जो माताएँ थीं उनसे मिले। सबकी वही दशा है। अतः सबको समझाना बुझाना और परितुष्ट करना पड़ा। उन लोगों ने कैकेयी को दोष दिया। अतः सरकार कहते हैं कि संसार ईश्वर के अधीन नटमर्कट की भाँति नाचता है। परतन्त्र को क्या दोष है? वह तो प्रेरक की प्रेरणानुसार आचरण करता है। अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते। अतः किसी को दोष नहीं देना चाहिए।

गुरतिअ पद बंदे दुहुँ भाई । सहित बिप्रतिय जे संग आई ।।
गंग गौरि सम बस सनमानी । देहिं असीस मुदित मृदु बानी ।।१।।

अर्थ : गुरुजी की स्त्री की दोनों भाइयों ने वन्दना की और जो ब्राह्मण की स्त्रियाँ उनके साथ आयी थीं उन सबका गङ्गा और गौरी के समान सम्मान किया और वे प्रसन्न होकर मृदु वाणी से आशीर्वाद देने लगीं ।

व्याख्या : अरुन्धती अरु अगिनि समाऊ । रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ । सो भगवती अरुन्धती भी आयी हुई हैं । वे भी रनिवास के साथ हैं । अतः उनके चरणों की भी दोनों भाइयों ने वन्दना की । इनसे मिलना नहीं कहते । केवल चरण वन्दना का अधिकार है । वसिष्ठजी के साथ ब्राह्मण लोग थे । भगवती अरुन्धती के साथ ब्राह्मणियाँ थीं । ब्रह्मकुल शङ्कर रूप हैं । शङ्कर की दो शक्तियाँ उमा और गंगा । अतः उनका सम्मान गंगा और गौरी के समान किया । ब्राह्मणियों के सम्मान में मनुष्य बुद्धि ही नहीं । सभी मङ्गल कार्य में गंगा और गौरी का पूजन किया जाता है । [1]आरम्भ में गौरी का और अन्त में गंगाजी का । सम्मान करने से वे प्रसन्न हो गयीं । मृदुवाणी में आशीर्वाद देने लगीं ।

गहि पद लगे सुमित्रा अंका । जनु मेटी संपति अति रंका ।।
पुनि जननी चरनन दोउ भ्राता । परे प्रेम ब्याकुल सब गाता ।।२।।

अर्थ : सुमित्राजी के पावों पड़कर उनके गोद में ऐसे लिपटे जैसे अति दरिद्र को सम्पत्ति मिले । तत्पश्चात् माँ के चरणों में दोनों भाई गिरे । प्रेम से उनके अंग शिथिल थे ।

व्याख्या : चरण पकड़ने के बाद दोनों भाई सुमित्राजी के गोद में लिपट गये । छोड़ना नहीं चाहते । जैसे सम्पत्ति पाने पर दरिद्र उससे लिपट जाता है । अलग होना चाहता ही नहीं । सुमित्राजी का सिद्धान्त है : सकल सुकृत कर बड़ फल एहू । सीय रामपद कमल सनेहू । अतः सरकार भी उन्हें उसी भाँति चाहते हैं ।

तत्पश्चात् माँ कौसल्या के चरणों में गिरे । प्रेम से अपने को सँभाल नहीं सक रहे हैं । अतः प्रेम से सब शरीर व्याकुल है । अति मात्रा होने से प्रेम में और सुख में भी व्याकुलता होती है ।

अति अनुराग अंब उर लाए । नयन सनेह सलिल अन्हवाए ।।
तेहि अवसर कर हरख बिषादू । किमि कबि कहइ मूक जिमि स्वादू ।।३।।

अर्थ : अत्यन्त प्रेम से माँ ने हृदय से लगा लिया । प्रेम के आँसू से नहला

———

१. गनपति गौरि गिरीस मनाई । चले राम तथा : तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ ।

दिया। उस समय के हर्ष विषाद को कवि कैसे कहें। जैसे गूँगा स्वाद का वर्णन कैसे करे।

व्याख्या : माँ ने कहा था : सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहिं। सो वह घड़ी आगयी। अति अनुराग से प्रेमाम्बु प्रवाह बह चला। हृदय में लगाये हुए हैं आँखों से आँसू बह रहा है। वह सरकार के ऊपर पड़ रहा है। दोनों भाई भींग गये।

हर्ष मिलने का और विषाद वनवास का। उस समय हर्ष भी अत्यन्त हुआ। साथ ही साथ विषाद भी कम नहीं है। उसे कवि अनुभव करता है। पर कह नहीं सकता। स्वाद का कहना अशक्य है। गुड़ चीनी शहद मिश्री का अन्तर कोई कह नहीं सकता। अनुभव सब करते हैं। सो मूक तो बोलने में ही असमर्थ है। वह स्वाद का वर्णन क्या कर सकता है। कवि हर्ष विषाद के संमिश्रण का कैसे वर्णन करें।

मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुरसन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि उतरेउ लोगू॥४॥

अर्थ : भाई के सहित रामजी माँ से मिलने के बाद गुरुजी से कहा कि पधारिये। तब नगर के लोग मुनिजी की आज्ञा पाकर जलयुक्त थल देखकर उतरने लगे।

व्याख्या : उदासीन रूप से रहने का [1]वचन है। इसलिए सरकार प्रजावर्ग के साथ रहना नहीं चाहते। केवल गुरुजी से चलने को कहते हैं। माता के मिलन से मिलन की पूर्णाहुति। किसे ठहरने को कहें। किसे साथ चलने को कहें। इस असामञ्जस्य में केवल गुरुजी से कहा। गुरुजी जैसा उचित समझें करें।

गुरुजी ने चलने के पहिले सबको वहीं ठहरने की आज्ञा दी। लोग जलाशय देख देखकर वहाँ ठहर गये। भरतजी के कहने से लोग नदी के किनारे ठहर गये थे। मालूम नहीं कहाँ निवास करना होगा। अब मालूम हुआ कि यहीं ठहरना है। अतः जल थल देखना पड़ा। नदी के किनारे धूप रहती है। अतः छाया और जल दोनों का सुभीता देखकर लोग उतरे।

दो. महिसुर मंत्री मातु गुर, गने लोग लिए साथ।
पावन आश्रम गवनु किय, भरत लखन रघुनाथ॥२४५॥

अर्थ : ब्राह्मण, मन्त्री, माताएँ और गुरु तथा गिने हुए लोगों को साथ में लिया और भरत लक्ष्मण तथा रामजी पावन आश्रम को गये।

व्याख्या : गुरुजी ने अपने साथ ब्राह्मण, मन्त्री, और माताओं को लिया। कवि भी पद मैत्री से काम लेकर बार बार मकार का प्रयोग करते हैं महिसुर,

———

१. यथा : तापस बेष बिसेष उदासी।

मन्त्री और मातु और कम से कम लोग उनकी सेवा के लिए साथ में लिया और आश्रम की ओर चले। शत्रुघ्नजी पहिले से वहीं हैं। इसलिए भरत, लखन और रघुनाथजी का चलना कहते हैं। गिने हुए लोग को साथ में लेने का भाव यह कि अनगिनती लोगों को वहाँ छोड़ा। अथवा साथ में लेनेवालों को गिन लिया कि इनसे एक भी अधिक जाने न पावें।

सीय आइ मुनिबर पग लागी। उचित असीस लही मन मागी ॥
गुरुपतिनिहि मुनि तियन्ह समेता। मिली पेमु कहि जाइ न जेता ॥१॥

अर्थ : सीताजी आकर वसिष्ठजी के पावों पड़ीं। मन माँगी हुई उचित आशीष प्राप्त हुई। तत्पश्चात् गुरुजी की स्त्री तथा मुनियों की स्त्रियों से मिलीं। वह प्रेम कहा नहीं जाता।

व्याख्या : गुरुजी को आया हुआ देखकर भगवती स्वयं प्रणाम करने गयीं। गुरुजी ने सावित्री भव ऐसा आशीर्वाद दिया। कुल वधुओं के लिए यही उचित आशीर्वाद है और यही सीताजी को ईप्सित था। सीताजी ने चाहा था कि गुरुजी से यही आशीर्वाद मिले और वही मिला। महिसुर मन्त्री और माताएँ गिने गिनाये लोग ही थे। अतः सीताजी अकेले उस समाज में चली गयीं।

तत्पश्चात् अरुन्धतीजी के पास गयीं। उनके साथ मुनिपत्नियाँ थीं। उन लोगों से सीताजी जाकर मिलीं। उनसे मिलने में अकथनीय प्रेम था। सीताजी ठीक क्रम के अनुसार मिल रही हैं। सरकार ने व्युत्क्रम कर दिया। माताओं को अति दुःखी देखकर गुरुतिय वन्दन के पहिले ही उनसे मिले। यथा : देखी राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवली हिम मारी। प्रथम राम भेटी कैकेई।

बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिर बचन लहे प्रिय जी के ॥
सासु सकल जब सीय निहारी। मूँदे नयन सहमि सुकुमारी ॥२॥

अर्थ : सीताजी ने सभी के चरणों में प्रणाम करके अपने जी के प्यारे आशीर्वाद पाये। सासुओं को जब सीताजी ने देखा तो सुकुमारी ने सहमकर आँखें बन्द कर लीं।

व्याख्या : जितनी मुनि की स्त्रियाँ आयीं थीं सरकार ने सबका गङ्गा गौरी सा सम्मान किया। दूर से पूजन किया। भगवती पहिले सबसे मिलीं। तत्पश्चात् सबके चरणों की वन्दना की। उन लोगों ने भी जो हृदय को प्रिय रहा वही आशीर्वाद दिया। स्त्रियों में तो एक ही आशीर्वाद सौभाग्य विषयक प्रचलित है।

सरकार ने माताओं को देखा। जनु सुबेलि अबली हिम मारी। परन्तु भगवती सुकुमारता के कारण देख न सकीं। भय से आँख मूँद ली। इतना बड़ा परिवर्तन माताओं में हुआ है कि जो सीताजी निर्भीक वन में गयीं वे ही सासों की यह दशा देख न सकीं।

परीं बधिक बस मनहु मराली। काह कीन्ह करतार कुचाली ॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा। सो सब सहिअ जो दैउ सहावा ॥३॥

अर्थ : मानों हंसिनियाँ वधिक के वश में पड़ी हुई हैं। सोचने लगीं : कर्तार ने यह क्या कुचाल किया। उन्होंने सीताजी को देखकर अत्यन्त ही दुःख पाया। कहने लगीं : जो दैव सहावें वह सहना ही है।

व्याख्या : मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली। सो मराली वधिक के वश पड़ी है। मानो आसन्न मृत्यु सी हैं। अति विकल हैं। ब्रह्मदेव को दूषण देती हैं। जैसा सपना में देखा था : देखी सासु आन अनुहारी। वही दशा सासों की है। सरकार को माताएँ : जनु सुबेलि अबली हिम मारी : दिखायी पड़ती हैं। क्योंकि वे भी इनको सुबेलि की दृष्टि से देखती थीं। यथा : मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली। और माता भगवती को मराली रूप से देखती थीं। यथा : जिअइ कि लवन पयोधि मराली। अतः उन्होंने सास को मराली रूप देखा।

सास ने सीताजी को आँख की पुतली की भाँति माना था। यथा : नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउ प्रान जानकिहिं लाई। सो जानकी को तापस वेष में देखकर अत्यन्त दुःखी हुईं और सब दुःख तो सहा अब यह भी सहना पड़ा कि पुत्रवधू तापस वेष में है। सोचती हैं कि यह पूर्वजन्म के कर्म का फल है। पूर्वजन्म कृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। इससे सहना ही पड़ेगा।

जनक सुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोयन भरि नीरा ॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई ॥४॥

अर्थ : तब राजा जनक की बेटी सीताजी ने हृदय में धैर्य धारण करके और नीले कमल से नेत्रों में आँसू भरकर सब सासों से जाकर मिलीं। उस अवसर पर करुणा पृथ्वी पर छा गयी।

व्याख्या : सीताजी महाराज जनक की बेटी हैं। तुरन्त धैर्य धारण किया। पर आँखों में आँसू भर गये। भगवती की आँखों में कज्जल है। इसलिए नीले कमल की उपमा कवि दे रहे हैं।

जानकी प्रत्येक सास के पास जा जाकर मिलीं। उस समय करुण रस का ऐसा प्रवाह बहा कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर छा गया। छाई का भाव यह कि सब पर असर पड़ा। कोई बाकी न रहा।

दो. लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहि प्रेम बस, रहिअहु भरी सोहाग ॥२४६॥

अर्थ : सीताजी सबके पावों पर पड़ पड़कर अति प्रेम से मिलने लगीं। वे लोग प्रेमवश हृदय से आशीर्वाद दे रही हैं कि सदा सौभाग्यवती रहोगी।

व्याख्या : लड़कियाँ माताओं से मिलती हैं। पर सास का चरण पकड़ती हैं। ऋषि पत्नियों में माता की दृष्टि थी। अतः पहिले उनसे मिलीं। पूज्य होने के कारण प्रणाम पीछे किया। परन्तु रानियाँ तो सब सास हैं। अतः प्रणाम पहिले किया। पीछे से अति प्रेम के कारण मिलीं। सब का कण्ठ गद्गद है। जी भरा है। बोल नहीं सकतीं। अतः मन ही मन आशीर्वाद देती हैं। पति के जीवित रहने को सोहाग कहते हैं। तथा पति के प्रेम को भी सोहाग कहते हैं।

बिकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानी॥
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा॥१॥

अर्थ : सीताजी तथा सब रानियाँ स्नेह से व्याकुल हो रही थीं। तब ज्ञानी गुरुजी ने सबको बैठने के लिए कहा। फिर मुनिनाथ ने जगत् की मायिक गति कहकर कुछ परमार्थ की गाथा कही।

व्याख्या : गुरुजी ज्ञानी हैं। अतः विकल नहीं हैं। यथा : सोक निवारेउ सबहि कर निज विज्ञान प्रकास। देखा कि सारा समाज विकल है। किसी को बैठने की सुधि नहीं है और अब महाराज चक्रवर्तीजी के स्वर्गारोहण का समाचार छिप नहीं सकता। अतः यही समय है कि रामजी को महाराज दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनाया जाय। इस समाचार के सुनाने में पाण्डित्य है। रामजी को सँभालना है। यह अपने विरह में महाराज का मरण सुनकर अति विकल होंगे। इसी से प्रयत्न पूर्वक इस समय तक इनसे चक्रवर्तीजी के मरण का समाचार छिपाया गया था। समाचार सुनाने के पहिले रामजी को उसके सुनाने के लिए तैयार करना है। अतः अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए गुरुजी की आज्ञा हुई कि सब लोग बैठ जायँ। सब लोग जहाँ के तहाँ बैठ गये।

तब मुनियों के नाथ हैं इन्होंने जगत् की गति का मायिक होना वर्णन किया कि यह जगत् क्षणभंगुर है। यहाँ सब कुछ परिवर्तनशील है। यहाँ जो पैदा हुआ है वह अवश्य मरेगा। यहाँ सब कुछ मृत्यु के मुख में है और व्यवहार स्थिर की भाँति है। यहाँ न कोई किसी का पिता है न कोई किसी का पुत्र है। कोई किसी का कुछ नहीं है। जैसे नदी में बहते हुए काठ कुछ देर के लिए इकट्ठे हो जाते हैं और उसी नदी के वेग से फिर अलग अलग हो जाते हैं। इसी भाँति यहाँ पुत्र पिता स्त्री पति आदि का मिलना है। सब प्रकार से विछोह ही सिद्ध है और कुछ परमार्थ की गाथा कही। यथा : इस नश्वर संसार से चित्त हटाकर इसे स्वप्न समझकर उस सत्य वस्तु में ही चित्त स्थिर करना चाहिए। जिसमें इस विश्व की उत्पत्ति स्थिति और लय होता है। जिसके प्रकाश से सृष्टि प्रकाशित होती है। जो आनन्द तथा प्रकाश रूप शान्त सनातन है। यह द्वैत अन्धकार है। उसका परित्याग करके उस परम भूतेश्वर का सहारा लेना चाहिए। तभी यह संसाररूपी महा बन्धन से मनुष्य छूट सकता है। इस भाँति ज्ञान की भूमिका तैयार करके तब :

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा ॥
मरन हेत निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुरधारी ॥२॥

अर्थ : राजा की स्वर्गयात्रा सुनायी। सुनकर रामजी को दु:सह दु:ख हुआ। मरने का कारण अपना स्नेह समझकर धीर धुरन्धर अत्यन्त व्याकुल हुए।

व्याख्या : वसिष्ठजी ने राजा दशरथ के स्वर्गारोहण का समाचार कहा कि तुम्हारे वियोग ' चक्रवर्तीजी ने शरीर परित्याग किया। इतनी भूमिका करने पर भी इस समाचार से सरकार को ऐसा दु:ख हुआ कि सह न सके। दु:ख के न सहे जाने पर जो मनुष्य की दशा होती है वह दशा रामजी की हुई। यद्यपि रामजी स्वभाव से धीर धुरन्धर थे। पर यह विचारकर कि मेरे प्रेम से ही महाराज की मृत्यु हुई अत्यन्त भारी विकलता रामजी को हुई। इसी विकलता को सोचकर सबने यही निश्चय किया था कि गुरुजी ही यह समाचार कहें।

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी ॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू ॥३॥

अर्थ : वज्र के समान कठोर कटु वाणी सुनकर लक्ष्मणजी सीताजी तथा सब रानियाँ विलाप करने लगीं। सारा समाज अत्यन्त शोक से विकल हो गया। मानो आज ही राजा का देहान्त हुआ है।

व्याख्या : महाराज के स्वर्गारोहण की वाणी सुनने में कुलिश कठोर और ग्रहण करने में कटु थी। लक्ष्मणजी सीताजी तथा सब रानियाँ विलाप करने लगीं। लक्ष्मण और सीताजी ने अभी सुना है। इसलिए पहिले उनका नाम देते हैं। सारा समाज इस भाँति शोक विकल हुआ मानो चक्रवर्तीजी का देहान्त आज ही हुआ। यथा : सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूप सील बल तेज बखानी। करहि विलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा। भयउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउर सोर। बिपुल बिहंग बन परेउ निसि मानहु कुलिस कठोर।

मुनिबर बहुरि रामु समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए ॥
ब्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जलु काहु न लीन्हा ॥४॥

अर्थ : मुनिवर ने फिर रामजी को समझाया। समाज के सहित मन्दाकिनी में स्नान किया। उस दिन सरकार ने निर्जल व्रत किया। मुनिजी के कहने पर भी किसी ने जल ग्रहण नहीं किया।

व्याख्या : गुरुजी ने पहिले भी समझाया था। ज्ञान की भूमिका समझाना ही था। सिवा गुरुजी के सरकार को समझावे कौन ? गुरुजी ने रामजी को समझाया। क्योंकि सबसे अधिक विकलता उन्हीं को थी। उनके समझाने पर सब लोग समझ जायेंगे। यथा : तुम सुजान सब जानि जनि सोच करिय मतिमान। जनम मरन बिछुरन मिलन हित अनहित अज्ञान। झूठो सकल सनेह जग स्वारथ ही को नेह।

सकल खेल दिन चारि को बन्धु मातु पितु गेह। उठहु तात धीरज धरहु बिलपत सकल समाज। चह्यौ पुत्र जेहि हेतु नृप बेगि करौ सो आज।

पिता का मरण सुनते ही अशौच लगता है। अतः स्नान प्राप्त है। समाज सब शोक ग्रस्त है। अतः सभी अशुचि हैं। सो समाज के सहित सरकार ने मन्दाकिनी में स्नान किया। सरकार ने उस दिन निर्जल व्रत किया। सबने वैसा ही किया। प्रेमातिरेक से गुरुजी का भी वचन किसी ने नहीं माना। गुरुजी का कहना आज्ञा नहीं है। धर्मशास्त्र का निर्णय मात्र है। गुरुजी का कहना था कि व्रत रामजी करें तो कर सकते हैं। तुम लोगों को व्रत आवश्यक नहीं। कम से कम जल तो पी लो। पर किसी ने न पीया।

दो. भोरु भये रघुनंदनहि, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु, सो सबु सादरु कीन्ह ॥२४७॥

अर्थ : सवेरा होने पर मुनिजी ने जो आज्ञा दी उसे श्रद्धा भक्ति के साथ प्रभु ने बड़े आदर के साथ किया।

व्याख्या : ज्येष्ठ पुत्र होने से प्रिय होने से और्ध्वदैहिक क्रिया का अधिकार रामजी को ही था। उनकी अनुपस्थिति में भरतजी ने सब कुछ किया था। अतः फिर से पितृ क्रिया रामजी ने की। यहाँ मुनिजी की आज्ञा ही सब कुछ है। श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। गुरुवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा।

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी ॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला ॥१॥

अर्थ : जैसा वेद ने वर्णन किया है। वैसी पिता की क्रिया करके पापरूपी अन्धकार के लिए सूर्यरूप रामजी पवित्र हुए। जिसका नाम पापरूपी रूई के लिए अग्नि है। जिसका स्मरण सब सुमङ्गल का मूल है।

व्याख्या : जहाँ सूर्य हैं। वहाँ अन्धकार की प्राप्ति नहीं है जहाँ रामजी हैं वहाँ पातक की प्राप्ति नहीं है। फिर भी उन्होंने जैसा वेद ने वर्णन किया है उस विधान से क्रिया की। रामजी सात्त्विक कर्ता हैं। शास्त्र की मर्यादा का यथार्थ पालन करते हैं। अतः लौकिक व्यवहार के अनुसार शुद्ध हुए। नहीं तो उन्हें अशुद्धि कहाँ? इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रभु स्वयं पातकरूपी अन्धकार के लिए सूर्य हैं और उनका नाम पापरूपी रूई के लिए अग्नि है। सूर्य को अन्धकार के नाश में कोई आयास नहीं : उदय तासु त्रिभुवन तम भागा। अग्नि के एक कण को भी रूई के अपार राशि के नाश में कुछ अधिक आयास नहीं है। जिसकी उपाधि होने से नाम में इतनी सामर्थ्य है कि पापराशि का तो नाश करता ही है सम्पूर्ण मङ्गल का भी विधान करता है। दोषापनयन ही नहीं गुणाधान भी करता है।

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते। बोले गुर सन राम पिरीते ॥२॥

अर्थ : वे शुद्ध हुए ऐसी साधुओं की सम्मति है। जैसे गङ्गाजी में तीर्थ का आवाहन। शुद्ध हुए दो दिन बीते तब रामजी ने प्रीति के साथ गुरुजी से कहा।

व्याख्या : यह साधु सम्मत है कि स्वयं राजा अपने बनाये हुए नियम से शासित हो। मनुष्यरूप धारण करने पर स्वयं भगवान् वेद की मर्यादा का पालन करें। उसके विधान के अनुसार शुद्ध हों। जिस भाँति गङ्गाजी परम पावन हैं। सर्व तीर्थमयी हैं। उन्हें पवित्र करने के लिए किसी तीर्थ की आवश्यकता नहीं है। फिर भी गङ्गाजी में अन्य तीर्थों का आवाहन किया जाता है। साधु सम्मत नियम है कि जिस जल में स्नान करना हो उसमें तीर्थों का पहिले आवाहन करे। जिसमें वह पुनीत हो जाय। उसी नियमानुसार गङ्गा स्नान करनेवाले गङ्गाजल को पवित्र करने के लिए तीर्थों का आवाहन करते हैं। इस पवित्रीकरण का यह अर्थ नहीं है कि गङ्गाजल अशुद्ध था। मतलब शास्त्र मर्यादा रक्षण से है। इसी भाँति क्रिया करने पर रामजी का शुद्ध होना है। ज्येष्ठ कृ. १४ को रामजी सम्भवतः शुद्ध हुए।

शुद्ध होने के बाद दो दिन और बीते। अर्थात् एकादशाह की क्रिया भी समाप्त हो गयी। अब जाने के लिए कहना है। सो प्रधान से ही कहना चाहिए। सब लोग गुरुजी के साथ आये हैं। यही समाचार महाराज को लगा था। नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुरलोग। अतः उन्हीं से कहना है। जाने के लिए कहने में प्रीति का हनन होता है। अतः प्रीति के साथ बोले।

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु अहारी ॥
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! सब लोग अत्यन्त दुःखी हैं। कन्द मूल फल और पानी से गुजर कर रहे हैं। शत्रुघ्न के साथ भरत मन्त्री और सब माताओं को देखकर मुझे एक पल युग के समान बीत रहा है।

व्याख्या : जाने के लिए कहना है। इसलिए रामजी पहिले रहने के दुःख की चर्चा करते हैं। कहते हैं कि इन लोगों का दुःख मुझसे सहा नहीं जाता। ये लोग सुर सदन सुख घर छोड़कर आये हैं और यहाँ कोई सुख का साधन नहीं है। भूमि सयन बलकल बसन असन कंद फल मूल। अतः सब लोग अत्यन्त ही दुःखी हैं। यह तो प्रजा का हाल हुआ। शत्रुघ्न के सहित भरत, मन्त्री और माता सबको दुःखी मैं नहीं देख सकता। सरकार अपने दुःख से दुःखी नहीं है। अपने प्रेमियों के दुःख से दुःखी हैं। कहते हैं कि मुझे एक पल युग की भाँति बीतता है। निष्कारण इतना कष्ट क्यों उठा रहे हैं। भावार्थ यह कि इन लोगों को क्षणभर भी यहाँ रहना ठीक नहीं। जितना जल्दी हो सके सब लोग जायँ।

सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ ॥
बहुत कहेउँ सबु कियेउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाईं ॥४॥

अर्थ : सबके साथ अयोध्या पधारिये । आप यहाँ हैं और महाराज इन्द्रपुर में हैं। मैंने बहुत कह डाला। यह मैंने ढिठाई की । जैसा उचित हो वैसा करिये ।

व्याख्या : आप सबके साथ अयोध्या पधारिये। भाव यह कि अपने साथ भरत शत्रुघ्न मन्त्री माता तथा पुरलोग को भी लेते जाइये। आप ही के साथ ये लोग आये हैं। आप के बिना अयोध्या अनाथ होगी। यदि महाराज होते तो कोई हर्ज नहीं था। वे भी तो अमरावती को कूच कर गये। अब अयोध्या का रक्षक कोई इस समय नहीं है। भाव यह कि यहाँ वहाँ दोनों जगह लोग दुःखी हैं।

आपको स्वयं सबकी चिन्ता है। मेरा इतना कह जाना अनुचित है। ढिठाई है। पर मेरे मन में जो था मैंने कह दिया। मेरे बातों का ख्याल न करके जैसा उचित हो वैसा आप करें।

दो. धर्म सेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस, देखि लहहुँ बिश्राम ॥२४८॥

अर्थ : हे धर्मसेतु करुणायतन राम ! आप ऐसा क्यों न कहें ? लोग दुःखित हैं। दो दिन आप का दर्शन पाकर विश्राम पा रहे हैं।

व्याख्या : गुरुजी कहते हैं कि आप धर्मसेतु हैं। प्रजा का इतना ध्यान होना आपको उचित है। गुरु पर इतनी आस्था होनी ही चाहिए। करुणायतन हैं। अपने कंद मूल फल अम्बु अहार से दुःख नहीं है। लोगों को ऐसा आहार मिलता है इस बात का इतना दुःख है कि पल युग के समान बीतता है। सो बात ऐसी नहीं है। लोग तो आपके दर्शन बिना दुःखी थे। दो दिन से दर्शन हो रहा है। सो विश्राम पा रहे हैं। कन्द मूल फल अम्बु आहार की किसी को चिन्ता नहीं है। अयोध्या का यथेष्ट रक्षा का प्रबन्ध भरतजी कर आये हैं। अतः उसकी चिन्ता नहीं है। इतने दिनों में कुछ बनता बिगड़ता नहीं।

राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू ॥
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहु मारुत अनुकूला ॥१॥

अर्थ : रामजी का वचन सुनकर सारा समाज डर गया। जैसे समुद्र में जहाज विकल हो उठे। सुमङ्गलमूल गुरुजी का वचन सुना मानों अनुकूल हवा चल पड़ी।

व्याख्या : रामजी का कहना कि सबके साथ आप लौट जाइये सुनकर समाज का समाज भयभीत हो गया कि इनके घर लौट चलने का तो प्रश्न ही नहीं उठने पाया और यह सबको घर लौटा रहे हैं। मानो हम लोग इनके हाथ से चक्रवर्तीजी की क्रिया सम्पन्न कराने आये थे। भगवती कौसल्या ने कहा था : नाथ समुझि मन करिय बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू। कर्नधार तुम अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू। धीरजु धरिय त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सब परिवारू। सो कर्णधार तो चल बसे। सब लोग शोक सिन्धु में डूब रहे थे। उन्हें भरतजी ने अवलम्ब दिया। सबको लेकर चित्रकूट आये। यथा : सोक

सिंधु बूड़त सबहिं तुम्ह अवलंबनु दीन्ह। यहाँ आने पर रामजी के वचनरूपी प्रतिकूल मारुत का ऐसा झोंका लगा कि सारा जहाज विकल हो गया। उसी समय गुरुजी का वचन ऐसा मङ्गलमूल हुआ कि उससे सबकी विदाई भी रुक गयी और यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि प्रजा आपको अपनी आँखों के ओट नहीं चाहती। यह वचन तो ऐसा हुआ मानों हवा अनुकूल बह गयी।

पावन पय तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोक अघ ओघ नसाहीं ॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि ॥२॥

अर्थ : जिस जल के दर्शन से पाप समूह नष्ट हो जाता है उस पवित्र जल में लोग त्रिकाल स्नान करते हैं। दण्डवत् करके लोग मङ्गल मूर्ति का दर्शन प्रसन्न होकर आँख भर कर रहे हैं।

व्याख्या : अब पवन की अनुकूलता में जो सुख हुआ उसे कहते हैं। मन्दाकिनी गङ्गा की धारा है। पातक पोतक डाकिनि हैं। डाकिनी को देखने से बच्चे डरकर मर जाते हैं। इसी भाँति मन्दाकिनी के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं। उसके पवित्र जल में सब लोग त्रिकाल स्नान करते हैं। स्नान के बाद दर्शन करते हैं। सरकार मङ्गल भवन अमङ्गल हारी हैं। उनका दर्शन आँख भरकर कर रहे हैं। क्योंकि दर्शन की भूख है। पियत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा। पहिले साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हैं। तत्पश्चात् खड़े होकर दर्शन कर रहे हैं भाव यह कि किसी की सरकार के प्रति मनुष्य बुद्धि नहीं है।

राम सैल बन देखन जाँही। जहँ सुख सकल सकल दुख नाँही ॥
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी ॥३॥

अर्थ : रामशैल और रामवन देखने जाते हैं। जहाँ सब सुख है और दुःख सब के सब नहीं हैं। झरनों से अमृत के समान जल झरता है और त्रिविध ताप हरनेवाली त्रिविध वायु चल रही है।

व्याख्या : तत्पश्चात् सब लोग यात्रा के लिए जाते थे। रामशैल और वन की यात्रा करते थे। वे लोग राम वन से बाहर ही टिकाये गये थे। अतः वहाँ यात्रा के लिए जाते हैं। रामशैल वन की महिमा कहते हैं कि वहाँ सभी सुख हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ही द्वारा बाह्य ज्ञान होता है। सो वहाँ सब अनुकूल हैं और दुःख सबके सब नहीं हैं। वहाँ शान्ति ऐसी है कि सब दुःख भाग जाते हैं और मन को परम विश्राम मिलता है। अब सब सुखों का वर्णन करते हैं कि झरनों के जल अमृत की भाँति स्वादु और तोषदायक है। शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलती है। वह ऐसी अद्भुत है कि आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक ताप का हरण करती है और संसार की त्रिविध वायु तो केवल भौतिक ताप को कम करने-वाली होती है।

बिटप बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती ॥
सुंदर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं ॥४॥

अर्थ : अगणित जाति के विटप वेलि और तृण थे। फल फूल और पत्ते अनेक प्रकार के थे। सुन्दर चट्टान और सुख देनेवाली पेड़ों की छाया थी। वन की शोभा किससे वर्णन की जा सकती है।

व्याख्या : रामशैल का वर्णन करके वन का वर्णन करते हैं। ऐसा वन है जिसमें एक ही जाति के पेड़ नहीं हैं सभी जाति के पेड़ हैं। जिनकी गिनती नहीं हो सकती। यही हाल वल्ली और तृण का है। अतः अपूर्व शोभा वन की हो रही है। विटप में फल हैं। वल्ली में फूल हैं और तृण में पत्ते हैं। जब विटप वेलि और तृण अगणित जाति के हैं तब फल फूल और पत्ते भी उतने ही भाँति के होंगे।

सुन्दर चट्टान पड़ी है। चलते चलते थक जानेवालों के लिए वे विश्रामप्रद हैं और वे भी पेड़ों की छाँह में हैं। जैसे बागों में कुरसियाँ लगी रहती हैं। कवि का कहना है कि वन की छवि ऐसी है जो किसी से वर्णन की नहीं जा सकती। यथा : सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुबीर बिराजा।

दो. सरनि सरोरुह जल बिहग, कूजत गुंजत भृंग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन, मृग बिहंग बहु रंग ॥२४९॥

अर्थ : तालाबों में कमल खिल रहे हैं। जल के पक्षी कूज रहे हैं और भौंरे गूँज रहे हैं। वैर को छोड़कर वन में मृग और बहुत रङ्ग के पक्षी विहार कर रहे हैं।

व्याख्या : सरनि सरोरुह : से गन्ध कहा। बिहंग कूजत गुंजत भृंग : से शब्द कहा। झरना झरहि सुधासम बारी : से रस कहा। त्रिबिध ताप हर त्रिबिध बयारी से स्पर्श कहा। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं : से रूप कहा। इस भाँति उस वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण कहा।

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी ॥
भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी ॥१॥

अर्थ : वन के रहनेवाले कोलकिरात और भील पवित्र सुन्दर और अमृत सी सुस्वाद मधु को सुन्दर पत्तों की दोनियाँ रचकर उनमें भरकर और कन्द मूल फल अङ्कुर और जूरी को।

व्याख्या : कोल किरात भील ये सब जङ्गली जातियों के नाम हैं। रामजी के पधारने पर भी इन सबों ने आतिथ्य सत्कार किया था। यथा : कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना। अब अयोध्यावासी जो वन में विहरने गये हैं उनके आतिथ्य सत्कार का उपक्रम करते हैं। वे लोग पत्ते की दोनियों में शहद भर भरकर लाये : जङ्गली जाति ऐसी सुन्दर दोनियाँ बनाते हैं जिनमें भरा

हुआ जल टपक नहीं सकता। मधु शब्द का शहद भी अर्थ है और मद्य भी अर्थ है। इसीलिए शुचि शब्द दिया जिसमें शहद का ही बोध हो। सुन्दर स्वादु मधु कमल की होती है। कदाचित् ही कोई वस्तु ऐसी स्वादु होती हो। इसलिए अमृत सी कहते हैं। जङ्गली जाति मीठे के नाम पर केवल शहद को ही जानते हैं। अतः उनके आतिथ्य सत्कार में प्रधानता मधु की है। इसलिए पहले उसी का उल्लेख करते हैं। कन्द मूल फल अंकुर जूरी का तो बोझा ही है। इसलिए उनके लिए पात्र नहीं कहा। अथवा उन्हें भी दोनों में भरकर लाये। जूरी बनारस प्रान्त की भाषा है। जिस अङ्कुर में पत्ते आजायँ और फटकर अलग न हों उसे जूरी कहते हैं। सूरन आदि की जूरी ही खाने के काम में आती है। क्योंकि वह गला नहीं काटती।

सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वादु भेदु गुन नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥२॥

अर्थ : सबको विनय और प्रणाम करके देते हैं। उनके स्वाद का भेद बतलाते हैं। उनके गुण कहते हैं। नाम बतलाते हैं। लोग उनका अधिक मूल्य देते हैं। फिर भी नहीं लेते। फेरने पर रामजोकी दोहाई देते हैं।

व्याख्या : नगर के लोग वन के कन्द मूलादि को क्या जानें। इसलिए उन्हें उनका स्वाद गुण और नाम बतलाते हैं। भाव यह कि जो आपकी प्रकृति के अनुकूल पड़े उसे स्वीकार करिये। जिसे बतलाइये उसे और लावें। उनके स्वीकार करने से अपने को कृतकृत्य समझते हैं। अतः प्रणाम पूर्वक स्वीकार करने के लिए विनय करते हैं।

उनकी श्रद्धाभक्ति से प्रसन्न होकर अवधवासी उनकी बहुत कीमत देते हैं। वे कीमत लेने पर राजी नहीं। अवधवासी मुफ्त में लेना नहीं चाहते। अतः फेर देते हैं। इस पर वे रामजी की दोहाई देते हैं। विनय प्रणाम से जब काम न चला तब स्वामी की दोहाई दी।

कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥३॥

अर्थ : वे स्नेह में मग्न होकर कोमल वाणी से कहते थे कि प्रेम की पहिचान करके साधु लोग मानते हैं। आप लोग पुण्यात्मा हैं। हम नीच निषाद हैं। रामजी के प्रसाद से आपका दर्शन मिला।

व्याख्या : वे प्रेम में मग्न हैं कि हमारे यहाँ ऐसे ऐसे पुण्यात्मा अतिथि आये हैं। अतः मृदुवाणी बोलते हैं कि आप लोग साधु हैं। साधु लोग प्रेम के ग्राहक होते हैं। यह प्रेमोपहार है। हम लोग भी व्यवसायी नहीं हैं।

हम लोग आप लोगों के पादार्पण से कृतकृत्य हैं। क्योंकि आप उत्तम हैं। सुकृती हैं। उस जन्म में सुकृत किया है तब ऐसा जन्म पाया है। इस जन्म में भी पुण्य ही कमा रहे हैं। किसी दूसरे की वस्तु बिना कीमत चुकाये लेना नहीं चाहते।

हम निषाद हैं। निषाद पापी जाति मात्र का उपलक्षण है। अतः निषाद में कोल किरात भिल्ल तीनों का अन्तर्भाव है। निषाद कहने का भाव यह कि पूर्वजन्म के पाप से नीचकुल में जन्म हुआ और इस जन्म में भी पापाचरण ही हो रहा है। हमारा इतना भाग्य कहाँ कि आप लोगों का दर्शन हमें मिले। यह तो रामजी की कृपा है कि आपका दर्शन मिला। वे कृपा करके यहाँ आये और उसी कारण से आप यहाँ आये हुए हैं।

हमहिं अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा ॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा ॥४॥

अर्थ : हम लोगों को तो आपका दर्शन दुर्लभ है। जैसे मरुभूमि में गङ्गाजी की धारा दुर्लभ है। कृपालु रामजी ने निषादों पर दया की। परिजन प्रजा को भी राजा का अनुगमन करना चाहिए।

व्याख्या : कोल किरात कहते हैं कि हम लोगों की भूमि मरुभूमि तुल्य है। जहाँ जल दुर्लभ है। कूप भी ऐसे विरल हैं जहाँ कठिनता से भी जल की प्राप्ति हो सके वहाँ जैसे गङ्गा की धारा बह उठे। इस भाँति आपका आगमन हमारे यहाँ हुआ है। हम लोग कृतकृत्य हो गये तो क्या हम गङ्गा की धारा की पूजा न करें। गङ्गा की धारा को क्या यह शोभा देता है कि वह कहे कि मैं पापियों का उपहार न ग्रहण करूँगी। तब गङ्गा आयीं क्यों? गङ्गा का आगमन तो पापियों के उद्धार के लिए ही होता है।

कृपाल रामजी ने निषादों पर कृपा की। निषादराज का सत्कार स्वीकार किया। यहाँ आने पर हम लोग जो कुछ कन्द मूल फल ले गये उसे स्वीकार किया। आप लोग तो उनकी प्रजा हैं। प्रजा को राजा का अनुगमन करना चाहिए। राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः। राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा। अतः आप लोग हमारा प्रत्याख्यान न कीजिये।

दो. यह जियँ जानि सँकोचु तजि, करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु ॥२५०॥

अर्थ : ऐसा जी में जानकर सङ्कोच छोड़कर हमारा स्नेह देखकर छोह कीजिये। हम लोगों को कृतार्थ करने के लिए फल तृण और अङ्कुर को स्वीकार कीजिये।

व्याख्या : राजा रामचन्द्र ने हमारे सत्कार को स्वीकार किया। दाम देने की बात भी जबान पर न लाये। आप क्यों सङ्कोच करते हैं। आपके लिए रास्ता साफ है कि राजा स्वीकार कर चुके तो हमें क्या दोष है। अतः सङ्कोच न करिये। हम छोटे हैं। हम पर छोह करिये। हमारा प्रेम देखिये कि वन में से ढूँढ़कर अच्छे फूल फल लाये हैं। आपको आवश्यकता नहीं है। अयोध्या से रसद लदकर आयी है।

पर हम कृतार्थ कैसे होंगे। आप हम लोगों को कृतार्थ करने के लिए स्वीकार करिये। हमारे गार्हस्थ्य धर्म की रक्षा कीजिये।

तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे ॥
देब[1] काह हम तुम्हहिं गोसाईं। ईंधनु पात किरात मिताईं ॥१॥

अर्थ : आप प्रिय अतिथि वन में पधारे हैं। हमारे भाग्य आपकी सेवा करने योग्य नहीं। हे गोसाईं ! हम आपको क्या देगें। किरात की मित्रता तो ईंधन और पत्ते की होती है।

व्याख्या : पाहुन अर्थात् अतिथि। अतिथि कहकर पूज्य होना द्योतित किया। प्रिय दर्शन होने से प्रिय पाहुन कहते हैं। यथा : प्रिय पाहुने भूप सुतचारी। यह अघटित घटना हुई कि आपका पधारना वन में हुआ। हमारा धर्म है कि आपकी पूजा करें। मन में बड़ा उत्साह भी है कि आपकी पूजा करें। परन्तु भाग्य हमारा खोटा है : तस पूजा चाहिअ जस देवता। हममें आपकी पूजा की शक्ति नहीं है। हम आपका उचित सत्कार नहीं कर सकते।

आपको सङ्कोच है कि हम दूसरे का मुफ्त कैसे लें। यहाँ हमारे पास धरा ही क्या है जो आपको दें। प्रसिद्ध कहावत है : ईंधन पात किरात मिताईं। किरात प्रेम करें तो ईंधन दें और पत्ते दें। सो हम ईंधन पत्तेवाले आप ऐसे ऐश्वर्य-वान् की पूजा कैसे करें।

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहि न बासन बसन चोराई ॥
हम जड़ जीव जीवगन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥२॥

अर्थ : हमारी बड़ी भारी सेवा यही है कि हम आपका बरतन कपड़ा नहीं चुरा लेते। हम जड़ जीव हैं। जीवगण को मारा करते हैं। कुटिल, कुचाली, कुमति और कुजाति हैं।

व्याख्या : आप ऐसे महान् हैं कि हमारे दिये हुए फल फूल को भी बिना मूल्य दिये स्वीकार नहीं करते और हम ऐसे नीच हैं कि चोरी करके भी दूसरे की वस्तु ले लेते हैं। हमें कपड़े बर्तन कहाँ मिले। अतः उसके लिए चोरी करते हैं। आपके यहाँ कपड़े और बर्तन भरे पड़े हैं। पर हमने नहीं चोराया। यह हमारी थोड़ी सेवकाई नहीं है। आप नहीं समझ सकते कि कपड़ा और बर्तन देखने के बाद एक किरात को चोरी से मन को रोकने में कितने बड़े मनोनिग्रह से काम लेना पड़ता है।

केवल चोरी ही नहीं प्राण मारकर चोरी करते हैं। हिंसा ही हमारा उद्यम है। हम जड़जीव हैं। जीवों को मारा करते हैं। मन से कुटिल हैं। करणो से कुचाली हैं। बुद्धि से कुमति हैं और व्यवहार में कुजाति हैं। दिन रात द्रोह करते हैं।

---

१. यहाँ लोकोक्ति : अलङ्कार है।

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहि पट कटि नहि पेट अघाहीं ।।
सपनेहुं धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ ।।३।।

अर्थ : पाप करते रात दिन बीतता है। न तो कमर में कपड़ा है और न पेट अघाता है। हमको कभी धर्म बुद्धि कैसी ? यह तो रघुनन्दन के दर्शन का प्रभाव है।

व्याख्या : किरात कहते हैं कि हम लोग रात दिन पाप ही करते हैं। चोरी और हिंसा की जीविका है। फिर भी भूखे नंगे रहते हैं। जीवन निर्वाह दुष्कर है। पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी। पाप करते हैं लोग लौकिक सुख के लिए। हमें पाप करने पर भी अन्न वस्त्र दुर्लभ है। यह तो जाग्रत का हाल है।

अब सपने का हाल सुनिये। जाग्रत के संस्कारानुसार ही स्वप्न होता है। अतः स्वप्न में भी पाप कर्म ही देखते हैं। धर्मबुद्धि सपने में भी दुर्लभ है। यह धर्मबुद्धि जो हम लोगों में पाप देख रहे हैं कि अतिथि सत्कार का भाव जाग्रत हुआ है वह तो रघुनन्दन के दर्शन का प्रभाव है। आपके राजा द्वारा ही तो हममें धर्मबुद्धि का उदय हुआ है। हम सत्कार करने चले हैं और आप ही प्रत्याख्यान द्वारा उसका अवरोध कर रहे हैं।

जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे ।।
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्हके भाग सराहन लागे ।।४।।

अर्थ : जब से सरकारी चरण कमलों का हमें दर्शन हुआ हमारे दुःसह दुःख और दोष मिट गये। वचन सुनकर पुरजन अनुराग में आगये। उनके भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : सरकार के दर्शन से बुद्धि भी पलटी और दुःख दोष भी मिटा। दोष होने से ही दुःख होता है। अतः दुःख अपने कारण के साथ मिट गया।

भविष्य में भी पाप की आशङ्का नहीं रह गयी। इस समय हम सब तरह से शुद्ध हैं। सरकार के दर्शन के बाद भी क्या हम में दोष लगा है।

विनती युक्तियुक्त भक्ति संयुत वचन सुनकर पुरजनों को अनुराग हुआ। वे लोग उनके भाग्य की सराहना करने लगे : बड़ भागी बन अवध अभागी। जो रघु-बंश तिलक तुम त्यागी। भाग्यवान् ये लोग हैं जिनमें सरकार आकर बसे हुए हैं। आज हम लोग अभागी हो रहे हैं जिन्हें छोड़कर सरकार यहाँ आये हैं।

छं. लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेह लखि सुखु पावहीं ।।
नरनारि निदरहि नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा ।।

अर्थ : सब लोग उनके भाग की सराहना करते हैं और अनुराग के वचन सुनाते हैं। उन लोगों का बोलना मिलना और सीता रामजी के ऊपर जो उनका

स्नेह है उसे लखकर सुख पा रहे हैं। नर नारी कोल भीलों की वाणी सुनकर अपने प्रेम का अनादर करते हैं। श्री तुलसीदास कहते हैं कि यह रघुवंशमणि की कृपा है कि लोहा लेकर लौका तिर गया।

व्याख्या : यहाँ प्रसङ्ग यह है कि अवधवासियों में और किरातों में शास्त्रार्थ छिड़ गया है। जङ्गली लोग आतिथ्य के लिए कन्द मूल फल लाये हैं। अवधवासी उसका मूल्य देना चाहते हैं और न लेने पर उनका कन्द मूल फल फेर देते हैं। हम अन्त्यजों का प्रतिग्रह क्यों करें। धर्मशास्त्र में यह महा निषिद्ध है। जङ्गलियों का उत्तरपक्ष यह था कि सरकार के दर्शन से हमारे दोष दुःख मिट गये। यह दान भी नहीं है आतिथ्य सत्कार है। उदाहरण में वे स्वयं सरकार को देते हैं कि उन्होंने हमारा सत्कार स्वीकार किया है। इस वाग्युद्ध के अन्त में जङ्गलियों की जीत हुई। अवधवासियों के पास उत्तर नहीं रह गया। उनका प्रेम देखकर अपने प्रेम की निन्दा करने लगे। अर्थात् उन्हें सत्कार स्वीकार करना पड़ा। इसी बात को महाकवि ने चार अक्षरों में कहा : लोहा लै लौका तिरा। अर्थात् सामना करके लौका तिर गया। लोहा लेना सामना करना या लड़ाई करने को कहते हैं। यथा : सनमुख लोह भरत सन लेउँ। लौका तिरने का अधम साधन है सो समर में लोहा लेकर : सामना करके जहाज का तिरना कठिन हो जाता है। यहाँ अवधवासियों से : मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँति। से सामना करके अर्थात् शास्त्रार्थ करके लौका : कुटिल कुचाली कुमति कुजाती। तिर गया। अर्थात् पार पा गया। अवधवासियों को उनका फल मूलादि ग्रहण करना पड़ा।

दो. बिहरहिं बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यौं दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम ॥२५१॥

अर्थ : सब लोग प्रसन्न होकर वन में चारों ओर प्रतिदिन विचर रहे हैं। पहली ही वर्षा में जिस प्रकार मेढक और मोर मोटे हो जाते हैं उसी प्रकार इन लोगों की भी दशा हो गयी।

व्याख्या : मानसिक सुख दुःख का प्रभाव शरीर पर कितना बड़ा पड़ता है। इसी बात को दिखाते हुए कवि कहते हैं कि नित्य लोग प्रसन्न मन से वन में चारों ओर विचरते हैं : जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं। अतः उनकी दशा उन मेढक और मोरों सी हो रही है जो पहिली ही बरसात में हृष्ट पुष्ट हो जाते हैं।

बर्षारितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास। राम नाम बर बरन जुग सावन भादों मास। एक ऐसे हैं जो मोर की भाँति ठहर ठहरकर सुस्वर से नामोच्चारण करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो मेढक की भाँति नाम की धुन बाँधते हैं। ये राम घनश्याम की कृपा दृष्टि को वृष्टि से पहिली ही वर्षा : भक्ति की उमंग में हृष्ट पुष्ट हो हो गये। नहीं तो : तनकृस मन दुख बदन मलीने थे।

पुरजन नारि मगन अति प्रीती । बासर जाहिं पलक सम बीती ॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई । सादर करइ सरिस सेवकाई ॥१॥

अर्थ : पुर नर नारि अत्यन्त प्रीति में मग्न थे । पलक की भाँति दिन बीत रहे थे । सीताजी जितनी सास थीं उतने वेष बनाकर आदर के साथ समान सेवा करती थीं ।

व्याख्या : पुर नर नारी ऐसे प्रेम में मग्न हुए कि बाहर का उन्हें कुछ अनुसन्धान भी नहीं रहा । पूरा दिन बीत गया । उन्हें मालूम हो रहा है कि एक निमेष बीता है । अत्यन्त सुख के दिन बीतते देर नहीं लगती । यथा : मास दिवसकर दिवस भा मरम न जानै कोइ ।

सब लोगों का हाल कहकर अब रनिवास का हाल कहते हैं । भगवती सास की सेवा के लिए पहुँच गयीं । सासों की सेवा की बड़ी अभिलाषा है । यथा : सेवा समय दैउ बन दीन्हा । मोर मनोरथ सफल न कीन्हा । सो मनोरथ के पूरा करने का अवसर हाथ लगा । सास हैं संख्या में अधिक । एक शरीर से सबकी सेवा हो नहीं सकती । अतः जिस भाँति सबसे मिलने के लिए सरकार ने अमित रूप धारण किया उसी भाँति भगवती भी जितनी सास थीं उनती हो गयी । निरादर के साथ सेवा किसी काम की नहीं । अतः सादर सबकी समान भाव से सेवा करने लगीं । जैसी सेवा कौसल्या की वैसी ही सेवा कैकेयी की ।

लखा न मरमु राम बिनु काहूँ । माया सब सिय माया माहूँ ॥
सीय सासु सेवा बस कीन्हीं । तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं ॥२॥

अर्थ : इस भेद को सिवा रामजी के और कोई नहीं लख पाया । क्योंकि सब माया सीताजी की माया के अन्तर्गत है । सीताजी ने सासुवों को सेवा के वश कर लिया । उन्होंने सुख पाकर शिक्षा और आशार्वाद दिये ।

व्याख्या : सब सास समझ रही हैं कि सीता केवल मेरी सेवा में है । यहाँ पृथक् पृथक् महल भी नहीं हैं । सब दासियाँ सब जगह आ जा रही हैं । फिर भी इस मर्म को कोई न लख सका कि सीताजी की सब सासों के पास युगपन् उपस्थिति कैसे हो रही है । न लखने का कारण देते हैं कि यह सीताजी की माया है और जितनी माया है सबकी सब इसके : सीताजी की माया के अन्तर्गत हैं । आदि सक्ति जेहि जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया । अतः जिसकी माया है वही मर्म को लख सका । विवाह के समय भी जो महिमा भगवती ने प्रकट किया था उसे रघुनायक ही जान सके थे । जीव उस माया के मर्म को कैसे लख सकता है ?

भगवती ने ऐसी सेवा की कि सास सब उनके वश में हो गयीं । उन्हें बड़ा सुख हुआ । सुख मिलने पर बड़ों से दो वस्तुएँ मिलती हैं । एक शिक्षा और दूसरा आशीर्वाद । सो दोनों मिला ।

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई । कुटिल रानि पछितानि अघाई ॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई । महि न बीचु बिधि मीचु न देई ॥३॥

अर्थ : सीताजी के सहित दोनों भाइयों को सरल देखकर कुटिल रानी पेट भर पछतायी। अब कैकेयी पृथ्वी और यम से याचना करती है। पर न तो पृथ्वी फटती है और न ब्रह्मदेव मृत्यु देते हैं।

व्याख्या : सब माताओं का हाल कहकर अब रानी कैकेयी का हाल कहते हैं। सीताजी की सेवा के वश हो गयीं। उन्होंने रामजी को कुटिल समझा था। यथा : सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान। अब देखा कि दोनों भाई सरल हैं। रामजी ने जो कहा था : सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी। तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा। मुनिगन मिलन बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर। तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर। भरतु प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। सो इनका आन्तरिक भाव था। वन देने से मुझ पर कुछ भी रोष नहीं है और सीता भी वैसी ही हैं। मैंने इस महासाधुओं के साथ क्या किया ? पछतायी तो पहिले भी थी। पर अब पेटभर पछतायी। यह पश्चात्ताप तो तभी मिटे जब पृथ्वी फटे मैं समा जाऊँ या विधाता मुझे मौत दें। अतः पृथ्वी और यम से प्रार्थना करती हैं। पर न तो पृथ्वी फटती है न विधाता मौत देते हैं। यम भी विधाता की आज्ञा के अनुवर्ती हैं। बिना विधाता की आज्ञा के मृत्यु भी नहीं दे सकते। अतः यम न कहकर विधाता कहा।

लोकहु बेद बिदित कबि कहहीं । राम बिमुख थलु नरक न लहहीं ॥
यह संसउ सब के मन माँहीं । राम गवनु बिधि अवध कि नाँहीं ॥४॥

अर्थ : यह बात लोक और वेद में प्रसिद्ध है और कवि भी कहते हैं कि रामविमुख को नरक भी स्थान नहीं देता। यह संशय सबके मन में है कि हे विधि ! रामजी अवध जायँगे कि नहीं।

व्याख्या : इस बात पर सबका ऐकमत्य है कि राम विमुख का कहीं ठिकाना नहीं लगता। अन्य पापियों का तो ठिकाना नरक में लगता है। पर राम विमुख को स्थान देना नरक भी स्वीकार नहीं करता। सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुवीर बिमुख सुनु भ्राता।

रनिवास का हाल कहकर अब रामजी के घर के लौटने के विषय में क्या हो रहा है उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि सबके मन में यह संशय है कि रामजी घर लौटते हैं कि नहीं। उनके कहने से उनका रुख स्पष्ट है कि लौटना नहीं चाहते। पर गुरुजी हम लोगों की ओर से बोल रहे हैं। इसलिए सब लोग संशय में पड़े हुए हैं कि देखें क्या होता है।

दो. निसि न नीद नहिं भूख दिन, भरतु बिकल सुचि सोच ।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहि सलिल सँकोच ॥२५२॥

अर्थ : न रात को नींद है न दिन को भूख है । भरतजी पवित्र सोच में विकल हैं । जैसे कीच में नीचे डूबो हुई मछली को जल का सङ्कोच हो : जल न मिले ।

व्याख्या : सोच करनेवाले को न रात को नींद लगती है न दिन को भूख लगती है । महात्माओं का सोच भी पवित्र होता है । क्योंकि वह अविद्या के अन्तर्गत न होकर विद्या के अन्तर्गत होता है । विकलता भी साधारण नहीं है । अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना । सो यहाँ दो दिन की अवधि है वह भी बीत चली । पानी सूख चला कीचड़ बाकी है । कीचड़ के भी सूखने के भय से महाविकल है । इसी भाँति भरतलालजी की विकलता कहा । ये बड़े मच्छ हैं । इसलिए विकलता विशेष है और मछलियों के लायक पानी है । उन्हें सोच नहीं वे मगन हैं । यथा : पुर नर नारि मगन अति प्रीती ।

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली । ईति भीति जस पाकत साली ॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू । मोहि अवकलत उपाउ न एकू ॥१॥

अर्थ : माता के व्याज से काल ने कुचाल किया । जैसे धान पकते समय ईति का भय हो । किस विधि से रामजी का अभिषेक हो मुझे तो कोई उपाय नहीं फुर रहा है ।

व्याख्या : अब भरतजी का सोच कहते हैं । भरतजी को कैकेयी का पछितावा है । अतः कहते हैं कि माता को तो ब्याज बनाया कराल काल ने । यथा : सब कर आज सुकृत फल बीता । भयउ कराल काल बिपरीता । क्योंकि सभी कार्यों की सिद्धि में काल असाधारण कारण है । उपमा देते हैं कि जैसे धान पकने के समय अतिवृष्टि हो पड़े । अथवा कोई दूसरी ईति आ पड़े । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, टिड्डी और राजाओं का आक्रमण यह सब ईतियाँ हैं । इसी भाँति सरकार के राज्याभिषेक के समय कैकेयी का वरदान हुआ । यथा : मोर मनोरथ सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ।

सब लोग तो केवल संशय में पड़े हैं कि देखें रामजी लौटते हैं या नहीं । पर भरतजी तो उपाय सोच रहे हैं कि किस उपाय से रामजी का अभिषेक हो । किस भाँति लौटने पर राजी हो जायँ । तब अभिषेक के लिए कहा जाय । जिससे राजसी ठाट से घर लौटें । पर कोई उपाय स्थिर नहीं कर पा रहे हैं । सबसे प्रबल उपाय मौजूद है । पर उनसे काम कैसे लिया जाय । अतः भरतजी कहते हैं कि कोई सामञ्जस्य नहीं बैठता ।

अवसि फिरिहि गुर आयसु मानी । मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी ॥
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ । राम जननि हठ करबि कि काऊ ॥२॥

अर्थ : गुरुजी की आज्ञा मानकर तो निश्चय ही लौट चलेंगे। पर मुनिजी रामजी का रुख देख लेंगे तब कहेंगे। माता के कहने पर भी रामजी लौटेंगे। पर वे राम की माता हैं वे क्या कभी हठ करेंगी ?

व्याख्या : सबसे बड़ा उपाय तो यह है कि गुरुजी आज्ञा दें तो पिता की आज्ञा गुरुजी की आज्ञा के सामने हट जायगी। आचार्यो यस्तु यां जातिं विधिवद्वेद पारगः। उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा। पिता तो इस स्थूल देह को उत्पन्न करता है। पर आचार्य से जो जन्म सावित्री द्वारा होता है यही सत्य है और अजर अमर है। अतः गुरु का पद पिता से भी बड़ा है। उनके आज्ञा देने पर निश्चय अयोध्या लौट चलेंगे। पर गुरुजी तो उनका रुख देखते हैं। यदि उनका रुख अनुकूल होगा तभी आज्ञा देंगे। वन चलते समय महल से निकलकर गुरुजी के ही द्वार पर खड़े हुए। गुरुजी चाहते तो रोक लेते। पर गुरुजी ने रुख नहीं पाया। इसलिए नहीं रोका।

इनके बाद माता का दर्जा है। माता यदि हठ पकड़ ले तो भी लौट चलेंगे। पहिले भी माता ने कहा था : जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता। जौ पितु मातु कह्यौ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना। पर यह रामजी की माता हैं। यह कभी हठ करेंगी नहीं। वन जाते रोका भी तो यह कह दिया कि यदि कैकेयी की भी आज्ञा हो तो चले जाओ। हठ करना तो मेरी माता जानती है कि चाहे प्रलय हो जाय वह अपने हठ से नहीं हटती। सो कौसल्याजी कभी हठ करेंगी ही नहीं।

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता ॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू ॥३॥

अर्थ : मैं तो सेवक हूँ। मेरी बात ही क्या ? तिस पर कुसमय है और विधाता प्रतिकूल है। यदि मैं हठ कर बैठूँ तो यह बड़ा भारी बुरा काम होगा। क्योंकि सेवक का धर्म कैलाश से भी भारी है।

व्याख्या : भरतजी समझ रहे हैं कि इनके बाद यदि किसी का प्रभाव पड़ सकता है तो मेरा ही पड़ सकता है। सरकार स्वयं कहेंगे : तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू। फिर भी मैं तो सेवक हूँ। सेवक की बात ही क्या है। उसका धर्म स्वामी को सङ्कोच न आने देना ही है। यथा : जो सेवक साहिबहि सकोची। निज हित चहै तासु मति पोची। सो मैं यदि हठ कर बैठता हूँ तब तो सेवक धर्म ही जाता रहेगा। इससे बढ़कर अनुचित क्या होगा ? सेवक धर्म का सँभाल बड़ा कठिन है। कैलाश पर्वत उठाना उतना कठिन नहीं है : रावण ने कैलाश उठाया पर सेवक धर्म सँभाल न सका। स्वामी का घर ही उखाड़ डाला। अतः मैं हठ कर नहीं सकता।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैन बिहानी ॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिरु नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई ॥४॥

अर्थ : एक युक्ति भी मन में नहीं ठहरी ।भरत को सो चते ही सोचते रात बीत गयी । सवेरे नहाकर और प्रभु को प्रणाम करके बैठते ही ऋषिजी ने बुला भेजा ।

व्याख्या : भरतजी ने इन उपायों के अतिरिक्त और भी उपाय सोचे जिनका वर्णन विस्तार से आगे होगा । जिसमें पिताजी का वचन भी बना रहे और सरकार अयोध्या भी लौट चलें और वह यह है कि हम दोनों भाई अपना अपना हिस्सा पलट लें। रामजी मानते हैं : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। सो कानन का राज मैं ले लूँ और अवध का राज्य रामजो स्वोकार करें। पर यह बात प्रमाण न होने पावेगी । सरकार मुझे भी पिता के वचन से न हटने देंगे। यह बात प्रमाण तो तब हो जब गुरुजी इसकी व्यवस्था दें। पर यह बात गुरुजी क्यों नहीं कहते । इसी विचार में रात बीत गयी कोई बात मन में बैठी नहीं । सब लोग सोये पर भरतजी जागते ही रह गये ।

भरतजी भी स्नान करके सरकार के दर्शन के लिए जाते हैं। सो ज्योंही दर्शन करके लौटकर बैठे तब तक ऋषिजी का बोलावा आगया। ऋषिजी का भाव यह कि दो दिन के लिए मैंने कहा था । सो बीत गया अब काम की बात होनी चाहिए ।

## प्रथम सभा : पुनि रघुपति बहु बिधि समझाए : प्रकरण

दो. गुर पद कमल प्रनामु करि, बैठे आयसु पाइ ।
बिप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ ॥२५३॥

अर्थ : गुरुजी के चरणों में प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठे । ब्राह्मण, महाजन, मन्त्री सब सभासद आकर जुट गये ।

व्याख्या : सरकार ने गुरुजी से ही कहा था : सब समेत पुर धारिअ पाऊँ। आप इहाँ अमरावतिराऊ'' उचित होय सो करिअ गोसाईं । अतः अब क्या करना उचित है । इसलिए गुरुजी ने सवेरा होते ही ब्राह्मण, महाजन : अगुआ मन्त्री को बुलवाया और भरतजी को बुलवाया । भरतजी ने आकर चरणकमलों की वन्दना की। गुरुजो की आज्ञा पाकर बैठ गये। तब तक सब समाज जुट गया। सभा लग गयी ।

बोले मुनिबरु समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू । राजा राम स्वबस भगवानू ॥१॥
सत्य संध पालक श्रुति सेतू । राम जनमु जग मंगल हेतू ॥

अर्थ : श्रेष्ठ मुनिजी समय के अनुसार बोले कि हे सभासदो तथा सुजान भरत सुनो । धर्म के धुरन्धर तथा सूर्यकुल के सूर्य राजाराम स्वतन्त्र भगवान् हैं। वे सत्यसन्ध हैं । श्रुतिसेतु पालक हैं । राम का जन्म संसार के मङ्गल के हेतु हुआ है ।

व्याख्या : मननात् मुनिः । वसिष्ठजी मनन करनेवालों में श्रेष्ठ हैं । ये जो सबसे सम्मति पूछ रहे हैं यही समयानुकूल बोलना है। अयोध्या में यही निश्चय

हुआ था : अवसि चलिअ वन रामु हँ। तथा : जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी। सो रामजी के पास तो हम लोग पहुँच गये। अब रामजी अयोध्या कैसे लौटें कैसे उनका अभिषेक हो यही विचार करना है। इसी लए गुरुजी ने सभा इकट्ठी की है। जिसमें सबकी लाभ हानि हो उसमें सबकी सम्मति लेनी चाहिए। सभा के धर्माधर्म में सबका भाग है। अतः सभासदों को पहिले सम्बोधन करते हैं। परन्तु गुरुजी जानते हैं कि इनमें करने धरनेवाले भरत हैं। अतः विशेष लक्ष्य भरत की ओर है। उन्हें सुजान कहकर भणित भगति मति गत्ति का जानकार होना सूचित किया।

अब कहते हैं कि रामजी धर्मधुरीण हैं। धर्म से डिगेंगे नहीं। भानुकुलभानु हैं। यथा : जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती। पिता की कीर्ति को न बिगड़ने देंगे। सत्यसन्ध हैं सत्य को छोड़ेंगे नहीं। श्रुति सेतुपालक हैं। पितृ देवो भव मातृ देवो भव आदि जो वेद का मार्ग है उसे नष्ट न होने देंगे। रामजी का जन्म केवल अयोध्या के मङ्गल के लिए नहीं है सम्पूर्ण संसार के मङ्गल के लिए है। सच्चे राजा तो राम ही हैं। इनकी आज्ञा का उल्लंघन हो नहीं सकता। क्योंकि सदा स्वतन्त्र हैं। और सभी परवश हैं। माया के नचाने से नाचते हैं। ये भगवान् हैं। उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिं। वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स सवाच्यो भगवान् इति। जो उत्पत्ति, प्रलय, प्राणियों की अगति, गति, विद्या और अविद्या को जाने उसे भगवान् कहते हैं।

गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दल दलन देव हितकारी॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥२॥

अर्थ : गुरु पिता माता के वचन के अनुसार चलनेवाले हैं। खल दल के दलन करनेवाले और देवता के हितकारी हैं। नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ को राम की भाँति यथार्थ कोई नहीं जानता।

व्याख्या : कभी पिता की आज्ञा उल्लंघन नहीं करेंगे। पूर्व के छवो विशेषणों का यही सारांश है। अब पिछले दो विशेषणों का सारांश कहते हैं कि इन्हें खल दल का नाश और देवताओं का हित करना है : तुलसिदास जौ रहौं मातु हित को सुर साधु बिप्र भय टारै।

इसके अतिरिक्त रामजी सा जानकार भी कोई नहीं। नीति प्रीति परमार्थं और स्वार्थ के भीतर ही सब कुछ है। सो इन चारों विषयों का इनके समान कोई जाननेवाला नहीं है। चारों को विचार के ही वन में आये हैं। यथा : परमार्थं : मुनिगन मिलन बिशेष बन। नीति : तेहि पर पित आयसु। प्रीति : सम्मत जननी तोर। स्वार्थं : भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।

बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥
अहिप महिप जँह लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥३॥

अर्थ : ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, कर्म और काल ये सब शेष से लेकर राजा तक जो प्रभुताई हैं और योग की सिद्धियाँ जिनका गान वेद ने किया है।

व्याख्या : विधि हरि हर उत्पत्ति स्थिति और लय करनेवाले हैं। रवि शशि संसार के हित कर्त्ता और इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ये क्रमशः पूर्वादि दिशाओं के पालन करनेवाले हैं। माया जो सारे संसार को नचानेवाली है। जीव संसार का भोक्ता है। उसी के भोग के लिए संसार बना हुआ है और कर्म जिसकी मूर्त्ति संसार है और काल : गुणों का क्षोभक : जिसके कारण प्रकृति में वैषम्य होकर सृष्टि होती है और जो सबका संहारकर्त्ता है : प्रभुताई की सीमा शेष से लेकर राजा तक है। शेष पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। राजा भी प्रजा रूपी धर्म द्वारा देश विदेश को धारण करता है और योग की अनेक सिद्धियाँ जो वेदादि शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित हैं।

करि बिचार जिय देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सबही कें ॥४॥

अर्थ : अच्छी तरह से जी में विचार करके देखो। रामजी की आज्ञा सबके सिर पर है।

व्याख्या : यहाँ पर वसिष्ठजी सरकार के ऐश्वर्य को एक बारगी खोले देते हैं। महात्मा हैं। सभा में अन्यथा भाषण नहीं करेंगे। दूसरे यह कि त्रिकालज्ञ हैं। उन्हें भरतजी की इस भावना का उत्तर देना है : मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी। कहते हैं कि सब लोग विचार करके अच्छी तरह से देखो। यह जो संसार का बड़ा भारी आडम्बर चल रहा है उसके चलानेवाले क्षण भर विश्राम न करके जो अपने कार्य में तत्पर हैं वे किसकी न हटाई जानेवाली आज्ञा के वशीभूत होकर काम कर रहे हैं। सभी रामजी की आज्ञा के वशीभूत हैं। वैसा ही चलने में उन्हें सुख है। यथा : प्रभु अज्ञा जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

दो. राखें राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि संमत सोइ ॥२५४॥

अर्थ : रामजी की आज्ञा और रुख रखने से ही हम लोगों का कल्याण होगा। यह समझकर आप लोग सुचतुर हैं। सब लोग मिलकर राय बिठाओ।

व्याख्या : गुरुजी का कहना है कि राय करने के पहिले इस बात को दृढ़ रूप से मन में रख लो कि रामजी की आज्ञा मानने और रुचि रखने में ही सबका कल्याण है। उनकी आज्ञा और रुख के विरुद्ध कार्य करने में भलाई नहीं है। उनकी आज्ञा और रुख के विरुद्ध चाहे मैं आज्ञा दूँ। चाहे कौसल्याजी हठ करें। चाहे भरतजी सङ्कोच डालें। कभी कल्याणप्रद फल नहीं हो सकता। अतः उनकी आज्ञा और रुख को ध्यान में रखते हुए आप लोग कोई रास्ता सोचें।

सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मगु एकू ॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ ॥१॥

अर्थ : रामजी का अभिषेक होना सबके लिए सुखद है और यही एक रास्ता मङ्गल मोद का मूल है। अब किस विधि से रामजी अवध चलें इस वात को आप लोग समझकर कहिये। वही उपाय किया जाय।

व्याख्या : भरतजी सोचते थे : केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू। गुरुजी भी वही बात कहते हैं और उसका उपाय सबसे पूछते हैं। क्योंकि सबको इसी में सुख है। यही रास्ता मङ्गलमूल है और अभिषेक तभी सम्भव है जब रामजी अयोध्या लौटने को राजी हों। अब इनके लौटाने की विधि क्या होगी ? पिता के वचन को ये छोड़ेंगे नहीं और बिना छोड़े अयोध्या जाना कैसे बनता है ? और बिना अयोध्या जाने को राजी हुए अभिषेक कैसे बनता है ? अभिषेक में झगड़ा नहीं है। उसे रामजी मान जायेंगे। क्योंकि पिता ने भरतजी को राज्य दिया। भरत उसे स्वीकार करते हैं और रामजी के चरणों में अर्पित किया चाहते हैं। अतः अभिषेक में बाधा नहीं है। बाधा है अयोध्या लौटने में। उसे कैसे दूर किया जाय। इसी पर आप लोग विचार करिये। जो उपाय निश्चित हो तदनुसार ही काम किया जाय।

सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी ॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे ॥२॥

अर्थ : सब ने आदर के साथ मुनिवर की श्रेष्ठ वाणी सुनी। जो नीति परमार्थ और स्वार्थ से सनी हुई थी। किसी से जवाब नहीं चलता। लोग भोले हो गये। तब सिर नवाकर भरतजी ने हाथ जोड़ा।

व्याख्या : बोले मुनिबर समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना। इस भाँति सबसे सम्मति पूछना मुनिजी की नीतिमत्ता है। रामजी के स्वरूप का ज्ञान कराना परमार्थ है : राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होइ। यह स्वार्थ है। इस भाँति वसिष्ठजी की नय परमारथ स्वारथ सानी वाणी सबने आदर से सुनी। भाव यह कि सबको विश्वास है कि मुनिजी कहते हैं वही तथ्य और वही पथ्य है।

वसिष्ठजी पहले सभासदों को सम्वोधन करके बोले थे। अतः पहिले उन्हीं से उत्तर की आशा थी। सो इन लोगों की बुद्धि काम नहीं करती। अतः कवि ने कहा कि लोग भोले हो गये। अपनी बुद्धि का सभी को अभिमान होता है। पर जब वह काम नहीं करती तब लाचार होकर मानना ही पड़ता है कि बुद्धि काम नहीं कर रही है। अतः सब लोग चुप हैं। सबको चुप देखकर भरतजी ने माथा नवाकर हाथ जोड़ा। अर्थात् कुछ कहा चाहते हैं।

भानुबंस भये भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे ॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता ॥३॥

अर्थ : सूर्यवंश में बहुत से राजा लोग हुए। उनमें से एक से एक अधिक और बड़े भी हुए। माँ बाप से उनका जन्म हुआ और शुभाशुभ कर्म ब्रह्मदेव ने दिया।

व्याख्या : वैवस्वत मन्वन्तर भर में सूर्यवंशी राजाओं की प्रधानता रहती है। सो सूर्यवंश में न जाने कितने राजा हुए और बड़े बड़े प्रतापी हुए। किसे कम कहा जाय और किसे अधिक कहा जाय। पर इन लोगों के बड़प्पन का कारण क्या हुआ ? इसे विचारने पर तो यही देखा जाता है कि माता पिता तो केवल जन्म के कारण हुए और ब्रह्मदेव ने उस जन्म में भोगने के लिए शुभाशुभ कर्म का विधान कर दिया। अर्थात् प्रारब्ध कर्म निश्चित कर दिये। भाव यह कि माता पिता जन्म के साथी हैं पर कर्म का साथी कोई नहीं। ब्रह्मदेव के नियत शुभाशुभ कर्म को भोगने के सिवा अन्य गति नहीं।

दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जग जाना ॥
सो गोसाइँ बिधि गति जेंहि छेंकी। सकै को टारि टेक जो टेकी ॥४॥

अर्थ : संसार जानता है कि आपका आशीर्वाद ऐसा है कि दुःख को नाश करके सब कल्याणों को साज देता है। आप ऐसे स्वामी हैं कि ब्रह्मदेव की गति को भी रोक देते हैं। आपने जो टेक किया उसे कौन टाल सकता है।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ने जो शुभाशुभ नियत कर दिया उसे मिटानेवाला कोई नहीं। यथा : कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार। देव यज्ञ गन्धर्व मुनि कोउ न मेटनिहार। सो सूर्यवंश के पुरोहित आप हैं। आपके आशीर्वाद से सूर्यकुल के राजाओं का दुःख टलकर सदा कल्याण हुआ। आपके आशीर्वाद का यह प्रताप संसार जानता है। अर्थात् मेरे कुल का कल्याण तो सदा आप द्वारा होता आया है।

ब्रह्मा की गति शुभाशुभ कर्मों का विपाक है। सो अशुभ कर्म के विपाक को आप सदा से रोकते आये हैं। माता पिता की की हुई रक्षा न हुई। वे तो जन्म के साथी थे। विधाता ने शुभाशुभ दोनों कर्म दिया। उनसे भी कोई सहायता नहीं मिली। सहायता तो आपसे सदा मिलती आयी है। आपने हमारे कुल के लिए ब्रह्मा की गति को भी रोका है। आपने जो टेक धर लिया उसे ब्रह्मा भी नहीं टाल सकते। तो दूसरे की गिनती क्या ? अतः आप यदि रामजी को लौटने की टेक पकड़ लें तो कौन बाधा कर सकता है ?

दो. बूझिअ मोहि उपाउ अब, सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय बचन गुर, उर उमगा अनुरागु ॥२५५॥

अर्थ : अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं। यह सब मेरा अभाग्य है। स्नेहमय वचन सुनकर गुरुजी के हृदय में अनुराग उमड़ पड़ा।

व्याख्या : उपाय बतलानेवाले आप सो मुझसे उपाय पूछते हैं। यह हमारा अभाग्य नहीं है तो क्या है ? हम तो आज्ञाकारी ठहरे। आज्ञा देनेवाले तो आप हैं। यही हमारे कुल का रास्ता है। यथा : मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजे। सब पायेउँ रज पावनि पूजे। उत्तर में भरतजी ने ऐसे स्नेहमय वचन कहे कि गुरुजी के हृदय में अनुराग उमग आया। तात्पर्य यह कि आप उपाय बतलाइये। हम लोग तदनुकूल आचरण करें।

तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं ॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। (अरध तजहिं बुध सरबसु जाता ॥१॥
तुम कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहि लखन सीय रघुराई ॥
सुनि सुबचन हरखे दोउ भ्राता)। भे प्रमोद परिपूरन गाता ॥२॥

अर्थ : हे तात ! पर राम कृपा की बदौलत ही यह बात है। राम के विमुख तो सपने में भी सिद्धि नहीं है। बेटा ! मैं एक बात कहने में सङ्कोच करता हूँ : बुद्धिमान् लोग सर्वस्व जाता देखकर आधा छोड़ देते हैं। तुम दोनों भाई वन जाओ। लक्ष्मण सीता और रामजी को लौटा लिया जाय। ऐसा सुन्दर वचन सुनते ही दोनों भाई के शरीर में पुलक हो गया।

व्याख्या : मैं टेक कर लेता था उसे कर डालता था। यह बात सच है। पर वह सिद्धि भी तो रामकृपा का ही फल है। यहाँ तो राम से ही काम पड़ गया है। अतः टेक चल नहीं सकती। राम की कृपा से टेक निबहता है। उनके विमुख होने से सिद्धि कहाँ ?

गुरुजी ने यह बात तो कही। फिर भी उपाय बतलाने का बोझा तो उन पर ही रहा। पर जो उपाय था उसके कहने में गुरुजी को सङ्कोच था। राजा ने अयोध्या का राज भरत को दिया और चौदह वर्ष के लिए वन का राज्य रामचन्द्र को। यथा : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। सो दोनों भाई अपना अपना भाग बदल लो। तुम वन जाओ। राम राज पर जायँ। पर निरपराध भरत को वन कैसे भेजें। अतः कहा : सकुचउँ तात कहत एक बाता। परम बुद्धिमान् भरतजी भी वसिष्ठ के ही शिष्य थे। कहते ही लख लिया कि गुरुजी के मन में यह बात है। सो आनन्द से भर उठे।

श्री गोस्वामीजी : जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं : का अनुसरण करते हुए से मालूम होते हैं। सातों काण्ड में कोई भी नियम निबहने नहीं दिया है। छः काण्डों में श्लोकों से मङ्गलाचरण करते हुए भी लङ्का में दोहे से मङ्गलाचरण कर दिया। केवल अयोध्या में प्रायेण नियम निबहा है। परंतु उसमें भी कई स्थानों पर सात अर्धालियाँ हैं। पचीस दोहे पर बराबर छन्द आते गये हैं। पर स्थल पर २६ दोहों

पर छन्द दिया है। आरण्य में तो दो अर्धालियों के बाद भी छन्द देखा गया है। अतः किसी विशेष स्थल पर छः अर्धालियाँ भी आश्चर्य जनक नहीं है।

राजापुर की प्रति को मैं प्रतिष्ठित प्राचीनतम प्रति मानता हूँ। उनमें उपर्युक्त कोष्ठान्तर्गत चार अर्धालियाँ : अर्ध तजहिं बुध सर्बस जाता। आदि नहीं है। न उनकी आवश्यकता है और न सामञ्जस्य बैठता है। सर्वस क्या है ? अर्ध क्या है ? जो अर्ध बतलाया जाता है वह वस्तुतः अर्ध होता है कि नहीं ? लखन सीय रघुबीर के लौटने में दोनों भाइयों के वन जाने की कारणता कैसे हुई ? इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर नहीं मिलता। तुम कानन गवनहु दोउ भाई। ऐसा गुरुजी का आदेश सुनने पर भी उनसे : कीजिय बचन प्रवान कहकर प्रमाण माँगना और वन को न चले जाना और गुरुजी के : सकुचहुँ तात कहत एक बाता। कहकर एकदम न ठहरना और बेधड़क उस बात को कह डालना अस्वाभाविक मालूम पड़ता है।

यह बात अवश्य है कि अयोध्या में गुप्त भाव भरे हुए हैं और कठिनता से हाथ आते हैं। इस काण्ड में आदेश से कम काम लिया जाता है। रुख से काम लिया जाता है। भरतजी को सोचते सोचते रात बीत गयी। कोई युक्ति प्रभु के लौटाने की स्थिर नहीं कर सके। कौन भरतजी ? जिनके महिमा सिन्धु के किनारे मुनिजी की मति अबला सी खड़ी रह गयी। उनके मन में यह धर्मसम्मत युक्ति भी आयी कि पिता ने प्रभु को चौदह वर्ष के लिए वन दिया और मुझे राज्य दिया। सो प्रभु तो उसे स्वीकार करके वन चले आये। पर मुझे अस्वीकार है। इसलिए हम दोनों भाई अपना अपना हिस्सा अदल बदल कर लें। इस भाँति प्रभु के धर्म में पीड़ा भी न होगी। केवल यह एक युक्ति है जिसे धर्मसम्मत कह सकते हैं। पर प्रभु मुझे भी पिता की आज्ञा से हटने न देंगे। यथा : मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता। इसलिए यह युक्ति भी ठहर न सकी।

यहाँ सभा में मुनिजी सरकार के लौटने का उपाय पूछने लगे। भरतजी खिझलाकर कहने लगे : बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु। इस पर गुरुजी ने उसी एक मात्र उपाय को कहना चाहा। पर उस उपाय का कहनेवाला भी कैकेयी की भाँति निन्द्य समझा जायगा। अतः इतना ही कहकर ठहर गये : सकुचहुँ तात कहत एक बाता।

मुनिजी के मुख से यह बात निकलते ही समझनेवाले लोग समझ गये कि वह कौन सी बात है। भरतजी प्रसन्न हो गये कि इस बात पर यदि मुनिजी स्थिर हो जायँ तो सरकार को भी मानना पड़ेगा। रह गयी मुझे निष्कारण वन भेजने की बात जिसके कहने में मुनिजी को सङ्कोच है सो तो मुझे परम इष्ट है। अतएव मुनिजी के सङ्कोच मिटाने और उन्हें उसी बात पर दृढ़ रखने के लिए कहते हैं : कानन करहुँ जनम भर बासू। एहि ते अधिक न मोर सुपासू...नाथ निज कीजिअ बचन प्रवान।

यह बात अवश्य है कि इस प्रकार अर्थ करने में दोनों भाइयों के हिस्से के अदल बदलवाली बात की कल्पना करनी होगी। परन्तु भरत के वन भेजने में

ऐसी कल्पना बिना किये अर्थ बैठ ही नहीं सकता। चाहे कोई भी अर्थ किया जाय। अतः मैं राजापुर की प्रति के पाठ से पूर्ण सम्मत हूँ और कोष्ठान्तर्गत चार पद मुझे क्षेपक मालूम होते हैं।

मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ रामु भये राजा ॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी ॥३॥

अर्थ : मन प्रसन्न हो गया। शरीर में तेज विराजमान हो गया। मानो चक्रवर्तीजी गये और रामजी राजा हो गये। लोगों को लाभ अधिक और हानि थोड़ी थी। रानियों के लिए दुःख सुख समान ही रह गया। वे रोने लगीं।

व्याख्या : दो बात का शोक था। एक चक्रवर्तीजी के सुरपुर गमन का। दूसरे राम के वनवास का। सो मानो दोनों बिगड़ी हुई बातें बन गयी। ऐसी प्रसन्नता भरतजी को हुई। दशरथजी के जी उठने के समान खुशी हुई। अतः मन प्रसन्न हो गया और रामजी के राजा होने के समान उत्साह हुआ। अतः शरीर में तेज विराजमान हुआ। नहीं तो गँवारी कह रहो थी : मुख प्रसन्न नहिं मानस खेदा। इतनी खुशी का कारण यह कि भरतजी सोचते हैं कि रामजी के राजा होने से लोगों को बड़ा लाभ होगा और मेरे वन जाने से हानि बहुत थोड़ी होगी। पर रानियाँ रोने लगीं कि एक बेटा लौटा तो दूसरा वन चला। उनके लिए बात वह की वही रह गयी।

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हें। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे ॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू ॥४॥

अर्थ : भरतजी ने कहा कि मुनिजी का कहा करने से संसार के जीवों को अभिमत देने का फल मिलेगा। मैं जन्म भर वन में ही रहूँ इससे बढ़कर मुझे कोई सुभीता नहीं है।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं : सकचहुँ तात कहत एक बाता। कहकर मुनिजी को जो बात अभिप्रेत है। उसके करने से जगत् के जीवों को अभिमत दान का फल होगा। रामजी के वनवास से सारे विश्व को शोक है। उनका राज पर लौटना सबको इष्ट है। सम्पूर्ण विश्व को अभिमत दान के पुण्य की सीमा नहीं है। इसके लिए यदि मैं जन्म भर वनवास करूँ तो भी थोड़ा है। इससे अच्छा सुअवसर कब मिलेगा कि केवल वनवास करने से जीव मात्र के अभिमत दान का फल मिले।

गुरुजी ने जिस बात का इशारा मात्र किया था उसके खोल देने से भरतजी का यह अभिप्राय था कि कहने में जब गुरुजी सङ्कुचित होते हैं तो उनको सङ्कोच में रखना उचित नहीं। अतः स्वयं उस बात को स्पष्ट करके तदनुकूल कार्य करने में अपना बड़ा भाग्य होना ख्यापन करते हैं।

दो. अन्तरजामी रामु सिय, तुम सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज, कीजिअ बचनु प्रवान ॥२५६॥

अर्थ : राम सीता अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप सच कह रहे हैं तो हे नाथ ! आप अपने वचन को प्रमाण कीजिये अर्थात् पूरा कीजिये।

व्याख्या : भरतजी ने कहा कि आप जिस बात को कह रहे हैं वह मुझे स्वीकार है। उसे करने में मुझे बड़ा आनन्द है। चौदह वर्ष नहीं मैं यावज्जीवन वनवास के लिए प्रस्तुत हूँ। मेरी बातें बनावटी नहीं स्वयं सरकार तथा महारानी सीता देवी अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञों में भी सुजान हैं। देख लीजिये कि मेरे हृदय में कितना आनन्द है। सम्बन्ध प्रागल्भ्य से कहते हैं कि यदि आपने मुझे बहकाने के लिए न कहा हो तो अपने वचन का प्रमाण कीजिये। सरकार को लौटाइये और मुझे वन भेजिये।

भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भयउ बिदेहू॥
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥१॥

अर्थ : भरत का वचन सुनकर और उनकी प्रीति देखकर मुनि वसिष्ठ को सभा के सहित देह की सुधि न रही। भरत की महा महिमा रूपी समुद्र के तट पर मुनिजी की बुद्धि स्त्री के समान खड़ी रह गयी।

व्याख्या : कानन करहुँ जनम भर बासू। एहि ते अधिक न मोर सुपासू। इत्यादि वचन सुनकर : मन प्रसन्न तन तेज बिराजा। जनु जिय राउ राम भये राजा। ऐसी प्रेम की दशा देखकर न मुनिजी को तन मन की सुधि रह गयी और न सभासदों को तन मन की सुधि रह गयी।

भरत की प्रशंसा करने के लिए उनकी महिमा का बखान करने के लिए मुनिजी का जी उमगा। पर मुनिजी की बुद्धि नहीं काम करती कि कैसे भरतजी का बखान करें। उनकी महा महिमा देखकर मुनिजी की बुद्धि ऐसी स्तब्ध रह गयी जैसे महा समुद्र को देखकर कोई स्त्री स्तब्ध रह जाय और उसे न सूझे कि इसमें मेरी गति कैसे हो। यहाँ अबला शब्द देखकर गोस्वामीजी ने यह दिखलाया कि वह प्रबला है अबला नहीं है जो दुःसाहस कर बैठे।

गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावत नाव बोहितु बेरा॥
अउर करहि को भरत बड़ाई। सरसी सीप कि सिंधु समाई॥२॥

अर्थ : पार जाना चाहती है। मन से अनेक उपाय ढूँढ़े। पर उसे न नाव ही मिली न जहाज ही मिला और न बेड़ा ही हाथ लगा। दूसरा कौन भरत की बड़ाई कर सकता है। क्या तालाब की सीप में समुद्र समा सकता है?

व्याख्या : समुद्र का सन्तरण भुज बल से नहीं हो सकता। अतः उसका उपाय नाव जहाज या बेड़ा की प्राप्ति है। इसी भाँति जब मुनिजी की बुद्धि ने भरत की महा महिमा रूपी समुद्र के पार करने के लिए विद्यारूपी नाव वेदरूपी जहाज और शरीररूपी बेड़ा का सहारा चाहा। पर कोई प्राप्त न हुआ। सब प्रयत्न

निष्फल गये : विद्या के नाव होने का प्रमाण। यथा : केवट बुधि बिद्या बड़ि नावा। वेद के जहाज होने का प्रमाण। यथा : बंदौं चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस। शरीर के बेड़ा होने का प्रमाण। यथा : नर तन भव बारिधि कहँ बेरो।

भावार्थ यह कि न तो विद्या के बल से पद्यादि की रचना से भरत की महामहिमा कह सके। न वेद मन्त्रों के उद्धरण से ही महिमा कही जा सकी। न न शरीर की चेष्टा से ही हृद्गत भाव व्यक्त कर सके। अतः मुनिजी की बुद्धि स्तब्ध रह गयी।

जब विवेक सागर गुरु वसिष्ठजी ही बड़ाई करने में असमर्थ रहे तो दूसरे किस में यह सामर्थ्य कहाँ से आवे कि भरत की बड़ाई कर सके। समुद्र से सीपी निकलती है। उसमें समुद्र नहीं समा सकता। अतः जब समुद्र की सीपी में जो कि दीर्घाकार होती है समुद्र नहीं समा सकता। तो तालाब की सीपी में जो कि अति क्षुद्राकार होती है समुद्र कैसे समायेगा? अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाय मन बिधि हरिहर को। विधि समुद्र हैं। उससे उत्पन्न सीपी स्थानीय वसिष्ठजी हैं। सो भरत के स्नेह की महिमा में विधि की गति नहीं। तब वसिष्ठजी की गति न होना स्वभाव से प्राप्त है। सामान्य लोग तो पल्वल की सीपी हैं। इनकी उत्पत्ति जीवों से है। इनके मन में भरत की महिमा कैसे आ सकती है।

भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥३॥

अर्थ : भरतजी मुनिजी के मन में बहुत अच्छे लगे। तब समाज के सहित रामजी के पास आये। प्रभु ने प्रणाम करके सुन्दर आसन दिये और सब मुनिजी की आज्ञा पाकर बैठ गये।

व्याख्या : मुनिजी भरतजी की बड़ाई तो नहीं कर सके। पर उनके हृदय में उनकी महिमा का अनुभव हुआ और भरतजी पर उनका बड़ा प्रेम हो गया। अतः कुछ न कहकर भरतजी का काम करने के लिए रामजी के पास चल पड़े। सारा समाज साथ हो गया। रामजी के पास पहुँचे। सरकार ने उठकर समयानुकूल सुन्दर आसन दिये। सरकार के सामने सब खड़ा रहना चाहते हैं। मुनिजी के अनुशासन पाने पर बैठे। यथा : बैठन सबहिं कह्यौ गुरुज्ञानी।

बोले मुनिबरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहुँ राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥४॥

अर्थ : मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी देश काल और अवसर के अनुसार विचार कर बोले। हे सर्वज्ञ, सुजान, धर्म नीति, गुण और ज्ञान के निधान रामजी सुनिये।

व्याख्या : मुनिजी ने जब भरतजी को बुलवाया था उस अवसर पर समय के समान बोले थे। यथा : बोले मुनिबर समय समाना। पर यहाँ रामजी के सामने देश काल अवसर के अनुसार बोले। मुनिजी ने विचार किया कि ऐसे अवसर पर

रामजी से ही उपाय पूछना चाहिए। यहाँ सब लोग वन में हैं। राजगद्दी खाली पड़ी है। सब लोग आर्त हो रहे हैं। भरतजी गद्दी स्वीकार नहीं करते। ऐसी स्थिति अधिक दिन चल नहीं सकती एवं मनन करनेवाले श्रेष्ठ मुनिजी देश काल अवसर का विचार करते हुए बोले।

रामजी को सम्बोधन करते हुए सर्वज्ञ सुजान धर्म नीति और गुणनिधानादि विशेषण से विशेषित करते हैं। भाव यह कि एवं गुण विशेषण विशिष्ट पुरुष ही ऐसे अवसर पर उपाय कह सकता है। रामजी सर्वज्ञ शिरोमणि हैं। कोई बात उनसे छिपी नहीं। सुजान हैं। गुण ग्राहक हैं। सबका सम्मान जानते हैं। धर्म नीति में बाधा न पड़े। दोष और मोह से सम्पर्क न हो ऐसा उपाय बतला सकते हैं।

दो. सबके उर अंतर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो कहहु उपाउ ॥२५७॥

अर्थ : सबके हृदय में वास करते हो। सबके भाव कुभाव को जानते हो। जिसमें पुरजन माता और भरत का हित हो ऐसा उपाय बतलाओ।

व्याख्या : सबके उर अंतर बसहु। कहकर वसिष्ठजी आज ऐश्वर्य खोले देते हैं। क्योंकि सबके हृदय देश में रहनेवाला तो केवल ईश्वर है। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। सो रामजी से किसी के हृदय का भाव छिपा नहीं है। अतः परिस्थिति समझाने की आवश्यकता नहीं। जो रामजी उपाय कहें वही धर्माविरोधी होगा। सन्तोष कारक होगा और हित होगा। अतः कहते हैं : पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहहुँ उपाउ।

भाव यह कि हम लोगों को उपाय नहीं सूझ रहा है। पुरजन जननी भरत हित पर ध्यान देने से धर्म में बाधा है। धर्म की रक्षा करने से पुरजन जननी भरत हित नहीं होता और पुरजन जननी भरत हित किसी भाँति उपेक्षा का विषय भी नहीं है।

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥१॥

अर्थ : आर्त विचारकर कभी नहीं कहते। जुआड़ी को अपना ही दाँव सूझता है। मुनिजी का वचन सुनकर रामजी कहने लगे कि नाथ! उपाय तो आपके हाथ में है।

व्याख्या : इस पर यदि कहा जाय कि आप गुरु हैं। विवेक सागर हैं। आपके हाथ में विश्व बदरीफल के समान है। आपका ही उपाय बतलाना प्राप्त है। अतः कहते हैं कि इस समय मैं आर्त हूँ। मैं विचार पूर्वक कुछ नहीं कह सकता। आर्त होने का कारण कहते हैं कि मेरी दशा इस समय जुआड़ी की सी हो रही है। मुझे भरत की रुचि रखने के अतिरिक्त और कुछ सूझ नहीं रहा है जुआड़ी को अपना ही दाँव सूझता है। हमारे सर्वस्व तो आप हैं। यथा : मुनि जन धन सर्वस सिव प्राना।

सो आप लौटते हैं। या वन जाते हैं। यही दाँव लगा हुआ है। सो मुझे आपका लौटना ही सूझता है। उचित अनुचित नहीं सूझता। इतने में ही मुनिजी को जो कुछ कहना रहा सब कह दिया।

मुनिजी ने कहा था : पुरजन जननी भरत हित होय सो कहिय उपाय। इस पर सरकार कहते हैं कि उपाय आपके हाथ है और तदनुसार कार्य करना मेरा काम है। दोनों भाई एक ही बात बोलते हैं। भरतजी ने कहा : बूझिअ मोहि उपाय अब सो सब मोर अभाग। और रामजी कह रहे हैं : नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ। अर्थात् उपाय कहना आपका कर्तव्य और आज्ञापालन मेरा कर्तव्य है।

सबकर हित रुख राउरि राखें। आयसु किए मुदित फुर भाखें ॥
प्रथम जो आयसु मों कहुँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई ॥२॥

अर्थ : आपका रुख रखने में सच कहने और प्रसन्न होकर आज्ञा पालन में सबका हित है। पहिले मुझे जो आज्ञा हो मैं उस शिक्षा को माथे पर चढ़ाकर करूँगा।

व्याख्या : मन से आपके रुख पर ध्यान रक्खे। कर्म से आपकी आज्ञा प्रसन्न मन से पालन करे और वचन को सत्य कहे। इसी में पुरजन जननी और भरत सबका हित है। केवल कहता ही नहीं हूँ करने को स्वयं तैयार हूँ। आज्ञा हो वन जाऊँ। आज्ञा हो अवध फिर चलूँ। पिता की आज्ञा छोड़ दूँ। जो आज्ञा हो वही करूँ और प्रसन्नता से महाप्रसाद रूप से आज्ञा को सिर चढ़ाऊँ। यदि इस पर कहा जाय कि आप तो मान लेंगे। पर क्या इसी भाँति और लोग भी मानेंगे ? अतः कहते हैं :

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई ॥
कह मुनि राम सत्य तुम भाखा। भरत सनेह बिचारु न राखा ॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् जिसको जो आज्ञा होगी वह सब तरह से सेवकाई करेगा। मुनिजी ने कहा कि रामजी ! आपने सत्य कहा। पर भरत के स्नेह ने विचार रहने नहीं दिया।

व्याख्या : भाव यह कि मैं ही नहीं सब लोगों को आपकी आज्ञा माननी होगी। आपकी आज्ञा पालन करने के लिए ही मैंने जन्म लिया है। यथा : आयसु काह कहिय किन मोहीं। आप आर्त क्यों होते हैं ?

मुनिजी ने कहा कि रामजी ! आपका कहना ठीक है। सारा समाज और स्वयं आप भी मेरा कहना मानेंगे। पर मैं तो गुरु हूँ। मुझे तो जो धर्म है वही कहना चाहिए। पर भरत के स्नेह ने मुझे विचारपथ से विचलित कर दिया है। यहाँ सीधे सीधे धर्म कथन से भरत के प्रेम को बड़ा धक्का पहुँचेगा। प्रेमी प्रेमपात्र के समझाने से ही समझ सकता है। केवल धर्म की व्यवस्था देने से नहीं समझता।

तेहि ते कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥
मोरें जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ॥४॥

अर्थ : इसलिए मैं बार बार कहता हूँ कि मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश हो गयी है। मेरी समझ में भरत की रुचि रखकर जो कीजियेगा वही शुभ होगा। इस विषय में मैं शङ्कर को साक्षी देता हूँ।

व्याख्या : वसिष्ठजी कहते हैं कि पहिले भी मैंने कहा था : भरत हित होय सो कहिय उपाउ। और अब भी कहता हूँ : भरत सनेह बिचार न राखा। मेरी बुद्धि अपने वश में नहीं है। भरत की भक्ति के वश हो गयी है। भरत जैसा चाहते हैं। मेरी बुद्धि वैसी ही हो गयी है। मैं इस समय यथार्थ कहने में असमर्थ हूँ। फिर भी इतना कहे देता हूँ कि चाहे घर लौटिये चाहे वन जाइये पर जो करिये वह भरत को रुचि रखते हुए करिये। इसमें सन्देह न कीजिये कि भरत की रुचि रखने में अधर्म स्पर्श करेगा। मैं शङ्कर को साक्षी देकर कहता हूँ कि भरतजी की रुचि रखकर जो ही कुछ किया जायगा उससे शुभ ही होगा। क्योंकि भरत जो समझेंगे कहेंगे करेंगे वही संसार में धर्मसार होगा।

दो. भरत बिनय सादर सुनिअ, करिअ बिचार बहोरि।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि ॥२५८॥

अर्थ : भरतजी के विनय को आदर के साथ सुनिये और फिर से विचार कीजिये और साधुमत लोकमत राजनीति और वेद का जो निचोड़ हो वही कीजिये।

व्याख्या : भरत की रुचि समझने के लिए उनके सन्तोष के लिए भरत के विनय को तदनुकूल कार्य करने का भाव हृदय में रखकर सुनिये। मैं यह नहीं कहता कि वैसा कर ही डालिये। भरत का मनोभङ्ग न होने पावे और साधुमत लोकमत राजनीति और वेद का सार ग्रहण करके कार्य कीजिये। मुनिजी भरत के विनय का बल देख चुके हैं जिससे कि उनकी बुद्धि भरत के वश हो गयी। मुनिजी जानते हैं कि भरत की विनय सुनने के बाद भक्तवत्सल बिना द्रवीभूत हुए नहीं रह सकते। सारांश यह कि आप उचित ही करिये पर भरत को सन्तुष्ट करके।

गुर अनुराग भरत पर देखी। राम हृदय आनंदु बिसेखी ॥
भरतहिं धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी ॥१॥

अर्थ : गुरुजी का अनुराग भरत पर देखकर रामजी को विशेष आनन्द हुआ। भरतजी को धर्म धुरन्धर और मनसा वाचा कर्मणा अपना सेवक जानकर।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : भरत मुनिहि मन भीतर भाये। सो मन के भीतर अच्छा लगना ही अनुराग है। वह अनुराग गुरुजी के वचनों से खूब विस्पष्ट हो गया। मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिय सो सुभ सिव साखी। इससे अधिक क्या कहा जा सकता है? सो गुरुजी का इतना प्रेम भरत पर देखकर सबको आनन्द हुआ। पर रामजी को विशेष आनन्द हुआ। क्योंकि भरत रामजी को प्राणप्यारे हैं।

यथा : तुम रघुपतिहिं प्राणहुँ ते प्यारे। अपने प्रिय का इतना बड़ा भाग्य देखकर विशेष आनन्द हुआ।

रामजी की अपार भक्ति गुरु चरणों में है। गुरुजी के अनुराग होने से भरतजी को बड़भागी समझा और उनको अपना आज्ञाकारी तथा सयाने साधु पहिले से ही जानते थे। यथा : भरत कहे मँह साधु सयाने। अतः भरतजी पर ही निर्णय छोड़ देना रामजी ने ठीक समझा। नीति भी है कि जिस पर भार दे उसे पहिले समझ भी लेना चाहिए।

बोले गुर आयसु अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भएउ न भुअन भरत सम भाई॥२॥

अर्थ : गुरुजी की आज्ञा के अनुकूल मनोहर कोमल और मङ्गलमूल वचन बोले। हे नाथ! आपकी शपथ और पिता के चरणों की दोहाई देकर कहता हूँ कि इस संसार में भरत सा भाई कोई हुआ नहीं।

व्याख्या : गुरुजी की आज्ञा के अनुकूल रामजी बोले। अर्थात् भरतजी की रुचि को भलीभाँति स्थान देने के लिए बोले :

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई॥
जे गुरु पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥
मंजुवचन : राउर जापर अस अनुरागू। को कहि सकै भरत कर भागू॥
मृदु वचन : लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
मङ्गलमूल वचन : भरत कहहिं सोइ कियें भलाई।

शपथ दो ही का लिया जाता है पूज्य का या प्रिय का। यहाँ रघुनाथजी दोनों का शपथ लेते हैं : पूज्य वसिष्ठजी का और प्रिय पिताजी का और कहते हैं : भयउ न भुवन भरत सम भाई। इस भाँति भरत के स्नेह का विचार किया। भरतजी के पीठ पीछे भी लक्ष्मणजी से कहा था : लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना।

जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥३॥

अर्थ : जो गुरु के चरण कमल के अनुरागी हैं वे लोक और वेद में भी बड़भागी माने जाते हैं। आपका जिस पर ऐसा अनुराग है उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है।

व्याख्या : गुरु के चरण में प्रीति होने से इस लोक और परलोक दोनों में कल्याण होता है। इसलिए लोकहुँ वेदहुँ बड़भागी कहा। यथा : बंदौ गुरुपद पदुम परागा से : बड़े भाग उर आवै जासू तक।

यहाँ तो बात बहुत चढ़ी बढ़ी है। स्वयं गुरुजी कहते हैं : भरत भगति बस

भइ मति मोरी। इत्यादि। यहाँ तो गुरुजी का अनुराग भरत पर है। इसलिए भरत के भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है।

लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई ॥
भरत कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई ॥४॥

अर्थ : छोटे भाई को देखकर उसके मुँह पर बड़ाई करने में बुद्धि को सङ्कोच होता है। भरत जो कहें वैसा ही करने में भलाई है। ऐसा कहकर रामजी चुप हो गये।

व्याख्या : बड़े के सम्मुख उनकी बड़ाई करना : स्तुति प्राप्त है। परन्तु अपने से छोटे की बड़ाई उसके मुख पर नहीं करना चाहिए। भरत छोटा भाई है। उसके सामने उसकी बड़ाई करने में बुद्धि सङ्कुचित होती है। तात्पर्य यह कि भरत में बड़े गुण हैं जो मैं उनके सामने नहीं कह सकता।

जब भरतजी सामने नहीं रहे तब रामजी ने लक्ष्मण से भरतजी की बड़ाई करते कहा था।

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच मँह सुना न दीसा ॥
भरतहिं होइ न राजमद बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँकि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ ॥
सगुन खीर अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपंच बिधाता ॥
भरत हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उँजियारी ॥ इत्यादि।

अन्त में रामजी ने कहा कि भरत जो कहें तदनुसार कार्य करने में भलाई है। भाव यह कि भरत साधुमत लोकमत नृप नय निगम की अवहेलना कभी करेंगे नहीं। अतः यही विचार ठीक है कि भरत जो कहें वही सब करें मैं भी करूँ।

दो. तब मुनि बोले भरत सन, सबु सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन, कहहु हृदयँ की बात ॥२५९॥

अर्थ : तब मुनिजी ने भरत से कहा कि हे तात! सब सङ्कोच छोड़कर कृपासिन्धु प्रिय बन्धु रामजी से अपने हृदय की बात कह डालो।

व्याख्या : रामजी को चुप देखकर मुनिजी बोले कि यही अवसर है अपने हृदय की बात कहने का। तुम मुझसे उपाय के लिए कहते थे। सो उपाय मैंने कर दिया। रामजी ने सब निर्णय तुम्हारे ऊपर छोड़ दिया। इस समय यदि सङ्कोच करोगे तो बात न बनेगी। फिर जिससे कहना है वे कृपासिन्धु हैं और प्रिय बन्धु हैं। उनसे दिल खोलकर बोलो। महुँ सनेह सकोचबस सन्मुख कहेउँ न बैन : वाली बात इस अवसर पर ठीक नहीं।

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुर साहिब अनुकूल अघाई ॥
लखि अपने सिर सबु छरु भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर रामजी का रुख पाकर गुरु और स्वामी को पूरी तरह से अनुकूल देखकर और अपने ऊपर नहीं सँभलनेवाला बोझा अनुभव करके कुछ कह नहीं सकते भरतजी विचार कर रहे हैं।

व्याख्या : मुनिजी का वचन सुना। सङ्कोच छोड़कर बोलने के लिए और सरकार का भी रुख पाया कि हाँ कहो। गुरुजी ने कहा था : राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होय। सो रुख भी देख लिया। अवसर ठीक पाकर ही बोलना चाहिए। सो भरतजी ने देख लिया कि गुरुजी और स्वामी रामजी पूरी तरह से अनुकूल हैं। विनय करने का यही अवसर है।

गुरुजी ने मेरी ओर से बहुत कहा। अतः स्वामी रामजी ने सब बोझा मेरे ऊपर छोड़ दिया। यह बोझा मेरे सँभालने लायक नहीं है। पिता के वचन त्यागने से अधर्म है। सो उसे त्यागने को कैसे कहूँ। नहीं कहता हूँ तो पुरजन जननी और अपना स्वार्थ भी नहीं सधता। इधर सँभालो तो उधर नहीं सँभलता। उधर सँभालो तो इधर नहीं सँभलता। अपने ऊपर बोझा : जिम्मेदारी आ पड़ना बड़ी कठिन समस्या है। वही भरतजी जो सोचते थे : अवसि फिरब गुरु आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी। मातु कहे बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ। मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता। वही जब उनके ऊपर सब बोझा रख दिया गया तब लौटने के लिए कहने में हिचकते हैं। विचार करने लगे कि रामजन्म संसार भर के मङ्गल के लिए है। रामजी खलदल दलन देव हितकारी हैं। सो देवताओं का हित इनके वन जाने में है। प्रजाओं का हित इनके लौटने में है। यहाँ क्या करना चाहिए।

पुलकि सरीर सभाँ भये ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि ते अधिक कहौं मैं काहा ॥२॥

अर्थ : शरीर में पुलक हो गया। सभा में खड़े हो गये। कमल ऐसे नेत्र आँसू से भर गये। कहने लगे कि मेरा कहना तो मुनिनाथ ने निवाह दिया। इससे अधिक मैं क्या कहूँ ?

व्याख्या : गुरु और स्वामी को अनुकूल जानकर भरतजी को हर्ष से सात्त्विक भाव हुआ। रोंगटे खड़े हो गये। नेत्रों में जल भर आया। बोलने के लिए सभा में खड़े हो गये। सबके हित अनहित का प्रश्न है। भरत के मन्त्र को ही पसन्द करके सब लोग भरतजी के साथ आये हैं। अतः सब कुछ भरतजी के विनय पर ही निर्भर है। अतः सबके सुनने के लिए भरतजी खड़े होकर बोले। अथवा बड़ों की सभा है। अतः बोलने के समय खड़े हो गये। सभा में खड़ा होकर बोलने की रीति अति प्राचीन मालूम होती है।

भरतजी कथन के प्रारम्भ में ही मुनिजी के कथन की चर्चा करते हैं कि जो कुछ मुझे कहना था वह सब मुनिजी ने कह दिया। अर्थात् मेरी ओर से बोलने में गुरुजी ने कुछ बाकी नहीं छोड़ा।

मैं जानऊँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेह बिसेखी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥३॥

अर्थ : मैं अपने स्वामी का स्वभाव जानता हूँ कि अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते। मुझ पर तो अधिक प्रेम करते हैं। खेल में भी क्रोध करते कभी नहीं देखा।

व्याख्या : भयउ न भुवन भरत सम भाई का उत्तर देते हुए कहते हैं कि यह तो मेरी जानी बात है कि अपराधी पर भी कभी न क्रोध करने का सरकार का स्वभाव है। मैंने पहिले ही कहा था : यद्यपि मैं अनभल अपराधी। भा मोहिं कारन सकल उपाधी। तदपि सरन सम्मुख मोहिं देखी। छमि सब करिहैं कृपा बिसेखी। वही हुआ। मेरे अपराध पर ध्यान नहीं उलटे मेरे भाईपन की प्रशंसा हो रही है।

मेरे ऊपर तो सदा से ही अधिक कृपा करने का स्वभाव है। खेलने में झगड़ा हो ही जाता। मैंने तो खेलने में भी सरकार को कभी क्रोध करते नहीं देखा। यथा : कहत राम बिधु बदन रिसौंहे सपनेहुँ लख्यौ न काउ। सो आज भी मुझ पर परम कृपा है।

सिसुपन ते परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोहीं॥४॥

अर्थ : बचपन से कभी साथ नहीं छोड़ा। कभी मेरा मन नहीं तोड़ा। मैंने प्रभु की कृपा की रीति का अनुभव किया है कि हारा हुआ खेल भी मुझे जिता देते थे।

व्याख्या : भरतजी : सिसुपन ते परिहरेउ न संगू कहकर अपना दुःख प्रकट कर रहे हैं कि आज जन्म का संग छूट रहा है। रामचरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू। सो आज भौंरे का कमल से विछोह हो रहा हैं। आज तक सरकार ने कभी मेरा मन भङ्ग नहीं किया। बचपन में भो : जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दियावत दाउँ। सो आज मेरा मन भङ्ग हो रहा है।

मैंने प्रभु की कृपा की रीति का अनुभव किया है कि हारी हुई बाजी मुझे जिता देते थे। वही स्वभाव पड़ा है। वही आशा दृढ़ है। आज भी मेरी हारी हुई बाजी जिताइये।

दो. महूँ सनेह सकोच बस, सनमुख कही न बयन।
दरसन तृपति न आजु लगि, पेम पियासे नयन॥२६०॥

अर्थ : मैंने भी स्नेह और सङ्कोचवश कभी सन्मुख वचन नहीं कहे। प्रेम की प्यासी आखें आज तक दर्शन से तृप्त नहीं हुईं।

व्याख्या : अधिक दुलार होने से मैं धृष्ट नहीं हुआ। बल्कि मेरा स्नेह और सङ्कोच बढ़ता गया। आज तक मैंने सामने बोलने का साहस नहीं किया और न बराबर देखने का साहस किया। यथा : हारे हरख होत हिय भरतहिं। जिते सकुच सिर नयन नये। प्रेम के कारण देखने की बड़ी इच्छा पर कभी आँख भर देखा नहीं। दर्शन की प्यास कभी बुझी नहीं। ऐसा दर्शन भी आज दुर्लभ हुआ चाहता है।

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा॥१॥

अर्थ : ब्रह्मदेव मेरा दुलार न सह सके। नीच ने माता के व्याज से अन्तर डाल दिया। यह भी कहते आज मुझे शोभा नहीं देता। अपनी समझ से साधु और पवित्र होने से क्या होता है?

व्याख्या : मेरा ऐसा दुलार ब्रह्मा से न देखा गया कि मैं पुत्र हूँ। नाभिजन्मा हूँ। सो मेरा इतना दुलार नहीं जितना भाई का दुलार हो रहा है। ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती। सो यह नीच करतूति देखिये कि दुलार में अन्तर डालने के लिए माँ को बहाना बना दिया। माँ के दोषी होने से मैं दोष से बच नहीं सकता और न कुछ कर सकता हूँ। यदि दूसरे को मिस बनाया होता तो मैं उसे राम निरादर का फल चखा देता।

सब ब्रह्मा का दोष है। मैं तो निरपराध हूँ। यह भले ही अपने मन में समझ लूँ पर संसार तो नहीं मानेगा। दस्तूर तो यही कि माँ बाप का कलङ्क अपने ऊपर लेकर सुपुत्र माँ बाप को निष्कलङ्क ख्यापित करने का प्रयत्न करते हैं। सदा तो मेरी माँ भली रही और जब कलङ्क का समय आया तो माँ बुरी हो गयी और मैं भला हो गया। यह भी कोई बात है? अपने को साधु और पवित्र मान लेने से कोई साधु और पवित्र नहीं हो जाता।

मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकुता प्रसव कि संबुक काली॥२॥

अर्थ : माता मन्द हैं और मैं श्रेष्ठ और सदाचारी हूँ। ऐसी बात मन में लाना ही कुचाली की सीमा है। क्या कोदो की बाली अच्छा धान फल सकती है। पुराना घोंघा से क्या मोती निकल सकता है।

व्याख्या : माता कुचाली है और मैं साधु सुचाली हूँ। इस बात का कहना दूर रहा ऐसा भाव भी मन में लाना कुचाल की पराकाष्ठा है। जिसने माता को कुचाली समझा वह स्वयं बड़ा भारी कुचाली है। उसे समझना चाहिए कि कुचाली माता से सुचाली पुत्र उत्पन्न ही नहीं हो सकता। सम्पूर्ण चराचर में यही नियम है। कोदव की बाली से धान नहीं फलता और न पुराने घोंघा से मोती निकलता है।

नये घोंघे से ही कोई मूल्यवान् वस्तु नहीं निकलती तो पुराने से मोती कैसे निकलेगी। कहीं ताल पाठ है। वहाँ पर यह अर्थ करना होगा कि जब समुद्र के घोंघे से मोती नहीं निकलती तो ताल के घोंघे से कैसे निकलेगी।

सपनेहु दोस क लेस न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू ॥
बिनु समझे निज अघ परिपाकू। जारिउँ जायँ जननि कहि काकू ॥३॥

अर्थ : सपने में भी किसी के दोष का लेश नहीं है। मेरा दुर्भाग्य रूपी समुद्र का थाह नहीं है। बिना अपने पापों का परिणाम समझे मैंने माता को काकु कहकर व्यर्थ जलाया।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि किसी को दोष का लेश भी नहीं है। न तो ब्रह्मदेव का कोई दोष है और न माता का ही दोष है। बिना पाप के दुःख होता नहीं। पूर्वजन्म कृत कर्म ही वर्तमान जन्म का भाग है। मेरे पूर्वार्जित कर्म बड़े खोटे हैं। अतः इस जन्म में मेरा ऐसा अभाग्य उदय हुआ कि उसे अथाह समुद्र कहा जा सकता है। इस बात को बिना समझे मैंने व्यर्थ ही काकु का प्रयोग करके अर्थात् : जननी तू जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ। ऐसा कहकर माँ का जी दुःखाया। भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते। भिन्न कण्ठध्वनि को पण्डित लोग काकु कहते हैं।

हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा ॥
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू ॥४॥

अर्थ : मैं अपने मन से चारों ओर ढूँढ़कर थक गया। केवल एक ही भाँति अच्छी तरह से मेरा भला है कि गुरुजी समर्थ हैं और सीताराम मालिक हैं। मुझे परिणाम भला मालूम पड़ता है।

व्याख्या : एकौ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैन बिहानी। अतः भरद्वाजजो से भी कहा : एहि कुरोग कर औषध नाँहीं। सोधेउँ सकल बिस्व मन माँहीं। यही बात यहाँ कह रहे हैं कि कोई उपाय ऐसा नहीं जिसमें मेरा भलीभाँति भला हो। एक ही बात का आसरा है कि गुरुजी समर्थ हैं। यथा : सो गोसाइँ बिधि गति जेहि छेकी और सीताराम स्वामी हैं। इन्हें छोड़कर मुझे निर्दोष कहनेवाला कोई नहीं है। यथा : परिहरि रामसीय जग माँहीं। कोउ नहि कहिहि मोर मत नाँहीं। इनके किये मेरा सब प्रकार से भला होगा और इन सब बातों का परिणाम अच्छा होगा।

दो. साधु सभा गुर प्रभु निकट, कहउँ सुथल सति भाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ ॥२६१॥

अर्थ : साधु सभा में गुरुजी और स्वामी के निकट तथा पवित्र स्थल में मैं

सच्चे भाव से कह रहा हूँ। यह प्रेम है कि प्रपञ्च है। झूठ है कि सत्य है। इसे मुनिजी और रामजी जानते हैं।

व्याख्या : अब हृदय की बात कहते हैं। अतः शपथ ले रहे हैं कि मैं सत्यभाव से कहता हूँ। यहाँ साधु सभा है। तिस पर स्वयं गुरुदेव और स्वामी भी बैठे हैं। चित्रकूट सा तीर्थ है यहाँ पर मैं कह रहा हूँ। असत्य नहीं कह सकता। यदि कहना भी चाहूँ तो बात छिप नहीं सकतो। मुनि वसिष्ठजी तथा साक्षात् रघुराज खूब समझते हैं कि मेरा प्रेम है या प्रपञ्च है। मैं झूठ कह रहा हूँ या सच कह रहा हूँ। गुरुजी सर्वज्ञ हैं और रघुराज अन्तर्यामी हैं।

भूपति मरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर नर नारी॥१॥

अर्थ : प्रेम के प्रण की रक्षा करके महाराज का देहावसान हुआ। माँ की दुर्बुद्धि को संसार जानता है। माँ लोग ऐसी विकल हैं कि देखते नहीं बनता। पुर के नर नारी दुःसह ज्वर से जल रहे हैं।

व्याख्या : पहिला शूल यह है कि पिता का देहावसान हुआ। परन्तु सन्तोष की बात इतनी हुई कि प्रेमप्रण की रक्षा में हुआ। जिसकी प्रशंसा स्वयं गुरुजी ने किया। यथा : भूप धरमब्रतु सत्य सहारा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा। दूसरी विपत्ति यह कि माँ का दुर्यश संसार में फैल गया। जिसकी दुर्बुद्धि से महाराज का मरण हुआ। यदि माँ का मरण हो गया होता तो वह भी सह्य था। पर अपयश होना असह्य है। गुरुजी को भी कहना पड़ा। यथा : प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जस करनी।

तीसरा शूल यह कि कौसल्यादि माता ऐसी विकल हैं उनकी दशा देखी नहीं जाती। यथा : मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुख भार। कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार। चौथा यह कि प्रजागण दुःसही विरह यातना भोग रहे हैं। यथा : नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहु सबन्हि सब सम्पति हारी।

महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा॥२॥

अर्थ : मैं ही सब अनर्थों का मूल हूँ। सो सुनकर और समझकर सब शूल मैंने सहा। परन्तु रघुनाथजी लक्ष्मण और सीता के साथ मुनि का वेष बनाकर वन गये। यह सुनकर।

व्याख्या : ये सब अनर्थ मेरे कारण हुए। यथा : सुतहि राज रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सबति हुलासू। यह सब सुना और मन में यह विचारा कि जब मैं ही सब अनर्थ का मूल हूँ तो मुझे छोड़कर इन शूलों को कौन सहेगा। अतः ये तीनों शूल सहन करने योग्य न होने पर भी मैं सहन कर गया।

अब शूलों से बड़ा शूल कहते हैं कि जब सुना कि रघुनाथजी वन को गये। साथ में सीता और लक्ष्मणजी गये और मुनिवेष बनाकर गये।

यथा : राम गवन बन अनरथ मूला।
जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥

तथा : पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरख न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर॥

चले बिपिन सुनि सिय संग लागी। रहइ न रामचरन अनुरागी॥
सुनतहि लखन चले उठि साथा। रहहि न जतन किये रघुनाथा॥

बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाँए। संकर साखि रहेउँ एहि धाए॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भएउ न बेहू॥३॥

अर्थ : कि बिना जूते के पैदल गये। शङ्कर साक्षी हैं कि इस घाव से भी मैं बँच गया। फिर निषाद का स्नेह देखकर इस वज्र से कठिन हृदय में छेद नहीं हुआ।

व्याख्या : ऐसी दशा में भी पैदल वन गये। पैर में जूते भी नहीं। यह चोट ऐसी बैठी कि इससे बचना कठिन था। शङ्कर को साक्षी देकर भरतजी कह रहे हैं कि फिर भी मैं बँच गया। यथा : भरतहिं बिसरयौ पितु मरन सुनत राम बन गौन। हेतु अपनपौ जानि जिअ थकित रहे धरि मौन। फिर निषाद का प्रेम देखा कि सरकार के लिए मरने को तैयार था। यथा : भरत भाइ नृप मै जन नीचू। बड़े भाग अस पाइअ मीचू। इसका प्रेम देखने पर तो मेरे कलेजे को फट जाना चाहता था कि जिसके प्रेम से निषाद प्राण देने को प्रस्तुत है उसका भाई होकर मैं जीवित हूँ। पर मेरा कलेजा नहीं फटा। यह वज्र से भी अधिक कठिन है।

अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिष तापस तीछीं॥४॥

अर्थ : अब तो मैंने सब आँखों से देख लिया। जीव जड़ को जीते रहने से सभी सहना पड़ता है जिसे देखकर विषम विषवाली साँपिन और बीछी भी जो तपस्वियों के लिए भी तीखी है रास्ता छोड़ देती है।

व्याख्या : पहिले तो सब सुनता आता था। यहाँ आकर तो सब अपनी आँखों देख लिया। अब तो शरीर छूट जाना चाहिए था। परन्तु नहीं छूटा। यह शूल भी मैं सह गया। जड़ जीव जो अवसर आने पर भी नहीं मरता उसे क्या क्या नहीं सहना पड़ता ?

भयानक विषैली साँपिन और बीछी अधिक अन्धकार में बड़ी विकराल हो उठती हैं। तनिक सा खटका होते ही काटती हैं। तपस्वियों के लिए तो उनका वैर त्यागना प्राप्त है। यथा : अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। परन्तु वे नहीं त्यागतीं। रामजी के देखने से वे भी आर्द्र हो जाती हैं। रामजी को देखकर उनका

भी वैर छूट जाता है। वे भी इतनी भली हो जाती हैं कि रास्ता छोड़कर हट जाती हैं।

दो. तेइ रघुनन्दनु लखनु सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैउ सहावइ काहि ॥२६२॥

अर्थ : वे ही रघुनन्दन लक्ष्मण और सीता जिसे वैरी मालूम पड़े उसके बेटे को छोड़कर दैव दुःसह दुःख किसे सहावे।

व्याख्या : जिस रामजी लक्ष्मण और जानकी की तपस्वियों से भी अधिक अहिंसा प्रतिष्ठा है। अथवा जिस राम जानकी और लक्ष्मण को वन की साँपिन बीछी भी हित मानते हैं उन्हें जिसने अहित माना उसे घोर दण्ड होना ही चाहिए। फिर माता के लिए पुत्र का दुःसह दुःख अतीव असह्य है। अतः उसके बेटे को दुःसह दुःख सहाना दैव का कर्त्तव्य हो जाता है। क्योंकि दैव शुभाशुभ फल का देनेवाला है। यथा : कर्म सुभासुभ देइ बिधाता।

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी ॥
सोक मगन सब सभा खँभारू। मनहु कमल बन परेउ तुषारू ॥१॥

अर्थ : भरतजी की अति विकल आर्त्ति प्रीति विनय और नय से सनी हुई वाणी सुनकर सब सभा अति शोकयुक्त हो गयी जैसे कमल वन में पाला पड़ गया हो।

व्याख्या : यद्यपि भरतजी की वाणी अत्यन्त व्याकुलता से भरी है। फिर भी उसमें आर्त्ति, प्रीति, विनय और नय सना हुआ है। पहिले नय कहा। यथा : कहब मोर मुनि नाथ निबाहा। एहि ते अधिक कहब मैं काहा। फिर विनय किया। यथा : मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। तब प्रीति कहा। यथा : महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कहेउँ न बैन। अन्त में आर्त्ति कहा। यथा : तेइ रघुनन्दन लखन सिय अनहित लागे जाहिं।

भरतजी का ऐसा वचन सुनते ही सभी सभासद् के हृदयों में शोक उमड़ आया। सब दुःखी हो गये। उनके आकार और चेष्टा ऐसी दैन्यसूचक हो गयी जैसे कमल वन में पाला पड़े और वह खाक स्याह हो जाय। ऐसे ही अवसर पर खँभार शब्द का प्रयोग अन्यत्र भी देखा जाता है। यथा : देखि निबिड़तम दसहु दिसि कपि दल परेउ खँभार।

कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू ॥२॥

अर्थ : अनेक प्रकार की पुरानी कथाएँ कहकर मुनि ज्ञानी ने भरतजी को समझाया। सूर्यकुल रूपी कोईं के चन्द्रमा रघुनन्दन रामजी उचित वचन बोले।

व्याख्या : ऐसे अवसर पर प्राचीन कथा जिसमें संसार के अनित्यत्व का वर्णन हो और महापुरुषों के महाविपत्ति में धैर्य धारण करने का वर्णन हो सुनाने

से ही शोकयुक्त का शोक थमता है। अतः ज्ञानी मुनिजी ने अनेक विधि से ऐसी कथाएँ कहीं।

पूत प्रह्लाद को न लाग्यो पापलेश पितु पार करने को तासु भक्ति भई नैयासी।
त्योंही पृथुराज को न लाग्यो बेनु कृत पाप प्रबल प्रताप पुहुमोहू भई गैयासी।
भगति बखानौं भूरि भापय बखानौं तेरी बिरति बखानो एक ब्रात नहिं मैयासी।
दुखित न होउ देखि दोष जननी को तुम कीरति तुम्हारी जग जागत जुन्हैयासी।

दो. बिना पुण्य सुख होत नहिं दुःख न होत बिनु पाप।
काहुहिं दोष न दीजिये समुझि मनहिं मन आप॥
राम सच्चिदानन्द घन तहाँ नहीं दुःख लेश।
ताते बहुत न कीजये हिय महँ व्यर्थ कलेश॥

मुनिजी स्वयं ज्ञानी हैं। अतः उनके कथन का प्रभाव भरतजी पर पड़ा और उन्हें प्रबोध हुआ।

वसिष्ठजी के उपदेश और भरतजी के प्रबोध के बाद रघुनन्दन रामजी बोले। ये रघुकुल रूपी कैरव : कोइँ के वन के लिए चन्द्रमा हैं। इनके उदय से कैरव वन खिल उठता है। शोक का अपनयन गुरुजी ने किया। अब आनन्द का आधान रामजी करेंगे। इनकी वाणी में ऐसा प्रभाव है कि तुषार के मारे कमल वन को कैरव वन बनाकर प्रफुल्लित कर दिया। फिर भी मुख से जो वचन निकलते हैं वे मनोरञ्जक होते हुए भी उचित ही होते हैं।

तात जायँ जिय करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीन काल तिभुवन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरे॥३॥

अर्थ : हे तात ! ईश्वर के अधीन जीव की गत्ति जानकर तुम व्यर्थ जी में ग्लानि करते हो। मेरे मत से तो तीनों काल में जो पुण्य श्लोक तीनों लोक के हैं वे सब तुम्हारे नीचे हैं।

व्याख्या : सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देइ फल हृदय बिचारी। शुभाशुभ फल का देनेवाला ईश्वर है। अतः कर्म बन्धन से निबद्ध जीव की गत्ति ईश्वर के अधीन है। फिर ग्लानि करना ही व्यर्थ है। ग्लानि करने से ईश्वरीय व्यवस्था उलट नहीं सकती।

रह गयी तुम्हारी बात। सो तुम्हारे विषय में मैं यह कह सकता हूँ कि जिन पुण्यात्माओं का नाम मङ्गलमय दिन बीतने के लिए प्रातःकाल लिया जाता है वे सब तुमसे निम्नकोटि में हैं। तुम्हारे ऐसा पुण्य श्लोक तीनों लोक में न हुआ न है और न होगा।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥
दोसु देइ जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥४॥

अर्थ : तुम्हारे ऊपर किसी प्रकार की कुटिलता हृदय में लाते ही लोक भी

जाता रहेगा और परलोक भी नष्ट होगा। माता को वे ही जड़ दोष देते हैं जिन्होंने कभी गुरु और साधु की सभा का सेवन नहीं किया है।

व्याख्या : मही सकल अनरथ कर मूला : इस भरतजी की उक्ति का उत्तर देते हुए सरकार कहते हैं कि तुम्हारे ऊपर जो मन से भी कुटिलता का आरोप करेगा उसका लोक परलोक सब बिगड़ जायगा। जितने ही पवित्र पुरुष का निन्दक निन्दा करता है उतनी ही उसके दोष की मात्रा बड़ी हो जाती है। सो तुम्हारे ऐसे पुण्यात्मा पर मिथ्यारोपण का भाव भी मन में आना परम अकल्याण का कारण होगा।

भरतजी ने कहा था : जननी कुमति जगत सब साखी : इस उक्ति का उत्तर देते हुए कहते हैं कि माता को दोष देना अनुचित है। माता को दोष तो जड़ व्यक्ति दिया करते हैं जिन्हें समझ नहीं। मातृदेवो : भव ऐसा वेद कहता है। उनका हर प्रकार से मान करना चाहिए। जिसने गुरु साधु की सभा का सेवन किया है वह जानता है कि कोई भी किसी के दुःख सुख का देनेवाला नहीं है। अपना कर्म ही शुभाशुभ फल देते हैं। यथा : जीव कर्मबस दुःख सुख भागी। फिर गुरु सेवी और साधु सेवी माता को दुःख देनेवाली कैसे मान सकते हैं ? भरतजी तुम तो गुरु साधु सेवी हो। तुम ऐसा न कहो। जिसे ज्ञान नहीं है वह दूसरे को दुःख सुख देनेवाला मानता है।

दो. मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु, सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६३॥

अर्थ : तुम्हारा नामस्मरण से सब पाप प्रपञ्च और सम्पूर्ण अमङ्गल के समूह मिट जायँगे और इस लोक में सुयश और परलोक में सुख होगा।

व्याख्या : भरतजी सब पुण्य श्लोकों में बड़े हैं। अतः उनके नामस्मरण की महिमा सरकार श्रीमुख से कहते हैं कि तुम्हारे नामस्मरण से पाप का प्रपञ्च भी मिटेगा और अमङ्गल भी नष्ट होंगे। स्मरण करनेवाले को इस लोक में कीर्ति और परलोक में आनन्द प्राप्त होगा। तुम्हारी अकीर्ति का तो प्रश्न ही नहीं है। यथा : समन सकल उतपात सब भरत चरित जप जाग। सरकार ने कह दिया : उर आनत तुम पर कुटिलाई। जाइ लोक परलोक नसाई। इससे कुछ अयोध्यावासी जिन्होंने भरत का सम्मत कहा था लोक परलोक से भ्रष्ट हो चले थे उनका परिहार सरकार ने इस वचन से कर दिया कि वे भी भरतजी का नाम लेकर लोक में सुयश और परलोक में सुख के भागी होंगे।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ ॥१॥

अर्थ : मैं शिवजी को साक्षी देकर स्वभाव कहता हूँ। हे भरतजी ! कि तुम्हारे रखने से पृथ्वी ठहरी है। हे तात ! तुम व्यर्थ का कुतर्क न करो। वैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपता।

व्याख्या : सरकार उस भाव को समझ रहे हैं जिससे प्रेरित होकर भरतजी ने कहा था : मोहि राज हठि देहौ जवहीं। रसा रसातल जाइहि तवहीं। आदर्श बिगड़ जाने से पृथ्वी रसातल को जाती है। अतः राजा का आचरण ऐसा होना चाहिए जिसमें प्रजा का आदर्श न बिगड़ने पावे। भरतजी के राज्य स्वीकार सें प्रजा का आदर्श बिगड़ जाता। प्रजा के सामने यह आदर्श उपस्थित हो जाता कि पिता के मरने की परवाह न करके भाई को वनवास देकर स्वार्थ साधन करना चाहिए। संसार की व्यवस्था ही बिगड़ जाती और लोगों का घोर पतन होता : जैसा कि आजकल हो रहा है। अतः सरकार कहते हैं कि आदर्श के न बिगड़ने देने का श्रेय तुम्हें ही है। अतः तुम्हारे रक्षा करने से संसार बड़े भारी पतन से बच रहा है।

जिससे कोई लाभ न हो ऐसा सुतर्क भी करना निष्फल है और निष्फल कुतर्क तो करना ही नहीं चाहिए। भगवती कैकेयी न कोदव हैं। न संबुक काली है। न साँपिन बीछी हैं। उनमें कोई दोष नहीं है और न तुममें दोष का लेश है। ते रघुनंदन लखन सिय अनहित लागेजाहि। तासु तनय तजि दुसह दुख दैव सहावै काहिं। ऐसी बातें करना कुतर्क है और इससे कोई लाभ भी नहीं है। तुम्हें अपने प्रेम के लिए शपथ लेने की आवश्यकता नहीं। वैर और प्रेम ये दोनों भाव ऐसे हैं कि इन्हें कोई छिपाना भी चाहे तो छिपा नहीं सकता। निषादराज ने भी यही कहा था : लखब सनेहु सुभाव सुहाएँ। बैरु प्रीति नहि दुरइ दुराएँ।

मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पंछिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना ॥२॥

अर्थ : मुनियों के पास चिड़ियाँ और जानवर चले जाते हैं और बाधक तथा वधिक को देखकर भागते हैं। अपना हित और अनहित पक्षी और पशु भी जानते हैं। मनुष्य का शरीर तो गुण ज्ञानका निधान है।

व्याख्या : मुनिगण अहिंसा में प्रतिष्ठित हैं। वे जीव जन्तु से भी प्रेम करते हैं। अतः उनके प्रेम का प्रभाव पशु पक्षी पर भी पड़ता है। वे निःशङ्क उनके पास पहुँच जाते हैं और वाधक वधिक का प्रभाव इतना उग्र होता है कि उन्हें देखकर पशु पक्षी भाग खड़े होते हैं। अतः यह सिद्ध है कि हित अनहित का परिज्ञान अज्ञानी पशु और पक्षियों को भी हो जाता है। फिर मनुष्य को क्यों न होगा। मनुष्य का चोला तो गुण ज्ञान का भण्डार है। उसे हित अनहित का ज्ञान होना स्वाभाविक है। नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते। कस्तूरी की सुगन्ध शपथ से नहीं प्रमाणित्त की जाती। भाव यह कि तुम्हारा प्रेम संसार देख रहा है।

तात तुम्हहि मैं जानेउँ नीके। करौं काह असमंजसु जीके ॥
राखेउ राँय सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पनु लागी ॥३॥

अर्थ : हे तात ! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। पर करूँ क्या ? जी में बड़ा

असामञ्जस्य हो रहा है। महाराज ने मेरा त्याग करके सत्य की रक्षा की और प्रेम के प्रण के लिए शरीर त्याग दिया।

व्याख्या : तुम्हें तो बचपन से देख रहा हूँ। यथा : जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। कनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भयेउ उछाहा। अतः तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ और तुम्हारे प्रेम प्रण को सफल भी करना चाहता हूँ। पर करूँ क्या? बड़ा भारी असामञ्जस्य उठ खड़ा हुआ है। उसकी विधि किसी भाँति नहीं बैठा सका। पिताजी भी असामञ्जस्य में पड़ गये थे। सत्य और प्रेम का सामञ्जस्य नहीं बैठता था। अतः मुझे त्याग करके उन्होंने सत्य की प्रतिष्ठा की और मेरे प्रेम के निर्वाह में शरीर ही त्याग दिया। इस भाँति उन्होंने तो सामञ्जस्य बिठा लिया।

तासु बचन मेंटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू॥
तापर गुरु मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥४॥

अर्थ : उनके वचन के मिटाने में मन में सोच हो रहा है और उससे भी अधिक तुम्हारा सङ्कोच है। उसके ऊपर स्वयं गुरु की आज्ञा हो गयी। अतः जो तुम कहो उसे निश्चय सिर चढ़ाकर करना चाहता हूँ।

व्याख्या : असामञ्जस्य यह है कि उस सत्यप्रतिज्ञ प्रेमनिधि पिता के वचन को कैसे मिटा दूँ और इधर तुम्हारा सङ्कोच मैं किसी भाँति नहीं छोड़ सकता। जब से तुम्हारा आना सुना तभी से इस असामञ्जस्य में पड़ा हूँ। यथा : सो सुनि रामहिं भा अति सोचू। उत पितुबच इत बंधु सँकोचू। ऐसी स्थिति में पड़ गया कि किसे छोड़ूँ किसे ग्रहण करूँ। फिर भी पलड़ा तुम्हारे ही ओर झुकता था। अब तो कोई बात ही नहीं है। गुरुजी ने आज्ञा दे दी। यथा : मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी। अब तो जो तुम कहो वही मैं करना चाहता हूँ।

दो. मनु प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर बचन, सुनि भा सुखी समाजु॥२६४॥

अर्थ : मन प्रसन्न करके और सङ्कोच छोड़ करके जो कहो सो मैं आज करूँ। सत्यसन्ध रघुबर रामजी के वचन को सुनकर समाज सुखी हो गया।

व्याख्या : रामजी कहते हैं कि भरत तुम्हारी सङ्कोची बान है। गुरुजी ने भी कहा और मैं भी कहता हूँ कि सङ्कोच छोड़कर स्पष्ट कहो कि क्या चाहते हो इतना ही नहीं प्रसन्न मन से कहो। जिसमें तुम प्रसन्न हो वही मैं किया चाहता हूँ। जो तुम कहोगे उसे आज ही करूँगा : हीलाहवाली नहीं। बोलो क्या चाहते हो।

सरकार का वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया। रघुकुल कैरव वनचन्द के वचन को सुनकर कैरव वन खिल उठा। क्योंकि सरकार सत्यसन्ध हैं। जो कह दिया वह निश्चय करेंगे। भरतजी लौटने को कहेंगे ही। अतः आशा की पूर्ति होते देखकर सब प्रसन्न हो गये।

सुर गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू ॥
बनत उपाउ करत कछु नाँहीं। राम सरन सब गे मन माँहीं ॥१॥

अर्थ : देवगण के सहित इन्द्र भयभीत हो गये। सोचने लगे कि अब काम बिगड़ा चाहता है और कुछ करते धरते बन नहीं रहा है। सो सब मन से रामजी के शरण गये।

व्याख्या : रामजी की बात सुनकर सब देव समाज डर गया। इन्द्र भी डर गये कि रामजी ने तो सब बोझा भरतजी पर डाल दिया। अब भरतजी क्या कहेंगे कि आप वन चले जाइये। भरतजी कहेंगे ही अयोध्या लौटाने को। सरकार सत्यसन्ध हैं। अयोध्या लौट जायँगे और यदि वे अयोध्या चले गये तो फिर सीताहरण और रावण वध कैसे होगा ? रावण स्वयं रामजी से लड़ने नहीं आवेगा। सुबाहु वध हुआ। विराध वध हुआ। पर रावण चुप रह गये। रामजी निष्कारण उसका वध करेंगे नहीं। तब तो हम लोगों का दुःख फिर ज्यों का त्यों रह गया।

हम पहिले ही कह रहे थे : करिय जतन छल सोधि। जिसमें रामजी से भरत की भेंट न हो। पर गुरुजी ने कहा : भगत सिरोमनि भरत से जनि डरपहु सुरपाल। अब क्या करें ? समय का बड़ा सङ्कोच है। रामजी और भरतजी पर माया चल नहीं सकती। दूसरे पर चलावें तो उसे कार्य में परिणत करने के लिए समय चाहिए। रामजी इधर प्रतिज्ञा कर बैठे हैं : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आज। अतः अब तो कोई उपाय नहीं है। सभा बैठी हुई है। इस समय हम लोग प्रत्यक्ष जाकर कुछ कह नहीं सकते। अतः कोई उपाय नहीं है। इस भाँति अपने को असमर्थ पाकर सब देवता लोग मन से रामजी के शरण गये।

बहुरि बिचारि परसपर कहहीं। रघुपति भगत भगतिबस अहहीं ॥
सुधि करि अंबरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा ॥२॥

अर्थ : फिर विचारकर आपस में कहने लगे कि रघुपति तो भक्त की भक्ति के वश में रहते हैं। राजा अम्बरीष और दुर्वासा का कथानक स्मरण करके देवगण और इन्द्र अत्यन्त निराश हो गये।

व्याख्या : शरण जाने के बाद यह बुद्धि फुरी कि अब रामजी के हाथ रह ही क्या गया। ये तो भक्त के वश में हैं। भरत ने जो प्रार्थना की तो इन्होंने सब भार भरत पर ही डाल दिया। यही इनका स्वभाव है। जब दुर्वासा शरण में गये तो कह दिया : अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। इसी तरह हम लोगों को भी टका सा जवाब मिल गया : अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव। अतः अब तो राम शरण से भी आशा नहीं।

सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा ॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर काज भरत के हाथा ॥३॥

अर्थ : देवताओं ने बहुत काल तक दुःख उठाया। पर नृसिंह को प्रह्लाद ने प्रकट किया। सब एक दूसरे के कान लगकर और सिर धुनकर कहने लगे कि अब देवताओं का काम तो भरत के हाथ में है।

व्याख्या : सरकार को देवताओं से कहीं अधिक भक्त का ध्यान रहता है। पहिले भी हिरण्यकश्यप ने क्या कम दुःख दिया। पर सरकार प्रकट नहीं हुए। इन्हें तो भक्त प्रकट करता है। प्रह्लाद पर दुःख पड़ा तब प्रकट हुए। अतः इनका वन जाना या अयोध्या लौटना अब भरत के हाथ है।

अतः लज्जा से सभा में खुले मैदान नहीं कह रहे हैं। एक दूसरे के कान में कह रहे हैं और पश्चात्ताप से सिर पीटते हैं कि हम सब लोगों ने तो मिलकर पाँव रोपकर भरत का अपकार किया। यथा : पाँव रोपि सब मिलि मोहिं घाला। अब भरत के हाथ में मेरी कार्यसिद्धि आयी। अतः बात बिगड़ी ही बिगड़ाई है।

आन उपाई न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा ॥
हिय सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि ॥४॥

अर्थ : हे देवता लोग ! दूसरा उपाय तो अब कुछ दिखाता नहीं। रामजी सुसेवक की सेवा को मानते हैं। अतः प्रेमयुक्त हृदय से सब कोई भरत का स्मरण करो। जिसने अपने गुण और शील से रामजी को वश कर लिया है।

व्याख्या : सब देवता लोग इसी बात पर आगये कि सिवा भरत के शरण गये कोई उपाय नहीं है। क्योंकि रामजी सुसेवक की सेवा को मानते हैं। देवताओं का सङ्कोच उसके सामने कुछ नहीं है। परन्तु भरत की शरण जाने का भी तो अवसर नहीं है। अतः हृदय से ही भरतजी को प्रेम से सुमिरो। भरतजी बड़े शीलवान् हैं। बड़े गुणी हैं। हम लोगों का काम बिगड़ने नहीं देंगे। उनमें कम शील और गुण है। रामजी तो उनके शील और गुण के वश हैं।

दो. सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ, भल तुम्हार बड़ भागु।
सकल सुमंगल मूल जग, भरत चरन अनुरागु ॥२६५॥

अर्थ : देवताओं की सम्मति सुनकर वृहस्पतिजी ने कहा कि तुम्हारा बड़ा अच्छा भाग्य है। संसार में भरत के चरण में अनुराग होना सब शुभमङ्गलों का मूल है।

व्याख्या : देवताओं की सम्मति जब गुरु वृहस्पति ने सुनी तब बोले। अभी तक चुप रहे क्योंकि पहिले की उनकी कही हुई बात देवताओं के मन में ठीक नहीं बैठी थी। उन्होंने पहिले ही कह दिया था : भगत सिरोमनि भरत से जनि डरपहु सुरपाल। सो सुरपाल समाज सहित डर गये। गुरुजी चुप हैं कि डर रहे हैं तो डरने दो। हम क्या करें। हमने तो पहिले ही कह दिया है कि मत डरो। अब जब देखा कि देवता भरतजी के शरण में मन से जाना चाहते हैं तो इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए गुरुजी ने कहा कि तुम्हारा भाग्य अच्छा है और बड़ा भाग्य

है कि तुम्हारे मन में भरत के शरण जाने की बात आगयी। भरत के चरण में अनुराग होना इस संसार में सब सुमङ्गलों का मूल है। अतः तुम्हारा मङ्गल होनेवाला है। उन लोगों का अभाग है जिनके मन में भरत की भक्ति नहीं आती।

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥
भरत भगति तुम्हरे मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई ॥१॥

अर्थ : सीतापति सेवक की सेवकाई सौ कामधेनु के समान सुन्दर है। तुम्हारे मन में भरत की भक्ति आगयी। सब सोच छोड़ दो। ब्रह्माजी ने ही बात बना दी।

व्याख्या : सीतापति के सेवक भरत हैं। उनकी सेवकाई अर्थात् भक्ति सौ कामधेनु के समान कल्याणकारिणी है। रामजी की भक्ति तो एक ही कामधेनु के समान कही गयी है। यथा : सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहृहि आन उपाई। ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आकु फिरहि पय लागी। एक कामधेनु सब मनोरथ पूर्ण करती है सौ कामधेनु क्यों न पूरा करेंगी ?

तुम लोगों के मन में यह बात जो आयी : हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं। सो मानो सौ कामधेनु का आगमन हुआ। अब मनोरथ पूर्ण होने में सन्देह नहीं है। पहिले जो तुम लोगों ने विचार किया था : रामहि भरतहिं भेंट न होई। वह बात बिगड़ने का रास्ता था। विधि सानुकूल होते हैं तब भरत की भक्ति मन में आती है। अतः अब सोच छोड़ दो स्वयं ब्रह्मा ने ही बात बना दी। मेरे कहने पर बात मन में न आयी और इस समय आगयी तो यह ब्रह्मा की ही करतूत है।

देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभायँ बिबस रघुराऊ ॥
मन थिर करहु देव डरु नाँहीं। भरतहिं जानि राम परिछाहीं ॥२॥

अर्थ : हे देवराज ! भरत का प्रभाव देखो। रामजी जिसके सहज स्वभाव से वश हो रहे हैं। भरतजी को राम की परछाहीं जानकर देवता लोग ! मन को स्थिर करो। डर की कोई बात नहीं है।

व्याख्या : गुरुजी कहते हैं कि भरत के प्रभाव को आँखों देख लो। भरत ने न कोई तप किया, न आराधना की। अपने स्वभावानुकूल काम करते जा रहे हैं और उस पर रामजी उनके वश में हैं। कह रहे हैं : कहहु करउँ सो आज। भरत के मन रखने के सामने न पिता का वचन ही कुछ है और न तुम लोगों का सङ्कोच ही किसी गिनती में है।

तुम्हारा मन चञ्चल हो उठा है। उसे स्थिर करो। क्योंकि डर की कोई बात नहीं है। भरत को राम की परिछाहीं : प्रतिबिम्ब जानो। पुरुष जैसी चेष्टा करता है उसका प्रतिबिम्ब भी वैसी ही चेष्टा करता है। प्रतिबिम्ब बिम्ब के प्रतिकूल चेष्टा कर नहीं सकता।

सुनि सुरगुर सुर संपत सोचू। अंतरजामी प्रभुहिं संकोचू ॥
निज सिर भारु भरत जियँ जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना ॥३॥

अर्थ : वृहस्पतिजी और देवताओं की सलाह और विचार सुनकर प्रभु अन्तर्यामी को सङ्कोच हुआ। भरतजी मन में जान गये कि सब बोझा मेरे ऊपर है। इसलिए करोड़ों प्रकार का अनुमान करने लगे।

व्याख्या : वृहस्पत्तिजी की सम्मति और देवताओं का विचार सरकार ने सुना। उनके लिए व्यवधान कोई वस्तु नहीं है। बातचीत आकाश में होती थी। पर सरकार सब सुनते थे। गुरुजी की सम्मति भी सुनी और देवताओं का विचार भी सुना। अतः सरकार सङ्कुचित हुए। सङ्कुचित होने का यथेष्ट कारण भी है। यथा : प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरोसो। सो आज सब निर्णय भरत पर छोड़े बैठे हैं। अन्तर्यामी हेतु गर्भ विशेषण है। सबके अन्तर का हाल जानते हैं।

देवताओं का विचार कहकर जहाँ से प्रसङ्ग छोड़ा था वहीं फिर उठाते हैं। रामजी के यह कहने से कि कहहु करउँ सोइ आज। भरतजी ने जान लिया कि सरकार ने सब बोझा मेरे ऊपर छोड़ दिया। पिता के वचन का भार, प्रजा के सुख का भार, स्वामी के धर्म का भार, माताओं की अभिरुचि का भार, देवताओं के कार्य का भार, सब भरतजी पर आ पड़ा। अतः तर्क की कोटियाँ उठीं। स्वामी के धर्म को बचाते हैं तो पुरजन परिजन माताओं के दुःख का अन्त नहीं और अवध लौट चलने को कहते हैं तो देवताओं का कार्य बिगड़ता है और सरकार के धर्म में बाधा पड़ती है। मैं सेवक हूँ स्वामी का धर्म कैसे बिगड़ने दूँ इत्यादि।

जरि बिचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायसु आपन नीका ॥
निज पन तजि राखेउ पन मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा ॥४॥

अर्थ : विचार करके मन में यही ठीक किया कि रामजी की आज्ञा में ही अपनी भलाई है। अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रक्खा। सो थोड़ा छोह और स्नेह नहीं किया।

व्याख्या : विचार करके गुरुजी के उपदेश पर आगये : राखे राम रजाय रुख हम सब कर हित होइ। राजा वही है जिसकी रजायसु : आज्ञा सब पर चले। अब यदि रामजी की आज्ञा से सब कार्य होना आरम्भ हो जाय तो स्वभावतः वे राजा हो जाते हैं। अतः यदि न भी लौटे तो भी राज्य की स्वीकृति तो हो ही जाती है। जीव का कल्याण ईश्वर की आज्ञापालन में है। यथा : प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

जिस समय सरकार ने कह दिया : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आज। उसी समय वन से लौटना और सिंहासनारूढ़ होना स्वीकार कर लिया। अपना प्रण छोड़ दिया और मेरा प्रण रख लिया। छोह और स्नेह की सीमा हो

गयी। अब्र जो वह आज्ञा दें वही करने में भलाई है। ऐसे मालिक को सङ्कोच में डालना अच्छा नहीं।

दो. कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोलेउ भरतु, जोरि जलज जुग हाथ ॥२६६॥

अर्थ : सीतानाथ ने सब प्रकार से मुझ पर अत्यन्त अनुग्रह किया। दोनों कर कमल जोड़कर और प्रमाण करके भरतजी बोले।

व्याख्या : तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी। यह आशा जो भरतजी को थी वह परिपूर्ण हो गयी। सीतानाथ पद से दिखलाया कि सीताजी की भी वैसी ही कृपा हुई। यथा : सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच, उर अपडर बीता। अतः सरकार के कथन के उत्तर में विनय करने के लिए प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले।

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी ॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कल्पित सूला ॥१॥

अर्थ : हे स्वामिन्! क्या मैं कहूँ और क्या कहलाऊँ। आप कृपा के समुद्र हैं और अन्तर्यामी हैं। गुरुजी प्रसन्न हैं। स्वामी अनुकूल हैं। मलिन मन का कल्पित शूल मिट गया।

व्याख्या : भरतजी बड़े सङ्कोची हैं। यदि कुछ कहना होता है तो दूसरे से कहलाते हैं। यथा : महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कहेउँ न बैन। अतः कहते हैं कि मैं क्या कहूँ या दूसरे से कहलाऊँ। कृपा के समुद्र और अन्तर्यामी से कहना क्या है? कहना या कहलाना तो उससे होता है जिसे कृपा भी थोड़ी हो और मन की बात भी न जानता हो। यहाँ तो कृपा का समुद्र उमड़ रहा है और किसी के हृदय की बात छिपी नहीं है।

गुरुजी ने कह दिया : मोरे जान भरत रुचि राखी। जो किजिअ सो सुभ सिव साखी। अतः देख लिया कि गुरुजी प्रसन्न हैं। सरकार स्वयं कह रहे हैं : तेहि तें अधिक तुम्हारा संकोचू। अब इससे अधिक अनुकूलता क्या होगी। मेरा मन मलिन है। अतः बात जल्दी समझ में नहीं आती। मन को मिथ्या कल्पना से शूल उठता था : राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ। सो शूल जाता रहा। मैं गुरुजी को भी अप्रसन्न समझता था। यथा : बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभाग। अब मन का सब दुःख मिट गया।

अपडर डरेउँ न सोच समूलें। रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें ॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई ॥२॥

अर्थ : मैं झूठे डर से डर गया। मेरा सोच निर्मूल था। जिसे दिग्भ्रम हुआ

हो सूर्य को दोष नहीं देना चाहिए। मेरा अभाग और माँ की कुटिलता ब्रह्मा की विषमगति और काल की कठिनता।

व्याख्या : सरकार के : तात तुमहि मैं जानउँ नीके। इस कहने का उत्तर देते हैं कि दोष सरकार का नहीं। दोष मेरा है कि मैं निष्कारण भय से भीत हो गया। मेरी गति दिग्भ्रमवाले की सी हो गयी। दिग्भ्रमवाले को सूर्यनारायण पश्चिम उदित होते प्रतीत होते हैं तो उसमें सूर्यनारायण का कोई दोष नहीं। वे तो यथा पूर्व सदा पूर्व में ही उदय होंगे। दोष तो दिग्भ्रमवाले की मति का है जो विपरीत समझ रहा है।

बात यह हुई कि चार बातें आ पड़ीं। १. मेरा अभाग्य उदय हो गया। २. माँ ने कुटिलता से काम लिया। ३. ब्रह्माजी बायें हो गये और ४. कराल काल उपस्थित हो गया। १. मोर अभाग। यथा : झूठ काह पछिताउँ अभागी। २. माँ की कुटिलता। यथा : कैकयनंदनि मंदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह। ३. विधिगति विषय। यथा : बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्हीं बावरी और। ४. काल कठिनाई। यथा : भयउ कराल काल बिपरीता।

पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला ॥
येह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई ॥३॥

अर्थ : सबने मिलकर पाँव रोपकर मेरा सत्यानाश किया। पर प्रणतपाल ने अपने प्रण का पालन किया। यह आपकी नयी रीति नहीं है। लोक और वेद में विदित है। कहीं छिपी नहीं है।

व्याख्या : उपर्युक्त चारों ने प्रतिज्ञा करके मेरा सर्वनाश किया। पाँव रोपना का अर्थ प्रतिज्ञा करना है। यथा : सुनु दसकंठ कहौं पन रोपी। इन चारों के विरोध करने पर रक्षा का उपाय नहीं। पर प्रणतपाल ने अपना प्रण पालन किया। सरकार का प्रण है : कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति : ताते नाश न होइ भक्त कर। सरकार ने मुझे बचा लिया।

यह सरकार की बड़ी पुरानी नीति है। मेरी रक्षा करने में किसी नयी रीति से काम नहीं लिया गया। यह नीति अनादिकाल से चली आती है। अतः वेद ने भी कहा है लोक में भी सब कोई जानता है। इसी से सङ्कट आ पड़ने पर बड़ा भारी नास्तिक भी सरकार की शरण जाता है। क्योंकि यह प्रसिद्ध बात है कि सरकार अशरण शरण हैं और अकारण करुण हैं।

जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं ॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ ॥४॥

अर्थ : संसार तो बुरा है। एक सरकार ही भले हैं। फिर किसकी भलाई से भला हो ? हे देव ! आपका स्वभाव कल्पवृक्ष सा है। न आप कभी किसी के सम्मुख रहते हैं और न विमुख रहते हैं।

व्याख्या : भरत भूमि रह राउर राखी का उत्तर देते हुए भरतजी कहते हैं कि सरकार ही केवल भले हैं। क्योंकि सच्चिदानन्द रूप हैं। जगत् तो अनित्य जड़ और दुःख रूप है। जगत् में भलाई है ही नहीं। उससे भलाई कैसे होगी। उसमें यदि कहीं भलाई की झलक दिखायी पड़े तो वह सरकार की ही भलाई की झलक है।

सरकार देव हैं और स्वभाव सरकार का देवतरु अर्थात् कल्पवृक्ष सा है। कल्पवृक्ष न किसी के अनुकूल है न प्रतिकूल है। अपने स्वरूप में स्थित है। कितना भी कोई बुरा हो कल्पवृक्ष किसी को दण्ड देने नहीं जाता और न भले को इनाम देने जाता है।

दो. जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह समनि सब सोच।
माँगत अभिमत पाव जग, राउ रंकु भल पोच ॥२६७॥

अर्थ : कल्पवृक्ष के पास जाय। उसे पहिचाने तो उसकी छाया से सब सोच नष्ट होता है और माँगने से राजा रंक भले बुरे संसार में उससे अभिलषित पदार्थ प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : कल्पवृक्ष तो कहीं है ही। पर वह किसी को लाभ नहीं पहुँचाता। जिसे लाभ प्राप्त करना हो वह उसके पास जाय। तथा अन्य वृक्षों में उसे पहिचाने। तो इतना फल वह तुरन्त देता है कि उसके छाँह में जानेवाले का सोच हरण कर लेता है और यदि उससे प्रार्थना करे तो जो चाहे वही मिलता है।

इसी प्रकार जिसे कल्याण की कामना हो वह सरकार के सम्मुख जाय। सरकार को पहिचाने। आश्रय ग्रहण करे। तो इतने से ही उसके कोटि जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। यथा : सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबही और माँगने से तो जो जिसकी अभिलाषा करता है उसकी प्राप्ति होती है। यथा : मोर दरस अमोघ जगमाँहीं।

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू॥
अब करुना कर कीजिअ सोई। जनहित प्रभु चित छोभु न होई ॥१॥

अर्थ : सब प्रकार से गुरु और स्वामी का स्नेह लख करके मेरा क्षोभ मिट गया। अब मन में सन्देहं नहीं है। हे करुणाकर ! अब ऐसा कीजिये कि सेवक के लिए प्रभु के चित्त में क्षोभ न हो।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मेरे मन में क्षोभ भी था और सन्देह भी था। क्षोभ यथा : महीं सकल अनरथ कर मूला। और सन्देह यथा : जौ परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवक मानी। अब दोनों मिट गया। गुरुजी का इतना स्नेह कि मेरे लिए सरकार से कहा : भरत भगति बस भइ मति मोरी। और सरकार का इतना स्नेह कि मेरे सङ्कोच को पिता के वचन से अधिक माना। अतः अब न तो क्षोभ है न सन्देह है।

सरकार करुणाकर मेरे ऊपर करुणा करके सब कुछ करने को तैयार हैं। पर ऐसे मालिक को क्षोभ में डाल देने से मेरा धर्म बिगड़ेगा। अतः अब मेरी यही प्रार्थना है कि सरकार वैसा ही करें जिसमें मेरे कारण सरकार का चित्त क्षुब्ध न हो।

जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई ॥२॥

अर्थ : जो सेवक मालिक को सङ्कोच में डालकर अपना हित चाहता है उसकी बुद्धि नीच है। सेवक का हित तो इसी में है कि स्वामी की सेवकाई सब सुखों का लोभ छोड़कर करे।

व्याख्या : सेवक का धर्म बड़ा गहन है। योगियों के लिए भी अगम्य है। जहाँ मालिक पयादे पाँव चले वहाँ सेवक का सिर बल चलना उचित है। यथा : सिर भरि जाउँ उचित अस मोरा। अतः सेवक का मालिक को सङ्कोच में डालकर अपना काम निकालना नीचता है।

सेवक का धर्म यह है कि सब सुखों का लोभ छोड़कर मालिक की सेवा करे। जो सेवक अपना सुख चाहेगा वह सेवा क्या करेगा ? अतः मैं अपने सुख के लिए तो सरकार को सङ्कोच में डाल ही नहीं सकता।

स्वारथु नाथ फिरे सबही का। किये रजाइ कोटि बिधि नीका ॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! आपके लौटने में सबका स्वार्थ है। पर आपकी आज्ञा शिरोधार्य करना कोटि गुना अच्छा है। यही स्वार्थ और परमार्थ का सार है। सब पुण्यों का फल है और सुगति का शृङ्गार है।

व्याख्या : सरकार के वियोग में पुर नर नारी विकल हैं। यथा : जरहि बिषम ज्वर पुर नर नारी। अतः सरकार के लौट चलने से उनका ज्वर उतर जायगा। यथा : सब कँह सुखद राम अभिषेकू। वे सुखी हो जायँगे। यह अच्छी बात है। पर इससे करोड़गुनी अच्छी बात यह है कि सब आपकी आज्ञा माने। क्योंकि सबका कल्याण तो आपकी आज्ञा मानने से ही होगा। गुरुजी ने कह दिया है : राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होइ। क्योंकि प्रभु की आज्ञा जिसके लिए जो हो वह उसी भाँति से चलने में सुख पाता है। मनुष्य प्रेय के लोभ में आकर श्रेय को हाथ से जाने देते हैं। यह उनकी भूल है। श्रेय तो सरकार के आज्ञापालन में है। यथा : प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

सरकार की आज्ञा का पालन ही स्वार्थ का सार है। यथा : स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा। और परमार्थ का सार भी यह है। यथा : सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपद नेहू। अर्थात् सरकार की भक्ति ही स्वार्थ परमार्थ का सार है और : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। अर्थात्

उत्तमोत्तम भक्ति सरकार की आज्ञा का पालन है। यही सब पुण्यों का फल है। यथा : जहँ लगि साधन बेद बखानी। सबकर फल हरि भगति भवानी। और यही सुगति का शृङ्गार है। यथा : सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जल जानू। जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जँह नहि राम प्रेम परधानू।

देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी ॥
तिलक समाजु साजि सब आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना ॥४॥

अर्थ : हे देव ! एक विनती मेरी है। उसे सुन लीजिये। तत्पश्चात् जो उचित हो वह कीजिये। तिलक का सब समाज साज करके लाया हूँ। यदि सरकार का जी चाहे तो उसे सफल कीजिये।

व्याख्या : मुनिजी ने आज्ञा दी थी : कृपासिन्धु प्रियबंधु सन कहहु हृदय की बात। सो हृदय की बात कह रहे है कि वन में ही राज्य देने के लिए तिलक साज सजा सजाया आया हुआ है। यदि सरकार का जी चाहे तो सफल कर दीजिये। यह मेरी विनय है। इसी के लिए गुरुजी ने कहा है : भरत बिनय सादर सुनिय करिय बिचार बहोरि। करब लोकमत बेदमत नृप नय निगम निचोरि। अब इस पर विचार करिये। जैसा उचित समझिये वैसा कीजिये। यह तो प्रथम पक्ष है।

दो. सानुज[1] पठइअ मोहि बन, कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ ॥२६८॥

अर्थ : अथवा मुझे छोटे भाई के साथ वन भेज दीजिये और सबको सनाथ कीजिये। यदि यह भी स्वीकार न हो : तो दोनों भाई लौट जायँ मैं साथ चलूँ।

व्याख्या : मुनिजी की सोची हुई बात कह रहे हैं कि दोनों भाइयों में दायका अदल बदल हो जाय। आप राज्य पर जाइये और मैं वन जाऊँ। इससे लाभ यह होगा कि प्रजा सनाथ हो जायगी। वह सरकार में ही अनुरक्त है। शत्रुघ्नजी विनय भरतजी से कर चुके हैं कि आप वन जाइयेगा तो मुझे अवश्य साथ ले लीजियेगा। अतः शत्रुघ्न सहित वन जाने की आज्ञा माँग रहे हैं। यदि यह भी पसन्द न हो तो तीसरा पक्ष कहते हैं कि दोनों भाई लक्ष्मण शत्रुघ्न घर फिर जायँ और सरकार के साथ मैं वन चलूँ। भरतजी का मुख्य आशय यह है कि मुझे सरकार की सेवा का सौभाग्य हो। अयोध्या लौटकर शासन में हाथ न लगाना पड़े। एक क्षण के लिए राज्य भरतजी को स्वीकार नहीं।

नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई ॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई ॥१॥

अर्थ : नहीं तो हम तीनों भाई वन जायँ। सरकार जनकनन्दनी के साथ जायँ। जिस प्रकार सरकार का मन प्रसन्न हो हे करुणासागर ! वही कीजिये।

---

१. यहाँ आक्षेप : प्रथम अलङ्कार है।

व्याख्या : भाव यह कि सर्व प्रधान विनय तो यह है कि सरकार अपना अभिषेक स्वीकार करें। फिर राजा की इच्छा चाहे जहाँ से राज्य करें। नहीं तो राज्य में और वन में अदला बदली हो जाय। यह भी नहीं तो : कर्ता भोक्ता त्वमेव हि। ऐसा सरकार ने लक्ष्मणजी से कहा है। सो उन्हीं को राज्य पर भेज दिया जाय। सहायता के लिए साथ में शत्रुघ्न रहे और सेवा में मैं रहूँ। यदि सरकार समझें कि वन का शासन इस समय कठिन व्यापार है वह मुझसे ही सधेगा। यथा : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू। तो आप के स्थान पर हम तीनों भाई वन जायँ। तीनों मिलकर काम सँभाल लेगें। हवि के विभाग के अनुसार भी रामचन्द्र के हवि के तुल्य शेष तीनों भाइयों का हवि मिलाकर होता है। यथा : अर्ध भाग कौसिल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा। इत्यादि।

सीय सहित कहने का यह भाव है कि कहीं यह आज्ञा न हो कि मैं सीता को लौटा देता हूँ। इतने से हो सन्तोष करो। यथा : जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मो कँह होइ बहुत अवलंबा। यथा : तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेस किसोरी।

भरतजी कहते हैं कि यदि ये चारों विधियाँ नापसन्द हों तो जिस विधि से सरकार का मन प्रसन्न हो वही किया जाय। मैं यह जोर नहीं देता कि इन चार पक्षों में से सरकार किसी को अवश्य स्वीकार करें। सरकार करुणासागर हैं। सरकार जो करेंगे वही ठीक होगा।

देव दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरे नीति न धरम बिचारू॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥२॥

अर्थ : हे देव ! आप ने सब बोझा मेरे ऊपर रख दिया और मुझे नीति और धर्म का विचार नहीं है। जो वचन कहता हूँ सो स्वार्थ के लिए कहता हूँ। क्योंकि आर्त्त के मन में विवेक नहीं रहता।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि नीति और धर्म के विचार की यहाँ आवश्यकता है। यह विवेचना करना है कि धर्म में बाधा भी न हो और अपना स्वार्थ भी सधे। सो मुझमें यह सामर्थ्य नहीं। यथा : एकौ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहिं रैन बिहानी। सो बोझा मेरे ऊपर डाला गया है। उसके वहन में मैं समर्थ नहीं हूँ। इस पर कहा जा सकता है कि तब तुमने ये चार पक्ष कैसे उठाये ? इस पर भरतजी कहते हैं। इन चारों पक्षों में मेरा स्वार्थ साधन होता है। स्वार्थ के कारण मैं आर्त्त हो रहा हूँ। आर्त्त को विचार शक्ति नहीं होती गुरुजी ने ठीक ही हा था : आरत कहहिं बिचारिन काऊ। सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ।

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेहँ सराहत साधू॥३॥

अर्थ : जो स्वामी की आज्ञा सुनकर उत्तर दे उस सेवक को देखकर लज्जा भी लज्जित हो जाती है। मैं ऐसे दोषों का अथाह समुद्र हूँ। यह स्वामी का स्नेह है कि मेरी प्रशंसा साधु कहकर कर रहे हैं।

व्याख्या : स्वामी का रुख देखकर ही काम कर देना चाहिए। सेवक का धर्म है कि स्वामी के मन में मन मिलाये हुए उसके मनोनुकूल चले। यथा : जोगवत रहहिं मनहि मन दीन्हें। यदि स्वामी को कहना पड़ा तब तो अवश्य ही कर डालना चाहिए। फिर भी न करे तो लज्जा की बात है और यदि सेवक ने उत्तर दे दिया तो इससे बढ़कर लज्जा की बात क्या होगी : भृत्यश्चोत्तरदायकः। भृत्य का उत्तर देना बड़ा भारी दोष है।

मैं तो ऐसा दोष का समुद्र हूँ कि सरकार की आज्ञा पाकर भी स्वीकार नहीं किया और यहाँ उत्तर देने को खड़ा हो गया। पर सरकार ऐसे करुणासागर हैं कि मेरी साधुता की सराहना करते हैं कि साधुता के कारण भरत मेरा वचन नहीं मानता। भरत साधु हैं। यथा : पुन्यसिलोक तात तर तोरे।

अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाहि न पावा॥
प्रभु पद सपथ कहहुँ सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥४॥

अर्थ : हे कृपाल! अब मुझे यही मत अच्छा लगता है कि जिसमें स्वामी के मन में सङ्कोच न पाया जाय। प्रभु के चरण की शपथ सच्चे भाव से कहता हूँ कि संसार के मङ्गल के लिए एक ही उपाय है।

व्याख्या : जब सरकार ने कह दिया कि जो भरत कहें उसे आज कर डालूँगा तब तो बात सब पलटा खा गयी। भरत तो सेवक है। सरकार की आज्ञा का पालन करनेवाला है। उसे आज्ञा देने का अधिकार भी नहीं है। वह ऐसा चाह भी नहीं सकता। सरकार मालिक हैं। सरकार के मन में सङ्कोच न हो। प्रसन्न चित्त से आज्ञा दें। मालिक तो वही है जिसकी आज्ञा चले। सरकार आज्ञा दें और उसी के अनुसार सब चले। यही मेरा अब अभीष्ट है। अतः सरकार के चरण की शपथ लेकर शुद्ध हृदय से कहता हूँ कि संसार के मङ्गल के लिए यही एक उपाय है। सब कहँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मगु एकू। सो सरकार की आज्ञा देने से और सबका उसका पालन करने से वह काम हो जाता है। अभिषेक आज हो या दस दिन बाद हो।

दो. प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु, मिटिहि अनट अवरेव॥२६९॥

अर्थ : सरकार प्रसन्न होकर सङ्कोच छोड़कर जिसे जो आज्ञा देंगे वही शिरोधार्य करके सब लोग करेंगे। बड़ा भारी उपद्रव और उलझन मिट जावेगी।

व्याख्या : सरकार ने कहा था : तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू। अतः भरतजी कहते हैं कि सोच छोड़ दीजिये। प्रसन्न मन से आज्ञा

दीजिये और सङ्कोच भी न करिये। जिस भाँति सरकार ने भरतजी से कहा था : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सो आज। सो भरतजी भी उसी भाँति सरकार पर सब भार छोड़ते हुए कहते हैं : प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव इत्यादि। सो सिर धरि धरि करिहि सब : कहने का भाव यह कि इस समय भरतजी सम्पूर्ण प्रजावर्ग की ओर से बोल रहे हैं। गुरुजी के किये हुए निर्णय पर आगये : राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होय। अतः कह रहे हैं कि आज्ञा पालन से ही यह कठिन अवरेव मिट जायगा। अर्थात् जो कुछ दुःख सुख होगा। वह राजाज्ञा के पालन में होगा। अतः सरकार के दुःख से दुःखी प्रजा को बहुत बड़ा आश्वासन होगा।

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
असमंजस बस अवध निबासी। प्रमुदित मन तापस बनबासी ॥१॥

अर्थ : भरतजी का वचन सुनकर देवता प्रसन्न हो गये और वाह वाह कहकर उन पर फूल बरसाने लगे। अयोध्या निवासी असमञ्जस में पड़ गये और तपस्वी तथा वन के निवासियों का मन प्रसन्न हो गया।

व्याख्या : वचन की शुचिता यही है कि वह सत्य प्रिय और हित हो। इसलिए शुचि कहा अथवा धर्मयुक्त होने से तथा स्वार्थ विहीन होने से भरतजी के वचन को शुचि कहा। सरकार का वचन सुनने से देवताओं के सहित इन्द्र भयभीत हो गये थे। सो भरतजी का वचन सुनकर हर्षित हुए कि जब रामजी पर बात आगयी तो ये अपनी प्रसन्नता से पिता का वचन नहीं छोड़ेंगे और अवधवासी भी असमञ्जस में पड़ गये कि देखें भरतजी के कहे हुए पक्षों में से रामजी किसे पसन्द करते हैं। बहुत सम्भावना तो यही है कि न लौटें। रामजी का वचन सुनकर बेचारे सुखी हो गये थे। सो फिर असमञ्जस में फँस गये। तपस्वी और वनवासियों ने समझ लिया कि जब रामजी पर बात आगयी तो नहीं लौटना ही सिद्ध है। अतः सरकार के सहवास के आनन्द से वञ्चित न होंगे। भावार्थ यह कि अपने अपने स्वार्थानुकूल लोगों को हर्ष या विषाद हुआ।

चुपहि रहे रघुनाथ संकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची ॥
जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए ॥२॥

अर्थ : सङ्कोची रघुनाथजी चुप ही रह गये। प्रभु की गति देखकर सभा की सभा सोच में पड़ गयी। उसी अवसर पर जनकजी के दूत आये। सुनकर वसिष्ठजी ने उन्हें तुरन्त बुलवाया।

व्याख्या : कोउ न राम सम स्वामि सँकोची। सरकार का स्वभाव ही सङ्कोची है। यद्यपि भरतजी ने कहा कि सरकार सङ्कोच छोड़कर आज्ञा दें। पर सरकार सङ्कोच नहीं छोड़ सकते हैं। कैसे कह दें कि तुम लोग लौट जाओ मैं नहीं जाऊँगा।

सब सभा के लोगों को सरकार का सङ्कोच देखकर सोच पैदा हो गया कि ये अयोध्या जाने के लक्षण नहीं हैं।

सरकार सङ्कोच में पड़े हुए चुप हैं। सभा स्तब्ध है कि देखें क्या आज्ञा होती है। तब से प्रतिहारियों ने समाचार दिया कि महाराज जनक के दूत आये हैं। यह समाचार ऐसा आया कि सब काम ही रुक गया। गुरुजी ने कहा कि जल्दी बुलाओ। भाव यह कि जनकजी का समाचार सुनने के पहिले ही रामजी कोई निर्णय न कर दें।

करि प्रनाम तिन रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे॥
दूतन्ह मुनिबर बूझीं बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥३॥

अर्थ : प्रणाम करके उन्होंने रामजी को देखा तो वेष देखकर बड़े दुःखी हुए। मुनिजी ने दूतों से कहा कि विदेह राजा कुशल कहो।

व्याख्या : दूत लोग सभा में उपस्थित हुए। प्रणाम करके रामजी को देखा। विवाह के समय देखा था। कहाँ वह वेष और कहाँ वल्लल वसन पहिने और जटा बनाये हुए देखा। अतः दूतों को बड़ा भारी दुःख हुआ।

मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी ने इसके पहिले कि दूत कुछ कहें पूछा विदेह राजा का कुशल कहो। भाव यह कि राजा जनक विदेह हैं। उन्हें देहाध्यास नहीं है। इतना बड़ा अनर्थ अयोध्या में हो गया। जनकपुर से कोई पूछने न आया कि क्या हो रहा है। अतः यह जानने की उत्सुकता है कि महाराज विदेह कुशल से तो हैं ?

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरवर जोरें हाथा॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयेउ गोसाईं॥४॥

अर्थ : सुनकर सङ्कुचित होकर दूत लोग नमस्कार करके हाथ जोड़े हुए बोले कि आपका जो आदर के साथ पूछना हुआ वही कुशल का कारण हो गया।

व्याख्या : मुनिजी के पूछने की ध्वनि समझकर दूत लोग सङ्कुचित हुए। परन्तु दूतों में ये श्रेष्ठ हैं। उत्तर देना जानते हैं। उन सबों ने तो पहिले पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर : अत्यन्त विनय से बोले।

दूतों ने कहा कि आपने जो आदर के साथ पूछा कि विदेह राजा कुशल से तो हैं ? आपने राजा कुशल से हैं ऐसा नहीं पूछा। आदर के लिए विदेह विशेषण दिया। वहीं विदेहता ही कुशल का कारण हो गयी। भाव यह कि अयोध्या के समाचार से महाराज को ऐसी चोट लगी कि विदेह होने के कारण रक्षा हो गयी। नहीं तो वहाँ भी अनर्थ हो ही चुका था।

दो. नाहि त कोसल नाथ कें, साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध विसेष तें, जगु सब भयउ अनाथ॥२७०॥

अर्थ : हे नाथ ! नहीं तो कोसलनाथ महाराज दशरथ के साथ कुशल चली गयी। सारा जगत् अनाथ हो गया और मिथिला अवध तो विशेषरूप से अनाथ हो गये।

व्याख्या : दूत कहते हैं कि वस्तुस्थिति तो यह है कि कुशल तो कोसलनाथ साथ लेते गये। कोसलनाथ यद्यपि अवध के ही राजा थे पर चक्रवर्ती थे। सभी राजा उनकी कृपा के भिखारी बने रहते थे। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे। उन पर उनका शासन चलता था। अतः महाराज के देहावसान से संसार अनाथ हो गया। महाराज जनक तो सेवक सेव्यभाव रखते थे। यथा : यह राज साज समाज सेवक जानवी बिनु गथ लये। अतः मिथिला और अवध विशेषरूप से अनाथ हो गये। क्योंकि इनसे उनका साक्षात् सम्बन्ध था। मिथिला के लोग तो महाराज से ऐसी प्रीति रखते थे : दसरथ गवन सोहाइ न काहू। भावार्थ यह कि महाराज के देहावसान का दुःख अवध से कम मिथिला में नहीं मनाया गया।

कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोग सोक बस बौरा ॥
जेहिं देखे तेहि समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू ॥१॥

अर्थ : कोसलपति की गति सुनकर जनकपुर के लोग तो मारे शोक के पागल हो गये। उस समय जिसने महाराज विदेह को देखा उसे उनका विदेह नाम सच्चा न मालूम हुआ।

व्याख्या : रामजी के विरह में महाराज के देहावसान के समाचार का ऐसा प्रभाव जनकपुर निवासियों के ऊपर पड़ा कि सब पागल से हो गये। किसी को अपनी सुधि न रह गयी और महाराज जो : मिथिलायां प्रदग्धायां न मे किञ्चित् प्रदह्यते। माननेवाले थे। वे तो ऐसे विकल हुए कि उस समय जिसने उन्हें देखा उसे यही मालूम हुआ कि इनका नाम विदेह नाहक लोगों ने रख छोड़ा है। इन्हें तो प्रबल देहाध्यास है। समधी के मरने का समाचार पाकर इस भाँति तो कोई सामान्य पुरुष भी विकल नहीं होता।

रानि कुचालि सुनत नरपालहिं। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहिं ॥
भरत राज रघुबर बनवासू। भा मिथिलेसहि हृदयँ हराँसू ॥२॥

अर्थ : रानी की कुचाल को सुनते ही राजा की ऐसी दशा हो गयी जैसे मणि के बिना सर्प की हो जाती है। उन्हें कुछ सूझ ही नहीं पड़ता था। भरत को राज और राम का वनवास सुनकर मिथिलाधिपति के हृदय में अत्यन्त दुःख हुआ।

व्याख्या : स्वायम्भू मनु ने वर माँगा था : मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहि अधीना। सो जल बिनु मीन की दशा महाराज दशरथ की हुई उन्होंने प्राण ही त्याग दिया और मणि बिनु फनि की दशा राजा जनक की हुई। यथा : मनि बिनु फनि जियै व्याकुल बेहाल रे। और यह सब रानी

के कुचाल से हुआ। अतः उसका प्रतीकार कुछ नहीं हो सकता था। यदि दूसरे द्वारा ऐसी बात होती तो महाराज दण्ड विधान करते। अब कुचाल को स्पष्ट करता हुआ दूत कहता है: भरत राज रामहि बनबासू। यह दोनों बातें ऐसी आपड़ीं कि कुछ किया नहीं जा सकता था। भरत का राज्य अनिष्ट नहीं कहा जा सकता था। पर राम के वनवास से उसका सम्बन्ध जुटने से इष्ट भी नहीं कहा जा सकता। जैसे राम जामाता तैसे भरत जामाता। यहाँ पुरुषार्थ को एकदम कोई स्थान ही नहीं था। अतः महाराज के हृदय में ह्रास हुआ।

नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू ॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ ॥३॥

अर्थ : महाराज ने विद्वत् समाज तथा मन्त्रिमण्डल से पूछा कि इस अवसर पर क्या करना चाहिए। अवध के दोनों असामञ्जस्यों को समझकर चलना चाहिए या रह जाना चाहिए। इस प्रश्न पर सब मौन रह गये।

व्याख्या : अपनी बुद्धि काम करते न देखकर महाराज ने विद्वत् समाज और मन्त्रिमण्डल बुलाया। बड़ा विकट प्रश्न है। अतः राज्य के सभी बुद्धिमान् इकट्ठे किये गये। प्रश्न यह सामने रक्खा गया कि ऐसे अवसर पर महाराज को क्या करना चाहिए। अयोध्या प्रस्थान करें या यहीं ठहरकर देखें कि आगे क्या होता है। तब उचित अवसर पर कुछ किया जाय। इसी प्रश्न पर विचार करना था।

रामजी और भरतजी दोनों दामाद हैं। किसी एक का पक्ष लिया नहीं जा सकता। जाने पर किसी न किसी का पक्ष ग्रहण करना ही होगा। रामजी वन गये भरत को राज्य मिला। पर इतने से ही मामला ठण्ढा नहीं हुआ। रामजी के विरह में चक्रवर्तीजी ने प्राणत्याग किया। प्रजा रामजी में ही अनुरक्त है। नहीं तो भरत के राज्य के साथ साथ रामजी को वनवास माँगने का क्या अभिप्राय था? जब चक्रवर्तीजी ही सामञ्जस्य नहीं बिठा सके तो दूसरा कैसे बिठा सकेगा? तिस पर जनकजी का सम्बन्ध ऐसा है कि ये कुछ भी नहीं कह सकते। अतः न जाना ही ठीक है। पर दूसरा पक्ष यह भी है कि इस समय अयोध्या में आग लगी हुई है। यथा : बिधि कैकयी किरातिनि कीन्ही। जिन्ह दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही। ऐसे समय पर अति सन्निकट सम्बन्धी दूर खड़े तमाशा कैसे देख सकते हैं? अतः इन दोनों असामञ्जस्य को देखकर किसी से कोई निश्चित निर्णय करते नहीं बना।

नृपहिं धीर धरि हृदय बिचारी। पठए अवध चतुर चर चारी ॥
बूझि भरत सतिभाउ कुभाऊ। आएहु बेगि न होइ लखाऊ ॥४॥

अर्थ : राजा ने ही धैर्य धारण करके विचार किया और चार चतुर दूतों को अयोध्या भेजा और आज्ञा दी कि भरतजी का सद्भाव दुर्भाव समझकर जल्द आवो। पर कोई तुम लोगों को लख न सके।

व्याख्या : महाराज ने देख लिया कि किसी की बुद्धि काम नहीं करती है।

धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परखिअहिं चारी। सो महाराज ने धैर्य धारण करके स्वयं विचार किया कि रानी कैकेयी के कुभाव का पता चल गया। परन्तु भरतजी के मन में क्या है : इस बात का पता बिना लगे कर्तव्य निश्चित नहीं किया जा सकता। अतः अत्यन्त चतुर चार दूतों को बुलाया और उन्हें अयोध्या भेजा कि जाकर के सद्भाव या कुभाव का पता लगावें। वेषभूषा और भाषा आदि से कोई लख न पावे कि ये दूत बाहर से पता लगाने आये हैं और जितना सम्भव हो उतनी शीघ्रता इस काम में करें।

दो. गए अवध चर भरत गति, बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तिरहूति ॥२७१॥

अर्थ : दूत लोग अवध गये। भरत की गति का पता लगाकर और करतूत देखकर जब भरतजी चित्रकूट चले तब दूत मिथिला चले।

व्याख्या : वसिष्ठजी के पूछने की ध्वनि समझकर दूत महाराज का हाल भी कहने लगे। भाव यह कि चक्रवर्तीजी के देहावसान का समाचार पाते ही शोक के प्रथम वेग समाप्त होने पर महाराज स्वयं अवध चलने को तैयार थे। परन्तु बिना सब बात समझे काम करना उचित न समझकर दूतों को सच्चा पता लगाने के लिए भेजा। ऐसे अवसरों पर राजकाज में जिन भावों का प्रदर्शन किया जाता है वे प्रायेण वास्तविक नहीं होते। दूतों से ही असली भेद हाथ लगता है। सो दूत अवध आये। आप लोगों को पता न लगा और सब समाचार लेकर जब भरतजी चित्रकूट चले तब दूत भी मिथिला चले। यही कारण महाराज के देर करने का हुआ। यदि आपके यहाँ से समाचार गया होता तो महाराज के आने में देर न होती।

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी ॥
सुनि गुरु परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह बिकल अति ॥१॥

अर्थ : दूतों ने आकर भरतजी की करणी जनकजी की सभा में यथा बुद्धि वर्णन की। सुन करके गुरु सभासद मन्त्री और राजा सबके सब सोच और स्नेह में अत्यन्त विकल हो गये।

व्याख्या : भरतजी के ही सद्भाव और कुभाव के जानने के लिए दूत भेजे गये थे। अतः उन लोगों ने भरतजी की मङ्गलमय करणी का वर्णन राज समाज में किया और कहा कि हम लोग भरतजी की करणी यथामति कह रहे हैं। नहीं तो वह अवर्णनीय है।

महाराज उस समय सभा में थे। अतः गुरु परिजन और मन्त्री लोग भी थे। यह समाचार सुनकर सब सोच और प्रेम में मग्न हो गये। सोच रामजी का और प्रेम भरतजी का। रामजी पिता का वचन हटाकर लौट आवेंगे इस बात में सबको सन्देह है और भरत राज्य स्वीकार नहीं करेंगे। यह भी निश्चय है। तब होता

क्या है ? इस प्रकार का सोच पैदा हुआ और भरतजी की प्रेम कथा सुनने से सबके मन में प्रेम उमड़ आया।

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी बोलाई॥
घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान सँवारे॥२॥

अर्थ : धैर्य धारण करके भरतजी की बड़ाई की। योद्धाओं और सेनापतियों को बुलवाया। घर राजधानी और देश की रक्षा का प्रवन्ध करके हाथी, घोड़े, रथ और बहुत सी सवारियाँ सजायीं।

व्याख्या : जिस भाँति चक्रवर्तीजी के निधन पर सबका धैर्य छूट गया था उसी भाँति भरतजी की करणी सुनकर भी सबका धैर्य जाता रहा। पहिली बार भी महाराज ने ही सब के पहिले धैर्य धारण किया। इस बार भी उन्हीं ने ही अपने को सबके पहले सँभाला और निश्चय कर लिया कि चलना चाहिए और देर न होने पावे। भरतजी और रामजी में कोई बात तय पाने के पहले मेरा पहुँचना जरूरी है। ऐसा सोचकर महाराज ने पहले घर की रक्षा की। तत्पश्चात् राजधानी और तत्पश्चात् देश की रक्षा की व्यवस्था की। जहाँ जैसा उचित था सेना और सेनापति स्थापित किये गये और साथ चलने के लिए चतुरङ्गिणी सेना तथा बहुत सी सवारियाँ सजायी गयीं। दूतों से सुन चुके हैं कि भरतजी के साथ रनिवास की भी यात्रा हुई है। अतः महाराज ने भी रनिवास का ले जाना उचित समझा। ऐसी आपत्ति के समय बेटी दामाद से मिलने की उन लोगों को उत्कट इच्छा होना स्वाभाविक था।

दुघरी साधि चले ततकाला। किए बिश्रामु न मग महिपाला॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा॥३॥

अर्थ : दुघरी साध के उसी समय चल पड़े। महाराज ने रास्ते में विश्राम भी नहीं किया। आज प्रातःकाल ही प्रयाग स्नान करके चल पड़े। लोग यमुना पार करने लगे।

व्याख्या : काल बल प्राप्त करने के लिए मुहूर्त देखकर ही कार्य करने की विधि है और यात्रा का मुहूर्त बड़ी कठिनता से मिलता है। यहाँ चलने की बड़ी शीघ्रता है। ऐसे अवसर के लिए दुघड़िया मुहूर्त का विधान है। अत्यन्तावश्यकता में उसी से काम लिया जाता है। वह मुहूर्त दो घड़ी में एक बार आ जाता है। अतः तत्काल यात्रा के लिए दुघड़िया साइत देखी गयी। महाराज चल पड़े सो अत्यन्त शीघ्र पहुँचने के लिए रास्ते में विश्राम भी नहीं किया। आज प्रातःकाल प्रयागराज पहुँच गये। त्रिवेणी स्नान करके चल पड़े। बीच में यमुनाजी पड़ीं। पार करने की व्यवस्था हुई। लोग उतरने लगे।

खबरि लेन हम पठये नाथा। तिन कहि अस महि नायउ माथा॥
साथ किरात छ सातक दीन्हें। मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हें॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! हम लोगों को खबर लेने के लिए भेजा है। ऐसा कहकर उन सबों ने सिर झुकाया। छः सात किरात साथ देकर मुनिजी ने तुरन्त उन सबों को विदा किया।

व्याख्या : मुनिजी के जिज्ञास्य विषय का उत्तर देकर उन सबों ने पुनः प्रणाम किया। अर्थात् यह दिखलाया कि हम लोगों का इतना ही कथन था। हम लोग तो केवल खबर लेने आये हैं। कोई विशेष बात हम लोगों को नहीं कहनी है।

मुनिजी ने समझ लिया कि महाराज जनक इन लोगों का इन्तजार करते होंगे। अतः इनका रोकना ठीक नहीं। अतः तुरन्त उनको विदा किया तथा उन सबको सरल मार्ग दिखाने तथा महाराज को सेना सहित सुभीते के रास्ते से लाने के लिए छः सात किरातों को साथ कर दिया।

## जनकागमन प्रसङ्ग

दो. सुनत जनक आगवनु सबु, हरषेउ अवध समाजु।
रघुनंदनहि सकोचु बड़, सोच बिबस सुरराजु ॥२७२॥

अर्थ : जनकजी का आना सुनकर अयोध्या का समाज प्रसन्न हो उठा। रामजी बड़े सङ्कोच में पड़ गये और इन्द्र देवता को तो बड़ा सोच हुआ।

व्याख्या : जनकजी के आने के समाचार मात्र से मामला पलटा खा गया। अवध निवासी असमञ्जस में पड़े हुए थे सो हर्षित हो गये। भरतजी का वचन सुनकर देवता हर्षित हो गये थे सो सोच के विवश हो गये। महाराज रामचन्द्र वैसे ही सङ्कोच के वश चुप हो रहे थे सो उनका सोच और भी बढ़ गया। महाराज जनक चक्रवर्तीजी के समकक्ष हैं। इनका बड़ा भारी प्रभाव सब पर है। इनके स्वयं आने का रामजी के लौटाने को छोड़कर दूसरा अर्थ हो नहीं सकता।

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहै केहि दूषनु देई ॥
अस मन आनि मुदित नर नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी ॥१॥

अर्थ : कुटिल कैकेयी ग्लानि से गली जाती है। किस से कहे और किसे दूषण दे। स्त्री पुरुष तो यह बात मन में लाकर प्रसन्न हो रहे हैं कि फिर चार दिन तो रहना हो गया।

व्याख्या : जनकजी का आगमन सुनकर कैकेयी तो ग्लानि के मारे गली जाने लगी कि समधी आ रहे हैं। वे क्या कहेंगे। स्त्रियों को समधी का बड़ा ख्याल होता है। पछताती तो पहिले से ही थी। यथा : लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई। अब उसकी ग्लानि से बुरी दशा है। ग्लानि से सम्भावित पुरुष की तो मृत्यु हो जाती है। यथा : कह्यौ राजबन दियो नारिबस गरि गलानि गये राउ। कैकेयी का इस समय कोई सहानुभूति करनेवाला नहीं है। जिससे कि वह अपना दुःख कहे। क्योंकि कहने से भी कुछ दुःख घट जाता है और कोई

ऐसा भी नहीं है जिसे वह दोष दे कि मैं अमुक के बहकावे में आगयी। कुबरी को भी दोष नहीं दे सकती। क्योंकि कुलमान्य जठेरी तथा उसके परम प्रिय सखियों ने बहुत समझाया था और अन्त में कह भी दिया : जौ नहिं लगिहौ कहे हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे। सो सखियों की सलाह छोड़कर उसने मतिमन्द कूबरी की बात क्यों मानी ? अतः स्पष्ट सब दोष उसी का था। उसने सखियों की भी सहानुभूति खो दी। अब मन ही मन मर रही है। किसी से कुछ कह नहीं सकती।

जनकजी के आने का परिणाम क्या होगा ? इस बात पर तर्क वितर्क न करके लोग इतने पर ही प्रसन्न हैं कि मिथिलेश के आने से चार दिन ठहरने का अवसर और हाथ लग गया।

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ॥
करि मज्जनु पूजहि नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥२॥

अर्थ : इस प्रकार वह दिन बीता। प्रातःकाल होते ही सब लोग नहाने लगे। नहा नहाकर स्त्री और पुरुष, गणेश, गौरी और सूर्य का पूजन करते हैं।

व्याख्या : अपने अपने हृद्गत भावों के उधेड़बुन में शेष दिन भी बीत गया। यहाँ दिन में रात का भी अन्तर्भाव है। सवेरा हुआ। जनकजी के आने की बात है। इसलिए तुरन्त नित्यकृत्य के निर्वाह में लग गये। अब अवधवासियों की दिनचर्या कहते हैं।

पहिले स्नान किया। सन्ध्या तर्पणादि का उसी में अन्तर्भाव है। तब पूजन आरम्भ हुआ। अवधवासी स्मार्त वैष्णव हैं। शिवद्रोही नहीं हैं। शिव विष्णु में अभेद है। यथा : माधवोमाधवावीशौ सर्वसम्पद्विधायिनौ। वन्दे परस्परात्मनौ परस्पर-नुतिप्रियौ। माधव विष्णु और उमाधव शिवजी दोनों सम्पत्ति के देनेवाले हैं। दोनों एक दूसरे की आत्मा हैं और दोनों को एक दूसरे की वन्दना करना प्रिय है। स्मार्त वैष्णव पञ्चदेवोपासक होते हैं। अतः ये लोग गणपति, गौरी, शिवजी और सूर्य का पूजन करते हैं।

रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥
राजा रामु जानकी रानी। आँनद अवधि अवध रजधानी॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् रमारमण विष्णु भगवान् के चरणों की वन्दना करके अञ्जलि और अञ्चल जोड़कर विनय करते हैं कि रामजी राजा हों। जानकी रानी हों और आनन्द की सीमा अयोध्या राजधानी हो।

व्याख्या : यहाँ रमारमण शब्द का अन्वय पूर्व की अर्धाली के साथ है अर्थात् पूजहिं क्रिया का कर्म रमारमण शब्द है। पूजन के बाद चरणों की वन्दना करके पुरुष लोग अञ्जलि बाँधकर और स्त्रियाँ अञ्चल जोड़कर विनय करती हैं कि रामजी राजा हों। प्रजा सिवा रामजी के दूसरे को राजा नहीं चाहती। इतना ही नहीं

जानकी रानी हों। सबकी प्रीति जैसे रामजी में है वैसी ही जानकीजी में है। इस मनोहर जोड़ी के देखते रहने की बड़ी अभिलाषा है। यथा : फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहौ नयन मनोहर जोरी।

राजा लोग अपने पसन्द के अनुसार कभी राजधानी बदल भी देते हैं। सो ऐसा न हो राजधानी अयोध्या ही रहे। क्योंकि अयोध्या आनन्द की पराकाष्ठा है। सरकार के चार विग्रहों में एक है। यथा : रामस्य नाम रूपञ्च लीलाधाम परात्परम्। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् रामस्य विग्रहः। पाठभेदः एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदान्दविग्रहम्। तथा : अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनुपानी।

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुँ जुबराजा॥
एहि सुख सुधा सींचि सब काहू। देव देहु जगजीवन लाहू॥४॥

अर्थ : फिर आनन्द सहित सब समाज बसे। भरत को रामजी युवराज बनावें। इस सुखरूपी अमृत से सींचकर हे देव संसार में जीने का लाभ दीजिये।

व्याख्या : भरतजी पहिले ही कह चुके हैं : मिटै कुजोग राम फिरि आये। बसिहि अबध नहि आन उपाये। नहीं तो सब बारहबाट हो जायँगे। वही बात आज प्रजा पञ्चदेव की उपासना करके माँगती है कि राजा राम हों जानकी रानी हों इत्यादि। तब यह प्रश्न उठता है कि महाराज ने भरत को टीका देने का वचन दिया है। उसकी क्या गति होगी। इस पर कहते हैं कि चक्रवर्तीजी ने यौवराज्य के टीका का वचन दिया था। सो रामजी भरत को युवराज का टीका कर दें। चक्रवर्तीजी का वचन भी बना रह जाता है।

सब लोग दुःसह ज्वर से जल रहे हैं। सो इस सुखरूपी अमृत से पञ्चदेव सबको सीचें। बिना इस अमृत का सिञ्चन किये ज्वर और जलन दोनों न मिटेगी। अभिलाष सबका यही है। यथा : कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा। कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं राम होइ चित चेता। उसी अभिलाष में बाधा पड़ने से ज्वर है। अभिलाष की पूर्ति ही जीवन का लाभ है। अतः हमारे जीवन का लाभ इसी में है कि रामजी राजा हों इत्यादि।

दो. गुर समाज भाइन्ह सहित, रामराजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिअ माँग सबु कोउ॥२७३॥

अर्थ : बड़ों के समाज के और भाइयों के सहित रामजी का राज्य पुर में हो और राम के राजा रहते ही सबका देहावसान हो जाय।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी तो चले गये। चौदह वर्ष में न जाने कितने लोग चले जायँगे। उनका अभिलाष पूरा न हो सकेगा। भरतजी जो स्वयं वन जाने को तैयार हैं। भाइयों को भी साथ ले जाने को कह रहे हैं। सो भी न हो। ऐसा न होने से जो सुख हम लोग चाहते हैं वह पूरा न होगा। यथा : सम दुःख सुख सब

रोवहिं रानी। और रामजी का वियोग किसी को कभी न हो। हम सबकी मृत्यु रामजी के राजा रहते ही हो जाय।

सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहि जोग बिरति मुनि ग्यानी ॥
एहि बिधि नित्य करम करि पुरजन। रामहि करहि प्रनाम पुलकि तन ॥१॥

अर्थ : पुरजन की प्रेममय वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि योग और वैराग्य की निन्दा करते हैं। इस भाँति नित्यकर्म करके पुरजन रामजी को पुलकित शरीर होकर प्रणाम करते हैं।

व्याख्या : वाणी से पुरजन के प्रेम का उत्कर्ष जानकर ज्ञानी लोग लगे वैराग्य और योग की निन्दा करने। प्रजा राजा के सम्बन्ध के कारण इनकी इतनी प्रीति बढ़ी हुई है। अतः सम्बन्ध ही परतम भाव है। जिससे बिना ध्यान, बिना तप, बिना योग और बिना ज्ञान के श्रीरघुनन्दन पर अव्यभिचारिणी प्रीति होती है। यथा : एभ्यः परतमो भावः सम्बन्धाख्यः स्वयं स्वराट्। बिना ध्यानेन तपसा योगं ज्ञानं विनैव हि। श्रीरघुनन्दने प्रीतिः पराह्यव्यभिचारिणी। वर्धतेऽनुदिनं विप्र सत्यं सत्यं न चान्यथा[1]। सो यह सम्बन्धाख्य महाभाव का प्रभाव है कि इन सामान्य लोगों की जिनका ध्यान तप योग से कोई सम्बन्ध नहीं है रामजो में ऐसी प्रीति है। अतः वैराग्य और योग सम्बन्धाख्य भाव के सामने कुछ नहीं है।

नित्य कर्म को विधि ऊपर कह आये हैं। सभी लोग पञ्चदेव की उपासना करके राम सम्बन्धी माँगन माँगते हैं। तत्पश्चात् रामजी को प्रणाम करने के लिए जाते हैं।

ऊँच नीच मध्यम नरनारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी ॥
सावधान सबही सनमानहि। सकल सराहत कृपानिधानहि ॥२॥

अर्थ : उच्च नीच और मध्यम श्रेणी के नरनारी अपने अपने अनुसार दर्शन पातेहैं। भगवान् : सावधान होकर सबका सम्मान करते हैं और सब कृपानिधान की बड़ाई करते हैं।

व्याख्या : पुर नरनारी में सात्त्विक राजस और तामस सभी प्रकृति के लोग आये हैं और वे सब सरकार के दर्शन के लिए गये। पर सबको एक रूप दर्शन नहीं हो रहा है। सात्त्विक रूप का दर्शन पाते हैं। राजसिक राजसरूप का दर्शन पाते हैं और तामसिक तामसरूप का दर्शन पाते हैं। तीनों प्रकार का ध्यान शास्त्रों में कहा गया है।

सरकार बड़ी साहिबी में बड़े सावधान हैं। ऐसा नहीं होता कि कोई उपेक्षित रह जाय। जो राजदर्शन के लिए जाता है सरकार सबका सम्मान करते हैं। यथा : अस कपि एक न सेना माही। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं। सम्मान ही सब

---

१. अहिर्बुध्न्यसंहितायाम्।

दानों में बड़ा है। सो सम्मान पाकर सब कृतकृत्य हैं और सरकार की बड़ाई करते हैं। कहते हैं कि यह कृपानिधान की कृपा है जो हमारा इतना सम्मान हो रहा है।

**लरिकाइहि तें रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥**
**सील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥३॥**

अर्थ : बचपन से ही सरकार का स्वभाव है कि प्रीति की पहिचान करके नीतिका पालन करते हैं। श्रीरघुनाथ शील सङ्कोच के समुद्र हैं। उनका श्रीमुख सुन्दर नेत्र सुहावना और स्वभाव सरल है। भगवान् सुमुख हैं। मीठी वाणी बोलते हैं और सुलोचन हैं : सदा कृपा दृष्टि से देखते हैं।

व्याख्या : रीझत राम सनेह निसोते। प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की। पुरलोग कहते हैं कि लोगों में सद्‌गुण सिखाने से आते हैं। पर सरकार में तो यह गुण बचपन से ही दिखायी पड़ते हैं। प्रीति की पहिचान करके नीति का पालन करते हैं। व्यवहार यथायोग्य करते हैं। परन्तु प्रीति के पहिचान की झलक बराबर रहती है। शील सङ्कोच के तो समुद्र हैं। सुमुख सुलोचन होने से उसका प्रभाव और भी बढ़ जाता है। तिस पर सरल स्वभाव होने से उत्कर्ष की सीमा हो जाती है।

शील। यथा : चारिउ सील रूप गुन धामा।
तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥

सङ्कोच। यथा : चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची।
प्रभु गति देखि सभा सब सोची ॥

सुमुख। यथा : सब बिधि सब पुरलोग सुखारी।
रामचंद्र मुखचंद निहारी ॥

सुलोचन। यथा : मामवलोकय पंकज लोचन।
कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन ॥

सरल सुभाऊ। यथा : रामहि मातु बचन सब भाए।
जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ॥

**कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे ॥**
**हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिनहि रामु जानत करि मोरे ॥४॥**

अर्थ : रामजी के गुणगणों को कहते कहते अनुराग में आगये। सब अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि हम लोगों के समान पुण्यपुञ्ज संसार में थोड़े ही लोग हैं। जिन्हें राम अपना करके मानते हैं।

व्याख्या : सरकार के गुणगण-ही ऐसे हैं कि उनके स्मरण करने से अनुराग बढ़ता है। यथा : सुमिरि सुमिरि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ। उपर्युक्त चौपाई में जो गुणगण सरकार के कहे गये हैं उनके स्मरण करने से रामपद में अनुराग बढ़ता है। अतः उन लोगों का अनुराग बढ़ा। तब अपने अपने भाग्य की

सराहना करने लगे। ऐसे ही स्थल में भाग्य की सराहना की जाती है जहाँ सराहना करने से बड़े की स्तुति ध्वनित हो।

जो अतिप्रिय हो वही अपना होता है। जिससे प्रेम नहीं वह सगासम्बन्धी भी अपना नहीं माना जाता। सरकार हम लोगों को अपना करके जानते हैं। अतः हम लोग सरकार को अतिप्रिय हैं। यथा : अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। बड़े बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र बड़े बड़े पुण्यपुञ्ज चाहते हैं कि उनका सरकार पर प्रेम हो। ऐसे सरकार हमारे पर प्रेम करते हैं; अतः हमारे पुण्य का क्या ठिकाना ? इस भाँति अपने भाग्य की बड़ाई करते हैं।

दो. प्रेम मगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ, रबिकुल कमल दिनेसु ॥२७४॥

अर्थ : उस समय सब प्रेम में मग्न थे। समाचार आया कि मिथिलेश आ रहे हैं। अतः सभा के सहित सूर्यकुल कमल के सूर्य एकाएक उठ खड़े हुए।

व्याख्या : सब लोग मिथिलेश के आगमन की आशा से ही नित्यकृत्य का निर्वाह करके पास जुट गये थे और सरकार से सम्मान पाकर उनके गुणों के स्मरण से प्रेम में विभोर हो रहे थे। उन्हें स्मरण भी नहीं रहा कि क्यों यहाँ इकट्ठे हुए हैं। तब से समाचार मिला कि महाराज जनक आ रहे हैं। महाराज की इतनी प्रतिष्ठा सरकार की दृष्टि में है कि घबड़ाये से उठ खड़े हुए और सभा की सभा उसी भाँति उठ खड़ी हुई।

भाइ सचिव गुर पुरजन साथा। आगे गवनु कीन्ह रघुनाथा ॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथु त्यागेउ तबहीं ॥१॥

अर्थ : भाई मन्त्री गुरु और पुरजन को साथ लिये हुए रघुनाथजी आगे चले। राजा जनक ने जब पर्वतों में श्रेष्ठ चित्रकूट को देखा तो उसी समय प्रणाम करके रथ से उतर पड़े।

व्याख्या : सरकार से ज्यों ही जनकराज का आगमन सुना त्यों ही ससम्भ्रम उठे और उनको आगे से लेने के लिए चल पड़े। सभा में उस समय भाई गुरु और पुरजन जुटे थे। वे भी साथ हो लिये। अभी राजा जनक इतनी दूर हैं कि शैलशृङ्ग का दर्शन हुआ ही चाहता है। सो दर्शन होते ही महाराज ने चित्रकूट को प्रणाम किया और तीर्थ का आदर करते हुए रथ से उतर पड़े। यहाँ से महाराज जनक समाज सहित सरकार से मिलने पैदल चले और उधर समाज सहित सरकार, उनसे मिलने पैदल चले आ रहे हैं। जिस भाँति रघुपति शब्द का प्रयोग होता है उसी भाँति जनकपति शब्द का प्रयोग है।

राम दरसु लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू ॥
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही ॥२॥

अर्थ : रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह से रास्ते के परिश्रम के लेश का भी क्लेश किसी को नहीं है। उनका मन तो रामजी में लगा था। बिना मन के दुःख सुख की सुध किसको हो।

व्याख्या : राजा जनक के समाज का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीराम जानकी के दर्शन की लालसा और शीघ्र दर्शन की दृढ़ आशा से सबको ऐसा उत्साह है कि रास्ते चलने में परिश्रम पड़ा है। उसके क्लेश का लेश भी किसी में नहीं है। जनकपुर से चित्रकूट चले आ रहे हैं और रास्ते में कहीं विश्राम भी नहीं किया। अतः सबके थक जाने में सन्देह नहीं है। परन्तु कोई थकावट का अनुभव नहीं कर रहा है। क्योंकि सबका मन रामजी में ऐसा लगा है कि तन की सुध बुध किसी को नहीं और शीघ्र दर्शन पाने के उत्साह से सब भरे हैं। इससे अयोध्यावासियों सा ही प्रेम मिथिलावासियों का भी दिखलाया।

आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती ॥
आये निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे ॥३॥

अर्थ : इस भाँति समाज सहित जनकजी चले आरहे थे। उन लोगों की बुद्धि प्रेम से मतवाली हो रही थी। निकट पहुँचकर सबको अनुराग हुआ और आदर के साथ एक दूसरे से मिलने लगे।

व्याख्या : इस भाँति लालसा उत्साह और प्रेम में मगन जनकजी समाज के साथ बढ़े चले आते थे। उधर से रघुनाथजी समाज सहित आगये। रास्ते में भेंट हो गयी। दोनों समाज के लोग दूसरे समाज से परिचित हैं। देखते ही अनुराग उमड़ पड़ा। अतः आदर से आपस में मिलने लगे। परिस्थिति में बड़ा अन्तर है। इसलिए कवि आनन्द की चर्चा नहीं कर रहे हैं। जैसा व्याह के समय किया था। यथा : जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल।

लगे जनक मुनिजन पद बन्दन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनन्दन ॥
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहिं। चले लेवाइ समेत समाजहिं ॥४॥

अर्थ : जनकजी मुनियों की चरण वन्दना करने लगे और ऋषियों को रामजी ने प्रणाम किया। भाइयों के सहित रामजी महाराज से मिलकर समाज के सहित उन्हें लिवा चले।

व्याख्या : अवध समाज में रामजी आगे हैं। मिथिला समाज में जनकजी आगे हैं। अतः गोस्वामीजी पहिले इन्हीं की व्यवस्था कहते हैं कि जनकजी तो वसिष्ठ वामदेवादि की वन्दना करने लगे और रामजी शतानन्द विश्वामित्रादि की वन्दना करने लगे। सगे सम्बन्धी से मिलने के पहिले ऋषियों की वन्दना आवश्यक समझी गयी। तत्पश्चात् रामजी भाइयों के साथ महाराज जनक से मिले और उन्हें समाज के साथ लिवा चले। ऐसे अवसर पर रास्ता दिखाने के लिए छोटे भी बड़े के आगे चलते हैं।

दो. आश्रम सागर साँत रस, पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित, लिए जाहिं रघुनाथु ॥२७५॥

अर्थ- : शान्त रसरूपी पावन जल से भरे हुए आश्रमरूपी समुद्र की ओर मानो सेनारूपी करुणानदी को रामजी लिवाये जा रहे हैं।

व्याख्या : जिस भाँति राजा भगीरथ गङ्गाजी को लिवाकर समुद्र में मिला दिया। स्वयं रथ पर आगे आगे चले और गङ्गाजी पीछे पीछे चलीं उसी भाँति रघुनाथजी सेनारूपी सरित को आश्रमरूपी समुद्र की ओर लिवा ले चले। यहाँ आश्रम की उपमा समुद्र से दी। समुद्र क्षीरजल से भरा होता है और आश्रम शान्तरस के जल से पूर्ण है। समुद्र का जल पावन नहीं होता। केवल विशेष विशेष अवसर तथा विशेष विशेष तीर्थ के योग होने पर ही उसके स्पर्श का विधान है। पर शान्तरस रूपी जल तो सदा पावन है।

सेना की उपमा करुणा नदी से दी। चक्रवर्तीजी के देहावसान के बाद आज ही अवध तथा जनकपुर के समाज से भेंट हुई। भेंट होने से घाव ताजा हो गया। दोनों समाज में करुणा छा गयी। सब विलाप करते जा रहे हैं। इसी से उनकी उपमा करुणा सरित से दिया। रामजी आगे आगे चल रहे हैं। सबको अपने आश्रम में लिवाये जाते हैं। अतः करुणा सरित का लिवा जाना उनके लिए कहा गया है।

बोरित ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलन नद नारे॥
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तटवर कर भंगा ॥१॥

अर्थ : ज्ञान विराग रूपी करारों को डुबोती हुई चली। शोकयुक्त वचनरूपी नदनारे मिलते गये। सोच रूपी हवा से उच्छ्वासरूपी तरङ्गें उठने लगीं। धैर्यरूपी तट के वृक्ष गिरने लगे।

व्याख्या : समुद्र में अनेक नदियाँ अनेक दिशाओं से आकर मिलती हैं। यहाँ रामजी के आश्रम की उपमा शान्तरस के समुद्र से दी गयी है। उसमें भी कुछ शान्तिरस की नदियों का आकर मिलना मानना ही होगा। जिन रास्तों से मुनिगण आकर सरकार का दर्शन करते थे उन्हें शान्तिरस की नदियों से उपमित किया जा सकता है। उन्हीं रास्तों में एक वह भी है जिससे रघुनाथजी महाराज जनक को लिवाये जा रहे हैं। आज उस रास्ते से शोकयुक्त समाज जा रहा है। अतः वह शान्तिरस की नदी उस अत्यन्त भारी करुणारस की नदी से जिसे रघुनाथजी लिये जाते हैं ऐसी दब गयी है कि उसके ज्ञान विराग के करारे भी डूब गये। ज्ञान विरागरूप करारा शान्तरस की नदी का ही माना जा सकता है। करुणा सरित का नहीं माना जा सकता। भाव यह कि बड़े बड़े ज्ञानी विरागी भी करुणारस में मग्न हो रहे हैं। शोक भरे वचन नद और नाले हैं। जिससे नदी की वृद्धि होती जा रही है। सोच से जो उच्छ्वास ले रहे हैं वही मानों वायुजनित तरङ्ग हैं। धैर्यरूपी तट के वृक्ष जो अभी तक बद्धमूल थे इस प्रबल तरङ्ग से छिन्नमूल होकर गिरते जा रहे

हैं। भाव यह कि जिनका धैर्य अभी तक छूटा न था वह भी शोकपूरित उच्छ्वास से छूटा जा रहा है।

बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवँर अवर्त अपारा ॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहि न खेइ ऐक नहि आवा ॥२॥

अर्थ : विषम विषाद ही त्वरावती धारा है। उसमें भयरूपी भँवर और भ्रमरूपी आवर्तं : चक्कर पड़ रहा है। पण्डित लोग विद्यारूपी बड़ी नाव के केवट हैं। सो वे नाव के चलाने में असमर्थ हैं। क्योंकि वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं।

व्याख्या : लोगों में जो विषम विषाद है वही इस करुणा नदी की तीव्र धारा है। त्वरावती शब्द का प्राकृत रूप तोरावती हुआ। विषाद में क्या होनेवाला है इस बात का भय उत्पन्न होता है और यथार्थ अनुभव की शक्ति जाती रहती है। इसलिए भ्रम होता है। इसीलिए विषादरूपी धारा का भँवर भय को और आवर्त भ्रम को कहा ! भँवर और आवर्त वेगवती धारा में ही पड़ते हैं। उसी भाँति विषम विषाद में भय और भ्रम उत्पन्न होता है।

विषादरूपी धारा के पार करने में विद्यारूपी नाव द्वारा पण्डितरूपी केवट ही समर्थ हैं। अर्थात् विद्या के बल से पण्डित ही ऐसी समय में धैर्य बँधा सकते हैं। सो उनका किया भी कुछ नहीं हो रहा है। विषाद का वेग इतना बढ़ा हुआ है कि उन्हें इस बात का अन्दाज ही नहीं लगता है कि कैसे धैर्य बँधावें।

बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे ॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई ॥३॥

अर्थ : बटोहीरूपी विचारे वन के फिरनेवाले काले और किरात उसे देखकर स्थगित हो गये। उनकी हिम्मत छूट गयी। जब वह आश्रमरूपी समुद्र में जा मिली तो मानो समुद्र आकुल हो उठा।

व्याख्या : जिस वेगवती नदी में बड़ी बड़ी नाव और केवट की बुद्धि नहीं काम करती वहाँ वन में फिरनेवाले कोल किरात क्या कर सकते हैं। वे तो विचारे हैं। उनका कोई चारा नहीं। उनके पास तो छोटी सी भी नाव नहीं है। उनकी हिम्मत तो इसी नदी को देखकर छट जाती है। वे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर देखते ही रह जाते हैं।

दुःखी समाज को देखकर राह चलते हुए की भी इच्छा होती है कि उनके दुःख का कारण पूछें और उन्हें धैर्य बँधावें। सो यहाँ वन में विचरनेवाले कोल किरात ही बटोही स्थानीय हैं। वे ही इस दुःखी समाज के साथ समवेदना प्रकट करके धैर्य बँधाने का प्रयत्न कर सकते हैं। पर इस समाज में इस समय विषाद का इतना वेग है कि बड़े बड़े ज्ञानी विरागी शोकमग्न हो रहे हैं। इनकी दशा देखकर ही वे अल्पज्ञ कोल किरात स्तब्ध हो गये। उन्हें कुछ भी चेष्टा करने का साहस न हुआ।

जब वह करुणा नदी जाकर आश्रमरूपी समुद्र से मिली तो मानों समुद्र आकुल हो उठा। अर्थात् वह शान्त रस से भरापूरा आश्रम इन विषाद करनेवालों के पहुँचने से कोलाहल पूर्ण हो गया।

सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा॥
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही॥४॥

अर्थ : दोनों राज समाज शोक से विकल है। न वहाँ ज्ञान है। न धैर्य है। न लज्जा है। महाराज : दशरथ के रूप गुण और शील की सराहना करके शोक सिन्धु में स्नान करनेवाले रो रहे हैं।

व्याख्या : जहाँ गङ्गा जाकर समुद्र से मिलती है उसे गङ्गासागर तीर्थ कहते हैं। वहाँ लोग स्नान करते हैं। यहाँ भी करुणा नदी और आश्रम सागर का सङ्गम हुआ है। यहाँ के स्नान करनेवाले यात्री दोनों राज समाज हैं। करुणा नदी के सङ्गम से वह आश्रम शोक सिन्धु हो गया। इसी में यात्री स्नान करते हैं। अर्थात् शोक से विकल हैं। उनका धैर्य छूट गया है। ज्ञान का कहीं पता नहीं। उन्हें रोने में छाती पीटने में देह के सँभाल के बाहर हो जाने में लज्जा नहीं है। वे स्तुति पाठ की भाँति महाराज चक्रवर्तीजी के रूप गुण और शील की प्रशंसा करते हैं और रो रहे हैं।

छं. अवगाहि सोच समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महाँ।
दै दोष सकल सरोस बोलहि बाम बिधि कीन्हौं कहाँ॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की॥

अर्थ : शोक समुद्र में स्नान करके स्त्री पुरुष अत्यन्त व्याकुल हैं। वे ब्रह्मा को दोष देकर रोष के साथ कह रहे हैं कि वामविधि ने क्या कर दिया। देवता सिद्ध तपस्वी और योगी लोगों ने महाराज विदेह की दशा देखी। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा समर्थ कोई नहीं है जो स्नेह की नदी का अतिक्रमण कर सके।

व्याख्या : यद्यपि चक्रवर्तीजी के देहावसान हुए एक महीना बीत गया है। दोनों समाज अपना शोक दबाये हुए थे। पर दोनों स्नेहियों का समाज मिल गया है। रामजी का वेष देखकर जनकपुर निवासियों का दुःख फूट पड़ा जो कि उन्हें वरवेष में देख चुके थे। उनके दुःख फूटने से अयोध्यावासियों का भी दुःख ताजा हो गया। दोनों समाज इस समय रामजी के आश्रम में ठहरकर रो रहे हैं। उसी दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि नर नारी अत्यन्त व्याकुल हैं। उन्होंने मानो शोक समुद्र में स्नान किया है। वे सोच रहे हैं कि क्या हो रहा था और क्या हो गया ? वे इसमें ब्रह्मदेव को दोष दे रहे हैं और क्रोध से कह रहे हैं कि प्रतिकूल होकर ब्रह्मदेव ने यह क्या कर दिया।

ऊपर कह आये हैं : रहा न ज्ञान न धीरज लाजा। उसी को यहाँ दिखला रहे हैं। व्याकुल महा : से धैर्य का न रहना कहा। शोक समुद्र में स्नान से ज्ञान का न रहना कहा। दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्ही कहा : से लज्जा न रहना कहा। राजा विदेह मुनियों के भी गुरु स्थानीय हैं। यथा : जासु ज्ञान रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल विकासा। उनकी दशा सुरसिद्ध तापस योगियों ने देखी कि महा शोकाकुल हो रहे हैं। अत. गोस्वामीजी कहते हैं कि जब देहाध्यास रहित जनकजी की यह दशा है तब यही कहना पड़ता है कि स्नेह की नदी के सन्तरण का सामर्थ्य किसी को भी नहीं।

सो. किंए अमित उपदेस, जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन।
धीरज धरिअ नरेस, कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन ॥२७६॥

अर्थ : जहाँ तहाँ लोगों को मुनियों ने बहुत से उपदेश दिये। वसिष्ठजी ने महाराज से कहा कि राजन्! धैर्य धारण कीजिये।

व्याख्या : डूबते हुए लोगों को सहारा देने के लिए मुनिगण ने हाथ बढ़ाया। अर्थात् स्नेह सरित के पार करने में लोगों को असमर्थ देखकर महात्मा लोग करुणा करके ज्ञानोपदेश जहाँ तहाँ देने लगे। क्योंकि प्रेम का वेग ज्ञान से ही शान्त होता है। यथा : परम प्रेम तिनकर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ग्यान बेसेखा। यहाँ तो विदेह राजा जिन्हें देहाध्यास नहीं वे भी स्नेह सरित में गोता खा रहे हैं। उन्हें कौन उपदेश दे। अतः उन्हें वसिष्ठजी ने केवल इतना कहकर सावधान किया कि राजा अपनी जिम्मेदारी को समझें। यदि राजा ही धैर्य छोड़ेगा तो प्रजा कैसे धैर्य धारण करेगी।

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा ॥
तेहि कि मोह ममता निअराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई ॥१॥

अर्थ : जिसके ज्ञानरूपी सूर्य से संसाररूपी रात्रि का नाश हो जाता है और वचनरूपी किरण के लगने से मुनिरूपी कमल खिल उठते हैं। उनके निकट क्या मोह ममता आ सकती है? यह तो सीता राम के प्रेम की बड़ाई है।

व्याख्या : उत्तरकाण्ड में ज्ञान दीपक का वर्णन है। जिसके प्रकाश से साधक के भेद भ्रम का नाश होता है। आत्मानुभव सुख होता है। परन्तु जनकजी का ज्ञान ऐसा है कि संसाररूपी रात्रि को ही नष्ट कर देता है और उनके वचन ऐसे होते हैं कि सुनकर मुनि लोग कमल की भाँति खिल उठते हैं। उस ज्ञान रवि के सामने मोह ममतारूपी अन्धकार जा नहीं सकता। यथा : तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू। उनमें जो मोह ममता दिखलायी पड़ती है वह भक्ति का उत्कर्ष हैं। मोह ममता नहीं है। वही स्नेह पुत्र कलत्रादि में होने से मोह ममता कहलाता है। यदि परमेश्वर में हो तो भक्ति कहलाता है और परम कल्याण का कारण होता है।

यथा : आत्मारामश्च[1] मुनयो निर्ग्रन्थाअप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थं भूतगुणो हरिः।

बिसई साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने॥
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभाँ बड़ आदर तासू॥२॥

अर्थ : विषयी साधक और सयाने सिद्ध इन तीन प्रकार के जीव का होना वेद वर्णन करता हैं। परन्तु जिसका मन रामजी के प्रेम से सरस होता है। साधु सभा में उसका बड़ा आदर होता है।

व्याख्या : वेदादि शास्त्र कहते हैं कि तीन प्रकार के ही जीव होते हैं। एक जो विषय में लिप्त हैं। दूसरे जो सद्गति के लिए यत्नशील हैं और तीसरे सयाने सिद्ध अर्थात् जीवन्मुक्त मुनीन्द्र। साधु सभा में यथास्थान सभी का आदर है। परन्तु बड़ा आदर तो उसी का है जिसका हृदय रामजी के स्नेह में सरस हो। चाहे वह विषयी ही क्यों न हो। अर्थात् जिसका चित्त भगवत् चरित्र से द्रवीभूत हो उसी का अत्यन्त आदर होता है। कठोर चित्तवाले का वैसा आदर नहीं होता।

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जल जानू॥
मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए। रामघाट सब लोग नहाए॥३॥

अर्थ : रामजी के प्रेम के बिना ज्ञान की शोभा उसी भाँति नहीं होती जैसे बिना कर्णधार के जलयान की शोभा नहीं होती। मुनिजी ने अनेक प्रकार से विदेह राजा को समझाया। सब लोगों ने रामघाट पर स्नान किया।

व्याख्या : निरुपास्ति ज्ञान से पतन होता है। इसलिए सोपास्ति ज्ञान की ही प्रशंसा है। यथा : जे ज्ञान मान बिमत्त तव भय हरनि भगति न आदरी। ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी। ज्ञान और भक्ति से वही सम्बन्ध है जो नाव और कर्णधार में है। नाव मनुष्य को जल में डूबने नहीं देगी। पर वह स्वयं लक्ष्य स्थान प्राप्ति कराने अर्थात् पार पहुँचाने में असमर्थ है। कर्णधार ही उसे पार पहुँचा सकता है। इसी भाँति ज्ञान साधक को भवसागर में डूबने से बचा सकता है। पर उसके पार नहीं पहुँचा सकता। पार तो भक्ति ही पहुँचावेगी। यथा : बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तब जे होइ रहे। जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे। भाव यह कि जनकजी का ज्ञान सोपास्ति ज्ञान था।

वसिष्ठजी ने बहुत प्रकार से विदेहराज को समझाया। यथा :

जनम होत नृप मरन हित मरन जनम हित होय।
चला चली चहुँदिसि लखिय थिर कतहूँ नहिं कोय॥

---

१. आत्माराम मुनिगण, जिनकी चिज्जड़मयी ग्रन्थि छूट गयी है वे भी भगवान् में निष्कारण भक्ति करते हैं। क्योंकि भगवान् के गुण ही ऐसे हैं।

थिर मानै गन्धर्वपुर दामिनि सरद पयोद।
सो थिर मानि शरीर को करै विनोद प्रमोद॥
गिरिहु गिरत तारा खसत सूख जाति जल राशि।
ध्रुवहु अध्रुव जग होत है कतहुँ न कोउ अविनाशि॥
शशक श्रृंग वन्ध्या तनय मृगजल सम जग जानि।
दुख सुख सम करि जानिये, किये शोक हित हानि॥
तुमसे ज्ञान विधान को उचित न करन विषाद।
जानत हौ एहि जगत को तीन काल मे बाध॥
सत्यसन्ध दसरथ नृपति, धर्म निरत जग जान।
तीनि काल तिहु भुवन में नहिं कोउ तासु समान॥
शोचनीय सो होइ नहिं मनम्रह करहु बिचार।
करि विवेक धीरज धरहु ज्ञानिन्ह के सरदार॥

शोक भी एक प्रकार का सूतक है। अतः सबने रामघाट पर स्नान किया। जहाँ सरकार एक बार स्नान करते हैं उस घाट का नाम रामघाट पड़ जाता है। सरकार के स्नान से तीर्थ का उत्कर्ष बढ़ जाता है। शृङ्गवेरपुर में भी इसी भाँति रामघाट नाम पड़ा। यथा: रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू।

सकल सोक संकुल नर नारी। सो बासरु बीतेउ बिनु बारी॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौन बिचारू॥४॥

अर्थ: सब नरनारी शोक से परिपूर्ण थे। वह दिन बिना जल के ही बीत गया। पशु पक्षी और मृगों ने भी कुछ न खाया। प्रिय परिजन की तो बात ही क्या है?

व्याख्या: लोगों का शोक ऐसा बढ़ गया था कि उस दिन किसी ने जल भी ग्रहण नहीं किया। यद्यपि मुनि लोगों ने बहुत उपदेश दिया। फिर भी शोक का दृढ़ संस्कार मिटा नहीं। दोनों समाज के भेंट हो जाने से चोट ताजी हो गयी। उसका प्रभाव वातावरण पर ऐसा पड़ा कि पशु खग मृग ने भी आहार ग्रहण नहीं किया। यहाँ पशु से अभिप्राय सेना के हाथी घोड़ों से है और खग मृग से अभिप्राय वन्य पशु पक्षी से है। जब इन लोगों की ऐसी दशा हुई तब सगे सम्बन्धियों के लिए यह कहना कि उन्होंने भी जल नहीं ग्रहण किया: व्यर्थ है।

दो. दोउ समाजु निमिराजु रघु, राजु नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर, मन मलीन कृस गात॥२७७॥

अर्थ: महाराज़ जनक और रामचन्द्रजी तथा दोनों समाजों ने प्रातः स्नान किया और दोनों जाकर वटवृक्ष के नीचे बैठे। उनके मन मलिन थे और शरीर दुर्बल था।

व्याख्या : रात में दोनों समाज में से किसी को नींद नहीं आयी। शोक से भूख नींद जाती रहती है। सवेरा होने की देर थी। सबने स्नानादि नित्य कर्म किये। तत्पश्चात् वट के पेड़ तले इकट्ठे हुए। वटवृक्ष का ही इतना बड़ा होना सम्भव है कि जिसके नीचे दो राजसमाज एकत्रित हो सकें। मन की खिन्नता का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि कल जो हट्टे कट्टे थे यथा : जल ज्यौं दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम : वे ही आज कृशगात हो गये हैं। दृढ़ मूलक शोक का संस्कार मुनियों के उपदेश से भी नहीं मिटा। स्नान करने पर भी मन मलिन हो रहे हैं।

जे महिसुर दसरथ पुर बासी। जे मिथिलापतिनगर निवासी ॥
हंस बंस गुर जनक पुरोधा। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा ॥१॥

अर्थ : दशरथपुर के रहनेवाले जो ब्राह्मण थे और जो जनकपुर के रहनेवाले थे तथा सूर्यवंश के गुरु तथा जनकजी के पुरोहित जिन्होंने संसार में परमार्थ का मार्ग ढूँढ़ निकाला था।

व्याख्या : जनकजी का आना सुनकर कल मुनि लोग आस पास से आगये थे। उन लोगों ने उपदेश किया था। आज वे लोग नहीं हैं और लोगों में केवल शोक का वेग रुक मात्र गया है। पर भीतर ज्यों का त्यों बना हुआ है। अतः अयोध्या तथा मिथिला के महीसुर जो मोहजनित संशय के हरण में समर्थ हैं वे लोग तथा सूर्यवंश के गुरु ज्ञाननिधि वसिष्ठजी तथा पुरोहित शतानन्दजी जिन्होंने संसार में परमार्थ पथ ठीक कर लिया है कि कैसा आचरण करने से जीव परमार्थ पथ में अग्रसर होता है।

लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका ॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी। समझाई सब सभा सुबानी ॥२॥

अर्थ : वे लोक धर्म नीति वैराग्य और विवेक युक्त अनेक उपदेश कथन करने लगे। विश्वामित्रजी ने अनेक पुरानी कथाओं को कहकर सम्पूर्ण सभा को सुन्दर वाणी से समझाया।

व्याख्या : जनकपुर के लोगों को वहाँ के ब्राह्मण, अयोध्या के रहनेवालों को अयोध्या के ब्राह्मण, अयोध्या के राज घराने को वसिष्ठजी तथा मिथिला के राज-घराने को शतानन्दजी उपदेश करने लगे। इन लोगों को परमार्थ का रास्ता मालूम था। अतः इनके उपदेश का प्रभाव पड़ा। पहिले विषादयोग होता है। तब ज्ञानयोग के उपदेश का अवसर उपस्थित होता है। विषण्ण होकर आर्त्त हो गये थे। अतः इनमें उपदेश की पात्रता आगयी थी। अधिकारानुसार कहीं धर्म नीतिका उपदेश हो रहा है। यथा : सोचनीय नहिं कोसल राऊ। भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ। कहीं विरति का उपदेश। यथा : राम बिरह तजि तन छन भंगू। भूप सोच कर कौन प्रसंगू। कहीं ज्ञान का। यथा : जो तनु धरौं तजौं पुनि अनायास हरि जान। जिमि नूतन पट पहिरै नर परिहरै पुरान।

पीछे से विश्वामित्रजी ने पुरानी कथाएँ, हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीचि, रन्ति-देवादि की कथाएँ कहकर सम्पूर्ण सभा को समझाया कि धर्माचरण में जितना ही कष्ट होता है उतना ही अनुष्ठाता के पुण्य का उत्कर्ष है। विश्वामित्रजी का समझाना। यथा :

आया है सो जायगा सुनहु सभासद वृंद।
यहाँ शोक करना नहीं कोई भी स्वच्छन्द॥
वे हैं धन्य जो धर्म के लिए उठाते कष्ट।
उनका जीना व्यर्थ जो धर्म पन्थ से भ्रष्ट॥
सत्य न छोड़ा भूप ने दिया देह को छोड़।
दुनिया में हो गया इक नृप दशरथ बेजोड़॥
तौल तराजू पर दिया काटि काटि निज मांस।
गुरुता बढ़ी कपोत की शिबि नहिं हुए उदास॥
गये काटते अन्त तक काँप उठा संसार।
कठिन परिक्षा धर्म की धन्य जो पावे पार॥
राज गया रानी बिकी बिके डोम के हाथ।
हरिश्चन्द्र फिर भी नहीं तजे धर्म का साथ॥
वामन ने बलि को ठगा बलि ने तजा न धर्म।
नाप दिया निज देह को कठिन धर्म का मर्म॥
बढ़ी विरह ज्वाला बड़ी जल भुन गया शरीर।
सत्य न दशरथ तज सके ऐसे थे मति धीर॥
ऐसे राजा की प्रजा होकरके तुम लोग।
शोक तजो धीरज धरो नश्वर सुख दुख भोग॥

तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ। हाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढाई॥३॥

अर्थ : तब रघुनाथजी ने विश्वामित्रजी से कहा कि हे नाथ! कल सब लोग निर्जल रह गये। मुनिजी ने कहा कि रघुनाथजी ठीक कहते हैं। ढाई प्रहर दिन भी बीत गया।

व्याख्या : सबका सोच रघुनाथजी को है। यथा : सानुज भरत सचिव सब माता। देखि माहि पल जिमि जुग जाता : विश्वामित्रजी का उपदेश समाप्त होते ही सरकार ने उनसे कहा कि सबको भोजन करने के लिए आज्ञा दोजिये। कल किसी ने पानी तक नहीं पीया है। अतः क्षुधातृषा भी चित्त के दुःख बढ़ाने में सहायक है। प्राप्त तो यह था कि आज लोग नित्य की अपेक्षा सवेरे ही भोजन करते।

श्री रघुनाथजी का आशय समझकर मुनिजी महाराज जनक की ओर अभिमुख होकर कहते हैं कि श्री रामजी का कहना उचित है। कल का दिन तो बीता ही

आज भी मध्याह्न से ऊपर आधा पहर बीत गया। मध्याह्न तक भोजन कर लेने का विधान है।

रिषि रुख लखि कह तेरहुति राजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू॥
कहा भूप भल सबहिं सोहाना। पाइ रजायसु चले नहाना॥४॥

अर्थ : ऋषिजी का रुख देखकर विदेहराज ने कहा कि यहाँ अन्न खाना उचित नहीं। सबको यह बात अच्छी लगी। कहने लगे कि महाराज ठीक कहते हैं और राजा की आज्ञा पाकर नहाने चले।

व्याख्या : विश्वामित्रजी का आशय : कि अब सब लोगों को भोजन करना चाहिए। समझकर महाराज जनक बोले कि यहाँ आश्रम में जहाँ कि श्रीरामजी कन्द मूल फल खाते हैं। हम लोगों का अन्न खाना ठीक नहीं हैं। यह बात सबको ठीक जँची। सब कहने लगे कि महाराज ठीक कह रहे हैं। सब लोग आज्ञा माँग माँगकर मध्याह्न स्नान के लिए चले। तीर्थ में आने से सब लोग त्रिकाल स्नान मन्दाकिनी में करते हैं। यथा : मन्दाकिनी मज्जन तिहुँकाला।

दो. तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार।
लै आये बनचर बिपुल, भरि भरि काँवरि भार॥२७८॥

अर्थ : उसी समय बहुत से वनवासी कोल भील फल फूल मूल अनेक प्रकार के भारों : बहँगियों में भर भरकर ले आये।

व्याख्या : उधर कोल भिल्लों को आतिथ्य सत्कार की चिन्ता लगी। सो उन लोगों ने बहुत फल फूल कन्द मूल इकट्ठे किये जिसमें सारे समाज का सत्कार हो सके। आतिथ्य सत्कार तो अवधवासियों से पहले ही स्वीकार करा चुके हैं। यथा : तुलसी कृपा रघुवंस मनि की लोह लै लौका तिरा। सो उसी समय जबकि लोग नहाने चले वे सब बहँगियों में भर भरकर कन्द मूल फलादि ले आये।

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनद अनुरागा॥१॥

अर्थ : रामजी के प्रसाद से पर्वत कामदायक हो गया। उसके देखने से विषाद जाता रहता था। तालाब नदी वन और भूमि का विभाग ऐसा था कि मानो आनन्द और अनुराग उमड़ा पड़ता है।

व्याख्या : अब प्रश्न यह उठता है पर्वत पर इतना कन्द मूल फल कहाँ से आगया कि दोनों समाज के लिए यथेष्ट हो। इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि रामजी के प्रसाद से वह पर्वत कामद हो गया। कामधेनु कामतरु तो सुना था पर कामद गिरि सुनने में नहीं आया। रामजी के प्रसाद से उस पर्वत में कामनापूर्ण करने की शक्ति आगयी। जिसने जो कन्द मूल फल जिस परिणाम में चांहा उसे वह उसी परिणाम में मिला और मनोहर ऐसा हो गया कि उसके देखने से विषाद का नाश

हो जाय। सब लोग विषण्ण थे। मुनियों के समझाने बुझाने से धैर्य बँधा था। अतः उन पर अनुग्रह करके सरकार ने ऐसी शक्ति पहाड़ को दी। सर शैल विपिन विभाग में ऐसी शोभा होती है कि उसके देखने से भगवत् चरणों में अनुराग उपजता है। यथा : निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा। यहाँ भगवत् कृपा से ऐसी शोभा हुई कि उन विभागों से मानों आनन्द और अनुराग उमगा पड़ता है।

बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला ॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू ॥२॥

अर्थ : लताएँ और वृक्ष फल और फूल से युक्त हो गये। खग मृग और भौंरे अनुकूल बोलते थे। उस अवसर पर वन में अधिक उछाह था। शीतल मन्द सुगन्ध वायु सबको सुख देनेवाली बहती थी।

व्याख्या : ऋतु और कुऋतु की कालगति का उल्लङ्घन करके सभी वेलि विटप पुष्पित और फलित हो गये। इससे वन का कामदातृत्व कहा और खग के अनुकूल बोलने से उसका मनोहरत्व कहा। उस वन में तो सदा उछाह रहता था। यथा : अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा। परन्तु इस अवसर में उछाह बढ़ गया। यहाँ तक कि जेठ के महीने में शीतल मन्द सुगन्धि युक्त वायु चलने लगी। वन का वातावरण ऐसा हो गया कि उसका प्रभाव बिना लोगों पर पड़े न रह सके।

जाइ न बरनि मनोहरताई। (जनु महि करत जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई)। राम जनक मुनि आयसु पाई ॥३॥

अर्थ : वहाँ की सुन्दरता का वर्णन नहीं की जा सकती : मानो पृथ्वी जनक आतिथ्य सत्कार कर रही हो। तब सब लोग स्नान करके रामजी जनकजी और मुनिजी की आज्ञा पाकर।

व्याख्या : अवलोकत अपहरत बिषादा : से इस प्रसङ्ग का उपक्रम करके : जाइ न बरनि मनोहरताई : से यहाँ उपसंहार करते हैं। कोष्ठान्तर्गत पद राजापुर के प्रति में नहीं है और खटकते भी हैं। जाइ न बरनि मनोहरताई : कहने से स्पष्ट है कि यहाँ मनोहरता का वर्णन समाप्त हो गया। जाइ न बरनि मनोहरताई के पहिले ही उत्प्रेक्षा के लिए अवसर था। वर्णन समाप्त करने के बाद उत्प्रेक्षा से उसी प्रसङ्ग को उठाना शोभा नहीं देता। अतः इसे मैं क्षेपक मानता हूँ।

देखि देखि तरुबर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा समाना ॥४॥

अर्थ : श्रेष्ठ वृक्षों को देखकर पुरजनों को अनुराग हुआ और वे जहाँ तहाँ

उतरने लगे। पत्ते फल मूल और कन्द अनेक प्रकार के जो पवित्र सुन्दर और अमृत से स्वादिष्ट थे।

व्याख्या : पहिले कह चुके हैं : सुरतरु सरिस सुभाय सोहाये। मनहु बिबिध बन परिहरि आये। सो सभी वृक्ष कल्पवृक्ष से हैं। जिसे देखते हैं उसी के नीचे ठहरने की इच्छा हो रही है। अतः अनुराग से जहाँ तहाँ लोग पेड़ों के नीचे उतरने लगे। वन की सम्पत्ति दिखलाते हैं कि इसमें अनेक प्रकार के पत्ते ऐसे हैं, मूल ऐसे हैं, कन्द ऐसे हैं कि इनका स्वाद अमृत सा है। देखने में भी सुन्दर हैं और मेध्य हैं।

दो. सादर सब कहँ रामगुर, पठए भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर, लगे करन फलहार ॥२७९॥

अर्थ : आदर के साथ सबके पास रामजी और गुरुजी ने भार भर भर कर भेजा। सो देव पितृ अतिथि पूजन के बाद सब लोग फलाहार करने लगे।

व्याख्या : पहिले ही निर्णय हो चुका है कि यहाँ अन्न न खाना चाहिए। अतः अर्थापत्ति हुई कि सभी लोग फल फूल खायेंगे। फल फूल भी यथेष्ट परिमाण में कोल भील आदि ले आये। रामजी को सबके खाने पीने की चिन्ता है। गुरुजी को भी चिन्ता है। यथा : चिन्ता गुरुहि नृपहि घर बन की। ये ही दो महात्मा मुखिया हैं। अतः इन लोगों ने जहाँ तहाँ लोग उतरे हैं उनके डेरों पर जितने मनुष्य हैं उनके परते से यथेष्ट फल मूलादि काँवर में भर भरकर आदर के साथ भिजवाया। अवधपुरवासी और जंनक पुरवासी सब धर्मात्मा हैं। शास्त्रानुकूल आचरणवाले हैं। उन्होंने बलिवैश्वदेवादि पञ्चयज्ञ करके अतिथि सत्कार करके तब यज्ञशिष्ट फलाहार करने लगे। यथा : यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः[१]।

एहि बिधि बासर बीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी ॥
दुहु समाज असि रुचि मन माँहीं। बिनु सियराम फिरब भल नाँहीं ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार चार दिन बीत गये। सब नर नारी रामजी का दर्शन करके सुखी हैं। दोनों समाज के मन में यह रुचि है कि बिना रामजानकी के लौटना ठीक नहीं है।

व्याख्या : उपक्रम किया था : अस मन आनि मुदित नर नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी। यहाँ उसी प्रकरण का उपसंहार कहते हैं कि वे चार दिन इस प्रकार से बीत गये। कोल भील आदि दल फल फूल लाते थे। जो सबके पास यथेष्ट मात्रा में पहुँच जाता था। लोग फलाहार कर लेते थे और सरकार के दर्शन से सुखी थे। यथा : सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंदु निहारी।

कोई चलने की चर्चा नहीं करता। क्योंकि सबके मन में यही बात है कि

———

१. यज्ञशिष्ट भोजन करनेवाले सब पापों से छूट जावे है।

रामजानकी को लेकर ही चलना चाहिए। बिना इन्हें लिये चलने से वनवास ही ठीक है। केवल अवधवासी ही नहीं जनकपुरवासो का भी यही निर्णय है।

सीता राम संग बनबासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू ॥
परिहरि लखन राम बैदेही। जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही ॥२॥

अर्थ : रामजानकी के साथ वनवास करने में करोड़ स्वर्ग के समान सुख है। राम लक्ष्मण और जानकीजी को छोड़कर जिसे घर अच्छा लगे उसको ब्रह्मा बायें है।

व्याख्या : प्रिय के साथ दुःख की सामग्री भी सुखद प्रतीत होती है और प्रिय के विरह में सुख की सामग्री भी महा दुःखद हो जाती है। वनवास महा दुःखद है। यथा : डरपहिं धीर गहन सुधि आये। सो दोनों समाज को कोटि स्वर्ग के समान सुखद जँच रहा है। कहते हैं कि जिस अभागे को राम लखन वैदेही को छोड़कर घर अच्छा लगे तो समझ लेना चाहिए कि विधाता बायें हो गये हैं। विधाता के बायें होने से ही स्वभाव पलटता है। यथा : भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। तथा : प्रान प्रान के जीव के जिअ सुख के सुख राम। अतः स्वभाव से ही राम सबको प्यारे हैं। जिन्हें घर प्यारा लगा निश्चय उसका स्वभाव पलट गया। अवश्य उसके प्रतिकूल ब्रह्मदेव हो गये। ऐसा दोनों समाज ने निश्चय कर लिया।

दाहिन दइव होइ जब सबहीं। राम समीप बसिअ बन तबहीं ॥
मंदाकिनि मज्जन तिहुँ काला। राम दरसु मुद मंगल माला ॥३॥

अर्थ : जब सभी को दैव अनुकूल हो तब रामजी के समीप वन में रहना हो। तीनों काल में मन्दाकिनी का स्नान और रामजी का दर्शन तो आनन्द मङ्गल की माला है।

व्याख्या : इस समय सबको दैव अनुकूल हैं। तब हम लोग सब राम के समीप वन में बस रहे हैं। रामजी के सान्निध्य में सुख है। नहीं तो न घर में सुख है न वन में है। यथा : सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंद निहारी। क्योंकि राम ही आनन्द सिन्धु सुखराशि हैं। उन्हीं के सुखलेश से सब सुखी होता है। अमरपुर में पुण्य क्षीण होता है और मन्दाकिनी में मज्जन करने से पाप क्षीण होता है। यथा : सुरसरि धार नाम मन्दाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि। सो मन्दाकिनी का मज्जन हम लोगों को तीनों काल में हो रहा है। यहाँ रामदर्शन और मन्दाकिनी मज्जन दोनों सुलभ हैं। मानो हम लोग मुदमङ्गल की माला का उपभोग कर रहे हैं।

अटनु राम गिरि बन तापस थल। असनु अमिअ सम कद मूल फल ॥
सुख समेत संबत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता ॥४॥

अर्थ : रामगिरि, रामवन तथा तपस्वियों के आश्रम में घूमते और कन्द मूल खाते चौदह वर्ष तो पल के समान बीत जायँगे। जाते हुए मालूम भी न पड़ेंगे।

व्याख्या : राम सैल बन देखन जाँहीं। जहँ सुख सकल सकल दुःख नाँहीं। कन्द मूल फल अमिअ अहारू। औध सौध सत सरिस पहारू। ये लोग नित्य रामशैल और रामवन में घूमते हैं और कन्द मूल फल खाते हैं और परम सुखी हैं। सुख के दिन बीतते देर नहीं लगती। अतः कहते हैं कि चौदह वर्ष ऐसे आनन्द से बीतेंगे कि मालूम भी न होगा कि इतने दिन बीत गये। घर की सुधि भी न आवेगी। विश्वामित्रजी को मेनका के साथ कई सहस्र वर्ष बीत गये और उन्हें कुछ भी पता न चला। चौदह वर्ष का बीतना प्रियतम प्राण धन रामजी के साथ बीतते का क्या पता चलेगा।

दो. एहि सुख जोग न लोग सब, कहहिं कहाँ अस भागु।
सहज सुभायँ समाज दुहुँ, राम चरन अनुराग ॥२८०॥

अर्थ : इस सुख के योग्य सब लोग नहीं हैं। ऐसा भाग्य कहाँ है ऐसा लोग कह रहे हैं। सहज स्वभाव से ही दोनों समाज को रामजी के चरणों में अनुराग है।

व्याख्या : अयोध्यावासी और जनकपुरवासी दोनों समाज आपस में कहते हैं कि रामजी के साथ वन बसनेवाला सुख इतने ऊँचे दर्जे का है कि इसके लिए बड़े भाग्य की आवश्यकता है। उतना बड़ा भाग हम लोगों का कहाँ? दोनों समाज को रामजी के चरणों में स्वाभाविक प्रेम है उसमें कुछ भी बनावट नहीं है। अतः उन्हें विश्वास नहीं होता कि उनका भाग्य ऐसा होगा कि चौदह वर्ष रामजी के साथ रहने का अवसर प्राप्त हो सके।

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥
सीय मातु तेहि समय पठाईं। दासी देखि सुअवसरु आईं॥१॥

अर्थ : इस भाँति मनोरथ कर रहे हैं। उनके प्रेमयुक्त वचन सुनकर मन हरण हो जाता है। सीताजी की माता ने उस समय दासी भेजा। वह अच्छा अवसर देखकर आयी।

व्याख्या : लोगों के मनोरथ करने की विधि का प्रादेशमात्र दिखलाकर कहते हैं कि सब लोग इस विधि से मनोरथ करते हैं और सरलता के कारण उस मनोरथ को प्रेम के साथ स्पष्ट शब्दों में बोलते भी जाते हैं। सरलता और प्रेम में यह सामर्थ्य है कि वैसे वचन सुननेवाले का मन हरण कर लेते हैं।

महाराज जनकजी के साथ सीताजी की माता महारानी सुनयना भी आयी हुई हैं। इधर कौसल्यादि रामजी की माता आयी हैं। मिलना आवश्यक है। सम्बन्ध के अनुसार पुछार : मातमपुरसी के लिए महारानी सुनयना का मिलने के लिए आना आवश्यक है। अतः सुनयनाजी ने दासी भेजा कि जब वह देख ले कि कौसल्यादि महारानियों को फुरसत है तब आकर खबर दे। उनसे कहे न, नहीं तो

वे लोग आवश्यक कार्य को भी छोड़कर मिलने के लिए समय निकाल लेंगी। सो दासी ठीक अवसर देखकर लौट आयी।

सावकास सुनि सब सिय सासू। आयेउ जनक राज रनिवासू ॥
कौसल्या सादर सनमानी। आसन दिये समय सम आनी ॥१॥

अर्थ : सीताजी के सभी सासों को इस समय फुरसत है। यह बात सुनकर जनकराज का रनिवास आगया। कौसल्याजी ने आदर के साथ सम्मान किया और समय के अनुकूल आसन लाकर दिया।

व्याख्या : दासी ने पता पाकर कि इस समय कौसल्या आदि महारानियों को अवकाश है। जनकजी की सुनयना आदि रानियाँ मिलने आयीं। महाराज जनकजी को भी चार रानियाँ थीं। कालिका पुराण में इसका उल्लेख है। यथा : चतसृभिस्तु भार्य्याभियंज्ञार्थे दीक्षितोऽभवत्। जनकपुर की दासी है। इसलिए उसने सीताजी का सम्बन्ध दृष्टि में रखकर समाचार दिया कि सीताजी की सासों को इस समय अवकाश है।

इधर रामजी की माताओं में सबसे बड़ी और प्रधान कौसल्याजी हैं। अतः सत्कार करने में वे ही अग्रसर हुईं। राज्य पर होतीं तो बैठने के लिए सिंहासन की व्यवस्था होती। पर यहाँ वन में हैं। अतः इस समय जैसा सम्भव है वैसा आसन दिया।

सीलु सनेहु सकल दुहुँ ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा ॥
पुलक सिथिल तनु बारि बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन ॥३॥

अर्थ : दोनों ओर सबके शील और प्रेम को देखकर और सुनकर कठोर वज्र भी पिघल जाता था। सभी के शरीर पुलकित थे। शिथिल थे। नेत्रों में जल था। नख से पृथ्वी पर लिखती हुई सोचने लगीं।

व्याख्या : दोनों ओर की महारानियों में बड़ा शील है और साथ ही साथ स्नेह भी अति अधिक है। उन लोगों की दशा देखकर और वचन सुनकर वज्र ऐसा कलेजा भी द्रवीभूत हो जाय। यहाँ कुलिश शब्द का अर्थ कुलिश जैसा हृदय लक्षणा से किया जायगा। क्योंकि कुलिश का देखना सुनना नहीं बनता।

अत्यन्त स्नेह से सबका शरीर पुलकित है और शिथिल है। सबको सात्त्विक भाव हुआ है। अब शोक की मुद्रा कहते हैं। स्त्रियों का स्वभाव है कि जब सोच में होती हैं तो पैर के नख से पृथ्वी पर लिखती सी हैं : ऐसी हो बात कवि श्री जानकीजी के विषय में कह आये हैं। यथा : चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी। इत्यादि।

सब सिय राम प्रीति किसि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति ॥
सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पय फेनु फोर पबि टाँकी ॥४॥

अर्थ : सब सीताराम के प्रेम की मूर्ति सी थीं। मानो करुणा ही अनेक मूर्ति धारण करके सोच कर रही हो। सीताजी की माँ ने कहा कि ब्रह्मदेव की मति टेढ़ी है। जो दूध के फेन को वज्र की टाँकी से फोड़ते हैं।

व्याख्या : सबका अन्तःकरण सीताराम के प्रेम से भरा हुआ एक रूप का हो रहा है और सभी करुणा कर रही हैं। अतः कवि कहते हैं कि मानो स्वयं करुणा ही ने अनेक रूप धारण कर लिया है।

चक्रवर्तीजी के देहावसान के बाद यह पहिली भेंट है। अतः समवेदना प्रकाश : मातमपुरसी का अवसर है। सीताजी की माता का वार्ता आरम्भ करना प्राप्त है और बात चक्रवर्तीजी के देहावसान सम्बन्धी ही होनी चाहिए और इस विषय के उठाने में कैकेयी का नाम लेना ही पड़ेगा। कैकेयीजी उपस्थित भी हैं। अतः किस भाँति वार्ता आरम्भ की जाय? यहाँ पर हिन्दू संस्कृति का दृश्य कवि ने खोलकर दिखलाया है। सीताजी की माता कहती हैं कि ब्रह्मदेव की बुद्धि बड़ी बाँकी है। वे दूध के फेन को वज्र की टाँकी से फोड़ते हैं। इतने में ही भगवती सुनयना को जो कहना था सो कह दिया : ब्रह्मदेव को बुद्धि बाँकी है कहकर ब्रह्मदेव पर आक्षेप किया कि यह करणी ब्रह्मदेव की है। उन्हीं के बिगाड़ने से सब बिगड़ा। दूसरे किसी का इसमें दोष नहीं है। दूध का फेन तो मुख के श्वास से फूट सकता था। महारानी कैकेयी के भरत को राज्य माँग लेने से ही रामजी का अभिषेक टल सकता था। अन्यत्र राज्य सुख को दूध से उपमित भी किया है। यथा : भामिनि भयउ दूध कै माँखी। उस दूध के फेन को ब्रह्मदेव ने वज्र की टाँकी से फोड़ा। अर्थात् रामजी के वनवास के साथ भरत को राज्य माँगा गया। रामजी का वनवास ही वज्र की टाँकी है। फल वही हुआ जो होना था। दूध का आधार पात्र भी नष्ट हो गया। अर्थात् चक्रवर्ती का देहावसान हो गया। चक्रवर्ती के देहावसान के समय वज्र की टाँको का दृश्य उपस्थित कर किया। यथा : भयउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउर सोर। बिपुल बिहँग बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोर।

दो. सुनिअ सुधा[1] देखिअहि गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काल उलूक बक, मानस सकृत मराल ॥२८१॥

अर्थ : अमृत सुना जाता है और विष देखा जाता है। सभी करणी उनकी कराल है। उलूक और बक तो सर्वत्र ही हैं। केवल मानस : सरोवर में हंस है।

व्याख्या : सुनने में राम राज्याभिषेक आया और देखने में वनवास आया। यही अमृत का सुना जाना और विष का दिखायी पड़ना है। यथा : का सुनाइ बिधि काह सुनावा। राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। इसका कारण यह है कि संसार काक उलूक से भरा पड़ा है। दुनिया में खल विषयी और राग द्वेष का ही बोलबाला है। विवेकी हंस तो दूर मानस सरोवर में सुने जाते हैं। भाव यह कि कुसङ्ग इस संसार में सुलभ

———

१. यहाँ ललित : अलङ्कार है।

है। सुसङ्ग तो भाग्य से ही बड़े परिश्रम से मिलता हैं। अर्थात् किसी रागद्वेषी खल प्राणी की मन्त्रणा से ही भगवती कैकेयी की बुद्धि विकृत हुई। काक मलिन उलूक अज्ञानी और बक दगाबाज मराल विवेकी माना जाता है। काक मन्द बुद्धि होता है। यथा : महामंद मति कारन कागा। मन्थरा जन्म से ही काक सी थी। यथा : नाम मनथरा मंद मति। सरस्वती के कारण उल्लू हो गयी। यथा : गई गिरा मति फेरि···करै बिचार कुबुद्धि कुजाती। होउ अकाज कौन बिधि राती। कैकेयीजी के पास जाते जाते बकी हो गयी। यथा : बर्कोहि सराहत जानि मराली। हंस भरत सो दूर थे। यथा : भरत हंस रबि बंस तड़ागा।

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा ॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बाल केलि सम बिधि मति भोरी ॥१॥

अर्थ : सुनकर सुमित्रा देवी सोच के साथ कहने लगीं कि ब्रह्मदेव की गति अत्यन्त विपरीत और विचित्र है। जो सृष्टि पालन करता है और फिर संहार कर देता है। बालकों के खेल की भाँति ब्रह्मदेव की मति भोली है।

व्याख्या : सुनयनाजी ने विधि की बुद्धि की वक्रता का वर्णन किया। सुमित्राजी उनकी गति का वर्णन करती हैं। संसार जिस गति से चलता है। उससे विधि की गति विपरीत है। संसार में विष वृक्ष को भी लगाकर कोई नहीं काटता और व्यर्थ का काम कोई नहीं करना चाहता। ब्रह्मदेव सृष्टि करते हैं। अन्त में स्वयं उसका संहार कहते हैं। यह विधि की गति की गति की विपरीतता है और जिसका अन्त में संहार ही करना है उसकी सृष्टि करने से ही क्या लाभ है। यह विधि की गति की विचित्रता है। अतः कहना पड़ता है कि विधि की मति भोली है। जो अनहोनी बात हो जाती है वह विधि का ही करतब है। ऐसी सुन्दर रचना करके बिगाड़ दिया। दोनों महारानियों ने विधि का ही दोष ठहराया।

कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू ॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फलदाता ॥२॥

अर्थ : कौसल्याजी ने कहा कि किसी का दोष नहीं है। दुःख सुख हानि लाभ कर्म के अनुसार हुआ करता है। कठिन कर्म गति को विधि जानते हैं जो कि शुभ अशुभ फल दिया करते हैं।

व्याख्या : महारानी कौसल्या ने कहा कि किसी का दोष नहीं है। यथा : काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निजकृत कर्म भोग सब भ्राता। दुःख सुख हानि लाभ सब अपने किये हुए कर्मों का फल है। विधाता सबके पूर्वाजित शुभाशुभ कर्मों को जानते हैं और तदनुसार फल देते हैं। यथा : कालरूप तिन कह मैं ताता। सुभ अरु असुभ करम फल दाता।

ईस रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय बिषहु अमी के ॥
देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी ॥३॥

अर्थ : ईश्वर की आज्ञा उत्पत्ति पालन संहार अमृत और विष सभी के सिर हैं। हे देवि ! मोह के वश व्यर्थ ही सोच करना है। विधाता का प्रपञ्च अनादिकाल से अटल है।

व्याख्या : ईश्वर की आज्ञा टल नहीं सकती। वह होकर ही रहती है। यथा : हरि इच्छा भावी बलवाना ! हृदय सराहत संभु सुजाना। तथा : गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई। गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही। तथा : मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना। मित्र करै सतरिपु कै करनी। तात कहँ बिबुध नदी बैतरनी। सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता। सिद्ध है कि ईश्वर की आज्ञा ही उत्पत्ति स्थिति लय विष अमृत सबको मान्य है। अतः शोक करना व्यर्थ है। अनादि काल से कर्म जाल में उलझे हुए जीव दुःख पा रहे हैं और इसी भाँति संसार सदा चलता रहेगा। सृष्टि के बाद लय और लय के बाद पुनः सृष्टि इस प्रकार संसार प्रवाहरूपेण नित्य है। शोक करने का कोई फल नहीं है।

भूपति जिअब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हित हानी ॥
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी ॥४॥

अर्थ : महाराज का जीना मरना याद करके जो सोच होता है वह अपने हित की हानि देखकर होता है। सीताजी की माता ने कहा कि पुण्यवानों की सीमा अवध नरेश की महारानी की सुन्दर वाणी सत्य है।

व्याख्या : अपने स्वार्थ की हानि हुई। इसीलिए महाराज के मरने जीने का सोच है। जिससे जिनके स्वार्थ की हानि नहीं होती उसके जीने मरने का कोई परवाह नहीं करता। संसार स्वार्थ के वशीभूत है। नवा[1] अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।

यह सुनकर सीताजी की माता ने कहा कि महाराज सुकृतियों के शिरोमणि थे। आप उनकी सहधर्मिणी हैं। आपने जो सुन्दरवाणी कही वही सत्य है। हम लोगों का कथन तो केवल शोकोद्गार मात्र था।

दो. लखनु रामु सिय जाँहु बन, भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हिय कह कोसिला, मोहि भरत कर सोचु ॥२८२॥

अर्थ : गह्वर हृदय से कौसल्याजी ने कहा कि लक्ष्मण और राम सीता वन जायँ। इसका परिणाम अच्छा है बुरा नहीं। पर मुझे तो भरत का सोच है।

व्याख्या : कौसल्याजी ने पहिले से ही सन्तोष कर रक्खा है। यथा : जाउ सुखेन बनहि बलि जाऊँ। राखहुँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धर्म जाइ अरु बंधु बिरोधू।

---

१. याज्ञवल्क्यजी ने कहा कि हे मैत्रेयी ! पति की कामना से पति प्रिय नहीं होता। आत्मा की कामना से पति प्रिय होता है।

तथा : अस बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेह बढ़ाइ इत्यादि। अतः कहती हैं कि लक्ष्मण और राम जानकी वन जायँ। क्योंकि इसका परिणाम अच्छा है। चौदह वर्षं के बाद ये लोग लौट आवेंगे। संसार में इनका यश होगा। परन्तु मुझे भरत का सोच है। भाव यह कि जैसी वाणी भरतजी बोल बैठते हैं ऐसी ही वाणी इनके पिता के मुख से निकलती थी। यथा : सो सुत बिछुरत गये न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना। भरत भी ऐसी ही वाणी बोलते हैं। यथा : मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठि बात सब सुनउँ सचेतू। बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू। जौं प्रिय बिरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे। इत्यादि। अतः मुझे भरत का सोच है कि कहीं यह लड़का भी बाप की भाँति धोखा न दे देवै।

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधूँ देवसरि बारी॥
राम सपथ मैं कीन्ह न काऊ। सो करि कहौं सखी सति भाऊ॥१॥

अर्थ : ईश्वर की कृपा से और आपके आशीर्वाद से बेटे और बहुएँ गङ्गाजल हैं। रामजी की शपथ मैंने कभी नहीं की। सो उनकी शपथ करके मैं सच्चे भाव से कहती हूँ।

व्याख्या : ऐसी परिस्थिति में कल्मष हृदय में आ ही जाता है। परन्तु भगवत् कृपा और आपके : अर्थात् भागवत के आशीर्वाद से बेटे और बहुएँ गङ्गा जल की भाँति निर्मल और पवित्र हैं। उनके हृदय में किसी प्रकार के कल्मष का प्रवेश नहीं हुआ। जैसे गङ्गाजल की पवित्रता में विकार नहीं आता। उसमें कीड़े नहीं पड़ते। इसी भाँति बेटे और बहुओं के हृदय में न विकार है न होने की सम्भावना है। अर्थात् इस काण्ड के उपस्थित होने पर भी परम प्रीति बनी हुई है।

इसी प्रीति का उदाहरण देते हुए भरतजी की प्रशंसा का उपक्रम कहते हुए कहती हैं कि मैंने कभी भी रामजी की शपथ नहीं ली। महाराज तो कभी ले भी लेते थे। यथा : भामिनि राम सपथ सत मोही। सो आज मैं रामजी की शपथ लेकर कहती हूँ। ऐसे शपथ लेने की यह आवश्यकता है कि इस समय भरत की बड़ाई करने में मेरी चतुरता का ध्यान सुननेवाले के मन में आ सकता है। अतः सत्यता की दृढ़ता के लिए कहती हूँ। सखी सम्बोधन का यह भाव है कि आप से कोई छिपाव नहीं है अथवा यदि कोई मुझमें त्रुटि हो तो आपको सुधारने का अधिकार है।

भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥२॥

अर्थ : भरतजी के शील, गुण, विनय, बड़ाई, भाईपन, भक्ति, भरोस और भलाई को कहते हुए सरस्वती की बुद्धि भी हिचक जाती है। जैसे सीप से समुद्र उलचा नहीं जा सकता।

व्याख्या : भरत का शील देखिये कि अट्ठाईस वर्ष के हुए। अभी रामजी के सामने नहीं देखते। बोलने में भी सङ्कोच करते हैं। यथा : महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन। दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पियासे नैन। इसी भाँति भरतजी के गुण, विनय, बड़ाई, भाईपन, भक्ति और भलाई का उत्कर्ष है।

गुण। यथा : निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेरसम कबिकुल मति सकुचानि ॥

विनय। यथा : भरत कमलकर जोरि धीर धुरन्धर धीर धरि।
बचन अमिय जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहिं ॥

बड़ाई। यथा : और करै को भरत बड़ाई।
सरसी सीप कि सिन्धु समाई ॥

भायप। यथा : सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना।
भयउ न भुवन भरत सम भाई ॥

भगति। यथा : तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू।
धरे देह जनु राम सनेहू ॥

भरोस। यथा : आपन जानि न त्यागिहैं मोहि रघुबीर भरोस।

भलाई। यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीखा।
बिधि प्रपंच मह सुना न दीखा ॥

भरतजी के इन भावों का वर्णन सरस्वती भी नहीं कर सकतीं। मनुष्य की क्या गिनती है। जैसे सीप से समुद्र नहीं उलचा जा सकता। यथा : बिधि हरिहर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकै निहारी।

जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा ॥
कसें कनकु मनि पारिख पाएँ। पुरुष परिखिअहि समय सुभाएँ ॥३॥

अर्थ : बार बार चक्रवर्तीजी ने कहा है कि मैं तो सदा भरत को कुलदीप जानता हूँ। सोना कसे जाने प्र और मणि परखनेवाले के मिलने पर और पुरुष काम पड़ने पर स्वभाव से परखा जाता है।

व्याख्या : कौसल्याजी इसके प्रमाण में चक्रवर्तीजी के वचन को उद्धृत करती है कि एक बार नहीं बार बार मुझसे महाराज ने कहा है कि भरत कुल का दीप है। भाव यह कि जिस भाँति अन्धकार में दीप से ही काम चलता है। इसी भाँति कुल की विपत्ति के दूर करने का काम भरत से ही सम्भव है।

सोना के खरेपन का पता बिना कसे नहीं लगता। मणि की बहुमूल्यता का पता बिना जौहरी के नहीं लगता। इसी भाँति पुरुष की उत्तमता का पता बिना विपत्ति में उसके स्वभाव को देखे नहीं चलता। सो आज मालूम हो रहा है कि महाराज का कथन कितना सत्य था।

अनुचित आजु कहब अस मोरा । सोक सनेह सयानप थोरा ।।
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी । भई सनेह बिकल सब रानी ।।४।।

अर्थ : आज मेरा ऐसा कहना अनुचित है । क्योंकि : इसमें शोक, स्नेह और सयानापन थोड़ा है । गङ्गाजल के समान निर्मल वाणी सुनकर सब रानियाँ स्नेह से विकल हो गयीं ।

व्याख्या : कौसल्याजी कहती हैं कि यही बात आज यदि दूसरे के मुख से निकलती तो ठीक थी या दूसरे अवसर पर मैं ही कहती तो भी ठीक थी । क्योंकि इस समय ऐसा कहने का यह अर्थ लगेगा कि मुझे राम वनगमन का शोक कम है भरत का सोच है । अपना प्राण बड़ा प्यारा है उसे न छोड़ेंगी । स्नेह भी कम है । भरत की बाजी बीस देखकर रामजी से अधिक भरत पर प्रीति दिखला रही हैं । सयानापन भी थोड़ा है । क्योंकि लोग समझेंगे कि मैं भरतजी को बढ़ावा दे रही हूँ जिसमें भरतजी हठ करके रामजी को लौटा ले चलें । फिर भी मुझे ऐसा कहना पड़ता है । क्योंकि स्नेहाधिक्य के कारण भरतजी के विषय में मुझे भय हो रहा है ।

कौसल्याजी की ऐसी सरल वाणी जिसमें छल का स्पर्श नहीं सुनकर सब रानियाँ स्नेह से विकल हो गयीं कि ऐसे सरल को ऐसी विपत्ति ? अथवा भरत के स्नेह की अत्यन्त गम्भीरता सुनकर विकल हो गयीं ।

दो. कोसल्या कह धीर धरि, सुनहु देबि मिथिलेसि ।
को बिबेक निधि बल्लभहि, तुमहि सकइ उपदेसि ।।२८३।।

अर्थ : कौसल्याजी ने धैर्य धारण करके कहा कि हे मिथिलेश्वरी देवी ! सुनो । तुम विवेक के समुद्र महाराज विदेह की वल्लभा हो । तुम्हें कौन उपदेश दे सकता है ।

व्याख्या : सबके विकल होने पर कौसल्याजी धैर्य धारण करके महरानी सुनयना का धैर्य बँधाते हुए कहती हैं कि आप को कौन उपदेश दे सकता है ? आप विवेक के समुद्र महाराज जनक की वल्लभा हो । आप में भी वैसे ही गुण हैं । यदि न होते तो उनकी वल्लभा कैसे होती । आप स्वयं विचार पूर्वक धैर्य धारण करें । सुनयनाजी ने चक्रवर्तीजी की प्रशंसा करते हुए कहा था : सुकृती अवधि अवधपति रानी । यहाँ कौसल्याजी जनकजी की प्रशंसा करती हुई कहती हैं : को बिबेक-निधि बल्लभहिं तुमहि सकै उपदेसि ।

रानि राय सन अवसरु पाई । अपनी भाँति कहब समुझाई ।।
रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन । जौं यह मत मानइ महीप मन ।।१।।

अर्थ : हे रानी ! अवसर पाकर अपनी ओर से समझाकर महाराज से कहना कि भरतजी वन जायँ और लक्ष्मण रोक लिये जायँ उनका जाना ठीक नहीं । परन्तु यदि इस बात पर महाराज का मन माने तो : नहीं तो नहीं ।

व्याख्या : अवसर पर कही हुई बात कारगर होती है। अतः यह बात अवसर पाकर कहना। परन्तु मेरे सन्देश की भाँति नहीं कहना। नहीं तो महाराज उसे कर्तव्य मान बैठेंगे। उसे अपनी ओर से यदि समझाकर कहेंगी तो उस बात का ख्याल भी करेंगे और उचित अनुचित का विचार भी करेंगे।

लक्ष्मण का वन जाना अच्छा नहीं है। रामजी के साथ भरत का जाना ठीक है। बड़ी चूक हुई जो महाराज को वन नहीं भेजा गया। उस चूक से शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। भरत कहते हैं : न तरु फेरिअहि बन्धु दोउ नाथ चलौं मैं साथ। सो भरत साथ जायँ। यह मेरी सम्मति है।

तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरें सोचु भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेह भरत मन माँही। रहें नीक मोहि लागत नाँही॥२॥

अर्थ : तो विचार करके अच्छी तरह यत्न करना। मुझे भारी सोच भरत का है। भरत के मन में गूढ़ प्रेम : रामजी के प्रति है। उनका रहना मुझे अच्छा नहीं लगता।

व्याख्या : यदि यह बात महाराज को जँचे तो आप भी अच्छी तरह से विचार कर इस बात पर खूब जोर दे देना। जिसमें विचार कार्य में परिणत हो जाय। क्योंकि मुझे भरत का भारी सोच है। अत्यन्त प्रेमी का प्रेमपात्र के साथ रहने में ही भला है और भरत के मन में रामजी के प्रति गूढ़ प्रेम है। जितना प्रेम मालूम पड़ता है उससे कहीं अधिक है। इसलिए भरत का रहना मुझे अच्छा नहीं मालूम होता। मोहि भरत कर सोच : कहकर जिस बात का उपक्रम किया उसी का उपसंहार : मोरे सोच भरत कर भारी कहकर कर रही हैं।

लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइ मगन करुन रस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेह सिद्ध योगी मुनि॥३॥

अर्थ : स्वभाव देखकर और सरल सुन्दर वाणी सुनकर सब करुणरस में मग्न हो गयीं। आकाश से फूलों का झर लग गया और धन्य धन्य ध्वनि हुई। सिद्ध योगी मुनि स्नेह से शिथिल हो गये।

व्याख्या : सिवाय सच्चे स्नेही के और किसकी ताकत है जो कहे कि भरत का रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। सो कौसल्याजी का ऐसा स्वभाव देखकर और जैसा मन का भाव है ठीक वैसा ही बोलते देखकर सब रानियाँ प्रेम में मग्न हो गयीं।

कुटिल लोग इस बात का दूसरा ही अर्थ करेंगे। इस बात की परवाह न करके सीधे सीधे भरत का कल्याण देखनेवाली कौसल्या माता पर देवताओं ने पुष्पवृष्टि की और धन्य धन्य कहा। अर्थात् देवलोक में प्रशंसा होने लगी। देवता, सिद्ध, मुनि और योगियों को दूर श्रवण की सिद्धि है। अतः उन लोगों ने अपने अपने स्थान से ही सब बातें सुन ली। सो सिद्ध योगी और मुनि लोग तो स्नेह से शिथिल हो गये। धन्य धन्य भी नहीं कह सके।

सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ।।
देबि दंड जुग जामिनि बीती। राम मातु सुनि उठी सुप्रीती ।।४।।

अर्थ : सब रनिवास देखकर थकित रह गया तब धैर्य धरकर महारानी सुमित्रा ने कहा कि हे देवि! दो दण्ड रात बीत गयी। सुनकर रामजी की माता प्रीति के साथ उठ खड़ी हुई।

व्याख्या : कौसल्याजी का स्वभाव तथा सरल वाणी देखकर सब रानियाँ तो प्रेम में मग्न हो गयीं। तब सुमित्राजी ने धैर्य धारण किया और रात अधिक होते देखकर कहा कि देवि! दो दण्ड रात बीत गयी। भाव यह कि महाराज अन्त:पुर में पधारे होंगे और आप सब लोग यहीं हैं।

सुमित्राजी की बात सुनकर विदाई के लिए कौसल्याजी खड़ी हो गयीं। यह सबसे बड़ी हैं। इनके उठने से सारा दरबार उठ गया।

दो. बेगि पाउ धारिअ थलहि, कह सनेह सतिभाय।
हमरे तब अब ईस गति, कै मिथिलेस सहाय ।।२८४।।

अर्थ : अब आप शीघ्र डेरे पर पधारे। हमें तो अब ईश्वर का भरोसा है। या मिथिलाधीश सहायक हैं। यह बात स्नेह और सच्चे भाव से कहा।

व्याख्या : कौसल्याजी कहती हैं कि सेवाधर्म के सँभालने के लिए अब आप शीघ्रता करें और डेरे पर पधारें। भेंट होने का निष्कर्ष कहती हैं कि हम लोगों को या तो परमेश्वर का भरोसा है या मिथिलेश्वर का। भाव यह कि चक्रवर्तीजी के न रहने से हम लोग अनाथ हो गयीं। सिवा ईश्वर और मिथिलेश्वर के दूसरा सहायक नहीं दिखायी पड़ता। हेतु रहित उपकारी तो दो ही हैं। भगवान् और भागवत। यथा : हेतु रहित जुग जग उपकारीं। तुम तुम्हार सेवक असुरारी।

लखि सनेहु सुनि बचन बिनीता। जनकप्रियाँ गह पाँय पुनीता ।।
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी। दसरथ घरिनि राम महतारी ।।१।।

अर्थ : प्रेम देखकर और विनीत वचन सुनकर जनक को प्रिया ने पवित्र चरणों को पकड़ लिया। कहने लगीं : कि हे देवि! तुम्हारी ऐसी विनती उचित है। क्योंकि राजा दशरथ की गृहिणी हो और रामजी की माँ हो।

व्याख्या : महारानी कौसल्याजी ने जो बात कही उससे स्नेह और सत्य भाव टपक रहा था। सुनयनाजी ने ऐसा स्नेह देखकर और : हमरे तो अब ईसगति कै मिथिलेस सहाय। ऐसा विनययुक्त वचन सुनकर उनके चरण पकड़ लिये। चरण का विशेषण देते हैं पुनीत। भाव यह कि कौसल्याजी के चरण पवित्र हैं। उनके स्मरण से पाप छूटते हैं : विद्या का फल विनय है। नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति गुणिनो जनाः। शुष्ककाष्ठानि मूर्खाश्च न नमन्ति कदाचन। जो जितना बड़ा होता है उसमें उतना ही विनय होता है। अतः सुनयनाजी कहती हैं कि आप में ऐसा विनय होना

उचित ही है। स्त्रियों का परिचय पति और पुत्र से ही दिया जाता है। सो दोनों आपको बड़े महान् और बड़े विनयी मिले। अतः आप में ऐसा विनय होना प्राप्त है। महाराज दशरथ का ऐसा विनय कि जनकपुर की चिट्ठी को सिंहासन पर से उठकर हाथ में लिया। यथा : मुदित महीप आप उठि लीन्ही। रामजी का ऐसा विनय कि महाराज का आगमन सुनते ही उठकर खड़े हो गये। यथा : सहित सभा संभ्रम उठेउ रघुकुल कमल दिनेस।

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिन धूम गिरि सिर तिनु धरहीं ॥
सेवक राउ करम मन बानी। सदा सहाय महेसु भवानी ॥२॥

अर्थ : प्रभु अपने नीच का भी आदर करते हैं। अग्नि धूम को और पर्वत तृण को अपने सिर चढ़ाये रहते हैं। महाराज तो मनसा वाचा कर्मणा सेवक हैं। सहाय तो आपके सदा महेश भवानी हैं।

व्याख्या : सुनयनाजी कहती है कि आप ने जो कहा सो अपनी बड़ाई के अनुसार ही कहा। जिन्हें परमेश्वर प्रभुता देता है वे अपने से छोटे का आदर करते हैं। कहाँ अग्नि और कहाँ धूम। अग्नि तेजस्वी और धूम का आधार है। सो अपने आधेय अन्धकारमय धूम को अपने सिर पर धारण करता है। कहाँ महा गौरवयुक्त पर्वत और कहाँ अतिलाघवयुक्त तृण। सो भूधर अपने आधेय तथा सर्वथा उपेक्ष्य तृण को सिर पर स्थान देता है। जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू। यही नियम है। तदनुसार आप कह रही हैं! नहीं तो महाराज विदेह तो सेवक हैं। यथा : यह राज साज समाज सेवक जानवो बिनु गथ लये। महाराज आपकी सहायता क्या करेंगे। आपके सहायक तो सदा ही महेश भवानी हैं।

रउरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै ॥
रामु जाइ बनु करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू ॥३॥

अर्थ : आपकी सहायता के योग्य संसार में है कौन ? सूर्य का सहायक होना क्या दीप को शोभा देता है। रामजी वन जाकर देवताओं का कार्य करके अवधपुर में अचल राज्य करेंगे।

व्याख्या : सुनयनाजी कहती हैं कि महाराज विदेह सहायक नहीं सेवक हैं। संसार में ऐसा कौन है जो आपका सहायक होने योग्य हो। आपके सहायक महेश भवानी हैं। दीप सूर्य की कौन सी सहायता करेगा। आपका कार्य स्वयं सिद्ध है। रामजी जो वन जा रहे हैं सो देवताओं का कार्य सँवारने के लिए जा रहे हैं। वे अपनी इच्छा से जा रहे हैं। नहीं तो उन्हें राज्य से हटाकर वन भेजने में कौन समर्थ है। वहाँ से लौटकर वे अयोध्या में अचल राज्य करेंगे।

अमर नाग नर राम बाहुबल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल ॥
येह सब जागबलिक कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाषा ॥४॥

अर्थ : देवता नाग और मनुष्य रामजी के बाहुबल के सहारे सुख से अपने अपने स्थानों में बसेंगे। ये सब बातें महर्षि याज्ञवल्क्यजी ने पहिले ही कह रक्खा है। हे देवि ! मुनिजी का कहा अन्यथा नहीं हो सकता।

व्याख्या : इस समय तीनों लोक के निवासी दुःखी हैं। अपने अपने पद से च्युत हैं : रावण की भौंहे देखते रहते हैं। ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख वस वर्ती नर नारी। सो राम के बाहुबल से देव कण्टकों का उद्धार होगा। फिर से तीनों लोक के निवासी अपने अपने लोकों में सुख से बसेंगे। भाव यह कि रामजी का वनवास जग मङ्गल के लिए हो रहा है।

योगी याज्ञवल्क्य ने यह सब राम तापनीय में कह रक्खा है। उनके वचन अन्यथा नहीं हो सकते। वे वेद वाक्य हैं।

दो. अस कहि पग परि पेम अति, सिय हित बिनय सुनाइ।
सिय समेत सिय मातु तब, चली सुआयसु पाइ ॥२८५॥

अर्थ : ऐसा कहकर चरणों पर गिरकर और सीताजी के लिए विनय करके सीताजी के सहित सीताजी की माता आज्ञा पाकर चलीं।

व्याख्या : ऐसा कहकर अत्यन्त प्रेम से सुनयनाजी ने सीताजी को साथ ले जाने के लिए विनय किया। जिसमें सीताजी को महाराज भी देख लें। माता से सास का अधिकार बड़ा है। इसलिए साथ ले जाने के लिए महारानी कौसल्या की आज्ञा की आवश्यकता पड़ी। महारानी कौसल्या ने आज्ञा दे दी और सुनयनाजी सीताजी को साथ लेकर अपने डेरे पर गयीं।

प्रिय परिजनहि मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही ॥
तापस बेष जानकी देखी। भा सबु बिकल बिषाद बिसेखी ॥१॥

अर्थ : प्यारे कुटुम्बियों से जानकीजी मिलीं। जो जिस योग्य था उससे उसी भाँति से मिलीं। तपस्विनी के वेष में जानकीजी को देखकर सब लोग विषाद से विशेष विकल हो गये।

व्याख्या : यहाँ वैदेही शब्द से जानकीजी का भी देहाध्यास रहित होना दिखलाया। यहाँ परिजन से भी मैके के परिजन से तात्पर्य है। उन सबसे जानकीजी उसी भाँति मिलीं जिस भाँति सरकार अपने परिजनों से मिले। यथा : जो जेहि भाँय रहा अभिलाखी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी। भेद इतना ही है कि यहाँ यथारुचि न कहकर यथायोग्य कहते हैं। स्त्री शरीर से ऐसा ही उचित भी है। प्रिय परिजन का मिलना नहीं कहते। वैदेही का मिलना कहते हैं। मिलने में अग्रसर वैदेही हुईं। परिजन तो उनको तपस्विनी के वेष में देखकर विषाद से अति विकल हो गये थे। उन लोगों को रामजी को ही तापस वेष में देखने से विषाद था। जानकीजो के उस वेष में देखकर वह विषाद बहुत बढ़ गया। क्योंकि जानकीजी सबको प्राण सी प्यारी थीं। यथा : परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रान प्रिय सिय जानवी।

जनक राम गुर आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई ॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन पेम प्रान की ॥२॥

अर्थ : जनकजी रामजी और वसिष्ठजी की आज्ञा पाकर डेरे पर गये। देखा कि सीताजी आयी हुई हैं। राजा ने पवित्र प्रेम और प्राण की पाहुनी जानकी को हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : भाव यह कि राजा उस समय वसिष्ठजी और रामजी के पास थे। उन लोगों से छुट्टी लेकर डेरे पर आये। रानी से सीताजी को साथ लाने के लिए पहिले ही कह रक्खा था। सो डेरे पर आते ही देखा कि वे आगयी हैं। महाराज को जानकीजी प्राण सी प्यारी थीं। इसलिए : पाहुनि पावन प्रेम प्रान की कहा। पिता और पुत्री का बड़ा पवित्र प्रेम होता है। आज जानकीजी पाहुन अर्थात् अतिथि की भाँति आयी हैं। जानकीजी के पुकारने का नाम सीया था। रानी तथा सामान्य लोग पहिले प्राकृत ही बोलते थे और प्राकृत में सीता शब्द का सीया रूप हो जाता है।

उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू ॥
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। तापर राम प्रेम सिसु सोहा ॥३॥
चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु ॥

अर्थ : हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा। उस समय राजा का हृदय प्रयाग राज हो गया। सीताजी का स्नेह रूपी वृक्ष बढ़ता दिखायी पड़ा। उस पर राम प्रेमरूपी बालक शोभायमान हुआ। सो ज्ञानरूपी चिरञ्जीवी मुनि ने व्याकुल होकर डूबते हुए बालक का सहारा पाया।

व्याख्या : यहाँ जिस रूपक से कवि ने काम लिया है उनका संक्षेप वृत्तान्त यह है कि चिरञ्जीवी मुनि मार्कण्डेय मुनिजी ने प्रलय का दृश्य देखना चाहा। भगवान् ने उन्हें वह दृश्य दिखलाया। उन्होंने देखा कि समुद्र उमड़ा हुआ सारे संसार को डुबाता चला आता है। सम्पूर्ण पृथ्वी डूब गयी। कहीं किसी वस्तु का पता नहीं है। परन्तु जल के साथ ही साथ बढ़ता हुआ अक्षय वट केवल प्रयाग का पता दे रहा है। मुनिजी उस प्रलय कालीन समुद्र में तैरने लगे। तैरते तैरते श्रान्त और तरङ्गों के थपेड़े से व्याकुल हो गये। उस समय उस वट के पत्ते पर बालमुकुन्द को शयन करते देखा। कहीं ठिकाना न देखकर उन्हीं बालमुकुन्द के चरणों का आश्रय पकड़ा।

यहाँ जानकीजी को हृदय में लगाते ही राजा के हृदय में पुत्री अनुराग का समुद्र उमड़ पड़ा। उस समुद्र में सारी मनोवृत्तियाँ डूब गयीं। फिर भी महाराज का ज्ञान नहीं डूबा। वह अनुराग के साथ ही साथ तैरता हुआ ऊपर ही रहा। उस अपार समुद्र में तैरते और तरङ्ग के थपेड़ों को सहते सहते ज्ञान विकल हो चला। निरालम्ब होकर ज्ञान अधिक काल तक नहीं टिक सकता। उस समय सीताजी का प्रेम महाराज के हृदय का पता दे रहा था और उस प्रेम के आधार पर रामजी का

प्रेम था। उसी रामप्रेम का आश्रय ग्रहण करके ज्ञान की रक्षा हुई। यथा : सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू।

यहाँ पुत्री के अनुराग को समुद्र माना। उसने सभी मनोवृत्तियों को डुबा दिया। एक मनोवृत्ति इष्ट देवता सीताजी के प्रेम सम्बन्धिनी शेष रह गयी वह नहीं डूबी। अनुराग के साथ ही साथ बढ़ती गयी और उस मनोवृत्ति के आश्रित श्रीराम प्रेम सम्बन्धिनी वृत्ति रही। वह राम प्रेमवाली वृत्ति ज्ञान की बाधक नहीं है। बल्कि उसकी शोभा को बढ़ानेवाली है। उसी के आधार से राजा के ज्ञान की रक्षा हुई। नहीं तो उस समय विदेहता समाप्त हो जाती।

मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की ॥४॥

अर्थ : विदेह की मति मोह में मग्न होनेवाली नहीं है। पर यह राम जानकी के स्नेह की महिमा है।

व्याख्या : भाव यह कि महाराज जनक ज्ञानियों में शिरोमणि हैं। पुत्री के प्रेमरूपी मोह को सामर्थ्य नहीं कि उनकी बुद्धि को क्षुब्ध कर सके। वही प्रेम जब सांसारिक पदार्थ में होता है तो मोह कहलाता है और महा अनर्थ का कारण है। परन्तु वही जब राम जानकी के चरणों में होता है तो भक्ति कहलाता है। वह ज्ञान का विरोधी नहीं है। अर्थात् महाराज तक को सोपास्ति ज्ञान है। अतः राम जानकी के स्नेह की यह महिमा है कि वह ज्ञान का बाधक न होकर साधक होता है और उसकी शोभा को बढ़ाता है।

दो. सिय पितु मातु सनेह बस, बिकल न सकी सँभारि।
धरनिसुताँ धीरजु धरेउ, समउ सुधरमु बिचारि ॥२८६॥

अर्थ : सीताजी पिता माता के स्नेह में ऐसी विकल हुईं कि अपने को सँभाल न सकी। पर पृथ्वी की कन्या ने समय और सद्धर्म का विचार करके धैर्य धारण किया।

व्याख्या : इधर सीताजी भी माता पिता के स्नेह से व्याकुल हो गयी। परन्तु धरणिसुता हैं। उन्होंने धैर्य धारण किया। विचारा कि धैर्य छोड़ने से इस समय यह अर्थ लगेगा कि सीता वनवास से दुःखी है और अपने सद्धर्म के भी प्रतिकूल पड़ेगा। यथा : राम संग सिय रहित सुखारी। प्रिय परिजन गृह सुरति बिसारी।

तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेमु परितोषु बिसेखी ॥
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ ॥१॥

अर्थ : तपस्विनी के वेष में सीताजी को देखकर जनकजी को विशेष प्रेम और परितोष हुआ। बोले : हे पुत्री ! तैने दोनों कुल पवित्र किया। तेरे : यश से संसार उजागर हो गया। यह सभी कहते हैं।

व्याख्या : तापस वेष से सीताजी का रामप्रेम द्योतित हुआ। इसी को पिछली

अर्धाली में : तापर राम प्रेम सिसु सोहा : कहकर वर्णन किया। यही प्रेम जनकजी के ज्ञान का अवलम्बन हुआ। तापस वेष में सीताजी को देखकर जो प्रेम बढ़ा उसी की समता अक्षय वट से दी गयी है। उसी के आधार पर रामप्रेम था। जनकजी के लिए रामप्रेम का आधार सीताप्रेम का ही होना स्वाभाविक है। वही प्रेम ज्ञान का अवलम्बन हुआ। उसी से विशेष परितोष हुआ।

अब परितोष का रूप कहते हैं कि इस पतिप्रेम से रघुकुल निमिकुल दोनों पवित्र हुए। ऐसा सती बेटी के उत्पन्न होने से पितृकुल और पतिकुल दोनों पवित्र हो जाते हैं। सो तेरा सुयश संसार में फैल गया। सभी कहते हैं कि धन्य है संसार जिसमें ऐसी स्त्रीरत्न उत्पन्न होती हैं।

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी ॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहिं किए साधु समाज घनेरे ॥२॥

अर्थ : तुम्हारी कीर्तिरूपी नदी गङ्गाजी को भी जीतकर करोड़ों ब्रह्माण्ड में चली गयी। गङ्गाजी के तीन बड़े स्थल पृथ्वी पर हैं। पर इस कीर्ति ने बहुत से साधु समाज बनाये।

व्याख्या : जनकजी कहते हैं कि त्रिपथगा गङ्गा तो केवल तीनों लोकों में गयी हैं। पर तेरी कीर्तिरूपी नदी तो करोड़ों ब्रह्माण्डों में पहुँच गयी। गङ्गाजी ने केवल तीन बड़े तीर्थ बनाये। १. हरद्वार २. प्रयाग और ३. गङ्गा सागर। पर तेरी कीर्ति नदी ने न जाने कितने साधु समाज बना दिये। जो तीर्थ को भी तीर्थ बनाते हैं। यथा : तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि। भाव यह कि धर्म के लिए कष्ट सहने का ऐसा उदाहरण तुमने स्थापन किया कि कितने लोग धर्म के लिए कष्ट सहने को खड़े हो जावेंगे और यही साधुता है।

पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सिय सकुच महुँ मनहुँ समानी ॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई ॥३॥

अर्थ : पिता तो सच्ची स्नेह युक्त सुन्दर वाणी कहते थे। पर सीताजी तो मानो सङ्कोच में गड़ी जाती थीं। फिर पिता माता ने उन्हें गले से लगा लिया और हितकर शिक्षा तथा आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : जनकजी ने प्रेम से सच्ची बात प्रशंसा के रूप में कहा। यह पिता के मुख से अपने पतिप्रेम की प्रशंसा सुनकर सीताजी अत्यन्त सङ्कुचित होती जाती थीं। स्नेहमयी वाणी यथा : पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सत्य वाणी यथा : सुयस धवल जग कह सब कोऊ। सुवाणी यथा : जिति सुरसरि कीरति सरितोरी : इत्यादि :

अति प्रेम से फिर पिता ने और माता ने हृदय से लगाया। कवि वात्सल्य दिखलाते हुए कहते हैं कि पिता माता ने शिक्षा दी कि इसी भाँति धर्मपालन करने से ही दोनों लोक बनता है इत्यादि और आशीर्वाद दिया। यद्यपि यहाँ सीताजी

द्वारा वन्दना नहीं लिखा। फिर भी आशीर्वाद देने से प्रणाम का अनुमान करना पड़ेगा।

कहति न सीय सकुचि मनमाहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाही ।।
लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ ।।४।।

अर्थ : सीताजी मन में सङ्कोच करती हुई यह कह न सकीं कि यहाँ रात को रहना ठीक नहीं। रानी ने रुख समझकर महाराज को सूचित किया और मन से शील स्वभाव की प्रशंसा की।

व्याख्या : सीताजी रामजी के साथ वानप्रस्थ धर्म से रहती हैं। सरकार को : मुनि व्रत बेष अहार : की आज्ञा पिता द्वारा मिली हुई है। वानप्रस्थावस्था में क्षत्रिय पत्नी के साथ शयन करें और दोनों के बीच से साक्षीरूप से खड्ग रक्खा रहे। अतः रामजी के पास जाना आवश्यक था। पर सङ्कोच से कह नहीं सकती थीं। पर उनका रुख देखकर माँ समझ गयी। हृदय से सीताजी के शील स्वभाव की प्रशंसा करती हुई महाराज जनक से जाकर कहा कि सीताजी कहती नहीं है पर उनका जाना आवश्यक है।

दो. बार बार मिलि भेंटि सिय, बिदा कीन्ह सनमानि।
कही समय सिर भरत गति, रानि सुबानि सयानि ।।२८७।।

अर्थ : सीताजी से बार बार मिलकर और सम्मान करके उन्हें विदा किया और चतुर रानी तो ठीक अवसर देखकर भरत का हाल सुन्दर वाणी से कह सुनाया।

व्याख्या : अत्यन्त प्रेम के कारण बार बार मिलीं। समय ऐसा था कि विदाई में कुछ दे नहीं सकते थे। अतः सम्मान करके ही सीताजी को विदा किया। कौसल्याजी ने कहा था : रानि रायसन अवसर पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई। सो सयानी रानी ने अच्छा मौका देखकर भरतजी का हाल सुन्दर वाणी द्वारा राजा से कहा कि भरत का प्रेम ऐसा है कि इन्हें घर लौटाने में बड़ा खतरा मालूम होता है। इनका प्रेम भी महाराज दशरथ सा ही है। एक गलती हो चुकी है कि महाराज दशरथ को लोगों ने रामजी के पास वन में नहीं भेजा। अब दूसरी गलती भरत को अयोध्या भेजकर न करनी चाहिए। बल्कि लक्ष्मण को अयोध्या भेज दिया जाय इत्यादि।

सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससि सारू ।।
मूँदे सजल नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन ।।१।।

अर्थ : राजा ने भरत का व्यवहार सुनकर जो सोने में सुगन्ध और चन्द्रमा के सारभूत अमृत सा था आँखें मूद लीं और शरीर उनका पुलकित हो गया तथा प्रसन्न मन होकर उनके सुयश की प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : गति और व्यवहार समानार्थक शब्द हैं। उस व्यवहार को सोना सा कहा। पर सोने में सुगन्ध नहीं स्वाद नहीं। इस व्यवहार रूपी सोने में सुगन्ध भी है और अमृत सा स्वाद भी है।' व्यवहार में सोनापन भरतजी का स्वभाव है। यथा : कनकहि बान चढ़ै जिमि दाहे। कनकौ पुनि पखान ते होई। जारेउ सहज न परिहरि सोई। कसे कनक मनि पारिख पाये। पुरुष परखियहि समय सुभायें। सुवास से भाईपन कहा। यथा : १. अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। २. भापय भलि चहु बंधु की। १. जल माधुरी २. सुवास। सुधा ससि सारू से भक्ति कहा। यथा : राम सनेह सुधाकर सारू। भाव यह कि भरत का व्यवहार अलौकिक सोना है जो इस संसार में नहीं है। अमृत भी अनेक प्रकार का होता है। वह भी अमृत ही था जिसे पाताल में पीकर भीमसेन बलवान हुए थे। पर वह उन्हें अमर न कर सका। वह पाताल लोक का अमृत था। परन्तु चन्द्रमा में जो अमृत है उसे देवता लोग पान करते हैं। वह अमृतों में भी उत्तम कोटि का है। इसी भाँति भरतजी की भक्ति भी उत्तम कोटि की है।

ऐसे व्यवहार को सुनकर महाराज जनक को सात्त्विक भाव हुआ। आनन्द से उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। रोगटें खड़े हो गये। बोल न सके। मन ही मन सुयश की सराहना करने लगे। भाव यह कि तन मन वचन से प्रेम में मग्न हो गये। मूँदे सजल नयन से तन की दशा कही। सुजस सराहन लगे से वचन की दशा कही और मुदित मन से मन की दशा कही।

**सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि॥**
**धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥२॥**

अर्थ : राजा ने कहा कि हे सुमुखि सुलोचनि! भरत की कथा भवबन्धन से छुड़ानेवाली है। तुम सावधान होकर सुनो। धर्म राजनीति और ब्रह्मविचार इन विषयों में यथामति मेरी पहुँच है।

व्याख्या : जनकजी प्रिया होने से सुमुखि सुलोचनि सम्बोधन देते हैं। अथवा रानी का नाम सुलोचनि : सुनयना है और सुमुखि नाम का विशेषण है। भरत की कथा असाधारण है। उसके सुनने से भवबन्धन कट जाता है। यथा : भरत चरित्त करि नेम तुलसी जे सादर सुनहि। सीय रामपद प्रेम अवसि होइ भवरस बिरति। अतः मैं जो कहता हूँ उसे सावधान होकर सुनो।

मेरी गति तीन विषयों में है। धर्मशास्त्र में राजनीति में और ब्रह्मविद्या में। इन तीनों विषयों की यदि कोई बात हो तो उसमें मैं अपनी सम्मति दे सकता हूँ। अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय भी कर सकता हूँ।

**सो मति मोर भरत महिमाही। कहइ काह छल छुअति न छाँहीं॥**
**बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद॥३॥**

भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती ॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू ॥४॥

अर्थ : वह मेरी बुद्धि भरत की महिमा का क्या वर्णन करे। उसकी छाया को भी छल छू नहीं पाता। ब्रह्मदेव गणेश शेष सारद कवि कोविद और बुद्धि विशारद पण्डित के लिए भरत का चरित कीर्ति करतूति धर्म शील गुण और निर्मल ऐश्वर्य सुनने और समझने में तो सबको सुखद है और गङ्गाजल सा पवित्र और अमृत से अधिक सुस्वादु है।

व्याख्या : महाराज जनक कहते हैं कि वह मेरी बुद्धि जो धर्मशास्त्र राजनीति और ब्रह्मविचार में काम कर जाती है भरत महिमा कहने में कुण्ठित हो जाती है। किसी विषय के कथन करने में उसे सीमित करना पड़ता है। उसका आदि अन्त कहना पड़ता है। महिमा का विचार वहीं तक है जहाँ तक छल का स्पर्श नहीं है। छल का स्पर्श होते ही महिमा समाप्त हो जाती है। अतः जहाँ तक छल नहीं है वहीं तक महिमा का वर्णन होता है। पर भरत की महिमा की छाया को छल स्पर्शं नहीं करता। अतः उसका वर्णन हो तो कैसे हो ?

१. विधि, २. गणपति, ३. अहिपति, ४. शिव, ५. शारद, ६. कोविद कवि और ७. बुद्धि विशारद पण्डित। ये ही सात बड़े बर्णन करनेवाले हैं। इन सब लोगों को १. भरत का चरित्र, २. कीर्ति, ३. करतूति, ४. धर्म, ५. शील, ६. गुण और ७. निर्मल विभूति, समझने और सुनने में सुखद है।

१. विधि को चरित्र सुखद : सृष्टि रक्षा के कारण। यथा :
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम अवलंब न दीन्ह।

२. गणपति को कीर्ति सुखद विघ्न विनाशकारी होने से। यथा :
समन अमित उतपात सब भरत चरित जप जाग।

३. शेषजी को करतूति सुखद : पृथ्वी सँभालने से। यथा :
भरत भूमि रह राउर राखी।

४. शिवजी को धर्म सुखद : रामभक्ति होने से। यथा :
रामभगति मय भरत निहारे ॥

५. शारदा को शील सुखद : स्वार्थ रहित होने से। यथा :
परमारथ स्वारथ सुख सारे।
भरत न सपनेहु मनहु निहारे ॥

६. कवि कोविद को गुण सुखद : रसास्वाद होने से। यथा :
करहु सो प्रेम प्रगट को करई।
केहि छाया कबि मति अनुसरई ॥

७. बुद्धि विशारद पण्डित को विमल विभूति सुखद : शिक्षामय होने से। यथा :
भरतहि होइ न राज मद बिधि हरिहर पद पाइ।

क्योंकि ये गङ्गाजल की भाँति पवित्र हैं। छलहीन होने से और अमृत से भी मीठे हैं। राम प्रेममय होने से।

दो. निरवधि[1] गुन निरुपम पुरुषु, भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम, कबिकुल मति सकुचानि ॥२८८॥

अर्थ : असीम गुणवाले उपमारहित पुरुष भरत भरत के ही समान हैं। सुमेरु को क्या सेर के समान कहा जायगा? इसलिए : कवि समाज की बुद्धि सङ्कुचित हो गयी।

व्याख्या : भरत के गुणों की सीमा नहीं इसलिए निरवधि कहा और उनकी उपमा भी नहीं इसलिए निरुपम कहा। अनन्वयालङ्कार देते हुए महाराज कहते हैं कि भरत के समान भरत ही हैं। दूसरे लोगों से समानता दी नहीं जा सकती। अन्य लोगों में और भरत में उतना ही अन्तर है जितना कि सुमेरु पर्वत और सेर : बटखरे में है। अतः दूसरे से उपमा देने में कवि की बुद्धि सङ्कुचित होती है कि इतना बड़ा वैषम्य होते हुए उसे सामान्य धर्म में लाना ठीक नहीं।

अगम सबहि बरनत बर बरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी ॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहि रामु न सकहिं बखानी ॥१॥

अर्थ : हे श्रेष्ठ वर्णवाली! सभी के लिए वर्णन करना अगम है। जैसे जल रहित पृथ्वी पर मछली की गति नहीं होती। हे रानी! भरतजी की असीम महिमा रामजी जानते हैं। परन्तु वे भी वर्णन नहीं कर सकते।

व्याख्या : भरत का चरित विषय वासना रहित है। इसलिए उसकी उपमा जलहीन धरनी से दी गयी। विषय को अत्यत्र जल और मन को मीन माना गया है। यथा : बिषय बारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक। विषयरूपी जल से मनरूपी मछली क्षण भर के लिए भी अलग नहीं हो सकती। इसलिए निर्विषय वस्तु में मन की गति होना वैसा ही है जैसे जलहीन स्थान में मीन की गति। अतः भरत के चरित्र में किसी की गति नहीं है। मछली जानती ही नहीं कि बिना जल का प्रदेश कैसा होता है। इसी भाँति भरत की महिमा कोई नहीं जानता। केवल रामजी जानते हैं क्योंकि वे भी विषय रस से रूखे हैं। यथा : राम पुनीत विषय रस रूखे। परन्तु वे भी कह नहीं सकते। क्योंकि कहना और सीमित करना एक बात है। असीम का वर्णन हो नहीं सकता। असीमता जानी जा सकती है पर कही नहीं जा सकती। अतः भरत की महिमा रामजी जानते हैं कि असीम है। कही नहीं जा सकती इसीलिए तो असीम है।

बरनि सपेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ ॥
बर नहि लखनु भरत बन जाँही। सब कर भल सबके मन माँही ॥२॥

---

१. यहाँ अनन्वयालङ्कार है।

अर्थ : प्रेम के साथ भरत की महिमा का वर्णन करके स्त्री की रुचि देखकर राजा ने कहा कि भरत वन जायँ। इसी में सबका भला है और यही बात सबके मन में है। लक्ष्मण का जाना अच्छा नहीं।

व्याख्या : पहिले राजा जनक ने भरतजी की महत्ता का वर्णन किया। रानी ने भरत की गति कहने में इस बात के दिखलाने का पूरा प्रयत्न किया कि लक्ष्मणजी को रोक लिया जाय और भरत को रामजी के साथ वन जाने दिया जाय। क्योंकि रामजी का विरह भरत के लिए असह्य है। लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी मिलकर राजकाज सँभालेंगे। अतः रानी की रुचि का समर्थन करते हुए राजा ने कहा कि जो तुमने कहा है वह सबके भले की बात है और सभी यह चाहते हैं कि लक्ष्मण का जाना ठीक नहीं। भरतजी वन जायँ।

देबि परंतु भरतु रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। यद्यपि राम सीम समता की ॥३॥

अर्थ : परन्तु हे देवी ! भरत और रामजी की प्रीति और प्रतीति में तर्क काम नहीं करता। यद्यपि रामजी समता की सीमा हैं तथापि भरत स्नेह और ममता की सीमा हैं।

व्याख्या : जनकजी रानी से कहते हैं कि तुम्हारा तर्क ठीक है। परन्तु रामजी में और भरत में कितनी प्रीति है और कितनी प्रतीति है इसमें तर्क काम नहीं करता। क्योंकि बुद्धि की वहाँ तक पहुँच नहीं।

जिस भरतजी के कल्याण के लिए तुम उनका वन जाना सोच रही हो वे अपना कल्याण किस बात में मानेंगे। रामजी की आज्ञा पालन में या उन पर सङ्कोच डालने में यह कौन कह सकता है।

यद्यपि रामजी समता की सीमा हैं। उनके साथ चाहे लक्ष्मण जायँ या भरत जायँ उनके लिए दोनों बराबर हैं। पर भरत भी स्नेह और ममता की सीमा हैं। वे कभी लक्ष्मणजी या रामजी के मन में ठेस नहीं लगने देंगे।

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥४॥

अर्थ : परमार्थ और स्वार्थ के सारे सुखों को तो मानो भरत ने कभी सपने में भी नहीं देखा। साधन और सिद्धि : दोनों रामजी के चरणों का प्रेम है। मुझे तो यही भरत का मत मालूम पड़ता है।

व्याख्या : भरत ने प्रयागराज से माँगा : अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहौं निर्वान। अर्थ धर्म काम से स्वार्थ सुख कहा और निर्वाण गति से परमार्थ सुख कहा। इन दोनों सुखों को भरतजी चाहते नहीं। मानो इनकी ओर कभी आँख उठाकर देखा ही नहीं है।

नियम तो यही है कि भक्ति से मुक्ति सुलभ हो जाती है। यथा : राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवै बरिआईं। रामभक्ति साधन हुई और मुक्ति साध्य हुई। यही साधारण नियम है। यथा : भक्तिर्मुक्तिविधायनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हि। परन्तु मुझे मालूम होता है कि भरतजी साधन और सिद्धि भक्ति को ही मानते हैं। रामभजन करके वे भक्ति ही चाहते हैं मुक्ति नहीं चाहते। यथा : सगुन उपासक मोक्ष न लेही। तिनकहँ राम भगति निज देही।

दो. भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं, मनसहुँ राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस, कहेहु भूप बिलखाइ ॥२८९॥

अर्थ : भूल करके भरतजी मन से भी रामजी की आज्ञा का उल्लंघन न करेंगे। प्रेम के वश होकर सोच न करो। ऐसा राजा ने बिलखकर कहा।

व्याख्या : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सबसे बड़ी सेवा आज्ञापालन है। रामजी आज्ञा देंगे कि तुम राज्य पर जाओ तो भरत मन से भी उसका उल्लंघन न करेंगे। दुःख सह लेगें। सो जिसे दुःख झेलना है वह स्वयं झेलने के लिए तैयार हो तो उसके लिए सोच न करना चाहिए। स्नेह के वश होकर शोक करना व्यर्थ है। यह बात राजा ने बिलखकर कहा।

राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहि पलक सम बीती ॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे ॥१॥

अर्थ : रामजी और भरतजी के गुणों को प्रेम के साथ गिनते हुए दोनों प्राणी को सारी रात पलक के समान बीत गयी। सवेरे दोनों राज समाज जागे और नहा नहाकर देव पूजन करने लगे।

व्याख्या : न तो रामजी के गुणों की संख्या और न भरतजी के गुणों की सीमा थी। यथा : जल सीकर महिरज गनि जाहीं। रघुपति गुन नहिं बरनि सिराहीं। तथा : निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि। भगवान् और भागवत के गुण ही ऐसे हैं। उनकी गणना में बड़ा मन लगता है। अतः दोनों प्राणी रात भर उन्हीं की गणना करते रहे। रात कब बीत गयी उन लोगों को पता नहीं। राजा रानी तो जागते रहे पर समाज खूब सोया। अतः उनका जागना लिखते। उठने के साथ ही नित्यकृत्य में लग गये। गनप गौरि तिपुरारि तमारी। रमारमन पद बंदि बहोरी। बिनवहि अंजुलि अंचल जोरी। इत्यादि।

## २२. दूसरी सभा : रघुपति प्रबोध प्रसङ्ग

गे नहाइ गुर पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई ॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनबास दुखारी ॥२॥

अर्थ : रघुराज स्नान करके गुरुजी के पास गये। चरण की वन्दना करके

रुख पाकर बोले। हे नाथ! भरत, नगरनिवासो और माताएँ सब सोच से विकल और वनवास से दुःखी हैं।

व्याख्या : सब लोगों ने तो नहा नहाकर इष्टदेवों का पूजन किया। पर सरकार के तो इष्टदेव गुरुजी हैं। ये स्नानादि करके गुरुजी के दर्शन को जाते हैं। आज भी इसीलिए गये। पर आज कुछ कहना है : मुनिजी ने समझ लिया। सो मुनिजी का जब रुख पाया कि क्या कहना चाहते हो। तो चरण वन्दना करके बोले।

भरत, पुरजन और माताएँ ये सब लोग मानसिक और शारीरक कष्ट से दुःखी हैं। शोक विकल से मानसिक कष्ट कहा और वनवास से शारीरक कष्ट कहा। गुरुजी तो तपस्वी हैं। अतः उनके दुःख का नाम नहीं लेते। ये लोग व्यर्थं दुःख सह रहे हैं।

सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रउरे हाथा॥३॥

अर्थं : महाराज मिथिलेश को सहित समाज कष्ट उठाते बहुत दिन हो गये। इसलिए हे नाथ! जो उचित हो वही कीजिये। आप ही के हाथ सबका हित है।

व्याख्या : भरत माता पुरजन तो क्लेश उठा रहे हैं। सम्बन्धी भी कष्ट उठा रहे हैं। राजा मिथिलेश के कष्ट उठाने का कोई कारण नहीं है। फिर वे भी कष्ट उठा रहे हैं। पहिले भी मैंने कहा था। तब आज्ञा हुई : लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहुँ बिश्राम। सो वे दो दिन तो कभी के बीत गये। तब से मिथिलेश आगये। इन्हें भी आये कई दिन हो गये। मुझे जो कहना था कह दिया आगे आप मालिक हैं। जो आप उचित समझें सो करें। आपकी ही आज्ञा मानने और रुख रखने में सबकी भलाई है। आप जैसा कहेंगे वैसा ही सब करेंगे। अतः जिसमें सबका हित हो सो कोजिये। हित सदा उचित करने में होता है। ध्वनि यह है कि पिता के वचन की रक्षा हो।

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख राजा। नरक सरिस दुहु राज समाजा॥४॥

अर्थं : ऐसा कहकर रामजी अति सङ्कुचित हो गये। मुनिजी शील स्वभाव देखकर पुलकित हो गये। कहा हे राम! तुम्हारे बिना दोनों राजसमाज का सुख साज नरक के समान है।

व्याख्या : गुरुजी को कुछ भी करने के लिए विनय करने में भी रामजी को सङ्कोच होता है। पहिले भी जाने के लिए जब कहा था तब अन्त में यही कहा : बहुत कहेउँ सब कियेउँ ढिठाइं। उचित होय तस करिअ गोसाइं। वही बात फिर कह रहे हैं। इसलिए अत्यन्त सकुचे। मुनिजी प्रभु का सङ्कोची स्वभाव देखकर मग्न हो गये। पुलक हो आया। अस सुभाउ कहुँ सुनै न देखैं। केहि खगेस रघुपति सम लेखैं।

प्रिय के विरह में सुख के साज और भी दुःखदायी हो जाते हैं। अतः गुरुजी कहते हैं कि दोनों समाज को सुख तो तुम्हारे संयोग में है। तुम्हारे विरह में ये सुख के साज नरक समान दुःखदायक हो जायेंगे।

दो. प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह, जिनहि तिनहि बिधि बाम ॥२९०॥

अर्थ : हे तात ! तुम प्राण के प्राण हो। जीव के जीव हो और सुख के सुख हो। तुमको छोड़कर जिन्हें घर अच्छा लगता है उन पर विधाता बायें हो गये हैं।

व्याख्या : सब लोग कष्ट सह रहे हैं। इस बात का उत्तर देते हुए वसिष्ठजी कहते हैं कि सुख के मूल स्रोत तो आप हैं। आपके छोड़ने में सुख कहाँ ? आप ही के कारण प्राण प्राणन क्रिया करता है। इसलिए आप प्राण के प्राण हैं। जिस बिम्ब का जीव प्रतिबिम्ब है वह बिम्ब आप ही हैं। इसलिए आप जीव के जीव हैं। विषय सुख के भी मूल में ब्रह्म सुख है। इसलिए आप सुख के सुख हैं। गृह में भी सुख है। पर वह सुख भी आप के होने से हैं। आपको छोड़कर सुख कहाँ। यथा : जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा। यही साधारण नियम है। स्वभाव से जीव और ब्रह्म में स्नेह है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। जिस पर विधाता वाम होते हैं उसका स्वभाव पलट जाता है। यथा : भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। अतः आपको छोड़कर जिसे घर अच्छा लगा उसके लिए समझ लेना चाहिए कि इस पर विधाता ही बायें हो गये। भाव यह कि सब लोग यहीं रहने से सुखी हैं किसी को घर जाने की रुचि नहीं है।

सो सुख करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू ॥१॥

अर्थ : वह सुख और वह कर्म धर्म जल जाय जिसमें रामजी के चरणों में प्रेम न हो। वह योग कुयोग है। वह ज्ञान अज्ञान है। जिसमें रामजी का प्रेम प्रधान न हो।

व्याख्या : उचित होय सो कीजिय नाथा का उत्तर देते हुए गुरुजी कहते हैं कि यहाँ उचित अनुचित कुछ नहीं। जिसमें धर्म अर्थ और काम में बाधा न हो वही उचित है। परन्तु जिस धर्मार्थ काम में आप के चरणों के प्रेम का अभाव हो वह धर्मार्थ काम जले। उससे कोई प्रयोजन नहीं।

जिस योग में रामप्रेम न हो उससे मोह का नाश नहीं होता और जिस ज्ञान में रामप्रेम की प्रधानता न हो वह तारने में समर्थ नहीं होता। यथा : पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकै उपारी। तथा : सोह न रामप्रेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू।

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेही। तुम्ह जानहु जिअँ जो जेहि केही॥
राउर आयसु सिर सबही के। बिदित कृपालहिं गति सब नीके ॥२॥

अर्थ : तुम्हारे बिना दुःखी और तुमसे ही सब सुखी हैं। जिसके हृदय में जो है उसे तुम जानते हो। आपकी आज्ञा सबके सिर पर है। हे कृपाल ! आपको सबकी गति विदित है।

व्याख्या : चाहे विषयी हो। चाहे साधक हो। चाहे सिद्ध हो। सब तुम्हारे बिना दुःखी रहते हैं। यथा : तन कृस मन दुःख बदन मलीने। बिकल मनहु माछी लघु छीने और तुम्हारी उपस्थिति से सब सुखी होते हैं। यथा : सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंद निहारी। तुम्हीं सबके हृदय के जाननेवाले हो। यथा : को जिय कै रघुबर बिनु बूझा।

जो आपने कहा : हित सबही कर रउरे हाथा। सो बात नहीं है। आपकी आज्ञा सबके सिर पर है। मेरे सिर पर भी है। क्योंकि आप कृपाल हैं और अन्तर्यामी सबकी गति जानते हैं। यथा : सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाउ कुभाउ। जीव चाहे कैसा ही बड़ा हो ईश के ऐसा नहीं हो सकता। अतः आपकी ही आज्ञा के पालन से सबका हित है। यथा : प्रभु आज्ञा अपेल स्रुति गाई। तथा : प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ ॥
करि प्रनामु तब राम सिधाए। रिषि धरि धीर जनक पहँ आए ॥३॥
(राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभाव सुहाए ॥)

अर्थ : अब आप आश्रम में पधारिये। यह कहकर मुनिराज प्रेम से शिथिल हो गये। रामजी प्रणाम करके चले गये। ऋषिजी धैर्य धारण करके जनकजी के पास आये। गुरुजी ने रामजी का शील स्नेह और स्वभाव से सुन्दर वचन राजा को सुनाया।

व्याख्या : ऋषिजी ने : आपु आश्रमहि धारिअ पाऊँ। कहकर यह जना दिया कि मैं आपका अभिप्राय समझ गया। वही होगा। रामजी के वचन सुनकर ऋषिजी स्वयं स्नेह से शिथिल हो गये थे। अतः रामजी के चले जाने पर धैर्य धारण करके महाराज जनक के यहाँ आये और रामजी का शील स्नेह और उनका स्वाभाविक सुन्दर वचन उन्हें कह सुनाया। शील यथा : बंदि चरन बोले रुख पाई। तथा : अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। स्नेह यथा : नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनबास दुखारी। सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू। सुन्दर स्वभाव यथा उचित : होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर तुम्हरे हाथा।

इस भाँति ऋषिजी ने महाराज को रामजी के आन्तरिक भावों से परिचित करा दिया। कोष्ठान्तर्गत दो पद राजापुर की प्रति में नहीं हैं। पर इन्हें बिना माने काम नहीं चलता।

महाराज अब कीजिअ सोई। सबकर धर्म सहित हित होई ॥४॥

अर्थ : गुरुजी ने कहा कि महाराज ! अब वही कीजिये जिससे सबका सहित हित हो।

व्याख्या : भाव यह कि यह अर्धाली रामजी के वचन : उचित होइ सोइ कीजे नाथा का अनुवाद है। धर्म सहित सबका हित करना ही उचित है। चक्रवर्तीजी के न रहने पर जनकजी की उपस्थिति में उनकी ही आज्ञा सब पर चलेगी। अतः मुनिजी उन्हीं से कहते हैं।

दो. ग्यान निधान सुजान सुचि, धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन, को समरथ एहि काल ॥२९१॥

अर्थ : हे राजन् ! तुम ज्ञान के घर सुजान पवित्र और धर्मधीर हो। तुम्हारे बिना इस असामञ्जस्य के मिटाने में इस समय कौन समर्थ है।

व्याख्या : भाव यह : धर्म राजनय ब्रह्म बिचारू। इहाँ यथा मति मोर प्रचारू। जनकजी ने कहा था सो मुनिजी जिन विशेषणों से राजा को सम्बोधित करते हैं उनका भी यही अभिप्राय है। ज्ञान निधान से ब्रह्म विचार कहा। सुचि सुजान से राजनय कहा। धर्मधीर से धर्मशास्त्र का ज्ञान कहा। ऐसा गुणी राजा इस समय में कौन है। सामञ्जस्य बिठाना निर्णय करना राजा का काम है। यहाँ जो असामञ्जस्य आ पड़ा है कि धर्म पर ध्यान देने से सबका अहित होता है। सबका हित करने से रामजी का धर्म जाता है। इस असामञ्जस्य को आप ही मिटा सकते हैं।

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे ॥
सिथिल सनेह गुनत मन माँही। आए इहाँ कीन्ह भल नाँही ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनने से जनकजी प्रेम में आगये। उनकी गति देखकर ज्ञान विराग को भी विराग हो गया। स्नेह से शिथिल होकर मन में विचार करने लगे कि मैंने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया।

व्याख्या : जनकजी ने जब मुनिजी का वचन सुना कि आप इस प्रेम और धर्म के सामञ्जस्य को बिठलाइये। जिसका स्पष्ट अर्थ यही है कि मुझसे सामञ्जस्य नहीं बैठता तो जनकजी स्वयं प्रेम में आगये। रामानुराग का दर्जा ज्ञान विराग से बढ़ा चढ़ा है। जनकजी का अनुराग देखकर ज्ञान विराग को भी विराग हो गया कि अब हम यहाँ नहीं रहेंगे। अब अनुराग ही यहाँ रहे। क्योंकि काम आ पड़ने पर जनकजी अनुराग का ही सम्मान करते हैं। वे हृदय से अनुरागी हैं। यथा : जाहि रामपद गूढ़ सनेहू। इनके लिए राजा जनक विचारते हैं। यहाँ धर्म तो यही है कि रामजी वन जायँ और स्नेह वन जाने देना नहीं चाहता। मैं सम्बन्धी हूँ। मैं कैसे कहूँ कि रामजी का वन जाना ही ठीक है अतः मेरा यहाँ आना ठीक नहीं हुआ।

रामहि राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना ॥
हम अब बन तें बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई ॥२॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने रामजी को वन जाने को कहा और स्वयं उन्होंने प्यारे के प्रेम को सच्चा कर दिखलाया और हम अब रामजी को वन में ही भेजकर विवेक की बड़ाई के साथ लौटेंगे।

व्याख्या : भाव यह कि जनकजी चक्रवर्तीजी के समकक्ष हैं। यथा : सम समधी देखा हम आजू। सो चक्रवर्तीजी ने तो रामजी को वन में भेजकर धर्म निबाहा और अपना शरीर छोड़कर प्रेम का निर्वाह भी कर दिखाया। यही तो एक मात्र रास्ता धर्म और प्रेम के सामञ्जस्य बिठाने का है। यह तो नहीं है कि मैं रामजी को वन से लौटा ले चलने के बदले वन जाने की सम्मति देकर घर लौटूँ और यह समझकर सन्तोष कर लूँ कि मैं बड़ा विवेकी हूँ।

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भये प्रेम बस बिकल बिसेखी ॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा ॥३॥

अर्थ : तपस्वी मुनि और ब्राह्मण लोग सुनकर और देखकर प्रेम के वश हो विशेष व्याकुल हुए। फिर राजा समय का विचार करके और धैर्य धारण करके समाज के सहित भरतजी के पास आये।

व्याख्या : सभी लोगों की बात नहीं कहते। जो लोग विराग का व्रत लिये हुए हैं वे भी वसिष्ठजी की बात सुनकर और दोनों महाज्ञानियों की दशा देखकर प्रेमवश हो गये। उनकी विकलता सामान्य लोगों से भी अधिक थी। क्योंकि वे विषय की सूक्ष्मता को विशेषरूप से समझ रहे थे।

प्रजा का रञ्जन करनेवाला ही राजा कहलाता है। राजा ने सोचा कि मेरी विकलता के व्यक्त होने से प्रजा अधिक विकल होगी और मेरी स्थिति ऐसी है कि जब मैं यहाँ आया हूँ तो मुझे ही सामञ्जस्य बिठलाना है। वसिष्ठजी कहते हैं। अतः राजा ने धैर्य धारण किया। जनकजो राजा हैं। सामञ्जस्य बिठलाने की विधि जानते हैं। देखा कि सम्पूर्ण प्रजा की दृष्टि इस समय भरतजी पर है और प्रेम भी भरतजी का सबसे अधिक है। धर्म के भी जानकार भरतजी हैं। अतः सामञ्जस्य बिठाने का भार भरत पर ही छोड़ा जाय। अतः कुछ न कहकर समाज सहित भरतजी के पास चल पड़े।

भरत आइ आगें भइ लीन्हें। अवसर सरिस सुआसन दीन्हें ॥
तात भरत कह तिरहुति राऊ। तुम्हहिं बिदित रघुबीर सुभाऊ ॥४॥

अर्थ : भरतजी ने आगे आकर उनका स्वागत किया और समयानुकूल अच्छा आसन दिया। तिरहुत : तीरयुक्त के राजा ने कहा कि हे तात भरत ! तुम्हें रामजो का स्वभाव मालूम है।

व्याख्या : श्वसुर भी पिता के तुल्य हैं। अतः जनकजी का आगमन जानकर भरतजी आगे आकर उनका स्वागत करके अपने डेरे पर लिवा ले गये। यहाँ वन में सिंहासन का योग नहीं था। अतः सुन्दर आसन जो इस समय दिया जा सकता था सो दिया।

बैठने के बाद महाराज जनक ने भरतजी को सम्बोधन करते हुए कहा कि तुम तो जानते हो कि रामजी का कैसा सङ्कोची स्वभाव है। यथा : कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची।

दो. राम सत्यव्रत धर्म रत, सब पर सीलु सनेहु।
संकट सहत सँकोच बस, कहिय जो आयसु देहु ॥२९२॥

अर्थ : रामजी सत्यव्रत हैं। धर्म में रत हैं। सब पर उनका स्नेह और शील है। सङ्कोच के वश पड़े हुए सङ्कट सह रहे हैं। इसलिए जो तुम आज्ञा दो उनसे कहा जाय।

व्याख्या : रामजी के सङ्कोच को और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि रामजी का व्रत ही सत्य है और सदा धर्म में ही लगे रहते हैं। अर्थात् सत्य और धर्म वे छोड़ नहीं सकते और सत्य धर्म तो यही है कि वे वन जायँ। साथ ही साथ उन्हें सबका शील है और सब पर उनका स्नेह है। अतः यह स्पष्ट आज्ञा भी नहीं दे रहे हैं कि तुम लोग यहाँ से चले जाओ। मैं नहीं लौट सकता। वे शील स्नेह भी नहीं छोड़ सकते। अतः वे सङ्कोच वश सङ्कट सह रहे हैं। उन्हें सङ्कट से छुड़ाना तुम्हारा काम है। अब एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए। यह द्विविधा की दशा असह्य है। अतः तुम जो आज्ञा दो वही उनसे करने को कहा जाय। भाव यह कि तुम्हारे ऐसा उनका स्नेही कोई नहीं है। तुम्हीं उन्हें लौटाने आये हो। हम लोग तो तुम्हारे पक्ष को पुष्ट करने आये हैं। अतः रामजी के सत्यव्रत और धर्म को विचार करके तथा स्नेह को भी ध्यान में रखकर जो तुम निर्णय करके कहो वही हम लोग चलकर रामजी से करने के लिए कहें।

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू॥१॥

अर्थ : सुनकर भरतजी को पुलक हो गया और आँखों में आँसू भर आया। भरत जो भारी धैर्य धारण करके बोले। आप प्रभु पूज्य पिता के समान हैं। कुलगुरु के समान हितकारी न बाप है और न माँ है।

व्याख्या : जनकजी का उपर्युक्त वचन सुनकर भरतजी को सात्त्विक भाव हुआ, उनके रोंगटे खड़े हो गये। नेत्रों में जल आगया। उन्हें बोलने में भारी धैर्य धारण करना पड़ा। यहाँ प्रेमियों का समाज इकट्ठा हुआ है। सबका धैर्य छूटा जा रहा है। जनकजी चलते हैं तो धैर्य धारण करके चलते हैं। भरतजी बोलते हैं तो भारी धैर्य धारण करके बोलते हैं।

पिता धर्मतः पुत्रों का प्रभु भी हैं और पूज्य भी हैं। श्वशुर पिता के तुल्य हैं। इसलिए भरतजी कहते हैं कि आप प्रभु पूज्य पिता के तुल्य हैं। धर्म यही है कि आप आज्ञा दें और मैं पालन करूँ और कुलगुरु आप से भी अधिक हैं। क्योंकि वे पिता और माता से भी विशेष हितकारी हैं। उन्हें मुझे आज्ञा देनी चाहिए। मुझसे सम्मति न पूछनी चाहिए।

कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू ॥
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी ॥२॥

अर्थ : विश्वामित्रादि मुनिसमाज है। सचिवसमाज है। हे स्वामी ! मुझे बच्चा सेवक और आज्ञा पालक जानकर आप लोग आज्ञा दीजिये।

व्याख्या : विश्वामित्रादि मुनिगण सभी प्रभु और पूज्य हैं। पिताजी का मन्त्री समाज है। सभी को मुझे आज्ञा देने और उपदेश देने का अधिकार है। स्वयं आप आज दिन ज्ञान के समुद्र हैं। सभी ऋषि मुनि आपका थाप मानते हैं। मैं आप के लिए शिशु, गुरुजी के लिए सेवक और शेष महानुभावों के लिए विधेय हूँ। आप लोगों के सामने मुझे आज्ञा देने का अधिकार नहीं है। मैं तो आज्ञाकारी हूँ। ऐसा जानकर आप लोग आज्ञा दीजिये।

एहि समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर ॥
छोटे बदन कहौं बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता ॥३॥

अर्थ : ऐसे समाज में ऐसी जगह में आपका पूछना ! मुझसे : मैं मौन हूँ और मलिन हूँ। मैं उलटा सुलटा बोलूँगा। मैं छोटे मुँह बड़ी बात कहता हूँ। हे तात ! विधाता को बायें समझकर आप क्षमा कीजियेगा।

व्याख्या : बड़े का प्रश्रय : अदब यहाँ तक माना जाता है कि जब से भरतजी आये हैं लक्ष्मणजी मौन हैं कि जो कुछ बातचीत करना होगा भरतजी करेंगे। उनके सामने मेरा बोलना अनुचित है और जब से जनकजी आये हैं भरतजी मौन हैं कि मुझ से बड़ा बोलने के लिए आगया है। बोलते भी हैं तो कहते हैं कि मेरा कहना छोटे मुँह बड़ी बात के सदृश है। उसे क्षमा कीजिये। जिसके विधाता विमुख हो जाते हैं वह ऐसा ही बोलता है।

इसीलिए भरतजी कहते हैं कि मैं तो सब भार आप पर छोड़कर मौन हूँ। जो आप कर दें सो स्वीकार है और दूसरी बात यह कि मैं दुःखी हूँ। इसलिए अन्तःकरण मलिन हो रहा है। न जाने कैसी बात मुख से निकल जाय। भाव यह कि आप लोग बड़े हैं। आपकी आज्ञा रामजी पर चल सकती है। सो आप लोग कुछ कहते नहीं। मुझ सेवक से कहने के लिए कहते हैं। ऐसी बातें मेरे मन में है जिसके कहने में धृष्टता है। अतः कहते हैं : मैं बोलब बाउर। रामजी के पास भरत या लक्ष्मण में से कोई न कोई रहता ही है। इसी से शत्रुघ्नजी को बोलने का अवसर ही रामायण भर में न मिला।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवा धरमु कठिन जग जाना ॥
स्वामि धरमु स्वारथहि बिरोधू। बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू ॥४॥

अर्थ : वेद शास्त्र और पुरान में प्रसिद्ध है और संसार जानता है कि सेवाधर्म कठिन है। स्वामी के धर्म और स्वार्थ में विरोध है, वैर अन्धा है, और प्रेम का प्रबोध नहीं होता।

व्याख्या : यहाँ स्वामी के धर्म से और सेवक के स्वार्थ से विरोध पड़ गया है। स्वामी का धर्म यथा : मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा। तजे तिहूँ पुर अपजस छावा। सेवक का स्वार्थ यथा : जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी। दोनों में विरोध पड़ गया। दोनों एक साथ नहीं हो सकता। स्वामी का धर्म सेवक के स्वार्थ को नहीं देख सकता और न सेवक का स्वार्थ स्वामी के धर्म को देख सकता है। क्योंकि वैर अन्धा है। इस पर यदि यह कहा जाय कि फिर सेवक अपना स्वार्थ छोड़े तो इस पर यह कहते हैं कि प्रेम को प्रबोध नहीं। वह मानता नहीं।

दो. राखि राम रुख धरमु ब्रतु, पराधीन मोहि जानि।
सब कें संमत सर्ब हित, करिय पेमु पहिचानि ॥२९३॥

अर्थ : रामजी का रुख धर्म व्रत की रक्षा करते हुए, मेरी पराधीनता पर ध्यान देते हुए, सब की राय से जो सबका हित हो उसे प्रेम पहिचानकर करना चाहिए।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मेरा सेवाधर्म न बिगड़ने पावे। इसलिए रामजी का रुख रखिये और स्वामी का धर्म व्रत न भङ्ग हो इसलिए उसकी भी रक्षा कीजिये। मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं। अतः मुझे पराधीन जान लीजिये। मेरा विचार छोड़िये। जिसमें सबकी राय हो सबका हित होता हो उसे प्रेम के पहिचान के साथ कीजिये। जिसमें दरबार का कायदा न बिगड़ने पाये। यथा : प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की। कहिय जो आयसु देउ का उत्तर देते हुए भरतजी कहते हैं कि मैंने पहिले ही कहा था : मौन मलिन मैं बोलब बाउर। आप एक सामञ्जस्य बिठाने के लिए मेरे यहाँ आये और मैंने बहुत से सामञ्जस्य बिठाने के लिए निवेदन किया।

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे ॥१॥

अर्थ : भरत के वचन सुनकर और स्वभाव देखकर समाज सहित राजा जनक प्रशंसा करने लगे कि भरतजी की वाणी सुगम भी है अगम भी है। मृदु मञ्जु भी है। कठोर भी है। असीम अर्थ है और अक्षर थोड़े हैं।

व्याख्या : सब लोग भरतजी की वाणी और स्वभाव पर मुग्ध हैं कि क्या

वाणी है और कैसा सुन्दर स्वभाव है कि सब कुछ कह दिया पर कठोरता व्यक्त न हुई। वाणी की प्रशंसा करते हैं कि सुनने में तो सुगम है पर समझने में अगम है। विनय प्रेम युक्त होने से मृदु है। निर्दोष होने से मञ्जु है। फिर भी कठोर उत्तर है कि आप कुलगुरु हैं। अवस फिरब गुरु आयसु मानी। और आप पिता के समान हैं। सब कुछ कह सकते हैं। पर कुछ कहना नहीं चाहते। मुझ पराधीन सेवक से कहलाना चाहते हैं। ऐसी ध्वनि निकलती है। इससे कठोर भी है। स्वामिधर्म स्वारथहिं बिरोधू। बैर अंध प्रेमहि न प्रबोधू। इतने से अक्षरों में असीम अर्थ भरा पड़ा है।

**जिमि मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी॥**
**भूप भरतु मुनि साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू॥२॥**

अर्थ : जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब हो और दर्पण अपने हाथ में हो। पर मुख का प्रतिबिम्ब पकड़ा नहीं जाता। ऐसी अद्भुतवाणी है। तब राजा जनक भरत और मुनि साधु का समाज देवकुल कुमुद चन्द्र रामचन्द्र के पास गये।

व्याख्या : भरतजी की वाणी दर्पण की भाँति निर्मल है और उसमें प्रतिबिम्बित मुख अत्यन्त स्पष्ट हैं। दर्पण इतना छोटा कि हाथ में आगया। फिर भी इतना बड़ा मुख ज्यों का त्यों उसमें आगया। पर यह सामर्थ्य किसी को नहीं कि उस प्रतिबिम्बित मुख को कोई पकड़ सके। हाथ के भीतर दर्प्रण और उसके भीतर मुख फिर भी हाथ उसे नहीं पकड़ सकता। यही अद्भुतता है। ऐसी ही भरतजी की वाणी है। बात स्पष्ट और थोड़े शब्दों में कही। पर पकड़ में नहीं आती है। भाव यह कि भरत के वचन का उत्तर किसी के पास नहीं।

वसिष्ठजी जनक के पास गये। वे भरतजी के पास गये। कुछ निर्णय न हुआ। अब सब लोग मिलकर रामजी के पास जा रहे हैं।

**सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नव जल जोगा॥**
**देव प्रथम कुलगुर गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेखी॥३॥**

अर्थ : यह समाचार सुनकर लोग सोच से ऐसे व्याकुल हुए जैसे नये जल के योग से मछलियाँ व्याकुल होती हैं। देवताओं ने पहले कुलगुरु की गति देखी। फिर राजा जनक के विशेष प्रेम को देखा।

व्याख्या : जलती हुई पृथ्वी पर जब पहिला जल गिरता है तो वह भी तप्त हो जाता है और जब वह जल जलाशय में पहुँचता है तो मछलियाँ व्याकुल हो उठती हैं। इसी प्रकार यह समाचार पाकर लोग विकल हो गये। समाचार नवीन जल स्थानीय है।

देवताओं को अपना स्वार्थ इतना सताये हुए है कि ये प्रत्येक हलचलों पर निगाह रखते हैं। उन्होंने पहिले कुलगुरु की गति देख ली कि स्नेह से शिथिल हो रहे हैं। इनकी आज्ञा मिलने पर रामजी पिता के वचन को भी नहीं मानेंगे। इधर

जनकजी की गति देखी कि ये महात्मा स्नेह से विशेष शिथिल हो गये। इनका बहुत बड़ा सङ्कोच रघुनाथजी को है।

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख[1] सोच बस लेखा॥४॥

अर्थ : भरतजी को देखा कि राम भक्तिमय हो रहे हैं। तो स्वार्थी देवताओं ने हहरकर हाथ पैर ढीला करके हिम्मत छोड़ दी। सब किसी को देखा कि राम प्रेममय हो रहे हैं तो देवता लोग ऐसे सोचवश हुए कि उनका लेखा नहीं हो सकता।

व्याख्या : गुरुजी और जनकजी की दशा तो देखी ही थी। अब भरतजी को देखते हैं तो वे रामप्रेममय हो रहे हैं। इन तीनों व्यक्तियों पर देवताओं का बल चल नहीं सकती। अतः देवताओं ने भयभीत होकर हिम्मत छोड़ दी। रामजी के स्वभाव को देवता जानते हैं कि वे भक्तों के पराधीन से हो जाते हैं। अतः उनके लौट जाने के भय से भीत हो गये।

इतना ही नहीं वहाँ सभी को राम प्रेममय देख रहे हैं। अतः उनके सोच का अन्त नहीं है। समझ रहे हैं कि ऐसे प्रेमियों के एक मत होने में कितनी देर लगेगी।

दो. रामु सनेह सकोच बस, कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि, नाहि त भयउ अकाजु॥२९४॥

अर्थ : शोकयुक्त होकर देवराज ने कहा कि रामजी सङ्कोची हैं और प्रेम के वश हैं। अतः सब पञ्च लोग मिलकर प्रपञ्च रचो। नहीं तो बात बिगड़ा चाहती है।

व्याख्या : शोक के वश सब देवताओं की ऐसी गति देखकर स्वयं देवराज शोकयुक्त होकर बोल उठे कि रामजी का सङ्कोची स्वभाव है और वे स्नेह के वशीभूत हो जाते हैं। अतः अब चुप रहने का समय नहीं है। सब पञ्च मिलकर माया करो। एक दो की माया से काम न चलेगा। यदि त्रुटि हुई तो काम को बिगड़ने में देर नहीं है। यही समय पुरुषार्थ करने का है।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥१॥

अर्थ : देवताओं ने सरस्वती का स्ममण करके स्तुति की और कहा कि हे देवि! हम लोग शरण में आये हैं रक्षा करो। अपनी माया करके भरत की बुद्धि फेर दो और छल की छाया करके देवकुल की रक्षा करो।

व्याख्या : सरस्वती का ही आवाहन और स्तुति करके देवता लोगों ने रामाभिषेक में विघ्न किया। रामजी को वनवास हुआ। भरतजी के प्रेम के कारण वह

———

१. यहाँ विरोधाभास : अलङ्कार है।

सब प्रयत्न आज निष्फल हुआ चाहता है। अतः इन्द्र की आज्ञा मानकर देवताओं ने प्रपञ्च रचने के लिए फिर सरस्वती का आवाहन किया। उन्हें प्रसन्न करने के लिए स्तुति की। उन्हें सङ्कोच में डालने के लिए शरणागत हुए।

अन्त में अपना प्रयोजन निवेदन करते हैं कि भरत को बुद्धिरूपी आतप से हम लोग पीड़ित हैं। अतः माया करके भरत की बुद्धि तू फेर दे। माया के आवरण की छाया में हम लोग घोर आतप से बच जायँ। जैसे पहले कर चुकी हो। यथा : अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।

**बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी ॥**
**मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू ॥२॥**

अर्थ : देवताओं की स्तुति और विनय सरस्वतीजी ने आकर सुनी। परन्तु सरस्वती बड़ी सयानी हैं। देवता स्वार्थ के कारण जड़ हो गये हैं। यह जानकर बोलीं कि मुझे भरत की बुद्धि फेरने को कहते हैं। इन्हें नेत्र तो हजार हैं। पर सुमेरु पर्वत नहीं दीखता।

व्याख्या : इनकी बुद्धि काम नहीं करती। जहाँ बिबुध कुमुद द्विजराज स्वयं बैठे हैं। वहाँ बिबुध : देवताओं को भय कहाँ ? परन्तु देवता स्वार्थान्ध हो गये हैं। इनकी विवेक दृष्टि मारी पड़ी है। स्थूल दृष्टि हजार होने से भी कोई आँखवाला नहीं हो जाता। देखो हजार आँख होने पर भी इन्द्र को यह नहीं सूझ रहा है कि किसकी बुद्धि फेरी जा सकती है और किसकी नहीं फेरी जा सकती। रामजी के परम प्रेमी की बुद्धि कौन फेर सकता है। उनके स्नेह तक त्रिदेव का मन नहीं जाता वहाँ मेरी क्या गति है। पहिले जो मैंने बुद्धि फेरा था तो मन्दमति मन्थरा की बुद्धि को फेरा था। मन्थरा सेर है और भरत सुमेरु हैं। कहाँ मन्थरा और कहाँ भरत।

**बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकै निहारी ॥**
**सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ॥३॥**

अर्थ : विधि हरिहर की माया बड़ी भारी है। वह भी भरत की मति की ओर देख नहीं सकती। उस मति को भोरी करने के लिए मुझे कहते हो। चाँदनी सूर्य को कैसे चुरा सकती है।

व्याख्या : जिसे भरत के स्वरूप का ज्ञान है वह समझ सकता है कि विधि हरिहर ईश्वर हैं। उनकी माया के बल से संसार की उत्पत्ति पालन और लय हुआ करता है। पर उनकी स्थिति भरत के सामने ऐसी है जैसे क्षीरसागर के सामने काँजी के दो चार बिन्दु। भरत की बुद्धि सूर्य के समान है। मायारूपी अन्धकार उसके सामने टिक नहीं सकता। मैं तो विधि की आश्रिता हूँ। चाँद की चाँदनी हूँ। मेरे तेज के सामने खद्योत भले ही छिप जायँ। सूर्य कैसे छिप सकते हैं। भाव यह

कि जिस भाँति सूर्य की ज्योति से ही चन्द्र प्रकाशित है उसी भाँति भरत के तेज से ही विधि हरिहर का तेज है। तुम लोगों को भरत के स्वरूप का बोध नहीं है।

भरत हृदय सिय राम निबासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥
अस कहि सारद गइ बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहु कोका ॥४॥

अर्थ : भरत के हृदय में राम जानकी का निवास है। वहाँ अन्धकार कहाँ जहाँ सूर्य का प्रकाश है। ऐसा कहकर सरस्वती ब्रह्मलोक चली गयी। देवता लोग ऐसे विकल हो गये जैसे रात को चकवा।

व्याख्या : भरतजी की इतनी बड़ी महिमा का कारण यह है कि उनके हृदय में राम जानकी का निवास है। रामजी सूर्य हैं। सीताजी उनकी प्रभा हैं। इसीलिए भरतजी की बुद्धि सूर्यरूप हो रही हैं। भरतजी की महिमा विधि हरिहर से अधिक कही गयी है। वहाँ मायारूपी अन्धकार की गति कहाँ ?

ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक चली गयीं। देवताओं को और कुछ कहने सुनने का अवसर नहीं दिया। देवताओं के लिए सूर्यास्त हो गया। वे कोक की भाँति विकल हो गये।

दो. सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंचु माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाटु ॥२९५॥

अर्थ : देवता स्वार्थी हैं। उनका मन मलीन है। उन्होंने सलाह करके कुसाज साजा। प्रपञ्च, प्रबल माया, भय, भ्रम, अप्रीति और उचाट की रचना की।

व्याख्या : देवताओं को स्वार्थी कहने पर भी मलिन मन कहा। क्योंकि सरस्वती के समझाने पर भी उन्हें बोध न हुआ। यथा : तदपि मलिन मन बोध न आवा। भरतजी ने कहा था : सबके सम्मत सर्वहित करिअ प्रेम पहिचानि। तो सबको यदि उचाट हो जाय : भ्रमादि हो जाय तो काम बन सकता है। भरत पर माया नहीं चल सकती। लोगों पर तो चल सकती है। देवताओं की समष्टि की माया है। इसलिए प्रबल माया कहते हैं। लोगों को वन में भय लगने लगा। मन में अस्थिरता आगयी। घर की ओर भी मन दौड़ने लगा। सरकार की प्रीति भी कम हो गयी। चित्त में उचाट हो गया।

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू ॥
गये जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा ॥१॥

अर्थ : कुचाल करके इन्द्र सोचने लगे कि काम का बिगाड़ या सुधार तो भरत के हाथ में है। जनकजी तब रामजी के पास गये। रविकुलदीप ने सबका सम्मान किया।

व्याख्या : यद्यपि सब देवताओं ने मिलकर प्रपञ्च : माया रची। फिर भी सबके सरदार होने से इन्द्र का नाम लिया जा रहा है। उन्हीं की आज्ञा से माया

रची गयी। अब वे सोचने लगे कि जिनके ऊपर माया काम करेगी उनके हाथ में तो कुछ है नहीं। काम का बिगाड़ना या सुधारना तो भरतजी के हाथ में है और उन पर यह माया भी काम नहीं कर सकती। कवि ने : भूप भरत सब साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू : से प्रसङ्ग छोड़ा था। बीच में देवताओं का हाल कहने लगे। अब फिर वहीं से प्रसङ्ग उठाते हैं कि जनकजी रामजी के पास पहुँचे। प्रधान होने से उन्हीं का नाम लिया। रामजी ने सबका सम्मान किया।

जब रामजी को सुमन्त चक्रवर्तीजी के यहाँ लिवा चले तब दीप कहा था। यथा : रघुकुल दीपहि चले लवाई। यहाँ जनकजी के सामने भी दीप ही कह रहे हैं। भानुकुल भानु नहीं कहते अथवा राम और भरत दोनों दीप हैं। यथा : जानेउ सदा भरत कुलदीपा ' बार बार मोहि कहेउ महीपा।

समय समाज धर्म अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा॥
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥२॥

अर्थ : रघुवंश के पुरोहित तब समय समाज और धर्म के अनुकूल बोले। उन्होंने जनक और भरत की बातचीत कह सुनायी और भरतजी की सोहावनी उक्ति भी कही।

व्याख्या : सरकार ने वसिष्ठजी से कहा था : उचित होय सो कीजिय नाथा। अतः तुरन्त वसिष्ठजी काम में लग गये। जनकजी के पास गये। उन्हें लिये दिये भरतजी के पास गये। समय समाज और धर्म के अविरोध बोलना ही उचित है। वसिष्ठजी रघुवंश के पुरोहित हैं। पूज्य हैं। सब प्रकार से हितचिन्तक हैं। इनका कहना कोई टाल नहीं सकता।

समय ऐसा उपस्थित है कि कोई कुछ निर्णय नहीं कर पाता। जनकजी ने भरत के ऊपर सब छोड़ा कि जो भरत कहें सो किया जाय और भरतजी कहते हैं : राखि राम रुख धर्म ब्रत पराधीन मोहि जानि। सबके सम्मत सर्वहित करिय प्रेम पहिचानि। अवध समाज के मुखिया भरत मैथिल समाज के मुखिया राजा जनक। सो इन्हीं दोनों की सम्मति सारे समाज की सम्मति समझनी चाहिए। ऐसे अवसर पर वसिष्ठ कहते हैं कि मेरी सम्मति यह है।

तात राम जस आयसु देहू। सो सब करइ मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥३॥

अर्थ : हे तात राम ! तुम जैसी आज्ञा दो वही सब करें। मेरा तो यही मत है। सुनकर रामजी दोनों हाथ जोड़कर मृदु वाणी बोले।

व्याख्या : नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ सबके तुम यथार्थ जानकार हो। अतः सबके सम्मत सर्वहित का निर्णय तुम्हीं कर सकते हो। अतः तुम जो आज्ञा दो वही सब लोग करें। इससे भरत के सेवाधर्म का भी निर्वाह हो जायगा। क्योंकि

इसके बाद जो कुछ भरत करेंगे वह सब करना तुम्हारी आज्ञा का पालन होने से सेवकाई के अन्तर्गत होगा।

यह सुनकर रामजी ने आज्ञा नहीं दी। बड़ों के सामने जैसा बोलना चाहिए वैसा बोले। दोनों हाथ जोड़कर सत्य सरल और मृदु वाणी बोले।

बिद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सरी सिर सोई॥४॥

अर्थ : स्वयं मिथिलेश के विद्यमान होते हुए मेरा कहना सब तरह से गँवारपन है। आपकी और महाराज की जो आज्ञा हो मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि वही मेरे लिए ठीक है और शिरोधार्य है।

व्याख्या : पिता के समान महाराज मिथिलेश हैं। उनके सामने आज्ञा देना अनुचित है। किसी प्रकार उचित नहीं है। आप गुरु हैं। आपकी आज्ञा सर्वोपरि है। अतः आप दोनों बड़े उपस्थित हैं। आप लोग सम्मति कर लीजिये। वही मुझे शिरोधार्य होगा। इसके लिए मैं आपकी शपथ लेता हूँ। भाव यह कि यदि आप लोगों की यही आज्ञा हुई कि तुम लौट चलो तो मैं पिता का वचन छोड़ दूँगा। यही रामजी की सत्य सरल और मृदु वाणी है।

दो. राम सपथ सुनि मुनि जनकु, सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु, बनइ न ऊत्तरु देत॥२९६॥

अर्थ : रामजी की शपथ सुनकर मुनिजी और जनकजी सभा समेत सङ्कुचित हो गये। सब लोग भरतजी का मुख देखने लगे। किसी से उत्तर देते नहीं बनता।

व्याख्या : धर्म के मर्म के जाननेवाले महापुरुष पिता के वचन के उल्लंघन करने की सम्मति दे नहीं सकते। तो जब लौटने को कह ही नहीं सकते तो और कहेंगे ही क्या ? अतः किसी को उत्तर नहीं सूझता। रामजीने सरल बात कही कि मुझे तो बड़ों को बात माननी है। उनका वचन मानकर वन आया। अब स्वयं गुरुजी तथा पिता सदृश मिथिलेश कहें कि तुम लौट चलो तो मैं चलूँ। अब गुरुजी तथा जनकजी धर्मविरोध कैसे करें। इसलिए जवाब नहीं सूझता। भरतजी का मुख देखते हैं कि तुमसे जो कुछ कहते बने इस समय कहो। क्योंकि तुम्हीं इस कार्य में अग्रसर हो।

सभा सकुच बस भरत निहारी। रामबंधु धरि धीरजु भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिधि जिमि घटज निबारा॥१॥

अर्थ : भरतजी ने देखा कि सभा सङ्कोच के वश में पड़ गयी। तब रामजी के भाई ने भारी धैर्यधारण किया। कुसमय देखकर इस भाँति स्नेह को सँभाला जिस भाँति बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्यजी ने रोक दिया था।

व्याख्या : भरतजी ने देखा कि रामजी के शपथ पूर्वक कहने से अब किसी

को उत्तर नहीं सूझ रहा है। सबके सब सङ्कोच में पड़ गये। भरतजी प्रेम से भरे हुए हैं। जनकजी के आ जाने पर स्वयं कुछ कहना नहीं चाहते। अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर एक बार बोले थे। अब फिर बिना बोले काम नहीं चलता। अतः भारी धैर्य धारण करके बोले। रामजी भाई हैं। उनको उत्तर देने में ये ही समर्थ हैं।

कथा है कि किसी समय विन्ध्याचल बढ़ने लगा। उसका इरादा इतना बढ़ने का था जिसमें सूर्यनारायण उसकी परिक्रमा करने लगें : जिस भाँति सुमेरु की परिक्रमा करते हैं। इस अस्वाभाविक बढ़ाव को देखकर देवताओं को भय हुआ। वे लोग काशी आकर अगस्त्यजी को लिवा ले गये जो विन्ध्य के गुरु थे। उन्हें देखकर विन्ध्याचल ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। मुनिजी ने कहा कि जब तक मैं दक्षिण से नहीं लौटता तब तक यों ही पड़े रहो। उस समय से विन्ध्याचल का बढ़ना रुक गया। अगस्त्यजी दक्षिण से लौटे ही नहीं।

यहाँ इतने से ही तात्पर्य है कि भरतजी का प्रेम विन्ध्याचल की भाँति बढ़ता चला जाता था। उसे रोकने से सद्गुणरूपी सुरगण असमर्थ थे। फिर भी भरतजी ने उसे ऐसा रोका जैसे अगस्त्यजी ने विन्ध्याचल को बढ़ने से रोक दिया। अर्थात् प्रेम को प्रसुप्तावस्था में ला दिया।

यहाँ भरतजी की समता अगस्त्य मुनि से और प्रेम की विन्ध्याचल से है।

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जगजोनी॥
भरत बिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥२॥

अर्थ : शोकरूपी हिरण्याक्ष ने निर्मल गुणरूपी जग को उत्पन्न करनेवाली बुद्धिरूपी पृथ्वी को हर लिया था। भरत के विचाररूपी विशाल वराह ने उसका तत्काल उद्धार किया।

व्याख्या : कथा है कि किसी समय हिरण्याक्ष नामी दैत्य पृथ्वी को हरण करके पाताल में ले गया था। उसे वाराह रूप में प्रकट होकर भगवान् ऊपर ले आये। यहाँ शोक को हिरण्याक्ष कहा। उसने सबकी बुद्धि हरण कर ली। समष्टि की बुद्धि होने से उसे पृथ्वी से उपमित किया। जिस भाँति पृथ्वी स्थावर जङ्गम का उत्पत्ति स्थान है उसी भाँति बुद्धि भी सब गुणगणों का उत्पत्ति स्थान है। भरत के विवेक ने उसका उद्धार किया। इसीलिए उसे वाराह कहा। भरत के विवेक से सबको बात सूझने लगी। यह बात किसी को न सूझी कि सरकार से कहें कि आप पिता का वचन मानिये। भरत नहीं मान रहे हैं। उन्हें मानने के लिए आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञा से भरत सब करें। उनका सेवाधर्म न बिगड़े।

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा॥३॥

अर्थ : भरतजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीरामजी का

जनकजी का गुरुजी का और साधुओं का निहोरा किया और बोले कि आज मेरे अत्यन्त अनुचित : आचरण को क्षमा कीजियेगा। मैं कोमल मुख से कठोर बातें कहता हूँ।

व्याख्या : पहिले प्रणाम किया। तत्पश्चात् रामजी जानकीजी गुरुजी और साधुओं से क्षमा करने के लिए निहोरा किया कि आज मैं अत्यन्त अनुचित कर रहा हूँ। बात सरकार से और गुरुजनों से हो रही है। इस बीच में मेरा हस्तक्षेप अनुचित है और तिस पर मैं कठोर कहूँगा जो कहना कि मेरे ऐसे व्यक्ति के लिए शोभा नहीं देता। अतः मेरे इस भारी अनुचित कर्म को आप लोग क्षमा करें। इसके लिए मैं निहोरा करता हूँ।

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस ते मुख पंकज आई॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥४॥

अर्थ : हृदय से स्मरण करते ही सुन्दर सरस्वती मांनस से मुखकमल में आगयीं। भरतजी को सरस्वती निर्मल विवेक धर्म और नीतिवाली सुन्दर हंसिनी रूप थीं।

व्याख्या : यह भरतजो की सरस्वती हैं। अतः बड़ी सुन्दर हैं। भरतजी ने उनका स्मरण किया। ये उनके मानस में रहती हैं। इसलिए उन्हें मराली कहा। स्मरण करते ही भरतजी के मुख में आगयीं। वाणी की सुन्दरता तभी है जब उसमें विवेक धर्म और नीति तीनों का योग हो। वाणीरूपी हंसिनी गुणरूपी पय और दोषरूपी जल को अलग करती हैं। पर यह हंसिनी धर्म और नीति से भी युक्त हैं। अतः अधिक सुन्दर हैं।

दो. निरखि बिबेक बिलोचननि, सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु, सुमिरि सीय रघुराजु॥२९७॥

अर्थ : विवेकरूपी नेत्र से सारे समाज को स्नेह से शिथिल देखकर उन्हें प्रणाम किया और राम जानकी को स्मरण कर भरतजी बोले।

व्याख्या : रामजी के स्नेह में मग्न समाज को देखकर भरतजी ने उस समाज को प्रणाम किया। यदि समाज का समाज प्रेममग्न हो तो वह सब प्रकार से प्रणम्य हो जाता है। बोलने के पहिले रामजानकी के स्मरण का भाव यह कि अपनी बात का सही उत्तर आप ही मेरे द्वारा दीजिये।

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपालु सर्वग्य सुजानू॥१॥

अर्थ : हे प्रभो ! आप पिता माता सुहृद परमहित अन्तर्यामी हैं। आप सरल सुस्वामी शीलनिधान प्रणतपाल सर्वज्ञ और सुजान हैं।

व्याख्या : यहाँ भरतजी ने अठारह विशेषण दिये हैं। जिनमें सात तो

सम्बन्धबोधक हैं और शेष सरकार के गुणों के व्यापक हैं। ये ही विरदावली हैं जिनका वर्णन भरतजी करेंगे। अगस्त्य संहिता में सम्बन्ध को परतम स्वराट् भाव कहा है। इसके द्वारा बिना ध्यान और बिना योग के बिना तप के और बिना ज्ञान के श्री रघुनन्दन में परा अव्यभिचारिणी प्रीति नित्य बढ़ती ही रहती है। यथा : एभ्यः परतमो भावो सम्बन्धाख्यः स्वयं स्वराट्। बिना ध्यानेन तपसा योगं ज्ञानं विनैव हि। श्रीरघुनन्दने प्रीतिः पराह्यव्यभिचारिणी। वर्धतेऽनुदिनं विप्रं सत्यं सत्यं न चान्यथा। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं : मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावै। सो भरतजी ने सात सम्बन्ध माने। पिता माता सुहृद गुरु स्वामी पूज्य और परम हित के सम्बन्ध। यहाँ पर भरतजी ने भाई के सम्बन्ध को नहीं गिनाया। क्योंकि उसके लिए कह आये हैं : दसरथ सुअन राम लघु भाई। दीन्हू मोहि बिधि बादि बड़ाई। अङ्गद ने तीन सम्बन्ध माना था : गुरु का पिता का और माता का। यथा : मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता। यहाँ तो सात सात सम्बन्ध हैं। भाव यह कि मैं आपको छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ।

प्रभु यथा : राजाराम स्वबस भगवानू।<br>
पितु यथा : ज्येष्ठः भ्राता पितुः समः।<br>
मातु यथा : रामहि बंधु सोच दिन राती।<br>
अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥<br>
सुहृद यथा : सिसुपन ते परिहरेउ न संगू।<br>
कबहु न कीन्ह मोर मन भंगू॥<br>
गुरु यथा : बेद पुरान सुनहि मनलाई।<br>
आप कहहिं अनुजहि समुझाई॥<br>
स्वामी यथा : जेठ स्वामि सेवक लघु भाई।<br>
पूज्य यथा : पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।<br>
सब मानिये राम के नाते॥<br>
परमहित यथा : भरत सरिस प्रिय को जगमाँहीं।<br>
कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू।

अब सरकार के सद्गुण कहते हैं कि श्रीमद से लोग टेढ़े हो जाते हैं। यथा : श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि। पर सरकार महान् श्रीमान् होने पर भी सरल है। सरकार सुस्वामी हैं। अपनी ओर देखकर कुसेवक का भी भरण करते हैं। यथा : राम सुस्वामि कुसेवक मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो। तिस पर भी शील निधान हैं। सेवक की ढिठाई पर ध्यान नहीं देते। यथा : प्रभु तरु तर कपि डारपर ते किये आपु समान। तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान। प्रणत के पालन करनेवाले हैं। यथा : सकृत प्रणाम किये अपनाये। सर्वज्ञ हैं। यथा : तुमसे कछु न छिपी करुनानिधि तुम हौ अन्तरजामी। सुजान हैं। जन के जी की बात जानते हैं। यथा : राम सुजान जान जन जी की। समर्थ हैं। दोष अपनी क्रिया उन पर नहीं कर सकते। यथा : समरथ कहँ नहिं दोष गोसाइँ। रबि पावक सुरसरि की नाइँ।

समरथु सरनागत हितकारी । गुनगाहकु अवगुन अघहारी ॥
स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाईं । मोहि समान मैं सांइ दोहाईं ॥२॥

अर्थ : समर्थ हैं । शरणागत के हित करनेवाले हैं । गुणग्राहक हैं । अवगुण और पाप के नाश करनेवाले हैं । हे स्वामी ! मालिक तो मालिक से ही हैं और मैं भी अपने ही जैसा हूँ । स्वामी की शपथ लेकर कहता हूँ ।

व्याख्या : समर्थ के विषय में ऊपर कह आये हैं । अथवा समर्थ शब्द का अन्वय शरणागत हितकारी के साथ है । भाव यह कि सरकार शरणागत के हित करने में समर्थ हैं । यथा : जौं सभीत आवा सरनाई । रखिहौं ताहि प्रान की नाई । सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा । बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा । सरकार गुणग्राहक हैं । यथा : देखि दोष कबहुँ न उर आने । सुनि गुन साधु समाज बखाने । सरकार अवगुन अघहारी हैं । यथा : करौं सद्य तेहि साधु समाना ।

अनन्वयालङ्कार से अपने इस कथन का तात्पर्य कहते हैं कि न तो आप सा भला स्वामी कहीं है और न मुझ सा बुरा सेवक ही कोई है । यथा : राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो । राम सों बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो । अब अपनी खोटाई कहते हैं :

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली । आयेउँ इहाँ समाजु सकेली ॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू । अमिअँ अमरपद माहुरु मीचू ॥३॥

अर्थ : प्रभु और पिता के वचन को मोह के वश हटाकर यहाँ समाज इकट्ठा करके आया हूँ । संसार में बुरा भला ऊँचा और नीचा अमृत अमरपद विष और मृत्यु है ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि भलाई में मेरे मालिक का जोड़ नहीं और खोटाई में मेरा कोई जोड़ नहीं । मैं ऐसा खोटा कि अज्ञान के वश में आकर प्रभु सम्मत पिता के वचन को न मानकर मैं यहाँ समाज इकट्ठा करके आया । भाव यह कि प्रभु और पिता के वचन मानने में विचार को स्थान नहीं है । इस पर विचार करना ज्ञान नहीं है अज्ञान है । सो प्रभुसम्मत पिता के वचन का मैंने स्वयं तो उल्लङ्घन किया ही और आपसे भी उल्लङ्घन कराने के लिए गुरु माता सचिव तथा पुरजनों को इकट्ठा करके यहाँ ले आया । इस बात का भी विचार न किया कि आज्ञा कोई हटा नहीं सकता । चाहे भला हो चाहे बुरा हो । चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो । चाहे अमृत हो चाहे विष हो । चाहे अमरपद हो चाहे मृत्यु ही हो । सबको मानना पड़ता है ।

राम रजाइ मेंटि मन माँहीं । देखा सुना कतहुँ कोउ नाँहीं ॥
सो मइ सब बिधि कीन्ह ढिठाई । प्रभु मानी सनेह सेवकाई ॥४॥

अर्थ : पर जिसने रामजी की आज्ञा को मन से भी मेटा हो ऐसा कहीं भी

किसी को न देखा न सुना। सो मैंने सब प्रकार से ढिठाई की। पर स्वामी ने उस ढिठाई को स्नेह और सेवा मान लिया।

व्याख्या : उपर्युक्त भलों और बुरों में कितनों को तो मैंने देखा है और कितनों को सुना है। पर ऐसा सामर्थ्य कहीं किसी में न पाया जो आपकी आज्ञा मन से भी मेट सके। भाव यह : नट मर्कट इव सबहि नचावत। राम खगेस बेद अस गावत। तथा : प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई। प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। करहु सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई।

मैंने ऐसे प्रभु की आज्ञा को सब प्रकार से न मानने की ढिठाई की। यह मेरी खोटाई है और उस ढिठाई को स्नेह और सेवकाई मान लेना यह सरकार का अघहारित्व है।

दो. कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस, सुजसु चारु चहुँ ओर ॥२९८॥

अर्थ : अपनी कृपा और भलाई से नाथ ने मेरा भला किया। मेरे दूषण ही भूषण हो गये और सुन्दर सुयश चारों ओर फैल गया।

व्याख्या : जग अनभल भल एकु गोसाइँ। कहिअ होइ भल कासु भलाइँ। सो मुझमें भलाई थी ही नहीं। सरकार ने कृपा करके ऐसी भलाई की कि मेरे दूषण ही भूषण हो गये। मेरी ढिठाई लोगों की दृष्टि में स्नेह और सेवा के रूप में परिणत हो गयी। सरकार ने प्रशंसा कर दिया : भयउ न भुवन भरत सम भाई। सो मेरा सुन्दर सुयश चारों ओर फैल गया। यह सरकार का गुणग्राहकत्व है।

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई ॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी ॥१॥

अर्थ : आपकी सुन्दर रीति आपका सुन्दर स्वभाव आपकी बड़ाई संसार में प्रसिद्ध है। उसका गान वेद शास्त्र ने किया है। जो क्रूर, कुटिल, खल, कुबुद्धि, कलङ्की, नीच, दुःशील, नास्तिक और निःशङ्क हैं।

व्याख्या : सरकार की रीति ही ऐसी है कि पतितों को पवित्र करते हैं। इसी से पतितपावन विरद हैं। यथा : ऐसी कौन प्रभु की रीति। बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति। स्वभाव ऐसा सुन्दर है कि नीच से भी प्रीति करते हैं यदि उसमें प्रेम हो। यथा : श्रीरघुबीर की यह बानि। नीच हूँ सो करत प्रीति सुप्रीति उर अनुमानि। बड़ाई अर्थात् महिमा की तो सीमा ही नहीं है। यथा : महिमा अमित न कहि सकहिं सहस सारदा सेस। यह बात छिपी नहीं है। संसार जानता है। वेद और शास्त्रों में इसकी प्रशंसा है। यह सरकार का : समरथ सरनागत हितकारित्व है।

क्रूर में दया नहीं होती और दया में ही सब धर्मों का निवास है। यथा : दया में वसत नाथ सकल धरम। कुटिल में सरलता नहीं होती। कुटिल ही दुरात्मा है। उसके मन वाणी और कर्म में एकवाक्यता नहीं। यथा : मनस्यन्यत् वचस्यन्यत्

कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् । खल निष्कारण ही दूसरे की बुराई करते हैं। यथाः खल बिनु कारण पर अपकारी । तामसी बुद्धिवालों की विपरीत बुद्धि होती है। वे अधर्म को ही धर्म समझते हैं। हित को अनहित समझते हैं। यथा : तव उर कुमति बसी बिपरीता । हित अनहित मानहुँ रिपु प्रीता। कलङ्की को दुनिया बुरा कहती है। यथा : कुल कलंक जेहि जनम्यो मोही । अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही। लोक वेद से बहिष्कृत को नीच कहते हैं। यथा : लोक बेद बाहर सब भाँती। आचारहीन को दुःशील कहते हैं। उन्हें वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। यथा : आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः । निरीश ही असुर हैं। यथा : मानहि मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहि सेवा । जिनके अस आचरण भवानी । ते जानहु निसिचर सब प्रानी। निःशङ्क से भाव यह कि जिनको परलोक का डर नहीं। यथा : स्वारथ बस परलोक नसाही । ये शरण में रक्खे जाने के पात्र नहीं हैं।

तेउ सुनि सरन सामुहे आए। सकृत प्रनाम किहें अपनाए ॥
देखि दोष कबहु न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने ॥२॥

अर्थ : वे भी सुनकर जहाँ सामने आये और एक बार प्रणाम किया तहाँ आपने अपना लिया। देखकर भी दोष को हृदय में स्थान नहीं देते। गुणों को सुनकर भी साधुसमाज में बखान करते हैं।

व्याख्या : ऐसे क्रूर कुटिल खल से सभी दूर भागते हैं। पर सरकार की बात दूसरी है। आपके सामने यदि ऐसा पुरुष भी आपके गुण गणों को सुनकर शरण में आवे तो एक बार प्रणाम करने से ही आप उसे अपना लेते है। पहिली बात यह है कि आपके सुयश सुनने से उसे यह सङ्कल्प हो कि मैं ऐसे के अनुकूल चलूँगा। इनके प्रतिकूल का परित्याग करूँगा और उसे विश्वास हो जाय कि सरकार निश्चय मेरी रक्षा करेंगे मैं इन्हीं को अपना रक्षक मानूँगा। मुझ से तो सब बिगड़ गया और अपने को सरकार को समर्पण कर दें तो सरकार एक प्रणाम से प्रसन्न होकर उसे अपना बना लेते हैं। वह तदीय हो जाता है।

यथा : सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं।
जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही।
तजि मदमोह कपट छल नाना। करैं सद्य तेहि साधु समाना।

उसके एक प्रणाम से रामजी प्रसन्न हो जाते हैं। उस प्रणाम की बड़ी महिमा है। यहाँ : प्रनत पाल सरवज्ञ सुजानू का साफल्य दिखलाया।

उसके दोषों को कभी हृदय में स्थान नहीं देते। देखते हुए भी नहीं देखते।

यथा : जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली।
फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी।
सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी ॥

तेहि भरतहिं भेटत सनमाने।
राजसभाँ रघुबीर बखाने॥

जो तदीय हो चुका उससे चूक भी हो जाय तो वह फिर परित्यक्त नहीं होता। ऐसा सुन्दर सरकार का स्वभाव है। अब बड़ाई कहते हैं।

को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपनें। सेवक सकुच सोचु उर अपने॥३॥

अर्थ: ऐसा कौन स्वामी है जो सेवक पर कृपा करके अपने सब समाज और साज साज दे। अपनी करतूत पर स्वप्न में भी ध्यान न दे। यदि सेवक को सङ्कोच हो तो अपने मन में सोच हो।

व्याख्या: सेवक कैसा भी हितचिन्तक हो पर उसे कोई बराबरी का दर्जा नहीं देता। पर रामजी की यह बड़ाई है कि उसका स्वयं समाज साज देते हैं।

यथा: बालि त्रास ब्याकुल दिन राती।
तन बहु ब्रन चिंता जर छाती॥
सो सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ।
अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥
प्रभु तरुतर कपि डारपर ते किये आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥

सरकार का स्वभाव बड़ा विस्मरणशील है। स्वयं जो जो भलाई किया है उसे भूल जाते हैं और सेवक को यदि सङ्कोच हो तो उन्हें मन में सोच होता है अर्थात् सङ्कोच मिटाने का प्रयत्न करते हैं। यथा: सकुच बिहाय मागु नृप मोही। तथा: मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।

सो गोसाइं नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥४॥

अर्थ: ऐसा मालिक दूसरा कोई नहीं है। मैं भुजा उठाकर और प्रण करके कहता हूँ। पशु नाचते हैं और तोता पाठ करने में प्रवीण होता है। परन्तु गुण और गति नट और पाठक के अधीन होता है।

व्याख्या: भरतजी कहते हैं कि मालिक तो बहुत हैं। पर ऐसा मालिक कोई है नहीं। भुजा उठाकर प्रण रोपकर मैं कहता हूँ: सारी सभा में सबका साक्षी देने के लिए भुजा उठाकर प्रण किया जाता है। यथा: निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह। कि: स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाइं।

सरकार ने जो कहा: भयउ न भुवन भरत सम भाई इत्यादि। उसपर भरतजी कहते हैं कि इसमें मेरी करतूत कुछ नहीं। पशु नाचता है। उसके नृत्य की गति नट के आधीन होती है। उसकी शिक्षा के अनुसार वह नाचता है। तोता श्लोक

पढ़ता है। वह कुछ नहीं समझता। जैसा सिखाया हुआ है वैसा कहता है। सो मेरे में जो गुण दिखायी पड़ते हैं वे सरकार की प्रेरणा से हैं। यह अन्तर्यामित्व है।

दो. यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर।
को कृपालु बिनु पालिहैं, बिरदावलि बरजोर ॥२९९॥

अर्थ : इस भाँति अपने जन को सुधारकर और सम्मान देकर साधुओं का सिरमौर बना दिया। कृपालु के बिना ऐसी बाँकी विरदावली का कौन बल पूर्वक पालन कर सकता है।

व्याख्या : मुझमें गुण कहाँ। जो दिखायी पड़ते हैं वे सरकार के सिखाये हैं। यथा : बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आप कहहिं अनुजन्ह समुझाई। अथवा मैंने तो ढिठाई की। न पिता की आज्ञा मानी न सरकार की शिक्षा मानी। परन्तु सरकार ने बलपूर्वक बिगड़ी हुई बात को सुधार दिया। यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीखा। बिधि प्रपंच मह सुना न दीखा। सम्मान दिया। यथा : उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग कहुँ तीरा। साधु सिरमौर बनाया। यथा : भरतहिं होइ न राजमद बिधि हरि हर पद पाइ। कबहुँ कि काँजो सीकरन्हि छीर सिंधु बिनसाइ। यहाँ : प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित का साफल्य दिखलाया।

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आयेउँ लाइ रजायसु बाएँ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा ॥१॥

अर्थ : शोक से स्नेह से या बाल स्वभाव से आज्ञा को हटाकर मैं यहाँ आया। फिर भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर सभी भाँति से मेरा भला ही माना।

व्याख्या : भरतजी अपना दोष कहते हैं कि मैं स्वयं निश्चय नहीं कर सकता कि मैं यहाँ क्यों आया? शोक के कारण आया कि स्नेह के कारण आया कि बाल-स्वभाव से आया। यहाँ बाल का अर्थ अज्ञानी है। अर्थात् स्वभाव से मैं अज्ञानी हूँ। उसी स्वभाव की प्रेरणा से आया है। चाहे जैसे आया पर आज्ञा उल्लंघन करके ही आया। क्योंकि आज्ञा पालन में विचार को स्थान नहीं है। यथा : मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहि बिचार करिअ सुभजानी। शोक यथा : राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनिबेष फिरहि बन बनही। एहि दुःख दाह दहै दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती।

स्नेह यथा : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।

बाल सुभाएँ यथा : आन उपाउ मोहि नहिं सूझा।

सरकार कृपालु हैं। अपनी ओर देखते हैं। जन के दोष को नहीं देखते। जब मुझ से आज्ञा भङ्ग का अपराध नहीं हुआ था तब तो भला मानना ही था। यथा : तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ। मो कह दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाउ। आज्ञा भङ्ग करने पर भी भला ही माना। नहीं तो मैं इस योग्य

था कि मेरा मुख भी न देखते। यथा : राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ। सो मुझे दर्शन दिया।

देखेउँ पायँ सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामी सहज अनुकूला ।।
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू ।।२।।

अर्थ : सुमङ्गलमूल चरणों का दर्शन पाया। जाना कि स्वामी की स्वभाविक कृपा बनी है। बड़े समाज में अपना भाग्य देखा कि मुझ से बड़ी चूक होने पर भी स्वामी अनुकूल हैं।

व्याख्या : सरकार मेरा नाम सुनने पर भी दूसरी जगह नहीं चले गये। इन मङ्गलमूल चरणों का दर्शन हुआ। तब मुझे मालूम हुआ कि सरकार की स्वाभाविक अनुकूलता में कोई भेद नहीं पड़ा।

इतना ही नहीं। इतनी बड़ी चूक पर भी स्वामी का इतना अधिक अनुराग है। इससे मैं अपने को बड़भागी मानता हूँ। यह सभा बड़ों की है। जिसमें गुरु श्वशुर माता सचिव तथा वृद्ध महाजन सभी एकत्रित हैं। इसमें सरकार ने पिता के वचन के गौरव से अधिक मेरे सङ्कोच को स्थान दिया। यथा : तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू : जो मैं कहूँ वही कर डालने पर तैयार हो गये और श्रीमुख से मेरे भाग्य की बड़ाई की।

कृपा अनुग्रह अंगु अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई ।।
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपने सील सुभायँ भलाई ।।३।।

अर्थ : हे गोसाईं ! हे कृपानिधे ! आप ने कृपा और साङ्ग अनुग्रह जी खोलकर अधिकता के साथ किया। अपने शील स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रक्खा।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मेरे अपराधों को केवल क्षमा ही नहीं किया बल्कि उन अपराधों को ही सद्गुण का रूप दे दिया। दूषण भूषण हो गये। दुर्यश सुयश हो गया। सम्मान मिला। मैं साधुओं का सिरमौर बन गया। मेरे लिए पिता का वचन तक त्यागने को प्रस्तुत हो गये। अब कृपा और अनुग्रह का कौन सा अङ्ग बचा जिसका प्रयोग मुझ पर जी खोलकर और पूरी तरह से नहीं किया गया।

मेरा दुलार सदा से होता आया हैं। उसे ब्रह्मा नहीं सह सके। माँ के व्याज से उसमें बीज डालना चाहा। यथा : बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा। परन्तु सरकार ने अपने शील स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रख लिया। ब्रह्मा का बिगाड़ा भी नहीं बिगड़ा। सरकार का शील स्वभाव और भलाई प्रख्यात है।

शील यथा : तुलसी कहूँ न राम ते साहिब सील निधान।
स्वभाव यथा : जासु स्वभाव अरिहु अनुकूला।

भलाई। यथा : राम निकाई रावरी है सबहीं को नीक।

नाथ निपट मइ कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई॥
अबिनय बिनय जथारुचि बानी। छमिहि देउ अति आरति जानी॥४॥

अर्थ : हे नाथ! मैंने अत्यन्त ढिठाई की। जो स्वामी और समाज के सङ्कोच को छोड़कर नरम और कड़ी मनमानी वाणी कही। हे राजन्! उसे मुझे अत्यन्त आर्त्त जानकर क्षमा करें।

व्याख्या : कहऊँ बदन मृदु बचन कठोरा से उपक्रम करके : अबिनय बिनय यथा रुचि बानी से उपसंहार कर रहे हैं। यहाँ स्वामी और बड़ों का समाज उपस्थित है। ऐसे समाज में सङ्कोच ही उचित है। यदि बोले भी तो संयत भाषा में ही बोलना उचित है। भरतजी कहते हैं सो मैं सङ्कोच छोड़कर इतना बोल गया और उसमें कठोर वाणी भी कही। यथा : फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकुता प्रसव कि संबुक काली इत्यादि। अतः क्षमा माँगता हूँ। मैं अत्यन्त आर्त्त हूँ और आप सुस्वामी हैं। यथा : कटु कहिये गाढ़े परे सुनि समुझि सुसाँईं।

दो. सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब, सबुइ सुधारी मोरि॥३००॥

अर्थ : सुहृद सुजान और सुस्वामी से बहुत कहना भी बड़ा दोष है। हे राजन्! अब आप आज्ञा दें और मेरा सब कुछ सुधार दें।

व्याख्या : सुहृद सुजान और सुसाहिब से अधिक न कहना चाहिए। क्योंकि अधिक कहने का यह अर्थ होता है कि स्वामी सुहृद सुजान नहीं हैं। अब मैं विनती कर चुका और सरकार ने सादर सुना भी। अब आप आज्ञा दें। आपके आज्ञा देने से ही सब सुधर जायगा। भाव यह कि जिसकी आज्ञा चले वही राजा है। आपकी आज्ञा से मैं काम करूँगा तो राजा आप रहे मैं सेवक रहा। मेरा सेवधर्म बना रह जायगा। सरकार ने मेरे दूषण को भूषण तो किया। अब आज्ञा देकर मेरी बिगड़ी भी सुधार दें। यथा : बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई।

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सीव सुहाई॥
सो करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपनेकी॥१॥

अर्थ : जो सत्य सुकृत और सुख की सुन्दर सीमा हैं उस स्वामी के चरण कमल के रज की दोहाई देकर जागत सोवत और सपने की रुचि जो हृदय में है कहता हूँ।

व्याख्या : सरकार सुन्दर सत्य की सीमा हैं। जगत् में आपेक्षिक सत्य है। पूर्ण रूपेण सत्य तो सरकार ही हैं। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई। सरकार सुकृत की सीमा हैं। यथा : सुकृत सनेह अवधि रघुराई। सरकार आनन्द की सीमा हैं। यथा : जो आनन्द सिंधु सुख रासी। इस भाँति रामजी को सच्चि-

दानन्द दिनेश कहा। ऐसे महाप्रभु की शपथ लेकर अपनी रुचि कहते हैं। जो जाग्रत अवस्था में तो सदा बनी ही रहती है। स्वप्न भी जाग्रत के संस्कार के अनुरूप ही होता है। अतः स्वप्न में भी यही रुचि संस्कार रूप से रहती है। घोर निद्रा के समय में भी वह बीज रूप से रहती है। गुरुजी ने सरकार को मेरी रुचि रखने को कहा। सरकार भी उसके रखने के लिए सब तरह से तैयार हैं। अतः मैं उसे कहे देता हूँ।

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावइ देवा ॥२॥

अर्थ : स्वामी की सेवा में स्नेह हो। चारों फल सम्बन्धी स्वार्थ रूपी छल छोड़कर हो। अच्छे स्वामी की सबसे बड़ी सेवा आज्ञा पालन है। वही प्रसाद आपका दास चाहता है।

व्याख्या : सच्ची सेवा में स्वार्थ ही छल है और जितने स्वार्थ हैं वे अर्थ धर्म काम और मोक्ष के अन्तर्गत हैं। अतः इनसे रहित स्वामी की सेवा में सहज स्नेह चाहता हूँ। कपट प्रीति या कृत्रिम प्रीति नहीं चाहता। सेवा में भी सबसे बड़ी स्वामी की आज्ञा है। अतः आप कृपा करके आज्ञा दें। उसी का मैं पालन करूँ। आपकी आज्ञा से जो कुछ मैं करूँगा। वही सरकार की सेवा हो जायेगी। अतः अब मैं यही प्रसाद चाहता हूँ कि मुझे आज्ञा हो कि भरत ! तू यह कर। बस इतना ही मेरा अभीष्ट है।

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी ॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई ॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर भारी प्रेम के वश हुए। उनके शरीर में पुलक हो आया। आँखें डबडबा आयीं। सरकार के चरण को व्याकुल होकर पकड़ लिया। उस समय का वह स्नेह कहा नहीं जाता।

व्याख्या : पहिले स्नेह सँभाला था। बढ़त बिन्ध्य जिमि घटज निवारा। परन्तु इस बात के निवेदन करने में वह स्नेह नहीं सँभल सका। फूट चला। अतः एकदम प्रेम के विवश हो गये। उन्हें सात्त्विक भाव हो गया। प्रेम में डूबने लगे। आधार की भाँति चरण को व्याकुल होकर पकड़ लिया। भरतजी को सब दुःख स्वीकार है। पर सरकार असामञ्जस्य में न रहें।

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाये समीप गहि पानी ॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ ॥४॥

अर्थ : कृपासिन्धु ने सुन्दर वाणी से सम्मान करके हाथ पकड़कर बैठाया। भरतजी का विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सारी सभा और स्वयं रामजी स्नेह से शिथिल हो गये।

व्याख्या : भरतजी चरणों पर गिरे थे। सरकार ने उनका हाथ पकड़कर निकट बैठाया। सरकार कृपासिन्धु हैं। भरतजी के आचरण से द्रवीभूत हो गये। उनका सत्कार सुन्दर वाणी से किया। सभा ने और रामजी ने भरतजी का विनय सुना। जिसका तात्पर्य यह था कि मेरा स्वामीसेवक भाव न बिगड़े। भरतजी सब दुःख सहने को तैयार हैं। पर सरकार की आज्ञा से। निर्गलितार्थ यह कि आप मालिक होना स्वीकार करिये। सब कुछ आप की आज्ञा से हो।

सुरगुरुजी ने पहिले ही कहा था : देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सनेह बिबस रघुराऊ। सो विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सभा सहित रामजी स्नेह से शिथिल हो गये।

छं. रघुराउ सिथिल सनेहु साधु समाज मुनि मिथिला धनी।
मन महु सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी॥
भरतहिं प्रसंसत बिबुध बरखत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥

अर्थ : रामजी साधु समाज मुनि मिथिलेश सब स्नेह से शिथिल हो गये और मन ही मन भरतजी के भाईपन तथा भक्ति की महा महिमा की सराहना करने लगे। देवता लोग भरतजी की प्रशंसा करते हैं और मलिन मन से फूल बरसाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि सब लोग सुनकर विकल हो गये और रात आने पर कमल की भाँति सङ्कुचित हो गये।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : सिथिल सनेह सभा रघुराऊ। इसी पुरइन का कमल है : रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी। सभा में ये ही लोग थे। वे सबके सब स्नेह में ऐसे शिथिल हो गये कि मुख से वाक्य नहीं निकलता। भरतजी के भाईपन की सराहना मन ही मन कर रहे हैं कि भरतजी सब दुःख सहने को तैयार हैं। पर रामजी के चित्त पर सङ्कोच की छाया तक नहीं आने देते और भक्ति को महामहिमा की प्रशंसा करते हैं कि जिसके प्रभाव से सारी सभा जिसमें ऐसे ऐसे धुरन्धर ज्ञानी भी हैं स्नेह से शिथिल हो गयी। सभा की गति कहकर अब देवताओं का हाल कहते हैं कि अपनी कार्य सिद्धि भरतजी द्वारा होते देखकर फूलों का वर्षा कर रहे हैं। पर मलिन मन से करते हैं। क्योंकि मन इनका शुद्ध नहीं है। लोगों की यह अवस्था हुई कि यह दशा सुनकर वे मुरझा गये। पहले उनका छटपटाना कहा था। यथा : सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहु मीनगन नव जल जोगा। अब उनका मुरझाना कहते हैं कि निशागमन के कारण जैसे कमल सङ्कुचित हो जाता है वैसे हो गये।

सो. देखि दुखारी दीन, दुहु समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन, मुए मारि मंगल चहत॥२०१॥

अर्थ : दोनों समाज के सब नर नारियों को दीन दुःखी देखकर महामलिन इन्द्र मरे हुए को मारकर मङ्गल चाहते हैं।

व्याख्या : जो स्वयं दुःख से दुःखी हो रहा हो उसे और दुःख देने के लिए तत्पर होना ही मरे हुए को मारना है। सभा का सब समाचार पाकर लोग बड़े दुःखी हुए। इन्द्र ने देखा कि इनका दुःखी होना भी सरकार के लौट चलने का कारण हो सकता है। अतः ऐसा उपाय होना चाहिए जिसमें लोगों की बुद्धि ही पलट जाय। ये रामजी के साथ वन में रहना चाहते हैं। सो उन्हें घर लौटना अच्छा लगने लगे। दीन दुखियों का मन स्वस्थ नहीं होता। उन पर माया शीघ्र काम करती है। अतः यही समय माया करने का है। देवता मानस मलिन हैं। देवराज इन्द्र महा-मलिन हैं।

कपट कुचालि सींव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू ॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहूँ न प्रतीती ॥१॥

अर्थ : देवराज तो कपट और कुचाल की सीमा हैं। इन्हें दूसरे का काम बिगाड़ना और अपना काम बनाना प्रिय है। इन्द्र की रीति कौवे के समान है। छली हैं। मलिन हैं। इन्हें कहीं भी विश्वास नहीं है।

व्याख्या : इन्द्र को केवल अपना काम प्रिय हो इतनी ही बात नहीं। दूसरे का काम बिगाड़ना भी उतना ही प्रिय है। देवता लोगों को केवल अपना काम प्रिय था। अपना काम होते ही फूलों की वर्षा करने लगे। परन्तु इन्द्र से लोगों में इतनी भक्ति का होना न देखा गया। उनके मानसिक सद्भाव को बिगाड़ने पर तुल गये।

उनकी रीति कौवे की रीति सी है। जिस भाँति कौआ छली मलिन होता है उसे किसी का विश्वास नहीं होता। उसी भाँति इन्द्र भी छली हैं। मलिन हैं। दिव्य शरीर प्राप्त करने पर भी इनके हृदय का मालिन्य दूर नहीं हुआ। माया कर ही बैठे। इन्हें कहीं विश्वास नहीं। स्पष्ट देख रहे हैं कि भरतजी रामजी की आज्ञानुसार ही चलना चाहते हैं और रामजी को पिता की आज्ञा शिरोधार्य है। पर इन्द्र को इन पर भी विश्वास नहीं। कदाचित् लोगों के अनुरोध से ही रामजी लौट जायँ इस सन्देह के कारण उन पर माया चलाना चाहते हैं। भाव यह कि जहाँ विषय की लोलुपता है वहाँ कपट और कुचाल रहेगा ही। इन्द्रपद विषय भोग की सीमा है। अतः वहाँ कपट कुचाल की पराकाष्ठा रहेगी ही।

प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला। सो उचाटु सबके सिर मेला ॥
सुरमाया सब लोग बिमोहे। राम प्रेम अतिसय न बिछोहे ॥२॥

अर्थ : पहिले ही कुमन्त्रणा करके माया की रचना की थी। उसी उच्चाटन को सबके ऊपर डाल दिया। देवताओं की माया से सब लोग मोहित हो गये। रामजी के प्रेम से अत्यन्त बिरहाकुल नहीं हुए।

व्याख्या : रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाट। इस प्रकार जो माया पहिले सब ने मिलकर बनायी थी उसी का प्रयोग समय पाकर सबके ऊपर कर दिया। यहाँ उच्चाटन के अन्तर्गत भय भ्रम और आर्त्ति को समझ लेना चाहिए। देवताओं ने उच्चाटन का प्रयोग किया। इससे लोगों को रामजी के विरह का जितना दुःख होना था उतना नहीं हुआ। कर मीजहिं सिर धुनि पछिताहीं। जिमि बिनु पंख बिहग अकुलाहीं। ऐसी दशा नहीं हुई।

भय उचाट बस मन थिर नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं ॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी ॥३॥

अर्थ : भय और उचाट के वश हो गये। मनमें स्थिरता नहीं रह गयी। क्षण में वन में रहने को जी चाहने लगा। दूसरे क्षण में घर की ओर मन दौड़ने लगा। मन की द्विविध गति से प्रजा दुःखी हो गयी जैसे नदी और समुद्र के सङ्गम में श्रेष्ठ जल की दशा हो जाती है।

व्याख्या : उच्चाटनवाली माया सबके हृदय में काम करने लगी। ज्वारभाटा आने लगा। कभी समुद्र के पानी का वेग नदी में आ जाता है। इससे नदी में बाढ़ आजाती है और कभी उसके हट जाने से स्वाभाविक अवस्था में हो जाती है। इसी भाँति उनके हृदय में कभी रामजीका प्रेम अत्यन्त अधिक हो जाता है और कभी घर को सुधि आने से कम हो जाता है। पर सर्वथा प्रेमाभाव नहीं होता।

नदी की गति स्वाभाविक समुद्र की ओर जाने की है। पर समुद्र का सङ्गम होने पर उस गति में बाधा आ पड़ती है। समुद्र के झोंके के कारण नदी का जल कभी उलट पड़ता है और उसकी उलटी गति हो जाती है फिर ठीक हो जाता है। फिर उलटा बहने लगता है। यह क्रम सङ्गम पर चला ही करता है। जल की एक गति नहीं होने पाती। यही दशा लोगों के चित्त नदी की हो गयी। मन रामसिन्धु की ओर तो अनवरत जाता ही रहता है पर बार बार घर की ओर भी लौटता है।

दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं। एक एक सन मरमु न कहहीं ॥
लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुवानू ॥४॥

अर्थ : मनकी द्विविध गति हो जाने से कहीं भी सन्तोष नहीं हो रहा है। एक दूसरे से मर्म नहीं कह रहे हैं। इस बात को लखकर कृपानिधान मन ही मन हँसकर कहने लगे कि श्वान जवान और मघवान : इन्द्र एक से ही हैं।

व्याख्या : न घर में मन ठहरता है न वन में लगता है। कहीं शान्ति नहीं पाता। मन के इस प्रकार के परिवर्तन को कोई एक दूसरे पर प्रकाशित नहीं करता। सङ्कोच मालूम होता है कि कहीं : सुख समेत सम्वत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता। इत्यादि भावना थी और कहाँ दो ही दिन में घर की ओर मन दौड़ने लगा।

इस बात को कृपा सिन्धु रामजी ने लखा। कृपा सिन्धु हैं। यह देखकर भी अप्रसन्न नहीं होते। मन ही मन इन्द्र की करणी पर हँसते हैं कि व्याकरण शास्त्र में भी श्वन् युवन् मघवन् शब्दों की एक ही गति है। यथा : श्वयुवमघोनामतद्धिते। व्यवहार में भी ऐसा ही जान पड़ता है। विषय लोलुपता तीनों में समान है।

दो. भरतु जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहिं, तथा जोगु जनु पाइ ॥३०२॥

अर्थ : भरत, जनक, मुनिगण, मन्त्री और सावधान साधुओं को छोड़कर देवताओं की माया और सभी को जो जैसा था उसे वैसी ही लगी।

व्याख्या : सो उचाट सबके सिर मेला। इसलिए सबको देवमाया लगी। किसी को कम किसी को अधिक। उनकी साधुता और सावधानता के तारतम्यानुसार लगी। भरतजी, जनकजी, मुनिगण, मन्त्रिगण और सावधान साधु पर देवमाया का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भाव यह : राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर। तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई।

कृपा सिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुरपति छल भारे ॥
सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री ॥१॥

अर्थ : कृपा सिन्धु रामजी ने देखा कि लोग मेरे स्नेह और इन्द्र की प्रबल माया से दुःखी हो रहे हैं और सभा, राजा, गुरुजी, ब्राह्मण और मन्त्रियों की बुद्धि को भरतजी की भक्ति ने जकड़ रक्खा है।

व्याख्या : सरकार ने देखा कि द्विविधा में पड़े हुए लोग दुःखी हो रहे हैं। इन्द्र की माया उन्हें घर की ओर खींच ले जाती है। मेरा स्नेह भी छोड़ते नहीं बनता और इधर सभा, महाराज, जनक, वसिष्ठजी, ब्राह्मण और मन्त्री समाज भरत की भक्ति के वशीभूत हो रहा है। यथा : रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी। कोई अपने काबू में नहीं है।

रामहिं चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से ॥
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई ॥२॥

अर्थ : रामजी को इस भाँति देख रहे हैं मानो चित्र में लिखे गये हों और बोलते हुए सङ्कुचित होते हैं। मानो सिखायी हुई बातें बोल रहे हैं। भरत की प्रीति नम्रता विनय और बड़ाई सुनने में तो सुख देनेवाली है पर उसका वर्णन कठिन है।

व्याख्या : अतः जिन्हें इन्द्र की माया लगी है वे भी और जिन्हें नहीं लगी है वे भी एकटक रामजी की ओर देख रहे हैं कि देखें सरकार की क्या मर्जी होती है। सबको स्वयं कुछ कहने में सङ्कोच हो रहा है जैसे सिखी सिखायी बात कहने में सङ्कोच होता है। जो बात मन से उठती है वह बिना कहे नहीं रही जाती और सिखी सिखायी बात समय पड़ने पर भूल जाती है।

भरतजी की प्रीति यथा : अस कहि प्रेम बिबस भये भारी।
भरतजी की नति यथा : प्रभु पद पदुम गहे अकुलाई।
भरतजी की विनय यथा : प्रभु पद पदुम पराग दोहाई।
सत्य सुकृत सुख सीम सोहाई॥
सो करि कहौं हिये अपने की।
रुचि जागत सोवत सपने की॥
भरतजी की बड़ाई यथा : सहज सनेह स्वामि सेवकाई।
स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हियँ हुलसी॥३॥

अर्थ : जिसके भक्ति के लवलेश को देखकर मुनिगण और मिथिलेश प्रेम में मग्न हो गये। उसकी महिमा तुलसी कैसे कहे। भक्ति के स्वभाव से सुमति तो उठी।

व्याख्या : भरत सुप्रेम पयोधि। भरत जी प्रेम के समुद्र हैं। समुद्र की तरङ्ग तट पर स्थित मनुष्य को सराबोर कर देती है। पर भरत ऐसे समुद्र हैं कि इनकी भक्ति के लवलेश के दर्शन से मुनिगण और स्वयं मिथिलेश जैसे ज्ञानी प्रेम में मग्न हा जाते हैं। उस भक्ति की महिमा तुलसी कैसे कह सकता है। परन्तु भक्ति का स्वभाव है कि उसके कारण सुमति उठती है। सो हृदय में सुमति उठी परन्तु :

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकत गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई॥४॥

अर्थ : अपने को छोटी और महिमा को बड़ी जानकर कविकुल की मर्यादा पर ध्यान देकर सङ्कुचित हो गयी। गुण कह नहीं सकती और रुचि अधिक है। सो बुद्धि की गति बच्चों के वचन जैसी हो गयी।

व्याख्या : भक्ति के प्रभाव से सुमति तो उठी पर उसने देखा कि मैं छोटी हूँ और महिमा बड़ी है। मेरा वर्णन करने के लिए प्रयत्न करना कविकुल की प्रतिष्ठा को बिगाड़ना है। अतः गुणों का वर्णन कर नहीं सकती और रुचि वर्णन करने की बहुत है। अतः उसकी गति बालक के वचन सी हो गयी। बालक को बोलने की बड़ी रुचि है। पर उससे बोलते बनता नहीं।

दो. भरत बिमल जसु बिमल बिधु, सुमति चकोर कुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ, एकटक रही निहारि॥२०३॥

अर्थ : भरत का निर्मल यशरूपी चन्द्रमा जो भक्त के हृदयरूपी आकाश में उदय हुआ है उसे सुमतिरूपी चकोर की कन्या टकटकी लगाये देखती रह गयी।

व्याख्या : नव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा··· गुरु अपमान दोष नहिं दूषा। वही भरत का निर्मल यश भक्त के निर्मल हृदय रूपी

आकाश में उदित हुआ। उसे सुमतिरूपी चकोर कुमारि एकटक देखती रह गयी। कुछ कह न सकी। सुमति भक्ति के स्वभाव से अभी उत्पन्न हुई है। यथा : भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी। इसलिए चकोरी न कहकर चकोरकुमारि कहा। बोलने की कुशलता भी उसमें नहीं है। प्रेम भी नया है। अतः वर्णन में सर्वथा असमर्थ है।

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कबि छमहू ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को ॥१॥

अर्थ : भरत का स्वभाव वेद को भी सुगम नहीं है। हे कविलोग ! लघुमति की चपलता आप लोग क्षमा करें। भरत के सत्य भाव को कहते सुनते हुए सीतारामजी के चरणों में कौन रत नहीं होगा।

व्याख्या : त्रैगुण्यविषया वेदाः। वेद का विषय त्रैगुण्य है और भरत का सुन्दर भाव त्रैगुण्य से परे है। परमहंसों को प्रिय हैं। अतएव कहते हैं : न सुगम निगमहूँ। ऐसे महापुरुष के गुण वर्णन की रुचि की अधिकता यदि लघुमति तुलसीदास को हो तो उसका प्रयत्न चपलता ही है। अतः कवि लोगों से गोस्वामीजी क्षमा माँगते हैं।

अब ऐसे प्रयत्न करने का कारण कहते हैं कि भरतजी के सद्भाव कथन श्रवण से उस भाव का मज्जन पान हो जाता है। यथा : मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका। अतः भरत के सद्भाव में मज्जन करने से उसे पान करने से श्रीसीताराम के चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है। अतः इस कथन का प्रयत्न भी महाफल देनेवाला है।

सुमिरत भरतहिं प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को ॥
देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की ॥२॥

अर्थ : भरतजी को स्मरण करते हुए भी जिसे रामजी का प्रेम सुलभ न हो। उसके ऐसा वाम कौन है ? दयाल रामजी ने सबकी दशा देखी। सरकार सुजान हैं। जन के जी की बात जानते हैं।

व्याख्या : सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेखे। नाम स्मरण से ही नामी में विशेष प्रेम हो जाता है। भरतजी का स्मरण करना और रामजी में प्रेम होना एक बात है। यथा : तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू। अतः भरत के स्मरण से ही रामप्रेम की प्राप्ति होनी चाहिए। जिसे नहीं हुई उसके ऐसा बुरा कोई नहीं।

रामजी दयालु हैं। उन्होंने सबकी दशा देखी कि सब दुःखी हैं। तिस पर इन्द्र की माया का भी प्रभाव इन पर पड़ा है। सुजान हैं। उनकी मनोगति भी देख रहे हैं कि बिचारे द्विविधा में पड़े हैं। साधु समाज ने मुनि मिथिलेश की दशा देखी कि स्नेह से शिथिल हैं। भरत की दशा देखी कि प्रेम में आकुल हो रहे हैं। अतः

धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर ॥
देसु कालु लखि समउ समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू ॥३॥

अर्थ : धर्म के धुरन्धर, धीर, नीति में चतुर, सत्यस्नेह और सुख के समुद्र नीति और प्रीति के पालन करनेवाले रघुराज, देशकाल, समाज और अवसर देखकर।

व्याख्या : सरकार धर्मधुरन्धर हैं : धर्म कभी छोड़ेंगे नहीं। धीर हैं : नहीं लौटेंगे। नयनागर हैं : सभी विषमताओं का सामञ्जस्य बिठावेंगे। सत्य के सागर हैं : प्रतिज्ञा भङ्ग कभी न करेंगे। स्नेह के सागर हैं : प्रेम का भङ्ग न करेंगे। शील के सागर हैं शील भङ्ग नहीं करेंगे और सुख सागर हैं : सबको सुख पहुँचावेंगे। देश काल अवसर और समाज का ध्यान रखते हुए नीति प्रीति का पालन करते हुए बोले।

बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससिरसु से ॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रवीना ॥४॥

अर्थ : रामजी वाणी के सर्वस्व जैसे वचन बोले। जो परिणाम में हित और सुनने में अमृत सा था। हे भैया भरत ! तुम धर्म धुरीण हो। लोक और वेद को जाननेवाले हो और प्रेम में प्रवीण हो।

व्याख्या : बिमल बिबेक धरम नयसाली। भरत भारती मंजु मराली। भरत की वाणी ऐसी थी। उसके उत्तर में रामजी का वचन मानो वाणी का सर्वस्व था। क्योंकि : हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः और सरकार के वचन परिणाम में हित और सुनने में अमृत से मनोहारी था।

भरतजी ने कहा था : प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेली। मैंने सरकारी आज्ञा भङ्ग किया। मैं अपराधी हूँ। इस पर सरकार कहते हैं कि तुम धर्मधुरीण हो। जो तुमने किया वही धर्म है। लोक और वेद के जाननेवाले के लिए ऐसा ही करना प्राप्त था। ऐसा ही करने से प्रेम का निर्वाह होता है। तुम्हारे आचरण का कहीं जोड़ नहीं है।

दो. करम बचनु मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरु समाज लघु बंधु गुन, कुसमय किमि कहि जात ॥२०४॥

अर्थ : हे तात ! कर्म वचन और मन की निर्मलता में तुम तुम ही जैसे हो। बड़ों के समाज में छोटे भाई का गुण इस कुसमय में कैसे कहा जा सकता है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि तुमने जो कहा है : मोहि समान मैं साइँ दोहाई। सो ठीक है। सचमुच तुम्हारा जोड़ नहीं। परन्तु अवगुणों में नहीं गुणों में। तुम्हारे ऐसा : कर्म बचन मानस बिमल। कहाँ खोजने से मिलेगा। यह समय तुम्हारे गुणों के कथन के अनुकूल नहीं है। क्योंकि उसका अर्थ दूसरा लग जायगा

और बड़ों के समाज में छोटे भाई के गुणों का वर्णन भी उचित नहीं है। तुम अपने को सापराध मत मानो। तुम्हारे गुणों पर मैं मुग्ध हूँ।

जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती ।।
समउ समाजु लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की ।।१।।

अर्थ : हे तात ! सूर्यकुल की रीति जानते हो कि सत्यसन्ध होते हैं और पिता की कीर्ति पर प्रीति होती है। समय समाज बड़ों की लज्जा और उदासीन मित्र और शत्रु के मन को भी जानते हो।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि हे तात ! तुम सूर्यकुल की रीति जानते हो : रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई। अज, दिलीप, रघु आदि जितने महाराज इस कुल में हुए हैं सभी सत्यसन्ध हुए हैं। सभी पिता की कीर्ति के बढ़ानेवाले हुए। अतः सत्य का अनादर नहीं होना चाहिए और पिता की कीर्ति न बिगड़नी चाहिए। तुम समय को भी जान रहे हो कि कैसा कठिन समय उपस्थित है कि सब व्यवस्था ही डाँवाडोल हो रही है। समाज की भी दशा जान रहे हो कि सब अपने को अनाथ मान रहे हैं। गुरुजन की लज्जा को भी तुम जान रहे हो कि ये कैसे सङ्कोच में पड़े हैं कि सामञ्जस्य बिठाना भी चाहते हैं फिर भी स्वयं कुछ नहीं कह रहे हैं। हमीं दोनों भाइयों को आपस में निर्णय करने के लिए कह रहे हैं। राजाओं के कितने शत्रु मित्र होते हैं। कितने उदासीन होते हैं। उनका पता लगाना कठिन होता है। परन्तु तुम राजकाज से भली भाँति परिचित हो। तुम सबको जानते हो। इतना ही नहीं उनके मन में क्या है यह भी तुम्हें अविदित नहीं है।

तुमहि बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू ।।
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा ।।२।।

अर्थ : तुम सबके कर्मों को भी जानते हो। अपने और मेरे परमहित और धर्म को भी जानते हो। मुझे सब तरह से तुम्हारा भरोसा है। फिर भी अवसर के अनुसार कहता हूँ।

व्याख्या : शत्रु मित्र और उदासीनों ने कब कब क्या क्या किया है। सो भी तुम जानते हो अर्थात् राज्य के मर्मों के जानकार हो। मेरा परमहित कैसे होगा। मेरा धर्म क्या है। तथा स्वयं तुम्हारा परमहित कैसे होगा तथा स्वयं तुम्हारा धर्म क्या है। उसे भी जानते हो। भावार्थ यह कि शासकोचित सभी बातें तुम में मौजूद हैं। अतः मुझे तुम्हारा भरोसा सब प्रकार से है। फिर भी अवसर ऐसा प्राप्त है कि मुझे मुख से कहना ही पड़ रहा है।

तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपा सँभारी ।।
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुआरू ।।३।।

अर्थ : हे तात ! पिताजी के बिना हमारी बात को केवल कुलगुरु की कृपा ने सँभाल लिया। नहीं तो प्रजा नगरवासी कुटुम्बी सभी हमारे साथ बड़े दुःख को प्राप्त होते।

व्याख्या : हम लोगों की बात तो बिगड़ ही चुकी थी। चक्रवर्तीजी का देहान्त हुआ और वहाँ हम चारों भाइयों में से कोई नहीं। ऐसे ही समय में शत्रुओं की बन पड़ती है। सो कुलगुरु ने चक्रवर्तीजी के देहावसान के समाचार को नगर की सीमा के बाहर जाने नहीं दिया। महाराज के शव को तेलभरी नाव में रक्खा। तुम्हें बुलाने के लिए दूत कैकय देश में भेजा। मुझे बुलाने के लिए यहाँ कोई नहीं आया। यदि कोई आता तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर पिता की क्रिया करने के लिए अयोध्या जाना ही पड़ता। सम्भव था कि मैं उस चोट को न सह सकता। तो और भी अनर्थ होता। तुम्हें भी गुरुजी ने पिताजी के मरण और मेरे वनवास का समाचार नहीं भेजा। केवल इतना ही कहलाया कि गुरुजी ने बुलाया है। ठीक समाचार मिलने से तुम्हारी वहाँ क्या दशा होती कौन कह सकता है। गुरुजी की उपस्थिति में समाचार मिलने पर चोट हम लोगों को लगी। उसे गुरुजी ने अपने विज्ञान के प्रकाश से सँभाल लिया। इसी भाँति माताओं को भी गुरुजी ने सँभाला। प्रजा परिवार का संरक्षण भी राजा के अभाव में गुरुजी ने ही किया। यदि गुरुजी ने यह सब न किया होता तो हम लोग सभी प्रजा परिवार के सहित नष्ट भ्रष्ट हो जाते।

जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू ॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा ॥४॥

अर्थ : यदि बेसमय ही सूर्य अस्त हो जायँ तो कहो संसार में किसे कष्ट न होगा। ऐसा उत्पात हे तात ! ब्रह्मदेव ने किया। पर मुनिजी तथा मिथिलाधिपति ने सबको बँचा लिया।

व्याख्या : रामजी भी विधि को ही उत्पात का कारण बतला रहे हैं। यह उत्पात इतना प्रबल था कि जैसे बेसमय सूर्य का अस्त होना। बेसमय में सूर्य का अस्त होना विधि के किये ही हो सकता है। दूसरे को ऐसा सामर्थ्य ही नहीं है। ऐसा होने पर संसार में उथल पुथल मच जाना स्वाभाविक है। समय पर अस्त होना तो स्वाभाविक नियम ही है। चक्रवर्तीजी का प्रियविरह में शरीरत्याग अनवसर का सूर्यास्त था। उस समय सब सँभालना गुरुजी का ही काम था। गुरुजी जिस भाँति सदा से विधिगति को रोकते आये हैं वैसे ही इस बार भी रोका। महाराज के देहावसान का पता लगने के बाद जनकजी ने भी रक्षा का प्रयत्न किया। स्वयं रक्षा के लिए सन्नद्ध होकर दूतों के द्वारा समाचार लेते रहे। इसलिए जनकजी का भी नाम पीछे से रक्षा के कार्य में जोड़ दिया।

दो. राज काज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाव पालिहि सबहिं, भल होइहि परिनाम ॥३०५॥

अर्थ : सब राजकार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, धरणी, धन और धाम का पालन गुरुजी की कृपा करेगी और परिणाम अच्छा होगा।

व्याख्या : मोहि राज हठि दै हौ जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं। आदि बातें जो तुम्हारे मनमें भरी हैं : उन्हें छोड़ो। राजकार्य लज्जा प्रतिष्ठा धर्म धरणी आदि का पालन गुरु के प्रसाद से होता रहेगा। मुझे या तुम्हें तो निमित्त मात्र होना है। भावार्थ यह कि गुरुजी की आज्ञा मानते हुए चले चलना मात्र हम लोगों का काम है। परिणाम की चिन्ता कदापि नहीं करनी चाहिए। गुरु की आज्ञा पालन रूप में जो कुछ होगा उसका परिणाम बुरा हो नहीं सकता।

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरु प्रसाद रखवारा॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥१॥

अर्थ : समाज के सहित तुम्हारा और हमारा रक्षक घर और वन में गुरुजी की कृपा है। माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा सम्पूर्ण धर्मरूपी धरणी के लिए शेष रूप है।

व्याख्या : भाव यह कि : राज काज सब लाजपति धरम धरनि धन धाम का रक्षक तो गुरुजी का प्रभाव है और हमारा तुम्हारा रक्षक उनका प्रसाद है। प्रभाव प्रभुता को कहते हैं और प्रसाद कृपा को कहते हैं। गुरुजो बैठे रहेंगे : उनके प्रभाव से राजकार्य आदि ठीक चलता रहेगा और उनकी कृपा से मेरी रक्षा वन में होती रहेगी और घर में तुम्हारी रक्षा होती रहेगी।

क्योंकि माता पिता गुरु और स्वामो को आज्ञा पर ही सब धर्म उसी भाँति टिके हुए हैं जैसे पृथ्वी शेषजी पर टिकी है। सम्पूर्ण धर्मों के सँभालने की शक्ति केवल माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा पालन में है दूसरे में नहीं। सम्पूर्ण धर्म का विचार करके पृथक् पृथक् पालन में कौन समर्थ है? माता पिता आदि की आज्ञा पालन से ही सब धर्मों का पालन आप से आप हो जाता है।

सो तुम करहु करावहु मोहू। तात तरनि कुल पालक होहू॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी॥२॥

अर्थ : उसे तुम भी करो और मुझ से भी कराओ। हे तात! सूर्यकुल के पालक बनो। साधक के लिए यह सब सिद्धियों की देनेवाली कीर्त्ति सुगति और भूतिमय त्रिवेणी एक ही है।

व्याख्या : भाव यह कि यदि तुम मुझ से पिता के वचन का पालन न कराओगे तो मैं न कर सकूँगा। मैं तो कह चुका हूँ : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु। अतः पिता की आज्ञा का पालन तुम भी करो और मुझ से भी कराओ। इस भाँति सूर्यकुल की रक्षा करो। नहीं तो सूर्यकुल की : सत्यसन्ध पितु कीरति प्रीतीवाली रीति मिट जायगी।

कामनाओं के पूर्ण करनेवाली त्रिवेणी में जिस भाँति गङ्गा यमुना और

सरस्वती का सङ्गम है उसी भाँति पिता की आज्ञापालनरूपी त्रिवेणी में कीर्त्ति सुगति और भूति तीनों का सङ्गम है और यह साधना सकल सिद्धियों को देनेवाली है।

सो बिचारि सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी॥
बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई। तुमहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई॥३॥

अर्थ : यह विचारकर भारी सङ्कट सहकर तुम प्रजा और परिवार को सुखी करो। हे भाई! मुझ पर विपत्ति आयी। उसे सबने बाँट ली। फिर तुम्हें तो चौदह वर्ष की अवधि तक बहुत कष्ट है।

व्याख्या : ऐसा विचार करके हमारे वन जाने के सङ्कट को सहो। मैं जानता हूँ कि मेरे वन जाने को तुम पिता के मरण से भी बड़ा सङ्कट मानते हो : इसलिए संकटु कहते हैं। उसे तुम सहो और प्रजा परिवार को सुखी करो। तुम्हारे लिए राज्य सङ्कट है। फिर भी प्रजा परिवारके सुख के लिए इस सङ्कट को सहो।

विपत्ति बँटानेवाला वही है जो उस विपत्ति में दुःखी हो और स्वयं साथ में दुःख भोगे। यथा : बिपति बँटावनिहार बंधु बिनु करौं भरोसो का को। सो मेरी विपत्ति को सबने बाँट लिया। यथा : राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि। मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि। सो मैं तुम्हें विपत्ति बाँटने को कहता हूँ राज करने के लिए नहीं कहता।

जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठायँ सुबंधु सहायें। ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घायें॥४॥

अर्थ : तुम्हें कोमल जानकर भी मैं कठोर कह रहा हूँ। यह समय ही ऐसा कठिन है। मेरा अनुचित नहीं है। ऐसे बुरे समय पर अच्छे भाई ही सहायक होते हैं, वज्र की चोट को भी हाथ से ही रोका जाता है।

व्याख्या : तुम्हारे ऐसे कोमल स्वभाव के पुरुष से यह कहना कि तुम भारी सङ्कट सह जाओ कठोरता है। पर समय ही ऐसा उपस्थित है कि मैं लाचार होकर कह रहा हूँ। इसलिए मेरा कहना भी अनुचित नहीं है। वज्र की चोट ऊपर आयी तो सिवा हाथ के और कौन आड़े आवेगा। यही भारी विपत्ति ऊपर आयी तो सिवा भाई के और किसे आगे करें। राज्य विपत्ति है : इसे तुम जानते हो। मैं जानता हूँ। संसार नहीं जानता। उसे चौदह वर्ष सँभाल दो। उसके बाद मैं आकर सँभाल लूँगा। राज्ये गृध्नन्त्यविद्वांसो ममत्वाहृतचेतसः। अहंमानमहामानमदमत्ता न मादृशाः। मूढ़ लोग जिनके चित्त को अहन्ता ममता ने ग्रस लिया है राज्य चाहते हैं। मेरे ऐसे लोग नहीं चाहते। वि. ७.१.७।

दो. सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकबि सराहँहि सोइ॥३०६॥

अर्थ : सेवक तो हाथ पैर और आँख सा होता है और मालिक मुख की भाँति होता है। तुलसीदास कहते हैं कि इस तरह की प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी बड़ाई करते हैं।

व्याख्या : परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ। सेवक और स्वामी दोनों राज्य में परस्परोपकारक हैं। भाव यह है कि तुम प्रसाद चाहते हो। यथा : सो प्रसाद जन पावइ देवा। सो यही नियम है कि कर पद नयन सेवक हैं। खाद्य लाकर मुख को अर्पण करते हैं और फिर उसी के रस को प्रसाद रूप से ग्रहण करते हैं। इस भाँति सरकार ने भरत के राज्य अर्पण को स्वीकार किया और पुनः प्रसाद रूप से भरत को सुपुर्द करते हैं। यही प्रीति की रीति है और इसी की सुकवि प्रशंसा करते हैं। निर्गलितार्थ यह कि मुझे राज्य स्वीकार है। अब तुम उसके सेवक की भाँति चलाओ।

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिअ जनु सानी॥
सिथिल समाजु सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥१॥

अर्थ : सारी सभा ने रामजी की वाणी सुनी। जो प्रेम के समुद्र के समान अमृत से सनी थी। सारा समाज स्नेह की समाधि में शिथिल हो गया। यह दशा देखकर सरस्वती मौन हो गयी।

व्याख्या : रामजी की वाणी में से प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ता था। उसका जल लवण समुद्र के जल की भाँति खारा न था। अमृत के समान मीठा था। जैसे परिचित समुद्र का जल लवण से सना होता है उसी भाँति प्रेम समुद्र मानो अमृत से सना हुआ था।

सभी सभासद् भरतजी के वचन से स्नेह में शिथिल हो रहे थे। रामजी की वाणी सुनते ही उनको प्रेम समाधि लग गयी। गोरक्ष संहिता के मत से प्रेम समाधि भी समाधि का एक भेद है। सो सब के सब प्रेम समाधि में मग्न हो गये। उन लोगों की यह दशा देखकर समाधि भङ्ग के भय से सरस्वती भी चुप हो गयीं। नहीं तो स्वभावतः वे तो मुखर हैं। यथा : गिरा मुखर तन अर्ध भवानी। भाव यह कि सब चुप हैं। किसी के मुख से बात नहीं निकलती। सन्नाटा छा गया।

भरतहि भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुखु दोषू॥
मुखु प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू॥२॥

अर्थ : भरतजी को परम सन्तोष हुआ कि स्वामी अनुकूल हैं और दोष दुःख हट गया। भरतजी का मुखमण्डल प्रसन्न हो गया। मन से विषाद मिट गया। जैसे गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गयी हो।

व्याख्या : सन्तोष तो सभा मात्र को हुआ। पर भरतजी को परम सन्तोष हुआ। कारण कहते हैं कि स्वामी हमारे अनुकूल हैं और दोष तथा उसका कार्य दुःख दूर हो गया। सरकार ने राज्य स्वीकार कर लिया। कर पद नयन की भाँति

काम करने के लिए आज्ञा हुई। अब मेरा शासन करना भी राज करना नहीं हैं। विपत्ति बटाना है। रामजी की सेवा करना है।

भरतजी का विषण्ण मुख प्रसन्न हो गया। ग्रामवासियों तक ने कहा था : मुख प्रसन्न नहिं मानस खेदा। मानस खेद भी दूर हो गया। जनकजी से कहा था : मौन मलिन मैं बोलव बाउर। सो मानो गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गयी। वह बोलने भी लगा और उसे सब शास्त्र भी फुरने लगा। ऐसी प्रसन्नता भरतजी को हुई।

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी ॥
नाथ भयेउ सुखु साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भए को ॥३॥

अर्थ : फिर प्रेम के साथ प्रणाम किया और करकमल जोड़कर बोले। हे नाथ ! साथ जाने का सुख मुझे मिल गया। संसार में जन्म लेने का लाभ मिल गया।

व्याख्या : सप्रेम : से मनसा। बोले : से वाचा और : पानि पंकरुह जोरी : से कर्मणा प्रेम कहा। अब यह प्रणाम कृतकृत्य होने का है अथवा पुनः कुछ कहना चाहते हैं। अतः प्रणाम करते हैं। हाथ जोड़कर बोलने का भाव यह कि दसो नह जोड़कर मैं सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ।

भरतजी कहते हैं कि मुझे बड़ी अभिलाषा थी कि मैं लक्ष्मण की भाँति साथ वन में जाता और सेवा करता। इसलिए मैंने कहा था : नतरु फेरिअहि बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ। क्योंकि सरकार की सेवा में ही जीवन जन्म का लाभ है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन चित लावा। सो लाभ मुझे मिल गया। सरकार के साथ वन में जाने से सेवा करने से जो सुख मिलता वही सुख मुझे अयोध्या में रहकर सरकारी सेवा करने से मिलेगा। भावार्थ यह कि भरतजी ने रामजी का वनवास और अपना अवधवास स्वीकार कर लिया।

अब कृपाल जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई ॥
सो अवलंब देउ मोहि देई। अवधि पार पावउँ जेहि सेई ॥४॥

अर्थ : हे कृपालु ! अब आपकी जैसी आज्ञा हो वही सिर धरकर आदर के साथ करूँ। आप मुझे वह अवलम्ब दीजिये। जिसकी सेवा करके अवधि का पार पा जाऊँ।

व्याख्या : बात सब ठीक हो गयी। फिर भी भरतजी स्पष्ट आज्ञा के लिए विनय करते हैं। भाव यह : प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेली। सो बात अब नहीं होगी। अब जो आज्ञा होगी उसे शिरोधार्य करके आदर के साथ पालन करूँगा।

चरण की सेवा साक्षात् रूप से नहीं कर सकता तो ऐसा आधार तो मिलना चाहिए। जिसे चरणों का प्रतीक मानकर सेवा करता हुआ अवधि का पार पा सकूँ। बिना अवलम्ब चौदह वर्ष काटे नहीं कटेगा।

दो. देव देव अभिषेक हित, गुर अनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिल, तेहि कहँ काह रजाइ ॥२०७॥

अर्थ : हे राजन् ! आपके अभिषेक के लिए सब तीर्थों का जल गुरुजी की आज्ञा पाकर लाया हूँ। उसके लिए क्या आज्ञा होती है।

व्याख्या : अभिषेक में सब तीर्थों के जल की आवश्यकता पड़ती है। सो गुरुजी की आज्ञानुसार चक्रवर्तीजी ने मँगवाया था। यथा : आनहु सकल सुतीरथ पानी। उस जल को गुरुजी की आज्ञा से ही साथ लाया हूँ। अन्य सामग्री तो टिकाऊ हैं। पर जल तो चौदह वर्ष नहीं रह सकता। सब तीर्थों का जल होने से अद्भुत वस्तु हो गयी। आपके ही अभिषेक के लिए प्रस्तुत किया गया है। अतः अब आप जैसी आज्ञा दें वैसा किया जाय।

एकु मनोरथु बड़ मन माहीं। सभय सकोच जात कहि नाहीं ॥
कहहु तात प्रभु आयेसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई ॥१॥

अर्थ : एक बड़ी लालसा मन में है। परन्तु भय और सङ्कोच के कारण कहते नहीं बनता। प्रभु की आज्ञा हुई कि हे भाई! कहो। तब सुन्दर स्नेहमय वाणी बोले।

व्याख्या : पहिले कह चुके हैं : राम सैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेम। सो अति प्रेम होने से उसके देखने की बड़ी लालसा है। सब लोगों ने घूम घूमकर देखा। यथा : विहरहिं वन चहुँ ओर प्रति दिन प्रमुदित लोग सब। जल ज्यौं दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम। परन्तु भरतजी सोच में ही पड़े रहे : निसि न नींद नहिं भूख दिन भरत बिकल सुठि सोच। नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सकोच। इन्होंने घूमकर नहीं देखा। अब सोच के दूर होने पर वह लालसा जाग पड़ी। अतः कहते हैं कि मन में बड़ी लालसा है।

बड़ों के सामने सैर सपाटा की लालसा प्रकट करने में सङ्कोच होना स्वाभाविक है। यथा : लखन हृदय लालसा बिसेखी। जाइ जनकपुर आइअ देखी। प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहि मुसुकाहीं। यहाँ उसी भाँति भरतजी को भी कहने में भय और सङ्कोच होता है। परन्तु लालसा के अधिक होने से कहना ही पड़ा।

चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन ॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेखी। आयसु होइ त आवउँ देखी ॥२॥

अर्थ : यदि आज्ञा हो तो चित्रकूट के पवित्र स्थल, तीर्थ, वन, पक्षी, मृग, नदी तालाव झरने, पर्वत और विशेष करके सरकार के चरण चिह्न से अङ्कित भूमि को देख आऊँ।

व्याख्या : चित्रकूट में प्रवेश करते समय भरतजी ने वहाँ की शोभा देखी

तो उस वन के भली भाँति देखने की लालसा उसी समय हुई। परन्तु वह समय पर्यटन के लिए उपयुक्त नहीं था। उसी लालसा को ही प्रकट करते हुए उस दृश्य का वर्णन करते हुए कवि ने कहा : भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू''राम वास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा''बन प्रदेस मुनि वास घनेरे''बिपुल बिचित्र बिहंग मृग नाना। प्रजा समाज न जाइ बखाना'' झरना झरहि मत्त गज गाजहिं इत्यादि। उस पर भी वह भूमि प्रभुपद अंकित होने से बड़ी सौभाग्यवती हो गयी है। यथा : हरखहिं निरखि राम पद अंका। जनु भेटी संपति अति रंका। अतः इन वस्तुओं के देखने की आज्ञा चाहते हैं।

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगत भय कानन चरहू॥
मुनि प्रसाद बनु मंगल दाता। पावन परम सुहावन भ्राता॥३॥

अर्थ : हे तात ! अवश्य अत्रिजी की आज्ञा को शिरोधार्य करो। हे भाई ! निर्भय होकर वन में विचरो। मुनिजी की कृपा से यह वन मङ्गलदाता पावन और परम सुहावना है।

व्याख्या : यहाँ के मुख्य ऋषि अत्रिजी हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर जहँ बसही। करहिं जोग जप तप तन कसही। सो जो विधि से बतलावें उसी विधि और क्रम से यात्रा करो। फिर वन के विचरने में कोई भय नहीं है। किसी तपस्वी या मुनि को उद्वेग न होगा। इस वन में जो पवित्रता, शोभा और माङ्गल्य जो देख रहे हो वह मुनिजी के प्रसाद से है। यहाँ की प्रधान नदी मन्दाकिनी भी उन्हीं की धर्मपत्नी भगवती अनुसूया की लायी हुई हैं।

रिषिनायकु जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथ जलु थल तेहीं॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा॥४॥

अर्थ : ऋषियों के राजा अत्रिजी की जहाँ के लिए आज्ञा हो वहाँ तीर्थ के जल को रखना। प्रभु का वचन सुनकर भरतजी को सुख हुआ और प्रसन्न होकर मुनिजी के चरणों में सिर नवाया।

व्याख्या : भरतजी ने पहिले पूछा था : आनेउँ सब तीरथ सलिल तेहि कहँ कहा रजाइ। उसके उत्तर में रामजी कहते हैं कि यहाँ अत्रिजी का शासन है। उन्हीं से पूछो कि जल कहाँ रक्खा जाय। जहाँ बतलावें वहीं रख देना। रख देना कहने का भाव यह है कि वे ही जानते हैं कि कहाँ रख देने से वह जल सदा बना रहेगा।

लाल्सा पूर्ति के अनुकूल आज्ञा पाने से भरतजी को सुख हुआ। मुनिजी भी उस सभा में आसीन थे और सब सुन रहे थे। भरतजी ने जाकर उनके चरणों में प्रसन्न होकर प्रणाम किया। भाव यह कि अब जैसी आज्ञा आपकी हो वैसा करूँ। सरकार जो कुछ करते हैं ऋषियों की आज्ञा लेकर करते हैं। वैसी ही आज्ञा भी भरतजी को दी।

दो. भरत राम संबाद सुनि, सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरषत सुरतरु फूल ॥३०८॥

अर्थ : भरत और रामजी के सकल सुमङ्गल मूल सम्वाद को सुनकर स्वार्थी देवता लोग कुल की प्रशंसा करते हुए हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे।

व्याख्या : भरतजी और रामजी का सम्वाद सभी मङ्गलों का मूल है : कीरति सुगति भूति मय बेनी। इसी में सारे संसार के सुमङ्गल का बीज निहित है। इसलिए इसे सुमङ्गल मूल कहते हैं। इसे सुनकर देवता लोग हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे। पहिले फूल बरसे थे। उस समय मलिन मन से बरसे थे। अब हर्षित होकर वर्षा कर रहे हैं। क्योंकि निश्चय हो गया कि रामजी अयोध्या न लौटेंगे और सूर्यकुल की प्रशंसा करते हैं। स्तुति करते हैं कि इस कुल में सभी धर्मात्मा हैं। स्वार्थी केवल अपना स्वार्थ देखते हैं। संसार का भला बुरा नहीं देखते। देवता लोग अपना काम बिगड़ते देखकर जिन रघुवंशियों पर : रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाट फेंका था इस समय अपना काम बनते देखकर उन्हीं पर कल्पवृक्ष का फूल बरसा रहे हैं।

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं॥
मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू। भरत बचन सुनि भयेउ उछाहू ॥१॥

अर्थ : भरत धन्य हैं। राम गोसाईं का उत्कर्ष है। ऐसा देवता कहते हैं और जबरदस्ती प्रसन्न होते हैं। मुनिजी को मिथिलेश को और सभी सभासद् को भरत के वचन को सुनकर उत्साह हुआ।

व्याख्या : देवता लोग कहते हैं कि भरत पुण्यात्मा हैं। अपने कष्ट का ख्याल न किया। संसार के मङ्गल पर ध्यान दिया। इसलिए धन्य हैं। सुकृती पुण्यवान् धन्यः। और स्वामी रामजी का उत्कर्ष है कि जैसा हम लोगों को भरोसा दिया था वैसा ही किया। सबका मन भी रख दिया। धर्म सम्बन्धी असामञ्जस्य भी मिटा दिया। इसलिए उनकी जय जयकार है। देवताओं का कार्य अग्रसर हुआ। इसलिए प्रसन्नता प्रकाश करते हैं। परन्तु उन्हें सच्ची प्रसन्नता नहीं हुई। उनकी प्रसन्नता पूरी तो तब होती जब उनकी माया द्वारा कार्य होता। सो उनकी माया द्वारा तो कोई कार्य हुआ नहीं। वह तो रामजी, भरतजी, जनकजी, तथा सावधान साधुओं पर काम ही न कर सकी। जो कुछ हुआ सो रामजी की और भरतजी की सज्जनता के कारण हुआ। किसी तरह कार्य तो हो गया। इसलिए मन में व्यर्थ माया के प्रयोग करने की लज्जा भी है। अतः प्रसन्नता सच्ची नहीं है।

सबको भरत का स्नेह देखकर भय था कि यदि रामजी न लौटे तो इनकी क्या दशा होगी। पर जब उनका वचन सुना : नाथ भयउ सुख साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनम भए को। तो मुनिजी, जनकजी तथा सभी सभासदों को उछाह हुआ।

भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अतिपावन पावन॥२॥

अर्थ : विदेह राजा पुलकित होकर भरत और रामजी के गुणगण तथा स्नेह की प्रशंसा करने लगे। सेवक और स्वामी दोनों का स्वभाव सुहावना है। उनका नियम और प्रेम अत्यन्त पवित्र को भी पवित्र करनेवाला है।

व्याख्या : देहाध्यास रहित राजा जनक को भी भरत और रामजी के गुणों और प्रेम को देखकर आनन्द से पुलक हो गया। प्रशंसा करने लगे कि दोनों भाइयों में कैसा स्नेह है। जो देखने में नहीं आता और कैसे अद्भुत गुण हैं। जिनके कारण बड़ा भारी असामञ्जस्य दूर हुआ। जिसे देखकर मेरे मन में यह बात उठ गयी : आये इहाँ कीन्ह भल नाही।

गुणग्राम। यथा : सेवक स्वामि सुभाव सोहावन। स्नेह। यथा : नेम प्रेम अतिपावन पावन। जो पावन होता है वह सोहावन नहीं होता और जो सोहावन होता है वह पावन नहीं होता। पर यहाँ तो दोनों भाइयों के स्वभाव नेम और प्रेम में सुन्दरता और पावनता भरी है। ज्ञान अतिपावन है। यथा : नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। परन्तु इनका नेम उसको भी पवित्र करनेवाला है। यथा : भक्तार्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।

मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे॥
सुनि सुनि राम भरत सम्बादू। दुहु समाज हियँ हरषु बिषादू॥३॥

अर्थ : मन्त्री और सभासद सब अनुराग से अपनी बुद्धि के अनुसार प्रशंसा करने लगे। रामजी और भरतजी के सम्वाद को सुन सुनकर दोनों समाज के हृदय में हर्ष और विषाद दोनों हुआ।

व्याख्या : सबकी समाधि भङ्ग हो गयी। सरस्वती खुल गयीं। मन्त्री और सभासद सभी अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार प्रशंसा करने लगे। पूरी प्रशंसा तो हो नहीं सकती। फिर भी अनुराग ऐसा है कि बिना प्रशंसा किये रहा नहीं जाता।

सबका तो सभा में प्रवेश सम्भव नहीं था। अतः सभा में जो जो हुआ सो सब कर्ण परम्परा से सब लोगों को मालूम हुआ। पता लगने पर सबको हर्ष भी हुआ और विषाद भी हुआ। रामजी के राज्य स्वीकार से हर्ष हुआ और चौदह वर्ष का विछोह तो सहना पड़ेगा इस बात का विषाद भी हुआ। सभी के मन में यह शङ्का थी कि चौदह वर्ष के बाद भी रामजी राज्य स्वीकार नहीं करेंगे।

राममातु दुखु सुखु सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधी रानी॥
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई॥४॥

अर्थ : रामजी की माता ने दुःख सुख को समान जानकर रामजी के गुणों

का वर्णन करके रानियों को समझाया। एक रामजी की बड़ाई करने लगीं। एक भरत की सज्जनता की प्रशंसा करने लगीं।

व्याख्या : समदुःखसुखं धीरम्। दुःख सुख को समान देखना ही पण्डिताई है। रामजी की माता हैं। कारण के गुण कार्य में रहते हैं। माता समदुःखसुख धीर हैं। इसलिए रामजी भी वैसे ही हैं। अतः कौसल्या माता ने सुख दुःख सम जानकर और रानियों को जो विषाद कर रही थीं समझाया कि रामजी तो साधु हैं। उन्हें सुख दुःख बराबर है। राम वैराग्यवान् हैं राम धर्मात्मा हैं। इनका वनवास में कोई अनिष्ट नहीं हो सकता इत्यादि।

रानियों में कोई रामजी की बड़ाई करती है कि रामजी कैसे सत्यप्रतिज्ञ हैं। कैसे धर्मात्मा हैं। कैसे शीलवान् हैं। इसी भाँति कोई कैसे साधु हैं कैसे आज्ञाकारी हैं। कैसे प्रेमी हैं इत्यादि भरत की सज्जनता कह रही हैं।

दो. अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ, पावन अमिअ अनूप ॥३०९॥

अर्थ : अत्रिजी ने भरतजी से तब कहा कि इस पर्वत के सन्निकट एक कूआँ है। यह पवित्र अमृत रूप अनुपम है। तीर्थ जल वहीं रखिये।

व्याख्या : सरकार ने भरतजी से कहा था कि अत्रिजी जहाँ कहें वहाँ तीर्थ जल रख दो। अतः अत्रिजी ने भरत से कहा कि कहीं दूर नहीं जाना है। इसी पर्वत के निकट एक सुन्दर कूआँ है जो स्वयं पवित्र है। उसी में यह तीर्थ जल रक्खो। गुणवान् में देने से इसका महत्त्व और भी बढ़ जायगा। नदी नहीं बतलाया। क्योंकि उसमें जल ठहर नहीं सकता। कूआँ में छोड़ने से वह कूआँ सदा के लिए परम पावन हो जायगा। तीर्थजलप्रभाव के कारण पावन है। गुण होने से अमिअ है और अनादि सिद्ध स्थल होने से अनूप है।

भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिये चलाई ॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गये जहँ कूप अगाधू ॥१॥

अर्थ : भरतजी ने अत्रि मुनि की आज्ञा पाकर सब जलपात्रों को रवाना कर दिया। स्वयं भाई के सहित, अत्रि, मुनि और साधुओं के सङ्ग वहाँ गये जहाँ वह अथाह कूआँ था।

व्याख्या : अत्रिजी ने यह तो बतला दिया कि इसी पर्वत के सन्निकट कूआँ है। उसी में तीर्थ जल रखना चाहिए। परन्तु किस मुहूर्त में जल का स्थापन करना चाहिए? कौन स्थापन करे? किस विधि से स्थापन हो? इन सब बातों के लिए जब भरतजी ने पूछा तब अत्रिजी की आज्ञा हुई कि आज ही मुहूर्त अच्छा है। जल ले चलो। अतः भरतजी ने सब जलपात्रों को तुरन्त रवाना कर दिया और भरतजी शत्रुघ्नजी अत्रिमुनि तथा साधुगण उस जल के पीछे पीछे चले।

पावन पाथ पुन्यथल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ॥२॥

अर्थ : उस पवित्र जल को उस पुण्य स्थल में स्थापन किया और प्रेम से प्रसन्न होकर महर्षि अत्रि ने कहा कि हे तात ! यह अनादि सिद्धपीठ है। बहुत दिन से इसका लोप हो गया था। किसी को इसका पता न रहा।

व्याख्या : इस पृथ्वी में भिन्न भिन्न स्थानों का भिन्न भिन्न प्रभाव है। जिस भाँति कहीं केसर होता है कहीं घास तक नहीं जमती। कहीं धान होता है तो कहीं गेहूँ होता है। इसी भाँति कोई स्थल धर्म के लिए अनुकूल है तो कोई अर्थ के लिए अनुकूल है। कोई काम के लिए अनुकूल है और कोई मोक्षदायक है। इसी भाँति बहुत से सिद्धपीठ हैं जहाँ अनुष्ठान करने से सिद्धि की प्राप्ति होतो है। ऐसे सिद्धपीठ भी कहीं किसी महापुरुष के तपश्चर्या से बन गये हैं और कोई स्वभाव से ही बने हुए हैं। जिस स्थल में जल रखने का प्रस्ताव मुनिजी ने किया था वह अनादि सिद्धपीठ था। मुनिजी कहते हैं कि काल के प्रभाव से यह पट गया था। किसी को मालूम भी नहीं था कि यहाँ तीर्थ है। वहाँ जल का स्थापन करके मुनिजी उस तीर्थ की महिमा कहने लगे। संसार का उपकार होने से मुनिजी बड़े प्रसन्न हैं और प्रेम से भरे हुए हैं।

तब सेवकन्ह सरस थलु देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा ॥
बिधि बस भयउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू ॥३॥

अर्थ : तुम्हारे सेवकों ने देखा कि इस स्थल में खोदने से पानी जल्दी निकलेगा। अतः सुन्दर जल के लिए विशेष कूआँ बना दिया। सो दैवयोग से संसार का उपकार हो गया। धर्म का विचार अत्यन्त सुगम भी और अगम भी है।

व्याख्या : सेना प्रस्थान के पहिले ही कुछ लोग आगे से जाकर उसके विश्राम के लिए उपयुक्त स्थल ठीक करते हैं और उसके ठहरने की व्यवस्था करते हैं। जहाँ जलाशय नहीं होता वहाँ पहिले से ही कूप खोदकर तैयार कर देते हैं। क्योंकि प्यास लग जाने पर कूआँ खोदते नहीं बनता। मुनिजी ने भरतजो से कहा कि तुम्हारी सेना के अग्रगामी दल ने देखा कि यहाँ सेना का विश्राम होना चाहिए और जल यहाँ पर कहीं सेना के उपयोग के लिए यथेष्ट नहीं है। विशेषज्ञों ने बतलाया कि इस स्थान पर खोदने से जल मिलेगा। अतः यहीं खोदकर कूआँ बना दिया : मालूम होता है कि भरतजी की सेना यहीं ठहरी थी। क्योंकि गुरुजी की आज्ञा से गिने गिनाये लोग ही आश्रम में गये।

सो दैवयोग से संसार का उपकार हो गया। सेना तो आकर चली गयी। परन्तु कूआँ बना हुआ है। इसके जल से जो काम लेगें उन्हें पुण्य होगा। अतः बड़े भारी तीर्थ का उद्धार अनायास हो गया। कहीं धर्म बड़ी सुगमता से अनायास प्राप्त होता है और किसी अवसर पर बड़े आयास करने पर भी प्राप्त होना कठिन हो

जाता है। इसी को कहते हैं : धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः। सो यह बड़ा भारी पुण्य कार्य तीर्थोद्धार अनायास तुम्हारे द्वारा हो गया।

भरतकूप अब कहिहैं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा ॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहि बिमल करम मन बानी ॥४॥

अर्थ : लोग अब इसे भरतकूप कहेंगे। यह अत्यन्त पवित्र तीर्थ जल के योग्य था। प्रेम और नेम के सहित इसमें स्नान करने से प्राणी कर्म मन और वाणी से निर्मल हो जायँगे।

व्याख्या : मज्जन और पान करने से तीर्थ का जल पाप हरण करता है। भगवद् गुणानुवाद से वाणी निर्मल होती है। शास्त्र विचार से मन निर्मल होता है। परन्तु इस कूप में यह अपूर्वता है कि यदि प्रेम और नियम के साथ इसका सेवन हो तो यह कर्म मन और वाणी तीनों के निर्मल कर देने में समर्थ है।

दो. कहत कूप महिमा सकल, गये जहाँ रघुराउ ॥
अत्रि सुनायेउ रघुबरहिं, तीरथ पुन्य प्रभाउ ॥३१०॥

अर्थ : कूप की महिमा कहते हुए सब रामजी के पास गये। तब मुनिजी ने रघुनाथजी को तीर्थ के पुण्य प्रभाव को सुनाया।

व्याख्या : सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सर सोई। सो लौटते समय तीर्थ के पुण्य प्रभाव का कथनानुकथन हो जाता था। तीर्थ सम्बन्धी बातों में ही रास्ता कटा। सरकार के पास पहुँचने पर रामजी को अत्रि मुनिजी ने उन्हें तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया। जिस समय मुनिजी ने उसकी फलस्तुति की थी उस समय रघुनाथजी नहीं थे और उन्हें सुनाना परमावश्यक था। उनके सुन लेने से ही कथन की हुई महिमा स्थायी भी हो गयी।

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयउ भोरु निसि सो सुख बीती ॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम अत्रि गुर आयसु पाई ॥१॥

अर्थ : धार्मिक इतिहास कहते कहते सवेरा हो गया। वह रात सुख से बीत गयी। नित्य कर्म का निर्वाह करके दोनों भाई भरत रामजी गुरु और अत्रि की आज्ञा पाकर।

व्याख्या : उस पुण्य स्थल में जो जो धार्मिक घटनाएँ हुई थीं उनका इतिहास अत्रिजी प्रेम से वर्णन करने लगे। सब लोग प्रेम से सुनने लगे। इस भाँति सारी रात बीत गयी। किसी को कुछ मालूम न हुआ। भावार्थ यह कि उस स्थल का ऐसा महा माहात्म्य है जिसके वर्णन में अनेक कथाएँ अत्रिजी ने सुनायीं।

नित्य कर्म भी संक्षेप से किया। इसीलिए निर्वाह करना चाहते हैं। शास्त्र भी ऐसे समय में नित्यकर्म के संक्षेप करने की आज्ञा देता है। दोनों भाई अर्थात् भरत शत्रुघ्न ने पहिले गुरुजनों की आज्ञा प्राप्त की। स्वामी की आज्ञा प्राप्त की

जिसमें रामवन में पर्यटन का अधिकार प्राप्त हो। तत्पश्चात् गुरु की आज्ञा प्राप्त की। जिसमें सुकृत की शोभा हो। तत्पश्चात् अत्रिजी की आज्ञा प्राप्त की। जिसमें मुनि तापस के बाधा पाने का भय न हो।

सहित समाज साज सब सादे। चले राम बन अटन पयादे ॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं ॥२॥

अर्थ : समाज के सहित सादे साज से राम वन की यात्रा के लिए पैदल चले। बिना जूते के कोमल चरणों द्वारा चल रहे हैं। अतः पृथ्वी मन ही मन सकुचाकर कोमल हो गयी।

व्याख्या : तीर्थाटन की विधि कहते हैं। तीर्थाटन में ठाटबाट मना है। इसलिए सब साज समाज सादा है। राजसी ठाट कोई भी नहीं। यहाँ तक कि पैर में जूते भी नहीं। पैदल वन में चले जा रहे हैं। चक्रवर्ती के पुत्र हैं। बिना जूते के पैदल चलने का अभ्यास नहीं और चरण भी इतने कोमल हैं कि पृथ्वी पर चलने योग्य नहीं।

उनको इस भाँति चलते देखकर पृथ्वी को अपने मन में अपनी कठिनाई पर सङ्कोच हुआ। अतः वह स्वयं कोमल हो गयी जिसमें भरतजी उसके कठोरता का अनुभव न करें। जिसकी रक्खो भूमि रह रही है उसको दुःखद होने में पृथ्वी को सङ्कोच है। यथा : भरत भूमि रह राउर राखी।

कुस कंटक काँकरी कुराई। कटु कठोर कुबस्तु दुराई ॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हें। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हें ॥३॥

अर्थ : कुश, कण्टक, कङ्कड़ी, कुराई, कटु कठोर बुरी वस्तुओं को छिपाकर पृथ्वी ने सुन्दर कोमल रास्ता कर दिये और सुख लिये शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी।

व्याख्या : रास्ते के छोटे गड़हे जिसके चारों ओर घास पात जम जाते हैं। उसे कुराई कहते हैं। कोई इसका अर्थ कुरैया का वृक्ष कहते हैं। भूमि के मृदु होने का वर्णन करते हैं कि उसने अति कठोर बुरी वस्तुओं को अपने भीतर कर लिया। जिसमें कोमल चरणों को कष्ट न हो। गड़हों के अभाव से मार्ग मञ्जुल हो गया और कुश कण्टकादि के न होने से मृदु हो गया। ज्येष्ठ के महीने में लू चलती है। सो यहाँ शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहती है जिससे शरीर को सुख मिले।

सुमन बरषि सुर घन करि छाँहीं। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं ॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी ॥४॥

अर्थ : देवता फूल बरस करके, बादल छाया करके, पेड़ फूल व फलकर, तृण कोमल होकर, मृग देखकर, पक्षी सुन्दर वाणी बोलकर सब भरतजी की सेवा करते हैं। वे जानते हैं कि ये रामजी को प्रिय हैं।

व्याख्या : त्रिविध समीर : से स्पर्श सुख कहा। सुमन वृष्टि : से गन्ध सुख कहा। बिटप फूलि फलि : से रस सुख कहा। मृग बिलोकि : से रूप सुख कहा और खग बोलि सुबानी : से शब्द कहा। इससे सर्वेन्द्रिय तर्पण द्रश्य का वर्णन किया। जो राम को प्रिय होता है उस पर चराचर की कृपा स्वभाव से होती है। राम सब की आत्मा हैं। अतः अपनी आत्मा के प्रिय की कौन सेवा नहीं करेगा ?

जो जिसको प्रिय होता है। उसकी शक्ति उसमें काम करने लगती है। महात्माओं में अलौकिक शक्ति के काम करने का यही रहस्य है। भरतजी रामजी को अत्यन्त प्रिय हैं। अतः उनकी जड़ को चेतन बनानेवाली शक्ति भरत में काम कर रही है। यथा : होत न भूतल भाव भरत को। अचर सचर चर अचर करत को। अतः भरत के सन्निधान में उनका जड़त्व अत्यन्त शिथिल हो गया और उन्होंने भरत को राम प्रिय जानकर उनकी सेवा की।

दो. सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात।
राम प्रानप्रिय भरत कहुँ, यह न होइ बड़ि बात ॥३११॥

अर्थ : साधारण पुरुष को भी जो राम कहकर जँभाई लेता है उसे सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। सो राम के प्राणप्रिय भरत के लिए यह बड़ी बात नहीं है।

व्याख्या : श्रोता के चित्त में शङ्का हो सकती है कि ऐसी सिद्धि होनी कि उसके सान्निध्य से अचर को भी ज्ञान हो जाय बड़ी बात है। इस पर गोस्वामीजी कहते हैं कि यह भरत के लिए बड़ी बात नहीं है। क्योंकि भरतजी रामजी को प्राण प्रिय हैं। उनमें रामजी की सब शक्तियाँ काम कर सकती हैं। जो लोग रामजी का इतना ध्यान रखते हैं कि कम से कम जँभाई लेने के समय तो उनका नाम मुँह से निकले। ऐसे ध्यान रखनेवाले को भी सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं और भरतजी तो रामजी को ऐसे प्रिय हैं कि रामजी उनका दिन रात ध्यान रखते हैं। यथा : रामहिं बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती।

यहाँ पर गोस्वामीजी ने सिद्धि प्राप्ति का अत्यन्त सरल मार्ग बतला दिया। साधक को बस इतना ध्यान नाम का रखना पड़ेगा कि जँभाई के समय अवश्य नाम मुख से निकल जाय। इतने ध्यान के सतत बने रहने से सामान्य अधिकारी को भी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। नाम का प्राण से सम्बन्ध होने पर सिद्धियाँ मिलती हैं। नाम का निःश्वास प्रश्वासात्मक जप करने से प्राणों से नाम का सम्बन्ध हो जाता है।

एहि बिधि भरत फिरत बन माहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं ॥
पुन्य जलासय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा ॥१॥

अर्थ : इस विधि से भरतजी वन में घूम रहे हैं। नेम प्रेम देखकर मुनियों को

सङ्कोच हो रहा है। पवित्र जलाशय, भूखण्ड, पक्षी, मृग, तृण, वृक्ष, पर्वत, वन और बाग।

व्याख्या : भरतजी के वन की यात्रा की विधि का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि इस विधि से भरतजी वन की यात्रा कर रहे हैं। राजकुमार होकर अत्यन्त सादे वेष से पैदल बिना जूता के ऐसे वन में जहाँ कुश कण्टक कङ्कड़ी भरी हुई है जेठ के महीने की धूप में घूम रहे हैं। इसे देखकर मुनि लोगों को भी सङ्कोच होता है कि हम लोग भी इस भाँति नहीं यात्रा कर सकते। कम से कम पादुका तो धारण कर ही लेते हैं और न हम लोगों में ऐसा प्रेम ही है कि सरकार के चरण चिह्नों को देखकर ऐसा हर्ष हो जैसा भरत को हो रहा है।

चित्रकूट के जलाशय पावन हैं। जिन्हें देखकर देवनदी और देवसर ईर्ष्या करते हैं। यथा : जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिनहि देवसर सरित सराहहिं। भूखण्ड पवित्र है। क्योंकि वे सरकार के चरण चिह्नों से अङ्कित हैं। पक्षी मृग बेलि विटप तृण सब धन्य हैं। क्योंकि उन्हें रामजी का सन्निधान प्राप्त हैं। यथा : चित्रकूट के बिहँग मृग बेलि बिटप तृन जाति। पुन्य पुंज सब धन्य अति कहत देव दिन राति।

चारु पवित्र बिचित्र बिसेखी। बूझत भरतु दिव्य सब देखी ॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ ॥२॥

अर्थ : सुन्दर पवित्र और विशेष विचित्र तथा दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं और ऋषिराज उनके प्रश्नों को सुनकर प्रसन्न मन से उनके हेतु गुण और प्रभाव बतलाते हैं।

व्याख्या : जलाशय, भूमि विभाग, खग, मृग, तृण, तरु सब अलौकिक शोभा सम्पन्न हैं। मानो इस लोक के हैं ही नहीं। इसलिए भरतजी जलाशय के पुण्यमय होने का हेतु पूछते हैं। खग मृग के नाम पूछते हैं। तृण तरु के गुण पूछते हैं। गिरि वन बाग का पुण्य प्रभाव पूछते हैं और अत्रि मुनि सबका पृथक् पृथक् वर्णन करते हैं। भाव यह कि यात्रा में यात्री को इन सब बातों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। केवल रास्ता नापने से यात्रा का साफल्य नहीं है।

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा ॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई ॥३॥

अर्थ : कहीं स्नान करते थे। कहीं प्रणाम करते थे। कहीं मनोहर वन का दर्शन करते थे। कहीं मुनिजी की आज्ञा पाकर बैठ जाते थे और सीताजी के साथ रामजी का स्मरण करते थे।

व्याख्या : पुण्य जलाशयों में स्नान करते थे। भूमि विभाग को प्रणाम करते थे। खग मृग तृण तरु को देखते थे। वन बाग में मुनिजी की आज्ञा से ठहर जाते थे और बैठकर रामजानकी का स्मरण करते थे। भक्त को भगवान् के स्मरण

में ही विश्राम मिलता है सृष्टि वैचित्र्य के देखने से उन्हें उस स्रष्टा के विचित्र महा-सृष्टिनैपुण्य का ध्यान बँधता है।

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा॥
फिरहिं गएँ दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई॥४॥

अर्थ : स्वभाव स्नेह और अच्छी सेवा देखकर वनदेव प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं। ढाई पहर बीतने पर यात्रा से लौटते हैं और सरकार के चरण कमलों का दर्शन करते हैं।

व्याख्या : वनों के भी पृथक् पृथक् अधिष्ठातृ देवता और देवियाँ होती हैं। यथा : बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहि सास ससुर सम सारा। सो वनदेव भरतजी का स्नेह देखकर कि सरकार के चरणों में इतनी प्रीति है। स्वभाव देखकर कि मुनिजी की आज्ञा से ही सब कुछ करते हैं। एक एक वस्तु के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं। माहात्म्य जानकर कहीं स्नान करते हैं और कहीं प्रणाम करते हैं। ऐसी सेवा देखकर वनदेवता प्रसन्न हो जाते हैं और आशीर्वाद देते हैं।

इस भाँति भरतजी ढाई पहर तक तो यात्रा में व्यतीत करते हैं। तब अपराह्ण में भोजनादि के लिए लौटते हैं। लौटने पर फिर सरकार के चरणों का दर्शन करते हैं और उसी दर्शन से यात्रा की परिपूर्णता मानते हैं।

दो. देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरिहर सुजसु, गयउ दिवस भइ साँझ॥३१२॥

अर्थ : भरतजी ने पाँच दिन में चित्रकूट के सब तीर्थों का दर्शन कर लिया। हरिहर का सुयश कहते सुनते दिन बीता और सन्ध्या हुई।

व्याख्या : आज भी चित्रकूट की यात्रा पाँच दिनों में की जाती है। पाँच दिनों में यात्रा पूर्ण हुई। यात्रा के दिनों में अवशिष्ट समय को हरिहर सुयश के कथन श्रवण में बिताना चाहिए। अतः कहते हैं कि भरतजी का दिन इस भाँति यात्रा के नियमों को पालन करते बीता।

## तीसरी सभा

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुति राजू॥
भल दिनु आजु जान मन माही। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं॥१॥

अर्थ : सवेरे नहाकर सब समाज जुटा। जिसमें भरतजी ब्राह्मण लोग तथा तिरहुत के राजा थे। आज अच्छा दिन है ऐसा मन में जानने पर भी राम कृपालु कहने में सङ्कोच करते हैं।

व्याख्या : सब कुछ निर्णय हो गया। भरतजी की समाज के सहित यात्रा भी समाप्त हो गयी। लोग नहा नहाकर सरकार के पास आगये। अब उन लोगों

को छुट्टी माँगनी चाहिए। पर कोई कुछ कहता नहीं है। रामजी मन में सोच रहे हैं कि आज यात्रा के लिए शुभ मुहूर्त है। यात्रा का मुहूर्त जल्दी मिलता नहीं। अतः इन लोगों को आज चला जाना चाहिए। पर मैं कैसे कहूँ कि आप लोग जाइये। रामजी इस सङ्कोच में पड़ गये। बड़े कृपालु हैं। निष्ठुर वचन मुख से कहना नहीं चाहते।

गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी ॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची ॥२॥

अर्थ : रामजी ने गुरु, राजा, भरत तथा सभा की ओर देखा। फिर सङ्कुचित होकर नीचे देखने लगे। शील की प्रशंसा करके सभा ने सोचा कि राम के समान सङ्कोची मालिक कहीं नहीं हैं।

व्याख्या : शुभ मुहूर्त का ध्यान गुरुजी को होना चाहिए। इसलिए उनकी ओर देखा। महाराज जनक को ख्याल होना चाहिए कि दोनों राज्य सूने पड़े हैं। इसलिए जनकजी की ओर देखा। भरतजी ने वन देखने के लिए आज्ञा माँगा था। सो देख चुके। अब ठहरने का कारण नहीं है। अतः उनकी ओर देखा। अन्य लोगों को ठहर ठहरकर घर की सुधि आ जाती है। यथा : छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं। अतः उन लोगों की ओर देखा। जब कोई न बोला तो सङ्कोच से निगाह नीची कर ली।

सभी सभासद रुख पहिचाननेवाले हैं। समझ लिया कि सरकार विदा करना चाहते हैं। पर सङ्कोच से कह नहीं रहे हैं। मन ही मन प्रशंसा करते हैं कि ऐसा सङ्कोची मालिक कहाँ मिलेगा। रामजी शील के सागर हैं।

भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी ॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥३॥

अर्थ : सुजान भरतजी ने रामजी का रुख देखा। विशेष धैर्य धारण करके प्रेम के साथ उठे। दण्डवत् करके हाथ जोड़कर बोले कि नाथ ने मेरी सब रुचि रख ली।

व्याख्या : भरत सुजान हैं। समझते हैं कि सरकार से छुट्टी भी मुझे ही लेनी पड़ेगी। मेरो ही मन्त्र से सब लोग यहाँ आये हैं। अतः विदाई के लिए कोई न कहेगा और रामजी के सबकी ओर देखने और सङ्कुचित होने का मतलब यही है कि आज अच्छा दिन है। अब सब लोग प्रस्थान करें। अतः रामजी के वियोग जन्य दुःख के सहन करने के लिए विशेष धैर्य धारण किया और प्रेम के साथ उठकर दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले कि सरकार ने मेरी सभी रुचि रख ली। मुझे सेवक जानकर सम्मानित किया। मेरा कलङ्क मिट गया। मेरे कहने पर अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करने के लिए भी तैयार हो गये। वन की यात्रा के

लिए भी आज्ञा दे दी। अतः मेरा आना सार्थक हुआ। यथा : नाथ भयउ सुख साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनम भए को।

मोहि लगि सहेउ सबहि संतापू। बहुत भाँति दुखु पावा आपू ॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भर जाई ॥४॥

अर्थ : मेरे लिए सभी सन्ताप सहा और बहुत भाँति स्वयं दुःख उठाया। हे स्वामी ! अब मुझे आज्ञा मिले कि मैं जाकर अवधि भर अवध की सेवा करूँ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मेरे लिए सरकार को मानसिक सन्ताप सब प्रकार का सहना पड़ा। मैंने सरकारी आज्ञा नहीं मानी। सबको इकट्ठा करके सरकार को सङ्कोच में डाला। सरकार के चित्त में क्षोभ हुआ। कष्ट उठाया। यथा : राम सत्यव्रत धर्मरत सबकर सील सनेहु। संकट सहत सकोच बस कहिअ जो आयसु देहु। और भी बहुत प्रकार के दुःख आपको हुए। अब मैं अधिक कष्ट देना नहीं चाहता। केवल आज्ञा चाहता हूँ। मुझे आज्ञा हो कि जब तक सरकार वन से नहीं लौटते तब तक मैं अयोध्या की सेवा करूँ। अर्थात् प्रजा पालन करूँ।

दो. जेहिं उपाय पुनि पाँय जनु, देखइ दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि, कोसल पाल कृपाल ३१३॥

अर्थ : हे कोसलपाल कृपाल ! अवधि तक के लिए मुझे ऐसी शिक्षा दीजिये जिस उपाय से हे दीनदयाल ! यह दास फिर चरणों का दर्शन करे।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि कोसलपाल आप हैं। आप ही कोसल के प्रकृत राजा हैं। प्रजा के हृदय पर आप का राज्य है। मैं तो कोसलपुर का सेवक होकर उसकी सेवा उतने ही दिन करूँगा जितने दिन कि आप वन में हैं। अब आप कृपा करके ऐसी शिक्षा दीजिये जिससे मैं अयोध्या का पालन भी करूँ और लौटने पर सरकार उसे जूठा न समझें और मैं भी जिस उपाय का अवलम्बन करके उतने दिन तक जीवन धारण कर सकूँ। भाव यह है कि आप दीनदयाल हैं। कृपाल हैं। मैं दीन हो रहा हूँ। मुझे यह उपाय नहीं सूझ रहा है कि चौदह वर्ष तक बिना आपके मैं कैसे जीवन धारण कर सकूँगा और लौटने पर सरकार को यह धारणा भी न हो कि चौदह वर्ष तक भरत ने शासन किया तो अब मैं जाकर इसे कैसे हटाऊँ। इसी को शासन करने दो। सरकार की दयालु प्रकृति होने से मुझे यह भी भय हो रहा है। अतः कृपा करके आप ही उपाय बताइये।

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाई ॥
राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू ॥१॥

अर्थ : हे गोसाइं ! पुरजन कुटुम्बी और प्रजा सब स्नेह के सगापन से सरस और पवित्र हैं। आप के लिए संसार के दुःख का दाह भी भला है। प्रभु के बिना परम पद का लाभ भी व्यर्थ है।

व्याख्या : अपनी ओर से कहकर अब प्रजा की ओर से कहते हैं कि पुरजन और परिजन सब स्नेह के नाते से सरस हैं। यथा : हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिनहि राम जानत करि मोरे। अतः सब पवित्र हैं। क्योंकि भक्ति से ही अन्तःकरण शुद्ध होता है। प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभ्यन्तर मल कबहुँ कि जाई।

सभी की यह व्यवस्था है कि आपके लिए यदि संसार दुःख का दाह भी हो तो अच्छा मानते हैं। भाव यह कि संसार के दुःख का दाह यदि अपने लिए हो तो बुरा है। यथा : डरपहिं धीर गहन सुधि आये। पर आपके लिए वह भी सहना परम सुखद है। यथा : सुख समेत संवत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता। और यदि आप न हों तो परम पद की प्राप्ति भी व्यर्थ है। यथा : सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोक्ष सुख त्यागी।

**स्वामि सुजानु जानि सबही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की ॥**
**प्रनतपालु पालिहि सब काहू। देउ दुहूँ दिसि ओर निबाहू ॥२॥**

अर्थ : हे स्वामि सुजान प्रणतपाल ! आप तो सबके हृदय की रुचि और रहनी सम्बन्धी जी की लालसा जानकर सबका पालन करेंगे। दोनों तरफ़ का पूरा निर्वाह करेंगे।

व्याख्या : सुजान तो वही हैं जो हृदय की बात जान लें। आप सुजान स्वामी हैं। सबके हृदय की बात जानते हैं। आपसे किसी की रुचि, लालसा और रहनी छिपी नहीं है।

रुचि यथा : दोउ समाज अस रुचि मन माँहीं।
बिनु सिय राम फिरब भल नाँहीं ॥
दाहिन दैउ होइ जब सबही।
राम समीप बसिअ बन तबही ॥
लालसा यथा : गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी।
रमा रमनपद बंदि बहोरी।
बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी ॥
राजा राम जानकी रानी।
आनँद अवधि अवध रजधानी ॥
गुरु समाज भाइन्ह सहित रामराज पुर होउ।
अछत राम राजा अवध मरिअ माँग सब कोउ ॥
रहनि यथा : राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि ॥

आप प्रणतपाल हैं। यहाँ सभी प्रणत हैं। यथा : मंगल मूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि। अतः सरकार सबका पालन करेंगे और घर और वन दोनों ओर का निर्वाह करेंगे।

अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो । कियें बिचारु न सोचु खरो सो ।।
आरति मोर नाथ कर छोहू । देहु मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू ।।३।।

अर्थ : मुझे तो ऐसा बड़ा भारी भरोसा है। यदि विचार करता हूँ तो सोच की बात कुछ भी नहीं है। अपनी आर्त्ति और सरकार का छोह दोनों ने मिलकर मुझे हठ करके ढीठ बना दिया।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि सरकार सबका पालन करेंगे। घर वन दोनों का निर्वाह करेंगे। इस बात का मुझे पूरा भरोसा है। अतः विचार करने पर तो सोच को कहीं स्थान नहीं है। फिर भी मैं सोच करता हूँ। अविनय विनय यथा रुचि वाणी बोलता हूँ। तो यह मेरी ढिठाई है। मैं ढिठाई करना चाहता नहीं। परन्तु मैं आर्त्त हूँ और आर्त्त से ढिठाई हो ही जाती है। यथा : आरति बस सनमुख भइउँ बिलग न मानव तात। और छोह करने से भी बच्चे ढीठ हो जाते हैं। सो सरकार का छोह इतना है कि उसने भी मुझे ढीठ बना दिया है।

यह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी । तजि सकोच सिखइअ अनुगामी ।।
भरत बिनय सुनि सबहि प्रसंसी । छीर नीर बिबरन गति हंसी ।।४।।

अर्थ : हे स्वामिन् ! इस बड़े दोष को दूर करके मैं अनुचर हूँ मुझे शिक्षा दीजिये। भरत की प्रार्थना सुनकर सबने प्रशंसा की कि भरतजी की वाणी दूध और जल को अलग करने के लिए हंस सी थी।

व्याख्या : वात्सल्य को स्थान देकर सरकार मेरा सम्मान करते हैं। इससे मेरी ढिठाई बढ़ती है। मैं इसे बड़ा दोष मानता हूँ। सो सरकार मेरा सम्मान न करें और सङ्कोच छोड़कर मुझे शिक्षा दें कि मैं अवध की सेवा किस भाँति करूँ। मुझे जो बिधि पालन करने की सरकार बतलायेंगे उसी विधि से मैं पालन करने का प्रयत्न करूँगा। भावार्थ यह कि आपके अयोध्या में न रहने पर आपकी आज्ञा से अवध का पालन करना मुझे स्वीकार है। परन्तु जिस विधि से मैं पालन करूँ वह विधि भी आपकी बतलायी हुई होगी तभी सेवा धर्म निबहेगा।

ऐसे गुण दोष की पृथक् करनेवाली वाणी की उपमा हंस से दी गयी है। इसे सुनकर सभी ने प्रशंसा की।

दो. दीनबंधु सुनि बंधु के, बचन दीन छलहीन ।
देस काल अवसर सरिस, बोले राम प्रबीन ।।३१४।।

अर्थ : दीनबन्धु प्रवोण रामचन्द्र भाई के छलहीन दीन वचन सुनकर देश काल और अवसर के अनुकूल बोले।

व्याख्या : सरकार दीनबन्धु हैं। भरतजी बन्धु भी हैं और दीन वचन बोल रहे हैं। सरकार प्रवीण हैं। जानते हैं कि इस वचन में छल की छाया नहीं है। यदि भरतजी शिक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं तो उनका ऐसा करना उचित है। अतः

देश काल और अवसर अनुसार बोले। देश काल और अवसर के अनुसार बोलना ही प्रवीणता है।

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहिं नृपहिं घर बन की ॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहु न कलेसू ॥१॥

अर्थ : हे तात ! मेरी परिजन की, घर की और वन की चिन्ता गुरुजी और महाराज को है। हम लोगों के सिर पर गुरुजी और मिथिलाधिपति बने हैं। हमें और तुम्हें सपने में भी क्लेश नहीं है।

व्याख्या : भरतजी ने कहा था : देव दुहू दिसि ओर निबाहू। उसी के उत्तर में सरकार कहते हैं हम लोग अनाथ नहीं हैं कि चिन्ता करें कि घर में क्या होता होगा या वन में क्या होता होगा। भरतजी ने सब बोझा अपने बड़े रामजी पर रक्खा और रामजी सब बोझा अपने बड़े गुरुजी तथा महाराज जनक पर रख रहे हैं।

हम लोगों के सिर पर गुरुजी तथा महाराज मिथिलेश के करकमलों की छाया है। हमें या तुम्हें चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। गुरुजी तथा महाराज जनक सदा रक्षा करेंगे।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु ॥
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई। लोक बेद भल भूप भलाई ॥२॥

अर्थ : मेरा तुम्हारा परम पुरुषार्थ स्वार्थ सुयश और परमार्थ यही है कि दोनों भाई पिता की आज्ञा पालन करें। राजा की भलाई से लोक और वेद में भी भला है।

व्याख्या : नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ। सो रामजी निर्णय किये देते हैं कि स्वार्थ, सुयश, धर्म और पुरुषार्थ सब कुछ पिता की आज्ञा पालन करने में हैं। यथा : पिता धर्मः पिता कर्म पितैव परमा गतिः। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवता। अतः रामजी कहते हैं कि हम दोनों भाइयों की सब तरह से भलाई पिता की आज्ञा के पालन करने में है। आज्ञा पालन से सुरपुर में चक्रवर्तीजी को सन्तोष होगा। उनका सत्य अक्षुण्ण रह जायगा। उनकी भलाई होगी तो हम लोगों का भी लोक और परलोक सुधरेगा। यहाँ वेद शब्द परलोक का उपलक्षण है। क्योंकि वह अज्ञातार्थ का ज्ञापक है।

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें ॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई ॥३॥

अर्थ : गुरु पिता माता स्वामी की शिक्षा पालन करने से बेरास्ते चलने पर भी पैर खाले में नहीं पड़ता। ऐसा विचार करके सब सोच छोड़कर अवधि पर्यन्त अवध का पालन करो।

व्याख्या : स्वयं वेद कहता है : मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। स्वामी भी पिता ही है। क्योंकि वह रक्षा करता है। पातीति पिता। पिता शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ही रक्षक है। इन चारों में देवभाव रखना चाहिए। जिस भाँति देवता की आज्ञा में विचार को स्थान नहीं है तदनुसार कार्य करने से हानि हो नहीं सकती। ईश्वरीय सहायता होती है। गुरु पिता माता स्वामी की आज्ञा अटपटी होने पर भी हानिकारक नहीं हो सकती। परिणाम उसका अच्छा ही होता है। रामजी के कहने का भावार्थ यह है कि हम लोग तो भले रास्ते पर चल रहे हैं हमारी हानि कैसे होगी ?

अब रामजी आज्ञा देते हैं कि ऐसा विचारकर सब सोच छोड़कर चौदह वर्ष तक अयोध्या का पालन करो। लौट आने पर मैं सँभाल लूँगा।

देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरुभारू ॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी ॥४॥

अर्थ : देश, कोश, पुरवासी और परिवार आदि की जिम्मेदारी तो गुरुजी के चरणों की धूलि की है। तुम मुनिजी माता और मन्त्रियों की शिक्षा मानकर पृथ्वी प्रजा और राजधानी की रक्षा करना।

व्याख्या : भरतजी ने शिक्षा देने के लिए प्रार्थना की थी। अतः सरकार कहते हैं कि तुम्हें तीन काम करना है : पृथ्वी का पालन। प्रजा का पालन और राजधानी का पालन। सो गुरुजी माता और मन्त्रियों की सम्मति लेकर करना। पृथ्वी दूसरे के अधिकार में न जाने पावे। प्रजा दुःखी न हों और राजधानी की व्यवस्था बिगड़ने न पावे। राजधानी ही सम्पूर्ण व्यवहार का स्रोत है।

दो. मुखिआ मुखु सों चाहिये, खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ॥२१५॥

अर्थ : तुलसीदासजी कहते हैं कि मुखिया मुख की भाँति होना चाहिए। जो अकेले खाय और पीये। पर सब अङ्गों का विवेक के सहित पालन पोषण करे।

व्याख्यां : मुख अकेले ही खाता है और पीता है। पर अपने पास कुछ नहीं रखता। उसे कूँच पीसकर पाक के योग्य बनाकर पक्वाशय के सुपुर्द कर देता है और वहाँ से उसका रस बनकर यथायोग्य सब अङ्गों का पोषण होता है। विवेक के साथ भोजन का भाव यह कि इतना न खा जावे कि अजीर्ण हो जाय। न इतना कम खाय कि शरीर क्षीण हो जाय। शुद्ध और पथ्य पदार्थ का ही सेवन करे।

इसी भाँति मुखिया को आचरण करना चाहिए। वह जो कुछ ग्रहण करे इसमें से कुछ अपने पास न रक्खे। सबका सब सार्वजनिक कार्य विभाग के सुपुर्द कर दे और वहाँ से यथोचित सबका पालन हो। इतना अधिक कर न ले कि प्रजापीड़ा हो और इतना कम भी न ले कि शासन व्यवस्था दुर्बल हो जाय। जिनसे कर लेना उचित है उन्हीं से ले। शास्त्रीय मर्यादा भङ्ग न हो।

राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माँह मनोरथ गोई ॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती ॥१॥

अर्थ : राजधर्म का सार सर्वस्व इतना ही है। जैसे मन में मनोरथ छिपा रहता है। रामजी ने बहुत प्रकार से समझाया। परन्तु बिना आधार के न मन में सन्तोष हुआ न शान्ति हुई।

व्याख्या : रामजी कहते हैं कि इतना ही राजधर्म का सर्वस्व है। शेष का सम्पूर्ण राजधर्म इसका विस्तार है। इस पर ध्यान रहने से सम्पूर्ण राजधर्म का पालन होगा। जैसे सम्पूर्ण मनोरथों का निवास मन में ही रहता है उसी भाँति सम्पूर्ण राजधर्म इसी दोहे में है। इस भाँति राजधर्म की शिक्षा देकर बहुत भाँति से भरतजी को समझाया। यथा :

तुम्हरे निबाहे निबहेगी सबहीं कि बलि उर धरि धीर धर्म मारग सँवारिये।
जा में विजय आनंद बधाई तिहुँलोक बजै विप्र सुर साधु महि संकट निवारिये ॥
होवै सुरकाज महाराज को वचन साँच तात कुल कीरति पताका फहराइये।
वचन तिहारो मानि आइके करौंगो राज अवधि बिताय तौलों अवध सँवारिये ॥

इस प्रकार से बहुत समझाया। परन्तु भरतजी साकारोपासक हैं। उन्हें आधार चाहिए। बिना आधार के उन्हें न सन्तोष है न शान्ति है।

भरत सील गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू ॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥२॥

अर्थ : भरत का शील और गुरु तथा सचिव का समाज, रघुराज सङ्कोच और स्नेह के वश में पड़ गये। कृपा करके प्रभु ने अपने खड़ाऊँ दिये जिन्हें आदर के साथ भरतजी ने सिर पर चढ़ा लिये।

व्याख्या : इधर भरतजी का शील उधर बड़ों का तथा पिता के मन्त्रियों का समाज। भरतजी अवलम्ब चाहते हैं। बड़े के अभाव में उसकी चरण पादुका के ही उपासना की सनातन रीति है। अतः अपनी चरण पादुका देना प्राप्त है। परन्तु बड़ों के समाज में अपनी चरण पादुका देने में रामजी को सङ्कोच है। भरत का इतना शील स्नेह है कि उनके माँगने पर कैसे न दें। इधर बड़ों के समाज में अपने चरण पादुका के देने में सङ्कोच है। अतः रामजी सङ्कोच के वश में पड़ गये। अन्त में स्नेह की ही विजय हुई। सरकार को चरणपादुका देनी पड़ी।

चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ॥
संपुट भरत संनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के ॥३॥

अर्थ : करुणानिधान के खड़ाऊँ : चरणपीठ मानो प्रजाप्राण के दो पहरेदार हैं। भरतजी के प्रेमरूपी रत्न के लिए डब्बा हैं। जाव के यत्न के लिए मानो दो अक्षर हैं।

व्याख्या : सरकार के खड़ाऊँ मानो दो पहरेदार प्रजा के प्राण के हैं। वे उसे निकलने न देंगे। प्रजा यह समझकर प्राण धारण करेगी कि सिंहासन पर रामजी नहीं हैं तो उनका खड़ाऊँ तो है। अब निर्विवाद रूप से रामजी का राज्य है।

रक्षा के लिए रत्न पेटक में रक्खे जाते हैं। पेटक में दो ढकने होते हैं। भरतजी का प्रेम बड़ा बहुमूल्य है। इसलिए उसे रत्न कहते हैं। जिस भाँति रत्न का आधार पेटक होता है। उसी भाँति भरतजी के प्रेम का आधार दोनों खड़ाऊँ हुए। भरतजी उन्हीं का पूजन करेंगे। सिंहासन पर स्थापित करेंगे। उन्हीं से आज्ञा लेकर सब राजकाज सँभालेंगे।

इन खड़ाऊँ की आराधना से रामजी की प्राप्ति होगी। जिस भाँति रा और म दोनों के जप से रामजी की प्राप्ति जीव को होती है। यथा : नाम निरूपन नाम जतन से। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन से।

कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के ॥
भरत मुदित अवलंब लहे ते। अस सुख जस सिय राम रहे तें ॥४॥

अर्थ : कुल के लिए मानो किवाड़ थे। कर्म के लिए मानो दोनों कुशल हाथ थे। सेवारूपी सुधर्म के लिए मानो दोनों नेत्र थे। अवलम्ब प्राप्त होने से भरत प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसा सुख हुआ जैसा सीता राम के रह जाने से होता।

व्याख्या : कुल के लोगों के लिए भी वह खड़ाऊँ प्राणाधार हुआ। अतः कुल का रक्षक हुआ। कपाट से रक्षा होती है। यथा : ध्यान तुम्हार कपाट। कपाट भी दो होते हैं और खड़ाऊँ भी दो होते हैं। कर्म का कौशल यही है कि वह बन्ध का कारण न हो। इन खड़ाऊँ को सिंहासनारूढ़ करके जो राजकार्य भरतजी करेंगे वह बन्धन का कारण न होगा। इसलिए उन्हें कर्म के लिए दो कुशल हाथों से उपमित किया। सेवारूपी सुधर्म के लिए तो वे मानो दोनों आँख हो गये। माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। भरतजी उन्हीं खड़ाऊँ की आज्ञा से सब राजकार्य करते थे। ये खड़ाऊँ न होते तो किससे आज्ञा माँगते। आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। अतः वह सेवा अन्धों की सेवा सी होती। मन में स्थिर न कर सकते कि जो मैं कर रहा हूँ वह सरकार की मर्जी के अनुकूल है या नहीं। खड़ाऊँ के कारण निश्चय करने में सुभीता था। इसलिए उसे आँख कहा।

दो. माँगेउ बिदा प्रनामु करि, राम लिये उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसरु पाइ ॥३१६॥

अर्थ : प्रमाण करके विदा माँगा। रामजी ने हृदय से लगा लिया। कुटिल इन्द्र ने कुअवसर पाकर लोगों के चित्त में उचाट कर दिया था।

व्याख्या : पाँवरी मिल गयी। अतः काम पूरा हो गया। इसलिए भरतजी ने प्रणाम किया और विदा माँगी। रामजी ने हृदय से लगा लिया। भाव यह कि तुम प्राण से प्यारे हो। अवश होकर मैं विदा करता हूँ। कवि इन्द्र को कपटी कहते हैं

कि ऐसे करुणा के अवसर में भी उन्हें कपट न भूला। देखा कि यह मेरे लिये बड़ा अच्छा अवसर है। इस समय उचाट का प्रयोग करने से रामजी अप्रसन्न न होंगे और लोगों ने जो निश्चय किया था कि विना रामजी के फिरना अच्छा नहीं वे हठ भी न करेंगे।

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की ॥
नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा ॥१॥

अर्थ : वह कुचाल सब के लिए अच्छी हो गयी। अवधि की आशा के समान जीव की जीवन हो गयी। नहीं तो लक्ष्मण सीता और राम के वियोगरूपी कुरोग से सब लोग हहरकर मर जाते।

व्याख्या : अवधि आस सब राखहिं प्राना। सबका जीवनाधार अवधि हो गयी थी। अर्थात् सब यह आशा लगाये जी रहे थे कि चौदह वर्ष बाद फिर भेंट होगी। उसी भाँति यह उच्चाटन भी जीवनाधार हो गया। नहीं तो लक्ष्मण सीता और रामजी का वियोग ऐसा कुरोग था जो सबका प्राण लेकर ही छोड़ता। उच्चाटन के कारण वियोग व्यथा बहुत कुछ कम हो गयी।

रामकृपा अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी ॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेमरसु कहि न परत सो ॥२॥

अर्थ : रामजी की कृपा ने अवरेब सुधार दिया। देवताओं की सेना गुणदायक गोहार हो गयी। भुजा भरके भरत से भाई को भेंटते हुए रामजी का वह प्रेमरस कहते नहीं बनता।

व्याख्या : देवताओं ने तो लोगों की बुद्धि को विकृत करने के लिए उच्चाटन का प्रयोग किया था। इससे उनकी बुद्धि में विकार भी हो गया। पर रामजी की कृपा से वह विकार लाभदायक हो गया। बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई। अवरेब टेढ़ी काट को कहते हैं। सो देवताओं की यह टेढ़ी चाल : कुचाल रामकृपा से हितकर सिद्ध हुई। देवता लोग तो सब मिलकर अहित करने चले थे। जिस भाँति सेना अहित करनें चलती है। पर रामजी की कृपा से वह सेना गोहार हो गयी। हितकारिणी हो गयी। निर्बल की सहायता के लिए जो लोग इकट्ठे होकर चलते हैं उसे गोहार कहा जाता है। यथा : गाय गोहार तिरिया गोहार आदि।

भयउ न भुवन भरत सम भाई। सो ऐसे भाई का गाढ़ आलिङ्गन करने में जिस प्रीतिरस का प्रादुर्भाव हुआ वह सर्वथा अवर्णनीय था।

तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा ॥
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी ॥३॥

अर्थ : शरीर मन और वचन में अनुराग उमड़ पड़ा। धैर्यधारियों के धुरन्धर ने

धैर्य छोड़ दिया। कमल ऐसे नेत्रों से जल गिर रहा है। इस दशा को देखकर देवसभा दुःखी हो गयी।

व्याख्या : तन मन बचन : से रामजी का उमङ्ग कहीं नहीं कहा गया। क्योंकि सरकार का स्वभाव हर्ष शोक से रहित है। यथा : बिस्मय हरख रहित रघुराऊ। तुम जानहु सब राम प्रभाऊ। सो यहाँ प्रेम ऐसा बढ़ा कि सरकार के स्वभाव में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। इतने बड़े धीर का धैर्य डग गया। आँखों से जल गिरने लगा।

देवताओं का तो काम बन रहा था। पर सरकार की दशा देखकर वे भी दुःखी हो गये। इसीलिए सेना शब्द का प्रयोग न करके कवि ने सभा शब्द का प्रयोग किया।

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसे कनक से ॥
जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए ॥४॥

अर्थ : मुनि समाज गुरु वसिष्ठजी और जनक के समान धीर जिनका मनरूपी सोना ज्ञान की अग्नि में कसा हुआ था। जिन्हें ब्रह्मदेव ने निर्लेप उत्पन्न ही किया था। संसाररूपी जल में जो कमल के पत्ते की भाँति पैदा हुए थे।

व्याख्या : मुनि समाज का अर्थ ही ज्ञानी समाज है। स्थितधीर्मुनिरुच्यते। क्योंकि स्थितप्रज्ञ को ही मुनि कहते हैं। उनमें भी वसिष्ठजी सबसे अग्रगण्य जिन्होंने योगवासिष्ठ कहा है और जनक के समान धोर। जिनका कहना है : सहज बिराग रूप मन मोरा। मिथिलायां न मे किञ्चित् प्रदह्यते। वामदेवादि गर्भज्ञानी। जो संसार में ही पैदा हुए। संसार से ही जीवन धारण करते हैं। फिर भी पद्मपत्र की भाँति निर्लेप रहते हैं। वे भी।

दो. तेउ बिलोकि रघुबर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन बचन, सहित बिराग बिचार ॥३१७॥

अर्थ : वे भी रामजी के मिलने की अनुपम अपार प्रीति देखकर विराग और विचार के सहित तन मन वचन से मग्न हो गये।

व्याख्या : भरत और रामजी की प्रीति की उपमा नहीं है। क्योंकि प्रीति तो स्वार्थ को लेकर होती है। यथा : सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। और इनकी प्रीति में स्वार्थ का लेश नहीं। इसलिए प्रीति को अनूप कहा और : राम संकोची प्रेम बस भरत सुप्रेम पयोधि। इससे अपार कहा और भी अनूपता यह है कि ऐसे ऐसे ज्ञानी भी उसे देखकर प्रेम में डूबने लगे। उनका विवेक विचार भी डूबने लगा। ज्ञानी तो पद्मपत्रमिवाम्भसा रहते हैं। उनके प्रेम में डूबने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। वे विवेक के जहाज पर चढ़े हैं। पर यह प्रेम ऐसा अनूप अपार था कि इसे देखकर डूबने लगे और ऐसा अपार था कि पार न पा सके।

भावार्थ यह कि ऐसे ऐसे लोग भी प्रेमाकुल हो गये। उनका विवेक विचार उस समय कार्य करने में असमर्थ हो गया।

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ॥
बरनत रघुबर भरत बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू ॥१॥

अर्थ : जहाँ जनक और गुरुजी की मति की गति भोली हो जाती है उसे प्राकृत प्रीति कहना बड़े दोष की बात है। रामजी और भरत के वियोग का वर्णन करने से सुनकर लोग कवि को कठोर जानेंगे।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं कि मुनिगण वसिष्ठजी और जनकीजो राम और भरत की अपार प्रीति देखकर विवेक विचार के साथ मग्न हो गये। अर्थात् उन लोगों की मति गति भोली हो गयी। वह प्रीति सांसारिक प्रीति नहीं है। वह भक्त और भगवान् की प्रीति अलौकिक है। संसार से मन हटाकर ही भगवान् में लगाना सम्भव है। अतः उस प्रीति को सांसारिक प्रीति कथमपि नहीं कहा जा सकता। उसे सांसारिक प्रीति भाई भाई की प्रीति कहने में बड़ा दोष है।

दूसरी बात यह है कि रामजी और भरतजी के वियोग वर्णन में इतनी करुणा है कि उसके वर्णन को सुनकर लोग वर्णन करनेवाले को कठोर कहेंगे। अतः जो विषय वर्णनातीत है और उसके वर्णन के प्रयत्न में सुननेवाले भी उसे बुरा कहें उस विषयको अछूता छोड़ देना ही ठीक है।

सो सकोचु रसु अकथ सुबानी। समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी ॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवनु हरषि हिय लाए ॥२॥

अर्थ : वह सङ्कोच है और रस कथनीय नहीं है। सुन्दर वाणी समय के स्नेह को स्मरण करके सङ्कुचित हो गयी। रामजी ने भरत से गले मिलकर उन्हें समझाया। तत्पश्चात् फिर शत्रुघ्नजी को हर्षित होकर हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : एक तो कठोर कहे जाने का सङ्कोच दूसरे वियोग में रसका उत्कर्ष संयोग से भी अधिक हो जाता है। सो राम और भरत के वियोग का रस सर्वथा अकथनीय है। अतः कवि की सुवाणी उस समय के स्नेह को स्मरण करके सङ्कुचित हो गयी। कुछ कह न सकी अर्थात् अपना नृत्य उसने बन्द कर दिया।

अब निष्कर्ष कहते हैं कि रामजी ने भरतजी से गले मिलकर उन्हें समझाया।

यथा : मैं पितु बचन प्रमाण करि करि पूरन सुरकाज।
जब लगि आवत तात तुम पालहु राज समाज ॥
अघटित घटना जो घटी सो सुर माया जानि।
सोच करहु जनि ईस बस जीव सदा जिय जानि ॥
निज स्वारथ हित सब सहत दुःख सुख योग बियोग।
जग मंगल हित सहहि दुःख तात धन्य ते लोग ॥

शत्रुघ्न सबसे छोटे हैं। उन पर बड़ा वात्सल्य है। अतः हर्ष से हृदय से लगा लिया।

सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई ॥
सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा ॥३॥

अर्थ : सेवक और मन्त्री भरतजी का रुख पाकर अपने अपने काम में सब लग गये। दारुण दुःख की बात सुनकर दोनों समाज चलने का साज सजने लगे।

व्याख्या : सरकार के समझाने से भरतजी को प्रबोध हो गया। क्योंकि पादुका प्राप्त कर चुके थे। अतः उनका चलने का रुख हुआ। रुख देखकर मन्त्री लोग अपने कार्य में लगे। तिलक का साज साथ आया था। सबको सँभालकर ले चलना, सेना को आज्ञा देना, माताओं के चलने की व्यवस्था आदि में तथा सेवक लोग अपनी अपनी सेवा सम्बन्धी व्यवस्थाओं में लग गये। रुख पाकर कार्य करने की विशेषता। अयोध्याकाण्ड भर में गोस्वामीजी ने दिखलाया है। चिन्तित कार्य करना ही उत्तम सेवक का लक्षण है। आज्ञा पाने पर कार्य करनेवाले मध्यम हैं। आज्ञा पाने पर भी आनाकानी करनेवाले अधम हैं।

दोनों समाज ने सुन लिया कि भरतजी विदा हो लिये। तो उन्हें दारुण दुःख हुआ। देवताओं की माया के काम करते रहने पर भी उनके प्रेम की मात्रा में अधिक ह्रास नहीं हुआ। इतना ही हुआ कि वे दुःखी मन से चलने को तैयार हो गये। अपना अपना बोरिया बधना बाँधने लगे।

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई ॥
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी ॥४॥

अर्थ : सरकार के चरण कमलों की वन्दना करके दोनों भाई रामजी की आज्ञा शिरोधार्य करके चले। मुनि तपस्वी और वनदेव का निहोरा किया। सबका बार बार सम्मान किया।

व्याख्या : दोनों भाई भरतजी और शत्रुघ्नजी ने मिलने के बाद रामजी के चरण कमलों की वन्दना की और चल पड़े। जो सरकार से प्राप्त होता है उसे भरतजी शिरोधार्य करते हैं। पादुका मिली उसे शिरोधार्य किया। यथा : प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं। इस समय जाने के लिए आज्ञा हुई उसे भी शिरोधार्य किया। पहिले भरतजी ने कहा था : अब गोसाइँ मोहि होइ रजाई। सेवहुँ अवध अवधि भरि जाई। सो आज्ञा मिल गयी कि अवधि भर अर्थात् मेरे लौटने तक जाकर राज्य की सेवा करो। अतः आज्ञानुसार सेवा करने के लिए भरतजी चले। चलते समय मुनि तपस्वी और वनदेवों का भरतजी ने निहोरा किया। बार बार सम्मान किया कि आप लोगों ने बड़ी कृपा की। हम लोगों के दुःख सुख में बड़ी सहानुभूति दिखलायी। ऐसी ही कृपा सदा बनी रहे इत्यादि।

दो. लखनहिं भेटि प्रनामु करि, सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमंगल मूरि ॥३१८॥

अर्थ . लक्ष्मणजी से गले मिलकर और प्रणामपूर्वक सीताजी की चरण की धूलि सिर पर धारण करके सकल सुमङ्गल मूल आशीर्वाद श्रवण करके प्रेम के साथ प्रस्थान किया।

व्याख्या : इस समय लक्ष्मणजी सीताजी के सन्निकट थे। सो दोनों भाई लक्ष्मणजी से मिले। प्रणामादि प्रक्रिया मिलने के ही अन्तर्गत है। तत्पश्चात् भगवती जनकनन्दिनी को प्रणाम करके उनकी चरण की धूलि को सिर पर धारण किया। भगवती की चरण धूलि की महा महिमा भरतजी जानते हैं। आये तब भी उस धूलि को सिर पर धारण किया था। जाने के समय भी सिर पर धारण कर रहे हैं। इस समय भगवती ने स्पष्ट शब्दों में आशीर्वाद दिया। पहिले से ही चित्त को सावधान आशीर्वाद देने के लिए किये हुए हैं। माता का आशीर्वाद अमोघ है। यथा : आसिस तव अमोघ बिख्याता। अतः सुमङ्गल मूल कहते हैं।

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥
देव दया बस बड़ दुखु पायेउ। सहित समाज काननहि आयेउ ॥१॥

अर्थ : लक्ष्मण के सहित रामजी ने जनकजी को प्रणाम किया और बहुत विधि से विनय और स्तुति की। कहा कि राजन्! आपने दया परवश होकर बहुत दुःख पाया। समाज के सहित वन में चले आये।

व्याख्या : भरतजी के विदा होने पर लक्ष्मणजी ने समझ लिया कि अब सरकार जनकजी को विदा करेंगे। अतः लक्ष्मणजी रामजी के पास चले आये और उनके साथ जनकजी को प्रणाम किया। श्री रामजी ने जनकजी की स्तुति की। ऐसे अवसर पर बड़ों की स्तुति करना प्राप्त है। विनय भी किया। संक्षेप में स्तुति कहते हैं कि आप ब्रह्मज्ञानियों के सरदार हैं। आपकी सब में समदृष्टि है। अतः आपके लिए अपना पराया कुछ भी नहीं। आपका कष्ट उठाना केवल दयापरवश होने से होता है। सो आपने बड़ा कष्ट उठाया। समाज के सहित जनकपुर से यहाँ वन में चले आये।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने ॥२॥

अर्थ : अब आशीर्वाद देकर पुर को पधारिये। महाराज ने धैर्य धारण करके प्रस्थान किया। मुनिगण, साधुगण, ब्राह्मणों का सम्मान करके हरि और हर के समान करके विदा किया।

व्याख्या : सरकार जनकजी से कहते हैं कि आपको कष्ट उठाते बहुत दिन हुए। सो अब हम लोगों को आशीर्वाद दीजिये। आपके आशीर्वाद से ही हम लोगों का मङ्गल होगा और अब राजधानी को सनाथ कीजिये। महाराज स्नेह से विह्वल

हो रहे थे। रामजी का वचन सुनकर धैर्य धारण किया और चल पड़े। फिर भी स्पष्ट शब्दों में आशीर्वाद न दे सके।

तत्पश्चात् सरकार ने मुनिगणों ब्राह्मणों और साधुओं को विदा किया। उन लोगों का सम्मान हरि और हर की भांति किया। त्रिदेव में ब्रह्मा विष्णु और महादेव तीन देवता हैं। सो अपूज्य होने से ब्रह्मदेव का उल्लेख कवि ने नहीं किया।

सासु समीप गये दोउ भाई। फिंरे बंदि पग आसिष पाई ॥
कौसिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली ॥३॥

अर्थ : दोनों भाई सास के पास गये और चरणवन्दना की तथा आशीर्वाद पाकर लौटे। विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि, परिजन, पुरजन तथा सज्जन मन्त्रियों को।

व्याख्या : फिर दोनों भाई सास से मिलने जनकजी के डेरा पर गये। जाकर चरणवन्दना की। महाराज आशीर्वाद न दे सके। दोनों भाइयों के मिलन प्रीति देखने से अत्यन्त विह्वल हो गये थे। सास ने नहीं देखा था। अतः वे आशोर्वाद देने में समर्थ हुइं।

जनक समाज को विदा करके सरकार धनुर्वेद के गुरु विश्वामित्र गर्भज्ञानी वामदेव तथा जाबालि महर्षि तथा परिजन, पुरजन, सज्जन तथा मन्त्रियों को सम्मान करके लौटाया। परिजन पुरजन और मन्त्रिगण अपने अपने कामों में लगे थे। अतः उनके पास जा जाकर कृपानिधि ने सबका सत्कार किया सरकार का स्वभाव सज्जन सदाचारो के पास स्वयं जाने का है। सुचाली शब्द से कवि ने वही बात जनायी।

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किये सब सानुज रामा ॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे ॥४॥

अर्थ : यथा योग्य विनय प्रणाम करके भाई के साथ रामजी ने विदा किया। कृपानिधान ने सब छोटे मध्यम और बड़े स्त्री और पुरुषों को सम्मान करके लौटाया।

व्याख्या : प्रणाम में भी दर्जा है। कोई वाङ्मात्र पूजन का अधिकारी है। किसी का चरण स्पर्श किया जाता है। किसी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया जाता है। इसी प्रकार से विनय में भी तारतम्य है। अतः रामजी ने भाई के सहित सभी पूज्य महानुभावों को यथायोग्य प्रणाम तथा विनय पूर्वक विदा किया। पूज्यपूजा व्यतिक्रम नहीं होने पाया। प्रभु कृपानिधि हैं। शेष लोगों में जो छोटे बड़े मध्यम स्त्री और पुरुष थे उन सबका सम्मान करके घर लौटाया। सामान्य लोगों की विदाई न कह कर सम्मानपूर्वक घर लौटाना कहा।

दो. भरत मातु पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच सोच सब मेटि ॥३१९॥

अर्थ : भरतजी की माता के चरणों की वन्दना करके पवित्र प्रेम से उनसे मिले भेंटे। उनका सङ्कोच और सोच को मिटाकर पालकी सजाकर विदा किया।

व्याख्या : अब माताओं को विदा करना शेष रहा। सो जिस भाँति : प्रथम राम भेंटी कैकेई। उसी भाँति पहिले कैकेयो को ही विदा किया। पवित्र स्नेह से न मिलने का यथेष्ट कारण था। अतः कवि कहते हैं कि पवित्र स्नेह से मिल भेंटकर : गले लगाकर विदा किया। उनका सङ्कोच और सोच दूर किया। उनके आने पर भी सरल स्वभाव और भक्ति से मिले थे पर देखा कि उनका सङ्कोच और सोच गया नहीं है। विना बात स्पष्ट किये सङ्कोच सोच जा नहीं सकता। अतः देवमाया के भेद को स्पष्ट कहकर और भूभार उतारने के लिए वन जाने की आवश्यकता बतलाकर उसे सोच सङ्कोच से विनिर्मुक्त किया। सम्मान के लिए स्वयं पालकी सजाकर उस पर बिठाया।

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनामु भेंटी सब सासू। प्रेम कहत कबि हिय न हुलासू॥१॥

अर्थ : प्राणपति में जिसका पवित्र प्रेम है। ऐसी सीताजी परिजन माता और पिता से मिलकर लौट आयीं। तत्पश्चात् प्रणाम करके सब सासों से मिलीं। प्रेम के वर्णन करने में कविहृदय में हुलास नहीं है।

व्याख्या : जब भरतजी प्रणाम करने आये और आशीर्वाद लेकर चले गये तब यह समझकर कि विदाई हो रही है सीताजी जनकजी के डेरे पर गयीं। उसी समय दोनों भाई राम और लक्ष्मणजी भी सास से मिलने आये। सीताजी पहिले परिजनों से मिलीं। पीछे माता और पिता से मिलकर लौट आयीं। क्योंकि प्राणप्रिय रामचन्द्र में उनका पुनीत प्रेम है। यथा : प्रीति पुरातन लखै न कोई। तथा : मन बिहँसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि।

अवध प्रान्त की रीति है कि बेटियाँ माँ से मिलती हैं प्रणाम नहीं करतीं। माताएँ भी बेटियों से मिल लेती हैं आशीर्वाद नहीं देतीं। तदनुसार कवि ने भी सीताजी का माता आदि से मिलना ही कहा। प्रणाम आशीर्वाद नहीं कहा।

लौटने पर सीताजी सास लोगों के डेरों पर गयीं। उनसे प्रणाम करके तब मिलीं। उस समय जो प्रेम का दृश्य हुआ वह ऐसा करुणामय था कि उसके लिखने में कवि के हृदय में उल्लास नहीं होता। अतः नहीं लिखा।

सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रहीं सीय दुहु प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकी मँगाई। करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाई॥२॥

अर्थ : शिक्षा सुनकर और जो चाहा आशीर्वाद पाकर सीता दोनों ओर की प्रीति में मग्न हो गयीं। रामजी ने अच्छी पालकियाँ मँगायीं और समझा बुझाकर सब माताओं को चढ़ाया।

व्याख्या : सास लोगों ने शिक्षा दी कि इस भाँति पति तथा देवर के साथ

बर्ताव करना इत्यादि और मनचाहा आशीर्वाद दिया कि परमेश्वर तुम्हें पति देवर के साथ कुशलपूर्वक वन से घर लौटावें। यथा : पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहि पूजा तोरी। तब से रामजी भी कैकेयी को विदा करके आगये। सीताजी मैके और ससुराल दोनों ओर की प्रीति में मग्न हो रही थीं।

रामजी ने अच्छी पालकियाँ मँगायीं। माताओंकी इच्छा जाने की नहीं। अतः उन्हें समझाया। यथा :

अवधि मात्र धीरज धरिअ अम्ब समुझि बिधि बाम।
जेहि पावै परितोष नृप अधिक बसत सुर धाम॥
तुम्हरे दुःख कीन्हें अधिक पीर भरत हिय होइ।
रहैं सुखी जेहि बिधि भरत सब मिलि कीजै सोइ॥
त्यागि मोह ममता सकल सिर धरि ईस रजाय।
भजिय ताहि संसार भ्रम जाते जाय नसाय॥

एवं समझा बुझाकर पालकियों पर चढ़ाया।

**बार बार हिलि मिलि दुहु भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई॥**
**साजि बाजि गज बाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना॥३॥**

अर्थ : दोनों भाई बार बार हिल मिलकर समान स्नेह के साथ माताओं को पहुँचाया। घोड़े हाथी आदि अनेक प्रकार के वाहनों का साजकर राजा जनक और भरत की सेनाओं ने प्रस्थान किया।

व्याख्या : सब माताओं से हिलने मिलने में लक्ष्मणजी साथ हैं। माताओं के साथ ठीक बच्चों सा भाव वात्सल्य की दृढ़ता के लिए दर्शाया। सब माताओं के समान स्नेह के साथ सेना तक पहुँचाया।

इधर सेना भी आयी थी। इससे गजवाजि का सजाना लिखते हैं। आने के समय दोनों सेनाएँ अलग-अलग आयीं। अब विदा होकर साथ साथ चल रही हैं। क्योंकि जनकजी अवध जाना चाहते हैं। जनकजी बड़े हैं। इससे उनकी सवारी आगे आगे चल रही है। भरतजी समाज सहित उनके पीछे हैं।

**हृदय रामु सिय लखनु समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥**
**बसह बाजि गज पसु हिय हारे। चले जाहि परबस मन मारे॥४॥**

अर्थ : लक्ष्मण के सहित राम जानकी हृदय में हैं। सब लोग अचेत चले जा रहे हैं। बैल घोड़े हाथी आदि पशु मन मारे हिय हारे परवश में पड़े चले जा रहे हैं।

व्याख्या : राम जानकी तथा लक्ष्मण को साथ नहीं ले जा सके तो उनकी मनोमयी मूर्तियों को हृदय में धारण किये हुए चले जा रहे हैं। पर साक्षात् उनका साथ नहीं है। अतः अचेत हैं। अर्थात् अन्तर्यामी की प्रेरणा से चले जा रहे हैं। मन जाने का अब भी नहीं है।

अचेत का उदाहरण देते हुए लिखते हैं कि सेना में क्रम नहीं है। पहिले बैल चल रहे हैं। सबसे आगे चलनेवाले घोड़े उनके पीछे हैं। हाथी बीच में चल रहे हैं। बेसर महिष उनके पीछे हैं। उनका मन भी जाने का नहीं है। पर पराये वश में हैं। अतः हियहारे चले जा रहे हैं। उत्साह उन्हें भी नहीं है।

दो. गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु, सीता लखन समेत।
फिरे हरख बिसमय सहित, आये परन निकेत ॥३२०॥

अर्थ : सरकार सीता और लक्ष्मण के सहित गुरु और गुरु की स्त्री के चरणों की वन्दना करके हर्ष और विस्मय के साथ लौटे और अपने पर्णकुटी में आये।

व्याख्या : सबसे प्रधान होने के कारण अन्त में भगवती अरुन्धती के साथ वसिष्ठजी की वन्दना की। गुरुजी भी जनकीजी की भाँति धैर्य सँभाले रह गये। आशीर्वाद तक न दे सके। गुरुजी की वन्दना है। धर्मकृत्य है। अतः सपत्नीक वन्दना किया। यथा : धरे चरन सिय सहित बहोरी। रघुनाथजी हर्ष विस्मय रहित हैं। सो हर्ष विस्मय सहित लौटे। सङ्कोचवश सङ्कट में पड़े थे। उसके छूटने से हर्ष और प्रिय परिजन के वियोग से विस्मय।

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषादू॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥१॥

अर्थ : सम्मान करके निषाद को विदा किया। वह चल पड़ा। उसके हृदय में बड़ा विरह और विषाद था। कोल किरात भील वन के रहनेवाले लौटने पर जोहार कर करके लौटे।

व्याख्या : सबके पीछे विदा किया। क्योंकि निषादराज पर्णकुटी के यहाँ बैठे रह गये थे। सरकार लौटकर आये तब उसका सम्मान करके विदाई की। निषादराज विदा करने पर चल तो पड़े पर उनकी इच्छा जाने की नहीं थी। सरकार के विरह से उनके हृदय में बड़ा विषाद हुआ था।

कोल किरात भील आदि वन के रहनेवाले सरकार के यहाँ इतने अतिथियों का आना देखकर आप से आप सेवा के लिए उपस्थित हो गये थे। इतने दिन साथ रहने से उन्हें सरकार का साथ छोड़ा अच्छा नहीं लगता था। अतः सरकार ने कहा कि अब तुम लोग अपने अपने निवास स्थान को लौट जाओ। तब जोहार करके लौटे।

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं॥
भरत सनेहु सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी ॥२॥

अर्थ : प्रभु सीताजी लक्ष्मणजी वट की छाया के तले बैठकर प्रिय परिजन के वियोग में बिलखने लगे। भरतजी का स्नेह स्वभाव सुवाणी सरकार प्रिया और अनुज से बखान करके कहने लगे।

व्याख्या : इस समय वट तले कोई नहीं है। केवल यही तीन प्राणी बैठे हैं और प्रिय परिजन के वियोग में बिलख रहे हैं। उधर वे लोग भी विरह में अचेत चले जाते थे। ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। यह युक्ति चरितार्थ हो रही थी।

सरकार भरत के स्वभाव स्नेह और सुवाणी का वर्णन प्रिया और अनुज से करने लगे।

भरत का स्वभाव यथा : भरत सुभाउ न सुगम निगमहू।
भरत का स्नेह यथा : होत न भूतल भाव भरत को।
सचर अचर चर अचर करत को॥
भरत की सुवाणी यथा : बिमल बिबेक धरम नय साली।
भरत भारती मंजु मराली॥

**प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी॥**
**तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना॥३॥**

अर्थ : रामजी ने भरतजी के मनसा वाचा कर्मणा प्रीति प्रतीति का वर्णन प्रेम के वश होकर श्रीमुख से किया। उस अवसर में चित्रकूट के पक्षी मृग और पानी की मछलियाँ चर और अचर सब उदास हो गये।

व्याख्या : सरकार प्रेम के वश में हैं। इसलिए श्रीमुख से भरतजी के मनसा वाचा कर्मणा प्रीति प्रतीति का वर्णन सीताजी और लक्ष्मणजी से कर रहे हैं। सच्चा बखान वही है जो सामने भी किया जाय और पीठ पीछे भी किया जाय। यथा : बामदेव रघुकुल गुर ज्ञानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी। यह बखान विश्वामित्रजी के चले जाने पर किया गया। जो कि उनकी कथा का बखान उनके सामने हो चुका था।

यथा : मुनि मन अगम गाधिसुत करनी।
मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी॥
बोले बामदेव सब साँची।
कीरति कलित लोकतिहुँ माँची॥

उस समय चित्रकूट के आकाशवासी खग पृथ्वी पर के रहनेवाले मृग तथा जल में की रहनेवाली मछलियाँ जिन्हें दर्शन का भी सौभाग्य प्राप्त न था सबके सब खिन्न हो गये। चर और अचर के उदास होने का कारण यह है कि चित्रकूट के अधिष्ठात्री देवता स्वयं इस वियोग के दृश्य को देखकर दुःखी हो गये थे।

**बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की॥**
**प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डरु न खरो सो॥४॥**

अर्थ : देवताओं ने रामजी की दशा देखकर फूलों की वर्षा की और घर घर

को जो गति हो रही थी सो निवेदन किया। प्रभु ने प्रणाम करके भरोसा दिया। प्रसन्न होकर चले। उन्हें तृण के समान भी भय नहीं रह गया।

व्याख्या : सरकार को पीड़ित देखकर मन पलटने के लिए देवताओं ने पुष्प की वर्षा की और रावण के कारण जो दशा उन लोगों की हो रही थी उसका पृथक् पृथक् वर्णन किया। उसमें सरकार के हृदय से वीररस का उदय हो। दूसरी बात यह भी है कि वनवास के प्रधान कारण होने से अपने को सापराध भी मानते हैं। अतः अपनी अपनी पीड़ा की कथा कह सुनायी कि बिना सरकार के आये हम लोगों की पीड़ा मिट नहीं सकती थी इसलिए हम लोग निरुपाय थे।

सरकार मर्यादापुरुषोत्तम हैं। अतः प्रणाम किया और उन लोगों को भरोसा दिया कि अब मैं आगया। अब आप लोग चिन्ता न करें। सुनकर देवता लोग प्रसन्न हो गये। सरकार के अप्रसंन्न होने का भय जाता रहा और सरकार के भरोसा देने से रावण से पिण्ड छूटने का दृढ़ विश्वास हो गया। अतः अपने अपने लोक को चले। नहीं तो जब से भरतजी चले थे देवता लोग साथ थे। उन्हें बड़ी उत्सुकता थी कि देखें क्या होता है।

दो. सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु, सोहत धरे सरीर ॥३२१॥

अर्थ : लक्ष्मण और सीताजी के साथ सरकार पर्णकुटी में ऐसे शोभित हैं जैसे भक्ति ज्ञान और वैराग्य शरीर धारण करके शोभित हो।

व्याख्या : यहाँ कवि सरकार की कथा को विश्राम दे रहे हैं। पहिले जब आकर चित्रकूट में ठहरे थे। तब आनन्द का वर्णन करते हुए कहा था : राम लखन सीता सहित सोभित परन निकेत। जिमि बासव बस अमर पुर सची जयन्त समेत। इस समय प्रभु वियोगावस्था में है। इसलिए पर्ण निकेत न कहकर पर्ण कुटीर कह रहे हैं। लक्ष्मणजी की उपमा जयन्त से न देकर वैराग्य से दे रहे हैं। सीताजी को शची न कहकर भक्ति कह रहे हैं। सरकार को वासव न कहकर सशरीर ज्ञान से उपमित कर रहे हैं। निर्गलितार्थ यह कि सरकार जिस अवस्था में रहें उसी में उनकी शोभा है। यहाँ कथा को विश्राम देकर अब जहाँ से भरतचरित छोड़ा था वहीं से उठाते हैं।

## १३. पादुका सहित अवध प्रत्यागमन प्रसङ्ग

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरह सब साज बिहालू॥
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं॥१॥

अर्थ : मुनि, ब्राह्मण लोग, गुरुजी, भरतजी तथा राजा जनक तथा सब साज समाज रामजी के विरह में बेहाल हो रहा है। सरकार के गुणग्राम को मन में गुनते हुए सब चुपचाप रास्ते में चले जा रहे हैं।

व्याख्या : बसह बाजि गज पसुहिय हारे। चले जात परबस मन मारे। यहाँ से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब : राम बिरह सब साज बिहालू। कहकर उसी प्रसङ्ग को फिर से उठाते हैं। पहिले कह आये हैं : हृदय राम सिय लखन समेता। चले जात सब लोग अचेता। उसी बात को : प्रभु गुन ग्राम गुनत मन माँही। पद से कह रहे हैं। चले जात सब लोग अचेता : का अनुवाद करते हुए कहते हैं : सब चुपचाप चले मग जाहीं।

जमुना उतरि पार सबु भएऊ। सो बासर बिनु भोजन गएऊ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू॥२॥

अर्थ : यमुना उतरकर सब लोग पार हुए। वह दिन बिना भोजन के बीत गया। दूरे दिन गङ्गापार करके डेरा डाला। रामसखा निषादराज ने सब सुभीता किया।

व्याख्या : लौटते समय सीधा रास्ता पकड़ा। पहिले ही दिन यमुना पार करके डेरा डाला। जिसमें सबेरे नाव पर चढ़ने उतरने का टण्टा न रहे। विषादी को भूख नहीं लगती। अतः किसी ने कुछ खाया नहीं। प्रयागराज जाना नहीं था। इसलिए दूसरे दिन गङ्गापार करके डेरा डाला। दो दो सेना एक साथ चल रही हैं। अतः सिवा नदी के किनारे के दूसरी जगह पड़ाव पड़ नहीं सकता। गङ्गा पार होने पर शृङ्गवेरपुर में आगये। वहाँ निषादराज का निवास स्थान है। अतः उसने सब सुभीता कर दिया।

सई उतरि गोमती नहाये। चौथें दिवस अवधपुर आये॥
जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी॥३॥

अर्थ : फिर सई उतरकर गोमती नदी में स्नान किया। चौथे दिन अयोध्या पहुँच गये। जनकजी चार दिन राजधानी में रहे। राजकाज और सब साज को सँभाला।

व्याख्या : जाते समय : तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू। सई तीर बसि चले बिहाने। लौटाते समय पहिले सई पड़ी। तब गोमती पड़ीं। दो दिन का रास्ता एक दिन में तय किया। अवध पुर आये : कहने से ही तमसा पार होना कह दिया गया।

जनकजी का पहिले पहल अयोध्या आना ग्रन्थकार लिखते हैं। अयोध्या आकर जनकजी चार दिन ठहरे। इसी बीच में वहाँ के शासन प्रणाली का निरीक्षण किया। सेना कोष दुर्ग आदि की व्यवस्था का निरीक्षण किया। देख लिया कि सब ठीक है। तब :

सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू। तेरहुति चले साजि सब साजू॥
नगर नारि नर गुर सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी॥४॥

अर्थ : मन्त्री गुरु और भरत को राज्य सौंपकर सब साज सजकर मिथिला को प्रस्थान किया। नगर के नर नारी गुरुजी की शिक्षा मानकर सुख से रामजी की राजधानी में बसे।

व्याख्या : जनकजी ने राज्य की व्यवस्था मन्त्रियों के जिम्मे किया। गुरुजी को निरीक्षण का भार दिया। शासन भरतजी के सुपुर्द करके मिथिला को प्रस्थान किया। सेना साथ है। इसलिए सब साज साजना कहते हैं। सौंपने का भाव यह कि यह थाती रामजी की है। जब तक वे न लौटें तब तक सँभालो। कोई अड़चन आ पड़े तो मुझे समाचार दो।

लोगों ने सुना कि रामजी नहीं लौटे। अतः वे बड़े दुःखी हुए। उनका मन उचटा हुआ है। अवध में वसना नहीं चाहते। पर गुरुजी ने सबको समझाया कि रामजी नहीं लौटे यह ठीक है। पर राज उन्होंने स्वीकार कर लिया। यह राज उन्हीं का है और उन्हीं की राजधानी है। उनकी अनुपस्थिति में राज्यभार भरतजी के ऊपर है। आप लोग किसी बात की चिन्ता न करें। इस भाँति गुरुजी के प्रबोध करने पर सब लोग सुख से वसे।

दो. राम दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जिअत अवधि की आस ॥३२२॥

अर्थ : रामजी के दर्शन के लिए सब लोग नियम और उपवास करने लगे। भूषण और भोग सुख को छोड़ दिया। रामजी के दर्शन की आशा से सब जी रहे हैं।

व्याख्या : फिर लोगों का नियम-उपवास आरम्भ हो गया। नियम यथा : पय अहार फल असन इक। उपवास यथा : निसि भोजन इक लोग। काम्य कर्म सब लोगों ने बन्द कर दिया। भूषण से आभिमानिक सुख होता है। अतः उसे भी छोड़ा। उस भाँति अनुष्ठान करने से ही इष्ट की प्राप्ति होती है। इन लोगों की इष्टप्राप्ति रामजी का दर्शन है। ये उसी की आशा से जीवन धारण कर रहे हैं।

## २४. भरत रहनि प्रसङ्ग

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे ॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई ॥१

अर्थ : भरतजी ने मन्त्रियों और सुसेवकों को समझाया। वे सब शिक्षा पाकर अपने अपने काम में लग गये। फिर छोटे भाई को बुलाकर शिक्षा दी। सब माताओं की सेवा उन्हें सौंपीं।

व्याख्या : नगर के लोगों को गुरुजी ने समझाया और वे उनका कहना मानकर अवध में सुख से बसे। गुरुजी आज्ञा में रामजी भी हैं। भरतजी भी हैं। अतः जो गुरुजी ने कहा उसमें सन्देह करने के लिए किसी को स्थान नहीं है।

इसलिए प्रजा मात्र को दिलासा गुरुजी ने दिया और प्रजा ने उसे माना। जनकजी के सौंपने के अनुसार गुरुजी ने कार्यारम्भ कर दिया।

इस समय शासक भरतजी हैं। पर वे राजकाज में दिन रात व्यस्त रहना नहीं चाहते। अतः मन्त्रियों और कामदारों को बुलाकर[1] समझाया कार्य विभाग करके उन लोगों में काम बाँट दिया और वे लोग अपने अपने काम में लग गये। अब रह गयी माताओं की सेवा। उसे छोटे भाई शत्रुघ्न के सुपुर्द किया। दूसरे से यह सेवा बन नहीं सकती थी और उन्हें तत्सम्बन्धी शिक्षा भी दी।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बय बिनय निहोरे॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू। आयसु देब न करब संकोचू॥२॥

अर्थ : ब्राह्मणों को बुलाकर भरतजी ने हाथ जोड़े और प्रणाम करके विनय निहोरा किया कि ऊँचा नीचा भला बुरा जो काम हो उसके लिए आज्ञा दीजियेगा। सङ्कोच न कीजियेगा।

व्याख्या : भरतजी ने तत्पश्चात् ब्राह्मणों को बुलवाया। ये पृथ्वी के देवता हैं। इनकी प्रजा में गिनती नहीं है। प्रजा में गिनती वैश्य और शूद्र की है। इसलिए राजा विशाम्पतिः कहलाता है। ब्राह्मणों के लिए किसी पर दावा करने का विधान नहीं है। वह अपने अपराधी को अपनी तपस्या के बल से दण्ड दे। अतः भरतजी ने उन्हें प्रणाम किया। उनसे बहुत विनती की और उनका निहोरा किया कि जो उनकी आज्ञा में न चले उनके लिए मुझे आज्ञा दें। सङ्कोच न करें कि नित्य उठकर आज्ञा देना भी अच्छा नहीं है। मैं उस आज्ञा के लिए कृतज्ञ हूँगा और जिस प्रकार का कार्य हो उसके लिए मुझे आज्ञा मिले। इस बात का सङ्कोच न किया जाय कि अमुक कार्य ऐसा तुच्छ है। ऐसा छोटा है। इसके लिए भरत को कैसे कहें इत्यादि।

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए॥
सानुज गे गुरु गेहँ बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥३॥

---

१. जब लगि प्रभु आवत नाहीं तब लगि सब अधिकार।
जो जाको जैसो रह्यो सो सब करै सँभार॥
सम्मति रघुपति की सकल राज पाट धन धाम।
योग क्षेम बाढै सदा समुझि सँभारो काम॥
दुखी प्रजा रघुपति विरह करहु तासु मनुहार।
करहि सकल सत भाव से वेद विहित आचार॥
होय न पावै पाप कहुँ करिअ नित्य यह सोध।
रहै प्रजा सुख शान्ति से बढै न कतहुँ विरोध॥
सेवक धर्म सँभारिये सजग होउ सब कोय।
परमधर्म सब को यथा स्वामी को हित होय॥

अर्थ : परिजन पुरजन और प्रजाओं को बुलवाया। उनका समाधान करके उन्हें स्वतन्त्र करके बसाया। छोटे भाई के साथ गुरुजी के घर गये और दण्डवत करके हाथ जोड़कर बोले।

व्याख्या : तत्पश्चात् परिजन अर्थात् कुटुम्बी क्षत्रियवर्ग को बुलाया। राजधानी के रहनेवाले तथा देशवासियों को बुलवाया। उनका समाधान किया कि यद्यपि सरकार धर्मशाप में बँधे रहने के कारण नहीं लौटे फिर भी उन्होंने राज्य स्वीकार कर लिया है। मैं तो उनकी आज्ञा से आप लोगों की सेवा करूँगा। आप लोगों के व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य में कोई बाधा नहीं पड़ने पायेगी।

फिर शत्रुघ्नजी को लिये हुए गुरुजी के पास गये। जिसमें जो कुछ गुरुजी कहें उससे शत्रुघ्नजी परिचित रहें। वहाँ गुरुजी को दण्डप्रणाम किया और बोले।

आयसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा ॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई ॥४॥

अर्थ : आज्ञा हो तो नियमपूर्वक रहूँ। मुनिजी पुलकित होकर प्रेम से बोले कि जो कुछ तुम समझोगे, कहोगे, करोगे, संसार में वही धर्म का सार : तथ्य होगा।

व्याख्या : रामजी पिता की आज्ञा से मुनिव्रत वेष आहार स्वीकार किये हुए हैं। उनके इस भाँति जीवन पालन करने पर मैं सुख नहीं चाहता। मैं भी उसी भाँति रहना चाहता हूँ। पर उस भाँति रहने के लिए बड़े की आज्ञा की आवश्यकता है। सो आप यदि आज्ञा दें तो मैं उसी नियम से रहूँ। भरतजी की यह वाणी सुनकर मुनिजी प्रेम से पुलकित हो उठे और बोले कि तुम्हारी ऐसी स्थिति हो गयी है कि जो तुम मन में समझोगे, वाणी से कहोगे, और कर्म से आचरण करोगे वही धर्म का सार होगा। अर्थात् तुम साक्षात्कृतधर्मा हो गये। तुम्हारे लिए किसी की आज्ञा की आवश्यकता न रह गयी और न धर्मशास्त्र देखने की आवश्यकता रही।

दो. मुनि सिख पाइ असीस बड़ि, गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासनु प्रभु पादुका, बैठारे निरुपाधि ॥३२३॥

अर्थ : शिक्षा सुनकर और बहुत बड़ा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियों को बुलाकर सुदिन निश्चय किया और सरकार की पादुकाओं को सिंहासन पर निर्विघ्न प्रतिष्ठित कर दिया।

व्याख्या : मुनिजी की शिक्षा हुई कि जो कुछ तुम सोच रहे हो। उसे निःसन्देह कर डालो। क्योंकि वही धर्म होगा। संसार धर्म के अनुसार चलकर अपने को कृतकृत्य मानता है। परन्तु तुम जो आचरण करोगे वही धर्म होगा। यह इतना बड़ा आशीर्वाद है जो किसी को कभी मिला नहीं। अतः भरतजी ने ज्योतिषियों को बुलाकर शुभ मुहूर्त निकलवाया और उसी मुहूर्त में सरकार की पादुका को सिंहासनारूढ़ किया। इस प्रकार से पिता की आज्ञा से जो राज्य मिला था उसे रामजी को

अर्पण किया। पितु आयसु पालिअ दोउ भाई : कहकर जो रामजी ने आज्ञा दी थी उस वचन को भी पूरा किया। इसके लिए गुरुजी से सुदिन नहीं पूछा। गुरुजी तो सरकार के अभिषेक का सुदिन बतलावेंगे। यथा : गुरु वसिष्ठ द्विज लिये बुलाई। आज सुघरी सुदिन समुदाई। रामजी के अभिषेक में उपाधि उठ खड़ी हुई थीं। अतः भरतजी ने सरकारी पादुका को निर्विघ्न सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया।

इस सिंहासन पर पादुका प्रतिष्ठत हो चुकी है। इस पर सरकार का अभिषेक होना ठीक नहीं। यही समझकर : प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिव्य सिंहासन माँगा। रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिर नाई।

राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई॥
नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥१॥

अर्थ : रामजी की माता के और गुरुजी के चरणों में प्रणाम करके और सरकार की पादुका की आज्ञा पा करके नन्दिग्राम में पत्ते की कुटिया बनाकर धर्म धुरधीर भरतजीने निवास किया।

व्याख्या : आज्ञा अपनी माता से ही माँगना उचित था। यथा : बिदा मातु सन आवहुँ माँगी। पर भरतजी ने उनका त्याग किया था। यथा : तज्यौ पिता प्रहलाद बिभीषन बंधु भरत महतारी। अतः रामजी की माता से आज्ञा माँगी। उन्हीं को माता मानते हैं। यहाँ केवल प्रणाम ही लिखा है। पर इस प्रणाम का तात्पर्य स्वीकृति प्राप्त करना है। गुरुजी की स्वीकृति तो मिल चुकी है। तत्पश्चात् स्वामी के अभाव में उनकी पादुका से आज्ञा ली। क्योंकि वे ही : बिमल नयन सेवा सुधरम के हैं। देवताओं के अस्त्र-शस्त्र आभूषण वाहन सभी उनके स्वरूप से पृथक् नहीं होते। अतः पादुका ने आज्ञा दे दी। यह तो : आखर युग जनु जीव जतन के हैं। इनसे तो सरकार स्वयं रत्न से मूल्य की भाँति प्रकट होते हैं। सो उन्हें प्रकट करके आज्ञा ले ली।

नन्दिग्राम तीन पुण्य [1]ग्रामों में से एक है और राजधानी से अत्यन्त दूर है और न अत्यन्त निकट है। वहीं पर्णकुटी बनायी। सरकार को पर्णकुटी में रहते देख आये हैं। अतः महल में न रहेंगे। धर्म धुरधीर हैं। अपने रहने के लिए पर्णकुटी बनायी।

जटा जूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा॥२॥

अर्थ : सिर में जटाजूट और वल्कल वसन धारण किया। पृथ्वी खोदकर कुश लेकर साथरी बनायी। भोजन, वसन, बरतन, व्रत, नेम आदि कठिन ऋषि धर्म को प्रेम के साथ करने लगे।

---

१. शालग्राम नन्दिग्राम शम्मलग्रामश्च : उपाकर्मपद्धति।

व्याख्या : देखा था कि सरकार वल्कल वसन और जटा धारण किये हुए हैं। अतः आप ने भी जटा धारण की और वल्कल वसन पहिना। देख आये हैं कि सरकार साथरी पर सोते हैं। इसलिए भरतजी ने भी कुशाओं की साथरी बनायी। छिन्न मूल होने से कुशा अशुद्ध हो जाते हैं। इसलिए पृथ्वी खोदकर कुशा निकाले। सरकार का मुनिव्रत वेष आहार है। अतः भरतजी ने भी उन्हीं की भाँति भोजन वसन और बरतनों से काम लिया और व्रत तथा नियम जैसा वानप्रस्थ अवस्था में किया जाता है करने लगे। वानप्रस्थ का धर्म बड़ा कठिन है। पर भरतजी प्रेम से उसका पालन करने लगे।

भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी ॥
अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई ॥३॥

अर्थ : भूषण वसन और भोग के बड़े भारी सुख को मनसा वाचा कर्मणा तृण के समान तोड़कर फेंक दिया। अवध के राज्य को इन्द्र भी सिहाते थे और चक्रवर्तीजी के धन को सुनकर कुबेरजी भी लज्जित होते थे।

व्याख्या : धर्मशील महाराज दशरथ के राज्य में सुख सम्पत्ति बिना बुलाये ही चली आती थी। यथा : रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई। कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती। अतः अवध का राज्य ऐसा सुखसमृद्धि से भरा था और चक्रवर्तीजी के पास इतना धन था कि उसे त्रिलोकीनाथ इन्द्र और धनाधिप कुबेर ईर्ष्या करते थे। लज्जित होते थे कि लोकपाल होने पर भी हम राजा दशरथ के जोड़ के नहीं हैं। ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती।

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥४॥

अर्थ : उस पुर में भरतजी रागरहित होकर बसते हैं जैसे चम्पक बाग में भौंरा बसे। लक्ष्मी के विलास को बड़भागी रामानुरागी वमन की भाँति त्याग देते हैं।

व्याख्या : ऐसे समृद्ध राज्य में जहाँ : करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा। भरतजी विरक्त की भाँति रहते हैं। उन्हें सुख नहीं। क्योंकि वे तो रामजी के चरण कमल के भौंरे हैं। वहीं सुख मानते हैं। चम्पक बाग में उन्हें सुख कहाँ? अयोध्या चम्पक बाग की भाँति सबको सुखदायी है पर भरत को नहीं। चम्पा में गुन बहुत हैं रूप रंग अरु वास। पर यह अवगुन एक है कि भंवर न आवे पास। सो दैवयोग से भरतरूपी भौंरे को अवधरूपी चम्पक बाग में बसना पड़ा। अतः उसमें विरक्त की भाँति वे बस रहे हैं।

कारण यह कि लक्ष्मी का विलास रामानुरागी के अनुकूल नहीं पड़ता है। वे उसे पचा नहीं सकते। अजीर्ण अन्न की भाँति वह उनके लिए महा कष्टकर होता है। वमन की भाँति उसे परित्याग करके ही वे सुखी होते हैं।

दो. राम पेम भाजन भरतु, बड़े न येहि करतूति।
चातक हंस सराहिअत, टेक बिबेक बिभूति ॥३२४॥

अर्थ : रामजी के प्रेमपात्र भरतजी इस करतूति से बड़े नहीं हैं। टेक की विभूति से चातक की और विवेक की विभूति से हंस की प्रशंसा होती है।

व्याख्या : लक्ष्मी के प्रेम भाजन रामजी हैं। यथा : जासु कृपा कटाच्छ सुर चाहत चितव न सोइ। राम पदारबिंद रति करति सुभावहिं खोइ। और रामजी के प्रेम भाजन भरतजी हैं। भरतजी की ऐसी महिमा है कि उनके गुणों पर रामजी मुग्ध हैं और रामजी के गुणों पर लक्ष्मी मुग्ध हैं। अतः लक्ष्मी के गुणों पर यदि भरतजी न मुग्ध हों तो उनके लिए कोई बात नहीं है। उनके लिए ऐसा टेक : तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। और ऐसा विवेक : तजत बमन जिमि जन बड़भागी। कोई बड़ी बात नहीं है। टेक के लिए चातक की प्रशंसा ठीक है। विवेक विभूति के लिए हंस की प्रशंसा उचित है। क्योंकि वे पक्षी होकर ऐसा टेक और ऐसी क्षीर नीर विवरण की विभूति को धारण करते हैं।

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई ॥
नित नव राम पेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मन न मलीना ॥१॥

अर्थ : शरीर प्रतिदिन दुर्बल होकर घटता जाता था। पर तेज और बल नहीं घटता था और मुख की शोभा भी वैसी ही थी। नित्य नवीन रामप्रेम प्रण से पुष्ट होकर धर्म दल बढ़ता जाता था और मन उदास नहीं होता था।

व्याख्या : जिस भाँति कसरत करनेवालों का शरीर दुर्बल हो जाता है परन्तु उसमें कस बढ़ता जाता है। उसी भाँति योग जप तप से शरीर की स्थूलता मात्र कम हुई तेज और बल नहीं। यथा : करहिं जोग जप तप तन कसहीं। यथार्थ बल के ह्रास न होने से मुख छवि में अन्तर नहीं पड़ा। दल अर्थात् जप तप आदि नित्य नये रामप्रेम के प्रण से पुष्ट होकर बढ़ते जाते थे। उदासी मन में आने नहीं पाती थी। अतः शरीर की दुर्बलता से कोई वास्तविक हानि नहीं थी। क्योंकि दिव्य तेज और दिव्य बल जिनका सम्बन्ध धर्म से है वह बढ़ रहा था। बिना रामप्रेम के धर्म पुष्ट नहीं होता।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे ॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हियँ बिमल अकासा ॥२॥

अर्थ : जिस भाँति शरद ऋतु के प्रकाश से जल तो घटता है परन्तु वेंत का विलास बढ़ता है। कमल खिल जाते हैं। शम, यम, नियम, उपवासरूपी नक्षत्र भरत के निर्मल हृदयरूपी आकाश में शोभित होते हैं।

व्याख्या : शरद ऋतु में वर्षा की बुढ़ाई आजाती है। इसलिए जल घटने लगता है। पर वेंत में पत्ते नये नये बढ़ जाते हैं और कमल फूलने लगते हैं। यहाँ

भरतजी का शरीर ही तालाब है। वह मुनि व्रतरूपी शरद के आगमन से क्षीण तो होने लगा।

यहाँ भरतजी का शरीर जल है। वह नेमरूपी शरद के आगमन से नित्य घट रहा है। परन्तु जल का आश्रित वेंत बढ़ रहा है। उसके पत्ते पुष्ट हो रहे हैं। कमल विकसित हो रहा है। यहाँ धर्मदल को वेतसविलास से उपमित किया है और अम्लान मन को विकसित कमल से उपमित किया है। यहाँ दल शब्द में श्लेष है। धर्म के पक्ष में इसका अर्थ सेना होगा और वेंत के पक्ष में पत्ता अर्थ किया जायगा। भावार्थ यह कि भरतजी की धर्म सम्पत्ति बढ़ती जाती है और मन में म्लानता नहीं आने पाती। शरदागमन से भरत का दहराकाश : हृदयाकाश निर्मल हो गया है। शम, दम, नियम, उपवास आदि नक्षत्र स्पष्टरूप से चमक रहे हैं।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राकासी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी॥
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥३॥

अर्थ : विश्वास ही ध्रुव तारा है। अवधि पूर्णिमा सी है। स्वामी की सुरति-रूपी सुरवी थी प्रकाशित हो रही है। रामजी का प्रेम ही निश्चल और निष्कलङ्क चन्द्रमा है जो समाज के सहित नित्य शोभायमान है।

व्याख्या : ताराओं में ध्रुव अविचल है। यथा : ध्रुव अबिचल कबहूँ न चलै। इसी भाँति भरतजी के हृदय में रामजी के प्रति अविचल विश्वास है। वही ध्रुव है और चौदह वर्ष की अवधि ही पूर्णिमा तिथि है। बारहो पूर्णिमाओं में शरद पूर्णिमा बड़ी सुन्दर होती है। इसी भाँति संयोगदशा के प्रेम से वियोग के समय के प्रेम में अधिक चमत्कार है। स्वामी की स्मृतिरूपी सुरवीथी सम्पूर्ण आकाश में फैली हुई है। उसका प्रकाश बहुत स्पष्ट हो रहा है एवं राम प्रेमरूपी चन्द्रमा समाज के सहित भरतजी के हृदयरूपी निर्मल नभ में नित्य अत्यन्त शोभायमान है। भेद इतना ही है कि यह चन्द्रमा सदा कलङ्कयुक्त है और चलायमान है। पर रामप्रेम-रूपी चन्द्र निश्चल और निष्कलङ्क है। वीथी की संख्या नव शास्त्रकारों ने बतलाया है। १. नाग वीथी २. गज वीथी ३. ऐरावती वीथी ४. आर्षभी वीथी ५. गो वीथी ६. जारद्गवी वीथी ७. अज वीथी ८. मार्गी वीथी और ९. वैश्वानरी वीथी। ये नवों वीथियाँ सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल में फैली हुई हैं। तीन तीन नक्षत्र एक एक वीथी में पड़ते हैं। इस भाँति सत्ताइस नक्षत्रों में नव वीथियाँ हैं। स्मरण करने-वाले स्मरणीय के [1]गुणग्रामों को ही स्मरण करते हैं। अतः सुरवीथी से स्वामि सुरति को उपमित किया।

---

१. ये नवगुण गुरुजी के कहे हुए हैं जिनको सुरति भरतलाल सदा किया करते है। यथा : १. धर्म धुरीन २. भानुकुल भानू ३. राजाराम ४. स्ववस ५. भगवानू ६. सत्यसन्ध ७ पालक श्रुति सेतू ८. रामजन्म जग मंगल हेतू ९. गुर पितु मातु बचन अनुसारी १०. खल दल दलन देव हितकारी।

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं ॥४॥

अर्थ : भरत का रहन सहन समझ और करतूत, उनकी भक्ति, उनका वैराग्य, उनकी निर्मल विभूति का वर्णन करने में सभी सुकवि सङ्कुचित होते हैं। शेष गणेश और सरस्वती की गति नहीं है।

व्याख्या : १. भरत रहनि यथा : तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जनु चंपक बागा ॥
२. समुझनि यथा : रमा बिलास राम अनुरागी।
तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥
३. करतूति यथा : रामप्रेम भाजन भरतु बड़े न एहि करतूति।
चातक हंस सराहिअत टेक बिबेक बिभूति ॥
४. भगति यथा : नित नव राम प्रेम पन पीना।
५. विरति यथा : बढ़त धरम दल मन न मलीना ॥
६. गुन यथा : सम दम संजम नियम उपासा।
नखत भरत हिय बिमल अकासा ॥
७. विमल विभूति यथा : रामप्रेमु बिधु अचल अदोषा।
सहित समाज सोह नित चोखा ॥

भाव यह कि कवि समझ रहे हैं कि मुझसे वर्णन ठीक नहीं हुआ। अतः कहते हैं कि सभी सुकवि को सङ्कोच होता है। अतः मुझे सङ्कोच होना ठीक ही है। क्योंकि भक्त की महिमा शेष शारदा भी नहीं कह सकते। स्वयं सरकार कहते हैं : कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे। अस दीनबन्धु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे। गणेश और शारदा दोनों समकक्ष के योग्यतावाले हैं : एक वाङ्मय है और दूसरी वाग्देवता हैं। यथा : वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि। मङ्गलानाञ्च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ। अतः गणेशजी के लिए भी वही बात कही गयी।

दो. नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राज काज बहु भाँति ॥३२५॥

अर्थ : नित्य प्रभु की पादुका की पूजा करते हैं, प्रीति हृदय में समाती नहीं और आज्ञा माँग माँगकर बहुत भाँति के राजकार्य का सम्पादन करते हैं।

व्याख्या : नित पूजत प्रभु पाँवरी : कर्मणा। प्रीति न हृदय समात : मनसा। माँगि माँगि आयसु करत : वाचा। प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्ही। अतः करुणानिधान के चरणपीठ को सिंहासनारूढ़ किया। सीताराम की भावना से उसकी नित्य पूजा करते हैं और राजकार्य करने में उसकी आज्ञा माँग लेते हैं। क्योंकि वही : कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन

सेवा सुधरम के : स्थानीय हैं। उसी के द्वारा भरतजी की जिज्ञासा सरकार तक पहुँचती है और वहाँ से जो आज्ञा होती है वह भरतजी तक पहुँच जाती है। उपासना के बल से पादुका टेलीफोन का काम दे रहा है।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तपु तनु कसहीं॥१॥

अर्थ : शरीर में पुलक है। हृदय में रामजानकी हैं। जिह्वा से नाम जप हो रहा है। नेत्रों में जल है। लक्ष्मण राम और सीता तो वन में बसते हैं। पर भरतजी तो घर में ही रहते हुए तप से तन को कस रहे हैं।

व्याख्या : अब भरतजी की दशा कहते हैं। प्रेमातिशय से शरीर में पुलक और नेत्रों में जल बना रहता है। यह तो शरीर की दशा है और सदा हृदय में रामजानकी का निवास रहता है। यह मन की दशा है और जिह्वा से नाम का जप चला जा रहा है। यह वचन की दशा है। लक्ष्मण राम और जानकी तो वनमें बसते हैं। फिर भी ऐसे रङ्ग से रहते हैं जैसे शची और जयन्त के साथ इन्द्र अमरावती में रहते हैं। समय पाकर भगवती का पुष्प श्रृङ्गार भी हो जाता है। यथा : एक बार चुनि कुसुम सोहाए। निजकर भूषन राम बनाए। सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर। परन्तु भरतजी अयोध्या में ही रहते हुए ऋषियोंकी भाँति तप से शरीर को कस रहे हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं।

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥
सुनि ब्रत नेमु साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥२॥

अर्थ : दोनों ओर का विचार करके सब लोग कहते हैं कि सब प्रकार से तो भरत ही सराहना के योग्य हैं। भरतजी का नियम और व्रत सुनकर साधु सङ्कुचित होते हैं और दशा देखकर मुनीश्वर लज्जित हो जाते हैं।

व्याख्यां : लोग रामजी का रहन सहन देख आये हैं और अब भरतजी का रहन सहन देखते हैं। दोनों का मिलान करते हैं तो इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि सब विधि से भरतजी की सराहना उचित है। रामजी तो पिता के वाक्य से वन में गये। मुनिव्रत वेष आहार स्वीकार किया। उनकी इस विधि से सराहना है। इधर भरतजी को पिता ने राज्य दिया। परन्तु भरतजी ने उसका परित्याग किया। सेवाधर्म को अग्रसर करके रामजी की पादुका को सिंहासनारूढ़ किया। अब उसी की सेवा करते हैं। मुनिजी की आज्ञा लेकर मुनिव्रत वेष आहार सम्पूर्ण भोग सामग्री के रहते हुए घर में रहकर कर रहे हैं। अतः भरतजी सभी विधि से प्रशंसा के योग्य हैं।

साधु लोग सब कुछ छोड़कर नियमव्रत करते हैं। सो भरतजी का नियम व्रत घर में ही उनसे बढ़ा चढ़ा है। मननशील मुनि लोग वन में रहकर स्थितप्रज्ञ होते

हैं। यहाँ भरतजी सदा प्रेम में डूबाडूब रहते हैं। अतः इनकी दशा सुनकर साधु और मुनियों को सङ्कोच होता है : हम लोगों ने गृहस्थी छोड़ा फिर भी ऐसा नियम व्रत और भगवत् प्रेम का निर्वाह नहीं कर सकते। यही सङ्कोच है।

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू ॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू ॥३॥

अर्थ : भरतजी का चरित्र परम पवित्र, मधुर, सुन्दर, मुद और मङ्गल का करनेवाला है। कठिन कलियुग के कलुष : पाप और क्लेश को हरण करनेवाला है और महामोहरूपी रात्रि को दूर करने के लिए तो सूर्य है।

व्याख्या : कवि उपसंहार करते हैं कि भरत का चरित्र परम पवित्र है। साधु और मुनियों के लिए भी अनुकरणीय है। बड़ा ही मधुर है। यथा : नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति। माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। सुन्दर ऐसा है कि सब लोग सराहना करते हैं। यथा : सब बिधि भरत सराहन जोगू। मुद मङ्गल करण ऐसा है : मुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं। प्रशस्त आचरण ही मङ्गल है तथा कलियुग में पाप और क्लेश की तीक्ष्णता का आधिक्य है। उसे हरनेवाला है और महामोह को तो ऐसा नाश करता है जैसे सूर्य रात्रि का नाश करते हैं। कहीं अन्धकार का लेश नहीं रह जाता। क्लेश पाँच है : अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, भिनिवेश। आचरण में रहनि, समुझनि, करतूति, भगति, विरति, गुन और विभूती इन सातों का अन्तर्भाव है।

पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू ॥
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू ॥४॥

अर्थ : पापरूप हाथी के लिए तो सिंहरूप है। सन्ताप समाज के लिए यमरूप हैं। भक्तों के मन को प्रसन्न करनेवाला, संसार के भार को दूर करनेवाला और राम के स्नेहरूपी चन्द्र का तो साररूप अमृत है।

व्याख्या : इन सातों की फलश्रुति कहते हुए बतलाते हैं कि भरतजी की रहनि : कठिन कलि कलुष और क्लेश को हरनेवाली हैं। उनकी समुझनि : महामोह निसि दलन दिनेश हैं। उनकी करतूति : पापपुंज कुंजर मृगराज हैं। उनकी भक्ति सकल सन्ताप समाज के लिए यमराज हैं। यमराज का ही नाम शमन है। यथा : शमनो यमराड् यमः। भरतजी की विरति : जनरञ्जन है। उनके गुण भवभार भञ्जन है और उनकी विभूति : रामसनेह सुधाकर सार है।

छं. सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को ॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥

अर्थ : रामजानकी के प्रेम से भरे हुए भरत का यदि जन्म न हुआ होता तो मुनि के मन के लिए भी अगम यम, नियम, शम, दम और विषम व्रत का आचरण कौन करता ? दुःख जलन दरिद्र दम्भ और दूषण को सुयश के बहाने से कौन हरण करता ? कलिकाल में भी तुलसी ऐसे शठों को हठ करके रामजी के सम्मुख कौन करता ?

व्याख्या : सीताराम के चरणों में भरतजी का प्रेम जन्म से ही था। यथा : तुम तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू। रामजी में प्रेम होना और सीताजी में प्रेम होना एक ही बात है। क्योंकि रामजी और सीताजी : देखिअत भिन्न न भिन्न हैं। इसीलिए : सिय राम प्रेम कहा। रामजी में अवधवासियों को इतना प्रेम था : पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग। करत राम हित नेम व्रत परिहरि भूषन भोग। और भरतजी तो रामप्रिय और लघु भाई थे। इसलिए उन्होंने जो यम, नियम, शम, दम और विषम व्रत किये वह मुनि लोगों के लिए करने को कौन चलावे मन से भो अगम था। अर्थात् ऐसा अनुष्ठान किसी ने नहीं किया। भाव यह है कि जिसे रामभक्ति होती है वह राम की प्राप्ति के लिए शम, दम, यम, नियमादि विषम व्रत का आचरण करता है। जो रामजी की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान नहीं करता है उसे रामभक्ति हुई ही नहीं।

अब भरत चरित्र की फलश्रुति कहते हैं। भरत चरित्र से दोषापनयन होता है उसे कहते हैं कि दुःख दाह दरिद्र दम्भ और दूषण का इस चरित्र के श्रवण से नाश होता है। यम के श्रवण से दुःख का नाश होता है। नियम के श्रवण से दाह का नाश होता है। शम के श्रवण से दरिद्रता का नाश होता है। दम के श्रवण से दम्भ का नाश होता है और विषम व्रत के श्रवण से दूषण का नाश होता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| यम | १. | भरत की अहिंसा | यथा : देखि दसा मुनिराज लजाहीं।<br>भरत दयानिधि दीन्ह छड़ाई। |
| | २. | ,, अस्तेय | यथा : संपति सब रघुपति कर आही। |
| | ३. | ,, ब्रह्मचर्य | यथा : नन्दिग्राम करि पर्नकुटीरा। |
| | ४. | ,, अपरिग्रह | यथा : जटाजूट सिर मुनिपट धारी।<br>महि खनि कुस साथरी सँवारी। |
| | ५. | ,, सत्य | यथा : कहहुँ साँच सब सुनि पतियाहू। |
| नियम | १. | ,, तप | यथा : भरत भवन बसि तप तन कसही। |
| | २. | ,, शौच | यथा : करत सकल रिषि धर्म सप्रेमा। |
| | ३. | ,, सन्तोष | यथा : भरत मुदित अवलंब लहेते।<br>अस सुख जस सिय राम रहेते। |
| | ४. | ,, स्वाध्याय | यथा : जोह नाम जप लोचन नीरू। |
| | ५. | ,, ईश्वर प्रणिधान | यथा : नित पूजत प्रभु पाँवरी।<br>प्रीति न हृदय समात। |

शम यथा : पुलक गात हिय सिय रघुबीरू।
जीह नामु जप लोचन नीरू॥
दम यथा : भूषन बसन भोग सुख भूरी।
मन तन बचन तजे तृन तूरी॥
व्रत : विषम यथा : सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं।

दोषा ग्नयन कहकर गुणाधान कहते हैं कि इस कराल कलिकाल में भी अत्यन्त शठों को हठ करके राम सम्मुख तो भरत का यश ही करता है! जो अपने अज्ञान को राम पर धरनेवाले शठ हैं। यथा : ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अज्ञान राम पर धरहीं। वे भी यदि भरत चरित्र सुने तो यह चरित्र उन्हें बलपूर्वक रामजी के सम्मुख कर देता है।

सो. भरत चरित करि नेमु, तुलसी जे सारद सुनहिं।
सीय राम पद पेमु, अवसि होइ भव रस बिरति॥३२६॥

अर्थ : भरत चरित्र को जो नियम पूर्वक प्रेम से गाते या सुनते हैं उनको अवश्य श्रीसीतारामजी के चरणों में प्रेम होता है और संसार के रस से उन्हें अवश्य वैराग्य हो जाता है।

व्याख्या : अत्यन्त शठ के लिए रामभक्ति प्राप्त करने का यही साधन है कि भरत चरित्र को प्रेम और नेम के साथ गान करे या सुने। उसकी शठता छूट जाती है। वह भव रस में निरत था सो विरत हो जायगा। वह अपने अज्ञान का आरोप रामजी पर करता था। सो उसकी : गुन तुम्हार समुझै निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा। ऐसी बुद्धि अवश्य हो जायगी।

भरत चरित्र की इति नहीं है। अतः ग्रन्थकार ने इति नहीं दिया।

नमः शिवाय

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नम.

# श्रीरामचरितमानस

## अरण्यकाण्ड : तृतीय सोपान

## सटीक

सप्तकाण्डरूपी सात मोक्षदायिका पुरियों में अरण्य : वन काण्ड तीसरी मायापुरी : हरद्वार है। हरद्वारान्तर्गत कनखल में दक्षेश्वर महादेव हैं। वहीं दक्ष का यज्ञ हुआ है और भगवती सती ने शरीर त्याग किया है। इस कथा का मूल भी इसी काण्ड में है। अतः इस काण्ड को मायापुरी माना गया है। दूसरी बात यह है कि इस काण्ड में सतीजी माया की जानकी बनीं। श्रीरामजी ने जानकी जी को अग्नि के सुपुर्द करके माया की जानकी से काम लिया। रावण ने मारीच को मायामृग बनाकर सीता का हरण किया। खरदूषण के युद्ध में राक्षसों ने अति घनी माया की। तत्पश्चात् श्रीरामजी की माया से सब मारे गये। यहाँ माया का ही खेल दिखायी पड़ता है। अतः इसका मायापुरी होना अन्वर्थक है। यथा :

बालकाण्ड है अवध अवध मथुरा मन भावन।
हरद्वार आरण्य काशिका किष्किन्धा मन॥
काञ्ची सुन्दर लसत लङ्क उज्जैन सुहावन।
उत्तर द्वारावतीपुरी सातो मन भावन॥
लसत जहाँ सोपान प्रति ऐसो राम चरित्र सर।
विजयानन्द सेवत सुलभ सब सुखकर कलिकलुष हर॥

आरण्य वन को कहते हैं। वन के रास्ते में उतार चढ़ाव तथा विश्राम स्थल का कोई ठिकाना नहीं रहता। कहीं पर्वत की चढ़ाई, कहीं उतराई, कहीं खन्दक। अतः इस काण्ड में बाल अयोध्या की भाँति चौपाई दोहादि का क्रम नहीं है। किसी दोहे में २६ अर्धालियाँ हैं और किसी में केवल दो हैं। अद्भुत विचित्रता इस काव्य में है। स्थान की समता और विषमता अर्धालियों के न्यूनाधिक्य से सूचित किया गया है।

## मङ्गलाचरण

श्लो. मूलं[1] धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेंदुमानंददं
वैराग्यांबुजभास्करं ह्यघघनध्वांतापहं तापहं ।
मोहांभोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं
वंदे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियं ॥१॥

अर्थ : धर्मरूपी वृक्ष के मूल, विवेकरूपी समुद्र को आनन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्यरूपी कमल के लिए सूर्यरूप, पापरूपी अन्धकार को निश्चय ही मिटानेवाले, तीनों तापों के हरण करनेवाले, मोहरूपी बादलों के समूह को छिन्न भिन्न करने की क्रिया में वायुरूप तथा शंकररूप, श्री राजा रामचन्द्र के प्रिय, कलङ्कनासक ब्रह्मकुल की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : जिस भाँति शङ्कररूप हनुमानज़ी की वन्दना करने से शिवजी की पृथक् वन्दना सुन्दरकाण्ड में नहीं की। उसी भाँति इस काण्ड में भी शङ्कररूप ब्रह्मकुल की वन्दना करते हैं। पृथक् वन्दना शङ्करजी की नहीं करते। इस काण्ड के कथानुसार सरकार का ब्रह्मकुल में निवास अनेक वर्षों तक होता रहा। किसी ब्रह्मकुल में पन्द्रह दिन ही रहे। किसी में छः महीने रहे। वनवास का अत्यधिक भाग यों ही व्यतीत किया। इसलिए उस महावन का नाम महाकोसल पड़ गया। कहा भी है : सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह। ब्रह्मकुल की रक्षा के लिए ही शेष कथा का विस्तार हुआ। यथा : निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। इसी के लिए अगस्त्यजी से मन्त्र पूछा। यथा : अब सो मंत्र दहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं सुर द्रोही। अतः कवि ने भी शङ्कर की वन्दना ब्रह्मकुल के रूप में ही की। शङ्करजी अष्टमूर्ति हैं। १. पृथ्वी २. अप ३. तेज ४. वायु ५. आकाश ६. सूर्य ७. चन्द्र और ८. यजमान। इसी भाँति ब्रह्मकुल भी अष्टमूर्ति हैं। उसी का विवरण करते हैं। गीताभाष्य में भाष्यकार कहते हैं : ब्राह्मणत्वस्य हि[2] रक्षणेन रक्षितो भवति वैदिको धर्मः। अतः धर्मवृक्ष का मूल ब्रह्मकुल ही है। एवं वृक्षमूल कहकर पृथ्वीरूप कहा : १.

विवेक का कोई ओर छोर नहीं है। इसीलिए इसकी उपमा समुद्र से दी जाती है। यथा : गुर बिबेक सागर जग जाना। उस विवेक समुद्र को आनन्द देनेवाला ब्रह्मकुल है। ब्रह्मकुल के दर्शन से विवेक की वृद्धि होती है। ब्राह्मणों के दर्शन न होने से विदेश में गये हुए क्षत्रिय ही म्लेच्छ, हूण, पुल्कस यवन आदि हो गये। अतः ब्रह्मकुल को चन्द्ररूप कहा : २.

---

१. शार्दूल विक्रीडित छन्द है।

२. ब्राह्मणत्व की ही रक्षा से वैदिक धर्म की रक्षा होती है।

वैराग्यरूपी कमल का पोषण करनेवाला ब्रह्मकुल सूर्यरूप हैं : ३. ब्रह्मकुल के उदय से ही वैराग्य विकसित हो उठता है। यथा : प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती। एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा।

पापान्धकार के नाश के लिए ब्रह्मकुल तेजरूप हैं : ४. ब्राह्मण के दक्षिण अङ्गुष्ठ में सब तीर्थों का निवास है। अतः विप्रपादोदक के पान करनेवाले के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

तापनाशक होने से ब्रह्मकुल को जलरूप कहा : ५. यथा : विपद्घनध्वान्त-सहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः। अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मण-पादरेणवः॥

मोहरूपी मेघ आकाशरूपी आत्मस्वरूप को आच्छादित कर देता है। उसे तितरबितर कर देने में वायुरूप ब्रह्मकुल समर्थ हैं : ६. यथा : बंदों प्रथम मही सुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।

आकाश अवकाश प्रदान से सबका कल्याण करता है। इसलिए वह शङ्कर हैं। ब्रह्मकुल भी अपने ब्रह्मकर्म से संसार का कल्याण करता है। इसलिए वह भी शङ्कर हैं। इस भाँति ब्रह्मकुल को आकाशरूप कहा : ७.

श्रीरामभूपप्रियं का अर्थ है श्रीरामभूप प्रिय हैं जिसको। या जो रामभूप को प्रिय है। यथा : हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई। यजमान यज्ञ से भगवान् की पूजा करता है। इसलिए वह भगवान् को प्रिय है और ब्राह्मण का कर्म ही यजन याजन है। अतः ब्रह्मकुल को यजमान रूप कहा : ८.

इस भाँति अष्ट मूर्ति ब्रह्मकुल शङ्कररूप होकर कलङ्क का नाश करता है। कलङ्क ब्रह्मकुल की कृपा बिना नहीं छूटता। जब ब्राह्मण प्रायश्चित्तादि से पवित्र करके किसी को ग्रहण करते हैं तभी उसका कलङ्क छूटता है। ऐसे ब्रह्मकुल की श्रीग्रन्थकार वन्दना करते हैं।

श्लो. [1]सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरं।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥२॥

अर्थ : जिनका शरीर घना आनन्दरूपी जल बरसानेवाले मेघों के समान शोभायुक्त हैं। जो पीताम्बर धारण किये हैं और सुन्दर[2] हैं। जिनके हाथों में बाण और धनुष है। जिसका कटि भाग उत्तम तरकस के भार से सुशोभित है। कमल के

———

१. यह भी शार्दूल विक्रीडित छन्द है।

२. समविभक्ताङ्ग।

समान जिसके विशाल नेत्र हैं। जो मस्तक पर जटाजूट धारण करने से अत्यन्त शोभायमान हैं और जो सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मार्ग में चले जा रहे हैं। ऐसे आनन्द देनेवाले श्री रामचन्द्रजी को मैं भजता हूँ।

व्याख्या : बादल जल की वर्षा करते हैं। परन्तु सरकार का शरीर आनन्द बरसानेवाला बादल है। अतः वैसी ही उसकी शोभा है। पीतवल्कल उनके शरीर पर आ जाने से पीताम्बर की शोभा दे रहा है अथवा भगवती जनकनन्दनी पीताम्बर धारण किये हुए हैं। उसका आरोप सरकार पर करके उनको पीताम्बर कह रहे हैं। यथा : छत्रिणो गच्छन्ति कहने में जो छाता नहीं लगाये हुए हैं उस पर भी छातावाले का आरोप होता है। अथवा श्याम शरीर पर पीताम्बर सा मुनिपट अत्यन्त खिल रहा है। इससे सुन्दरं कहते हैं। हाथ में धनुषबाण और कटि में तूणीर की शोभा है। इससे भक्त विपत्तिभञ्जन गुण का वर्णन किया। यथा : राजिव नयन धरे धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक। कृपादृष्टि युक्त होने से : राजीवायत लोचन कहा। यथा : चितइ कृपाकरि राजिव नैना। जटाजूट धारण करने से शोभा घटी नहीं, प्रत्युत और बढ़ गयी। यथा : मरकत सयलपर लरत दामिनि कोटि। सीता और लक्ष्मण के साथ मार्ग चलने से और भी मनोहरता बढ़ी। यथा : जनु मधु मदन मध्य रति लसई। ऐसे सुन्दर राम को गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं प्रणाम करता हूँ।

सान्द्रानन्दपयोद सौभागतनुं से ; रघुपति चित्रकूटबसि जाना। चरित किये श्रुति सुधा समाना : कहा। पीताम्बरं सुन्दरं से : दिव्यबसन भूषन पहिराये। जे नित नूतन अमल सोहाये। अर्थात् अत्रि मिलन कहा। पाणौ बाणशरासनौ कटिलसत्तूणीरभारं वरं से : विराध वध तथा खरदूषण वध कहा। राजीवायतलोचनं से : मुनियों पर कृपा कहा। धृतजटाजूटेन संशोभितं से मुनिवेष में भी सूर्पणखा का आसक्त होना कहा। सीतालक्ष्मणसंयुतं से : पञ्चवटी निवास कहा। पथिगतं से : सीतान्वेषण कहा। अभिराम से : शवरी गीध गति तथा नारद वरदान कहा। इस प्रकार सरकार के ध्यान वर्णन के व्याज से अरण्यकाण्ड की सम्पूर्ण कथाओं के प्रतीक दे दिये।

इस काण्ड में सीताहरण होगा। अतः दो ही श्लोकों में वन्दना किया। सुन्दरकाण्ड में पता लग जायगा तब फिर उस काण्ड से तीन श्लोकों में वन्दना प्रारम्भ हो जायगी।

## २५. सुरपति सुत करनी प्रसंग

सो. उमा[1] राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़, जे हरि बिमुख न धर्म रति ॥१॥

---

१. यहाँ मुद्रा अलङ्कार है।

अर्थ : हे उमा ! रामजी के गुण गूढ़ हैं। पण्डित मुनि इससे वैराग्य प्राप्त करते हैं। परन्तु जो विमूढ़ हैं। परमेश्वर से विमुख हैं और जिन्हें धर्म में प्रेम नहीं है वे मोह को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : अरण्यकाण्ड की कथा में ही उमा को सती शरीर में मोह हुआ था। अतः शङ्कर भगवान् सावधान करते हैं। जब से रामजी जनकपुर में गये तब से लेकर यहाँ तक की कथा में गोस्वामीजी के वक्तृत्व की ही प्रधानता है। धनुषभङ्ग हुआ, ब्याह हुआ, वनवास हुआ, भरतजी मनाने गये, महाराज जनक आये, भरत जी को पादुका मिली, भरतजी के साथ महाराज जनक अवध आये, राज को सँभालकर जनकपुर लौट गये, यह सब माधुर्य की कथा थी। अतः गोस्वामीजी ही बोलते रहे। ऐश्वर्य की कथा आते ही ज्ञान घाट के वक्ता शिवजी बोल उठे : उमा राम गुन गूढ़। गूढ़ कथा को ज्ञानी ही समझ सकता है।

जो शीघ्र लखाई न पड़े उसे गूढ़ कहते हैं। यथा : गूढ प्रेम लखि परै न काहू। लखनेवाले पण्डित : ज्ञानी और मुनि : मनन करनेवाले हैं। उन्हें राम गुण में वैराग्य होता है। यथा : कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई। जिसे सीधी बात न समझ पड़े उसे मूढ़ कहते हैं। यथा : माया बिबस भये मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा। जिन्हें बात उलटी समझ पड़े वे विमूढ़ हैं। विमूढ़ होने से ज्ञान के अधिकारी नहीं। हरिविमुख होने से भक्ति के अधिकारी नहीं। धर्म रति न होने से कर्म के अधिकारी नहीं। ऐसे वेदबाह्यों को रामगुण से मोह प्राप्त होता है। भरत चरित ऐसा नहीं है। यथा : भरत चरित करि नेमु तुलसी जे सादर सुनहिं। सीयराम पद प्रेम अवसि होहिं भव रस बिरति। भरत चरित समाप्त हुआ। अतः रामचरित प्रारम्भ करने के पहिले अपने शिवजी श्रोता को सावधान करते हैं।

**पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥**
**अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन ॥१॥**

अर्थ : पुरवासियों और भरतजी के अनुपम और सुन्दर प्रेम का मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार गान किया। अब अत्यन्त पवित्र प्रभु के चरित्र सुनो जिसे सुर नर मुनि भावन चरित्र को वे वन में कर रहे हैं।

व्याख्या : अब द्वितीय सोपान और तृतीय सोपान के दाब की कथा चली : एक सीढ़ी दूसरे को दाबकर ही बनती है। उसे दोनों की सन्धि समझना चाहिए। इसे सङ्गति भी कह सकते हैं। पुर नर प्रीति पहिले यथा : राम दरस हित लोग सब करत नेम उपवास। परिहरि भूषन भोग सुख जिअत अवध की आस। तत्पश्चात् भरत की प्रीति कही। यथा : नित पूजत प्रभु पाँवरीं प्रीति न हृदय समात। माँगि माँगि आयसु करत राज काज चहु भाँति। मति अनुरूप कहकर यथार्थ गान में अपनी असमर्थता कहा। भगवान् और भागवत का यश मति अनुरूप ही कहा जा सकता है। यथा : बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। शेष गनेस गिरा गमु नाही। अनूप

यथा : मुनिमन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को। सुहाई यथा : कलि काल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।

शिवजी कहते हैं कि तुम सेवक का चरित सुन चुकी। अब प्रभु का चरित सुनो। एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी। सो वह पावन चरित था। इस चरित में खग मृग के स्थान में नर का हित होने लगा। अतः इसे अतिपावन कहते हैं। अथवा भक्तिका शृङ्गार रस के योग से अत्यन्त उत्कर्ष हो उठता है, इसलिए अतिपावन कहा।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए ॥
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर ॥२॥

अर्थ—एक बार सुन्दर सुन्दर फूल चुनकर रामजी ने अपने हाथों से गहने बनाये और सीताजी को अत्यन्त आदर के साथ पहिनाये। तब सुन्दर स्फटिक की शिला पर बैठे।

व्याख्या : शृङ्गार तो प्रायेण करते ही रहते थे। यथा : सिय अंग लिखे धातु राग सुमननि भूषन बिभाग तिलक करनि का कहौं कला निधान की। माधुरी बिलास हास गावत यश तुलसीदास बसत हृदय जोरी प्रिय परम प्रान कीं। गीतावली। इस समय एक बार की बात कही जाती है। कुसुम : कहने से वसन्त ऋतु कहा। क्योंकि इसी ऋतु में कुसुम फूलता है। सुहाये चुनि : कहने का भाव यह कि भूषण बनाने योग्य फूल। निजकर : कहने का भाव यह कि पूजन के लिए अपने हाथों से फूल चुनने का विधान है। दूसरे यह कि भूषण बनानेवाला ही जान सकता है कि किन किन फूलों की कितनी आवश्यकता है। राम बनाये : कहने से प्रभु की रसिकता कलाज्ञान तथा शास्त्रनिष्ठा सूचित की। स्त्रियों की पूजा वस्त्र भूषण द्वारा करनेका शास्त्र विधान है और तापस बेष बिसेख उदासी : रहने का वरदान है। अतः फूलों के गहने जगदम्बा के पूजन के लिए बना रहे हैं। नवरात्र में पूजन का माहात्म्य अधिक है।

सादर पहिराये : कहने से पूजन करना कहा। सुन्दरी सीता सुन्दर राम सुन्दर फटिक शिला पर बैठे हैं। सामने मन्दाकिनी बह रही हैं। उस पार सामने जयन्त टीला है। चारों ओर हरियाली छा रही है। अद्भुत झाँकी है।

सुरपति सुत धरि बायस बेखा। सठ चाहत रघुपति बल देखा ॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा ॥३॥

अर्थ : इन्द्र का बेटा शठ था। उसने कौए का रूप धारण करके रघुपति का बल देखना चाहा। जैसे महामन्दमति चींटी समुद्र का थाह पाना चाहे।

व्याख्या : बल की महिमा सुन रक्खा था। चरित्र से विलासप्रियता सूचित हुई। अतः सन्देह हुआ। सुरपति सुत : कहने का भाव यह है : ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकैं पराई बिभूती। ऐसे का बेटा है। रङ्ग में भङ्ग करने चला। दूसरे यह कि : काक समान पाक रिपुरीती। छली मलीन न कतहुँ प्रतीती। उनका

बेटा होने से यह भी छली मलिन और प्रतीतिहीन है। आप्त पुरुषों से सुनने पर भी इसे प्रतीति नहीं। काक सा स्वभाव है। अतः वही वेष धारण किया। छली है। समझता है कि किसी को सम्भावना भी नहीं होगी कि सुरपति का बेटा काक बनेगा। शठ है व्यर्थ दुराव करता है। उसकी इच्छा है कि किसी को पता भी न लगे और मैं परीक्षा ले लूँ। इसलिए यह रूप लाया। कपट सार सूची सहस बाँधि बचन परवास। करि दुराव चह चातुरी सो सठ तुलसीदास।

पिपीलिका के लिए जल की रेखा दुर्लंघ्य है। उसके लिए समुद्र के थाह पाने की वासना ही महाअमङ्गलरूप है। कोई चींटी ऐसी मतिमन्द नहीं है जो किसी घट के जल का भी थाह जानना चाहती हो। पर यह महामतिमन्द है। चींटी होकर समुद्र का थाह स्वयं लेना चाहता है।

सीता चरन [1]चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा।।
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना ।।४।।

अर्थ : काग होने के कारण सीताजी के चरण में मूढ़ मन्दमति चोंच मारकर भागा। रक्त बह चला तो रघुनाथजी ने जाना। सीक के धनुष पर बाण का सन्धान किया।

व्याख्या : मूढ़ बेसमझ को कहते हैं। बेसमझी के कारण भगवत् अपराध और भागवत अपराध दोनों कर बैठा। रामजी तो चाहने पर परीक्षा भी दे देते हैं। यथा : कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अतिरन धीरा। दुंदुभि अस्थिताल देखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये। ऐसे सरल प्रभु से कपट करके दो दो अपराध करने की क्या आवश्यकता थी। अतः मूढ़ कहा। अवसर चूक गया। इसलिए मन्दमति कहा। यथा : अहह मंदमनु अवसर चूका। जगदम्बा के चरणों को पाकर लोग कौन सा मनोरथ नहीं सिद्ध कर लेते। सो इस मन्दमति ने उस पर प्रहार किया। कारण कागा : भाव यह कि मन उसका कौआ सा था ही। शरीर भी कौआ का धारण कर लिया। अतः भीतर बाहर से कौआ ही हो गया। अतः मूढ़ता और मति की मन्दता का परिचय दे रहा है। सीताजी के चरण में चोंच मारकर भागा। रामजी ने आघात करने के समय न जाना। जगदम्बा के अङ्क में आराम करते थे। यथा : ममाङ्के भरताग्रजः। जब गरम गरम रक्त का शरीर से योग हुआ तब जाना। रघुकुल की प्रतिष्ठा रखने के लिए बाध्य थे। नहीं तो देवताओं के रक्षक हैं। शृङ्गार में थे धनुष बाण पास न था। क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे। सींक का ही धनुष बाण बना लिया। कौआ उड़ाने के लिए यही बहुत है। उसने भी समझा कि रामजी ने मुझे कौआ ही जाना है। इसलिए सीक धनुष और बाण से मुझे डरा रहे हैं।

---

१. ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नखैस्तुण्डेन चासकृत्। मत्पादाङ्गुष्ठमारक्तं विददारामिषाशया। अध्या०। इन्द्र का बेटा काक बनकर नख और चोंच से मेरे पैर के अँगूठे में चोट किया।

दो. अति कृपाल रघुनायक, सदा दीन पर नेह।
ता सनु आइ कीन्ह छलु, मूरख अवगुन गेह ॥१॥

अर्थ : रघुनाथजी अत्यन्त कृपालु हैं। सदा दीनों पर उनकी अनुकम्पा रहती है। मूर्ख अवगुण के घर ने उनसे आकर छल किया।

व्याख्या : रघुनाथ अति कृपालु हैं। यदि यह उनका अपराध किये होता तो क्रोध भी नहीं करते। यथा : सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ। जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई। उनका दीन पर सदा प्रेम रहता है। यदि यह दीन होकर सुग्रीव की भाँति बल में सन्देह करता तो कृपा पूर्वक उसको बल भी दिखा देते और उसका अकल्याण भी न होता। ऐसे प्रभु से छल करना मूर्खता और दोषाकरता का परिचय देना है। छल तो उससे किया जाता है जिससे सरलता से काम न निकले। ऐसे कृपालु दीनानाथ से छल किया। अतः मूर्ख है। अवगुण का घर है। उसे अच्छी बात सूझती ही नहीं।

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाँहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाँहीं ॥१॥

अर्थ : मन्त्र से प्रेरित होकर ब्रह्मास्त्र दौड़ा। कौआ भयभीत होकर भाग चला। अपना रूप धारण करके पिता के पास गया। पर राम विमुख होने से उसने नहीं रक्खा।

व्याख्या : वह सीक का बाण मन्त्र बल से ऐषीकास्त्र हो गया। ऐषीकास्त्र ब्रह्मास्त्र का भेद है। उसका प्रयोग सीक द्वारा ही होता है। जिस भाँति यह देखने में कौआ पर वस्तुतः इन्द्र पुत्र था, उसी भाँति उसके प्रति जिस बाण का प्रयोग किया गया वह देखने में सीक था। पर वस्तुतः ब्राह्मास्त्र था। जयन्त ने पहिले सीक ही समझा। अतः निर्भय था। पर जब उसने ऐषीकास्त्र कालानल के समान तेज देखा तो डर के भागा। वायस भय पावा : कहने का भाव यह कि काँय काँय करता भागा।

पातीति पिता। पिता शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ही रक्षक है। पुत्र का परमाश्रय पिता ही होता है। अतः पहिले इन्द्रलोक गया। वहाँ काक का प्रवेश नहीं। इसलिए काक रूप परित्याग करके अपना रूप धारण किया। दूसरे यह कि काक् रूप होने से पिता के पहिचानने में विलम्ब की सम्भावना थी और विलम्ब होने से अस्त्र के मार लेने का भय था। इसलिए अपना रूप धारण किया। तीसरे पिता की अप्रसन्नता का भा भय था कि तूने काक रूप क्यों धारण किया। चौथे यह पिता के लिए पुत्र प्रिय दर्शन है। अतः अपने रूप में होने से वात्सल्य की अधिक आशा थी। सो पिता ने रक्खा नहीं। अर्थात् निकाल दिया कि जैसा किये हैं वैसा फल भोग। मैं इसमें कुछ नही कर सकता। जयन्त ने ज्ञान बल और दिव्य बल तो

देख ही लिया। ब्रह्मास्त्र को अप्रतिक्रिय जानकर ही भागा है। अब प्रभाव का अनुभव कर रहा है।

भा निरास उपजी मन त्रासा। यथा चक्र भय रिषि दुर्बासा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥२॥

अर्थ : निराश हो गया। उसके मन में त्रास उत्पन्न हो गया जिस भाँति दुर्वासा ऋषि चक्र से सन्त्रस्त हो गये थे। वह ब्रह्मलोक शिवलोकादि समस्त लोकों में थका हुआ और भय शोक से व्याकुल होकर भागता फिरा।

व्याख्या : पहिले जयन्त को आशा थी कि पिता रक्षा करेंगे। उनके प्रत्याख्यान से वह निराश हो गया। पहिले भयभीत होकर भागा था अब सन्त्रस्त हो गया। जैसे चक्र के भय से दुर्वासा ऋषि निराश और सन्त्रस्त हो गये थे वही दशा इसकी हो गयी। अम्बरीष राजा के यहाँ दुर्वासा ऋषि अतिथि हो गये। उस दिन द्वादशी थोड़ी थी। राजा एकादशी व्रत करके पारण करने जा रहा था। ऋषिजी से भोजन के लिए प्रार्थना किया। ऋषिजी ने स्वीकार किया और आवश्यक कार्य के लिए यमुना किनारे गये। ऋषिजी के आने में देर हुई। इधर द्वादशी बीत रही थी। इसलिए ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर राजा ने जल प्राशन कर लिया। इस पर क्रुद्ध होकर ऋषि ने कृत्या प्रकट की। सुदर्शनचक्र राजा की रक्षा करता था। उसने कृत्या को तो भस्म कर ही दिया स्वयं दुर्वासा ऋषिजी पर धावा कर दिया।

ऋषिजी भाग चले। चक्र ने पीछा किया। जितना ऋषिजी भागते थे उतना ही सुदर्शन भी दौड़कर उनका पीछा करता था। ऋषिजी सन्त्रस्त होकर शरण खोजने लगे। पर किसी ने उन्हें शरण नहीं दी।

इसी भाँति जयन्त भी भागता हुआ देवताओं की परम शरण ब्रह्माजी के पास गया। वहाँ भी शरण न मिली तो अवढर दानी शिवजी के शरण गया। वहाँ से भी निराश होकर वरुण कुबेरादिक के लोकों में घूमता फिरा। दौड़ते-दौड़ते श्रमित हो गया। भय और शोक से उसकी बुरी गत हो गयी।

काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकै राम कर द्रोही॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥३॥

अर्थ : किसी ने उसे बैठने तक को नहीं कहा। रामजी के द्रोही की कौन रक्षा कर सकता है। माता मौत हो जाती है। पिता यमराज के समान हो जाते हैं। हे गरुड़जी ! अमृत विष हो जाता है।

व्याख्या : शरण में रखना तो दूर की बात है। किसी ने यह भी नहीं कहा कि बहुत थके हो। दम भर विश्राम कर लो। क्योंकि उसके पीछे ही पीछे रामजी का बाण भी साथ ही जाता था। राम के द्रोही की रक्षा करने में कोई समर्थ नहीं। यथा : जौं खल भयेसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही।

यहाँ भगवान् के उत्कर्ष का प्रसङ्ग है। अतः उपासना घाट के वक्ता भुसुण्डिजी बोल उठे : सुनु हरिजाना। जब माता पिता की यह गति है तो सम्पूर्ण जगत् के विरोधी हो जाने में कौन सन्देह है। पिता के प्रत्याख्यान के अन्तर्गत ही माता का भी प्रत्याख्यान आ जाता है। उस समय इन्द्राणी भी वहीं थी। जब बाण पीछा कर रहा हो उस समय लौटाना मृत्यु के मुख में फेंकना ही है। इसलिए कहा : मातु मृत्यु पितु समन समाना। मृत्यु और शमन : यम एक ही वस्तु है पुल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग मात्र का भेद है। रक्षा और नाश की शक्ति किसी वस्तु में नहीं है। प्रभु के अनुग्रह निग्रह में है। अनुग्रह हो तो सुमेरु भी रेणु हो जाय और निग्रह हो तो माँ बाप भी मृत्यु और यम हो जायँ। इसी प्रकार प्राणद शक्ति और मारक शक्ति अमृत विष में नहीं है। सरकारी अनुग्रह हो तो विष अमृत हो जाता है। नहीं तो अमृत विष हो जाता है। सुरलोक में अमृत का होना प्रसिद्ध है। सो पिता माता ने अमृत से सिञ्चन नहीं किया। रामविरोधी के लिए उसे भी विष ही समझा।

मित्र करै सत रिपु कै करनी। ता कहुँ बिबुधनदी बैतरनी ॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता ॥४॥

अर्थ : मित्र सौ शत्रु की करणी करता है। उसके लिए गङ्गाजी वैतरणी हो जाती हैं। हे भाई! जो राम विमुख हों तो सम्पूर्ण संसार उसके लिए अग्नि से भी गरम हो जाता है।

व्याख्या : राम के विमुख होते ही जमीन आसमान पलट जाता है। मित्र सौ शत्रु की करणी कर बैठता है। अपने समझ में वह भला करता है। पर उससे बड़ी हानि हो जाती है। यहाँ जयन्त की काया पलट विद्या ने उसके सौ शत्रु के समान हानि की। न उसे कायापलट विद्या आती और न वह काक होकर भगवती पर प्रहार करता। शङ्कर भगवान् के जटा में सकल कलुष विध्वंसिनी गङ्गाजी सदा रहती हैं। परन्तु जयन्त के पाप का हरण न कर सकीं। उसे वैतरणीरूप दिखायी पड़ीं। वहाँ से भी वह भागा।

सम्पूर्ण जगत् उसे अग्नि से अधिक दाहक हो गया। कहीं वह बैठ नहीं पाता : राम बिमुख थल नरक न लहहीं। प्रभु के सम्मुख होने से अग्नि भी शीतल हो जाती है। यथा : गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई। गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताहीं। रामकृपा करि चितवा जाही। भाव यह कि जीवन मरण, साध्यासाध्य, लाभ हानि तथा शीतोष्ण की शक्तियाँ सरकार के विमुख सम्मुख होने पर अवलम्बित हैं। स्वतन्त्ररूपेण किसी वस्तु में नहीं है। प्रभु के विमुख होने से जयन्त के लिए सब कुछ उलटा हो गया।

नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता ॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकार प्रनत हित पाही ॥५॥

अर्थ : नारदजी ने जयन्त को विकल देखा। सन्त का चित्त कोमल होता है। सो दया आगयी। तुरन्त उसे रामजी के पास भेजा। उसने पुकारकर कहा कि हे प्रणत के हित करनेवाले ! रक्षा कीजिये।

व्याख्या : नारदजी ने जयन्त को देखा। पर वह इतना विकल था कि उसने नारदजी को नहीं देखा। सन्तों में यही विशेषता है कि ये राम विमुख पर भी दया करते हैं। इसीलिए कहा गया है : बिधि हरिहर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी। जयन्त : कहने का भाव यह कि इन्द्र और इन्द्राणी से लालित पालित इसे मालूम भी नहीं था कि विकलता किसे कहते हैं। दूसरा भाव यह कि इस समय अपने असली रूप में हैं। काक रूप में नहीं हैं। सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह पर कहै न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता। जिस पर पिता ने दया न की, पितामह ने न की, अवढरदानी शङ्कर ने न की। उस पर सन्त की दया हो गयी और वह दया अमोघ है।

सन्त लोग ऐसी युक्ति बतलाते हैं कि तुरन्त कार्यसिद्धि हो। नारदजी बोले कि शरण के लिए क्यों व्यर्थ अन्य स्थानों में टक्कर मारता है। तू स्वयं रामजी के शरण में चला जा। मन्त्र और विधि बतला दी। मन्त्र : प्रणत हित पाही। विधि : कहेसि पुकारि। पुकारकर कहने का भाव यह कि मद, मोह, कपट को अवसर न मिले। मद मोह कपट छलवाले पुकारकर शरण नहीं जा सकते।

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जान नहिं पाई॥६॥

अर्थ : आतुर और सभीत होकर उसने चरण पकड़ लिये और कहा हे दयाल ! हे रघुराई ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आप के बेतौल बल और प्रभुता को मैं मतिमन्द जान न सका।

व्याख्या : अति विकल था। इसलिए उसे आतुर कहा। विकलता का कारण भय था। इसलिए सभय कहा अथवा चरण ग्रहण के लिए आतुर था। शरण आने में तीन बातों की आवश्यकता है १. भयभीत होना २. शरण ताककर आना ३. मद मोह कपट छलादि का त्याग। यथा : जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। तीनों बातें जयन्त में दिखलाया। सभय : शब्द से भयभीत होना कहा। आतुर शब्द से शरण ताकना कहा। पाहि पाहि की पुकार से : मद मोह कपट छल त्याग कहा। अथवा सभय से : मनसा। गहेसि पद जाई से : कर्मणा और त्राहि त्राहि दयाल रघुराई : वाचा शरण ग्रहण कहा।

सरकार के सीक धनुष सायक में इतना सामर्थ्य है कि ब्रह्म रुद्र भी उससे रक्षा नहीं कर सकते। इससे अतुलित बल कहा और : काहू बैठन कहा न ओही। इससे अतुलित प्रभुताई कहा। अब परीक्षा हो चुकी। देख लिया। सब देवताओं ने

समझा मैं न समझ सका। अतः मैं मतिमन्द हूँ। सीताजी को पुष्प से शृङ्गारित करते देखकर विलासी समझ लिया था।

निज कृत कर्म जनित फल पाएउ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आएउ ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एक नयन करि तजा भवानी ॥७॥

अर्थ : अपने किये हुए कर्म का फल पा चुका। हे प्रभो! अब रक्षा कीजिये। मैं शरण ताककर आया हूँ। हे भवानी! कृपालु रामजी ने अत्यन्त आर्तवाणी सुनकर उसकी एक आँख फोड़कर छोड़ दिया।

व्याख्या : जयन्त कहता है : राम बिमुख थल नरक न लहहीं। यह बात ठीक है। संसार में मुझे कहीं त्राण नहीं है। यही मेरे किये हुए कर्म का फल है। जब फल पा चुका तब शरण के उपदेष्टा गुरु मिल गये। मैं अनन्य शरण हूँ। अनन्यता द्योतित करने के लिए कवि ने शरण का ताकना कहा। यथा : तब ताकेसि रघुनायक सरना। आवै समय सरन तकि मोही। भाव यह कि आप ही रक्षा करें तो होय। नहीं तो मैं मरा।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ। कृपाल हैं। उसका वध नहीं चाहा। इसलिए बाण ने उसे मारा नहीं केवल उसके पीछे लगा हुआ उसे डराता गया। अब आर्तवाणी सुना। इसलिए काना करके छोड़ दिया। ब्रह्मास्त्र अमोघ है। अप्रतिक्रिय है। अतः वह खाली जा नहीं सकता। उसकी मर्यादा भी रखनी है। एक नेत्र के नष्ट होने से भी काम नहीं रुकता। अतः उस अस्त्र को एक नेत्र पर ही गिराया। सरकार एक बाण सन्धान कर लेते हैं तो फिर नहीं लौटाते। यहाँ तो बाण चल गया था। अतः बाण की मर्यादा रक्षा के लिए जयन्त को एक नेत्र देना पड़ा। अथवा अपना अपराध क्षमा कर दिया। पर भक्त का अपराध अक्षम्य है। अतः एक नयन करके ही प्राण छोड़ दिया। प्रभु नेत्र की भाँति जानकीजी तथा लक्ष्मणजी की रक्षा करते हैं। यथा : जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे। अतः जानकीजी पर प्रहार करनेवाले के नेत्र पर प्रहार न्याय था।

दो. कीन्ह मोह बस द्रोह, जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह, को कृपाल रघुबीर सम ॥२॥

अर्थ : उसने मोहवश द्रोह किया था। उसका तो वध ही दण्ड था। पर प्रभु ने छोह करके छोड़ दिया। रघुवीर के समान कृपाल कौन है?

व्याख्या : रामजी का बल जानने के लिए सीताजी पर चोट करना अन्याय की पराकाष्ठा है। द्रोह का कोई कारण नहीं था। मोहवश द्रोह करनेवाले का दण्ड ही वध है। शरण आने से छोह किया प्राण छोड़ दिया। ऐसे द्रोही पर कृपा करना रघुवीर का ही काम है। अतः गोस्वामीजी आक्षेपार्थ प्रश्न करते हैं : को कृपाल रघुबीर सम? अर्थात् कोई नहीं।

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना ॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहि जाना ॥१॥

## २६. प्रभु अत्रि भेंट प्रसंग

अर्थ : रघुपति ने चित्रकूट में बसकर श्रवणामृत चरित्र किये। फिर रामजी ने यह अनुमान किया कि सब लोग मुझे जान गये। अब : भीड़ होगी।

व्याख्या : वाल्मीकिजी ने कहा था : चित्रकूट गिरि करहु निवासू। जहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू। उसी का साफल्य दिखलाते हैं। सब भाँति सुपास दिखलाने के लिए शृङ्गार रस का वर्णन किया। केवल पुष्प शृङ्गार ही नहीं नाना प्रकार के चरित्र किये। जिस भाँति राधानाथ का विहार स्थल वृन्दावन है उसी भाँति सीतानाथ का विहार स्थल प्रमोदवन प्रसिद्ध है। चरित्र में शृङ्गार रस के योग से माधुर्यातिशय हो गया। इसलिए : श्रुति सुधा समाना या अति सुधा समाना कहते हैं। अथवा अलौकिक रति ही वेदों का सार है। इसलिए : श्रुतिसुधा समाना कहा।

सरकार ने निषादराज को यमुनातीर से ही विदा कर दिया, जिसमें सबको निवासस्थल का पता न चले। सरकार अवध निवासियों के प्रेम को जानते हैं। यथा : जेहि राखैं रहु घर रखवारी। सो जानै जनु गरदन मारी। सब रामजी का दर्शन चाहते हैं। घर की रखवारी के लिए रहना नहीं चाहते। अब तो भरतजी समाज के साथ निवासस्थल देख गये। अब तो अयोध्या भर को सरकार के निवास स्थान का पता चल गया। अयोध्या से बराबर आना जाना लगा रहेगा। भीड़ बनी ही रहेगी। विशेष रूप से घर से उदासीन रहने का वरदान महाराज से माँगा गया है। यथा : तापस बेष बिशेष उदासी। चौदह बरिस राम बनवासी। अतः श्रीरामजी ने निवासस्थल बदल देने का निश्चय किया।

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई ॥
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गएऊ। सुनत महा मुनि हरषित भएऊ ॥२॥

अर्थ : सब मुनियों से विदा लेकर सीता सहित दोनों भाई चले। जब प्रभु अत्रिजी के आश्रम पर पहुँचे तो सुनते ही महामुनिजी प्रसन्न हो उठे।

व्याख्या : वाल्मीकिजी की आज्ञा लेकर तो चित्रकूट आये थे। अब चलने के समय सब मुनियों से विदा लेकर चलते हैं। राजधर्म दिखला रहे हैं कि राजा सब कार्य ब्राह्मणों की आज्ञा से करें। शासनशक्ति सदा ज्ञानशक्ति के सामने अब नतमस्तक हो। यहाँ तो सब मुनियों की तपस्या सफल करने आये थे। यथा : चलहु सफल श्रम सबकर करहू। अतः सबसे विदा लेना प्राप्त है। एहि बिधि सीय सहित दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुरमुनि सुखदाई। अतः अब चलने के समय कहते हैं : सीता सहित चले द्वौ भाई। यहाँ : सुरपति सुत करणीवाला प्रसङ्ग समाप्त हुआ। अब : प्रभु अरु अत्रि भेंट प्रसङ्ग चला।

चित्रकूटवासी मुनियों में अत्रिजी प्रधान हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। अथवा : मुनि नायक जहँ आयसु देहीं। राखहु तीरथ जल थल तेहीं। अतः सब मुनियोंसे विदा ले लेने पर भी इनसे विदा लेना आवश्यक था। अतः उनके आश्रम पर गये। मुनिजी ने शिष्यों द्वारा प्रभु के आगमन का समाचार सुना। बड़े हर्षित हुए : सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू।

पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए॥
करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए॥३॥

अर्थ—पुलकित शरीर होकर अत्रिजी उठकर दौड़ पड़े। यह देखकर रामजी आतुरता के साथ चले आये। दण्डवत् करते ही मुनिजी ने हृदय से लगा लिया और प्रेमाश्रु से दोनों को स्नान कराया।

व्याख्या : अत्रिजी हर्षित हुए। इसलिए सात्त्विक भाव हुआ। रोमाञ्च हो गया। आश्रम मण्डल में सरकार का पादार्पण हुआ। आगे से आकर लेना चाहिए। इस शिष्टाचार में अन्तर न पड़ने पावे। इसलिए उठि धाए कहा। मुनिजी आतुर हैं। दौड़े चले आते हैं। इसलिए रामजी भी आतुरता से चले आये। भगवती साथ में हैं इसलिए दौड़े नहीं। पर मानसिक अवस्था समान ही है। ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। यह नियम है। इस भाँति स्वागत कहा।

अत्रिजी को अतिप्रेम है। इसलिए भलीभाँति दण्डवत् भी नहीं करने दिया। उठाकर हृदय से लगा लिया। सरकार मर्यादा पालन करते हैं। मुनिजी भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकते। पर आनन्दाश्रु की झरी लग गयी। आशीर्वाद तक न दे सके। मानो आनन्दाश्रु से ही स्नान करा रहे हैं। यहाँ षोडशोपचार पूजा होगी। यथा : आसनं स्वागतं पाद्यं अर्घ्यमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमनं स्नानं वस्त्रं चाभरणानि च। सुगन्धं सुमनो धूपं दीपं नैवेद्यवन्दनम्।

देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए॥४॥

अर्थ : श्रीरामजी की छवि देखकर मुनिजी के नेत्र शीतल हो गये। तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रम में ले आये। सुन्दर वचनों को कहकर पूजा की और मूल फल का नैवेद्य लगाया जो प्रभु को बहुत अच्छे लगे।

व्याख्या : घनश्याम राम के दर्शन से आँखें शीतल हुई। मुनिजी दौड़कर आश्रम के बाहर ही सरकार से मिले थे। अतः आदर के साथ लिवा ले गये। रामायण में सभी स्थलों पर जिस भाग्यवान् को दोनों भाइयों का दर्शन हुआ उसने पहिले तो दोनों भाइयों को देखकर आनन्द पाया। पर पीछे से आँखें प्रभु में ही बँध गयी। यथा : पहिले : दीन्ह असीस देखि भल जोटा। पर पीछे से : रामहि चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार भार मद मोचन। इत्यादि।

शेष पूजा, आसन, पाद्य, अर्घ्यं, आचमनीय मधुपर्क, आचमन, वस्त्र, आभरण,

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप से तथा : मेरा बड़ा भाग्य है, मैं कृतकृत्य हुआ इत्यादि वचन कहकर किया। अथवा : सुहाये वचन वेद वाक्यों से पूजन किया। अन्त में मूल फल का नैवेद्य लगाया। भक्ति से अर्पण किये गये। अतः मनभायें लिखते हैं। यथा : पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि -प्रयतात्मनः। गी.

दो. प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पानि अस्तुति करत ।।३।।

अर्थ : प्रभु आसन पर विराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देख करके परम प्रवीण मुनिश्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

व्याख्या : जब से सरकार आसन पर बैठे हैं तब से मुनि पूजामें लगे हैं। पूजा करते हुए भी शोभा देखते जा रहे हैं। परन्तु कृत्य में लगे रहने से आँखभर देख न सके। अतः आसन पर बैठी हुई पूजित मूर्त्ति की शोभा आँख भरकर पूजन के बाद देखा। मुनिजी परम प्रवीण हैं। पूजा के बाद स्तुति भी होनी चाहिए। अतः हाथ जोड़कर स्तुति करते हैं। अथवा : या लोकद्वयसाधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी। इसलिए ऐसी स्तुति करते हैं जिससे दोनों लोक सधे। क्योंकि मुनिवर परम प्रवीण हैं। यह गुणग्राम : स्तुति नवाँ अश्लेषा नक्षत्र है। इसकी फल स्तुति : प्रियपालक परलोक लोक के है।

नमामि भक्तवत्सलं। कृपालु सील कोमलं ।।
भजामि ते पदाम्बुजं। अकामिनां स्वधामदं ।।१।।

अर्थ : हे भक्तवत्सल ! हे कृपालु, हे कोमल स्वभाववाले ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निष्काम पुरुषों को अपना परम धाम देनेवाले आपके चरणों को मैं भजता हूँ।

व्याख्या : विश्ववास भगवान् भक्त पर कृपा करके प्रकट हुए हैं। इसलिए : भक्तवत्सल कृपालु कहा। यथा : भक्तवछल प्रभु कृपा निधाना। बिस्ववास प्रगटे भगवाना। केवल प्रकट ही नहीं होते। भक्त पर बड़ा छोह करते हैं। जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुणा करि कीन्ह न कोहू। गई बहोरि गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू। कभी भक्त पर क्रोध नहीं करते। उसकी बिगड़ी सुधारा करते हैं। अतः कोमल सील कहते हैं। यथा : अति दयालु गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा। एक सूल मोहि बिसर न काऊ। गुरु कर कोमल सील सुभाऊ। इससे भजनीय भगवान् का स्वभाव कहा।

अब सामर्थ्य कहते हैं सरकार के चरण कमल कामना रहित जनों को स्वधाम देते हैं। यथा : तन तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम पूरन कामा। ऐसे चरण कमलों को मैं भजता हूँ।

निकाम स्याम सुंदरं। भवांबुनाथ मंदरं॥
प्रफुल्ल कंज लोचनं। मदादि दोष मोचनं॥२॥

अर्थ : आप अत्यन्त श्याम सुन्दर संसाररूपी समुद्र के मन्थन के लिए मन्दराचल रूप, फूले हुए कमल के समान नेत्रवाले और मद आदि दोषों को नष्ट करनेवाले हैं।

व्याख्या : स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। अतः सरकार के श्याम शरीर को अति सुन्दर कहा। शरीर की सुन्दरता बन्ध का कारण होती है। उसी सुन्दरता में बँधा हुआ संसार दुःख पाता है। पर यह सुन्दरता भवसागर को अभिभूत करनेवाली है। अतः उसे मन्दर रूप कहते हैं।

प्रफुल्ल कञ्ज की उपमा देकर नेत्रों की सुन्दरता कहा। मदादि दोष मोचनं : कहकर उसका प्रभाव कहा। उसी नेत्र में कृपावलोकनि बसती हैं। क्रोध मनोज मोह मद माया। छूटै सकल राम की दाया। इसीलिए श्रीनारदजी ने विनय किया : मामवलोकय पंकज लोचन।

प्रलंब बाहु विक्रमं। प्रभोऽप्रमेय वैभवं॥
निषंग चाप सायकं। धरं त्रिलोक नायकं॥३॥

अर्थ : हे प्रभो ! आप की लम्बी भुजा का पराक्रम और आपका ऐश्वर्य अप्रमेय है। आप तरकस और धनुष धारण करनेवाले। तीनों लोकों के स्वामी हैं।

व्याख्या : कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थः प्रभुः। अतः प्रभु सम्बोधन दिया। आजानुभुज हैं। अतः प्रलम्ब बाहु कहा। उसके बल की सीमा नहीं। वही पृथ्वी का भार हरण करने में समर्थ है। यथा : भुजबल बिपुल भार महि खंडित। अथवा : सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहैं। सीतल सुखद छाँह जेहिकर की मेटत पापताप माया। निसि वासर तेहिकर सरोज की चाहत तुलसीदास छाया। अप्रमेय वैभव यथा : जो नहि देखा नहि सुना जो मनहू न समाय। सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाय। जो कुछ भुसुण्डिजी ने देखा वह प्रभु का वैभव नहीं था।

सरकार जो धनुष बाण धारण किये रहते हैं। जो अखण्ड दण्डायमान काल तथा खण्ड काल के प्रतीक हैं। निषङ्ग खण्ड कालों का कोष है। तथा : लव निमेष परमान जुग वर्ष कल्पसर चंड। भजसि न मन तेहि रामकहँ काल जासु कोदंड। अतः त्रिलोक के नायक हैं। यहाँ तक नित्य दिव्य मूर्ति का वर्णन है।

दिनेस वंस मंडनं। महेस चाप खंडनं॥
मुनींद्र संत रंजनं। सुरारि वृंद भंजनं॥४॥

अर्थ : आप सूर्यकुल के भूषण हैं। शिवजी के धनुष के तोड़नेवाले हैं। मुनीश और सन्तों को सुख देनेवाले और देवताओं के शत्रु समूह के नाश करनेवाले हैं।

व्याख्या : दिनेशवंश मण्डन कहकर सूर्यवंश में अवतार कहा। महेशचाप खण्डन कहकर सीता स्वयम्वर कहा। इस भाँति बालकाण्ड की कथा सूत्र रूप में कहा। जन्म से लेकर विवाह तक की कथा इसी का विस्तार है।

सरकार मुनिगण के मिलन में सब प्रकार से अपना हित मानते हैं। वनवास स्वीकार के समय श्रीमुख से कहते हैं : मुनिगन मिलन बिसेष बन सबहिं भाँति हित मोर। और वन में जाकर मुनियों के श्रम को सफल करते हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं। चलहु सफल श्रम सबकर करहू। राम देहु गौरव गिरि बरहू। मुनियों का अस्थि समूह देखकर पृथ्वी को निशिचर हीन करने की प्रतिज्ञा करते हैं। यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए। निसिचर हीन करहुँ महि भुज उठाई पन कीन्ह। सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह। तब से निशिचर हीन महि करने का उद्योग प्रारम्भ हुआ। अगस्त्यजी से मन्त्र पूछा : अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही। मुनि ने पञ्चवटी में निवास का मन्त्र दिया। वहीं सूर्पणखा की नाक कटी और राक्षसों से वैर बँधा। इसीलिए : मुनींद्र संतरंजनं कह रहे हैं।

उसी कारण से खरदूषण से युद्ध हुआ। सीताजी हरी गयीं। उन्हें खोजते समय सुग्रीव मिताई हुई। लङ्कापर चढ़ाई हुई और निशिचर वंश का विनाश हुआ। इसलिए : सुरारि वृंद भंजनं कहा एवं अयोध्याकाण्ड, अरण्य, सुन्दर, किष्किन्धा और लङ्का की कथा सूत्र रूप से कही।

मनोज वैरि वंदितं। अजादि देव सेवितं॥
विशुद्ध बोध विग्रहं। समस्त दूषणापहं॥५॥

अर्थ : आप कामारि शिवजी द्वारा वन्दित तथा ब्रह्मादि देव सेवित हैं। आप की मूर्ति विशुद्ध बोधमय है और आप सब दोषों के नष्ट करनेवाले।

व्याख्या : राक्षसों के वध के बाद लङ्का में ही शिवजी आये। ब्रह्मादि देवगण आये और प्रभु की स्तुति की। अतः कामारि वन्दित तथा ब्रह्मादि देवों से सेवित होना कह रहे हैं : कोसलेन्द्र पदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेश वन्दितौ। अथवा : मन जात किरात निपात किये। मृगलोग कुभोग सरे न हिये। हतिनाथ अनाथन्हि पाहि हरे। बिषया बन पाँवर भूलि परे। अर्थात् सरकार की सेवा से कामजय होता है और देवों की सेवा से देवत्व प्राप्ति होती है। यह सूचित किया।

लीलाविग्रह भी पाञ्चभौतिक नहीं है। यथा : चिदानंद मय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी। माया का परदा कुछ काल के लिए कुछ हट जाता है और विशुद्ध बोधमय विग्रह प्रकट हो जाता है। यही प्रभु का अवतार है। यथा : भये प्रगट कृपाला। उस लीला विग्रह के सम्मुख होते ही सब दूषण नष्ट हो जाते हैं। यथा : सम्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं। इससे शिव ब्रह्मादि से सेवित और वन्दित होने का कारण भी कहा।

नमामि इंदिरापतिं । सुखाकरं सतां गतिं ॥
भजे सशक्ति सानुजं । शचीपति प्रियानुजं ॥६॥

अर्थ : मैं लक्ष्मीपति को नमस्कार करता हूँ। जो सुखों की खानि तथा सत्य पुरुषों की गति हैं। मैं शचीपति के छोटे भाई को शक्ति और अनुज के साथ भजता हूँ।

व्याख्या : इन्दिरापति कहकर रामजी का अयोध्या में राज्याभिषेक कहा। यथा : राम बाम दिसि सोहति रमारूप गुन खानि। देखि मातु सब हरखी जनम सुफल निज जानि। सुखाकर से : रामराज्य की सुख सम्पदा कहा। यथा : रामराज्य कर सुख संपदा। बरनि न सकहि फनीस सारदा। सतां गतिम् : कहकर सन्तों का दर्शन के लिए आगमन कहा। यथा : नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा। दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगर बिराग बिसरावहिं।

सीताजी शक्ति हैं। सरकार शक्तिमान् हैं। शक्ति और शक्तिमान् में भेद नहीं है। सानुज से भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्नरूपी अंशों का ग्रहण है। सरकार अंशी हैं। यथा : अंसन्ह सहित देह धरि ताता : शचीपति के अनुज तो बहुत से देवता हैं। पर प्रिय अनुज तो उपेन्द्र : वामनरूप से सरकार ही हैं। जिन्होंने बलि को छल कर त्रिलोकी इन्द्र को दी। यहाँ भी माया मानुष रूप धारण करके रावण से त्रिलोकी को छीनकर इन्द्र को ही लौटाने के फेर में हैं। अतः वामनावतार का उल्लेख करते हैं। सरकार गुणातीत अरु भोग पुरन्दर हैं। अतः शचीपति प्रियानुज कहते हैं।

त्वदंघ्रिमूल ये नराः। भजंति हीन मत्सराः ॥
पतंति नो भवार्णवे। वितर्क वीचि संकुले ॥७॥

अर्थ : जो मनुष्य मत्सर रहित होकर आपके पैर के तलवे का भजन करते हैं वे वितर्करूपी तरङ्गों से परे भवसागर में नहीं पड़ते।

व्याख्या : यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्। सरकार के चरण ही भवसागर के लिए नौकारूप हैं। नौका का आश्रय ग्रहण करनेवाला पार चला जाता है और जल से उसका स्पर्श नहीं होता। इसी भाँति सरकार के चरणतल के भजन करनेवाले का संस्पर्श संसार में रखते हुए भी संसार से लेप नहीं रहता। वे संसार में गिरते नहीं। शर्त यही है कि उनमें मत्सरता न हो। मत्सर मान मद चोर हैं। ये भक्तिमणि को चुरा ले जाते हैं। अतः शुद्ध हृदय से भजन होना चाहिए। सागर में नित्य नयी तरङ्गें उठा करती हैं। कभी वह क्षीणकल्लोल नहीं होता। उसी भाँति भवसागर में तर्क वितर्क की लहरें उठा करती हैं। इन्हीं के थपेड़ों से तिरने में असमर्थ होकर प्राणी डूब जाता है। यथा : खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउँ मोहबस तुम्हरिहि नाई।

तिरनेवाली भी दो प्रकार के होते हैं। एक ऐसे हैं जो भक्ति ही चाहते हैं

मुक्ति नहीं चाहते। यथा : राउर बदि भलभव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू। ऐसे भक्त भी वितर्क वीचि सङ्कुल भवसागर में नहीं पड़ते। सरकार के चरणों का शरण ग्रहण किये हुए जहाज पर सैर करते हुए फिरते हैं और दूसरों को भी कृतार्थ करते हैं और एक ऐसे हैं जो भजन से मुक्ति चाहते हैं। भवसागर से पार चले जाते हैं और फिर उन्हें जहाज की भी आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसे दोनों प्रकार के भक्तों को संसार सागर बाधा नहीं कर सकता। यहाँ तक भक्ति कहा।

विविक्तवासिनः सदा। भजंति मुक्तये मुदा ॥
निरस्य इन्द्रियादिकं। प्रयान्ति ते गतिं स्वकं ॥८॥

अर्थ : एकान्तवासी सदा प्रसन्नतापूर्वक मुक्ति के लिए इन्द्रियों का निग्रह करके भजन करते हैं। वे अपने स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : इनमें से मुक्ति चाहनेवाले : मुमुक्षु जनसंबाध वर्जित स्थान में रहकर आनन्द से भजन करते हैं। देहेन्द्रियादिकों को अपने से पृथक् मानते हुए अन्वय व्यतिरेक द्वारा स्वात्मगति अर्थात् कैवल्य को प्राप्त होते हैं। यथा : राम भजत सोई मुकुति गोसाइँ। अन इच्छित आवइ बरिआइँ। पहिले नमामि भक्त वत्सलं : कहकर भजनीय का स्वभाव कहा। अकामिनां स्वधामदं : कहकर भजनीय का सामर्थ्य कहा। निकाम श्यामसुन्दरं : कहकर स्वरूप कहा। दिनेश वंशमंडनं आदि कहकर चरित्र कहा। त्वदंघ्रिमूल ये नराः आदि कहकर भक्ति और मुक्ति के लिए भजन करने का उपदेश देते हैं।

तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं ॥
जगत्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं ॥९॥

अर्थ : उसी एक, अद्भुत प्रभु, इच्छारहित, ईश्वर, व्यापक, जगद्गुरु, नित्य, तुरीय और केवल को।

व्याख्या : आप निर्गुण रूप में जगत् से विलक्षण हैं। अतः अद्भुत हैं तथा सगुण रूप से भी अद्भुत हैं। यथा : जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न सभाय। सो अब अद्भुत देखेउ बरनि कवन बिधि जाय। तथा प्रभु होने पर भी निरीह हैं और ईश्वर होकर विभु हैं। अतः सभी प्रकार से अद्भुत हैं। आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः। आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।

स सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। इस योगसूत्र का ठीक उल्था है : जगद्गुरुं च शाश्वतं। वह अनन्तकाल से सबका गुरु है। ब्रह्मदेव को भी जिसने वेद दिया। आज भी गुरुमुख से वही उपदेश करता है। नहीं तो एक मनुष्य दूसरे का गुरु नहीं हो सकता। मनुष्य विनाशी है। ईश्वर अविनाशी हैं। वे ही अनादि गुरु हैं। वे ही जिसके मुख द्वारा उपदेश करते हैं उसी को संसार गुरु मानता है।

सो अनादि गुरु आप ही हैं। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था से परे होने से आप तुरीय कहे जाते हैं। तीनों अवस्था की भी अपेक्षा न करके आप केवल तुरीय अर्थात् तुरीयातीत हैं।

भजामि भाववल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं ॥
स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं ॥१०॥

अर्थ : जो भाव प्रिय, कुयोगियों के लिए अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष सम और सदा सुखपूर्वक सेवन करने योग्य हैं। ऐसे आपको : मैं निरन्तर भजता हूँ।

व्याख्या : ऐसे तुरीय का भजन जाग्रदावस्था में कैसे सम्भव है। इस पर कहते हैं कि भाव आपको प्यारा है। जिस भाव से जो भजता है। उसके लिए वैसे ही हो जाते हैं। यथा : जाकी माया बस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो। करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो इत्यादि। जो भगवद्भक्ति हीन योग है उसी को कुयोग कहते हैं। यथा : योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं रामप्रेम परधानू। कुयोगियों के लिए आप इसलिए दुर्लभ हैं कि वे मोह वृक्ष उखाड़ नहीं सकते। यथा : पुरुष कुयोगी सुनु उरगारी। मोह बिटप नहिं सकैं उपारी।

भक्तयोगी के लिए आप कल्पवृक्ष हैं। यथा : देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ। जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समन सब सोच। माँगे अभिमत पाइ जग राव रंक भल पोच। आप वैषम्यरहित हैं। यथा : यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। आप सदा सुसेव्य हैं। यंथा : बलि पूजा चाहत नहीं चाहत एक प्रीति।

अनूप रूप भूपतिं। नतोहमुर्विजा पतिं ॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥११॥

अर्थ : हे अनूप रूप पृथ्वीपत्ति ! हे धरणीसुता नाथ ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझ पर प्रसन्न होइये। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरणों की भक्ति दीजिये।

व्याख्या : आप सगुण रूप भी हैं और निर्गुण रूप भी हैं। अथवा आप में अनुपम सौन्दर्य है। इसलिए अनूप रूप हैं। आप पृथ्वीपति भी हैं और पृथ्वी की कन्या सीता के भी पति हैं। पति शब्द पा रक्षणे धातु से बना है। सो रक्षा करनेवाले को पति कहते हैं और सप्तपदी के बाद वर की पति संज्ञा होती है। यहाँ पति शब्द दोनों अर्थ में आया है। धरणी की आप रक्षा करनेवाले हैं और धरणी सुता के आप स्वामी हैं।

जो एक बार प्रणाम करता है उसे आप अपना लेते हैं। मैंने तो तीन बार प्रणाम किया है। यथा : १. नमामि भक्तवत्सलं २. नमामि इन्दिरापतिं और

३. प्रसीद मे नमामि ते। अतः भक्ति माँगते हैं। यह स्तुति : भक्तवत्सलं से प्रारम्भ होकर : भक्ति देहि मे से समाप्त होती है। इसका आरम्भ और पर्यवसान दोनों भक्ति में है। आदि अन्त के मिलने से चक्राकार आकृति हो जाती है। अतः इसका वर्णन अश्लेषा नक्षत्र की भाँति चक्राकार है और भजन ही इसमें तारे की भाँति पाँच स्थानों में चमकता है। यथा : १. भजामि ते पदाम्बुजं २. भजे सशक्ति सानुजं ३. भजंति हीनमत्सराः ४. भजंति मुक्तये मुदा ५. भजामि भाववल्लभं।

पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं॥
व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्तिसंयुताः॥१२॥

अर्थ : जो इस स्तुति को आदर से पढ़ते हैं वे आपकी भक्ति संयुक्त होकर आपके पद को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : फलश्रुति कहते हैं : प्रिय पालक परलोक लोक के। २८ गुणग्रामों की अट्ठाईस फलश्रुतियाँ बालकाण्ड के आरम्भ में ही कही गयी हैं। यह नवाँ गुणग्राम है। गुणग्राम को ही स्तुति कहते हैं। भक्तिरूपी पूर्णिमा में ये नक्षत्रों की भाँति सुशोभित हैं। नवीं नक्षत्र अश्लेषा है। उसका आकार चक्र सा है और उसमें पाँच तारे चमकते हैं। ये बातें ऊपर दिखला दी गयी हैं। फलश्रुतियाँ भी ठीक इसी क्रम से हैं। यथा : जल मंगल गुनग्राम राम के। दानि सकल धन धर्म धाम के। इत्यादि। यहाँ : ते पदं व्रजंति से परलोक का पालक कहा और त्वदीय भक्तिसंयुता से इस लोक का पालक कहा। यथा : सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन राम भगति के पाये।

दो. बिनती करि मुनि नाइ सिरु, कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजै मति मोरि॥४॥

अर्थ : विनती करके मुनिजी ने सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर बोले कि चरण कमल को हे नाथ! कभी मेरी बुद्धि परित्याग न करे।

व्याख्या : जोरि पाणि अस्तुति करत : से उपक्रम और बिनती करि मुनि सिर : से उपसंहार है। पहिले हाथ जोड़कर स्तुति की थी। अब हाथ जोड़कर वरदान माँगते हैं कि आप सबके हृदय के प्रेरक हैं। मेरी मति को ऐसी प्रेरणा कीजिये कि इन चरण कमलों को कभी न छोड़े। इस समय तो मेरी बुद्धि इन चरणों में लगी है। क्योंकि साक्षात् दर्शन हो रहा है। पर आपके चले जाने पर समय पाकर कहीं मेरी बुद्धि बहिर्मुख न हो जाय। क्योंकि चरणों के छोड़ने पर फिर कहीं ठिकाना नहीं है। यथा : श्रीरघुबीर चरन चिंतन तजि नाहि न ठौर कहूँ। मुनिजी योग जप और तप से शरीर को कस रहे थे। यथा : करहि जोग जप तप तन कसहीं। आज उस परिश्रम के फल की प्राप्ति का अवसर आया है। अतः मुनिजी बुद्धि की प्रेरणा का वरदान माँगकर गायत्री जप के लक्ष्य की ही सिद्धि चाह रहे हैं। गायत्री की उपासना में बुद्धि की प्रेरणा ही माँगी जाती है।

सरकार जिससे बड़ा का नाता मान लेते हैं उसके वरदान माँगने पर एवमस्तु नहीं कहते। अभीष्ट प्रदान कर देते हैं। तत्पश्चात् मुनिजी के कहने पर सीताजी भगवती अनुसूया के पास गयीं।

अनसूया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता ॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई ॥१॥

अर्थ: फिर सुशील और विनीत सीताजी अनसूया के चरणों को पकड़कर उनसे मिलीं। ऋषिपत्नी के मन में बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशीर्वाद देकर निकट बिठलाया।

व्याख्या: न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति चान्यगुणानपि। न हसेत् परदोषांश्च सानसूया प्रकीर्त्यते। जो गुणी के गुण में दोष नहीं लगाता और दूसरे के गुणों की स्तुति करता है दूसरे के दोषों का उपहास नहीं करता उसे अनसूया कहते हैं। अत्रिजी की पत्नी का जैसा नाम था वैसा ही गुण था। ये पतिव्रताओं की शिरोमणि थीं। इनके राम अत्रिजी ही थे। दूसरे राम को ये नहीं जानती थीं। अतः दर्शन के लिए नहीं आयीं। ऋषिपत्नी के पास जगदम्बा सीताजी गयीं। बड़ी विनीत हैं। इसलिए जाकर चरण ग्रहण किया। सुशील हैं: इसलिए मिलीं। स्त्रियों के लिए दण्डवत् प्रणाम की विधि नहीं। प्रणाम करके परिष्वङ्ग देने का ही सदाचार है। यथा: करि प्रनाम भेटी सब सासू।

अनसूयाजी का परिचय देते हुए कवि कहते हैं कि ऋषिजी की पत्नी हैं। आह्लादिनी शक्ति भगवती सीताजी के परिष्वङ्ग से उन्हें बड़ा सुख प्राप्त हुआ। सीताजी ने चरण ग्रहण किया। इसलिए आशीर्वाद दिया: सौभाग्यवती भव। पुत्रवती भव। यही आशीर्वाद स्त्री समाज में आज भी प्रचलित है। सीताजी ने दूर बैठना चाहा तो आदर से उन्हें निकट बिठलाया। मनसा: सुख अधिकाई। वचसा: आसिष देइ और कर्मणा: निकट बैठाई।

दिब्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए ॥
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी। नारि धर्म कछु ब्याज बखानी ॥२॥

अर्थ: दिव्य कपड़े और गहने पहिनाये। जो सदा नये स्वच्छ और सुन्दर बने रहते थे। फिर ऋषिपत्नी कुछ स्त्रीधर्म के व्याज से मधुर और कोमल वाणी से बखानकर कहने लगीं।

व्याख्या: भगवती अनसूया चन्द्र की माता हैं। चन्द्र से ही क्षत्रियों का प्रधान वंश चला है। सूर्यवंश और चन्द्रवंश में कन्या का लेन देन है। इसलिए अनसूयाजी कुलवृद्धा हैं। अतः उनका प्रीतिदान स्वीकार करना पड़ा। सम्भवतः इसी भय से सीताजी फिर किसी ऋषिपत्नी से नहीं मिलीं। अनसूयाजी तापस वेष में जानकीजी को नहीं देख सकीं। अतः दिव्य वसन भूषण पहिनाया। जिसमें वनवास की अवधि भर काम दे। दिव्य बसन भूषण का प्रभाव कहते हैं कि जो कभी पुराना मैला तथा

विकृत न हो। ऋषिजी ने सरकार का पूजन किया। ऋषिपत्नी जानकी जी का पूजन करती हैं। स्त्रियों का पूजन वस्त्रालङ्कार से ही होता है।

ऋषिजी ने पूजनोत्तर श्रीरामचन्द्र से सोहाए वचन कहे थे। अब ऋषिपत्नी पूजनोपरान्त सरस मृदुवाणी बोलीं। नारीधर्म के व्याज से सीताजी की स्तुति की तथा संसार को उपदेश दिया। यथा : कहेउँ कथा संसार हित। पातिव्रत्य पुरःसर ही भगवती का वनवास हुआ था। अतः पातिव्रत्य धर्म वर्णन से सरसता कहा। अर्थतः सरस और शब्दतः मधुर।

मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेवन तेही॥३॥

अर्थ : हे राजकुमारी! सुनो : माता, पिता, भाई सभी हित करनेवाले हैं। परन्तु वे सब एक सीमा तक ही देनेवाले हैं। परन्तु हे जानकी! पति तो असीम देनेवाला है। वह स्त्री अधम है। जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती।

व्याख्या : हितकारियों में माता प्रथम है। पिता उसके बाद है। भाई का तीसरा नम्बर है। ये सब देनेवाले हैं। पर इनके देने की सीमा है। राजकुमारी सम्बोधन का भाव यह है कि महाराज जनक ने इतना दिया फिर भी दायज की सीमा थी। सर्वस्व न दे सके। यही संसार की रीति है। माता पिता देते हैं और कह देते हैं कि बेटी! इतना सब तुम्हारा है। इसलिए मितदानी हैं।

भर्ता यह नहीं कहता। उसका जो कुछ है सब पर स्त्री का अधिकार है। यथा : प्रिया प्रान सुत सर्वस मोरे। परिजन प्रजा सकल बस तोरे। यह बात भर्ता ही कह सकता है। मितं ददाति च पिता मितं भ्राता मितं सुतः। अमितस्य च दातारं भर्तारं कानुसेवयेत्। अतः भर्ता की सेवा न करनेवाली स्त्री अधम है। तुमने तो पति सेवा के लिए राज्य छोड़ा। तुम उत्तम हो।

धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहि चारी॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥४॥

अर्थ : धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री, इन चारों की परीक्षा आपत्ति के समय होती है। बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, दरिद्र, अन्धा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त दीन।

व्याख्या : सम्पत्तिकाल में धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री ये चारों अनुकूल रहते हैं। विपत्तिकाल ही इनकी कसौटी है। अर्थात् तुम्हारी भाँति परीक्षा में कोई उत्तीर्ण नहीं हुआ। यथा : तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेमु परितोषु बिसेषी। पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ। जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी। आपत्तिकाल कहकर ऐसा उदाहरण देती हैं जिनसे सुख मिल ही नहीं सकता।

ये आठ दुःखद होने से अपमान के पात्र हो जाते हैं। १. वृद्ध जो पाँचवीं अवस्था अपक्षय को प्राप्त है। २. रोगवश अर्थात् असाध्य रोग से गृहीत कुष्ठी आदि

हैं। ३. बुद्धिविहीन ४. धनहीन ५. चक्षुरिन्द्रियहीन ६. और बहिरा ७. क्रोधी स्वभाव तथा ८. अति दीना स्त्री की प्रतिष्ठा तथा सुख पति से ही है। उसमें यदि ऐसे दोष हों फिर भी पति अपमान की वस्तु नहीं है।

ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकै धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा ॥५॥

अर्थ : ऐसे पति का भी अपमान करने से स्त्री यमपुर में अनेक प्रकार के दुःख पाती है। मनसा वाचा कर्मणा पति के चरणों में प्रेम करना। स्त्री के लिए बस एक ही धर्म है एक ही व्रत है और एक ही नियम है।

व्याख्या : पति का अपमान नरक में गिरानेवाला है। चाहे पति उपर्युक्त दोषों से युक्त ही क्यों न हो। उपर्युक्त दोषियों में पापी को नहीं गिनाया। पापी जबतक प्रायश्चित्त न कर ले तब तक त्याज्य है। पति के अपमान से यमपुर प्राप्ति और नरक में घोर दण्ड होता है। जो अपमान के पात्र नहीं हैं उनके अपमान से नरक होने में कहना ही क्या है। जिस प्रकार लोकोत्तर सुख प्राप्ति के लिए स्वर्ग है उसी प्रकार लोकोत्तर दुःख के लिए नरक है।

अनेक धर्म है। असंख्यात व्रत है। बहुत से नियम हैं। परन्तु स्त्री के लिए कोई भी नहीं है। उसका पति से पृथक् नियम व्रतादि में अधिकार नहीं है। पतिपद प्रेम होने से ही उसे सम्पूर्ण धर्म, व्रत और नियम का फल मिल जाता है। स्त्री यदि कोई व्रत या नियम का पालन करना चाहे तो पति की आज्ञा से उसके कल्याण के लिए कर सकती है। प्रेम रहते अनादर नहीं होता। अतः अनादर करते ही स्त्रियाँ पतित हो जाती हैं। किसी प्रकार से प्रेम में व्यभिचार न होने पावे। अथवा काम से प्रेम धर्म, वचन से प्रेमव्रत, और मन से प्रेम यही स्त्रियों के लिए नियम है।

जग पतिब्रता चार बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं ॥
उत्तम के अस बस मन माँही। सपनेहु आन पुरुष जग नाँही ॥६॥

अर्थ : संसार में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। वेद पुराण और सब सन्त ऐसा ही कहते हैं। उत्तम के मन में ऐसा भाव बसा रहता है कि सपने में भी जगत् में दूसरा पुरुष नहीं है।

व्याख्या : पतिव्रता के चार प्रकार के होने में सबका ऐकमत्य है। अर्थात् यह शिष्टानुगृहीत सिद्धान्त है। स्त्री पुरुष में भोक्तृ भोग्य दृष्टि स्वभाविकी है। स्वभाविकी प्रवृत्ति के निरोध में ही शास्त्र की उपयोगिता है। वह निरोध स्त्रियों में चार प्रकार से सम्भव है। स्वभाविकी प्रवृत्ति का सर्वात्मना निरोध हठात् नहीं हो सकता। अतः उस दृष्टि को सब पर से हटाकर एक में केन्द्रित करना शास्त्रीया प्रवृत्ति है। अतः स्त्री का अपनी भोक्तृ दृष्टि को पाणिगृहीता के ऊपर ही केन्द्रित करना पातिव्रत्य है। उसी का चार प्रकार कहा गया हैं : १. भोक्तृभोग्य दृष्टि कहीं

न होकर केवल पति में ही होना। २. भोक्तृभोग्य दृष्टि को सब ओर से खींचकर केवल पति में केन्द्रित करना। ३. भोक्तृभोग्य दृष्टि केन्द्रित नहीं हो सकी। पर धर्मादि के विचार से इन्द्रियदमन करना। ४. दूसरों के भय आदि से धर्म का निभ जाना।

इनमें प्रथम श्रेणी की स्त्रियाँ उत्तम हैं जो पुरुषरूप से अपने पति को ही जानती हैं। दूसरे के पुंस्त्व की भावना ही नहीं है। यद्यपि स्वप्न में अपना वश नहीं है। पर बिना वासना के स्वप्न भी नहीं होता। अतः उन्हें स्वप्न में भी पर पुरुष में पुंस्त्व की भावना नहीं होती।

मध्यम परपति देखै कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥७॥

अर्थ : मध्यम पराये पति को ऐसे देखती है जैसे वह अपना भाई पिता या पुत्र हो। जो धर्म का विचारकर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती हैं वह निकृष्ट स्त्री है। ऐसा वेद का मत है।

व्याख्या : वह स्त्री मध्यम श्रेणी की है जिसे दूसरों में भी पुंस्त्व की भावना है पर उन्हें भोग्यदृष्टि से नहीं देखती। समानवयस्क पर भाई की दृष्टि, वयोवृद्ध पर पिता की दृष्टि, अल्पवयस्क पर पुत्र की दृष्टि रखती है। यहाँ तक मानसिक अपवित्रता को स्थान नहीं है।

परन्तु जिस स्त्री को अन्य पुरुष के प्रति भोग्यदृष्टि तो हुई पर वह धर्म का विचार करके कुल की मर्यादा पर ध्यान करके व्यभिचार से बच जाती है। उसकी शारीरिक शुद्धता अक्षुण्ण है। मानसिक अशुद्धि भी अधिक नहीं हुई। अतः वह पतिव्रताओं में निकृष्ट है।

बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥८॥

अर्थ : जो अवसर न मिलने से या भय से बच जाती है उसे संसार में अधम पतिव्रता समझना। पति को ठगकर जो परपति से रति करती है वह सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ती है।

व्याख्या : जिसे कोई विचार नहीं है। केवल भय से या अवसर न मिलने से पतिव्रता बनी हुई है वह भी शारीरिक शुद्धि के कारण से पतिव्रता ही है। पर उनमें अधम है। क्योंकि उसकी रक्षा में उसका विचार करना नहीं है। दूसरों का भय कारण है। अतः पातिव्रत्य की रक्षा के लिए स्त्रियों पर रोक लगाये गये हैं। जिसमें उनका परलोक और यह लोक बना रहे। स्वार्थान्धता इसमें कारण नहीं हैं। स्थानं नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः। तेन नारद नारीणां सतीत्व-मुपजायते। स्थान नहीं है। फुरसत नहीं कोई प्रार्थना करनेवाला नहीं है। तब जाकर हे नारद स्त्रियों में सतीत्व उत्पन्न होता है। पातिव्रत्य उत्पन्न होने पर भी कुमारावस्था में पिता. यौवन में पति और वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करे। स्त्री में स्वतन्त्रता

की योग्यता प्रकृति के नियम से नहीं है। स्वतन्त्रता के लिए प्रोत्साहन देनेवाले ही उनके धर्मनाश के कारण हैं। वे भला चाहते हुए भी अज्ञानवश उनका महा अकल्याण करते हैं।

यहाँ तक स्वकीया के विषय में कहा। अब परकीया के विषय में कहते हैं। जो पतिव्रता का आडम्बर बनाये हुए अपने पति को धोखा देकर दूसरे से प्रेम करती है उसने यहाँ तो प्रतिष्ठा बना रक्खी है पर परलोक में धोखा नहीं चलता। वहाँ उसे सौ कल्प तक घोर नरक भोगना पड़ेगा। एक सहस्र चतुर्युगों का एक कल्प होता है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाँड़ि छल गहई॥९॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

अर्थ : क्षण भर के सुख के लिए जो सौ करोड़ जन्म के दुःख को नहीं समझती उसके ऐसी खोटी कौन है। जो स्त्री छल छोड़कर पातिव्रत्य धर्म ग्रहण करती है वह बिना परिश्रम के परमगति को प्राप्त होती है। जो पति के प्रतिकूल है वह जहाँ जाकर जन्म लेती है वहीं युवावस्था के प्राप्त होने पर विधवा हो जाती है।

व्याख्या : विषयसुख क्षणभङ्गुर है। इसके लिए उसने अपना सौ कोटि जन्म बिगाड़ा। अल्प के लिए बड़ी भारी हानि को कुछ न गिना। इसलिए उसे अत्यन्त खोटी बतलाते हैं। खोटे की परिभाषा ही यही है। जो थोड़े से लाभ के लिए अपना धर्म छोड़े। विषयेन्द्रियसंयोगात् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्। विषय और इन्द्रिय के संयोग से जो पहिले अमृत सा जान पड़े और परिणाम में विष के समान हो उसे राजस सुख कहते हैं। पहिले तो रतिसुख ही राजस है। सो भी धर्मविरुद्ध होने से घोर तामस हो गया। तामस का फल ही अधोगति है। उसे असंख्य जन्म तक श्व-सूकरादि योनियों में दुःख भोगना पड़ता है।

पुरुषगण यज्ञ में दान से तथा ऐसे ही अन्य कष्टसाध्य उपायों से क्रमशः प्राजापत्य आदि लोकों को प्राप्त होते हैं। किन्तु स्त्रियाँ तन मन वचन से पति की सेवा करने से ही उनकी हितकारिणी होकर पति के समान शुभ लोकों को अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो कि पुरुषों को अत्यन्त परिश्रम से मिलते हैं। इसलिए स्त्रियाँ धन्य हैं।

ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ सतीत्व भङ्ग नहीं हुआ पर पति से विरोध हो गया। उस प्रतिकूलाचरण का दण्ड कहते हैं कि ऐसी स्त्री का जहाँ जन्म होता है वहाँ भी पतिसुख उससे छीन लिया जाता है। वह तरुणावस्था में विधवा हो जाती है। तरुणावस्था में विधवा होना परमेश्वरीय दण्ड है। उसके भोग लेने में ही कल्याण है। इसीलिए शास्त्रों में विधवा विवाह का विधान नहीं है।

सो. सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रान प्रिय राम कहेउ कथा संसार हित ॥५॥

अर्थ : स्त्री स्वभाव से ही अपवित्र होती है। उन्हें शुभ गति पतिसेवा से होती है। आज भी तुलसी हरि को प्रिय हैं और चारों वेद उनके यश का गान करते हैं।

व्याख्या : स्त्री के शरीर की बनावट ही ऐसी है कि वे शुद्ध नहीं रह सकतीं। वे महीने में तीन दिन क्रम से चाण्डाली, ब्रह्मघातिनी और रजकी की भाँति अशुद्ध रहती हैं। पुरुष के शुक्र को नौ मास गर्भ के रूप में धारण करती हैं। इसलिए सहज अपावनी कहा। फिर भी पति से इनकी शुभ गति होती है। अन्य उपाय इनकी सद्गति का है नहीं। पति के पाणिग्रहण से इनके शरीर का पति के शरीर से अभेद हो जाता है। वे उसकी अर्धाङ्गिनी हो जाती हैं। अतः उपर्युक्त दोष पति सेवा करनेवाली को नहीं लगता। इसलिए हिन्दुओं में लड़के भले ही बिना ब्याहे रह जायँ पर लड़की बिना ब्याही नहीं रहने पातीं। इतना ही नहीं कि वे दोष से विनिर्मुक्त हो जाती हैं। उनकी शुभ गति होती है। उसके यश को चारों वेद गाते हैं। अर्थात् उसकी शाश्वती गति होती है। क्योंकि पतिव्रता स्त्री भगवान् को प्रिय होती है। यथा : परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी। छल करि टार्यौ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह। जब तेहि जान्यौ मर्म सब साप कोप करि दीन्ह। तासु श्राप प्रभु कीन्ह प्रमाना। आज भी वही असुराधिप नारी तुलसी रूप से भगवान् के गले की हार बनी रहती है। यथा : रामहि प्रिय पावन तुलसी सी।

सीता नाम स्मरण से पातिव्रत्य का निर्वाह होता है। अतः पहिले की भाँति : सुनु राजकुमारी न कहकर नाम लेकर : सुनु सीता कहती हैं। तुम्हारा तो नाम लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत्य धर्म का निर्वाह करेंगी। तुम्हारे लिए क्या कहना है। तुम पतिप्राणा हो। गौरी का नाम लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत्यरूपी खड्गधारा पर चढ़ती हैं और तुम्हारा नाम लेकर उनका निर्वाह होता है। गुणवान से कहने से सम्वाद का संसार में प्रसार हो जाता है और उससे संसार का हित हो जाता है। इसलिए तुम से कहा। तुम्हें उपदेश देने के लिए नहीं।

सुनि जानकी परम सुख पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा ॥
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना ॥१॥

अर्थ : सुनकर जानकीजी को परम सुख हुआ। आदर के साथ उनके चरणों में सिर नवाया। तब मुनिजी से कृपानिधान रामजी ने कहा कि आज्ञा हो तो दूसरे वन में जाऊँ।

व्याख्या : जिस धर्म पर परम प्रेम था उसीका निरूपण सरस मृदुवाणी द्वारा सुनने से बड़ा भारी सुख हुआ। अथवा परम सुख पावा कहकर शिष्य की कृतकृत्यता दिखलाया। उपदेश की समाप्ति पर प्रणाम करना चाहिए। यथा : तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। अथवा विदा होने के लिए प्रणाम करती हैं।

जब देखा कि सम्वाद समाप्त हो गया जानकीजी प्रणाम कर चुकीं तब सरकार ने विदाई के लिए आज्ञा माँगी। ऋषि की आज्ञा लेकर ही नया काम करते हैं। वाल्मीकिजी की आज्ञा लेकर ही चित्रकूट में बसे थे। आंत्रिजी की आज्ञा लेकर तब दूसरे वन में जायँगे। कृपानिधान हैं। अत्रि आदि का श्रम सफल कर चुके। अब अन्य ऋषियों के श्रम को सफल करने के लिए जाना चाहते हैं।

संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥
धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ज्ञानी ॥२॥

अर्थ : सदा मुझपर कृपा करते रहियेगा। मुझे सेवक जानकर स्नेह न छोड़ियेगा। धर्मधुरन्धर प्रभु की वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेम पूर्वक बोले।

व्याख्या : प्रभु अपना कुशल ऋषियों की दया पर निर्भर मानते हैं। इसलिए सदा कृपा बनाये रखने के लिए प्रार्थना करते हैं। यथा : हमरे कुसल तुम्हारिहिं दाया। मुनिजी सेवक सेव्य भाव के उपासक हैं और प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं। अतः ये भी सेवक सेव्य भाव रखते हैं। अतः कह रहे हैं कि सेवक जानकर प्रेम बनाये रखियेगा। यथा : सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे। ब्राह्मणत्व की रक्षा से ही वैदिक धर्म की रक्षा होती है। सो ब्राह्मणत्व का इतना बड़ा आदर है कि प्रभु अपने को अत्रि के ब्राह्मण होने के नाते सेवक कह रहे हैं। अतः धर्मधुरन्धर कहा। मुनिजी ज्ञानी हैं। पर भक्ति को नहीं छोड़ते। अतः विनीत वाणी सुनकर भक्ति के सहित बोले। अत्मारामाश्च मुनयः निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थं-भूतगुणो हरिः। भागवते।

जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथ बादी ॥
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे। दीन बंधु मृदु बचन उचारे ॥३॥

अर्थ : जिसकी कृपा ब्रह्म शिव सनकादिक सभी परमार्थवादी चाहा करते हैं। आप वे ही अकाम प्रिय दीनबन्धु राम हैं। मृदु वचन बोल रहे हैं।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ब्रह्मविद्या के सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। शिवजी साक्षात् दक्षिणा मूर्ति हैं। यथा : तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये। सनकादिक निवृत्ति मार्ग के उपदेष्टा हैं। ये सभी परमार्थवादी हैं। ये लोग आपकी कृपा चाहते हैं। क्योंकि आप स्वयं परमार्थ रूप हैं। यथा : राम ब्रह्म परमारथ रूपा।

जिन्हें और वस्तुएँ प्यारी हैं, उन्हें आप प्यारे नहीं हो सकते। अतः आप अकाम पियारे हैं परन्तु दीनबन्धु हैं और मैं अकाम न होने पर भी दीन हूँ। इसलिए दया करके ऐसा मृदु वचन कह रहे हैं। यह आपका अप्रतिम शील है।

अब जानी मैं श्री चतुराई । भजी तुमहि सब देव बिहाई ॥
जेहि समान अतिसय नहिं कोई । ता कर सील कस न अस होई ॥४॥

अर्थ : अब मैंने लक्ष्मीजी की चतुराई समझी । जिन्होंने सब देवताओं को छोड़कर आपको ही भजा । जिसके न तो कोई समान है । न बढ़कर है । उसका शील ऐसा क्यों न हो ?

व्याख्या : आपका शील देखकर मुझे लक्ष्मीजी की चतुरता का पता चला कि उन्होंने सीधे सीधे शील को देखा । ऐसा शील किसी में न पाया । अतः सबको छोड़कर आपका ही भजन किया । त्रैलोक्य की प्रभुता शीलवान् का ही भजन करती हैं : महाभारत में शीलनिरूपणाध्याय द्रष्टव्य है ।

शील ही उत्कर्ष का कारण है । तुम्हारे समान कोई नहीं है तो बढ़कर कोई कैसे हो सकता है । अतः तुम्हीं अपने एक तुच्छ सेवक को इतनी बड़ाई देने में समर्थ हो । नत्वत्समस्त्वभ्यधिकः कुतोऽन्यः । गीतायाम् । अतः आप में ही ऐसे शील का होना सम्भव है ।

केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी । कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी ॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा । लोचन जल बह पुलक सरीरा ॥५॥

अर्थ : हे स्वामी ! मैं किस प्रकार कहूँ कि चले जाइये । हे नाथ ! आप अन्तर्यामी हैं । आप ही बतलाइये ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभु को देखने लगे । उनके नेत्रों से जल बह चला और शरीर पुलकित हो उठा ।

व्याख्या : आयसु होइ जाउँ बन आना : के उत्तर में मुनिजी कहते हैं : तुमसे कछु न छिपी करुनानिधि तुम हौ अंतरजामी । विनय । मेरा मन आपको छोड़ने को नहीं चाहता और आप स्वामी होकर आज्ञा माँग रहे हैं । अतः नहीं भी नहीं कर सकते । अब आप ही बताइये कि मैं आपको जाने के लिए कैसे कहूँ ?

यद्यपि ज्ञानी मुनि धैर्यवाले हैं । फिर भी प्रेम के वश हो गये । आने पर भी : प्रेम बारि दोउ जन अन्हवाये । और जाते समय भी : लोचन जल बह पुलक सरीरा । ऐसी दशा हो गयी ।

छं. तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए ।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए ।
जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई ।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिनु दास तुलसी गावई ॥

अर्थ : मुनिजी अत्यन्त प्रेम से पूर्ण हैं । शरीर में पुलक है । मुख कमल में आँखें लगी हुई हैं । विचारते हैं कि मैंने क्या जप तप किये थे कि मन ज्ञान और इन्द्रियों से परे प्रभु के दर्शन पाये । जप योग और धर्म समूह से मनुष्य को अनुपम

भक्ति की प्राप्ति होती है। रघुवर के पुनीत चरित को रात दिन तुलसी दास गान करता है।

व्याख्या : ज्ञानी मुनि जब अत्यन्त प्रेम में मग्न हो जाते हैं तो वह दशा कहते नहीं बनती। यथा : निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी। उसी दशा का यहाँ यथासाध्य वर्णन है। मुनिजी के शरीर में पुलकावलि छायी हुई है। एकटक होकर मुख की शोभा देख रहे हैं। अत्यन्त सुख का अनुभव हो रहा है। अतः कहते हैं कि जो जप तप मैंने किये वह क्या था ? इस सुख के आगे कुछ न था। जप योग और धर्म का बहुत अनुष्ठान करने से तब अनुपम भक्ति की प्राप्ति होती है। जप वचसा, योग मनसा और धर्म कर्मणा अनुष्ठित होता है। मनसा वाचा कर्मणा साधन करने से भक्ति मिलती है। मुझसे तो कुछ न बन पड़ा।

दासों में तुलसी बड़ा निकम्मा है। यथा : साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास। उससे जप योग धर्म समूह कुछ नहीं बन पड़ता और दृढ़ भक्ति चाहता है। इसलिए रात दिन रघुवीर का यशगान किया करता है। रावनारि जस पावन गावहिं सुनहि जे लोग। राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग।

दो. कलिमल समन दमन मन, राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहि जे तिन्ह पर, रामु रहहिं अनुकूल ॥

अर्थ : कलियुग के मल का नाश करनेवाला मन का दमन करनेवाला रामजी का सुयश सुख का मूल है। आदर के साथ श्रवण करनेवाले पर रामजी अनुकूल हो जाते हैं।

व्याख्या : मन के दमन से ही सुख होता है। कलिमल से दूषित मन का निरोध होता नहीं। अतः अयोध्याकाण्डान्तर्गत रामचरित को : कलि मल समन दमन मन कहा। कलि का अर्घ और अवगुण ही कलि मल है। दूसरी कोई बात न सोचे। एकाग्र होकर कथा श्रवण करे। यही सादर श्रवण है। यथा : एहि बिधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनेऊँ। कथा कहने की अपेक्षा श्रवण का माहात्म्य अधिक बतला रहे हैं। भरत चरित सुनने से भी सीय रामपद प्रेम की प्राप्ति होती है और राम चरित्र सुनने से श्रीरामजी की अनुकूलता होती है। यथा : ताकहँ प्रभु कछु अगम नहिं जापर तुम अनुकूल। प्रभु प्रताप बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल।

अयोध्याकाण्ड में : राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि वासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। यहाँ तक रामयश है। इसके बाद सुमन्त का लौटना तथा चक्रवर्तीजी का देहान्त कहकर भरत चरित्र आरम्भ कर दिया और भरत चरित्र की समाप्ति करते हुए काण्ड की समाप्ति कर दी। इति न देकर कथन की अपूर्णता दिखलाया। पर वस्तुतः अयोध्याकाण्ड की समाप्ति चित्रकूट की कथा की समाप्ति के साथ है। अतः अयोध्याकाण्ड की सन्धि यहाँ तक आयी है। वाल्मीकि

तथा अध्यात्म में भी अयोध्याकाण्ड की समाप्ति चित्रकूट की कथा समाप्त होने पर ही माना है।

सो. कठिन काल मल कोस, धर्मु न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस, रामहि भजहिं ते चतुर नर ॥६॥

अर्थ : यह कठिन काल कलिमल का निधान है। इसमें ज्ञान योग जप सभी असम्भव हैं। इसलिए सब भरोसा छोड़कर जो राम को भजते हैं वे ही मनुष्य चतुर हैं।

व्याख्या : अघ अवगुण की खानि होने से कलियुग को मलकोष तथा कठिन कहा। यथा : सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी। अतः धर्म न ज्ञान न योग जप : यह सब कुछ नहीं हो सकता। ये सब निर्विकार चित्त से ही साध्य हैं। अतः इनका भरोसा नहीं। अनुष्ठान का निषेध नहीं है। पर भरोसा इनका नहीं है। भरोसा भजन का है। देशकाल का विचार करके कार्य करनेवाला चतुर है। अतः चतुरता इसी में है कि रामजी का भजन करे।

## २७. विराधवध प्रसङ्ग

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा ॥
आगे रामु अनुज पुनि पाछे। मुनिबर बेष बने अति काछे ॥१॥

अर्थ : मुनिजी के चरणों में सिर नवाकर देवता मनुष्य और मुनियों के स्वामी वन को चले। रामजी आगे हैं। छोटे भाई पीछे हैं। श्रेष्ठ मुनि का वेष बनाये अत्यन्त : कसे कसाये सुशोभित हैं।

व्याख्या : यद्यपि मुनिजी ने प्रेमवश स्पष्ट आज्ञा नहीं दी। फिर भी : केहि बिधि कहौं जाहु बन स्वामी। कहने से आज्ञा हो ही गयी। अतः प्रणाम करके चले। अर्थात् इस वन से दूसरे वन में चले। प्राकृत सीमा के अनुसार वनों का भी विभाग होता है। उनके नाम भी होते हैं। सुर नर मुनि की रक्षा के लिए अधिक सङ्कट सहन करेंगे। इसलिए सुर नर मुनि ईसा : कहा। अथवा यद्यपि सुर नर मुनि ईश हैं तथापि मर्यादा पालन के निमित्त मुनि चरण कमल को प्रणाम करके चले।

चित्रकूट जाने के समय का वर्णन है : आगे राम लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें। यहाँ लखन के स्थान में अनुज शब्द का प्रयोग हुआ। परन्तु बात वही है। उसी वेष और उसी क्रम से चले। अतः पुनि कहा। लखन प्यार से पुकारने का नाम था। सो उसका प्रयोग अयोध्याकाण्ड तक हुआ। अब अवध से दूर जा रहे हैं और ऐश्वर्यप्रधान लीला आरम्भ हो रही है। अतः लछिमन सीता आदि नामों का प्रयोग होगा। यहाँ भी लखन न कहकर अनुज शब्द का प्रयोग किया। यहाँ से घोर वन आरम्भ हुआ। विकट परिस्थिति के सामना की भी सम्भावना है। अतः सब प्रकार से तैयार होकर चल रहे हैं।

उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा ॥२॥

अर्थ : दोनों के बीच में श्री जानकी कैसी शोभित हैं। जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया हो। नदी पर्वत और दुर्गम घाटियाँ स्वामी को पहिचानकर सुन्दर रास्ता दे देते हैं।

व्याख्या : श्री शब्द के प्रयोग से ही दिखलाया कि इस समय भगवती सीता तापस वेष में नहीं हैं। दिव्य वसन भूषन पहिरे हुए हैं। जो ऋषिवधू भगवती अनसूया ने पहिना दिया था।

ब्रह्म का अनुसरण माया करती है और जीव माया का अनुसरण करता है। यथा : माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुनखानी। ब्रह्म माया को नहीं देखता माया ब्रह्म को देखा करती है। यथा : सोइ प्रभु भ्रूबिलास खग राजा। नाच नटी इव सहित समाजा। अथवा ब्रह्म जीव में भेद नहीं है। माया बीच में आकर भेद बनाये हुए हैं। यथा : मुधा भेद जद्यपि कृत माया। इसलिए रामजी की उपमा ब्रह्म से सीताजी की माया से और लक्ष्मणजी की जीव से दिया।

अत्रिजी के आश्रम से विराधवन पहुँचने में सरिता सर गिरि अवघट घाट सभी मिलते हैं। उनके अभिमानी देवता प्रभु को पहिचानकर सुन्दर मार्ग देते हैं। यथा : बनदेवी बन देव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा। ब्रह्म माया और जीव की भाँति शोभा है। अतः पहिचानने में कठिनता नहीं है।

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ॥
मिला असुर विराध मग जाता। आवत ही रघुबीर निपाता ॥३॥

अर्थ : जहाँ जहाँ रघुराज देव जाते हैं वहाँ वहाँ आकाश से मेघ छाया करते जाते है। रास्ते में जाते हुए विराध राक्षस मिला। सामने आते ही श्रीरघुवीर ने उसे मार गिराया।

व्याख्या : यहाँ देव शब्द के प्रयोग से ऐश्वर्य द्योतन किया। यहाँ अधिदैव चरित्र का प्राधान्य है। जहाँ प्रभु जाते हैं वहीं मेघ छत्र की भाँति छाया करते हैं। आकाश मण्डल में घिरे नहीं हैं। द्यावा पृथ्वी सब सेवा में तत्पर हैं।

असुर विराध कहने से आसुरी सम्पत्ति द्योतन किया। दम्भोदर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च। अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्। इससे विराध में सब दुर्गुण दिखाये। ये सब लोग विश्राम ले रहे थे और विराध रास्ते से जा रहा था। आवत ही रघुबीर निपाता : विराध का आततायी होना दिखलाया : आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्। रघुवीर निपाता पद से विराध का पराक्रमी होना द्योतित किया।

तुरतहि रुचिर रूप तेहि आवा। देखि दुखी निज धाम पठावा ।।
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा ।।४।।

## २८. शरभंग देह त्याग प्रसंग

अर्थ : उसने तुरन्त ही सुन्दर रूप प्राप्त किया। दुःखी देखकर उसे अपने धाम में भेज दिया। फिर वे सुन्दर भाई और जानकी के साथ शरभङ्ग मुनिजी के पास आये।

व्याख्या : प्रभु के बाणों के प्रहार से विराध के अङ्ग प्रत्यङ्ग जर्जर हो गये। वर प्रसाद से उसके प्राण नहीं निकलते थे। अतः गड्ढा खोदकर उसी में उसे तोप दिया। यथा : खनि गर्त गोपित विराधा और उसे दुःखी देखकर अपने धाम में भेज दिया। धाम जाने योग्य सुन्दर रूप उसे मिल गया जिसे धारणकर वह राम धाम गया।

वहाँ से दो कोस पर शरभंग मुनि का आश्रम था। उनकी तीनों मूर्ति की उपासना थी। अतः कहते हैं : सुंदर अनुज जानकी संगा। वरदान में भी मुनिजी ने तीनों मूर्तियों को अपने हृदय में वास माँगेंगे। यथा : सीता अनुज सहित प्रभु नील जलद तनु स्याम। मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम।

दो. देखि राम मुख पंकज, मुनिवर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति, धन्य जनम सरभंग ।।७।।

अर्थ : श्रीरामजी के मुख कमल को देखकर श्रेष्ठ मुनिजी की आँखें भौंरा होकर आदर के साथ पान कर रही हैं। शरभंग का जन्म धन्य है।

व्याख्या : मुनिजी की आँखें भृङ्ग होकर रूप मकरन्द का पान कर रही हैं। यथा : पियत नयन पुट रूप पियूषा। मन तो चोरी चल गया। इसलिए उसका उल्लेख नहीं करते। यथा : निजपन राख्यौ जन मन चोरा। इसीलिए प्रणाम आशीर्वाद नहीं कहते। शरभङ्गजी का जन्म अति धन्य कहा। क्योंकि खूब ठगे गये। यहाँ तो ठगे जाने का ही माहात्म्य है। सरकार के दर्शन पर भी जिसका मन चोरी न जाय सावधान रहे उसे श्री गोस्वामिपाद धिक्कार देते हैं। यथा : ठगिसी रही जे न ठगे धिक ते। कविता। एक बात और है। चोर से प्रणाम आशीर्वाद का शिष्टाचार नहीं है। रूप सुधा का पान करनेवाला धन्य और अति पान करनेवाला अति धन्य हैं। सो शरभङ्गजी अतिधन्यों में हैं। देखा तो तीनों व्यक्तियों को पर ध्यान तो राममुख पंकज मकरन्द का ही कर रहे हैं।

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राजमराला ।।
जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा ।।१।।

अर्थ : मुनि ने कहा कि हे रघुवीर! हे शङ्कर के मानस के राजहंस! सुनो। मैं ब्रह्मलोक को जा रहा था। कान से सुन पाया कि वन में रामजी आवेंगे।

व्याख्या : अभी विराध वध किये चले आ रहे हैं। इसलिए रघुवीर कहा। यथा : आवत ही रघुबीर निपाता। कृपा करके दर्शन दिया। इसलिए कृपाल कह रहे हैं। अपने मानस में बसाना है। इसलिए : संकर मानस राज मराल कहते हैं। राज मराल से सौन्दर्य तथा गाम्भीर्य का आधिक्य द्योतन किया। मुनिजी ने प्रभु को बोलने न दिया। आप ही बोलते चले गये। बड़ी जल्दी है। प्रभु खड़े हैं।

इन्द्र भगवान् लेने आये थे ब्रह्मलोक ले जाने के लिए। पर प्रभु के दर्शन के सामने ब्रह्मलोक क्या है ? इसलिए नहीं गये। चलने की तैयारी कर चुके थे। प्रभु के आने का समाचार पाकर रुके। अतः पूजा सत्कार कुछ न कर सके। कांक्षामृत्यु हैं : जब चाहें तब मरें। इनके लिए मरना कुछ नहीं है। केवल आने जाने की बात है।

चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि[1] जुड़ानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥२॥

अर्थ : दिन रात बराबर आपकी राह देख रहा था। अब सरकार को देखकर छाती ठण्ढी हुई। हे नाथ ! मैं सब साधनों से हीन हूँ। मुझे दीन सेवक जानकर आपने कृपा की।

व्याख्या : घोर वन में यही एक मार्ग है। कहीं आप रात को इधर से निकल न जायँ इसलिए रात दिन बराबर रास्ता देखता रहा। सोया नहीं। देखे बिनु रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाय। सो अब जलन गयी। छाती ठण्ढी हुई।

अपने को सकल साधन से हीन मानना कार्पण्य है। भक्त के लिए यह भाव आवश्यक है। प्रभु का दर्शन क्रियासाध्य नहीं कृपासाध्य है। सरकार को दीन प्रिय हैं। अतः दीन सेवक जानकर आपने दर्शन दिया।

सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥३॥

अर्थ : हे देव ! यह मेरे ऊपर कुछ भी एहसान नहीं है। आप जन के मन के चोर हैं। अपने प्रण की रक्षा आपने की है। जब से शरीर त्यागकर आपसे मिल जाता हूँ तब तक दीन के हित के लिए यहीं ठहरे रहिये।

व्याख्या : तस्कराणां पतये नमः। चोर तो धन चुराते हैं। आप भक्तों का मन चुराते हैं। मेरा मन चुरा लिया। मैं दीन हो रहा हूँ। क्षण भर आपके बिना नहीं रह सकता। कहीं मन लेकर चले न जाना। इसलिए तब तक ठहरिये। अब आपसे मिलने में स्थूल शरीर का ही व्यवधान है। उसे छोड़कर आपसे मिलना चाहता हूँ। सदा आपके पास बना रहूँ अर्थात् सामीप्य मुक्ति चाहते हैं।

---

१. यहाँ प्रहर्षण अलङ्कार है।

जोगु जग्य जप तप जत कीन्हा । प्रभु कहुँ देइ भगति बर लीन्हा ।
येहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा । बैठे हृदय छाड़ि सब संगा ॥४॥

अर्थ : योग यज्ञ जप और तप जो कुछ मुनिजी ने किया था वह सब प्रभु को समर्पण करके भक्ति वर ले लिया । इस प्रकार से चिता बनाकर शरभङ्ग मुनि सब आसक्तियों को छोड़कर उस पर बैठ गये ।

व्याख्या : सभी शुभ कर्मों को रामजी को अर्पण कर दिया । यथा : यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत् । यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् । और उसके बदले में भक्ति वरदान माँग लिया । मुनिजी बड़े चतुर हैं । इस भाँति अध्रुव को देकर ध्रुवपद को प्राप्त किया । क्योंकि : तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिराग ज्ञान निपुनाई । नाना कर्म धर्म व्रत दाना । संजम जम जप तप मख नाना । भूतदया द्विज गुरु सेवकाई । बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई । जहँ लगि साधन बेद बखानी । सबका फल हरि भगति भवानी ।

एहि विधि : कहने का भाव यह है कि सब कर्मों को ब्रह्मार्पण करके भक्तिवर ले करके और इहलोक परलोक की सब वासना छोड़ करके योगाग्नि से शरीर त्याग करेंगे । अतः स्वयं चिता रचकर उस पर बैठे ।

दो. सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु स्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुन रूप श्रीराम ॥८॥

अर्थ : नीले बादल के समान श्याम शरीरवाले श्रीरामजी सगुण रूप से हे प्रभु ! सीता और लक्ष्मण के सहित निरन्तर मेरे हृदय में वास कीजिये ।

व्याख्या : सीता अनुज सहित अपने हृदय में बसाते हैं । अपने हृदय को प्रभु के निवास के लिए भवन बना रहे हैं । अतः भवनाकार यह गुणग्राम : स्तुति दसवीं मघा नक्षत्र है । इसमें पाँच तारे चमकते हैं । पाँच कार्य हुए हैं । वे ही पाँच तारे हैं : १. कहने से सुना : वन ऐहैं रामा २. प्रभु को देखकर छाती शीतल हुई ३. शरीर छोड़कर प्रभु से मिलना चाहा ४. भक्ति वर लिया ५. सीता अनुज समेत प्रभु को हृदय में बसाकर देह त्याग किया । इसकी फल स्तुति है : सचिव भूपति बिचार के ।

इसी नील जलद तनु श्याम ने मन चुराया था । सो चोर को स्त्री भाई सहित हृदय में बन्द कर लिया । कभी बाहर न जाने देंगे । अतः निरन्तर कहते हैं । यद्यपि निर्गुण सगुण रूप में अन्तर नहीं । पर चोरी सगुण रूप ने की है । अतः वे ही कैद भी रहें । भाव यह कि प्रभु निर्गुण रूप से तो सबके हृदय में बसते हैं पर इससे दुःख तो नहीं दूर होता । यथा : अस प्रभु हृदय अछत अविकारी । सकल जीव जग दीन दुःखारी । दुःख दूर तो सगुण रूप के बसने से होता है । इसलिए सगुण रूप से बसाते हैं । सीता लक्ष्मण के साथ ही प्रभु का मुख्य त्रिकोण रूप बनता है । अतः दोनों के साथ हृदय में बसाने का वरदान माँगा ।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । राम कृपा बैकुंठ सिधारा ॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ । प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर शरभङ्गजी ने योगाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और रामजी की कृपा से वैकुण्ठ चले गये। पहिले भेदभक्ति का वर माँग रक्खा था। इसलिए मुनिजी भगवान् में लीन नहीं हुए।

व्याख्या : योगाग्नि से शरीर त्यागने की क्रिया समान ही थी। इसलिए सतीजी और शरभङ्गजी के देहत्याग प्रकरण में दोनों स्थान में एक ही पद का प्रयोग किया। अस कहि जोग अगिनि तन जारा। तब लगि रहौं दीन हित लागी। जब लगि तुमहि मिलौं तनु त्यागी : कहकर सरकार को खड़ा कराये हुए हैं। अतः वही जल्दी है। एवमस्तु सुनने की भी प्रतीक्षा नहीं की। कृपा का बड़ा भरोसा है। कहा भी है : सुनु रघुबीर कृपाला। कीन्हीं कृपा जानि जन दीना। अतः रामकृपा वैकुण्ठ सरकार का रूप ही है। उसकी लोक में गणना नहीं है। यथा : कहु मतिमंद लोक वैकुंठा।

योगाग्नि से शरीर छोड़नेवाले को हरिपद लीन होना चाहिए। यथा : तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ तहि फिरे। परन्तु मुनिजी लीन नहीं हुए। इसका कारण देते हैं कि अभेद भक्ति से जीव लीन होता है। भेंदभक्ति से नहीं। यथा : ताते उमा मोक्ष नहिं पायो। दसरथ भेदभक्ति मन लायो। सती के लीन न होने में भी ऐसा ही कारण हुआ। यथा : सती भरत हरिसन वर माँगा। जन्म जन्म सिव पद अनुरागा।

रिषि निकाय मुनिबर गति देखी। सुखी भए निज हृदय बिसेखी ॥
अस्तुति करहि सकल मुनि बृंदा। जयति प्रनत हित करुना कंदा ॥२॥

अर्थ : ऋषि समूह मुनिश्रेष्ठ की श्रेष्ठ गति देखकर अपने मन में विशेष सुखी हुए। सब मुनि लोग स्तुति कर रहे हैं कि प्रणाम करनेवाले हितकारी करुणा के मेघ की जय हो।

व्याख्या : ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं। उन लोगों ने मुनिवर का वैकुण्ठ पधारना देखा तो अपने मन में बड़े हर्षित हुए। यह ऋषियों की मुदिता है कि पुण्यवान् की उत्तम गति से उन्हें प्रसन्नता हुई ईर्ष्या नहीं हुई : विराध वध का समाचार पाने से। शरभङ्ग के आश्रम आते आते ऋषियों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। उन्हें प्रभु से अपना कष्ट निवेदन करना है। प्रभु को देखकर सुखी हुए। मुनिवर की गति देखकर विशेष सुखी हुए। अतः प्रणत हित और करुणाकन्द की जय ऐसा कहकर स्तुति करते हैं। प्रणतहित कहकर अपनी शरणागति दिखलायी और करुणाकन्द कहकर सभी ऋषियों पर करुणादृष्टि की वृष्टि की आशा दिखलायी।

पुनि रघुनाथ चले बन आगें। मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागें ॥
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूँछी मुनिन्ह लागि अति दाया ॥३॥

अर्थ : फिर रघुनाथजी आगे वन में चले। श्रेष्ठ मुनि लोगों का बड़ा समूह साथ लग गया। हड्डियों का ढेर देखकर रघुनाथजी को बड़ी दया आयी। मुनियों से पूछा।

व्याख्या : रघुनाथ हैं। अनाथ मुनियों को सनाथ करने आये हैं। पहिले कह चुके हैं कि चले बनहि सुर नर मुनि ईसा। शरभङ्ग के आश्रम पर ठहर गये थे। अतः आगे चलना कहते हैं। अपने अपने यहाँ ले जाने के लिए मुनि लोगों ने साथ पकड़ लिया। अस्थि समूह देखने से प्राणियों के असामयिक मृत्यु का अनुमान हुआ। इससे बड़ी दया हुई। इतने नर कङ्काल के एकत्र होने का कोई विशेष कारण होना चाहिए : इससे पूछा। मुनियों के मुख से अत्याचारियों के अत्याचार का वर्णन सुनना चाहते हैं। राजधर्म का आश्रयण करके उनका दण्ड विधान करना है।

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥४॥

अर्थ : जानते हुए भी आप कैसे पूछते हैं। हे स्वामी! आप तो सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं। राक्षसों के समूह ने सब मुनियों को खा डाला है। सुनकर श्रीरघुवीर की आँख डबडबा आयी।

व्याख्या : आप सर्वज्ञ हैं। सब कुछ जानते हैं, अन्तर्यामी हैं। आप से कुछ छिपा नहीं है। अतः यह घटना भी आपको अविदित नहीं है। फिर क्यों पूछते हैं? भाव यह कि पापियों के पाप कहने में भी दोष है पर आप स्वामी हैं। आपकी आज्ञा अपेल है। अतः निवेदन करते हैं। राक्षस लोग इकट्ठे होकर सब मुनियों का यहाँ भोजन किया है। राक्षसों के आहार ही मनुष्य हैं कि पुनः ब्राह्मणों का खाना तो उन्हें अति प्रिय है। यथा : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। मुनि लोग गर्भगत बालक की भाँति प्रतिरोध करने में असमर्थ थे। अतः उनका भोज इसी स्थान पर राक्षसों द्वारा हुआ।

सरकार केवल युद्धवीर दानवीर ही नहीं हैं दयावीर भी हैं। इसलिए रघुवीर शब्द का प्रयोग किया। उपर्युक्त बातें सुनते ही करुणाकर की आँखों में जल आगया। अपराधियों के अपराध का पर्याप्त प्रमाण मिल गया। अतः दण्ड विधान के लिए प्रतिज्ञा हो रही है।

दो. निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह॥९॥

अर्थ : भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वी को बिना राक्षस की कर दूँगा। फिर सब मुनियों के आश्रमों में जा जाकर उन्हें सुख दिया।

व्याख्या : मुनियों ने कहा : निसिचर निकर सकल मुनि खाए। अतः सरकार प्रतिज्ञा करते हैं : निसिचर हीन करउँ महि। सब मुनि लोगों को भरोसा

देने के लिए भुज उठाइ प्रन कीन्ह। अपना दृढ़ निश्चय सूचित करने के लिए भुजा उठाकर प्रण करने का नियम है। यथा : भुजा उठाइ कहौं प्रन रोपी। प्रन विदेह-कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल। बहुत से ऋषि इस अभिलाषा से साथ थे कि सरकार को अपने अपने आश्रम में ले चलें। अतः सरकार सबके आश्रमों में गये और सुख दीन्ह कहने का भाव यह कि सबके आश्रमों में ठहरे। किसी के आश्रम पर पन्द्रह दिन, किसी के यहाँ एक महीना, किसी के आश्रम पर डेढ़ महीना, किसी के आश्रम पर तीन महीना, कहीं छः महीना, कहीं सालभर। इस भाँति वनवास की अवधि का दस साल व्यतीत किया। राक्षस लोग विराध वध से सशङ्क हो गये थे। अतः एक भी हाथ न लगे। उन सबों ने उधर का रास्ता छोड़ दिया। इसके बाद सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसङ्ग आरम्भ करते हैं।

## २९. सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसंग

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक॥१॥

अर्थ : मुनि अगस्त्य के एक सुजान शिष्य थे। उनका नाम सुतीक्ष्ण था। उनकी भगवान् में भक्ति थी। मन कर्म और वचन से रामजी के चरणों के सेवक थे। उन्हें सपने में भी दूसरे देवता का भरोसा न था।

व्याख्या : अगस्त्य मुनि के बहुत शिष्य थे। कोई कर्मठ थे, कोई योगी थे, कोई ज्ञानी थे, उनमें सुतीक्षणजी बड़े सुजान थे। क्योंकि उनकी रति भगवान् में थी। यथा : राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू। मुनि अगस्त्य कर शिष्य : कहने का भाव यह कि महा प्रभावशाली ऋषि के शिष्य थे। उनकी भक्ति प्रसिद्ध है। अगस्त्यसंहिता रामभक्ति का प्रधान ग्रन्थ है। उनका शिष्य कहकर उनमें भी रामोपासना सूचित किया।

मनक्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई। सो ये मन वचन कर्म से रामजी के चरणों के सेवक थे। अतः सरकारी कृपा के पात्र थे। सेवकाई में भी अनन्यता कहते हैं कि नित्य नैमित्तिक कर्म के निर्वाह करने में जिन जिन देवताओं के पूजन स्तवन या व्रत का विधान है। सो सब करते थे। पर भरोसा किसो का स्वप्न में भी नहीं करते थे। उन्हें केवल रामजी का भरोसा था।

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥
हें बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥२॥

अर्थ : कानों से प्रभु का आगमन सुन पाया। मनोरथ करते हुए आतुरता से दौड़ पड़े। क्या यह सम्भव है कि दीनबन्धु रघुराज मुझ से शठ पर दया करेंगे ?

व्याख्या : चलते फिरते किसी भाँति वह बात कान में पड़ गयी कि सरकार इधर आ रहे हैं। इस बात को पक्की करने के लिए अवसर कहाँ ? आतुर हो दौड़

पड़े। प्रेमपात्र के आगमन को सुनते ही प्रेमी के मनोरथों का अन्त नहीं रह जाता। यथा : करत मनोरथ बहु मन माही। एक बिधि करत मनोरथ जात न लागी पार। आतुर धावा : से पहिली दशा अभिलाष कहा। : १ :

है विधि : कहकर ब्रह्मदेव का आश्चर्य के साथ स्मरण करते हैं। विधि का कार्य तो विधि से होता है। मेरे ऊपर दया करने की कौन विधि है? मैं शठ हूँ। शठ सेवक तो स्वामी के लिए शूल समान होता है। क्या प्रभु की दीनबन्धुता इतनी है कि मेरे ऐसे भारी शठ पर भी उनकी अनुकम्पा होगी? यह दूसरी दशा चिन्ता है। : २ :

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं ॥३॥

अर्थ : क्या छोटे भाई के सहित स्वामी रामजी मुझसे निज सेवक की भाँति मिलेंगे। मेरे मन में तो दृढ़ भरोसा नहीं होगा। क्योंकि मेरे मन में भक्ति, वैराग्य या ज्ञान नहीं है।

व्याख्या : ऊपर की अर्धाली में कहा है कि क्या मुझसे शठ पर दया करेंगे। अब उसी बात को स्पष्ट करते हैं। वह कौन सी दया है जो सुतीक्ष्णजी चाह रहे हैं? सो वह दया सरकार का परिष्वङ्ग देना है और वह दया परिष्वङ्ग ऐसा हो जो निज दास को सरकार देते हैं। क्योंकि परिष्वङ्ग तो पिता, माता, पुत्र, सखा आदि को भी दिया जाता है। पर उसे मुनिजी नहीं चाहते। क्योंकि सरकार को सबसे अधिक प्रिय निज दास हैं। स्वयं भरतजी ने प्रभु द्वारा निज दास की भाँति स्मरण किये जाने की अभिलाषा प्रकट की। यथा : निज दास ज्यौं रघुबंस भूषन कबहुँ मन सुमिरन करयो। मुनिजी उसी भाव से मिलना चाह रहे हैं और उससे भी भाई सहित मिलने में पूरा सत्कार है। भगवत् भागवत दोनों के मिलने का सुख है। यथा : अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। अब प्रश्न यह रहा कि निज दास किसे कहते हैं? इस बात को स्वयं प्रभु ने स्पष्ट किया है : तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। जिसे प्रभु को छोड़कर दूसरे की आशा नहीं वही निज दास है। परिष्वङ्ग मिलने को कहते हैं। सरकार ने स्वयं कहा है कि परिष्वङ्ग से अधिक मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं है। उसी अत्यन्त सुख का स्मरण करके मुनिजी विह्वल हैं। यह तीसरी अवस्था स्मरण है। : ३ : रामजी गोसाईं हैं। सब के मालिक हैं। दयालु हैं। ये शठ सेवक की प्रीति रुचि रखनेवाले हैं। अतः मुझसे अनुज के साथ निज सेवक की भाँति मिलना उनके लिए असम्भव तो नहीं है। यह चौथी अवस्था सरकार का गुण कथन है। : ४ :

मुनिजी कहते हैं कि फिर भी मेरे मन में दृढ़ भरोसा नहीं हो रहा है। क्योंकि मेरे में साधन का बड़ा घाटा है। भक्ति पथ पर मैं आरूढ़ नहीं हूँ : श्रुति सम्मत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक। हरिभक्ति में भक्ति वैराग्य और विवेक तीनों चाहिए।

मुझमें तीनों में से एक भी नहीं है। अतः उनकी दीनबन्धुता का भरोसा है। अपनी ओर दृष्टि करने से तो दृढ़ता नहीं होती। यह पाँचवीं दशा उद्वेग है। : ५ :

नहि सतसंग जोग जप जागा। नहि दृढ़ चरन कमल अनुरागा ॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की ॥४॥

अर्थ : इधर तो सत्सङ्ग योग जप यज्ञ कुछ भी नहीं और न चरण कमल में दृढ़ अनुराग है। हाँ करुणा निधान का ऐसा स्वभाव है कि उनको वही प्रिय है। जिसे दूसरे का भरोसा न हो।

व्याख्या : श्रुति सम्मत हरि भगति पथ वैधी भक्ति है। इसके अतिरिक्त पाँच साधन और भी है। १. सत्सङ्ग यथा : सतसंगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। २. योग यथा : करहि जोग जोगी जेहि लागी। ३. जप यथा : द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग। ४. यज्ञ यथा : त्रेता बिबिध यज्ञ नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं। ५. दृढ़ चरन कमल अनुराग यथा : पद कमल परागा रस अनुरागा। मम मनमधुप करइ पाना। अर्थात् रागानुगा भक्ति। यहाँ पाँच में एक भी नहीं। यह छठी दशा प्रलाप है। : ६ :प्रिय को विद्यमान मानकर निरर्थक वचन रचना है।

तब उनके कारुणिक स्वभाव का भरोसा है। मुझे अन्य गति नहीं है और उन्हें अनन्यगतिक प्रिय हैं। यथा : है तुलसी के एक गुन अवगुन बिधि कह लोग। भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग।

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन ॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥५॥

अर्थ : भव मोचन मुख कमल के दर्शन से आज मेरी आँखें सुफल होंगी। मुनि ज्ञानी पूर्ण प्रेम में निमग्न हो गये। हे भवानी ! वह दशा कही नहीं जा सकती।

व्याख्या : अतः यह निश्चय किया कि दर्शन मिलेगा। लोचन का साफल्य सरकार के दर्शन से होता है। यथा : करहु सुफल सब के नयन सुन्दर बदन देखाइ। आँखें तो अगणित जन्म से मिलती चली आयी हैं : सफल कभी न हुईं। सफल हुईं होती तो जन्म हीं क्यों होता। इसलिए बदन पंकज का भव मोचन विशेषण दिया।

सुतीक्ष्णजी ज्ञानी मुनि हैं। योगवासिष्ठ के प्रधान श्रोता हैं। तथापि निर्भर प्रेम में मग्न हैं। यह रामजी के प्रेम की महिमा है। यथा : मोह मगन मति नहि बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की। आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था: अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः। ज्ञानघाट के वक्ता जवाब देते हैं कि वह दशा कही नहीं जा सकती। जिसकी यह दशा है वह स्वयं उस दशा को नहीं समझ रहा है। यह सातवीं दशा उन्माद है। : ७ :

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा । को मैं चलेउ कहाँ नहिं बूझा ॥
कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥६॥

अर्थ : उन्हें दिशा विदिशा और रास्ता कुछ भी सूझ नहीं रहा है। मैं कौन हूँ कहाँ जा रहा हूँ। इसका भी चेत नहीं है। कभी घूमकर पीछे चले जाते हैं। कभी गुणों का गान करके नाचने लगते हैं।

व्याख्या : पहिले करत मनोरथ आतुर धावा। अब मनोरथ करते करते निर्भर प्रेम में विभोर होने से रास्ता सूझना बन्द हो गया। उन्हें यह पता नहीं कि पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्खिन किधर है। नैऋत्य, वायव्य, अग्नि और ईशान कोण कौन हैं। इधर उधर देखते हैं। कुछ मालूम नहीं होता। दशा बढ़ती ही गयी अपने को भूल गये। कहाँ चले थे यह भी मालूम नहीं : पन्थ का न सूझना आठवीं दशा व्याधि है। : ८ :

जब कहाँ जाते हैं : यही भूल गये : तब लौट पड़े, फिर लौटना भूलकर गुणगान करके नाचने लगे : होइहि सुलभ आजु मम लोचन। इस आशा पर इतना आनन्द बढ़ा हुआ है : आगे जाते जाते रुक गये। लौटे तो फिर गति रुक गयी। यह जड़ता का सञ्चार नवीं दशा है। : ९ :

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई । प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई ॥
अतिसै प्रेम देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा ॥७॥

अर्थ : मुनि ने प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली। सरकार वृक्ष की आड़ में छिपे हुए देख रहे हैं। मुनि का अत्यन्त प्रेम देखकर भव भय के हरण करनेवाले रामजी हृदय में प्रकट हो गये।

व्याख्या : जड़ता का सञ्चार कहकर अविरल भक्ति की प्राप्ति कहते हैं। इतने देर तक सरकार पेड़ के आड़ में खड़े देख रहे थे। भक्तों के पागलपन की दशा सरकार को प्रिय है। छिपे इसलिए हैं कि प्रकट होने से विप्रलम्भावस्था ही समाप्त हो जायगी।

असह्य प्रेमवेग अर्थात् दशम दशा : मरण की प्राप्ति होते देखकर हृदय में प्रकट हुए। दशा ऐसी थी कि पत्ता खटकने से काम बिगड़ता। इसलिए तरु ओट से सामने जाने का प्रयत्न नहीं किया। हृदय में प्रकट हो गये। अतिशय प्रेम से ही प्रभु प्रकट होते हैं और उसी से भव भय का नाश होता है।

मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए । देखि दसा निज जन मन भाए ॥८॥

अर्थ : मुनिजी बीच रास्ते में अचल होकर बैठ गये। उनका शरीर कटहल के समान रोमाञ्चित हो गया। तब रामजी उनके पास चले आये और अपने भक्त की दशा देखकर अपना भक्त उन्हें बहुत प्यारा लगा।

व्याख्या : मुनिजी को प्रेम समाधि लग गयी। नहीं तो बीच रास्ते में कोई अचल होकर नहीं बैठता। ये रास्ते में ही अचल हुए। क्योंकि रास्ते में ही इन्हें हरि की प्राप्ति हुई। आनन्द से अद्भुत पुलक हो गया। कटहल के काँटे घने पुलक के ऐसे होते हैं। मुनिजी के शरीर में कोई स्थान ऐसा न रह गया जहाँ उत्तम पुलक न हो।

जब रामजी ने देख लिया कि मुनिजी अत्यन्त आनन्द से पुलकित हैं। तब निकट गये। प्रभु का स्वभाव है कि निज जन को अपना लेते हैं। सुतीक्ष्णजी का मनोरथ भी था कि रामजी उन्हें निज जन जाकर मिलें। यथा : निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाउ कपि कुल मन भावा।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा ॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ॥९॥

अर्थ : मुनिजी को रामजी ने अनेक भाँति से जगाया। पर मुनिजी नहीं जागे। क्योंकि उन्हें सरकार के ध्यान का सुख मिल रहा था। तब रामजी ने राजा के रूप को अन्तर्धान कर दिया और उनके हृदय में चतुर्भुज रूप दिखलाया।

व्याख्या : सोने से मूर्च्छा से तथा समाधि से व्युत्थान दशा में होश में आने को जागना कहते हैं। अतः श्रीरामजी ने समाधि अवस्था से उन्हें जाग्रत अवस्था में लाने की अनेक चेष्टा की। जो जो उपाय समाधि से उतारने के हैं सो सब काम में लाये। पर उनकी समाधि भङ्ग न हुई। तात्पर्य यह कि प्रेमाधिक्य से आप से आप समाधि लग जाती है और ऐसी लगती है कि उससे उतारना कठिन हो जाता है। क्योंकि समाधि जनित आनन्द को साधक छोड़ना नहीं चाहता। सरकार ने देखा कि इस तरह ये न जागेंगे।

ये माधुर्य के उपासक थे। ऐश्वर्य रूप के नहीं थे। भूप रूप माधुर्य का रूप है और चतुर्भुज रूप ऐश्वर्य का है। यद्यपि दोनों रूप सरकार के ही हैं। द्विचत्वारि षडष्टासां दश द्वादश षोडश। अष्टादशामी कथिता हस्ताः शङ्खादिभिर्युताः। पूर्व तापनीये। दो, चार, छः, आठ, दस, बारह, सोलह, अठारह हाथ तक भगवान् रामभद्र के शङ्ख आदि से युक्त माने गये हैं। पर भूप रूपवाली माधुर्य मूर्ति द्विभुज है। मुनिजी उसी के उपासक थे। प्रभु ने उस मूर्ति को अन्तर्धान कर लिया और उसके स्थान पर चतुर्भुज मूर्ति शङ्खचक्रादि से युक्त प्रकट कर दिया।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें ॥
आगे देखि राम तनु स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा ॥१०॥

अर्थ : मुनिजी तब किस भाँति आकुल होकर उठे। जैसे मणि ले लेने से श्रेष्ठ सर्प व्याकुल होकर उठता है। आगे देखा कि श्यामसुन्दर सुखधाम राम सीता और अनुज के सहित विराजमान हैं।

व्याख्या : मुनिजी ने भूप रूप की शोभा को हृदय में धारण कर रक्खा था। यथा : निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मनि फनि मूरति मनि करहू। अपने मन को फणि सर्प और प्रभु की मूर्ति को मणि बना रक्खा था। माधुर्योपासकों के लिए भूप रूप ही अति सुन्दर है। विष्णु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी। अपर देउ अस कोउ न आही। एहि छबि सखी पटतरिअ जाही। सो उस रूप के अन्तर्धान होते ही चतुर्भुज रूप का कुछ भी ख्याल न करते हुए मुनिजी मणिहीन भुजङ्ग की भाँति विकल होकर उठे। यथा : सूखहिं अधर जरहिं सब अंगू। मनहु दीन मति हीन भुअंगू।

त्रेता में विष्णु भगवान् का पीतरङ्ग रहता है। यहाँ तनु स्यामा पाठ होने से यह अर्थापत्ति होती है कि चतुर्भुज मूर्ति जो प्रकट हुई थी उसका श्याम तन भी नहीं था। जिसने सर्प का मणि लिया : उस पर सर्प का बड़ा क्रोध होता है। समाधि भङ्ग करनेवाले पर समाधिस्थ का भयानक क्रोध होता है। यथा : भयउ ईस मन छोभ बिसेखी। नयन उघारि सकल दिसि देखी। सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रैलोका। तब सिव तीसर नैन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा। अतः मुनिजी ने आँख खोलकर देखना चाहा कि किसने उनकी समाधि भङ्ग की। तो आगे अपने परम प्रिय सुखधाम राम की मूर्ति पाते हैं। मनोरथ से भी अधिक की प्राप्ति होती है। अनुज तो साथ में ही हैं। जगदम्बा जानकीजी भी साथ में हैं।

परेउ लकुट इव चरनन लागी। प्रेम मगन मुनिवर बड़भागी।।
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई।।११।।

अर्थ : बड़े भाग्यवान् मुनियों में श्रेष्ठ प्रेम में मग्न होकर छड़ी की भाँति गिरकर चरणों में लगे। सरकार ने विशाल भुजाओं से पकड़कर उन्हें उठा लिया और बड़े प्रेम से उन्हें हृदय में लगाये रहे।

व्याख्या : प्रेम मगन कहने से देह दशा की विस्मृति कहा। चरणों में छड़ी के गिरने की भाँति गिरे। इस भाँति गिरने से चोट लगेगी। इस बात का ध्यान न रहा। बड़ा भाग्यवान् वही है जिसे सरकार के चरणों की प्राप्ति हो : श्री गोस्वामीजी लकुट और दण्ड में कुछ भेद करते हैं। लकुट पतला होता है। दण्ड मोटा होता है। मुनिजी दुर्बल हैं। अतः इनकी उपमा लकुट से देते हैं। भरतजी भी प्रभु के विरह से दुर्बल हो गये थे। उनके लिए भी कवि लिखते हैं : भूतल परेउ लकुट की नाईं। मनुजी आकाशवाणी सुनकर हृष्ट पुष्ट हो गये थे। यथा : हृष्ट पुष्ट तनु भयउ सोहाये। मानहु अबहिं भवन ते आये। अतः उनकी उपमा दण्ड से देते हैं। यथा : हरख बिबस तन दसा भुलानी। परेउ दण्ड इव गहि पद पानो। ऐसे को हो यहाँ प्रेम मगन शब्द से कहा।

प्रभु की भुजाएँ विशाल हैं। दूर से ही उठा लेती हैं। मुनिजी का मनोरथ पूर्ण हो रहा है। राम गोसाइँ निज सेवक की भाँति मिल रहे हैं। मुनिजी लकुट

की भाँति चरणों में पड़े हैं। उठना नहीं चाहते। छड़ी आपसे नहीं उठती : उठाने से उठती है। अतः प्रभु ने अपने हाथों से इन्हें उठा लिया। अपना दास उन्हें सबसे अधिक प्रिय है। इसलिए परम प्रेम से हृदय में लगाये हुए हैं। विरह सन्तप्त हृदय को शान्ति दे रहे हैं।

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला ॥
राम बदनु बिलोकि मुनि ठाढ़ा। मानहु चित्र माँझ लिखि काढ़ा ॥१२॥

अर्थ : मुनिजी से मिलते हुए कृपाल ऐसे शोभित हुए जैसे धतूर के पेड़ से तमाल : आबनूस पेड़ मिल रहा हो। मुनिजी खड़े हुए श्रीरामजी का मुख देख रहे हैं। मानो चित्र में लिखकर बनाये गये हों।

व्याख्या : प्रेमाधिक्य से भक्त भगवन्त दोनों में जाड्य है। इसलिए पेड़ों से उपमा दी। मुनिजी को इस समय भी पुलक है। अतः उनकी उपमा धतूर के वृक्ष से दिया। धतूर का फल भी कटहल के फल सा कंटकित होता है। प्रभु की उपमा तमाल वृक्ष से दिया। तमाल वृक्ष श्याम होता है। उसके पत्ते भी श्याम होते हैं। अतः प्रभु से उपमित किया।

मिलने के बाद मुनिजी खड़े हुए मुह देख रहे हैं। कुछ कहने सुनने की सामर्थ्य नहीं है। न होश है। जैसे चित्र में लिखे हुए मुनि जैसे लिखे जाते हैं वैसे ही बने रहते हैं। यदि आँख खुली है तो खुली ही रहती है। पलक गिरती ही नहीं। सिवा दर्शन के किसी अन्य भाव का हृदय में स्थान नहीं है।

दो. तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहि बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा बिबिध प्रकार ॥१०॥

अर्थ : तब मुनिजी धैर्य धारण करके और बार बार चरणों को पकड़कर प्रभु को अपने आश्रम में ले आये और अनेक प्रकार से पूजा।

व्याख्या : दुःख में जो उद्विग्न न हो, सुख की जिसे इच्छा न हो, राग द्वेष भय जिसका निकल गया हो, उसे मुनि कहते हैं। इस समय उनका धैर्य छूटा हुआ है। सो हृदय में धैर्य धारण किया। प्रेम से बार बार चरण ग्रहण करते हैं। अथवा अपने आश्रम में लिवा चलने के लिए बार बार सङ्कोच में डाल रहे हैं। यथा : बार बार गहि चरण संकोची। यहाँ सरकार की ओर से प्रणाम दण्डवत् कुछ नहीं हो रहा है। क्योंकि ऐश्वर्य खुल गया है। रास्ते में पूजा नहीं हो सकती। अतः आश्रम में लिवा लाये। षोडशोपचार राजोपचारादि पूजनों में से जो जो सम्भव था सब किया। इसलिए विविध प्रकार कहा।

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी ॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सनमुख खद्योत अँजोरी ॥१॥

अर्थ : मुनि ने कहा : हे प्रभु ! मेरी विनती सुनो। तुम्हारी स्तुति किस विधि से करूँ। महिमा अपार है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। जैसे सूर्य के सामने जुगनू का प्रकाश।

व्याख्या : पूजा के बाद स्तुति होनी चाहिए। सो पूजा तो शास्त्रानुसार कर डाला। उसके लिए विधि नहीं पूछा। पर स्तुति करने में तो शास्त्र भी असमर्थ है। यथा : महिमा निगम नेति कहि गाई। अतः स्तुति की विधि नहीं सूझती। सो सरकार से ही विनय करते हैं कि आप ही विधि बतलाइये। यदि नहीं बतलाते तो स्तुति करने में बिगड़ जाय तो मेरा दोष नहीं।

विधि न समझने का कारण बतलाते हैं कि आपकी महिमा का पारावार नहीं और महिमा कथन को ही स्तुति कहते हैं। तिस पर मेरी बुद्धि बहुत थोड़ी है। जब प्रभु की महिमा की ओर देखती है तब काम नहीं करती। वैसे संसार में तो खूब काम करती है। तथा : निसि तम घन खद्योत बिराजा। पर सूर्य का सामना पड़ते ही खद्योत का प्रकाश सूर्य के प्रकाश में लीन हो जाता है। कुछ भी काम नहीं कर सकता। पता भी नहीं चलता कि खद्योत भी संसार में कहीं है। ऐसी ही मेरी बुद्धि की गति हो रही है। जो लोग प्रवीण हैं उनकी बुद्धि भी दीपादिवत् निस्तेज हो जाती है। पर अपने अस्तित्व का प्रकाश करती है। यथा : मुनिवर परम प्रवीन जोरि पानि अस्तुति करत। यहाँ तो मेरी जुगुनू की दशा है। रात में भी जुगनू चमकते चमकते रह जाता है। एकरस प्रकाश नहीं कर पाता। दिन में क्या प्रकाश करेगा।

स्याम तामरस दाम सरीरं। जटा मुकुट परिधान मुनि चीरं॥
पानि चाप सर कटि तूनीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुबीरं॥२॥

अर्थ : नीलकमल की माला के समान शरीरवाले। जटा का मुकुट और मुनिवस्त्र धारण करनेवाले हाथों में धनुष बाण लिये हुए। तथा कमर में तरकस कसे हुए श्रीरघुवीर को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : स्याम तामरस दाम शरीरं : से सुन्दरता कहा। यथा : स्यामसरोज दाम सम सुन्दर। जटा मुकुट परिधान मुनिचीरं : से धर्म परायणता कही। यथा : पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर। हृदय न हरष बिषाद कछु पहिरे बलकल चीर। अथवा ऐसा सौन्दर्य है कि जटा मुकुट मालूम होता है और वल्कल परिधान मालूम होता है। यथा : पीताम्बरं सुंदरं। पानि चाप सर कटि तूनीरं : से द्विभुज मूर्ति कहा। तथा भक्तों की सब प्रकार से रक्षा दिखलाया। यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा। प्रभु की ऐसी श्री है कि लोभ मोहादि सामने ठहर नहीं सकते। सरकार को सशस्त्र देखते ही भाग जाते हैं। इसलिए श्रीरघुवीर कहा। अथवा श्रीरूपिणी सीताजी साथ हैं इसलिए श्रीरघुवीर कहा। यथा : उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी प्रभु का। स्वभाव है कि एक बार प्रणाम

करनेवाले को अपना कर लेते हैं। इसलिए तदीय होने के लिए निरन्तर प्रणाम करते हैं। यह पहला नमस्कार है। यह स्तुति वीररस से भी है। इसलिए इसे विचाररूपी भूप का सुभट फल श्रुति प्रकरण में कहा है। अथवा असाध्य जानकर भी उत्साह के साथ स्तुति करते चले जाते हैं। अतः इसकी स्तुति विचार भूपति की सुभटरूपा है।

मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः॥
निसिचर करि बरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाजः॥३॥

अर्थ : हे मोहरूपी घन बन के जलाने के लिए अग्निरूप, हे सन्तरूपी कमल बन के सूर्य, हे राक्षस रूपी हाथी के झुण्ड के लिए सिंह, हे संसाररूपी चिड़िया के लिए बाजरूप! हमारी रक्षा कीजिए।

व्याख्या : अति दुःखद होने से मोह को विपिन कहा। यथा : डरपहिं धार गहत सुधि आये। घन कहने का भाव यह कि इसमें पड़ने से मनुष्य मार्गभ्रष्ट हो जाता है। और फिर उससे बाहर निकलना कठिन हो जाता है। मोह विपिन में भी सरकार अव्यक्त रूप से भरे पड़े हैं। पर उसमें अति संघर्ष होने से। यथा : करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहि विप्रधेनु सुर धरनी। प्रभु अग्नि की भाँति व्यक्त हो जाते हैं। मोह विपिन का नाश कर देते हैं। इससे अवतार का कारण कहा। अब कार्य कहते हैं। प्रभु के उदय से सूर्योदय की भाँति सन्तरूपी कमल का बन विकसित हो उठता है। इस भाँति साधु परित्राण कहकर दुष्टों का विनाश कहते हैं। प्रभु को प्रतिज्ञा करके बन में रहते इतने दिन बीते। पर एक भी राक्षस हाथ न चढ़ा। जिस भाँति सिंह का गन्ध न सहकर हाथी जंगल छोड़ देते हैं। उसी भाँति प्रभु का गन्ध सहने में राक्षस असमर्थ हो जाते हैं। अब प्रभु का मोक्षदातृत्व गुण कहते हैं। आवागमन भव है। उसे खग कहा है। खग का आकाश में और पृथ्वी में आना जाना लगा रहता है। बाज उसको भक्षण कर जाता है। प्रभु भी भव भय को भक्षण करके मुक्ति देते हैं। त्रासु कहकर अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की। स्वरूप को नमस्कार करके मनमें वसाते हैं और गुणों से अपनी रक्षा चाहते हैं।

अरुन नयन राजीव सुवेसं। सीता नयन चकोर निसेसं॥
हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु बिसालं॥४॥

अर्थ : जो लाल कमल से लाल नेत्र वाले और सुन्दर वेष वाले हैं। जो सीताजी के नेत्र चकोर के चन्द्रमा है और जो शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर के लिए जो हंस हैं ऐसे विशाल वक्षःस्थल और भुजावाले रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : नयन की अरुणिमा चक्रवर्ती होने का चिन्ह है। कमल से नेत्रों की उपमा कृपा कटाक्ष के लिए दी जाती है। यथा : मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा विलोकनि सोच विमोचन। पहिले रूप का वर्णन किया था। फिर गुण वर्णन करने

लगे। अब फिर रूप वर्णन करते हैं। यथा : वल्कल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिवेष कीन्ह रति कामा। इस भाँति सुवेष हैं। अब सुन्दरता की पराकाष्ठा कहते हैं कि सीताजी ऐसी सुन्दरी के नेत्ररूपी चकोर के लिए चन्द्रमा है। यथा : जाइ समीप राम छबि देखी। रही जनु कुँअरि चित्र अवरेखीं।

बूढ़े मुनि ने संकर मानस राज मराल कहकर वर्णन किया था। ये मुनि शिष्य हैं। इसलिए बाल मराल कह रहे हैं। सीता जी साक्षात् देखती हैं। इसलिए चन्द्र चकोर की उपमा दी। शिवजी ध्यान से देखते हैं इसलिए उनके हृदयरूपी मानसरोवर का हंस बतलाया। उर बाहु बिसाल कहकर विक्रम सूचित करते हैं। श्री रघुबीर कहकर रघुकुल में जन्म दिखलाया। सीता नयन चकोर कहकर विवाह कहा। यह दूसरा नमस्कार है।

संसय सर्प ग्रसन उरगादः। समन सुकर्कस तर्क बिषादः॥
भव भंजन रंजन सुर जूथः। त्रातु सदा नो कृपा बरूथः॥५॥

अर्थ : जो संशयरूपी सर्प के ग्रसन के लिए गरुड़ हैं। अत्यन्त कर्कश तर्क जनित विषाद के नाश करनेवाले हैं। आवागमन को मिटानेवाले और देवताओं के समूह को आनन्द देने वाले हैं। ऐसे कृपा के समूह रामजी सदा हमारी रक्षा करें।

व्याख्या : संशय को सर्प कहते हैं। क्योंकि संशयग्रस्त के हृदय में दुःखद कुतर्क की लहरें उठती हैं। यथा : संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु व्राता। सो संशय सर्प ही आपका भक्ष्य है। इसलिए गरुड़ से उपमा दी। सर्प का ग्रास तो हुआ। पर जिसका उसने दंशन किया है उसकी रक्षा कैसे होगी ? अतः कहते हैं कि आप दुःखद तर्क विषाद के भी शमन करनेवाले हैं। विष के उतरने के कारण भी गरुड़ ही होते हैं। गारुड़ी विद्या से विष उतरता है। एवं ज्ञान स्वरूप कहा : यथा : ज्ञान उदय जिमि संसय जाहीं। इस स्तुति में भव का उल्लेख तीन बार आया है। १. ज्ञानियों के लिए संसार की पारमार्थिक स्थिति है हो नहीं। केवल व्यावहारिको स्थिति है। इसलिए उनके लिए वह खग है। कभी काम खग से ही पड़ जाता है। उसके लिए प्रभु बाज हैं। उसे निर्मूल कर देते हैं। तब सजात वाद सामने आ जाता है। २. कर्मठों के लिए संसार वास्तविक है। इसलिए उसका भङ्ग कर देते हैं तब दैवी प्रकृतिवालों को सुखानुभव होता है। अतः भव भंजन रंजन सुर यूथः कहा। ३. भक्तों के लिए सेतु हो जाते हैं। उनका आश्रयण करके भक्त भव सरिता के आरपार आया जाया करते हैं। उन्हें भव सरिता बाधक नहीं है।

निर्गुन सगुन बिषम सम रूपं। ग्यान गिरा गोऽतीतमनूपं॥
अमलमखिल - मनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं॥६॥

अर्थ : जो निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप हैं। जो ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अतीत हैं। जो अनूप, निर्मल सम्पूर्ण, दोष रहित, अनन्त और पृथ्वी का भार उतारनेवाले हैं। ऐसे रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : निर्गुण सगुण कहकर मिश्र ब्रह्म कहा। विषम समरूप कहकर जगन्मय कहा। ग्यान गिरा गोतीत से साक्षात् ब्रह्म कहा। तीनों होने से अनूप कहा। यथा : अनूप रूप भूपतिं। अवतार रूप में तीनों का समावेश है। यथा : ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै। सो मम उर वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै। अमल से शुद्ध, अविरल से पूर्ण, अनवद्य से निर्विकार, अपार से व्यापक अथवा अपरिच्छिन्न कहा। भंजन महिभार से पूर्णावतार धारण करके रावणादि का बध कहा। यथा : अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी। गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक पर द्रोही। ऐसे रामजी को नमस्कार करते हैं। यह तीसरा नमस्कार है।

भक्त कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध लोभ मद कामः॥
अति नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः॥७॥

अर्थ : जो भक्त के लिए कल्पवृक्ष के बाग हैं। क्रोध, लोभ, मद और काम को डाँटनेवाले हैं। अत्यन्त चतुर और संसार समुद्र के सेतु हैं। ऐसे सूर्यकुल के ध्वजारूप श्रीरामजी हमारी रक्षा करें।

व्याख्या : रूप कहकर फिर गुण कहते हैं। कल्पवृक्ष तो सबके लिए समान है। किसी के सन्मुख या विमुख नहीं है। उसके निकट जाने और पहिचानने की आवश्यकता है। माँगने से वह चाही हुई वस्तु दे देता है। परन्तु भक्त को तो किसी वस्तु की कामना नहीं है। यथा : नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये। वह तो उन्हीं प्रभु को ही चाहता है। इसलिए उसके लिए प्रभु कल्पवृक्ष के बाग हो जाते हैं। उन्हीं में भक्त विहार करते हैं। उसी बाग की सुन्दरता देखने में मग्न रहते हैं। उन्हें काम, क्रोधादिक शत्रुओं का भी भय नहीं रहता। क्योंकि प्रभु उन्हें भगा देते हैं। अतः तर्जन क्रोध लोभ मद कामः कह रहे हैं। इन्हें शत्रु इसलिए कहा कि ये ही जीव को नरक में ले जाते हैं। यथा : काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।

नागर चतुर को कहते हैं। यहाँ प्रभु को अति नागर कहते हैं। प्रभु भक्त के लोक परलोक दोनों को सँभालते हैं। भवसागर के सेतु हैं। इनका आश्रयण करने से अनायासेन भवसागर पार किया जा सकता है। यथा : अति अपार जे सरित वर जौं नृप सेतु कराहिं। चढ़ि पिपीलकउ परम लघु बिनु श्रम पारहिं जाहिं। सर्वात्मना साधनहीन चींटी जिस भाँति सेतु का आश्रयण करके अनायासेन पार चली जाती है उसी भाँति सभी साधनों से हीन भक्त भी केवल प्रभु का आश्रय करके अनायासेन भवसागर पार हो जाते हैं। उन्हें भवसागर के मध्य उत्ताल तरङ्ग तथा मकर उरग बाधा नहीं कर सकते। दिनकर कुलसेतु कहकर रामावतार कहा। मुनिजी उन्हीं से सदा अपनी रक्षा चाहते हैं। दूसरे से नहीं। यथा : बनै तो रघुबर ते बनै या बिगरै भरपूर। तुलसी बनै जो और तेहि बनिवे मह धूर।

अतुलित भुज प्रताप बल धामः । कलि मल बिपुल बिभंजन नामः ॥
धर्म बर्म नर्मद गुन ग्रामः । संतत संतनोतु मम रामः ॥८॥

अर्थ : जिसके भुज प्रताप की तौल नहीं। जो बल के धाम हैं। जिसका नाम कलि के विशाल मल का नाश करनेवाला है। जो धर्म के कवच हैं। जिनका गुणग्राम सुख देनेवाला है। ऐसे राम सदा मेरा कल्याण करें।

व्याख्या : संक्षेप में नाम रूप लीला और धाम चारों कह रहे हैं। अतुलित-भुजप्रतापबलधामः से रूप कहा : कलिमलविपुलविभंजननामः से नाम कहा। धर्मवर्मनर्मदगुणग्रामः से लीला कहा : और संतत संतनोतु मम रामः से धाम के लिए प्रार्थना करते हैं।

प्रभु बल के धाम हैं। उन्हीं के बल से सम्पूर्ण सृष्टि चल रही है। यथा : सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया। जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा। जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन। इत्यादि। उनके भुजा के प्रताप की भी तुलना नहीं है। यथा : ब्रह्म धाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका। काहू बैठन कहा न ओहीं। राखि को सकै राम कर द्रोही। अन्त में वही जयंत कहता है : अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जान महि पाई। नाम की प्रभुता ऐसी है कि इस कराल कलिकाल में लोक परलोक उसी द्वारा सिद्ध होता है। नहीं तो सब धर्मों को कलिमल ग्रसे हुए हैं। किसी से काम नहीं चलता। यथा : नाम काम तरु काल कराला। सुमिरत समन सकल भव जाला। प्रभु के गुणग्राम से धर्म की रक्षा होती है और सुख मिलता है। यथा : राम को सुमिरिबो सब बिधि ही को राज रे। रामको बिसारिबो निषेध सिरताज रे। तथा : एहि बिधि कहत राम गुनग्रामा। पावा अनिर्वाच्य बिश्रामा।

तीन प्रकारसे भजन कहा गया है। तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा। मैं उनका हूँ। वे मेरे हैं और वही मैं हूँ। ये ही तीन प्रकार हैं। सेवक आरम्भ में समझता है कि मैं उनका हूँ। जब सम्बन्ध प्रागल्भ्य होता है तब समझता है कि वे मेरे हैं और जब उस प्रागल्भ्य की अति वृद्धि होती है तब समझने लगता है कि उनमें और मुझमें भेद नहीं है। यहाँ पर मुनिजी सम्बन्ध प्रागल्भ्य से मम रामः कह रहे हैं और उन्हीं से सदा अपना कल्याण चाहते हैं। यथा : मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहाँ बिस्वासा।

जदपि बिरज व्यापक अबिनासी। सब के हृदय निरंतर बासी ॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम कानन चारी ॥९॥

अर्थ : यद्यपि आप निर्मल व्यापक और अविनाशी हैं। सबके हृदय में निरन्तर वास करते हैं। फिर भी छोटे भाई और लक्ष्मी के सहित हे खरारि ! हे काननचारी ! मेरे मन में बसो।

व्याख्या : विरज से प्रकृति पार कहा। व्यापक से अपरिच्छिन्न कहा। अविनासी से नित्य कहा। अर्थात् निर्गुण रूप से सरकार सबके हृदय में निवास करते हैं। फिर भी संसार के सब जीव दीन और दुःखी हो रहे हैं। अतः निर्गुण रूप से काम नहीं चलता। इसलिए मुनिजी सगुण रूप से हृदय में बसाना चाहते हैं और सगुण रूप में भी उस रूप से जिस रूप में उस समय लीला कर रहे हैं। क्योंकि लीला विग्रह से ही काननचारी होकर मुनिगण को सुलभ हो रहे हैं। खरारि होकर उन्हें अभय दे रहे हैं। अनुज लक्ष्मण तथा श्री सीता शक्ति साथ में हैं। अतः उनके साथ ही हृदय में बसाना चाहते हैं जिसमें सानन्द निवास हो। यथा : राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। भाव यह कि दण्डक वन की भाँति अपने मनको पवित्र करने की प्रार्थना करते हैं।

जे जानहिं ते जानहु स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी ॥
जो कोसल पति राजिव नयना। करौ सो रामु हृदय मम अयना ॥१०॥

अर्थ : हे स्वामी ! जो आपको सगुण निर्गुण और उर अन्तर्यामी भी जानते हैं वे जाना करें। मेरे हृदय को तो जो राजीवनयन कोसलपति राम हैं वे ही घर बनावें।

व्याख्या : रामजी सगुण निर्गुण तथा अन्तर्यामी रूप हैं। ऐसा शास्त्र कहता है। और शास्त्रज्ञ लोग इस बात को जानते हैं। सो उनका जानना उन्हीं के लिए कल्याणदायक हो। मैं तो ऐश्वर्य उपासक नहीं। मेरे लिए तो माधुर्य ही सब कुछ है। अतः मैं सगुण निर्गुण या अन्तर्यामी रूप नहीं चाहता। मैं तो राजीवलोचन कोसलपति रामको हृदय में बसाना चाहता हूँ। सो रामजी अवतीर्ण होकर कासल-पति हुए हैं। वे मेरे मन में घर करें। पहिले काननचारी रूप से बसने की प्रार्थना की थी। फिर सोचा कि यह रूप तो कुछ ही दिनों के लिए है। इसके बाद जाकर अयोध्या के राजा हो जायँगे। अतः कोसलपति होकर भी हृदय में निवास करें।

अस अभिमान जाइ जनि भोरें। मैं सेवक रघुपति पति मोरें ॥
सुनि मुनि बचनु राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिवर उर लाए ॥११॥

अर्थ : ऐसा भूलकर अभिमान न छूटे कि मैं सेवक हूँ और श्री रघुनाथजी मेरे स्वामी हैं। मुनिजी का वचन सुनकर श्रीरामजी मन में बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होंने फिर हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनि को हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : सरकार को अभिमान प्रिय नहीं है। अतः भक्त को अभिमान होने देना प्रभु नहीं चाहते। यथा : जन अभिमान न राखहिं काऊ। पर सेवक-सेव्यभाव-वाला अभिमान तो भक्ति का प्राण है। इतना ही ज्ञानी और भक्त में अन्तर है। ज्ञानी भी ब्रह्ममय जगत् को देखता है। भक्त भी ब्रह्ममय देखता है। पर ज्ञानी में कोई अभिमान नहीं रहता। अपने अस्तित्व को भी ब्रह्म में लय कर देता है। भक्त

सेवक रूप से अपना अस्तित्व अलग बनाये रहता हैं। यथा : मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।

यह गुणग्राम पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र है। इसमें दो तारे चमक रहे हैं! एक रूप और दूसरा गुण। नौमि के साथ द्वितीयान्त विभक्तिवाले रूप के विशेषण हैं और त्रातु के साथ प्रथमान्त विभक्तिवाले गुणबोधक शब्द हैं। इन्हीं दोनों ताराओं की चमक सम्पूर्ण स्तुति में है। दूसरी बात यह है कि इस तारा का रूप मञ्च सा है। मञ्च की स्थिरता नहीं। जहाँ आवश्यक हो उठाकर रख दिया। इसी भाँति इस स्तुति में स्थिरता नहीं है। कहीं बसहु मनसि मन काननचारी : कहीं काननचारी को बसाते हैं तो कहीं कोसलपति को बसाना चाहते हैं। कहीं मम हिय गगन इन्दु इव बनहु : कहते हैं। सिद्धान्त तो यह है कि सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम। ते नर प्रान समान मम जिन्हके द्विजपद प्रेम। अतः सगुणोपासना ही ध्येय जानकर मुनिजी के वचन सरकार को प्यारे लगे। प्राण समान प्रिय होने से फिर हृदय से लगाया।

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर माँगहु देउँ सो तोही॥
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाँचा। समुझि न परइ झूठ का साँचा॥१२॥

अर्थ : हे मुनि! मुझे परम प्रसन्न जानो। जो वर माँगो वही तुम्हें दूँ। मुनि ने कहा कि मैंने कभी वर नहीं माँगा। क्योंकि यह रूढ़ि का साँचा समझ में नहीं आता। अथवा क्या झूठ है क्या सत्य है : यह समझ में नहीं आता।

व्याख्या : प्रभु की प्रसन्नता अमोघ है और मुनिपर परम प्रसन्न हैं। अतः कहते हैं कि मुझे परम प्रसन्न जानकर माँगो अर्थात् माँगने में कसर न करो। यह शङ्का मन में न करो कि अमुक वस्तु न मिलेगी। जो तुम्हें अच्छा लगेगा वही तुमको दूँगा। सरकार महादानी हैं। याचक को प्रोत्साहन देते हैं कि थोड़ा न माँगना। यथा : बोले कृपा निधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि। माँगहुँ वर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि।

मुनिजी ने कहा कि वरदान तो मैंने कभी माँगा नहीं। क्योंकि यह संसार रूढ़ि का साँचा है। बस ऐसा ही न जाने कब से चढ़ा आता है। अच्छे बुरे का पता नहीं चलता। सम्भव है कि जिसे मैं अमृत समझता हूँ वह विष हो। यदि झूठ का साँचा पाठ माना जाय तो यह अर्थ करना होगा कि मुझे झूठ और सच का परिज्ञान नहीं। झूठ और सच की पहिचान बिना ब्रह्मज्ञान के होती नहीं। यथा : झूठेहु सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने। और मुझे ब्रह्मज्ञान नहीं है। इससे मुझे पहिचान नहीं है। सम्भव है कि कोई मिथ्या वस्तु माँग लें। इसीलिए मैंने कभी वरदान नहीं माँगा। सदा से फलानुसन्धान रहित कर्म करते आये।

तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना॥१३॥

अर्थ : हे रघुनाथजी ! जो तुम्हें अच्छा लगे। हे दासों के सुख देनेवाले ! वही मुझे दो। तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और सभी गुण और ज्ञान के निधान हो जाओ।

व्याख्या : प्रभु माँगने के लिए कहते हैं। अतः अवश्य माँगूँगा। सो हे रघुनाथजी ! आप सर्वज्ञ हैं। आप दासों के सुख देनेवाले हैं और मैं आपका दास हूँ। आप निर्णय कर सकते हैं कि कौन वस्तु मेरे लिए सुखकारक होगी। आप मुझे सुखी करना चाहते हैं : इसलिए जो वर माँगहु देहु सो तोही कह रहे हैं। पर मेरी चाह तो यही है जो आपको अच्छी लगे। जो आप न चाहें वह मैं भी नहीं चाहता। सो अपने पसन्द के अनुसार ही मुझे दो।

प्रभु ने मुनीजी की बात को युक्तियुक्त समझकर स्वयं उनके हितकर पदार्थों का निर्णय किया। अथवा अपने पसन्द के अनुसार बोले कि पाँच बातें हमें पसन्द हैं : १. अविरल भक्ति २. वैराग्य ३. विज्ञान ४. सकल गुण निधानता तथा ५. ज्ञान निधानता। अतः पाँचों तुम्हें दिया।

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा ॥१४॥

अर्थ : प्रभुने जो दिया वह वर तो मैंने पा लिया। अब जो मुझे अच्छा लगा सो दीजिये।

व्याख्या : सरकार के देते ही पाँचों बातें मुनिजी को प्राप्त हो गयीं। वे स्वयं अनुभव कर रहे हैं कि अविरल भक्ति विज्ञानादि पाँचों गुण उनमें प्रवेश कर गये। अतः कहते हैं कि सरकार ने जो जो दिया सो सब मुझे मिल गया। अब सब बातें मेरी समझ में आने लगीं। फिर भी देखते हैं कि जिस बात की मुझे चाह थी वह परम कल्याणकारी है और उसे सरकार ने नहीं दिया। अतः कहते हैं कि अब मुझे जो अच्छा लगा है उसे दीजिये।

दो. अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप - बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव, बसहु सदा येह काम ॥११॥

अर्थ : हे प्रभो ! हे रामजी ! कामना यह है कि छोटे भाई लक्ष्मण और सीताजी के सहित मेरे हृदय रूपी आकाश में चन्द्रमा की भाँति निवास कीजिये।

व्याख्या : परन्तु चाहने में दो बात हो गयी थी। बसतु हृदय मम कानन चारी और जो कोसलपति राजिव नयना। करहु सा राम हृदय मम अयना। अतः इस बार और भी सँभालकर माँगते हैं। रामजी का निवास वन में तो बहुत थोड़े दिनों के लिए है और कोसलपुरी में तो बहुत दिनों तक रहेगा पर सदा तो नहीं रहेगा और चन्द्रमा का निवास आकाश में रहता है। अतः मुनिजी चन्द्रमा की भाँति सरकार को अपने हृदय गगन में सदा के लिए बसाना चाहते हैं। सूर्य की भाँति अकेले नहीं। जैसे चन्द्रमा बुध और रोहिणी के साथ बसते हैं उसी भाँति सरकार भी छोटे भाई लक्ष्मण तथा सीताजी के सहित बसें। कभी सरकार का

बिछोह न हो। इस भाँति मुनिजी ने सदा के लिए तीनों मूर्तियों को हृदय में बसा लिया।

एवमस्तु करि रमानिवासा। हरखि चले कुंभज रिषि पासा॥
बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ। भए मोहि एहिं आश्रमु आएँ॥१॥

अर्थ : एवमस्तु ऐसा वरदान देकर रमानिवास रामजी हर्षित होकर अगस्त्य ऋषि के पास चले। गुरुजी का दर्शन पाये और इस आश्रम में आये मुझे बहुत दिन हुए।

व्याख्या : सरकार परम प्रसन्न हैं। अतः स्वयं भी वर दिया और मुनिजी के माँगे हुए वर के लिए ऐसा ही हो कहा और एक रूप से उनके हृदय में निवास किया। दूसरे रूप से चले। अगस्त्यजी वसिष्ठजी के भाई हैं। अतः उनके दर्शन के लिए हर्षित होकर चले।

अगस्त्यजी से रावण वध के लिए मन्त्र लेंगे। शरणागत मुनियों के त्रास का हरण करके उन्हें सुख देंगे। इसलिए रमानिवास कह रहे हैं। यथा : दे भक्ति रमानिवास त्राणहरण सरन सुखदायकं।

गुरुजी के आश्रम में जाने का प्रभु का विचार जानकर सुतीक्ष्णजी ने कहा कि गुरुजी के आश्रम को छोड़कर यहाँ मुझे बहुत दिन हुए और जब से यहाँ आये तब से गुरुजी का दर्शन नहीं किया : इतने सन्निकट होने पर भी गुरुजी का दर्शन न करना शास्त्रविरुद्ध है और उसकी अभिलाषा भी है। फिर भी न जाने का कारण था। बिना सरकार को सङ्ग लिये गुरुजी के पास जा नहीं सकते थे।

अब प्रभु संग जाहु गुर पाँहीं। तुम्ह कहुँ नाथ निहोरा नाँहीं॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिए संग बिहँसे द्वौ भाई॥२॥

अर्थ : अब प्रभु के साथ गुरुजी के पास चलूँ। हे नाथ ! यह निहोरा आप पर नहीं है। कृपानिधि मुनिजी की चतुराई देखकर उन्हें साथ ले लिया और दोनों भाई विहँसे।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि अब आपके सङ्ग गुरुजी के पास चलूँगा। आपको पहुँचाने नहीं जा रहा हूँ। इसलिए आप पर निहोरा नहीं है। अपने मतलब से जा रहा हूँ।

प्रभु कृपानिधि हैं। नयी कृपा करते ही जाते हैं। यथा : बिगरी बनावे कृपानिधि की कृपा नई। मुनिजी की चतुराई देखा कि साथ में चलकर मुझे गुरुजी को दक्षिणा रूप में देना चाहते हैं। गुरुजी के पास बिना मेरे साथ न जाने का अर्थ क्या है ? अतः मुनिजी की चतुराई पर दोनों भाई खूब हँसे और साथ ले लिया।

## ३०. प्रभु अगस्त्यसत्संग

पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा॥
तुरत सुतीछन गुरु पहँ गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥३॥

अर्थ : रास्ते में अपनी अनूप भक्ति का वर्णन करते हुए सुरभूप रामजी मुनिजी के आश्रम पर पहुँच गये। सुतीक्ष्णजी तुरन्त गुरुजी के पास गये और दण्डवत् करके ऐसा कहने लगे।

व्याख्या : बातचीत करते करते रास्ता कट जाता है। अतः रास्ता चलते बातचीत होती जाती है। यथा : बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा। मुनिजी को भक्ति प्रिय है और सरकार को भी वही प्रिय है। इसलिए अनूप भक्ति जो सुख की मूल है उसका वर्णन करते चले। यथा : भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलहइ जो संत होहिं अनुकूला। सुरभूप हैं। प्रजा के हित के लिए पहुँचे।

सुतीक्ष्णजी गुरुजी के पास त्वरित गति से आगे बढ़ गये और जाकर दण्डवत् किया। गुरुजी साकांक्ष हुए कि गुरु दक्षिणा में रामजी को मिलाने के लिए कहकर गया था। इतने दिनों के बाद आया है। देखें क्या कहता है?

नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥४॥

अर्थ : हे नाथ! कोशलाधीश के कुमार जगत् के आधार रामजी छोटे भाई तथा जानकीजी के समेत मिलने आये हैं। हे देव! जिनका आप दिन रात जप करते हैं।

व्याख्या : कोसलाधीस कुमारा कहकर दाशरथि राम अर्थात् अवतार होना द्योतित किया। यथा : ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रकट नरभूपा। तिनके गृह अवतरिहौं जाई। जगत् आधार से ब्रह्म कहा। यथा : एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। आये मिलन से गुरु दक्षिणा की उपस्थिति कही। गुरुजी राम वाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर के उपासक हैं। अतः केवल रामजी के आने की बात सुनकर मनोरथ को पूर्ण न मानते हुए उतने प्रसन्न हुए जितना होना चाहिए था।

सुतीक्ष्णजी की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है। तुरन्त समझ गये। अतः कहते हैं : अनुज समेत बैदेही : आये हुए हैं। रात दिन जिसे आपजपा करते हैं : कहकर अभिलाषा की पूर्ति की ओर सङ्केत करते हैं।

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए॥
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिये उर लाई॥५॥

अर्थ : यह सुनते ही अगस्त्यजी तुरन्त उठकर दौड़े। भगवान् को देखते ही उनकी आँखों में जल भर आया। दोनों भाई मुनिजी के चरणों में गिरे। ऋषिजी ने अत्यन्त प्रेम से हृदय में लगा लिया।

व्याख्या : सुनते ही अगस्त्यजी अति उत्कण्ठा से उठकर दौड़ पड़े। आगे जाकर लेना चाहिए! कहीं चले न आवें और इस सत्कार से मैं वञ्चित रह जाऊँ

अथवा आश्रम द्वार पर ही कहीं खड़े न हों। प्रभु को देखा तो सात्त्विक भाव हुआ। आँखों में आनन्दाश्रु छा गया। दृष्टि थोड़ी हो गयी। गुरुजी के सम्बन्ध से दोनों भाइयों ने दण्डवत् किया। अगस्त्यजी बड़े ऊँचे दर्जे के ऋषि हैं। इनके यहाँ साक्षात् शङ्कर भगवान्-सत्सङ्ग के लिए आते हैं। सनकादिक आते हैं। यथा : एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गये कुंभज रिषि पाहीं। तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घट संभव मुनि बिज्ञानी। दण्डवत् करते देखकर ऋषिजी ने अत्यन्त प्रीति से हृदय में लगा लिया। अपने सन्तप्त हृदय को शीतल किया।

सादर कुसल पूँछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारे आनी॥
पुनि कर बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहिं सम भाग्यवंत नहिं दूजा॥६॥

अर्थ : ज्ञानी मुनि ने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उन्हें लाकर आसन पर बिठलाया। फिर बहुत प्रकार से प्रभु की पूजा करके बोले कि मेरे समान दूसरा कोई भाग्यवान् नहीं है।

व्याख्या : मुनि ज्ञानी कहकर उनकी भक्ति को अहैतुकी कहा। यथा : आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः। आदर से विनय पूछना सत्कार का प्रथम अङ्ग है। तत्पश्चात् आश्रम में ले गये। आसन दिया। सरकार को उनके सामने आसन पर बैठाने में सङ्कोच है। अतः मुनिजी ने आग्रहपूर्वक बिठाया। भगवती गायत्रीरूपा ब्राह्मणों की उपास्य देवता हैं। अतः उसके उपासना के विरुद्ध पड़ने की आशङ्का से प्रणाम नहीं करतीं। केवल बड़ों की आज्ञा से वसिष्ठजी को प्रणाम करती हैं। यथा : सास ससुर गुरु सेवा करेहू।

पञ्चोपचार, षोडशोपचार, सहस्रोपचार पूजा की जाती है। यहाँ कोई नियम नहीं। जितने प्रकार की पूजाएँ बन पड़ीं सभी की गयीं। तत्पश्चात् अपने भाग्य की प्रशंसा की। साक्षात् प्रभु के आगमन से बढ़कर और भाग्य क्या होगा। अथवा सरकार की प्राप्ति से भाग्यवान् तो और लोग भी हुए। पर गुरुर्दक्षिणा में सरकार को मुनिजी ने ही पाया। इसलिए मो सम भाग्यवंत नहि दूजा कह रहे हैं।

जहँ लगि रहे अमर मुनि बृंदा। हरखे सब बिलोकि सुख कंदा॥७॥

अर्थ : जितने मुनि थे वे सब सुख के बादल रामजी को देखकर हर्षित हुए।

व्याख्या : अपर मुनिवृन्द श्रीराम मन्त्र की व्याख्या सुन रहे थे। जिस समय प्रभु आये उस समय अगस्त्यजी श्रीराम मन्त्र की व्याख्या कर रहे थे। व्याख्या समाप्त होते न होते श्रीरामजी की प्राप्ति हो गयी। आनन्द की वर्षा हो गयी। यथा : भूसुर ससि नव बृंद बलाहक हैं। अतः मुनि लोग नव शस्य की भाँति आनन्द कन्द की प्राप्ति से हर्षित हो उठे।

दो. मुनि समूह महं बैठे, सनमुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत, मानहु निकर चकोर॥१२॥

अर्थ : मुनि समूह के बीच में रामजी सबके सम्मुख बैठे। जैसे चकोर का समूह शरत्चन्द्र की ओर टकटकी लगाये देख रहा हो।

व्याख्या : मुनिमण्डली के मध्य में बैठे हैं। और किसी की ओर पीठ नहीं है। सब अपने सामने ही देख रहे हैं। मुनिलोग बड़े प्रेमी हैं। बड़े आनन्द से दर्शन कर रहे हैं। इसलिए चकोर निकर से उपमा दी। रामजी बड़े सुन्दर हैं। इसलिए उन्हें शरत्चन्द्र से उपमित किया। चकोरों को चन्द्रमा का दर्शन बड़ा प्रिय है। किं पुनः शरत्चन्द्र के दर्शन से तो वे अघाते ही नहीं। ऐसी ही मुनियों की दशा हुई। चन्द्रमा का पृष्ठ भाग किसी को दृष्टिगोचर नहीं होता। क्योंकि चन्द्रमा अपनी धुरी पर नहीं घूमते। सरकार का इच्छामय रूप है। अतः सङ्कल्पानुसार दर्शन हो रहा है।

तब रघुबीर कहा मुनि पाँहीं। तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाँहीं॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयेउँ। ताते तात न कहि समझाएउँ॥१॥

अर्थ : तब रघुबीर ने मुनिजी से कहा हे प्रभो! आपसे कोई छिपाव नहीं है। मैं जिस कारण से आया हूँ आप जानते हैं। इससे हे तात! मैंने समझाकर नहीं कहा।

व्याख्या : जब पूजनोपरान्त मुनिजी कृतकृत्य होकर बैठे तब कहा। रघुबीर हैं : अपनी प्रतिज्ञा : निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह : पूरी किया चाहते हैं। अगस्त्यजी को सरकार प्रभु कहते हैं। स्वामी सेवक का नाता जोड़े बैठे हैं। स्वामी से छिपाव नहीं करना चाहिए। यथा : स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी। अतः कहते हैं कि आप से कोई छिपाव नहीं है। भावार्थ यह कि औरों से छिपाव है। यथा : गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु।

दूसरी बात यह कि जो भेद जानता हो उससे क्या दुराव है। लोग तो यही जानते हैं कि कैकेयी के वरदान के कारण पिता ने वन दिया। इसीलिए आये हैं। पर मुख्य कारण आप जानतें हैं। तुलसी जौ गृह रहौं मातु हित को सुरधेनु बिप्र भय टारै। गी.। वाल्मीकिजी से थोड़ा दुराव किया था। सो उन्होंने सारा भेद ही खोल दिया। यथा : श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी। जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की। जो सहस सीस अहीस महिधर लखन सचराचर धनी। सुरकाज धरि नरराज तन चले दलन खल निसिचर अनी। अतः कहते हैं कि आप जानते हैं विस्तार से कहने की अवश्यकता नहीं है।

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी॥२॥

अर्थ : हे प्रभो! अब मुझे ऐसा मन्त्र दीजिये जिस प्रकार से मुनिद्रोही को मैं मारूँ। प्रभु की वाणी सुनकर मुनिजी मुसकुराये : बोले कि मुझसे नाथ! क्या समझकर पूछ रहे हैं।

व्याख्या : भाव यह कि प्रतिज्ञा तो कर दिया कि निसिचर हीन करौं महि पर तब से एक निसिचर भी हाथ न लगा। विराध्र बध से सब सावधान हो गये हैं। सामना बचा जाते हैं। अब ऐसा मन्त्र चाहिए कि जिसमें निसिचर सामने आवें और उन्हें मार सकूँ। यहाँ मन्त्र शब्द का अर्थ सम्मति है। यथा : मंत्र न यह लछिमन मन भावा।

रामजी मुनिजी को प्रभु कहते हैं। और मुनिजी रामजी को प्रभु कहते हैं। परस्पर एक दूसरे में स्वामी सेवक भाव मान रहे हैं। मुनिजी मुसकुराये कि सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् होकर कैसी अल्पज्ञ तथा अल्प सामर्थ्य की सी वाणी बोल रहे हैं। अतः कहते हैं कि मुझे क्या समझकर पूछा। नियम यह है कि अपने अधिक जानकार से बात पूछी जाती है। क्या मैं आपके पूछने योग्य हूँ जो आप पूछ रहे हैं। प्रभु के स्थान पूछने पर वाल्मीकिजीने भी ऐसा ही उत्तर दिया था कि जहँ न होउ तहँ देउँ कहि तुम्हहि बतावों ठाउँ। भरद्वाजजी से रास्ता पूछा तो उन्होंने कहा : सुगम सकल मग तुम कहँ अहहीं। ऐसा ही उत्तर अगस्त्यजी दे रहे हैं।

तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी। जानौं महिमा कछुक तुम्हारी॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥३॥

अर्थ : हे पाप नाशक ! तुम्हारे ही भजन के प्रभाव से तुम्हारी कुछ महिमा मैं जानता हूँ। तुम्हारी माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है। जिसमें ब्रह्माण्डों के अनेक समूह फलरूप से लगे हुए हैं।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि मेरी जानकारी इतनी ही है कि आपकी महिमा का प्रादेशमात्र जानता हूँ। इतना ज्ञान भी आपके भजन से ही हुआ। यथा : जाना चहहिं गूढ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ। यही तो मेरी जानकारी है। उसे भी सुन लीजिये।

मुनिजी ने प्रभु की माया की उपमा गूलर के वृक्ष से दिया। इससे अच्छी उपमा दूसरी मिलनी दुर्लभ है। अब साधारण धर्म कहते हैं। गूलर के वृक्ष में तमाम फलों के गुच्छे लगते हैं। उसी भाँति मायावृक्ष में ब्रह्माण्ड निकाय लगे हुए हैं। यथा : रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मांड।

जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहि आना॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला॥४॥

अर्थ : ये चराचर जीव उन फलों के जन्तु के समान हैं। जो उनके भीतर बसते हैं। और दूसरा कुछ भी नहीं जानते। उन फलों का खानेवाला काल है। वह कठिन कराल है। पर आपके डर से वह भक्त सदा डरा करता है।

व्याख्या : जिस भाँति गूलर के फल के भीतर जन्तु बसते हैं उसी भाँति ब्रह्माण्ड के भीतर चराचर जीव बसते हैं। न उन जन्तुओं को गूलर के फल के बाहर का कोई वृत्तान्त ज्ञात है और न चराचर जीवों को अपने ब्रह्माण्ड के बाहर का

कुछ पता है। मुनिजी कहते हैं कि मैंने आपके भजन के प्रभाव से इतना ही जान पाया है कि यही ब्रह्माण्ड सब कुछ नहीं है। ऐसे ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मायावृक्ष में गूलर के फल के गुच्छों की भाँति गुथे हुए हैं।

वह मायावृक्ष मानों काल के लिए ही लगा हुआ है। गूलर के फल की भाँति ही काल भी एक ब्रह्माण्ड का एक ही ग्रास करता है। लोग गूलर के फल को फोड़कर उसमें के जीवों को पहिले उड़ा देते हैं। तब उसे खाते हैं। पर काल ब्रह्माण्डों को जीवों के सहित खा जाते हैं। इसलिए कठिन कराल है। इस भाँति सब ब्रह्माण्डों को खाया करता है। गूलर वृक्ष की ही भाँति मायावृक्ष में नये नये ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ करते हैं। और काल उनका कलेवा किया करता है। वह ऐसा कराल है कि उसका पेट भरता नहीं। केवल कलेवा से किसी का काम नहीं चलता। यथा : सुर नर असुर नाग मुनि देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा : और प्रभु तो काल व्याल के भी भक्षक साक्षात् गरुड़ रूप हैं। अपने अन्ततक से सभी डरते हैं। अतः वह काल भी आपके भय से भयभीत रहता है। भाव यह है कि उस काल का भी अन्त है। देशतः कालतः वस्तुतः अपरिच्छिन्न केवल आप हैं। आप ही कालत्रयातीत हैं।

ते तुम्ह सकल लोकपति साँई। पूछेहु मोहि मनुज की नाँई ॥
यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदय श्री अनुज समेता ॥५॥

अर्थ : वे ही आप सब लोगों के स्वामी होकर भी मुझसे मनुष्य की भाँति पूछ रहे हैं। हे कृपानिकेत ! मैं तो यह वर माँगता हूँ कि मेरे हृदय में सीताजी तथा छोटे भाई के सहित सदा निवास कीजिये।

व्याख्या : जैसी बात आपने पूछा ऐसी बातें तो मनुष्य पूछा करते हैं। आप तो मनुष्य नहीं हैं। आप तो काल के भी काल अखिल ब्रह्माण्डनायक हैं। आप स्वामी हैं। आपके ऐसा कहने से अस्मदादिक को मोह हो सकता है। यथा : प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरे होत बचन सुनि मोहा। अतः मोह के भय से तुरन्त मुनिजी ने वरदान माँगा। अनुज श्री सहित बसने से फिर मोह का भय न होगा। अतः मेरे हृदय में सीता और अनुज सहित बसिये। यथा : तब लगि हृदय बसत खलना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि माथा। तथा : भरत हृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू : गुरु शिष्य की समान रुचि है। सुतीक्ष्णजी ने भी हृदय में बसाने के लिए वरदान माँगा था।

अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा ॥
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहि जेहि संता ॥६॥

अर्थ : और प्रगाढ भक्ति वैराग्य सत्संग तथा चरण कमलों में अटूट प्रेम

माँगता हूँ। यद्यपि जिस अखण्ड और अनन्त ब्रह्म को सन्त भजते हैं वे अनुभव से ही जाने जाते हैं।

व्याख्या : अन्तराय रहित भक्ति को अविरल भक्ति कहते हैं। यह सब साधन का फल है। यथा : सबकर फल हरि भगति भवानी। वैराग्य सब धर्मों का फल है। यथा : तेहिकर फल पुनि विषय बिरागा। सत्सङ्ग फल सिद्धि है। यथा : सतसंगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। इस भाँति मुनिजी ने तीनों फल ही माँगा। फिर भी अटूट प्रेम के लिए प्रार्थना करते हैं। प्रेम का प्रवाह तैल धारावत् अविच्छिन्न होना चाहिए। बीच में भङ्ग न हो। भजन तो वैरभाव से भी होता है। यथा : वैरभाव सुमिरत मोहि निसिचर : पर मुनिजी को वैसा भजन पसन्द नहीं। क्योंकि उससे जाड़े में गङ्गास्नान की भाँति इस लोक में आनन्द नहीं मिलता। अतः प्रेम भाव से भजन चाहते हैं। गरमी में गङ्गास्नान की भाँति प्रेम भाव से भजन करने में इस लोक और परलोक दोनों में सुख है अथवा अविरल भक्ति ता निर्गुण रूप की भी होती है। अतः चरण सरोरुह प्रीति अभङ्गा से बात स्पष्ट कर दिया कि सगुण रूप की भक्ति मुनिजी चाहते हैं।

मुनिजी ने दोषापनयन के लिए सरकार का हृदय में निवास माँगा। अब गुणाधान के लिए अविरल भक्ति आदि माँग रहे हैं।

अब सगुण भक्ति माँगने का कारण कहते हैं। यद्यपि निर्गुण रूप से प्रभु ब्रह्म है। अत्यन्त बृहत् अर्थात् व्यापक है। वस्तुतः अपरिच्छिन्न है। अखण्ड होने से देशतः अपरिच्छिन्न है। अनन्त होने से कालतः अपरिच्छिन्न है। अनुभवगम्य है अर्थात् स्वसंवेद्य हैं। परम अधिकारी सन्त लोग उनका भजन करते हैं। यथा : मोहि परम अधिकारी जानी। लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा : और यही परमार्थ रूप है।

अस तव रूप बखानौ जानौ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौ ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई। ताते मोहि पूँछेहु रघुराई ॥७॥

अर्थ : ऐसे रूप का मैं वर्णन करता हूँ और जानता हूँ। फिर भी लौट लौटकर सगुण ब्रह्म में ही रति मानता हूँ। आप सदा से ही दासों को बड़ाई देते आये हैं। इसीलिए हे रघुनाथजी ! आपने मुझसे पूछा है।

व्याख्या : सरकार के इस परमार्थ रूप का मैं वर्णन भी किया करता हूँ। ऐसा कहने पर भी मुनिजी कहते हैं कि रूप को मैं जानता हूँ। भाव यह कि वर्णन तो परोक्ष ज्ञानवाले भी किया करते हैं। पर उन्हें अनुभव नहीं है और वह रूप अनुभवगम्य है। मुनिजी का कहना है कि मुझे अनुभव भी है। अर्थात् अपरोक्ष ज्ञान भी है। फिर भी उस अनुभव से बारबार हटकर सगुण रूप में प्रीति करता हूँ। यथा : सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहि परम अधिकारी : अतः समाधि छोड़कर सगुण ब्रह्म में प्रीति करता हूँ। क्योंकि प्रभु में गुण ही ऐसे हैं।

यह स्तुति उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र है। इसमें दो तारे चमकते हैं सगुण और निर्गुण। आकार शय्या का सा है। जिस भाँति दिनभर घूम फिरकर मनुष्य शय्या में ही विश्राम पाता है इसी भाँति निराधार निर्गुण में घूम घामकर शय्या की भाँति सगुण में ही रति होती है। यथा : अस तव रूप बखानौ जानौ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौ : इस स्तुति की फलश्रुति में ग्रन्थकार ने कुम्भज शब्द रखकर स्पष्ट कर दिया कि यह अगस्त्यजी की स्तुति है। उन्हीं की भाँति अपार लोभसमुद्र को सोख जाती है। यथा : कुंभज लोभ उदधि अपार के। जिसे यह भावना हो गयी कि इस ब्रह्माण्ड में हम गूलर फल के कीट की भाँति रहते हैं : कुछ जानते नहीं : उसमें लोभ की भावना रह नहीं सकती।

मुनिजी के वरदान माँगने पर सरकार ने एवमस्तु नहीं कहा। क्योंकि उन्हें बड़ा मान लिया है पर दे दिया। मुनिजी अनुभव कर रहे हैं कि वरदान मिल गया। अब जो मन्त्र पूछा गया था उसके विषय में कहते हैं कि मैं दास हूँ। प्रभु की प्रीति दास पर अधिक है। अतः उन्हें बड़ाई देते हैं। नहीं तो आपके लिए अज्ञेय क्या है ? प्रभु के पूछने पर हठात् गुरु की भाँति उपदेश करने बैठना धृष्टता है और कुछ न कहना आज्ञा भङ्ग है। अतः भूमिकापूर्वक उत्तर देते हैं।

## ३१. दण्डक वन की पावनता

है प्रभु परम मनोहर ठाँऊँ। पावन पंचवटी तेहि नाँऊँ ॥
दंडक बनु पुनीत प्रभु करहू। उग्र श्राप मुनिवर कर हरहू ॥८॥

अर्थ : हे प्रभो ! एक परम मनोहर स्थान है। पवित्र पञ्चवटी उसका नाम है। हे प्रभो ! आप दण्डक वन को पवित्र कीजिये और श्रेष्ठ मुनि के उग्र शाप को दूर कीजिये।

व्याख्या : अब अपनी सम्मति कहते हैं कि दण्डक वन में एक स्थान है जिसे पञ्चवटी कहते हैं। वह परम मनोहर है। अश्वत्थो बिल्ववृक्षश्चवटो धात्री अशोककम्। वटीपञ्चकमित्युक्तं स्थापयेत् पञ्चदिक्षु च। वहाँ पाँच दिशाओं में पञ्चवट स्थापित हैं। पीपल, वेल, वट, आँवला और अशोक। उसका नाम पवित्र है। वह स्थान तो भृगुमुनि के शाप से अपवित्र हो चुका है : वह दण्डक राजा का राज्य था। उसने मुनिपुत्री के साथ बलात्कार किया। इस पर मुनिजी ने दारुण शाप दिया। वह राज्य नष्ट होकर वन हो गया। वहाँ राक्षस रहते हैं। मुनि नहीं रह सकते। उसको शाप विनिर्मुक्त करने में आप ही समर्थ हैं। अर्थात् वहाँ आपको राक्षस मिलेंगे। वह स्थान बड़ा रमणीय है। आपके जाने से शाप के कारण जो अपवित्रता आगयी है : राक्षसों का निवासस्थल हो गया है : वह अपवित्रता दूर हो जायगी।

बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया ॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचवटी नियराई ॥९॥

अर्थ : हे रघुकुल के राजा ! आप वहीं वास कीजिये और सब मुनियों पर दया कीजिये। मुनिजी की आज्ञा पाकर रामजी वहाँ से तुरन्त ही चल दिये और पञ्चवटी के सन्निकट पहुँच गये।

व्याख्या : आपके निवास योग्य वह स्थल है। वहीं आप निवास कीजिये। आप रघुकुल के राजा हैं। आपको दुष्टों को दण्ड देने का अधिकार और सामर्थ्य है। मुनिजी महात्मा हैं। राक्षसों का वध करना न कहकर मुनियों : पर दया करने को कहते हैं। मुनियों पर दया करके ही प्रभु प्रतिज्ञा कर चुके हैं : निसिचर हीन करौं महि। उस प्रतिज्ञा को पूर्ति वहीं निवास करने से होगी। दुष्टों का निग्रह ही सज्जनों पर अनुग्रह करना है। यही बड़ी भारी अहिंसा है और दुष्टों पर अनुग्रह ही बड़ी भारी हिंसा है। इस अहिंसा के सिद्धान्त के स्थापना के लिए ही अवतार होता है। यथा : परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।

आज्ञा पाने से ही आज्ञा माँगना अर्थतः सिद्ध है। प्रतिज्ञा पूर्ति की उत्कट इच्छा है। अतः तुरन्त चल दिये। इसलिए केवल रामजी का ही चलना लिखते हैं। क्योंकि केवल उन्हीं ने प्रतिज्ञा की थी। वहाँ से पञ्चवटी दो योजन पर थी। अतः उसी दिन उसके निकट पहुँच गये।

## ३२. गीध मैत्री प्रसङ्ग

दो. गीधराज सैं भेंट भइ, बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु, रहे परन गृह छाइ ॥१३.७॥

## ३३. पञ्चवटी निवास मुनित्रास भञ्जन प्रसङ्ग

अर्थ : वहाँ गीधराज से भेंट हुई। उसके साथ बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर प्रभु गोदावरी नदी के निकट पत्ते की कुटी बनाकर रहने लगे।

व्याख्या : गीधराज का नाम जटायु था। वे वहाँ रहते थे। उनसे भेंट हुई। बड़े पुराने परिचित निकले। महाराज दशरथ की उनकी मैत्री थी। इस भेंट से वह प्रीति और बढ़ी। उन्होंने कहा कि जिस समय आप दोनों भाई आखेट के लिए जायेंगे उस समय में जानकीजी की रक्षा करूँगा। एक सहायक मिलने के नाते से भी प्रीति बढ़ी। इसलिए कवि लिखते हैं : बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ। प्रभु समर्थ हैं : गोदावरी नाम की पुण्य नदी के निकट पर्णकुटी बनाकर ठहर गये। नहीं तो वहाँ राक्षसों का इतना भय था कि देवता लोग कुटी बनाने नहीं आये। जैसा कि चित्रकूट में किया था या प्रवर्षण गिरि पर करेंगे। यथा : प्रथमहि देवन्ह गिरि गुहा राखी रुचिर बनाइ। राम कृपा निधि कछु दिन बास करहिंगे आइ।

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा ॥
गिरि बन नदी ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए ॥१॥

अर्थ : जब से रामजी ने वहाँ निवास किया मुनि लोग सुखी हो गये। उनका डर जाता रहा। पहाड़ वन नदी ताल सब शोभा से छा गये। नित्य प्रति वे अधिक सुहावने होने लगे।

व्याख्या : अगस्त्यजी ने कहा था। बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजिअ सकल मुनिन्ह पर दाया। उसी का साफल्य दिखला रहे हैं। दया यह हुई कि वे अभय हो गये। सूर्पणखा रावण से कहेगी कि जिन्हकर भुजबल पाइ दसानन। अभय भये विचरत मुनि कानन। दण्डकारण्य के बाहर रहनेवाले भी त्रस्त रहते थे। अब तो सभी मुनि निर्भय आनन्द से वन में घूमने लगे।

अब मुनिजी के दूसरे वचन का साफल्य दिखलाते हैं। दूसरा वचन यह था कि : दंडक बन पुनीत्त प्रभु करहू। सो दण्डक वन पुनीत हो गया। परम मनोहर होने पर भी भयप्रद था। इससे उसकी मनोहरता दबी हुई थी। अब भय के हट जाने से निर्दोष हो गया। अतः कहते हैं कि शोभा छा गयी। इतना ही नहीं प्रभु के निवास के माहात्म्य से शोभा नित्य बढ़ने लगी। गिरि, वन, नदी और ताल ये ही प्राकृत दृश्य हैं। दण्डक वन में ये सब थे। इनकी शोभा नित्य नवीन मालूम होने लगी।

**खग मृग वृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥**
**सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुबीर बिराजा॥२॥**

अर्थ : पशु पक्षी सब आनन्दित होकर रहने लगे और मधुर गुंजार करते भौंरे शोभा पा रहे थे। जहाँ प्रत्यक्ष रघुवीर विराजमान हैं उस वन का स्वयं शेषजी वर्णन नहीं कर सकते।

व्याख्या : प्रभु के निवास से चित्रकूट की भाँति यहाँ भी सब जीवों ने सहज वैर छोड़ दिया और उस वन में एक दूसरे से प्रेम करने लगे। यथा : सहज वैर सब जीवन्ह त्यागा। गिरिपर सकल करहिं अनुरागा। अतः कहते हैं : खग मृग वृंद अनंदित्त रहहीं। वन के पेड़ सदा फूलने फलने लगे। यथा : फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन। फल फूलों की सरसता कहते हैं कि भौंरे गूँज रहे थे। फल फूलों की शोभा भौंरों के गूजने से हो जाती है। अतः छबि लहहीं कह रहे हैं। वन में भी छवि है और वनवासी जीवों में भी छवि है।

सभी वर्णन करनेवालों में शेषजी को बड़ा सुभीता है। फणमण्डल से मण्डित होने से सब ओर एक साथ देखते हैं और वर्णन करने का साधन भी अत्यन्त अधिक है। सहस्रमुख हैं और एक एक मुख में दो दो जिह्वाएँ हैं। सब ओर से सबका वर्णन अनेक भाँति से एक साथ कर सकते हैं। पर यहाँ तो प्रभु के आने से क्षण क्षण नित्य नवीन शोभा बढ़ रही है। वर्णन करते ही करते शोभा आगे बढ़ जाती है। तब कैसे वर्णन कर सकें? इससे दण्डक वन का केवल दोषापनयन नहीं कहा। गुणाधान भी कहा।

## ३४. लक्ष्मणोपदेश प्रसंग

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना ॥
सुर नर मुनि सचराचर साँई। मैं पूछौं निज प्रभु की नाँई ॥३॥

अर्थ : एक बार प्रभु सुख से बैठे थे। उस समय लक्ष्मणजी ने छलहीन वचन कहे। हे सुर नर मुनि तथा चराचर के स्वामी ! मैं अपने स्वामी की भाँति पूछता हूँ।

व्याख्या : एकबार : भाव यह कि देश पहिले कह चुके है। सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुवीर बिराजा। अर्थात् दण्डक वन का यह वृत्तान्त है। समय के लिए कह रहे हैं कि दिन निश्चित नहीं। पर अगस्त्यजी से मिलकर पञ्चवटी में ठहरने के बाद और सूर्पणखा के आगमन के पहिले ही किसी दिन।

प्रभु कर्तुंमकर्तुंमन्यथा कर्तुं समर्थः प्रभुः अर्थात् समर्थ हैं। दण्डक वन का उग्र शाप हरण करके उसे पवित्र करके विराजमान हैं। यथा : अगस्त्य वचन : दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र श्राप मुनिवर कर हरहू।

सुख आसीना : भाव यह कि नित्य क्रिया करके सावकाश बैठे हैं। एकान्त है। जनकनन्दनी भी वहाँ पर नहीं है। ऐसा ही समय प्रश्न के लिए उपयुक्त है। सुखासन से बैठे हैं। योगशास्त्र का भी यही अनुशासन है कि स्थिरसुखमासनम्।

लछिमन : बचपन से ही प्रभु के चरणों में प्रेम करनेवाले हैं। यथा : बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी। अर्थात् भक्त भी और सखा भी।

छलहीन वचन कहे : यहाँ अहङ्कार का अनुवेध ही छल है। अन्याय युक्त प्रश्न करनेवाले का उत्तर देना निषिद्ध है। यथा : नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छतः। यहाँ छलहीन शब्द से सच्ची जिज्ञासा दिखलायी। सुनी चहैं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी।

सुरनर मुनि सचराचर साइं : भाव यह कि आप सर्वेश्वर हैं। सबके गुरु हैं। स सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं। इत्यादि।

मैं पूछौ : भाव यह कि मैं तो आपका निज दास हूँ। यथा : गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू। जहँ लगि जगत् सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजगाई। मोरे सबुइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी।

निज प्रभु की नाइं : भाव यह कि जीव और ईश्वर में अनेक सम्बन्ध है। यथा : मोहि तोहि नातो अनेक मानिये जो भावे। सो मुझे तो आप की ही गति है। दूसरे की आशा नहीं। अतः निज प्रभु की नाइं पूछता हूँ। यथा : पुनि मोहि तिन्हते प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।

**मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा । सब तजि करौं चरन रज सेवा ।।**
**कहहु ग्यान बिराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ।।४।।**

अर्थ : हे देव ! मुझे वही समझाकर कहो । जिससे सब त्याग करके चरणरज की सेवा करूँ । मुझे ज्ञान विराग और माया बतलाओ और वह भक्ति बतलाओ जिससे दया करते हो ।

व्याख्या : देवा : श्रीरामजी इष्टदेव हैं । इसलिए देव सम्बोधन दिया । जिसकी सेवा करनी है उसीसे सेवा की विधि जान लेने से भ्रम को स्थान नहीं रह जाता । सो सेव्य होने से उनका देव शब्द से सम्बोधन किया गया ।

सोइ मोहि समुझाइ कहो : यद्यपि छहों प्रश्नों के लिए समझाकर कहने के लिए प्रार्थना है । तथापि सोइ शब्द के प्रयोग से अन्तिम प्रश्न पर अधिक जोर मालूम पड़ता है । क्योंकि सिद्धान्त तो थोड़े शब्दोंमें ही कहा जा सकता है । परन्तु साधन के बिना विस्तारपूर्वक कहे काम नहीं चलता । यह प्रश्न साधन विषयक है ।

सब तजि : भाव यह कि : आप सुर नर मुनि सचराचर साईं है । आपका सभी भजन करते हैं । रागी पुरुष को श्री चरणों में अति अनुराग नहीं हो सकता । वह तो विरागी को ही हो सकता है । यथा : जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनि बृंदा । दूसरा भाव यह है कि बिना सब कुछ तजे रात दिन भजन नहीं हो सकता । यथा : अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजन करौं दिनराती ।

चरन रज सेवा करौं : लक्ष्मणजी का बड़ा प्रेम श्री चरणों में है । यथा : चापत चरन लषन उर लाये । समय सप्रेम परम सचुपाये । वह प्रेम पिपासा बढ़ती ही जाती है । अतः चरण रज सेवा को ही लक्ष्मणजी पूछते हैं । यहाँ पर चरण रज सेवा कहकर अपना आर्ताधिकारी होना सूचित किया ।

ग्यान : दूसरा प्रश्न ज्ञान विषयक है । क्योंकि कहहिं संत मुनि बेद पुराना । नहिं कुछ दुर्लभ ग्यान समाना । तथा : ग्यान मोच्छ प्रद बेद बखाना । विषय सम्बन्धी ज्ञान तो सभी को है । पर जानने योग्य ज्ञान कौन सा है ?

बिराग : तीसरा प्रश्न बिराग विषयक है । क्योंकि यही विवेक राजा का मन्त्री है । यथा : सचिव बिराग बिबेक नरेसू । इसके बिना संन्यासी भी उपहास योग्य समझा जाता है । यथा : सब नृप भये जोग उपहासी । जैसे बिन बिराग संन्यासी । वह विराग क्या है ?

अरु माया : यद्यपि माया में ही संसार पड़ा हुआ है । तथापि उसके जानने की आवश्यकता है । क्योंकि इसके चरित्र को कोई लख नहीं पाता । और इसी के वश में पड़ा हुआ संसार नाच रहा है । यथा : जो माया सब जगहि नचावा । जासु चरित लखि काहु न पावा । यह माया बिना रामजी की कृपा के नहीं छटती । लक्ष्मणजी इसका भी परिचय जानना चाहते हैं । यह चौथा प्रश्न है ।

कहहु सो भगति : भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से है। एक तो भावव्युत्पत्ति है। यथा : भजनं अन्तःकरणस्य भगवदाकारता भक्तिः। भजन अर्थात् अन्तःकरण की भगवदाकारता भक्ति है और दूसरे में करणव्युत्पत्ति होती है। यथा : भज्यते सेव्यते भगवदाकारमन्तःकरणं क्रियते अनया। जिससे सेवन अर्थात् भगवदाकार अन्तःकरण किया जाता है उसे भक्ति कहते हैं। पहिली को फलरूपा और दूसरी को साधनरूपा भक्ति कहते हैं। शाण्डिल्यशतसूत्री तथा नारद-भक्तिसूत्र में परम प्रेम को भक्ति माना है। यथा : सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे। शा. सू.। सा कस्मै परमप्रेमरूपा। परन्तु यह सात्त्विकी परिभाषा है। इसके अन्तर्गत राजस और तामस भक्त नहीं आ सकते। भक्तिरसायन में दी हुई परिभाषा में सभी प्रकार के भक्तों का समावेश है। यथा : द्रुतस्य भगवद्धर्माद् धारावाहिकतां गता। सर्वेशे या मनोवृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते। भगवत् गुणश्रवण से जिसका चित्त द्रवीभूत होता है उसकी चित्तवृत्ति यदि परमेश्वर में धारावाहिकता को प्राप्त हो तो उसे भक्ति कहते हैं।

कहहु जेहि दाया : भजत कृपा करिहैं रघुराई। सो रघुराई सात्त्विकी भक्ति होने पर तो कृपा करते ही हैं। राजसी और तामसी भक्ति होने पर भी करते हैं। यथा : उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम गति सो जिअ जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी।

दो. ईश्वर जीव भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाइ।
जाते होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ ॥१४.८॥

अर्थ : प्रभो ! ईश्वर और जीव में क्या भेद है। यह सब समझाकर कहिए। जिसमें आपके चरणों में प्रेम होकर शोक मोह तथा भ्रम दूर हो।

व्याख्या : ईश्वर जीव भेद : भाव यह कि ईश्वर भी चेतन है और जीव भी चेतन है। दोनों कर्म करते हैं। दोनों माया से सम्बद्ध हैं। दोनों अनादि हैं। फिर दोनों में अन्तर क्या ?

प्रभु : भाव यह कि पहिले ही कह आये हैं कि मैं पूछहुँ निज प्रभु की नाईं। अतः इस लछिमन उपदेश प्रकरण भर में सरकार के लिए प्रायेण प्रभु शब्द का ही प्रयोग है। यथा : एक बार प्रभु सुख आसीना। मैं पूछौं निज प्रभु की नाईं। ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ। तथा : लछिमन प्रभु चरनहि सिरनावा।

सकल कहहु समुझाइ : भाव यह कि छहों प्रश्न समझाकर कहिए। यहाँ इन प्रश्नों का उत्तर केवल व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ अथवा परिभाषा मात्र से हो सकता है। अतः प्रार्थना की जा रही है कि समझाकर कहिए। समझाने से ही भ्रान्ति दूर होती है।

जाते होइ चरन रति : अपना लक्ष्य भी कहे देते हैं कि मेरा लक्ष्य भक्ति है : मुक्ति नहीं। जिसका लक्ष्य मुक्ति है उसके समझाने का मार्ग दूसरा है। जैसा कि

उत्तरकाण्ड के ज्ञान दीपक प्रसङ्ग में विस्तृत रूप से कहा गया है और भक्ति के समझाने का दूसरा ही मार्ग है। जो इस प्रकरण में कहा जायगा।

सोक मोह भ्रम जाई : इष्टवियोग जन्य दुःख से शोक होता है। मोह अज्ञान को कहते हैं। भ्रम अन्यथा ज्ञान कहते हैं। इसके विना हटे भक्ति नहीं होती। यथा : होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा। इससे यह भी दिखला दिया कि ये ही प्रश्न सब प्रश्नों के मूल हैं। इनका अभ्रान्त उत्तर यदि मन में बैठ जाय तो शोक मोह भय निवृत्तिपूर्वक भक्ति प्राप्ति का अधिकार होता है।

थोरेह मँह सब कहहुँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चितु लाई ॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया ॥१॥

अर्थ : हे तात ! मैं थोड़े ही में सब समझाकर कहता हूँ। तुम बुद्धि मन और चित्त लगाकर सुनो। मैं मेरा तैं और तेरा यही माया है। जिसने जीव समूह को वश कर रक्खा है।

व्याख्या : थोरेह मँह सब कहहुँ बुझाई : यह वक्ता का पाण्डित्य है कि सब कुछ समझाकर कहे और विस्तार न होने पावे। कितना काम तो उत्तर के क्रम से निकाल दिया। यहाँ देखेंगे कि प्रश्न के क्रम से उत्तर का क्रम भिन्न है। मोहि समझाइ कहौं सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा : ऐसा प्रश्न किया। पर सरकार ने इस प्रश्न का उत्तर पहिले न देकर चौथे प्रश्न का उत्तर : मैं अरु मोर तोर तैं माया कहकर देते हैं। क्योंकि भूमौ पतित पादानां भूमिरेव परं बलम् जो जमीन पर गिरा है वह उसी को टेककर उठेगा। सब लोग माया ही में पड़े हैं। अतः पहिले माया को ही समझना उचित समझा। उसके समझ लेने पर शेष का समझना कष्टसाध्य नहीं रह जाता। तात : यह प्यार का शब्द है। बड़े छोटे सबके लिये आता है। यथा : तात तात बिनु बात हमारी। तात सुनावहु मोहि निदानू। इत्यादि।

सुनहु मन मति चितु लाई : संकल्पविकल्पात्मक मन है। निश्चयात्मिका बुद्धि होती है। चित्त धारण करता है। परन्तु अन्तःकरण चार हैं : मन बुद्धि चित्त और अहङ्कार। सो तीन को लगाकर सुनने को कहते हैं। अहङ्कार का निषेध उसका नाम न लेकर करते हैं। अहङ्कार से जिज्ञासा की पात्रता नहीं रह जाती। और एकाग्रता के लिए मन बुद्धि चित्त को लगा देने की अनिवार्य आवश्यकता है।

मैं अरु मोर : बोलने वाला अपने को मैं कहता है। इसी को व्याकरण में उत्तम पुरुष कहते हैं। यहाँ मैं शब्द का प्रयोग मुख्य अर्थ में हुआ। अर्थात् चिदाभास और कूटस्थ का एकीभाव। अविद्या में पड़े हुए चेतन के प्रतिविम्ब को चिदाभास कहते हैं। और उसके अधिष्ठानभूत चिदंश को कूटस्थ कहते हैं। कूटस्थ और चिदाभास का विवेक न करके दोनों को एक मान लेना ही यहाँ एकीभाव है। इसी अर्थ में मैं शब्द का प्रयोग सर्व साधारण किया करते हैं।

मैं शब्द के षष्ठी का रूप मोर है। इसके द्वारा गृहादि से अपने सम्बन्ध का बोध होता है। यही मैं अरु मोर सब अनर्थों की [1]जड़ है। पहिले मैं अहंभाव का स्फुरण होता है। उसके फुरते ही जगत् दृश्य सपने की भाँति सामने खड़ा हो जाता है। मैं अरु मोर को ही मोह निशा कहा है। इसी रात में सोता हुआ मनुष्य संसार रूपी स्वप्न देख रहा है। यथा : मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महामोह निसि सोवत जागू।

तोर तैं : मैं का प्रतिद्वन्द्वी तैं है सो कोई यह न समझ ले कि तैं और तोर माया की सीमा के बाहर है। अतः इसका अलग उल्लेख किया गया। बोलनेवाला जिससे बोलता है उसे तैं तुम आप कहता है। इसे व्याकरण में मध्यम पुरुष कहा है। मैं के स्फुरण के बाद तैं का स्फुरण होता है। इसलिए मैं अरु मोर के बाद तैं अरु तोर का उल्लेख किया। मोर की भाँति तोर भी तैं के षष्ठी का रूप है। और सम्बन्ध स्थापन करता है।

माया : भाव यह कि मैं अरु मोर तोर तैं माया है। निस्तत्त्व है। कार्य तो इसका दिखलाई पड़ता है। अधिष्ठान से इसकी पृथक् सत्ता कुछ भी नहीं है। जिस भाँति सीप में रजत तीन काल में नहीं है। पर प्रत्यक्ष भासता है। यह भासना निस्तत्त्व है। पर यह मिटाये नहीं मिटता। इसी भाँति माया की स्थिति है। वह तीन काल में नहीं है। पर संसार भ्रम किसी के हटाये नहीं हटता। यथा : जासु सत्य ताते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया।

रजत सीप महुँ भास जिमि यथा भानु कर वारि।
जदपि मृषा तिहुकाल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥

जेहि बस कीन्हें : भाव यह कि जिसे माया ने वश्य कर रक्खा है। इससे माया का कार्य कहते हैं। माया और प्रकृति पर्यायवाची शब्द हैं। यथा : मायां तु प्रकृतिं विन्द्यात् मायिनं तु महेश्वरम्। इसी से सम्पूर्ण जगत् की रचना होती है और इसी ने सबको वश्य कर रक्खा है। यथा : जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे।

जीव निकाया : भाव यह कि कूटस्थ चिदाभास और लिङ्ग शरीर के समूह को जीव कहते हैं। ये जीव असंख्य हैं। ये सब माया के वश हैं। जिस भाँति जल में पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब जल के वश में होता है जल के ऊपर उठने से वह ऊपर उठता है। जल के नीचे गिरने से वह नीचे गिरता है। जल के चञ्चल होने से वह चञ्चल होता है। इसी भाँति जीव माया के वश रहता है। माया जैसा कराती है

---

१. अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या चास्वे स्वमिति या मतिः।
संसारतरुसम्भूतिबीजमेतद् द्विधा स्थितम्॥ वि. पु. ६.७.११

अनात्मा में आत्मबुद्धि मैं और जो अपना नहीं है उसे अपना मानना : मोर ये ही दोनों संसार वृक्ष की उत्पत्ति के बीज हैं।

वैसा करता है। यथा : ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी। सो मायावस भयउ गोसाइँ। बँध्यौ कीर मरकट की नाइँ।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥२॥

अर्थ : इन्द्रिय विषय और मन की जहाँ तक दौड़ है इन सबको हे भाई! माया जानना। उसके दोनों भेदों को सुनो : एक अपर विद्या और दूसरी अविद्या।

व्याख्या : गो गोचर : गो अर्थात् इन्द्रियाँ। इन्द्रियाँ दश हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय। गोचर अर्थात् पाँच विषय : शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध।

जहँ लगि मन जाई : मनकी दौड़ बहुत दूर तक होती है। यह मन स्थूलतम पदार्थों में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड तक जाता है और सूक्ष्मतम पदार्थ में महत् तत्त्व तथा प्रकृति तक पहुँचता है। सो सब माया जानेहु अर्थात् परा प्रकृति अपरा प्रकृति ये दोनों ही माया हैं। जो हो न सके उसे कर दिखलानेवाली माया है। इसलिए अघटितघटनापटीयसी कहते हैं।

भाई : भाई सम्बोधन से अपना प्रेम द्योतित किया। जिस भाँति सदा से शिक्षा देते आये हैं। उसी भाँति इस बार भी शिक्षा दे रहे हैं। यथा :

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
वेद पुरान सुनहि मन लाई। आपु कहहिं अनुजहि समुझाई॥

तेहि कर भेद : ऊपर कहा जा चुका है कि माया और प्रकृति पर्यायवाची शब्द हैं। मैं अरु मोर तोर तैं माया कहकर परा प्रकृति का वर्णन किया जो कि जीवभूत होकर जगत् को धारण किये हुए हैं और गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई। कहकर अपरा प्रकृति का वर्णन किया। अब दूसरे प्रकार से उसके भेद कहेंगे।

सुनहु तुम सोऊ : यद्यपि भेद विषयक प्रश्न नहीं है। तथापि विषय को स्पष्ट करने के लिए उसके भेद का भी वर्णन करेंगे। उसके सुनने के लिए कह रहे हैं।

विद्या अपर अविद्या दोऊ : उस माया के दो भेद हैं। एक अपर विद्या दूसरी अविद्या। यथा : प्रभु सेवकहिं न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि विद्या। अङ्गों सहित वेदत्रयी अपरा विद्या है। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्यौतिषमिति। मुण्डक। अपरा विद्या कहने से ही पता चलता है कि कोई पराविद्या भी उसकी चर्चा आगे की जायगी। यहाँ अपरा विद्या तथा अविद्या का वर्णन किया जा रहा है जो माया की सीमा के भीतर है।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥३॥

अर्थ : एक दुष्ट अत्यन्त दुःखरूप है। जिसके वश में आकर जीव संसार कूप

में पड़ा हुआ है और एक जिसके वश में गुण : सत्त्व रसस् और तमस् हैं प्रभु से प्रेरित होकर संसार को रचते हैं। उसे अपना बल नहीं है।

व्याख्या : एक दुष्ट : यहाँ एक एक कहकर क्रम नहीं देते। क्योंकि क्रम इष्ट नहीं है। पहले अविद्या का ही वर्णन करना है। उसे दुष्ट इसलिए कहा कि वह दोषयुक्त है। शुद्धसत्त्वप्रधाना नहीं है। जो दुष्ट होता है दोषयुक्त होता है। उससे दूसरे को पीड़ा पहुँचती है। अतः कहते हैं :

अतिसय दुःख रूपा : यह दुष्ट अविद्या अविशुद्धि के तारतम्य से अनेक प्रकार की होती है। यही स्थूल और सूक्ष्म शरीर की कारणभूता : प्रकृति की अवस्था विशेष कारण कहलाती है। पञ्च महाभूतों से निर्मित इस अस्थि मांसमय देह को स्थूल शरीर कहते हैं। इसी के भीतर इसका अनुकरण करती हुई अपञ्चीकृत महाभूत तथा उसके कार्यं पञ्च प्राण दश इन्द्रिय मन और बुद्धि की बनी हुई सूक्ष्म देह है। इन दोनों सूक्ष्म और स्थूल शरीरों से अविद्या द्वारा ही जीव बद्ध होता है। यथा :

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
सो माया बस भयउ गोसाइँ। बँध्यो कीर मरकट को नाइँ॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी॥
जिय जब तें हरि तें बिलगान्यौ। तब तें देह गेह निज जान्यौ॥
माया बस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम ते दारुन दुख पायो॥

पायो जो दारुन दुसह दुख सुख लेस सपनेहु नहि मिल्यौ।
भव सूल सोक अनेक जेहि तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यौ॥
बहु जोनि जन्मि जरा बिपति मतिमन्द हरि जान्यौ नहीं।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ़ विचारु लखु पायौ कहीं॥

विनय. १३६.

जेहि बस जीव परा भवकूपा : अविद्या द्वारा स्थूल सूक्ष्म शरीर का अध्यास भ्रम ही बन्धन है। इसी बन्धन के कारण जीव भवकूप में पड़ा हुआ दुःख पा रहा है। द्वैत ही भवकूप है। जगत् ईश्वर का कार्यं : रचित है और जीव का भोज्य है। माया वृत्त्यात्मक ईश्वर का सङ्कल्प जगत् की उत्पत्ति का कारण है और मनो-वृत्त्यात्मक जीव का सङ्कल्प भोग का साधन है। जैसे ईश्वर ने स्त्री बना दी। अब उसी को कोई भार्या, कोई बहू, कोई ननद, कोई देवरानी और कोई माता मानता है। वह मांसमयी स्त्री तो एक ही है। परन्तु मनोमयी के अनेक भेद हो गये। जीव का बन्धन करनेवाली यह मनोमयी : स्त्री है। ईश्वर की बनायी हुई मांसमयी बन्धन करनेवाली नहीं है। इस भाँति द्वैत दो प्रकार का है। एक ईश्वरकृत और दूसरा जीवकृत। ईश्वरकृत द्वैत बन्धन का कारण नहीं है। सो जीवकृत द्वैत को भवकूप कह रहे हैं। कूप इसलिए कहते हैं कि यह तमोमय दुःख रूप है और इससे

बाहर केवल अपने पुरुषार्थं द्वारा निकलना भी कठिन है। करुणानिधान भगवान् या उनके कृपापात्र गुरु ही करावलम्बन देकर बाहर निकाल सकते हैं। विनय में गोस्वामीजी ने द्वैत को भवकूप कहा है। यथा :

द्वैतरूप भवकूप परौ नहिं अस कछु जतन बिचारो।

उसी अविद्या को मोहशक्ति कहा गया है। माया में निर्माण शक्ति की भाँति एक मोहशक्ति भी है। वही जीव को मोहित करती है। मोह से अतीक्षता को प्राप्त होकर भवकूप में पड़ा जीव सोचता है :

मैं जन्म्यौ मोहि मातु पिता तिय तनय धाम धन।
ये मेरे हैं शत्रु मित्र विद्या बल परिजन॥
यों ही यह विद्वान् चित्त फुरना से कल्पित।
देखत बहु बिधि स्वप्न अविद्या ते अति निद्रित॥१॥

तथा : बोते हैं विषवल्लि बीज दुःख को जो प्रेम के नाम से।
होते हैं अँखुए भरे अनल के सो नेह के धाम से॥
शोकारण्य बढ़ा विशाल इनसे सौ लाख शाखा धरे।
देहों को दहता तुषानल यथा निर्धूम ज्वाला भरे॥२॥

: प्रबोधचन्द्रोदय

एक रचइ जग : वह भगवती अपरा विद्या संसार की रचना करती है। यहाँ रचना उपलक्षण है। इसीके साथ पालन और उपसंहार भी समझ लेना चाहिए। यह अपरा विद्या भगवान् की पुरातनी परा नाम्नी शक्ति है।

सर्वशक्तिः परा विष्णोर्ऋग्यजुःसामसंज्ञिता।
सैषा त्रयी तपत्यंहो जगतश्च हिनस्ति या॥७॥
सैषा विष्णुः स्थितः स्थित्यां जगतः पालनोद्यतः।
ऋग्यजुःसामभूतोऽन्तः सवितुर्द्विज तिष्ठति॥३॥
मासि मासि रविर्यो यस्तत्र तत्र हि सा परा।
त्रयीमयी विष्णुशक्तिरवस्थानं करोति वै॥९॥
ऋचः स्तुवन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्नेऽथ यजूंषि वै।
बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्नः क्षये रविम्॥१०॥
अङ्गमेषा त्रयी विष्णोर्ऋग्यजुःसामसंज्ञिता।
विष्णुशक्तिरवस्थानं सदादित्ये करोति सा॥११॥
न केवलं रवेः शक्तिर्वैष्णवी सा त्रयीमयी।
ब्रह्माथ पुरुषो रुद्रस्त्रयमेतत् त्रयीमयम्॥१२॥
सर्गादौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मयः।
रुद्रः साममयोऽन्ताय तस्मात् तस्याशुचिर्ध्वनिः॥१३॥
एवं सा सात्त्विकी शक्तिर्वैष्णवी या त्रयीमयी।
आत्मसप्तगणस्थं तं भास्वन्तमधितिष्ठति॥१४॥

तया चाधिष्ठितः सोऽपि जाज्वलीति स्वरश्मिभिः।
तमः समस्तजगतां नाशं नयति चाखिलम् ॥१५॥
अंश २ अ० ११ : विष्णुपुराण

इसी को ऋक्, यजुः, साम कहते हैं। यही त्रयी सूर्य को ताप प्रदान करती है। संसार के पाप को नाश करती है। स्थिति के समय यही विष्णु होकर जगत् का पालन करती है। यही ऋक्, यजुः, साम रूप से सूर्य के भीतर ठहरी हुई है। प्रत्येक मास में जो पृथक् पृथक् सूर्य कहे गये हैं उनमें यह वेद त्रयी रूपिणी पराशक्ति निवास करती है। पूर्वाह्न से ऋक्, मध्याह्न से यजु और सायंकाल वृहद्रथन्तरादि साम श्रुतियाँ सूर्य की स्तुति करती हैं। यह ऋक्, यजुः सामरूपिणी वेदत्रयी भगवान् विष्णु का ही अङ्ग हैं। ये सदा आदित्य में रहती हैं। यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति केवल सूर्य की ही नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीनों त्रयीमय हैं। सर्ग के आदि में ब्रह्मदेव ऋक्मय होते हैं। पालन के समय विष्णु यजुर्मय होते हैं। और अन्त में रुद्र साममय होते हैं। इसीलिए उसकी ध्वनि अपवित्र कही गयी है। इस प्रकार यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति अपने सातों गणों में स्थित सूर्य में अवस्थित रहती है। उसमें अधिष्ठित सूर्यदेव अपनी प्रखर रश्मियों से प्रज्वलित होकर संसार के सम्पूर्ण अन्धकार को नष्ट करते हैं। इस भाँति त्रयीमयी अपरा विद्या ही संसार की रचनेवाली है। यथा :

एतना मन आवत खगराया। रघुपति प्रेरित व्यापी माया॥ अपरा विद्या
सो माया न दुखद मोहि काहीं। आन जीव इव संसृत नाहीं॥
उदर माझ सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया॥
अति विचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगणित उडगन रवि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जमकाला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥

दो. जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवन बिधि जाइ॥
एक एक ब्रह्मांड महुँ रहौं बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरौं मैं अंड कटाह अनेक॥

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिस्नु सिव मनु दिसित्राता॥
नर गन्धर्व भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग व्याला॥
देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहिं भाँती॥
महि सरि सागर सर गिरि नाला। सब प्रपंच तहँ आनहिं आना॥
भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका॥ इत्यादि।

गुन बस जाकें : इस अपरा विद्या के वश में गुण है। विशुद्ध सत्त्व प्रधाना

होने से उसमें जो ब्रह्म का प्रतिविम्ब पड़ता है वह पूर्ण होता है। उसी को सर्वज्ञ ईश्वर कहते हैं। उन्हीं की यह परा शक्ति सत्त्व रज और तम को वश में रखती है। ब्रह्मा विष्णु रुद्रमयी होने से यह सत्त्व रज तम की अधिष्ठात्री देवी है। अतः इसके वश में गुण है। उसके जिस रूप से हम परिचित हैं वह उसकी वाङ्मयी मूर्ति है।

प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें : भगवान् कहते हैं कि वेद नामवाली पुरातनी परा[1] शक्ति मेरी है। यह सर्ग के आदि में ऋक् यजु साम रूप से प्रवृत्त होती है। अर्थात् उसको प्रवृत्त करनेवाला, उसके प्रभु भगवान् हैं। उनकी प्रेरणा बिना वह कुछ नहीं कर सकती। अतः कहते हैं : नहिं निज बल ताकें। शक्तिमान् से पृथक् शक्ति की कोई सत्ता नहीं होती। अतः कहा गया कि उसको अपना स्वतन्त्ररूपेण बल नहीं है। यथा :

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥
लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया॥
जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

अपरा विद्या और अविद्या दोनों माया के भेद हैं। अतः दोनों के लिए माया शब्द व्यवहृत है। प्रसङ्ग से पहिचानना चाहिए। चौथे प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ।

**ज्ञान मान जहँ एकौ नाँहीं। देख ब्रह्म समान सब माँहीं॥**
**कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी॥४॥**

अर्थ : जहाँ एक भी मान नहीं है। ब्रह्म को सब में समान देखता है। वही ज्ञान है। हे तात उसे परम वैराग्यवान् कहा गया है। जो तृण के समान सिद्धि तीनों गुणों का त्यागी हो।

ज्ञान : पराविद्या[2] जिससे अक्षर ब्रह्म जाना जाता है। इसी को ब्रह्मविद्या कहते हैं। चारों[3] महावाक्यों द्वारा ब्रह्मका उपदेश होता है। उसमें से न्दोग्य श्रुतिगत वाक्य का उपदेश लोमश महर्षि ने भुसुण्डि को ब्राह्मण जन्म भ किया था। यथा :

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवगम्य अखंड अनूपा॥
मन गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुख रासी॥
सो तैं तोहि तोहि नहिं भेदा। वारि बीचि इव गावहिं वेदा॥

---

१. ममैवैषा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी। ऋग्यजुःसामरूपेण सर्गादौ सम्प्रवर्तते॥
कूर्मपुराणे।

२. परा यया तदक्षरमधिगम्यते।

३. चारों वेदों से चार महावाक्य लिये गये हैं १. ऋग्वेदान्तर्गत ऐतरेय आरण्यक से २. यजुर्वेदान्तर्गत बृहदारण्यक से ३. सामवेदान्तर्गत छान्दोग्य से और ४. अथर्व वेद से।

इसी को ज्ञान कहा है। क्योंकि आगे चलकर गरुड़जी भुसुण्डिजी से पूछते हैं कि कहहिं संत मुनि वेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना। सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं। शेष तीन वाक्य भी इसी भाँति ब्रह्म जीव के ऐक्य का प्रतिपादन करते हैं। यहाँ भगवान् लक्ष्मणजी को ऐतरेय आरण्यक गत महावाक्य प्रज्ञानं के तात्पर्य का उपदेश कर रहे हैं।

मान जहँ एको नाहीं : मीयते अनेन इति मानम्। जिससे नापा जाता है उसे मान कहते हैं। वह मान लघु, गुरु, महत्, अणु, उत्तम, मध्यम, अधम आदि भेद से अनेक प्रकारके होते हैं। ब्रह्मा, इन्द्रादि देव उत्तम हैं। मनुष्य मध्यम हैं। अश्व गजादि अधम हैं। एवं विद्या विनयसम्पन्न ब्राह्मण तथा गौ पूज्य, हाथी मध्यम, कुत्ता श्वान आदि निकृष्ट हैं। ये बातें मान से सिद्ध हैं। यह मान देहादिकों में ही सम्भव हैं। पर जो चेतन ब्रह्म सबमें व्याप्त है उसका कोई मान नहीं है।

देख ब्रह्म समान सब माहीं : चक्षु इन्द्रिय द्वारा निकले हुए अन्तःकरण वृत्ति से उपहित चैतन्य से ही पुरुष दर्शन योग्य रूपादि को देखता है। श्रोत्र द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपाधिवाले चैतन्य से सुनता है। घ्राण द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपहित चैतन्य से सूँघता है। वागिन्द्रियावच्छिन्न चैतन्य से बोलता है। रसेन्द्रिय द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपहित चैतन्य से चखता है। वही प्रज्ञान चैतन्य ब्रह्म है और वह सबमें समान है। इन्द्रियादि की विकलता या सकलता से दर्शनादि में तारतम्य हो सकता है। परन्तु चैतन्य सबमें समान ही है। ऐसी समान दृष्टि रखना ही ज्ञान है। यथा :

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता॥
सबकर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवध पति सोई॥

जगत प्रकाश्य प्रकासक रामू।

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि।
बन्दौं सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥
उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहि बिरोध॥
देस काल दिसि बिदिसहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

: यह दूसरे प्रश्न का उत्तर हुआ।

तात : प्यार का शब्द है। यहाँ छोटे भाई के लिए आया है। भाव यह कि तुमने वैराग्य के विषय में प्रश्न किया है। सो वैराग्य तुम्हें स्वभाव से ही प्राप्त है। वनगमन के समय में मैंने स्वयं देख लिया है। यथा :

राम बिलोकि बन्धु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे॥
मातु चरन सिर नाइ चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ मनहु भाग मृग भाग बस॥

अतः तुमसे वैराग्य का वर्णन करना केवल कथा को विस्तार देना है। अतः जो वैराग्य से भी साध्य परम वैराग्य है। उसका वर्णन मैं तुमसे करूँगा।

सो परम बिरागी कहिअ : भाव यह कि विषय दो प्रकार का है : एक दृष्ट और दूसरा आनुश्रविक। जो इस लोक में देखा सुना जाता है वह दृष्ट कहलाता है जैसे : शब्द रूपादि। अनुश्रव वेद को कहते हैं। सो जिसका पता वेद से लगता है उसे आनुश्रविक कहते हैं। जैसे स्वर्गादि। सो दोनों प्रकार के विषयों के परिणाम विरसत्व के देखने से जिनको इनका लोभ नहीं रह गया वे इन विषयों के वश्य नहीं होते। विषय ही उनके वश में रहते हैं। उनके वैराग्य की वशीकार संज्ञा है। यथा : यहि तन कर फल बिषय न भाई। सरगहु स्वल्प अन्त दुखदाई। इन विषयविषयक वैराग्यवालों को परम विरागी नहीं कहते। परम विरागी का लक्षण है :

तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी : जिसने अणिमादिक अष्ट सिद्धि तथा सत्त्व, रज और तम का त्याग किया हो वह परम विरागी है। पहला वैराग्य अर्थात् ऊपर कहा हुआ वैराग्य विषयविषयक था। पर परम वैराग्य तो गुण विषयक होता है। गुण विषयक वैराग्य ही सच्चा वैराग्य है। ऐसे वैराग्यवान् को परम विरागी कहना चाहिए। यथा :

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रजवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥ गीता २.५९

बिधि हरिहर तप देखि अपारा। सनु समीप आये बहु बारा॥
माँगहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहि चलाए॥

यहाँ रजोगुण के अधिष्ठाता विधि सत्त्वगुण के अधिष्ठाता हरि और तमोगुण के अधिष्ठाता हर अपने गुण सम्बन्धी सब प्रकार के सुख तथा सिद्धियों का लोभ दिखा रहे हैं। पर परम वैराग्यवान् स्वायम्भू मनु को उन गुणों तथा सिद्धियों की इच्छा नहीं हुई। यह तीसरे प्रश्न का उत्तर हुआ।

दो. माया ईस न आपु कहुँ, जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्वपर, माया प्रेरक सीव ॥९.१५॥

अर्थ : जो माया, ईश्वर और अपने को न जाने उसे जीव कहा जाता है और जो बन्ध मोक्ष का देनेवाला, सबके परे, माया का प्रेरक है वह शिव है।

व्याख्या : माया ईस न आपु कहुँ जान : भाव यह कि माया का ज्ञान : ईश्वर का ज्ञान तथा अपने आत्मा का ज्ञान ऐसा परस्पर सापेक्ष है कि एक के ज्ञान के लिए शेष दो का ज्ञान अनिवार्य है। क्योंकि ब्रह्म और जीव में भेद करनेवाली केवल माया है।

यथा : ब्रह्म जीव बिच माया जैसी। तथा : मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया। उस माया की स्थिति बड़ी ही विचित्र है। न वह सत् है न असत् है न सदसत् है। न भिन्न है न अभिन्न है न भिन्नाभिन्न है। न

निरवयव है न सावयव है। वह ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से हटाई जा सकती है। यथा : कोऊ कह सत्य झूठ कर कोऊ जुगल प्रबल करि मानै। तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै। वह माया जिसकी सत्यता से भासती है उस मायी ईश्वर का बिना निरूपण किये माया का निरूपण कैसे होग ? अथवा जिस [1]जीव पर उसका अधिकार है- उसका बिना निरूपण किये ही माया कैसे जानी जायेगी ? इसी भाँति जिसका अंश [2]जीव है उसी अंशी का बिना निरूपण किये-अथवा जिस [3]माया ने उस अखण्ड ईश्वर का अंश कल्पित किया है उसका बिना निरूपण किये जीव का निरूपण कैसे होगा ? एवं जिसके कारण ईश्वर मायी है और जिसके अंश होने से वह अंशी है उस माया और जीव के निरूपण बिना ईश्वर का निरूपण कैसे होगा ? और बिना निरूपण किये ज्ञान कैसे होगा ? अतः जिसे एक का सम्यक् ज्ञान नहीं है उसे तीनों का सम्यक् ज्ञान सहीं है। इसीलिए कहा : माया ईस न आपु कहँ जान। जिसे माया, ईश्वर व अपना ज्ञान नहीं है।

कहिअ सो जीव : ऐसे अज्ञानी अथवा अल्पज्ञ को जीव कहते हैं। अर्थात् अज्ञान और अस्पज्ञता ही उसे जीव बनाये हुए हैं। अज्ञान का हटाना और स्वरूप का ज्ञान एक ही वस्तु है। ज्ञान होते तो वह जीव नहीं रह जाता। वह ब्रह्मपद को [4]प्राप्त हो जाता है। यथा :

सोइ जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुमहि होइ जाई॥

बन्ध मोच्छप्रद : मिथ्या ज्ञानकृत जो कर्तृत्वाभिमान है उसे बन्ध कहते हैं और तत्त्वज्ञान से जो अज्ञान और उसके कार्य का अभाव होता है उसी को मोक्ष कहते हैं। सो बन्धप्रद ईश्वर है वही कर्मफल दाता है। जीव भी अनादि है और उसके कर्म भी अनादि हैं। ये दोनों बीजाङ्कुर न्याय से सिद्ध हैं। सदा से ही अङ्कुर का कारण बीज और बीज का कारण अङ्कुर होता चला आया है। इसी भाँति

———

१. माया बस मति मंद अभागी। हृदय जवनिका बहु बिधि लागी॥

२. ईश्वर अंश जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

३. बाधा काटा जिनने उस आदि पुरुष को।
पुरगन ने बांटा शाश्वत जगदीश्वर को॥
उन ब्रह्मविदों का विद्या द्वारा बिधि से।
हो मरण पुराद्दित ब्रह्मैकत्व हो फिर से॥ प्र. चं.।

४. प्राप्त नहीं बाधित नहीं नहीं उदित नहिं अस्त।
क्रम विकास वा लय नहीं नहीं असत नहिं सत्त॥
नहीं असत नहिं सत्त लोकत्रय बाधित होता।
मेरा सहज प्रकास उदित भासित जब होता॥
बरनै मिश्र बिचारि प्रबोधोदय मैं प्राक्तन।
होगा भूले कमी जीव पदवी अब प्राप्त न॥ प्र. चं.।

जन्म का कारण पूर्वार्जित कर्म और उसका भी कारण पूर्वजन्म यह क्रम अनादि काल से चला आता है और ईश्वर भी अनादि काल से तत्तत् कर्मों का फल देता चला आता है। इसी से उसे बन्धप्रद कहते हैं। यथा : जेहि बांध्यो सुर असुर नाग मुनि प्रबल कर्म की डोरी। वही ईश्वर मोक्षप्रद भी है। उसी की कृपा से जीव मिथ्या ज्ञानकृत कर्तृत्वादि अभिमान से छूटता है। यथा : तुलसीदास यह मोह संखला छुटिहै तुम्हरे छोरे। दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। भगवान् कहते हैं यह मेरी दैवी गुणमयी माया पार पाने योग्य नहीं है। जो मेरी शरण में आते हैं वे ही इस माया को हर सकते हैं।

सर्वपर : वही ईश्वर सबके परे हैं। सबका उपादान होने से प्रकृति सबका कारण है। परन्तु ईश्वर उससे भी परे है। यथा :

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥
जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रूबिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित सहाजा॥
जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनि हारे॥

माया प्रेरक सीव : प्रश्न है कि ईश्वर जीवहि भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ। सो उसका उत्तर देते हुए जीव का लक्षण कहकर शिव अर्थात् ईश्वर का लक्षण कहते हैं। तद्भव रूप से शकार का [1]सकार और ह्रस्व का [2]दीर्घ विकल्प करके होता है। इस भाँति शिव का प्राकृत रूप सीव है। शिव नाम ईश्वर का है। विष्णुसहस्रनाम में भी शिव शम्भु शङ्करादि नाम आये हैं। शिव और राम में अभेद माना गया है। यथा : सेवक स्वामि सखा सियजी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के। तथा : पूजि पार्थिव नाएउ माथा। लिंग थापि बिधित करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा। कहकर शिवजी को रामजी का आत्मा[3] ही

---

१. शषोः सः २.४३ प्राकृतप्रकाशे। सर्वत्र शकार षकार का सकार होता है।
२. ईत् सिंहजिह्वयोश्च ॥१७॥ चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः।
सिंहः सीहो जिह्वा जीहा यहाँ इकार का ईकार हुआ।
३. रुद्रस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः।
एक एव द्विधा भूतो लोके चरति नित्यशः॥
न विना शंकरं विष्णुर्न विना केशवं शिवः।
तस्मादेकत्वमायातो रुद्रोपेन्द्रौ तु तौ पुरा॥ हरिवंशे

अर्थ : रुद्र के बड़े विष्णु हैं और विष्णु के बड़े रुद्र हैं। एक ही दो भाग होकर लोक में विचरते हैं। बिना शंकर के विष्णु नहीं और बिना केशव के शिव नहीं। इसलिए पहले ही रुद्र और विष्णु एकत्व को प्राप्त हुए।

ये त्वेनं विष्णुमव्यक्तं मां च देवं महेश्वरम्। एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः॥
तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम्। मामिव संप्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव च॥
: कूर्म पुराण ईश्वर गीता।

स्वीकार किया है। क्योंकि सबके प्रिय आत्मा ही होता है। अयमात्मा परानन्दः परप्रेमास्पदं यतः। तात्पर्य यह कि जीव शिव से वास्तविक भेद नहीं है। सच्चिदानन्द रूप से जीव और शिव में अभेद है। पर माया ने कल्पित भेद कर रखा है। व्यवहार काल में वह भेद सत्य भी है। शिव बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर और मायाप्रेरक है एक हैं। जीव बद्ध हैं, अभिमानी हैं, माया के वश में हैं और अनेक हैं। यथा : माया वश परिछिन्न जड़ जीव कि ईश समान।

ग्यान अखंड एक सीताबर। माया वस्य जीव सचराचर॥
जौ सबके रह ज्ञान एक रस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस॥
माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुन खानी॥
परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधा भेद यद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥

दो. रामचन्द्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ज्ञानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान॥

यह छठे प्रश्नका उत्तर हुआ।

[1]धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जा तें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥१॥

अर्थ : धर्म से वैराग्य, वैराग्य से योग और योग से ज्ञान होता है और वेद

---

अर्थ : जो इन अव्यक्त विष्णु और मुझ देव महेश्वर को एक भाव से देखेगा उसका फिर जन्म नहीं होगा। इसलिए अनादिनिधन विष्णु अव्यय आत्मा को मेरे ऐसा देखो और उसी भाँति पूजा करो।

ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम्।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम्॥
ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम्।
ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम्॥

रुद्रहृदय उपनिषद्.

अर्थ : जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं वे शंकर को नमस्कार करते हैं। जो हरि की भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं वे वृषध्वज की पूजा करते हैं। जो विरूपाक्ष से द्वेष करते हैं वे जनार्दन से द्वेष करते हैं। जो रुद्र को नहीं जानते वे केशव को भी नहीं जानते। इत्यादि प्रमाणों से शास्त्र भरे पड़े हैं।

१. यहाँ कारणमाला अलङ्कार है।

बखान करता है कि ज्ञान मोक्ष देनेवाला है। जिससे मैं शीघ्र द्रवीभूत होता हूँ। वह तो[१] : सब प्रकार के भक्तों को सुख देनेवाली मेरी भक्ति है।

धर्म तें बिरति : जो जगत् की स्थिति का कारण है : धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः। तथा प्राणियों की उन्नति और मोक्ष का हेतु है : यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। एवं कल्याण का भी ब्राह्मणादि वर्णाश्रमावलम्बियों से जिसका अनुष्ठान किया जाता है : चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। उसे धर्म कहते हैं।

वेद ने दो प्रकार के धर्म बतलाये हैं : एक प्रवृत्तिलक्षण और दूसरा निवृत्ति-लक्षण। ज्ञान वैराग्य जिसका लक्षण है उसे निवृत्तिलक्षण धर्म कहते हैं। वह साक्षात् कल्याण का हेतु है। वर्ण और आश्रम को लक्ष्य करके जो सांसारिक उन्नति के लिए कहा गया है वह प्रवृत्तिलक्षण धर्म है। वह यद्यपि स्वर्गादि के साधन का हेतु है। फिर भी ईश्वरार्पण बुद्धि से फलकामना रहित होकर किये जाने पर अन्तः-करण शुद्धि का कारण होता है। शुद्धान्तःकरण पुरुष के लिए ज्ञाननिष्ठा को योग्यता प्राप्ति द्वारा ज्ञानोत्पत्ति का कारण होने से वह मोक्ष का हेतु भी होता है। इसी को कर्मयोग भी कहते हैं।

गुरु सुर संत पितर महि देवा। करै सदा नृप सब कै सेवा॥
भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करै सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनै शास्त्र बर बेद पुराना॥
नाना वापी कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बाग़ा॥
बिप्र भवन सुर भवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए॥

जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप किये सहित अनुराग॥

हृदय न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥
करै जे धरम करम मन बानी। वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥

इस प्रकार धर्माचरण से वैराग्य होता है। उसकी उत्पत्ति जिस विधि से होती है उसका विशद वर्णन शतपञ्च चौपाई ग्रन्थ में मिलेगा। उसका संक्षेप इतना ही है कि शास्त्र विधि के अनुसार फल की कांक्षा न रखते हुए कर्तव्य बुद्धि से आनन्द

---

१. १. नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच वियोगी॥
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥
२. जाना चहहि गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ॥
३. साधक नाम जपहिं लय लाये। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये॥
४. जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहि सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥
५. सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किये मन मीन॥

पूर्वक जप, तप, व्रत, यम, नियमादि वेदविहित शुभ धर्मों का आचरण श्रद्धापूर्वक करे और वे भावोपहत[1] न होने पावे। तब परम धर्म अहिंसा का उदय होता है। उसे वशीकृत निर्मल मन द्वारा विश्वास से दृढ़ करें। उस अहिंसा का योग, विषय-वासना त्याग, क्षमा, तोष और धृति से भी हो। जब ऐसी स्थिति हो जाय तब मुदिता तथा इन्द्रिय दमन पूर्वक सत्योक्ति : वेद के अनुसार विचार करे तब निर्मल विराग का उदय होता है। यथा :

सात्विक श्रद्धा धेनु सोहाई। जो हरि कृपा हृदयबस आई॥
जप तप व्रत यम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धरम अचारा॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ शिशु पाइ पेन्हाई॥
नो इति बृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥
परम धरम मय पय दुहि भाई। अवटइ अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमा जुड़ावै। धृति सम जावन देइ जमावै॥
मुदिता मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

योग ते ज्ञाना : वैराग्य से सत् लक्ष्य पर चित्त के स्थिर करने के अभ्यास से चित्तवृत्ति का निरोध होता है उसी को योग कहते हैं। योगी का कर्म अशुक्ला कृष्ण होता है। तब ममता मल के दूर होने से वही वैराग्य में परिणत होता है। वह वैराग्य ज्ञान ही है। यही तत्पद का शोधन है। तत्पश्चात् सबमें ब्रह्मदृष्टि दृढ़ करे तब जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं में से क्रमशः वैषयिक ज्ञान उसके संस्कार और अज्ञान को दूर करे। तब तुरीय अवस्था की प्राप्ति होती है। इसे त्वं पद का शोधन कहते हैं। सो त्वं पद के लक्ष्यार्थ को तत्पद के लक्ष्यार्थ में लीन करके सानन्द समाधि में स्थित हो। वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दो होते हैं। फल पेड़ में होता है। फल शब्द का वाच्यार्थ पेड़ में होनेवाली वस्तु विशेष है। परन्तु कर्मफल कहने से फल शब्द का वह अर्थ नहीं लिया जायगा। इसमें लक्ष्यार्थ लिया जायगा। यहाँ फल का लक्ष्यार्थ है कर्म का परिणाम : नतीजा। इसी भाँति त्वं पद का वाच्यार्थ जीव और लक्ष्यार्थ कूटस्थ : तुरीय है एवं तत् पद का वाच्यार्थ ईश्वर और लक्ष्यार्थ शुद्ध चेतन ब्रह्म है। यही अपरोक्ष ज्ञान है। यथा :

———

१. तपो न कल्कोऽध्ययनं न कल्कः स्वाभाविको ज्ञानविधिर्न कल्कः।
प्रसह्य वित्ताहरणं न कल्कः सर्वाणि भावोपहतानि कल्कः॥

अर्थ : तप करना पाप नहीं हैं। न वेद पढ़ना पाप है। स्वाभाविक ज्ञान की विधि भी पाप नहीं है। हठ करके धन छीन लेना भी पाप नहीं है। परन्तु भावोपहत हो जाने से ये सब पाप हो जाते हैं। भाव यह कि दम्भ के लिए तप करना। दूसरे को जीतने के लिए वेद पढ़ना। बुरी नियत से देखना सुनना और धन के मालिक के भले के लिए नहीं बल्कि अपने स्वार्थ के लिए धन छीन लेना पाप है। क्योंकि ऐसा करने में भाव बिगड़ता है।

दो. जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जहि जाइ॥
तब विज्ञान निरूपिणी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़ ममता दियटि बनाइ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास ते काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥
एहि बिधि लेसै दीप तेजरासि विज्ञानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥

ज्ञान मोक्ष प्रद : भाव यह है कि तब अखण्ड : सोहमस्मि वृत्ति का उदय होता है। उससे आत्मानुभव सुख होता है। भेद भ्रम जाता रहता है। मोहादि दूर होते हैं। तब चिद् जड़ ग्रन्थि खुल जाती है और जीव का मोक्ष हो जाता है। यही ज्ञानयोग है। यथा :

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भवमूल भेद भ्रम नासा॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटै अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरु आरा॥
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तौ यह जीव कृतारथ होई॥
जौं निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम वद॥

बेद बखाना : वेद ने स्वयं ज्ञान का बखान किया है। यथा : ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। ज्ञानादेव हि कैवल्यम्। बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। उसे जानने से ही मृत्यु का अतिक्रमण किया जा सकता है। मुक्ति का दूसरा मार्ग नहीं है। ज्ञान से ही कैवल्य की प्राप्ति होती है। इत्यादि। भाव यह कि मोक्ष का साक्षात् कारण ज्ञान है। यही संक्षेप में अद्वैतवाद है। अन्य मोक्षप्रद साधन ज्ञान द्वारा ही मोक्ष देते हैं। काशी मोक्ष देती है। क्योंकि ज्ञानखानि है। भक्ति मुक्ति देती है। क्योंकि ज्ञान विज्ञान उसके अधीन हैं। यथा :

मुक्ति जन्म महि जानि ज्ञान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥
सो स्वतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥

भाई : यहाँ भाई सम्बोधन का भाव यह है कि तुम हमारे स्वभाव से परिचित हो। यहाँ मैं अपना स्वभाव कहता हूँ। अथवा भाई होने से तुम्हारा मेरे में भाव स्वाभाविक है और प्रेम का ही मार्ग सुलभ और सुखद है। उसी का मैं निरूपण करूँगा। यथा : सुलभ सुखद मारग यह भाई। भक्ति मोर पुरान श्रुति गाई। अतः भाई सम्बोधन दिया। मैं से सगुण ब्रह्म अभिप्रेत है। क्योंकि एकरस निर्विकार निर्गुण ब्रह्म में द्रवता सम्भव नहीं। और यहाँ उसी का प्रसङ्ग है। सगुण ब्रह्म के

अवतारों में भी रामावतार प्रसक्त है। क्योंकि उसकी विशेषता कही गयी है। अध्यात्म रामायण कहता है : अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः। नेषां सहस्रसदृशो रामो नाम जनैः श्रुतः। अर्थात् सत्त्वनिधि हरि के बहुत से अवतार हैं। उनमें से जगद् विख्यात रामावतार सहस्रों के समान हैं और विनय में ग्रन्थकार भी कहते हैं कि : एकइ दानि सिरोमनि साँचो। हरिहु और अवतार आपने राखी बेद बड़ाई। लै चिउरा निधि दई सुदामहि जद्यपि बाल मिताई।

जाते बेगि द्रवउँ : भाव यह कि अन्य साधनों से भी मैं द्रवीभूत होता हूँ। परन्तु शीघ्र नहीं। क्योंकि उसमें साधक को अपने बल का भरोसा रहता है। उन्हें भगवान् ने प्रौढ़ तनय माना है। परन्तु अमानी दास को शिशु बालक सम माना है। जिसे अपना भरोसा कुछ नहीं। सर्वात्मना माँ का भरोसा है। यथा : मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी। बालक सिसु सम दास अमानी। जानहिं मोर बल निज बल ताही। दोउ कहँ काम क्रोध रिपु आही। भगवान् भी वीतचिन्त्य रहते हैं कि यह प्रौढ़ तनय है। यह काम क्रोधादि शत्रु का सामना कर लेगा। परन्तु अमानी दास की रखवारी करते हैं। यथा : गहि सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई। अतः मानना पड़ेगा कि भगवान् के शीघ्र द्रवीभूत होने के भी कारण हैं। दूसरी बात यह है कि निर्गुण की उपासना में अधिक क्लेश है। देहाभिमानियों की गति अव्यक्त में बड़ी कठिनता से होती है। सर्व कर्मों का संन्यास करके गुरु के पास जाना और वहाँ वेदान्त वाक्यों का विचार करना और उन विचारों से अनेक प्रकार के भ्रमों को दूर करने में महान् प्रयास करना पड़ता है। सगुणोपासना में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। उसे ईश्वर की कृपासे स्वयं तत्त्वज्ञान का उदय होता है और ब्रह्मलोक के ऐश्वर्य को भोगकर कैवल्य प्राप्त करता है। गीता में भगवान् ने कहा है कि हे पार्थ ! जो सब कर्मों को मुझे अर्पण करके मुझमें लग जाते हैं और अनन्य योग से मेरा ध्यान करते हुए उपासना करते हैं। ऐसे मुझ में चित्त लगानेवालों को मैं शीघ्र ही संसार सागर से पार कर देता हूँ। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कभी वह करुणावरुणालय भक्तों पर द्रवीभूत होकर पूति दुर्गन्धियुक्त संसार में भी अवतीर्ण होता है। कभी राजा बन्दियों पर करुणा करके कारागार के निरीक्षण के लिए वहाँ पदार्पण करता है। यदि कभी ईश्वर अवतीर्ण ही न हो तो उसके होने का प्रमाण ही क्या है ? उस अवतीर्ण रूप के भजन की बड़ी महत्ता है। क्योंकि वह अवतार उस विश्व रूप भगवान् की द्रवीभूत मूर्ति है। उसे कृपा करते देर नहीं लगती।

सो मम भगति : भक्ति प्रेम को कहते हैं। वही प्रेम यदि छोटों पर हो तो वात्सल्य कहलाता है। बराबर पर हो तो मैत्री सौहार्द या सख्य कहलाता है। बड़ों के प्रति हो तो भक्ति कहलाता है। वही प्रेम यदि संसारी पुरुषों पर हो तो बन्ध का कारण होता है और वही यदि ईश्वर के चरणों में हो तो भवबन्ध से मुक्ति देता है। यथा :

जननी जनक बन्धु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥
सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बांध बरि डोरी ॥

समदरसी इच्छा कछु नाहीं । हरख सोक भय नहिं मन माहीं ।।
अस सज्जन मम उर बस कैसे । लोभी हृदय बसै धन जैसे ।।

इसी भक्ति से भगवान् शीघ्र ही द्रवीभूत होते हैं। द्रवीभूत होने का प्रारम्भ जीव के ईश्वर प्रति अनुकूल होते ही हो जाता है। यथा : सम्मुख होइ जीव मोहि जबहीं । जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं । बिना करुणानिधान के प्रति अनुकूल हुए तो सब साधन ही निष्फल हैं। यथा : जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू । जहँ नहि राम प्रेम परधानू । निरुपास्ति ज्ञान भी टिकाऊ नहीं होता । क्योंकि भक्ति ही योग और ज्ञान के भी विघ्नों को दूर करनेवाली है। यथा : अतः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च । यो. १ पाद २९ सूत्र. । अर्थात् भक्ति से प्रत्यक् चेतना का ज्ञान होता है और विघ्नों का नाश भी होता है। भक्ति के साथ होने से करुणानिधान की करुणा बनी रहती है और उसी से सिद्धि होती है। परन्तु उसमें देर लगती है। क्योंकि भक्ति के साथ अन्य साधनों का मिश्रण रहता है। शुद्ध भक्ति होने से भगवान् की पूर्ण करुणा में देर नहीं लगती । यथा :

रामहि केवल प्रेम पियारा । जानि लेहु जो जाननि हारा ।।
रीझत राम सनेह निसोते । को जग गंद मलिन मति मोते ।।
जौ पै हरि जन के गुन गहते ।
तौ सुरपति कुरुराज बालि सौ, कत हठि बैर बिसहते ।।
जौ जप जाग जोग ब्रत बर्जित, केवल प्रेम न चहते ।।
तौ कत सुर मुनि बर बिहाइ, ब्रज गोप गेह बसि रहते ।।

भगत सुखदाई : भाव यह कि दुःखदाई पदार्थों को हटाकर ही भक्ति भगवती का पादार्पण होता है। जननी जनक बंधु सुत दारा । आदि नश्वर पदार्थों में ममता रहना ही दुःखदाई है। सो भक्ति करने में इनसे मनोवृत्ति को हटाकर तब भगवान् के चरणों में लगायी जाती है। जब तक इनमें प्रेम है तब तक भक्ति कहाँ ? और जब अविनाशी भगवान् के चरणों में मन लगा तब सुख ही सुख है। स्वयं भगवती भास्वती भक्ति में ही ऐसी सामर्थ्य है कि भक्त के सन्निकट विपत्ति को फटकने नहीं देती । यथा : बचन काय मन मम गति जाहीं । सपनेहुँ बूझिअ बिपत्ति कि ताही । यदि भक्ति में त्रुटि है तभी विपत्ति का आगमन होता हैं। भुसुण्डि ने कहा : देखेउँ करि सब करम गोसाइँ । सुखी न भयेउँ अबहि कि नाइँ । भक्ति के सामने दूसरे की कौन कहे स्वयं माया का बल नहीं चलता । क्योंकि भक्ति भगवान् की प्यारी है। यथा :

पुनि रघुबीरहि भगति पियारी । माया खलु नर्तकी बिचारी ।।
भगतिहि सानुकूल रघुराया । ताते तेहि डरपति अति माया ।।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि भक्ति छोड़कर सुख पाने का दूसरा उपाय नहीं है। यथा :

श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं । रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ।।
कमठ पीठ जामहि बरु बारा । बंध्या सुत बरु काहुहि मारा ।।

फूलहि नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला।।
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहि सस सीस बिषाना।।
अन्धकार बरु रविहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै।।
हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई।।

इसी से चिद्रूप जीव और अचिद्रूप जगत् दोनों का शरीर माननेवाला विशिष्टाद्वैतवाद, जीव जगत् के सूक्ष्मतत्त्व को ईश्वर में वर्तमान माननेवाला द्वैताद्वैतवाद, जीव ब्रह्म का सार्वकालिक भेद माननेवाला द्वैतवाद तथा जीव को अग्नि के स्फुलिङ्ग के समान अंश माननेवाला शुद्धाद्वैतवाद सभी ने एक मुख से भक्ति को ही साधन माना है। अद्वैतवाद के परमाचार्य शङ्कर भगवान् : सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्। सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो हि न तारङ्गः कहते हैं। अर्थात् भेद चले जाने पर भी हे नाथ ! मैं तुम्हारा हूँ। मेरे तुम नहीं हो। समुद्र का तरङ्ग होता है तरङ्ग का समुद्र नहीं होता।

सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि अधीन ज्ञान बिज्ञाना।।
भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ जो संत होहिं अनुकूला।।२।।

अर्थ : वह : भक्ति स्वतन्त्र है। उसे : दूसरे का अवलम्बन नहीं है। ज्ञान विज्ञान उसके अधीन हैं। हे ! तात अनुपम सुख मूल भक्ति यदि सन्त अनुकूल हों तो मिलती है।

व्याख्या : सो सुतन्त्र : जो परमुखापेक्षी न हो वही स्वतन्त्र है। कर्म और ज्ञान स्वतन्त्र नहीं है। यज्ञ यागादि कर्म में अधिकार, द्रव्य, विधान, सामर्थ्य, देश, काल आदि का बड़ा बखेड़ा है। उसकी सिद्धि इनके अधीन है। फिर भी यदि उसमें भक्ति का पुट न रहा तो उससे संसार ही दृढ़ होता चला जाता है। इसीलिए श्रीगोस्वामीजी कहते हैं :

सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ।।
करतउ सुकृत न पाप सिराहीं। रक्त बीज इव बाढ़त जाहीं।।

ज्ञान भी स्वतन्त्र नहीं है। ऊपर कह आये हैं कि ज्ञानदीप के प्रज्ज्वलित करने में तत् पद के और त्वं पद शोधन में तथा एकीकरण में कितने साधनों की अनिवार्य आवश्यकता है। सब कुछ होने पर भी आत्मानुभव प्रकाश में तथा चित् जड़ग्रन्थि के छोड़ने में अचिन्त्य बाधायें आ पड़ती हैं। यथा :

छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघन अनेक करै तब माया।।
रिद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई।।
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा।।
जौं तेहि बुद्धि बिघ्न नहि बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी।।
इन्द्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।।
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी।।

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई। तबहिं दीप बिज्ञान बुझाई ।।
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा ।।
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ।।

दो॰ तब फिर जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस ।।

यदि ज्ञान सिद्ध हो तो भी भक्ति का आदर वहाँ भी अनिवार्य है। नहीं तो निरुपास्ति ज्ञान से साधक का पतन होता है। यथा : जो ज्ञान मान बिमत्त तव भव हरनि भगति न आदरी। ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।

अवलम्ब न आना : भक्ति के स्वातन्त्र्य का कारण कहते हैं कि उसे दूसरे का अवलम्बन नहीं है। वह कर्म : यज्ञादि और ज्ञान की मुखापेक्षी नहीं है। यह बात नहीं है कि बिना यज्ञ किये भक्ति होती ही नहीं। यहाँ पर ग्रन्थकार कहते हैं :

कौन धौं सोमयाजी अजामिल अधम। कौन गजराज धौं बाजपेयी। अर्थात् ये आर्त्त भक्त बिना यज्ञयागादि के ही कल्याण भाजन हुए और यह बात भी नहीं कि बिना ज्ञान के भक्ति न हो। किरातों को कौन बड़ा ज्ञान था। यथा : किरात बचन प्रभु प्रति :

कीन्ह बास भल ठाँउ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ।।
हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई ।।
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जाहा ।।
तहँ तहँ तुम्हहिं अहेर खेलाउब। सर निर्झर जल ठाँउ देखाउब ।।
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देब़ा ।।

दो. बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना अयन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बयन ।।

इसलिए भक्ति को स्वतन्त्र कहा है। भक्ति विशेष से चाहे हुए भगवान् भक्त के अभिमुख होते हैं और इच्छामात्र से उसके अभीष्ट प्रदान पूर्वक उस पर अनुग्रह करते हैं। ईश्वर की इच्छामात्र से उस भक्तयोगी को शीघ्र से शीघ्र समाधि की प्राप्ति होती है और समाधि का फल भी होता है। भगवत्स्मरण से भक्त को रोगादि विघ्न भी नहीं होते और स्वरूप[1] दर्शन भी उसे होता है। अतः भक्ति की उपमा चिन्तामणि से दिया। जिस भाँति चिन्तामणि का प्रकाश स्वाभाविक है। दीप के प्रकाश की भाँत आगन्तुक नहीं है। उसी भाँति भक्ति में स्वात्मानुभव प्रकाश स्वाभाविक है।

---

१. प्रणिधानाद् भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिधानमात्रेण। तदभिध्यानमात्रादपि योगिन आसन्नतमः समाधिफलं च भवति।
यो. भा. १.२३

ये तावदन्तराया व्याधिप्रभृतयस्ते तावदीश्वरप्रणिधानान्न भवन्ति। स्वरूपदर्शनमप्यस्य भवति। योग भा. १.२९

जिस भाँति चिन्तामणि से सब सुखों का लाभ होता है उसी भाँति भक्ति से भी सर्वाभीष्ट की सिद्धि होती है। अतः भक्ति स्वतः सब कुछ करने में समर्थ है। यथा :

राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥
परम प्रकाश रूप दिन राती। नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसै भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधा सम अरि हित होई। तेहि मनि बिन सुख पाव न कोई॥
व्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥
राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लव लेस न सपनेहुँ ताके॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥

तेहि आधीन ज्ञान बिज्ञाना : ऊपर दिखला चुके हैं कि ज्ञान विराग की स्थिति बिना भक्ति के नहीं होती। श्रीमद् भागवत माहात्म्य में ज्ञान विराग के अधीन होने का बड़ा सुन्दर उपाख्यान हैं। वृन्दावन में एक युवती सुन्दरी रुदन करती थी और दो वृद्ध पुरुष मृत्यु शय्या पर पड़े ऊर्ध्वश्वास ले रहे थे। नारदजी के पूछने पर मालूम हुआ कि वृद्ध युवती भक्ति है और दोनों चेतना रहित पुरुष ज्ञान विराग उसके पुत्र हैं। वृन्दावन में आने से भक्ति तो वृद्धा से तरुणी हो गयी। पर उसके पुत्रों का कोई उपकार नहीं हुआ। अन्त में नारद भगवान् के उद्योग से भागवत की कथा हुई और उससे ज्ञान विराग भी स्वस्थ हो गये। तात्पर्यार्थं यही है कि भक्ति से ही ज्ञान वैराग्य उत्पन्न हाते हैं तथा उसकी कृपा से स्वास्थ्य लाभ करते हैं। जिसे भक्ति होती है उसे ज्ञान विराग स्वयं ही प्राप्त हो जाते हैं। यथा :

सब सुख खानि भगति तै माँगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी॥
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तट दहहीं॥
रीझेउं देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई॥
सुनु बिहँग प्रसाद अब मोरे। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरे॥
भगति ज्ञान बिज्ञान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा॥
जानब तै सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥

तात : प्रश्न हुआ था : कहहु सो भगति कहहु जेहि दाया। आदेश हो रहा है। जाते बेगि द्रवौं मैं भाई। यहाँ भी प्रश्न से उत्तर में विशेषता है। अतः प्यार के शब्द : तात से सम्बोधन करते हैं। ऊपर भी ऐसा ही हो चुका है। पूछा था सकल कहहु समुझाई। उत्तर हुआ : थोरेहि महं सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात। प्रश्न विराग के विषय में हुआ। उत्तर मिला : सुनहु तात सो परम बिरागी। अतः निष्कर्ष यही निकला कि जहाँ प्रश्न से उत्तर में कुछ विशेष बात प्यार के कारण कहनी है वहाँ तात शब्द से सम्बोधन करते हैं।

भगति अनुपम सुख मूला : भक्ति के तीन विभाग है : १. साधन २. भाव

और ३. प्रेम। जो करने से हो और जिससे उसके कारण नित्य सिद्ध भाव का हृदय में आविर्भाव हो उसे साधन भक्ति कहते हैं। द्रवीभूत चित्तवृत्ति में जब राम रङ्ग चढ़ जाता है तो उसे भाव भक्ति कहते हैं। जब श्रीराम चरण में क्षण क्षण अविच्छिन्न आसक्ति बढ़ती चले। गुणों की कामना न रहे। ऐसे परमानन्द शान्तिमय अनुभव रूप निरोध को प्रेमा भक्ति कहते हैं। १. साधन भक्ति यथा : भगति के कहौं बखानी। २. भाव भक्ति यथा : भये काल बस जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जन त्राता। ३. प्रेमा भक्ति यथा : अविरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई। जो भगति सदा बनी रहे। जिसमें कभी व्यवधान पड़े ही नहीं। जिसमें अन्तराय का होना सम्भव ही नहीं वही अनुपम है। कर्म तो ऐसा हो नहीं सकता। क्योंकि उसका स्वरूप ही त्याग ग्रहणात्मक है। ज्ञान भी जीव में एक रस नहीं रह सकता। यथा : जौ सबके रह ज्ञान एक रस। ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस। परन्तु भक्ति ऐसी है जिसमें अन्तराय सम्भव नहीं। उसी को अविरल, अनपायिनी, सिद्धा, अनन्या आदि अनेक नामों से कहते हैं। उस पर माया का भी बल नहीं चलता। अतः वह अनूप हैं। सुखमूल है। यथा :

राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी।।
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई।।
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी। जाचहिं भगति सकलसुख सानी।।

मिलइ : भाव यह कि कृपासाध्य है क्रियासाध्य नहीं। अपने पुरुषार्थ से उसे कोई नहीं प्राप्त कर सकता। वह भगवान् के अनुग्रह से ही मिलती है। यथा : अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुराण जो गाव। जेहि खोजत योगीश मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव। भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपासिन्धु सुखधाम। सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम।

जो सन्त होहिं अनुकूला : भाव यह कि प्रभु प्रसाद से ही वह मिलती है। चाहे साक्षात् प्रभु द्वारा मिले। चाहे उनके अपर रूप सन्तों द्वारा मिले। विशुद्ध सन्त का समागम भी बिना प्रभु की कृपा सम्भव नहीं है। यथा :

सन्त बिसुद्ध मिलहि परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही।।

जिसके अङ्ग अङ्ग के प्रति वेदों ने लोकों की कल्पना की है। उस प्रभु का दर्शन दुर्लभ है। स्वयं भगवान् कहते हैं :

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः।।
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।।
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।।

गीता ११. ५२-५४

अर्थात् हे अर्जुन ! तुमने मेरे जिस सुदुर्दर्श रूप का दर्शन किया है उसके दर्शन के लिए देवता भी सदा लालायित रहते हैं। वेद से, तप से, दान से या यज्ञ से कोई मेरा दर्शन इस भाँति नहीं पा सकता जिस भाँति तुमने पाया है। केवल अनन्य भक्ति से ही भक्त इस प्रकार से जान सकता है देख सकता है और मेरे में प्रवेश कर सकता है। सो विश्व रूप भगवान् समुद्र हैं। सबकी इन तक गति नहीं। यह पुरुषार्थ मेघरूपी सन्तों में ही है कि भगवान् की ही मङ्गलमयी मधुर मनोहर मूर्ति भक्ति को लाकर मिला दे। आनन्दकन्द भगवान् चन्दन के वृक्ष हैं। पर सर्पादि विघ्नबाहुल्य से कोई चन्दन वृक्ष तक जा नहीं सकता। पर यह सामर्थ्य सन्तरूपी मरुत् में ही है कि उसकी आनन्दमयी विभूति भक्ति को लाकर पुरुषार्थहीन प्राणी से मिला दे। इसलिए कहते हैं : मिलै जो सन्त होहि अनुकूला। यथा :

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा ॥
रामसिन्धु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा ॥
सब कर फल हरि भगति सोहाई। सो बिनु संत न काहू पाई ॥
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ॥

यह पाँचवें प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ। अब प्रथम प्रश्न का उत्तर कहते हैं।

## भक्तियोग : साधना

भगति के साधन कहहुँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहि प्रानी ॥
प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥३॥

अर्थ : भक्ति के साधनों को बखान करके कहता हूँ। इस : सुगम पन्थसे मुझे प्राणी प्राप्त होते हैं। पहिले ही विप्र के चरणों में अति प्रीति हो और वैदिक रीति से अपने अपने कर्म में निरत : लगे हों। ७.२० बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।

व्याख्या : भगति के साधन : अविरल भक्ति का प्रसङ्ग समाप्त हुआ। अब जो पहले प्रश्न किया था : मोहि समुझाउ कहौ सो देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा। उसका आरम्भ होता है। भाव यह कि जिस साधन से सुख सम्पत्ति परिवार और बड़ाई आदि का परित्याग करके सेवकाई में जीव प्रवृत्त होता है उसका वर्णन किया जा रहा है। वे ही भक्ति के साधन हैं। ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान मनुष्य में स्वाभाविक है। वह छोटे छोटे बच्चों में भी पाया जाता है। निरीश्वरवाद अस्वाभाविक है। बड़ी कठिनता से गले उतरना है। फिर भी : ईश्वर नहीं है ऐसा अभ्रान्त ज्ञान तो किसी को होता ही नहीं। उसके बिना जाने भी ईश्वर के अस्तित्व की धारणा छिपी छिपायी कहीं न कहीं उसके हृदय में पड़ी ही रहती है। तब ईश्वर की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना उसके लिए स्वाभाविक है। फिर भी मनुष्य जो ईश्वर की भक्ति नहीं करता उसका कारण यह है कि सुख सम्पत्ति परिवार

बड़ाई इत्यादि उसके बाधक हैं। इन बाधकों को दूर करने से हृदय में स्वतः भक्ति का सञ्चार हो उठता है। यथा :

सुख सम्पति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई॥
ये सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥
अब प्रभु कृपा कहहु एहि भाँति। सब तजि भजनु करउँ दिन राती॥

कहहुँ बखानी : भाव यह कि समझाकर कहता हूँ। क्योंकि प्रार्थना ही ऐसी है : मोहि समुझाइ कहौं सोइ देवा। साधन के वर्णन में कुछ विस्तार करना ही पड़ता है। साधन अनेक होते हैं और उनके पूर्वापर का क्रम होता है। उनमें उलट फेर होने से सिद्धि में कठिनाई होती है और ठीक क्रम से चलने में सुगमता होती है और सिद्धि भी शीघ्र होती है। दूसरी बात यह कि ज्ञानपन्थ की भाँति यह अकथ कहानी नहीं है। जो न समझते ही बने न बखानते ही बने। यथा : सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनै न जात बखानी।

सुगम पंथ : जिस मार्ग से चलने में विघ्नबाधा न हो। आयास न हो। वही सुगम पंथ है। इस पंथ पर चलनेवाली की रखवारी स्वयं भगवान् करते हैं। अतः उसे विघ्नबाधा दबा नहीं सकती और उसमें योग जप तप व्रत उपवासादि कष्टकर अनुष्ठान नहीं है। आप से आप समाधि सिद्ध होती है। भक्ति योग के पथिक को भगवान् के सहारे से पार का प्राप्त करना कठिन नहीं होता है। यथा :

ज्ञान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं वारा॥
कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक।
होई घुनाच्छर न्याय ज्यौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥
सोम कि चापि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥
कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥

मोहि पावहि प्रानी : एक व्यापक अविनाशी अविकारी सच्चिदानन्दघन ब्रह्म सबके हृदय में विद्यमान है पर उसकी प्राप्ति तो नहीं होती। यदि प्राप्ति होती तो जीव दीन दुखारी नहीं होते। काष्ठ में अग्नि तो अव्यक्तरूप से व्याप्त है पर मन से काष्ठ और अग्नि को पृथक् करने से अग्नि को प्राप्ति नहीं होती। उसकी प्राप्ति तब होगी जब यत्न से उस अव्यक्त अग्नि को व्यक्तरूप में लाया जाय। इसी भाँति अव्यक्त ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है। स्वयं हृदय में विराजमान है पर प्राप्ति उसकी नहीं होती। जब भक्ति द्वारा उसे व्यक्तरूप : सगुणरूप में लाया जाय तब उसकी प्राप्ति होती है। हीरे में मूल्य है पर हीरे से स्वयं तो कोई काम नहीं चलता। जब यत्न किया जाय और उसके कुव्यक्त मूल्य को व्यक्तरूप में लाया तब उससे काम चल सकता है। यथा :

सहे सुरन्ह बहुकाल बिषादा। नरहरि किये प्रगट प्रहलादू॥
एक दारुगत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन तें॥

प्रथमहि : भाव यह कि भक्ति पथ पर पैर रखनेवाले को पहिले साधन भक्ति को अङ्गीकार करना पड़ता है। प्रथमहिं कहकर यह दिखलाया कि यहाँ जो कुछ कहा जायगा उसमें क्रम है। दूसरा तीसरा कहकर स्पष्ट न गिनाने पर भी क्रम समझ लेना चाहिए।

बिप्र चरन अति प्रीति : विप्र वेदपाठी ब्राह्मण को कहते हैं। ब्राह्मण में यदि ब्राह्मणोचित गुण न हो तो भी उसका कर्मठ होना अनिवार्य है। वेद विहीन ब्राह्मण शोच्य हो जाता है। अतः गोस्वामीजी ने विप्र शब्द का अधिक प्रयोग किया है। ब्राह्मण शब्द का अति विरल प्रयोग है। सो पहला साधन यह है कि विप्र के चरण में अति प्रीति हो। क्योंकि द्विज सेवकाई हरि तोषण व्रत है। विप्र के पूजित होने से भगवान् तुष्ट होते हैं। इसीलिए ये महिदेव कहलाते हैं।

अति प्रीति कहने का भाव यह कि उनसे शापित ताड़ित तथा अपमानित होने पर भी क्रोध न करे। उनकी पूजा ही करे। क्योंकि शील गुणहीन ब्राह्मण के भी पूजन का विधान है। गुण ज्ञान प्रवीण शूद्र के पूजन का विधान नहीं है। पूर्व जन्म के [1]कर्मों से ही जाति आयु और भोग की प्राप्ति होती है। जो रमणीयाचरण है उनको रमणीय योनि की प्राप्ति होती है वे ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य होते हैं और जो कपूयाचरण है उनको कपूय योनि को प्राप्ति होती है वे चाण्डाल योनि या कुत्ते की योनि को प्राप्त होते हैं। अतः शील गुण रहित विप्र की पूजा वस्तुतः उसके पूर्व जन्म के रमणीयाचरण की पूजा है। जिसके विपाक से उसे ब्राह्मण शरीर मिला है और गुण ज्ञान प्रवीण शूद्र की अपूज्यता उसके पूर्व जन्म के कपूयाचरण का परिचायक रूप है। इस जन्म का रमणीयाचरण अभी परिपक्व नहीं हुआ है। आगामी जन्म में उसके आयु और जाति व भोग का कारण होगा। यथा :

सुनु गन्धर्व कहौं मैं तोही। मोहि न सोहाय ब्रह्मकुल द्रोही॥

दो. मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताके सब देव॥

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुनगन ग्यान प्रबीना॥

अतः जिस भाँति अश्वत्थ तुलसी आदि स्वयं अपने कल्याण सम्पादन में असमर्थ हैं। पर उनके पूजकों का कल्याण होता है। उसी भाँति शील गुण हीन विप्र अपना कल्याण करने में असमर्थ हैं। पर उनके पूजक का कल्याण होता है।

निज निज कर्म निरत : अपने वर्ण और अपने आश्रम के कर्म में लगा रहे। भाव यह कि शोक मोहादि दोषों से जिनका चित्त घिरा हुआ है ऐसे सभी प्राणियों से स्वधर्म का त्याग और निषिद्ध धर्म का सेवन स्वाभाविक ही होता है : तथा च सर्वप्राणिनां शोकमोहादि दोषाविष्टचेतसां स्वभावत एव स्वधर्मपरित्यागः प्रतिषिद्ध-

———

१. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। प० यो० सू०.

सेवा च स्यात्। शां० भा०. जैसे अर्जुन पहले स्वयं ही क्षात्रधर्म रूप युद्ध में प्रवृत्त हुआ था। तब भी शोक मोह द्वारा विवेक ज्ञान के दब जाने से उस युद्ध से उपरत हुआ और दूसरों का धर्म भिक्षाचरण में प्रवृत्त होने लगा। अतः ब्राह्मण में जो अन्य जाति के कर्म करने की प्रवृत्ति देखी जाती है या हीन जाति में जो उच्च जाति के कर्म करने की प्रवृत्ति देखी जाती है। इसी भाँति संन्यस्त में जो गृहस्थ धर्म की प्रवृत्ति तथा गृहस्थ में संन्यास धर्म की प्रवृत्ति है। उसका कारण शोक मोहादि से विवेक विज्ञान का दब जाना ही है। दूसरी बात यह है कि जिनका सम्बन्ध ब्राह्मणों से टूट जाता है। उनसे वर्णाश्रम धर्म का निर्वाह किसी भाँति सम्भव नहीं। मनु भगवान् ने स्पष्ट लिखा है कि यहीं के क्षत्रिय जो बाहर जाकर बसे। वे ब्राह्मणों से असम्बद्ध होने के कारण वर्णाश्रम धर्म से पतित होकर यवन, म्लेच्छ, पुल्कस, किरातादि अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। स्वधर्मत्याग से मनुष्य पतित हो जाता है। यथा :

बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी॥
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि नर पर पुरुष अभागी॥
सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नवीना॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही॥

इत्यादि।

श्रुति रीति : भाव यह कि वेद की रीति से जिसका जो कर्म है वही करे। दूसरा न करे। अदृष्टार्थ का ज्ञान वेद तथा तच्चरणाश्रित शास्त्रों से ही हो सकता है। ईश्वर स्वर्ग या धर्म को किसी ने देखा नहीं। इनका ज्ञान अन्य किसी प्रमाणों से नहीं हो सकता। अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्। जो भाव अचिन्त्य हैं उन सब में तर्क को स्थान नहीं देना चाहिए। अतः धर्म कैसे पालन करना चाहिए इसे श्रुति ही बतला सकती है। लाखों मनुष्यों के एक स्वर के चिल्लाने से भी न कोई वस्तु पुण्य हो सकती है न पाप हो सकती है। करोड़ों आदमियों के एक साथ आवाज उठाने पर भी न शीशा हीरा हो सकता है और न हीरा शीशा हो सकता। इसका विवेक तो पारखी : जौहरी ही कर सकता है। अतः कल्पित आचार न करे। जो कर्म एक के लिए धर्म है वही दूसरे के लिए अधर्म हो जाता है। इसलिए कार्याकार्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र विधान को जानकर ही कर्म करना चाहिए। तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि। गीता १६.२४. । यःशास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्। गीता १६.२३.। जो शास्त्र विधि को छोड़कर अपने मन का करते हैं उन्हें न तो सिद्धि मिलती है न सुख मिलता है। न उनको परा गति की प्राप्ति होती है। श्रुतिरीति कर्म करने की यह है कि शास्त्रविहित कर्म को संग रहित होकर बिना रागद्वेष के फल की इच्छा न रखते हुए करे। तात्पर्यार्थ यह कि अपनी स्वाभाविकी प्रवृत्ति

को शास्त्रीया बनावे और उसे ऐसा दृढ़ बनावे कि उसके त्याग में उतनी ही कठिनता मालूम पड़े जितनी कि पहिले स्वाभाविकी प्रवृत्ति के त्याग में मालूम पड़ी थी। यथा :

सिवि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरमहित कोटि कलेसा॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरम धरेउ सहि संकट नाना॥
मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजस छावा॥
संभावित कहँ अपजस ताहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥

एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥४॥

अर्थ : इसका फल फिर विषय विराग है। तब मेरे धर्म में अनुराग उत्पन्न होता है। तब श्रवणादिक नव भक्तियाँ दृढ़ होती हैं और मन में मेरा लीला की अत्यन्त प्रीति होती है।

एहि कर फल पुनि : भाव यह कि कार्यकारण शृंखला चल रही है। विप्रचरण प्रीति का फल श्रुतिरीति से स्वधर्माचरण। अब उसका फल कहते हैं। इसलिए पुनि शब्द का प्रयोग किया है।

बिषय बिरागा : अर्थात् वशीकार संज्ञा वैराग्य प्राप्त होता है। जिसका वर्णन पहले किया है जा चुका है। भाव यह कि शास्त्रीया प्रवृत्ति दृढ़ होने से ही वस्तु विचार का उदय होता है। तब विषय के दोष परिणाम विरसत्वादि दिखायी पड़ने लगते हैं। बिना दोष दर्शन के वैराग्य नहीं होता।

तुरत बिरत होके रोक के इन्द्रियों को
स्मरण मनन से भी नारि के जी हटाऊँ।
सुरत बिरसता को देह बीभत्सता को
प्रति दिन जिय सोचूँ काम यौं नसाऊँ॥

कमलदल से सूक्ष्म चर्म विरंचि यदि मढ़ता नहीं।
मांस के इस पिंड को त्वक् खोल में धरता नहीं॥
गृद्ध काक शृगाल लोहु मांस के भक्षक सदा।
टूटते इस देह पर मिलते कहाँ रक्षक तदा॥
कभी नहीं उपकार करेंगे किया नहीं करते।
पुत्र किसी के भी क्या तेरे सुखद नहीं होते॥
उनका विरह मर्मभेदी दुःख है नाहक उनके।
लिये बहुत सा मेहनत करना कष्ट बहुत सह के॥
ब्रह्मा इन्द्र मुनीस सागर मही मन्वादि दीर्घायु हैं।
वे भी लाख करोड़ होकर मरे ये जीव अल्पायु हैं॥

को है मोह अहो प्रकाश करता जो शोक को लोक में।
बुद्बुद से तनके लिये मिलन है जो पाँच का पाँच में।।

प्रबोध चन्द्रोदय.

वैराग्योदय की आवश्यकता दोनों मार्गों में अनिवार्य है। धर्म ते विरति : ज्ञानयोग प्रकरण में कहा गया है और यहाँ भी वही बात कही जा रही है। पर इसके बाद की प्रक्रिया में भेद है। ज्ञानमार्गी वैराग्योदय के बाद योग द्वारा : तत् त्वं पद शोधन करके : सोहमस्मि वृत्ति से आत्मानुभव करते हुए चिज्जड़ ग्रन्थि को सुलझाकर मोक्ष लाभ करते हैं। पर सगुणोपासक यह रास्ता नहीं पकड़ते। वे मोक्ष नहीं चाहते। उन्हें सिद्धा भक्ति चाहिए। यथा :

सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं। तिन कहँ राम भगति निज देहीं।।
साधन सिद्धि राम पद नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।।

तब मम धर्म : श्री रामजी कहते हैं कि मेरा धर्म उनके धर्मों का पता उनके गुण श्रवण से ही लग सकता है। अतः उनके गुणगणों का श्रवण ही भगवद्धर्म है। यथा : भगवद्धर्मश्च भगवद्गुणश्रवणं न तु धर्मबुद्ध्या तदनुष्ठानपर्यन्तं विवक्षितम्। भक्तिरसायने.। अर्थ : भगवद्धर्म भगवद्गुण श्रवण हैं। यहाँ धर्म बुद्धि से उसके अनुष्ठान तक की विवक्षा नहीं हैं। यथा : तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्। यहाँ केनाप्युपायेन का तात्पर्य यही है कि चाहे धर्मबुद्धि से अनुष्ठान करके चाहे न करके अर्थात् भगवद् गुण श्रवण से मन को भगवच्चरणों में लगावे। अतः कहते हैं :

उपज अनुरागा : भाव यह कि जब तक वैराग्य का उदय नहीं हुआ था तब तक तो विषय में अनुराग था। मन सदा विषय के धर्मों में ही आसक्त रहता था और जब विषय से विराग हुआ तो स्वभाव से ही भगवान् की ओर जायगा। उनके करुणा भक्तवत्सलतादि गुणों पर अनुरक्त होगा : यहाँ से भाव भक्ति का प्रारम्भ हुआ। यथा :

समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ।
मन मेरे मानै सिख मेरी। जौ निज भगति चहै हरि केरी।।
उर आनहि प्रभुकृत हित जेते। सेवहि ते जे अपन पौ चेते।।
दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि कौ।
जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि कौ।।
यह भरत खंड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली।।
तेरी कुमति कायर कलपवल्ली चहत विषफल फली।।

इत्यादि।

श्रवणादिक नव भक्ति : १. श्रवणम् २. कीर्तनं विष्णोः ३. स्मरणम् ४. पादसेवनम् ५. अर्चनं ६. वन्दनं ७. दास्यं ८. सख्यम् ९. आत्मनिवेदनम्। ये ही श्रवणादिक नव भक्ति हैं।

१. श्रवण : १. नाम २. चरित्र ३. गुणादि के सुनने को श्रवण कहते हैं।

१. नाम श्रवण यथा : वेगि विलम्ब न कीजिये लीजिय उपदेस।
महाँ मंत्र जपिये सोई जेहि जपत महेस ॥

२. चरित्र श्रवण यथा : लागी सुनै श्रवन मन लाई।
आदिहि ते सब कथा सुनाई ॥
आसा बसन ब्यसन येह तिन्हही।
रघुपति चरित होइ तहं सुनही ॥

३. गुण कीर्तन, यथा : सुनत फिरौं हरिगुन अनुवादा।
अब्याहत गति संभु प्रसादा ॥

२. कीर्तन : १. नाम २. लीला और ३. गुणादि के गान को कीर्तन कहते हैं।

१. नाम कीर्तन यथा : राम नाम महिमा सुर कहहीं।
सुनि सुनि अवध लोग सुख लहहीं ॥

२. लीला कीर्तन यथा : बर तर कह हरि कथा प्रसंगा।
आवैंहि सुनहिं अनेक त्रिहंगा ॥

३. स्मरण : जिस किसी भाँति मन द्वारा सम्बन्ध को स्मरण कहते हैं। यह इतना वड़ा प्रबल साधन है कि इसके प्रभाव से भगवद्विरोधियों का भी उद्धार हो जाता है। यथा : उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहिं परम गति अस जिय जानो। अस कृपालु को कहहु भवानी। तथा : तुलसी अपने राम को रीझि भजै चह खोझ। खेत परे ते जामिहैं उलटो सीधो बीज। स्मरण यथा :

सुमिरत हरिहिं साप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी ॥
सुमिरत रामहिं तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु।
राम प्रिया जग जननि सिय कछु न आचरज तासु ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू ॥ इत्यादि।

४. पाद सेवन : चरणों की पूजा सेवा। कुछ भक्त ऐसे हैं जो केवल चरणों का ही ध्यान पूजन करते हैं। कोई ऐसे हैं जो चरण चिह्नों का ही ध्यान पूजन किया करते हैं। यथा :

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥
आगे परा गीध पति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥

५. अर्चन : शुद्धि न्यासादि पूर्वाङ्ग निर्वाह पूर्वक उपचारों द्वारा मन्त्रों से पूजन को अर्चन कहते हैं। यथा :

तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा बिबिध प्रकार ॥

६. वंदन : दण्डवत् प्रणाम यथा : सकृत् प्रणाम किये अपनाए।
मंगल मूल प्रणाम जासु जग मूल अमंगल को खनै। विनय.

पुनि मन बचन करम रघुनायक। चरन कमल बंदौं सब लायक ॥
मो ते होइ न प्रति उपकारा। बंदौं तव पद बारंबारा ॥

७. दास्य : मैं ईश्वर का किङ्कर हूँ : ऐसे अभिमान को दास्य कहते हैं। यथा :
अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करै तौ कहुँ कहाँ बिस्वासा ॥

८. सख्य : सख्य के दो भेद हैं : विश्वास और २. मित्रवृत्ति।

१. विश्वास यथा : है तुलसी के एक गुन अवगुन निधि कहैं लोग।
भलो भरोसी रावरो राम रीझिबे जोग ॥

२. मित्रवृत्ति : तुलसी कहीहैं साँची रेख बार बार खाँची।
ढील किये नाम महिमा की नाव बोरिहौं ॥ विनय.

९. आत्म निवेदन : आतमा शब्द का दो अर्थ पण्डितों ने माना है। एक तो अहन्तास्पद देही और दूसरा ममतास्पद देह।

देही यथा : अब मैं जन्म संभ हित हारा। को गुन दोष न करै बिचारा ॥

देह यथा : हृदय घाउ मेरे पीर रघुबीरै।
पाइ सजीवन जागि कहत यौं प्रेम पुलकि बिसराय सरीरै ॥
मोहि कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै ॥
सोभा सुख छति लाभ भूप कहँ केवल कांति मोल हीरै ॥
तुलसी सुनि सौमित्रि वचन सब धरि न सकत धीरौ धीरैं ॥
उपमा राम लखन की प्रीति की वन्यौं दीजै खीरैं नीरैं ॥

दृढ़ाहीं : भाव यह है कि श्रवणादिक नव भक्तियों का कर्तव्य रूप से शास्त्रों में वर्णन है। अतः इनकी गिनती साधन भक्ति में है। साधक इनका आचरण स्वधर्मानुष्ठान समझकर करता आ रहा था। परन्तु अनुराग के बिना ये दृढ़मूलक नहीं हो पाती थी। अब प्रभु के धर्मों में अनुराग उत्पन्न हो जाने से दृढ़मूलक हो गयी।

मम लीला रति : लीला का अर्थ चरित्र है। भगवान् आप्तकाम हैं। अतः किसी प्रयोजन का उद्देश्य रखकर उनकी प्रवृत्ति नहीं होती। उनका चरित्र उनकी लीला है। परन्तु उनके चरित्र का कथन और श्रवण का उपयोग नवधा भक्ति के कीर्तन और श्रवण प्रकरण में कहा जा चुका है। अतः यहाँ पर लीला से उनके चरित्र के अनुकरण से तात्पर्य है। यथा : खेलौ तहाँ बालकन्ह मीला। करौं सकल रघुनायक लीला। श्रीमद्भागवत में भी प्रेमाधिक्य से गोपियों द्वारा भगवान् के चरित्र के अनुकरण का वर्णन है। यथा : लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुम्तदात्मिकाः। अतः यहाँ मम लीला का अर्थ हुआ रामलीला।

लीला और नाटक बहुत अंशों में समान होने पर भी एक वस्तु नहीं है। इन दोनों में उतना ही भेद हैं जितना कि बाजार में रखी हुई मूर्ति और स्थापित मूर्ति में भेद होता है। लीला उपासना की दृष्टि से की जाती है। उसमें मुकुट पूजा

होती है। ब्राह्मण के बच्चों का श्रीराम लक्ष्मण के रूप में वरण होता है। और जब तक उनके सिर पर मुकुट रहता है तब तक उनकी पूजा प्रतिष्ठा भगवद्विग्रह के समान ही होती है। आज भी श्रीगोस्वामीजी के मन्दिर : भदैनी काशी में प्रतिवर्ष रामलीला होती है। इससे पता चलता है कि ग्रन्थकार का लीला के प्रति कितना अनुराग था। लीला से उपासकों को असाधारण लाभ होता है। भक्तिरस के आविर्भाव के लिए तथा रस के अंकुरित होने के लिए श्रीरामलीला वर्षाऋतु है। आलम्बन उद्दीपनादि सभी सामग्री रामलीला से सुलभ हो जाती हैं।

अति मन माहीं : भक्तों की रामलीला में बड़ी प्रीति रहती है। बड़ा उत्साह रहता है। जिस मधुर मूर्ति की झाँकी श्रीरामलीला में हो जाती है उसका दृढ़मूलक छाप हृदय में बैठ जाता है। परम्परा के अनुसार श्रीरामलीला वर्ष में एक बार आश्विन मास में होती है। परन्तु उसकी प्रीति मन में बराबर बनी रहती है और उन दिनों के लिए चित्त सदा लालायित रहता है जब कि लीला प्रारम्भ होती है। सुना जाता है कि ग्रन्थकार को श्रीअवध में रामलीला के व्याज से ही भगवद्दर्शन हुआ था। परतन्त्रता के दिनों में स्वातन्त्र्य की भावना की बड़ी भारी रक्षा श्रीरामलीला से हुई और आज भी धार्मिक भावों का प्रभाव जैसा जनता पर पड़ता है वैसा अन्य उपायों से सम्भव नहीं। हताश हृदयों में आशा लता को प्राण प्रदान तो रामलीला ही करती है।

संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥५॥

अर्थ : संत चरन पंकज से अत्यन्त प्रीति होती है। मनसा वाचा कर्मणा मेरा भजन दृढ़ नियम से : होता है। गुरु पिता बन्धु पति और देवता सब कुछ मुझी को दृढ़ सेवावाला जानता है।

संत चरन पंकज अति प्रेमा : जब लीला द्वारा साधक प्रत्यक्ष देखता है कि सन्तों के परित्राण के लिए ही प्रभु अवतार धारण करते हैं। सन्तों के मिलने की इच्छा के सामने उन्हें राज्य तिलक फीका मालूम पड़ता है : वनवास श्रेयस्कर बोध होता है। जब लीला में प्रभु को सन्तचरणों में अवनत होते देखते हैं तब सन्तचरण पङ्कज से अति प्रेम न होना आश्चर्य है। जब श्रीमुख से सन्तों की स्तुति सुनते हैं तब उनके प्रति साधक का अत्यन्त अनुराग बढ़ता है। यथा :

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उनके बस रहऊँ॥
षट् विकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख धामा॥
अमितबोध अनीह मित भोगी। सत्य सार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मद हीना। धीर धर्म गति परम प्रवीना॥

दो. गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥ इत्यादि।

मुनि सुनु साधुन के गुन जे ते । कहि न सकैं सारदश्रुति ते ते ॥
छं. कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे ।
अस दीनबन्धु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥

परन्तु ऐसे सन्त महात्मा की पहिचान अत्यन्त कठिन है । बिना सन्तों के संसार चल नहीं सकता । वे सबको सब देशों में सुलभ हैं । परन्तु विषयी जीव को उनकी पहिचान नहीं । अतः उनकी प्राप्ति नहीं होती । उनकी प्राप्ति के लिए पुण्यपुञ्ज चाहिए । भगवान् की कृपा चाहिए । यथा :

पुन्य पुंज बिनु मिलहि न संता । सत संगति संसृति कर अंता ॥
पुन्य एक जग मह नहिं दूजा । मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा ॥
संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही । चितवहि राम कृपा करि जेही ॥

भगवान् भाववश्य हैं । इसलिए भाव भक्ति करनेवाले पर हरिकृपा होती है । उन्हें सन्त मिलते हैं और उनसे उनको भक्ति चिन्तामणि की प्राप्ति होती है । यथा :

भाववस्य भगवान सुख निधान करुणा अयन ।
तजि ईर्ष्या मदमान भजिय सदा सीता खन ॥
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा । चंदन तरु हरि संत समीरा ॥
सबकर फल हरि भगति सुहाई । सो बिनु संत न काहू पाई ॥
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा । राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ॥

मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा : भाव यह कि पहले उसे श्रवणादिक नव भक्ति दृढ़ हुई थी । अब सन्तों के प्रसाद से मनसा वाचा कर्मणा दृढ़ नियम के साथ भजन प्रारम्भ हुआ । राम भगति के बाधकों की ओर से वृत्ति फिर गयी । यथा :

जरउ सो संपति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ ॥
सनमुख होत जो रामपद कर इन . कोटि सहाय ॥
मन क्रम बचन रामपद सेवक । सपनेहुँ आन भरोस न देवक ॥

अब साधक महात्मा पद को प्राप्त हुआ । जो मन में हो वही वाणी में हो । वही कर्म से हो । यह लक्षण महात्मा का है और मन में दूसरी बात हो वाणी से कोई दूसरी बात कहे और कर्म उन दोनों से पृथक् ही कुछ करे : यह दुरात्माका लक्षण है । मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् । मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् । वाणी से भजन करना और मन दूसरी ओर रहे अथवा कर्म से भजन करना वाणी से कुछ दूसरी बातें करते रहना तथा मन से अन्य विषयों का ध्यान करते रहना यथार्थ भजन नहीं है । मन में भी भगवान् हो : वाणी से भी. उनकी स्तुति हो : कर्म से उनकी परिचर्या होती रहे तब उस भजन को मन वच कर्म से भजन कहेंगे ।

दूसरी बात यह है भोजन की भाँति भजन भी हित है । अतः इसे नित्य नियम के साथ प्रीतिपूर्वक करना चाहिए । अन्यथा भजन का ठीक प्रभाव नहीं पड़ता । यथा :

भोजन करिय तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचब जठरागी॥
असि हरि भगत्ति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥

गुरु पितु मातु : जिनके लिए स्वयं श्रुति भगवती कहती हैं : मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। माता पिता आचार्य ये तीनों ही देव हैं। ये ही तीनों अग्नियाँ हैं। इन्हीं की सेवा से लोक परलोक बनता है। इनकी आज्ञापालन में यदि बुरे रास्ते पर चलना पड़े तो भी अकल्याण नहीं होता। यथा :

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खाले॥

बन्धु पति देवा : बन्धु जो आड़े समय में काम आते हैं। यथा :

होहिं कुठाँय सुबंधु सहायें। ओड़िअहिं हाथ असनिहुँ के घाये॥

पति का अर्थ स्वामी है। जिसका सब भाँति छल छोड़कर सेवा का विधान है। यथा : भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी। देवता इष्ट फल देनेवाले हैं। यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः। गीतायाम्. ३.१२.

यहाँ पर छः को गिनाया है। और भी जितने प्रेम के पात्र हैं उन सबको भी समझ लेना।

सब मो कह जानै : भाव यह कि सबकी ओर से ममता हटाकर श्रीरामजी से प्रीति करे। श्रीरामजी को ही माता पिता गुरु बन्धु स्वामी और देवता माने। अर्थात् माहात्म्य-ज्ञान युक्त सुदृढ़ और सबसे अधिक स्नेह हो। यथा :

राम मातु पितु बन्धु सुजन गुरु पूज्य परम हित।
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित्त॥
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहि हमारि मति॥
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम ते सकल फल।
कह तुलसीदास अब जब कबहुँ एक राम ते मोर भल॥

दृढ़ सेवा : अर्थात् जिस साधक की सेवा दृढ़ हो गयी है। भाव यह कि जिसके लिए ऊपर लिख आये हैं : मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा। दृढ़ सेवावाला भक्त सब नाता : सम्बन्ध जोड़ने में समर्थ हो सकता है।

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरन्तर बस मैं ताके॥६॥

अर्थ : मेरे गुणों का गान करते हुए जिसके शरीर में रोमाञ्च हो जाय। गला भर उठे। आँखों से अश्रु की धारा बहे और काम आदि मद दम्भ जिसे न हों। हे तात ! मैं उसके वश में रहता हूँ।

मम गुन गावत : भाव यह कि तब उस भक्ति की श्रीहरि में अविच्छिन्न मनोगति हो जाती है। उन्हीं का गुण बराबर गान किया करता है। उन्हीं का

मूर्ति का ध्यान किया करता है। दूसरी कोई बात उसे अच्छी नहीं लगती और श्रीहरि को भी भक्तों का गान परम प्रिय है। उन्हीं का वचन है : नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न हि। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद। मैं न तो वैकुण्ठ में बसता हूँ और न योगियों के हृदय में बसता हूँ। हे नारद! जहाँ मेरे भक्त गान करते हैं मैं वहीं रहता हूँ। इसकी कोई आवश्यकता नहीं कि वह गान स्वरताल युक्त मीठा हो। यह अभिप्राय होता तो कहते : गायका यत्र गायन्ति। पर ऐसा नहीं कहते। अतः भक्तों का गान उन्हें प्रिय है। चाहे वह संगीत दृष्टि से कैसा ही हो।

पुलक सरीरा गद्गद गिरा नयन बह नीरा : शरीर में रोमाञ्च होना, गला भर आना. आँखों से आँसू की धारा चलना। ये सब प्रेम में डूबाडूब होने के लक्षण हैं। यहाँ पर भक्तों के गानप्रिय होने का कारण कहते हैं। भक्त प्रेम में डूबाडूब हैं। वह प्रेम में मग्न होकर गान करता है। उसे लय स्वर ताल का पता नहीं। श्रीहरि ऐसे ही गान पर रीझ जाते हैं। भीतर के प्रेम के बाहरी लक्षण— पुलक शरीर गद्गद और नयन नीर हैं। यथा :

कछु ह्वै न आई गयो जन्म जाय।
अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि। भजे न राम मन वचन काय।।
रामविमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ निसिवासर तयो तिहुँ ताय।।
सेये नहिं सीतापति सेवक साधु सुमति भली भगति भाय।।
सुने न पुलकि तन कहे न मुदत मन किये जे चरित रघुवंस राय।।

काम आदि मद दंभ न जाके : काम क्रोध मोह लोभ मद दंभ आदि दुरभिसन्धि हैं। जो किसी कामना से गान करता हो वह भले हो अर्थार्थी भक्त हो पर प्रेमा भक्ति उसे नहीं है। जो मदसे गान करता हो कि मैं संगीत शास्त्र का आचार्य हूँ अथवा मुझसे गानेवाले दुर्लभ हैं उसे भी भगवद् गुणगान का कुछ फल तो होता ही है। पर प्रेमभक्तिसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। अथवा जो लोभ से गान करता है कि गान करने से मुझे कुछ मिलेगा या जो दम्भ से गान करता है कि लोग मुझे भक्त कहेंगे उनका गान वैसा नहीं : चाहे वह कितना ही लय सुर तानसे ठीक हो : जो भगवान् को रिझा सके। अतः गान सभी अभिसन्धियों से रहित होना चाहिए। यथा : प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअन्तर मल कबहुँ कि जाई।

तात : प्रश्न है : मोहि समुझाइ कह सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा। और उत्तर हो रहा है : तात निरंतर बस मैं ताके। यहाँ भी उत्तर प्रश्न से कहीं अधिक विशेषता रखता है। इसलिए फिर तात सम्बोधन देते हैं।

निरंतर बस मैं ताके : श्रीमद्भागवत में दुर्वासा से स्वयं भगवान् ने कहा है कि हे ब्राह्मण! मैं भक्त के पराधीन हूँ। एक प्रकार से अस्वतन्त्र हूँ। अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। सो भगवान् ही भक्त के पराधीन रहते हैं। यथा :

मनोगतिरविच्छिन्ना हरौ प्रेमपरिप्लुता। अभिसन्धिविनिर्मुक्ता भक्तिर्विष्णुवशंकरी। पञ्चरात्रे,

श्रीहरि में अविच्छिन्न और अभिसन्धि रहित प्रेमपरिप्लुता मनोगति का होना ऐसी भक्ति है जो हरि को वश में रखती है।

दो. बचन कर्म मन मोरि गति, भजनु करहि निहकाम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ, करौं सदा बिस्राम ॥१६.१०॥

अर्थ : जिन्हें मनसा वाचा कर्मणा मेरी ही गति है और निष्काम भजन करते हैं उनके हृदय कमल में मैं सदा विश्राम करता हूँ।

व्याख्या : वचन कर्म मन मोरि गति : जिन्हें मनसा वाचा कर्मणा श्रीराम की ही गति है दूसरा चारा नहीं वे ही जागते सोते भगवान् की शरण में रहते हैं। दूसरे से बोलना भी पड़ा तो सत्य प्रिय और विचारकर हित की बात बोलते हैं। उन्हीं को दुःख सुख प्रशंसा और गारी समान होती है। वे सबके हितकारी और सबके प्रिय होते हैं। यथा :

सबके प्रिय सबके हितकारी। दुःख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहिं छाड़ि गति दूसर नाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं॥

भजन करहिं निहकाम : वे ही भक्त निष्काम भजन कर सकते हैं जिन्हें न तो परमार्थ की कामना है न गूढ़ गति जानना चाहते हैं। न उन्हें अणिमादिक सिद्धि चाहिए और न किसी सङ्कट से विनिर्मुक्ति चाहते हैं। यथा :

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष हृद तिनहु किये मन मीन॥

तिनके हृदय कमल महँ : भाव यह कि उन्हीं के हृदय की शोभा है। [illegible] कमल की उपमा दी है। भ्रमर को भी उस कमल को छोड़ : दूसरि गति नहीं। हृदय ऐसा है जहाँ भगवान् सगुण रूप से रहते हैं। निर्गुण रूप से तो उनका नि[illegible] सभी हृदयों में है। यथा :

व्यापक एक ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आँनद रासी॥
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥

करहुँ सदा बिश्राम : जिनके हृदय में कुछ और कामनाएँ हैं उनके हृदय में सगुण रूप से प्रकट हाने पर भी श्री हरि विश्राम नहीं कर पाते। उसकी रुचि रखने के लिए सतत चञ्चल रहना पड़ता है। यथा : राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुरान साधु सुर साखी। पर प्रेमाभक्तिवाले निष्काम भजन करते हैं। अतः भगवान् को विश्राम उन्हीं के हृदयमें मिलता है। उस प्रेमाभक्ति के भी चौदह भेद श्रीवाल्मीकिजी ने कथन किया है। यथा :

१. जिन्हके श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हरि सुभग सरि नाना।।
भरहिं निरंतर होहि न पूरे। तिनके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे।।
२. लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दास जलधर अभिलाखे।।
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी।।
तिन्हके हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक।।
३. जसु तुम्हार मानस बिमल हँसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हिअ तासु।।
४. प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा।।
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।।
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी।।
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा।।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं।।
५. मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा।।
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेंवाइ देहिं बहु दाना।।
तुम्ह ते अधिक गुरुहि जिय जानी। सकल भाव सेवहिं मन मानी।।

दो. सबु करि माँगहिं एक फलु रामचरन रति होउ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ।।

६. काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिन्हके कपट दंभ नहिं माया। तिन्हके हृदय बसहु रघुराया।।
७. सबके प्रिय सबके हितकारी। दुःख सुख सरिस प्रसंसा गारी।।
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी।।
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं।।
८. जननी सम जानहिं पर नारी। धन पराव बिष ते बिष भारी।।
जे हरषहि पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी।।
जिन्हहि राम तुम प्रान पियारे। तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे।।
९. स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम नात।
मन मन्दिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात।।
१०. अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं।।
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्हकर मनु नीका।।
११. गुन तुम्हार समुझहिं निज दोषा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा।।
राम भगत प्रिय लागहि जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही।।
१२. जाति पांति धन धाम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई।।
१३. सरगु नरक अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरे धनु बाना।।
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा।।

१४. जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेह ।।

भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा ।।

अर्थ : भक्तियोग सुनकर लछिमन को बड़ा सुख मिला। उन्होंने प्रभु चरणों में नमस्कार किया।

व्याख्या : भक्तियोग : भक्ति के साधन कहहु बखानी से लेकर : तिन्ह के हृदय कमल महँ करउँ सदा तक भक्तियोग है। भक्तियोग सब योगों में उत्तम है। स्वयं भगवान् ने कहा है : योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः। सभी योगियों में जो मुझमें मन लगाकर श्रद्धा पूर्वक मेरा भजन करता है वह सबसे बड़ा योगी है।

सुनि अति सुख पावा : भाव यह कि कर्मयोग और ज्ञानयोग सुनकर सुख मिला। पर भक्तियोग सुनकर अति सुख मिला। प्रभु मुख की वाणी सुनने से सकल भ्रम की हानि होती है। अतः भक्तियोग के अभ्रान्त ज्ञान से परम सुख की प्राप्ति हुई।

लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा : इससे शिष्य की कृतकृत्यता कहा। मैं पूछौं निज प्रभु की नाईं : से उपक्रम करके : प्रभु चरनन्हि सिरु नावा : से उपसंहार करते हैं।

एहि बिधि गये कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यानगुन नीती ।।१।।

अर्थ : इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये।

व्याख्या : इस भाँति कहते सुनते कुछ दिन बीत गये। भाव यह कि अवधि का समय बहुत बीत गया। अव थोड़ा ही शेष है। उसमें भी कुछ दिन कथा कहते सुनते बीता। ये कथाएँ वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति विषयक थीं। नीति में धर्मार्थ काम का सामञ्जस्य विठाना होता है। सरकार का स्वभाव है कि भाइयों को शिक्षा दिया करते हैं। यथा : राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती।

## ३५. सूर्पणखा विरूप करण प्रसङ्ग

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी ।।
पंचवटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ।।२।।

अर्थ : सूर्पणखा नाम की रावण की बहन थी। जो नागिन जैसी भयानक और दुष्ट हृदय थी। वह एक बार पञ्चवटी गयी। दोनों कुमारों को देखकर विकल हो गयी।

व्याख्या : सूपनखा जिमि कीन्ह कुरूपा : प्रकरण आरम्भ हुआ। जैसे रावण

जगत् के रूलानेवाले थे वैसे ही उन्हें बहन विधाता ने दी थी। रावण के नाम से परिचय देकर उसका वैधव्य भी सूचित किया। जैसा रावण दुष्ट हृदय और सर्प की भाँति दारुण था। यथा : जस पावन रावन नाग महा। उसी भाँति उसकी बहन भी साँपिन थी। रावण की बहिनी कहकर उसका प्रताप भी कहा। किसकी सामर्थ्य जो उसके प्रतिकूल आचरण करे। अहि से अहिनी अधिक दारुण होती है। रावण को दस सिर थे उसे दस नख सूप के से थे।

वह कुलटा थी। घूमा करती थी। एक बार पञ्चवटी पहुँच गयी। मुनिजी के मन्त्र के साफल्य का समय आ पहुँचा। मुनिजी ने कहा था : है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचवटी तेहि नाऊँ। बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया। तदनुसार सरकार पञ्चवटी में बसे। वहाँ सूर्पणखा पहुँची। पादचिह्न की शोभा पर मोहित होकर अन्वेषण करती हुई राम लक्ष्मण के पास तक पहुँच गयी। दोनों भाई यद्यपि मुनिवेष में हैं पर हैं राजकुमार। वह कुलटा दोनों भाइयों पर मोहित हो गयी। अति कामासक्त होने से विकल हो गयी। उसने दोनों कुमारों को देखा। दोनों कुमारों ने उसे नहीं देखा।

**भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥**
**होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी॥३॥**

अर्थ : हे गरुड़जी ! स्त्री मनोहर पुरुष को देखकर चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही क्यों न हो विकल हो जाती है। मन को रोक नहीं सकती। जैसे सूर्यकान्त मणि सूर्य को देखकर द्रवीभूत हो जाता है।

व्याख्या : समान वयस्कों में भ्राता, ज्येष्ठों में पिता और कनिष्ठों में पुत्र को भी देखकर विकल हो जाती हैं। उन्हें सम्बन्ध का भी विचार नहीं रह जाता। इनकी मनोहरता पर राक्षसी नारी आसक्त हो जाती हैं। यह नियम पतिव्रताओं पर लागू नहीं है। यथा : उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं। इत्यादि।

ऐसी राक्षसी नारियों को सम्बन्ध या वय का भी विचार नहीं होता। वे रूपमात्र देखती हैं। अग्निस्राव हो सूर्यकान्तमणि का द्रवीभूत होना है। उसी भाँति उनके मन में कामाग्नि प्रकट हो जाती है। स्त्री जाति सुलभ मान से अपने को रोकना भी चाहती हैं पर रोक नहीं सकती। सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्। योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्यं सत्यं हि नारद। इसी बात को बड़ी पण्डिताई से गोस्वामीजी कह गये।

**रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई॥**
**तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥४॥**

अर्थ : सुन्दर रूप धारण करके प्रभु के पास जाकर बहुत मुसकुराकर वचन

बोली। न तुम्हारे सा पुरुष है न मेरे समान स्त्री है। यह संयोग ब्रह्मदेव ने विचारकर रचा है।

व्याख्या : सूर्पणखा महाविकट रूप स्थूलोदरी करालाख्या थी। उसने माया से अपना सुन्दर रूप बनाया। जानती थी कि स्वाभाविक रूप से काम बिगड़ जायगा। ऐसा रूप बनाऊँ कि ये मुझ पर मोहित हो जायँ : करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया। सूर्पणखा मोहित तो दोनों भाइयों पर हुई थी। किन्तु प्रभु जानकर रामजी के पास गयी। स्वयं दूती बनकर आयी। शृङ्गार का प्रस्ताव स्वयं उसे ही करना है। अतः माया फैलाती हुई मुसकुराकर बोली। भाव यह कि स्मितपूर्वाभिभाषिणीवाली मुसकुराहट नहीं थी।

उसका कहना यह था कि तुम और मैं दोनों अप्रतिम सुन्दर हैं। सीता मुझ सी सुन्दरी नहीं है। यह तुम्हारे जोड़ की नहीं है। तुम्हारा इसका संयोग दैवत् हो गया। तुम्हारा और मेरा संयोग ब्रह्मदेव ने विचारकर रचा है। जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहि स्यामल बर रचेउ बिचारी : ऐसा जनकपुर में स्त्रियों ने कहा था। वही भाव लिये सूर्पणखा अपने को कह रही है।

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं ॥
ताते अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहिं निहारी ॥५॥

अर्थ : मेरे जोड़ का पुरुष संसार में नहीं है। मैंने तीनों लोक खोजकर देख लिया। इसलिए अबतक कुमारी ही रह गयी। तुम्हें देखकर कुछ मन आकर्षित हुआ।

व्याख्या : अनुरूप वर मिलने की इच्छा कन्या के लिए स्वाभाविक है। सूर्पणखा कहती है कि मेरे अनुरूप तो वर ही संसार में नहीं है। मैं तीनों लोक में खोजकर देख चुकी। इससे स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि यह तीनों लोक में अपने लिए पुरुष खोजती फिरती है। इसका भाई रण मदमत्त होकर तीनों लोक में फिरता है। उसे प्रतिभट नहीं मिलता : रन मदमत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा। और यह कामोन्मत्त होकर तीनों लोकों में पुरुष खोजती फिरती है। पर कोई अनुरूप नहीं मिलता। जनकपुर की स्त्रियाँ परदे में रहनेवाली थीं। अतः वे बिचारी कहती हैं : सोभा अस कहुँ सुनियत नाहीं। वे देखना नहीं कहतीं। यह देखना कहती है। अतः इसका कुलटा होना ध्वनित है।

सूर्पणखा पूर्ण युवती है। विवाह के काल का अतिक्रमण किये हुए है। ऐसी अवस्था में रामजी को उसके परपूर्वा होने का सन्देह न उठे। इसलिए इतने वर्ष तक कुमारी रहने का कारण बतलाती है कि किसी को देखकर मन ही नहीं माना। विवाह कैसे करे। अतः आज तक कुमारी ही हूँ। इस भाँति अपना स्वातन्त्र्य भी द्योतन किया। फिर भी स्त्री गुण सुलभ मान को कुछ बचाए हुए है। कहती है कि तुम्हें देखकर कुछ मन माना। पूरी तरह नहीं। अपने मन में यह न समझना कि मैं बड़ा सुन्दर हूँ। मैं तुमसे अधिक सुन्दरी हूँ। परन्तु जब कहीं मन नहीं मानता

तो जहाँ थोड़ा भी मानता है उसी में सन्तोष करना चाहिए। भाव यह कि लङ्का में स्त्री पुरुष के संयोग में मन मानना ही कारण है। किसी धर्म बन्धन या समाज बन्धन की आवश्यकता नहीं होती।

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता। अहै कुँआर मोर लघु भ्राता ॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ॥६॥

अर्थ : सीताजी की ओर देखकर प्रभु ने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुँआर है। लक्ष्मणजी के पास गयी। उन्होंने शत्रु की बहन जानकर प्रभु को देखकर कोमल वाणी में कहा।

व्याख्या : सीताजी की ओर देखने का भाव यह कि मेरे तो स्त्री है। मेरा भाई कुमार है। यहाँ पर शङ्का होती कि लक्ष्मणजी का विवाह हो चुका था। उन्हें कुमार कहने से तो मिथ्या भाषण हो जायगा। उत्तर यह है गो ब्रह्मणहिंसायां वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे स्त्रीषु नर्मविवादेषु नानृतं स्याद् जुगुप्सितम्। यहाँ स्पष्ट नर्मविवाद है। सूर्पणखा अपने को कुमारी बतला रही है। प्रभु ने नर्मविवाद में भी मिथ्या को स्थान न मिले इसलिए लक्ष्मण को कुमार कह रहे हैं। राजा के बेटे कुमार कहलाते हैं। चाहे विवाह हुआ हो चाहे न हुआ हो। यथा : देखि बिकल भई जुगल कुमारा। यहाँ रामजी को भी कुमार ही राजपुत्र होने से कहा गया। यहाँ सरकार का लक्ष्मणजी को कुमार कहना परिहास में भी सत्य की रक्षा का अद्भुत उदाहरण है। सीताजी की ओर देखकर सूर्पणखा को उत्तर देने के अनेक कारण हैं। पहिले तो यह कि उसने कहा था : यह संयोग बिधि रचा बिचारी। उसके उत्तर में सीताजी की ओर देखते हैं कि संयाग जो होना था हो गया। मैं सस्त्रीक हूँ। दूसरा भाव यह कि रघुवंशी के मन और दृष्टि को पराई स्त्री नहीं पाती। सूर्पणखा विद्युज्जिह्व की विधवा है। अतः इसकी ओर दृष्टि न देकर बातचीत के समय सीताजी की ओर देखते हैं। तीसरे यह कि दूसरी ओर देखकर बात करना अनादर सूचक है। चौथे यह कि इधर देखो : रुचिर रूप धारण करने पर भी ऐसी न बन सकी। मन माना कछु तुमहि निहारी : का उत्तर देते हुए कहते है : अहै कुमार मोर लघु भ्राता। वह भी मेरे सा ही है। उसे देखकर तुम्हारा मन मान जायगा : तुम अहिनी हो। यथा : दुष्ट हृदय दारुन जिमि अहिनो और वह तो साक्षात् अहीश है। यथा : जो सहससोस अहीस महि धर लखन सचराचर धनी।

सूर्पणखा राक्षसी थी परिहास नहीं समझ सकी। वह तो दोनों मूर्तियों पर आसक्त थी। नहीं बड़े छोटे ही सही। अतः वह लक्ष्मणजी के पास तुरन्त पहुँची और सब बात कहा। लक्ष्मणजी की दृष्टि को उसकी माया आवृत न कर सकी। उन्होंने जान लिया कि यह शत्रु : रावण की बहन है। यह लक्ष्मणजी का ऐश्वर्य है कि सूर्पणखा को देखकर उसे रावण की बहन उसके वेष बदलने पर भी पहिचान लिया। परन्तु अभी तो सीताहरण हुआ नहीं। रावण शत्रु कैसे हो गया? इसका उत्तर यह है कि रावण अधर्म में निरत था और भूतद्रोही था। इसलिए वह परम

शत्रु था। यथा : यस्त्वधर्मेषु निरतः सर्वलोकविरोधकृत्। तं रिपुं परमं विद्यात् शास्त्राणामेष निर्णयः। नारद पुराणे। सरकार का रुख देखने के लिए उनकी ओर देखते हैं। रुख देखकर समझ गये कि परिहास चलने देना चाहते हैं। अतः उससे कोमल वाणी बोले।

सुंदरि सुनु मैं उनकर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा॥७॥

अर्थ : हे सुन्दरी! सुनो मैं तो उनका दास हूँ। पराधीन हूँ। यहाँ तेरा सुभीता नहीं। वे प्रभु हैं। समर्थ हैं। कोसलपुर के राजा हैं। वे जो कुछ करें सभी शोभा देता है।

व्याख्या : पहिले ही सुन्दरि सम्बोधन करते हैं। भाव यह कि तुम सुन्दरी हो प्रत्याख्यान योग्य नहीं हो। पर करूँ क्या, मैं तो उसका दास हूँ : जिनके पास से तुम लौटी आती हो। तुम सुन्दरी हो। रानी होने लायक हो। दासी बनना क्यों चाहती हो। भोग विलास के लिए स्वतन्त्र पुरुष चाहिए। मैं पराधीन हूँ और : पराधीन सपनेहु सुख नाहीं। जिसे सपने में भी सुख नहीं वह तुम्हें सुख कहाँ से देगा।

रामजी की ओर देखकर ही बोल रहे हैं। ये भी पराई स्त्री की ओर दृष्टिपात नहीं करना चाहते। कहते हैं कि मैं दास हूँ और वे मेरे प्रभु हैं। एक रानी होने से क्या हुआ? वे समर्थ हैं। चाहे सौ रानी ब्याहें। इनके पिता को तीन पटरानी और सात सौ रानियाँ थीं, तुम दूसरी पटरानी होकर रहोगी। अतः उन्हें सात सौ ब्याह भी फवता है। दास एक स्त्री को सँभाल नहीं सकता। इसलिए बिना स्त्री का हूँ।

सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धनु सुभ गति बिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥८॥

अर्थ : सेवक सुख चाहे, भिखारी मान चाहे, व्यसनी धन चाहे, व्यभिचारी शुभगति चाहे, लोभी यश चाहे, संशयी चार चाहे। ये प्राणी आकाश का दोहन करके दूध चाहते हैं।

व्याख्या : सब धर्मों से सेवक धर्म कठोर है। अतः सेवक को अपने सुख की आशा ही न करना चाहिए। इसी भाँति भिखारी मान की आशा ही न करे। जिसे कुछ भी मान होगा वह भीख कैसे माँगेगा? लोलुप भ्रमत गृह पशु ज्यौं जहँ तहँ सिरपद त्रान बजे : ऐसा पुरुष मान की आशा कैसे करेगा। व्यसन में धन का दुष्प्रयोग होता है। व्यसनी धन खोनेवाला है। अतः उसे धनी होने की आशा छोड़ देनी चाहिए। परतियगामी को निश्चय नरक होता है। यथा : सुभ गति पाव कि परतियगामी। उसे शुभगति की आशा करनी व्यर्थ है। लोभी का प्रातःकाल कोई नाम नहीं लेता। उसका यश कैसा होगा। यह तो उदार के हिस्से की चीज है। उसके लिए लोभी की आशा झूठी है। संशयी को दोनों लोक

में से किसी में सुख नहीं। नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः। गी.। अर्थात् चारों फल में किसी की प्राप्ति नहीं हो सकती। यहाँ गुमान शब्द का अर्थ संशय है। यथा : तुलसी जु पै गुमान को होतो कछू उपायु। तौ कि जानकिहिं जानि जियँ परिहरते रघुराउ। अतः संशयी को चारों फल की आशा निराशा ही है। चार से चार फल अभिप्रेत है। 'जैसे सोरह से सोलह श्रृङ्गार का ग्रहण होता है। यथा : नव सप्त साजे सुंदरी सब मत्त करिवर गामिनी।

अथवा गुमानी शब्द का अर्थ अभिमानी और चार शब्द का अर्थ दूत किया जाय। भाव यह कि दूत चाहे कि मेरा अभिमान अक्षुण्ण रहे यह भी असम्भव है। जब कि हनुमान्‌जी ऐसे दूत को कहना पड़ा : मोहि न कछु बांधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा। निर्गलितार्थ यह है कि इन छवों की आशाएँ झूठी हैं।

पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई॥९॥

अर्थ : वह लौटकर फिर रामजी के पास आयी। प्रभु ने फिर उसे लक्ष्मणजी के पास भेज दिया। लक्ष्मणजी ने कहा कि वही वरेगा जिसने लज्जा को तृण के समान तोड़कर फेंक दिया हो।

व्याख्या : सूर्पणखा लक्ष्मणजी के पास से फिरी कि ठीक है। दास से सुख न मिलेगा। मेरा रानी होना ही ठीक है। भाई लङ्केश्वर है मैं कोसलेश्वरी बनूँगी। ऐसा सोचकर सरकार के पास गयी। तब उन्होंने समझाया कि रानी को सापत्न्य दुःख सहना ही पड़ता है। लक्ष्मण वैसा दास नहीं है। वह मेरा छोटा भाई है। वही कर्ता धर्ता है। वह कुमार रहे मैं दो दो व्याह कर लूँ। यह नहीं हो सकता। सूर्पणखा ने समझा कि ठीक है। इनसे तो व्याह तो हो जाय। स्वयं मुझको ही क्या घाटा है। मैं इन्हें लेकर लङ्का चली जाऊँगी।

यह सब सोचकर वह लक्ष्मणजी के पास आयी कि क्या हुआ मुझे दासी रहना स्वीकार है। तब लक्ष्मणजी ने कहा तू बेहया है। जो बेहया हो वह तुझसे व्याह करे। इस प्रकार तू कामातुर हो गयी है कि हम दोनों भाइयों में से किसी पर तेरी स्थिरता नहीं। बड़े को चाहकर छोटे को चाह और छोटे को चाहकर बड़े को चाहते तुझे लाज न आयी। मुझे तो अब तुझे उनके पास भेजने में भी लज्जा आती है। इस भाँति कोरा जवाब लछिमनजी की ओर से मिल गया।

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूपु भयंकर प्रगटत भई॥
सीतहिं सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई॥१०॥

अर्थ : तब खिसियाई हुई रामजी के पास गयी। और अपना भयङ्कर रूप प्रकट किया। सीताजी को डरी हुई देखकर रामजी ने छोटे भाई को इशारे से कहा।

व्याख्या : कोरा जवाब पाकर खिसियाई कि रामजी ने जो इनके पास भेजा इसका अभिप्राय यह था कि मैं बेहया प्रमाणित हो जाऊँ। रामजी ने मेरी दुर्गति की। दोनों में से कोई मुझे व्याहना नहीं चाहता। ये मजाक कर रहे हैं। आगे कहेगी भी : तासु अनुज काट्यो श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करी परिहासा। अतः साम से काम न चलेगा। तब भयङ्कर रूप धारण करके सीताजी को खाने-दौड़ी की यह मेरे मार्ग में कंटक है।

सीताजी को सभय देखकर रामजी ने छोटे भाई को इशारा कर दिया। ऋग् यजु साम अथर्व कहकर उँगली से आकाश को काटा। भाव यह कि श्रुति और नाक काट दो। ऋगादि श्रुति है और श्रुति कान को कहते हैं। आकाश का नाम नाक है और प्राकृत में नासिका को नाक कहते हैं। यथा : वेदनाम कहि अंगुरिन्ह खंडि अकास। पाठयो सूपनखाहिं लखन के पास।

दो. लछिमन अति लाघव सो, नाक कान बिनु कीन्ह।
ताके कर रावन कहुँ, मनौ चुनौती दीन्हि ॥१७.११॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने बड़ी फुर्ती से उसे बिना नाक कान की कर दिया। मानों उसके हाथ से रावण को चुनौती दे दी।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने ऐसी फुर्ती की कि वह जान न पायी कि कब लक्ष्मणजी आये और कब शस्त्र चलाया। वह नाक पर हाथ न रख सकी : यथा : अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा। दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभ मंडल सम भयऊ। लेत उठावत खैचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े। यह सूर्पणखा का नाक काटना मानो रावण को चुनौती दी गयी कि तुम्हारे बहन का नाक कान मैंने काटा जो करना हो सो करो।

यह कर्म लक्ष्मणजी का इन्द्र से भी अशक्य था। किसकी सामर्थ्य जो रावण के जीते सूर्पणखा की नाक काटे। नाक कान काटना कवि ने नहीं कहा। क्योंकि काटते किसी ने देखा नहीं एकाएक बिना नाक कान की हो गयी। इससे अनुमान हुआ कि नाक कान काटा गया। रावण की बहन है। इसलिए रावण को चुनौती लक्ष्मणजी ने दी।

## ३६. खरदूषण वध प्रसंग

नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्त्रव सैल गेरु कै धारा॥
खरदूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥१॥

अर्थ : बिना नाक कान के विकराल हो गयी। मानो पर्वत से गेरु की धारा बह रही हो। विलाप करती हुई खरदूषण के पास गयी, बोली भाई ! तेरे पौरुष और बल को धिक्कार है।

व्याख्या : नाक ही मुख की शोभा है। सो नाक कान दोनों कट गये। भयङ्कर रूप तो उसका था ही। यथा : रूप भयंकर प्रगटत भई। अब बिना नाक कान के विकराल हो गयी। पर्वताकार उसका शरीर नाक कान कटने से तीन धाराएँ रक्त की बहने लगीं। ऐसा मालूम होने लगा कि मानों अञ्जन पर्वत पर से गेरु की तीन धाराएँ गिर रही हों।

अब सूर्पणखा को प्रतिहिंसा वृत्ति उत्पन्न हुई। रोती चिल्लाती खरदूषण के पास गयी। खर इसका सगा भाई था। रावण के तुल्य बलवान् था और सन्निकट था। उसके पास पहुँचकर उसे धिक्कारने लगी कि तू जीता बैठा है और मेरी नाक कट गयी। तेरे बल और पौरुष को धिक्कार है। तेरे बल और पौरुष का जिसे भय होता वह मेरी नाक कैसे काटता? बहन है। उसे अपने भाई के बल पौरुष का बड़ा भरोसा था।

**तेहि पूँछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई॥**
**धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा॥२॥**

अर्थ : उसने पूछा तो सब समझाकर बतलाया। सुनकर उस राक्षस ने सेना तैयार की। राक्षसों के झुण्डों की सेना दौड़ी जैसे पक्षवान् कज्जलगिरि के समूह दौड़ते हों।

व्याख्या : खरदूषण ने पूछा कि किसने नाक काटी, क्यों काटी? उसने समझा दिया कि अवध के राजा के लड़के हैं। मृगया के लिए वन में आये हैं। मुझे सुना कि रावण की बहन है तो मुझसे परिहास करने लगे। मेरे नाराज होने पर उसके छोटे भाई ने नाक कान काट ली। यथा :

राजा हैं अँवध को अँवधि बल विक्रम को
नाँम राँम श्याँम सरसीरुह वरन हैं।
संग सुकुमारि नारि तीर गोदावरी के
करँत विहार मुनिगन को सँरन हैं॥
ताको लघुभांय हाँय पाँय के सजाँय मेरो
रूप हरि लीन्ह्यो काँटि नासिकाँ श्रवन हैं।
पिशित खियाँव ताँको शोणित पियाँव नातो
आँज दईमाँर मेरो निहिचित मरँन है॥

खरदूषण ने सोचा कि राजा का लड़का है तो सहाय भी होगा। दुर्बल को इतना सामर्थ्य और साहस कहाँ कि इसकी नाक कान काट सके। अतः सेना साथ में रहनी चाहिए। अतः उसने सेना तैयार की। यूथपों को बुलाकर क्रमबद्ध होकर चलने का आदेश देना तथा योग्य सेनापति के अधीन कर देना यही सेना तैयार करना है।

खरदूषण की आज्ञा की देर थी। राक्षसों का झुण्ड दौड़ चला। बड़ा उत्साह है युद्ध करने का, साथ ही स्वामी के बहन की नाक कटने पर अमर्ष भी है। राजा

का लड़का मुलायम आहार है। इसलिए झुण्ड के झुण्ड दौड़ पड़े कि पहिले हमहीं जाकर मार डालें। राक्षस सब विशाल थे और काले थे। इसलिए कज्जलगिरियूथ से उपमा दी और वे सबके सब दौड़ पड़े। इसलिए सपक्ष कह रहे हैं। पक्षहीन होने पर तो पर्वत अचल हो गये। ये सबके सब आसन्न मृत्यु हैं। इसलिए कवि : सहित प्राण कज्जलगिरि नहीं कह रहे हैं।

नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा ॥
सूपनखा आगे करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी ॥३॥

अर्थ : नाना प्रकार के वाहन थे। नाना प्रकार का आकार था। नाना प्रकार के अपार घोर हथियार थे। उन्होंने अशुभ रूप नककटी कनकटी सूर्पणखा को आगे कर लिया।

व्याख्या : सेना में नियम है कि आकार आयुध और वाहन एक सा होता है। पर राक्षसी सेना में यह नियम नहीं। उनके वाहन भी नाना प्रकार के, उनके आकार भी नाना प्रकार के, उनके हथियार भी अनेक प्रकार के हैं। वे हथियार ऐसे घोर हैं कि प्रतिद्वन्द्वी को उनका पार पाना कठिन है। भाव यह कि खरदूषण की सेना बड़ी विकट थी जो देवताओं को युद्ध में जीत चुकी थी।

सबों ने सूर्पणखा को आगे कर लिया कि तू चलकर बतला कि शत्रु कहाँ है? अथवा अब तू आगे आगे चल। देखें कोई क्या कर लेता है। इससे उनकी बुद्धि का नाश कहा। जब यात्रा के समय अमङ्गल रूप को आगे कर लिया तब उनके मङ्गल की कौन आशा है।

असगुन अमित होहिं भयकारी। गर्नाहि न मृत्यु बिबस सब झारी ॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। देखि कटकु भट अति हरषाहीं ॥४॥

अर्थ : अगणित भयङ्कर अपशकुन होने लगे। वे सबके सब मृत्यु के विवश हैं। इसलिए गिनते नहीं। वे गर्जते हैं। ललकारते हैं। आकाश में उड़ते हैं। सेना को देखकर वीर लोग बड़े प्रसन्न हो रहे हैं।

व्याख्या : प्रकृति अपनी परिस्थिति द्वारा भविष्य का ज्ञापन कराती है। विचारशील पुरुष उससे लाभ उठाते हैं। यहाँ युद्ध यात्रा के समय असंख्य भय सूचक अपशकुन हो रहे हैं। यथा : भट गिरहिं रथते बाजि गज चिक्करहिं भाजहिं साथ ते। गोमायु गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने। जनु काल दूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने। परन्तु जिनका भविष्य बुरा रहता है वे इन अपशकुनों से सचेत नहीं होते। यथा : भयउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना। इसी भाँति ये सब काल के वश थे। अतः अपशकुन की परवाह न की। बल्कि गर्जते और ललकारते चले हैं। राक्षस होने से आकाश में उड़ने की शक्ति है। सेना ऐसी बनी हुई कि देखकर सुभटों को बड़ा हर्ष है। क्योंकि उनकी समझ में जीत निश्चित है।

कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छुड़ाई ।।
धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा ।।५।।

अर्थ : कोई कहता है कि जीते जी दोनों भाइयों को पकड़ लो। पकड़ कर मारो और स्त्री छीन लो। आकाश में धूलि भर उठी। तब रामजी ने छोटे भाई को बुलाकर कहा।

व्याख्या : मन में बड़ा हर्ष है। इसलिए मनोरथ भी बढ़ा चढ़ा है। एक कहता है कि जीते जी पकड़ लो। वे हम लोगों से क्या लड़ेंगे ? वीर का जीते जी बन्दी हो जाना बड़े अपमान की बात है। दो ही भाई तो हैं। दो चार वार करें तो उसे सह लेना उनके चोट से हम मर तो जायँगे नहीं पर पकड़ लो जीते जी। जिसमें स्त्री हरण का दु:ख वे अपनी आँखों देख लें। तब अपनी चाही हुई विधि से उनका वध करना। सूर्पणखा के नाक कान कटने का बदला तो तभी चुकेगा।

सेना के चलने से धूलि उड़ती है। जिसके देखने से सेना के आने की सूचना मिल जाती है। यथा : नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गये। यहाँ तो आकाश मण्ड़ल धूरि से भर गया। सरकार ने देखा। बात समझ गये। यहाँ पहिला काम सीताजी का हटाना है। सीताजी की रक्षा में चित्त बँटा रहने से भली भाँति युद्ध न हो सकेगा। तब रामजी ने बुलाकर अपने छोटे भाई लक्ष्मण से कहा। सीताजी से नहीं कहा। छोटा भाई : कहने का भाव यह कि सरकार की भाँति वे भी युद्ध में समर्थ हैं। यथा : अनुज निसाचर कटक संहारा।

लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर ।।
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी ।।६।।
देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहँसि कठिन कोदंड चढ़ावा ।।७।।

अर्थ : जानकी को लेकर पर्वत की कन्दरा में चले जाओ। राक्षसों की भयङ्कर सेना आ पहुँची। सावधान रहना : ऐसी सरकार की वाणी सुनकर हाथ में धनुष बाण लेकर श्री : सीता के सहित चले।

रामजी ने देखा कि शत्रु की सेना आगयी। हँसे और कठिन धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाया।

व्याख्या : सीताजी तो राक्षसी को देखकर डर गयी थीं। सेना देखने पर इनकी क्या गति होगी। अथवा नाक कान काटने का बदला स्त्री हरण है। सो मुख्य चोट जानकी पर तथा तुम पर होगा। तुमने नाक काटा है। सो जानकी को लेकर तुम पहाड़ की गुफा में चले जाओ। वे न देख पावें कि तुम कहाँ हो। राक्षसी सेना के आने में विलम्ब नहीं है और वहाँ भी सावधान रहना। कन्दरा में जानकी रहे। द्वार पर तुम रहना। यदि राक्षस वहाँ तक पहुँच जायँ तो उनका वध करना। लक्ष्मणजी की इच्छा जाने की नहीं। स्वयं युद्ध करना चाहते हैं। परन्तु प्रभु की वाणी को हटा न

सके। यथा : उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई। तुरन्त सीताजी के साथ चल पड़े। धनुष बाण हाथ में लेकर चलने से सावधानता कहा।

लक्ष्मणजी ने नहीं देखा। वे गिरि कन्दरा में चले गये थे। रामजी ने देखा कि शत्रु की सेना आगयी। निसिचर हीन करउँ महि : ऐसी प्रतिज्ञा करने के समय से ही राक्षस रिपु हैं। सेना देखकर सरकार हँसे कि वर्षों से मैं खोजता था। एक भी हाथ न चढ़े। आज तो इतने एक साथ ही मिल गये। कठिन कोदण्ड जो वैष्णव शार्ङ्ग धनु था बहुत दूर तक मार करता था और स्वयं अच्छेद्य था। उसे चढाया।

छं. कोदंड कठिन चढ़इ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यौं ॥
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सो जुग भुजग ज्यौं ॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै ॥
चितवत मनहु मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै ॥

अर्थ : कठिन धनुष को चढ़ाकर सिर पर जटा का जूट बाँधते हुए प्रभु की कैसी शोभा हुई ? जैसे पन्ने के पर्वत पर करोड़ों बिजलियों से दो साँप लड़ते हों। कमर में तरकस कसकर विशाल भुजा से धनुष पकड़कर और तारों को सुधारकर सरकार इस भाँति देख रहे हैं जैसे गजराजों की घटा देखकर सिंह ताकता हो।

व्याख्या : पहिला काम था निर्गुण धनुष को सगुण करना। इस धनुष पर प्रत्यञ्चा सिवा सरकार के और कोई नहीं चढ़ा सकता था। यथा : राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू। इत्यादि। सो उस धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाया। युद्ध के समय केश कहीं आँखों को न ढँक लें : इसलिए जटा का जूट बाँधने लगे। उसको छबि कवि कहते हैं कि पन्ने के पर्वत की भाँति सरकार का श्याम शरीर उनके सिर पर केश समूह दामिनि कोटि की भाँति भस्म लगाते लगाते बाल स्वर्णवर्ण होकर चमकने लगे थे। उन्हें दोनों हाथों से जूट रूप में सिर पर लपेट रहे हैं। सो ऐसी छवि हो रही है मानो दो सर्प दामिनी कोटि से लड़ाई कर रहे हैं। भुजा की उपमा सर्प से दी जाती है। यथा : लग्यौ स्याम कर पीठि दही री। मानो नील सिखर से निकर्‌यो गोपद संजुत प्रकट अहीरी। जटा बाँधने के बाद कमर में तरकस कसा। फिर धनुष को कन्धे से उतारकर हाथ में लिया और बाणों को सुधारने लगे। जिसमें बाण लक्ष्यवेध करने में न चुकें। अब तैयार होकर शत्रु सेना की ओर बड़े चोप से देख रहे हैं। यथा : मनहु मत्त गजगन निरखि सिंह किसोरहिं चोप। यहाँ परुषा वृत्ति है। कवि ने ट ठ ड ढ ण पाँचों का प्रयोग किया है। कोदण्ड में ण और ड, कठिन में ठ, चढ़ाइ में ढ और जटजूट में ट।

दो. आइ गए बगमेल, धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल, बाल रबिहि घेरत दनुज ॥१२.१८॥

अर्थ : बगमेल आगये। पकड़ो पकड़ो कहते सुभट दौड़े। जैसे अकेला देखकर उदयकालीन सूर्य को दानव घेर लेते हैं।

व्याख्या : इतने अन्दाज से प्रभु ने युद्ध की तैयारी की कि इधर तैयारी समाप्त हुई और उधर शत्रु की सेना पहुँच गयी। घुड़सवारों का दस्ता जो बाग मिलाकर सेना के आगे चलता है अर्थात् अग्रगामिनि सेना आगयी। प्रभु को अकेला देखकर जीते ही पकड़ लेने के लिए पकड़ो पकड़ो ऐसी अवाज देते दौड़े और प्रभु को घेर लिया। कवि कहते हैं कि उस समय ऐसी शोभा हुई जैसे प्रातःकाल दस सहस्र मन्देह नाम के दैत्य उदयकालीन सूर्य को घेर लेते हैं। पौराणिकी कथा है कि नित्य उदयकाल में दस सहस्र दैत्य सूर्यनारायण से युद्ध करने के लिए उन्हें घेर लेते हैं और मारे जाते हैं। ब्रह्मदेव के वरदान से फिर वे जी उठते हैं और नित्य सूर्यनारायण द्वारा मारे जाते हैं। सूर्यनारायण का कुछ कर नहीं पाते। बालरवि के साथ प्रभा भी नहीं चन्द्र भी नहीं रहते। इसलिए अकेला कहते हैं। यहाँ भी सरकार के साथ सीताजी भी नहीं और लक्ष्मणजी भी नहीं। अतः अकेले थे। पास जाने का साहस नहीं। मुख से : पकड़ो पकड़ो कहते हैं। इसलिए चारों ओर से घेर लिया।

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी ॥
सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन ॥१॥

अर्थ : प्रभु को देखकर हाथ से बाण नहीं छूटता। राक्षसी सेना थकित रह गयी। तब मन्त्री को बुलाकर खरदूषण बोले कि यह कोई राजा का लड़का मनुष्यों का भूषण है।

व्याख्या : राक्षसों ने दूर से घेरा डाल रक्खा है। सरकार तक शस्त्र की पहुँच नहीं है। बाण पहुँच सकता है। पर उसे चलाने का सामर्थ्य किसी को नहीं। प्रभु के देखने से साहस छूट गया। यह प्रभु की प्रभुता है। सबके सब स्थगित हो गये। यथा : जिन वीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लोगाई। लोग लोगाई थकित होते ही थे। आज रजनीचर धारी थकित हो गयी।

खरदूषण ने देखा कि क्या मामला है। सेना रुक क्यों गयी ? सरकार को देखते ही बात समझ गया। मन्त्री को बुलवाया। ऐसे तेजस्वी के सामने जाकर सन्देश कहना भी सामान्य दूत का काम नहीं है। अतः मन्त्री को दूत बनाकर भेजना चाहता है। खर और दूषण का साथ बोलना कहकर दोनों का एकप्राण होना कहा। नृपबालक कहकर अल्पबल और अपरिपक्व बुद्धि होना द्योतित करता है। पर कहता है कि इन्हें देखने से आँखों को सुख मिल रहा है। अतः ये नरभूषण हैं। यथा : नरभूषण लोचन सुखदाई। खरदूषण ने समझ लिया कि अपराध सूर्पणखा का है। राजपुत्र हैं। व्यभिचारिणी समझकर दण्ड दिया है।

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते ॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई ॥२॥

अर्थ : नाग, असुर, सुर, नर और जितने मुनि हैं उनमें से कितनों को मैंने देखा है। जीता है और मार डाला है। पर हे भाइयो ! सुनते जाओ। मैंने ऐसी सुन्दरता नहीं देखी।

व्याख्या : जब सूर्पणखा तीनों लोक देख चुकी है तो खरदूषण के तीनों लोक को देख डालने में आश्चर्य ही क्या है ? अतः व्यवहार योग्य पाँच प्रकार की सृष्टि उसकी देखी हुई है। नाग असुर से पाताल लोक कहा। सुर से स्वर्गलोक कहा और नर और मुनि से मर्त्यलोक कहा। उनमें से जो बलवान् थे उन्हें जीता या मारा। पर हाथ कहीं रुका नहीं।

यहाँ हाथ रुक रहा है। अलौकिक सुन्दरता देखकर स्तब्ध है। अतः सबको सुनाकर कहता है कि जब से होश सँभाला ऐसी सुन्दरता नहीं देखी। उसके कहने का भाव यह कि तुम लोग भी सुन्दरता देखकर ही स्तब्ध हो प्रभुता से नहीं।

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥
देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई ॥३॥

अर्थ : यद्यपि बहन को कुरूप कर दिया तथापि ये अनूप पुरुष हैं। वध के योग्य नहीं हैं। अपनी छिपाई हुई स्त्री दे दें और दोनों भाई जीते जी घर लौट जाएँ।

व्याख्या : इन्होंने अपराध बड़ा भारी किया। हमारे बहन का नाक कान काटकर कुरूप बना दिया। इस कुरूप करण का दण्ड तो वध ही है। सूर्पणखा मनुष्य के लिए तो बड़ी भयावनी थी। पर राक्षसों की दृष्टि में वहाँ भी सौन्दर्य था। रावण ने जब स्वर्ग पर धावा किया था उसी समय लङ्का से सूर्पणखा का हरण हुआ था। अतः खरदूषण कहते हैं कि इतना अपराध करने पर भी इनका वध उचित नहीं है। संसार से शोभा उठ जावेगी। इन्हें दूसरा दण्ड देना चाहिए। यह अकेले ही दिखाई पड़ते हैं। स्त्री और भाई नहीं दिखाई पड़ते। अतः सिद्ध है कि इन्होंने उस स्त्री को छिपा दिया है। सो उस छिपाई हुई स्त्री को दे दें। यही दंण्ड है। मैं दोनों भाइयों का प्राण नहीं मारूँगा।

मोर कहा तुम ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु ॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई ॥४॥

अर्थ : मेरा यह कहना तुम लोग उसे जा सुनाओ और उसका वचन सुनकर शीघ्र लौट आवो। दूतों ने जाकर रामजी से कहा। सुनते ही रामजी ने मुसकुरा कर कहा।

व्याख्या : खरदूषण अङ्गुल्या निर्देश करके कहता है कि मेरा कहना तुम उसे जाकर सुना दो। यहाँ से कही हुई बात वह नहीं सुन सकता और तुरन्त आकर उसका उत्तर मुझसे कहो। खरदूषण के मन में सन्देह है कि रामजी इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेंगे। उन्होंने अपने भाई के साथ स्त्री को हटा दिया है और अकेले निर्भीक

युद्ध के लिए खड़े हैं। आतुर आवहु : कहने का भाव यह है कि जवाब सवाल न करना। जितनी कृपा मैं कर रहा हूँ वही बहुत है। सचिवगण ही दूत हैं। उन्होंने जाकर रामजी से कह डाला। दूसरे को इतना कहने का साहस न पड़ता। सरकार स्मितपूर्वाभिभाषी हैं। अतः स्वभावतः मुसकुराकर बोले अथवा उसकी चतुरता पर मुसकुराये कि बिना युद्ध किये ही जीत चाहता है। अथवा इस बात पर मुसकुराये कि इसने मुझे इतना नरम चारा समझ रक्खा है कि मैं स्त्री देकर सन्धि कर लूँगा। अथवा अपने दौर्बल्य को कृपा रूप दे रहा है अथवा उसकी कामुकता पर मुसकुराये कि इसे यदि सुन्दरी स्त्री मिल जाय तो बहन का नाक कान काटना कुछ नहीं।

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं ॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं ॥५॥

अर्थ : रामजी ने कहा : हम क्षत्रिय हैं। वन में आखेट करते फिरते हैं। तुम्हारे ऐसे दुष्ट पशुओं को तो खोजते फिरते हैं। बलवान् शत्रु को देखकर डरते नहीं। एक बार तो काल से भी लड़ जाते हैं।

व्याख्या : प्रभु कहते हैं कि ऐसी बात तो किसी राक्षस से कहनी थी। जो स्त्री प्रतिष्ठा से अनभिज्ञ हो। हम क्षत्रिय हैं। क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रुढः। जो क्षत से रक्षा करे वह क्षत्रिय है। नगर की रक्षा करके बन में आखेट करते हैं। खल मृग हिंसक जन्तु व्याघ्रादि को खोजते फिरते हैं। यदि कोई मिले तो कोसों उसके पीछे दौड़ते चले जाते हैं। तुम लोग भी पशु हो। आहार निद्रा भय मैथुन में ही आसक्त हो। धर्म से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। यथा : आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः और पशुओंमें भा दुष्ट पशु हो : ऐसे पशु को तो हम लोग खोजते फिरते हैं। सो तुम लोग इतने हमें मिल गये हो। हम कैसे छोड़ सकते हैं ?

यदि कहो कि व्याघ्रादि मेरे सामने क्या हैं। हम बड़े बलवान् हैं। तो हम लोग भी डरनेवाले नहीं। क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहि पामर आना। जौं रन हमहिं प्रचारै कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ। काल से बली तो कोई नहीं। मैं उससे भी लड़ने को प्रस्तुत हूँ।

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक ॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतौं न काहू ॥६॥

अर्थ : यद्यपि मैं मनुष्य हूँ। पर दनुजकुल का नाश करनेवाला हूँ। मुनियों का पालन करनेवाला और खलों के हृदय में चुभनेवाला बालक हूँ। यदि बल न हो तो घर लौट जाओ। लड़ाई में पीठ दिखानेवाले किसी को मैं नहीं मारता।

व्याख्या : नरभूषण का उत्तर देते हुए प्रभु कहते हैं कि साधारणतः मनुष्य राक्षसों के भक्ष्य हैं। पर मैं मनुष्य हूँ। पर दनुजकुल का नाश करनेवाला हूँ : इससे

अपना अवतार होना भी ध्वनित किया। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। अथवा मारीच सुबाहु वध की ओर लक्ष्य करते हुए कहते हैं। यथा : ये कौसिक मख के रखवारे। जिन रन अजिर निसाचर मारे। अथवा अपनी प्रतिज्ञा को जनाया। जो अस्थि समूह देखकर किया था। निसिचर हीन करउँ महि।

ये कोउ नृप बालक का उत्तर देते हुए कहते हैं : मुनि पालक खल सालक बालक। भाव यह कि खल वध का कारण मुनिपालन है। बिना खल वध के मुनि-पालन नहीं होता। साधुता से खल के स्वभाव के परिवर्तन की आशा मूर्खता है। अतः खलों का वध ही सच्ची अहिंसा है।

प्रभु कहते हैं कि युद्ध करने के लिए चढ़ आये। तब युद्ध न करने में दो ही पक्ष हैं। या तो हम दुर्बल और कादर हों या तुम दुर्बल और कादर हो। सो मैं तो काल से लड़ने को तैयार हूँ। रह गया दूसरा पक्ष कि तुम निर्बल और कादर हो तो मेरा वीर व्रत है। पीठ दिखानेवाले पर शस्त्र प्रहार नहीं करता। घर लौट जाओ। मैं पीछा करके मारनेवाला नहीं हूँ।

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खरदूषन उर अति दहेऊ॥७॥

अर्थ : लड़ाई पर चढ़ आकर अब कपट चतुराई करते हो। शत्रु पर दया करना तो भारी कादर का लक्षण है। दूतों ने जाकर तुरन्त सब कह सुनाया। सुनकर खरदूषन का कलेजा अत्यन्त जल उठा।

व्याख्या : बध लायक नहिं पुरुष अनूपा का उत्तर। बिना लड़े ही जीत चाहते हो। सेना की दुरवस्था देखकर भीतर से भयभीत हो। बाहर से दया का रूपक दिखाते हो। केवल धमकी देकर स्त्री लेना चाहते हो। बात ऐसी करते हो कि लखाई न पड़े : कपट चतुर नहिं होइ जनाई। मैं तुम्हारा शत्रु मैंने तुम्हारे बहन का नाक-कान काटा। मेरे पर दया कैसी ? वस्तुतः तुम कादर हो। केवल बातें बनाते हो।

जाने के समय जो वेग दूतों में था लौटने के समय वह न रह गया। पारा उतर गया। अतः जाना कहते हैं। आतुर आवहु : आज्ञा थी। अतः : जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनकर सबका कलेजा जल उठा। खरदूषण के हृदय में तो अधिक दाह हुआ। इस पुरइन से जो छन्द रूपी कमल निकला है। वह निम्नोक्त है।

छं. उर दहेउ कहेउ कि धरेहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा॥

अर्थ : कलेजा जल उठा। बोले कि पकड़ लो। बिकट भट राक्षस दौड़ पड़े। सब धनुष, बाण, भाला, बरछी, त्रिशूल, तलवार, बेवँड़ा और गँड़ासा लिये हुए थे।

सरकार ने पहिले धनुष का टङ्कोर किया जो कि कठोर घोर और भयानक था। राक्षस बहरे और व्याकुल हो गये। उन्हें उस समय ज्ञान न रह गया।

व्याख्या : खरदूषण बड़े अभिमानी हैं। एक मनुष्य के लिए मारने की आज्ञा क्या दें। कहते हैं कि पकड़ लो। सुभट घेरे खड़े हैं। पर उनसे तो बाण भी जिसे देखकर नहीं चलता है उसे पकड़ेंगे क्या? अतः विकट भट दौड़े। सरकार का सामना पड़ने पर गर्जन बन्द है। कोई धनुष का टङ्कोर भी नहीं करता। अतः प्रभु ने धनुष का टङ्कोर किया। उसकी कठोरता से बधिर हो गये। उसकी घोरता से व्याकुल हो गये। उसकी भयावहता से ज्ञानशून्य हो गये।

दो. सावधान होइ धाए, जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर, अस्त्र सस्त्र बहु भाँति ॥१९॥
तिन्ह के आयुध तिल सम, करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन स्रवन लगि, पुनि छाँड़े निज तीर ॥१३.१९॥

अर्थ : शत्रु को बलवान् जानकर सावधान होकर दौड़े। रामजी पर अस्त्र शस्त्र की वर्षा करने लगे। उनके हथियार को रामजी ने तिल के समान काटकर टुकड़े टुकड़े कर दिया। तब कान तक धनुष खैंचकर अपने बाण छोड़े।

व्याख्या : प्रभु के धनुष का टङ्कार सुनकर सब बधिर व्याकुल और उस समय ज्ञानशून्य हो गये। सेना के सञ्चालन की व्यवस्था बिगड़ गयी। फिर सावधान हुए और शत्रु को बलवान् समझकर दौड़े। पकड़ लेने का ध्यान छोड़ दिया। निकट नहीं जाते। शस्त्र तो निकट जाकर आघात करने का हथियार है। उसे भी अस्त्र की भाँति दूर से फेंक फेंककर मार रहे हैं। इस भाँति प्रभु पर अस्त्र शस्त्र की वर्षा हो गयी।

प्रभु बनैती दिखलाते हैं। दो खण्ड करने से भी अस्त्र शस्त्र कट जाते हैं। पर उन्हें तिल के समान टुकड़े टुकड़े किया। इतने हथियार चारों ओर से गिर रहे हैं अपना बचाना कठिन होना चाहिए। पर सरकार का लाघव ऐसा है कि उन्हें तिल के समान काट रहे हैं। वीरव्रत हैं। पहिले चोट नहीं करते। पहिले उनकी अस्त्र शस्त्र की वर्षा को निष्फल किया। तब चोट करने के लिए अपनी तीरें छोड़ीं। कान तक धनुष खैंचा जिसमें दूर तक मार करे।

छं. तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल ॥
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम ॥१॥
अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर ॥
भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन ते जाइ ॥२॥

अर्थ : तब कराल बाण चले। जैसे बहुत से साँप फुंकार करते चलें। श्रीराम ने लड़ाई में क्रोध किया। अत्यन्त तीखे बाण चले। अधिक तीखे बाणों को देखकर राक्षस वीर भाग चले। तीनो भाई क्रुद्ध हुए। बोले कि जो लड़ाई से भाग जायगा।

व्याख्या : जब निज तीर छोड़े तो उसकी करालता कहते हैं कि वे ऐसे चले जैसे फुँकारता हुआ सर्प चले। शत्रु के शस्त्रास्त्र छेदन के लिए जो बाण चले थे वे कराल नहीं थे। ये कराल हैं। सरकारके बाणों की उपमा सर्पों से ही आगे भी दी जायगी। यथा : राम मारगन नभ चले लहलहात जनु व्याल। ये बाण भी भयभीत करने के लिए चलाये गये हैं। मारने के लिए नहीं। नहीं तो काल फणीश से उपमा दी जाती। यथा : मानहु काल फनीस। डरानेवाले थे। इसलिए फुँकरत जनु व्याल कहा।

इन कराल बाणों के चलने से सेना भागी नहीं डँटी रह गयी। तब श्रीराम ने कोप किया। अब युद्ध यज्ञ आरम्भ हुआ। यथा : चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू। इत्यादि। श्रीराम कहकर : रामः शस्त्रभृतामहम् की ओर लक्ष्य है। अर्थात् परशुराम के जीतनेवाले राम। अङ्गों की पूजा में श्रीराम शब्द से दाशरथी राम का ही ग्रहण हुआ है। यथा : श्रीरामाय नमः उदरं पूजयामि। श्री रामाय नमः हृदयं पूजयामि। युद्धयज्ञ में तीसरे प्रकार के बाण चले। ये अत्यन्त ही चोखे थे। यथा : को सहि सकै सुरासुर समरथ बिसिख काल दसनन ते चोखे। इन तीरों को देखकर निशिचर वीर भाग चले। वीर इसलिए कहा कि अनेक लड़ाइयाँ लड़ चुके हैं। अस्त्रों का मर्म जानते हैं। पहिले बाण खर रहे उन्हें तो सह गये। पर ये तो खरतर हैं। नितान्त असह्य है। अतः घूमकर भाग चले। खर की सेना के लिए खरतर तीर की आवश्यकता भी थी।

यहाँ तीनों भाई से अभिप्राय खर दूषण और त्रिशिरा से है। ये भागनेवाले नहीं सेना के नमकहरामी पर उन लोगों ने क्रोध किया : सर्बसु खाइ भोग करि नाना। समर भूमिभये बल्लभ प्राना। चारों ओर से सेना को ललकारा कि रण से भागते हो जीने के लिए। सो न होने पायेगा।

तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि॥
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहि प्रहार॥३॥
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि॥
छाँड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच॥४॥

अर्थ : उसे हम अपने हाथ से मारेंगे। मन में मरना ठानकर फिरे। वे अनेक प्रकार के हथियारों का प्रहार सामने जाकर करने लगे। प्रभु ने शत्रुओं की अत्यन्त कुपित जानकर धनुष पर बाण चढ़ाकर बहुत से नाराच छोड़े। विकट पिशाच कटने लगे।

व्याख्या : भागनेवाले को हम मारेंगे और अपने हाथ से मारेंगे। किसी दूसरे का विश्वास न करेंगे। यह सुनकर वीर लोग लौट पड़े। जीत को आशा तो किसी को नहीं है। मरण निश्चय करके लौट रहे हैं। मरण ठान लेने पर वह व्यक्ति ही दूसरा हो जाता है। मरता क्या न करता।

शर शक्ति तोमर शूल कृपाण परिघ और परशु की चोट सामने जाकर करते हैं। जिसे देखकर हाथ से बाण नहीं चलते थे : मरण ठान लेने पर उन्हीं के सामने जाकर प्रहार कर रहे हैं। उनको भागते देखकर प्रभु ने बाण चलाना बन्द कर दिया था। प्रतिज्ञा भी है समरबिमुख मैं हतौं न काहू। अब उनके सामने जब जाकर प्रहार करने लगे : प्रभु ने प्रहार सहा।

पहिले भी कुपित थे। तब दूर से अस्त्र शस्त्र की वर्षा करते थे। अब परम कुपित हैं। अतः सन्मुख जाकर चोट करते हैं। प्रभु ने तब फिर धनुष पर बाण चढ़ाया। दूसरी लड़ाई प्रारम्भ हुई। इस लड़ाई में लोहमय बाण : नाराच छूटे। बिकट पिशाच कटने लगे। पिशितमाचमतीति पिशाचः। मांस खानेवाले को पिशाच कहते हैं। ये ही सब मुनियों को खाये थे।

उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन ॥
चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान ॥५॥
भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाखंड ॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड ॥६॥
खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल ॥७॥

अर्थ : छाती, सिर, हाथ, भुजा और पैर जहाँ तहाँ पृथ्वी पर गिरने लगे। बाण लगते ही चिग्घाड़ते हैं। धड़ पहाड़ की भाँति गिर रहे हैं। वीर लोग सौ सौ टुकड़े कटकर गिर रहे हैं और फिर माया करके उठते हैं। आकाश में बहुत सी भुजाएँ और सिर उड़ रहे हैं। बिना सिर के रुण्ड दौड़ रहे हैं। चील्ह, कौए, आदि पक्षी और गीदड़ भयङ्कर कटकट शब्द कर रहे हैं।

व्याख्या : नाराच के चोट से पाँच पाँच ख़ण्ड होकर कट रहे हैं। यह कोई विशेष विद्या बनैती की है। क्योंकि अन्यत्र भी नाराच चलने पर इसी भाँति कटना लिखा है। यथा : जँह तहँ चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा। कटहि चरन सिर उर भुज दंडा। बहु तक बीर होहिं सत खंडा। जिन्हें देखो वे पाँच खण्ड होकर गिरते हैं।

बाणों का वेग और बढ़ा तो सात खण्ड या सौ खण्ड होकर गिरने लगे। जब पाँच खण्ड होकर गिरना कहा था वहाँ धड़ का पहाड़ की भाँति गिरना कहा। अब तो सौ खण्ड होकर गिर रहे हैं। अतः धड़ों का पहाड़ की भाँति गिरना नहीं लिखते। सौ खण्ड होने पर भी माया से सब खण्ड एकत्रित हो जाते हैं और वे सब उठ खड़े होते हैं। यह नये प्रकार की माया है। ऐसी माया लङ्का के युद्ध में भी नहीं देखी गयी। तब प्रभु ने युद्ध की शैली बदली। भुज मुण्डों को काट काटकर आकाश में फेंकने लगे। जिसमें जुटने न पावें। तब बिना सिर के रुण्ड दौड़ने लगे।

अब रणभूमि मांस रुधिरमय हो गयी। हिंसक जन्तु प्रकट हुए : काक कंक ले

भुजा उड़ाहीं। एकते छीनि एक लै खाँहीं। एक कहहिं ऐसेउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई। जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं अघाहि हुआहिं दुपट्टहिं। जब रणभूमि मांस रुधिरमय हो गयी तब हिंसक जीव प्रकट हुए। बीभत्स रस का प्रादुर्भाव हुआ। शृगाल को कवि ने कठिन कराल कहा है। क्योंकि मरते हुए का मांस नोचकर खाते हैं। एक दूसरे पर कटकटाते हैं कि यह तो मेरा आहार है तू कैसे यहाँ आगया।

कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्प्पर संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं॥
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरुधरु धरु करहिं भयंकर गिरा॥१॥

अर्थ : गीदड़ कटकटाते हैं। भूत प्रेत और पिशाच खप्पर में रक्त जमा करते हैं। वीर वेताल खोपड़ियों पर ताल देते हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं। रघुवीर के प्रचण्ड बाण योद्धाओं की छाती भुजा और सिरोंको काट रहे हैं। वे जहाँ तहाँ गिरते हैं फिर उठकर लड़ते हैं और भयङ्कर शब्दसे पकड़ो पकड़ो कहते हैं।

व्याख्या : प्रेत लोक के घोर जीव भी आ डँटे। पेटभर खाया पीया। अब दूसरे दिनके लिए खप्पर भरकर रख रहे हैं। निश्चिन्त होने के बाद आनन्द का जलसा आरम्भ हुआ। वेताल वीर नट कपाल को बजाकर ताल दे रहे हैं और योगिनी नृत्य कर रही हैं। ये योगिनी भी एक प्रकार की प्रेत ही है। रुधिर पान से सब मत्त हो रहे हैं। योद्धा लोग जहाँ उठे कि तीन टुकड़े हुए। फिर भी वे माया से उठ खड़े होते हैं और लड़ने लगते हैं। सबके सब रण मद में मत्त हैं। मालिक ने पकड़ने की आज्ञा दी थी। अत: पकड़ो, पकड़ो, पकड़ो यही शब्द भयङ्कर ध्वनि से उच्चारण कर रहे हैं।

अंताबरी गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं।
संग्राम पुर बासी मनहु बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं॥
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट त्रिसिरादि खरदूषन फिरे॥२॥

अर्थ : अँतड़ियों को लेकर गीध उड़े जाते हैं। उन्हें पिशाच हाथ से पकड़े हुए दौड़ते हैं। मानो संग्रामरूपी पुर के रहनेवाले बहुत से बालक पतङ्ग उड़ा रहे हों। मारे गये। पृथ्वी पर गिराये गये बहुत से योद्धा कराहते हुए पड़ गये। अपनी सेना को विकल देखकर त्रिशिरा आदि खरदूषण लौटे।

व्याख्या : आँत स्वभावतः लम्बी होती है। फिर शैतान की आँत तो बहुत लम्बी सुनी जाती है। सो उन्हें लेकर गीध उड़ चले। उनके दूसरे सिरों को पिशाचों ने पकड़ लिया और दौड़ने लगे तो ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ मानो संग्राम भूमि ही

एक पुर है। वहाँ के रहनेवाले लड़के पतङ्ग उड़ाते हों। सेना के कुछ लोग मारे गये। कुछ पछाड़ खाकर गिरे और बहुत से पड़े पड़े कराह रहे थे। खरदूषण त्रिशिरा ने देखा कि सेना समाप्त हो चली। तो स्वयं सरकार की ओर लौट पड़े। पहिले सैनिकों को प्रेरणा करके सरकार से लड़ने के लिए भेजते थे। यथा : भये क्रुद्ध तीनिउ भाई। जो भागि रन ते जाइ। तेहि बधब हम निज पान।

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं।
करि कोप श्रीरघुबीर पर अगिनिति निसाचर डारहीं ॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माँझ मारे सकल निसिचर नायका ॥३॥

अर्थ : अगणित निशाचर श्रीरघुवीर के ऊपर बाण, बरछी, तोमर, फरसा, त्रिशूल और तलवार एक साथ ही फेंकने लगे। प्रभु ने क्षणभर में शत्रुओं के बाणों को दूर करके, ललकारकर बाण छोड़े। प्रत्येक राक्षसों के नायक के हृदय में दस दस बाण मारे।

व्याख्या : तीसरी लड़ाई प्रारम्भ हुई। खरदूषण त्रिशिरादि वीर योद्धा भी अकेले सरकार से युद्ध करने का साहस नहीं करते। क्रोध से भरे हुए दूर से हथियार फेंक रहे हैं। हथियारों की वर्षा हो गयी। प्रभु वीरव्रत हैं। उनकी अस्त्र शस्त्र वर्षा को सहन करते हुए अपने बाणों से उसका निवारण किया और प्रत्येक सेनापति के हृदय में दस दस बाण मारे : बहुतों के साथ युद्ध करते समयकी कोई प्रक्रिया है जिससे दस दस बाण प्रतिभटों के हृदय में लगते हैं। यथा : दसदस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।

छं. महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी ॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक करचो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि [1]मरचो ॥४॥

अर्थ : पृथ्वी पर गिरते हैं और उठकर योद्धा फिर लड़ते हैं मरते नहीं। और घनी माया कर रहे हैं। देवता लोग चौदह सहस्र प्रेतों में अकेले श्री रामजी को देखकर डर रहे हैं। देवता और मुनियों को डरा हुआ देखकर मायानाथ ने बड़ा खेल किया कि एक दूसरे को राम देखते हुए संग्राम करके शत्रु की सेना लड़ मरी।

---

१. यह संग्रम मृगशिरा नक्षत्र है : प्रथम मृगसीरस को जलपात। गोजर बीछी साँप छंछूदर वीर बहूटो चरत। पहिले कह आये हैं : वर्षां घोर निसाचररारी। सो वर्षा के दसो नक्षत्र बरसेंगे। यह संग्राम पहिले नक्षत्र की वर्षा है। सुरकुल सालि सुमंगलकारी है। यथा : हरषित बरखहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निसान।

व्याख्या : ये वीर अमर मालूम पड़े। क्योंकि कटकर टुकड़े टुकड़े होकर तो पृथ्वी पर गिरते थे। परन्तु फिर उठ जाते थे। मरते न थे और अत्यन्त दुरूह माया करते थे। कवि उन्हें प्रेत कहते हैं। क्योंकि ये मर मरकर जीते हैं। देवताओं ने देखा कि ये चौदह हजार प्रेत हैं और अवधेश रामजी अकेले हैं। अतः डरने लगे कि देखें क्या होता है! सरकार ने देखा कि देवता और मुनि डर रहे हैं तो उनकी माया के जवाब में एक खेल कर दिया कि वे सब एक दूसरे को राम देखने लगे और आपस में ही कटकर मर गये।

दो. राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे, छन महुँ कृपानिधान ॥२०॥

अर्थ : राम राम कहकर शरीर छोड़ते हैं। निर्वाण पद को प्राप्त हो रहे हैं। इस भाँति उपाय करके कृपानिधान ने क्षण भर में शत्रुओं का संहार कर दिया।

व्याख्या : एक दूसरे को शत्रु सेना के सैनिक राम देखने लगे। जो मारता है वह कहता है कि राम को मारा। जो मारा जाता है वह कहता है कि राम ने मारा। इस भाँति अन्तकाल में सबके मुख से राम नाम का उच्चारण हो रहा है। अतः सबको निर्वाण पद की प्राप्ति हो रही है। यथा : अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्। यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होत स्रुति गावा।

सरकार कृपानिधान हैं। ऐसा उपाय किया कि अनायासेन सब राक्षसों का मोक्ष हो गया।

दो. हरषित बरषहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले, सोभित बिबिध बिमान ॥१४.२०॥

अर्थ : प्रसन्न होकर देवता लोग फूल बरसाने लगे। आकाश में डङ्का बजने लगा। स्तुति करके सब देव आकाश में विमानों पर शोभायमान होकर चले।

व्याख्या : देवता लोग डर गये थे सो हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। राक्षसों से इतने भयभीत थे कि यहाँ पर्ण तृणशाला भी बनाने नहीं आये थे। सो आकाश में डङ्का बजा रहे हैं। युद्ध देखने आये थे सो किसी ने नहीं जाना। अब जाते समय प्रत्यक्ष हो गये। आकाश में विमान पर शोभित हुए।

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते ॥
तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए ॥१॥

अर्थ : जब रघुनाथजी युद्ध में शत्रु को जीत गये तब सुर नर मुनि सबका भय बीत गया। तब लक्ष्मण सीताजी को ले आये। पैर पड़ते हुए प्रभु ने हर्षित हो लक्ष्मणजी को हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : जब से सरकार पञ्चवटी में ठहरे हैं मुनि लोगों का त्रास तो तभो

से दूर हो गया था। यथा : जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा। अब जब शत्रुओं को रण में जीत लिया तब सुर नर मुनि सबका भय समाप्त हो गया।

आकाश में निशान बजा। देवताओं ने स्तुति की। जब लक्ष्मणजी ने सुना और युद्ध का कोलाहल शान्त हो गया तब समझ लिया कि जीत हो गयी। तब सीताजी को लेकर लक्ष्मणजी आये। प्रभु के चरणों में नमस्कार किया। सरकार ने विजय की खुशी में हर्षित होकर हृदय से लगाया। माधुर्य लीला है। रण सङ्कट से विनिर्मुक्त होकर भाई से मिल रहे हैं। चुनौती तो सरकार ने लक्ष्मण के हाथ से दिलाया। परन्तु युद्ध की धार को अपने ऊपर लिया।

सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता॥
पंचबटी बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥२॥

अर्थ : सीताजी श्याम मृदुगात को देख रही हैं। उन्हें परम प्रेम है। उनकी आँखें नहीं अघाती। पञ्चवटी में बसकर श्री रघुनायक सुर मुनि सुखदायक चरित करते हैं।

व्याख्या : आँखें दर्शन की प्यासी हैं। निज पानि मनि महुँ देखिअत मूरति सुरूप निधान की। चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भयबस जानकी। वही जानकी समर सङ्कट से विनिर्मुक्त देखकर श्याम मृदु गात को परम प्रेम से देख रही हैं और जी चाह रहा है कि देखा ही करें।

चित्रकूट का चरित सुर नर मुनि भावन था। यथा : करत जे बन सुर नर मुनि भावन। पर पञ्चवटी का चरित सुरमुनि सुखदायक है। वहाँ नर का निवास नहीं। अतः उनका नाम नहीं लिखा। राक्षस मुनियों को खा गये तो कोलकिरात को कैसे छोड़ते?

## ३७. दशानन समाचार प्रसंग

धुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखा रावन प्रेरा॥
बोलि बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥३॥

अर्थ : खरदूषण का शव देखकर सूर्पणखा ने जाकर रावण को प्रेरणा किया। भारी क्रोध करके बोली कि देश और कोश की सुध विसराकर।

व्याख्या : धुआँ अर्थात् शव या लाश। पहिले गिरकर उठ जाते थे। मरत न करत माया अति घनी। पर इस बार नहीं उठे। अतः सूर्पणखा ने जान लिया कि मर गये। तब जाकर रावण को प्रेरणा किया। ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्ह। सो रावण तक चुनौती पहुँच गयी। पहिले खरदूषण को प्रेरा था : कुल में कुलटा उत्पन्न होने से कुल का नाश हो जाता है। दूसरा कोई रावण के प्रेरने में समर्थ नहीं था।

सूर्पणखा का खरदूषण पर क्रोध था। पर रावण पर भारी क्रोध था। इसी के कारण विधवा हुई। विधवा होने के कारण नाक कान कटा। बहन है इसलिए भारी क्रोध कर सकती है। नहीं तो : कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। राजा के लिए देश काल प्रधान है। सूर्पणखा रावण से कहती है कि तुझे दोनों की खबर नहीं। खरदूषण के मरने की खबर देने मैं आ रही हूँ। तुझे नहीं मालूम की देश में इस समय क्या हो रहा है। अब जनस्थान के कोष का भी कोई रक्षक नहीं रह गया।

**करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती ॥**
**राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥४॥**
**बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किये अरु पाएँ ॥**
**संग[1] तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान ते लाजा ॥५॥**
**प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहि बेगि नीति अस सुनी ॥६॥**

अर्थ : तू शराब पीता है और दिन रात सोता है। तेरे सिर पर शत्रु है और तुझे खबर नहीं है। १. नीति के बिना राज पाने से २. और बिना धर्म के धन पाने से ३. भगवान् के समर्पण बिना सत् कर्म करने से ४. बिना विवेक उपजाये विद्या पढ़ने से केवल श्रम ही फल है। संग हो जाने से संन्यासी। १. कुमन्त्र से राजा २. मान से ज्ञान ३. और पान से लाज ४. बिना ईमानदारी के प्रीति ५. और मद से गुणी ६. शीघ्र ही नष्ट होते हैं। ऐसी नीति सुनी गयी है।

व्याख्या : सूर्पणखा अपना दोष छिपाने के लिए सब दोष रावण के सिर मढ़ रही है कि तेरी असावधानी से तेरे शत्रु इतने बढ़ गये हैं कि आज उन्होंने मेरी नाक काट ली। तू देश कोष की सुरति बिसारकर मद्यपान करता है और रात दिन पड़ा रहता है। सर्वशोक हरा सुरा में मस्त रहता है। तुझे कुछ भी चिन्ता नहीं है। तेरा शत्रु अयोध्या से चलकर जनस्थान पहुँच गया। अब यहाँ आना चाहता है। तुझे वह नहीं छोड़ेगा।

तू नीति शास्त्र की अवहेलना करता है। मैंने जो नीति सुनी है उसे सुनाती हूँ। चार का श्रम ही फल होता है। छः का शीघ्र ही नाश होता है और छः को छोटा नहीं गिनना चाहिए।

१. बिना नीति के राज्य प्राप्ति में जो श्रम होता है वही[2] फल है। क्योंकि राज्य तो रहेगा नहीं। यथा : राज कि रहै नीति बिनु जाने। २. बिना धर्म के अर्थ के उपार्जन में जो श्रम हुआ वही फल है। क्योंकि वह अर्थ अनर्थ है। टिकाऊ नहीं

---

१. यहाँ दीपकालङ्कार है।

२. तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये। आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पकौशलम्। कर्म वही है जिससे बन्ध न हो। विद्या वही है जिससे मोक्ष हो। दूसरे कर्म श्रम के लिए हैं और दूसरी विद्या शिल्प कौशलमात्र है।

हो सकता। ३. बिना हरि के समर्पण किये सत्कर्म के अनुष्ठान में जो श्रम हुआ वही फल है। क्योंकि वह बन्ध का कारण है। ४. और बिना विवेक उत्पन्न हुए विद्योपार्जन में जो श्रम हुआ वहीं फल है। क्योंकि विद्या का फल ही विवेक है। मैं तो देखती हूँ कि तुम्हारे राज्य, धन, सत्कर्म और विद्या के उपार्जन का फल श्रम ही हुआ।

१. सङ्ग से यती का शीघ्र ही पतन होता है। यथा : सब नृप भये जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराग संन्यासी।

२. कुमन्त्र से राजा का शीघ्र ही पतन होता है। यथा : सचिव बैद गुरु तीन जौं प्रिय बोलहिं भय आस। राजधर्म तन तीनि कर होइ बेगिही नास।

३. मान से ज्ञान का नाश होता है। क्योंकि : ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं।

४. पान से तुरन्त लज्जा का नाश होता है। शराबी नङ्गे होकर नाचते बहुधा देखे गये हैं।

५. बिना ईमानदारी के प्रीति का तुरन्त नाश होता है। यथा : बिलग होत रस जाय कपट खटाई परत ही।

६. मद से गुणो का नाश होता है। यथा : अवगुन मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना।

मैं देखती हूँ कि कुमन्त्र, मान, पान और मद से तेरे राज्य ज्ञान लज्जा और गुणों का नाश हो चला।

दो. रिपु रुज पावक पाप प्रभु, अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप, करि लागी रोदनु करन ॥२१॥

अर्थ : शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, मालिक और सर्प को छोटा करके नहीं गिनना चाहिए। ऐसा कहकर अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगी।

व्याख्या : ये छः गूढ़ वीर्य हैं। इनका तुरन्त उपाय करना चाहिए। ये कथमपि उपेक्षणीय नहीं हैं। मैं देखती हूँ कि तुम अति प्रबल शत्रु की उपेक्षा कर रहे हो।

ऐसा कहकर, छाती पीटकर, सिर कूटकर, जमीन पर पछाड़ खाकर रोने लगी। धैर्य धारण करके इतना नीति का उपदेश उसने इसलिए दिया जिसमें रावण समझे कि सूर्पणखा बड़ी विचारशीला है। इसने अनीति नहीं किया होगा। सब दोष राजपुत्रों का ही है।

दो. सभा माँझ परि ब्याकुल, बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर, मोरि कि असि गति होइ ॥२१.१५॥

अर्थ : सभा के बीच में व्याकुल होकर गिर पड़ी और बहुत प्रकार से रोकर कहा कि दशकन्धर! तेरे जीते ही जीते मेरी क्या ऐसो दशा होनी थी।

व्याख्या : बात और बढ़ी अब सभा में गिर गयी और बहुत प्रकार से रोकर कहा कि तुम मर गये होते और मेरी नाक कटती तो मुझे सन्तोष होता। जिसको एक सिर होता है उसके जीते उसकी बहिन की नाक कोई काट नहीं सकता। पर तुझे दस सिर हैं। मुझे तैने विधवा किया। मुझे तो अब तेरी ही गति है।

सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज बाता। केइ तव नासा कान निपाता ॥१॥

अर्थ : सुनते ही सभासद व्याकुल होकर उठे। उसे समझाया और बाहु पकड़कर उठाया। रावण ने कहा कि अपनी बात कह कि तेरा नाक कान किसने काटा ?

व्याख्या : रावण अपने स्थान से न हिला। पिछली बात से सबने पहिचाना। नहीं तो पहिले पहिचान भी नहीं सके थे। आकुल होकर सभासद उठे कि राजा की बहन की नाक किसने काटी और उसे समझाने लगे :

सूपनखे धीरज धरहि अनहोनी यह बात।
किन कीन्ह्यो कैसे भयो यह दारुण उतपात ॥
मिटिहि इंद्र पद ब्रह्मपद रहिहि न नेक निसानि।
दियो चुनौती कौन जग लंकपतिहि लघु मानि ॥

इतना समझाने पर भी नहीं उठी। तब उसको भुजा पकड़कर उठाया।

तब रावण बोले कि अपना हाल कह। मैं क्या करता हूँ उससे तुझे क्या प्रयोजन ? यह बतला कि तेरी नाक और कान किसनें काटा ?

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष[1] सिंह बन खेलन आए ॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी ॥२॥

अर्थ : अयोध्या के राजा दशरथ के बेटे जो कि पुरुषों में सिंह हैं वन में अहेर खेलने आये हैं। उनकी करणी मुझे समझ पड़ी कि वे पृथ्वी को निशिचर हीन करेंगे।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने सूर्पणखा से कहा था : प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा और सरकार के मुख से सुन चुकी है : हम क्षत्रिय मृगया बन करहीं। अयोध्या के राजा दशरथ की ख्याति संसार में थी। यथा : जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे। अतः उसने परिचय तदनुसार ही दिया और कहा कि उनकी करणी देखकर मुझे निश्चय हो गया कि वे पृथ्वी का निशिचरहीन किया चाहते हैं और कर डालेंगे। उन्होंने कहा था : हम क्षत्रिय मृगया बन करहीं। तुमसे खल मृग खोजत फिरहीं। वही कर दिखाया। करि उपाय रिपु मारे छन महँ कृपानिधान। एक ने चौदह सहस्र का संहार किया और उनका कोई कुछ न कर सका।

———

१. यह रत्नावली अलङ्कार है।

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन । अभय भये बिचरत मुनि कानन ।।
देखत बालक काल समाना । परम धीर धन्वी गुन नाना ।।३।।

अर्थ : हे दशानन ! जिनके भुजबल को पाकर मुनि लोग निर्भय होकर वन में विचरते हैं। देखने में तो बालक हैं। पर काल के समान हैं। बड़े भारी धनुर्धर हैं और उनमें नाना प्रकार के गुण हैं।

व्याख्या : तुम्हारा शासन उस देश से उठ गया। अब वहाँ उनका शासन चल रहा है। जो मुनि लोग निशाचरों के डर से छिपे फिरते थे वे अब आनन्द से वन में विचरते हैं। किसी का सामर्थ्य नहीं कि उनसे बोल सके। यथा : जब ते राम कीन्ह तहँ वासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा।

वे देखने में ही अल्पवयस्क हैं। राक्षसों के संहार करने में साक्षात् काल ही हैं। बड़े भारी धनुर्धर हैं। उनकी बाण विद्या के आगे किसी का क्रिया कुछ नहीं होता। इसके अतिरिक्त भी अनेक गुण हैं। न जाने कौन विद्या कर दी कि सारी सेना आपस में ही कट मरी।

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता ।।
सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ।।४।।

अर्थ : उन दोनों भाइयों के बल प्रताप का कोई तौल नहीं है। वे देवता और मुनि के सुख देनेवाले हैं और खलों के नाश में लगे रहते हैं।

व्याख्या : बल ऐसा है कि उनके धनुष का टङ्कार कोई सह नहीं सकता। यथा : प्रभु कीन्ह धनुष टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। और प्रताप ऐसा है कि उनकी ओर देखा नहीं जाता। यथा : प्रभु बिलोकि सर सकहि न डारी। दोनों भाई एक से एक हैं : मुनि पालक खल शालक बालक : इस भगवदुक्ति का अनुवाद करती हुई कहती हैं : खल बध रत सुर मुनि सुखदाता। छवि पर आसक्त हैं। अतः सोभा धाम कहती हैं। राक्षस लोग उन्हें राम कहते थे। यथा : राम राम कहि तनु तजहि। अतः कहती हैं राम अस नामा : राक्षसों को नाम मालूम था। बहुत दिनों से नाम सुनते थे। सीताजी पर बड़ी डाह है। इसलिए परिचय देती है। तिनके संग नारि एक स्यामा। श्यामा भवति श्यामाङ्गी श्यामा षोडशवार्षिकी। अप्रसूता भवेत् श्यामा श्यामा मधुरभाषिणी। अप्रसूता और मधुरभाषिणी होने से श्यामा कहा। जानती हैं कि रावण को उसके नाक कान कटने की उतनी परवाह नहीं होगी। सुन्दरी स्त्री के लिए वह सब कुछ कर सकता है।

रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी ।।
तासु अनुज काटे स्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा ।।५।।

अर्थ : विधाता ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ करोड़

रति भो उस पर निछावर हैं। उन्हीं के छोटे भाई ने मेरे नाक कान काट डाले। मैं तेरी बहिन हूँ। यह सुनकर वे मुझसे हँसी करने लगे।

व्याख्या : रावण को कामुक जानकर सीताजी के रूप की प्रशंसा करती है। राम शोभाधाम नारि रूप राशि। राम के अंग अंग पर वारिये कोटि कोटि शत काम। नारि के लिए कहती हैं : रति सतकोटि तासु बलिहारी। उसे ब्रह्माजी ने अपने हाथ से सँवारकर बनाया है। तुम्हारे महल में ऐसी स्त्री एक भी नहीं है।

उसी राम के छोटे भाई ने नाक कान काटा। जब सुना कि मैं तुम्हारी बहिन हूँ तब मुझसे परिहास करने लगे। बड़ा कहने लगा कि छोटे से ब्याह कर लो। छोटा कहने लगा कि बड़े से ब्याह करो : स्वयं ब्याह करने गयी थी इस बात को छिपा रक्खा। जब मैं चिढ़ी तो नाक काट लिया।

खर दूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा ॥
खर दूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता ॥६॥

अर्थ : मेरी पुकार सुनकर खरदूषण सहायता करने आये। पर उन्होंने क्षण भर में सारी सेना को मार डाला। खरदूषण और त्रिशिरा का वध सुनकर रावण के सारे अंग जल उठे।

व्याख्या : अन्याय सुनकर ही कमजोर की ओर से गोहार इकट्ठा होता है। सो खरदूषण हमारी पुकार सुनकर सब सेना लेकर दण्ड देने गये। सो करि उपाय रिपु मारे छन महँ कृपानिधान। देखते देखते उन्होंने सबका संहार कर दिया। सकल कटक में खरदूषण त्रिशिरा भी आगये। नाक कान काटने से जलन न हुई। खर दूषण का मरना सुनकर जल भुन उठा। क्रोध से जलन होती है। पहिले अपना ही शरीर जलता है। शत्रु की हानि जब होगी तब होगी।

दो. सूपनखहि समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोच बस, नींद परै नहिं राति ॥२२.१६॥

अर्थ : उसने सूर्पनखा को समझाकर बहुत प्रकार से अपने बल का बखान किया। किन्तु वह अत्यन्त चिन्तावश होकर अपने महल में गया। उसे रात भर नींद नहीं पड़ी।

व्याख्या : समझाया कि हमारी ओर तो पूरा इन्तजाम था। १४००० सुभट के साथ खरदूषण तेरी रक्षा के लिए थे। जब उनको पता न लगा तो मुझे कैसे लग जाता ? अब तो उन्हें दण्ड देना मेरा काम ठहरा। खरदूषण में केवल एक बल शारीरिक था। मुझे भुजबल, तपबल, अस्त्रबल, सेनाबल, दुर्गबल, सब बल है। राम में क्या है ?

बढ़ी भयानकता अधिक कटे नाक अरु कान।
अब केवल तव दरस ते मुनिगन तजिहैं प्रान ॥

देव यक्ष गन्धर्व नर मुनिमँह नाक प्रधान।
भीमरूप निशिचरन में कौन नाक की मान॥
तदपि देहुँ बैरिहि तुरत उत्कट फल परिपाक।
करौं हवाले कालके जिन काट्यो तव नाक॥
कौन बली या जगत् में जों मोको समुहाय।
लोकपाल निज लोक ते मेरे भय भगि जाय॥
क्षण महँ एकार्णव करौं कहा नान की बात।
देव दनुज को को कहै कालहु मोहि डरात॥
मैं तेरे रिपु को अभी डारत मूल बहाय।
जाहु सुखेन सुषेनपहँ करिहैं अवसि सहाय॥

ऐसा कहकर दरबार बरखास्त कर दिया। अति सोच से रात नींद न आयी : सो किमि सोअ सोच अधिकाई।

सुर नर असुर नाग खग माँही। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाँहीं॥
खर दूषण मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥१॥

अर्थ : विचार करने लगा। देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियों में कोई ऐसा नहीं जो मेरे सेवक की भी बराबरी का हो। खर दूषण तो मेरे हो समान बलवान् थे। उन्हें भगवान् के सिवा और कौन मार सकता है।

व्याख्या : रावण सोचता है : कुमुख अकम्पन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय। ये सब हमारे अनुचर हैं। इन्हीं का कोई प्रतिभट नहीं है। जग में सुर नर असुर नाग खग हैं। ये ही पाँच पराक्रमी हैं। वे मेरे ही अनुचर के बराबर नहीं हैं।

जीव में सामर्थ्य नहीं कि मेरे समान बलवान को मार सके। ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई। जीव मात्र के जय के लिए मेरे अनुचर यथेष्ट हैं। मेरे अनुचर भी ईश्वर के ही मारे मर सकते हैं।

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तउ मैं जाइ बयरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ॥२॥

अर्थ : देवताओं को आनन्द देनेवाले और पृथ्वी का भार हरण करनेवाले भगवान् ने यदि अवतार लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु के बाण से प्राण छोड़कर भवसागर तर जाऊँगा।

व्याख्या : महा पण्डित है। जानता है कि मुझसे देवताओं को कष्ट है। हम लोगों के कारण पृथ्वी का भार बढ़ गया है। ऐसे ही अवसरों पर अवतार होता है। गुप्त अवतार भी होते हैं। यथा : वामनावतार, ईश्वर होकर यदि चाहें कि पता न

१. यहाँ विचित्रालङ्कार है।

लगे तो कैसे लग सकता है। और जीवों में भी ऐसे बलवान कभी कभी हो जाते हैं कि राक्षसों को मार लेते हैं। यथा : तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अ[illegible] अजय देव दुःखदाई। प्रथमहि भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे। अतः यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि अवतार हुआ है। यदि ईश्वर हैं तो वैर नहीं करेंगे। सूर्पणखा कथित निरपराधता उसके मन में नहीं आयी। मैं हठपूर्वक वैर करूँगा। क्योंकि निर्वाणदायक क्रोध जाकर भगति अवसहिं बस करी। रावण अपनी गति के लिए व्यग्र है। इतना ही रावण विभीषण में भेद है। विभीषण में निश्चयात्मिका बुद्धि है रावण में नहीं है। विभीषण भजन कर सकता है। रावण नहीं कर सकता। प्रभु शर से तीनों शरीरें नष्ट हो जाती हैं। यह प्रभु शर की विशेषता है।

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥
जौं नररूप भूप सुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ॥३॥

अर्थ : इस तामस शरीर से भजन तो होगा नहीं। अतएव मन वचन और कर्म से यही दृढ़ निश्चय है। यदि वे मनुष्य रूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनों को रण में जीतकर स्त्री को हर लूँगा।

व्याख्या : भजन करना ही सुगति का शास्त्रानुमोदित उपाय है। सो मुझसे होगा नहीं। वैर भली भाँति कर सकूँगा : मैं कौन सा काम भलीभाँति कर सकूँगा। इस बात को सोच निकालना साधारण पण्डिताई नहीं है। खूब विचार के बाद यही मन्त्र दृढ़ किया कि किसी की सलाह न मानूँगा। वैर करूँगा और यदि जिस पर मुझे अवतार का सन्देह है वह मनुष्य निकला तो जीतकर स्त्री हरण करूँगा : यद्यपि जीति पूर्वकालिक क्रिया है। इससे अर्थ निकला कि पहिले जीतकर पीछे स्त्री हरण करूँगा। पर इस पर कोई निश्चय नहीं है। निश्चय वैर करने में और स्त्री हरण करने में है।

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ॥

## रामजी की युक्ति

इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥४॥

अर्थ : रावण रथ पर चढ़कर अकेला ही वहाँ चला जहाँ समुद्र के तट पर मारीच रहता था। शिवजी कहते हैं कि : हे पार्वती! यहाँ श्रीरामचन्द्रजी ने जैसी युक्ति रची वह सुन्दर कथा सुनो।

व्याख्या : षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः। ऐसा नीतिशास्त्र का आदेश है। अतः अकेला चला। सारथि को भी साथ न लिया। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ : से पता चलता है कि और भी विचार उसने किया। जो उसकी क्रिया से लक्षित होता है। लिखा नहीं गया। माया से बचने के लिए साधुओं को भी युक्ति करनी चाहिए। व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवम् भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। वे मूढ़ हार जाते

हैं जो मायावी से माया नहीं करते सम्बोधन से शिवजी उमा को सावधान करते है।

दो. लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले, बिहँसि कृपा सुख बृंद ॥२३.१७॥

अर्थ : लक्ष्मणजी जब कन्द मूल फल लेने के लिए वन में गये तब कृपा और सुख के समूह श्रीरामचन्द्रजी हँसकर जानकीजी से बोले।

व्याख्या : इधर प्रभु ने सोचा कि अब सूर्पणखा रावण के पास जावेगी। खर दूषण के व्यवहार से पता चल गया कि चोट सीताजी पर होगी। रावण सम्मुख संग्राम का साहस न करेगा। सीताहरण करेगा। रावण ने भी सबसे बात छिपायी। प्रभु भी लछिमन तक से बात छिपाते हैं। लक्ष्मण के जान लेने पर विलापादि न बन सकेगा। माया को प्रेरणा करना है इससे हँसे। रत्न की चोरी के लिए चोर चला। इधर रत्न बदल शीशा : इमीटेशन उस स्थान पर रक्खा जा रहा है। चोर को धोखा देना चाहते हैं। इसलिए हँसकर बोले। भगवती पर कृपा है। उन्हें दुःख में नहीं डालना चाहते। इससे : कृपा सुखबृंद कहा।

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला ॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा ॥१॥

अर्थ : हे प्रिये ! हे सुन्दर पातिव्रत धर्म पालन करनेवाली सुशीले ! सुनो। मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा। इसलिए जबतक मैं राक्षसों का नाश करूँ तबतक तुम अग्नि में निवास करो।

व्याख्या : सरकार करुणानिधान हैं। सुजान हैं। भगवती के शील सनेह को जानते हैं। यथा : करुणानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो। करुणानिधान हैं। अतः इस झमेले में उनको डालना नहीं चाहते। झमेला बड़ा है। लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर : से काम न चलेगा। कुछ दिन तक अलग रखना है और भगवती के स्नेह को जानते हैं। अतः कहते हैं : सुनहु प्रिया। गुणग्राहक : सुजान हैं। अतः व्रत रुचिर कहते हैं। भगवती के शीलको जानते हैं। अतः सुशीला कहते हैं।

शुद्ध माधुर्य की लीला ललित नरलीला है। अभी तक ऐश्वर्य मिश्रित लीला किया है। और शुद्ध माधुर्य में तुम्हें अत्यन्त कष्ट होगा। अधिक दिनों का विछोह होगा। हरण होगा राक्षसों की अश्लील बातें सुननी पड़ेंगी। अतः ऐसे समय में तुम्हारा साथ रहना ठीक नहीं है।

पावक मेरी ही विभूति है : वसूनां पावकश्चास्मि तथा : अग्निर्देवानामवमो विष्णुः। अतः उसमें निवास से सर्वथा मेरा वियोग न होगा और बिना पावक में निवास किये प्रतिबिम्ब की उत्पत्ति न होगी : पावक सन्निधान विद्या से बायस्कोप में प्रतिबिम्ब का खेल देखा जाता है। निसिचर नाश के समय तक तुम्हारे प्रतिबिम्ब से काम लिया जायगा। शपथ लेने के समय तुम अग्नि से प्रकट होना।

जबहिं राम सबु कहा बखानी । प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी ।।
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । तैसेइ सील रूप सुबिनीता ।।२।।

अर्थ : श्रीरामजी ने ज्यों हो सब समझाकर कहा । त्यों ही श्रीसीताजी प्रभु के चरणों को हृदय में धरकर अग्नि में समा गयीं । सीताजी ने अपनी ही छायामूर्ति वहाँ रख दी । जो उनके जैसे ही शील स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थीं ।

व्याख्या : रामजी ने कहा : रावण चल पड़ा तुम्हारे हरण के लिए । यदि छल में कृतकार्य न होगा तो बल से हरण चाहेगा एवं रावण वध हो जायगा । परन्तु निशिचरहीन महि न हो सकेगी । अतः निशिचरहीन महि करने के लिए यह आवश्यक है कि तुम्हारा हरण हो । कम से कम रावण यह समझे कि मैंने सीता हरण कर लिया । प्रभु पद हृदय में धारण करती हैं आधार के लिए । अग्नि में लय हो गयीं । क्योंकि अग्नि से ही प्रकट होना है ।

सब समझाकर कहा । अतः अपना प्रतिबिम्ब छोड़ती गयीं । देवयोनि में यह सामर्थ्य है । अथवा योग से भी अनेक शरीर प्रकट किया जा सकता है । बिम्ब और प्रतिबिम्ब के रूप में तो भेद नहीं होता । यहाँ तो शील और विनय में भी भेद नहीं था ।

लछिमनहूँ येह मरमु न जाना । जो कछु चरित रचा भागवाना ।।

## ३८. दशकन्धर मारीच बतकही प्रसङ्ग

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा । नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ।।३।।

अर्थ : भगवान् ने जो कुछ लीला रची इस रहस्य को लक्ष्मणजी ने भी नहीं जाना । स्वार्थपरायण और नीच रावण वहाँ गया जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया ।

व्याख्या : यह मर्म प्रभु और भगवती के ही बीच में रहा । सादृश्य ऐसा था कि लक्ष्मणजी भी नहीं समझ सके कि भगवती बदल गयीं । नारद शाप : नारि बिरह तुम होव दुःखारी । का अभिनय लछिमन के जान जाने से नहीं हो सकता था । लछिमन कन्द मूल लेकर लौटे । देखा कि पहिले की तरह दोनों सरकार बैठे हैं । जबतक रावण मारीच के पास न पहुँचा तबतक यहाँ से सीताजी हटा दी गयीं । लछिमनजी के लौट आने के बाद रावण मारीच के पास पहुँचा । तबतक अपने ही रूप में रहा । अतः दशमुख कहते हैं । अथवा दसो सिर झुकाया । उसके एक प्रणाम में दस प्रणाम है । नीच का जब स्वार्थ आ पड़ता है तब ऐसे ही प्रणाम करते हैं । यथा : करि बिनती पद गहि दस सीसा । बोला बचन सुनहु जगदीसा ।

नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ।।
भय दायक खल कै प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ।।४।।

अर्थ : नीच का झुकना अत्यन्त दुःखदायीं होता है। जैसे अंकुश धनुष साँप और बिल्ली का झुकना। हे भवानी ! दुष्ट की मीठी वाणो भय देनेवाली होती है। जैसे बिना ऋतु के फूल।

व्याख्या : नीच का मिलना दुःखदायी है। यथा : मिलत एक दारुण दुख देहीं। और नवनि : अति दुखदायो है चाहे दूसरे की प्रेरणा से नमन करे। यथा : अंकुश धनु। चाहे स्वेच्छा से नमन करे। यथा : उगर बिलाई। भाव यह कि यह प्रणाम मारीच के प्राण लेने के लिए है। यह नीच है। उसका कहना न मानेगा केवल स्वार्थ से प्रणाम मात्र करता है। यथा : बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहिं नीचा।

खल प्रिय वाणी नहीं कहते : बचन बज्र जेहि सदा पियारा। वे यदि प्रिय वाणी बोलें तो सावधान होना चाहिए। यह प्रिय वाणी प्राण घातक है। कुसुम बड़ा सुहावना होता है। वह कुसुम वसन्त में ही फूलता है। यदि अन्य ऋतु में फूले तो अनिष्ट सूचक है। रावण ने मधुर वाणो से अभिवादन किया। आगे दिखाया जायगा कि उसने अंकुश धनु उरग और बिलाई की भाँति आचरण भी किया।

दो. करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति, अकसर आयेहु तात ॥२४.१८॥

अर्थ : तब मारीच ने उसकी पूजा करके आदर पूर्वक बात पूछी : हे तात ! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अत्यन्त अकेले क्यों आये हैं ?

व्याख्या : राजा का आगमन है। अतः पहिले पूजा की। तब बड़े आदर से बात पूछी। सब बातें मधुर भी बोलते हैं। उलटी हैं। मन से अति व्यग्र हैं और अत्यन्त अकेले भी हैं। यथा : अति अकेलू बन बिपुल कलेसू। राजा का दो चार के साथ रहना भी एकान्त ही समझा जाता है। किसी के साथ न रहना अति अकेल है। मनसा वाचा कर्मणा व्यग्रता दिखलायी। दशरथजी ने विश्वामित्र की पूजा करके तब आने का कारण पूछा। भुसुण्डिजी ने भी गरुड़जी से ऐसा ही किया। यही सदाचार है।

दसमुख सकल कथा तेहि आगें। कही सहित अभिमान अभागें ॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी ॥१॥

अर्थ : भाग्यहीन रावण ने सारी कथा अभिमान सहित उसके सामने कही : और फिर कहा तुम छल करनेवाला कपट मृग बनो। जिस उपाय से मैं उस राजवधू को हर लाऊँ।

व्याख्या : दशमुख कहने का भाव यह कि दसों दिशा में देखता जाता है कि हमें कोई देखता तो नहीं। चोरी खुलने का डर है। रावण ने किसी से सब कथा

नहीं कही। सूर्पणखा का नासिका छेदन केवल मारीच से कहा। सो भी भव भंजन पद विमुख अभागी ने अभिमान के सहित कहा। यथा : सूर्पनखा का धोखे में नाक कान काटा। खर दूषण ऐसे मूर्ख थे लड़ने गये राम से सो आपस में ही लड़कर मर गये। अब अंकुश देता है। होहु कपट मृग तुम छलकारी। धनु की भाँति लक्ष्य स्थिर करता है : जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी।

उपाय में परिवर्तन कर रहा है। बलप्रयोग के साथ स्त्रीहरण का संकल्प छोड़ दिया। स्त्रीहरण करके हठपूर्वक वैर करना यही निश्चय हो गया। कहने लगा कि तुम मायावी हो। कपट मृग बनो। मृग बनकर छल करो। अंकुश का काम कर रहा है : महा मत्त गजराज कहँ वसकर अंकुस खर्व। अब धनुष का लक्ष्य वेध काम करना है : जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी। बहिन के नाक कान काटने का यही उत्तर है। अर्थात् वह बिधि भी तुम्हीं को ठीक करना पड़ेगा जिसमें लछिमन भी वहाँ से हट जायँ। व्यग्रता के उत्तर में सकल कथा कही।

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चराचर ईसा॥
तासों तात बयरु नहि कीजै। मारें मरिअ जिआएँ जीजै॥२॥

अर्थ : तब मारीच ने कहा : हे दशशीश ! सुनिये। वे मनुष्यरूप में चराचर के ईश्वर हैं। हे तात ! उनसे बैर न कीजिये। उन्हीं के मारने से मारना और उनके जिलाने से जीना होता है।

व्याख्या : तेहि पुनि : बोलने का मुहावरा है। यथा : मैं पुनि निज गुरु सन सुनी। विशेष बात कहने के अर्थ में पुनि का प्रयोग है। सकल कथा तेहि आगे कही सहित अभिमान : का उत्तर मारीच देता है कि अभिमान जीव से चलता है ईश्वर से नहीं। तुमने चराचर से वैर किया। यथा : तुम सुर असुर चराचर जीते। पर चराचर के स्वामी से वैर न करो।

मारे मरिअ जिआए जीजै : उन्हें मारने जिलाने दोनों का अधिकार है सुबाहु को मारना चाहा मार डाला। मुझे भी मार डालते। मैं तो उन्हीं का जिलाया जीता हूँ। जेहि बिधि हरि आनउ नृपनारी : का उत्तर यही है कि नारी का हरण करना और अपने काल को बुलाना एक ही बात है।

मुनि मंख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥
सत योजन आएउँ छन माँहीं। तिन्ह सन बयरु किए भल नाँहीं॥३॥

अर्थ : यही राजकुमार मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गये थे। उस समय श्री रघुनाथजी ने बिना फल का बाण मुझे मारा था। जिससे मैं क्षण भर में सौ योजन पर आ गिरा। उनसे वैर करने में भलाई नहीं है।

व्याख्या : होहु कपट मृग तुम छलकारी : का उत्तर देता है कि मैं उनका बाण नहीं सह सकता। तब तो कोमल अवस्था थी। अब तो प्रौढ़ हुए होंगे। मैं विघ्न करने गया था। वे रक्षा करने गये थे। फर सहित मारते तो मैं भी मर

जाता। उस बार छोड़ दिया। इस बार मार ही डालेंगे : हम लोगों से लड़ने बिना सेना के गये थे।

बिनु फर बाण राम तेहि मारा। सत योजन गा सागर पारा। भयानक बाण का वेग है। हमें शत योजन फेंकना क्या साधारण बल की बात है। छलकारी मृग क्या बनेंगे? वहाँ कोई विधि बैठने की नहीं। एक बाण में मामला तय है। ऐसे प्रबल पुरुषार्थी के साथ वैर न करो। यद्यपि तुम्हारा भला वैर करने ही से हुआ है। लंका वैर से मिली। पुष्पक वैर से मिला। यहाँ तो मृत्यु ही मिलनी है।

भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखऊँ दोउ भाई ॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा ॥४॥

अर्थ : मेरी दशा तो भृंगी कीड़े की सी हो गयी है। जहाँ तहाँ श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाइयों को ही देखने लगा और हे तात! यदि वे मनुष्य हैं तो भी बड़े शूरवीर हैं। उनसे बिरोध करने में पूरा न पड़ेगा।

व्याख्या : भृंग से छोटा कीट चारों ओर भृंग ही भृंग देखता है। उसी भाँति मेरी बुद्धि में विकार आगया। अत्यन्त भीत हो गया था। बाण लगने के पहिले दोनों भाइयों को देखा था। वे ही दोनों सब जगह दिखाई पड़ने लगे। मेरा सामर्थ्य उनके बाण के सामने जाने का नहीं है।

तुष्यतु दुर्जनन्यायेन कहता है : मैं तो नर नहीं मानता। यदि नर भी मान लो तो अतिशूर हैं। सबके विरोध से पूरा पड़ा। भुजबल बिस्व वस्य करि राखेसि कोउ न स्वतन्त्र। परन्तु इनसे पूरा न पड़ेगा।

दो. जेहि ताड़का सुबाहु हति, खंडेउ हर कोदंड।
खर दूषन तिसिरा बधेउ, मनुज कि अस बरिवंड ॥२५.१९॥

अर्थ : जिसने ताड़का और सुबाहु को मारकर शिवजी का धनुष तोड़ दिया और खर दूषण और त्रिशिरा का वध कर डाला। ऐसा प्रचण्ड बली कहीं मनुष्य हो सकता है।

व्याख्या : ये चारों अमानुष कर्म थे। ताड़का वध से मुनि ने चीन्हा। यथा : तब मुनि निज नाथहि जिय चीन्ही। सुबाहु वध से देव मुनि ने चीन्हा। यथा : अस्तुति करहि देव मुनि बृंदा। धनुष भंग से तुलसी ने चीन्हा। यथा : कोदंड भंजेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं। खर दूषण वध से सूपनखा ने चीन्हा। यथा : खल बध रत सुर मुनि सुखदाता। अतः कहता है : मनुज कि अस बरिवंड। इस तर्क से आप भी जान जाइये। बचपन से ही इनके सब अमानुष कर्म हैं।

मारग जात भयानक भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी ॥
घोर निसाचर बिकट भट समर गनहि नहि काहु।
मारेउ सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु ॥

कमठ पीठ पविकूट कठोरा । नृप समाज मँह सिव धनु तोरा ।।
सकल अमानुष कर्म तुम्हारे ।

जाहु भवन कुल कुसल बिचारी । सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी ।।
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा । कहु जग मोहि समान को योधा ।।१।।

अर्थ : अतः अपने कुल की कुशल विचारकर आप लौट जाइये। यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत सी गालियाँ दीं। और कहा : अरे मूर्ख ! तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान सिखाता है ? बता तो संसार में मेरे समान योद्धा कौन है ?

व्याख्या : मारीच ने कहा : जो रास्ता तुम पकड़ना चाहते हो उससे तो कुल का नाश हो जायगा : राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सलभ सकल कुल तोरा। जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई। भाव यह कि मैं तो जाऊँगा ही नहीं। तुम भी यह उद्योग छोड़ दो। पर रावण मन्त्र दृढ़ किये हुए हैं। इसके विरोध में सुनना नहीं चाहता। जबतक सिद्धान्त निश्चय की कोटि में नहीं पहुँचता तब तक विरोधी तर्क सुनने की प्रवृत्ति होती हैं। अतः बिगड़ा : आज्ञा भङ्ग भी करता है और मुझे भी बेवकूफ भी बनाता है। सर्प की भाँति रावण पलट गया। अभी प्रणाम किया है। अभी गाली देने लगा। क्षुद्र लोगों की यही दशा है। स्वार्थ सधते न देखकर जल उठा। मार डालता पर काम लेना है। इससे गाली ही दिया। उल्लू गधा आदि मूर्खता द्योतक शब्दों का प्रयोग किया : गोस्वामीजी प्रेम की गाली भी नहीं कहते। यह तो द्वेष मूलक थी। सर्पों की भाँति विष वमन करता है।

तू मूढ़ है। सरल बात नहीं समझता। वह मनुजों में बरिवंड होगा। पर : नर बानर केहि लेखे मांही। नर मेरा क्या कर सकता है। तुझे सौ योजन फेंक दिया तो इससे क्या हुआ ? कौन सी बड़ी बात किया ? गुरु बोध कराने का अधिकारी है। मैं महापण्डित और तू महा मूर्ख। तू मुझे बोध देने चला। तुझे यह अधिकार कहाँ से हुआ जो ज्ञान देने चला है।

तब मारीच हृदय अनुमाना । नवहि बिरोधे नहिं कल्याना ।।
शस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी । बैद बंदि कबि भानस गुनी ।।२।।

अर्थ : तब मारीच ने हृदय में अनुमान किया कि शस्त्रधारी, भेद जानने-वाला, समर्थ स्वामी, हठी, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया इन नौ व्यक्तियों से वैर करने में कुशल नहीं होता।

व्याख्या : अनुमान द्वारा सामान्य से विशेष में अवतरण होता है। नौ के विरोध से कल्याण नहीं होता। यह भी नव में से हैं। अतः इससे भी विरोध नहीं करना चाहिए। हृदय में अनुमान करता है। अपने कल्याण का निर्णय मन में ही करना चाहिए।

शस्त्री से विरोध नहीं करना चाहिए। उसका विश्वास नहीं कब चोट कर बैठे। नदीनां च नखीनां च शृंगीणां शस्त्रपाणिनाम्। विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च। शस्त्र न हो तो भी मर्मी से विरोध न करे। मर्म पर आघात करेगा। यथा : नाभी कुण्ड पियूष बस याके। नाथ जियत रावण बल ताके : शस्त्री, मर्मी न होने पर भी प्रभु का विरोध नहीं करना। यथा : प्रभुअहि गनिअ न छोट करि। कुछ भी न हो यदि शठ हो : जिद्दी हो तो भी बचना चाहिए। वह सब सङ्कट सहकर भी अपकार करेगा। धनी से भी वैर नहीं करना चाहिए। अर्थस्य पुरुषो दासः नार्थो दासो हि कस्यचित्। उसे बहुत सहायक मिलेंगे। वैद्यः प्राणधनानि च। वैद्य तो प्राण के धन हैं। इनसे वैर कभी नहीं करना चाहिए। बंदी जहाँ तहाँ अपकीर्ति फैलाते हैं। कविपद के लालित्य से लोग उस पद को स्मरण कर लेते हैं और उसकी अपकीर्ति अमर हो जाती है। रसोइया के हाथ तो सदा प्राण रहता है। अतः इनसे वैर करने में कल्याण नहीं होता।

उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना ॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें। कस न मरों रघुपति सर लागें ॥३॥

अर्थ : जब मारीच ने दोनों प्रकार से अपना मरण देखा। तब उसने श्रीरघुनाथजी की शरण ताकी। सोचा कि : उत्तर देते ही यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर श्रीरघुनाथजी के बाण लगने से ही क्यों न मरूँ !

व्याख्या : रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि। उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः। जब राम से भी मरना है और रावण से भी मरना है तो राम के हाथ से मरना ठीक है रावण के हाथ से नहीं। भगवान् का कथन है : जो नर होय चराचर द्रोही। आवै समय सरण तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। सो यह कपट छल न छोड़ सका। अतः साधु समान नहीं बनाया। पर साधु की गति दे दी। कपट छल सहित शरण जाने से वह दण्ड होता है।

प्रश्न था : कहु जग मोहि समान को जोधा। उत्तर तो यही है कि तब चोरी से स्त्री हरण क्यों करते हो? जाओ छीन लाओ। पर यह उत्तर सुनते ही यह अभागा मुझे मार डालेगा। अब यह अभागा है। अपने कुल भर का संहार अपनी आँखों देखेगा। मेरा मरण देखना इसके लिए क्या है ! तो अभागे के हाथ क्यों मरूँ? यह भवभंजन पद विमुख है : रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहैं सही। सो सही परम गति क्यों न लें।

अस जिय जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेमु अभंगा ॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहौं परम सनेही ॥४॥

अर्थ : हृदय में वह ऐसा समझकर रावण के साथ चला। श्रीरामजी के चरणों में उसका अखण्ड प्रेम है। उसके मनमें इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं

अपने परम स्नेही श्रीरामजी को देखूँगा; किन्तु उसने यह हर्ष रावण को नहीं जनाया।

व्याख्या : गाली खाकर भी चुप देखकर रावण ने समझ लिया कि ठीक हो गया। अब बिलाई का कार्य करता है। बिलाई जिस भाँति चूहे को दाब ले जाती है उस भाँति ले चला। दशानन के सङ्ग जा रहा है। किसी ओर से भागकर निकल नहीं सकता। फिर भी रामपद प्रेम अभंग है। जाता है रावण के साथ प्रेम राम में है। जिसके साथ जाता है उसका काम करेगा। राक्षस भी अपना वर्ग नहीं छोड़ता। मनुष्य छोड़ देता है। रामके हाथसे मरने की अभिलाषा है। क्योंकि प्रेमी के हाथसे मरने में भी आनन्द है।

प्राणभय से दर्शन नहीं करते थे। अब तो दर्शन करेंगे। अद्भुत प्रेमी हैं। उसे बड़ा हर्ष है। पर उस हर्ष को दबाये हैं। कहीं रावण न जान जाय नहीं तो मुझ पर अविश्वास करके अभी मार देगा। वह जानता है कि प्रभु परम सनेही हैं। सबको मारा मुझे छोड़ दिया।

छं. निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥
निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अवसहि बस करी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी॥

अर्थ : अपने परम प्रियतम को देखकर नेत्रों को सफल करके सुख पाऊँगा। जानकीजी सहित और छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत कृपानिधान श्रीरामजी के चरणों में मन लगाऊँगा। जिनका क्रोध भी मोक्ष देनेवाला है और जिनकी भक्ति उन स्वतन्त्र भगवान् को भी वश में करनेवाली है। अहा! वे ही आनन्द के समुद्र श्रीहरि अपने हाथों से बाण सन्धान कर मेरा वध करेंगे।

व्याख्या : प्रियतम नहीं परम प्रीतम : स तु प्राणस्य प्राणाः। होइहै सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भवमोचन। उन्हें आँखभर देखूँगा। श्री सहित नहीं देखा था। अनुज समेत तो देखा था। कृपा निकेत हैं। ऐसी कृपा सुनी देखी नहीं गयी कि उनका क्रोध भी कृपा ही है। क्रोध करें तो निर्वाण दें। भगवान् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हैं। पर भक्ति से वश हो जाते हैं : रीझे बस होहि खीझे देत निज धाम रे। खर दूषण सरकार के हाथ से नहीं मरे फिर भी निर्वाण पाया। सुखसागर के हाथ मरने में भी सुख है। मेरा भाग्य देखो कि मारने के लिए मुझे लक्ष्य बनावेंगे। जिसे मुनि लोग लक्ष्य बनाते हैं। प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्। प्रणव धनु है। आत्मा शर है और ब्रह्म लक्ष्य है। सो बाण की भाँति तन्मय होकर सावधानी से लक्ष्यवेध करना चाहिए।

दो. मम पाछें धर धावत, धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं, धन्य न मो सम आन॥२०.२६॥

अर्थ : धनुष बाण धारण किये मेरे पीछे पीछे पकड़ने के लिए पृथ्वी पर दौड़ते हुए प्रभु को मैं फिर फिरकर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है।

व्याख्या : शरासन वाणधारी मूर्ति ध्येय है। यथा : बन खेलत राम फिरैं मृगया तुलसी छवि सो वरनै किमि कै। जानकीजी का भी यह ध्यान था : जेहि बिधि कपट कुरंग संग धाइ चले श्रीराम। वह छवि अपूर्व है मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद। मृग घूम घूमकर शिकारी को देखता है। बड़े बड़े प्रेमी और क्या करते हैं? देखन मिस मृग बिहँग तरु फिरै बहारि बहोरि। ऐसा भाग्य किसी का हुआ नहीं कि जिसके पीछे पीछे रामजी दौड़ते फिरें।

तेहि बन निकट दसानन गएऊ। तब मारीच कपट मृग भएऊ ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई ॥१॥

अर्थ : जब रावण उस वन के निकट पहुँचा तब मारीच कपट मृग बन गया। वह अत्यन्त ही विचित्र था। कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। सोने का शरीर मणियों की पच्चीकारी करके बनाया था।

व्याख्या : आश्रम निकट नहीं गया। वन निकट गया। आश्रम से निकलकर वन जाना पड़ता था। यथा : लछिमन गये बनहिं जब लेन मूल फल कन्द। कारण यह कि दशानन है कोई भी पहिचान सकता है। वन का पता सूर्पणखा से लग चुका है। वन के निकट तक दोनों अपने रूप में गये। वहाँ पहुँचने पर मारीच कपट मृग हुआ। होहु कपट मृग तुम छलकारी : का साफल्य। खरदूषण की ओर से पीछे माया हुई। रावण ने माया से ही कार्य प्रारम्भ किया।

बनने की तारीफ तो इसमें है कि भेद लखाई न पड़े। परन्तु माया से बनी हुई वस्तु प्राकृत से सुन्दर होती है। यहाँ प्राकृत मृग भगवती का चित्त आकर्षण न कर सकेगा। वन में मृग फिरा ही करते हैं। अतः अवर्णनीय रूप अति विचित्र धारण किया। मृग पीले होते हैं। अतः कनकदेह बनाया। दाँत श्वेत, खुर सींग कृष्ण, जिह्वा लाल। अतः हीरा नीलमणि माणिक्य के बनाये। जड़ में चेत्तन की भाँति लचकने की शक्ति है। अतः अति विचित्र कहा : माया वराह भी अति विचित्र था : नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराह।

## ३९. माया सीताहरण प्रसंग

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा ॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। येहि मृग कर अति सुंदर छाला ॥२॥

अर्थ : सीताजी ने उस परम सुन्दर हिरन को देखा। जिसके अंग अंग की छटा अत्यन्त मनोहर थी। वे बोली हे देव! हे कृपालु रघुवीर! सुनिये। इस मृग की छाल वहुत सुन्दर है।

व्याख्या : सूर्पणखा : रुचिर रूप धरि प्रभु पहँ आई। पर काम न चला दोनों भाइयों ने प्रत्याख्यान किया। अतः परम रुचिर मृग बना। सीताजी परम रुचिर मृग देखकर ही मोहित हो सकती हैं। सीताजी ने मृग रूप देखा। पर दोनों भाइयों ने मारीच रूप देखा। दोनों भाई कथा कहने सुनने में लगे हैं। अतः पहिले न देखा। यथा : बैठे हैं राम लखन अरु सीता। पंचवटी वर पर्णकुटी तर कहैं कछु कथा पुनीता। एक एक अंग सुष्ठु मनोहर है। जहाँ जाय मन तहँइ लुभाई।

दिवि क्रीड़ाविजिगीषा के अर्थ में आता है। उसी का देव शब्द बनता है। सरकार कौतुकी हैं। शिकारी हैं। अतः देव शब्द सम्बोधन दिया। अथवा देव हैं राजा हैं। राजा रत्नभुक् होते हैं। यह मृग रत्न है। उनके पास रहने योग्य है। रघुवीर के लिए इसके वध में क्या रक्खा है। मुझ पर कृपा कीजिये। इसे जीता पकड़ लीजिये तो : पायि पालिवे योग मंजु मृग मारेउ मंजुल छाला। गी०.

सत्यसंध प्रभु बध करि येही। आनहु चर्म कहति बैदेही ॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काज सँवारन ॥३॥

अर्थ : जानकीजी ने कहा : हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो ! इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिये। तब श्री रघुनाथजी मारीच के कपट मृग बनने का सब कारण जानते हुए देवताओं का कार्य बनाने के लिए हर्षित होकर उठे।

व्याख्या : आप सत्यसन्ध हैं। आप का निशाना खाली नहीं जा सकता है और समर्थ हैं। मृग पर अत्यन्त मोहित हैं। अतः उपर्युक्त विशेषण देती हैं। यदि जीता न पकड़ा जाय तो इसे मारकर चमड़ा ले आइये। शोभा तो इसके चर्म में ही है। यदि आप प्रतिज्ञा कर लें तो अवश्य लावेंगे।

सब कारण जानते हैं। रावण का भेजा मारीच आगया। इसीलिए इसका वध नहीं किया था। समुद्र पार फेंक दिया था। इसी के द्वारा सब कार्य देवताओं का सुधरेगा। उठे हरषि : जिस कार्य के लिए चौदह वर्ष वनवास स्वीकार किया वह उपस्थित हो गया। प्रतिज्ञा पूरी होने का लक्षण देखकर उठे हरषि। क्योंकि सुर काज सँवारना है।

मृग बिलोकि कटि प।रकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा ॥
प्रभु लछिमनहिं कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ॥४॥

अर्थ : हिरन को देखकर श्रीरामजी ने कमर में फेंटा बाँधा और राथ में धनुष लेकर उस पर सुन्दर बाण चढ़ाया। फिर प्रभु ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा। हे भाई ! वन में बहुत से राक्षस फिरते हैं।

व्याख्या : पकड़ने के लिए दौड़ना है। अतः कमर कसा। परम रुचिर मृग है। इसलिए शर भी रुचिर है। छिपाकर सन्धान करते हैं। इसलिए करतल कहा। दृष्टि बराबर मृग पर ही रही। कहीं निकल न जाय। तुमसे खल मृग खोजत फिरहीं। पूरी तैयारी करके सीताजी की रखवारी का बन्दोबस्त करते हैं। स्त्रियों की सदा

रक्षा करनी चाहिए। उन्होंने सरकार से कहा। अतः स्वयं उठे। लक्ष्मणजी को न कहा। सीय लखन जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुबीर कर्हहि सोई करहीं।

समझाया कि हम लोग निशाचरों से बद्धवैर हो चुके। मृग ऐसा होता नहीं। मेरे जाने पर सीताजी पर चोट न हो। हम दोनों भाइयों से डरते हैं। सामना न करेंगे। चोट सीता पर है और राक्षसों को भी दूर दूर से आते जाते देखता हूँ। सम्भव है कि एक आवे अथवा बहुत से आ जावें। नासिका छेदन का उत्तर स्त्री हरण है। मारीच आगया कोई माया हुआ चाहती है।

सीता केरि करहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी ॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी ॥५॥

अर्थ : तुम बुद्धि और विवेक के द्वारा बल और समय का विचार करके सीताजी की रखवारी करना। प्रभु को देखकर मृग भाग चला। श्रीरामचन्द्रजी भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े।

व्याख्या : रामजी ने कहा कि सीताजी की रक्षा तुम्हें सुपुर्द करता हूँ। स्त्री रक्षा में चार बात की आवश्यकता होती है। केवल १. बल से ही रक्षा नहीं होती? शत्रु छल से भी काम लेते हैं। अतः उसके समझने के लिए २. बुद्धि चाहिए। स्त्रियाँ अविवेकी होती हैं। अतः ३. विवेक से काम लेना चाहिए। जैसा ४. समय देखे वैसा काम करे। समय के प्रतिकूल कार्य निष्फल होता है।

बँध्यो वैर निशिचरन्ह ते भयो विपुल संहार।
छलही उनको परम बल जानत सब संसार ॥१॥
साहस सनमुख समर को अब ये करिहहिं नाँहि।
सोचहि सीता हरन ही को उपाय मन माँहि ॥२॥
दूर दूर ते देखियत निशिचर परैं लखाय।
पै हम दोऊ बंधु ढिग सकैं न ये नियराय ॥३॥
होय न प्राकृत हिरन यह मायामय मारीच।
पै कर्तव्य प्रधान मम जातै छीजै नीच ॥४॥
पाइ कुअवसर रचि सकत ये प्रपंच बहु भाँति।
ताते तात सजग रहेउ मायावी यह जाति ॥५॥

मारीच के मन में तो यह बात है : निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं। फिर भी साथ में आने की लाज है। अतः वहाँ से हटाने के लिए भाग चला। रामजी धनुष चढ़ाये हुए ही दौड़े। पीछा किया। भक्त का मनोरथ पूर्ण हो रहा है : मम पाछे धर धावत धरे सरासन बान। फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं, धन्य न मो सम आन।

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछे सोइ धावा ॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटै कबहुँ छपाई ॥६॥

अर्थ : वेद जिनके विषय में नेति नेति कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हें ध्यान में नहीं पाते। वे ही श्रीरामजी माया से बने हुए मृग के पीछे दौड़ रहे हैं। वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है। कभी प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है।

व्याख्या : सरकार का अद्भुत माधुर्य है। वेद वाणी से न पा सके। नेति नेति जेहि बेद निरूपा। योगी शिव ध्यान में न पा सके : जो हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नहीं अघाय। ये लोग जिसके पाने के लिए पीछे दौड़ते हैं। आज वह मायामृग के पीछे दौड़ा। यह सरकार की नरलीला है। उमा करत रघुपति नर लीला।

मारीच मृग दूर ले जाने का प्रयत्न कर रहा है। यदि बहुत दूर चला जाय तो शिकारी हताश होकर फिर जाय। इसलिए निकट भी आ जाता है। निकट ही बना रहे तो पकड़ा जाय। इसलिए दूर भागता है। अलक्षित रहे तो फिर शिकारी निराश हो लौट जाय। इसलिए प्रकट हो जाता है और लक्षित रहे तो मारा जाय। इसलिए छिप भी जाता है।

प्रगटत दुरत करत छल भूरी। येहि बिधि प्रभुहि गयेउ लै दूरी ॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा ॥७॥

अर्थ : इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरा छल कपट करता हुआ वह प्रभु को दूर ले गया। तब श्रीरामचन्द्रजी ने ताककर कठोर बाण मारा। जिसके लगते ही वह घोर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

व्याख्या : अपनी जान भी बँचाता है और शिकारी का साहस भी नहीं छूटने देता। अतः प्रगटत दुरत चला जा रहा है। छल भी खूब करता है। यथा : तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना। यह दूर ले जाने की विधि है। पञ्चवटी से बस्तर : रियासत ले गया। वहीं मृगवध हुआ है। अब वहाँ के वन में मृग होते ही नहीं।

इससे मालूम होता है कि रामजी ने हल्के बाण मारे। जिसमें घायल हो जाय। मरे नहीं और मैं पकड़ लूँ। इसी से रुचिर शर साधा था। इस भाँति सरकार दूर चले आये। रावण को पूरा मौका देते हैं। जब देख लिया कि काफी दूर आ गये तब ताककर जिसमें निशाना न चूके और कठिन शर जो प्राण ले ले मारा। राक्षस माया करता है। सरकार उसकी माया को मानते जाते हैं और वह माया उलटी पड़ती जाती है। जानकी हरण दोनों को इष्ट है। घोर पुकार : जिसमें शब्द पञ्चवटी तक पहुँचे।

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा ॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरिसि राम समेत सनेहा ॥८॥

अर्थ : उसने पहिले लक्ष्मणजी का नाम लेकर पीछे मन में श्रीरामजी का

स्मरण किया। प्राण त्याग करते समय उसने अपना राक्षसी शरीर प्रकट किया और प्रेम सहित श्रीरामजी का स्मरण किया।

व्याख्या : होहु कपट मृग तुम छलकारी : कहा है सो छलकारी का साफल्य कहते हैं। लक्ष्मण को पुकारता है। पीछे से राम का स्मरण मुक्ति के लिए करता है। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होइ स्तुति गावा : उसने रावण का काम कर दिया।

प्राण त्याग के समय कपट छोड़ा। देह जो मृग रूप में छिपा था प्रकट कर दिया। सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं। स्नेह के साथ स्मरण ही सादर सुमिरन है।

अंतर प्रेमु तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना ॥९॥

अर्थ : सर्वज्ञ श्रीरामजी ने उसके हृदय के प्रेम को पहचानकर उसे वह गति दी जो मुनियों को भी दुर्लभ है।

व्याख्या : जगत् में ऐसे प्रेम की पहिचान नहीं है। विरोधी क्रियाओं के बीच में अन्तः प्रेम सरकार ने पहिचान लिया। सुजान है। उसे मुनिदुर्लभ गति दी। रीझत राम सनेह निसोते। निर्वाण मुनिदुर्लभ है। पर प्रभु ज्ञानशिरोमणि हैं। ऐसी दुर्लभ गति भी उस राक्षस को दे दी। तत्र ताकेसि रघुनायक सरना : का साफल्य। सरकार ने भी ताककर बाण मारा कि मोक्ष हो जाय।

दो. बिपुल सुमन सुर बर्षहिं, गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पर दीन्ह असुर कहँ, दीनबन्धु रघुनाथ ॥२७.२१॥

अर्थ : देवता बहुत से फूल बरसा रहे हैं और प्रभु के गुणों की गाथाएँ गा रहे हैं कि श्री रघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुर को अपना परम पद दे दिया।

व्याख्या : खर दूषण वध में : हर्षित बर्षहिं सुमनं सुर बाजहिं गगन निसान। यहाँ निसान नहीं बजाते। रावण सुन लेगा। हर्षित भी नहीं हैं। सीता हरण हो रहा है पर उनके कल्याण की सिद्धि प्रारम्भ हो गयी। अतः विपुल सुमन बरसा रहे हैं कि ऐसे दीनबन्धु हैं कि इसे अपना पद दिया। यह पक्का असुर था। प्रभु को पहिचानने पर भी इसने पराकाष्ठा की खलता की। मिलत एक दारुण दुख देहीं। असुर भी दीन हो जाय तो उसे निज पद देते हैं। सुमिरेसि राम समेत सनेहा। उसकी दीनता है।

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप पर कटि तूनीरा ॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता ॥१॥

अर्थ : दुष्ट मारीच को मारकर श्री रघुवीर तुरन्त लौट पड़े। हाथ में धनुष

और कमर में तरकस शोभा दे रहा है। इधर जब सीता ने दुःख भरी वाणी सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मणजी से कहने लगीं।

व्याख्या : यद्यपि मुनि दुर्लभ गति मिली पर था वह खल : परहित घृत जिनके मन माखी। जिमि कुठार चंदन आचरनी। प्रभु ने उसका प्राण छोड़ दिया था। सो उनके साथ इसने ऐसा घात किया। तुरत फिरे। उसके पुकारने पर चिन्ता हुई कि यह शब्द सीता सुनी होंगी तो उसका क्या हाल हुआ होगा। इसने छल किया है। लक्ष्मण को सीताजी के पास से हटाने के लिए सीता हरण का उद्योग राक्षसों की ओर से हो रहा है। रघुवीर हैं। एक राक्षस को मारा। औरों का सामना करने के लिए त्वरा है। सीताजी ने जिन शब्दों से सम्बोधन किया है उनका साफल्य कवि ने दिखलाया। देव शब्द का साफल्य लिख चुके हैं। रघुवीर शब्द का साफल्य यहाँ हुआ। निज पद दीन्ह असुर कहँ : से दयाल शब्द सफल हुआ। तब तक राम कठिन सर मारा : से सत्यसन्ध शब्द का सफल हुआ। बिपुल सुमन सुर बर्षहिं गावहिं प्रभु गुण गाथा : से प्रभु शब्द सफल हुआ। खल वध से ही चाप तूणीर की शोभा है। यथा : तुम से खल मृग खोजत फिरहीं। काम न होने से हाथ में तीर नहीं है।

सुनी तो लछिमन ने भी पर बुद्धि से काम लिया। समझ गये कि मारीच की चाल है। पर सीताजी सुनकर परम सभीत हो गयीं। तन पसेव कदली जिमि कांपी। पति भाव प्रधान है। ऐश्वर्य पर ध्यान नहीं है। जानती हैं कि लछिमन ने भी सुना। सुनकर उन्हें कोई तरद्दुत नहीं हुआ। फिर भी कहती हैं : सुनहु तात कोउ तुमहिं पुकारत प्राणनाथ की नाइँ। कह्यो लखन हत्यो हिरन कोपि सिय हठि पठयो बरियाइँ। गीतावली.

जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहु संकट परै कि सोई॥२॥

अर्थ : तुम शीघ्र जाओ। तुम्हारे बड़े भाई सङ्कट में हैं। लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा : हे माता! सुनो : जिनके भौं के इशारे मात्र से सारी सृष्टि और प्रलय हुआ करता है वे रामजी क्या कभी स्वप्न में भी सङ्कट में पड़ सकते हैं?

व्याख्या : सङ्कट है देर करने से प्राणान्त होगा। भ्राता कहने से भाव यह : होंहि कुठायँ सुबंधु सहायें। लक्ष्मणजी ने हँस दिया। इतने दिन साथ रही। महिमा न जान पायीं। जब से सुमित्राजी ने कहा है : तात तुम्हार मातु बैदेही। तब से माँ कहते हैं : यह लक्ष्मणजी का विवेक है।

सृष्टि के भीतर ही सब जीव हैं। उन्हीं से सङ्कट की सम्भावना है। सो सृष्टि और लय उनके भृकुटि विलास से होता है। इतनी बड़ी उनकी महिमा है। उन्हें सङ्कट की सम्भावना स्वप्न में भी नहीं। क्योंकि जाग्रत् के संस्कार से ही स्वप्न होता है। सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतन हारा। अतः लक्ष्मणजी कहते हैं कि यह राक्षस के मरणकाल का चिग्घाड़ है।

मरम बचन जब सीता बोला । हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ।।
बन दिसि देव सौंपि सब काहू । चले जहाँ रावन ससि राहू ।।३।।

अर्थ : इस पर सीताजी जब मर्म वचन कहने लगीं तब भगवान् की प्रेरणा से लक्ष्मणजी का मन भी चञ्चल हो उठा । वे श्री सीताजी को वन और दिशाओं आदि के देवताओं को सौंपकर वहाँ चले जहाँ रावणरूपी चन्द्रमा के लिए राहुरूपी श्रीरामचन्द्रजी थे ।

व्याख्या : हँसने से खराब अर्थ लगा । तब मर्माघात करनेवाला अनुपयुक्त वचन कहा । इस बात को कवि ने अनुपयुक्त पद प्रयोग से दिखलाया : सीता बोला : अनुपयुक्त प्रयोग सा मालूम पड़ता है । पर अशुद्ध नहीं है । बोल धातु रूप है । उसे भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त किया । ऐसा ही करते हैं । यथा : कह सीता सुनु जती गोसाइँ । कह सीता धरि धीरज गाढ़ा । यहाँ केवल धातु रूप भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । अकार को दीर्घ तुकबन्दी के लिए किया । यथा : मन अस रहन कहिहि मोहि रामा । अतः बोला का प्रयोग अशुद्ध नहीं है ।

लक्ष्मण का मन मर्म वचन सुनने पर भी न डोलता । पर हरि की प्रेरणा के आगे कुछ नहीं चलता : हरि इच्छा भावी बलवाना ।

यह लक्ष्मण का समय विचार है कि वनदेव, वनदेवी, दिशिदेव तथा जितने जीवजन्तु हैं सबको सौंपा । अर्थात् भगवान् विश्व रूप को सौंपा । राहु से चन्द्र प्रभाहीन हो जाते हैं । इसी भाँति रामजी से रावण भी प्रभाहीन हो गया है । यथा : राक्षसान् मर्त्यरूपेण राहुर्मनसिजं यथा । प्रभाहीनांस्तथा कृत्वा राज्यार्हाणां महीभृताम् ।

सून बीच दसकंधर देखा । आवा निकट जती कें बेषा ।।
जाकें डर सुर असुर डेराहीं । निसि न नींद दिन अन्न न खाँहीं ।।४।।

अर्थ : रावण शून्य के बीच देखकर संन्यासी के वेष में श्री सीताजी के समीप आया । जिसके डर से देवता और दैत्य तक इतना डरते हैं कि रात को नींद नहीं आती और दिन में भर पेट अन्न नहीं खाते ।

व्याख्या : वहाँ कोई नहीं था और चारों ओर रेखा खिची हुई थी । यथा : रामानुज लघु रेख खँचाई । सो नहिं असि नाघेहु मनुसाई । तब यती के वेष से निकट आया जिसमें विश्वास हो । अर्घ पाद्य भिक्षा देने के लिए शून्य से बाहर आजायँ । त्रिदण्डी का रूप धारण किया जिसमें शिखा यज्ञोपवीत रह सके । यती से स्त्री हरण की आशङ्का ही नहीं होती ।

जिसके डर से देवताओं को रात के समय नहीं लगती । यथा : सो किमि सोअ सोच अधिकाई । सोच से क्षुधा भी मारी जाती है । गले अन्न नहीं उतरता । देवताओं का अन्न अमृत है । सो श्रौत कर्म से बनता है । श्रौतकर्म दिन को ही होता है । अतः दिन को अन्न न खाना कहा ।

सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं ॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥५॥

अर्थ : वही दस सिरवाला रावण कुत्ते की तरह इधर उधर ताकता हुआ भड़िहाइ : चोरी के लिए चला। हे गरुड़जी,! इस प्रकार कुमार्ग पर पैर रखते ही शरीर में तेज तथा बुद्धि एवं बल का लेश भी नहीं रह जाता।

व्याख्या : रावण ऐसा पराक्रमी था और परमेश्वर की देन में भी उसे नव सिर अधिक मिले थे। सो यती का वेष धारण करके चला। यती को स्त्री की इच्छा होना ही कुत्तापन है। ऐसे को वान्ताशी : कुत्ता कहते हैं। कहीं मालिक मकान देख न ले। लक्ष्मण या राम आ न जायँ। इस भय से रावण इधर उधर देखते जैसे भड़िहाई के लिए कुत्ते चलते हैं वैसे चले। खुले घर में कुछ खाने की चीज पा जाने की लालच से दिहात में कुत्ते भड़िहाई के लिए चलते हैं। उन्हें डर लगा रहता है कि कहीं घर का मालिक न आजाय। नहीं तो बिना मारे नहीं छोड़ेगा।

स्वान कहकर तेज नाश कहा। इत उत चितइ चला : से बल का नाश कहा। भड़िहाई : से बुद्धि का नाश कहा।

नाना बिधि कहि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई ॥
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ॥६॥

अर्थ : रावण ने अनेकों प्रकार की सुहावनी कथाएँ रचकर सुनायी सीताजी को राजनीति भय और प्रेम दिखलाया। सीताजी ने कहा : हे यति गोसाईं ! तुमने तो दुष्ट की तरह वचन कहे।

व्याख्या : संन्यासी को उपदेश का अधिकार : इन्द्र और अहिल्या की कथा कहा। राजा का रत्नभुक् होना कहा। भगवती को स्त्री रत्न कहा। राजा के अपमान करनेवाले को घोर दण्ड होता है। तुम महल में रहने योग्य हो। मैं बहुत दिन से प्रीति करता हूँ।

सीताजी की ओर से सभ्यता की पराकाष्ठा है। यती को साक्षात् दुष्ट नहीं कहतीं। दुष्ट की नाईं कहती हैं। वेष के अनुकूल वचन नहीं हैं। मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।

तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नामु सुनावा ॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गएउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ॥७॥

अर्थ : जब रावण ने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी भयभीत हो गयीं। उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा : अरे दुष्ट ! खड़ा तो रह ! प्रभु आगये।

व्याख्या : मैं यती नहीं हूँ : इस बात के कहने के बदले अपना स्वरूप दिखलाया। अतः उसके नाम से भय होता था। यथा : कीधौं स्रवण सुनेसि नहिं

मोही। नाम सुनकर सीताजी डरीं कि इससे तो वैर बँधा हुआ है। इसके बहिन की नाक काटी गयी है। यह वैर चुकाने आया है। अतः सभीत हुईं।

ऐसी सभीत हुईं कि बहुत बड़ा धीरज धारण करके बोलने में समर्थ हुईं। सीताजी ने पहिला प्रयत्न उसके भगाने का किया कि प्रभु का आना सुनकर भाग जायगा। अपना स्वरूप धारण करने पर खल कहती हैं। जानती हैं कि दोनों सरकारों के न रहने पर इसे आने का साहस हुआ है।

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा ॥
सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना ॥८॥

अर्थ : जैसे सिंह की स्त्री को क्षुद्र खरगोश चाहे वैसे ही अरे राक्षसराज! तू काल के वश हुआ है। यह वचन सुनकर रावण लज्जित हो गया। पर मन में उसने सीताजी के चरणों की वन्दना करके सुख माना।

व्याख्या : को प्रभु संग मोहि चितवन हारा। सिंह बधुहि जिमि ससक सियारा। मैं स्वयं तेरा संहार करने में समर्थ हूँ। शश को सिंह वधू की चाह होना ही उसके कालवश होने का चिह्न है। नहीं तो सिंहवधू की कामना कैसे करेगा।

उसने अपना स्वरूप दिखाया। नाम सुनाया : वश में लाने के लिए। यदि जानता कि इस भाँति फटकारा जायगा तो नाम न कहता। नाम सुनकर भी उसे शश कह रही हैं। अपने को सिंहवधू कहती हैं। इस तेजस्विता पर लज्जित हो गया।

भगवती का उपासक है : एहि के हृदय बस जानकी, जानकी उर मम वास है। भगवती के ध्यान से ही अजेय है। काटत सिर होइहिं बिकल छूट जाइहि तव ध्यान। तब रावणहिं हृदय महँ मरिहहिं राम सुजान। जगदम्बा के उचित क्रोध पर मन में सुख हुआ।

दो. क्रोधवंत तब रावन, लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर, भयँ रथ हाँकि न जाइ ॥२८.२२॥

अर्थ : फिर क्रोध में आकर रावण ने सीताजी को रथ में बिठा लिया और वह बड़ी उतावली के साथ आकाश मार्ग से चला। किन्तु डर के मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था।

व्याख्या : माया से रथ उपस्थित हो गया। उस पर केश पकड़कर सीताजी को बिठा लिया और गगन पथ से चला : जहाँ मनुष्य की गति नहीं। भय से हाथ पैर भारी हो गये : कि कहीं राम लक्ष्मण आ न जायँ। रथ हाँकते नहीं बनता। पर रावण का रूप देखते ही वनदेवी वनदेव तथा भूत मात्र भयभीत हो गये। अतः वे भी रक्षा नहीं कर सके।

हा जगदेक बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया ॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक ॥१॥

अर्थ : हा जगत् के अद्वितीय वीर श्रीरघुनाथजी। आपने किस अपराध से मुझ पर दया भुला दी। हे दुःखों के हरनेवाले। हे शरणागत को सुख देनेवाले ! हा रघुकुलरूपी कमल के सूर्य !

व्याख्या : जोर से चिल्लाती हैं कि सरकार तक शब्द पहुँचे। जगदेक वीर यथा : तुला पिनाक साहु नृप परिजन भट बटोरि सबके वल जोखे। परसुराम से वीर सिरोमनि क्षनमँह भये खेत के से धोखे। रघुराया : सिव अज पूज्य चरन रघुराई। रघुकुल की प्रतिष्ठा की रक्षा इन्हीं से है। विरह का प्रलाप है। प्रभु को पता भो नहीं। फिर भी मानों जानकर दया विसरा दिया। ऐसा उपालम्भ करती हैं। भर्ता को आज्ञा दी है यह अपराध अवश्य है : सत्यसन्ध प्रभु बध कर एही। आनहु चर्म कहत्ति बैदेही। पर यह ऐसा अपराध नहीं जिससे दया विस्मरण हो जाय। आप को तो दया विस्मरण होती ही नहीं।

आरति हरण से अपना आर्त्त होना कहा : जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहि कुसंकट होंहि सुखारी। शरण सुखदायक से अपना शरण होना कहा। स्त्री को पति ही शरण है। आप शरण सुखदायक हैं : मैं दुःखो हूँ। आप दिननायक हैं : मैं रघुकुल की ही कमलिनी हूँ।

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायेउँ कीन्हेउँ रोसा ॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ॥२॥

अर्थ : हा लक्ष्मण तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने क्रोध किया उसका फल पाया। हा ! प्रभु की कृपा तो बहुत हैं। परन्तु स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं। एवं श्रीजानकीजी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं।

व्याख्या : अब देवर को स्मरण करती हैं। लक्ष्मण के हटाने का मैं ही कारण हुई। मैं लक्ष्मण का दोष समझती थी। सो उनका दोष नहीं था। दोष हमारा था जो निर्दोष पर क्रोध किया। उसका फल पाया। प्रभु का वियोग हुआ। लक्ष्मण ऐसे देवर क्या रोष योग्य हैं।

कवि संसार की गति दिखलाते हैं कि वैदेही विविध विलाप करती हैं और कहती हैं कि प्रभु समर्थ हैं। कृपा भी बहुत है। स्नेह भी हैं। इसके हाथ से छूटने का सभी योग है। पर दूर हैं। मेरे शब्द उन तक नहीं पहुँचते।

बिपति मोर को प्रभुहिं सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा ॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी ॥३॥

अर्थ : प्रभु को मेरो यह विपत्ति कौन सुनावे। पुरोडाश को गदहा खाना चाहता है। सीताजी का भारी विलाप सुनकर जड़ चेतन सभी जीव दुःखी हो गये।

व्याख्या : कोई ऐसा नहीं जो मेरी विपत्ति प्रभु को सुनावे। किसी ने हरण करते नहीं देखा। न ले जाते कोई देख रहा है। फिर हमारी विपत्ति उन्हें कौन सुनावेगा ? जल में डूब जाने या हिंसक जन्तु के खा जाने का भ्रम हो सकता है :

पुरोडाश चावल की टिकिया यज्ञाग्नि में पकायी जाती है। उसे यज्ञ के बाहर के लोग नहीं प्राप्त कर सकते। दूर्वाकिन्दनिकन्दन का उससे कौन सम्बन्ध।

विलाप में इतनी करुणा थी कि स्थावर जङ्गम जीव दुःखी हो गये। द्रवहि बचन सुनि कुलिस कठोरा। भाव यह कि वनदेव वनदेवी लोकपाल सब दुःखी हैं। पर किसी को सामर्थ्य नहीं कि हिल सके।

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ॥
अधम निसाचर लीन्हे जाई। जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई ॥४॥

अर्थ : गीधराज जटायु ने सीताजी की दुःख भरी वाणी सुनकर पहिचान लिया कि ये रघुकुल तिलक श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी हैं। नीच राक्षस इनको लिये जा रहा है जैसे कपिला गाय म्लेच्छ के पाले पड़ गयी हो।

व्याख्या : पर गीधराज ऐसे नहीं हैं। अतः इनका सुनना पृथक् लिखते हैं। आर्त्त के गीधराज सहायक हैं। तिस पर : हाँ जगदेक वीर रघुराया से समझ लिया कि ये रघुकुल तिलक की स्त्री हैं और मेरी रघुकुल से मैत्री है।

अधम निशाचर चोरी से लिये जा रहा है। कपिला गाय बड़ी सीधी होती है। म्लेच्छ गोभक्षक होते हैं। उनसे गाय का छुड़ाना सबका परम धर्म है। ऐसे प्रयत्न में प्राण की आहुति देना ही प्राप्त है। खर दूषण भी निशाचर थे। पर अधम नहीं थे। लड़कर सीताजी को लिया चाहते थे। यह अधम है।

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहौं जातुधान कर नासा ॥
धावा क्रोधवंत खग कैसे। छूटै पवि पर्वत कहूँ जैसे ॥५॥

अर्थ : हे सीते पुत्रि ! भय मत कर। मैं इस राक्षस का नाश करूँगा। वह पक्षी क्रोध में भरकर कैसे दौड़ा जैसे पर्वत की ओर वज्र छूटता हो।

व्याख्या : महाराज दशरथ का मित्र होने से वृद्ध होने से पुत्रि कहता है। अभय देता है। मैं मौजूद हूँ। मैं यातुधान का नाश करूँगा। सीताजी को ढाढ़स बँधाया और रावण को सचेत किया।

नीचे से ऊपर जा रहा है। वेग ऐसा है कि मालूम होता है कि ऊपर से नीचे टूट रहा है। वज्र से ही पर्वत के पक्ष कटे हैं। पर्वत पर प्रहार करनेवाला वज्र ही है। सो गीधराज वज्र की भाँति रावणरूपी पर्वत आ रहे हैं।

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होई। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥
आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दसकंधर कर अनुमाना ॥६॥

अर्थ : रे रे दुष्ट ! खड़ा क्यों नहीं होता ? निडर होकर चल दिया। मुझे तूने नहीं जाना। उसको यमराज के समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मन में अनुमान करने लगा।

व्याख्या : रावण निकला चला ही जा रहा है। अतः खड़ा होने के लिए ललकारा। मेरी पहिले ही ललकार : करिहौं जातुधान कर नासा। पर ही खड़ा हो जाना चाहता था। अतः कारण पूछते हैं। तू राम लक्ष्मण के दूर होने से निर्भय जा रहा है। यह तुझे नहीं मालूम कि मैं पहरे पर हूँ। अपना पुरुषार्थ घोषित किया।

रावण ने मुड़कर देखा कि काल की भाँति क्रुद्ध चला आ रहा है। रावण लौट पड़ा कि इसके वेग के सामने रथ का वेग कुछ नहीं है। अनुमान करता है कि यह है कौन ? बड़ा भारी है। इतना बड़ा कौन हो सकता है ?

की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई ॥
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ॥७॥

अर्थ : यह या तो मैनाक पर्वत है या पक्षियों का स्वामी गरुड़ है। पर वह तो अपने स्वामी विष्णु सहित मेरे बल को जानता है। रावण ने उसे पहिचान लिया कि यह तो बूढ़ा जटाय है। यह मेरे हाथरूपी तीर्थ में शरीर छोड़ेगा।

व्याख्या : पर्वत है पर उड़ रहा है तो यह मैनाक है और कोई पर्वत तो उड़ नहीं सकते। निकट आने पर चोंच आदि दिखायी पड़े तब कहता है कि गरुड़ है पर अनुमान से तो यही सिद्ध है कि गरुड़ नहीं हो सकता। क्योंकि विष्णु और गरुड़ दोनों मेरे बल को जानते हैं : साहिब महेस सदा संकत रमेस मोहि।

जब और निकट आया तो उसके मुँह से निकल पड़ा कि यह तो बूढ़ा जटायु है। इनकी जवानी सत्ययुग में थी। यथा : हम दोउ बंधु प्रथम तरुनाई। त्रेता ब्रह्म मनुज तन धरिहि। बूढ़ा कहने का भाव कि अब इसमें बल नहीं है। वृद्धावस्था से दुःखी होकर शरीर छोड़ने के लिए मेरे पास चला आ रहा है। मेरे कररूपी तीर्थ में शरीर विसर्जन करेगा।

सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावण मोर सिखावा ॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहि तो अस होइहि बहुबाहू ॥८॥

अर्थ : यह सुनकर गीध क्रोध में भरकर बड़े वेग से दौड़ा और बोला : रावण ! मेरा सिखावन सुन। जानकीजी को छोड़कर कुशल पूर्वक अपने घर चला जा। नहीं तो हे बहुत भुजाओंवाले ! ऐसा होगा कि :

व्याख्या : क्रुद्ध तो पहिले ही थे। पर इसका उत्तर ऐसा था कि गीधराज क्रोधातुर हो गये। पर वृद्ध कहा था इससे शिक्षा देने के लिए ठहर गये और कहा कि मेरी सीख सुन। भाव यह कि तू किसी की सीख नहीं सुनता। यदि पुलस्त्य और विश्रवा की सीख सुनता तो ऐसे कर्म में हाथ ही न लगाता। मैं परलोक की शिक्षा नहीं देता हूँ। इस लोक की ही शिक्षा देता हूँ : दोनों दोनों को पहिचान गये।

पहिले मैं ही तुम्हें कुशल से घर न जाने दूँगा। पर तुझे बहुत बाँह है। कदाचित् मेरे हाथ से बँचा भी तो :

राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा ॥
उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥९॥

अर्थ : श्रीरामजी के क्रोधरूपो अत्यन्त भयानक अग्नि में तेरा सारा वंश फनगा होकर भस्म हो जायगा। योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता। तब गीध क्रोध करके दौड़ा।

व्याख्या : जो घर कुशल सहित पहुँचे तो कुल सहित नाश होगा। रामजी का रोष घोर पावक है। पावक तुम्हारे कुल को भस्म कर देगा : यद्यपि लघुता राम कहँ तोहि बधे बड़ दोष। तदपि कठिन दसकंठ सुनु क्षत्रि जाति कर रोष। राम रोष अति घोर पावक है। किसी को भी न छोड़ेगा। जानकी के छोड़ देने से बच जाओगे।

उत्तर कोई है नहीं। प्रत्युत्तर में राम लक्ष्मण के आजाने का भय भी है। रावण योद्धा है। लड़ने को तैयार हो गया। गोधराज ने समझ लिया कि यह न मानेगा तब क्रोध से दौड़े।

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥
चोंचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही ॥१०॥

अर्थ : उसने रावण को बाल : शिखा पकड़कर उसे रथ के नीचे गिरा दिया। रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। गीध सीताजी को अपने घोंसले में बिठाकर फिर लौटा और चोचों से मार मारकर रावण के शरीर को विदीर्ण कर डाला। इससे उसे एक घड़ी के लिए मूर्च्छा हो गयी।

व्याख्या : पहिला काम विरथ करना है। अतः केश पकड़कर पृथ्वी पर नीचे फेंक दिया। चोंच से सिवाय केश पकड़कर फेंकने के और क्या उपाय था ! जब से रावण अपने को सँभाले तब तक अपने घोसले में सीताजी को रखकर जहाँ रावण था वहाँ गीधराज आये। युद्ध के बोच में सीताजी के रहने से युद्ध न हो सकेगा : रावण के केश पकड़नेवाले गीधराज मन्दोदरी के केश पकड़नेवाले हनुमानजी।

चोंच के प्रहार भयानक हैं। किसी अस्त्र से नहीं रुकते। गीधराज पर चोट करता है तो पङ्ख पर रोकते हैं। गीधराज ने रावण के वज्र जैसे शरीर को विदार डाला। दूसरा वीर मर जाता। पर वह प्रसाद से न मरा। एक दण्ड मूच्छित हो गया। गीधराज खड़े हैं। मूच्छित वीर पर चोट नहीं करते हैं।

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि रामु करि अद्भुत करनी ॥११॥

अर्थ : तब खिसियाये हुए रावण ने क्रोधयुक्त होकर अत्यन्त भयानक तलवार निकाली और उससे जटायु के पंख काट डाले। जटायु अद्भुत करणी करके और श्रीरामजी को स्मरण करके पृथ्वी पर गिर पड़े।

व्याख्या : बल न चलने पर खिसिआया। जिसको वृद्ध समझकर अनादर किया उसी के हाथ से मूर्च्छा हुई। अतः खिसियाया। कराल अस्त्रों से काम न चला तब परम कराल कृपाण निकाला। यह शङ्करदत्त चन्द्रहास कृपाण है। इसके चोट से कोई बचता नहीं। पंख से ही शस्त्र रोकते हैं सो पंख ही काटा।

आकाश में युद्ध होता था। पंख कटने से जटायुजी पृथ्वी पर गिरे। यथा : पंख बिनु खग अति दीना। गिरते समय राम का स्मरण किया मृत्यु समझकर। अद्भुत करणी : ऐसी दुर्दशा रावण की कोई कर न सका था। मुये मरत मरिहैं सकल घरी पहर के बीच। लही न काहू आजुलौं गीधराज की मीच।

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी॥
करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता॥१२॥

अर्थ : सीताजी को फिर रथ पर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावली के साथ चला। उसे भय कम न था। सीताजी आकाश में विलाप करती हुई जा रही हैं। मानों व्याध के वश में पड़ी हुई कोई भयभीत हिरनी हो।

व्याख्या : पहिले : क्रोधवंत तब रावण लीन्हेसि रथ बैठाई। अब : सीतहि जान चढ़ाई बहोरी। चला। पहिले : चलेउ गगन पथ आतुर। अब : चला उताइल। पहिले : भय रथ हाँकि न जाय। अब : त्रास न थोरी। अभी तो गीध मिला न जाने अब कौन मिले।

सीताजी का फिर विलाप आरम्भ हुआ। अब आकाश में विलाप हो रहा है। कपिला गौ म्लेच्छ वश होने पर विलाप मात्र करती हैं और मृगी वन्यजन्तु हैं छटपटाती हैं। पर मृगी को छुड़ाने कौन आवे : अब कोई छुड़ाने न आवेगा। जिस दृष्टि से जटायु ने देखा उस दृष्टि से दूसरा कोई देख न सका। इसलिए मृगी की उपमा दी।

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नामु दीन्ह पट डारी॥
एहि बिधि सीतहिं सो लै गएऊ। बन असोक मँहु राखत भएऊ॥१३॥

अर्थ : पर्वत पर बैठे हुए बन्दरों को देखकर सीताजी ने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह सीताजी को ले गया और उन्हें अशोक वन में जा रक्खा।

व्याख्या : गिरि ऋष्यमूक पर मन्त्रियों के सहित सुग्रीव विचार कर रहे थे। सीताजी को बड़ी चिन्ता है कि गीधराज भी मारे गये। अब फिर वही प्रश्न उठा : बिपत मोर को प्रभुहि सुनावा। अतः आभूषण बाँधकर सुग्रीव की ओर फेंका और राम राम हा राम ऐसा पुकारा। भाव यह कि मैं राम की हूँ। राम को पट देना। हा राम! अर्थात् इच्छा के प्रतिकूल यह लिये जाता है। रावण ने व्यग्रता में इस बात का ध्यान न किया।

एहि विधि अर्थात् बलपूर्वक वह सीताजी को ले गया : रावण का महा अन्याय प्रमाणित हो गया। स्त्री हरण करनेवाला आततायी है। उसके वध में विचार नहीं। अशोक वन अति सुरक्षित था। विभीषण के बिना बताये जिसका पता हनुमानजी को न चला। वहाँ ले जाकर उसने सीताजी को रक्खा।

दो. हारि परा खल बहु बिधि, भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर, राखिसि जतनु कराइ॥
जेहि बिधि कपट कुरंग सँग, धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरि नाम ॥२९.२३॥

अर्थ : सीताजी को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया तब उन्हें यत्न करके अशोक वृक्ष के नीचे रख दिया। जिस प्रकार कपट मृग के साथ श्रीरामजी दौड़ चले थे उसी छवि को हृदय में रखकर वे हरिनाम रटती रहती हैं।

व्याख्या : दान और भेद के लिए कोई स्थान नहीं था। अतः भय और प्रीति से काम लिया। खल है। खल को पर अकाज में अधिक पुरुषार्थ हो जाता है। यथा : पर अकाज भट सहसबाहु से। पर यहाँ हारना पड़ा। पहिले अशोक वन के प्रासाद में रखना चाहा। पर भगवती वहाँ न रहेंगी। वनवास मिला है। अतः अशोक वृक्ष के तले रक्खा और वहाँ भी पहरे में।

प्रेम ते पीछे तिरीछे प्रियाहिं चितै चित दै चले लै चित चोरे।
श्याम शरीर पसेउ लसै हुलसै तुलसी छबि सो मन मोरे॥
लोचन लोल चलै भृकुटी कल काम कमाननि सो तृण तोरे।
राजत राम कुरंग के संग निषंग कसे धनु से सर जोरे॥

यह विधि कपट कुरंग के संग धाय चलने की है। उसी छवि ने चित्त चुराया है। अतः उसी छवि को हृदय में रखकर नाम रटती हैं।

## ४०. रघुवीर विरह वर्णन प्रसङ्ग

रघुपति अनुजहिं आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्ह बिसेखी॥
जनकसुता परिहरिउ अकेली। आयहु तात बचन मम पेली ॥१॥

अर्थ : इधर श्रीरघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को आते देखकर बाह्य रूप में बहुत चिन्ता की और कहा : हे भाई! तुमने जानकीजी को अकेली छोड़ दिया और मेरा वचन टालकर यहाँ चले आये।

व्याख्या : अनुज को आते देखकर बाहर से विशेष चिन्ता की मुद्रा नाटक के पात्र की भाँति रामजी ने धारण की। पर हृदय से निश्चिन्त थे। व्यग्र होने के कारण अनुज ने सरकार को न देखा। चिन्तावाली बात भी बोले। बाह्य तभी लिखा जाता है जब अन्तर से भेद हो।

जनक सुता से भाव यह कि जिसके लिए इतना बड़ा समारोह हुआ था : देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रन धीरा। ऐसे स्त्री रत्न को अकेले क्यों छोड़ा ? अथवा यदि कोई अनिष्ट हुआ तो जनकजी को क्या जवाब देगें ? भोरेहु भरत न पेलिहहि मनसहुँ राम रजाइ। सो तुमने मेरी आज्ञा कैसे हटायी।

निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आस्रम नाहीं॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी॥२॥

अर्थ : राक्षसों के झुण्ड वन में फिरते रहते हैं। मेरे मन में ऐसा आता है कि सीता आश्रम में नहीं हैं। छोटे भाई लक्ष्मणजी ने श्रीरामजी के चरण कमलों को पकड़कर हाथ जोड़कर कहा : हे नाथ ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है।

व्याख्या : मैंने तुम्हें समझा दिया था : फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई। सीता केरि करेहु रखवारी। मारीच ने तुम्हारा नाम लेकर इसीलिए पुकारा कि तुम चले आओ और इसीलिए मैंने भी कहा था : बुद्धि बिबेक बल समय बिचारी। सो तुमने बड़ी गलती की। अवश्य सीता को या तो राक्षस खा गये या हरण कर ले गये।

लक्ष्मणजी ने चरण पकड़ा अपराध क्षमापन के लिए। हाथ जोड़ा प्रार्थना करने के लिए। इसमें मेरा थोड़ा भी अपराध नहीं। सब अपराध सीताजी का है ऐसा ध्वनि से लक्षित कराते हैं। मुख से अपराध नहीं कहते। न वह मर्म वचन कहते हैं जो सीताजी बोल बैठी थीं।

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आस्रम जहवाँ॥
आस्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना॥३॥

अर्थ : लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी वहाँ गये जहाँ गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था। आश्रम को जानकीजी से रहित देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल और दुःखी हो गये।

व्याख्या : भाई का उत्तर पाते ही बात समझ लिया फिर उनसे इस विषय में कुछ न कहा। लक्ष्मणजी भी साथ लौट पड़े। सीताजी होतीं तो आये लिखते। गोदावरी निकट प्रभु रहे पर्णगृह छाइ : आश्रम तो मन्दाकिनी के निकट भी था। अतः आश्रम के साथ गोदावरी शब्द दिया।

पहिले ही कहा था : मम मन सीता आस्रम नांहीं वही बात हुई। जिस इन्द्रिय से जिस वस्तु का भाव ग्रहण होता है उसी से उसके अभाव का भी ग्रहण होता है। संसारिक पुरुष जैसे दीन और विकल होते हैं वैसे विकल हुए : मुनि अति बिकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गांठो।

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती॥४॥

अर्थ : हा गुणों की खानि जानकी ! हा रूप, शील, व्रत और नियमों में पवित्र सीते ! लक्ष्मणजी ने बहुत प्रकार से समझाया। तब श्री रामजी लताओं और वृक्षों की पंक्तियों से पूछते हुए चले।

व्याख्या : जिस भाँति भगवती ने विलाप किया : हा जगदेक बीर रघुराया। उसी भाँति सरकार भी विलाप करते हैं। उन्होंने जगदेक वीर कहा। ये गुण खानि कहते हैं। उन्होंने रघुराया कहा। ये जानकी सीता कहते हैं। उन्होंने : आरति हरन सरन सुख दायक कहा। ये : रूप सील व्रत नेम पुनीता कहते हैं। अनुज दियो भरोसो तौ लौ है सोच खरोसो। सिय समाचार प्रभु जौ लों न लहे।

लक्ष्मणजी ने समझाया कि सरकार को विलाप शोभा नहीं देता। उनका पता लगाना चाहिए :

नाथ रोकि मन सोक बस होहु न परम सुजान।
कलुषित मति अति करत नहिं तुमसे ज्ञान निधान ।।
लखि बियोग दुख तजहु प्रभु प्रेमपात्र को नेह।
गीलीहू बाती जरत जब लगि भरो सनेह ।।
तात तजिय यह कृपिण मति आनि हिये उत्साह।
अर्थी जन को अर्थं बिनु होइ न सकै निवाह ।।
नहि दुर्लभ कछु तिनहि जग जिनहि सदा उत्साह।
नहिं कोउ बल उत्साह सम गोपद होय अथाह ।।
होत दुखी नहिं कर्म में उत्साही जन कोय।
निश्चय सीता को मिलन उत्साहहि से होय ।।
तुम कहँ कैसी दीनता तुम त्रिभुवन आधार।
भूलि रहे निज रूप को कीजिय तनिक सँभार ।।
कहँ सीता कहि नाथ जब पूछेउ अति बिलखाय।
सहसा उठि मृगगन दयो दच्छिन दिसा दिखाय ।।
याते दच्छिन दिसि चलिय सीता हेरन हेतु।
चिन्ता कार्य बिनासिनी त्यागहु रघुकुल केतु ।।

सो उनकी बात मान गये तो लता तरु से पूछते चले। उन्मादावस्था कह रहे हैं। जो सुन सकता है वह देख भी सकता है। सीता कै बिलाप सुनि भारी। भये चराचर जीव दुखारी। यथा : तस्मात् शृण्वन्ति पादपाः। तथा : तस्मात् पश्यन्ति पादपाः। वहाँ लता वृक्ष थे।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी ।।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना ।।५।।
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी ।।
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ।।६।।

अर्थ : हे पक्षियो ! हे मृगगण ! हे भौंरे की पंक्तियो ! तुमने कहीं मृगनयनी सीता को देखा है ? खञ्जन, तोता, कबूतर, हिरण, मछली, भौंरों का समूह, प्रवीण कोल, कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरद का चन्द्रमा और नागिनी, वरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हंस, गज और सिंह ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं।

व्याख्या : वहाँ खग मृग और मधुकर थे। खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मुखर मधुप गुंजत छबि लहहीं। सो न खग कूजते हैं। न मधुकर गूँजते हैं। न मृग कलोल करते हैं। अतः समझा कि ये लोग कुछ जानते हैं। अतः उन्हीं से पूछते हैं। नाम न जानते हों तो रूप बतलाते हैं : मृगनयनी। सरकार मृगलोचनी कहते ही थे। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाए।

इस वर्णन में कोई क्रम नहीं है। प्रेमोन्माद के कथन में क्रम निबह भी नहीं सकता। गोस्वामीजी ने सरकार का नखशिख स्थान स्थान पर वर्णन किया है। भगवती के नखशिख के वर्णन का अधिकार नहीं है। पुत्र को माँ के नखशिख वर्णन का अधिकार स्वभावतः नहीं है। अतः वर्णन नहीं किया। यहाँ स्वयं सरकार विरहावस्था में नखशिख वर्णन कर रहे हैं। उसे भी कवि ने कितना सँभालकर लिखा। उपमेय का नाम तक नहीं आने दिया केवल उपमान कह रहे हैं। अठारह उपमाओं में सब कहा। नेत्र की उपमा खञ्जन से, मृग मीन से, नासिका की शुक से, कण्ठ की कपोत से, केश की मधुप निकर, सर्पिणी और वरुण पाश से, स्वर की कोकिला से, दाँत की कुन्दकली और दाडिम से, वर्ण की दामिनी से, कर पद की कमल से, मुख की शरद शशि से, गति की हंस और गज से और कटि की केहरि से उपमा दी जाती है।

इन अठारह की निन्दा होती रही कि ये उपमान : सीताजी के सामने कुछ नहीं हैं। ये जूठी की भाँति सीताजी के अङ्गों के सामने घृणास्पद समझो जाती रहीं। यथा : सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरिय बिदेह कुमारी। अब प्रशंसा हो रही है कि इनके सामने उपमेय कोई है ही नहीं।

**श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥**
**सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥७॥**

अर्थ : बेल और कनक कदलो : एक प्रकार का केला। हर्षित हो रहे हैं। इनके मन में जरा भी शङ्का तौर सङ्कोच नहीं है। हे जानकी ! सुनो। तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं मानों राज पा गये हों।

व्याख्या : कुच की उपमा श्रीफल से और कनक केदली की उपमा जंघा से दो जाती है। ये अङ्ग आवृत रहते हैं। जो अङ्ग आवृत रहते हैं उनके उपमान को निरावरण देखकर कहते हैं कि इन्हें लज्जा नहीं है। अतः अनावृत है और शङ्का भी नहीं है कि कदाचित् जानकोजी आजायँ तो फिर ये फोके पड़ जायँगे। अथवा इस बात की भी शङ्का नहीं है कि कोई हरण कर लेगा।

आज तक तेरे रहने से ये नहीं हरखे। आज इतने हर्षित हैं मानो इन्हें राज मिल गया है: राज्य में आभिमानिक सुख बड़ा भारी है। राज्य तुल्य भोग आमात्यादिक धनियों को भी होता है। पर उन्हें आभिमानिक सुख नहीं होता। आभिमानिक सुख ही साधारण धर्म है जिससे राज की उपमा दी। क्षत्रियों[1] को तो राज्य प्राप्ति से अधिक प्रिय और कुछ नहीं होता। अतः रामजी उनके हर्ष की उपमा राज्य प्राप्ति के हर्ष से देते हैं।

किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥८॥

अर्थ: तुमसे यह स्पर्द्धा कैसे सही जाती है? हे प्रिये! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं होती? इस प्रकार स्वामी श्रीरामजी सीताजी को खोजते हुए ऐसा विलाप करते हैं जैसे कोई महा विरही और अत्यन्त कामी पुरुष हो।

व्याख्या: इनकी ऐंठ तू कैसे सह रही है। इनकी ऐंठ को प्रकट होकर क्यों नहीं मिटा देती। यहाँ प्रभु भी जानकी को प्रत्यक्ष कल्पना करके प्रलाप कर रहे हैं। मुझसे तो इनकी ऐंठ नहीं देखी जाती। क्योंकि तुझसे स्पर्द्धा रखते हैं। तुझसे कैसे सहा जा रहा है। तू शीघ्र ही प्रकट होकर इनकी ऐंठ मिटा क्यों नहीं देती।

रावण के ले जाने की विधि कहकर अब सरकार के खोजने और विलाप करने की विधि कहते हैं। खोजने की विधि: पूछत चले लता तरु पाँती। विलाप की विधि: किसी उपमान को देखकर उपमेय स्मरण हो उठता है। भाव यह कि विधि ऐसी पकड़ रखी है जो अति विरही और अति कामी पकड़ते हैं।

पूरन काम रामु सुखरासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी ॥

## ४१. गीधक्रिया प्रसङ्ग

आगे परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥९॥

अर्थ: पूर्णकाम, आनन्द की राशि, अजन्मा और अविनाशी श्रीरामजी मनुष्यों के से चरित्र कर रहे हैं। आगे जाने पर उन्होंने गीधपति जटायु को पड़ा देखा।

व्याख्या: परन्तु सरकार पूर्णकाम हैं। अतः उन्हें कामना नहीं। यथा: कहेहु तात अस मोर प्रणामा। सब प्रकार प्रभु पूरण कामा। और सुखराशि हैं। उनका विलाप करना विडम्बना है। मनुज चरित कर रहे हैं। यथा: एक बार अतिसै सब चरित किये रघुबीर। जो प्रभु बिपिन फिरत तुम देखा। बंधु समेत धरे मुनि बेखा। जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी। नहीं तो न उनका जन्म होता है और न उनमें बिकार आता है। उमा के समझाने के लिए माधुर्य के साथ ही ऐश्वर्य कहा।

---

१. राज्यलाभाद्विना नान्यत् क्षत्रियाणामतिप्रियम्। वि. पु. ६.७.१

इस भाँति जहाँ जटायुजी पड़े थे वहाँ पहुँच गये। गीधपति को सामने पड़ा हुआ देखा। गीधपति ने नहीं देखा। आसन्नमृत्यु हैं। आँख बन्द है। मानसिक क्रिया मात्र थोड़ी सी हो रही है। सरकार के चरण के चिह्न ध्वज कुलिश अंकुश कंज का ध्यान कर रहे हैं। गीध की दृष्टि तीव्र होती है। इन्होंने सूक्ष्म रेखाओं को भी देखा था। उन रेखाओं पर मोहित थे। रेखाओं के ध्यान के पृथक् पृथक् माहात्म्य हैं। यथा : अंकुश मन गज वशकारी हैं। वज्र पाप पहाड़ का नाश करता है। ध्वजा के ध्यान से परलोक जय होता है। कंज भवमोचन है। इससे ताप नष्ट होता है। इत्यादि।

दो. कर सरोज सिर परसेउ, कृपासिन्धु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख, बिगत भई सब पीर ॥३०.२४॥

अर्थ : कृपा सागर श्रीरघुवीर ने अपने कर कमल से उसके सिर का स्पर्श किया। श्रीरामजी का शोभाधाम मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही।

व्याख्या : कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक धरिहउ नाथ सीस मेरे। जेहि कर अभय किये जन आरत वारक विवस नाम टेरे। अभी तक गीध के घायल होने का कारण नहीं मालूम। फिर भी दुःखी देखकर अस्पृश्य गीध के सिर पर हाथ रक्खा। क्योंकि कृपासिन्धु हैं। रघुवीर हैं। अतः दयावीर भी हैं। सिर पर हाथ रखते ही आँख खुल गयी। तब मुख छवि देखा। देखते ही पीड़ा मिटी। क्योंकि वदन पंजक भव मोचन हैं। सब पीर, कालकर्म गुण सुभाव उसके सीस तपत।

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनसु राम भंजन भव भीरा॥
नाथ दसानन एह गति कीन्हीं। तेंहि खल जनक सुता हरि लीन्हीं॥१॥

अर्थ : तब धीरज धरकर गीधराज ने यह वचन कहा : हे जन्म मृत्यु के भय का नाश करनेवाले श्रीरामजी ! सुनिये। हे नाथ ! रावण ने मेरी यह दशा की है। उसी दुष्ट ने जानकीजी को हर ली है।

व्याख्या : सरकार की मुख छवि देखकर पीर मिटने पर धीर धारण किया। शरीर क्षत विक्षत होने से बोल नहीं सकते थे। उनकी भवभीर दर्शन से मिट गयी। इसलिए भंजन भवभीरा कहते हैं। राम नाम का भी उच्चारण हुआ। प्रभु कुछ पूछते नहीं हैं। पर इन्हें कहने की जल्दी है कि कहीं सीता की सुधि बिना दिये ही मेरे प्राण न निकल जायँ।

दशानन ने यह गति की। भाव यह है कि उसे दशमुख हैं। यही उसकी पहिचान है : दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम वीर वरिबंडा। रावण का हाल कहते हैं कि वह खल है। उसने जनकसुता का हरण किया। जनक ऋषियों के मान्य हैं और यह ऋषिपुत्र होकर जनकसुता का हरण करता है। अर्थापत्ति से जटायुजी का जीतेजी जानकी को न जाने देना सिद्ध हुआ। गीधराज ने एहसान न

जताया। भगवती को चिन्ता थी : बिपति मोर को प्रभुहिं सुनावा। सो गोधराज ने सुना दिया।

लै दच्छिन दिसि गएउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना॥२॥

अर्थ : हे गोसाईं! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशा को गया है। सीताजी कुररी की तरह अत्यन्त विलाप कर रहीं थीं। हे प्रभो! मैंने आपके दर्शन के लिए ही प्राण रोक रक्खे थे। हे कृपानिधान! अब ये चलना चाहते हैं।

व्याख्या : अब खोजने का मार्ग बतलाते हैं। दक्षिण दिशा ले गया। आकाश मार्ग में विलाप करती जाती थीं। इससे कुररी की उपमा दी। कुररी क्रौञ्च पक्षी को कहते हैं। यह जोड़ा के विछोह में अत्यन्त विलाप करती है। पृथ्वी पर गिरने पर भी जाने की दिशा देख रक्खा था। किसी वस्तु में अत्यन्त ममता रहने से जल्दी प्राण निकलता नहीं। मुझे दर्शन की अत्यन्त इच्छा थी। जिसमें सीताजो का समाचार दे सकूँ। क्षत विक्षत होने पर जीने के लिए प्राण रखने की इच्छा आवश्यक है। अथवा गीधराज की मृत्यु और मोक्ष दो वस्तु नहीं हैं। किसी वासना के रहने से मोक्ष नहीं होता। इसलिए गोधराज की मृत्यु नहीं हुई। अब कहते हैं कि वासना पूरो हो गयी। अत: अब चलना चाहता हूँ। इससे पहिले मैंने चलना नहीं चाहा : कांक्षा मृत्यु की सिद्धि प्राप्त हो गयी। सरकार का हाथ सिर पर है इसलिए कृपानिधान कहा।

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेंहि बाता॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होइ स्रुति गावा॥३॥

अर्थ : श्रीरामचन्द्रजी ने कहा : हे तात! शरीर को बनाये रखिये। तब उसने मुसकुराते मुँह से यह बात कही : मरते समय जिसका नाम मुख में आ जाने से महान् पापी भी मुक्त हो जाता है। ऐसा वेद गाते हैं।

व्याख्या : रामजी ने कहा हे तात! आप शरीर रक्खें। यथा :

मेरे जान तात कछू दिन जी जै।
देखिअ आप सुअन सेवा सुख मोहि पितु को सुख दोजै।
दिव्य देह इच्छा जीवन जग विधि मनाइ मँगि लीजै॥
हरिहर सुजस सुनाइ दरस दै लोग कृतारथ कीजै॥

सुनकर गीधराज मुसकुराये कि भला! मैं ऐसा अवसर चूक सकता हूँ। यथा : जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं। मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनहिं बनावा। और बोले यथा—

देखि वदन सुनि वचन अमिय तन राम नयन जल भीजै।
बोल्यौ विहँसि विहँग रघुवर बलि कहौं सुभाव पतो जै॥
मेरे मरिवे सम न चारि फल होहिं तौ क्यों न कही जै।
तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन ही परी मानौ प्रेम सही जै॥

सो मम लोचन गोचर आगे। राखौं देह नाथ केहि खाँगे ॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात करम निज तें गति पाई ॥४॥

अर्थ : वही आप मेरे नेत्रों के विषय होकर सामने खड़े हैं। हे नाथ ! अब मैं किस कमी की पूर्ति के लिए देह को रक्खूँ ? नेत्रों में जल भरकर श्रीरघुनाथजी कहने लगे : हे तात ! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से दुर्लभ गति पायी।

व्याख्या : गीधराज ने कहा : मरती समय तुम्हारे नाम स्मरण का महा माहात्म्य है। महा पापी भी तर जाता है। पर उस समय तुम्हारे स्मरण की सम्भावना ही नहीं है : प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते। मेरा ऐसा सौभाग्य है कि ऐसे समय में तुम स्वयं मेरे आँखों के सामने हो। अब किस घाटा की पूर्ति के लिए शरीर रक्खूँ।

रघुराई हैं बड़े कृतज्ञ। शरीर छोड़ने का निश्चय सुनकर आँख में आँसू आगया। कहने लगे : तुम जो दुर्लभ गति प्राप्ति कर रहे हो वह तुम्हारे कर्म का फल है।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा ॥५॥

अर्थ : जिनके मन में दूसरे का हित बसता है उनके लिए जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। हे तात ! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाम में जाओ। मैं आपको क्या दूँ। आप तो पूर्णकाम हैं।

व्याख्या : स्वार्थं तो सबके मन में बसता है। पर जिस महापुरुष के मन में परहित बसे उसके अन्त समय में मेरा आना दुर्लभ नहीं है। क्योंकि : परहित सरिस धर्म नहि भाई। तुमने परहित के लिए प्राण दिया है। सद्गति तुम्हारे हिस्से की चीज है। गीधराज : राखौ देह नाथ केहि खाँगे कह चुके हैं। अतः प्रभु भी उन्हें पूर्णकाम कह रहे हैं। पूर्णकाम को कोई कुछ दे नहीं सकता। पूर्णकाम के लिए ही राम धाम है। जहाँ से फिर लौटना नहीं पड़ता।

दो. [1]सीताहरण तात जनि, कहेहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित, कहिहि दसानन आइ ॥३१.२५॥

अर्थ : हे तात ! सीताहरण की बात आप जाकर पिताजी से न कहियेगा। यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्ब सहित वहाँ जाकर स्वयं ही कहेगा।

व्याख्या : सीताहरण सुनकर पिताजी परलोक में भी दुःखी होंगे। हरण प्राप्ति दोनों साथ ही सुनेंगे तो दुःख न होगा। धर्मात्माओं के सङ्कल्प मात्र से परलोक में माता पिता पुत्र सुहृद उपस्थित हो जाते हैं। सो तुम ऐसे लोक को जा रहे हो

---

१. यहाँ पर्यायोक्ति अलङ्कार है।

जहाँ स्मरण मात्र से मित्र उपस्थित होंगे। महाराज दशरथ उपस्थित हो जायँगे और महाराज के स्मरण से आप उपस्थित होंगे। सो यह चर्चा न करना। जटायुजी ने कहा था : होइहि सलभ सकल कुल तोरा। उसी को दृढ़ करते हुए कहते हैं कि शीघ्र ही रावण कुल सहित वहाँ उपस्थित होगा। वह राग द्वेष शून्य देश है। रावणादि भी प्रेम से मिलेंगे। वही सब कथा कहेंगे। मेरो सुनियो तात सँदेसो। सीय हरन जनि कहेउ पिता सन होइहैं अधिक अँदेसो। रावरे पुन्य प्रताप अनल महु अलप दिननि रिपु दहिहैं। कुल समेत सुरसभा दसानन समाचार सब कहिहैं।

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी॥१॥

अर्थ : जटायु ने गीध का देह त्यागकर हरि का रूप धारण किया और बहुत से दिव्य आभूषण और अनूप पीताम्बर पहना। श्याम शरीर है। विशाल चार भुजाएँ हैं और नेत्रों में जल भरकर वह स्तुति कर रहे हैं।

व्याख्या : प्रभु ने कहा : तनु तजि तात जाहु मम धामा। उसी का साफल्य दिखला रहे हैं कि जटायु की गीधवाली शरीर छूट गयी और हरिधाम में जाने योग्य शरीर की प्राप्ति हुई। वह देह स्वयं हरि के अनुरूप थी। मुकुट अङ्गदादि भूषणों से सुशोभित थी और दिव्य पिताम्बर धारण किये थी। उसका श्याम वर्ण था। विशाल चार भुजाएँ थी : हरिलोक निवासियों का रूप भूषण वसनादि हरि के सदृश होता है। भोग और ऐश्वर्य भी वैसा ही होता है। केवल कौस्तुभ मणि विप्रचरण चिह्न नहीं रहता और न उत्पत्ति प्रलय का सामर्थ्य होता है।

दिव्य शरीर प्राप्ति के अनन्तर जटायुजी आँखों में आँसू भरकर स्तुति करने लगे।

छं. जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि राम कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं॥

अर्थ : हे रामजी ! आपकी जय हो। आपका रूप अनुपम है। आप निर्गुण हैं। सगुण हैं और सत्य ही गुणों के प्रेरक हैं। दस सिरवाले रावण के प्रचण्ड भुजाओं को खण्ड खण्ड करने के लिए प्रचण्ड बाण धारण करनेवाले, पृथ्वी को सुशोभित करनेवाले, सजल मेघ के समान श्याम शरीरवाले कमल के समान मुख और कमल के समान नेत्रवाले, विशाल भुजाओंवाले और भवभय से छुड़ानेवाले कृपालु श्रीरामजी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : जटायुजी कहते हैं कि आपका राम रूप अनूप है। क्योंकि वह सगुण भी है। निर्गुण भी है और वस्तुतस्तु गुण का प्रेरक है। अर्थात् आपके सगुण होने

पर भी निर्गुण रूप अक्षुण्ण ज्यों का त्यों बना हुआ है। निर्गुण होते हुए भी गुणों पर आपका सच्चा आधिपत्य है। आपकी प्रेरणा से घोर तामसी देह छूटकर मुझे यह शुद्ध सात्त्विकी शरीर प्राप्त हुआ है। मैं भविष्य को वर्तमान की भाँति देख रहा हूँ। ये आपके चण्ड बाण दशशीश के प्रचण्ड बाहु के खण्डन करनेवाले हैं और पृथ्वी को रोग विनिर्मुक्त करके शोभा प्रदान करनेवाले हैं। यथा : दससीस विनासन बीस भुजा कृत दूर महामहि भूरि रुजा। आपका सजल जलद नील वर्ण, कमल सा मुख और कमल से ही बड़े बड़े नेत्र और विशाल भुजाएँ संसार के भय को दूर करनेवाली हैं। यथा : स्याम सरूप सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। निरखि : बदन पंकज भवमोचन। मामवलोकय : पंकज लोचन कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन : तथा सुमिरत श्री रघुबीर की बाहें। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहें। आपसे पृथ्वी की शोभा हो रही है।

लोचन और भुज सबके सब भवमोचन हैं।

| | |
|---|---|
| पाथोद गात भवमोचन | यथा : श्यामल गात प्रणत भयमोचन। |
| सरोज मुख भवमोचन | यथा : देखि बदन पंकज भवमोचन। |
| राजीव लोचन भवमोचन | यथा : राजीव बिलोचन भवभय मोचन। |
| बाहु विसाल भवभय मोचन | यथा : सुमिरत श्रीरघुबीर की बाहें।<br>होत सुगम भव उदधि अगम अति<br>कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहें॥ |

अतः हे कृपाल राम ! मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ।

बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं ।
गोविंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं॥
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं॥

अर्थ : आप अपरिमित बलवाले हैं। अनादि, अजन्मा, अव्यक्त, एक अगोचर गोविन्द : वेद वाक्यों द्वारा जानने योग्य। इन्द्रियों से अतीत, जन्म मरण, सुख दुःख, हर्ष, शोकादि द्वन्द्वों को हरनेवाले विज्ञान की घनमूर्ति और पृथ्वी के आधार हैं तथा जो संत राम मंत्र को जपते हैं उन अनन्त सेवकों के मन का आनन्द देनेवाले हैं। उन निष्काम प्रिय तथा काम आदि दुष्टों के दलन करनेवाले श्रीराम जी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : बलमप्रमेय : से सर्वशक्तिमान् होना कहा। अनादि कहकर पुराण पुरुष होना जनाया। अज कहकर माया से मानुष रूप धारण करना बतलाया। अव्यक्त कहकर मन बुद्धि से परे होना द्योतित किया। एक से एकमेवाद्वितीयम्, नेह नानास्ति किञ्चन रूप को लक्षित किया। अगोचर कहकर इन्द्रियों से परे होना कहा।

यथा : न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनु शिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। गोविन्द कहकर औपनिषद पुरुष होना बतलाया। यथा : तमौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि। गोपर से विज्ञाता होना कहा। यथा : विज्ञातारं वा अरे केन विजानीयात्। द्वन्द्वहर से विपत्ति नाशक। विग्यान घन से ब्रह्मरूप और धरनीधर से सर्वाधिष्ठान कहा।

इस भाँति प्रभु के स्वरूप का वर्णन करके मन्त्रराज की महिमा कहते हैं कि अनन्त : असंख्य सन्तों ने इसी का जप किया है करेंगे और करते हैं और आनन्द को प्राप्त होते हैं। यथा : वरन बिलोचन जनजिअ जोऊ।

जटायुजी कहते हैं कि मैं ऐसे राम की नित्य वन्दना करता हूँ। जिसे अकाम प्रिय हैं और जो अकाम को प्रिय है। क्योंकि कामादि खल दल के नाश करनेवाले वे ही हैं। यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा।

जेहि स्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग योग अनेक मुनि जेहि पावहीं॥
सो प्रगट करुनाकंद सोभा बृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई॥

अर्थ : जिनको श्रुतियाँ माया से परे ब्रह्म व्यापक निर्विकार और जन्मरहित कहकर गान करती हैं। मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान, वैराग्य और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं। वे ही करुणाकन्द शोभा के समूह स्वयं प्रकट होकर जड़ चेतन समस्त जगत् को मोहित कर रहे हैं। वे ही मेरे हृदयकमल के भ्रमर रूप हैं और उनके अंग अंग में बहुत से कामदेवों की छवि शोभा पा रही है।

व्याख्या : श्रुति कहती है कि रामजी निरञ्जन हैं। अति सूक्ष्म होने से आकाश की भाँति निर्लेप हैं। ब्रह्म हैं। सबसे बड़े हैं। व्यापक हैं। देश काल दोनों में व्याप्त हैं। यथा : देस काल दिसि बिदिसहु माँहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाँहीं। विरज से अर्थात् प्रकृति के पार हैं। अतः अज हैं। किसी भाँति परिछिन्न होने योग्य नहीं हैं। ध्यान, ज्ञान, विराग से अर्थात् काण्डत्रय की सहायता से योग द्वारा मुनि जिसे प्राप्त करते हैं। यथा : ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नान्योपायोऽस्ति भूतले। दूसरा उपाय कोई नहीं है। अब सुयोग कहते हैं कि वही नयन विषय हो रहे हैं। कारण यह है कि करुणाकन्द हैं। इस समय करुणा की वर्षा हो रही है। रामावतार ही करुणावतार है। इससे और भी सुभीता है। भयानक रूप से प्रकट होते तो लोग घबराते। यहाँ तो सुन्दरता से संसार को मोहित कर रहे हैं। जटायुजी कहते हैं कि कहाँ तक करुणा कही जाय। मेरे हृदय कमल के भृङ्ग हो रहे हैं। अङ्ग अङ्ग पर अनेक कामोंकी शोभा हो रही है।

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पश्यन्ति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा ॥
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी ॥

अर्थ : जो अगम और सुगम हैं। निर्मल स्वभाव हैं। विषम और सम हैं तथा सदा शीतल हैं। मन और इन्द्रियों को सदा वश में करते हुए योगीजन बहुत साधन करने पर जिन्हें देख पाते हैं। वे तीनों लोकों के स्वामी रमानिवास श्रीरामजी निरन्तर अपने दासों के वश में रहते हैं। वे ही मेरे हृदय में निवास करें। जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमन को मिटानेवाली है।

व्याख्या : जो अगम हैं और सुगम भी हैं। यथा : मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद। सो अज प्रेम भगति बस कोसल्या के गोद। जिसका स्वभाव निर्मल है। यथा : रामहिं मातु बचन सब भाये। जिमि सुरसरि गत सलिल सोहाये। जो सम भी हैं। विषम भी हैं। यथा : जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहइ न पाप पुण्य गुन दोषू। तदपि करइ सम बिषम बिहारा। भक्त अभक्त हृदय अनुसारा। सदा शीतल हैं। यथा : सिसुपन ते पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ। कहत राम बिधु बदन रिसौं हे सपनेहु लख्यौ न काउ। वह मांसचक्षु से नहीं देखे जा सकते। उनके लिए योग दृष्टि तथा शास्त्र दृष्टि चाहिए। यथा : तदीक्षणस्य स्वाध्यायचक्षुर्योगस्तथा परम्। न मांसचक्षुषा द्रष्टुं ब्रह्मभूतः स शक्यते। वि. पु. और योग दृष्टि के लिए चित्तवृत्ति का निरोध सदा चाहिए। दास पर वशता कहते हैं।

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगति हेतु लीला तनु गहई ॥
जग पावन कीरति बिस्तरिहहि। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहि ॥

अतः जटायुजी उन्हें हृदय में बसने के लिए प्रार्थना करते हैं। पाँच विषय का ही इसमें वर्णन है। १. सगुण रूप २. निर्गुण रूप ३. मन्त्र ४. अवतार ५. और भक्त परतन्त्रता। ये ही हस्तनक्षत्र के पाँच तारे हैं। इसको फल श्रुति है : काम कोह कलिमन करि गन के। केहरि सावक जन मन बन के।

दो. अबिरल भगति माँगि बर, गीध गएउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्ही राम ॥३२.२६॥

अर्थ : अखण्ड भक्ति का वर माँगकर गृध्रराज जटायु श्रीहरि के परम धाम को चले गये। श्रीरामचन्द्रजी ने उसकी दाह कर्म आदि सारी क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथों से की।

व्याख्या : अविरल भक्ति स्तुति के बाद माँगी। बड़े का नाता मान रक्खा है। इसलिए एवमस्तु नहीं कहा। सरकार ने : जाहु मम धामा कहा था। सो हरि

धाम गये। सरकार ने स्वयं पिता की भावना से यथोचित क्रिया की। पक्षियों में मांस वितरण किया। तृप्यन्तु पक्षिण: सर्वे तृप्तो भवतु पक्षिराट्। धाम देने के बाद क्रिया की आवश्यकता न थी। परन्तु गीधराज के शरीर की प्रतिष्ठा के लिए सरकार ने अपने हाथ से क्रिया की।

कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्हीं जो जाचत जोगी ॥१॥

अर्थ : श्री रघुनाथजी अत्यन्त कोमल चित्तवाले दीनदयालु और बिना ही कारण कृपालु हैं। गीध पक्षियों में भी अधम पक्षी और मांसाहारी था। उसको भी वह दुर्लभ गति दी। जिसे योगीजन माँगते रहते हैं।

व्याख्या : प्रायेण प्रभु लोग पर वेदना नहीं जानते कठोर चित्त होते हैं। पर : अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। यद्यपि अखिल लोक कर राऊ। परन्तु श्रीरामजी अति कोमल चित्त हैं। अपना धाम देने पर भी सन्तोष नहीं। अपने हाथ से क्रिया करने लगे। दीनदयाल से सङ्कटहारी कहा। यथा : दीनदयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी। बिनु हेतु सनेही हैं। इसी भाँति बिनु हेतु कृपाल हैं। कोमल चित्त हैं। अत: अविरल भक्ति दिया। दीनदयाल हैं। अत: निज धाम दिया। निष्कारण कृपालु हैं। इसलिए अपने हाथ क्रिया किया। आप ही गुण देते हैं और आप ही उस गुण पर मुग्ध होते हैं।

भक्ति स्पृहारहित को दी जाती है। गीध को नहीं। हरि धाम पवित्र मुनियों के लिए है अधम खग के लिए नहीं। प्रभु के करकञ्ज की छाया दयालु लोगों के लिए है हिंसक के लिए नहीं। गीध शकुनाधम सब भाँति अपावन होते हैं। उनके जीवन का मूल्य क्या है ? अधम खग तो बहुत हैं। पर मुर्दा खानेवाला गीध ही है। योगी का सार्वभौम अहिंसा महाव्रत है। सो गीध को ऐसी गति दी जिसके लिए योगी लोग तरसते हैं।

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥

## ४२. कबन्धवध तथा शबरी गति प्रसङ्ग

पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई ॥२॥

अर्थ : हे पार्वती ! सुनो। वे लोग अभागे हैं जो भगवान् को छोड़कर विषयों से अनुराग करते हैं। फिर दोनों भाई सीताजी को खोजते हुए आगे चले। वे वन की सघनता देखते जाते हैं।

व्याख्या : नर तन पाइ बिषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं। हरि रूप सुधा है और विषय विष है। गीध से इतना ही हुआ कि हरिपद में अनुरक्त हो गया। अत: वह महा भाग्यवान् हो गया। गीध भाग्यवान् हुआ। रावण अभागी हुआ। पहले खग, मृग तथा मधुकर श्रेणी से सीता का पता पूछते थे। अब पता

लग गया। अतः अब उनसे नहीं पूछते हैं पर खोजते हैं। यह नहीं मालूम कि रावण ने कहाँ रख छोड़ा है। वन बहुत बड़ा है। इतना बड़ा वन अब तक नहीं मिला। अतः उसकी बहुतायत देखते हुए चले जाते हैं।

संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन ॥
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहि सब कही साप कै बाता ॥३॥

अर्थ : वह सघन वन लताओं और वृक्षों से भरा है। उसमें बहुत से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं। श्रीरामजी ने रास्ते में आते हुए कबन्ध राक्षस को मारा। उसने शाप की सब बातें कहीं।

व्याख्या : वन की घनता कहते हैं कि विटप से भरा हुआ था और उनमें लताएँ लिपटी हुई थीं। फलदार वन है। खग मृग बहुत हैं। बड़ा घोर वन है। इसलिए गज पञ्चानन भी हैं। मनुष्य का उल्लेख नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि घोर निर्जन वन था। कबन्ध के भय से कोई आता जाता न था।

प्रभु जिधर जाते थे उधर वह आता था। इससे उसका मार्ग में बाधक होना कहा। मरने के बाद वह अपने पूर्व रूप में हो गया। शाप मिलने के कारण वह राक्षस हो गया था। मारे जाने को उसने उपकार माना। कृतज्ञता के प्रकाश के लिए उसने शाप का सब वृत्तान्त प्रभु से निवेदन किया कि मैं पूर्वजन्म में बड़ा सुन्दर था। पर ऐसा ही भयानक रूप धारण करके मुनियों को डराता फिरता था।

दुरबासा मोहि दीन्ही स्रापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा ॥
सुनु गंधर्व कहउ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ॥४॥

अर्थ : उसने कहा कि इसी पर : दुर्वासाजी ने मुझे शाप दे दिया। अब प्रभु के चरणों को देखने से वह पाप मिट गया। श्रीरामजी ने कहा : हे गन्धर्व! सुनो मैं तुम्हें कहता हूँ। ब्राह्मणकुल से द्रोह करनेवाला मुझे नहीं सुहाता।

व्याख्या : दुर्वासा का शाप था। मिटनेवाला नहीं। वह देवासुर संग्राम में लड़ा। इन्द्र का वज्र लगा। फिर भी शाप न मिटा। पाप के कटने के लिए ही मुनि लोग कृपा करके शाप देते हैं। सो पाप प्रभु के दर्शन से कटा। सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।

प्रभु ने गन्धर्व कहकर उसको सम्बोधन किया : इससे पता चलता है कि पूर्वजन्म में वह गन्धर्व था। और कहा कि मुझे ब्राह्मणकुल से द्रोह करनेवाला अच्छा नहीं लगता। ब्राह्मण[1] और गाय एक कुल की दो शाखा हैं। एक में मन्त्र और दूसरे में हवि प्रतिष्ठित है। अर्थात् ये ही दोनों यज्ञ के मुख्य साधन हैं और यज्ञ से ही दोनों लोकों का कल्याण होता है। गो ब्राह्मणकुल का द्रोह करना तो देवलोक

---

१. ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्। एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति। मनुः.

से चलते हुए व्यापार के बन्द करने की चेष्टा है। यह यज्ञपुरुष को प्रिय हो नहीं सकती। जिस भाँति गो के दुग्धादि से ही यज्ञ सम्पन्न होते हैं। बकरी के दूध से सम्पन्न नहीं हो सकते। उसी भाँति ब्राह्मण मुखोच्चरित मन्त्रों से ही यज्ञ सुसम्पन्न होते हैं। अब्राह्मण के मुखोच्चरित मन्त्र से नहीं होते। इसीलिए हिन्दू जाति और उसके शास्त्रों में गोकुल और ब्राह्मणकुल का बड़ा मान है। यथा :

दो. मन क्रम बचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव, बस ताकें सब देव ॥३३.२७॥

अर्थ : मन कर्म और वचन से कपट छोड़कर जो ब्राह्मणों की सेवा करता है। मुझ समेत ब्रह्मा शिव आदि सब देवता उसके वश में हो जाते हैं।

व्याख्या : ब्राह्मणों का वेद में प्रधान अधिकार है। अतः वे पृथ्वी के देवता हैं। आज भी जिसको शास्त्र का ज्ञान है उसे साक्षात् या 'परम्परया ब्राह्मणों से ही हुआ है। अतः उनकी सेवा कपट छोड़कर करनी चाहिए। बाहर से नम्र रहे और भीतर से नम्र नहीं यही कपट सहित सेवा है : बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं। सब देवों के वशीकरण का द्विज सेवा ही उपाय है। यथा : किं तस्य दुर्लभतरमिह लोके परत्र च। यस्य विप्राः प्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुगः। भाग०.

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता ॥
पूजिय बिप्र सील गुन होना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना ॥१॥

अर्थ : शाप देता हुआ मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूज्य हैं। ऐसा सन्त कहते हैं। शील और गुण से हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है और गुणगणों से युक्त और ज्ञान में निपुण भी शूद्र पूजनीय नहीं है।

व्याख्या : गुणतः तो सभी पूज्य होता है। गुण की पूजा स्वाभाविक है। पर ब्राह्मण जन्मतः भी पूज्य हैं। यदि उनमें गुण भी ब्राह्मण के हों। वेदपाठी भी हों तो शापत : मन से, ताड़त : कर्म से और परुष कहंता : वाणी से होने पर भी वे पूज्य हैं। शापत ताड़त परुषवक्ता पूज्य योग्य नहीं है। पर विप्र हैं। उनके पूर्वजन्म के कुछ कर्म ऐसे हैं कि जिससे वे पूजा माने जाते हैं यथा : तुलसी पीपल आदि। तद् य इह रमणीयचरणा अभ्याशोहयत् ते रमणीयां योनिमापद्येरन्। ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशोहयत् कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा। भगवान् वासुदेव कहते हैं : विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः। घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः। भा०। मेरे भक्त अपराधी ब्राह्मण का भी द्रोह न करें। मारते हुए शाप देते हुए ब्राह्मण को भी नमस्कार ही करें। बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहूँ पा परिय तुम्हारे। साप सीस धरि हरखि हिय प्रभु बहु बिनती कीन्ह। भृगुपति बकहिं कुठार उठाये। मन मुसुकाहिं राम सिर नाये। इत्यादि।

ब्राह्मण कम से कम गायत्री मात्र जाने, आचरण और गुण से हीन हो फिर भी पूजा उसकी होगी। जहाँ शास्त्रों में ब्राह्मण पूजन विधान है वहाँ ब्राह्मणोचित गुणवाला शूद्र पूजित नहीं होगा। हीनगुणवाला ब्राह्मण ही पूजित होता है। यथा : तुलसी पूजन विधान में तुलसी के स्थान पर अनार अंगूर का पूजन नहीं हो सकता।

कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा॥
रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई॥२॥

अर्थ : श्रीरामजी ने अपना धर्म कहकर उसे समझाया। अपने चरणों में प्रेम देखकर वह उनके मन को अच्छा लगा। तदनन्तर श्रीरघुनाथजी के चरण कमलों में सिर नवाकर वह अपनी गति : गन्धर्व का स्वरूप पाकर आकाश में चला गया।

व्याख्या : प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं। ब्राह्मणों पर प्रीति करना अपना धर्म मानते हैं। यथा :

प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना॥

जेते धर्म सकाम सबै को फल कटु जानो।
धन दारा सुत गेह विनश्वर दुःखमय मानो॥
स्वर्गहु विनशन शील-चारि दिन को सुखदाई।
श्री गुरु चरण सरोज शरण में भूरि भलाई॥
गुरु गोविन्द को निष्कपट सेवा विजयानन्द करो।
विरति ज्ञान संयुत सुभग भगति पंथ नित अनुसरो॥
सतसंगति नित करो शौच तप मौन निवाहो।
ब्रह्मचर्य व्रत धरो अहिंसा समता चाहो॥
जड़ चेतन को आत्मरूप ईश्वर करि देखो।
गहो सदा संतोष संत रहनी जिय लेखो॥
प्रभु सबमें सब प्रभुहिं में जानि अहंता को तजो।
ये तेरह हैं भागवत सद्गुण विजयानंद भजो॥

अतः द्विज सेवा को हरितोषण व्रत कहा गया है। इससे भगवान् तुष्ट होते हैं। इस बात को उसे समझाया। जिसमें फिर उससे ऐसी चूक न हो। अपने चरणों में प्रेम देखकर उसे परम कल्याणकर उपदेश दिया। तब वह कृतकृत्य होकर प्रभु चरणों पर नत हुआ तथा गन्धर्व लोक को गया। स्वयं भक्ति का उपदेश दे चुके हैं। उसे अन्यस्पृहा न होने से और कुछ न दिया। अतः गगन जाना कहा। चरणं में सिर देने से ही ऊर्ध्व गति होती है। यथा : अतिशय बड़ भागो चरणनन्हि लागी जुगल नयन जल धार बही...गई पतिलोक अनन्द भरी। अधोगति हो गयी थी। सो ऊर्ध्व गति की बाधा दूर हो गयी।

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी के आस्रम पगु धारा॥
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जिय भाए॥३॥

अर्थ : उदार श्रीरामजी उसे गति देकर शबरीजी के आश्रम पधारे। शबरीजी ने रामजी को घर में आये देखा। तब मुनि : मतङ्गजी के वचनों को याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया।

व्याख्या : कबन्ध के उद्धार में उदार कह रहे हैं। यथा : ऐसो को उदार जग मांही। बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नांहीं। कबन्ध ने क्या सेवा की। उदार हैं : गति देने से तृप्ति नहीं। घर जा जाकर गति देते हैं तथा : सुगम अगम बरदायक होने से उदार हैं। अथवा ऐसे उदार हैं कि शबरी के आश्रम चले। सकल मुनिन्ह के आस्रम जाइ जाइ सुख दीन्ह। सो शबरी कौन मुनि थी? प्रभु के चरण पड़ने से उसकी कुटिया भी आश्रम हो गयी।

शबरी ने देखते ही पहिचान लिया कि ये ही राम हैं। शबरी उसे गृह ही समझती है। आश्रम का ख्याल उसे मन से भी नहीं है। राम किसी के गृह नहीं जाते। विभीषण ने कहा : अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै। सरकार नहीं गये। ग्रामवास उचित नहीं है। पर शबरी का गृह सरकार के विचार में आश्रम ही है। मुनि के जिय भाये वचन समझकर उसने पहिचाना। मुनिजी ने जो ध्यान बतांया था सो आँखों के सामने देखा।

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई ॥४॥

अर्थ : कमल सदृश नेत्र और विशाल भुजावाले सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किये हुए सुन्दर साँवले और गोरे दोनों भाइयों के चरणों में शबरी लिपट पड़ी।

व्याख्या : मुनिजी ने उसकी योग्यतानुकूल सामान्य ध्यान बतलाया था कि बड़ी बड़ी कमल की सी आँखें हैं। लम्बी लम्बी भुजाएँ हैं। दो गहना भी बतला दिया था। जटा का ही मुकुट और पैर तक लटकती हुई माला रहती है। यह भी उदारता है कि उसके ध्यानानुरूप वेष से उसके सामने आये। नहीं तो यहाँ नवमाला कहाँ से आगयी?

दोनों भाई का एक रूप और वेष है। वर्ण में केवल भेद है। शबरी चरणों में लिपट गयी। स्त्री है। उसे चरण में लिपटने का ही अधिकार है।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे ॥५॥

अर्थ : वह प्रेम में मग्न हो गयी। मुख से वचन न निकला। बार बार चरण-कमलों में सिर नवा रहा है। फिर उसने जल लेकर आदर पूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोये और फिर उन्हें सुन्दर आसनों पर बिठाया।

व्याख्या : प्रेम मगन : मनसा। मुख बचन न आवा : वाचा। सिर नावा : कर्मणा। मुख से बोलना चाहती है। पर कहते नहीं बनता। तव बार बार प्रणाम करती है।

श्रीचरणों को केवट ने पखारा था। अब शबरी पखार रही है। शबरी बड़े इन्तजाम में थी। जब से मुनिजी कह गये तभी से नित्य नये आसन बनाती। सुन्दर सुन्दर कन्द मूल फल लाती। कौन जाने कब राम आवेंगे। शबरी के पूजन में न विधि है न मंत्र है। केवल भक्ति है। तीन उपचार से पूजन करती है। पाद्य आसन और नैवेद्य से।

दो. कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारंबार बखानि ॥३४.२८॥

अर्थ : उसने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द मूल और फल लाकर श्रीरामजी को दिये। प्रभु ने बारंबार प्रशंसा करके उन्हें प्रेम सहित खाया।

व्याख्या : लाकर दिया कहने का भाव यह कि कहीं इकट्ठा करके रक्खे थी वहाँ से लाकर दिया। जब से गुरुजी कहकर चले गये कि तेरे पास रामजी आवेंगे : पर कब आवेंगे यह नहीं कहा : तब से नित्य शबरी पूजोपचार इकट्ठा करती थी। न जाने किस समय आ जावेंगे। इसलिए फलों को खाकर उनके मिठास की परीक्षा कर लेती थी। जो मीठे जँचते थे उन्हें तोड़कर नैवेद्य लगाने के लिए रख लेती थी। आज भी लोग सट्टी में जाकर आम को चख लेते हैं। पसन्द आने पर खरीदते हैं। उसी भाँति जहाँ अति सरस कन्द मूल फल रक्खे थे वहाँ से लाकर रामजी को दिये। अति कृतज्ञ परम सुजान प्रभु ने उनका बार बार बखान करके भोजन किया। यहाँ यह न समझना चाहिए कि लक्ष्मणजी ने नहीं खाया। रामजी का खाना कहने में ही लक्ष्मणजी का भोजन करना आगया। आगे चले बहुरि रघुराई का अर्थ यह नहीं है कि लक्ष्मणजी नहीं चले।

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी ॥१॥

अर्थ : फिर वह हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गयी। प्रभु को देखकर उसका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। कहा : मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ। मैं नीच जाति की और अत्यन्त मूढ़ बुद्धि हूँ।

व्याख्या : पहिले कन्द मूल फल परोसती थी। जब सरकार खा चुके तब हाथ जोड़कर आगे खड़ी हुई स्तुति के लिए : भाव यह कि मेरी इतनी ही पूजा थी। मैं किसी योग्य नहीं। पूजा में व्यग्र होने से एकाग्र होकर दर्शन नहीं कर सकी थी। प्रीति तो बढ़ी हुई थी ही। दर्शन से और प्रीति बढ़ी।

बोली कि मैं स्तुति की विधि नहीं जानती। तिस पर तुम्हारी स्तुति : स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः। अधम जाति हूँ : कोई स्तोत्र भी कण्ठ नहीं है कि उससे स्तुति करूँ। भारी जड़मति हूँ। अपने मन से कुछ कल्पना भी नहीं कर सकती।

अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह मँह मैं अतिमन्द अघारी ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगति कर नाता ॥२॥

अर्थ : अधमाधमों में भी स्त्री अधम हैं। उनमें भी हे पाप नाशन ! मैं अतिमन्द हूँ। श्रीरघुनाथजी ने कहा कि हे भामिनि ! मेरी बात सुन। मैं तो केवल एक भक्ति का ही नाता मानता हूँ।

व्याख्या : पहिले अधम से : जाति हीन कहा। दूसरे अधम : शब्द से अघ जन्म महि कहा। तीसरा अधम : शब्द नारी होने के नाते कहा। नारी होने से दोष में उत्कर्ष आ जाता है। यथा : काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। तिय बिसेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि। ऐसी स्त्री भी यदि बुद्धिमती हो तो भी कुछ स्तुति कर ही सकती है। शबरी कहती है कि मैं ऐसी स्त्रियों में भी भारी जड़मति हूँ। स्तुति करना जानती भी नहीं। प्रभु के साक्षात्कार होने पर स्तुति करना चाहिए। अब मैं क्या करूँ। जिससे आप प्रसन्न हो। यथा : स्तोतुन्न जानामि देवेश किं करोमि प्रसीद मे। अ. रा.

रघुपति हैं : सुनि सनमानहिं सबहिं सुबानी। भगति भनिति मति गति पहिचानी। यह प्राकृत महि पाल सुभाऊ। जान सिरोमणि कौसल राऊ। रीझत राम सनेह निसोते। को जग मंद मलिन मति मोते। अतः कहते हैं : मेरी बात सुन। मैं एक ही नाता : सम्बन्ध मानता हूँ। भक्त मेरे नातेदार : सम्बन्धी हैं। तू अधम क्यों कहती है। तू तो मेरी नातेदार है : कबन्ध के प्रकरण में जाति की बड़ाई किया। क्योंकि वह गुण को बड़ा माननेवाला था। दोनों के सामञ्जस्य के लिए यहाँ गुण की प्रशंसा करते हैं। क्योंकि यह जाति को बड़ा मानती है।

जाति पाति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहै कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥३॥

अर्थ : जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता। इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता है जैसे जलहीन बादल दिखायी पड़ता है।

व्याख्या : दस गुण कहे जिससे मनुष्य की शोभा होती है। गुण की वृद्धि के साथ साथ शोभा का उत्कर्ष होता है। जाति में होना ही शोभा की बात है। फिर यदि पाँति में बैठने पावे तो शोभा और भी बढ़े। उससे भी यदि कुलीन हो तो क्या बात है। इसी भाँति दसों के होने से बड़ी भारी शोभा होती है।

भक्तिहीन होने से ये दसों शोभाएँ व्यर्थ हैं। जैसे बिना जल का बादल। वह राम सुयश का वर्षा कर नहीं सकता। देखने में तो वह स्वच्छ है, श्वेत है, पर उसमें मनुष्यता नहीं है। अतः शोभा की कमी पड़ गयी : बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषण भूषित बर नारी।

नवधा भगति कहउँ तोहि पाँहीं । सावधान सुनु धरु मन माँहीं ॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥४॥

अर्थ : मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ । तू सावधान होकर सुन और मन में धारण कर । पहिली भक्ति है सन्तों का सत्सङ्ग । दूसरी भक्ति है मेरे कथा प्रसङ्ग में प्रेम ।

व्याख्या : तुझसे कहता हूँ दूसरे किसी से नहीं कहा । भागवत धर्म गन्धर्व से कहा । नवधा भक्ति जिससे सम्बन्ध : नाता स्थापित होता है उसे तुझसे कहता हूँ । यह चाण्डाल तक के लिए हैं । सुनने में अनवधानता होने से बात मन में ठीक आवेगी नहीं । अतः सावधान होकर मन में धारण कर । बिना मन में धारण किये निश्चय न हो सकेगा कि कौन सी भक्ति कितनी मुझमें है और किसकी कमी है । सरकार को उसका सङ्कोच छुड़ाना है : सेवक सकुच सोच उर अपने । और उसे नगरवासियों की भाँति उपदेश देकर कृतकृत्य करना है । इसलिए नाता के स्पष्ट करने के व्याज से उसे नवधा भक्ति का उपदेश करते हैं ।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम् । यही नवधा भक्ति प्रसिद्ध है और भगवान् ने भी इसी नवधा भक्ति का उपदेश लक्ष्मणजी को दिया । यथा : स्रवणादिक नवभक्ति दृढ़ाहीं । मम लीला रति अति मन माहीं । परन्तु शबरी को जिस नवधा भक्ति का उपदेश दिया वह तो स्पष्ट ही श्रवणादिक नवभक्ति से पृथक् है । इस पार्थक्य का कारण होना चाहिए ।

लक्ष्मणजी को सरकार ने भक्तियोग का उपदेश दिया । यथा : भक्तियोग सुनि अति सुख पावा । लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा । जिसमें साधनभक्ति भावभक्ति तथा प्रेमा भक्ति तीनों का समावेश है । उसमें कोई बात छूटी नहीं है । यथा : थोरेहि महँ सब कहौं बुझाई । सुनहु तात मति मन चितलाई । और यह भी मानना पड़ेगा कि दोनों उपदेशों का हृदय एक है । फिर भी प्रकार में इतना बड़ा अन्तर क्यों ? यह प्रश्न बिना उठे नहीं रह सकता ।

दोनों प्रकरणों को निविष्ट चित्त से मनन करने से यह बात मन में आती है कि भक्तियोग का लक्ष्य भगवान् को अपना प्रेमपात्र बनाना है । भक्त को कोई कामना न होनी चाहिए । यहाँ तक कि प्रेमपात्र की प्रसन्नता की भी अपेक्षा न रहे । यथा : जानहु राम कुटिल करि मोही । लोग कहउ गुर साहिब द्रोही । सीता-राम चरन रति मोरे । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे । तथा : बचन कर्म मन मोरि गति भजन करै निष्काम । तिन्हके हृदय कमल महु करौं सदा बिस्राम : अर्थात् भक्तियोग का पर्यवसान भगवान् को प्रेमपात्र बनाने में है ।

परन्तु शबरी को जिस नवधाभक्ति का उपदेश दिया है उसका पर्यवसान स्वयं भगवान् के प्रेमपात्र बनने में है । यथा : नवमहुँ एकउ जिन्हके होई । नारि पुरुष सचराचर कोई । सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ।

शबरी अपने को भक्तियोग का अधिकारी नहीं मानती। यहाँ तक कि उसे स्तुति करने में भी सङ्कोच है। कहती है : केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी। अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं अतिमंद अघारी। इस पर भगवान् उसे भक्ति के नव लक्षण बताते हैं। जिससे भक्त भगवान् का प्रेमपात्र बन जाता है। एवं शबरी को आश्वासन देते हैं कि तू अपनेको अधम न जान। तुझमें नवों प्रकार की भक्ति है। इससे तू मुझे अतिशय प्रिय है। इसका प्रमाण यह : जोगि बृंद दुर्लभ गति जोई। तो कहँ आज सुलभ भइ सोई।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि भक्तियोग का पर्यवसान भगवान् को प्रेमपात्र बनाने में है और शबरी को जिस नवधा भक्ति का उपदेश दिया उसका पर्यवसान भगवान् का प्रेमपात्र बनने में है। अतः दोनों में पार्थक्य निष्कारण नहीं है। अतः दोनों का पृथक् पृथक् उपदेश हुआ।

सरकार का उपदेश भगवद्गीता के उपदेश की भाँति किसी व्यक्ति विशेष के लिए ही नहीं है। पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्। अर्जुन तो केवल बछड़े थे। गीतामृत के भोक्ता तो पण्डित लोग हैं। इसी भाँति इन उपदेशों से लाभ उठानेवाले भक्त लोग हैं। लक्ष्मणजी तथा शबरी तो निमित्त मात्र हुए। शबरी में नवधा भक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान थी। फिर भी संसार के कल्याणार्थं उसे उपदेश दिया गया। जिस भाँति भगवती अनसूया ने सीताजी को पातिव्रत का उपदेश दिया। यथा :

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहेउँ कथा संसार हित।।

एक भक्ति से कल्याण होता है। केवल सत्संग से ही सध जाता है। यथा : अस बिचारि जो कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा। सतसंगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। दूसरी भक्ति रामकथा में रति। यथा :

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेष बड़ लाहु।।
महा मोह महिखेस बिसाला। रामकथा कालिका कराला।।
रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावन हारी।।

दो. गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करै कपट तजि गान ।।३५.२९।।

अर्थ : तीसरी अमान भक्ति है : गुरु के चरण कमलों की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुण समूहों का गान करे।

व्याख्या : गुरु के चरण की सेवावाली भक्ति मानरहित होनी चाहिए। स्वयं प्रभु उसे अपनाये हुए हैं। धनुष भङ्ग के लिए सीय स्वयम्बर में सब राजा लोग

इष्ट देवता को प्रणाम करके चले। पर प्रभु ने तो गुरु चरणों को प्रणाम किया। यथा : गुरुहि प्रनाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा। श्री चक्रवर्तीजी : राजा दशरथ कहते हैं : मोहि सम येहु अनुभयेउ न दूजे। सब पाँयेउ रज पायन पूजे। मानरहित यथा : गुरुपद पदुम पलोटत प्राते।

चौथी भक्ति हरि गुणगान है। भगवान् कहते हैं कि न मैं वैकुण्ठ में बसता हूँ और न योगियों के हृदय में बसता हूँ। मेरे भक्त जहाँ गान करते हैं वहीं मैं बसता हूँ। नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न हि। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

परन्तु समय : शर्त यह है कि कपट छोड़कर मान करें। दूसरों के दिखाने के लिए या अपनी प्रसिद्धि के लिए नहीं। सभी पुण्य भावोपहत हो जाने पर पाप हो जाते हैं। यथा : सर्वाणि भावोपहतानि कल्कः।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा॥१॥

अर्थ : मेरे मन्त्र का जप और मुझमें दृढ़ विश्वास : यह पाँचवीं भक्ति है जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियों को निग्रह : शील : बहुत कार्यों से वैराग्य और निरन्तर सन्त पुरुषों के आचरण में लगे रहना।

व्याख्या : मननात् त्रायत इति मन्त्रः। कौनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। मन्त्र जप में तो विश्वास का अधिक उपयोग है। भविष्यतीति मनः कृत्वा सतत-मव्यथैः। जब वाणी मन में प्रतिष्ठित हो और मन वाणी में प्रतिष्ठित हो तभी यथार्थ रूप से जप होता है। भगवती श्रुति कहती हैं : वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्मं एधि और श्रुति भगवती ने ही राममन्त्र में प्राणीमात्र का अधिकार बतलाया है। यथा : मन्त्रेषु तेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम्। इसीलिए कहते हैं : पंचम भजन सो बेद प्रकासा। दम से इन्द्रिय जय और शील से आचार का ग्रहण किया : बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्। काम्य कर्म से विरत हो नित्य नैमित्तिक से नहीं। सज्जनधर्म परोपकारादि हैं जिनका सविस्तर वर्णन : प्रभु नारद सम्वाद प्रकरण में है। उनमें सदा लगा रहे। यह छठी भक्ति हुई।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा॥२॥

अर्थ : सातवीं भक्ति है : जगत् भर को समभाव से मुझमें ओत प्रोत देखना और सन्तों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है : जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष करना और स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना।

व्याख्या : सातवीं भक्ति है : निज प्रभुमय देखहि जगत् कासन करहिं विरोध।

परन्तु सन्तों को भगवान् से भी अधिक माने। क्योंकि भगवत्प्राप्ति उन्हीं के द्वारा होती है। यथा : रामसिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा।

आठवीं भक्ति है : यथा लाभ सन्तोष। सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः। यो. द. सन्तोष से ऐसा सुख मिलता है जिससे बढ़कर कोई सुख नहीं है। यथा : कोउ बिस्राम कि पाव तात सहज सन्तोष बिनु। बिनु सन्ताष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं। राम भजन बिनु मिटहि कि कामा।

और दूसरे का दोष तो सपने में भी न देखे। दूसरे के दोष देखने का स्वभाव हो जाने से बिना जाने वे दोष अपने हृदय में डेरा करने लगते हैं। इसीलिए परदोष निरीक्षण खल का लक्षण कहा गया है।

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना ॥
नव महुँ एकउ जिन्ह के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई ॥३॥

अर्थ : नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपट रहित व्यवहार करना : हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और विषाद का न होना। इन नवों में से जिनके एक भी होतो है वह स्त्री पुरुष जड़ चेतन कोई भी हो।

व्याख्या : सरलता महात्मा का लक्षण है। मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्। शत्रु में भी छलहीन साधु ही हो सकता है। हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलु साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते। मम भरोस हिय यथा : मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहाँ बिस्वासा। तथा : आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस। हर्ष और दीनता के लिए फिर कोई कारण नहीं रह जाता।

ये नवो भक्ति स्वतन्त्र हैं। इसीलिए कहते हैं कि इन नवों में से एक[1] के भी होने से वह भक्त मुझे प्रिय होता है। इस नवधा भक्ति में एक का भी होना दुर्लभ है। नारी होने से अपने को अनधिकारी क्यों समझती हैं। पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।

आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्या सामान्यवत्। शा० भ० सू०। भक्ति में निन्द्य योनि सामान्य रूप से सबको अधिकार है।

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ॥
जोगि बृन्द दुर्लभ गति जोई। तो कहुँ आज सुलभ भइ सोई ॥४॥

अर्थ : हे भामिनि ! मुझे अत्यन्त वही प्रिय हैं। फिर तुझमें तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियों को भी दुर्लभ है वही आज तेरे लिए सुलभ हो गयी।

———

१. ईश्वर : तुष्टेरे कोपि बली। शा० भ० सू०। एक का भी विशेष रूप से अनुष्ठान करने पर वही परमेश्वर को सन्तुष्ट करके बलवान् हो जाता है।

व्याख्या : नर नारि होने से मेरे बर्ताव में भेद नहीं। रीझत राम सनेह निसोते। सकल प्रकार भक्ति दृढ़ होने से भामिनि कहा। तेजोमयी मूर्ति शबरी हो गयी।

योगि वृन्द दुर्लभ गति कैवल्य पद है : अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संसार को अति दुर्लभ तेरे लिए सुलभ हो गयी। आज का भाव यह कि काल पाकर नहीं आज ही तू मुक्त होगी।

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा ॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनि। जानहि कहु करिबरगामिनि ॥५॥

अर्थ : मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि ! हे गजगामिनि ! अब यदि तू जानकीजी की कुछ खबर जानती हो तो कह।

व्याख्या : सहज स्वरूप की प्राप्ति ही कैवल्य पद है। यह मेरे दर्शन का फल है। ईश्वर दृष्टि से दर्शन किया। मेरे साक्षात्कार बिना मुक्ति नहीं होती। मेरा दर्शन : साक्षात्कार परम अनूप है। मेरा स्वरूप ही बना देता है।

भामिनि से उपक्रम करके : कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। भामिनि में अभ्यास : सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। तथा भामिनि से उपसंहार करते हैं। यथा : जनकसुता कर सुधि भामिनि। उसके गति की भी प्रशंसा करते हैं। यथा : जानहि कहु करिबरगामिनि। भाव यह है कि जिस भाँति प्रेम की मिठास शबरी के फलों में थी उसी भाँति प्रेम का सौन्दर्य उसके शरीर में था। जिसने उसके फल की प्रशंसा की वही महाप्रभु उसके सौन्दर्य की भी प्रशंसा कर रहे हैं एवं सब प्रकार से उसका आदर कर रहे हैं। उसकी ग्लानि का सम्मार्जन कर रहे हैं। खोई हुई वस्तु को सबसे पूछना चाहिए। सीता हरण के बाद पहिली मनुष्य शबरी ही मिली। अतः उससे सीताजी की सुधि पूछते हैं। उसे कृतज्ञता प्रकाश का भी समय नहीं दे रहे हैं।

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई ॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानत हूँ पूछहु मति धीरा ॥६॥

अर्थ : शबरी ने कहा : हे रघुनाथजी ! आप पम्पा नामक सरोवर को जाइये। वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी। हे देव ! हे रघुवीर ! वह सब हाल बतावेगा। हे धीरबुद्धि ! आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं।

व्याख्या : शबरी ने सीताजी को स्वयं नहीं देखा। सुग्रीव ने देखा है। योगबल से जानती है। अतः सुग्रीव का पता बतला रही है। अथवा गुरु मुख से पूरा रामायण सुन चुकी है। यथा : यह सब जागबलिक कहि राखा। गुरुजी ने तो कहा था कि सुग्रीव सब बतलावेंगे। हमें बतलाने को तो नहीं कहा था।

देव से कौतुक प्रियता अथवा सर्वज्ञता और रघुवीर से सामर्थ्य कहा। तुमसे क्या छिपी है। यह आपका कौतुक है कि जानते हुए भी पूछते हैं। मतिधीर हैं : राजनीति राखत सुर त्राता। अतः रघुवीर कहा।

बार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई ॥७॥

अर्थ : बार बार प्रभु के चरणों में सिर नवाकर प्रेमसहित उसने सब कथा सुनायी।

व्याख्या : उपक्रम : में पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा कहा था। अब उपसंहार में भी कहते : बार बार प्रभु पद सिर नाई। जोगि बृंद दुर्लभ मति जोई। तो कहँ आज सुलभ भइ सोई। कहने के बाद प्रभु ने शबरी को पुनः कृतज्ञता प्रकाश करने का समय नहीं दिया। जनकसुता का हाल पूछने लगे। अतः उत्तर देकर तब प्रणाम करती हैं। जिसे संक्षेप में कहा था उसे विस्तार में कहने लगी।

छं. कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहि फिरे॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू॥

अर्थ : सब कथा कहकर भगवान् के मुख दर्शन कर हृदय में उनके चरण कमलों को धारण कर लिया और योगाग्नि से देह को त्यागकर वह उस दुर्लभ हरिपद में लीन हो गयी जहाँ से लौटना नहीं होता। तुलसीदासजी कहते हैं कि अनेकों प्रकार के कर्म, अधर्म और बहुत से मत ये सब शोकप्रद हैं। हे मनुष्यो ! इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्रीरामजी के चरणों में प्रेम करो।

व्याख्या : सब कथा कही : कैसे गुरुजी के पास आयी ? कैसे गुरुजी की कृपा हुई ? कैसे गुरुजी ने सब कथा सीताहरण रावण वध की कही थी। वदन पंकज भव मोचन का निरीक्षण किया : पर उपासक चरणों की थी। इसकी कथा में चरण का ही बार बार उल्लेख होता है। अतः चरणों को ही हृदय में रक्खा।

योगाग्नि से शरीर छोड़ा। उमा तथा शरभङ्ग ने भी योगाग्नि से शरीर छोड़ा। पर वे हरिपद लीन नहीं हुए। क्योंकि वर दूसरे प्रकार का माँग चुके थे। इसने कोई वर नहीं माँगा। अतः हरिपद लीन हुई। उस पद से लौटना नहीं होता। न स पुनरावर्तते।

अतः गोस्वामीजी नरजाति को शिक्षा देते हैं। बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्। अतः काम्य धर्म के अनेक प्रकार हैं। बहुमत लखि श्रुति शास्त्र पुराणन्हि जहाँ तहाँ ''झगरो सो। इन्हें छोड़ो : सबकर मत खग नायक एहा। करिय राम पद पंकज नेहा। अतः इन्हीं में अनुराग कर।

दो: जाति हीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्हि अस नारि।
महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥३६.३०॥

अर्थ : जो नीच जाति की और पापों की जन्मभूमि थी। ऐसी स्त्री को भी जिन्होंने मुक्त कर दिया। अरे महा दुर्बुद्धि मन ! तू ऐसे प्रभु को भूलकर सुख चाहता है।

व्याख्या : जिसका जन्म कर्म दोनों बिगड़ा हुआ। तिस पर स्त्री पाप योनि उसको मुक्त किया भजन पर रीझ के। यह मन महा मन्द है। जयन्त के मन सा है। सुख रूप को भूलकर सुख चाहता है। ऐसे प्रभुहि बिसार : बलि पूजा चाहत नहीं चाहते एकै प्रीति। ऐसा प्रभु क्या भूलने योग्य है।

## ४३. सरोवरतीरगमन प्रसंग

चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा ॥१॥

अर्थ : श्रीरामचन्द्रजी ने उस वन को भी छोड़ दिया और वे आगे चले। दोनों भाई अतुलित बलवान् और मनुष्यों में सिंह के समान हैं। प्रभु विरही की तरह विषाद करते हुए अनेक कथाएँ और संवाद कहते हैं।

व्याख्या : बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गये सरोवर तीरा। सो विरह वर्णन प्रसङ्ग कहते हैं। पुनि सीतहिं खोजत दोउ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई। इसी वन में शबरी का आश्रम था। अब उस वन को भी पीछे छोड़ दिया। एक वन को छोड़ दूसरे में निर्भीक घुसे चले जा रहे हैं। अतः अतुलित बल कहा। रावण के बध का तो तौल रहा। वन में निर्भीक घुसने से नर केहरि कहा। दो सिंह साथ नहीं रहते यहाँ दोनों साथ हैं।

एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहु महा बिरही अति कामी : की अवस्था तो नहीं है। फिर भी बिरही इव विषाद कर रहे हैं। कबहूँ योग बियोग न जाके। योग हुआ हो तो बियोग भी हो। अतः विरही इव विषाद करते हैं। नर गति भगत कृपालु देखाई। कथा भी विरह की संवाद भी विरह का। जो दूसरों में हुई उसकी कथा : संवाद जो आपस में हुआ।

लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा ॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा ॥२॥

अर्थ : हे लक्ष्मण ! जरा वन की शोभा तो देखो। इसे देखकर किसका मन क्षुब्ध न होगा ? पक्षी और पशुओं के समूह सभी स्त्री सहित हैं। मानो ये मेरी निन्दा कर रहे हैं।

व्याख्या : अब कथा आरम्भ हुई। पिछला वन बड़ा था। यह सुहावना है। उद्दीपन उपस्थित हुआ। लक्ष्मण को दिखलाते हैं। कहेहू ते कछु दुख घटि होई : अतः कहते हैं। आलम्बन की प्राप्ति में भी लछिमन से ही कहा था। यथा : जासु बिलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन सोभा।

इस उद्दीपन के समय सबको आलम्बन है। मैं निरालम्ब हूँ। खग मृग तक नारी सहित हैं और मैं नारी रहित हूँ। कोई खग मृग ऐसे नहीं जिन्हें जोड़ा न हो। जो कोई बिना जोड़ा के होता तो मैं अपनी निन्दा न मानता। खग मृग सा भी सुख मुझे प्राप्त नहीं है। वे निन्दा नहीं करते पर मुझे वैसी ही लज्जा हो रही है। जैसी निन्दा सुनने से होतो है : ग्लानि सञ्चारी है। मानों कहते हैं कि इन्होंने नारी को साथ नहीं रक्खा। बड़ा बुरा किया। खग मृग मुझसे बुद्धिमान् हैं।

हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं ॥
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए ॥३॥

अर्थ : हमें देखकर जब हिरनों के झुण्ड भागने लगते हैं तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं : तुमको भय नहीं है। तुम तो साधारण हिरनों से पैदा हुए हो। अतः तुम आनन्द करो। ये तो सोने का हिरन खोजने आये हैं।

व्याख्या : मनुष्य को देखकर ही मृगादि वन्यजन्तु भाग जाते हैं ? किं पुनः धनुर्धारी को देखकर मृग जाति में भी स्त्री अवध्य हैं। अतः भय मृग को ही रहता है। सो मृग भाग खड़े होते हैं कि ये मृग के खोज में आये हैं : मुझे मारेंगे। मनुष्य की आहट पाकर भागते हैं। पर प्रभु की शोभा देखकर खड़े हो जाते हैं। इस पर प्रभु उत्प्रेक्षा करते हैं कि वे मृगी के कहने से भागते भागते रुक गये। मृग जाये : कहकर आर्यपुत्र की भाँति पति को सम्बोधन करती हैं और कहती हैं कि ये मृग के बच्चे को नहीं मारते। ये तो कञ्चनमृग को खोजने आये हैं। असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।

संग[1] लाइ करिनीं करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावन देहीं ॥
शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय ॥४॥

अर्थ : हाथी हथिनियों को साथ लगा लेते हैं। वे मानों मुझे शिक्षा देते हैं। भली भाँति चिन्तन किये हुए शास्त्र को भी बार बार देखते रहना चाहिए। अच्छी तरह सेवा किये हुए भी राजा को वश में नहीं समझना चाहिए।

व्याख्या : हथिनी छूट जाती हैं। पर हाथी बड़ा ख्याल रखते हैं। उसे सङ्ग ले लेते हैं। मुझे सिखाने के लिए नहीं। पर मुझे मालूम होता है कि मुझे सिखावन देते हैं। इन्हें इतनी बुद्धि हुई मुझे न हुई। यद्यपि जानकी ने मुझे कहा था कि जाओ : सत्यसन्ध प्रभु बध कर एही। आनहु चर्म कहति बैदेही। पर मुझे मानना नहीं था।

---

१. यहाँ निदर्शन : तीसरा अलङ्कार है।

मुझे उसका साथ छोड़ना नहीं चाहिए था। मृग तुच्छ जीव हैं। मेरे मन्दबुद्धि तथा लोभ की निन्दा करने लगे। ये गजराज हैं। बड़े हैं। ये निन्दा नहीं करते। सि..वन देते हैं : शास्त्रं सुचिन्तितमपि प्रतिचिन्तनीयमाराधितोऽपि नृपतिः परिशङ्कनीयः।

राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥५॥

अर्थ : और स्त्री को चाहे हृदय में ही क्यों न रक्खा जाय। परन्तु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसी के वश में नहीं रहते। हे तात ! इस सुन्दर बसन्त को तो देखो। प्रिया के बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है।

व्याख्या : अङ्के स्थितापि युवती परिरक्षणीया। शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्। उर माहीं राखिय : आलिङ्गित भी रहे। अतः अङ्के स्थिता और राखिय उर माहीं में भेद नहीं है। भेद इतना ही है कि कुतो वशित्वं कहने के समय में गोस्वामीजी ने युवती पद पहिले दिया। अर्थात् वश में न आनेवालों में युवती की प्रथम गणना है।

विपिन की शोभा कहते कहते मृग दिखायी पड़े तो उसका हाल कहने लगे। तब से हाथी दिखायी पड़ा उससे अपना सम्वाद कहने लगे। अब फिर. वन वर्णन प्रारम्भ किया। विपिन की शोभा का कारण कहते हैं। वसन्त सुहावा। प्रिया के सहित होने से यह उत्सव मनाने का समय था। उनके शृङ्गार के लिए फूलों के गहने बनाते। सो प्रिया के न होने से यह भयदायक हो गया। जे हित रहे करइ तेइ पीरा। मेरे लिए जमाना पलट गया।

दो. बिरह बिकल बलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग, मदन कीन्ह बगमेल॥३७.३१॥

अर्थ : मुझे विरह से व्याकुल बलहीन और बिल्कुल अकेला जानकर कामदेव ने वन भौरों और पक्षियों को साथ लेकर मुझ पर धावा बोल दिया।

व्याख्या : काम से मेरी अनबन बहुत दिनों से चली आती है। एकबार पुष्पवाटिका में मदन ने डङ्का दिया था। मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही। पर उस समय उसका किया कुछ न हो सका। विश्व विजय मेरे हाथ लगी। यथा : बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। तब से जानकी का विरह कभी हुआ नहीं। अतः उसका घात बैठा नहीं। इस समय मैं विरह विकल बलहीन हूँ : जब से सीताहरण हुआ है तब से राक्षस अदृश्य रूप से रामजी के पहरे पर हैं। बराबर रावण को खबर दिया करते हैं। उन्हीं से खबर पाकर रावण ने अंगद से कहा : तब प्रभु नारि विरह बलहीना। और उसके समझ में मैं अकेला हूँ। अतः मदन ने वगमेल किया है। विपिन मधुकर खग उसकी सेना हैं। वसन्त मित्र है।

दो. देखि गयउ भ्राता सहित, तासु दूत सुनि बात ।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब, कटकु हटकि मन जात ।।३७।।

अर्थ : परन्तु जब उसका दूत यह देखा गया कि मैं भाई के साथ हूँ तब उसकी बात सुनकर कामदेव ने मानो सेना को रोककर डेरा डाल दिया है।

व्याख्या : त्रिबिधि बयारि बसीठी आयी। वन में से दूत बाहर निकलकर आया सन्देश लेकर। पर दूत नहीं मालूम पड़ता। यह भेदिया है यथा : रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। ब्रह्मचारी भाई साथ में है। वह सहायक है : समझा बुझा लेता है। यह समाचार पाकर फौज को मानो आगे बढ़ने से रोक दिया। तुमसे लक्ष्मण ! काम भय खाता है। डेरा दे दिया। समझ बूझकर धावा करेगा। कहाँ वगमेल किया था, कहाँ डेरा डार दिया : यह सोचकर कि जब अकेला पावेंगे तब चोट करेंगे।

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिये जनु तानी ।।
कदलि ताल बर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका ।।१।।

अर्थ : विशाल वृक्षों में लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं कि मानो नाना प्रकार के तम्बू तान दिये गये हैं। केला और ताड़ सुन्दर ध्वजा पताका के समान हैं। इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता जिसका मन धीर है।

व्याख्या : डेरा दिया है, इससे पहिले डेरा का ही वर्णन प्रारम्भ किया। एक वृक्ष की लता दूसरे पर जा रही हैं। इस भाँति लाखों तम्बू तने हुए हैं। लताएँ अनेक रंग की और अनेक प्रकार के फूलवाली होती हैं। इसलिए बिबिध बितान कहा। लता के फैलने का भी क्रम एक सा नहीं। परिमाण भी एक सा नहीं।

चतुष्कोण झण्डे को ध्वजा त्रिकोण को पताका कहते हैं। फौज में जहाँ तहाँ ध्वजा पताका फहराते हैं। ध्वजा छोटा पताका बड़ा होता है। कदली ध्वजा और ताल पताका हैं। ध्वजा पताका देखकर मनुष्य का साहस छूट जाता है कि शत्रु आया। ध्वजा पताका देखकर किला छोड़कर भागने का दृष्टान्त इतिहासों में मिला है।

बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानत बने बहु बाना ।।
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए ।।२।।

अर्थ : अनेकों वृक्ष नाना प्रकार के फूले हुए हैं। मानों अलग अलग बर्दी धारण किये हुए बहुत से तीरन्दाज हों। कहीं कहीं सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहें हैं। मानो योद्धा लोग अलग अलग होकर ठहरे हों।

व्याख्या : वसन्त में वृक्ष फूल उठते हैं। एक पेड़ में एकही रंग के फूल होते हैं। वृक्ष नीचे से ऊपर तक फूल से लदे हैं मानों अनेक बीर अनेक प्रकार की बर्दी पहिने हैं। बानैत = सिपाही। धनुर्वेद सभी प्रकार के शास्त्रों की शिक्षा देता

है। अतः शस्त्रकुशल सिपाही को बानैत कहते हैं। डेरा पड़ गया है। इसलिए पलटन में क्रम नहीं है विलग विलग हैं।

सुन्दर पेड़ बहुत नहीं होते। कुछ कुछ दूर पर होते हैं। इसी भाँति सभी सिपाही भट नहीं होते। वे अपने अपने समाज के साथ अलग अलग ठहरे हुए हैं। अतः उनकी उपमा सुन्दर वृक्ष से दी गयी है।

कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेंक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर वर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥३॥

अर्थ : कोयलें कूज रही हैं। मानों मतवाले हाथी चिग्घाड़ रहे हैं। ढ़ेक और महोख पक्षी मानों ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानों सब सुन्दर ताजी घोड़े हैं।

व्याख्या : मत्त गज गर्जते है और पिक कूजते हैं : गर्जहि गज घंटा धुनि घोरा। विरही को पिक का कूजना हाथी के गर्जन सा डरावना प्रतीत होता है। पञ्चम निषाद प्रतीत होता है। आम के बौर पर बैठी कोकिल मालूम होती है कि गजराज के पाँव में सोने का लंगर पड़ा है। ढ़ेक की टाँग लम्बी होती हैं। महोख चौड़े होते हैं। गज का वर्णन करके बार बरदारी के जानवर ऊँट और खच्चर का वर्णन करते हैं।

मोर चकोर कीर की चाल अच्छी होती हैं। इससे इन्हें वरवाजी कहा और कबूतर और हंस की बड़ी भारी गति है। इसलिए इन्हें ताजी कहा। कबूतर और घोड़ों के रंग की भी बड़ी बारीकी है। कबूतरबाजों को खूब रंगों का पहिचान होता है।

तीतर लावक पदचर यूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि सिला दुंदुभी झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥४॥

अर्थ : तीतर और बटेर पैदल सिपाही के झुण्ड हैं। कामदेव की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतों की शिलाएँ रथ और जल के झरने के नगाड़े हैं। पपीहे भाट हैं जो गुण समूह का वर्णन करते हैं।

व्याख्या : तीतर लावा ऊँचे नहीं उड़ते। प्रायेण पैर से ही बड़ी तेजी से चलते हैं। इससे इन्हें पैदल कहा। काम की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। लौकिक सेना का तो वर्णन सम्भव है। वन में जितने पशु पक्षी हैं सब काम की सेना हैं : बन उपवन बाटिका तड़ागा। जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा।

जब रथ से घोड़े खोल दिये जाते हैं तो रथ गिरि शिला की भाँति स्थिर दिखायी पड़ते हैं। झरना का शब्द हुआ करता है मानों दुंदुभी बज रही है। नौबत झर रही है। चातक भाट की भाँति काम का गुण गा रहे हैं। पीय पीय कहकर उसे जगत् का प्रिय बतला रहे हैं। काम की जीत से ही संसार चल रहा है।

मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयार बसीठी आई ॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें ॥५॥

अर्थ : भौरों की गुञ्जार भेरी और शहनाई है। शीतल मन्द और सुगन्धित हवा मानों दूत बनकर आयी है। इस प्रकार चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये कामदेव मानों सब को चुनौती देता हुआ विचर रहा है।

व्याख्या : गुंजत अलि लै चल मकरंदा। ये मधुर मुखर होते हैं। अत: इन्हें शहनाई और नगाड़ा कहा। शहनाई राजा के पास बजती है। जो हवा का झोंका आया सो शीतल मन्द सुगन्धित था। इसलिए इसे बसीठी कहा। सुलह की बात लेकर आया : हमारे शरण आ जाओ प्राण छोड़ देंगे। हम लोगों ने रावण को चुनौती दिया। यह जगत् को चुनौती देता घूमता है। जहाँ जहाँ बसन्त आया है वहाँ वहाँ यही हाल है। अथवा बसन्त की सेना संसार में व्याप्त हो गयी है। अत: सबको एक साथ चुनौती दे रहा है।

लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका ॥
एहि के एक परम बल नारी। तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी ॥६॥

अर्थ : हे लक्ष्मण ! कामदेव की इस सेना को देखकर जो धीर बने रहते हैं जगत् में उन्हीं की वीरों में प्रतिष्ठा होती है। इस कामदेव को एक स्त्री का बड़ा भारो बल है। क्योंकि सांसारिक भोगों में स्त्री शरीर ही सर्वोत्कृष्ट भोग है। उससे जो बच जाय वही श्रेष्ठ योद्धा है।

व्याख्या : पहिले देखने को कहा : लछिमन देखु बिपिन कर सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा। देखहु तात बसन्त सुहावा। इत्यादि। इस भाँति कामियों की दीनता दिखायी। अब धीरों के मन में विरति को दृढ़ करते हैं। कहते हैं कि जिसे क्षोभ न हुआ संसार में उसी का लीक है : रेख खँचाइ कहौं बल भाखी। वही बड़ा धीर है।

लोभ के इच्छा दम्भ बल काम के केवल नारि। नारि में चित्त न हो तो काम अकिञ्चित्कर है। अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि। ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि।

दो. तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन, करहिं निमिष महुँ छोभ ॥३८॥

अर्थ : हे तात ! काम क्रोध और लोभ ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञान के धाम मुनियों के भी मनों को पलभर में क्षुब्ध कर देते हैं।

व्याख्या : बिना कारण वैर करते हैं। इसलिए खल कहा। इन्हीं से प्रयुक्त होकर मनुष्य पापाचरण करते हैं। इसलिए प्रबल खल कहा। त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्। काम एष

क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्ध्यैनमिह वैरिणम्। खल बिनु कारण पर अपकारी। मुनि मन छोभ करहिं छन माँहीं। ये आत्मा के नाश करनेवाले काम क्रोध और लोभ नरक के द्वार हैं। ये बड़े खानेवाले पापी हैं। इन वैरियों को जाने रहो। ये निष्कारण अपकार करते हैं। मुनि के मन में पलक मारते क्षोभ करते हैं।

दो. लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि।

क्रोध के परुष बचन बल, मुनिबर कहहि बिचारि ॥३८.३२॥

अर्थ : लोभ को इच्छा और दम्भ का बल है। काम को केवल स्त्री का बल है और क्रोध को कठोर वचनों का बल है। श्रेष्ठ मुनि विचारकर ऐसा कहते हैं।

व्याख्या : इनका मर्म कहते हैं। इच्छा और दम्भ को स्थान न देने से लोभ मारा पड़ता है। स्त्री की कामना न रहने से काम मारा पड़ता है। परुष वचन के त्याग तथा सहन से क्रोध का जय होता है। मुनियों के ऊपर चोट करता है। अतः मुनियों ने उसका उपाय सोच निकाला है।

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरजामी ॥

कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई ॥१॥

अर्थ : शिवजी कहते हैं : हे पार्वती! श्रीरामचन्द्रजी तीनों गुणों से परे चराचर जगत् के स्वामी और सबके अन्तर के यमन करनेवाले हैं। ऊपर की बातें कहकर : उन्होंने कामी लोगों की बेवसी दिखलायी और विवेकी पुरुषों के मन में वैराग्य को दृढ़ किया।

व्याख्या : विषाद तमोगुण का कार्य है। सरकार गुणातीत हैं। अतः उनसे विषाद का सम्पर्क नहीं। चराचरात्मक जगत् उनका स्व है। जगत् से निर्लेप रहने पर भी वे उसके स्वामी हैं। चेतन जीव के भी प्रेरक हैं। वे विषाद से प्रेरित नहीं हो सकते। यहीं उमा को मोह हुआ था। अतः ज्ञान घाट के वक्ता यहाँ सरकार के स्वरूप का निरूपण करते हैं। अतः उमा सम्बोधन दिया।

यह उनकी लीला है। फिर भी कुछ प्रयोजन होना चाहिए। अतः कहते हैं लोक शिक्षा के लिए : चाटत चाम सँवारत चामहि चाम बिना मन दोन : अवतार भी हो यदि स्त्रो संग्रह करे तो उसे भी विलाप करना पड़ता है। दीनता का प्रदर्शन पण्डितों के हृदय में वैराग्य संदीपनार्थं किया : उमा राम गुन गूढ का साफल्य।

क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया ॥

सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला ॥२॥

अर्थ : क्रोध, काम, लोभ, मद और माया ये सभी श्रीरामजी के दया से

छूट जाते हैं। वह नट : भगवान् जिस पर प्रसन्न होता है वह मनुष्य इन्द्रजाल : माया : में नहीं भूलता।

व्याख्या : सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही। तुम्हारी कृपा तुम्हहि रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चंदन। अतः सरकार की कृपा से माया ही छूट जाती है। कामनादि तो उसके अधीन हैं।

छूटने की प्रक्रिया कहते हैं। माया इन्द्रजाल है। सरकार नट हैं। यह संसार उसी नट का फैलाया हुआ इन्द्रजाल है। नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापै माया। शेष जगत् उसी में भूला फिरता है। नट तो इन्द्रजाल पसारनेवाला है। उसका कृपापात्र इन्द्रजाल में नहीं भूलता वह कैसे भूलेगा।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥३॥

अर्थ : हे उमा ! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ : हरि का भजन ही सत्य है। यह सारा जगत् तो स्वप्न की भाँति असत् है। फिर प्रभु श्रीरामजी पम्पा नामक सुन्दर और गहरे सरोवर के तीर पर गये।

व्याख्या : कोई ऐसा कृपापात्र है भी जो इस इन्द्रजाल में न भूला हो। तो शिवजी पहिले अपने को ही उदाहरण रूप में देते हैं। अतः अपना अनुभव कहते हैं। मुझे जगत् सपना सा मिथ्या प्रतीत होता है : व्यावहारिक सत्य स्वीकार नहीं है : दिखायी मुझे भी पड़ता है। पर मुझे उसके सत्यता का भान नहीं होता। सब प्रातिभासिक है। मुझे हरि भजन सत्य मालूम होता है। हरि भजन से ही संसार के मिथ्यात्व का निश्चय होता है। हरि भजन मात्र से सत् की प्रतीति होती है।

पंपा सरहि जाहु रघुराई। सो सरकार वहाँ पहुँचे। गम्भीर सरोवर है और सुन्दर है। उत्तर में मानस सरोवर है और दक्षिण में पम्पा है। दोनों सुभग गम्भीर हैं। देखने में सुन्दर अवगाहन में गम्भीर। गहराई आँख से दिखायी पड़ती है।

संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥४॥

अर्थ : उसका जल सन्तों के हृदय जैसा निर्मल है। मन को हरनेवाले सुन्दर चार घाट बँधे हुए हैं। भाँति भाँति के पशु जहाँ तहाँ जल पी रहे हैं। मानो उदार दानी पुरुषों के घर याचकों की भीड़ लगी हो।

व्याख्या : गहराई दिखायी पड़ने के लिए निर्मल जल चाहिए। अतः कहते हैं सन्त हृदय की भाँति निर्मल हैं। सन्त लोग गम्भीर होते हैं। परन्तु ऐसे निर्मल हृदय के होते हैं कि कोई बात छिपाते नहीं। उनके हृदय की बात स्पष्ट मालूम हो जाती है। मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्। ऐसा निर्मल हैं कि तल में पड़ी हुई वस्तु दिखायी पड़ती है। उस जंगल में भी घाट बँधा हुआ है। राजा की सावधानी द्योतित होती है।

बड़ा भारी सरोवर है। बहुत दूर तक फैला हुआ है। अतः विविध मृग बिना बाधा जल पी रहे हैं। सरोवर को उपमा उदार गृह से दिया। मृगों की उपमा याचकों से दिया। सबकी प्यास मिट रही है। मनोरथ पूर्ण हो रहा है। बस्ती सन्निकट नहीं है।

दो. पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिऐ, जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥३९. क॥

अर्थ : घनी पुरइनों के आड़ में जल का जल्दी पता नहीं मिलता। जैसे माया के ढँके रहने के कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दीखता।

व्याख्या : देखने में पुरइन पुरइन दिखायी पड़ती है। पत्तों ने जल को ढँक रक्खा है। कहाँ जल है इस बात का पता नहीं चलता और जल है सभी जगह। इसी भाँति निर्गुण ब्रह्म का पता नहीं चलता माया ही दिखायी पड़ती है जब कि निर्गुण ब्रह्म सर्वत्र है। इससे माया का अपने अधिष्ठान का ही आवरण करना दिखलाया। माया की तुच्छता भी दिखलायी। परिसीमित होना भी दिखलाया।

दो. सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल मांहि।
जथा धर्मसीलन्ह के, दिन सुख संजुत जांहि ॥३९.ख॥

अर्थ : उस सरोवर के अत्यन्त अथाह जल में सब मछलियाँ सदा एक समान सुखी रहती हैं। जैसे धर्मशील पुरुषों के सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं।

व्याख्या : धर्म वारि है। धर्मशील मछली है। अगाध धर्म होने से दुःख आ ही नहीं सकता : सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। एक रस यथा : तुलसी पंछिन के पिये घटै न सरवर नीर। धर्म किये धन ना घटै जो सहाय रघुबीर। अति अगाध जल न हो तो एक रस सुख नहीं रहता। वर्णाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग। चलहिं सदा पावहि सुखहिं नहि भय सोक न रोग। धर्मशीलन की उपमा मछलियों से दिया और धर्म की उपमा अगाध जल से दिया। धर्मो रक्षति रक्षितः। गोस्वामीजी प्रकृति वर्णन में भी उपदेशात्मक उपमाएँ देते हैं। यथा वर्षा शरद वर्णन में दिया।

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जल कुक्कुट कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥१॥

अर्थ : उसमें रंगविरंगे कमल खिले हुए हैं। बहुत से भौंरे मधुर स्वर से गुञ्जार कर रहे हैं। जल के मुर्गे और राजहंस बोल रहे हैं मानो प्रभु को देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों।

व्याख्या : फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुण ब्रह्म सगुन भए जैसा। जल को निर्गुण, पुरइन को माया, गुण को कमल कहा। गुणों में नाना रङ्ग है : मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाये। माया से ऊपर माया में ही ब्रह्म सगुण रूप से व्यक्त होते हैं।

जलपक्षी सिर उठा उठाकर बोलते हैं : मानो प्रभु की प्रशंसा करते हैं। ये मृगों की भाँति निन्दा नहीं करते। ये निर्गुण ब्रह्म में विचरण करनेवाले हैं। इनकी वाणी सुन्दर है। पर सगुण ब्रह्म की प्रशंसा करते हैं। सगुण ब्रह्म दर्शनीय हैं।

चक्रवाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई॥
सुन्दर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥२॥

अर्थ : चक्रवाक बगुले आदि पक्षियों का समुदाय देखते ही बनता है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर पक्षियों की बोली बड़ी सुहावनी लगती है मानो रास्ते में जाते हुए पथिक को बुलाये लेती हों।

व्याख्या : सरोवर जलपक्षियों से भरा है। अनेक रङ्ग के पक्षी चकवा बगुला आदि से बड़ी शोभा हो रही हैं। देखते ही बनता है कहते नहीं बनता। कहा भी है : वयांसि तद् व्याकरणं विचित्रम्।

चहचहाहट सुनकर पथिक का जी चाह जाय कि वहाँ चलकर विश्राम कर लें। विश्राम करने की इच्छा नहीं है। इसलिए जात पथिक कहा। वे पक्षी देखने में भी सुन्दर और उनको गिरा भी मनोहर है।

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाए॥
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस पनास रसाला॥३॥

अर्थ : उस झील के समीप मुनियों ने आश्रम बना रक्खे हैं। उसके चारों ओर वन के सुन्दर वृक्ष हैं। चम्पा मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि।

व्याख्या : महातीर्थ है। अतः उसके सन्निकट मुनि लोग बसे हैं। धर्म कार्य में जल का बराबर काम पड़ता है। अतः तीर में ही कुटिया छा रक्खा है। पेड़ और झाड़ियों के बीच में कुटियाँ हैं।

अब वृक्ष और झाड़ियों का नाम गिनाते हैं। ये सब वृक्ष मुनियों के काम के हैं। आठ में से चार फल फूलवाले हैं। शेष फूलवाले या पत्तेवाले हैं।

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ॥४॥

अर्थ : बहुत प्रकार के वृक्ष नये नये पत्तों और पुष्पों से युक्त हैं जिस पर भौरों के समूह गुञ्जार कर रहे हैं। स्वभाव से हो शीतल, मन्द, सुगन्धित एवं मन को हरनेवाली हवा सदा बहती रहती है।

व्याख्या : नये पल्लव और कुसुम से वृक्ष की शोभा और चंचरीक पटली से पुष्प पल्लव की शोभा है। मारे आनन्द के गान कर रहे हैं। क्योंकि पत्र पुष्प में रसबाहुल्य है। जितना गिनाया है सो उपलक्षण मात्र है। अनेक प्रकार के वृक्ष हैं।

ये चञ्चरीक निकट हैं। अतः उनका गान करना कहा : क्योंकि कमलवाले चञ्चरीकों को ऊपर कह चुके हैं कि वे गुञ्जारते थे। ये गान करते हैं।

और जगह केवल वसन्त में शीतल मन्द सुगन्ध युक्त वायु बहता है। यहाँ स्वभाव से ही बहा करता है। जल के निकट होने से शीतल। वन से घिरे रहने के कारण मन्द। फूलों के योग से सुगन्ध।

कुहू कुहू कोकिल धुनि करही। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरही ॥५॥

अर्थ : कोयलें कुहू कुहू ध्वनि कर रही हैं। उनकी रसीली बोली सुनकर मुनियों का भी ध्यान टूट जाता है।

व्याख्या : यह बसन्त में ही बोलती है। इसलिए इसके लिए सन्तत शब्द का प्रयोग नहीं किया। ये गज माते की भाँति नहीं कूजती हैं। पञ्चम स्वर से बोल रही हैं। ये सब सामग्री भी तो उद्दीपन की है। पर इन्हें लक्ष्मणजी को नहीं दिखलाते : कुवलय बिपिन कुन्त बन सरिसा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा। नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू : नहीं कहते। विरह वर्णन पम्पासर तक है। यथा : बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गये सरोवर तीरा। क्योंकि मुनियों का आश्रम आगया। यथा : ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये।

दो. फल भारन नमि बिटप सब, रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ ॥४०.३४॥

अर्थ : फलों के बोझ से झुककर सारे वृक्ष पृथ्वी के पास आ लगे हैं। जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर विनय से झुक जाते हैं।

व्याख्या : परोपकारियों को सुसम्पत्ति का धारण करना भी बोझ है। जल्दी बोझा उतरे। इसलिए वृक्ष झुककर पृथ्वी के निकट हो जाते हैं तोड़नेवाले के सुभीते के लिए। परोपकारी के पास कुसम्पत्ति तो आ ही नहीं सकती। सुसम्पत्ति भी बोझ हो जाती है। संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन की करनी। नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति गुणिनो जनाः। शुष्ककाष्ठानि मुर्खाश्च न नमन्ति कदाचन।

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा ॥
देखी सुंदर तरुबर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया ॥१॥

अर्थ : श्रीरामजी ने अत्यन्त सुन्दर तालाब देखकर स्नान किया और परम सुख पाया। एक सुन्दर उत्तम वृक्ष की छाया देखकर श्रीरघुनाथजी छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित बैठ गये।

व्याख्या : परम रम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत। अति रुचिर से परम रम्य कहा। मज्जन कीन्ह पंथ स्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ : कहने से जाना गया कि वन ने दुःख दिया। तालाब ने सुख दिया। इससे

पुण्य तीर्थ का माहात्म्य दिखलाते हैं। जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिनहि देवसर सरित सराहहिं। जिस सम्पत्ति से परोपकार नहीं वह सुसम्पत्ति भी नहीं है। क्योंकि उसकी प्रथम गति नहीं है। यथा : सो धन धन्य प्रथम गति जाकी।

जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहि कल्पतरु तासु बड़ाई। यहाँ वर शब्द श्लिष्ट है। वट के पेड़ तले बैठे। यथा : तेहि गिरि पर वट बिपट बिसाला। अविरल छाँह सुखद सब काला। रघुराई हैं। ऐसे स्थान पर बैठते हैं जहाँ दरबार लग सके। अनुज सहित बैठे। अनुज ही सहाय हैं। यथा : देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।

## ४४. प्रभु नारद संवाद

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥२॥

अर्थ : फिर वहाँ सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने अपने धाम को चले गये। कृपालु रामजी परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणजी से रसीली कथाएँ कह रहे हैं।

व्याख्या : सुरन्ह बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कह गति घर घर की। तथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये। देवता और मुनि दोनों ने फिर याद किया था। सो देवमुनि के लिए सरकार ने राक्षसों से वैर किया। अतः उन लोगों ने स्तुति की और चले गये। ईश्वर बुद्धि से आये। अतः सरकार ने प्रणाम नहीं किया।

सदा भाई से कहा करते हैं। सूपनखा के आने पर कथा छूटी है। एहि बिधि गये कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीति। फिर विरह का नाट्य होने लगा। नारदजी के शाप को अङ्गीकार करके तब तक अभिनय किया जब तक कि नारदजी को असह्य न हो जाय। नारद को सोच होते ही शाप का साफल्य हो गया। अब परम प्रसन्न बैठे हैं।

बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेखी॥
मोर स्राप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुःख भारा॥३॥

अर्थ : भगवान् को विरह युक्त देखकर नारदजी के मन में विशेष रूप से सोच हुआ कि मेरे ही शाप को स्वीकार करके श्रीरामजी नाना प्रकार के दुःखों का भार सह रहे हैं।

व्याख्या : कबहूँ योग बियोग न जाके। उसको विरहवंत देखकर नारदजी को विशेष सोच हुआ। अर्थात् सोच तो सबको हुआ। नारद को अपनी करतूत समझकर अधिक सोच हुआ। मुझ पर इतनी कृपा की कि मेरे कहने पर भी मेरी बात नहीं हटायी। इन्हें कर्म शुभाशुभ बाधा नहीं कर सकता। फिर भी मेरे शाप

को अङ्गीकार किया। अब : करिहैं कीस सहाय तुम्हारी। इसे सत्य करने के लिए सुग्रीव की शरण जा रहे हैं। भूमि सयन बल्कल बसन असन कन्द फल मूल : चल ही रहा है।

ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई॥
येह बिचार नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना॥४॥

अर्थ : ऐसे : भक्तवत्सल प्रभु को जाकर देखूँ। फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा। यह विचारकर नारदजी हाथ में वीणा लिये हुए वहाँ गये जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे।

व्याख्या : प्रभु के अवतार तो अनेक हुए पर जैसी भक्तवत्सलता रामावतार में दिखा रहे हैं ऐसी तो कभी देखी नहीं गयी। अपने क्षुद्र भक्त के शाप को सत्य करने के लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं। इस भक्तवत्सलता का तो कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित करना चाहिए और वह कीर्तिस्तम्भ अचल तभी होगा जब रामनाम मत्स्य कूर्म वाराहादि नामों से अधिक महत्त्ववाला हो। इस समय मुझ पर सरकार की बड़ी भारी दया का उद्रेक है। इस समय जाकर वरदान के रूप में यही बात माँगने से बहुत सम्भव है कि मिल जाय। क्योंकि यही ऐसे वरदान माँगने का अवसर है है। फिर ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। अतः नारदजी ने परम वात्सल्यमयी भगवान् की मूर्ति के दर्शन करने का निश्चय किया।

वीणापाणि हैं। गाते बजाते चले। सुख आसीन तहाँ दोउ भाई। कथा हो रही है।

गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी॥
करत दंडवत लिये उठाई। राखे बहुति बार उर लाई॥५॥

अर्थ : वे कोमल वाणी से प्रेम के साथ बहुत प्रकार से बखान बखानकर रामचरित्र का गान करते हुए चले आ रहे थे। दण्डवत् करते देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने नारदजी को उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगाये रक्खा।

व्याख्या : वीणा से : कर्मणा। गावत रामचरित : वाचा। प्रेम सहित : मनसा। ऐसी मृदु वाणी कि वीणा का साथ दे सके।

दण्डवत कर नहीं पाये और प्रभु ने उठा लिया। अपराधी अपने को मानकर दण्डवत प्रणाम करते हैं। बहुत बार उर लाई। आश्वासन के लिए सोच मिटाने के लिए। तुम मुझे बड़े प्रिय हो। तुम्हारे शाप के अनुसार बर्त्तने में मुझे सुख है। देखो मैं परम प्रसन्न हूँ। ये सब भाव बहुत देर तक हृदय लगाने से द्योतित हुए।

स्वागत पूछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे॥६॥

अर्थ : फिर कुशल पूछकर पास बिठा लिया। लक्ष्मणजी ने आदर के साथ उनके चरण धोये।

व्याख्या : स्वागत कर निकट आसन दिया। ईश्वर भाव लेकर आये हैं। इसलिए स्वयं पैर नहीं धोया। लक्ष्मणजी ने आदर से धोया। शास्त्र मर्यादा का पालन हो रहा है। पेड़ के नीचे बैठे हैं। फिर भी तृणभूमि, उदक और सूनृत से नारदजी का आतिथ्य हो रहा है। यथा : तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी तु सूनृता। एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन। मनु।

दो. नाना बिधि बिनती करि, प्रभु प्रसन्न जियँ जानि।
नारद बोले बचन तब, जोरि सरोरुह पानि ॥४१.३५॥

अर्थ : बहुत प्रकार से विनती करके और प्रभु को मन में प्रसन्न जानकर तब नारदजी कमल सदृश हाथों को जोड़कर वचन बोले।

व्याख्या : अपराध क्षमापन के लिए पहिले नाना विधि से विनती की। जब देख लिया कि प्रभु की मेरे ऊपर प्रसन्नता है। तब हाथ जोड़कर बोले : मनोरथ पूर्ति के लिए विनय करने का उपयुक्त समय वही है जब दाता को अपने ऊपर प्रसन्नता हो।

सुनहु उदार सहज रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बर दायक॥
देहु एक बर मागउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी ॥१॥

अर्थ : हे स्वभाव से उदार श्रीरघुनाथजी ! सुनिये। आप सुन्दर अगम और सुगम वर के देनेवाले हैं। हे स्वामी ! मैं एक वर माँगता हूँ वह मुझे दीजिये। यद्यपि आप अन्तर्यामी होने के नाते सब जानते ही हैं।

व्याख्या : सहज उदार होने का कारण देते हैं : रघुनायक रघुकुल ही सहज उदार हैं। मंगन लहइ न जिनके नाहीं। सरकार तो उस कुल के नायक हैं। सहज उदार से ही मनोवाञ्छित की प्राप्ति होती है। यथा : माँगहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि। माँगनेवाले से चूक हो तो सरकार सँभाल लेते हैं। अवढर दानी नहीं हैं। यथा : कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी। उदारता बड़ी है पर सुन्दरता पर भी ध्यान रहता है। अगम वर को भी सुगम की भाँति दे देते हैं : एक लालसा बड़ि उर मांहीं। सुगम अगम कहि जात सो नांहीं। तुमहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लागि मोहि निज कृपनाई।

स्वामी को छोड़कर किससे माँगे। स्वामी ही समर्थ हैं। जो माँगेंगे वह उनका स्व है। उदार से अनेक वर माँगा जा सकता है। पर मैं एक ही वर माँगता हूँ जिससे अवश्य मिले। सो आप जानते हैं। क्योंकि आप ही माँगने के लिए प्रेरणा कर रहे हैं : को जिय की रघुबर बिन बूझा। पर वर में शब्द प्रमाण है। इसलिए माँगता हूँ।

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम्ह मागी ॥२॥

अर्थ : श्रीरामजी ने कहा : हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो। क्या मैं अपने भक्तों से कभी कुछ छिपाव करता हूँ ? मुझे ऐसी कौन सी वस्तु प्रिय लगी है जिसे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम नहीं माँग सकते ?

व्याख्या : जो वस्तु जिसे प्रिय होती है। उसे वह छिपाकर रखता है कि दूसरा ले न ले। परन्तु उसी वस्तु को उसे अपने प्रेम पात्र के देने में हर्ष होता है। भगवान् नारदजी से कहते हैं कि तुम मेरे स्वभाव को जानते हो कि मुझे भक्त के समान कोई प्रिय नहीं है। यथा : मोरे हित हरि सम नहि कोऊ। मैंने अपनी स्वतन्त्रता भक्त को दे रक्खी है। उनके परतन्त्र रहता हूँ। अहं भक्तपराधीनः ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। मुझे ऐसी कौन वस्तु प्रिय लगी जिसे तुम नहीं माँग सकते। अतः माँगने में सङ्कोच क्यों करते हो ? यहीं पर : तब बिबाह मैं चाह्यौ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा : इस शङ्का का बीज पड़ गया। नारदजी को याद आगया कि वह वस्तु विश्व मोहिनी थी। जिसे माँगने पर भी मुझे न देकर स्वयं ले लिया। यथा : दुलहिन लै गये लच्छि निवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा।

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें ॥
तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागउँ करउँ ढिठाई ॥३॥

अर्थ : मुझे भक्त के लिए कुछ भी अदेय नहीं है। ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो। तब नारद जी हर्षित होकर बोले : मैं ऐसा वर माँगता हूँ यह धृष्टता करता हूँ।

व्याख्या : यह न समझो कि मैं कह दूँगा : अदेयस्तु वरो ह्येषः। अतः सङ्कोच छोड़कर माँगो : सकुच बिहाय माँगु नृप मोहीं। मोरे नहिं अदेय कछु तोहीं। विश्वास छोड़ने में अकल्याण है। भक्तिपथ से पतन हो जाता है। नारद का माँगने में साहस न पड़ते देखकर प्रोत्साहन के लिए पहिले ही देने के लिए वचनबद्ध हो रहे हैं। बड़ी इच्छा है कि नारद माँगें।

नारदजी प्रसन्न हो गये कि मनोवाञ्छा सिद्ध हुई। इनको अवस्था ठीक स्वायम्भू मनु सी है। वर माँगने में आगा पीछा हो रहा है। बात ढिठाई की है। सरकार के नामों के महत्त्व में उलट फेर करने का जीव को कौन सा अधिकार है। ऐसा वर माँगना अनधिकार चेष्टा है।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। स्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥४॥

अर्थ : यद्यपि प्रभु के अनेकों नाम हैं और वेद करते हैं कि वे सब एक से एक बढ़कर हैं। तो भी हे नाथ ! राम नाम और पापरूपी पक्षियों के समूह के लिए वधिक होने में सब नामों से बढ़कर हो।

व्याख्या : ढिठाई को स्पष्ट करते हैं। राम अनन्त अनन्त गुनानी। जन्म कर्म अनन्त नामानी। उन नामों में छोटा बड़ा कोई नहीं। एक से एक अधिक है।

इसमें वेद प्रमाण है। उसमें कुछ बोलना वेद में हाथ लगाना है। वेद सरकार की वाणी है।

जिस अवतार में इतनी भक्तवत्सलता है कि मेरी बात : शाप : झूठी न हो इसलिए सरकार इतना कष्ट सहन कर रहे हैं। उस अवतार का नाम सब नामों से अधिक हो। वेद में हस्तक्षेप न हो। इसलिए कहते हैं कि अघ खग वधिकत्व में अधिक हो। वधिक बड़े बड़े उपाय से चिड़िया फँसाता है। यह नाम अघखग को निर्मूल कर दे।

दो. राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल, बसहुँ भगत उर ब्योम ॥४२॥

अर्थ : आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है। उसमें राम नाम यही पूर्णचन्द्र होकर औरं अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तों के हृदयरूपी निर्मल आकाश में निवास करें।

व्याख्या : भक्ति में लेशाविद्या स्वीकार है। इसी से राका रजनी कहा। उसमें पूर्णचन्द्र राम नाम हो। चन्द्र की भाँति मायान्धकार का नाशक हो। पर अकेले चन्द्र की भी शोभा नहीं और नाम भी तारों की भाँति साथ रहें। शोभा बढ़ावें। पर महावीर्य राम नाम ही में हो। भक्तों के दहराकाश में सदा चाँदनी बनी रहे।

दो. एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति, प्रभु पद नायउ माँथ ॥४२.३६॥

अर्थ : कृपासागर श्रीरघुनाथजी ने मुनि से : ऐसा ही हो कहा। तब नारदजी ने मन में अत्यन्त हर्षित होकर प्रभु के चरणों में मस्तक नवाया।

व्याख्या : कृपासिन्धु हैं। करुणानिधि हैं। नारद पर कृपा होती ही जाती है। रघुनाथ हैं। अतः दे दिया। एवमस्तु कहा। कृतकृत्य होकर नारदजी प्रणाम करते हैं। मनोरथ की पूर्ति से अति हर्ष है।

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी॥
राम जबहि प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया॥१॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी को अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले : हे रामजी ! हे रघुनाथजी ! सुनिये। जब आपने अपनी माया को प्रेरित करके मुझे मोहित किया था।

व्याख्या : नारदजी ने देखा कि वर देने पर भी प्रसन्नता में कुछ भी अन्तर न पड़ा। अतः निश्चय किया कि इस समय अति प्रसन्न हैं। जो जो काम लेना हो उसे लेने का यही समय है। जो कुछ प्रष्टव्य है उसके पूछ लेने का भी यही समय है। अतः नारदजी मृदु वाणी बोले।

जब काम मुझे मोहित न कर सका। आपकी माया से मैं मोहित हुआ। आप रघुराया हो। अभिमान नहीं रहने देता। यथा : श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी।

तब बिवाह मैं चाहैं कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥२॥

अर्थ : तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु ! आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया। प्रभु बोले : हे मुनि ! सुनो। मैं तुम्हें उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा : भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं।

व्याख्या : मैंने कोई अनुचित बात नहीं चाही। विवाह करना धर्मविरुद्ध काम है। इसकी प्रशंसा शास्त्रों में है। यथा : धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। सो उसमें आप ही बाधक हुए। स्वयं व्याह कर लिया। विश्वमोहिनी को स्वयं लेने के अतिरिक्त और कौन कारण हो सकता है। जिससे आपने मुझे व्याह न करने दिया और आप कहते हैं : जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे। ये दोनों बातें तो असमञ्जस हैं।

सरकार ने उत्तर दिया कि कार्य भार बढ़ जाने के भय से मैं हतोत्साह नहीं हूँ। अतः उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो लोग सबका भरोसा छोड़कर मुझे भजते हैं : जिन्हें दूसरे किसी का भी भरोसा हो उन लोगों के लिए नहीं कहता। जिन्हें केवल मेरा भरोसा है उनके लिए कहता हूँ।

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई ॥३॥

अर्थ : मैं सदा उनकी वैसे ही रखवारी करता हूँ जैसे माता बालक की रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब आग और साँप को पकड़ने दौड़ता है तो वहाँ माता उसे : अपने हाथों अलग करके बचा लेती है।

व्याख्या : दूसरे की भी भरोसा रखनेवालों की सदा रखवारी नहीं करता। सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे। उन्हें किसी का आसरा नहीं होता। इसलिए मैं भी उन्हें दूसरों पर नहीं छोड़ता। जैसे माँ बच्चे की रखवारी करती है। उसकी सब चेष्टाओं पर ध्यान रखती है।

शिशु वच्छ अर्थात् छोटा : नादान बच्चा। यथा : बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुबर तात। प्यार बच्चा : अंगारा खूब चमकता है और सर्प बड़ा सुन्दर है। यह देखकर पकड़ने के लिए दौड़ता है। यहाँ विषय अनल है काम सर्प है। यथा : मनकरि बिषय अनल बन जरई। काम भुजंग डसत जब जाही। उस समय माँ लड़के की इच्छाभिघात का ख्याल नहीं करती। बलपूर्वक हटा लेती है।

प्रौढ़ भए तेहि सुत पर माता । प्रीति करै नहिं पाछिलि बाता ।।
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी । बालक सुत सम दास अमानी ।।४।।

अर्थ : किन्तु जब वह सयाना हो जाता है तब उस पुत्र पर माता प्रेम तो करती है । परन्तु पिछली बात नहीं रहती । ज्ञानी मेरे सयाने पुत्र के समान है और अपने सामर्थ्य का मान न करनेवाले सेवक मेरे शिशु पुत्र के समान है ।

व्याख्या : वही बच्चा जब कुछ बड़ा हो जाता है फिर भी माँ प्रीति करती है । पर प्रत्येक चेष्टा पर ध्यान नहीं रखती । माँ जानती है कि इसे इतना ज्ञान है कि भले बुरे को पहिचान सकता है । इसी भाँति ज्ञान के कारण ईश्वर की ओर से देखरेख कम हो जाती है कि ज्ञान है सँभाल लेगा ।

ज्ञानी प्रौढ़ तनय है । अमानी दास बालक शिशु है । यहाँ बच्छ शिशु का अर्थ खुल गया इसका अर्थ बालक शिशु है ।

जनहि मोरे बल निज बल ताही । दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ।।
येह बिचारि पंडित मोहि भजहीं । पाएहुँ ज्ञान भगति नहि तजहीं ।।५।।

अर्थ : मेरे सेवक को केवल मेरा ही बल रहता है और उसे : ज्ञानी को अपना बल होता है । पर काम क्रोधरूपी शत्रु तो दोनों के लिए हैं । ऐसा विचारकर बुद्धिमान् लोग मुझको ही भजते हैं । वे ज्ञान प्राप्ति होने पर भी भक्ति को नहीं छोड़ते ।

व्याख्या : भेद का कारण कहते हैं । भक्त को मेरा भरोसा और ज्ञानी को अपना भरोसा रहता है । यथा : तामैश्वर्य्यंपरां काश्यपः परत्वात् । आत्मैकपरां बादरायणः । ईश्वर का आश्रय करना यह काश्यप का मत है । आत्मा का आश्रय करना बादरायण का मत है । मेरी ओर से भेद नहीं है । भेद ज्ञानी की ओर से है । उसने मेरा भरोसा छोड़ा । अपना भरोसा किया । काम क्रोध तो ज्ञानी और भक्त दोनों के शत्रु हैं ।

पण्डित अपना भरोसा नहीं रखते । यही उनकी पण्डिताई है । जिसमें हर समय मुझे उन पर ध्यान रखना पड़े । ज्ञानी होकर भी भक्ति करते हैं । ज्ञानी होकर यदि मुझे न भजा तो उसे यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ । वाक्य ज्ञान कुशल मात्र हैं ।

दो. काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि ।
तिन्ह मँह अति दारुन दुखद, मायारूपी नारि ।।४३.३७।।

अर्थ : काम, क्रोध, लोभ, और मद आदि अज्ञान की प्रबल सेना है । इसमें माया की साक्षात् मूर्ति स्त्री तो अत्यन्त दारुण दुःख देनेवाली है ।

व्याख्या : ये सब मोह की फौज हैं । ये सब दारुण दुःखद हैं । उनमें स्त्री तो मायारूपिणी ही है । यह अति दारुण दुःखद है । काम क्रोधादि तो इसके सेवक हैं ।

मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ॥
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ॥
ज्ञानी तापस शूर कवि, कोविद गुन आगार ।
केहि कै लोभ बिडंबना, कीन्ह न येहि संसार ॥
यह सब माया कर परिवारा । प्रबल अमित को बरनै पारा ॥
सिव चतुरानन जाहि डराहीं । अपर जीव केहि लेखे माँहीं ॥

मायारूपी नारी का भाव यह कि वस्तु विचार से कुछ नहीं ठहरती । अब नारी का मायामयत्व बतलाते हैं ।

सुनु मुनि कह पुराण स्रुति संता । मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ॥
जप तप नेम जलासय झारी । होइ ग्रीषम सोखइ सब नारी ॥१॥

अर्थ : हे मुनि ! सुनो । पुराण वेद और सन्त कहते हैं कि मोहरूपी वन को विकसित करने के लिए स्त्री वसन्त ऋतु के समान है । जप तप नियमरूपी सम्पूर्ण जलाशयों को स्त्री ग्रीष्म रूप होकर सर्वथा सोख लेती है ।

व्याख्या : पुराण, श्रुति के कहने पर भी सन्तों के कहने की अपेक्षा रहती है कि अमुक धर्म शिष्टानुगृहीत है कि नहीं । मोह विपिन है । महा कष्टकर इसमें जो भूला सो बाहर नहीं निकल सकता । डरपहि धीर गहन सुधि आये । नारि वसन्त है । मोह विपिन पल्लवित पुष्पित हो उठता है । मोह विपिन यों ही दुःखद है । फिर जहाँ स्त्री आयी तब फिर क्या कहना है । अब बाल बच्चे होंगे । माया बढ़ती ही जावेगी ।

१. जप २. तप ३. नियम से ही कार्य को क्षमता होती है । १. जपात् सिद्धि प्रजायते । २. तप बल रचै प्रपंच बिधाता । तप अधार सब सृष्टि भवानी । ३. नियम : नेम प्रेमु शंकर कर देखा । अविचल हृदयँ भगति कै रेखा । प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला । सो ये तीनों जलाश्रय की भाँति उपयोगी है । जलाश्रय तीन सर कूप वापी हैं । यथा : बन बाग उपवन बाटिका सर कूप वापी सोहहीं । ग्रीष्म में चाहे कोई सर वापी कूप बिना सूखे रह जाय । पर नारी तो सब जप तप नियम सोख ही लेती हैं : मुनि अति बिकल मोह मति नाठी । जप तप कछु न होइ तेहि काला : वन को बढ़ाती है जल को सुखाती है ।

काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहि हरषप्रद बरषा एका ॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥२॥

अर्थ : काम क्रोध मद और डाह आदि मेढक हैं । इनको वर्षाऋतु होकर हर्ष प्रदान करनेवाली एक मात्र स्त्री है । बुरी वासनाएँ कुमुदों के समूह हैं । उनको सदैव सुख देनेवाली यह शरद् ऋतु है ।

व्याख्या : सर सूखने से भेकों को नष्ट हो जाना चाहिए । सो उनके लिए वर्षा हो जाती है । मरे भी जी उठते हैं । ये काम क्रोध मत्सर भेक हैं । ये व्यर्थ

टरटराया करते हैं। कभी राम नहीं कहते। जीभ सो दादुर जीभ समाना। एका का अर्थ बेजोड़ है।

कुमुद रात को फूलते हैं। शरदऋतु में इनकी बढ़ोत्तरी होती है। दुर्वासना रात को बढ़ती है। चोरी जारी रात में ही होती है। इन्हें शरद ऋतु होकर बढ़ाती है। भाव यह कि षड्ऋतुरूपा होकर कालचक्र रूपिणी है। एक साथ अनेक ऋतु का कार्य कर रही है। और सब भाँति हानिकारक है।

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहै सुख मंदा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥३॥

अर्थ : समस्त धर्म कमलों के झुण्ड हैं। यह मन्द : विषयजन्य सुख देनेवाली स्त्री हिम ऋतु होकर उन्हें जला डालती है। फिर मानसरूपी जवास का समूह स्त्रीरूपी शिशिर ऋतु को पाकर हरा भरा हो जाता है।

व्याख्या : धर्म कमल है। हिमऋतु सब कमलों का नाश करती है। एक कमल भी नहीं बचता। स्त्री सुख देकर धर्म का नाश करती है और वह सुख भी मन्द सुख है। आपातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः। नारदजी के चरण पंकज का भाव ही हरण कर लिया। कहने लगे : स्वारथ साधक कुटिल तुम सदा कपट व्यवहार। सरकार के विमुख हो गये। और : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

जवास में कांटा ही काँटा होता है। ममता भी जवास की भाँति कण्टकाकीर्ण है। कलेजे में चुभती है। शिशिर ऋतु में इसकी वृद्धि होती है। वर्षा में नाश होता है। सो काम क्रोधरूपी भेक के लिए वर्षा होने पर भी यह ममता जवास के लिए शिशिर हो जाती है। चार को सुख और दो को दुःख देती है।

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ॥
बुधि बलु सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥४॥

अर्थ : पापरूपी उल्लुओं के समूह के लिए यह स्त्री सुख देनेवाली घोर अन्धकारमयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य ये सब मछलियों को फाँसने के लिए स्त्री वंशी के समान है। चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं।

व्याख्या : मोह निसा सब सोवनिहारा। सो यह अमावस की रात्रि है। इसमें किसी का प्रचार नहीं। केवल पाप उलूक का प्रचार इसमें होता है। पुण्य पक्षी तो इसमें अन्धे रहते हैं। स्त्री पाने पर न भीतर का ज्ञान रहता है न बाहर का।

जप तप नियम जलाश्रय के बुद्धि बल शील सत्य में सब मीन हैं। इन्हीं से इनका जीवन है। स्त्री वंशी है। उसमें : परम प्रेम मृदु चारो। परम प्रेम चारा है। चारा के लोभ से बुद्धि बल शील सत्य सब मारे पड़ते हैं। इनके कारण मनुष्य

दुर्बुद्धि निर्बल दुःशील और झूठा हो जाता है। जो जो गुण तुम्हारे में है सो सब हरण हो जाता। दुर्गुण आकर डेरा लगाते हैं।

दो. अवगुन मूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि।

ताते कीन्ह निवारन, मुनि मैं यह जियँ जानि ॥४४.३८॥

अर्थ : युवती स्त्री अवगुणों की मूल, पीड़ा देनेवाली और सब दुःखों की खान है। इसलिए हे मुनि ! मैंने जी में ऐसा जानकर तुमको विवाह करने से रोका था।

व्याख्या : संसृति मूल सूलप्रद नाना। सकल सोकदायक अभिमाना। सो उस अभिमान को तोड़ने का उपाय किया था। यदि व्याह हो जाता तो प्रमदा संग्रह से अवगुन मूल नाना शूलप्रद वस्तु तो बनी ही रहती। तुम अनर्थ से न बच सकते। अतः मैंने व्याह से रोक दिया। प्रमदा कहने का भाव यह कि इन्हें मद बना ही रहती है। यह उपदेश यति तथा ब्रह्मचारी के लिए है। यहाँ पर अच्छी बुरी स्त्री का प्रश्न नहीं है। ब्रह्मचारी स्त्री मात्र से विरत हो। न पश्येत् लिखितामपि। चित्र की स्त्री न देखे। गृहस्थ के लिए तो कह ही आये हैं : नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहु मोरि करतहहिं निन्दा।

सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए ॥

कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती ॥१॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी के सुन्दर वचन सुनकर मुनि का शरीर पुलकित हो गया और नेत्र भर आये। वे सोचने लगे : कहो तो किस प्रभु की ऐसी रीति है कि जिसका सेवक पर इतना ममत्व और प्रेम हो।

व्याख्या : अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। तब प्रश्न किया। उत्तर देने पर कहते है : सुनि रघुपति के बचन सुहाए। ऐसे भाये कि सात्त्विक भाव हो गया : यह समझकर कि मैंने क्या समझा था और सरकार का क्या भाव था।

ऐसा मालिक कौन होगा कि गाली सुनकर भी कल्याण ही करे। यथा : मथत सिंधु रुद्रहि बौराएहु ''सदा कपट व्यवहारु। सेवक पर ऐसी ममता यथा : साप सीस धरि हरखि हिय प्रभु बहु बिनती कीन्ह। ऐसी प्रीति यथा : निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्ह।

सेवाधर्म कठिन जग जाना। सो स्वामी धर्म को कठिन करके दिखला दिया।

जे न भजहि अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान रंक नर मंद अभागी ॥

पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद ॥२॥

अर्थ : जो मनुष्य भ्रम को त्यागकर ऐसे प्रभु को नहीं भजते वे ज्ञान के कङ्गाल दुर्बुद्धि और अभागे हैं। फिर नारद मुनि आदर सहित बोले हे विज्ञान विशारद श्रीरामजी ! सुनिये।

व्याख्या : यहाँ : प्रभु रक्षा करेंगे ऐसे विश्वास का न होना ही भ्रम है। जिसे भजनीय में ही भ्रम है उसे ज्ञान कहाँ हुआ ? वह मोहवश है। अतः मन्द है। न वह शिशु बच्छ ही हो सका। न प्रौढ़ तनय ही हो सका। अतः अभागी है।

नारदजी का गद्गद कण्ठ है। इससे मृदु वचन न कह सके सादर बोले। मुनि हैं। मनन शील हैं। मन में ठीक किया कि सरकार ने सन्तों को बड़ा ऊँचा पद दिया। स्वयं कहते हैं और अपने वचन के प्रमाण में : सुनु मुनि कह पुराण स्तुति संता। कहते हैं। सो सन्त को कैसे पहिचाने। अतः इन्हींसे लक्षण पूछना चाहिए। ये विज्ञान विशारद हैं।

संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा ॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह के बस रहऊँ ॥३॥

अर्थ : हे रघुवीर ! हे भवभय का नाश करनेवाले मेरे नाथ ! अब कृपाकर सन्तों के लक्षण कहिये। श्रीरामजी ने कहा : हे मुनि ! सुनो। मैं सन्तों के गुणों को कहता हूँ जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ।

व्याख्या : सरकार भवभय भंजन और भीर भञ्जन है। भीर : आपत्ति को कहते हैं। असाधारण धर्म को लक्षण कहते हैं। आप रघुवीर हैं। दया करके कहिये।

दूसरी बात प्रारम्भ होती है। अतः सुनु कहते हैं। सन्तों के गुण ही उनके लक्षण हैं। वे असन्त में नहीं पाये जाते हैं। उनकी बातें मेरे लिए प्रमाण है। क्योंकि मैं स्वयं उनके वश में रहता हूँ : भगति अवसहि बस करी।

षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥
अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी ॥४॥

अर्थ : वे सन्त, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः दोषों को जीते हुए, पाप रहित, कामना रहिन, स्थिर बुद्धि, सर्व त्यागी, बाहर भीतर से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान् और योगी होते हैं।

व्याख्या : पहिला लक्षण षट् विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर उनके वश में हैं। वे इनके वश नहीं है। अनघ हैं सञ्चित पाप भी नष्ट हो गये हैं और क्रियमाण से लेप नहीं है। अकाम हैं वासना रहित हैं। अचल हैं। अपने धर्म से चलायमान नहीं होते। यथा : वट ब्रिस्वास अचल निज धर्मा। अकिञ्चन हैं। किसी वस्तु में उन्हें ममत्व बुद्धि नहीं है। बाहर भीतर से शुद्ध होते हैं। फलतः सुखधाम हैं।

उनका ज्ञान परिच्छिन्न नहीं है। यथैकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं भवति। जैसे एक मिट्टी के पिण्ड के जान लेने से उसके सभी विकार घटशरावादि जाने जाते हैं। उसी भाँति एक ब्रह्म के ज्ञान होने से कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं रह जाता। इसलिए उन्हें अमित बोध कहा। अब उन्हें इच्छा नहीं होती। ऐसे ज्ञानी विधि निषेध से परे होते हैं। फिर भी मितभोगी होते हैं। भिक्षा, कौपीन, कंथा, पादुका में

ही उनका भोग सीमित रहता है। सत्यसार : व्यवहार सच्चा है। सच्चा लेना, सच्चा देना, सच्चा भोजन, सत्य चबेना। मितभोगी और सत्यसार होने से कवि : त्रिकालज्ञ हो जाते हैं। उन्हें वेदार्थ का भान होने लगता है। आपसे आप निरुद्ध होकर मन भगवच्चरण में लग जाता है। कुयोगी भी नहीं है। मोह विटप के उखाड़ने में समर्थ हैं : इससे ज्ञान कहा।

सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना ॥५॥

अर्थ : सावधान, दूसरों को मान देनेवाले, अभिमान रहित, धैर्यवान्, धर्म की गति में अत्यन्त निपुण होते हैं।

व्याख्या : सावधान का अर्थ है प्रमादरहित : प्रमादो वै मृत्युः। इन्हें दूसरे को मान देने में प्रमाद नहीं होता। जो मान देता है वह स्वयं भी मान चाहता है। वे मदहीन रहते हैं। मान नहीं चाहते। धीर हैं : ते धीर अछत बिकार हेतु जे रहत मनसिज बस किये। धर्मगति बहुत सूक्ष्म होती है। गहना कर्मणो गतिः। सो उनकी गति में परम प्रवीण हैं। कर्म विकर्म अकर्म तीनों की सूक्ष्मता को समझते हैं : इसमें कर्म कहा।

दो. गुनागार संसार दुख, रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरण सरोज प्रिय, तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥६.४५.३९॥

अर्थ : गुणों के घर संसार के दुःखों से रहित और सन्देहों से सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरण कमलों को छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है न घर ही।

व्याख्या : पण्डिते च गुणाः सर्वे। खल अघ अगुण साधु गुण गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा। गुण के आस्पद वे ही हैं। संसृत सन्निपात दारुण दुःख से रहित हैं। कभी कभी विद्या व्याप जातो है। अतः विद्या के दुःख का निषेध नहीं किया : हरि सेवकहिं न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापे तेहि बिद्या। उन्हें सन्देह होता ही नहीं। मेरा चरण ही प्रिय है देह गेह प्रिय नहीं। मेरे चरण के सम्बन्ध से देह गेह में प्रेम है। यदि बाधक हो तो उसे त्याग देवें : इससे भक्ति कहा।

निज गुन स्रवण सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं।'
सम सीतल नहिं त्यागहि नीति। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ॥७.१॥

अर्थ : कानों से अपने गुण सुनने में सकुचाते हैं। दूसरों के गुण सुनने में विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं। न्याय का कभी त्याग नहीं करते। सरल स्वभाव होते हैं और सभी से प्रेम रखते हैं।

व्याख्या : निरभिमान हैं। संसार अपने गुण को सुनकर फूल उठता है पर उन्हें सङ्कोच होता है। गुणों के ठीक महत्त्व को जानते हैं। उनके मन मुताबिक वे गुण अपने में नहीं पाते। ऐसा उदार हृदय है कि पर गुण से हर्ष होता है। संसार

परगुण सहन नहीं कर सकता। वे गुणों पर आसक्त हैं। गुणों की बढ़ोत्तरी परम इष्ट है।

वे सम हैं यथा : निज प्रभु मय देखहिं जगत। शीतल हैं यथा : जहाँ सान्ति सत गुरु की दई। तहाँ क्रोध की जरि जरि गई। नीति नहीं छोड़ते : नीति विरोध सोहाइ न मोही। सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान। अतः स्वभाव से सरल होते हैं। सब पर प्रीति करते हैं : आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति। अर्थात् भक्त में भगवान् के सब गुण आ जाते हैं।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा ॥
स्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥८.२॥

अर्थ : वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियम में रत रहते हैं। और गुरु गोविन्द तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, प्रसन्नता और मेरे चरणों में निष्कपट प्रेम होता है।

व्याख्या : उन्हें जप : मन्त्र का अभ्यास। तप : चान्द्रायणादि। व्रत : एकादशी आदि। दम : इन्द्रिय निग्रह। संयम : धारणा ध्यान समाधि। नेम : कार्यानुष्ठान में दृढ़ता। उसमें भङ्ग न हो। गुरु : ज्ञानदाता। गोविन्द : गोरक्षक भगवान् और विप्र इन पर स्वाभाविक प्रीति होती है।

श्रद्धा जननीव पाति योगिनम् : माँ की भाँति योगी की रक्षा करती है। श्रद्धा बिन धर्म नहिं होई। क्षमा : क्रोध को जीतनेवाली है। सामर्थ्य रहते अपराधी को दण्ड न देना क्षमा है। सुखी लोगों में मित्रता का भाव रखना। उनसे वैर न करना। दुःखी पर दया। पुण्यात्माओं को देखकर प्रसन्न होना : मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्। ये सब गुण उनमें होते हैं।

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहि न काऊ। भूलि न देहि कुमारग पाऊ ॥९.३॥

अर्थ : तथा उन्हें वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान और वेद पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान, मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते।

व्याख्या : विवेक राजा है। विराग उसका मन्त्री है। यथा : सचिव बिराग बिबेक नरेसू। विनय विद्या का फल है। ज्ञानी होने पर भी विनय रहे। अपरोक्ष ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। उन्हें वेद पुराण का यथार्थ बोध होता है। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहाते हैं। वेद पुराण के जाननेवाले बहुत हैं। पर यथार्थ बोध सबको नहीं है। सन्तों में ये सब गुण होते हैं।

अब जो सन्त नहीं करते उसे कहते हैं। १. दम्भ : करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अंजोरि। २. मान यथा :

सकल सोक दायक अभिमाना । ३. मद यथा : श्रीमद बक्रन कीन्ह केहि । ४. कुमार्ग में पैर रखना । ये चार बात सन्त कभी नहीं करते ।

गावहि सुनहि सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत लीला ॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते । कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ॥१०.४॥

अर्थ : सदा मेरी लीला को गाते सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरों के हित में लगे रहते हैं । हे मुनि ! सन्तों के जितने गुण हैं उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते ।

व्याख्या : मेरी लीला गावे भी सुने भी : श्रोता मिले तो गावे वक्ता मिले तो सुने । निष्कारण परोपकार कहते हैं । यथा : पर उपकार बचन मन काया । संत सहज सुभाव खगराया । प्रकरण का उपसंहार करते हुए अन्त में दो प्रधान गुण कहा । यहाँ तक असाधारण गुण कहा : जिनते मैं उनके बस रहहूँ । वैसे तो अगणित गुण हैं ।

शारदा स्वर्गलोक की वक्ता, श्रुति मर्त्यलोक की वक्ता । वे भी सन्तों के सब गुण नहीं कह सकते । भाव यह कि अकथनीय हैं । वैखरी में उनका वर्णन नहीं हो सकता : संत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन्ह पै कहै न जाना । निज परिताप द्रवै नवनीता । पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता ।

छं कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे ।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए ।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए ॥

अर्थ : शेष और शारदा भी नहीं कह सकते : यह सुनते ही नारदजी ने श्रीरामजी के चरण कमल पकड़ लिये । दीनबन्धु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने श्रीमुख से अपने भक्तों के गुण कहे । भगवान् के चरणों में बार बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये । तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं जो सब आशा छोड़कर केवल श्रीहरि के रंग में रँग गये हैं ।

व्याख्या : पूर्व अर्धाली में शेष को कहने के लिए स्थान नहीं था । अतः छन्द में कहते हैं । शिष्य की कृतकृत्यता । अपने सेवक का गुण कोई अपने मुख से नहीं कहता । सरकार की इतनी अनुकम्पा है कि अपने मुख से सेवक के गुण कहे । अर्थात् भागवत धर्म का वर्णन किया । नारदजी ने इसीलिए पूछा था कि जो गुण अपने में न हों उसके लिए मैं प्रयत्न करूँ । सो देखा कि मेरे गुणों को अपने मुख से कह रहे हैं । अतः बार बार चरणों में सिर नवाया ।

आशा छोड़कर हरि के रंग में रँग जाने में ही सब गुण हैं।

सोइ सरबग्य गुनी सोइ ज्ञाता। सोइ महि मंडित पंडित दाता॥
धर्मपरायण सोइ कुलत्राता। रामचरण जाकर मन राता॥
बिधि हरिहर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सतसंगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकौ बारा॥

दो. रावनारि जसु पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं, बिनु बिराग जप जोग॥४६. क॥

अर्थ : जो लोग रावण के शत्रु : अथवा जिसका शत्रु रावण है ऐसे श्रीरामजी का पवित्र यश गावेंगे और सुनेगें वे वैराग्य जप और योग के बिना ही श्रीरामजी की दृढ़ भक्ति पावेंगे।

व्याख्या : रावण का यश मन्द। रावणारि का पावन। इस काण्ड में रावण से वैर हो गया। इसलिए रावणारि कहते हैं। भक्ति के साधन हैं बिराग जप और योग। यथा : जप योग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई। सो कथा गान और श्रवण से मिल जाती है। यह इस काण्ड का माहात्म्य है।

दो. दीप सिखा सम जुवति तनु, मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि कामु मदु, करहि सदा सतसंग॥४६. ख. ४०॥

अर्थ : युवती स्त्रियों का शरीर दीपक की लौ के समान है। हे मन ! तू उसका पतिंगा न बन। काम और मद को छोड़कर श्री रामचन्द्रजी का भजन कर और सदा सत्संग कर।

व्याख्या : दीपशिखा को मनोहर देखकर मन पतंग होकर कूदता है और भस्म हो जाता है। यौवनावस्था में ही मनोहर है। जहाँ यौवनावस्था गयी तहाँ मनोहरता भी चली जाती है। अपने मन को शिक्षा देते हैं। सरकार ने नारदजी को स्त्री संग्रह नहीं करने दिया। अतः तू भी संग्रह न कर।

काम मद भजन पथ के बाधक हैं। इन्हें छोड़कर भजन कर और सदा सत्संग कर। यथा : तुलसी घट नव छिद्र को सतसंगति सर बोर। बाहर रहै न प्रेम जल कीजै जतन करोर। उमा रामगुण गूढ़ पण्डित मुनि पावहि बिरति : का साफल्य दिखलाया।

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमलवैराग्यसंपादनो नाम तृतीयः सोपानः समाप्तः

यह काण्ड श्रीरामचरित मानस में आरण्यक का काम देता है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥



चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी